संशोधित

वाल्मीकि रामायण

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग का दर्पण

संस्कृत-हिन्दी

प्रक्षिप्त अंशों पर तर्कपूर्ण, गम्भीर विवेचन

यशपाल शास्त्री

सूर्य भारती प्रकाशन

नई सड़क, दिल्ली-११० ००६

ISBN 81-87182-63-6

लेखक	:	**यशपाल शास्त्री,** एच-९२, फेस-१, अशोक विहार, दिल्ली-११००५२
दूरभाष	:	~~७२२३१५५, ७४४१०६८~~ ९३१ २२ ३२४ २८

प्रकाशक	:	**सूर्य भारती प्रकाशन** २५९६, नई सड़क, दिल्ली-११०००६
दूरभाष	:	३२६६४१२
टाइप सेटर	:	**शर्मा प्रिंटर्स** ५७, निमड़ी कालोनी, दिल्ली-५२
मुद्रक	:	**एस. एन. प्रिंटर्स** नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

मूल्य : ४००.००

प्रथम संस्करण	:	**सृष्टि संवत्**	:	१९६०८५३१०३
		कलि संवत्	:	५१०३
		विक्रमी	:	२०५९
		ईसवी	:	२००२

विनम्र निवेदन

१. *यह रचना अत्यन्त परिश्रम से सम्पादित हुई है। इस अध्यवसाय को सार्थक बनाने के लिये कृपया मनोयोग सहित इसका स्वाध्याय कीजिये और परिवार के सदस्यों को भी लाभान्वित करने के लिये, अधिकाधिक समय तक अपने पास सुरक्षित रखिये। जब अपने पास रखना आपके लिये असम्भव हो जाये, तो कृपया इसे रद्दी में नहीं अपितु किसी सार्वजनिक पुस्तकालय को भेंट कर दीजिये।*

२. *यदि कोई महानुभाव पुस्तक-व्यवसाय के अनुभवी हों और इस पुस्तक का दूसरा संस्करण छाप कर लाभान्वित होना चाहें तो कृपया लेखक से सम्पर्क करें। स्वीकृति सरलता से मिल जायेगी।*

विषय-सूची

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
१.	भूमिका	२१	
२.	विचारणीय विषय	२३	
	बालकाण्ड		
	भूमिका भाग।	१	९६
१.	राजा दशरथ द्वारा सुरक्षित अयोध्यापुरी तथा उनकी राज्य व्यवस्था।	७	४२
२.	राज मंत्रियों के गुण और नीति	१०	१८
३.	राजा का पुत्र के लिये यज्ञ करने का प्रस्ताव। मंत्रियों तथा ब्राह्मणों द्वारा उसकी तैयारी।	११	४२
४.	महाराज दशरथ के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान।	१३	९२
५.	राजाओं तथा ऋष्यशृंग को विदा करके दशरथ का रानियों सहित पुरी में आगमन। श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के जन्म, संस्कार, शील स्वभाव एवं सद्गुण। राजा के समीप विश्वामित्र का आना और उनका सत्कार।	१४	४९
६.	विश्वामित्र की श्रीराम को ले जाने की माँग सुन कर राजा का दुःख से मूर्छित होना।	१८	१९
७.	दशरथ जी का विश्वामित्र को अपना पुत्र देने से मना करना। विश्वामित्र का कुपित होना वसिष्ठ जी का राजा को समझाना।	१९	३६
८.	दशरथ जी का राम और लक्ष्मण को मुनि के साथ भेजना। उनका गंगा और सरयु के संगम पर आश्रम में रात में ठहरना।	२१	२२
९.	विश्वामित्र जी का राम और लक्ष्मण को मलद, करूष एवं ताटका वन का परिचय देते हुए उन्हें ताटका वध के लिये प्रेरित करना।	२३	२२
१०.	श्रीराम के द्वारा ताटका का वध।	२४	१९
११.	विश्वामित्र का श्रीराम को दिव्यास्त्रों की शिक्षा तथा अपने आश्रम सिद्धाश्रम पर पहुँचना।	२६	३९
१२.	श्रीराम और लक्ष्मण द्वारा विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा तथा राक्षसों का संहार।	२८	२२
१३.	श्रीराम, लक्ष्मण तथा ऋषियों सहित विश्वामित्र का मिथिला को प्रस्थान तथा मार्ग में संध्या के समय शोण भद्र नदी के तट पर विश्राम और वहाँ से गंगा तट पर पहुँचना।	२९	२०
१४.	विश्वामित्र आदि का गंगा को पार करके विशाला नगरी में पहुँचना, उस नगरी एवं वहाँ के राजाओं का परिचय देना।	३१	१५
१५.	राजा सुमति से सत्कृत हो एक रात विशाला में रह कर मुनियों सहित श्रीराम का मिथिला पुरी में पहुँचना। राजा जनक द्वारा विश्वामित्र का सत्कार एवं श्रीराम और लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करना।	३२	२९
१६.	शतानन्द और राजा जनक द्वारा विश्वामित्र की प्रशंसा।	३३	११
१७.	राजा जनक द्वारा धनुष को दिखाना और अपनी प्रतिज्ञा के विषय में बताना। श्रीराम के द्वारा धनुर्भंग तथा दशरथ जी को बुलाने के लिये मंत्रियों को भेजा जाना।	३४	३४
१८.	राजा जनक का संदेश पाकर दशरथ जी का मिथिला जाने के लिये उद्यत होना।	३७	१९

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
१९.	राजा दशरथ की मिथिला यात्रा। वहाँ राजा जनक के द्वारा उनका स्वागत सत्कार।	३८	१९
२०.	राजा जनक का अपने भाई कुशध्वज को सांकाश्या नगरी से बुलवाना। राजा दशरथ के अनुरोध से वसिष्ठ जी का सूर्य वंश का परिचय देते हुए श्रीराम और लक्ष्मण के लिये सीता और उर्मिला का वरण करना।	३९	४३
२१.	राजा जनक का अपने कुल का परिचय देते हुए श्रीराम और लक्ष्मण के लिये क्रमशः सीता और उर्मिला को देने की प्रतिज्ञा करना।	४२	२३
२२.	विश्वामित्र द्वारा भरत और शत्रुघ्न के लिये कुशध्वज की कन्याओं का वरण। राजा जनक द्वारा इसकी स्वीकृति तथा राजा दशरथ का अपने पुत्रों के मंगल के लिये गोदान करना।	४३	२३
२३.	श्रीराम आदि चारों भाइयों का विवाह।	४५	३६
२४.	विश्वामित्र का अपने आश्रम को प्रस्थान। राजा जनक का राजा दशरथ को विदा करना। मार्ग में परशुराम जी के द्वारा श्रीराम की शक्ति परीक्षा।	४७	२४
२५.	राजा दशरथ का पुत्रों और वधुओं सहित अयोध्या में प्रवेश। शत्रुघ्न और भरत का ननिहाल जाना। श्रीराम के बर्ताव से सबका संतोष तथा सीता और श्रीराम का पारस्परिक प्रेम।	४८	२३
			७५७

अयोध्याकाण्ड

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
१.	श्रीराम के सद्गुणों का वर्णन। राजा दशरथ का श्रीराम को युवराज बनाने का विचार।	५१	२७
२.	राजा दशरथ द्वारा श्रीराम के यौवराज्याभिषेक का प्रस्ताव तथा सभासदों द्वारा उसका सहर्ष समर्थन और श्रीराम के गुणों की प्रशंसा।	५३	३१
३.	राजा दशरथ का वसिष्ठ और वामदेव को श्रीराम के यौवराज्याभिषेक की तैयारी के लिये कहना। राजा की आज्ञा से सुमन्त्र का श्रीराम को राज सभा में बुला लाना और राजा का उन्हें हितकर राजनीति की बातें बताना।	५५	३०
४.	राजा का सुमन्त्र द्वारा श्रीराम को पुनः अपने अन्तःपुर में बुलवा कर उन्हें आवश्यक बातें बताना। श्रीराम का कौशल्या के भवन में जाकर माता को यह समाचार बताना और माता से आशीर्वाद पाकर अपने महल में जाना।	५७	२९
५.	वसिष्ठ जी का श्रीराम और सीता को उपवास की दीक्षा देकर आना।	५९	२२
६.	श्रीराम के अभिषेक की सूचना से खिन्न मन्थरा का कैकेयी को उभाड़ना, परन्तु प्रसन्न हुई कैकेयी का उसे आभूषण देना और वर माँगने के लिये कहना।	६०	२७
७.	मन्थरा द्वारा पुनः कैकेयी को युक्तियों के द्वारा भड़काने का प्रयत्न करना। कैकेयी द्वारा श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए मन्थरा का प्रतिवाद पर अन्त में उसका मन्थरा की बात मान लेना।	६२	२९
८.	कुब्जा के कुचक्र से कैकेयी का कोप भवन में प्रवेश।	६४	३५
९.	राजा दशरथ का कैकेयी के भवन में जाना और उसे कोप भवन में स्थित देख कर दुखी होना तथा उसे अनेक प्रकार से साँत्वना देना।	६६	२९
१०.	कैकेयी का राजा को प्रतिज्ञाबद्ध करके उन्हें पहले के दिये वरों का स्मरण करा कर भरत के लिये अभिषेक और राम के लिये चौदह वर्ष का वनवास माँगना।	६८	१९
११.	दशरथ जी की चिन्ता, विलाप और कैकेयी को फटकारना, समझाना, वैसा वर न माँगने के लिये अनुरोध करना।	६९	९५
१२.	राजा का विलाप और कैकेयी से अनुनय विनय।	७६	२१

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
१३.	राजा की आज्ञा से सुमन्त्र का श्रीराम को बुलाने के लिये जाना।	७७	१४
१४.	सुमन्त्र का श्रीराम को बुलाने के लिये उनके महल में जाना।	७८	१६
१५.	सुमन्त्र का श्रीराम को महाराज का संदेश सुनाना। श्रीराम का सीता से अनुमति लेकर लक्ष्मण के साथ रथ में बैठ कर मार्ग में स्त्री पुरुषों की बातें सुनते हुए जाना।	८०	४०
१६.	राज पथ की शोभा देखते हुए श्रीराम का पिता के भवन में प्रवेश।	८२	७
१७.	श्रीराम का कैकेयी से पिता की चिन्ता का कारण पूछना। कैकेयी का कठोरता पूर्वक अपने माँगे हुए वरों का वृत्तान्त बता कर श्रीराम को वनवास के लिये कहना।	८३	४०
१८.	श्रीराम का वन में जाना स्वीकार करके माता कौशल्या के पास जाना।	८५	३३
१९.	श्रीराम का कौशल्या को अपने वनवास की बात बताना। कौशल्या का अचेत होना और विलाप करना।	८८	३९
२०.	लक्ष्मण का रोष और श्रीराम को बल पूर्वक राज्य पर अधिकार के लिये कहना। श्रीराम का पिता की आज्ञा पालन को ही धर्म बता कर माता और लक्ष्मण को समझाना।	९१	४५
२१.	श्रीराम का लक्ष्मण को समझाते हुए अपने वनवास में दैव को ही कारण बताना।	९४	२१
२२.	लक्ष्मण द्वारा दैव का खण्डन, पुरुषार्थ का प्रतिपादन तथा श्रीराम के विरोधियों से लोहा लेने के लिये उद्यत होना।	९५	२८
२३.	विलाप करती हुई कौसल्या का श्रीराम से अपने को भी साथ ले चलने के लिये आग्रह करना तथा पति की सेवा ही नारी का धर्म है, यह बता कर श्रीराम का उन्हें रोकना और वन के लिये उनकी अनुमति प्राप्त करना।	९७	३१
२४.	कौसल्या का स्वस्ति वाचन करना और श्री राम का उन्हें प्रणाम करके सीता के पास जाना।	९९	२६
२५.	श्रीराम की उदासी का सीता का उनसे कारण पूछना। श्रीराम का पिता की आज्ञा से वन में जाने का अपना निश्चय बताते हुए सीता को घर में रहने के लिये समझाना।	१०१	३०
२६.	सीता की श्रीराम से अपने को भी साथ ले चलने के लिये प्रार्थना।	१०३	२४
२७.	श्रीराम का सीता को वन के कष्टों का वर्णन करते हुए चलने से मना करना।	१०५	२०
२८.	सीता का श्रीराम से उनके साथ अपने वन जाने का औचित्य बताना।	१०६	१६
२९.	श्रीराम का सीता को माता-पिता और गुरुजनों की सेवा का महत्व बताना, पर सीता के विलाप और घबराहट को देखकर साथ चलने की स्वीकृति देना तथा घर की वस्तुओं को दान करने की आज्ञा देना।	१०७	३९
३०.	श्रीराम और लक्ष्मण का संवाद। श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण का सुहृदों से पूछ कर, दिव्य आयुध ला कर, वन के लिये तैयार होना। श्रीराम का दान के लिये कहना।	११०	३३
३१.	राम, लक्ष्मण और सीता द्वारा सम्पत्ति का दान।	११२	१६
३२.	श्रीराम, सीता और लक्ष्मण का कैकेयी के महल में जाना।	११३	२५
३३.	सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का दशरथ जी से वनवास के लिये विदा माँगना। राजा का शोक और मूर्च्छा। श्री राम का उन्हें समझाना। राजा का श्री राम को हृदय से लगा कर पुनः मूर्च्छित हो जाना।	११५	५२
३४.	सुमन्त्र के समझाने और फटकारने पर भी कैकेयी का टस से मस न होना।	११८	२०
३५.	राजा दशरथ का श्रीराम के साथ खजाना और सेना भेजने का आदेश। कैकेयी द्वारा इसका विरोध। सिद्धार्थ का कैकेयी को समझाना तथा राजा का श्रीराम के साथ जाने की इच्छा प्रकट करना।	११९	२२
३६.	श्रीराम आदि का वल्कल वस्त्र धारण। सीता के वल्कल धारण से गुरु वसिष्ठ का कैकेयी को फटकारते हुए सीता के वल्कलधारण का अनौचित्य बताना।	१२१	२९

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
३७.	राजा दशरथ का सीता का वल्कल धारण अनुचित बता कर कैकेयी को फटकारना और श्रीराम का उनसे कौशल्या पर कृपा दृष्टि के लिये अनुरोध करना।	१२३	१७
३८.	राजा दशरथ का विलाप, सुमन्त्र का राम के लिये रथ तैयार करके लाना, कोषाध्यक्ष का सीता को बहुमूल्य रत्न और आभूषण देना। कौशल्या का सीता को पति सेवा का उपदेश, श्रीराम का अपनी माता से पिता के प्रति दोष दृष्टि न रखने का अनुरोध करके अन्य माताओं से भी विदा माँगना।	१२४	३४
३९.	सीता, राम और लक्ष्मण का दशरथ की परिक्रमा तथा कौसल्या आदि को प्रणाम। सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश। तीनों का वन की ओर प्रस्थान।	१२७	१४
४०.	रनिवास की स्त्रियों का विलाप। नगर वासियों की शोकाकुल अवस्था।	१२८	२९
४१.	शोक पीड़ित दशरथ का भूमि पर गिरना और कैकेयी का परित्याग करना। कौशल्या और सेवकों की सहायता से उनका कौशल्या के भवन में जाना और राम के लिये विलाप करना।	१३०	३४
४२.	महारानी कौसल्या का विलाप।	१३२	२०
४३.	सुमित्रा का कौसल्या को आश्वासन देना।	१३३	२४
४४.	श्रीराम का पुरवासियों से भरत और दशरथ जी के प्रति प्रेम भाव रखने का अनुरोध करते हुए लौट जाने के लिये कहना। नगर के वृद्ध ब्राह्मणों का श्रीराम से लौटने के लिये आग्रह करना तथा उन सबके साथ श्रीराम का तमसा के तट पर पहुँचना।	१३५	२६
४५.	श्रीराम, लक्ष्मण और सीता का रात्रि में तमसा तट पर निवास, माता-पिता और अयोध्या के लिये चिन्ता तथा पुरवासियों को सोते छोड़ कर वन की ओर जाना।	१३७	३२
४६.	प्रात: उठकर पुरवासियों का विलाप और निराश होकर नगर को लौटना।	१३९	१३
४७.	नगरवासिनी स्त्रियों का विलाप।	१४०	२४
४८.	श्रीराम का कोशल जनपद को लाँघते हुए वेदश्रुति, गोमती और स्यंदिका नदियों को पार करके आगे जाना।	१४१	१२
४९.	श्रीराम का अयोध्या नगरी से वनवास की आज्ञा माँगना और शृंगवेर पुर में गंगा तट पर पहुँच कर रात्रि में निवास करना। वहाँ निषादराज गुह द्वारा उनका सत्कार।	१४२	३६
५०.	निषादराज गुह के समक्ष लक्ष्मण का विलाप।	१४५	२०
५१.	श्री राम की आज्ञा से गुह का नाव मँगाना, श्रीराम का सुमन्त्र को अयोध्यापुरी लौट जाने के लिये आज्ञा देना और माता पिता से कहने के लिये सन्देश सुनाना। नाव से पार उतर कर श्रीराम आदि का साँयकाल एक वृक्ष के नीचे विश्राम करना।	१४६	७५
५२.	श्रीराम का गंगा और यमुना के संगम पर भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर पहुँचना।	१५१	१३
५३.	श्रीराम का भरद्वाज आश्रम में मुनि के द्वारा अतिथि सत्कार तथा उन्हें चित्रकूट पर्वत पर ठहरने का आदेश।	१५२	२४
५४.	भरद्वाज जी का श्रीराम को चित्रकूट का मार्ग बताना। उन सबका अपने ही बनाये हुए बेड़े से यमुना नदी को पार करना। यमुना के तट पर रात्रि में निवास।	१५३	२१
५५.	वन की शोभा देखते हुए श्रीराम आदि का चित्रकूट में पहुँचना। वहाँ लक्ष्मण द्वारा पर्णशाला का निर्माण।	१५५	१८
५६.	सुमन्त्र का अयोध्या को लौटना, उनके मुख से श्रीराम का सन्देश सुन कर पुरवासियों का विलाप, राजा दशरथ और कौशल्या की मूर्च्छा।	१५६	२४
५७.	महाराज दशरथ की आज्ञा से सुमन्त्र का श्रीराम और लक्ष्मण के सन्देश सुनाना।	१५८	३४
५८.	सुमन्त्र द्वारा शोकाकुल अयोध्यापुरी की दुरवस्था का वर्णन, राजा दशरथ का विलाप।	१६०	२०

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
५९.	कौशल्या का विलाप और सुमन्त्र का उन्हें समझाना।	१६१	२२
६०.	कौशल्या का विलाप पूर्वक राजा दशरथ को उपालम्भ देना।	१६३	१९
६१.	दुःखी राजा दशरथ का कौशल्या को हाथ जोड़कर मनाना। कौसल्या का उनके चरणों में पड़ कर क्षमा माँगना।	१६४	२०
६२.	दशरथ जी का शोक और उनका कौशल्या से अपने द्वारा मुनि कुमार की हत्या का प्रसंग सुनाना।	१६६	४७
६३.	राजा दशरथ द्वारा मुनि कुमार के मारे जाने का प्रसंग सुना कर कौशल्या के समीप रोते बिलखते हुए आधी रात के समय अपने प्राणों को त्याग देना।	१६९	५४
६४.	राजा दशरथ के दिवंगत होने पर कौशल्या का करुण विलाप तथा पुरवासियों का शोक। राजा के शव को तेल भरे कड़ाह में रखना।	१७२	२२
६५.	मुनियों तथा मंत्रियों का वसिष्ठ जी से किसी को राजा बनाने का अनुरोध।	१७४	१०
६६.	वसिष्ठ जी की आज्ञा से पाँच दूतों का भरत जी को बुलाने के लिये केकय देश के राजगृह नगर में जाना। उनके जाने के रास्ते का वर्णन।	१७४	२०
६७.	दूतों का भरत को वसिष्ठ जी का सन्देश सुनाना। भरत जी का शत्रुघ्न के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान करना।	१७६	२३
६८.	भरत जी के अयोध्या लौटने के मार्ग का वर्णन। भरत जी का अयोध्या की दुरवस्था देखते हुए और सारथी से जिज्ञासा प्रकट करते हुए राजभवन में प्रवेश।	१७७	३४
६९.	भरत जी का कैकेयी से पिता के परलोकवास का समाचार पाकर विलाप करना तथा कैकेयी द्वारा राम के वन गमन के वृतान्त से अवगत होना।	१८०	५२
७०.	भरत जी का कैकेयी को धिक्कारना और उसके प्रति महान रोष प्रकट करना।	१८३	२८
७१.	भरत का कैकेयी को कड़ी फटकार देना।	१८५	२०
७२.	कौशल्या के सामने भरत का शपथ खाना।	१८६	४६
७३.	राजा दशरथ का अन्त्येष्टि संस्कार।	१८९	२३
७४.	तेरहवें दिन विलाप करते हुए भरत, शत्रुघ्न द्वारा अस्थिचयन क्रिया। वसिष्ठ और सुमन्त्रद द्वारा उन्हें समझाना।	१९१	१९
७५.	शत्रुघ्न का कुब्जा के प्रति रोष, उसे घसीटना और भरत जी के कहने से उसे मूर्च्छित अवस्था में छोड़ देना।	१९२	२२
७६.	प्रातः काल के मंगल वाद्य को सुन कर भरत जी का दुःखी होना और उसे बन्द करा कर विलाप करना। वसिष्ठ जी का सभा में आकर मंत्रियों को बुलवाना।	१९४	१४
७७.	वसिष्ठ जी का भरत को राज्य पर अभिषिक्त होने के लिये आदेश देना तथा भरत का उसे अनुचित बता कर अस्वीकार करना और श्रीराम को लौटा लाने के लिए वन में चलने के लिये सबको आदेश देना।	१९५	२०
७८.	भरत जी की वनयात्रा और शृंगवेर पुर में पड़ाव।	१९६	१७
७९.	निषादराज गुह का अपने साथियों को नदी की रक्षा तथा युद्ध के लिये तैयार रहने का आदेश देकर भरत से भेंट।	१९७	११
८०.	गुह और भरत जी की बातचीत और भरत जी का शोक प्रकट करना।	१९८	२०
८१.	निषादराज गुह के द्वारा लक्ष्मण के सद्भाव और विलाप का वर्णन।	२००	१८
८२.	भरत की मूर्च्छा से गुह, शत्रुघ्न और माताओं का दुखी होना। होश में आने पर भरत का गुह से श्रीराम आदि के भोजन और शयन आदि के विषय में पूछना और गुह का उन्हें सब बातें बताना।	२०१	२४

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
८३.	श्रीराम की कुश शय्या देख कर भरत का शोक पूर्ण उद्‌गार और स्वयं भी वल्कल और जटा धारण करके वन में रहने का विचार प्रकट करना।	२०३	२०
८४.	भरत का सेना सहित गंगा पार करके भरद्वाज जी के आश्रम पर जाना।	२०४	१९
८५.	भरत और भरद्वाज मुनि की भेंट। मुनि का उन्हें अपने आश्रम पर ही ठहरने का आदेश देना।	२०५	२४
८६.	भरत का भरद्वाज मुनि से श्रीराम के आश्रम का मार्ग जानना और मुनि को अपनी माताओं का परिचय देकर वहाँ से चित्रकूट के लिये सेना सहित प्रस्थान करना।	२०७	३३
८७.	सेना सहित भरत की चित्रकूट यात्रा का वर्णन।	२०९	२२
८८.	श्रीराम का सीता को चित्रकूट की शोभा दिखाना।	२१०	१९
८९.	श्रीराम का सीता से मन्दाकिनी नदी की शोभा का वर्णन।	२१२	१६
९०.	वन जन्तुओं का भागने के कारण जानने के लिये श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण का शालवृक्ष पर चढ़कर भरत की सेना को देखना और रोष प्रकट करना।	२१३	२५
९१.	श्रीराम का लक्ष्मण के रोष को शान्त करने के लिये भरत के सद्‌भाव का वर्णन। लक्ष्मण का लज्जित होना और भरत की सेना का पर्वत के नीचे ठहरना।	२१५	२५
९२.	भरत के द्वारा श्रीराम के आश्रम की खोज का प्रबन्ध और आश्रम का दर्शन।	२१६	१७
९३.	भरत का शत्रुघ्न आदि के साथ श्रीराम के आश्रम पर जाना, और रोते हुए उनके चरणों पर गिर जाना। श्रीराम का उन सबको हृदय से लगाना।	२१७	२९
९४.	श्रीराम का भरत को कुशल प्रश्न के बहाने राजनीति का उपदेश करना।	२१९	६८
९५.	भरत का श्रीराम को पिता की मृत्यु का समाचार बताना। उन सबका विलाप।	२२४	२२
९६.	वसिष्ठ जी के साथ आती हुई कौशल्या का मन्दाकिनी के तट पर सुमित्रा आदि के समक्ष दुःखपूर्ण उद्‌गार। श्रीराम लक्ष्मण और सीता के द्वारा माताओं की चरण वन्दना तथा वसिष्ठ जी को प्रणाम करके सबके साथ बैठना।	२२५	१९
९७.	भरत का श्रीराम को अयोध्या में चल कर राज्य ग्रहण करने के लिये कहना, श्रीराम का जीवन की अनित्यता बताते हुए पिता की मृत्यु के लिये शोक न करने का भरत को उपदेश और पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये ही राज्य ग्रहण न करके वन में रहने का ही दृढ़ निश्चय बताना।	२२७	४०
९८.	भरत की पुनःश्रीराम से अयोध्या लौटने और राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना।	२३०	३४
९९.	श्रीराम का भरत को समझाकर उन्हें अयोध्या जाने का आदेश देना और जाबाली का नास्तिकों के मत का सहारा लेकर श्री राम को समझाना।	२३२	२७
१००.	श्रीराम के द्वारा जाबाली के नास्तिक मत का खण्डन। वसिष्ठ द्वारा राम को समझाना।	२३४	३४
१०१.	वसिष्ठ जी के समझाने पर श्रीराम को पिता की आज्ञा के पालन से विरत होते न देख कर भरत का धरना देने को तैयार होना तथा श्रीराम का उन्हें समझा कर अयोध्या लौटने की आज्ञा देना।	२३७	३१
१०२.	ऋषियों का भरत को श्रीराम की आज्ञानुसार लौट जाने की सलाह देना। भरत का पुनः राम के चरणों पर गिर कर चलने की प्रार्थना करना। श्रीराम का उन्हें समझा कर अपनी चरणपादुका देकर उन सबको विदा करना।	२३९	२३
१०३.	भरत का भरद्वाज जी से मिलते हुए अयोध्या को लौट जाना।	२४०	१८
१०४.	भरत के द्वारा अयोध्या की दुरवस्था का दर्शन तथा अन्तःपुर में प्रवेश कर के दुखी होना।	२४२	२०
१०५.	भरत का नन्दिग्राम में जाकर श्रीराम की चरण पादुकाओं को राज्य पर अभिषिक्त करके उन्हें निवेदनपूर्वक राज्य का सब कार्य करना।	२४३	१९

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
१०६.	वृद्ध कुलपति सहित ऋषियों का चित्रकूट छोड़ कर दूसरे आश्रम में जाना।	२४४	२५
१०७.	श्रीराम का अत्रि मुनि के आश्रम पर जा कर सत्कृत होना। अनसूया द्वारा सीता सत्कार।	२४६	२५
१०८.	सीता अनसूया संवाद, अनसूया का सीता जी को प्रेमोपहार देना तथा श्रीराम का रात्रि में आश्रम पर रह कर प्रातः काल अन्यत्र जाने के लिये विदा लेना।	२४८	३०
			२९१३

अरण्यकांड

१.	श्रीराम, लक्ष्मण और सीता का तापसों के आश्रमों में सत्कार।	२५०	१३
२.	श्रीराम, लक्ष्मण और सीता पर विराध राक्षस का आक्रमण।	२५१	१२
३.	श्रीराम, लक्ष्मण और विराध का संघर्ष।	२५२	९
४.	विराध-वध।	२५२	१०
५.	श्रीराम का शरभंग मुनि के आश्रम पर जाना, शरभंग मुनि का उन्हें सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम का मार्ग बता कर परलोक गमन। वानप्रस्थ मुनियों की राम से राक्षसों से रक्षा करने की प्रार्थना।	२५३	३२
६.	श्रीराम का सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम पर जाकर उनसे सत्कृत हो रात में वहीं ठहरना।	२५५	१९
७.	सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम से प्रस्थान।	२५६	१७
८.	सीता का श्रीराम से निरपराध राक्षसों को न मारने और अहिंसा धर्म का पालन करने के लिये अनुरोध।	२५८	२१
९.	श्रीराम का ऋषियों की रक्षार्थ राक्षसों के वध के लिये की हुई प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने का विचार प्रकट करना।	२५९	१९
१०.	विभिन्न आश्रमों में घूम कर श्रीराम का पुनः सुतीक्ष्ण के आश्रम पर आना। वहाँ कुछ काल तक रह अगस्त्य मुनि के भाई तथा अगस्त्य मुनि के आश्रम पर जाना।	२६०	५२
११.	श्रीराम द्वारा अगस्त्य मुनि का आतिथ्य सत्कार ग्रहण करना तथा उन्हें अगस्त्य मुनि से दिव्यास्त्रों की प्राप्ति।	२६४	२६
१२.	अगस्त्य मुनि की सलाह से पंचवटी में आश्रम बना कर रहने के लिये श्रीराम का पंचवटी की तरफ प्रस्थान।	२६५	१९
१३.	मार्ग में जटायु का मिलना और पंचवटी में पर्णशाला का निर्माण।	२६७	३७
१४.	लक्ष्मण द्वारा हेमन्त ऋतु का वर्णन, भरत की प्रशंसा। गोदावरी में स्नान।	२६९	३८
१५.	शूर्पनखा का आना और श्रीराम से भार्या बनाने के लिये अनुरोध करना।	२७२	२१
१६.	राम और लक्ष्मण दोनों के द्वारा मना करने पर शूर्पनखा द्वारा सीता पर आक्रमण और लक्ष्मण का उसके नाक कान काट लेना।	२७३	२१
१७.	शूर्पणखा से प्रेरित खर का चौदह राक्षसों को श्रीराम की हत्या के लिये भेजना।	२७४	२०
१८.	श्रीराम द्वारा खर के भेजे चौदह राक्षसों का वध।	२७६	१६
१९.	शूर्पनखा द्वारा पुनः खर को राम के विरूद्ध उकसाना।	२७७	१३
२०.	चौदह हजार राक्षसों के साथ खर, दूषण का पंचवटी की तरफ प्रस्थान।	२७८	१४
२१.	श्रीराम का सीता सहित लक्ष्मण को पर्वत की गुफा में भेजना। युद्ध की तैयारी।	२७९	१४
२२.	राक्षसों का श्रीराम पर आक्रमण और श्रीराम द्वारा राक्षसों का संहार।	२८०	३२
२३.	श्रीराम का दूषण सहित चौदह सहस्र राक्षसों का वध।	२८२	३१

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
२४.	त्रिशिरा का वध।	२८४	१२
२५.	खर के साथ श्रीराम का घोर युद्ध।	२८५	१९
२६.	खर और श्रीराम का युद्ध।	२८६	१०
२७.	खर का वध।	२८७	२१
२८.	शूर्पणखा का रावण के पास जाकर, उसे राम के विरुद्ध भड़काना।	२८८	१५
२९.	रावण के पूछने पर शूर्पणखा द्वारा उसे राम, लक्ष्मण और सीता का परिचय देना और सीता को अपनी पत्नी बनाने के लिये प्रेरित करना।	२८९	२२
३०.	रावण का मारीच के पास जाना।	२९१	१८
३१.	रावण का मारीच से सीता के अपहरण में सहायता देने के लिये कहना।	२९२	१९
३२.	मारीच का रावण को श्रीराम की शक्ति बता कर सीता हरण से रोकना।	२९३	११
३३.	मारीच का रावण को राम की शक्ति के विषय में अपना अनुभव बताना।	२९४	१९
३४.	रावण का मारीच को फटकारना और सीता हरण में सहायता करने की आज्ञा देना।	२९५	२४
३५.	मारीच का रावण को विनाश का भय दिखा कर पुनः समझाना।	२९७	१७
३६.	मारीच का सुनहले मृग के रूप में श्रीराम के आश्रम पर जाना और सीता को लुभाना।	२९८	१९
३७.	कपट मृग को देख कर लक्ष्मण का सन्देह, सीता का उस मृग को जीवित या मृत पकड़ने के लिये हठ, श्रीराम का लक्ष्मण को समझा कर और सीता की रक्षा का भार सौंप कर मृग को मारने के लिये जाना।	२९९	२७
३८.	श्रीराम के द्वारा मारीच का वध, उसके द्वारा सीता और लक्ष्मण को पुकारने का शब्द सुन कर श्रीराम की चिन्ता।	३०१	१७
३९.	सीता के मार्मिक वचनों से प्रेरित होकर लक्ष्मण का श्रीराम के पास जाना।	३०२	३१
४०.	रावण का साधुवेश में सीता के पास जाकर उसका परिचय पूछना। सीता का आतिथ्य के लिये उसे आमंत्रित करना। रावण द्वारा उसे अपनी पटरानी बनाने की इच्छा प्रकट करना। सीता द्वारा उसे फटकारना।	३०४	५१
४१.	रावण द्वारा अपने पराक्रम का वर्णन, सीता का उसे फटकारना। रावण द्वारा सीता जी का अपहरण। सीता का विलाप और जटायु से भेंट।	३०८	३९
४२.	जटायु द्वारा रावण को समझाना और अन्त में युद्ध के लिये ललकारना।	३१०	१३
४३.	जटायु और रावण का घोर युद्ध और रावण के द्वारा जटायु का वध।	३११	१२
४४.	रावण द्वारा सीता का अपहरण।	३१२	३१
४५.	सीता का पाँच वानरों के बीच अपने भूषण गिराना। रावण का लंका में पहुँच कर सीता को अन्तःपुर में रखना तथा जन स्थान में आठ गुप्तचर राक्षसों को भेजना।	३१४	१८
४६.	रावण का सीता को अपना अन्तःपुर दिखना और भार्या बन जाने के लिये समझाना।	३१५	२३
४७.	सीता का राम के प्रति अपना अनन्य अनुराग दिखा कर रावण को फटकारना। रावण की आज्ञा से राक्षसियों का उन्हें अशोक वाटिका में ले जा कर डराना।	३१७	२७
४८.	श्रीराम का चिन्तित होते हुए लौटना, मार्ग में लक्ष्मण से मिलने पर उन्हें उलाहना देकर सीता पर संकट की आशंका करना।	३१८	३३
४९.	श्रीराम का आश्रम में सीता को न पा कर विलाप करते हुए पशुओं और वृक्षों से पूछना और बार-बार उनकी खोज करना।	३२१	२९

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
५०.	श्रीराम का विलाप।	३२३	३७
५१.	मृगों द्वारा संकेत पा कर दोनों भाइयों का दक्षिण दिशा की तरफ जाना, सीता के बिखरे हुए फूल तथा युद्ध के चिह्न देखना।	३२६	३३
५२.	श्रीराम का राक्षसों के प्रति क्रोध प्रकट करना। लक्ष्मण का श्रीराम को समझाना।	३२८	११
५३.	श्रीराम की जटायु से भेंट और उसकी दुर्दशा देख कर विलाप करना।	३२९	२०
५४.	जटायु का प्राणत्याग और श्रीराम के द्वारा अत्येष्टि।	३३०	२०
५५.	लक्ष्मण का अयोमुखी को दण्ड देना।	३३१	१९
			१२२३

किष्किन्धाकाण्ड

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
१.	श्रीराम का पम्पा सरोवर पर पहुँचना। और पम्पा सरोवर की शोभा का वर्णन करते हुए व्याकुल होना। लक्ष्मण का उन्हें समझाना। दोनों भाइयों को देख कर सुग्रीव का भयभीत होना।	३३३	१०९
२.	सुग्रीव का हनुमान् जी को श्रीराम के पास उनका भेद लेने के लिये भेजना।	३४०	१४
३.	हनुमान् जी का श्रीराम और लक्ष्मण के पास जाना, उन्हें अपना और सुग्रीव का परिचय देना। श्रीराम द्वारा हनुमान् के वाक्चातुर्य की प्रशंसा।	३४१	२८
४.	लक्ष्मण का हनुमान् जी को श्रीराम के वन में आने तथा सीता जी के हरे जाने का वृत्तान्त बताना, हनुमान् जी का उन्हें आश्वासन दे कर अपने साथ ले जाना।	३४३	२०
५.	श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री तथा श्रीराम द्वारा बाली वध की प्रतिज्ञा।	३४४	२५
६.	सुग्रीव का श्रीराम को सीता जी के आभूषण दिखाना तथा श्रीराम का शोक।	३४६	२६
७.	सुग्रीव का श्रीराम को समझाना। श्रीराम का सुग्रीव को कार्य सिद्धि का विश्वास दिलाना।	३४७	२१
८.	सुग्रीव का श्रीराम से अपने दुःख का निवेदन। श्रीराम का आश्वासन देते हुए भाइयों में वैर का कारण पूछना।	३४९	२२
९.	सुग्रीव का श्रीराम को बाली से अपने वैर का कारण वर्णन करना।	३५०	२१
१०.	सुग्रीव का बाली से अपने वैर का कारण ही कहना।	३५१	२६
११.	सुग्रीव द्वारा बाली के पराक्रम का वर्णन तथा श्रीराम द्वारा साल वृक्षों का भेदन।	३५३	२४
१२.	श्रीराम आदि का किष्किंधापुरी पहुँचना और सुग्रीव का बाली को ललकारना।	३५५	२३
१३.	सुग्रीव की गर्जना सुन कर बाली का युद्ध के लिये निकलना। तारा का उसे रोक कर सुग्रीव और राम के साथ मैत्री कर लेने के लिये समझाना।	३५६	२३
१४.	बाली का तारा को डाँट कर लौटाना और सुग्रीव से जूझना तथा श्रीराम के बाण से घायल हो कर गिरना।	३५८	२९
१५.	बाली का श्रीरामचन्द्र जी को फटकारना।	३५९	२१
१६.	श्रीराम का बाली को दण्ड का औचित्य बताना, बाली का अपने अपराध के लिये क्षमा माँगते हुए अंगद की रक्षा के लिये प्रार्थना करना। श्रीराम का उसे आश्वासन।	३६१	४२
१७.	अंगद सहित तारा का भागे हुए वानरों से बात करके बाली के समीप आना और उनकी दुर्दशा देख कर रोना।	३६४	२५
१८.	तारा का विलाप।	३६५	२३
१९.	हनुमान् जी का तारा को समझाना।	३६७	१४

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
२०.	बाली का सुग्रीव और अंगद को अन्तिम सन्देश दे कर प्राणोत्सर्ग।	३६८	२५
२१.	तारा का विलाप।	३७०	२५
२२.	सुग्रीव का शोका कुल हो कर श्रीराम से प्राण त्याग करने की आज्ञा माँगना। तारा की श्रीराम से अपने वध के लिये प्रार्थना। श्रीराम का उसे समझाना।	३७२	३२
२३.	लक्ष्मण और श्रीराम का सुग्रीव आदि को समझाना। बाली की अन्त्येष्टि।	३७५	४३
२४.	श्रीराम की आज्ञा से सुग्रीव और अंगद का अभिषेक तथा स्वयं वर्षा के चार मास प्रस्रवण गिरि पर बिताने का निश्चय।	३७८	२६
२५.	प्रस्रवण गिरि पर श्रीराम और लक्ष्मण का वार्तालाप।	३८०	४६
२६.	श्रीराम के द्वारा वर्षा ऋतु का वर्णन।	३८२	५६
२७.	हनुमान् जी का समझाना। सुग्रीव का नील को वानर सैनिकों को एकत्र करने का आदेश।	३८८	२८
२८.	शरद् ऋतु का वर्णन तथा श्रीराम का लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजना।	३९०	५५
२९.	लक्ष्मण का किष्किंधा के द्वार पर जा कर अंगद को सुग्रीव के पास भेजना।	३९४	२५
३०.	हनुमान् जी का चिन्तित हुए सुग्रीव को समझाना।	३९६	१९
३१.	लक्ष्मण का किष्किंधा पुरी की शोभा देखते हुए सुग्रीव के महल में प्रवेश करके क्रोध पूर्वक धनुष को टंकारना, भयभीत सुग्रीव का तारा को उन्हें शान्त करने के लिये भेजना। तारा का उन्हें समझा कर अन्तःपुर में ले जाना।	३९८	४८
३२.	सुग्रीव का लक्ष्मण के पास आना, लक्ष्मण जी का उन्हें फटकारना, और तारा का लक्ष्मण जी को समझाना।	४०१	२८
३३.	सुग्रीव का लक्ष्मण जी से क्षमा माँगना। लक्ष्मण का उनकी प्रशंसा करके उन्हें अपने साथ चलने के लिये कहना।	४०३	१७
३४.	सुग्रीव की हनुमान् जी से सेना के संग्रह के लिये दुबारा दूत भेजने की आज्ञा।	४०४	१०
३५.	सुग्रीव का श्रीराम से आ कर मिलना और क्षमा माँगना, श्रीराम का उन्हें समझाना। सुग्रीव का अपने सैन्य संग्रह विषयक उद्योग के विषय में बताना।	४०५	१८
३६.	श्रीराम सुग्रीव वार्तालाप। वानर यूथपतियों का अपनी-अपनी सेना के साथ आना।	४०६	२४
३७.	सुग्रीव का सीता की खोज में पूर्व दिशा में वानरों को भेजना।	४०८	२२
३८.	सुग्रीव का दक्षिण दिशा में वानरों को भेजना।	४०९	११
३९.	सुग्रीव का पश्चिम दिशा में वानरों को भेजना।	४१०	२०
४०.	सुग्रीव का उत्तर दिशा में वानरों को भेजना।	४११	१९
४१.	श्रीराम का हनुमान् जी को अंगूठी दे कर भेजना।	४१२	१४
४२.	दक्षिण के सिवाय सभी दिशाओं में गये हुए वानरों का निराश हो कर लौट आना।	४१३	१३
४३.	दक्षिण दिशा में गये हुए वानरों द्वारा सीता की खोज आरम्भ करना।	४१४	२०
४४.	अंगद और गन्धमादन के आश्वासन देने पर वानरों का पुनः अन्वेषण कार्य में उत्साह पूर्वक प्रवृत्त होना।	४१६	२७
४५.	अवधि बीत जाने पर भी कार्य सिद्ध न होने पर सुग्रीव के कठोर दंड से डरने वाले अंगद आदि वानरों का उपवास करके प्राण त्याग देने का निश्चय।	४१७	५४
४६.	गृद्धराज सम्पाती का आना और वानरों को अपना परिचय देना तथा रावण और सीता का पता बताना।	४२१	४२

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
४७.	समुद्र की विशालता देख कर अंगद का वानरों से पृथक-पृथक समुद्र लंघन के विषय में उनकी शक्ति पूछना।	४२३	१८
४८.	वानरों द्वारा अपनी-अपनी गमन शक्ति के विषय में बताना। जाम्बवान का हनुमान् जी को प्रेरित करना। हनुमान् जी द्वारा समुद्र पार करने की तैयारी करना।	४२४	४०
			१३६१

सुन्दरकाण्ड

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
१.	हनुमान् जी के द्वारा समुद्र का लंघन।	४२७	१६
२.	लंकापुरी का वर्णन, उसमें प्रवेश करने के विषय में हनुमान् जी का विचार।	४२८	३४
३.	हनुमान् जी का चन्द्र सौन्दर्य को देखना तथा लंका में प्रवेश करके वहाँ के विभिन्न दृश्यों का दर्शन करना।	४३०	२०
४.	हनुमान् जी का घर-घर में सीता जी को ढूँढना और उन्हें न देख कर दुखी होना।	४३२	१७
५.	हनुमान् जी का रावण तथा सेनापतियों के घरों में सीता जी की खोज करना।	४३४	३०
६.	रावण के भवन का वर्णन।	४३५	१२
७.	हनुमान् जी का रावण के भवन में सोयी हुई सुन्दर स्त्रियों को देखना।	४३७	४४
८.	वहाँ हनुमान् जी का अन्तःपुर में सोये हुए रावण तथा उसकी रानियों को देखना और मन्दोदरी को सीता समझ कर प्रसन्न होना।	४४०	४०
९.	यह सीता नहीं है ऐसा निश्चय होने पर पुनः हनुमान् जी का पानभूमि में ढूँढना।	४४२	२६
१०.	सीता जी के मरण की आशंका से हनुमान् जी की चिन्ता, फिर उत्साह का आश्रय लेकर अन्य स्थानों में उनकी खोज और कहीं भी पता न लगने पर पुनः चिन्ता।	४४४	१८
११.	सीता जी के नाश की आशंका से हनुमान् जी की चिन्ता, पुनः खोजने का विचार करना और अशोक वाटिका में ढूँढने के विषय में तरह-तरह की बातें सोचना।	४४५	२९
१२.	हनुमान् जी का अशोक वाटिका में प्रवेश करके उसकी शोभा देखना और एक शीशम के वृक्ष पर छिप कर वहीं से सीता का अनुसन्धान करना।	४४७	२०
१३.	हनुमान् जी का एक चैत्यप्रासाद के पास सीता को दयनीय अवस्था में देखना, पहचानना और प्रसन्न होगा।	४४९	३७
१४.	हनुमान् जी का मन ही मन सीता के शील और सौंदर्य की सराहना करते हुए उन्हें कष्ट में पड़ी हुई देख कर शोक करना।	४५१	२५
१५.	सीता की रक्षा करने वाली राक्षसियों का वर्णन।	४५३	६
१६.	अपनी स्त्रियों से घिरे हुए रावण का अशोक वाटिका में आना, रावण को देख कर सीता की होने वाली अवस्था का वर्णन।	४५३	३१
१७.	रावण का सीता को प्रलोभन।	४५५	२९
१८.	सीता का रावण को समझाना और श्रीराम के सामने उसे नगण्य बताना।	४५७	२६
१९.	रावण का सीता को दो मास की अवधि देना, सीता का उसे फटकारना, रावण का उन्हें धमका कर लौट जाना।	४५९	३२
२०.	राक्षसियों द्वारा सीता को समझाना, और धमकाना, तथा सीता द्वारा मना करना।	४६१	५०
२१.	शोक सन्तप्त सीता का विलाप करना और प्राण त्याग करने के लिये उद्यत होना।	४६४	५४
२२.	सीता जी से वार्तालाप प्रारम्भ करने के विषय में हनुमान् जी का विचार करना।	४६८	३६

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
२३.	हनुमान् जी का सीता को सुनाने के लिये राम कथा का वर्णन करना।	४७०	१८
२४.	सीता का तर्क वितर्क तथा हनुमान् जी को अपना परिचय देना।	४७१	२०
२५.	सीता जी का हनुमान् के प्रति सन्देह और उसका समाधान तथा हनुमान् जी का श्रीराम के गुणों का गान।	४७३	२९
२६.	सीता जी के पूछने पर हनुमान् जी का श्रीराम के शारीरिक चिह्नों और गुणों का वर्णन। सुग्रीव के साथ उनकी मित्रता का प्रसंग सुना कर सीता के मन में विश्वास उत्पन्न करना।	४७५	५६
२७.	हनुमान् जी का सीता जी को श्री राम की मुद्रिका देना तथा उनके प्रेम का वर्णन करके उन्हें सान्त्वना देना।	४७८	२८
२८.	सीता का हनुमान् जी से श्रीराम को शीघ्र बुलाने का आग्रह।	४८०	१९
२९.	सीता जी का हनुमान् जी को पहचान के रूप में अपनी चूड़ामणि देना।	४८२	१२
३०.	हनुमान् जी को सीता जी का श्रीराम को उत्साहित करने के लिये कहना। हनुमान् जी का समुद्र तरण के विषय में वानरों के पराक्रम को बता कर आश्वासन देना।	४८३	२४
३१.	सीता का राम के लिये पुनः सन्देश देना तथा हनुमान् जी का उन्हें आश्वासन दे कर उनसे विदा होना।	४८४	१४
३२.	हनुमान् जी का वापिस आ कर वानरों से मिलना।	४८५	२५
३३.	हनुमान् जी द्वारा अपनी लंका यात्रा का वृत्तान्त वर्णन करना।	४८७	५२
३४.	वानरों का लौटते हुए मधुवन में जा कर मधु और फलों का उपभोग करना। रक्षकों का सुग्रीव के पास शिकायत के लिये जाना।	४९०	२७
३५.	रक्षकों से मधुवन के विध्वंस का समाचार सुन कर सुग्रीव का हनुमान् आदि की सफलता के विषय में अनुमान।	४९२	२२
३६.	रक्षकों से सुग्रीव का सन्देश सुन कर वानरों का किष्किंधा में पहुँचना और हनुमान् का श्रीराम को सीता के दर्शन का समाचार देना।	४९३	२१
३७.	हनुमान् जी से श्रीराम का सीता जी का समाचार सुनना और विलाप करना।	४९५	३२
३८.	हनुमान् जी का श्रीराम को सीता जी का सन्देश सुनाना।	४९७	१९
३९.	हनुमान् जी द्वारा सीता जी के सन्देह और अपने द्वारा उनके निवारण का वृत्तान्त बताना।	४९८	२२
			१०७२

युद्धकाण्ड

१.	हनुमान् जी की प्रशंसा करके श्रीराम का उन्हें हृदय से लगाना और समुद्र को पार करने के विषय में चिन्तित होना। सुग्रीव का उन्हें उत्साहित करना।	५००	३८
२.	हनुमान् द्वारा लंका के दुर्ग, फाटक, सेना आदि का वर्णन करके श्रीराम से सेना को कूच करने की आज्ञा देने की प्रार्थना करना।	५०२	१९
३.	वानर सेना का प्रस्थान और समुद्र तट पर पड़ाव।	५०३	७७
४.	श्रीराम का सीता के लिये शोक और विलाप।	५०८	१७
५.	रावण और उसके सभासदों का सभा में एकत्र होना।	५०९	२७
६.	नगर की रक्षा के लिये सैनिकों की नियुक्ति, रावण का सभासदों को सीता हरण की बात बता कर भावी कर्त्तव्य के लिये सम्मति माँगना। कुम्भकर्ण का पहले तो उसे फटकारना फिर उसकी सहायता करने का वचन देना।	५११	२०

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
७.	रावण के द्वारा अपने पराक्रम के गीत गाना, विभीषण द्वारा सीता लौटाने की सम्मति देना, इन्द्रजित द्वारा विभीषण का उपहास। विभीषण द्वारा उसे फटकारना।	५१३	३२
८.	रावण द्वारा विभीषण का तिरस्कार और विभीषण द्वारा उसे त्याग कर चल देना।	५१६	२०
९.	विभीषण का श्रीराम की शरण में जाना और श्रीराम का अपने मंत्रियों से उन्हें आश्रय देने के विषय में विचार करना।	५१७	५१
१०.	श्रीराम का शरणागत की रक्षा का महत्व और अपना महत्व बताकर विभीषण से मिलने की अनुमति देना।	५२०	३१
११.	विभीषण का श्रीराम से मिलना। श्रीराम का रावण के वध की प्रतिज्ञा करके, विभीषण को लंका के राज्य पर अभिषिक्त करके, उनकी सम्मति से समुद्र तट पर अनुसन्धान के कार्य का निरीक्षण करने के लिये बैठना।	५२२	२७
१२.	रावण का शुक को दूत बना कर सुग्रीव के पास सन्देश भेजना। वहाँ वानरों द्वारा उसकी दुर्दशा। श्रीराम द्वारा उसे छुड़वाना और सुग्रीव का रावण के लिये उत्तर देना।	५२४	२३
१३.	नल के द्वारा सागर पर बाँध का निर्माण और वानर सेना द्वारा सागर के उस पार पहुँच कर पड़ाव डालना।	५२६	२६
१४.	रावण का शुक और सारण को गुप्त रूप से वानर सेना में भेजना, विभीषण द्वारा उन्हें पकड़वाना पर राम द्वारा छुड़वाना। उनका राम का सन्देश लेकर वापिस लौटना और रावण को समझाना।	५२७	२५
१५.	सारण का रावण को वानर यूथपतियों का परिचय देना।	५२९	३४
१६.	सारण का रावण को वानर यूथपतियों का परिचय देना।	५३१	१२
१७.	शुक के द्वारा सुग्रीव के मंत्रियों, मैन्द द्विविद, हनुमान्, श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव का परिचय देना।	५३२	१७
१८.	रावण के द्वारा पुनः दूसरे गुप्तचरों को भेजना, उनका भी पकड़ा जाना और राम की दया से छूट कर लंका में आ कर समाचार बताना।	५३३	१३
१९.	माया रचित कटा मस्तक दिखा कर रावण द्वारा सीता को मोह में डालने का प्रयत्न।	५३४	३७
२०.	सीता का विलाप और रावण का सलाह के लिये सभा में जाना।	५३६	३१
२१.	सरमा का रावण की माया का भेद खोलते हुए सीता को सान्त्वना देना, राम के आगमन का समाचार सुनाना और उनके विजयी होने का विश्वास दिलाना।	५३८	२३
२२.	सीता के अनुरोध से सरमा का मंत्रियों सहित रावण का निश्चित विचार बताना।	५३९	१७
२३.	माल्यवान का रावण को संधि के लिये समझाना। रावण द्वारा नगर रक्षा का प्रबन्ध।	५४०	३०
२४.	विभीषण का श्रीराम से लंका की रक्षा के प्रबन्ध का वर्णन। श्रीराम द्वारा लंका के विभिन्न द्वारों पर आक्रमण के लिये अपने सेनापतियों की नियुक्ति।	५४२	२३
२५.	श्रीराम का प्रमुख वानरों के साथ सुवेल पर्वत पर चढ़ कर रात में निवास करना।	५४४	१७
२६.	श्रीराम का सुवेल पर्वत से लंकापुरी का निरीक्षण करना।	५४५	९
२७.	सुग्रीव और रावण का मल्ल युद्ध करना।	५४६	२२
२८.	श्रीराम का सुग्रीव को दुस्साहस से रोकना। लंका के चारों द्वारों पर वानर सैनिकों की नियुक्ति। राजदूत अंगद का रावण के महल में पराक्रम।	५४८	५४
२९.	लंका पर वानरों की चढ़ाई और राक्षसों से घोर युद्ध।	५५१	२८
३०.	द्वन्द्व युद्ध में वानरों के द्वारा राक्षसों की पराजय।	५५३	३०
३१.	रात में वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध। अंगद के द्वारा इन्द्रजित की पराजय। माया से अदृश्य हुए इन्द्रजित का सर्प विष वाले बाणों से श्रीराम और लक्ष्मण को बाँधना।	५५४	२२

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
३२.	इन्द्रजित के बाणों से राम और लक्ष्मण का अचेत होना।	५५६	१३
३३.	वानरों का शोक। इन्द्रजित का हर्षोद्गार। विभीषण का सुग्रीव को समझाना। इन्द्रजित का लंका में जाकर शत्रुवध का वृत्तान्त बताना और रावण से सत्कृत होना।	५५७	३८
३४.	वानरों के द्वारा श्रीराम और लक्ष्मण की रक्षा। रावण की आज्ञा से रक्षसियों का सीता को विमान के द्वारा रणभूमि में ले जाकर श्रीराम और लक्ष्मण को दिखाना। सीता का विलाप और त्रिजटा द्वारा उन्हें समझाना।	५५९	४०
३५.	गरुड़ जी का आना और श्रीराम तथा लक्ष्मण को सर्प विष से मुक्त करना।	५६१	२४
३६.	श्रीराम के स्वस्थ होने का समाचार पाकर रावण का धूम्राक्ष को युद्ध हेतु भेजना।	५६३	२१
३७.	धूम्राक्ष का युद्ध और हनुमान् जी के द्वारा उसका वध।	५६४	३३
३८.	वज्रदंष्ट्र का युद्ध के लिये प्रस्थान। वानरों और राक्षसों का युद्ध। वज्रदंष्ट के द्वारा वानरों तथा अंगद के द्वारा राक्षसों का संहार।	५६६	२४
३९.	वज्रदंष्ट्र और अंगद का युद्ध। अंगद के द्वारा उसका वध।	५६८	२९
४०.	अकम्पन आदि राक्षसों का युद्ध के लिये आना। वानरों के साथ उनका घोर युद्ध।	५६९	२२
४१.	हनुमान जी के द्वारा अकम्पन का वध।	५७१	२६
४२.	प्रहस्त का रावण की आज्ञा से विशाल सेना सहित, युद्ध के लिये प्रस्थान।	५७२	२२
४३.	नील के द्वारा प्रहस्त का वध।	५७४	४४
४४.	प्रहस्त की मृत्यु से दुखी रावण का स्वयं युद्ध के लिये आना। रावण की मार से सुग्रीव का अचेत होना। लक्ष्मण का युद्ध में आना। हनुमान् और रावण का युद्ध। रावण द्वारा नील का मूर्च्छित होना। लक्ष्मण का शक्ति के आघात से अचेत होना तथा श्रीराम से परास्त होकर रावण का लंका में घुस जाना।	५७७	९४
४५.	अपनी पराजय से दुखी रावण के द्वारा सोये हुए कुम्भकर्ण को जगाया जाना।	५८४	३४
४६.	कुम्भकर्ण का रावण से मिलना। रावण का राम से भय बता कर उसे शत्रुसेना के विनाश के लिये कहना।	५८६	१४
४७.	कुम्भकर्ण का उसके कुकृत्यों के लिये उसे उपालम्भ देना और पुनः धैर्य बँधाते हुए युद्ध विषयक उत्साह प्रकट करना।	५८७	३१
४८.	कुम्भकर्ण की रण यात्रा।	५८९	१६
४९.	कुम्भकर्ण द्वारा वानर सेना का संहार। भागते हुए वानरों को अंगद द्वारा प्रोत्साहन।	५९०	१९
५०.	कुम्भकर्ण का भयंकर युद्ध।	५९२	४९
५१.	कुम्भकर्ण ~~का~~ का वध।	५९४	२७
५२.	कुम्भकर्ण के वध का समाचार सुन कर रावण का विलाप।	५९७	१६
५३.	रावण के पुत्रों और भाइयों का युद्ध के लिये जाना। नरान्तक का अंगद द्वारा वध।	५९९	५९
५४.	हनुमान् जी द्वारा देवान्तक और त्रिशिरा का, नील द्वारा महोदर का तथा ऋषभ द्वारा महा पार्श्व का वध।	६०३	५३
५५.	अतिकाय का भयंकर युद्ध और लक्ष्मण के द्वारा उसका वध।	६०६	६२
५६.	रावण की चिन्ता, राक्षसों को पुरी की रक्षा के लिये सावधान रहने का आदेश, राक्षसों और वानरों का भयानक युद्ध।	६१०	२९
५७.	अंगद के द्वारा कम्पन और प्रजंघ का, द्विविद के द्वारा शोणिताक्ष का, मैन्द के द्वारा यूपाक्ष का और सुग्रीव के द्वारा कुम्भ का वध।	६१२	६४

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
५८.	हनुमान् द्वारा निकुम्भ का वध।	६१६	१२
५९.	रावण की आज्ञा से मकराक्ष का युद्ध के लिये प्रस्थान और श्रीराम द्वारा उसका वध।	६१७	४५
६०.	रावण की आज्ञा से इन्द्रजित का घोर युद्ध। उसके वध के विषय में श्रीराम और लक्ष्मण की बातचीत।	६१९	२४
६१.	इन्द्रजित के द्वारा मायामयी सीता का वध।	६२१	३०
६२.	हनुमान् जी के नेतृत्व में वानरों का निशाचरों से घोर युद्ध। हनुमान जी का श्रीराम के पास लौटना और इन्द्रजित् का निकुम्भिला मन्दिर में जाकर होम करना।	६२३	२१
६३.	सीता के वध को सुनकर श्रीराम का मूर्च्छित होना, लक्ष्मण का उन्हें सान्त्वना देना।	६२४	१४
६४.	विभीषण का श्रीराम को इन्द्रजित की माया के विषय में बता कर सीता के जीवित होने का विश्वास दिलाना और लक्ष्मण को इन्द्रजित के वध के लिये निकुम्भिला मन्दिर भेजने का अनुरोध करना।	६२५	१७
६५.	श्रीराम का लक्ष्मण को इन्द्रजित के वध के लिये भेजना। लक्ष्मण का निकुम्भिला मन्दिर के पास पहुँचना।	६२६	२६
६६.	वानरों और राक्षसों का युद्ध, हनुमान जी द्वारा राक्षस सेना का संहार और उनका इन्द्रजित को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारना।	६२८	२२
६७.	इन्द्रजित और विभीषण की रोषपूर्ण बातचीत।	६२९	२१
६८.	इन्द्रजित और लक्ष्मण की परस्पर रोषयुक्त बातचीत और युद्ध।	६३१	५४
६९.	विभीषण का राक्षसों पर प्रहार और वानर यूथपतियों को प्रोत्साहन देना। लक्ष्मण का इन्द्रजित के सारथी और घोड़ों का वध।	६३४	३१
७०.	इन्द्रजित और लक्ष्मण का भयंकर युद्ध। इन्द्रजित का वध।	६३६	४०
७१.	लक्ष्मण और विभीषण आदि का श्रीराम को इन्द्रजित के वध का समाचार सुनाना। श्रीराम का प्रसन्न होकर लक्ष्मण को हृदय से लगाना। सुषेण द्वारा लक्ष्मण आदि की चिकित्सा।	६३८	२५
७२.	रावण का शोक, सुपार्श्व के समझाने पर सीता के वध की इच्छा से निवृत्त होना।	६४०	३५
७३.	रावण का मन्त्रियों को बुला कर शत्रुवध विषयक अपना उत्साह प्रकट करना और सबके साथ रणभूमि में जाकर पराक्रम दिखाना।	६४२	२८
७४.	सुग्रीव द्वारा राक्षस सेना का संहार और विरूपाक्ष का वध।	६४४	३१
७५.	श्रीराम और रावण का युद्ध।	६४६	२६
७६.	राम और रावण का युद्ध/रावण की शक्ति से लक्ष्मण की मूर्च्छा, रावण का भागना।	६४८	३३
७७.	श्री राम का विलाप। सुषेण द्वारा निर्दिष्ट और हनुमान जी द्वारा लायी ओषधि से लक्ष्मण का सचेत होकर उठना।	६५०	५१
७८.	इन्द्र के भेजे रथ पर बैठ कर राम का रावण से युद्ध।	६५३	२८
७९.	श्रीराम द्वारा रावण को फटकारना, उनके द्वारा घायल किये रावण को सारथी द्वारा युद्धभूमि से बाहर ले जाना।	६५५	२०
८०.	रावण का सारथी को फटकारना और सारथी का उसे लेकर पुनः रणभूमि में आना।	६५६	२५
८१.	रावण के रथ को देख कर श्रीराम द्वारा मातलि को सावधान करना। श्रीराम और रावण का घोर युद्ध और श्रीराम द्वारा रावण का वध।	६५८	४४
८२.	विभीषण का विलाप, श्रीराम का उन्हें समझाना। रावण की स्त्रियों का विलाप।	६६१	३७
८३.	मन्दोदरी का विलाप, तथा रावण के शव का दाह संस्कार।	६६३	८५

सर्ग	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक
८४.	विभीषण का राज्याभिषेक, श्रीराम का हनुमान् जी को सीता के पास को भेजना। हनुमान् जी का सीता जी से बातचीत करके लौटना और उनका सन्देश सुनाना।	६६८	६३
८५.	श्री राम की आज्ञा से विभीषण का सीता को लाना। राम और सीता जी का मिलन।	६७२	२१
८६.	श्रीराम का अयोध्या जाने के लिये उद्यत होना। विभीषण का पुष्पक विमान मँगाना।	६७४	२७
८७.	श्रीराम की आज्ञा से विभीषण द्वारा वानरों का विशेष सत्कार। वानर यूथपतियों तथा विभीषण सहित श्रीराम का पुष्पक विमान के द्वारा अयोध्या को प्रस्थान।	६७५	२६
८८.	अयोध्या लौटते हुए श्रीराम का सीता को मार्ग के स्थान दिखाना।	६७७	४१
८९.	श्रीराम का भरद्वाज आश्रम पर उतर कर महर्षि से मिलना और हनुमान जी को निषादराज गुह और भरत जी को सूचना देने के लिये भेजना।	६७९	४७
९०.	हनुमान् जी का भरत को श्रीराम के वनवास सम्बन्धी सारे वृतान्तों को सुनाना।	६८२	४४
९१.	अयोध्या में श्रीराम के स्वागत की तैयारी। सबका श्रीराम की अगवानी के लिये नन्दीग्राम में पहुँचना। श्रीराम का आगमन तथा भरत आदि से उनका मिलना, पुष्पक विमान को कुबेर के पास भेजना।	६८५	३५
९२.	श्रीराम की नगर यात्रा, राज्याभिषेक और वानरों की विदाई।	६८७	५३
			२१३९

संशोधित रामायण की कुल श्लोक संख्या ⇨ १०२६५

भूमिका

वाल्मीकि रामायण का संशोधित संस्करण संपादित करने में संपादक का प्रमुख उद्देश्य यह है कि भारतीयों के सर्वोच्च आदरणीय महापुरुष भगवान राम और उनके जीवन की स्थापना सभी भारत वासियों और भारतवर्ष से बाहर संसार के दूसरे लोगों के भी समक्ष भारतीय इतिहास के महान पुरुष और भारतीय इतिहास की महान सुघटना के रूप में स्थापित हो।

हम भारतीयों को इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि हम श्रद्धा के कारण श्रीराम को भले ही ऐतिहासिक महापुरुष मानें और अपने आपको भगवान राम की सन्तान मान कर गौरवान्वित होते रहें, पर दुनिया के दूसरे लोग तथा भारतवर्ष के भी इतिहास के विद्वान कहलाने वाले व्यक्ति उन्हें ऐतिहासिक नहीं मानते। कालेजों और विश्वविद्यालयों में इतिहास के प्राध्यापक हमारे बच्चों को यही पढ़ाते हैं, कि भारतवर्ष का इतिहास केवल महात्मा बुद्ध से ही आरम्भ होता है। उससे पहले की महाभारत और रामायण की सारी घटनायें पौराणिक,और माइथॉलौजिकल अर्थात् कपोल कल्पित, सुनी सुनायी बातें हैं।

हमारे देश के हजारों लाखों वर्ष पूर्व के स्वर्णिम तथा गौरवान्वित उस प्राचीन युग का (जिसमें वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, ब्राह्मण, उपनिषद तथा दर्शन ग्रंथों की रचनाएँ हुईं, बड़े बड़े महान पुरुषों ने अपने महान् कार्य प्रस्तुत किये) तथा राम और हनुमान् जैसे महापुरुषों का, हमारे देश के इतिहास में से निकल जाना हमारे देश और जाति के लिये बहुत बड़ी दुर्घटना है। देशप्रेमी विद्वानों को इस दुर्घटना को सुघटना में बदलने के लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये। यदि कोई मुझसे यह कहे कि तुम्हारे पड़बाबा तो हुए ही नहीं थे। उनकी गौरव पूर्ण कहानी जो तुम बताते हो, वह सब असत्य है, तो मैं अपने को कितना अपमानित अनुभव करूँगा? इसी तरह हमारे पूर्व पुरुष भगवान् राम को इतिहास की श्रेणी से हटा कर उन्हें काल्पनिक बताना हम सब भारतीयों के लिये अपमान और दुःख की बात है। इसी अपमान का प्रक्षालन करने के लिये, राम को ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध करने के लिये, संपादक ने वाल्मीकि रामायण के संशोधित संस्करण के संपादन करने का प्रयास किया है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को ऐतिहासिक न माने जाने का एक प्रमुख कारण है उनके जीवन पर सर्व प्रथम श्री वाल्मीकि जी के द्वारा लिखे गये रामायण महा काव्य में वर्तमान काल में बहुत सारी असंभव, अस्वाभाविक और सृष्टिक्रम के विरुद्ध घटनाओं के वर्णन का पाया जाना। जिनके कारण आज का शिक्षित वर्ग यह समझता है कि जब इस प्रकार की घटनाएँ आज किसी के जीवन में नहीं होतीं तो उस समय कैसे हो गयीं? इसलिये ये सारे वर्णन काल्पनिक हैं। किन्तु इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि वाल्मीकि जी ने जिस रामायण की रचना की थी वह आकार में बहुत छोटी थी और उसमें इस प्रकार की घटनाएँ नहीं थीं। जैसे देखिये—

उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैः, तदास्य रामस्य चकार कीर्तिमान्।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो, यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः।।

अर्थात् उदार दृष्टि वाले,यशस्वी मुनि ने तब यशस्वी श्रीराम के जीवन का वर्णन करने वाले मनोरम पदों के, तथा प्रत्येक चरण में समान अक्षरों वाले सैकड़ों श्लोकों के द्वारा इस रामायण काव्य का निर्माण किया, जो उनके यश को बढ़ाने वाला है।

यह श्लोक इस बात को प्रमाणित कर रहा है कि वाल्मीकि ने रामायण की रचना बहुत छोटे आकार में, सैकड़ों श्लोकों में ही अर्थात एक हजार से कम श्लोकों में की थी। पर आज वाल्मीकि रामायण में चौबीस हजार के लगभग श्लोक विद्यमान हैं। निश्चय ही यह असंख्य लोगों के द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये समय समय पर किये हुए प्रक्षेपों का परिणाम है,

जिनके फलस्वरूप आज वाल्मीकि रामायण अनेक प्रकार की सृष्टि नियमों के विरुद्ध, असम्भव घटनाओं का,परस्पर विरोधी बातों का और पुनरुक्त वर्णनों का जमावड़ा बनी हुई है।

इसलिये श्रीराम और उनकी कथा को भारतीय इतिहास में स्थान दिलाने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि विद्वान लोग रामायण में डाले हुए उन प्रक्षेपों को वहाँ से हटायें, या उनकी युक्ति युक्त व्याख्या कर उसे युक्ति संगत रूप प्रदान करें। इसी दिशा में कदम बढ़ाते हुए संपादक ने प्रस्तुत संस्करण में व्याख्या संभव घटनाओं की व्याख्या की है, तथा वाल्मीकि रामायण में बाहर से डाली गयी प्रक्षेप रूपी मैल मिट्टी को हटा कर उसे उसके वास्तविक युक्ति संगत रूप तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। जिससे चौबीस हजार श्लोकों में से अब इस संशोधित संस्करण में दस हजार के लगभग श्लोक रह गये हैं। पर यह कार्य केवल एक व्यक्ति के करने का नहीं है। अभी तो इसे आरंभ किया गया है, पूरा तो यह तभी होगा जब भविष्य में दूसरे विद्वान भी आगे आकर इस कार्य में सहयोग देंगे। इति-

—यशपाल शास्त्री

एच-९२, फेस-१,

अशोक विहार, दिल्ली-११००५२

विचारणीय विषय

विषय सूची

विषय — *पृष्ठ संख्या*

आमुख २५
अनुभूमिका २६
(क) वाल्मीकि और रामायण २९
१-महर्षि वाल्मीकि कौन थे २९
२-वाल्मीकि द्वारा रामायण का लेखन कब और कैसे ३०
३-वाल्मीकि द्वारा रामायण का आरम्भ और अन्त कहाँ से कहाँ तक ३१
४-मूल रामायण का परिमाण कितना ३२
५-श्रीराम का काल ३२
(ख) कुछ घटनाओं की विवेचना ३३
१-अश्वमेध और पुत्रेष्टि यज्ञ ३३
२-अहिल्या उद्धार ३४
३-सीता जी का जन्म और नाम करण ३४
४-राज्याभिषेक और भरत की अनुपस्थिति ३५
५-आकाश-विचरण ३८
६-जटायु ४०
७-स्वर्ण मृग ४२
८-कबन्ध वध ४२
९-शबरी की कथा ४२
१०-क्या हनुमान् आदि बन्दर थे? ४३
११-क्या राम ने बाली को छिप कर मारा था? ४६
१२-ऋक्ष-बिल गुफा ४८
१३-हनुमान् जी का लंका प्रस्थान ४८
१४-लंका दहन ५०
१५-सेतु-बंधन ५२
१६-लंका-दहन वानर-सेना द्वारा द्वितीय बार ५३

१७-क्या गरुड़ जी पक्षी थे? ५४
१८-राम और लक्ष्मण की मूर्छाएं तथा उनका निवारण ५५
१९-कुम्भकर्ण का डील डौल और लम्बी निद्रा ५७
२०-सीताजी की अग्निपरीक्षा ५८
२१-लंका की अवस्थिति ६२
२२-उत्तर काण्ड ६५
२३-श्रीराम के जीवन की प्रमुख घटनाओं का समय ६७
(ग) कुछ शब्दों की व्याख्या ७१
१-वायु-पुत्र, सूर्य-पुत्र आदि ७१
२-देव सुर ७१
३-इन्द्र ७१
४-शत, सहस्र ७१
५-किष्किन्धा गुफा ७१
६-राक्षस, असुर ७२
७-प्रयाग से चित्रकूट की दूरी ७३
८-सेनाओं की संख्याएं ७३
९-वर्ष, संवत्सर ७३
१०-रथ ७३
११-विमान ७३
१२-कुबेर ७४
१३-विश्वकर्मा ७४
१४-अन्तर्हित होना ७४
१५-इन्द्रजित ७४
१६-नारद ७४
१७-परशुराम ७४
१८-त्रिलोक ७५
१९-स्वर्ण ७६
२०-स्वर्ग, नरक ७६
२१-पितर ७६
२२-प्रारब्ध ७६
२३-दिव्यास्त्र ७६
२४-त्रिपथगा-गंगा ७७
२५- वाल्मीकि रामायण के द्वारा प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्य ७८
२६- रामायण की ऐतिहासिकता ७९

आमुख

माननीय श्री यशपाल जी शास्त्री द्वारा लिखी संशोधित वाल्मीकि रामायण की यह भूमिका अभिनंदनीय एवं स्वागत के योग्य है। श्री शास्त्री जी ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर भगवान राम की कथा का गंभीर अध्ययन कर उस में समाहित विशिष्ट घटनाओं की सूक्ष्म विवेचना की है। आपने श्री राम के व्यक्तित्व के अनुरूप ही उनसे जुड़ी कहानी के युक्ति युक्त स्वरूप को समझने समझाने का स्तुत्य प्रयास किया है और अपनी तर्क-पुष्ट स्थापनाओं के समर्थन में वाल्मीकि रामायण से पुष्कल प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।

वाल्मीकि का राम परमेश्वर का अवतार न हो कर एक ऐतिहासिक महापुरुष है। इसीलिये रामायण में ऐसे व्यक्ति को अपना नायक बनाने की कामना व्यक्त की गयी है। यथा—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके,गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च, सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।

इसी वास्तविक व्यावहारिक दृष्टि से संपन्न शास्त्री जी ने संपूर्ण रामायण का संशोधन किया है और उसे वर्तमान से लगभग आधा ही स्वीकारा है। इससे पूर्व भी संक्षिप्त रामायण या संशोधित रामायण श्री जगदीश विद्यार्थी द्वारा छपवायी गयी है। फिर भी इस सम्बन्ध में पुनर्विचार करने में मौलिक एवं प्रक्षिप्त अंशों को पहचानते हुए लेखक की मूल दृष्टि, क्रम बद्धता, प्रसंगों की तारतम्यता आदि का जैसा गहन ध्यान-मनन वांछनीय है, वैसा शास्त्री जी में स्वभावतः विद्यमान है। यह मैं इसलिये जानता और विश्वास पूर्वक कह भी सकता हूँ कि वे मेरे अग्रज हैं, और एक विचारशील पिता श्री नानकचन्द्र जी के सुपुत्र हैं। आपने जीवनभर अध्ययन अध्यापन का कार्य किया है, और अब तो पूर्ण रूप से भारतीय जीवन को दिशा देने वाले प्राचीन आख्यान काव्यों के स्वरूप की वास्तविकता के विश्लेषण में दत्तावधान हो गये हैं। निश्चय ही लेखकीय प्रयास तब सफल होंगे, जब सुहृद् पाठक वृंद विचार पूर्वक इन स्थापनाओं को स्वीकारेगा।

—डा० वेदव्रत आलोक

सेवानिवृत्त रीडर संस्कृत,
स्वामी श्रद्धानन्द कालेज
दिल्ली विश्व विद्यालय

अनुभूमिका

जब कोई व्यक्ति सामान्य जनता के बीच में रहते हुए भी अपने जीवन में कछ ऐसे उच्च कोटि के कार्य करके दिखा देता है कि उन कार्यों को देख कर सामान्य जनता के दूसरे सदस्य यह सोच कर कि हम जैसा ही होते हुए भी इसने इतने उच्च कोटि के कार्य कैसे कर दिये? जब कि हम उन्हें नहीं कर सकते, पहले आश्चर्य चकित होते हैं और फिर उसे अपने से महान समझ कर उसके प्रति श्रद्धावनत हो उसकी जय जयकार करने लगते हैं। तब जनता के द्वारा उस व्यक्ति को महान पुरुष की उपाधि दे दी जाती है। ये महापुरुष अपनी मृत्यु के पश्चात् भी युगों युगों तक लोगों को अपने महान कार्यों से आश्चर्यचकित करते हुए उनके प्रेरणास्रोत बने रहते हैं। ऊपर उठने के इच्छुक जनता के सदस्य उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करते हुए स्वयं भी उन जैसा बनने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार एक की प्रेरणा से दूसरा और दूसरे की प्रेरणा से तीसरा के क्रम से इतिहास के आकाश में अनेक महापुरुष रूपी नक्षत्र जगमगाते हुए देश और जाति के गौरव को बढ़ाते रहते हैं। जिस देश और जाति का इतिहास जितना अधिक अतीत की गहराइयों में धँसा हुआ होता है उसमें उतने ही अधिक महापुरुष रूपी प्रेरणास्रोत उपलब्ध होते हैं।

हमारे देश भारतवर्ष का इतिहास क्योंकि अन्य देशों से अधिक प्राचीन है इसलिये उनकी तुलना में अधिक महापुरुषों से जगमगा रहा है। उन भारतीय महापुरुषों के समूह में सबसे ऊपर जिनका नाम है, वे हैं राम और कृष्ण। इन दोनों महापुरुषों के कार्यों से अभिभूत हो कर भारतीय जनता ने इतने अधिक श्रद्धा के सुमन इनको अर्पित किये कि इनको मानवता से ऊपर उठा कर परमात्मा की कोटि तक पहुँचा दिया। स्थान स्थान पर इनके मंदिर बन गये, जिनमें इनकी मूर्ति स्थापित कर उसके आगे भजन कीर्तन और वर प्राप्त करने के लिये प्रार्थना आदि होने लगी। राम और कृष्ण के साथ राम के सेवक हनुमान जी की भी यही अवस्था हुई। उन्हें भगवान का अवतार तो नहीं पर उनके सबसे बड़े सेवक देवता का अवतार माना जाने लगा, पर जैसा कि कहा गया है कि अति सर्वत्र वर्जयेत् अर्थात् अत्यधिकता प्रत्येक अवस्था में लाभदायक नहीं रहती। इसलिये राम, कृष्ण और हनुमान के प्रति श्रद्धा की अधिकता ने चार बुराइयों को जन्म दिया-

(१) इन महापुरुषों की प्रेरणा स्रोत होने की योग्यता कम करके इन्हें धार्मिक क्षेत्र से संबद्ध कर दिया। जनता में इनके द्वारा भक्ति का प्रचार तो खूब हुआ, इनकी मूर्तियों के सामने प्रार्थना कर के लोगों ने मोक्ष की उपलब्धि तथा बेटा, बेटी, धन धान्य की प्राप्ति, व्यापार में लाभ आदि सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिये याचनाएँ तो बहुत कीं, पर उनमें उनके कार्यों से प्रेरणा प्राप्त कर हम भी राम, कृष्ण और हनुमान् जैसे बनें यह सोच बहुत कम रही,क्योंकि जब उनको परमात्मा मान लिया गया तो कोई दूसरा आदमी परमात्मा थोड़े ही बन सकता है? इसीलिये जब देश पर शत्रुओं के हमले हुए, तब उनकी मूर्तियों के सामने लोगों ने विजय प्राप्ति की याचना तो बहुत की पर उनके जीवन से शिक्षा ले कर उन्हीं के समान बुद्धिचातुर्य और वीरता आदि का प्रयोग करने का प्रयत्न नहीं किया और इसीलिये देश पराधीन हो गया।

(२) अपनी तरफ से तो भक्तों ने इन महात्माओं को देवत्व की कोटि तक पहुँचा कर उनका सम्मान बढ़ा दिया पर उनके द्वारा किये गये महान कार्यों के महत्व को घटा दिया। सामान्य मनुष्य यदि किसी बड़े कार्य को करता है तो उस कार्य को महान माना जाता है, क्योंकि करने वाले को उसमें बहुत परिश्रम करना पड़ा और वह करने वाला भी अपने कार्य के कारण प्रशंसा का पात्र होता है कि देखो उसने कितना बड़ा कार्य किया। पर भगवान के अवतार ने यदि वही कार्य किया तो कार्य के कारण उसका क्या महत्व है? वह तो पहले ही भगवान है। भगवान के लिये कोई कार्य कठिन कैसे हो सकता है? उन्होंने जीवन में जो अध्यवसाय किया, कष्ट सहे, वे उनके लिये वास्तविक पीड़ादायक नहीं थे, वे तो उनके द्वारा की गयी लीला या यों कहिये अभिनय मात्र था।

(३) अवतार मानने के कारण उनकी जीवन गाथाओं में ऐसी अलौकिक घटनाएँ भी जोड़ दी गयीं जो न तो उनके जीवन में हुईं और न हो सकतीं थीं। परिणाम स्वरूप हिंदु संस्कृति में विश्वास रखने वाले आस्तिक हिंदुओं को छोड़ कर, पश्चिमी सभ्यता में ढले नास्तिक हिंदु, अन्य धर्मावलंबी तथा विदेशी लोगों ने इन महापुरुषों को हमारे इतिहास में से ही निकाल दिया। वे इनकी गाथा को पूरी तरह काल्पनिक, पौराणिक और माइथॉलौजिकल मानते हैं क्योंकि सृष्टि के नियम के विरुद्ध अवैज्ञानिक बातें जब आज किसी के जीवन में नहीं होतीं तब उस समय उन महापुरुषों के जीवन में कैसे घटित हो गयीं। उन्हें इस प्रश्न का उत्तर कोई नहीं दे पाता।

राम कृष्ण आदि को अवतार मानने पर भी उनके जीवन वर्णन में अलौकिक घटनाओं के प्रक्षेप से बचा जा सकता था। क्योंकि किसी को भगवान मानने या न मानने का एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण है। इसका उसके जीवन में अलौकिक घटनाओं के होने से कोई संबन्ध नहीं है। यह जरूरी नहीं है कि जिसको हम भगवान का अवतार मानें, वह अपने जीवन में अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन अवश्य करे।अतः राम कृष्णादि को भगवान का अवतार मानते हुए भी यदि उनके जीवन में अलौकिक घटनाओं का प्रक्षेप नहीं होता तो किसी भी भारतीय इतिहास के आलोचक की हमारे उन महान पूर्वजों को अनैतिहासिक और काल्पनिक कहने की हिम्मत नहीं होती।

वैसे भी यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो किसी पुरुष विशेष के विषय में यह मानने पर भी कि यह सामान्य पुरुष नहीं है, इसके रूप में कोई दैवी शक्ति अवतार ले कर मानव जीवन का अभिनय कर रही है, उस अभिनय क्रिया की पूर्ण कुशलता तभी मानी जायेगी जब उस पुरुष विशेष ने अपने सारे महान कार्य अपनी सामान्य सामर्थ्य से ही कड़े अध्यवसाय को अपना कर किये हों, किसी दैवी शक्ति का सहारा न लिया हो। अलौकिक शक्ति का सहारा लेने का मतलब है कि उस पुरुष विशेष के रूप में अवतरित होने वाली वह शक्ति मानवोचित रूप का अभिनय पूरी कुशलता से करने में विफल रही है। इस दृष्टि से अवतार माने जाने वाले महापुरुषों के जीवन वर्णन में अलौकिक घटनाओं का प्रक्षेप अवतरित होने वाली दैवी शक्तियों की प्रतिष्ठा को घटाने वाला है।

राम, कृष्ण और हनुमान् जैसे महापुरुषों का हमारे देश के इतिहास से निकल जाना, उनके जीवन का हमारे लिये पूरी तरह से अनुकरणीय प्रेरणा स्रोत न रह पाना हमारे देश और जाति के लिये एक बड़ी दुर्घटना है। देश के प्रेमी विद्वानों को इस दुर्घटना को सुघटना में बदलने का पूरा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे इन महापुरुषों को भगवान के मंदिरों की कैद से निकाल कर सामान्य जनता के समक्ष महामानव के अनुकरणीय आदर्श में प्रस्तुत किया जा सके।

(४) किसी भी लेखक की अनुपस्थिति में उस लेखक की इच्छा के विपरीत विचारों को उसकी रचना में ठूँस देना उस लेखक के साथ बहुत बड़ा अत्याचार है। यह ऐसा ही है जैसे कोई सत्य बात कहे पर दूसरे लोगों के द्वारा उसे जबर्दस्ती अपनी कही हुई बात को झूठ में बदलने के लिये बाध्य किया जाये।श्रीराम और हनुमान् जी की कथा के लिखने वाले वाल्मीकि ऋषि और श्री कृष्ण के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने वाले व्यास मुनि भी इसी अत्याचार के शिकार हुए। लोगों ने उन्हें परमात्मा सिद्ध करने के लिये जहाँ अपनी पुस्तकें लिखीं वहाँ रामायण और महाभारत में भी अलौकिक घटनाओं के प्रक्षेप की भरमार कर दी, जब कि उन दोनों ने अपने ग्रन्थ राम, कृष्ण और हनुमान् जी को महा पुरुष मानते हुए लिखे थे। वाल्मीकि जी ने तो अपनी रामायण में यह स्पष्ट रूप से सूचित किया है कि वे राम को मानव मानते हैं। रामायण के प्रारंभ में वे नारद जी से एक सर्व गुण संपन्न श्रेष्ठ व्यक्ति के विषय में पूछते हैं, भगवान के अवतार के विषय में नहीं। देखिये—

महर्षे त्वं समर्थोसि, ज्ञातुमेवं विधं नरम्।

अर्थात् हे महर्षे आप इस प्रकार के मनुष्य के विषय में जानने में समर्थ हैं। रामायण में श्रीराम स्वयं अपने को मनुष्य ही कहते हैं, भगवान नहीं। जैसे-

दैव संपादितो दोषो मानुषेण मया जितः। यु० ११८-५

अर्थात् हे सीता तुझ पर जो दैवी विपत्ति आयी उस पर मुझ मनुष्य ने विजय प्राप्त कर ली है।

आत्मानं मानुषं मन्ये, रामं दशरथात्मजम्।। यु०११०-११

अर्थात् मैं तो अपने को महाराज दशरथ का पुत्र एक मनुष्य ही मानता हूँ।

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि, पापानि कर्माण्यसकृत् कृतानि।
तत्रायमद्य पतितो विपाको, दुःखेन दुःखं यदहंविशामि।। अर० ६३-४

अर्थात् हे लक्ष्मण निश्चय ही पूर्व जन्म में मैंने अनेक पाप किये थे। उसी का परिणाम है कि मुझे दुःख के पश्चात् दुःख प्राप्त हो रहे हैं।

वाल्मीकि न केवल राम को मनुष्य मानते थे अपितु मनुष्य को परमात्मा मानने के भी विरुद्ध थे। इसीलिये वे श्रीराम के मुख से कहलाते हैं कि-

नात्मनः कामकारोस्ति पुरुषोयमनीश्वरः। अयोध्या १०५-१५

अर्थात हे भरत, मनुष्य अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि वह ईश्वर नहीं है।

इन्हीं चारों बातों के परिमार्जन के लिये और भगवान् राम को पौराणिकता की सीमाओं से निकाल कर उन्हें वास्तविक ऐतिहासिक महामानव सिद्ध करने के लिये रामायण को गवेषणात्मक रूप में पढ़ते हुए दिमाग में जो कुछ उथल पुथल हुई उसी को यहाँ लेखनी-बद्ध किया गया है। मैंने वाल्मीकि रामायण के इस संशोधन में उन घटनाओं को जिन्हें पुनरुक्त किया गया हैं, निकाल दिया है।उन घटनाओं की जो अलौकिक हैं, या तो युक्ति-युक्त व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है, या उन्हें निकाल दिया गया है। उत्तरकांड को मैं सारा प्रक्षिप्त मानता हूँ इसलिये उसे छोड़ दिया गया है। घटनाओं को निकालते हुए कथा के तारतम्य को टूटने नहीं दिया गया है। संपूर्ण वाल्मीकि रामायण में लगभग चौबीस हजार श्लोक हैं, पर संशोधन के पश्चात् सवा दस हजार रह गये हैं।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों के प्रति अपना हर्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी पुस्तकों से मुझे प्रेरणा और मार्ग दर्शन मिला।

विचारणीय विषय

(क) वाल्मीकि और रामायण

१. महर्षि वाल्मीकि कौन थे?

महर्षि वाल्मीकि के विषय में पहली बात यह भ्रमयुक्त धारणा है कि वे अपने जीवन के प्रारम्भ में डाकू थे, किन्तु रामायण के उत्तर कांड में जो कि वास्तव में स्वयं वाल्मीकि के द्वारा निर्मित नहीं अपितु कालांतर में उनकी शिष्य परंपरा या अन्य लोगों के द्वारा संपादित हुआ है, उन संपादकों द्वारा वाल्मीकि जी के मुख से स्वयं के विषय में सीता जी की पवित्रता की साक्षी देते हुए कहलवाया गया है कि-

प्रचेतसोहं दशमः पुत्रो राघवनंदन। मनसा कर्मणा वाचा, भूतपूर्वं न किल्विषम्।।

अर्थात् हे राम मैं प्रचेता मुनि का दसवाँ पुत्र हूँ। मैंने मन, वचन और कर्म से कभी पापाचरण नहीं किया है। जो व्यक्ति बचपन में डाकू रहा हो वह भला अपने विषय में ऐसा अधिकार सहित कैसे कह सकता है?

वाल्मीकि जी के विषय में दूसरी बात यह प्रसिद्ध है कि वे संस्कृत साहित्य के आदि कवि थे। यह भी एक भ्राँत धारणा है। यदि यह बात सत्य मानी जाये तो यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय सभ्यता का आरंभ रामचंद्र जी से केवल कुछ सौ वर्ष पहले ही हुआ होगा, क्योंकि सभ्यता का काव्य और साहित्य से घनिष्ठ संबन्ध है और यह सर्वथा असंभव है कि किसी जाति में सभ्यता का विकास तो हो जाये पर हृदय के सुख दुख की भावनाओं के प्रकटीकरण की विधा अर्थात् काव्य का विकास न हुआ हो। भारतीय सभ्यता का विकास परंपरा के अनुसार रामायण काल से थोडा नहीं अपितु करोडों वर्ष पहले हुआ था, क्योंकि श्रीराम का जन्म त्रेता युग के अंत में माना जाता है। अर्थात् जब रामचंद्र जी हुए तब वर्तमान चतुर्युगी के प्रारम्भ के दो बडे युगों कृतयुग और त्रेतायुग का समय जो अनेक लाख वर्ष का है समाप्त होने वाला था। वर्तमान चतुर्युगी से पहले की व्यतीत चतुर्युगियों का भी हिसाब लगायें तो कहना ही क्या है? इतने लंबे अंतराल में क्या भारतवर्ष में वाल्मीकि से पहले कोई भी कवि जन्म नहीं ले सका। यह कैसे विश्वसनीय हो सकता है, जब कि हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में ही जिसका आरंभ केवल हजार ग्यारह सौ वर्ष पहले ही हुआ है, साहित्यकारों की एक लम्बी परम्परा है।

२. वाल्मीकि जी से बहुत पहले मनु ने मनुस्मृति की रचना अनुष्टुप छंद में की थी।

३. वेद ही सबसे पुरानी पुस्तकें हैं इस बात को न केवल वेदानुगामी अपितु उनसे भिन्न व्यक्तियों ने भी निर्विवाद रूप में स्वीकार किया है। तो क्या वेदों की वर्णन शैली काव्यात्मक नहीं है? उनके मंत्रों का गहरायी से मनन करते हुए क्या हम शान्त रस का अनुभव तथा प्रकृति सौंदर्य का दर्शन नहीं करते? वेदों का कलापक्ष भी अन्य साहित्यिक रचनाओं के समान छंद और अलंकारों पर आधारित है। यहाँ तक कि जिस अनुष्टुप छंद का जन्म वाल्मीकि जी के द्वारा माना जाता है, उसका भी वेदों में प्रयोग किया हुआ है। जैसे-

अवसृष्टा परापत, शरव्ये ब्रह्म संशिते।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व, मामीषां कं चनोच्छिवः।। ऋ०६-७५-१६

ऐसी स्थिति में वेदों के रहते हुए वाल्मीकि आदि कवि कैसे? इसलिये वाल्मीकि आदि कवि नहीं थे। उन्हें आदि कवि न कह कर राम काव्य का आदि कवि मानना चाहिये, क्योंकि सबसे पहले उन्होंने ही राम के जीवन का काव्यात्मक वर्णन किया।

वे अनुष्टुप छंद के भी आदि जनक नहीं थे। क्रौंच वध की घटना के समय उनके हृदय से जो काव्यात्मक प्रस्फुटन हुआ, उसका महत्त्व इसलिये है, क्योंकि उस घटना से उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मैं जहाँ अन्य अनेक विद्याओं में निष्णात हूँ वहाँ मुझ में काव्य रचना की शक्ति भी है और इस शक्ति का सदुपयोग करने के लिये ही उन्होंने उस समय के किसी सर्व श्रेष्ठ महान पुरुष का चरित्र काव्य रूप में निबद्ध करने का निश्चय किया।

वाल्मीकि जी के विषय में एक अन्य तीसरी बात का भी मैं निषेध करना चाहता हूँ। वह है श्रीराम की वाल्मीकि जी से चित्र कूट में भेंट। यह घटना इसलिये संशयात्मक लगती है, क्योंकि-

१. वाल्मीकि जी ने स्वयं राम चरित्र का वर्णन करते हुए इस रूप में इस घटना का वर्णन नहीं किया कि- उस समय मेरा आश्रम चित्रकूट में था और श्रीराम, लक्ष्मण और सीता मेरे पडौस में आश्रम बनाने से पूर्व मेरे पास मिलने के लिये आये। अपितु इस प्रकार वर्णन किया है कि— सी ता, राम और लक्ष्मण जी ने वाल्मीकि जी के आश्रम में प्रवेश करके उनके चरणों में प्रणाम किया—— वर्णन का यह तरीका ही स्पष्ट करता है कि इस घटना का वर्णन स्वयं वाल्मीकि जी ने अपनी मूल रामायण में नहीं किया, बल्कि इसका समावेश पर वर्ती लोगों के द्वारा किया गया है।

२. वाल्मीकि जी के साथ भेंट का वर्णन बहुत संक्षिप्त केवल ढाई श्लोकों में किया गया है। इसके सिवाय सारे राम चरित्र में श्रीराम के जन्म से लेकर राज्यारोहण तक कहीं भी वाल्मीकि जी का उल्लेख नहीं मिलता, जबकि वर्तमान वर्णन के अनुसार श्रीराम चित्रकूट में रहते हुए कुछ महीने तक तो उनके पडौसी अवश्य रहे होंगे।

३. भरद्वाज जी ने श्रीराम को चित्रकूट जाने का रास्ता बताते हुए भी वाल्मीकि आश्रम का उल्लेख नहीं किया।

४. भरत जी जब श्रीराम से मिलने के लिये चित्रकूट गये तब उनकी भी वाल्मीकि जी से भेंट नहीं हुई।

५. श्रीराम जब लंका से वापिस आये थे तब उन्होंने राह में पडने वाले सभी स्थानों का सी ता जी से वर्णन किया, पर चित्रकूट में वाल्मीकि आश्रम का वर्णन नहीं किया।

६. रामायण में श्रीराम के राज्यारोहण तक सारे रामचरित्र का तीन बार संक्षेप में वर्णन किया गया है। दो बार स्वयं वाल्मीकि जी ने, पहली बार प्रारंभ में नारद जी द्वारा वाल्मीकि जी को राम चरित्र की जानकारी देते हुए किया गया है। दूसरी बार स्वयं वाल्मीकि जी के द्वारा यह बताने के लिये किया गया है कि इस ग्रंथ में राम चरित्र की किन किन बातों का वर्णन हुआ है। तीसरी बार हनुमान जी द्वारा भरत जी से मिलने पर उन्हें चौदह वर्षीय वनवासीय घटनाओं का व्यौरा देने के लिये किया गया है।इन तीनों वर्णनों में कहीं भी श्रीराम की चित्रकूट में वाल्मीकि जी से भेंट का वर्णन नहीं है।

७. यहाँ यह भी विचारणीय है कि यदि चित्रकूट में वाल्मीकि जी की श्रीराम से भेंट हुई होती तो वाल्मीकि को राम चरित्र के विषय में नारद जी से जानकारी लेने की आवश्यकता ही नहीं होती।क्योंकि चित्रकूट आने तक के चरित्र का पता तो उन्हें स्वयं राम से ही लग जाता और आगे की घटनाओं की जानकारी वे भरद्वाज जी से, जिनका आश्रम चित्रकूट से अधिक दूर नहीं था, प्राप्त कर सकते थे।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से यह प्रतीत होता है कि वाल्मीकि जी का न तो चित्रकूट में कोई आश्रम था और ना हीं उनकी श्रीराम से कोई भेंट उनके राज्यारोहण तक हुई थी। तमसा नदी के किनारे उन्होंने राम के राज्यारोहण के पश्चात् ही रहना आरंभ किया था। इससे पहले वे किसी ऐसे सुदूर वर्ती स्थान पर रहते थे, जहाँ से राम चरित्र की जानकारी मिलना कठिन था।

(२) वाल्मीकि द्वारा रामायण का लेखन कब और कैसे?

रामायण में यह लिखा हुआ है कि वाल्मीकि जी का आश्रम तमसा नदी के किनारे पर अवस्थित था। वहाँ रहते हुए अचानक उनके सामने दो बातें उपस्थित हुईं। पहली यह कि उनके मन में यह विचार आया कि इस संसार में इस समय विद्यमान सबसे श्रेष्ठ महापुरुष के विषय में जानना चाहिये और इस इच्छा की पूर्ति के लिये उन्होंने नारद जी से, जो कि भ्रमण करते हुए उनके आश्रम पर आये थे, इस विषय में पूछा-

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं, परं कौतूहलं हि मे। महर्षेत्वंसमर्थोसि,ज्ञातुमेवं विधं नरम्।।

तब नारद जी ने उन्हें बताया कि आजकल अयोध्या के राजा श्री राम चंद्र जी संसार में सर्व श्रेष्ठ महापुरुष हैं।उन्होंने उनके गुणों का वाल्मीकि जी के संमुख वर्णन किया और उनके जीवन की पूरी कहानी उन्हें सुनाई। श्रीराम की कहानी सुनने के पश्चात् जब नारद जी वहाँ से चले गये, तब श्री वाल्मीकि श्रीराम के जीवन और गुणों के विषय में विचार करते हुए अपने शिष्य भारद्वाज के साथ तमसा नदी पर स्नान करने के लिये गये। वहाँ वे अभी पहुँचे भी नहीं थे कि तभी दूसरी बात उनके सामने उपस्थित हो गयी अर्थात् परस्पर विहार करते हुए एक क्रौंच पक्षी के जोडे में से नर क्रौंच को एक व्याध ने अपने बाण से मार गिराया। पति को इस अवस्था में देख कर बेचारी क्रौंची बडे करुण स्वर में विलाप करने लगी। क्रौंची के विलाप को सुन कर महर्षि को बडी दया आयी और उनके मुख से अचानक ही व्याध के प्रति ये वचन निकल पडे-

मा निषाद प्रतिष्ठां, त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

अर्थात् हे निषाद तूने क्रौंच के जोडे में से एक की जो काम से मोहित हो रहा था, हत्या कर दी, अतः तुझे भविष्य में कभी शांति न मिले।इन शब्दों के निकलने के पश्चात् उन्हें दुख भी हुआ कि उन्होंने व्याध के प्रति ऐसे दुर्वचन क्यों कहे, पर साथ ही उस वाक्य की बनावट को देख कर आश्चर्य भी हुआ कि उनका कथन सीधे सादे गद्य के रूप में नहीं था, अपितु चार चरणों में विभक्त था और चारों चरणों में बराबर की संख्या के अक्षर थेऔर इस पूरे कथन को वीणा पर गाया जा सकता था। यह लयात्मक था, अर्थात् यों कहिये कि यह पद्यात्मक था। तब ऋषि को यह बोध हुआ कि मैं काव्य रचना कर सकता हूँ। इस प्रकार जब दो बातें उनके सामने उपस्थित हो गयीं, राम के चरित्र का ज्ञान और अपनी काव्यरचना की योग्यता का अहसास, तब उन्होंने यह कामना की कि अपनी इस योग्यता को सफल सिद्ध करने के लिये मुझे श्रीराम का चरित्र काव्य भाषा में वर्णन करना चाहिये। इसी से प्रेरित हो कर उन्होंने रामायण का सृजन किया।

(३) वाल्मीकि रामायण आरंभ और अंत कहाँ से कहाँ तक

वाल्मीकि द्वारा रचित मूल रामायण का आरंभ मैंने बाल कांड के पाँचवें सर्ग के पाँचवें श्लोक से माना है,क्योंकि यहीं से राजा दशरथ का वर्णन आरंभ होता है।इससे पहले का भाग, जिसमें नारद जी और वाल्मीकि जी की बातचीत, व्याध को शाप और रामायण के लेखन को आरंभ करने का वर्णन आदि है, वह सब मैं रामायण की भूमिका समझता हूँ और यह भूमिका मेरे विचार से वाल्मीकि जी द्वारा नहीं लिखी गयी।क्योंकि यदि उनके द्वारा लिखी जाती, तो वे इसमें अपने को वाल्मीकि ने नारद जी पूछा ऐसा न लिख कर उत्तम पुरुष में मैंने नारद जी से पूछा ऐसा लिखते। इसी प्रकार अन्य वर्णनों के साथ भी है। इसलिये यह भूमिका वाल्मीकि के पश्चात् उनके शिष्यों या किसी अन्य के द्वारा बनायी गयी है। इस भूमिका के भी कम से कम दो संस्करण तो अवश्य हुए हैं। पहली भूमिका में केवल नारद जी द्वारा राम के विषय में जान कर और व्याध को शाप देने की घटना के अनंतर वाल्मीकि ने रामायण का निर्माण आरंभ कर दिया है। दूसरी परिवर्धित भूमिका में ब्रह्मा जी भी नारद जी को प्रेरणा देने के लिये बीच में प्रकट हो जाते हैं और वाल्मीकि इस बात का भी वर्णन करते हैं कि रामायण में उन्होंने राम की कहानी की क्या क्या घटनाएँ वर्णन की हैं तथा अन्य बातें भी इस भूमिका में मिला दी गयीं हैं। मैंने इस दूसरी भूमिका को प्रक्षेप की कोटि में रखा है।

वाल्मीकि रामायण का अंत मैं युद्ध कांड के एक सौ अट्ठाईसवें सर्ग के तिरानवें श्लोक पर मानता हूँ, क्योंकि यहाँ आकर राम का अभिषेक हुआ और यहीं तक भूत काल में वर्णन उचित है।इसके पश्चात् युद्ध कांड और उत्तर कांड के सभी श्लोकों में राम के राज्य की घटनाओं का वर्णन अलौकिकता से युक्त होने के कारण त्याज्य है ही, इसलिये भी त्याज्य है, क्योंकि वह भूत काल में वर्णित है। वाल्मीकि को जब नारद जी राम के विषय में बताते हैं तब यही कहते हैं कि आजकल अयोध्या में राज्य कर रहे श्रीराम ऐसे महापुरुष हैं। अर्थात् श्रीराम के जीवन काल में ही वाल्मीकि जी ने जब रामायण की रचना की तब राम के राज्य की घटनाएँ वर्तमान काल में वर्णित होनी चाहिये । उनका भूत काल में वर्णित होना ही इस बात का सूचक है कि ये वर्णन बाद में मिलाये गये हैं।इसका विस्तृत वर्णन लेख नं० ख-२२ में है।

(४) मूल रामायण का परिमाण कितना

मूल रामायण जो वाल्मीकि जी ने लिखी बहुत छोटी थी, उसके परिमाण के विषय में भूमिका भाग में लिखा है कि-

उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदस्य रामस्य चकार कीर्तिमान्।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो, यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः।।

अर्थात् यह सोच कर उदार दृष्टिवाले उन यशस्वी महर्षि ने श्रीराम के चरित्र को ले कर सैकडों श्लोकों से युक्त महाकाव्य की रचना की, जो उनके यश को बढ़ाने वाला है। इसमे श्रीराम के उदार चरित्रों का प्रतिपादन करने वाले मनोहर पदों का प्रयोग किया गया है।

यहाँ -सैकडों श्लोकों से- इस शब्द से स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि रामायण में पहले एक हजार से अधिक श्लोक संख्या नहीं थी। क्योंकि यदि एक हजार से अधिक होती तो शतैः शब्द का प्रयोग क्यों किया जाता, सहस्रैः शब्द का किया जाता। पर प्रक्षेप विद्या के कारण आजकल रामायण में चौबीस हजार श्लोक हैं।

(५) राम और रामायण का काल

श्रीराम किस समय में हुए इस विषय में वाल्मीकि रामायण में तो कोई उल्लेख नहीं है, पर जनश्रुति और पुराणों के अनुसार उन्हें त्रेता युग के अंत में हुआ बताया गया है। यदि उन्हें त्रेता के अंत में मानें तो इस समय सन् २००२ में कलि संवत् ५१०३ चल रहा है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि द्वापर युग के ८६४००० व और कलियुग के ५१०२ मिल कर ८६९१०२ वर्ष श्रीराम के समय को हो गये। दूसरे वायु पुराण में लिखा है कि-

त्रेतायुगे चतुर्विंशे, रावणः तपसः क्षयात्।
रामं दाशरथिं प्राप्य, सगणः क्षयमीयिवान्।। वा. पु० ७०-४८

अर्थात् आचार से पतित होने के कारण रावण चौबीसवें त्रेता युग में अर्थात् चौबीसवीं चतुर्युगी के त्रेता युग में, जब कि आजकल अट्ठाईसवीं चतुर्युगी चल रही है, दशरथ पुत्र श्रीराम से युद्ध करके परिवार सहित मारा गया।

यदि वायु पुराण की बात सत्य मानें तो राम और रामायण का काल १०८१४९१०२ वर्ष बैठता है। अतः यह विषय अनुसंधान का है, पर इतना तो निश्चित है कि राम और वाल्मीकि दोनों का समय नौ लाख वर्ष के लगभग है।

अन्तःसाक्ष्य :- श्रीराम के काल के विषय में रामायण में एक अन्तःसाक्ष्य यह है कि हनुमान जी जब सीता की खोज में लंका में गये तब उन्होंने वहाँ रावण की गजशाला में चार दाँतों वाले हाथी देखे। चार दाँतों वाले हाथी आज कल नहीं होते। विद्वानों को इस विषय में खोज करनी चाहिये कि ये पहले कब होते थे? इस अनुसन्धान से श्रीराम के समय का निर्धारण हो सकेगा।

(ख) रामायण की कुछ घटनाओं का विवेचन

(१) अश्वमेध और पुत्रेष्टि यज्ञ

रामायण के आरंभ में ही हम पढ़ते हैं कि राजा दशरथ सन्तानोत्पत्ति न होने के कारण बहुत दुखी थे और इस दुख की निवृत्ति के लिये उन्होंने अपने गुरुओं वसिष्ठ आदि ऋषियों से निवेदन किया। ऋषियों ने उन्हें अश्वमेध और पुत्रेष्टि यज्ञ के करने की सलाह दी। यहाँ अश्वमेध यज्ञ की बात प्रक्षेपकारों के द्वारा डाली हुई है, इसके कई कारण हैं।जैसे-

१. सन्तानोत्पत्ति का संबन्ध पुत्रेष्टि यज्ञ से है, अश्वमेध यज्ञ से नहीं। सन्तान चाहने वाले राजा को पुत्रेष्टि यज्ञ के साथ अश्वमेध की भी सलाह दे देना ऐसा ही है जैसे दिल्ली से बंबई जाने के इच्छुक व्यक्ति से यह कहना कि कि पहले तुम कलकत्ता जाओ,फिर वहीं से बंबई चले जाना।

२. अश्वमेध यज्ञ करना कोई छोटा कार्य नहीं था, जिसे थोड़े से प्रयत्न से सम्पन्न कर लिया जाता। विशेष ऐश्वर्यशाली और शक्तिशाली राजा ही उसे कर पाते थे।इस यज्ञ को करने में धन, समय और शक्ति तीनों की आवश्यकता होती थी। धन के विषय में तो नहीं कहा जा सकता कि राजा दशरथ के पास धन की कमी थी, पर समय की उनके पास अवश्य कमी थी। वे सन्तान प्राप्ति के लिये बेचैन थे और जल्दी से जल्दी अपनी इच्छापूर्ति चाहते थे। ऐसी स्थिति में अश्वमेध यज्ञ को करने में, जिसमें महीनों नहीं अपितु वर्षों लग जाते थे,क्योंकि यज्ञ के घोड़े को पहले तैयारी करके यात्रा के लिये छोड़ा जाता था और वह घोड़ा सारे भूमंडल की यात्रा करता था। उसके सकुशल लौटने पर ही यज्ञ की कार्यवाही होती थी। देश विदेश के राजा लोग निमंत्रित हो कर आते थे, इस कार्य में कई वर्ष लग जाते थे।इतने अधिक समय तक राजा को एक ऐसे कार्य में उलझाये रखना जिसका उनकी मुख्य समस्या से संबन्ध नहीं था, उचित नहीं कहा जा सकता।

३. अश्वमेध यज्ञ को कराना उस समय अपने को भू मंडल में सर्व शक्तिशाली राजा घोषित करना होता था। इसीलिये घोड़े को चुनौती के रूप में भू मंडल की यात्रा के लिये भेजा जाता था। अर्थात् दूसरे राजा लोग या तो अश्वमेध कर्ता को अपने से अधिक शक्तिशाली मान कर उसके यज्ञ में भेंट ले कर उपस्थित हों या उसके घोड़े को रोक कर उसका मुकाबला करें। इसलिये वही राजा अश्वमेध यज्ञ को कराता था, जो यह समझता था कि मैं सबसे अधिक शक्तिशाली हूँ, मेरा सामना संसार में कोई नहीं कर सकता। किन्तु रामायण में दशरथ जी ने विश्वामित्र जी के समक्ष यह स्वयं स्वीकार किया है कि रावण का सामना तो मैं अपने सर्व साधनों से भी नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में उनके अश्वमेध यज्ञ को रावण कैसे पूरा होने देता?

४. अश्वमेध यज्ञ की घटना इसलिये भी प्रक्षिप्त लगती है, क्योंकि रामायण में दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के क्रिया कलाप सारे वाम मार्गियों(जिनका प्रचार भारत में महाभारत के बाद बहुत बढ़ गया था) के अनुसार अर्थात् यज्ञ में माँस की आहुति, मद्य-माँसादि का सेवन तथा अन्य अवैदिक बातों से भरे हुए हैं, जब कि राम के समय आर्यों का जीवन शुद्ध वैदिक पद्धति के आधार पर ही था। वेदों में कहीं भी इस प्रकार की उपर्युक्त बातों का निर्देश नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि वाम मार्ग के समर्थन के लिये ही रामायण में अश्वमेध की घटना का प्रक्षेप किया गया।

पुत्रेष्टि यज्ञ के वर्णन में भी एक अस्वाभाविक घटना जोड़ी हुई है। वह है— यज्ञ-कुण्ड में से खीर की थाली लेकर एक देव पुरुष का निकलना। ऐसा होना नितान्त असंभव है। यह खीर आयुर्वेदविद् याज्ञिकों द्वारा औषधियों से तैयार पुत्रदायिनी खीर

होनी चाहिये। आयुर्वेद में ऐसी अनेक प्रकार की औषधियों से तैयार की जाने वाली खीर का वर्णन है, जिनका एक बार , या एकाधिक बार प्रयोग करने से अवश्यमेव सन्तान की प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ रावण कृत अर्क प्रकाश से एक खीर योग प्रस्तुत है-

अश्वगन्धाभवार्केण, सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम्। ऋतुस्नाताङ्गना प्रातः, पीत्वा गर्भं दधाति हि।।

अर्थात् ऋतुस्नान के अनन्तर स्त्री अश्वगंधा(असगंध) के अर्क अथवा क्वात्थ के साथ सिद्ध किया गया दूध घृत सहित प्रातः काल पान करे तो उसे अवश्य गर्भ स्थिर होता है। रामायण में वर्णित खीर कुछ इसी प्रकार की खीर थी, जो मुख्य पुरोहित ऋष्यश्रृंग के द्वारा यह कह कर कि यह खीर देवताओं अर्थात् विद्वानों के द्वारा(क्योंकि विद्वान व्यक्ति को भी देव कहते हैं) तैयार की हुई है, यजमान और उसकी पत्नियों को खिलाने के लिये दी गयी। तत्पश्चात् उस खीर रूपी औषधि के सेवन से ही दशरथ को सन्तान प्राप्ति हुई।

(२) अहिल्या उद्धार

अहिल्या उद्धार की कथा भी रामायण में बाद में जोड़ी हुई प्रतीत होती है।इसका सबसे पहला कारण तो यही है कि मूल रूप से इस कहानी का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में रात्रि को अहिल्या, चंद्रमा को गौतम और सूर्य को इन्द्र का रूपक बताते हुए उनके कार्य का वर्णन किया गया है। इसी रूपक के रूप में वर्णित कहानी को ऐतिहासिक समझ कर बाद में इसे रामायण में जोड़ दिया गया।

दूसरे यह कहानी वरदान और शाप की शक्ति पर आधारित है, पर वरदान और शाप में कोई ~~विशेष~~ शक्ति नहीं है। वरदान और शाप का संबन्ध केवल मन की भावना से है।जब कोई किसी के गलत कार्य से दुखी होता है, तो उसके लिये बुरी कामना करता है और जब कोई किसी के अच्छे कार्य से प्रसन्न होता है तो उसके लिये अच्छी कामना करता है। बस इसी का नाम शाप और वरदान है। मेरे किसी को शाप या वरदान देने से मेरी कामना के अनुसार उसका अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं होगा। परमात्मा अपने नियम के अनुसार सृष्टि का संचालन कर रहे हैं, हमारे शाप या वरदान देने के अनुसार नहीं। यदि वे हमारे शाप और वरदानों पर ध्यान देने लगें, तब तो न जाने कितने लोग प्रतिदिन कितनी बार दूसरों को अपने मन में शाप और वरदान देते रहते हैं। परमात्मा यदि उन्हें पूरा करने में लग जाये तो सृष्टि संचालन के सारे नियम गड़बड़ा जायें। यह बात अवश्य है कि जो किसी को दुख या सुख पहुँचा कर उसके शाप या वरदान देने का उत्तरदायी बनता है, परमात्मा उसके बुरे या अच्छे कार्य का बुरा या अच्छा फल अपनी व्यवस्था के अनुसार अवश्य देता है, पर वह शाप और वरदान देने वाले के कहने के अनुसार नहीं देता।

अहिल्या उद्धार कथा में गौतम के शाप से इन्द्र का अंग भंग हो जाना और अहिल्या का सबसे अदृश्य हो कर तपस्या करने के

लिये विवश हो जाना, या पत्थर बन जाना और श्रीराम के स्पर्श करने से पुनः दृश्यमान हो जाने वाली घटनाएँ शाप पर आधारित और प्रकृति के नियम के विपरीत होने के कारण मान्य नहीं हो सकतीं।

मेरे विचार से जब भारतीय समाज में गिरावट आयी, तब पुरुषों का नारी जाति पर वर्चस्व स्थापित करने के लिये, यह कहानी बना कर रामायण में जोड़ी दी गयी, क्योंकि इसमें धोखे, बलात्कार और अपमान से पीड़ित महिला अहिल्या को तो पत्थर बना दिया गया, पर असली अपराधी इन्द्र को दण्ड देने की जगह हजार नेत्रों वाला होने का वरदान दे दिया गया। इसी प्रकार सीता जी की अग्नि परीक्षा की कहानी भी इसी उद्देश्य से रामायण में जोड़ी गयी है।

(३) सीता जी का जन्म और नामकरण

(क) सीता जी के विषय में यह विचार कि वह पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी, गलत है। क्योंकि ऐसा होना प्रकृति के नियम के विरुद्ध होने के कारण असंभव है।

(ख) यदि सीता जी पृथ्वी से उत्पन्न हुई होती तो जनक उन्हें ममात्मजा अर्थात् मुझ से उत्पन्न हुई ऐसा न कहते। ममात्मजा या ममात्मज केवल उसी संतान को कहा जा सकता है जो अपने वीर्य या शरीर से उत्पन्न हो, गोद ली हुई या पाली हुई संतान को नहीं कहा जा सकता।

(ग) इसके अतिरिक्त सी ता राम के विवाह के समय जहाँ श्रीराम के पूर्वजों का परिचय दिया गया,वहाँ जनक के पूर्वजों का भी परिचय दिया गया। यह बात सिद्ध करती है कि सीता जी जनक की औरस पुत्री थीं, खेत से लाकर पाली हुई नहीं , क्योंकि खेत से लाकर पाली हुई सन्तान का जनक जी के पूर्वजों से क्या संबन्ध? और फिर उनका परिचय किसलिये?

(घ) सीता जी को जनक ने जहाँ ममात्मजा कहा है, वहाँ अयोनिजा भी कहा है। अयोनिजा का सामान्य अर्थ माता के पेट से न पैदा होने वाली और सीता का अर्थ हल के चलाने से पड़ी लकीर से है। इन्हीं दोनों अर्थों के भ्रम से सीता के जन्म की कहानी बन गयी। पर यदि विशेष विचार करें तो मालूम होगा कि योनि का एक अर्थ घर भी है। अतः अयोनिजा अर्थ हुआ कि जो घर में पैदा न हुई हो। वास्तव में उस समय खेती करना एक पवित्र कार्य माना जाता था, क्योंकि सृष्टि के आरंभ में सभ्य होते ही मनुष्य ने जीविकोपार्जन के लिये सर्व प्रथम खेती को ही अपनाया था। अतः उस समय राजा लोगों के भी खेत होते थे और वे कभी कभी समय निकाल कर खेत पर अपने कर्मचारियों के साथ काम भी करते थे।जब वे खेत पर काम करते थे, तब उनके विश्राम के लिये वहाँ अस्थायी विश्राम घर भी होता होगा। इस बात की झलक हमें जयशंकर प्रसाद की पुरस्कार कहानी में मिलती है। राजा जनक भी इसी प्रकार जब उनकी रानी आसन्न प्रसवा होंगी, अपनी रानी के साथ अपने खेत में हल चला रहे होंगे। उसी समय उनकी रानी ने खेत के अस्थायी विश्राम घर में सीता को जन्म दिया होगा। अतः क्योंकि सीता का जन्म घर से बाहर रहते हुए हुआ, इसीलिये राजा जनक उसे अयोनिजा कहते हैं और क्योंकि हल चलाते हुए हुआ, अतः सीता नाम दिया गया।

इसके अतिरिक्त उत्तररामचरितम् में सीता के लिये अनेक बार संबोधन के रूप में **देव यजन संभवे** संबोधन प्राप्त होता है। इससे यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि सीता का जन्म उस समय हुआ जब राजा जनक किसी यज्ञ विशेष के लिये दीक्षित थे। धर्मशास्त्र के नियम के अनुसार यज्ञ में दीक्षित दंपति यज्ञ की पूर्णाहुति पर्यंत यज्ञ-भूमि-परिसर में ही निवास करते हैं। अनेक यज्ञ पक्ष, मास, वर्ष, बारह वर्ष अथवा उससे भी अधिक काल में संपन्न होते हैं। इस प्रकार के दीर्घ कालीन यज्ञ सत्र कहलाते हैं संभवतः ऐसे ही किसी दीर्घ कालीन यज्ञ में राजा जनक दीक्षित थे और उस समय वे यज्ञ भूमि के परिसर में अस्थायी राज निवास में अपनी सगर्भा पत्नी के साथ रह रहे थे। इसी कालावधि में वहाँ(मूल निवास स्थान से अलग) यज्ञ-भूमि में सीता का जन्म हुआ था।इसी कारण सीता के लिये देव यजन संभवा और अयोनिजा (घर से बाहर जन्मी) विशेषणों का प्रयोग होता है। जनक के लिये सीर-ध्वज विशेषण भी प्रयुक्त होता है। सीर का अर्थ हल है। उनके लिये इस विशेषण का प्रयोग तब प्रारंभ हुआ होगा जब उन्होंने ऐसे यज्ञ अधिक मात्रा में कराये होंगे, जिनमें हल चलाना अनिवार्य है। ऐसे ही यज्ञ के समय में जन्म लेने के कारण उनकी पुत्री भी सीता नाम से विख्यात हो गयी।

वैसे यदि सामान्य अर्थ लगाया जाये तो ममात्मजा और अयोनिजा दोनों एक दूसरे के विपरीतार्थक हैं,अतः सामान्य अर्थ लग ही नहीं सकता। राजा जनक जैसा विद्वान व्यक्ति एक ही वाक्य में विपरीतार्थक शब्दों का प्रयोग क्यों करता?

(४) श्रीराम का राज्याभिषेक और भरत एवं शत्रुघ्न की अनुपस्थिति

रामायण में यह बात बड़ी अटपटी लगती है कि चारों भाई एक दूसरे, को बहुत अधिक चाहते हैं। आपस में कोई द्वेष भाव नहीं है, उनके पिता दशरथ भी उन्हें बहुत प्यार करते हैं। परिवार में किसी तरह का कोई विवाद भी नहीं है। फिर धूमधाम से सबसे बड़े पुत्र के अभिषेक की तैयारियाँ हो रहीं हैं, पर राम के ही दो प्रिय भाई भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं। वे अपने ननिहाल गये हुए हैं।ऐसा क्यों? ऐसा तो तभी किया जाता है, जब परिवार में उत्तराधिकार संबन्धी कोई विवाद हो। उस समय दावे दार को जान बूझ कर दूर हटाने का प्रयास किया जाता है।

इस प्रश्न का उत्तर कुछ लोग यह देते हैं कि दशरथ जी ने जब कैकेयी से विवाह किया था, तब उन्होंने कैकेयी के पिता से यह समझौता किया था कि कैकेयी की सन्तान को ही राज गद्दी पर बिठायेंगे। कहीं वह समझौता बीच में रुकावट न बने, इसलियें दशरथ जी भरत जी की अनुपस्थिति में राम का राज्याभिषेक करना चाहते थे, क्योंकि हृदय से तो वे राम के ही समर्थक थे।यदि इस बात को माना जाये फिर तो इससे दशरथ जी पर वचन भंग का बड़ा भारी आक्षेप लगता है। यदि उन्हें वचन भंग का आक्षेप ही अपने ऊपर लगवाना होता, तो वे कैकेयी से भी स्पष्ट कह देते कि मैं तेरे इन वचनों को पूरा नहीं कर सकता। तुझे माँगना हो तो कुछ और माँग नहीं तो चुपचाप कोप भवन में पड़ी रह, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने उसे प्यार से मनाने का यत्न किया कि वह कुछ और माँग ले, पर अपने ऊपर वचन भंग का दोष नहीं आने दिया, बेशक प्राण दे दिये। इसलिये उपर्युक्त समझौते की बात समझ में नहीं आती। दूसरे इससे तो श्रीराम पर भी राज्य लोलुप होने का दोष आता है, क्योंकि उन्हें स्वयं कहना चाहिये था कि जब तक भरत की स्वीकृति न हो मैं यह पद नहीं ग्रहण करूँगा। पर सारी रामायण में आदि से लेकर अंत तक यही प्रकट हो रहा है, कि राम को राज्य से किंचित् भी लगाव नहीं था।

कुछ लोग यह कहते हैं कि यह देवताओं की योजना थी। उन्होंने राम को वन में भेजने के लिये दशरथ की बुद्धि ही ऐसी बना दी, अन्यथा यदि भरत की उपस्थिति में समारोह होता तो राम राजा अवश्य बनते और फिर उनके लिये वन में जा कर राक्षसों के संहार का कोई अवसर ही नहीं बनता। पर यह सब कल्पना मात्र है, इसमें कोई वास्तविकता नहीं है।

वास्तव में यदि अयोध्या कांड में इस राज्याभिषेक के पूरे प्रकरण को ध्यान से देखा जाये, तो वहाँ हमें परस्पर विरोधी दोनों बातें मिलती हैं। वहाँ ऐसी बातें भी मिलती हैं, जिनसे पता लगता है कि राजा दशरथ सचमुच भरत को ननिहाल भेज कर उसकी अनुपस्थिति में राम को राजा बनाने का षडयंत्र रच रहे थे और इसमें श्रीराम की भी सहमति थी, पर साथ ही दूसरी बातें भी मिलतीं हैं जो दशरथ को वचन का पालन करने वाला और सभी पुत्रों के साथ समान बर्ताव करने वाला सच्चरित्र राजा सिद्ध करती हैं। जो यह बताती हैं कि राम जैसा राज्य निरपेक्ष और भाइयों से प्रेम करने वाला व्यक्ति अन्य कोई था ही नहीं। एक ही प्रकरण में इस प्रकार विरोधी बातों का होना यह सिद्ध करता है कि दोनों में से एक तरह की बातें अवश्य ही बाद में मिलायी गयी हैं, इसलिये उन्हें अमान्य करके बाहर निकालना आवश्यक है। फिर कौन सी बातें प्रक्षिप्त मानी जायें? वे जो दशरथ और राम के उज्जवल चरित्र को स्पष्ट करती हैं? जिन पर सारी रामायण का ढाँचा खड़ा हुआ है और जो सारी रामायण में यत्र तत्र बहुतायत से मिलती हैं। या वे थोड़ी सी, जो दशरथ और राम के चरित्र को निम्न कोटि का बताती हैं, तथा जिनके मानने पर रामायण का लिखा जाना ही व्यर्थ सिद्ध हो जाता है? मेरे विचार से ये थोड़ी दूसरी बातें ही प्रक्षिप्त हैं और इन्हें ही हमें रामायण में से दूर कर देना चाहिये।

पर फिर भी भरत और शत्रुघ्न की अनुपस्थिति में राम के राज्याभिषेक वाले प्रश्न का समाधान तो ढूंढना ही होगा। इसके लिये हम इन दो बातों पर विचार कर सकते हैं——

१. पहली बात तो यह है कि भरत जी को दशरथ जी ने उनके ननिहाल कदापि नहीं भेजा था, क्योंकि किसी को भी कहीं तब भेजा जाता है, जब वह वहाँ कभी न जाता हो, या उसे वहाँ न गये हुए बहुत अधिक समय हो गया हो। भरत जी के साथ यह बात बिल्कुल नहीं थी, क्योंकि वे ननिहाल में बहुत प्रिय थे, अतः ननिहाल वाले उन्हें प्रायः अपने यहाँ बुलाये रखते थे। जैसा कि हम देखते हैं कि विवाह होने के तुरंत पश्चात् उनके मामा युधाजित उन्हे अपने यहाँ लिवा कर ले गये और राम के राज्याभिषेक वाली घटना के समय भी वे अपनी ननिहाल में ही थे। इस प्रकार भरत जी का अधिकांश समय अपनी ननिहाल में ही कटता था और उस समय भी वे दशरथ जी द्वारा न भेजे जा कर स्वयं ही या मामा के आमंत्रण पर स्वाभाविक रूप से ननिहाल गये हुए थे।

२. दूसरी बात यह है कि न तो भरत जी के मन में राज्य प्राप्त करने की और न कैकेयी के मन में भरत को राज्य गद्दी पर बैठाने की कोई इच्छा थी। वह राम को भी उतना ही प्यार करती थी जितना भरत को। राम के राज्याभिषेक की सूचना पाकर उसे भी कौसल्या के समान ही खुशी हुई थी। वह तो उसके दिल में मंथरा के द्वारा जहर भरा गया था। इस प्रकार सारे भाइयों

और परिवार के सदस्यों के हृदय में यह मौन सहमति थी कि भविष्य में राम ही राजा बनेंगे। इसीलिये दशरथ जी के साथ चारों भाइयों में से केवल श्रीराम ही राज्य के कार्य में सहयोग किया करते थे और प्रजा के सुख दुख का भी वही ध्यान रखते थे। प्रजा के लोगों से उनका घनिष्ठ संबन्ध हो गया था, प्रजा के जन भी उन्हें बहुत चाहने लगे थे। यदि भरत जी और कैकेयी के मन में जरा भी राज्य की इच्छा होती तो भरत जी न तो ननिहाल के स्वयं अधिक चक्कर लगाते और ना हीं कैकेयी उन्हें वहाँ भेजती। वह भरत जी को इस बात के लिये विवश करती कि वे अयोध्या में ही रह कर राम के साथ राम की ही तरह राज्य के कार्यों को समझें और प्रजा के साथ अपने संबन्ध बढ़ायें। पर वस्तु स्थिति बिल्कुल विपरीत थी।दोनों ही मा बेटे पूरी तरह राम के पक्ष में थे और उन्हें ही भावी राजा के रूप में समझते थे। इसीलिये विवाह से ले कर अभिषेक वाली घटना तक के बारह वर्षों में राम के संबन्ध प्रजा से इतने अधिक दृढ हो गये थे, प्रजा राम को इतना अधिक चाहने लगी थी कि वह आतुरता के साथ राम के राज्याभिषेक की बाट देख रही थी।

३. तीसरी बात यह है कि राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक नहीं अपितु यौवराज्याभिषेक करने जा रहे थे। अर्थात् अगले दिन वे उन्हें राज गद्दी पर नहीं बिठा रहे थे, अपितु उन्हें युवराज घोषित करने का समारोह कर रहे थे। जैसे——

तं चंद्रमेव पुष्येण, युक्तं धर्मभृतां वरम्। यौवराज्ये नियोक्तास्मि, प्रातः पुरुष पुंगवम्।।

अर्थात् धर्मधारियों में श्रेष्ठ और पुरुष शिरोमणि श्रीराम को मैं कल प्रातः जैसे चंद्रमा पुष्य नक्षत्र से युक्त होगा,उसी तरह युवराज के पद से युक्त करूँगा।मंथरा जब कैकेयी को भड़काने के लिये उसके पास जाती है, तब वह भी——

रामं दशरथो राजा, यौवराज्येभिषेक्ष्यति। अयोध्या ८-२०

अर्थात राम को राजा युवराज पद पर अभिषिक्त करेंगे यह कह कर युवराज बनाने की ही सूचना देती है। महाभारत में भी राम को युवराज बनाने का ही वर्णन है। जैसे——

मंत्रयामास सचिवैः, धर्मज्ञैश्च पुरोहितैः। अभिषेकाय रामस्य, यौवराज्येन भारत ।। वन पर्व २७७-८

अर्थात् उन्होंने मंत्रियों और धर्मज्ञ पुरोहितों से राम के युवराज पद पर अभिषेक के लिये मंत्रणा की। युवराज बनाना पहले राजा की तरफ से एक औपचारिक घोषणा होती थी, कि मेरे पश्चात् यह व्यक्ति राजा बनेगा। अर्थात् यह कहिये कि जिनका राजा बनना पहले से ही तय था, उन श्रीराम को युवराज बना कर उनके भावी राजा होने के विषय में राजकीय संपुष्टि होनी थी। इस समारोह के विषय में किसी का भी मतभेद नहीं था और ना ही कोई उसके विरोध में था। यह समारोह राज्याभिषेक के मुकाबले कितना छोटा समारोह था। इसका पता इस बात से ही लगता है कि राजा दशरथ अपने प्रमुख मंडलाधिपतियों,नागरिकों और सभासदों को बुलाकर अचानक घोषणा करते हैं कि मैं कल श्री राम को युवराज बना रहा हूँ। क्या राज्याभिषेक की घोषणा केवल एक दिन पहले की जाती है? कितना भी छोटे से छोटा राजा क्यों न हो, वह भी अपने प्रियतम पुत्र के राज्याभिषेक की तैयारी महीनों पहले आरंभ कर देगा,पर यहाँ राजा दशरथ केवल एक दिन पहले ही युवराज बनाने की घोषणा करते हैं। एक दिन में कितनी तैयारियाँ सजावट और धूम धाम हो सकती है? वह तो क्योंकि प्रजा राम को अत्यधिक चाहती थी, इसलिये वह इस समाचार को सुनते ही विभिन्न प्रकारों से अपने हार्दिक उद्गारों को व्यक्त करने लगी थी। जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा था, कि मानो बड़ी धूम धाम हो रही है, अन्यथा ऐसी बात नहीं थी। फिर इतने थोड़े समय में भरत को तो बुलाया ही नहीं जा सकता था।

४. दशरथ जी की चारों संतानें उन्हें बड़ी आयु में प्रयत्न करने पर प्राप्त हुईं थीं। उनके विवाह उनके पूर्ण वयस्क होने और अपनी विद्या समाप्त कर लेने पर ही हुए थे, फिर उनके विवाह को भी हुए उस समय बारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे,क्योंकि सीता जी ने रावण को अपना प्रथम परिचय देते हुए यह स्पष्ट किया था कि विवाह के पश्चात् उसने बारह वर्ष तक श्वसुर गृह में रह कर राज सुख भोगे। इसका मतलब यह है कि दशरथ जी उस समय तक पर्याप्त बूढ़े हो चुके थे।अपनी इस वृद्धावस्था का उन्हे ज्ञान भी था। जैसे दशरथ श्रीराम से कहते हैं कि——

राम वृद्धोस्मि दीर्घायुर्भुक्ता भोगा यथेप्सिताः।। अयोध्या४-१२

अर्थात् हे राम अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मेरी आयु बहुत अधिक हो गयी है। मैंने बहुत से मनोवाँछित भोग भोग लिये हैं। महाभारत में भी यही प्रकट किया गया है। जैसे-

ततः स राजा मतिमान्, मत्वा आत्मानं वयोधिकम्। वन पर्व २७७-७

अर्थात् उस बुद्धिमान राजा ने अपनी आयु बहुत अधिक मान कर।

इस बुढापे की प्रतीति के साथ हो सकता है कि राजा दशरथ को अपनी आसन्न होने वाली मृत्यु का भी पूर्वाभास हो गया हो, क्योंकि आज भी हम देखते हैं कि कई मनुष्यों को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो जाता है और वे इस विषय में अपने परिवार वालों को बता देते हैं। ऐसा ही आभास दशरथ जी को भी हो गया होगा, इसका कारण वे भले ही न जान पाये हों। तब हृदय की आवाज के अनुसार ही उन्होंने यह तय कर लिया होगा कि कल ही राम का यौवराज्याभिषेक करा देता हूँ, ताकि यदि मुझे कुछ हो जाये तो अव्यवस्था न हो।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यही स्पष्ट होता है कि भरत और शत्रुघ्न का उस अवसर पर अनुपस्थित होना प्रायोजित नहीं था, अपितु आकस्मिक था तथा उस घटना में कोई षड्यंत्र नहीं था।

(५) आकाश विचरण

वाल्मीकि रामायण को पढ़ते हुए अनेक स्थानों पर ऐसे वर्णन आते हैं, जिनका संबन्ध आकाश विचरण से है। हम पढ़ते हैं कि विश्वामित्र के यज्ञ का विध्वंस करने के लिये राक्षस आकाश मार्ग से आते हैं, सीता की खोज में लंका जाते हुए हनुमान् जी ने समुद्र का उल्लंघन आकाश मार्ग से ही किया।इन्द्रजित ने आकाश में विचरण करते हुए बादलों में छिप कर श्रीराम और लक्ष्मण जी पर प्रहार कर उन्हें मूर्छित कर दिया। लक्ष्मण जी के लिये बूटी भी हनुमान् जी आकाश मार्ग से ही लाये आदि आदि। आकाश विचरण की इन घटनाओं की सत्यता पर विचार करते हुए यदि हम यह मान कर सन्तोष कर लें कि ऐसा इसलिये संभव हो सका, क्योंकि उन आकाश विचरण करने वाले व्यक्तियों में कोई अलौकिक शक्ति थी, तो यह युक्ति युक्त न होगा, क्योंकि पक्षी जाति के तथा उन प्राणियों को छोड़ कर, जिनके पास उड़ने के लिये पंख होते हैं,संसार में कोई भी प्राणी स्वयं अपनी शक्ति से आकाश विचरण नहीं कर सकता, जबकि हनुमान् इंद्रजित आदि के पास पंखों की कोई सहायता नहीं थी।

अतः आकाश विचरण की इस समस्या को सुलझाने के लिये हमें यह स्वीकार करना होगा कि उस समय वायुयान थे। पर वायुयान तो बिजली तेल आदि की ऊर्जा से चलते हैं। क्या ऐसे ही ऊर्जा से चलने वाले वायुयान हनुमान् आदि वानरों के पास थे? कदापि नहीं। यद्यपि ऊर्जा से चलने वाले विमान भी उस समय थे, जैसे रावण के पास पुष्पक विमान था, पर श्री हनुमान् आदि वानर सेनापतियों के पास ऊर्जा चालित विमान नहीं थे क्योंकि यदि उनके पास ऊर्जा चालित विमान होते तो सीता की खोज के लिये लंका जाते समय उनके सामने यह समस्या उत्पन्न न होती कि विस्तृत सागर के पार कौन शक्तिशाली वानर जा सकता है? जैसे आजकल ऊर्जा चालित विमानों का कोई भी पायलट यह कहते हुए नहीं सुना जाता कि मैं अपने विमान को केवल १०००कि० मी० तक ही ले जा सकता हूँ,२०००कि० मी० तक नहीं ले जा सकता, क्योंकि ऊर्जा चालित विमानों को ऊर्जा ईंधन से प्राप्त होती है, पायलट की शारीरिक शक्ति से नहीं। इसलिये हनुमान् आदि वानरों के आकाश विचरण के विषय में यह समझना चाहिये कि उनके पास आज कल सड़कों पर दौड़ने वाली साइकलों की तरह एयर -साइकलें होंगी जो ईंधन से प्राप्त ऊर्जा की जगह चालक की शारीरिक ऊर्जा से संचालित होती होंगी। जैसे आजकल की साइकलों को बलिष्ठ व्यक्ति कमजोर व्यक्ति की अपेक्षा अधिक तेजी से और लगातार अधिक दूर तक चला सकता है, वैसे ही उन एयर-साइकलों के लिये भी होता होगा। इसीलिये समुद्र पार जाने के लिये उन वानर वीरों को अपनी अपनी सामर्थ्य को बताना पड़ा कि मैं लगातार इतनी दूर तक आकाश में जा सकता हूँ और मैं इतनी। हनुमान् जी क्योंकि शारीरिक शक्ति में अपने समय के सर्वोत्कृष्ट वानर

थे, इसलिये उन्होंने ही समुद्र पार करने और लंका में जाने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया। पर साथ ही मेरा अनुमान यह भी है कि जब हनुमान् जी बूटी लेने के लिये कैलाश पर्वत पर गये तब उन्होंने अपनी एयर साइकल की जगह, विभीषण अपने चार साथियों के साथ जिस ईंधन चालित विमान से आये थे, उस विमान का प्रयोग किया होगा। लंका से कैलाश पर्वत की दूरी बहुत अधिक थी और हनुमान् जी को जड़ी बूटियाँ भी उठा कर लानी थीं। फिर श्रीराम के पास उस समय कम से कम एक ईंधन चालित विमान विभीषण वाला तो होगा ही।

यह निश्चित और प्रमाणित तथ्य है कि रामायण कालीन समय में भारतीयों के पास विमान विद्या केवल सामान्य रूप में नहीं बल्कि अत्यंत विकसित अवस्था में थी, उनके विमान आजकल के तीव्रतम विमानों से किसी भी प्रकार कम नहीं थे। यह बात जानने के इच्छुक लोगों को महर्षि भरद्वाज लिखित बृहद्विमान शास्त्र के एक अध्याय की एक खंडित प्रति, जो हिंदी अनुवाद सहित सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानंद भवन, रामलीला ग्राउंड, दिल्ली द्वारा प्रकाशित है, को पढ़ना चाहिये। उसमें विमानों के निर्माण के जो नमूने दिये गये हैं, वे आज कल के विकसित विमानों से कम नहीं हैं। उसमें विमान विद्या के विभिन्न अंगों से संबद्ध ९७ ग्रंथों और ३६ आचार्यों के नाम लिखे हुए हैं।इस ग्रंथ में विमानों के जो नमूने वर्णित हैं, उनमें एक विमान की गति एक घंटे में ८००० मील की होती है, एक विमान सुनहरे रंग की धातु का बना बताया गया और एक ऐसे विमान का वर्णन किया गया है, जो जल, स्थल और आकाश तीनों स्थानों में चल सकता था।

यह हम भारत वासियों का दुर्भाग्य है कि लंबे समय की दासता का नशा अभी भी हमसे दूर नहीं हुआ है और उसके कुप्रभाव के कारण अपने पूर्वजों की इस थाती को हम स्वीकार ही नहीं कर रहे हैं। हम अपने इतिहास के विषय में विदेशियों के विचारों को मान्यता देते हैं। जिन्होंने हमें गुलाम बनाया और हमारा शोषण किया, वे हमारे इतिहास के उज्वल पक्ष को क्यों प्रकट करेंगे? विदेशी लोगों और उनके मानस पुत्र भारतीयों ने रामायण की घटनाओं को इस आधार पर कि इसमें अलौकिकता की बातें हैं, इसे हमारे इतिहास से निकाल कर काल्पनिकता की श्रेणी में डाल दिया है।अलौकिकता के कारण ही हमारे पढ़े लिखे भारतीय भी यह समझते हैं कि राक्षसों के पास आकाश विचरण की जो शक्ति थी, वह उन्होंने तपस्या के द्वारा बरदान के रूप में प्राप्त की थी और वानर लोग विमान के द्वारा आकाश विचरण नहीं करते थे,बल्कि लंबी छलाँगे लगाते थे, क्योंकि उनमें ऐसा करने की अलौकिक शक्ति थी।अतः आज आवश्यकता है, कि रामायण को इतिहास की कोटि में लाने के लिये, राम को अपना पूर्वज सिद्ध करने के लिये, उनकी गाथाओं पर जो अलौकिकता और अंध विश्वास की मैल जमी हुई है,उसे ज्ञान के साबुन से साफ किया जाये।जरा विचारिये आज चाहे कोई कितनी ही तपस्या क्यों न करे, उसे वरदान देने के लिये कोई देवता आकाश से नहीं उतरता, तब उस समय क्यों वे बात बात में आकर वरदान दे जाते थे? इसलिये हम यह क्यों न मानें, कि वे उपकरण वरदान के कारण नहीं बल्कि उनके बुद्धि चातुर्य के कारण किये गये आविष्कारों के फल थे।

वानरों के आकाश विचरण को विमान यात्रा की जगह छलाँग लगाना समझा जाता है। अतः अब इन दोनों बातों के अन्तर को समझिये।-

१. जब कोई प्राणी उछलता है या छलाँग लगाता है, तो वह पहले उस लक्ष्य या स्थान को अपनी आँखों से देख कर निश्चित कर लेता है, जहाँ उसे उछाल के पश्चात् सहारा लेना है। वह यह कार्य चाहे कितनी भी शीघ्रता से करे, पर करता अवश्य है, ऐसे ही आँखें बंद कर छलाँग नहीं लगाता। फिर हनुमान् जी की लंका तक सौ योजन की यात्रा को और इससे भी अधिक दूर लंका से कैलाश पर्वत की यात्रा को छलाँग लगाना कैसे मान लिया जाये? क्या उन्होंने छलाँग से पहले अपने गन्तव्य स्थानों को देख लिया था?

२. छलाँग लगाने वाला प्राणी छलाँग लगाते हुए रास्ते में रुक कर कोई काम नहीं कर सकता। वह तो बंदूक की गोली की तरह सीधा अपने लक्ष्य पर जा कर ही रुकता है।पर सीता की खोज में लंका की तरफ जाते हुए हनुमान् जी के विषय में हम पढ़ते हैं कि उन्होंने रास्ते में सुरसा और सिंहिका नाम की राक्षसियों से वार्तालाप किया। छलाँग लगाने वाला यह कैसे कर सकता है?

३. यदि हनुमान् जी ने लंका के लिये छलाँग लगायी, तो उन्हें क्या पता था कि वे किस स्थान पर उतरेंगे? और क्या वह सुरक्षित होगा? यदि दुर्भाग्य से वे रावण की सभा में राक्षसों के बीच में जा कर गिरते तो सारा खेल बिगड़ जाता।

४. छलाँग लगाने वाला सीधा ही जाता है। वह अपने मार्ग को बदल नहीं सकता, किंतु रामायण में हम देखते हैं कि जब इन्द्रजित ने आकाश में छिप कर बाण वर्षा आरंभ की तब श्रीराम की आज्ञा से दस वानर सेनापति आकाश की तरफ उड़े और वहाँ उन्होंने इन्द्रजित की खोज का प्रयत्न किया। इसके लिये वे अवश्य ही आकाश में इधर उधर घूमे होंगे, छलाँग लगाने वाला ऐसा नहीं कर सकता।उसे एक निश्चित बिंदु पर जा कर तुरंत वहीं से वापिस आना होगा।

५. ऊपर की तरफ उछलने वाला प्राणी जब उछलता है, तब ही अपनी शक्ति का प्रयोग करता है, वापिस नीचे आते हुए नहीं। नीचे तो वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से ही आता है। अब यदि वह प्राणी ऊपर एक किलो मीटर की ऊँचाई तक छलाँग लगाये तो वापिसी में जमीन से टकरा कर उसकी हड्डियाँ चूर चूर हो जायेंगी। रामायण में वानर लोग बादलों की ऊँचाई तक ऊपर गये हैं, पर वापिसी में उन्हें कोई चोट नहीं लगी।अतः इस कारण से और उपर्युक्त सारे कारणों से हमें यह मानना होगा कि वानरों ने आकाश विचरण एयर-साइकलों की सहायता से किया था, छलाँगें नहीं लगायीं थीं।

अब यहाँ प्रश्न होता है कि यदि भारतीय लोग विमान विद्या में प्रवीण थे, तो उस समय के ग्रंथों में आज कल की तरह सामान्य नागरिकों के द्वारा वायु मार्ग से यातायात करते हुए वर्णन नहीं मिलता है, और ना ही उस समय की सेना में हवाई सेना का उल्लेख मिलता है। केवल कुछ विशिष्ट लोगों द्वारा ही हवाई यात्रा का वर्णन है,ऐसा क्यों? इसका उत्तर यह है कि हवाई सेना के द्वारा निरीह जनता का संहार किया जाता है, पर उस समय न लड़ने वाली जनता को कोई हानि नहीं पहुंचाई जाती थी, इसलिये हवाई सेना की आवश्यकता नहीं थी।

इसके अतिरिक्त आचार्य लोग चाहे जिस को अपनी विद्या नहीं पढ़ाते थे। वे अपने शिष्य की कड़ी परीक्षा ले कर उसकी पात्रता और चरित्र की जाँच कर के ही विद्या प्रदान करते थे। भारतीय आचार्य लोग कुपात्र को अपनी विद्या देने की जगह उसे अपने साथ ही संसार से ले जाना अच्छा समझते थे। उनके इस नियम के कारण ही विद्या के विकास ने जहाँ हिमालय की ऊंचाइयों का स्पर्श किया, वहाँ वह सागर की विस्तृतता को नहीं पा सकी। इस कारण जहाँ एक लाभ हुआ, वहाँ एक हानि भी हुई। लाभ यह हुआ कि विज्ञान लंबे समय तक कुपात्रों के हाथ में पड़ने से बचा रहा और अयोग्य व्यक्ति ज्ञान विज्ञान को प्राप्त कर उसके दुरुपयोग से समाज को जो हानि पहुंचाते वह नहीं हो सका। हानि यह हुई कि विद्या का लोप जल्दी हो गया।यदि आजकल की तरह उसका प्रसार घर घर में होता तो वह लुप्त नहीं होती।

(६) जटायु

जटायु के विषय में यह समझा जाता है कि वह एक गिद्ध था। किंतु वाल्मीकि रामायण में जटायु के विषय में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनका मनन किया जाये तो प्रतीत होगा कि जटायु एक मनुष्य ही था। सबसे पहले तो यही चिंतनीय है कि क्या एक गिद्ध सामान्य मानव भाषा में बात कर सकता है? दूसरे जटायु अपने आपको दशरथ का मित्र बताता है। **वयस्यं पितुरात्मनः** क्या एक गिद्ध से एक राजा की मित्रता हो सकती है?

रामायण में वर्णित है कि मरणासन्न अवस्था में पड़े हुए जटायु को श्रीराम राक्षस समझ बैठे **मेनाते राक्षसं पक्षिं, ब्रुवाणौ को भवानिति** वह इसलिये समझ बैठे क्योंकि राक्षसों की शरीराकृति भी मनुष्यों के समान ही होती थी, केवल अपने दुष्ट आचरणों के कारण ही उन्हें राक्षस कहा जाता था और जटायु भी मनुष्य था। यदि जटायु पक्षी होता तो उसे राक्षस क्यों समझ लिया जाता? मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी पक्षी को राक्षस या आदमी समझने की भूल नहीं करेगा, क्योंकि दोनों की शरीराकृति में बहुत असमानता है।

रामायण में जटायु का आर्य शब्द से भी संबोधन किया गया है **जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणमनार्यवत्** आर्य शब्द का प्रयोग श्रेष्ठ मनुष्य के लिये ही किया जाता है, पशु पक्षी के लिये नहीं।अतः स्पष्ट है कि जटायु पक्षी नहीं बल्कि मनुष्य था।

मनुष्यों की ही एक गृद्ध नाम की जाति उस समय होती थी जो कि गृद्ध कूट नाम के स्थान पर रहती थी। जटायु और उसका भाई संपाती दोनों गृद्ध जाति के राजा थे, इसलिये रामायण में उन्हें गृद्धराज कहा गया है। बुढापे के कारण अपनी संतान को राज्य सौंप कर वे वन में रहते हुए वानप्रस्थ आश्रम का सेवन कर रहे थे। **तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ, वनस्थं रामलक्ष्मणौ** यहाँ वनस्थ शब्द का मतलब वानप्रस्थी है। उनकी जटायें क्योंकि बहुत बड़ी थीं, इसलिये उन्हें जटायु कहा जाता था। रामायण में जटायु को द्विजश्रेष्ठ कहा गया है, यहाँ द्विज से अभिप्राय यदि सामान्य पक्षी से लगाया जाये तो गिद्ध जाति के पक्षियों को, जो मुर्दों का माँस खाते हैं, भारतीय जनता ने कभी श्रेष्ठ पक्षी नहीं माना।अतः हमें मानना होगा कि यहाँ द्विज शब्द से अभिप्राय ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य से है। जटायु क्योंकि पराक्रमी और सदाचारी क्षत्रिय थे, इसलिये उनहें द्विज श्रेष्ठ कहा गया। द्विजश्रेष्ठ इसलिये भी कहा गया क्योंकि वे उस समय जीवन के अंतिम पड़ाव में क्षत्रिय धर्म अर्थात् हिंसा को त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण कर अध्यात्म साधना में लीन थे, अतः द्विजों में श्रेष्ठ थे।

जटायु को पक्षी भी कहा गया है। पक्षी शब्द का मतलब है, पक्ष वाला। पक्ष शब्द का अर्थ है,पंख, हाथ और अपने समर्थन में कही हुई बात। यहाँ पंख अर्थ को छोड़ कर दूसरे दो अर्थ लगाने चाहियें। जटायु के मनुष्यों के ही समान दो हाथ थे और रावण के साथ युद्ध में रावण के द्वारा उनके दोनों पंख नहीं अपितु हाथ काटे गये थे। इसके लिये देखिये महाभारत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि—

स बध्यमानो गृद्धेण, रामप्रियहितैषिणा। खड्गमादाय चिच्छेद, भुजौ तस्य पतत्रिणः।।

अर्थात् राम के शुभचिंतक गृद्ध के हाथ मारे जाते हुए उस रावण ने तलवार ले कर उस विद्वान पुरुष के दोनों हाथ काट दिये। जटायु को पक्षी इसलिये भी कहा गया है क्योंकि वह विद्वान थे और अपने पक्ष की बात को युक्ति पूर्वक सिद्ध कर सकते थे। जैसे कि ताँड्य ब्राह्मण में कहा गया है कि—

यो वै विद्वाँसस्ते पक्षिणो, येविद्वाँसस्तेऽपक्षाः।।

अर्थात् जो विद्वान होते हैं वे पक्षी और जो अविद्वान होते हैं वे पक्ष रहित।

जटायु को खग भी कहा गया है। यहाँ भी खग से अभिप्राय पक्षी से नहीं अपितु आकाश में विचरण करने की सामर्थ्य से है। **खे गच्छति इति खगः** अर्थात् आकाश में विचरण करने वाले को खग कहते हैं। क्योंकि जटायु के पास भी हनुमान् जी आदि की तरह एयर साइकलों द्वारा आकाश में विचरने की सामर्थ्य थी, अतः उन्हें भी खग या उसी तरह के पर्याय वाची नामों से सम्बोधित किया गया।

जटायु को तीक्ष्ण-तुंड शब्द से भी संबोधित किया गया है। यहाँ तीक्ष्ण-तुंड का अर्थ नुकीली चोंच नहीं है, बल्कि तीक्ष्ण का अर्थ है भयानक या रौबीला और तुंड का अर्थ है मुख, अर्थात् भयानक या रौबीले मुख वाला दाढ़ी और मूँछ बढ़ाने से चेहरा भयानक या रौबीला लगने ही लगता है और जटायु ने वानप्रस्थी होने के कारण दाढ़ी मूँछ बढ़ा ही रखे होंगे। तुंड शब्द का मुख अर्थ में प्रयोग आद्य शंकराचार्य ने अपने उपदेश में किया है।जैसे **दशनविहीनं जातं तुंडम्,तदपि न मुंचति आशापिंडम्**।तुंड शब्द का अर्थ शस्त्र की नोक भी होता है। इस प्रकार तीक्ष्ण तुंड का दूसरा अर्थ हुआ शस्त्र की तेज नोक वाला। इसका मतलब यह हुआ कि जटायु उस समय सर्वथा निश्शस्त्र नहीं थे। अपनी रक्षा के लिये उन्होंने कोई शस्त्र अवश्य ले रखा था,जिसकी नोक बहुत तेज थी, साथ ही उन्होंने अपने हाथ पैरों में नख अर्थात् बघनखा भी पहन रखा होगा।

इस प्रकार इस विवेचन से सिद्ध होता है, कि जटायु गिद्ध नहीं अपितु गृद्ध जाति से संबन्ध रखने वाला एक मनुष्य था और गृद्ध जाति मनुष्यों की ही एक जाति थी।

(७) स्वर्ण मृग

वाल्मीकि रामायण में सीता हरण की घटना के मुख्य आधार के रूप में वर्णित सोने का हरिण क्या वास्तव में सोने का हरिण था? और क्या मारीचि ने वास्तव में मृग का रूप धारण किया था? या फिर कुछ और था?यह एक विचारणीय प्रश्न है। निस्संदेह कोई भी व्यक्ति चाहे वह मारीचि हो या कोई और,अपने मानव शरीर को छोड़ कर किसी अन्य पशु या पक्षी के शरीर को धारण नही कर सकता और ना ही सोने का कोई जीवित हरिण हो सकता है। अतः इस विषय में हमें यही मानना होगा कि वह मृग सोने का नहीं, अपितु सोने जैसे रंग का या सुंदर, आकर्षक रंग का था,क्योंकि सोने का अर्थ सोने के साथ सुंदर रंग भी होता है। दूसरे जहाँ मारीचि के मृग का रूप धारण करने की बात है, वहाँ यह समझना चाहिये कि रामायण में मारीचि को मायावी होने की विशेषता के साथ अनेक बार कहा गया है। माया और मायावी उस जमाने में वही थे, जो आज जादू और जादूगर हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मारीचि उस समय का एक प्रसिद्ध जादूगर था और जैसे आज भी जादूगर अपनी जादू विद्या से अनेक आश्चर्य जनक खेल कर के दिखाते हैं उसी प्रकार मारीचि ने भी अपने आपको मृग के रूप में अपनी माया अर्थात् जादू के करतब से ही दिखाया होगा और माया के संचालन के साथ ही शायद वह मृग चर्म ओढ़ कर अपने आपको सचमुच का हरिण जैसा दिखाने की विद्या में भी निपुण होगा तथा इस विद्या का भी उसने उस समय सहारा लिया होगा।

(८) कबन्ध-वध

यह कहानी प्रक्षेप कारों द्वारा रामायण में मिलायी हुई है। क्योंकि कबंध का मतलब है धड़, वह राक्षस ऐसा था, जिसके धड़ ही था सिर नहीं। उसकी छाती में ही उसका मुख और आँख आदि थे।उसकी दोनों बाहें बहुत ही अधिक लंबी अर्थात् योजन तक फैली हुई थीं। ऐसी अस्वाभाविक आकृति वाला कौन प्राणी इस संसार में हो सकता है और वह भी मानव भाषा में बात करने वाला।

साथ ही यह कहानी वरदान और अभिशाप पर आधारित है, जिसका खंडन अहिल्या प्रसंग में किया जा चुका है। इस कहानी का रामायण में प्रक्षेप राम के अवतारी रूप का महत्त्व दिखाने के लिये किया गया है,जब कि वाल्मीकि स्वयं राम को मनुष्य मानते हैं अवतार नहीं, इसलिये यह कहानी प्रक्षिप्त है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि कबंध की कहानी प्रक्षिप्त है तो श्रीराम को पंपा सरोवर का मार्ग किसने बताया था और सुग्रीव से मैत्री करने की सलाह उन्हें किसने दी? क्योंकि कबंध ने ये काम किये थे। इस विषय में सर्व प्रथम यह समझना चाहिये कि पंपा सरोवर का मार्ग बताने की आवश्यकता ही न थी। श्रीराम तो जटायु के द्वारा बतायी गयी दिशा के ही अनुसार दक्षिण दिशा की ओर जा रहे थे, रास्ते में थोड़ा बहुत तो मुड़ना पड़ता ही था। पर मुख्य उद्देश्य दक्षिण दिशा ही थी, पंपा सरोवर तो उसी मार्ग में संयोग से आ गया।

दूसरे सुग्रीव से मैत्री करने की सलाह जो कबंध ने दी वह भी वास्तविकता से युक्त नहीं है। सुग्रीव बेचारा जो स्वयं बाली के डर से अपने चार साथियों के साथ छिप कर रहता था, उस समय श्रीराम की क्या सहायता कर तकता था? और जब सहायता नहीं कर सकता था तो उसके साथ मैत्री से क्या लाभ? सुग्रीव को अपनी सहायता करने योग्य राम ने ही अपनी बुद्धि और बाहुबल से बाली को मार कर और उसे राजा बनाकर बनाया था और इसी योजना के अनुसार उससे मैत्री की थी। यह योजना राम की अपनी बनायी थी, न कि वे कबंध की सलाह के अनुसार कार्य कर रहे थे। इससे तो श्रीराम का महत्त्व घटता है। कबंध को क्या पता कि राम बाली को मार सकते हैं।अतः यह कथा मिलायी हुई है।

(९) शबरी की कथा

शबरी की कथा भी पूरी तरह से प्रक्षिप्त है और राम को अवतार सिद्ध करने के लिये मिलायी गयी है। राम के दर्शन करने के कारण शबरी को उच्च लोक की प्राप्ति हो जाती है। उसे यह मालूम होना कि श्रीराम यहाँ आयेंगे, इसलिये अनेक वर्षों तक अकेले आश्रम में रह कर उनकी राह देखना, सातों समुद्रों का जल आश्रम में एकत्र होना,कमल तथा अन्य फूलों का वर्षों

तक न मुझांना,वल्कल वस्त्रों का भी गीला रहना आदि घटनाएं वास्तविक जीवन में नहीं हो सकतीं। शबरी की कथा का वर्णन महाभारत के रामोपाख्यान पर्व में वर्णित राम कथा में भी नहीं है।

(१०) क्या हनुमान् आदि बंदर थे?

समझा यह जाता है कि हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवान आदि बंदर और रीछ योनि के प्राणी थे। राम ने इनकी सेना को एकत्र कर सागर पर सेतु का निर्माण और रावण पर विजय का अभियान किया था, पर ऐसी बात नहीं थी। वाल्मीकि रामायण में हम जब इनके क्रिया कलापों पर ध्यान देते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय वानर और ऋक्ष नाम की मनुष्यों की ही विशेष जातियाँ थीं। वे लोग वैदिक सभ्यता को ही मानते थे और आर्य लोगों से किसी भी प्रकार पिछड़े हुए नहीं थे।इसके प्रमाण रामायण में ही इस प्रकार मिलते हैं।-

(क) हनुमान् जी श्रीराम से जब पहली बार मिलते हैं, तब उनकी बातें सुन कर श्रीराम लक्ष्मण से उनकी वाणी से प्रकट होने वाली उनकी विद्वत्ता के बारे में बताते हुए कहते हैं कि **जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो साम वेद का विद्वान नहीं है, वह इस प्रकार सुंदर भाषा में बातचीत नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार अभ्यास किया है, क्योंकि बहुत सी बातें बोल जाने पर भी इनके मुख से कोई अशुद्धि नहीं निकली** हनुमान् जी के विषय में श्रीराम का यह सर्टिफिकेट उन्हें मानव ही नहीं अपितु महामानव सिद्ध करने के लिये पर्याप्त प्रमाण है।

(ख) सुग्रीव और श्रीराम ने परस्पर हाथ मिलाया और अग्नि की साक्षी देकर एक दूसरे से मित्रता की।ऐसा मनुष्य मनुष्य के साथ ही करता है, बंदर के साथ नहीं। अग्नि की साक्षी दे कर मित्रता स्थापित करना उच्च कोटि के मनुष्यों का कार्य है, सामान्य मनुष्य भी ऐसा नहीं करते। यह अग्नि की साक्षी का कार्य श्रीराम के निर्देशानुसार नहीं बल्कि सुग्रीव और हनुमान की अपनी पहल पर ही हुआ था। अतः यह वानरों की सभ्यता का परिचायक है, श्रीराम की नहीं।

(ग) बाली की राजधानी किष्किंधा नाम का नगर था, उसका सिंह द्वार सुवर्ण से निर्मित था, वह नगर ध्वजों और यंत्रों से सुशोभित था। यह बात सुग्रीव ने किष्किंधा के निकट पहुँच कर राम को बतायी। इसी प्रकार जब लक्ष्मण जी सुग्रीव को धमकाने के लिये गये, तब उन्होंने भी देखा कि वहाँ बड़े बड़े प्रासाद,अट्टालिकाएं, चौड़ी सड़कें, बाग और बगीचे थे। सुग्रीव के महल की आन्तरिक सज्जा राजाओं जैसी ही थी। ये सारी बातें बंदरों के पास नहीं होतीं।

(घ) यदि सुग्रीव आदि बंदर थे और उनके पूछ थी, तो उनकी पत्नियों के भी पूछ क्यों नहीं थी? लोक में तो हम देखते हैं कि बंदरियों के भी पूछ होती है।

(ङ) रामायण में लिखा है कि लक्ष्मण जी ने सुग्रीव के महल में कई जगह अनेक सुंदर स्त्रियों को देखा। यह नहीं लिखा कि बंदरियों और रीछनियों को देखा।

(च) बाली के शव को श्मशान घाट ले जाने के लिये, जो पालकी लायी गयी, वह इतनी सुंदर थी और लकड़ी की पच्चीकारी से बनाये हुए तरह तरह के जँगली दृश्यों, नदी, मृग आदि से सजायी हुई थी, कि उस प्रकार के शव वाहन शायद आजकल के राजाओं के भी न होते हों।

(छ) बाली की शव यात्रा बिल्कुल मनुष्यों जैसी, रत्नों और फूलों की वर्षा करते हुए हुई। उसकी अंत्येष्टि भी मानवों के समान चंदन अगर कपूर आदि सुगंधित पदार्थों के सहित वेद मंत्रों द्वारा, विद्वान ब्राह्मणों ने करायी।

(ज) सुग्रीव का राज्याभिषेक समारोह भी मानव राजाओं के समान धार्मिक अनुष्ठानों सहित संपन्न हुआ।

(झ) जब बाली ने राम से पूछा कि उसे क्यों मारा गया, तब श्रीराम ने उत्तर दिया कि तुमने छोटे भाई के जीते हुए उसकी पत्नी से कामाचार किया, जो कि तुम्हारी पुत्र वधु के समान है, इसलिये मर्यादा को तोड़ने के कारण राजा भरत की तरफ से

मैंने तुम्हें यह प्राण दंड दिया है। राम का यह उत्तर ही प्रमाणित करता है कि बाली बंदर नहीं था मनुष्य था, क्योंकि ये मर्यादाएं तो मनुष्यों के लिये हैं, पशुओं के लिये नहीं। पशु इन मर्यादाओं का पालन नहीं करते।

(ञ) केवल हनुमान् ही नहीं दूसरे वानर भी वेषभूषा बदल कर जासूसी करने में कुशल थे। उनको रामायण में अनेक स्थानों पर कामरूपी कहा गया है।यह कार्य भी मनुष्यों का ही है बंदरों का नहीं।

(ट) रामायण के वर्णनों से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि वानर आकाश विचरण करते थे। आकाश विचरण या तो पक्षी पंखों के द्वारा कर सकते हैं या मनुष्य यंत्रों के द्वारा कर सकते हैं। वानर मनुष्य होने के कारण ही यंत्रों के द्वारा आकाश विचरण करते थे।

(ठ) बंदर और रीछ अपनी संतानों के नाम नहीं रखते, पर रामायण में वानरों के माता पिताओं ने उनके बड़े सुंदर और सार्थक संस्कृत नाम रखे हुए हैं, जैसे लंबी ठोडी होने के कारण हनुमान्, सुंदर गर्दन होने के कारण सुग्रीव और बलवान होने के कारण बाली आदि।

(ड) वानरों ने समुद्र में बाँध बनाया। बंदर बाँध नहीं बना सकते। समुद्र में बाँध बनाना सामान्य मनुष्यों का भी नहीं बल्कि अत्यंत उच्च कोटि के इंजीनियरों का काम है। नल वैसा ही इंजीनियर था। रामायण में हम पढ़ते हैं कि बाँध बनाते हुए हाथी के समान विशाल काय पत्थरों को ले जाने में यंत्रों की सहायता ली गयी।बाँध की दिशा के निर्देश के लिये सौ योजन लंबा सूत बाँधा गया। जैसे कि देखिये—

हस्तिमात्रान् महाकाया:, पाषाणाँश्च महाकाया:। पर्वताँश्च समुत्पाट्य, यन्त्रैः परिवहन्ति च।।
सूत्राणिह्यन्ये प्रगृह्णन्ति, ह्यायतं शतयोजनम्।।

जहाँ वानरों में नल जैसा उच्च कोटि का इंजीनियर था, वहाँ सुषेण जैसा महान वैद्य भी था, जो मृतसंजीवनी,विशल्य करणी, सुवर्ण करणी और संधानी जैसी चमत्कारी ओषधियों का ज्ञाता था। उसने सारी वानर सेना का इलाज किया और लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर की। ये सारी बातें वानरों की उच्च सभ्यता की परिचायक हैं।

(क) वानर युद्ध क्षेत्र में मनुष्यों के समान भी लड़ते थे। जैसे कि-

१. बाली धनुर्विद्या में निपुण था। उसके तीर इतने भयानक थे कि उसका एक बाण शाल वृक्ष को भेद कर दूसरी तरफ निकल जाता था।

२. अंगद तलवार और गदा युद्ध में भी प्रवीण था। जैसे-

निर्मलेन सुधौतेन, खड्गेनास्य महच्छिरः। ————तलवार
जघान वज्रदंष्ट्रस्य, बालिसूनुर्महाबलः।। ————का प्रयोग
तस्य काँचन चित्राङ्गं, रथं साश्वं ससारथिम्। ————गदा का
जघान गदया श्रीमान्, अङ्गदो वेगवान् हरिः।।————प्रयोग

३. सुग्रीव ने कवच पहना हुआ था, यह उसके कुंभ, विरूपाक्ष और महोदर के साथ युद्ध के वर्णन को पढ़ने से ज्ञात होता है। सुग्रीव तलवार चलाने में भी कुशल थे, यह हम उनके महोदर के साथ युद्ध में देखते हैं। महोदर का वध उन्होंने तलवार युद्ध में किया था।

४. बाली अंगद और सुग्रीव ही नहीं, सारे वानर सभी तरह के हथियारों का प्रयोग मनुष्यों जैसा ही करते थे, यह बात निम्न श्लोक से पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है।

द्रुमशक्तिगदाप्रासैः,शिलापरिघतोमरैः। राक्षसाः हरयः तूर्णम्, जघ्नुरन्योन्यमोजसा।।

(ण) वानर मनुष्यों के समान वस्त्र भी पहनते थे। जब सुग्रीव और बाली का युद्ध हुआ तब उससे पहले रामायण में लिखा है कि बाली ने कस कर अपने लँगोट को बाँधा। इसी प्रकार सीता की खोज में निकले अंगद आदि को जब रास्ते में एक राक्षस मिला उस समय भी लिखा है कि वानरों ने उससे लड़ने के लिये अपने ढीले कपड़ों को कस कर बाँधा।

(त) निम्नलिखित श्लोक में सुग्रीव ने अपने आपको मनुष्य बताया है——

अरयश्च मनुष्येण, विज्ञेयाश्छद्मचारिणः। कि०का०२-२२

अर्थात् सुग्रीव राम और लक्ष्मण को पहली बार देख कर उन पर संदेह करते हुए कह रहा है कि मनुष्य को कपट वेष में घूमते हुए अपने शत्रुओं की जानकारी अवश्य रखनी चाहिये। यहाँ सुग्रीव का अपने आपको मनुष्य कहना यह सिद्ध कर रहा है कि वानर जाति मनुष्य थी।

(थ) आर्य स्त्रियाँ अपने पति को आर्यपुत्र के नाम से संबोधित करतीं थीं। तारा भी अपने मृत पति बाली को आर्यपुत्र ही कहती है,क्योंकि वह बंदरिया नहीं अपितु मानव पत्नी और आर्यपत्नी थी। जैसे-

समीक्ष्य व्यथिता भूमौ, संभ्रांता निपपात ह। सुप्त्वेव पुनरुत्थाय, आर्यपुत्रेतिवादिनी।।

अर्थात् बाली को मरा हुआ देख कर तारा अति दुखी होकर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। कुछ देर बाद होश में आने पर बाली को आर्यपुत्र कह कर विलाप करने लगी।

(द) बंदर यज्ञोपवीत नहीं पहन सकते। इसे केवल यज्ञ के अधिकारी मनुष्यों को ही पहनने का अधिकार है। पर वानर लोग यज्ञोपवीत धारण करते थे, क्योंकि वे बंदर नहीं,शिक्षित मनुष्य थे। देखिये—

ततोग्निं विधिवद् दत्त्वा, सोपसव्यं चकार ह। कि०का०२५-५०

अर्थात् अंगद ने अपने पिता के शव को विधिवत् अग्नि दे कर यज्ञोपवीत अपसव्य अर्थात् दाहिने कन्धे पर रखा।

(ध) वानर सेना भी आर्यवीरों के समान शंख और भेरी का नाद करती हुई युद्ध का आरंभ करती थी। जैसे देखिये-

तेन शंखविमिश्रेण, भेरी शब्देन नादिता। उपयातो महाबाहुः,रामः परपुरंजयः।।

अर्थात् शत्रु नगरी पर विजय पाने वाले महाबाहु श्रीराम ने शंख ध्वनि से मिश्रित हो तुमुल नाद करने वाली भेरी की आवाज के साथ लंका पर आक्रमण किया।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि वानर और ऋक्ष आदि राम की सेना के सैनिक मनुष्य ही थे , पशु नहीं। वानर शब्द की सिद्धि इस प्रकार होती है कि **वने भवं वानम्** अर्थात् वन में उत्पन्न होने वाले पदार्थ। **तान् यः राति आदाति सः वानरः** अर्थात् उन वन्य पदार्थों को जो वन में से लाने का कार्य करता है, उसे वानर कहते हैं। इस आधार पर मेरा अनुमान यह है कि आजकल भी वन व्यवसाय में अनेक लोग लगे हुए हैं, जो जंगलों में मिलने वाले पदार्थों को नगरों में पहुँचाते हैं।, जिन्हें हम आदि वासी, जन जाति या वनवासी आदि अनेक नामों से संबोधित करते हैं। इसी तरह वानर और ऋक्ष लोग भी राम के समय में यही कार्य करते होंगे। उस समय वन व्यवसाय आज की तुलना में बहुत ही उन्नत होगा, क्योंकि आज कल वन समाप्त होते जा रहे हैं , पर उस समय तो वनों की भरमार थी। बस्तियाँ कम थीं, वन ज्यादा थे।संपूर्ण ओषधि व्यवसाय, काष्ठ व्यवसाय और जीवन में काम आने वाली अनेक चीजें वनों से ही मिलतीं थीं।

आज वन व्यवसाय में पिछड़ी जातियाँ लगी हुई हैं, पर उस समय इस व्यवसाय में लगे हुए वानर मानव जाति के किसी भी अंग से पिछड़े हुए नहीं थे।उनकी स्त्रियाँ भी शिक्षित होतीं थीं। जैसे बाली की पत्नी तारा। वह शिक्षित थी, उसने बाली के युद्ध के लिये जाने से पूर्व उसका स्वस्तिवाचन किया।बाली ने भी राम से उसकी बड़ाई की। वानरों को हरि, कपि आदि भी कहा गया है। वह इसलिये क्योंकि पहले पर्याय वाची शब्दों के प्रयोग का रिवाज था। जैसे शत्रुघ्न को रिपु सूदन तुलसी दास जी ने कहा है। चरक में अग्निवेश को वह्निवेश कहा गया है।

क्योंकि वानरों का सम्बन्ध वनों, वृक्षों और पर्वतों से रहता था, इसलिये वे वृक्षों और पर्वतों पर शीघ्रता से चढ़ने, उतरने, छँलाग लगाने और दौड़ने में अत्यधिक कुशल होते थे। उनकी इन्हीं वानरोचित विशेषताओं के कारण उन्हें कपि, हरि, ऋक्ष आदि कह दिया जाता था। वे शरीर से भी अत्यधिक हृष्ट-पुष्ट होते थे। मल्ल विद्या और मुक्केबाजी तथा दूर तक पत्थर फेंकना आदि उनके जातीय खेल होते थे। रोटी रोजी के लिये वे संसार के सारे भागों में फैले हुए थे, पर बाली उनका एक अकेला राजा था। उसके आधीन अनेक क्षेत्रीय यूथपति थे और किष्किंधा उसकी राजधानी थी।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि वानरों द्वारा पर्वत शिखरों और वृक्षों को उखाड़ने का वर्णन है, वहाँ पर्वत शिखरों से मतलब बड़े पत्थरों और वृक्षों से मतलब पेड़ों की शाखाओं और छोटे पेड़ों से है। उनके द्वारा जो नख और दाँतों के प्रयोग का वर्णन है,मैं समझता हूँ वहाँ नख से मतलब बघनखा, जिसका प्रयोग शिवाजी ने अफजल खाँ को मारने के लिये किया था,उससे है। दन्त भी शायद उस समय ऐसा ही हथियार होता होगा, जो हाथ में पहना जाता होगा, जिसके अगले हिस्से में तेज नुकीले दाँत लगे हुए होते होंगे, जिनके द्वारा शत्रु के शरीर से माँस काट लिया जाता होगा। नख और दन्त नाम के अलग अलग शस्त्र विशेष होते थे, यह बात महाभारत से भी प्रमाणित है। महाभारत के द्रोण पर्व अध्याय १४और श्लोक ६८ में किये गये वर्णन के अनुसार अभिमन्यु और जयद्रथ ने परस्पर द्वंद्व युद्ध में नख और दन्त नाम के हथियारों का प्रयोग किया है।

वानरों का सम्बन्ध पूँछ से भी जोड़ा जाता है,अर्थात् कहा जाता है कि उनके पूँछ होती थी। इस विषय में मैं समझता हूँ कि पहली बात तो वही है कि जो पहले कही जा चुकी है, अर्थात् पुरुषों के ही पूँछ बतायी गयी है, उनकी पत्नियों के नहीं, दूसरी बात यह है कि केवल लाँगूल शब्द का प्रयोग किया गया है, उसके पर्याय वाची पूँछ आदि शब्दों का नहीं। इसलिये ऐसा लगता है कि लाँगूल उनकी पूँछ नहीं, बल्कि कोई ऐसी वस्तु रही होगी, जिसे वे अपने राष्ट्रीय चिन्ह के रूप में, उसी प्रकार हर समय अपने पास रखते होंगे जैसे दंडी सन्यासी दंड को अपने पास रखते हैं। हर्ष आदि मनो भावों को प्रकट करते समय वे उसे विशेष प्रकार से हिलाया करते होंगे और विशेष अवसरों पर वे लाँगूल के द्वारा संकेत भी करते थे। जैसे जब हनुमान जी सीता का समाचार लेकर वापिस सुग्रीव के पास आये तो, तब उनके आकाश से भूमि पर आते समय सुग्रीव ने अपने लाँगूल को ऊँचा कर के संकेत किया। लाँगूल नाम का वानरों का कोई शस्त्र विशेष भी होता होगा क्योंकि महाभारत में शाल्व राजा के विरोध में द्वारिका की सुरक्षा की तैयारियों के वर्णन में श्रीकृष्ण जी ने लाँगल नाम के शस्त्र का जिकर किया है। लाँगल हल को भी कहते हैं,अतः लगता है कि वह हल की आकृति का कोई शस्त्र होगा, जो श्रीकृष्ण जी के भाई बलराम जी को विशेष प्रिय था, जिसके कारण उन्हें हलधर और लाँगलिक भी कहा जाता था। हो सकता है कि वह लाँगल ही रामायण काल में लाँगूल कहलाता हो और उसका प्रयोग केवल वानर ही करते हों।

(११) क्या राम ने बाली को छिप कर मारा था?

रामायण के सभी पाठक यह मानते हैं कि राम ने बाली के सामने जाकर युद्ध नहीं किया, बल्कि पेड़ की ओट में छिप कर उसे बाण मारा था। इसका क्या कारण था यह यद्यपि वाल्मीकि रामायण में लिखा हुआ नहीं है, पर पौराणिक आधार पर यह बताया जाता है कि बाली को यह वर मिला हुआ था कि जो भी उसके सामने आकर युद्ध करता था, उसका आधा बल बाली के शरीर में आ जाता था,इसलिये सामने के युद्ध में उसे हराना असंभव था। इस कहानी में अनेक विसंगतियाँ प्रतीत होतीं हैं। जैसे—

(क) वरदान और अभिशाप की शक्ति अविश्वसनीय होने के कारण, बाली द्वारा शत्रु की आधी शक्ति को अपने अंदर खींच लेने की बात असत्य है।

(ख) राम जैसे वीर, चरित्रवान,और मर्यादा पुरुषोत्तम पुरुष को, जो किसी से भी युद्ध क्षेत्र में हारा नहीं, क्या आवश्यकता थी, कि वह ऐसी धोखेबाजी से काम लेता।

(ग) राम ने बाली पर बाण उसकी सुग्रीव से हुई पहली मुठभेड़ में नहीं चलाया। जब पहली मुठभेड़ में सुग्रीव बाली से पिट कर और भाग कर आया, उसने राम को बाण न चलाने के लिये उलाहना दिया, तब राम ने उत्तर दिया कि आकृति की

समानता के कारण वे पहचान न पाये कि कौन बाली है और कौन सुग्रीव,इसलिये बाण नहीं चलाया। अब यहाँ विचारणीय है कि लड़ते हुए तो राम बाली और सुग्रीव में भेद न कर पाये होंगे, पर जब सुग्रीव राम की तरफ भागा तब तो उन्होंने पहचाना होगा कि भाग कर मेरी तरफ आने वाला सुग्रीव है और दूसरा बाली। तभी उन्होंने बाली पर बाण क्यों नहीं चलाया?

(घ) तत्पश्चात् राम ने सुग्रीव के गले में माला डाल दी और उसे फिर लड़ने के लिये भेजा। अब यहाँ विचारणीय यह है कि बाली और सुग्रीव के उस मल्ल युद्ध में माला जैसी कमजोर और हवा में लहराने वाली चीज कैसे टिक सकती है?माला के टूटने पर फिर पहचान की समस्या उत्पन्न हो सकती थी।

(ङ) बाली ने राम से जब पूछा कि उसने उसे छिप कर क्यों मारा तब राम ने उसे बड़ा ऊटपटाँग, समझ में न आने वाला उत्तर दिया कि क्योंकि तुम पशु हो और पशुओं का शिकार तो छिप कर भी किया जाता है, इसलिये छिप कर मारा। पर क्या राम का यह उत्तर ठीक था? क्योंकि एक तरफ तो राम उस पर मर्यादा तोड़ने का आरोप लगा कर उसके वध का औचित्य बता रहे हैं ,जबकि मर्यादा तोड़ने का आरोप तो मनुष्यों पर ही लग सकता है पशुओं पर नहीं, दूसरी तरफ उसे पशु बता कर उसे छिप कर मारने की सफाई दे रहे हैं। ये दोनों बातें एक दूसरे के विपरीत हैं।

इसलिये मानना चाहिये कि बाली को छिप कर मारने की कहानी वानरों को पशु सिद्ध करने के लिये, या बाली के महत्व को बढ़ाने के लिये बाद में मिलायी गयी है और इस कहानी को मिलाने के लिये असली श्लोकों को भी निकाल दिया गया है। इसलिये इस कहानी को सत्य न मानते हुए भी अपने संशोधन में मैने इसे बाहर नहीं निकाला। क्योंकि ऐसा करने पर कहानी का क्रम टूट जाता। असली कहानी के निकाले जाने पर भी कुछ संकेत ऐसे हैं, जिनसे राम और बाली के बाकायदा युद्ध का आभास होता है। जैसे-

(क) बाली वध के पश्चात् जब जब बाली के मारे जाने का किसी ने वर्णन किया है,तब यही कहा गया है कि राम ने बाली को युद्ध में मार दिया। युद्ध में मारना सामने लड़ कर मारने को कहते हैं, आड़ में छिप कर मारने को नहीं कहते।

(ख) बाली ने भूमि पर गिरकर जब राम को देखा, तब उन्हें उपालंभ देते हुए कहा कि यदि आप मुझसे अपनी पत्नी की प्राप्ति कराने के लिये कहते, तो मैं अकेला ही रावण को मार कर और सीता को ढूँढ कर आपके समक्ष ला देता। अब यहाँ विचारणीय यह है कि बाली को यह कैसे मालूम हुआ कि राम को क्या दुख है?उन्होंने सुग्रीव से मित्रता क्यों की है? और वे सुग्रीव से क्या कार्य कराना चाहते हैं?क्योंकि वर्तमान कहानी के अनुसार तो बाली की राम से पहले भेंट या कोई बातचीत नहीं हुई थी। इससे यह प्रतीत होता है कि राम ने पहले बाली को युद्ध में ललकारते हुए यह बताया होगा कि वे क्यों सुग्रीव की सहायता के लिये आये हैं और फिर उससे युद्ध किया होगा।

(ग) निम्नलिखित श्लोक यह स्पष्ट करते हैं कि बाली का राम के साथ बाकायदा युद्ध हुआ था। बाली के गिरनेपर जब वानर लोग किष्किंधा की तरफ भागे जा रहे थे, तब बाली पत्नी तारा ने उन्हें रोक कर उनसे पूछा कि—

राज्यहेतोः स चेत् भ्राता, भ्रात्रा क्रूरेण पातितः। रामेण प्रहितैर्दूरान्मार्गणैर्दूर पातिभिः।।

अर्थात् यदि राज्य के लोभ से उस क्रूर भाई सुग्रीव ने श्रीराम को प्रेरित कर के उनके द्वारा चलाये हुए और दूर तक जाने वाले बाणों के द्वारा अपने भाई को गिरा दिया है तो तुम लोग क्यों भागे जा रहे हो? तब वानरों ने कहा, कि—

क्षिप्तान् वृक्षान् समाविध्य, विपुलाँश्च तथा शिलाः। बाली वज्रसमैः बाणैः, वज्रेणैव निपातितः।।

अर्थात् बाली के चलाये हुए वृक्षों तथा बड़ी बड़ी शिलाओं को अपने वज्र तुल्य बाणों से विदीर्ण कर के श्री राम ने बाली को वज्रपात के समान गिरा दिया। इन दोनों श्लोकों से यह स्पष्ट हो रहा है कि राम का बाली के साथ मैदान में खुला युद्ध हुआ था, और श्रीराम ने एक नहीं अपितु अनेक बाण चलाये थे।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह समझा जा सकता है कि पहले राम ने सुग्रीव को बाली से लड़ने भेजा होगा। जब सुग्रीव हारने लगा तब राम ने स्वयं सामने जाकर बाली को ललकारा होगा। तभी उन्होंने बाली को सुग्रीव से अपनी मित्रता का उद्देश्य भी बताया होगा और बाली से कहा होगा कि वह सुग्रीव की पत्नी को लौटा कर सुग्रीव को युवराज बनादे, पर बाली ने अपनी शक्ति के अभिमान में राम की बात अस्वीकार कर राम से युद्ध किया होगा। इसमें राम ने बाण तो अनेक चलाये पर प्राणघाती एक ही हुआ।

(१२) ऋक्ष-बिल गुफा और स्वयंप्रभा तापसी से भेंट

दक्षिण दिशा में अन्वेषण के लिये गये हनुमान आदि जब प्यास से पीडित होकर ऋक्ष-बिल नाम की गुफा में घुस कर स्वयंप्रभा नाम की तापसी से मिलते हैं, तब वह अपने तप के प्रभाव से वानरों की आँखें बंद करवा कर, उन्हें गुफा से बाहर निकालती है। यह कहानी पूरी तरह से प्रक्षिप्त है ,क्योंकि इसकी घटनाएँ अस्वाभाविकता और अलौकिकता से युक्त हैं, तथा इस घटना का सीता जी के अन्वेषण में कोई योग दान भी नहीं है।

(१३) हनुमान् जी का लंका प्रस्थान

इस घटना में दो बातें विचारणीय हैं।

१. हनुमान् जी ने समुद्र जल मार्ग से पार किया या आकाश मार्ग से?

२. लंका में हनुमान् जी ने सीता की खोज किस रूप को धारण कर के की?

(१) समुद्र-लंघन

प्रक्षेपकारों की करतूत के कारण समुद्र लंघन के विषय में रामायण में दोनों प्रकार के वर्णन मिलते हैं। जैसे-

एषः पर्वत संकाशो, हनुमान् मारुतात्मजः। तितीर्षति महावेशः, सागरं मकरालयम्।।

यहाँ तितीर्षति शब्द से प्रकट हो रहा है, कि हनुमान् जी ने समुद्र को तैर कर पार किया। इसी प्रकार-

प्रविशन्नभ्रजालानि, निष्पतंश्च पुनः पुनः। प्रावृषीन्दुरिवाभाति, निष्पतन् प्रविशंस्तदा।।

इस श्लोक से यह प्रतीत हो रहा है कि हनुमान् जी ने समुद्र मंथन वायु मार्ग से किया। किन्तु ये दोनों तरह के वर्णन जाते हुए के मार्ग में ही मिलते हैं। हनुमान् जी के वापिस लौटते हुए केवल वायु मार्ग से ही आने का वर्णन है। जैसे-

हर्षेणापूर्यमाणोसौ, रम्ये पर्वतनिर्झरे। छिन्नपक्ष इवाकाशात्, पपात धरणीधरः।।

इसलिये वापिस लौटने का जब आकाश मार्ग से ही वर्णन है, तब यही मानना होगा कि हनुमान् जी जाते हुए भी आकाश मार्ग से ही गये। उन्हें क्या आवश्यकता थी, जाते हुए जल मार्ग से जाएँ और आते हुए वायु मार्ग से आयें। वैसे भी उनके पास समय की कमी थी, जल मार्ग से समय अधिक लगता है और वायु मार्ग से कम, इसलिये यही लगता है कि हनुमान् जी ने जाते और आते हुए दोनों बार वायु मार्ग का ही अवलंबन लिया।

जाते हुए रास्ते में जो मैनाक पर्वत, सुरसा राक्षसी और सिंहिका राक्षसी से मुठभेड़ की कहानी आती है, वह बाद में मिलायी हुई है। क्योंकि श्सुरसा और सिंहिका राक्षसियाँ केवल हनुमान् जी के मार्ग में आईं, और भी तो रावण के अनुचर लंका से इधर आते जाते रहते होंगे, उनको उन्होंने तंग नहीं किया। मैनाक पर्वत पहले से ही जल से बाहर विद्यमान होगा,जिस पर हनुमान् जी ने विश्राम किया। हनुमान् जी के लिये ही जल से बाहर कैसे निकल सकता था?

(२) सीता जी की खोज कौन सा रूप धारण करके?

सीता जी की खोज के लिये हनुमान जी के लिये यह आवश्यक था कि वे अपने स्वाभाविक रूप को बदलें, क्योंकि असली रूप में तो पहचाने जाने का डर था। यदि सामान्य जनता के द्वारा न भी पहचाने जाते तो भी उन्हें तो रावण के महलों

में जाना था। वहाँ कैसे जाते? इसलिये उनके लिये ऐसा रूप धारण करना जरूरी था, जिससे वे गुप्त रूप से रावण के अंतःपुर में जा सकें। इसके लिये रामायण के एक श्लोक में यह बताया गया है कि-

सूर्ये चास्तंगते रात्रौ, वेहं संक्षिप्य मारुतिः। वृषदंशकमात्रोसौ, बभूवाद्भुदूदर्शनः।।

अर्थात् सूर्य के अस्त होने पर रात में हनुमान् जी ने अपने शरीर को बिल्ली के बराबर छोटा बना लिया और वे अद्भुत दिखाई देने लगे। किंतु यहाँ इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानना चाहिये, क्योंकि श्लोककार यह मान रहा है, कि हनुमान् जी जब चाहे अपने शरीर को छोटा बना लेते थे और जब चाहे बहुत बड़ा। यह असंभव है। दूसरे श्लोककार यह भी मान रहा है कि हनुमान् जी वास्तव में बंदर थे, और दूसरे वानर भी बंदर थे। अपने बड़े शरीर में उन्हें वानर जाति का प्राणी इस रूप में पहचान लिया जाता, पर अब शरीर को छोटा कर वे बंदर के छोटे से बच्चे के बराबर बन गये। वानरों के तथा हनुमान् जी के बंदर होने का पहले ही विस्तार पूर्वक खंडन किया जा चुका है। फिर एक बात और,आगे चल कर सीताजी की खोज करते हुए एक श्लोक आता है कि हनुमान् जी घरों के दरवाजे खोल लेते थे। जैसे—

अपवृण्वंश्च द्वाराणि, कपाटान्यवघट्टयन्। प्रविशन् निष्पतंश्चापि, प्रपतन्नुत्पतन्निव।।

अब यहाँ विचारणीय बात यह है कि जब एक किवाड़ को बंद किया और खोला जायेगा, तो चाहे वह अंदर की तरफ खुलता हो चाहे बाहर की तरफ,दोनों क्रियाओं में उसे धक्का देकर धकेला जायेगा और एक बार अपनी तरफ खींचा जायेगा। पुराने जमाने के किवाड़ आज की तुलना में भारी होते थे, फिर राज महलों के किवाड़ तो सामान्य किवाड़ों के मुकाबले बड़े होते हैं। एक बिल्ली के बराबर का प्राणी किसी किवाड़ को कैसे धकेल सकता है।यदि यह मान लिया जाये कि हनुमान् जी में बहुत शक्ति थी, तो भी छोटी आकृति में रहते हुए किवाड़ को अपनी तरफ तो बिल्कुल भी नहीं खींचा जा सकता।उसके लिये किवाड़ के हैंडल को पकड़ना बहुत जरूरी है, जो कि किवाड़ के मध्य भाग में भूमि से कम से कम साढ़े तीन फुट की ऊँचाई पर होता है। बिल्ली के आकार का प्राणी उस हैंडल को नहीं पकड़ सकता और बिना हैंडल पकड़े किवाड़ को अपनी तरफ खींचा नहीं जा सकता। इसलिये यह श्लोक निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है।हनुमान् जी के वेश परिवर्तन के विषय में दूसरा श्लोक यह है—

तदहं स्वेन रूपेण, रजन्यां ह्रस्वतां गतः। लंकामभिपतिष्यामि, राघवस्यार्थसिद्धये।।

अर्थात् हनुमान् जी यह विचार कर रहे हैं कि मैं रात्रि आने पर अपने इस रूप की पहचानी जा सकने वाली विशेषताओं को अत्यंत सूक्ष्म अर्थात् कम कर के अर्थात् ऐसा रूप बना कर जिसमें मेरे वर्तमान रूप की विशेषताएं कम से कम दिखाई पड़ें, श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिये लंका में प्रवेश करूँगा।

इस श्लोक में किसी विशेष प्रकार के रूप की बात नहीं कही गयी है, केवल रूप के अत्यधिक परिवर्तन का जिकर किया है। इसलिये हनुमान् जी ने कौन सा रूप धारण किया इसका ज्ञान नहीं होता। इस विषय में अनुमान ही किया जा सकता है, उन्होंने निश्चय ही ऐसा रूप धारण किया होगा, जिसमें वे बे रोकटोक रावण के अंतःपुर में रात्रि के समय जा सकें।हो सकता है कि हनुमान् जी ने उच्च कोटि के सुरक्षा अधिकारी का रूप धारण किया हो, जिन्हें सुरक्षा व्यवस्था और सुरक्षा कर्मचारियों के कार्य की जाँच के लिये राजा और उसके परिवार के अन्य लोगों तथा उच्च सेनापतियों के घरों में रात में भी आने जाने की छूट मिली हुई हो, क्योंकि राजाओं की सुरक्षा का प्रबंध तो दिन रात रखा जाता है और इसीलिये वे पहचाने नहीं गये।

अशोक वाटिका में भी हनुमान् जी की जब सीता जी से बात हुई, तब रामायण में यह नहीं लिखा कि सीता जी की चौकीदारी करने वाली राक्षसियाँ कहीं चली गयीं थीं।इतना ही लिखा है कि उनमें से कुछ रावण को सीता जी के विषय में बताने के लिये चली गयीं थीं और शेष वहीं विद्यमान थीं। वे राक्षसियाँ हनुमान जी को सुरक्षा अधिकारी समझ कर कोई संदेह नहीं कर पायीं और थोड़ा दूर भी हट गयीं होंगी, जिससे वे केवल हनुमान् जी को सीता जी से बातें करते हुए तो देख सकीं पर बातों को सुन नहीं सकीं।

(१४) लंका-दहन

रामायण के सभी पाठक इस बात को संदेह रहित हो कर मानते हैं कि हनुमान् जी ने सीता जी से भेंट कर वापिस आते हुए रावण के वीरों से युद्ध किया और फिर इंद्रजित के हाथों बंदी बन कर छूटने के पश्चात् लंका में आग लगा दी। पर बुद्धि से विचार करने पर इस घटना को स्वीकार न किये जाने के अनेक कारण प्रतीत होते हैं। जैसे—

(क) वानरों को दो बातों की जानकारी लेने के लिये भेजा गया था।

१. रावण कौन है और कहाँ रहता है, क्योंकि रावण का उस समय तक उन्होंने नाम तो सुन लिया था, कि वह सीता को लेकर दक्षिण की तरफ गया है।(जटायु के कथनानुसार) पर रावण के विषय में और अधिक जानकारी उन्हें प्राप्त नहीं थी। ~~यद्यपि वानर~~

२. दूसरी जो जानकारी वानरों को लेनी थी, वह सीताजी के बारे में थी, रावण ने उन्हें कहाँ रखा हुआ है और किस अवस्था में वे इस समय विद्यमान हैं, अर्थात् रावण की बात मान कर सुखी अवस्था में हैं, या उसका प्रतिरोध करती हुई पीड़ित अवस्था में हैं? इन बातों की जानकारी के लिये और स्वयं हनुमान् जी की सुरक्षा तथा जल्दी कार्य की सिद्धि के लिये अत्यंत कुशल ~~संपाती से उन्हें रावण के विषय में भी जानकारी मिल गयी थी, पर फिर भी अपनी आँखों से देख कर उसका सत्यापन करना जरूरी था।~~ गुप्तचरी की आवश्यकता थी, जिसका निर्वाह हनुमान् जी ने बड़ी दक्षता के साथ किया। पर लंका दहन की घटना को देखकर हमें यह मानना पड़ेगा कि हनुमान् जी ने अपना गुप्तचरी का कार्य केवल सीताजी से वर्तालाप करने तक ही कुशलता पूर्वक किया, पर उसके बाद वे कार्य की सफलता की खुशी में इतने मस्त हो गये, कि अपनी जानकारी और सीता के संदेश को श्रीराम तक पहुँचाने से पहले ही अपने आपको प्रकट कर राक्षसों से उलझ गये। हनुमान् जैसा विद्वान और समझदार व्यक्ति क्या कभी ऐसी गल्ती कर सकता है?

लंका दहन के समर्थक यहाँ यह कहेंगे कि, चतुर गुप्तचर वही होता है, जो मुख्य जानकारी के साथ अतिरिक्त जानकारी भी प्राप्त कर स्वामी तक पहुँचाये। सो उन्होंने शत्रु की शक्ति का अंदाजा लेने के लिये उनके साथ लड़ाई की, क्योंकि उन्होंने मुख्य जानकारी तो ले ही ली थी। यहाँ मैं यही कहूँगा कि इसके लिये जरूरी था कि वे उस समय चुपचाप जा कर श्री राम को सारी जानकारी देते और फिर उनकी स्वीकृति ले कर प्रकट रूप से पुनः लंका में जा कर रावण की शक्ति को तोलते। उस समय रावण से युद्ध कर के उन्होंने तीन बड़े संकटों की संभावना को जन्म दे दिया।

(अ) पहली संभावना तो यह कि यदि वह युद्ध में मारे जाते, या शत्रु के द्वारा कैद कर लम्बे समय के लिये कारागार में डाल दिये जाते तो राम को सीता और रावण के विषय में जानकारी कैसे मिलती? क्योंकि चाहे कोई कितना भी बलवान क्यों नहो, युद्ध में पराजय की थोड़ी संभावना उसकी भी रहती है। हनुमान् जी को इंद्रजित ने ब्रह्मास्त्र के द्वारा बाँध तो लिया ही था, वह तो विभीषण के द्वारा रावण को यह समझाने पर, कि दूत अवध्य होता है, हनुमान् जी को रावण ने प्राण दंड नहीं दिया और छोड़ भी दिया। यद्यपि देखा जाये तो हनुमान् जी उस समय राम के दूत नहीं थे । राम ने उन्हें कोई संदेश देकर नहीं भेजा था, वे तो राम के गुप्तचर थे। गुप्तचर के पकड़े जाने पर उसे कैद भी किया जा सकता है और प्राण दंड भी दिया जा सकता है।

(आ) दूसरी संभावना यह है कि हनुमान् जी द्वारा यह प्रकट करने पर, कि मैं सीता जी के विषय में जानकारी लेने के लिये श्रीराम के पास से आया हूँ, रावण द्वारा सीता जी को अशोक वाटिका से निकाल कर किसी दूसरे गुप्त स्थान पर भी छिपाया जा सकता था। यह बात अलग है कि रावण ने ऐसा किया नहीं,अन्यथा हनुमान् जी द्वारा सीता जी की खोज का कार्य व्यर्थ हो जाता और रावण वध के पश्चात् भी श्रीराम को सीता जी की खोज पुनः करानी पड़ जाती।

(इ) तीसरी बात यह है कि जब हनुमान् जी को यह पता लग गया था कि सीता जी को रावण ने केवल दो मास की अवधि दी है, तब यह नितांत आवश्यक हो गया था कि, राम को जल्दी से जल्दी संदेश मिले और वे जल्दी से जल्दी रावण पर चढ़ाई करें तथा निश्चित अवधि के समाप्त होने से पूर्व उस पर विजय प्राप्त कर लें। क्या हनुमान् जी द्वारा लंका-दहन की घटना

से राम को संदेश मिलने में कुछ विलंब नहीं हुआ? इसलिये यह समझा जाना चाहिये कि हनुमान् जी जैसा समझदार और नीतिज्ञ व्यक्ति ऐसा बेसमझी का कार्य नहीं कर सकता। प्रक्षेप कारों ने उनकी शक्तिमत्ता को दिखाने के चक्कर में लंका दहन की घटना को उनके साथ जोड़ कर उनकी बुद्धिमत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगवा दिया।

(ख) सीता जी को देखने के बाद हनुमान् जी स्वयं यह सोच रहे थे कि मैं कैसे इन से बात प्रारंभ करूँ? जिससे मेरा यहाँ आना प्रकट न हो और मेरा राक्षसों से युद्ध न हो, क्योंकि युद्ध में जय, पराजय का निश्चय नहीं होता। इसलिये उन्होंने सीता जी को अपना परिचय अचानक नहीं दिया और धीमी आवाज में बड़ी चतुराई से पहले राम और उनके वंश का गुण गान करते हुए सीता को विश्वास दिलाया कि वे उनके शुभ चिंतक हैं, कोई मायावी राक्षस नहीं और फिर बातों को आगे बढ़ाया। हनुमान् जी जिन बातों से पहले बचना चाहते थे, सीता जी से वार्तालाप समाप्त कर उनकी बुद्धि में क्या विकार आया कि उन्ही बातों को स्वयं आरंभ कर बैठे।

(ग) समझा यह जाता है कि हनुमान् जी ने सारी लंका को जला दिया। यदि सारी शब्द केवल बोलचाल की भाषा का मुहावरा हो, तो भी यह तो लंका दहन की घटना को सत्य मानने वालों को मानना ही पड़ेगा कि चौथाई लंका तो अवश्य ही जला दी होगी। पर विचारणीय यह है कि लंका में आग लगाने में क्या हनुमान् जी का और अधिक समय नष्ट नहीं हुआ? जब कि सीता जी के राम के प्रति संदेश में यह बात भी थी कि वे जल्दी से जल्दी चढ़ाई करें। लंका कोई झुग्गी झौंपड़ियों की बस्ती नहीं थी कि जरा सी चिनगारी दिखाई और आग सब जगह फैल गयी। रामायण के अनुसार उसमें सात सात मंजिले पक्के मकान थे, जिन्हें विमान कहते थे। जरा कल्पना कीजिये कि किसी आदमी के हाथ में जलती हुई मशाल हो और उसको पकड़ने वाले उसका पीछा कर रहे हों, तो उनकी पकड़ाई से बचते हुए वह कितने मकानों को आग लगा सकेगा? अधिक से अधिक वह एक या दो मोहल्लों को ही फूँ क सकेगा, उसके बाद या तो उसे आग लगाने का काम छोड़ कर सरपट भाग जाना पड़ेगा या वह पकड़ लिया जायेगा, या शत्रु का अस्त्र प्रहार उसे जान से मार देगा। आग लगाते हुए हनुमान् जी को इंद्रजित आदि वीर क्यों चुपचाप बैठे देखते रहे? वे उसी शस्त्र का, जिसके द्वारा हनुमान् जी को पहले बाँधा गया था , पुनः प्रयोग कर उन्हें दुबारा नहीं बाँध सकते थे?

(घ) हनुमान् जी सीता जी का समाचार ले कर जब सर्व प्रथम श्रीराम और सुग्रीव से मिले, तो किसी ने उनके शरीर पर लगे घावों और जलने के निशानों के विषय में उनसे नहीं पूछा। लंका में युद्ध करते और आग लगाते हुए क्या उनके शरीर में खरोंच तक नहीं आई और जलने का निशान भी नहीं पड़ा? इससे यह सिद्ध होता है कि हनुमान् जी द्वारा लंका-दहन और राक्षसों से युद्ध की घटनाएँ प्रक्षिप्त हैं। वे गुप्त रूप से सीता से मिले और गुप्त रूप से ही वापिस लौटे।

(ङ) हनुमान् जी ने जब राम को सीता जी तक अपनी यात्रा और वापिस लौटने का विवरण दिया, तब उन्होंने अपने द्वारा राक्षसों से किये गये युद्ध और लंका दहन का कोई वर्णन नहीं किया। इसी प्रकार हनुमान् जी ने जब भरत जी को राम के वनवास के समय की सारी घटनाएँ सुनाईं तब भी उन्होंने अपने द्वारा किये गये लंका-दहन का वर्णन नहीं किया।

(च.) महाभारत में भी राम की कहानी का वर्णन करते हुए जहाँ और बातों का वर्णन विस्तार से किया गया है, वहाँ लंका-दहन का जिकर केवल आधे वाक्य में किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि महाभारत कालीन बुद्धिमान व्यक्ति भी इस घटना को सत्य नहीं समझते थे। रावण ने सीता को अशोक वाटिका में अति गोपनीय ढंग से रखा हुआ था, लंका के वासियों को प्रकट कर के नहीं। अतः यदि लंका-दहन की घटना को सत्य माना जाये तो यह मानना होगा कि लंका वासियों को सीता के अपहरण का पता लंका-दहन के समय लगा, पर आगे जाकर हम पढ़ते हैं कि जब श्रीराम सेना के साथ समुद्र के किनारे आ पहुँचे, तब रावण ने अपने भाइयों और सभासदों की एक बड़ी सभा उनसे सलाह लेने के लिये बुलायी और उसमें उसने उन्हें सूचित किया कि—

इयं च दंडकारण्यात्, रामस्य महिषी प्रिया। रक्षोभिश्चरितोद्देशादानीता जनकात्मजा।।

अर्थात् मैं दंडकारण्य से, जो राक्षसों का विचरने का स्थान है, राम की प्यारी पत्नी, जनक दुलारी सीता को हर लाया हूँ। रावण के द्वारा उस समय सभा में सीता के अपहरण की सूचना का दिया जाना भी यह सिद्ध करता है, कि लंका दहन की घटना प्रक्षिप्त है, अन्यथा जिस बात को सारी प्रजा पहले से जानती हो, उसे दुबारा सभा में सूचित करने की क्या आवश्यकता थी?

इस प्रकार ये सारी बातें यह प्रमाणित करती हैं कि हनुमान् जी द्वारा राक्षसों से युद्ध और लंका-दहन की बातें हनुमान् जी के महत्व को बढ़ाने के लिये बाद में रामायण में मिलाई गयीं हैं।

(१५) सेतु-बन्धन

जिस समय श्रीराम सेना सहित लंका पर चढ़ाई करने के अभियान में समुद्र के किनारे पहुँचे, तब उनके सामने यह समस्या आई, कि सेना को सागर के पार लंका तक कैसे पहुँचाया जाये? वहाँ समुद्र के किनारे सेना का पड़ाव डलवा दिया और सभी पार जाने का उपाय सोचने लगे। तभी विभीषण राम से आ कर मिले। तब उनसे भी सुग्रीव और हनुमान जी ने समुद्र पार जाने का उपाय पूछा। विभीषण ने सलाह दी कि श्रीराम को समुद्र की शरण में जाना चाहिये, वही उन्हें रास्ता बतायेगा। तब श्री राम समुद्र के तट पर आसन जमा कर समुद्र से प्रार्थना करते हुए बैठे गये और तीन दिन तक इसी प्रकार बैठे रहे। तीन दिन तक जब कुछ भी न हुआ तब श्री राम को क्रोध आया और उन्होंने समुद्र को सुखाने के लिये धनुष पर बाण चढ़ाया। तब श्री राम के बाण से घबरा कर समुद्र आदमी का रूप धारण कर, उनकी शरण में आया और प्रार्थना की कि वे बाण न छोड़ें , वह उन्हें पार जाने का रास्ता बतायेगा। तब उसने बताया कि वानरों की सेना में नल नाम का इंजीनियर है। वह सेतु का निर्माण करे तो मैं उस सेतु को सहारा दूँगा अर्थात् डूबने नहीं दूँगा। तब नल ने पुल बनाया और सारी सेना समुद्र के पार हो गयी।

यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि वह समुद्र जो भूमंडल के तीन चौथाई भाग को पानी में डुबाये हुए है, और जो मीलों तक गहरा है, किसी के द्वारा क्या सुखाया जा सकता है? दूसरे बेजान समुद्र मनुष्य के रूप में कैसे प्रकट हो गया? तीसरे क्या पत्थर पानी पर तैर सकते हैं? क्या राम इन सब बातों को नहीं जानते थे, जो समुद्र से प्रार्थना करने बैठ गये? इसलिये यह मानना पड़ेगा कि ये सारी बातें प्रक्षेप कारों ने राम की अलौकिकता को दिखाने के लिये मिलायी हैं।

वास्तविक बात को जानने के लिये हमें कुछ गहराई से विचार करना होगा। इस विषय में सबसे पहली बात तो यह समझने की है कि समुद्र पर क्या बनाया गया? इसके लिये संस्कृत में सेतु शब्द का प्रयोग किया गया है। सेतु शब्द के हिंदी में दोनों अर्थ हैं बाँध और पुल। पानी में पत्थर आदि डाल कर जो मुंडेर बनायी जाती है, उसे बाँध कहते हैं, पर जब पानी में खंबे खड़े करके उनके सहारे पानी के ऊपर ऊपर जो रास्ता बनाया जाता है, तब उसे पुल कहते हैं। पुल नदी के ऊपर आर पार जाने के लिये बनाया जाता है। समुद्र पर सेतु बनाने का कार्य पाँच दिन में पूरा हुआ था। इतने थोड़े समय में पुल नहीं बनाया जा सकता। इसलिये यह मानना चाहिये कि, समुद्र में बाँध बनाया गया था। अर्थात् पत्थर पानी में डाल कर सड़क का काम देने वाली मुंडेर बनायी गयी थी, पुल नहीं। पर संस्कृत से हिंदी में अनुवाद करने वालों ने प्रायः सेतु का अनुवाद पुल ही किया है, जो गलत है।

पर बाँध भी तो तभी बन सकता है जब पानी बहुत कम गहरा हो, जिस समुद्र की गहराई बाँध बनाने के स्थान पर मालूम न हो, वहाँ बाँध कैसे बन सकता है? क्योंकि समुद्र तो अधिकाँश स्थानों पर मीलों गहरा है, इसलिये बिना गहराई का ज्ञान प्राप्त किये समुद्र में बाँध बनाने का कार्य नहीं किया जा सकता। अतः यह मानना आवश्यक है कि जहाँ श्रीराम ने समुद्र में बाँध बनाया वहाँ पानी काफी उथला होगा। भारतीय किनारे से लंका के तट तक एक ऐसी जलान्तर्गत पहाड़ियों की श्रृंखला चली गयी होगी, जो पानी में केवल नाम मात्र को छिपी हुई होगी। उन्हीं पहाड़ियों में से एक पहाड़ी मैनाक पर्वत के नाम से जल से कुछ ऊपर भी निकली हुई होगी, जिस पर लंका जाते हुए हनुमान् जी ने कुछ देर विश्राम किया था। उन्हीं जल में छिपी हुई पहाड़ियों पर पत्थर डाल कर वानर सेना ने नल के निरीक्षण में भारतीय तट से लंका के तट तक एक सड़क नुमा मुंडेर बना दी और उस पर चल कर समुद्र पार कर लिया। मेरे विचार से सेतु बंधन की कहानी इस प्रकार होगी।

जब हनुमान् जी ने लंका से लौट कर राम को सीता का हाल बताया और राम ने लंका पर चढ़ाई के लिये वानर सेना को चलने का आदेश दिया, तभी उनको चिंता हुई कि सेना को सागर के पार कैसे ले जाया जायेगा?

कथं नाम समुद्रस्य, दुष्पारस्य महाम्भसः। हरयो दक्षिणं पारं, गमिष्यन्ति समागताः।।

अर्थात् महान जल राशि से परिपूर्ण समुद्र को पार करना तो बड़ा ही कठिन काम है। यहाँ एकत्र हुए ये वानर लोग समुद्र के दक्षिण तट पर कैसे पहुँचेंगे? तब सुग्रीव ने श्रीराम का उत्साह बढ़ाते हुए कहा कि-

सेतुरत्र यथा बध्येत् , यथा पश्येम तां पुरीम्। तस्य राक्षसराजस्य, तथा त्वं कुरु राघव।।

अर्थात् हे रघुनंदन आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे समुद्र पर बाँध बन सके और हम सब राक्षस राज की पुरी को देख सकें।

समुद्र पर बाँध बनाने की सलाह बिना यह जाने, कि वहाँ बाँध बनाया जा सकता है,या नहीं, कोई मूर्ख व्यक्ति ही दे सकता है। सुग्रीव जो समस्त वानर जाति का राजा था , मूर्ख कैसे हो सकता है? उसके द्वारा बाँध बनाने की सलाह देना यह सिद्ध करता है कि वह जानता था कि समुद्र में वहाँ कोई ऐसी उथली जगह अवश्य है, जिसे बाँध बनाने के काम में लाया जा सकता है। पर उसे उस स्थान की ठीक अवस्थिति का ज्ञान नहीं था। तब हनुमान् जी ने राम को सलाह दी कि सारी सेना को सागर के पार ले जाने की क्या आवश्यकता है? कुछ बलवान वीर जो सागर पार कर सकते हैं, वे आपके साथ जायें और युद्ध में रावण को हरा कर सीता को ले आयें। तब श्रीराम ने यह सोच कर कि सेना को समुद्र तक तो ले चलें, वहाँ चल कर देखेंगे सेना को समुद्र के किनारे ले जाकर टिका दिया। तभी विभीषण भी उनसे वहाँ आ मिले। उनसे भी सुग्रीव और हनुमान जी ने बाँध बनाने के विषय में पूछा, क्योंकि उनका विचार था कि विभीषण लंका निवासी हैं और लंका से राक्षस लोग जल मार्ग से आर पार आते जाते रहते होंगे। क्योंकि जल मार्ग से यात्रा करने वालों को जल में छिपी पहाड़ियों की जानकारी रखनी पड़ती है, अतः उन्हें समुद्र के अंदर उथली और बाँध बनाने योग्य जगहों का ज्ञान होगा। पर विभीषण क्योंकि राजा के छोटे भाई होने के कारण विशिष्ट व्यक्ति थे और आकाशमार्ग से ही आया जाया करते थे। जैसे आजकल भी मंत्री और उनके उच्च अधिकारी लोग जल मार्ग से समुद्र पार देशों को नहीं जाते, हवाई जहाज द्वारा जाते हैं।इसलिये उन्हे भी समुद्रान्तरवर्ती उन उपयुक्त स्थानों का निश्चित ज्ञान न था। इसीलिये उन्होंने कहा कि-

समुद्रं राघवो राजा, शरणं गन्तुमर्हसि।

इस वाक्य का सामान्य अर्थ तो यही है कि राम को समुद्र की शरण में जाना चाहिये। पर विशेष अर्थ यह है कि समुद्र में उन स्थानों की खोज करानी चाहिये। समुद्र अपने विशेष लक्षणों से स्वयं इस बात को प्रकट कर रहा होगा कि कहाँ गहरा पानी है और कहाँ उथला? तब श्रीराम ने समुद्र की छान-बीन अपने निरीक्षण में दिन रात लग कर तीन दिन तक कराई और भारतीय तट से लंका के तट तक ऐसी ऐसी उथली जगहों का अन्वेषण कराया, जिनके ऊपर बाँध की सामग्री जमाई जा सके। और तब नल ने समुद्र के ऊपर पाँच दिन में बाँध बनाया।

(१६) लंका-दहन, वानर सेना द्वारा द्वितीय बार

वाल्मीकि रामायण में लिखे वर्णन के अनुसार लंका को एक बार नहीं अपितु दो बार जलाया गया। पहली बार हनुमान् जी द्वारा और दूसरी बार वानर सेना द्वारा। हनुमान् जी द्वारा लंका का जलाया जाना तो पहले ही प्रक्षिप्त प्रमाणित किया जा चुका है, दूसरी बार वानर सेना द्वारा लंका को जलाया जाना भी प्रक्षिप्त है।

दूसरी बार वानर सेना ने लंका को तब जलाया, जब कुंभकर्ण के वध के पश्चात् इंद्रजित ने अंतर्हित अवस्था में घनघोर बाण वर्षा कर, राम और लक्ष्मण दोनों को मूर्च्छित कर दिया(यद्यपि मेरे विचार से यह घटना भी प्रक्षिप्त है।) और हनुमान् जी

ने हिमालय से बूटी लाकर उनकी मूर्च्छा दूर की। तब सुग्रीव ने वानर सेना को आज्ञा दी और वह रात्रि में मशालें ले कर लंका में घुस गयी। दरवाजों पर जो प्रहरी थे, वे सेना का प्रतिरोध न कर सके और भाग गये। वानर सेना ने अंदर जा कर लंका के हजारों मकानों को आग के हवाले कर दिया और अनेक नागरिक भी आग में जल गये।आग की लपटें दूर दूर तक दिखाई देती थीं।

यह वर्णन इसलिये प्रक्षिप्त प्रतीत होता है, क्योंकि इस संपूर्ण अग्निकांड के दौरान राक्षस सेना द्वारा कहीं भी प्रतिरोध का जिकर नहीं है। जब शत्रुसेना ने किले को घेर रखा हो और प्रतिदिन युद्ध होता हो, तब सेना द्वारा दृढता से पहरेदारी की जाती है।जब शत्रु की सेना नगर में घुस आये तब तो कदम कदम पर उसका प्रतिरोध किया जाता है, पर यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है, जब कि लंका में रावण और इन्द्रजित जैसे वीर विद्यमान थे। अतः यह वर्णन प्रक्षिप्त है।

(१७) क्या गरुड़ जी पक्षी थे?

गरुड़ जी का रामायण में उस समय वर्णन आता है, जब राम और लक्ष्मण दोनों को इन्द्रजित ने नाग पाश में बाँध कर मूर्च्छित कर दिया था। तब गरुड़ जी ने आकर और उन्हें नागपाश से छुड़ा कर स्वस्थ किया। यहाँ यही विवेच्य है कि गरुड़ जी पक्षी थे या मनुष्य? निम्न आधारों के अनुसार गरुड़ जी को मनुष्य समझना चाहिये——

१. पक्षियों के हाथ नहीं होते, पर गरुड़ जी के हाथ थे। जैसे देखिये-

ततः सुपर्णः काकुस्त्थौ, दृष्ट्वा प्रत्यभिनंद्य च। विममर्श च पाणिभ्यां, मुखे चन्द्रप्रभसमे।।

अर्थात् गरुड़ जी ने उन दोनों रघुवंशी बन्धुओं का स्पर्श करके अभिनन्दन किया और अपने हाथों से उनके चंद्रमा के समान कान्तिमान मुखों को पोंछा। यहाँ स्पष्ट रूप से बताया गया है कि गरुड़ जी के हाथ थे। इसी प्रकार देखिये—

तावुत्थाय महातेजा, गरुड़ो वासवोपमौ। उभौ च सस्वजे हृष्टो, रामश्चैनमुवाच ह।।

अर्थात् फिर महा तेजस्वी गरुड़ जी ने उन दोनों भाइयों को जो साक्षात् इन्द्र के समान थे, उठा कर हृदय से लगा लिया। तब श्रीराम ने प्रसन्न हो कर उनसे कहा। यह श्लोक भी स्पष्ट कर रहा है कि गरुड़ जी के हाथ थे, क्योंकि—

१. बिना हाथों के कोई किसी को उठा कर छाती से नहीं लगा सकता, तथा पक्षी भी यह कार्य नहीं कर सकता।
२. ऊपर के श्लोक से ही यह पता लग रहा है कि गरुड़ जी मानवीय भाषा में बात करते थे, पर कोई पक्षी मानवीय भाषा में बात नहीं कर सकता।
३. पक्षी कपड़े नहीं पहनता, पर गरुड़ जी ने वस्त्र पहने हुए थे।
४. पक्षी गहने नहीं पहनता, पर गरुड़ जी ने आभूषण धारण किये हुए थे।
५. पक्षी शरीर पर पाउडर अर्थात् अंगराग नहीं लगाता, पर गरुड़ जी ने अंग राग लगाया हुआ था।
६. गरुड़ जी ने माला भी धारण की हुई थी।
७. गरुड़ जी की आकृति भी सुंदर थी।

गरुड़ जी की उपर्युक्त ३ नम्बर से लेकर ७नम्बर तक की सारी मानवीय विशेषताओं को दर्शाने वाला निम्न श्लोक देखिये-

को भवान् रूपसंपन्नो, दिव्यस्त्रगनुलेपनः। वसानो विरजे वस्त्रे, दिव्याभरणभूषितः।।

अर्थात् राम की मूर्च्छा दूर होने पर वे गरुड़ जी से पूछते हैं कि आप कौन हैं? आप बड़े रूपवान हैं। आपने दिव्य माला धारण की हुई है और दिव्य अंगराग लगाया हुआ है। आपने दो स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा आप दिव्य आभूषणों से सुशोभित हैं।

वास्तव में पहले गृद्ध नाम की मनुष्यों की एक जाति हुआ करती थी। राम से बहुत पहले उस गृद्ध जाति के एक राजा गरुड़ हुए। उनकी माता का नाम विनता था, इसलिये उन्हें वैनतेय भी कहते थे। वे शरीर से बड़े बलवान और आकाश विचरण की विद्या में अत्यधिक निपुण थे। यहाँ मेरा अभिप्राय पंखों द्वारा नहीं अपितु विमान द्वारा आकाश विचरण से है। इसके अतिरिक्त वे सर्प विद्या में भी अर्थात् सर्पों को वश में करने, उनके विष को भी दूर करने में सर्व श्रेष्ठ थे। उनकी इन तीनों विशेषताओं को उनकी संतान परंपरा ने भी लम्बे समय तक बनाये रखने का प्रयत्न किया, इसीलिये उनकी संतान परंपरा को भी गरुड़ नाम से ही पुकारा जाता था। इन गरुड़ वंश के लोगों का, जो गृद्धराज भी थे, रघुवंशी राजाओं से भी समय समय पर घनिष्ठ संबन्ध रहे थे। एक गरुड़ राजा सगर का साला था। जैसे देखिये-

पितृणां मातुलं राम, सुपर्णमनिलोपमम्।। बालकांड सर्ग४१ श्लोक १६

अर्थात् अंशुमान ने अपने चाचाओं सगरपुत्रों के मामा गरुड़ जी को देखा— इसी प्रकार जटायु की भी राजा दशरथ से मित्रता थी। जटायु, संपाती और गरुड़ जी तीनों परस्पर बन्धु बान्धव थे। जटायु के समान गरुड़ जी भी श्री राम के प्रशंसक थे। इसीलिये उन्होंने श्रीराम को अपना परिचय उनका मित्र बतलाते हुए दिया। श्रीराम के प्रशंसक और शुभ चिंतक होने के कारण वे युद्ध के समय समीपवर्ती स्थान पर टिक कर युद्ध के क्षण क्षण की जानकारी लेते रहते थे। जब उन्हें यह पता लगा,जैसा कि गरुड़ जी ने श्रीराम से बात करते हुए स्वयं स्वीकार किया है, कि राम और लक्ष्मण इन्द्रजित के सर्पविष से बुझे हुए बाणों से मूर्च्छित हो गये हैं, तो वे तुरंत आकाश मार्ग से दौड़ कर वहाँ पहुंचे और मित्र के सर्प विष को दूर किया,क्योंकि इस विद्या में तो वे प्रवीणतम थे ही। इसके लिये एक प्रमाण और देखिये—

वैनतेयाच्च नो जन्म, सर्वेषां वानरर्षभाः।।

अर्थात् जटायु के भाई संपाती वानरों को अपना परिचय देते हुए बोले कि-हे वानर शिरोमणियों हम सब का जन्म गरुड़ से ही हुआ है।

(१८) युद्धकाण्ड में राम और लक्ष्मण की मूर्च्छाएं

वाल्मीकि रामायण के युद्धकांड में युद्ध के दौरान राम और लक्ष्मण अनेक बार मूर्च्छित हुए। राम दो बार इन्द्रजित के द्वारा मूर्च्छित हुए और लक्ष्मण चार बार। दो बार राम के साथ इन्द्रजित के द्वारा और दो बार रावण के द्वारा मूर्च्छित हुए।

प्रथम बार राम और लक्ष्मण तब मूर्च्छित हुए, जब वानरों की राक्षसों के साथ पहली मुठभेड़ हुई और दिन समाप्त होने पर भी युद्ध रात में चलता रहा। इन्द्रजित राक्षस सेना का नायक था। वह ऊपर आकाश में जा कर बादलों में छिपने की विद्या जानता था। इसलिये उसने प्रकट रूप में अपनी दाल न गलती देख कर बादलों में अंतर्हित हो कर राम और लक्ष्मण पर सर्प विष में बुझे बाणों की वर्षा आरंभ कर दी।राम और लक्ष्मण क्योंकि उसकी इस कपट विद्या से परिचित न थे, फिर रात्रि का समय था, साथ ही वे ऐसे दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना भी नहीं चाहते थे, जिनसे इन्द्रजित तो वश में हो जाता पर अन्य दूसरे प्राणी भी मारे जाते, इसलिये प्रतिरोध न कर सके और सर्प विष चढ़ जाने के कारण बेहोश हो गये। इसको रामायण में वे नाग पाश से बाँध दिये गये ऐसा कहा गया है। फिर गरुड़ जी ने, जो उस समय के प्रसिद्ध सर्प विद्या विशारद थे, आकर उन्हें सर्प विष से मुक्त कराया और उनके होश में आने पर उन्हें समझाया कि राक्षस लोग कूट नीति से लड़ते हैं। अतः यहाँ केवल आदर्श वाद से काम नहीं चलेगा।

दूसरी बार वे दोनों मूर्च्छित तब हुए जब इन्द्रजित दुबारा लड़ने के लिये आया और तब भी उसने युद्ध न कर अंतर्धान विद्या का सहारा लिया और अदृश्य हो कर ब्रह्मास्त्र का भी प्रयोग कर दिया। ब्रह्मास्त्र एक विशेष भयानक दिव्यास्त्र था, जिसके द्वारा आकाश से वानर सेना का संहार किया जाने लगा और राम लक्ष्मण भी पीडित होने लगे। उन दोनों के पास ब्रह्मास्त्र से किये जाने वाले आक्रमण को रोकने का उपाय था या नहीं, यह तो रामायण में नहीं लिखा पर यह लिखा है कि श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि यह ब्रह्मास्त्र ब्रह्मा जी का बनाया हुआ है अतः हमें इसका सम्मान करना है।इसलिये इसका प्रतिरोध नहीं करना,

चुपचाप सहते रहो।जब हम बेहोश हो जायेंगे, तब इन्द्रजित अवश्य ही हमें मरा हुआ समझ कर शान्त हो कर चला जायेगा।परिणाम स्वरूप जब वे गंभीर रूप से घायल हो कर बेहोश हो गये, तब युद्ध बंद हुआ। हनुमान्, विभीषण आदि एक दो को छोड़ कर सारे वानर सेनापति भी बुरी तरह से घायल हो गये। तब जाम्बवान ने हनुमान जी को हिमालय पर ओषधियों का पता बताया और हनुमान जी वहाँ जा कर ओषधियों को लाये, तब राम लक्ष्मण और वानर सेनापति स्वस्थ हुए।

दो बार लक्ष्मण जी रावण के द्वारा शक्ति की चोट से मूर्च्छित हुए। एक बार कम चोट लगी तब स्वयं ही थोड़ी देर पश्चात् होश में आ गये। दूसरी बार अधिक चोट लगी तब जीवन को संकट पैदा हो जाने पर सुषेण वैद्य ने हनुमान् जी को फिर उन्ही ओषधियों का पता बताया, जिन्हें वे पहले ला चुके थे। तब हनुमान् जी दुबारा हिमालय पर्वत पर गये और उन ओषधियों को लाये। उनके द्वारा लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हुई।

अब देखना यह है कि इन सभी मूर्च्छित होने वाली घटनाओं में क्या कोई प्रक्षिप्तता के दायरे में आती है? यहाँ रावण के शक्ति आघात से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना स्वाभाविक है, क्योंकि आमने सामने युद्ध हो रहा था, दोनों वीर पूरा प्रतिरोध कर रहे थे। ऐसे में किसी एक का मूर्च्छित हो जाना स्वाभाविक है। रावण भी राम के साथ युद्ध में मूर्च्छित हुआ था। जब राम और लक्ष्मण रात के समय इन्द्रजित के अंतर्हित आक्रमण का उत्तर न दे सके और सर्प विष से बेहोश हो गये, यह घटना भी स्वाभाविक मानी जा सकती है, क्योंकि राम आर्य मर्यादा के अनुसार युद्ध करते थे, पर राक्षस लोग कपट युद्ध का सहारा लेते थे, इसीलिये उन्हें उनसे मात खानी पड़ी। गरुड़ जी ने जब उनका उपचार किया तब उन्हें इस विषय में सचेत किया। जैसे—

अप्रमादश्च कर्तव्यो, युवाभ्यां नित्यमेव हि। प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे, संग्रामे कूटयोधिनः।।

पर दूसरी बार जब इन्द्रजित ने अंतर्हित होकर ब्रह्मास्त्र की सहायता से आक्रमण किया और दोनों को मूर्च्छित कर दिया, यह घटना प्रक्षिप्त प्रतीत होती है। क्योंकि-

(क) श्रीराम यहाँ न तो स्वयं इन्द्रजित का प्रतिरोध करते हैं और न लक्ष्मण को करने देते हैं और कारण यह बताते हैं कि यह मूर्खता की बात है जो प्रक्षेपकारों ने राम जैसे नीतिवान और वीर्य वान एवं पराक्रमी योद्धा के मुख से कहलवाई है। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे रूस भारत का मित्र है और पाकिस्तान यदि रूस के मिग विमानों से हमला करे तो भारतीय सेनापति यह कहें कि हमें अपने मित्र रूस का सम्मान करना है,अतः इन मिग विमानों के मुकाबले के लिये हमें अपने विमान नहीं भेजने चाहियें और चुपचाप मार खा लेनी चाहिये। सम्मान करने का यह तरीका मूर्खतापूर्ण है।

(ख) श्रीराम रावण को मारने के लिये तीन कारणों से प्रतिबद्ध थे- पहला अपनी पत्नी के अपहरण का बदला लेने के लिये, दूसरे विभीषण को राज्य गद्दी पर बिठाने के लिये, और तीसरे मुनियों के पीडक राक्षसों के संहार की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये। उपर्युक्त मूर्च्छित होने की प्रक्षिप्त घटना में राम ने इन तीनों प्रतिज्ञाओं की पूर्ति की तरफ ध्यान नहीं दिया और केवल ब्रह्मा जी के सम्मान हेतु अपने आपको मूर्च्छित हो जाने दिया। पर यह जरूरी नहीं था कि वे केवल मूर्च्छित ही होते। वे मर भी सकते थे। यदि ऐसा हो जाता तो फिर उनकी प्रतिज्ञाएँ कैसे पूरी होतीं? राम ऐसी गलती नहीं कर सकते थे। इसलिये भी इस घटना को प्रक्षिप्त मानना चाहिये।

इस घटना के प्रक्षेप के कारण ही हनुमान् जी के द्वारा हिमालय से ओषधियाँ लाने में भी बड़ी गड़बड़ी हो गयी है। सभी पुस्तकों में हनुमान् जी ओषधि लेने हिमालय पर एक बार ही गये, पर वाल्मीकि रामायण में उन्हें दो बार जाना पड़ा है और यह बात भी कम रोचक नहीं है कि दोनों बार उन्हें पहाड़ उठा कर लाने पड़े हैं। पहली बार जब वे वहाँ गये तब उनके सामने पहचानने की समस्या नहीं आयी। वे ओषधियों को खोज खोज कर चुनने लगे और तरतीब से रखने लगे, क्योंकि वहाँ विचयं चकार इस प्रकार विचय शब्द का प्रयोग किया गया है। विचय शब्द के तीन अर्थ हैं-१-खोज करना,२-चुनना,३-तरतीब से रखना। ये तीनों अर्थ यहाँ लगेंगे। पर आगे लिखा है कि जब ओषधियों ने देखा कि ये हमें ले जायेंगे, तब वे अंतर्हित हो गयीं।

तब हनुमान् जी ने क्रोध में आकर पहाड़ को ही उखाड़ लिया और ले आये। वास्तव में न तो ओषधियाँ यह कार्य कर सकतीं हैं और न पहाड़ को उखाड़ कर लाया जा सकता है।

फिर दूसरी बार जब हनुमान् जी हिमालय पर पहुँचे, तब यह लिखा हुआ है कि वे ओषधियों को पहचान न सके इसलिये पहाड़ को उखाड़ कर ले आये। अब जरा देखिये पहली बार जब पहाड़ को उखाड़ कर ले गये और उनके सामने ही ओषधियों का प्रयोग किया गया, तब क्या उन्हें ओषधियों की पहचान नहीं हो गयी? फिर दूसरे चक्कर में वे उन्हें क्यों नहीं पहचान सके? इसलिये यह समझना चाहिये कि राम लक्ष्मण की मूर्च्छा का एक प्रसंग सारा प्रक्षिप्त है। हनुमान् जी एक बार ही सुषेण वैद्य के बताने पर हिमालय पर गये,क्योंकि जब सुषेण वैद्य विद्यमान थे तब जाम्बवान का ओषधि बताने का क्या मतलब? वहाँ विचय शब्द वाला श्लोक प्रक्षेपकारों ने दूसरी बार के घटना वर्णन में से उठा कर पहली बार की घटना में डाल दिया है। उसे दूसरी बार के घटना वर्णन में ही होना चाहिये। इस प्रकार वास्तविक घटना यह हुई कि राम लक्ष्मण दूसरी बार इन्द्रजित के द्वारा बेहोश नहीं किये गये। उसने अंतर्हित हो कर आक्रमण करना चाहा, पर राम जब उसका सफल प्रतिरोध करने की मुद्रा में आ गये, तब वह घबरा कर युद्ध बन्द कर चला गया।

लक्ष्मण जी जब रावण के शक्ति प्रहार से दूसरी बार मूर्च्छित हो गये, तब सुषेण वैद्य के निर्देशानुसार हनुमान् जी हिमालय पर गये और ओषधियों का विचय कर के (क्योंकि विचयं चकार वाला श्लोक वहीं लगना चाहिये) ले आये। वे पहाड़ को उखाड़ कर नहीं लाये।

(१९) कुम्भकर्ण का डील डौल और लम्बी निद्रा

प्रक्षेपकारों ने ही रावण के छोटे भाई कुम्भकर्ण का आकार ऐसा वर्णित किया है, कि उसकी मीलों लम्बी मूछें थीं, वह एक विशाल काय पर्वत के समान लंबा चौड़ा था और ब्रह्मा जी के शाप के कारण छै मास तक सोता रहता था। ऐसी बातें संसार में कभी नहीं हो सकतीं।

यदि बुद्धि के अनुसार समझना हो तो यही समझना चाहिये कि उसका डील डौल अन्य पुरुषों की तुलना में ड्योढा या अधिक से अधिक दुगना था। वह खूब खाता पीता था और शारीरिक शक्ति उसमें अत्युत्कृष्ट थी। वह बड़ा कुशल लड़ाकू और वीर था। युद्ध में प्राण देने से नहीं डरता था। जो कुम्भकर्ण के छै मास तक सोते रहने की बात है, वह गलत है। इसका मतलब यही लगाना चाहिये कि, उसके विचार भी विभीषण की तरह रावण से नहीं मिलते थे। वह रावण के सभी गलत कार्यों का शत प्रतिशत समर्थक नहीं था। क्योंकि जब राम ने सेना के साथ समुद्र के तट पर डेरा डाला, तब रावण ने अपने बंधु बाँधवों और मंत्रियों को बुला कर सभा की और उस सभा में उसने बताया कि मैंने इस प्रकार सीता का अपहरण कर लंका में रखा हुआ है। जिसके कारण राम अपनी सेना के साथ लंका पर चढ़ाई के लिये सागर को पार करना चाहते हैं। तब जहाँ विभीषण ने रावण के दुष्कृत्य का विरोध किया वहाँ कुम्भकर्ण ने भी रावण के कार्य की निन्दा की। उसकी असहमति का आधार यह था कि तुमने चोरी क्यों की? तुम्हे यदि सीता की आवश्यकता थी तो तुम श्रीराम को युद्ध में ललकार कर, हरा कर, मारकर, सीता को छीन कर लाते। वीर होते हुए भी चुरा कर क्यों लाये? क्योंकि वह वीर था और कोई भी वीर चोरी के कार्य को पसंद नहीं करेगा।

कुम्भकर्ण का अन्य कार्यों में भी रावण से मत भेद रहता होगा। पर वह विभीषण के समान रावण से बार बार आग्रह नहीं करता होगा। विभीषण बार बार आग्रह करता था, अतः उसे रावण से अपमानित होना पड़ता था। और अपमानित होना जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया, तब उसे घर छोड़ कर राम से जाकर मिलना पड़ा। कुम्भकर्ण बार-बार आग्रह न कर रावण के कार्यों के प्रति उदासीन हो गया था। उसने रावण को सलाह देना, उसके कार्यों की खोज खबर लेना बिल्कुल बंद कर दिया था और अपने में ही मस्त रहने लगा था। उसके अपने में ही मस्त रहने और रावण के सुख दुख की तरफ बिल्कुल भी ध्यान न देने को ही रावण ने वह सदा सोता रहता है ऐसा कहा है। जैसे—

कुम्भकर्णः सदा शेते, मूढो ग्राम्यसुखे रतः।।

जब उसको रावण की आज्ञा से जगाया अर्थात् लंका की शोचनीय अवस्था से अवगत करा कर युद्ध के लिये तैयार कराया गया, तब भी उसने आकर रावण की उसके कार्यों के लिये भर्त्सना की। पर क्योंकि वह वीर था, इसलिये उसने अपना यही कर्तव्य ठीक समझा कि उसे रावण की सहायता करते हुए ही युद्ध भूमि में प्राण दे देने चाहियें और इसीलिये वह परेशान रावण को हिम्मत बँधा कर खुशी खुशी रण क्षेत्र में पहुँचा और लड़ते लड़ते अपने प्राण दे दिये।

(२०) सीता जी की अग्नि परीक्षा

रावण वध के पश्चात् जब अशोक वाटिका से सीता जी को राम के पास लाया गया और सीता जी ने बड़ी प्रसन्नता से राम के दर्शन किये तो उनकी और सभी दर्शकों की आशा के विपरीत श्रीराम ने बड़ी रुखाई के साथ सीता जी को यह बताना आरम्भ किया कि उन्होंने रावण वध का इतना बड़ा अभियान क्यों किया? उन्होंने कहा कि रावण ने तुम्हारे अपहरण के द्वारा मेरे पौरुष को कलंक लगाया था, उस कलंक का मैने मार्जन कर लिया। उसने मेरा अपमान किया था,उस अपमान का बदला ले लिया। वह आगे फिर ऐसी हरकत न कर सके इसलिये उसे भी समाप्त कर दिया।मैने उसके वध की प्रतिज्ञा की थी,उस प्रतिज्ञा को भी पूरा कर लिया। पर मैने तुम्हें प्राप्त करने के लिये रावण का वध बिल्कुल नहीं किया, क्योंकि मुझे तुमसे कोई प्रेम तो है ही नहीं, अपितु तुम मुझे उसी प्रकार अप्रिय लग रही हो,जैसे आँख के रोगी को दीपक की लौ अच्छी नहीं लगती है। वह इसलिये कि मुझे तुम्हारे चरित्र पर संदेह है। रावण ने तुम्हारे ऊपर अपनी कुदृष्टि डाली, रावण तुम्हे गोद में उठा कर ले गया अतः उसके शरीर से तुम्हारा स्पर्श हुआ। तुम रावण के घर में लम्बे समय तक रहीं और अब तक रावण ने तुम्हारे साथ गलत आचरण भी कर ही लिया होगा। इसलिये मैं तुम्हें अपने साथ नहीं रख सकता। तुम चाहे जहाँ जा सकती हो। तुम चाहो तो विभीषण के यहाँ या सुग्रीव के यहाँ अथवा भरत और शत्रुघ्न के पास जहाँ चाहे रह सकती हो।

राम की ये बातें सुन कर बेचारी सीता की सारी खुशियों पर पानी फिर गया।उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया। क्या एक आदर्श पतिव्रता नारी राम के सुझाये रास्ते पर चल सकती थी? कदापि नहीं। उसके सामने सिवाय आत्महत्या के और कोई चारा नहीं था। अतः उसने लक्ष्मण के द्वारा चिता बनवाई और उसे प्रज्वलित करवा कर उसमें प्रवेश कर गयीं। पर राम से न्याय न प्राप्त करने पर भी सीता को शायद अग्नि से न्याय प्राप्त होने की अब भी आशा थी।अतः उन्होने अग्निदेव से प्रार्थना की कि हे अग्निदेव यदि मैं सच्चरित्र हूँ तो मेरी रक्षा करना और अग्नि देव ने न्याय करते हुए सीता को जलाया नहीं अपितु उसे साथ लेकर चिता के बाहर आये तथा राम के सामने सीता की सच्चरित्रता को प्रमाणित किया। तभी राम एक दम बदल गये और कहने लगे कि जानता तो मैं भी था, पर दूसरों को दिखाने के लिये सीता की परीक्षा कराना चाहता था। सीता की अग्नि परीक्षा की यह कहानी रामायण में उल्लिखित है। इस कहानी को निम्न कारणों के आधार पर प्रक्षिप्त मानना चाहिये।

(क) अग्नि का सीता को न जलाना, अग्निदेव का सीता को साथ ले कर आना और उसके पश्चात् अन्य ब्रह्मा आदि देवों का भी वहाँ आना, ये सारी अस्वाभाविक घटनाएँ हैं। लोक में न ऐसा हुआ है और न आगे होगा।

(ख) राम ने सीता से स्पष्ट कहा कि मैने रावण का वध तुम्हारे लिये नहीं किया अर्थात् मुझे तुमसे कोई प्रेम नहीं और नाहीं मुझे तुम्हारे दुख को दूर करने की इच्छा थी आदि। ये बातें राम के स्वार्थी रूप का घिनौना प्रदर्शन करतीं हैं। जब कि राम अब तक के कार्यों से सर्वत्र दूसरे के दुख को दूर करने वाले,प्रजापालक, ऋषि मुनियों के रक्षक और राक्षसों की सेना के भी व्यर्थ हत्याकांड को न पसंद करने वाले सिद्ध हुए हैं। उनका सीता के प्रति प्रेम के अभाव का प्रदर्शन करना तो सर्वथा हास्यास्पद है, क्योंकि रावण वध से पहले न जाने कितनी बार वे सीता को याद करके रोये हैं। पम्पा सरोवर तक तो वे रोते हुए ही आये हैं। सुग्रीव से मिलने पर सीता के आभूषणों को देख कर फिर उन्होंने सीता के लिये आँसु बहाये। उसके बाद वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए भी उन्हें सीता की याद आती है। जब हनुमान् जी ने सीता जी का संदेश सुनाया, तब भी वे सीता के लिये रोते हैं। सागर पर सेना का पड़ाव डलवा कर भी सीता उन्हें याद आती है। इन सभी अवसरों पर जब वे सीता को याद करते हैं तब उसके प्रति अपना विशुद्ध प्रेम प्रकट करते हैं। उस समय उन्होंने कहीं भी सीता के चरित्र के प्रति कोई कटु शब्द नहीं कहा, पर

अग्नि परीक्षा वाली घटना में वे अचानक बदल जाते हैं। सीता के लिये रोते हुए उन्होंने रावण के यहाँ सीता के द्वारा पाये जाने वाले कष्टों की भी कल्पना की है। पर अब वे स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि मैंने रावण का वध तुम्हारे लिये अर्थात् तुम्हें प्राप्त करने के लिये या तुम्हारे कष्ट दूर करने करने के लिये नहीं किया है। राम के विचारों की यह अचानक विपरीतता इसके प्रक्षिप्त होने का प्रमाण है।

(ग) अग्नि परीक्षा वाली घटना में श्रीराम यह जानते हुए भी, कि रावण ने सीता के साथ जो दुर्व्यवहार किया होगा, वह उसकी असहायावस्था में ही किया होगा, इच्छा पूर्वक नहीं, फिर भी असहायावस्था में किये हुए दुर्व्यवहार से ही वे सीता के चरित्र को गिरा हुआ मान लेते हैं। पर उनके पूर्व जीवन में यह बात नहीं थी, क्योंकि असहायावस्था में तो विराध राक्षस भी सीता को राम के सामने ही जबर्दस्ती गोद में उठा कर ले भागा था। तब राम ने उसके चरित्र पर संदेह नहीं किया। वह इसलिये क्योंकि राम का संपूर्ण जीवन वेद की शिक्षाओं के अनुरूप था। वेदों में पुरुष को कहीं भी स्त्रियों से अधिक अधिकार देने की बात नहीं कही गयी है। वेद इस बात की आज्ञा नहीं देता कि पुरुष तो अपनी इच्छा से एक से अधिक रानियाँ रख ले, जैसे दशरथ जी ने किया हुआ था। पर नारी की कमजोरी का अनुचित लाभ उठा कर यदि कोई दुष्ट उसके साथ दुर्व्यवहार कर ले तो उसके चरित्र को गिरा हुआ मान लिया जाये। राम ने वेद की शिक्षा के अनुरूप न तो दूसरा विवाह किया और न कभी सीता के चरित्र पर संदेह किया। यह सारा वर्णन मिलाया हुआ है।

(घ) राम ने अग्नि परीक्षा से पहले जहाँ अपने प्रेम को समय समय पर प्रकट किया है, वहाँ अग्नि परीक्षा के तुरंत बाद जब वे सीता को पुष्पक विमान में से उसकी अनुपस्थिति में विभिन्न स्थानों पर किये गये विभिन्न कार्यों के बारे में बताते हैं, तब भी रावण वध के स्थान को दिखाते हुए कहते हैं कि हे सीता यहाँ मैंने तुम्हारे लिये रावण का वध किया—

तव हेतोर्विशालाक्षि, निहतो रावणो मया।।

इसी तरह सेतु के लिये भी कहते हैं कि तुम्हारे लिये ही यह सेतु बनाया गया।

एष सेतुर्मया बद्धः, सागरे लवणार्णवे। तव हेतोर्विशालाक्षि, नलसेतुर्सुदुष्करः।।

जो राम कुछ देर बाद ही सीता से यह कहते हैं कि मैंने तुम्हारे लिये यह किया, मैंने तुम्हारे लिये यह किया, वही यह कैसे कह सकते हैं कि मैंने रावण का वध तुम्हारे लिये नहीं किया। इसीलिये यह कहानी प्रक्षिप्त है।

(ङ) क्या राम इतने शक्की थे कि उन्हें हनुमान जी द्वारा सीता जी का हाल जान कर भी उस पर विश्वास नहीं हुआ। विभीषण ने भी उन्हें सीता के चरित्र के विषय में जानकारी दी होगी। फिर भी यदि उन्हें शंका थी तो वे सीता से सीधे पूछने की जगह गुप्तचरों से छानबीन करवा सकते थे।यह बाद में मिलाई हुई कहानी ही राम को शक्की और अनेक अन्य दुर्बलताओं से युक्त बता रही है, जब कि राम ऐसे कदापि नहीं थे।

(च) स्त्री पुरुष का संबन्ध नितान्त गोपनीय होता है। दोनों में से कोई भी दूसरे की निन्दा दूसरे के सामने नहीं करता, किन्तु यहाँ प्रक्षेपकारों ने इस छोटी सी पर अत्यंत महत्वपूर्ण बात से भी राम को अपरिचित बना दिया है। भरी सभा में ही वे सीता की बेइज्जती इस प्रकार करते हैं जैसे उनके साथ न तो पहले उनका संबन्ध था और न रहेगा। यदि उन्हें कोई शक था तो एकान्त में सीता से उसका जिकर कर सकते थे, पर प्रक्षेपकार राम से इतना भी न करा सके।

(छ) इतना ही नहीं, प्रक्षेपकारों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि में श्रीराम को, जो अपने गुणों के कारण महापुरुषों में भी अग्रगण्य थे, निम्नतम कोटि के मनुष्यों के स्तर तक गिरा दिया। वे सीता जी को कुमार्ग पर चलने की सलाह देते हुए कहते हैं कि तुम चाहो तो विभीषण, सुग्रीव,भरत या शत्रुघ्न किसी के भी यहाँ रह सकती हो। देखिये कहाँ तो उन्हें केवल असहायावस्था में ही किये गये दुर्व्यवहार का शक था, कहाँ अब वे स्वयं उसे कुमार्ग पर जाने की सलाह दे रहे हैं। है ना बुद्धि का दिवालियापन। प्रक्षेपकारों ने पहले बेचारे राम का पतन कराया और फिर सीता के ही द्वारा उन्हें उनकी पतित अवस्था का सर्टिफिकेट दिलवा दिया। जैसे सीता जी राम की बातें सुन कर उनसे कहती हैं कि—

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम्। रूक्षं श्रावयसे वीर, प्राकृतः प्राकृतामिव।।

अर्थात् हे वीर आप ऐसी कठोर, अनुचित, कर्णकटु और रूखी बात मुझे क्यों सुना रहे हैं।जैसे कोई निम्न श्रेणी का मनुष्य निम्न कोटि की ही स्त्री से न कहने योग्य बातें भी कह डालता है, उसी तरह आप भी मुझ से कह रहे हैं।

अग्नि परीक्षा की इस कहानी का रामायण में प्रक्षेप क्यों किया गया, इसके तीन कारण हैं—

(क) अवतारवाद

जब राम को नर की अपेक्षा नारायण माना जाने लगा,तब उनको परमात्मा सिद्ध करने के लिये उनकी जीवनी में अलौकिक घटनाओं का प्रक्षेप किया जाने लगा। प्रस्तुत कहानी में जो अलौकिक अंश है, वह इसी कारण है।

(ख) शुद्धि और अशुद्धि के विषय में विकृत विचार

रामायण के समय में शुद्धि और अशुद्धि के विषय में वही विचार प्रचलित थे, जो मनु के समय में थे।जैसे कि मनु ने कहा है कि-

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति, मनः सत्येन शुद्ध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।।

अर्थात् शरीर के अंग जब मैले हो जायें अर्थात् मैल मिट्टी से सन जायें, तब उन्हें पानी से धो कर शुद्ध कर लेना चाहिये। मन जब बुरे विचारों से अशुद्ध हो जाये, तब उसे सत्य भाषण से शुद्ध करना चाहिये। जब आत्मा में गलत आचरण से गिरावट आ जाये, तब विद्या और तपस्या से उसे शुद्ध करना चाहिये और जब बुद्धि भ्रष्ट हो जाये, तब ज्ञान प्राप्ति के द्वारा बुद्धि को शुद्ध करना चाहिये,अर्थात् उसका स्तर ऊँचा करना चाहिये।

श्रीराम मनु के उपर्युक्त विचारों से पूरी तरह से सहमत थे,इसीलिये विराध राक्षस के वध के पश्चात्, उन तीनों ने स्नान करके अपने शरीर को शुद्ध कर लिया।क्योंकि शरीर स्पर्श तो सभी का उससे हुआ था। सीता के चरित्र को भी गिरा हुआ नहीं समझा गया।यद्यपि सीता ने उनके सामने ही विराध राक्षस से प्रार्थना की थी कि वह दोनों भाइयों को छोड़ दे और बदले में उसे ले जाये, क्योंकि वे जानते थे कि सीता का हृदय पवित्र था। उसने तो उनकी जान बचाने के लिये ही ऐसा कहा था।इसी प्रकार जब विभीषण श्रीराम के पास आया, तो उन्होंने तुरंत उसे स्वीकार कर लिया, क्योंकि उस समय उसका हृदय शुद्ध था। क्या विभीषण उसी घर से नहीं आया था, जहाँ सीता कैद थी। सीता तो केवल एक वर्ष वहाँ रही,पर विभीषण तो जन्म से ही वहाँ रह रहा था। राम ने क्या इस बात की छान बीन करायी थी कि उसने बचपन से लेकर अब तक राक्षसों के साथ रहते हुए राक्षसों जैसे कार्य तो नहीं किये? उन्होंने तो उस समय केवल उसके आचरण को शुद्ध देख कर उसे शुद्ध मान लिया था।

किन्तु जब देश में गिरावट आने लगी, तब लोगों के शुद्धि और अशुद्धि के विषय में विचार विकृत हो गये। उन्होंने मनु के सिद्धान्तों को छोड़ दिया और तीन गलत बातें अपना लीं। जैसे—

१. शरीर मैल मिट्टी से गन्दा होता है, पर साथ ही दूसरे को छूने से भी गन्दा होता है। इसीलिये हिन्दुओं में छूआछूत, ऊँचनीच और भेद भाव की भावना फैल कर परस्पर एकता का ह्रास हो गया।

२. हृदय और मन की पवित्रता पर ध्यान देना बंद कर दिया। केवल शरीर से किये गये गलत काम को देख कर उसे पतित घोषित करना आरम्भ कर दिया। अनेक बार मनुष्य मन से बुरे कामों से घृणा करता है, पर लाचारी में उसे करना पड़ता है, या असावधानी से हो जाता है। पृष्ठ भूमि पर ध्यान न देकर, उसे तुरंत दोषी करार दिया जाने लगा। प्रक्षेपकारों ने अपनी इसी भावना को राम के सीता के प्रति संदेह में उजागर किया है। इसी भावना का परिणाम यह हुआ कि जब मुसलमानों के हमले आरंभ हुए और जो जबर्दस्ती मुसलमान बनाये गये, उन्हें हिंदुओं ने हमदर्दी से न देख कर घृणा की दृष्टि से देखा। इससे वे भी धर्म बदलने पर उनके शत्रु बन गये।

३. कुछ काम तो ऐसे मान लिये गये कि जिनके किये जाने पर शुद्ध होने का कोई विधान ही स्वीकार नहीं किया गया। स्त्री की चरित्र हीनता भी उनमें से एक है। प्रक्षेपकारों ने जहाँ राम से सीता को चरित्र हीन कहलवाया, वहाँ उसे प्रायश्चित का कोई उपाय नहीं सुझवाया।उसे हमेशा के लिये पतित मान कर चाहे जहाँ जाने और चाहे जैसा जीवन बिताने की छूट दे डाली। यहाँ तक कि जब सीता ने अपने आपको अग्नि में डाल कर आत्म हत्या करनी चाही, तब भी उसे नहीं रोका।इसी भावना के कारण आगे चल कर भी सीता को बनवास दिलवाया और समस्त नारी जाति की निगाहों में राम की इज्जत गिरा दी। बेचारे राम के प्रशंसकों को आज राम का बचाव इस कलंक से करना मुश्किल हो जाता है। इन कार्यों के किये जाने पर प्रायश्चित हो ही नहीं सकता, इसी भावना के कारण पण्डितों ने मुसलमान और ईसाई बने हिंदुओं को पुनः हिंदु धर्म अपनाने से रोक दिया।आज देश में जो इतनी बड़ी संख्या में ईसाई और मुसलमान हैं, वे इसी कारण हैं। अन्यथा जिन जिन को भूत काल में लाचारी से धर्म परिवर्तन करना पड़ा, उनके वापिस आने का मार्ग खुला रहता तो आज भारत वर्ष का नकशा ही दूसरा होता।

(ग) अन्धविश्वास और अज्ञान

सीता जी जहाँ जीवन से निराश हो कर अग्नि में जलना चाहती हैं, वहाँ प्रक्षेपकारों ने अपने अंध विश्वास और अज्ञान को भी सीता के मुख से प्रकट करवा दिया। वे अग्नि से प्रार्थना करती हैं कि हे अग्नि देव यदि मैं सच्चरित्र हूँ तो मेरी रक्षा करना। क्या सीता जी यह नहीं जानती थी कि अग्नि एक जड़ पदार्थ है। उसका काम जलाना है और वह अवश्य जलायेगी। वह जानती थी, पर प्रक्षेपकार नहीं मानते थे। इसीलिये उन्होंने सीता के मुख से ऐसा कहलवाया और अग्निदेव को भी प्रकट कराया। जरा सोचिये कि यदि अग्नि अपराधी होने या न होने का फैसला कर सकती है, तो आज इतनी अदालतें और जेलें क्यों बनी हुई हैं? क्यों सालों तक मुकदमों का फैसला नहीं होता? अग्नि से फैसला क्यों नहीं करवा लिया जाता? अग्नि तो तत्काल फैसला कर देगी। अपराधी जल कर भस्म हो जायेगा और निरपराध जीवित ही बाहर निकल आयेगा।

अग्नि परीक्षा की इस कहानी को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है,बल्कि यह कहिये कि यहाँ प्रतीत होने वाली बात नहीं है, यह निश्चित है कि प्रक्षेपकारों ने अग्नि परीक्षा की कहानी को राम सीता मिलन के प्रसंग में फिट करने के लिये मूल घटना के कुछ अति आवश्यक भागों को निकाल भी दिया है। लेखक के लिये यह कितनी दुखदायक बात है कि उसकी अनुपस्थिति में उसकी कृति के कुछ अंशों को निकाल कर नष्ट कर दिया जाये और उनके स्थान पर गलत बातें रख, उसके रचना कर्म को विद्रूपित कर, उसके पाठकों को उसके नाम से गुमराह किया जाये। जोड़ी हुई बातों को तो बुद्धि पूर्वक अनुमान लगा कर, अलग किया जा सकता है, पर नष्ट की हुई सामग्री की पुनः प्राप्ति कैसे हो? और कैसे उस क्षति को पूरा किया जाये?

महर्षि वाल्मीकि काव्य कला के महान् मर्मज्ञ थे। राम के इतिहास को लिखते हुए उन्होंने स्थान-स्थान पर प्राकृतिक दृश्यों के, तथा मानवीय भावनाओं के सजीव चित्रण द्वारा अपनी इस काव्य-कला का परिचय दिया है, फिर महाकाव्य के अन्त में राम और सीता के मिलन के इस सुखद अवसर पर वे मानवीय भावनाओं का चित्रण करने में क्यों चूक गये? क्यों उन्होंने राम और सीता के अनुभावों का चित्रण नहीं किया? रावण वध के उपरान्त राम और सीता का एक वर्ष से भी अधिक अन्तराल के पश्चात् मिलन हुआ था। उस मिलन के सुअवसर को प्राप्त करने के लिये राम ने कितनी तपस्या की? कितना भागीरथ प्रयत्न किया? समय समय पर वे सीता के वियोग में कितना रोये? उधर सीता ने भी अपनी जान की परवाह न कर रावण के द्वारा उपस्थित प्रलोभनों का त्याग करके और दी ज़ाने वाली यातनाओं को सहन करते हुए, राम की ही लौ को लगाये रखा। रावण द्वारा जान से मार देने की समय सीमा निश्चित कर देने पर भी वे राम के लिये ही तप करती रहीं। इतनी लंबी तपस्या और कष्टों को सहन करने के पश्चात्, रावण की कैद से छुटकारा मिलने पर, जब उनका राम से मिलन हुआ, तब वह दृश्य क्या कम मार्मिक होगा? सीता राम को देखते ही उनके समीप पहुँचने के लिये क्या रोते हुए दौड़ कर उनके चरणों में न गिर पड़ी होंगी? क्या राम ने उस समय उन्हें उठा कर अपने हृदय से न लगा लिया होगा? उस समय पति और पत्नी के बहते हुए आँसुओं को देख कर सभी उपस्थित दर्शकों की आँखों से आँसु बहने लगे होंगे। राम ने सीता को प्यार भरा उलाहना दिया होगा

कि देखो तुम्हारी छोटी सी गलती से कितना महान अनर्थ हो गया? और कितना बड़ा अभियान करना पड़ा? तब सीता जी ने राम से गलती माफ कर देने की याचना की होगी और विशेष रूप से लक्ष्मण जी से दोनों हाथ जोड़ कर उनका कहना न मानने और उनके प्रति कटु वचन कहने के लिये क्षमा करने को कहा होगा।

राम और सीता के मिलन के उस सुन्दर दृश्य की जब मुझ जैसा नादान व्यक्ति भी कुछ कल्पना कर सकता है, तो वाल्मीकि जैसे महान कलाकार की निगाहों से यह कैसे अछूता रह गया? उन्होंने अवश्य ही अपनी सुंदर लेखनी से उस दृश्य का हृदयग्राही चित्रण किया होगा, पर प्रक्षेपकारों ने उस अमूल्य रचना को वहाँ से निकाल कर उस समय की सुखद स्थिति को दुःखद स्थिति में बदल दिया।

(२१) राम के समय लंका की अवस्थिति

राम के समय लंका कि स्थिति कहाँ थी, इस पर विचार करने से पहले हमें इस बात पर विचार करना चाहिये कि श्री राम ने अपना अंतिम आश्रम पंचवटी में कहाँ बनाया था? वनवास का जीवन आरंभ करने पर राम चित्रकूट में रहे।

दण्डकारण्य चित्रकूट से ही आरंभ होता था। तत्पश्चात् वे दण्डकारण्य की गहराइयों में आगे ही आगे प्रवेश करते गये। कभी कहीं ऋषि मुनियों के आश्रम के पास अपनी कुटिया बनायी, तो कभी कहीं। सबसे अन्त में, वनवास के दस वर्ष पूरे होजाने के बाद, उन्होंने अगस्त्य मुनि के निर्देशानुसार पंचवटी में अपना आश्रम बनाया। यह पंच वटी उस स्थान पर थी, जहाँ गोदावरी नदी का किनारा था, साथ ही प्रस्रवण नाम का पर्वत और थोड़ी दूर पर कम से कम दो छोटी नदियाँ, जिनमें एक का नाम मंदाकिनी था, बहतीं थीं। इन सब चीजों का जिकर सीता हरण के पश्चात् आश्रम के समीप उनकी खोज में लगे हुए राम और लक्ष्मण के प्रयत्नों के वर्णन में आता है। जैसे-

तौ वनानि गिरींश्चैव, सरितश्च सराँसि च। निखिलेन विचिन्वन्तौ, सीतां दशरथात्मजौ।।

अर्थात् उन दशरथ कुमारों ने जंगलों, पहाड़ों की चोटियों, नदियों, और तालाबों में पूरी तरह से सीता को ढूँढा। यहाँ नदी शब्द का बहु वचन में प्रयोग यह स्पष्ट कर रहा है कि गोदावरी के अतिरिक्त कम से कम दो नदियाँ वहाँ और थीं, क्योंकि संस्कृत में बहु वचन तभी आता है, जब कि कम से कम तीन की संख्या हो।इसी प्रकार—

मंदाकिनीं जनस्थानमिमं प्रस्रवणगिरिम्। सर्वाण्यनुचरिष्यामि, यदि सीता हि लभ्यते।।

अर्थात् मैं मंदाकिनी नदी, जनस्थान तथा प्रस्रवण पर्वत इन सभी स्थानों पर बार बार भ्रमण करूँगा। शायद वहाँ सीता का पता लग जाये। यहाँ एक नदी का नाम मंदाकिनी कहा गया है।

ऐसी जगह जहाँ उपर्युक्त बातें मिल सकतीं हैं, नासिक के आसपास ही हो सकती है, फिर नासिक का नाम नासिक भी इसीलिये पड़ा है क्योंकि यहाँ शूर्पणखा की नाक काटी गयी थी। नासिका संस्कृत में नाक को कहते हैं, अतः नासिक को पंचवटी की जगह उचित ही माना जाता है। पर कुछ लोग नासिक को पंचवटी न मान कर गोदावरी के प्रवाह की पूर्व दिशा में किसी अन्य स्थान पर पंचवटी की कल्पना करते हैं।

यदि हम एक मिनट के लिये यह भी मान लें कि पंचवटी आश्रम पूर्व दिशा में कहीं अन्यत्र होगा, तो भी उससे लंका की स्थिति पर कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि सीता को खोजने के लिये मृगों के द्वारा संकेत दिये जाने पर राम लक्ष्मण ने पंचवटी से दक्षिण की तरफ यात्रा आरंभ की और वह तब तक दक्षिण की तरफ चलते गये, जब तक रामेश्वरम् नहीं पहुँच गये। गोदावरी नदी पश्चिम से पूर्व की तरफ बहती है। गोदावरी के किसी भी तटवर्ती स्थान से यदि लगातार दक्षिण की तरफ चलें तो रामेश्वरम् या कन्याकुमारी पर ही पहुँचा जायेगा। पंचवटी की वास्तविक स्थिति गोदावरी के किनारे किस स्थान पर थी, यह अलग विषय है। मेरा विषय इस समय लंका की स्थिति को स्पष्ट करना है। लंका की स्थिति को स्पष्ट करने के लिये यह एक आवश्यक विन्दु है कि गोदावरी नदी के किनारे से समुद्र तट पर पहुँचने तक श्री राम दक्षिण की तरफ ही बढ़े हैं। जब आश्रम

में तथा उसके समीप वर्ती प्रदेश में सीता नहीं मिली, तब मृगों की चेष्टाओं को लक्ष्य करके, जो कि दक्षिण दिशा की तरफ संकेत कर रहे थे, श्रीराम दक्षिण की तरफ चल दिये। मार्ग में जटायु से भेंट हुई। उसने भी यही कहा कि रावण सीता को दक्षिण की तरफ ले गया है। अतः वे खोजते हुए दक्षिण की तरफ ही बढ़ते गये। पंपा सरोवर तक उन्होंने दक्षिण की ही यात्रा की। पुनः सुग्रीव से भेंट के पश्चात् वे किष्किंधा गये। किष्किंधा पंपा सरोवर से किस दिशा में थी, यह वाल्मीकि रामायण में नहीं बताया गया,पर किष्किंधा पंपा से अधिक दूर नहीं रही होगी। किष्किंधा से पुनः वानर सेना के साथ जब उन्होंने अभियान किया, तब भी वे लगातार दक्षिण की ही तरफ चल कर समुद्र के किनारे पहुँचे हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गोदावरी के किनारे से दक्षिण की तरफ चलने से, रामेश्वरम् या कन्याकुमारी पर ही समुद्र का किनारा आ सकता है। इनमें से रामेश्वरम् पर ही राम पहुँचे होंगे, कन्या कुमारी पर नहीं, क्योंकि कन्या कुमारी पर समुद्र समुद्र उथला नहीं है, रामेश्वरम् पर उथला है और बाँध बनाने योग्य है।

इस प्रकार श्रीराम के समय की लंका वही लंका थी, जो रामेश्वरम् से आगे समुद्र में थी और जिसे आज श्रीलंका या अँग्रेजी में सीलोन कहते हैं। इस विषय में एक प्रमाण यह भी है कि वाल्मीकि रामायण में रावण, उसके परिवार वालों तथा लंका वासी राक्षसों की सेना को काले रंग का बताया गया है। आज भी हम देखते हैं कि श्री लंका के निवासी अधिकाँश में काले और साँवले रंग के होते हैं, गोरे रंग के नहीं। इसलिये अधिकाँश भारतीय विद्वान और भारतीय जनता इसी को पुरानी रावण की लंका मानते हैं। पर कुछ विद्वान निम्न कारणों से इस बात से सहमत नहीं हैं—

(क) भारत और लंका के मध्य रामायण में सौ योजन (४५४.५४मील) विस्तृत समुद्र बताया गया है। पर आज केवल ५८ मील ही भारत और लंका के बीच समुद्र का विस्तार है।

(ख) रामायण में भारत और लंका दोनों के किनारों पर समुद्र को स्पर्श करती हुई पर्वत श्रृंखलाएं वर्णित हैं। भारत में महेन्द्र पर्वत और लंका में अरिष्ट तथा सुवेल पर्वत। पर आज न तो भारत में और न लंका में सागर के किनारे ले कर दूर दूर तक कोई पर्वत है।

(ग) जिसे आज श्रीलंका कहते हैं, उसका पुराना नाम सिंहल द्वीप भी था। महाभारत में लंका और सिंहल द्वीप दोनों का अलग अलग वर्णन है। इससे प्रतीत होता है कि सिंहल द्वीप यही श्रीलंका था और लंका कोई और।

इन कारणों से उन विद्वानों ने लंका को कहीं और सिद्ध करने के असफल प्रयास किये हैं, किन्तु उनकी सारी कल्पनाएं शंकाओं और जिज्ञासाओं से पूरित होने के कारण मान्य नहीं हो सकतीं। उनकी उपर्युक्त बातों का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है।-

(क) समुद्र का विस्तार

मध्यवर्ती समुद्र का विस्तार पहले बहुत अधिक था और अब बहुत कम क्यों है? इसके लिये जितने भी विद्वानों ने लंका की वर्तमान स्थिति पर संदेह कर के उसके विषय में अन्यत्र अनुसंधान करने का प्रयास किया है, वे सब राम के काल को ईसा से कुछ हजार वर्ष पहले ही मानते हैं। राम के वास्तविक काल के विषय में या तो उन्हें जानकारी नहीं है, या जानकारी होने पर भी वे पाश्चात्य विद्वानों के प्रभाव से उसे मानना नहीं चाहते। भारतीय काल गणना के अनुसार राम त्रेता युग में हुए थे। यदि उन्हें त्रेता के अन्त में भी माना जाये, तो आज उन्हें व्यतीत हुए द्वापर युग के ८६४००० और कलियुग के ५१०२ मिला कर कुल ८६९१०२ वर्ष हुए हैं। समय के इस इतने लम्बे अंतराल में इतने बड़े भूचाल अवश्य आए होंगे, जिन्होंने पृथ्वी पर खंड प्रलय का सा दृश्य उपस्थित कर दिया हो। इतने पुराने समय में समुद्रों की सीमाओं में भी आँशिक परिवर्तन हो सकता है। राम की सेना ने समुद्र के तट पर जिस जगह डेरा डाला उसे रामेश्वरम् कहते हैं। वह पहले भूमि से जुड़ा हुआ था, पर आज उसने द्वीप की आकृति ग्रहण कर ली है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण जी के समय को तो अभी ५१०२ वर्ष ही हुए हैं, उनकी द्वारिका को भी समुद्र ने अपने अंदर छिपा लिया है। सरस्वती पहले भारत की प्रसिद्ध नदी थी, पर अब समाप्त हो गयी। राजस्थान और सिन्ध पहले हरे भरे प्रदेश थे, पर अब रेगिस्तान हैं।

(ख) समुद्र के दोनों तटों पर पहाड़ों की विद्यमानता

रामायण काल में समुद्र के दोनों तटों पर पर्वत थे, पर अब दूर दूर तक नहीं हैं। इस परिवर्तन का कारण ऊपर लिखित भूकम्प वाला भी हो सकता है, क्योंकि बड़े बड़े भूकम्प, जो समुद्र की तटीय स्थिति में परिवर्तन कर सकते हैं, छोटे-मोटे पहाड़ों की स्थिति भी बदल सकते हैं। यहाँ हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि भारतीय समुद्र के किनारे पर विद्यमान महेन्द्र पर्वत तथा लंका के तट पर विद्यमान अरिष्ट और सुवेल पर्वत हिमालय और विन्ध्याचल जैसे विशाल पर्वत नहीं थे, बल्कि पश्चिमी घाट की, जिसे उस समय विन्ध्याचल पर्वत ही कहते थे, छोटी छोटी पहाड़ियाँ थीं, जिनकी चोटियों पर वानरों द्वारा आसानी से और थोड़े ही समय में चढ़ने और उतरने का रामायण में वर्णन है।

२. ८६९१०२ वर्ष के अन्तराल में उभयवर्ती पर्वतों के पड़ौस में न जाने कितनी बार समृद्धिशाली नगर बसे और उजड़े होंगे। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जब नगर का विकास होता है, तो नगर के पक्के मकानों, पक्की सड़कों और किले की दीवारों के निर्माण के लिये भारी मात्रा में पत्थरों की आवश्यकता होती है। उन पत्थरों की आपूर्ति समीपवर्ती पर्वतों से ही की जाती है। इस प्रकार जैसे जैसे नगर का विस्तार होता है, पड़ौस के पहाड़ों की कटाई होती है और उनका ह्रास होता जाता है। अतः उन पर्वतों के समीप इतने पुराने भूत काल में बसने और उजड़ने वाले नगरों के कारण भी उन पहाड़ों का ह्रास हुआ होगा। उदाहरण के लिये हम देख सकते हैं कि दिल्ली का करौल बाग,आनन्द पर्वत, बुद्ध गार्डन, जीतगढ़, पहाड़ी धीरज और तुगलकाबाद के इलाकों पर पहले पहाड़ थे। पर दिल्ली के बढ़ते विस्तार ने उन पहाड़ों को समाप्त कर दिया। उनके पत्थर काट काट कर मकानों को बनाने के काम में लग गये। केवल सड़कों की चढ़ाई और उतराई ही उन भूतकालीन पहाड़ों की याद दिलाती है। यही अवस्था महेन्द्र, अरिष्ट और सुवेल पर्वतों की हुई होगी।

३. पर्वतों की समाप्ति के बताये उपर्युक्त दोनों कारणों के अतिरिक्त राम के द्वारा लंका पर किये गये आक्रमण ने भी इस विषय में महत्व पूर्ण रोल अदा किया हुआ होगा। पहले राम ने समुद्र पर बाँध बनाया। वह सौ योजन लंबा था, पर उसकी चौड़ाई और पानी के नीचे से लेकर ऊपर तक ऊँचाई कितनी होगी? कल्पना करें, कि यदि उसकी चौड़ाइ कम से कम ३० फुट और पानी के नीचे से लेकर ऊपर तक की ऊँचाई १० फुट रही हो, तो हिसाब लगाइये कि कितने घन फुट पत्थर उसमें लगा होगा? एक योजन में ४.५४ मील होते हैं। एक मील में ५२८० फुट के हिसाब से एक योजन में ५२८० गुणा ४.५४ कुल २३९७१.२० फुट हुए और सौ योजन में २३९७१२० फुट। अब सारे बाँध के आकार में कितने घन फुट बने? इसका उत्तर होगा कि २३९७१२० गुणा ३० गुणा १० कुल ७१९१३६००० घन फुट अर्थात् कम कम इतने घन फुट पत्थर तो अवश्य ही उस बाँध में लगा होगा। वह पत्थर छोटी रोड़ियों के रूप में नहीं डाला गया था, बल्कि बड़ी बड़ी शिलाओं को उखाड़ कर डाला था।इतनी विशाल पत्थरों की राशि की आपूर्ति महेन्द्र पर्वत से ही तो हुई होगी। ऐसे में बेचारे महेन्द्र पर्वत का समुद्र से दूर दूर तक नामों निशान मिट गया होगा।

इसी प्रकार जब युद्ध आरंभ हुआ, तो पुराणों के अनुसार वह ७२ दिन चला। वाल्मीकि रामायण के अनुसार ५७ दिन बनते हैं। वानरों की सेना कम से कम दो अक्षौहिणी तो होगी ही, क्योंकि एक अक्षौहिणी सेना तो उस समय छोटी स्थिति के राजा लोग भी रखते थे,सुग्रीव तो सारी वानर जाति का राजा था,अतः सेना की संख्या दो अक्षौहिणी तो माननी ही चाहिये। दो अक्षौहिणी सेना की संख्या ४३७४०० बनती है। वानर सेना का मुख्य हथियार पत्थर ही थे। इतनी बड़ी सेना ने इतने दिनों तक जो पत्थरों की वर्षा की, वह पत्थरों का विशाल भंडार कहाँ से आया होगा? निश्चय ही वह सुवेल पर्वत से आया होगा और उसके फल स्वरूप सुवेल पर्वत कितना शेष रहा होगा?

(ग) लंका और सिंहल द्वीप

अब जरा लंका और सिंहल द्वीप के नामों पर विचार करें। मेरे विचार से लंका और सिंहल द्वीप एक ही स्थान के दो नाम हैं।रामायण काल में लंका नाम था। महाभारत और उसके पश्चात् बौद्ध मत के प्रचार तक उसका नाम सिंहल द्वीप हो गया और आज कल उसे श्री लंका कहते हैं। एक ही समय में लंका और सिंहल द्वीप दोनों नाम कभी नहीं रहे। महाभारत में जो दोनों

का अलग अलग वर्णन आता है, वह वहाँ राजसूय यज्ञ में सिंहल द्वीप के राजा आये ऐसा वर्णन है और लंका के राजा विभीषण ने यज्ञ के लिये उपहार भिजवाये ऐसा कहा गया है। वहाँ लंका वाला वर्णन प्रक्षिप्त मानना चाहिये, क्योंकि विभीषण के महाभारत के काल तक जीवित रहने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसके अतिरिक्त सौ योजन विस्तृत सागर और तटवर्ती पर्वतों के विषय में मेरा एक निजी अनुमान और है। वह यह है कि भारत के दक्षिणी कोने पर पर्वतों का अस्तित्व आज मदुरै के आस पास तक मिलता है। नकशे में देखने पर उसके दक्षिण में रामेश्वरम् तक कोई पहाड़ नहीं है। भारत में मदुराई से रामेश्वरम् १६० किलो मीटर अर्थात् १०१ मील दूर है। रामेश्वरम् से आगे ५८ मील समुद्र के हैं। इस प्रकार मदुरै की पहाड़ी से लंका का तट लगभग १५९ मील दूर है।

लंका के विषय में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित विश्व कोश में वर्णित श्री लंका के वर्णन के अनुसार सारी श्री लंका के बीच में पहाड़ी प्रदेश है और चारों तरफ समतल मैदानी इलाका। समुद्री तट से पहाड़ी प्रदेश की दूरी ४५ से ७० मील की है। अब यदि समुद्री तट मन्नार की खाड़ी से वहाँ के मध्यवर्ती पहाड़ी प्रदेश की दूरी ७० मील मान ली जाये तो मदुरै की पहाड़ियों से लंका की पहाड़ियों की दूरी २२९ मील बैठती है। एक योजन में ४.५४ के हिसाब से १०० योजन में ४५४ मील बनते हैं।अब यदि यह मान लिया जाये कि राम के समय में विद्यमान १०० योजन विस्तृत सागर का उत्तरी किनारा मदुरै से भी काफी उत्तर की तरफ, जहाँ खूब ऊँचे पहाड़ आरंभ हो जाते हैं, वहाँ तक था और श्री लंका में जहाँ १०० योजन की दूरी पूरी होजाये और खूब ऊँचे पहाड़ आरंभ हो जाते हैं, वहाँ तक था, पर काल के लंबे अंतराल ने दोनों देशों के मध्यवर्ती समुद्र को संकुचित कर दिया है, तो इससे समुद्र के १०० योजन तक के विस्तार और उभय तट वर्ती पर्वत दोनों समस्यायें समाहित हो जातीं हैं। पर यह मेरी अपनी कल्पना है, सत्य भी हो सकती है और असत्य भी। इस विषय में अनुसंधान की आवश्यकता है।

(२१) उत्तरकाण्ड

राम कथा की उत्तर कांड में वर्णित घटनाओं को अधिकाँश विद्वानों ने असत्य और प्रक्षिप्त माना है। प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक भी निम्न लिखित कारणों से उन्हें वैसा ही मानता है। जैसे कि-

(क) घटनाओं के सृष्टि क्रम के विरुद्ध होने के कारण, जैसे सीता जी का भूमि में समा जाना आदि।

(ख) घटनाओं के भूत काल में वर्णित होने के कारण यह स्पष्ट है कि ये घटनाएं वाल्मीकि द्वारा वर्णित नहीं हैं। उनके पश्चात् किसी और ने जोड़ीं हैं। क्योंकि राम कथा को आरंभ करने से पूर्व जब वे नारद जी से वर्तमान काल के किसी सर्व श्रेष्ठ महापुरुष के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, तब नारद जी उन्हें यह कह कर कि आज कल अयोध्या के राजा राम सर्व श्रेष्ठ महापुरुष हैं, उन्हें राम के विषय में जानकारी देते हैं। पर उत्तर कांड में राम की मृत्यु तक का वर्णन भूत काल में किया गया है। अतः ये घटनाएं प्रक्षिप्त हैं।

(ग) नारद जी ने वाल्मीकि जी को श्रीराम के विषय में जानकारी देते हुए उनके सम्मुख राम कथा का क्रम से वर्णन किया है। उसमें उन्होंने राम के राज्यारोहण तक की घटनाओं का वर्णन किया है,उत्तर कांड की घटनाओं का नहीं। इसलिये भी ये घटनाएं अप्रामाणिक हैं।

(घ) रामायण की भूमिका में अनुक्रमणिका के रूप में यह बताया गया है कि वाल्मीकि जी ने राम कथा की प्रारंभ से लेकर अंत तक किन किन घटनाओं का वर्णन किया है। यद्यपि मेरे अनुसार वह अनुक्रमणिका भी वाल्मीकि द्वारा निर्मित नहीं है, क्योंकि उसमें उन सभी ऊट पटाँग घटनाओं का उल्लेख है, जो कि प्रक्षेपकारों द्वारा राम कथा में डाल दी गयीं हैं, पर उस अनुक्रमणिका में भी जहाँ सारी घटनाओं का जिकर बिना कांडों का (बाल कांड, अयोध्या कांड आदि) नाम लिये ऐसे ही किया गया है, वहाँ उत्तर कांड का नाम लेकर अंत में डेढ़ श्लोक में वर्णन किया गया है। जैसे——

स्वराष्ट्ररंजनं चैव, वैदेह्याश्च विसर्जनम्। अनागतं च यत्किंचित्, रामस्य वसुधातले।
तच्चकारोत्तरे काव्ये, वाल्मीकिर्भगवानृषिः।।

यहाँ उत्तर कांड का नाम लेने से जो शैली विरोध आया है, वह यह साबित करता है कि ये श्लोक बाद में उत्तर कांड को रामायण में मिलाने के पश्चात् अनुक्रमणिका में जोड़े गये। अर्थात् प्रक्षेपकारों ने पहले राम कथा के बीच बीच में प्रक्षेप किये और पुनः उसके बहुत समय पश्चात् अलग से एक कांड बना कर उत्तर कांड के नाम से रामायण में जोड़ दिया। इतना ही नहीं, उपर्युक्त श्लोक में यह भी कहा गया है कि राम के जीवन में भविष्य में जो भी घटनाएं घटित होंगी, उन्हें भी वाल्मीकि जी ने अपनी ज्ञान दृष्टि से जान कर वर्णित कर दिया,अर्थात् आगे भी रामायण में प्रक्षेप करने का रास्ता खोल दिया।

(ङ) राम के समय वैदिक सभ्यता थी। वैदिक सभ्यता में फल श्रुति पर विश्वास नहीं किया जाता था। इसलिये वाल्मीकि ने केवल राम के राज्यारोहण तक का युद्ध कांड में वर्णन किया। पुनः महाभारत काल के पश्चात् पुराणों का प्रचलन होने पर पौराणिक सभ्यता आई और पुस्तकों के अन्त में फल श्रुति लिखने का चलन हो गया। तब फल श्रुति बना कर युद्ध कांड के अन्त में जोड़ दी गयी। फल श्रुति का युद्ध कांड के अंत में जोड़ा जाना यह सिद्ध करता है कि वास्तविक राम कथा युद्ध कांड तक ही थी। फल श्रुति रामायण में बहुत समय बाद जोड़ी गयी। इसका प्रमाण है कि फल श्रुति में वाल्मीकि के लिये अनेक बार पुरा और किल इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। ये दोनों शब्द बहुत पुराने भूत काल अर्थात् प्राचीन काल के पर्यायवाची हैं।

(च) युद्ध कांड के अंत में फल श्रुति के पश्चात् उत्तर कांड का आरंभ होना यह सिद्ध करता है कि उत्तर कांड बाद में बना कर जोड़ा गया, क्योंकि फल श्रुति सदा ग्रंथ के अंत में होती है।

(छ) फलश्रुति और उत्तर कांड दूसरों के द्वारा बनाये हुए हैं, इसलिये दोनों जगह वाल्मीकि के लिये अन्य पुरुष का प्रयोग किया हुआ है। यदि ये वाल्मीकि के द्वारा बनाये होते तो वे अपने लिये उत्तम पुरुष अर्थात् मैं का प्रयोग करते।

(ज) उत्तर कांड के अंत में रचयिता ने लिखा है कि-

एतावदेतदाख्यानं, सोत्तरं ब्रह्मपूजितम्। रामायणमितिख्यातं, मुख्यं वाल्मीकिना कृतम्।।

अर्थात् उत्तर कांड सहित यहाँ तक यह आख्यान ब्रह्म पूजित है। इतना प्रसिद्ध मुख्य रामायण है, जिसे महर्षि वाल्मीकि ने बनाया है— यहाँ उत्तर कांड का सहित शब्द के साथ अलग से प्रयोग इस के प्रक्षिप्तपन को दिखाता है।

(झ) महाभारत के वन पर्व में सारी राम कथा का वर्णन है। उसमें भी उत्तर कांड की घटनाओं का वर्णन नहीं है। राज्यारोहण तक ही वर्णन है। अतः उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त है।

(ञ) महाभारत के बहुत समय पश्चात् राजा भोज के समय में चम्पू रामायण ग्रंथ लिखा गया। उसमें रचनाकार ने स्पष्ट लिखा है, कि यह ग्रंथ वाल्मीकि रामायण का सार है। उसमें भी युद्धकाण्ड तक वर्णन है, उत्तरकाण्ड तक नहीं।

(ट) उत्तरकाण्ड में मुख्य घटना सीता के परित्याग की ही है। वह उन्हीं आदर्शों पर आधारित है, जिनको आधार मान कर सीता जी की पहले अग्नि परीक्षा कराई गयी। उन आदर्शों का क्योंकि उसी प्रश्न के उत्तर में खंडन किया जा चुका है, इसलिये भी उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है।

(ठ) भारतीय काव्य शास्त्र के नियमों के अनुसार और भारतीय परम्परा के अनुसार भी काव्य रचना को सुखान्त होना चाहिये। क्योंकि भारतीय विद्वानों ने कला-कला के लिये है, के सिद्धान्त की अपेक्षा कला जीवन के लिये है, इस सिद्धान्त को मान्यता दी है। इस मान्यता के अनुसार काव्य रचना का अन्त सुख में होना चाहिये, ताकि पाठकों के हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़े। इसीलिये सारे भारतीय साहित्य में सुखान्त रचनाओं का ही बोल बाला है। दुखान्त रचनाएं तो पश्चिमी साहित्य में मिलती हैं। उत्तरकाण्ड को रामायण का अंग मानने पर रामायण दुखान्त रचना बन जाती है, पर वाल्मीकि जैसा भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूर्धन्य स्तम्भ अपनी रचना में भारतीय सिद्धान्तों की अवहेलना कैसे कर सकता था? इस दृष्टि से भी उत्तर काण्ड को प्रक्षिप्त मानना चाहिये।

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि उत्तरकाण्ड की सारी घटनाएं असत्य और प्रक्षिप्त हैं। उनको बहुत बाद में रामायण में जोड़ा गया है।

(२३) राम के जीवन की प्रमुख घटनाओं का समय

आज कल विजय दशमी के पर्व को राम की रावण पर विजय का दिन मान कर तथा दीपावली को राम के राज्याभिषेक का दिन समझ कर मनाया जाता है। किन्तु वाल्मीकि रामायण इन बातों का समर्थन नहीं करती। इन बातों के स्पष्टीकरण के लिये राम के जीवन में घटित हुई सभी प्रमुख घटनाओं की तिथियों पर विचार करना आवश्यक है। यद्यपि पुराणों में इस विषय पर अधिक विस्तार से वर्णन किया हुआ है, किन्तु पुराण तो महाभारत से भी बाद की रचना हैं, अत: संक्षेप में होते हुए भी श्रीराम के ही समय में निर्मित वाल्मीकि रामायण तथा उसके पश्चात् महाभारत के वर्णनों को अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय समझना चाहिये।

१. राम की जन्म तिथि— वाल्मीकि रामायण में श्रीराम की जन्म तिथि के विषय में निम्न लिखित श्लोक है—

ततश्च द्वादशे मासे,चैत्रे नावमिके तिथौ। नक्षत्रे दितिदैवत्ये....................
कौशल्याजनयत् रामं, दिव्य लक्षणसंयुतम्।।

अर्थात् पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त होने के बारहवें मास चैत्र मास में नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में कौशल्या ने दिव्य लक्षणों से युक्त श्रीराम को जन्म दिया। एक मास में नवमी तिथि दो बार आती है, पहली कृष्ण पक्ष में और दूसरी शुक्ल पक्ष में। इन दोनों नवमियों में से कौन सी नवमी को श्रीराम का जन्म हुआ, यह श्लोक में नहीं है,किन्तु पुनर्वसु नक्षश्र चैत्र मास में क्योंकि शुक्ल पक्ष में ही आता है अत: शुक्ल पक्ष की नवमी ही राम के जन्म का दिन है।

२. राम का विवाह— राम का विवाह वाल्मीकि रामायण के अनुसार उनकी २५ वर्ष की और सीता की १८ वर्ष की आयु में हुआ था। रावण के पंचवटी आश्रम में साधु वेश में पहुँचने पर सीता उसे अपने पिछले जीवन के विषय में बताती हुई कहती है कि-

मम भर्ता महातेजा, वयसा पंचविंशकः। अष्टादश हि वर्षाणि, मम जन्मनि गण्यते।।

अर्थात् विवाह के समय मेरे तेजस्वी पति २५ वर्ष की आयु के थे और मैं १८ वर्ष की थी।

३. राम वनवास— श्री राम का वनवास तब हुआ,जब उनका जन्म दिन था और ३८ वाँ वर्ष समाप्त हो गया था। इसके लिये पहला प्रमाण देखिये-

उषित्वा द्वादशसमाः,इक्ष्वाकूणां निवेशने।,,,,,,,तत्र त्रयोदशे वर्षे, राजामंत्रयत् प्रभुः।। अरण्य ४७/४,५

अर्थात् सीता रावण को अपना परिचय देते हुए कहती है कि विवाहोपरान्त इक्ष्वाकुओं के घर में बारह वर्ष रहने के बाद तेरहवें वर्ष में राजा ने मंत्रणा की। तेरहवें वर्ष में अर्थात् राम की आयु के ३८ वें वर्ष में।

दूसरा प्रमाण—

चैत्रः श्रीमानयं मासः, पुण्यः पुष्पितकाननः। यौवराज्याय रामस्य, सर्वमेवोपकल्पताम्।। अ० ३/४

अर्थात् दशरथ जी अपने पुरोहितों से कहने लगे कि यह पवित्र चैत्र का महीना है। इस समय बागों में फूल खिले हुए हैं। आप श्रीराम के यौवराज्याभिषेक के लिये तैयारी कीजिये। मतलब यह है कि दशरथ जी चैत्र मास में राम के अभिषेक की तैयारी कर रहे थे और चैत्र मास में ही राम का जन्म दिन आने वाला था। तभी दूसरे दिन राम का वनवास प्रारंभ हो गया।

तीसरा प्रमाण-

उदिते विमले सूर्ये, पुष्ये चाभ्यागतेहनि। लग्ने कर्कटके प्राप्ते, जन्म रामस्य च स्थिते।। अ०१५/३

अर्थात् दूसरे दिन (वनवास आरंभ होने वाले दिन) के विषय में वाल्मीकि जी कहते हैं कि जब विमल सूर्य उदय हो गया, पुष्य नक्षत्र दिन में आ गया, कर्क लग्न प्राप्त हो गया और श्रीराम का जन्म समय आ गया । इस श्लोक से यह सिद्ध है कि राम का वनवास चैत्र मास में शुक्ला नवमी अर्थात श्रीराम के जन्म दिन से प्रारंभ हुआ था।

४. शूर्पणखा का आना— श्रीराम का प्रत्येक वर्ष चैत्र मास में पूरा होता था। शूर्पणखा के श्रीराम के समीप आने की घटना उनके वनवास के तेरहवें वर्ष की समाप्ति से पहले पौष की पूर्णिमा अर्थात् हेमन्त ऋतु की समाप्ति के कुछ दिन पश्चात् हुई होगी, क्योंकि शूर्पणखा के आने से पूर्व लक्ष्मण जी ने श्रीराम से हेमन्त ऋतु का वर्णन करते हुए पूर्णिमा का जिकर किया है। जैसे देखिये-

ज्योत्स्ना तुषारमलिना, पौर्णमास्यां न राजते।

अर्थात् इस समय पौर्णमासी में भी तुषार से मैली चाँदनी प्रकाशित नहीं हो रही है।

५. सीता हरण— सीता हरण की घटना शूर्पणखा के आने से एक मास पश्चात् अर्थात् माघ की पूर्णिमा के बाद फाल्गुन के कृष्णपक्ष में हुई होगी, क्योंकि खर और दूषण का तैयारी कर के आक्रमण, रामसे युद्ध, शूर्पणखा का रावण के पास पहुँचना और फिर रावण का योजना बना कर मारीच के पास जाना आदि में एक मास का समय व्यतीत हो ही गया होगा।

६. पम्पा सरोवर पर पहुँचना— पंपा सरोवर पर श्रीराम चैत्र मास में पहुँचे, जहाँ खिले हुए फूलों की शोभा और वसन्त के वातावरण ने उन्हें बहुत व्यथित किया। जैसे-

संतापयतिसौमित्र,क्रूरश्चैत्रवनानिलः। १/३६

अर्थात् हे लक्ष्मण, यह वन में बहने वाली चैत्र मास की निर्दय वायु मुझे बहुत दुख दे रही है।

७. अंगद आदि का सीता की खोज के लिये प्रस्थान— बाली वध ग्रीष्म ऋतु में किया गया, क्योंकि सभी जानते हैं कि सुग्रीव के राज्याभिषेक के पश्चात् वर्षा ऋतु आरंभ होने का समय आ गया था और श्रीराम ने वर्षा ऋतु ऋष्यमूक पर्वत पर व्यतीत की थी। वर्षा बी तने पर जब कार्तिक मास आरंभ होने लगा, तब राम ने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा और सुग्रीव ने तब एक मास का समय देकर अंगद आदि को सीता की खोज के लिये भेजा।

अंगद के प्रस्थान का समय श्रीराम के अनुसार(जो उत्तर भारतीय थे) कार्तिक की अमावस्या था,पर अंगद के अनुसार (जो दक्षिण भारतीय था) आश्विन की अमावस्या अर्थात् आश्विन का अंतिम दिन था। उत्तर भारत में हिंदी मास पूर्णिमा को समाप्त होता है, पर दक्षिण भारत में अमावस्या को समाप्त होता है।इसीलिये बहुत से कैलेंडरों में अमावस्या के आगे ३० का अंक लिखा रहता है। उत्तर भारत में मास पन्द्रह दिन पहले समाप्त हो जाता है, पर दक्षिण भारत में पंद्रह दिन पश्चात् होता है। अंगद अपने प्रस्थान के समय के बारे में कहता है कि—

वयमश्वियुजे मासि, काल संख्या व्यवस्थिताः। प्रस्थिताः सोपि चातीतः, किमतः कार्यमुत्तरम्।।

अर्थात् हम आश्विन के मास में एक मास के समय से व्यवस्थित होकर चले थे। वह अवधि भी बीत गयी, इसलिये अब क्या करना चाहिये।

अंगद ने उपर्युक्त बात अपने उपवास पर बैठने से पूर्व कही थी। उस समय प्रस्थान के समय से एक मास से अधिक हो गया था, अतः इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि अंगद आदि के सीता की खोज के लिये प्रस्थान का दिन अंगद के हिसाब से आश्विन की अमावस्या अर्थात् आश्विन का अंतिम दिन और श्रीराम के उत्तर भारतीय हिसाब से कार्तिक की अमावस्या थी।

८. हनुमान् जी का लंका में पहुँचना— हनुमान् जी मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के आसपास सीतान्वेषण के लिये लंका में पहुंचे, क्योंकि सीता की खोज करते हुए उन्होंने चंद्र सौन्दर्य का जो वर्णन किया है, वह पूर्णिमा जैसा ही है। इसके अतिरिक्त उस समय सीता अपहरण को एक वर्ष पूरा होने में दो मास रह गये थे। रावण ने इसीलिये सीता को जीवित रखने के लिये दो मास की अवधि हनुमान् जी के सामने ही दी थी। सीता जी का अपहरण जैसा कि पहले सिद्ध किया जा चुका है, माघ की पूर्णिमा के कुछ दिन बाद हुआ था।

९. श्रीराम का सेना सहित लंका में पहुँचना— श्रीराम हनुमान् जी के लंका गमन के लगभग एक मास पश्चात् पौष की पूर्णिमा को सेना सहित लंका में पहुँचे होंगे। क्योंकि १५ दिन तो हनुमान् अंगद आदि द्वारा श्रीराम के पास जाकर उन्हें सीता की खबर देने तथा राम की सेना के समुद्र तट पर पहुँचने में व्यतीत हो गये होंगे और १५ दिन ही उन्हें समुद्र में अन्वेषण कर बाँध बनवाने तथा सेना को पार ले जाने में लगे होंगे। समुद्र पार करने के पश्चात् राम ने एक रात सुवेल पर्वत पर बितायी। उस दिन पूर्णमासी थी और हनुमान् जी भी एक मास पूर्व पूर्णिमा को ही लंका में पहुँचे थे। पूर्णिमा का वर्णन देखिये—

ततोस्तमत्सूर्यः, सन्ध्यया प्रतिरंजितः। पूर्णचंद्रप्रदीप्ता च, क्षपा समवर्तत।। युद्ध ३८/९

अर्थात जब श्रीराम सुवेल पर्वत पर थे, तब संध्या की लाली में रँगा हुआ सूर्य छिप गया और पूर्ण चंद्रमा से प्रकाशित रात वहाँ सब ओर छा गयी।

१०. लंका युद्ध का आरंभ— सुवेल पर्वत से उतर कर राम ने पहले अंगद को रावण के पास अपने दूत के रूप में भेजा। उसके लौट आने पर, अगले दिन लंका पर आक्रमण आरंभ किया गया, इसलिये पौष की पूर्णिमा के दो या तीन दिन पश्चात् लंका युद्ध शुरु हुआ होगा।

११. इन्द्रजित का वध— वाल्मीकि रामायण में हन्द्रजित के वध के समय की ओर संकेत करने वाला यह श्लोक है।-

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव, कृष्णपक्ष चतुर्दशी। कृत्वा निर्याह्यमावस्यां, विजयायबलैर्वृतः।। युद्ध ९२/६६

अर्थात रावण का सुपार्श्व नामक मंत्री रावण को सीता के वध के प्रयत्न से निवृत्त करते हुए समझा रहा है कि महाराज आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है। आप आज युद्ध की तैयारी कर के कल अमावस्या के दिन सेना के साथ विजय के लिये प्रस्थान करो।

उपर्युक्त प्रसंग उस समय का है, जब इन्द्रजित के वध से शोक संतप्त रावण क्रोध में आ कर सीता को मारने के लिये तैयार हुआ।अतः उपर्युक्त प्रसंग से एक दिन पहले कृष्णा त्रयोदशी को इन्द्रजित का वध हुआ होगा। उससे अगले दिन चतुर्दशी का यह प्रसंग है और उससे अगले दिन अमावस्या को रावण राम से युद्ध करने के लिये निकला। अब प्रश्न यह है कि कौन सी कृष्णा त्रयोदशी? लंका पर राम की सेना का प्रथम आक्रमण पौष की पूर्णिमा के पश्चात् हुआ। उसके दस बारह दिन के बाद माघ की कृष्णा त्रयोदशी आयी। इतनी जल्दी इन्द्रजित का वध नहीं होना चाहिये, क्योंकि इन्द्रजित के वध से पूर्व कुम्भकर्ण आदि रावण के सभी प्रमुख योद्धा मारे जा चुके थे।इन्द्रजित के वध के पश्चात् तो केवल एक प्रमुख योद्धा विरूपाक्ष मारा गया। अतः वह कृष्णा त्रयोदशी माघ की नहीं, अपितु उससे आगे की फाल्गुन की कृष्णा त्रयोदशी माननी चाहिये।अर्थात् इन्द्रजित का वध फाल्गुन की कृष्णा त्रयोदशी को हुआ।

१२. रावण का वध— उपर्युक्त विवेचन के अनुसार राम और रावण का युद्ध फाल्गुन की अमावस्या से प्रारंभ हुआ और मैं समझता हूँ कि वह चैत्र कृष्णा त्रयोदशी तक चला होगा।चैत्र कृष्णा त्रयोदशी को अवश्य ही रावण का वध हो गया होगा, क्योंकि रावण वध और उससे आगे की सारी घटनाओं का समय उस श्लोक पर आधारित है, जो श्रीराम के भरद्वाज आश्रम में पहुँचने की तिथि बता रहा है। वह श्लोक यह है।—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे, पंचम्यां लक्ष्मणात्मजः।भरद्वाजाश्रमं प्राप्य,ववन्दे नियतो मुनिम्।। यु०१२४—१

अर्थात वनवास के चौदह वर्ष जब पूरे होने वाले थे तब मास की पंचमी को लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँच कर मुनि को प्रणाम किया।

इस श्लोक के अनुसार श्रीराम अयोध्या लौटते हुए चैत्र की शुक्ला पंचमी को भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे। इसी तिथि के आधार पर आगे की घटनाओं का तिथि क्रम इस प्रकार बनेगा—

१३. रानियों और लंका वासियों का शोक और विलाप—चैत्र कृष्णा चतुर्दशी।

१४. रावण की अन्त्येष्टि— अमावस्या।

१५. विभीषण का राज तिलक— चैत्र शुक्ला प्रतिपदा।

१६. राम सीता मिलन तथा विभीषण द्वारा वानर सैनिकों का सम्मान— चैत्र शुक्ला द्वितीया।

१७. श्रीराम का लंका से प्रस्थान— चैत्र शुक्ला तृतीया।

१८. श्रीराम का किष्किंधा में पहुँचना—चैत्र शुक्ला चतुर्थी।

१९. श्रीराम का भरद्वाज आश्रम में पहुँचना— चैत्र शुक्ला पंचमी। इसके लिये प्रमाण का श्लोक ऊपर दे दिया है।

२०. श्रीराम का गुह से मिलना—हनुमान् जी के द्वारा गुह को राम के आने की सूचना और संदेश के अनुसार श्रीराम अगले दिन अर्थात चैत्र शुक्ला षष्ठी को गुह से अवश्य मिले होंगे और एक रात उसके पास ठहर कर उसका यथेष्ट आतिथ्य स्वीकार किया होगा क्योंकि वन को जाते हुए उन्होंने उसके द्वारा भेंट की हुई कोई भी चीज ग्रहण नहीं की थी।

२१. श्रीराम का नन्दी ग्राम में भरत जी से मिलना— चैत्र शुक्ला सप्तमी।

२२. श्रीराम का अयोध्या में प्रवेश— चैत्र शुक्ला अष्टमी।वनवास की अवधि इसी दिन पूरी हुई।

२३. श्रीराम का राज्याभिषेक—चैत्र शुक्ला नवमी को, जब उनका जन्म दिन था और आयु के ५२ वर्ष पूरे हो चुके था।

इस प्रकार राम के जीवन की समस्त घटनाओं के समय के विषय में वाल्मीकि रामायण के आधार पर किये गये इस विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि राम के जीवन की घटनाओं का विजय दशमी और दीपावली से कोई संबन्ध नहीं है। लोग अपनी भ्रान्त धारणा के कारण ही विजय दशमी को रावण वध के रूप में मनाते हैं। लंका में राम रावण की सेनाओं में लगभग ७२ दिन युद्ध हुआ।

(ग) कुछ शब्दों की व्याख्या

१. वायु-पुत्र,सूर्य-पुत्र आदि— इन शब्दों का अर्थ है उन जैसे गुणों को धारण करने वाला। हनुमान् जी को इसीलिये वायु पुत्र कहा जाता था, क्योंकि वे वायु के समान शीघ्रगामी और शक्तिशाली थे। इसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी होने के कारण सुग्रीव को सूर्य पुत्र कहा जाता था। वायु और सूर्य आदि से संतानें उत्पन्न नहीं की गयीं। प्राचीन काल में गुण वाचक उपनाम रखने रखने की प्रथा थी। महाभारत में भी हम वायु पुत्र भीम और सूर्य पुत्र कर्ण के विषय में पढ़ते हैं।

२. देव-सुर— देव और सुर ये नाम अच्छे गुणों से युक्त विद्वान पुरुषों के थे। जो व्यक्ति अत्यधिक सदाचारी और साथ ही विद्वत्ता युक्त भी होते थे, उन्हें देव, देवता,सुर तथा उनके पर्यायवाची शब्दों से संबोधित करते थे। दशरथ जी के पुत्रेष्टि यज्ञ में जो खीर खाने के लिये यह कह कर दी गयी थी कि यह देवताओं के द्वारा तैयार की हुई है, वह वास्तव में पुत्रेष्टि यज्ञ के विद्वानों के द्वारा विभिन्न औषधियाँ डाल कर तैयार की हुई थी।

इसके साथ ही एक बात और भी है। मानव सृष्टि का प्रारंभ संसार के सबसे ऊँचे स्थान तिब्बत में हुआ था। वहीं से आर्य लोग भारतवर्ष तथा संसार के दूसरे भागों में गये। वैदिक शिक्षा का प्रारंभ भी तिब्बत में हुआ। इसलिये तिब्बत में रहने वाले आर्यों का जीवन भी वैदिक शिक्षाओं से अधिक ओतप्रोत था। इसीलिये संसार के अन्य भागों में रहने वाले आर्य लोग उसे त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्ग के नाम से और वहाँ रहने आर्यों को देव नाम से पुकारते थे।उनके हृदय में तिब्बत वासी आर्यों के लिये विशेष आदर भाव था। तिब्बत अर्थात् स्वर्ग के निवासी आर्य अर्थात् देवता लोग शस्त्रास्त्र विद्या, आकाश विचरण आदि भौतिक विद्याओं और अध्यात्म विद्या दोनों में ही पारंगत थे। समय समय पर अनेक लोगों के द्वारा देवताओं से शस्त्रास्त्र प्राप्ति का वर्णन हम पढ़ते हैं। पर वे वरीयता अध्यात्म मार्ग को ही देते थे। जैसे कठोपनिषद में नचिकेता और यमाचार्य की कथा।

३. इन्द्र— इन्द्र शब्द का सामान्य अर्थ ऐश्वर्यवान् है, क्योंकि यह ऐश्वर्य अर्थ वाली इदि धातु से बना है।यहाँ ऐश्वर्य का अर्थ केवल धन संपत्ति आदि साँसारिक सुख ही नहीं, अपितु शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक सुख भी है। इसलिये जो व्यक्ति विद्वत्ता और सदाचार में देव कहलाने वाले व्यक्तियों से भी बढ़ कर होता था और साथ ही अनेक ऐश्वर्य प्रदान करने वाले गुणों से भी युक्त होता था, उसे इन्द्र की उपाधि दी जाती थी। इसके साथ ही जहाँ तिब्बत के निवासियों को देव कहते थे, वहाँ तिब्बत के राजा को भी इन्द्र कहते थे। रावण से युद्ध के समय राम के लिये रथ इन्द्र अर्थात् तत्कालीन तिब्बत के राजा ने ही भेजा होगा, क्योंकि इन्द्र की राजा दशरथ के साथ मित्रता थी। दशरथ युद्धों में उसकी सहायता के लिये जाया करते थे। इन्द्र केवल तिब्बत के हीं राजा नहीं थे, अपितु हिमालय पर्वत पर रहने वाली पहाड़ी जातियों, जिन्हें संस्कृत साहित्य में यक्ष, गन्धर्व,किन्नर, विद्याधर आदि नामों से संबोधित किया गया है, के भी राजा माने जाते थे। इन जातियों के मुखिया अपनी जाति के प्रतिनिधि के रूप में इन्द्र की सभा में उपस्थित रहते थे। जैसे यक्षों के मुखिया कुबेर के नाम से और गन्धर्वों के मुखिया चित्रसेन के नाम से इन्द्र की सभा के सभासद थे। इन्द्र के सारथि को मातलि कहा जाता था।

४. शत, सहस्र— ये संख्या वाचक शब्द वैसे तो सौ, और हजार की गिनती के लिये प्रयुक्त होते हैं। पर शत का अर्थ बहुत और अनेक तथा सहस्र भी समझना चाहिये। रामायण में जहाँ हनुमान् जी ने आकाश मार्ग से लंबी यात्राएँ की हैं, वहाँ इन शब्दों का अर्थ निश्चित संख्या का न ले करअसंख्य अनेक और बहुत सारे इन अर्थों को लेना चाहिये। जैसे लंका से हिमालय की दूरी सहस्र योजन बतायी गयी है। वहाँ सहस्र शब्द निश्चित संख्या वाचक नहीं है।

५. किष्किंधा गुहा— किष्किंधा वानरों के राजा बाली की राजधानी थी। इसके लिये रामायण में गुहा शब्द का प्रयोग हुआ है। गुहा पहाड़ को काट कर बनाये गये रास्ते को (जिसे हिंदी में सुरंग भी कहते हैं) कहते हैं। किष्किंधा का जैसा वर्णन

रामायण में है,उसके अनुसार वह आजकल के किसी भी उच्च कोटि के नगर के समान थी, फिर वह सुरंग में कैसे हो सकती है ? अतः मानना चाहिये कि किष्किंधा के साथ गुहा शब्द इसलिये लगाया गया है, क्योंकि वह पहाड़ों के बीच में बसी हुई थी। उसके चारों तरफ ऊँचे पहाड़ होने के कारण, उन पहाड़ों के ऊपर से उसमें जाने का रास्ता नहीं होगा।इसलिये अन्दर जाने केलिये चारों तरफ, पहाड़ काट कर बहुत सारी सुरंगें बनाई हुई होंगीं। इसीलिये उसे किष्किंधा गुहा के नाम से पुकारा जाता था।

६. **राक्षस,असुर,दैत्य,दानव—** ये शब्द देव और सुर शब्दों के विपरीतार्थ वाची हैं। जिस प्रकार पहले देव और सुर उन व्यक्तियों को कहते थे, जो उच्च आचार विचार वाले और वैदिक शिक्षाओं का पूर्णतः पालन करने वाले तथा विद्वान, एवं सारी विद्याओं में पारंगत होते थे, उसी प्रकार राक्षस,असुर आदि उन व्यक्तियों को कहते थे जो वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण करने वाले तथा उन सिद्धान्तों के विरोधी होते थे। संसार में आदर्श का पूरी तरह पालन न कर पाना या उससे स्खलित हो जाना तो जन साधारण में हर जगह पाया जाता है। उसके लिये प्रायश्चित और दंड विधान भी निश्चित होते हैं,जिन्हें अपना कर गल्ती वाला मनुष्य अपने आपको सुधार कर पुनः आदर्श के पालन की चेष्टा में लग जाता है। किन्तु राक्षस उन लोगों को कहते थे, जो जान बूझ कर वैदिक जीवनचर्या का विरोध करते थे। जैसे वैदिक विचार धारा जहाँ अध्यात्म वाद को प्रधान मानती है, वहाँ असुर विचारधारा भौतिकवादी थी। वैदिक सिद्धान्तों में ब्रह्मचर्य और सदाचार को सर्वोच्च माना गया है, तो असुर सभ्यता में इन गुणों का कोई महत्व नहीं था। इसीलिये इतिहास में हम पढ़ते हैं कि आदि काल से ही देवता और दानवों में परस्पर तथा निरन्तर विरोध और वैमनस्य रहा है। राक्षस लोग आर्यों से बहिष्कृ त हो कर, उनसे अलग वनों में अपनी बस्तियाँ बना कर अथवा पाताल अर्थात् पयस्थल अर्थात् समुद्र तटवर्ती स्थानों में रहते थे। विरोध होने के कारण ही वनों में आश्रम वासी तपस्वी मुनियों को राक्षस लोग परेशान करते थे। मुनियों को परेशान करने के ही कारण राम के राक्षसों से युद्ध हुए थे।

राक्षस लोग क्योंकि वैदिक आचार विचारों के विरोधी थे, इसलिये उनमें मद्य और माँस का खूब प्रचलन था। उनमें से कई तो मानव माँस भोजी भी होते थे, जैसे महाभारत में हिडिम्बासुर और बकासुर आदि। भौतिक वाद ही जीवन का लक्ष्य होने के कारण ये भौतिक उन्नति में जैसे माया अर्थात् जादू का प्रयोग और आकाश विचरण आदि में आर्यों से आगे बढ़े हुए थे। उनकी ये विशेषताएँ हमें राम और रावण के युद्ध में तथा महाभारत में घटोत्कच और राक्षस अलंबुष के युद्ध में दिखाई देतीं हैं।जंगल में रहने के कारण लोग इन्हें जँगली और असभ्य व्यक्ति समझते हैं, पर ऐसा नहीं था। वनों में तो ये आर्यों के बहिष्कार और विरोध के कारण अपनी बस्तियाँ बना कर रहते थे, असभ्य होने के कारण नहीं। राक्षसों की कोई अलग से जाति विशेष नहीं थी, नाहीं ये अपनी किसी जन्मजात शारीरिक विशेषता से उपलक्षित थे। जैसे कि प्रायः लोग समझते हैं कि इनकी आकृति भयानक,लम्बे दाँत और सिर पर सींग होते थे, पर ऐसा नहीं था। यदि इनकी शारीरिक रचना मनुष्यों से भिन्न होती, तो राक्षसों और आर्यों की भाषा एक जैसी ही संस्कृत भाषा क्यों होती? और इनमें तथा आर्यों में विवाह संबन्ध क्यों होते? रामायण में रावण के पिता ऋषि थे और माता राक्षसी थी। इसी प्रकार महाभारत में भीम का विवाह हिडिम्बा राक्षसी से हुआ था। ये सामान्य व्यक्तियों जैसी ही आकृति वाले होते थे और केवल आचार विचारों की भिन्नता के कारण आर्यों से अलग कर दिये गये थे। आचार विचार बदलने पर कोई भी आर्य या देवता राक्षस बन सकता था, जैसे रावण के बाप दादा आर्य थे, पर रावण राक्षस बन गया।राक्षस भी इसी प्रकार वैदिक आचार विचार को अपना कर आर्य और देवता बन सकते थे। जैसे विभीषण राक्षस आचार विचार को छोड़ कर आर्य बन गया। तभी तो राम ने उससे मित्रता की। इसी प्रकार महाभारत में हिडिम्बा ने राक्षसी आचार विचार छोड़ कर वैदिक आचार विचार अपनाया, तभी भीम ने उससे विवाह किया। भीम का पुत्र घटोत्कच राक्षस कहलाया जाने पर भी वैदिक सिद्धान्तों का पोषक था।

एक प्रश्न यह भी है कि हम इतिहास में महाभारत के पश्चात् कहीं भी राक्षसों का वर्णन नहीं पढ़ते हैं, इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है महाभारत के पश्चात् क्योंकि वैदिक सभ्यता का पतन प्रारम्भ हो गया, इसलिये आदर्शों के विरोधियों का विरोध भी धीरे धीरे समाप्त हो गया। पहले जहाँ आदर्शों के उच्च पालन कर्ता थे, वहाँ आदर्शों के नितान्त विरोधी भी राक्षसों के रूप में विद्यमान थे। पर जब लोगों के चरित्रों में गिरावट आने लगी और उत्तम आदर्शों का पालनकर्ता कोई इक्का दुक्का ही

रह गया, तब अलगाव से जन्म लेने वाली राक्षस जाति भी समाप्त हो गयी। सभी देवता और दानव रल मिल कर एक हो गये। परवर्ती काल में जो यज्ञों में हिंसा, मद्य, माँसादि का चलन हो गया, वाम मार्गी सिद्धान्तों का प्रचार होने लगा, वह राक्षसी सभ्यता के वैदिक सभ्यता से मेल का ही परिणाम था, जिसकी प्रतिक्रिया में बौद्ध मत का प्रारंभ हुआ।

७. प्रयाग से चित्रकूट की दूरी— रामायण में भरद्वाज मुनि ने राम और भरत को प्रयाग स्थित अपने आश्रम से चित्रकूट की दूरी ढाई योजन अर्थात् दस कोस बताई है, जब कि आज हम देखते हैं कि प्रयाग से चित्रकूट की दूरी ८० मील अर्थात् ७४ कोस है। ऐसा क्यों? इस समस्या का समाधान यह है कि यह आवश्यक नहीं है कि आज जहाँ प्रयाग बसा हुआ है, वहीं वह राम के जमाने में भी हो।प्रयाग किसी नगर का नाम नहीं है,अपितु गंगा और यमुना के संगम स्थल का नाम है। राम के समय में वहाँ नगर था भी नहीं, केवल जंगल था। यह सब जानते हैं कि नदियाँ बाढ़ के कारण प्रतिवर्ष अपनी जगह बदल लेती हैं। अतः हो सकता है, कि राम के समय अर्थात् आज से लगभग पौने नौ लाख वर्ष पहले दोनों नदियों का मेल वर्तमान स्थान से बहुत पहले उस स्थान पर होता हो, जहाँ से चित्रकूट केवल ढाई योजन दूर ही रह गया हो। उदाहरण के लिये हम देखते हैं कि पहले यमुना नदी दिल्ली में लालकिले से सट कर बहती थी, पर अब उससे बहुत दूर पर बहती है।

८. सेनाओं की संख्याएँ— रामायण में वानर और राक्षस दोनों की ही सेना बहुत बड़े बड़े अंकों में दी हुई है, जो कि करोड़ों और अरबों तक पहुँचती है। अर्थात् आज जनवृद्धि की समस्या से जूझते हुए समस्त भूमण्डल की भी जन संख्या इतनी नहीं है, जितने वानरों और राक्षसों की सेनाओं के सैनिक बताये गये हैं। यह सब प्रक्षेपकारों की माया है।

उस समय एक अक्षौहिणी सेना तो प्रायः सारे श्रेष्ठ राजा लोग युद्ध में भेजने की क्षमता रखते थे। जैसे सीता ने लंका में हनुमान जी से रोते हुए भरत द्वारा एक अक्षौहिणी सेना भेजने को कहा था। देखिये-

कच्चिदक्षौहिणीं भीमां, भरतो भ्रातृवत्सलः। ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां, प्रेषयिष्यति मत्कृते।।

रावण और सुग्रीव तो समस्त भूमंडल में फैले हुए राक्षसों और वानरों के राजा थे, अतः उनकी सेना कम से कम तीन अक्षौहिणी तो अवश्य माननी चाहिये। एक अक्षौहिणी में उस समय पैदल १०९३५०,और घोड़े ६५६१० एवं रथ २१८७० तथा हाथी २१८७० अर्थात् कुल २१८७०० सैनिक होते थे। वानरों की सेना में हाथी, रथ और घोड़ों की जगह भी पैदल सैनिक थे।

९. वर्ष, संवत्सर— रामायण में कुछ स्थानों पर किसी कार्य के किये जाने की समय सीमा सहस्रों वर्षों में बतायी गयी है। वहाँ वर्ष का अर्थ ३६० दिन नहीं है, बल्कि वहाँ वर्ष का अर्थ एक दिन है। मीमाँसा दर्शन में जहाँ सहस्रों वर्षों तक किये जाने वाले यज्ञों का विधान है, वहाँ वर्ष शब्द की व्याख्या करते हुए उसे दिन का वाची भी बताया गया है। जैसे-

अहानि वा अधिसंख्यत्वात्। मीमाँसा दर्शन ६/७/४०

अर्थात् दिन वाचक भी संवत्सर आदि शब्द होते हैं, फ़िर जैसे कि पहले समझाया जा चुका है, सहस्र शब्द का अर्थ भी तो बहुत सारे इस अर्थ में ले सकते हैं।

१०. रथ—रामायण में रथ शब्द से मतलब केवल घोड़ों से ही खींचे जाने वाले रथ से नहीं है, बल्कि इसके साथ कहीं कहीं इसका प्रयोग आकाश में विचरण करने वाले विमान के लिये भी किया गया है। जैसे रावण जब सीता जी को चुराने के लिये गया, तब वह आकाश मार्ग से गया और रथ में बैठ कर गया। वहाँ वह रथ विमान ही था। घोड़ों वाला रथ नहीं, क्योंकि घोड़े आकाश विचरण नहीं कर सकते।

११. विमान—विमान हवाई जहाज को तो कहते ही हैं, रामायण में इसका प्रयोग सात मंजिले मकानों के लिये भी हुआ है। जैसे जब हनुमान जी सीता की खोज में लंका में गये, तब वहाँ रावण के महल को विमान शब्द से संबोधित किया गया है और यह बताया गया है, कि वहाँ अन्य भी अनेक ऐसे विमान थे। सात मंजिल मकान,विमान का यह अर्थ शब्द कोष से भी प्रमाणित है।

१२. **कुबेर—** कुबेर देवताओं के कोषाध्यक्ष को कहते थे। यह हिमालय पर कैलाश पर्वत के निकट अलका नाम की नगरी में रहता था। तिब्बत, त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्ग के राजा इन्द्र के समान यह भी कोई नाम विशेष नहीं, बल्कि एक पद के अनुसार दी जाने वाली उपाधि थी। रावण उस समय के कुबेर का छोटा भाई था, पर अपने पतित आचरण के कारण राक्षस बन गया था।

१३. **विश्वकर्मा—** विश्वकर्मा का नाम देवताओं के इंजीनियर के रूप में प्रसिद्ध है। वह इसलिये क्योंकि आदि सृष्टि का जन्म त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्ग अर्थात् तिब्बत में हुआ था। वहाँ के निवासियों को उस समय देवता कहते थे। इन्ही देवताओं में जो सृष्टि के आदि में प्रथम इंजीनियर हुआ,उसका नाम विश्वकर्मा था। विश्वकर्मा परमात्मा का भी नाम है, क्योंकि सबसे कुशल निर्माण कर्ता तो वही है। विश्वकर्मा के पश्चात् जो जो व्यक्ति अपने अपने समय में सर्वाधिक कुशल निर्माण कर्ता होते गये, उन्हें प्राचीन भारत में विश्वकर्मा की उपाधि से विभूषित किया जाने लगा। जैसे एक विश्वकर्मा ने रामायण काल में लंका के किले का निर्माण किया था। वानर नल को विश्वकर्मा का पुत्र बताया गया है। वह उसके वास्तविक पुत्र होने के कारण नहीं, अपितु अपने समय का सर्व श्रेष्ठ इंजीनियर होने के कारण कहा गया है।

१४. **अन्तर्हित होना—** इसका मतलब है,छिप जाना(गायब हो जाना नहीं) इन्द्रजित इस विद्या में निपुण था। वह वायुयान के द्वारा आकाश में जा कर बादलों में छिप जाता था, या धूँआ पैदा करके उसके पीछे अपने आपको छिपा लेता था। इस विद्या का सहारा लेकर उसने राम और लक्ष्मण दोनों को मूर्छित कर दिया था।

१५. **इन्द्रजित—**यह रावण के पुत्र का नाम था।उसे इन्द्रजित इसलिये कहते थे, क्योंकि उसने युद्ध में तिब्बत के राजा को पराजित किया था।इसके साथ ही इन्द्र मेघ को भी कहते हैं। वह बादलों के अन्दर जा कर छिप जाता था, इसलिये भी उसको इन्द्रजित कहते होंगे। इन्द्रजित को मेघनाद भी इसलिये कहते थे, क्योंकि वह युद्ध में बादलों के समान गर्जना करता था।

१६. **नारद—** नारद शब्द का अर्थ है- **नराणाम् समूहः नारम्। तेभ्य यः उपदेशान् यच्छति,सुपरामर्शं ददाति, सन्मार्गं च दर्शयति सः नारदः।** अर्थात् मनुष्यों के समूह को नार कहते हैं। इन मानव समूहों को जो अच्छे उपदेश प्रदान करे, सन्मार्ग दिखाये, अच्छा परामर्श दे, उसे नारद कहते हैं। इस आधार पर यह समझना चाहिये कि पुराने जमाने में नारद किसी एक ऋषि का नाम न हो कर एक उपाधि होती होगी। यह बात अलग है कि सबसे पहले सृष्टि के आदि में नारद नाम के एक ऋषि हुए होंगे और उन्होंने अपने नाम के अर्थ के अनुसार ही अपने जीवन में कार्य किया होगा। नार शब्द का अर्थ आध्यात्मिक ज्ञान भी है। यह अर्थ भी इसी पक्ष में लगता है। उन सर्व प्रथम जन्मे नारद मुनि के पश्चात् नारद एक उपाधि बन गयी और पीछे होने वाले जिस जिस ऋषि ने अपने समय में एक स्थान पर ही स्थित न रह कर, जनता के कल्याण के लिये विशेष रूप से भ्रमण किया और उसे सन्मार्ग दिखाया, उस उसको नारद कहा जाने लगा।

इसीलिये हम देखते हैं कि नारद नाम प्रायः प्रत्येक काल में मिल जाता है। रामायण में भी नारद मिलते हैं, तो महाभारत में भी नारद जी के दर्शन होते हैं। एक ही व्यक्ति इतने लंबे समय तक कैसे जीवित रह सकता है? इसलिये नारद को एक व्यक्ति विशेष न मान कर उपाधि मानना ही उचित होगा।

१७. **परशुराम—** परशुराम जी का नाम सामने आते ही एक ऐसे क्रोधी और शस्त्रास्त्र विद्या में निष्णात ब्राह्मण का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है, जिसने अपनी शस्त्रास्त्र विद्या और क्रोध का प्रयोग अत्याचारी और निरंकुश क्षत्रिय राजाओं को समाप्त करने में किया। ब्राह्मण का मूल धर्म अहिंसा , तपश्चर्या और क्षमा शीलता है,पर जब उन्होंने देखा कि मेरे पिताजी श्री जमदग्नि मुनि पूरी तरह निरपराध होने पर भी अत्याचारी राजा कार्तवीर्य की निरंकुशता के शिकार होकर मारे गये, उनके ब्राह्मणोचित गुणों का राजा की हरकतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब उन्होंने उसे उचित दंड देने के लिये तपश्चर्या को छोड़ शस्त्रास्त्रों का आश्रय लिया और युद्ध में कार्तवीर्य के सारे परिवार को नष्ट कर दिया।इसके पश्चात् उन्होंने और भी जो जो तत्कालीन अत्याचारी राजा थे, उनका भी संहार किया और इस प्रकार क्षत्रिय हन्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए। अपने गुरु शिव के

धनुष को तोड़ने पर ये पहले तो श्रीराम से भी क्रुद्ध हुए, पर फिर राम की शक्ति से प्रभावित हो कर और यह समझ कर कि ये कार्तवीर्य जैसे नहीं हैं, इन्होंने उनसे अपने विवाद को समाप्त कर लिया।

इन सर्व प्रथम हुए परशुराम जी के पश्चात् उनकी वंश परम्परा या शिष्य परम्परा में जो ऐसे ब्राह्मण समय समय पर हुए, जिन्होंने परशुराम जी की जीवन शैली के अनुसार अपनी जीवन पद्धति को चलाया अर्थात् युद्ध के द्वारा अपने समय के अत्याचारी राजाओं का सामना किया, वे भी परशुराम ही कहलाये। जैसे आज कल भी वसिष्ठ ऋषि के तथा भरद्वाज ऋषि के वंशज अपने आपको वसिष्ठ और भारद्वाज ही कहते हैं। इसीलिये हम महाभारत काल में भी परशुराम जी के दर्शन करते हैं, जिन्होंने भीष्म, द्रोण तथा कुछ दिनों तक कर्ण को भी शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दी थी। ये परशुराम राम के समय वाले परशुराम नहीं थे।

परशुराम जी के विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि इन्होंने सारे भूमण्डल के क्षत्रियों का इक्कीस बार विनाश किया था। पर एक व्यक्ति तो अपने समग्र जीवन में इतना कार्य नहीं कर सकता। कदाचित परशुराम नाम धारी जितने भी ब्राह्मण समय समय पर हुए,उन सब के द्वारा किये गये क्षत्रियों के विनाश की यह एकत्रीकृत गणना है।

१८. त्रिलोक— रामायण और महाभारत में त्रिलोक शब्द बहुत बार आया है। जैसे उसकी प्रसिद्धि तीनों लोकों में फैल गयी, या उसने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली आदि। अब देखिये कि भारतीय साहित्य में त्रिलोक का क्या अर्थ था?

तीनों लोक शब्द का प्रयोग रामायण और महाभारत में ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य में भी होता आया है। जैसे हिंदी में मुहावरा है कि **तीन लोक से मथुरा न्यारी** तीन लोक से सामान्यतः सारा संसार यह अर्थ ग्रहण किया जाता है। यहाँ सारे संसार से भी अभिप्राय सारे मानव संसार से है। आकाश के नक्षत्रों और सागर की अतल गहराइयों से नहीं, क्योंकि किसी भी महामानव के विजय अभियान या कीर्ति विस्तार का संबन्ध मानव सृष्टि से ही है, मानवेतर सृष्टि से नहीं। अब वे तीन लोक कौन कौन से हैं जिन्होंने सारे मानव संसार को अपने में समेटा हुआ है, इस बात पर विचार करने पर हिंदी कथानकों में किसी की खोज करने का प्रयत्न करते हुए प्रयुक्त किया गया **आकाश से ले कर पाताल तक** यह वाक्याँश हमारी सहायता करता है। इस वाक्याँश का अर्थ भी सारा संसार है, इसमें अप्रत्यक्ष रूप से तीनों लोकों की झलक दिखा दी गयी है। अर्थात् ऊपर आकाश, बीच में यह सूखा धरातल और तीसरा नीचे की तरफ पाताल। ये तीनों लोक हैं, जिनसे हमारे मानव संसार का संबन्ध रहा है और जिनको लक्ष्य करके त्रिलोक शब्द प्रचलित हुआ। अब इन तीनों लोकों का अलग अलग अर्थ समझिये।

सबसे पहला लोक यह सूखा धरातल है, जिस पर वह व्यक्ति रहता है, जिसके कार्य के विषय में वर्णन किया जा रहा है। जैसे यदि राम के कार्यों के विषय में वर्णन किया जा रहा है तो सारा भारत वर्ष राम के लिये पहला लोक हो गया।

दूसरे लोक से मतलब है आकाश अर्थात् आकाश में विचरण करने वाले वायुयान आदि। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि प्राचीन रामायण और महाभारत के समय में भारतीयों के पास विमान विद्या थी। आज जिस देश के ऊपर जो आकाश होता है, उस पर उसी देश की सरकार का अधिकार होता है। बिना उसकी आज्ञा के दूसरे देश का वायुयान उस आकाश में प्रवेश नहीं कर सकता। मतलब यह है कि आज हमारी भारत सरकार का अधिकार न केवल भारत की भूमि रूपी प्रथम लोक पर है, अपितु भारतीय आकाश रूपी द्वितीय लोक पर भी है। तीसरे लोक का अर्थ है पाताल लोक। पाताल शब्द पादस्थल और पयस्थल इन दोनों या इनमें से किसी एक शब्द से परिवर्तित हो कर बना है। पादस्थल का अर्थ है पैरों की तरफ अर्थात् हमारी वर्तमान भूमि से नीचे की तरफ और पयस्थल का अर्थ है पानी के बीच में विद्यमान भूमि अर्थात् द्वीप।पाताल शब्द का निर्माण भारत में भारतीयों के द्वारा किया गया। भारतवर्ष के दूरवर्ती जितने भी द्वीप हैं, वे भूमि के गोलाकार होने के कारण भारतीयों के लिये पादस्थल हैं अर्थात् वे भारत भूमि से नीचे की तरफ हैं और पानी के मध्य में होने के कारण तो वे पयस्थल हैं ही। अमेरिका भी भारत वासियों के लिये पाताल है, क्योंकि वह भारतवर्ष के विपरीत तल पर है। इस प्रकार त्रिलोक शब्द का यह अर्थ समझना चाहिये।

१९. **स्वर्णमय—** रामायण और महाभारत में स्वर्ण के उपयोग का बहुत वर्णन किया हुआ है। राजाओं के उपयोग में आने वाली बहुत सी सामान्य वस्तुएँ भी जैसे कवच,धनुष और यहाँ तक कि विशेष बाणों में भी सोने के प्रयोग का उल्लेख है।यह तो ठीक है कि हमारा देश उस समय बहुत धनवान था और यहाँ स्वर्ण का भंडार भी अतुल था, पर फिर भी सामान्य से पदार्थों को भी जो सोने से निर्मित बताया गया है, वहाँ उसे शुद्ध सुवर्ण न मान कर सुनहले रंग का या सोने के पानी की पालिश किये हुए समझना चाहिये। यह ठीक ऐसे ही है जैसे आज हम अमृतसर के स्वर्ण मंदिर को स्वर्ण मंदिर कहते हैं।

२०. **स्वर्ग, नरक—** रामायण, महाभारत में स्वर्ग शब्द के दो अर्थ हैं। पहला अर्थ है, परलोक में उत्तम गति अर्थात् मृत्यु के पश्चात आत्मा को अच्छी सुखदायक परिस्थितियों का प्राप्त होना ही उसके लिये स्वर्ग है। यह स्वर्ग आत्मा को अपने पहले जीवन में उसके द्वारा किये गये अच्छे कर्मों के आधार पर परमात्मा की न्याय व्यवस्था के द्वारा मिलता ~~मिलता~~ है। सूर्य चन्द्रमा की तरह के विशेष आनन्द से पूर्ण किसी लोक का नाम स्वर्ग नहीं है, जहाँ जीवात्मा को अच्छे कर्मों का फल मिलता हो। स्वर्ग इसी संसार में विद्यमान अच्छी योनियों और परिस्थितियों का नाम है।

स्वर्ग का दूसरा अर्थ रामायण और महाभारत में तिब्बत भी है, क्योंकि स्वर्ग त्रिविष्टप शब्द का पर्यायवाची है और तिब्बत त्रिविष्टप का बिगड़ा हुआ रूप है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सृष्टि के आरम्भ में सर्वप्रथम जन्म क्योंकि तिब्बत में हुआ, अतः तिब्बत वासियों के लिये आर्यों के मन में विशेष सम्मान था। वे तिब्बत को स्वर्ग कहते थे।

नरक शब्द का भी मतलब आकाश में विद्यमान किसी कष्टदायक लोक से नहीं है, जहाँ जीवात्मा को मृत्यु के पश्चात उसके बुरे कर्मों के लिये विशेष प्रकार की, जैसे कड़ाहे में डाल कर खौलाना,या भट्टी में डाल कर जलाना जैसी सजाएं दी जातीं हों। नरक भी स्वर्ग के ही समान आत्मा को मृत्यु के पश्चात मिलने वाली विशेष दुख भरी योनि और परिस्थितियों को कहते हैं, जो बुरे कर्मों का फल भुगतने के लिये परमात्मा की न्याय व्यवस्था के अनुसार मिलती है।

२१. **पितर—** पितर शब्द का प्रयोग जीवित बड़े बूढ़ों के लिये किया जाता है। परलोक में गये हुए मृत लोगों के लिये नहीं।

२२. **प्रारब्ध—** कुछ लोग समझते हैं कि जब मनुष्य जन्म लेता है, तभी परमात्मा उसके कर्मों के आधार पर भविष्य में उसे मिलने वाले सुख और दुख का चार्ट बना कर तैयार कर देता है, जिसे प्रारब्ध या भाग्य कहते हैं। इसी तैयार किये हुए चार्ट के अनुसार उसे सुख और दुख मिलते रहते हैं। पर ऐसा नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा हो, तो आत्मा को भविष्य में कार्य करने की स्वतंत्रता न मिले। जब आत्मा ने अपनी स्वतंत्रता से कार्य नहीं किया, तो परमात्मा उसे उसके कार्यों का फल सुख और दुख के रूप में दे कर उसके साथ अन्याय क्यों करता है? इसलिये प्रारब्ध वास्तव में परमात्मा की न्याय व्यवस्था और उसके अनुसार उसके संकल्प का नाम है। परमात्मा सर्वशक्तिमान है। उसे पहले से ही कर्मों का लेखा लिखने की क्या आवश्यकता है? हम किसी भी कार्य की योजना बनाते हैं और उसे लिख कर रखते हैं, ताकि भूल न जायें। पर यह बात परमात्मा पर लागू नहीं होती। वह तुरन्त निर्णय करके उसे क्रियान्वित करता है, पहले से निश्चित करके नहीं रखता।

२३. **दिव्यास्त्र—**रामायण और महाभारत में युद्ध के जिन आयुधों का उल्लेख मिलता है, वे दो प्रकार के हैं, एक शस्त्र और दूसरे अस्त्र। शस्त्र उन आयुधों को कहते हैं,जिन्हें हाथ से पकड़े हुए ही काम में लाया जाता है, जैसे तलवार और गदा आदि। अस्त्र उन आयुधों को कहते हैं, जिन्हें शत्रु के ऊपर फैंक कर उसका मुकाबला किया जाता है, जैसे धनुष बाण और बन्दूक आदि। ये अस्त्र दो प्रकार के होते थे, एक सामान्य अस्त्र और दूसरे दिव्यास्त्र। सामान्य अस्त्र की श्रेणी में सामान्य प्रकार के धनुष बाण आते हैं। दिव्यास्त्र उन उपकरणों को कहते थे, जो यन्त्रीकृत होते थे और जिनकी प्रहार क्षमता अधिक होती थी। वे छोड़े भी यन्त्रों से जाते थे, यद्यपि उन यन्त्रों को भी धनुष ही कहते थे। अर्थात् दिव्यास्त्र जिन साधनों से छोड़े जाते थे, वे सामान्य धनुष नहीं बल्कि यन्त्रीकृत धनुष होते थे। उस समय जो दिव्यास्त्र होते थे, उनकी शान्ति के लिये भी अलग अलग तरह के दिव्यास्त्र थे, जैसे आग्नेयास्त्र की शान्ति वारुणास्त्र से जल उत्पन्न कर या जल की वर्षा कर के की जाती थी।

इन दिव्यास्त्रों की विषय के क्रम से कई श्रेणियाँ होती थीं। जैसे आजकल भी सबसे हल्की बन्दूक मानी जाती है, उससे तेज रायफल होती है, उससे ऊपर ए के ४७रायफल होती है, उससे भी ऊपर स्टेन गन और उससे भी ऊपर मशीन गन होती है। उस समय सबसे नीची श्रेणी के दिव्यास्त्र अर्थात् जिनकी मारक क्षमता निम्नतम होती थी, सम्मोहनास्त्र आदि थे। सम्मोहनास्त्र के द्वारा शत्रु सेना को मूर्च्छित कर दिया जाता था। ये ऐसे ही थे जैसे आज कल आँसु गैस के गोले।आँसु गैस आँखों से आँसु बहाती है तो सम्मोहनास्त्र की गैस मूर्च्छित कर देती थी।

द्वितीय श्रेणी के दिव्यास्त्रों में आग्नेयास्त्र (जिससे आग लगा दी जाती थी), वारुणास्त्र (जिससे आग बुझा दी जाती थी), तथा वायवास्त्र आदि आते थे। इन दिव्यास्त्रों को आजकल के उच्चतम शक्तिवाले बमों के समान समझना चाहिये। इन दिव्यास्त्रों की सहायता से अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में, जयद्रथ वध के अपने अभियान के रास्ते में घोड़ों को पानी पिलाने के लिये तालाब का निर्माण कर दिया था। आजकल भी बमों की मार से भूमि में गड्ढे बन जाते हैं।

तीसरी श्रेणी के दिव्यास्त्रों में ब्रह्मास्त्र का नाम आता है। इसकी विनाश क्षमता और भी अधिक थी। यह समझिये कि यह आज कल के निम्नतम शक्तिवाले परमाणु बम के समान था। ब्रह्मास्त्र का प्रतिरोध ब्रह्मास्त्र के द्वारा ही किया जा सकता था। ब्रह्मास्त्र का प्रयोग उच्चकोटि के योद्धा वीर ही कर सकते थे, दूसरे वीर नहीं। जो योद्धा अकेले ही चौदह हजार सैनिकों का सामना कर सकता था, उसे ही उच्चतम कोटि का या महारथी कहते थे। जैसे श्रीराम ने वन में अकेले ही खर, दूषण, और त्रिशिरा समेत उनके चौदह हजार राक्षसों का विनाश कर दिया था। इन दिव्यास्त्रों का सामान्य सैनिकों पर प्रयोग करना अधर्म माना जाता था।

सबसे उच्च कोटि के दिव्यास्त्र वे माने जाते थे, जो संसार में प्रलय का सा दृश्य उपस्थित करने में सक्षम थे। इस श्रेणी में नारायणास्त्र, पाशुपत और ब्रह्मशिरा अस्त्र आते थे। इन दिव्यास्त्रों की तुलना आजकल के हाइड्रोजन बम से की जा सकती है। ये दिव्यास्त्र किसी किसी सर्वश्रेष्ठ महारथी के पास ही होते थे।, वे भी उन्हें अपने सारे शिष्यों को उनका ज्ञान नहीं देते थे।उनकी कड़ी परीक्षा कर,उनकी योग्यता और पात्रता की जाँच करके ही वे उनको इन महान अस्त्रों का ज्ञान देते थे,पर साथ ही यह चेतावनी भी देते थे, कि सिवाय उस समय के, जब प्राण बचाने का कोई अन्य साधन न हो, दूसरे समय भूल कर भी इनका प्रयोग न किया जाये। अर्जुन ने शिव को प्रसन्न करके उनसे पाशुपत और द्रोणाचार्य को प्रसन्न कर उनसे ब्रह्मशिरा अस्त्र ग्रहण किये और योग्य शिष्य होने के कारण उनका कभी प्रयोग नहीं किया।किन्तु अश्वत्थामा को द्रोणाचार्य ने पुत्र प्रेम के कारण नारायण अस्त्र की शिक्षा दे दी, पर अश्वत्थामा ने पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर महाभारत के युद्ध में उसका प्रयोग कर दिया।

२४. **त्रिपथगा-गंगा—** भारत वर्ष की सारी नदियों में गंगा नदी के प्रति भारतीयों के हृदय में अधिक सम्मान की भावना पुराने समय से ही रही है। इसी लिये दूसरी नदियों के जहाँ केवल एक या दो नाम ही प्रचलित हैं, वहाँ गंगा के भारतीय साहित्य में बहुत सारे नाम हैं। इन्हीं नामों में से गंगा नदी का एक नाम- त्रिपथगा— यह प्रसिद्ध है। वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में गंगा को त्रिपथगा कहा गया है। गंगा को त्रिपथगा क्यों कहते हैं, इसके विषय में लोगों के मन में यह बात बैठाई हुई है कि गंगा क्योंकि स्वर्ग में, पाताल में और इस लोक में बहती है, इसलिये इसे त्रिपथगा कहते हैं। पर वास्तव में यह गलत है। गंगा सिवाय इस भारत भूमि के और किसी दूसरी भूमि पर नहीं बहती है।

त्रिपथगा शब्द का मतलब है कि तीन पथों अर्थात रास्तों से बहने वाली।गंगा जब अपनी यात्रा आरंभ करती है, तब पहले वह बर्फीली चट्टानों, ग्लेशियरों में से अपना रास्ता बनाती है,इसके पश्चात वह पर्वतों के पथरीले मार्गों में से गुजरती है और अन्त में समतल मैदानी प्रदेशों में बहती हुई सागर में मिल जाती है। इसीलिये इन तीन प्रकार के बर्फीले, पथरीले और रेतीले मार्गों में से जाने के कारण गंगा को त्रिपथगा कहते हैं।यध्यपि इन तीन रास्तों पर तो दूसरी अधिकाँश नदियाँ भी बहती हैं, पर गंगा के प्रति अत्यधिक आदर होने के कारण केवल उसी को त्रिपथगा कहते हैं।

(२५) वाल्मीकि रामायण के द्वारा प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्य

क. **लेखन विद्या और ग्रन्थ शब्द का उल्लेखः**–अयोध्या.६३/२४, ९९/२५ श्रीराम ने अपनी जो अँगूठी हनुमान् जी को लंका में सीताजी को देने के लिये दी थी, उस पर उनका नाम लिखा हुआ था। किष्किन्धा.४१/१०

ख. **नमस्ते शब्द का प्रयोगः**–अरण्य.४/३

ग. **दर्पण शब्द का प्रयोगः**--अरण्य.१४/१०

घ. **मनु के श्लोकों का उल्लेखः**– किष्किन्धा.१६/२६

ङ. **खान से निकाले हुए कोयले का उल्लेखः**–किष्किन्धा २५/१३, युद्ध.३२/७

च. **सावित्री, सत्यवान, सुकन्या, दमयन्ती और कपिल मुनि का उल्लेखः**--अयोध्या.२९/६, सुन्दर.२०/१९-२०

छ. **तीन और चार दाँतों वाले हाथियों का उल्लेखः**--सुन्दर.७/३

ज. **शल्य क्रिया का उल्लेखः**--सुन्दर.२१/४३, विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी तथा संधानी औषधियों का उल्लेख पृ० ६५२

झ. **चन्द्रमा में स्वयं का प्रकाश नहीं है अपितु वह सूर्य से लिया हुआ है,इस बात का उल्लेखः**–सुन्दर.३/६

ञ. **समुद्र सात हैं यह उल्लेखः**--युद्ध.३१/१०

ट. **ऋग्वेद,यजुर्वेद,सामवेद और व्याकरण शास्त्र का उल्लेखः**--हनुमान् जी से प्रथम मिलन के समय श्रीराम के द्वारा उनके गुणों का वर्णन करते हुए। किष्किन्धा.३/२९-२०

ठ– गणित ज्योतिर्विद्या की जानकारी पृ० १५, ४३

ड– कौशल्या के द्वारा प्राणायाम और हवन पृ० ५८, ८८

ढ– स्त्रियाँ यज्ञोपवीत धारण करती थीं पृ० १८०

ण– राम का बाण पुनः तरकस में वापिस आ जाता था पृ० ३५४

त– हनुमान जी योगाभ्यासी। बुद्धि और मन को एकाग्र कर सागर का उल्लंघन किया पृ० ४२६

थ– बर्फ का प्रयोग – पृ० ६८५

रामायण की ऐतिहासिकता

भारतीय प्राचीन इतिहास के आकाश में रामायण और महाभारत की महान घटनाएँ उसके स्वर्ण और रजत युग को सूर्य और चन्द्रमा के समान न केवल पुराने युग से आज तक दर्शाती आ रही हैं अपितु भविष्य में भी युगों–युगों तक दर्शाती रहेंगी। इन महान घटनाओं के महान पात्रों से प्रेरित होकर आज तक न जाने कितने साहसी वीरों ने महानता की सीढ़ियों पर चढ़कर महापुरूष की पदवी पायी हैं और आगे भी भविष्य में वे ऐसा करते रहेंगे।

किन्तु इस देश का यह दुर्भाग्य हैं कि महाभारत के समय तक उसकी सभ्यता के विकास का जो सूर्य आकाश में जग मगा रहा था, वह महाभारत के पश्चात् ताम्र युग रूपी सायँकाल की लाली बिखेरता हुआ धीरे–धीरे पराधीनता की गहरी अँधियाली अमावस्या रूपी रात्रि में विलीन हो गया। उस गुलामी की रात में अज्ञान के बादलों ने भी बार–बार घिर कर जनता पर मुसीबतों की कितनी वर्षा की यह तो इतिहास पढ़ने से ही पता लगता है।

उस अँधियाले युग में जहाँ मुसलमान आक्रमणकारियों ने हमारे देश की इतिहास की पुस्तकों को आग लगाकर नष्ट किया, वहाँ अज्ञानी और स्वार्थी पंडितों ने भी अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए उन पुस्तकों में असंख्य असम्भव और बनावटी बातों का प्रक्षेप कर दिया।

उस प्रक्षेप कर्म के षड़यन्त्र और लम्बे समय की पराधीनता का ही यह दुष्परिणाम है कि स्वतन्त्रता प्राप्त करके आज भी हम, जिन्होंने हमें गुलाम बनाया और जो सर्वथा हमें अपने से नीचा समझते तथा समझाते आये हैं, उन्हीं देशों के इतिहासकारों द्वारा लिखित अपने देश के इतिहास को विश्वसनीय मानते हैं। किसी भी स्वतन्त्र देश का इतिहास वहाँ के नागरिकों द्वारा ही लिखा जाता है, पर हमारे देश का इतिहास हमारे देशवासी नहीं अपितु विदेशी इतिहासकार लिखते हैं।

वे विदेशी इतिहासकार और उनकी पुस्तकें पढ़कर शिक्षित कहलाने वाले उनके भारतीय शिष्य सब यह मानते हैं कि भारत वर्ष का इतिहास तो केवल गौतम बुद्ध से ही आरम्भ होता हैं। उससे पहले की राम और कृष्ण का वर्णन करने वाली रामायण और महाभारत की पुस्तकें सब काल्पनिक तथा सुनी सुनाई माइथॉलोजी हैं, वास्तविक नहीं।

ऐसे उन मतिभ्रान्त और रूढ़ि वादी लोगों को मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए रामायण की घटना की वास्तविकता को सिद्ध करने वाले कुछ प्रमाण नीचे दिये जा रहे हैं। जैसेः–

1. रामायण में जिन–जिन स्थानों और नदियों आदि का उल्लेख हुआ है, वे सारे आज भी भारत में विद्यमान हैं। जैसेः– अयोध्या, काशी, जनकपुरी, चित्रकूट, श्रृंगवेर पुर (सिंगरौर) हस्तिनापुर, लंका, सरयु नदी, तमसा (टौंस नदी), गंगा, यमुना, गोदावरी आदि।
2. इस समय उपलब्ध कालक्रम के अनुसार रामायण के पश्चात् महाभारत की घटना हुई। महाभारत में रामायण के निम्नलिखित दो श्लोक हूबहू उसी रूप में अवतरित किये गए हैं। जैसेः–

1.) सुलभाःपुरूषाःराजन्.....................................

अप्रियस्य च सत्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

<u>रामायणः–</u> विभीषण के द्वारा लंका को छोड़ कर जाते हुए रावण से कथन।

<u>महाभारतः–</u> विदुर के द्वारा उधोग पर्व में घृतराष्ट्र को समझाते हुए कथन।

2.) अपि चायं पुरागीतः.. इन्द्रजीत

....कर्तव्यमेव तत्।।

<u>रामायणः–</u> युद्वकांड में इन्द्रजित द्वारा नकली सीता का वध करने से पहले कथन।

<u>महाभारतः–</u> द्रोणपर्व अध्याय 143। श्लोक 67–68

यहाँ महाभारत में वाल्मीकि का नाम लेते हुए स्पष्ट कहा हैं कि रामायण में भी वाल्मीकि ने इस श्लोक को कहा है।

उसी प्रकार महाभारत में अन्य बहुत से स्थानों पर श्रीराम और रामायण के पात्रों और उनसे सम्बद्व घटनाओं का उल्लेख हुआ हैं।

3.) महाभारत के पश्चात पुराणों की रचना हुई। वायु पुराण में रामायण की घटना के समय पर अपना निर्णय देते हुए उसकी कथा का उल्लेख किया गया हैं।

4.) महाकवि कालिदास ने राम और उनके वंशी राजाओं के वर्णन पर अपना रघुवंश महाकाव्य लिखा।

5.) महाकवि भास ने भी श्रीराम के जीवन की घटना पर अपने उत्तर राम चरित्र नाम के नाटक ग्रन्थ की रचना की।

6.) अष्टाध्यायी के सूत्र नं0–6.3.130 में ऋषि विश्वामित्र शब्द की सिद्वि की गई हैं।

7.) उणादि कोष के तीसरे पाद के सातवें सूत्र भी व्याख्या करते हुए सिद्धांत कौमुदीकार ने और उसकी टीका तत्वबोधिनी ने लक्ष्मण को राम का भाई माना हैं।

8.) इसी प्रकार उणादि कोष के चालीसवें सूत्र की व्याख्या में सिद्धांत कौमुदी की टीका तत्वबोधिनी में लंका को राक्षसों की नगरी माना गया हैं।

9.) कपिल मुनि द्वारा रचित सांख्य दर्शन के चौथे अध्याय के 29 वें सूत्र में राम के बाबा अज का उल्लेख हुआ हैं और रामायण के सुन्दर काण्ड के अध्याय 24 श्लोक 11 में कपिल मुनि का उल्लेख किया गया हैं।

ये दोंनों सांख्य दर्शन और रामायण के उल्लेख जहाँ रामायण के कथानक की सत्यता को सिद्व कर रहे हैं, वहाँ यह भी प्रमाणित कर रहे हैं कि कपिल मुनि राम के पिता दशरथ के समकालीन थे।

10.) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा को काम क्रोधादि षट् रिपुओं के वश में नहीं होना चाहिए। यह बताते हुए अभिमान के कारण नष्ट हुए रामायण के रावण और महाभारत के दुर्योधन के उदाहरण दिये हुए हैं।

11.) रावण वेदों का विद्वान था, उसने वेदों पर भाष्य भी किया था जिसका उल्लेख स्वामी दयानंद ने अपनी पुस्तक ऋग्वेदादि "भाष्य भूमिका " में किया हैं।

12.) पुराने जैन और बौद्व ग्रन्थों में भी राम के जीवन का उल्लेख विविध प्रकार से किया हुआ हैं।

13.) इसी प्रकार प्राचीन काल में भारतीय लोग जिन–जिन भी विदेशों में गए उन सभी स्थानों पर, विशेषतः सुदूरपूर्व के देशों में रामायण के विषय में उल्लेख मिलते हैं। काल्पनिक कहानी इतनी लोकप्रिय नहीं हुआ करती।

14.) रामायण की ऐतिहासिकता को यह तथ्य भी प्रमाणित कर रहा हैं कि रावण के कुकृत्यों के कारण तब से लेकर आज तक भारतीय लोग अपनी संतान का नाम रावण या कुम्भकर्ण नहीं रखते।

इस प्रकार इन उपर्युक्त प्रमाणों के द्वारा यह सिद्व हो रहा है कि रामायण की घटना भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग की एक वास्तविक घटना हैं। काल्पनिक कथा नहीं। काल्पनिक कथा इतने विस्तृत भू भाग के जन मानस को इतने लम्बे समय तक प्रभावित नहीं करती। यह ठीक है कि प्रक्षेपकारों ने अपने कुकृत्यों से इस कथा को अच्छी तरह से रौंदा हैं। पर यह नितान्त अज्ञानता होगी कि इस कारण से उस महान स्वर्णिम घटना के अस्तित्व को ही नकार दिया जाय। → जाये

इसके लिए आवश्यक है कि जैसेः कीचड़ भरे सोने को अग्नि के द्वारा शुद्ध किया जाता हैं, वैसे ही समझदार लोग बुद्विमत्ता पूर्ण अनुसंधान के द्वारा प्रक्षेपरूपी मैल मिट्टी को दूर कर राम कथा के शुद्ध सुनहले रूप को जनता के समक्ष लाने का प्रयास करें, जैसा इस संशोधित रामायण के सम्पादक ने आरम्भिक प्रयास किया है। इति

बालकाण्ड

भूमिका भाग

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम्।। १।।
को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।। २।।

एक बार तप और स्वाध्याप में लगे हुए तथा विद्वानों में श्रेष्ठ मुनिवर नारदजी से तपस्वी वाल्मीकि जी ने पूछा कि हे मुने इस समय इस संसार में ऐसा व्यक्ति कौन है जो गुणवान, वीर्यवान, धर्म को जानने वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाला है?

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।। ३।।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।। ४।।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम्।

जो सदाचार से युक्त है, जो सारे प्राणियों का हित साधन करने वाला है, विद्वान और सामर्थ्यशाली है तथा जो सबसे अधिक सुन्दर है, जिसने मन पर अधिकार कर लिया और क्रोध को जीत लिया है। जो कान्तिमान है और किसी की निन्दा नहीं करता है। हे महर्षि यह जानने की बहुत इच्छा होने के कारण मैं यह सुनना चाहता हूँ और आप को ही यह जानकारी हो सकती है।

श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः।। ५।।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।। ६।।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी।

वाल्मीकि जी की इस बात को सुनकर, नारद जी ने जो कि सारे संसार का ज्ञान रखते थे उनसे प्रसन्नता पूर्वक कहा कि सुनिये— इस समय इक्ष्वाकु वंश में जन्म लेने वाले राम नाम के प्रसिद्ध ऐसे ही पुरुष है, जिन्होंने मन को वश में किया हुआ है, वे अत्यधिक बलवान, कान्तिवाले, धैर्यवान और जितेन्द्रिय हैं।

बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।। ७।।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः।। ८।।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।

वे बुद्धिमान है, नीति से युक्त है, बोलने में चतुर हैं, शोभा से युक्त और शत्रु को नष्ट करने वाले हैं। उनकी छाती विशाल है, वे एक बड़े धनुष को धारण करते हैं। उनकी गले की हड्डी मास से भरी हुई और हाथ घुटनों तक लम्बे तथा माथा सुन्दर है। उनका ललाट भव्य, चाल सुन्दर है। वे अपने शत्रुओं का संहार करने वाले बड़े विक्रमी हैं।

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।। ९।।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः।। १०।।
यशस्वीज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्।

उनका शरीर समानता से युक्त, सुडौल और देखने में चिकना है। वे बड़े तेजस्वी हैं। उनकी छाती भरी हुई, आँखें बड़ी, और अच्छे लक्षणों से युक्त तथा सुन्दर हैं। वे धर्म को जानने वाले, सत्य से युक्त, प्रजा की भलाई में लगे हुए, कीर्ति और ज्ञान से युक्त, पवित्र, मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले हैं।

प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।। ११।।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।। १२।।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः।

वे परमात्मा के समान प्रजा का पालन करते हैं, ऐश्वर्य से युक्त है, प्राणियों की तथा धर्म की रक्षा करते हुए वे शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं। वे अपने धर्म और अपने प्रिय जनों की रक्षा करते हैं। वे वेद और वेदांतों के तत्वों को जानते हैं और धनुर्विद्या में प्रवीण हैं।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।। १३।।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्माविचक्षणः।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।। १४।।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः।

वे सर्वशास्त्रों के तत्व को जानते हैं। वे स्मरण शक्ति और प्रतिभा से युक्त हैं। उनके विचार अच्छे और हृदय उदार है। वे सारे लोगों के प्रिय और चतुर हैं। जैसे सारी नदियाँ, समुद्र में मिलती हैं, वैसे ही सारे सज्जन पुरुष उनसे मिलते रहते हैं। वे श्रेष्ठ पुरुष सबके साथ समान व्यवहार करते हैं और सदा सबको प्रिय लगते हैं।

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।। १५।।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।। १६।।
तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्।
ज्येष्ठं ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम्।। १७।।
प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया।
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत् प्रीत्या महीपतिः।। १८।।

सारे गुणों से युक्त वे श्रीराम अपनी माता कौशल्या के आनन्द को बढ़ाया करते हैं। वे गम्भीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं। वे क्षमा करने में पृथ्वी के समान और क्रोध के समय मृत्यु के समान होते हैं।

उनके पिता राजा दशरथ ने एक बार अपने ऐसे उस ज्येष्ठ पुत्र को, जो गुणों में भी सबसे बड़े थे, सत्य पराक्रम वाले थे और सदा प्रजा की भलाई में लगे रहते थे, प्रजा के भलाई के लिये और प्रेम वश यौवराज्य के पद पर बैठना चाहा।

तस्याभिषेकसम्भारान् दृष्ट्वा भार्याथ कैकयी।
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत।। १९।।
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम्।
स सत्यवचनाद् राजा धर्मपाशेन संयतः।। २०।।
विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम्।

तब राम के अभिषेक की तैयारियाँ देखकर रानी कैकेयी ने, जिसे पहले ही राजा ने वर दे रखा था, राजा से राम के वनवास और भरत के अभिषेक की याचना की। तब राजा ने धर्म के बन्धन में बँधे हुए होने और अपने वचनों की सत्यता के कारण प्रिय पुत्र राम को वनवास दे दिया।

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन्।। २१।।
पितुर्वचननिर्देशात् कैकेय्याः प्रियकारणात्।
तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह।। २२।।
स्नेहाद् विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः।
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन्।। २३।।

तब वे वीर श्रीराम पिता के निर्देश के अनुसार प्रतिज्ञा का पालन करते हुए, कैकेयी का प्रिय करने के लिये वन के लिये चल दिये। तब उनके प्रिय भाई लक्ष्मण भी जो कि अपनी माता सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले थे, विनय से युक्त थे, और राम को बहुत प्रिय थे, अपने भाई के प्रति प्रेम को दिखाते हुए स्नेहवश उन्ही के पीछे पीछे वन को चल पड़े।

रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता।
जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता।। २४।।
सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः।
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा।। २५।।
पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च।

उस समय राम की पत्नी सीता, जो उनकी प्राणों के समान प्यारी थी, जनक के कुल में उत्पन्न, और देवमाया के समान सुन्दरी थी, और अच्छे लक्षणों से युक्त तथा स्त्रियों में सर्वोत्तम वधू थी वह भी चन्द्रमा के पीछे चलने वाली रोहिणी के समान, राम के मार्ग का अनुसरण करती हुई उनके साथ वन को चली गयी। उनके पिता दशरथ तथा पुरवासियों ने भी दूर तक उनका पीछा किया।

शृङ्गवेरपुरे सूतं, गंगाकूले व्यसर्जयत्।। २६।।
गुहमासाद्य धर्मात्मा, निषादाधिपतिं प्रियम्।
चित्रकूटमनुप्राप्य, भरद्वाजस्य शासनात्।। २७।।
रम्यमावसथं कृत्वा, रममाणा वने त्रयः।

जब श्रीराम जी श्रृंगवेर पुर में गंगा के तट पर निषादों के राजा प्रिय गुह के पास पहुँचे तब उस धर्मात्मा ने अपने सारथी को भी विदा कर दिया और भारद्वाज मुनि की आज्ञा से चित्रकूट में कुटी बनाकर वहीं आनन्द से रहने लगे।

चित्रकूटं गते रामे, पुत्रशोकातुरस्तदा।। २८।।
राजा दशरथः स्वर्गं, जगाम विलपन् सुतम्।
गते तु तस्मिन् भरतो, वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः।। २९।।
नियुज्यमानो राज्याय, नैच्छद् राज्यं महाबलः।
स जगाम वनं वीरो, रामपादप्रसादकः।। ३०।।

उधर राम के चित्रकूट चले जाने पर राजा दशरथ पुत्र शोक में विलाप करते हुए दिवंगत हो गये। उनकी मृत्यु के पश्चात महावीर भरत जी ने वसिष्ठ आदि प्रमुख ब्राह्मणों के

द्वारा उन्हें राज्य के लिये नियुक्त करने पर भी राज्य की कामना नहीं की और श्रीराम को प्रसन्न करने के लिये ही वन को प्रस्थान किया।

गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
अयाचद् भ्रातरं राममार्य भावपुरस्कृतः।। ३१।।
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत्।

शुद्ध भावना से युक्त भरतजी ने राम के समीप पहुँच कर अपने सत्य पराक्रमी भाई राम से प्रार्थना की कि आप ही राजा बनें।

रामोऽपि परमोदारः, सुमुखः सुमहायशाः।। ३२।।
न चैच्छत् पितुरादेशाद्, राज्यं रामो महाबलः।
पादुके चास्य राज्याय, न्यासं दत्त्वा पुनः पुनः। ३३।।
निवर्तयामास ततो, भरतं भरताग्रजः।

किन्तु राम भी बड़े उदार, सुन्दर मुख वाले, बड़े बलवान और महान यशस्वी थे। उन्होंने भी पिता के आदेश के पालन की इच्छा से राज्य को स्वीकार नहीं किया और राज्य के चिह्न के रूप में भरत को अपनी खड़ाऊं देकर तथा बार-बार आग्रह करके उन्हें वापिस लौटा दिया।

स काममनवाप्यैव, रामपादावुपस्पृशन्।। ३४।।
नन्दिग्रामेऽकरोद् राज्यं, रामागमनकाङ्क्षया।
गते तु भरते श्रीमान्, सत्यसंघो जितेन्द्रियः।। ३५।।
रामस्तु पुनरालक्ष्य, नागरस्य जनस्य च।
तत्रागमनमेकाग्रो, दण्डकान् प्रविवेश ह।। ३६।।

भरतजी ने अपनी इच्छा के पूर्ण न होने पर राम के चरणों का स्पर्श कर नन्दी ग्राम में रहते हुए, राम के आगमन की इच्छा के साथ राज करना प्रारम्भ कर दिया। उधर भरत के लौट जाने पर चित्रकूट में लोगों का आना जाना देखकर श्रीराम ने दण्डकारण्य में प्रवेश किया।

प्रविश्य तु महारण्यं, रामो राजीवलोचनः।
विराधं राक्षसं हत्वा, शरभङ्गं ददर्श ह।। ३७।।
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं, च आगस्त्यभ्रातरं तथा।

उस महान वन में प्रवेश करके राजीव लोचन श्रीराम ने विराध नाम के राक्षस का वध करके शरभंग मुनि, सुतीक्ष्ण मुनि, अगस्त्य मुनि के भाई और अगस्त्य मुनि के दर्शन किये।

वसतस्तस्य रामस्य, वने वनचरैः सह।। ३८।।
ऋषयोऽभ्यागमन् सर्वे, वधायासुररक्षसाम्।
स तेषां प्रतिशुश्राव, राक्षसानां तदा वने।। ३९।।
प्रतिज्ञातश्च रामेण, वधः संयति रक्षसाम्।
ऋषीणामग्निकल्पानां, दण्डकारण्यवासिनाम्। ४०।।

वन में वनचरों के साथ रहते हुए एक दिन श्रीराम के पास ऋषि लोग राक्षसों के वध के लिये निवेदन करने के लिये आये। तब श्रीराम ने उन अग्नि के समान तेजस्वी दण्डकारण्य वासी ऋषियों को वन में राक्षसों का वध करने का वचन दिया।

तेन तत्रैव वसता, जनस्थाननिवासिनी।
विरूपिता शूर्पणखा, राक्षसी कामरूपिणी।। ४१।।
ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान्।
खरं त्रिशिरसं चैव, दूषणं चैव राक्षसम्।। ४२।।
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान्।
वने तस्मिन् निवसता, जनस्थाननिवासिनाम्।। ४३।।
रक्षसां निहतान्यासन्, सहस्राणि चतुर्दश।

वहाँ रहते हुए उन्होंने जनस्थान में रहने वाली, और इच्छाके अनुसार रूप बदलने वाली शूर्पणखा नाम की राक्षसी को उसके नाक,कान काट कर कुरूप बना दिया। तब शूर्पणखा के कहने से युद्ध करने आये खर, दूषण और त्रिशिरा नाम के तथा साथ आने वाले दूसरे राक्षसों को भी उन्होंने मार दिया। श्रीराम ने वन में रहते हुए जनस्थान के चौदह हजार राक्षसों का वध किया था।

ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा, रावणः क्रोधमूर्च्छितः।। ४४।।
सहायं वरयामास, मारीचं नाम राक्षसम्।
वार्यमाणः सुबहुशो, मारीचेन स रावणः।। ४५।।
न विरोधो बलवता, क्षमो रावण तेन ते।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं, रावणः कालचोदितः।। ४६।।
जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा।

तब अपने जाति भाइयों के वध के विषय में सुनकर रावण क्रोध से मूर्छित हो गया और उसने मारीचि नाम के राक्षस से सहायता मांगी। यद्यपि मारीचि ने उसे यह कह कर कि बलवान के साथ विरोध करना ठीक नहीं बहुत मना किया पर मृत्यु से प्रेरित हो कर रावण ने उसकी एक न सुनी और उसे लेकर राम के आश्रम पर आया।

तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ।। ४७।।
जहार भार्यां रामस्य, गृध्रं हत्वा जटायुषम्।
गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा, हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम्।। ४८।।
राघवः शोकसंतप्तो, विललापाकुलेन्द्रियः।

मायावी राक्षस मारीचि के द्वारा उसने दोनों राज कुमारों को आश्रम से दूर हटा दिया और तब उसने जटायु नाम के गृद्ध को मारकर राम की पत्नी सीता का अपहरण कर लिया। तब जटायु को मारा हुआ देख कर और सीता के हरण के विषय में सुन कर राम शोक से संतप्त व्याकुलेन्द्रिय होकर विलाप करने लगे।

ततस्तेनैव शोकेन, गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम्।। ४९।।
मार्गमाणो वने सीतां, रामो दशरथात्मजः।
पम्पातीरे हनुमता, सङ्गतो वानरेण ह।। ५०।।
हनुमद्वचनाच्चैव, सुग्रीवेण समागतः।

फिर उस शोकावास्था में ही जटायु की अन्त्येष्टि करके, सीता को वन में ढूँढ़ते हुए दशरथ पुत्र श्रीराम पम्पा सरोवर के किनारे हनुमान जी से मिले और उनकी सलाह से वे फिर सुग्रीव से भी मिले।

सुग्रीवाय च तत्सर्वं, शंसद्रामो महाबलः।। ५१।।
आदितस्तद् यथावृत्तं, सीतायाश्च विशेषतः।
सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं, श्रुत्वा रामस्य वानरः।। ५२।।
चकार सख्यं रामेण, प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्।

महा बलवान श्रीराम ने सुग्रीव से अपना और विशेष कर सीता का आदि से लेकर सारा वृत्तान्त जैसा हुआ था वैसा कह सुनाया। सुग्रीव ने राम की सारी कहानी सुन कर राम के साथ अग्नि की साक्षी देकर मित्रता स्थापित कर ली।

ततो वानरराजेन, वैरानुकथनं प्रति।। ५३।।
रामायावेदितं सर्वं, प्रणयाद् दुःखितेन च।
प्रतिज्ञातं च रामेण, तदा वालिवधं प्रति।। ५४।।
वालिनश्च बलं तत्र, कथयामास वानरः।
सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे।। ५५।।

तब वानर राज सुग्रीव ने स्नेह युक्त होकर राम को दुःख के साथ बाली से वैर होने की सारी बात बताई। उस समय राम ने बाली को मारने की प्रतिज्ञा की। सुग्रीव को क्योंकि राम के बल और तेज के विषय में शंका थी, अतः उसने उनसे बाली की शक्ति का वर्णन किया।

बिभेद च पुनस्तालान्, सप्तैकेन महेषुणा।
उत्स्मयित्वा महाबाहुः, जनयन् प्रत्ययं तदा।। ५६।।
ततः प्रीतमनास्तेन, विश्वस्तः स महाकपिः।
किष्किन्धां रामसहितो, जगाम च गुहां तदा।। ५७।।

तब लम्बी भुजाओं वाले श्रीराम ने थोड़ा मुस्कारा कर अपना विश्वास दिलाने के लिये अपने एक ही बाण से सात ताल के वृक्षों को भेद दिया। यह देख सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ, उसका राम की शक्ति पर विश्वास हो गया और वे सब राम के साथ किष्किंधा के समीप गये।

ततोऽगर्जद्धरिवरः, सुग्रीवो हेमपिङ्गलः।
तेन नादेन महता, निर्जगाम हरीश्वरः।। ५८।।
अनुमान्य तदा तारां, सुग्रीवेण समागतः।
निजघान च तत्रैनं, शरेणैकेन राघवः।। ५९।।

तब वहाँ श्रेष्ठ वीरवर, सुनहली कान्ति वाले सुग्रीव ने गर्जन करके बाली को ललकारा। उसे सुनकर बाली अपनी पत्नी तारा की सलाह को अनसुना करके किष्किंधा से बाहर आया वहां श्रीराम ने एक बाण से उसे मार गिराया।

ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे।
सुग्रीवमेव तद्राज्ये, राघवः प्रत्यपादयत्।। ६०।।
स च सर्वान् समानीय, वानरान् वानरर्षभः।
दिशः प्रस्थापयामास, दिदृक्षुर्जनकात्मजाम्।। ६१।।

इस प्रकार राम ने सुग्रीव को दिये वचन के अनुसार युद्ध में बाली को मार सुग्रीव को उसके राज्य पर बिठा दिया। तब सुग्रीव ने सारे वानरों को बुला कर उन्हें सीता जी के अन्वेषण के लिये सारी दिशाओं में भेजा।

ततो गृध्रस्य वचनात्, सम्पातेर्हनुमान् बली।
शतयोजनविस्तीर्णं, पुप्लुवे लवणार्णवम्।। ६२।।
तत्र लङ्कां समासाद्य, पुरीं रावणपालिताम्।
ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम्।। ६३।।

तब बलवान हनुमान सम्पाती नाम के गृद्ध के कहने से सौ योजन विस्तृत खारे समुद्र को लाँघ कर रावण के द्वारा रक्षित लंका में पहुँच गये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने अशोक वाटिका में चिन्तामग्न सीता को देखा।

निवेदयित्वाभिज्ञानं, प्रवृत्तिं विनिवेद्य च।
रामाय प्रियमाख्यातुं, पुनरायान्महाकपिः।। ६४।।
सोऽभिगम्य महात्मानं, कृत्वा रामं प्रदक्षिणम्।
न्यवेदयदमेयात्मा, दृष्टा सीतेति तत्त्वतः।। ६५।।

सीताजी को अपनी पहचान देकर तथा उनसे श्रीराम का सन्देश कह कर वह महान वानर हनुमान राम को प्रिय संन्देश सुनाने के लिये वापिस आ गये। वहाँ उन अपरिमित बुद्धि

वाले ने राम की प्रदक्षिणा करके उनसे सीता जी को देख लिया ऐसा सत्य निवेदन किया।

ततः सुग्रीवसहितो, गत्वा तीरं महोदधेः।
समुद्रं क्षोभयामास, नलं सेतुमकारयत्।। ६६।।
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां, हत्वा रावणमाहवे।
अभिषिच्य च लङ्कायां, राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।। ६७।।
कृतकृत्यस्तदा रामो, विज्वरः प्रमुमोद ह।
अयोध्यां प्रस्थितो रामः, पुष्पकेण सुहृद्वृतः।। ६८।।

तत्पश्चात् श्रीराम सुग्रीव के साथ समुद्र के किनारे गये और वहाँ समुद्र का अवगाहन कर उन्होंने नल के द्वारा समुद्र पर बाँध बनवाया। उस बाँध के द्वारा लंका पुरी में जाकर उन्होंने रावण को युद्ध में मारा और विभीषण को लंका की राज्य गद्दी पर बैठा कर वे अपने आपको कृतकृत्य समझ कर निश्चिन्त और प्रसन्न हुए। उसके बाद विभीषण, सुग्रीव आदि मित्रों के साथ उन्होंने पुष्पक विमान के द्वारा अयोध्या को प्रस्थान किया।

भरद्वाजाश्रमं गत्वा, रामः सत्यपराक्रमः।
भरतस्यान्तिके रामो, हनूमन्तं व्यसर्जयत्।। ६९।।
पुनराख्यायिकां जल्पन्, सुग्रीवसहितस्तदा।
पुष्पकं तत् समारुह्य, नन्दिग्रामं ययौ तदा।। ७०।।
नन्दिग्रामे जटां हित्वा, भ्रातृभिः सहितोऽनघः।
रामः सीतामनुप्राप्य, राज्यं पुनरवाप्तवान्।। ७१।।

वहाँ से भरद्वाज मुनि के आश्रम में आकर सत्य पराक्रमी राम ने पहले हनुमान जी को भरत जी के पास नन्दी ग्राम में भेजा, और फिर स्वयं पुष्पक विमान पर आरूढ होकर सुग्रीव के साथ कथा वार्ता करते हुए नन्दी ग्राम में पहुँचे। निष्पाप श्रीराम ने नन्दी ग्राम में भाइयों के साथ अपनी जटाएँ कटवा कर सीता जी को पाने के पश्चात अपने राज्य को भी पुनः प्राप्त कर लिया।

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः, पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च, दुर्भिक्षभयवर्जितः।। ७२।।
न चापि क्षुद्भयं तत्र, न तस्करभयं तथा।
नगराणि च राष्ट्राणि, धनधान्ययुतानि च।। ७३।।

अब श्रीराम के राज्य में प्रजा के लोग प्रसन्न, सन्तुष्ट और स्वस्थ और धर्म का पालन करने वाले हैं। उन्हें कोई बीमारी नहीं है तथा उन्हें दुर्भिक्ष आदि का भी भय नहीं है। उन्हें न तो भूख का डर है न चोरों का। इस समय सारा राष्ट्र और सारे नगर धनधान्य से भरे हुए हैं।

नारदस्य तु तद् वाक्यं, श्रुत्वा वाक्यविशारदः।
पूजयामास धर्मात्मा, सहशिष्यो महामुनिम्।। ७४।।
यथावत् पूजितस्तेन, देवर्षिर्नारदस्तथा।
आपृच्छ्यैवाभ्यनुज्ञातः, स जगाम विहायसम्।। ७५।।

नारद जी की वाणी को सुनकर, वाक्यविशारद और धर्मात्मा वाल्मीकि मुनि ने शिष्यों के साथ उनकी पूजा की। पूजा के पश्चात देवर्षि नारद जी ने उनसे जाने के लिये आज्ञा माँगी और आज्ञा मिल जाने पर वे आकाश मार्ग से चले गये।

स तु तीरं समासाद्य, तमसाया मुनिस्तदा।
शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे, दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम्।। ७६।।

उसके पश्चात वाल्मीकि जी तमसा के किनारे गये। तमसा के उस तीर पर घाट को कीचड़ रहित देखकर उन्होंने समीप ही विद्यमान अपने शिष्य से कहा।

अकर्दममिदं तीर्थं, भरद्वाज निशामय।
रमणीयं प्रसन्नाम्बु, सन्मनुष्यमनो यथा।। ७७।।
न्यस्यतां कलशस्तात, दीयतां वल्कलं मम।
इदमेवावगाहिष्ये, तमसातीर्थमुत्तमम्।। ७८।।
एवमुक्तो भरद्वाजो, वाल्मीकेन महात्मना।
प्रायच्छत मुनेस्तस्य, वल्कलं नियतो गुरोः।। ७९।।

भरद्वाज सुनो! यह स्नान करने का स्थान कीचड़ से रहित है। यहाँ का जल भी सत्पुरुष के मन के समान स्वच्छ है। इसलिये हे तात, कलश को रख दो और मेरा वल्कल मुझे दे दो। मैं तमसा की इस उत्तम स्नान करने की जगह पर ही स्नान करूँगा। महात्मा वाल्मीकि के ऐसा कहने पर, नियम पालन में युक्त भरद्वाज ने गुरु मुनि वाल्मीकि का वल्कल वस्त्र उन्हें दे दिया।

स शिष्यहस्तादादाय, वल्कलं नियतेन्द्रियः।
विचचार ह पश्यंस्तत्, सर्वतो विपुलं वनम्।। ८०।।
तस्याभ्याशे तु मिथुनं, चरन्तमनपायिनम्।
ददर्श भगवांस्तत्र, क्रौञ्चयोश्चारुनिःस्वनम्।। ८१।।

वह जितेन्द्रिय मुनि शिष्य के हाथ से वल्कल वस्त्र को लेकर, उस वन की सुन्दरता को देखते हुए घूमने लगे। तब उन्होंने अपने समीप ही क्रौञ्च पक्षी के एक जोड़े को भ्रमण करते हुए देखा, जो एक दूसरे के साथ ही रहता था। वह मधुर बोली बोल रहा था और देखने में भी सुन्दर था।

तस्मात् तु मिथुनादेकं, पुमांसं पापनिश्चयः।
जघान वैरनिलयो, निषादस्तस्य पश्यतः।। ८२।।
तं शोणितपरीताङ्गं, चेष्ठमानं महीतले।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा, रुराव करुणां गिरम्।। ८३।।
वियुक्ता पतिना तेन, द्विजेन सहचारिणा।
ताम्रशीर्षेण मत्तेन, पत्त्रिणा सहितेन वै।। ८४।।

तभी एक पक्षियों से वैर रखने वाले व्याध ने जिसके मन में पाप पूर्ण विचार था, मुनि के देखते हुए उस जोड़े में से नर पक्षी को मार दिया। अपने पति को खून से लथपथ शरीर के साथ भूमि पर पड़े और तड़फते हुए देख कर उसकी पत्नी क्रौंची बड़े करुण स्वर में विलाप करने लगी। उसका पति जो सदा उसके साथ रहता था, जिसका मस्तक ताँबे के समान लाल था और जो काम भावना में मस्त था, उससे अलग हो गया था। वह बेचारी बड़ी दुःखी हो कर रो रही थी।

तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा, निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य, कारुण्यं समपद्यत।। ८५।।
ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत्।। ८६।।

व्याध के द्वारा गिराये हुए उस नर पक्षी की यह दशा देख कर मुनि को बड़ी दया आयी। करुण हृदय वाले ऋषि ने यह अधर्म हुआ है यह सोच कर उस रोती हुई क्रौंची को सुनाकर यह बात कही। कि–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। ८७।।
तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया।। ८८।।

हे निषाद! तुझे कभी भी प्रतिष्ठा प्राप्त न हो। तूने क्रौंच के जोड़े मे से एक की जो काम भावना से मोहित हो रहा था, हत्या कर दी। ऐसा कह कर जब ऋषि ने विचार किया तब उनके हृदय में चिन्ता हुई कि अरे यह मैने पक्षी के शोक से पीड़ित होकर क्या कह दिया।

चिन्तयन् स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम्।
शिष्यं चैवाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः।। ८९।।
पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।। ९०।।

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो, मुनेर्वाक्यमनुत्तमम्।
प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः।। ९१।।

इस प्रकार चिन्ता करते हुए उन महा ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि के मन में एक विचार आया। तब उन्होंने अपने शिष्य से कहा-- हे तात! मेरे दुःख से पीड़ित हुए के मुख से जो वाक्य निकला, वह तो चार चरणों में बद्ध है, चारों चरणों में समान संख्या के अक्षर हैं और इसे वीणा पर गाया जा सकता है, वास्तव में यह वाक्य श्लोक के रूप में है किसी और प्रकार का नहीं है। शिष्य ने मुनि की उस उत्तम बात को सुनकर प्रसन्नता से उसका समर्थन किया। शिष्य के समर्थन से मुनि को भी प्रसन्नता हुई।

सोऽभिषेकं ततः कृत्वा, तीर्थे तस्मिन् यथाविधि।
तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः।। ९२।।
भरद्वाजस्ततः शिष्योविनीतः श्रुतवान् गुरोः।
कलशं पूर्णमादाय, पृष्ठतोऽनुजगाम ह।। ९३।।
स प्रविश्याश्रमपदं, शिष्येण सह धर्मवित्।
उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः।। ९४।।

तत्पश्चात् उस जगह विधि पूर्वक स्नान करके, उसी विषय में विचार करते हुए मुनि वापिस चल दिये। उनका विनीत और शास्त्रज्ञ शिष्य भरद्वाज भी जल से भरा हुआ कलश लेकर उनके पीछे चल रहा था। वे धर्मज्ञ मुनि शिष्य के साथ आश्रम में पहुँच कर बैठे और दूसरी बातें करने लगे, पर उनका ध्यान उन श्लोक में ही लगा हुआ था।

तस्य बुद्धिरियं जाता, महर्षेर्भावितात्मनः।
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम्।। ९५।।
उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदास्य,
रामस्य चकार कीर्तिमान्।
समाक्षरैः श्लोकाशतैर्यशस्विनो,
यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः।। ९६।।

तब उन महार्षि ने, जिनके हृदय में श्लोकोत्पत्ति के कारण उत्साह था, यह निश्चय किया कि मुझे ऐसे ही श्लोकों में सम्पूर्ण रामायण काव्य की रचना करनी चाहिये। उस निश्चय के अनुसार उन कीर्तिमान और उदार दृष्टि वाले मुनि ने श्रीराम के उदाचरित्रों को प्रकट करने वाले सुन्दर पदों से युक्त समान अक्षरों वाले सैंकड़ो श्लोकों के द्वारा रामायण महाकाव्य की रचना की, जो उनके यश को बढ़ाने वाला है।

पहला सर्गः

राजा दशरथ द्वारा सुरक्षित अयोध्यापुरी तथा उनकी राज्य व्यवस्था

कोशलो नाम मुदितः, स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे, प्रभूतधनधान्यवान्।। १।।
अयोध्या नाम नगरी, तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण, या पुरी निर्मिता स्वयम्।। २।।

सरयू नदी के किनारे प्रचुर धनधान्य से सम्पन्न सुखी और समृद्धि शाली कोशल नामका एक प्रसिद्ध जनपद है। वहीं सारे लोकों में प्रसिद्ध अयोध्या नाम की नगरी है, जिसका निर्माण स्वयं मानवेन्द्र मनु के द्वारा किया गया था।

आयता दश च द्वे च, योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा, सुविभक्तमहापथा।। ३।।
राजमार्गेण महता, सुविभक्तेन शोभिता।
सुक्तपुष्पावकीर्णेन, जलसिक्तेन नित्यशः।। ४।।

ऐश्वर्य शाली वह नगरी बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी थी। बड़े बड़े मार्गों द्वारा उसे अनेक भागों में बांटा हुआ था। उसमें अनेक विभागों से युक्त एक बड़ा राजमार्ग भी था, जिस पर नित्य जल का छिड़काव किया जाता था और खिले हुए फूल बिखेरे जाते थे।

तां तु राजा दशरथो, महाराष्ट्रविवर्धनः।
पुरीमावासयामास, दिवि देवपतिर्यथा।। ५।।
कपाटतोरणवतीं, सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः।। ६।।

जैसे स्वर्ग अर्थात् तिब्बत में देवताओं के स्वामी इन्द्र ने अपनी राजधानी को बनाया था, उसी प्रकार अपने महान राष्ट्र की वृद्धि करने वाले राजा दशरथ ने उस पुरी को विशेष रूप से बसाया था। उस पूरी में बड़े बड़े किवाड़ों से युक्त बड़े फाटक थे, जगह जगह अलग-अलग प्रकार के बाजार थे। सब प्रकार के यन्त्रों और अस्त्रशस्त्रों का वहां संग्रह किया हुआ था और वहां सभी प्रकार के कारीगरों का निवास था।

सूतमागधसम्बाधां, श्रीमतीमतुलप्रभाम्।
उच्चाट्टालध्वजवतीं, शतघ्नीशतसंकुलाम्।। ७।।
वधूनाटकसंघैश्च, संयुक्तां सर्वतः पुरीम्।
उद्यानाम्रवणोपेतां, महतीं सालमेखलाम्।। ८।।

वहाँ स्तुतिपाठ करने वाले सूतों और वंशावली का बखान करने वाले मागधों का एक बड़ा समुदाय रहता था। ऐश्वर्यशालिनी वह नगरी अद्वितीय शोभा से सम्पन्न थी। वहाँ ऊँचे-ऊँचे ध्वज लहराया करते थे और वहाँ सैकड़ों शतघ्नियाँ अर्थात् तोपें विद्यमान थीं। उस नगरी में स्त्रियाँ ही जिनमें अभिनय करती थीं, ऐसी अनेक नाटक मण्डलियाँ थीं, उसमें बड़े-बड़े उद्यान और आमों के बगीचे थे। साखू के जंगलों ने उसे चारों तरफ से घेरा हुआ था।

दुर्गगम्भीरपरिखां, दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।
वाजिवारणसम्पूर्णां, गोभिरुष्ट्रैः खरैस्तथा।। ९।।
सामन्तराजसंघैश्च, बलिकर्मभिरावृताम्।
नानादेशनिवासैश्च, वणिग्भिरुपशोभिताम्।। १०।।

उस नगर के किले के चारों तरफ गहरी खाई थी, जिसके कारण दूसरों के लिये वहां पहुँचना और उसे जीतना कठिन था। वह नगरी हाथी, घोड़ों, गायों, ऊँटों और गदहों से भरी हुई थी। कर देने वाले राजा और सरदार लोग वहाँ सदा विद्यमान रहते थे तथा विभिन्न देशों से आने वाले व्यापारी उसकी शोभा को बढ़ाया करते थे।

प्रासादै रत्नविकृतैः, पर्वतैरिव शोभिताम्।
कूटागारैश्च सम्पूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम्।। ११।।
चित्रामष्टापदाकारां, नरनारीगणायुताम्।
सर्वरत्नसमाकीर्णां, विमानगृहशोभिताम्।। १२।।

वहाँ रत्नों से जड़े हुए बड़े-बड़े महल पर्वतों के समान शोभा देते थे। वहाँ अनेक गुप्त गृह थे। वह इन्द्र की राजधानी अमरावती के समान लगती थी। अष्टपद अर्थात् द्यूत फलक के आकार की वह नगरी विचित्र शोभा वाली थी। वहाँ श्रेष्ठ नारियाँ निवास करती थीं। वह नगरी सब प्रकार के रत्नों से भरी हुई और सतमहले मकानों से सुशोभित थी।

गृहगाढामविच्छिद्रां, समभूमौ निवेशिताम्।
शालितण्डुलसम्पूर्णामिक्षुकाण्डरसोदकाम् ।। १३।।
दुन्दुभीभिर्मृदङ्गैश्च, वीणाभिः पणवैस्तथा।
नादितां भृशमत्यर्थं, पृथिव्यां तामनुत्तमाम्।। १४।।

वहाँ मकानों की इतनी अधिकता थी, कि अब और मकान बनाने की जगह नहीं थी। वहाँ का पानी ईख के रस के समान मीठा था और वह शाली चावलों से भरी हुई थी।

वह पृथ्वी पर सर्वोत्कृष्ट नगरी थी। वहाँ दुदुम्भी, मृदंग, वीणा, पणव, आदि वाद्यों की ध्वनि सदा गूँजती रहती थी।

ये च बाणैर्न विध्यन्ति, विविक्तमपरापरम्।
शब्दवेध्यं च बिततं, लघुहस्ता विशारदाः।।१५।।
सिंहव्याघ्रवराहाणां, मत्तानां नदतां वने।
हन्तारो निशितैः शस्त्रैर्बलाद् बाहुबलैरपि।।१६।।
तादृशानां सहस्त्रैस्तामभिपूर्णां महारथैः।
पुरीमावासयामास, राजा दशरथस्तदा।।१७।।

उस पुरी को राजा दशरथ ने बसाया था। उसमें ऐसे सहस्त्रों महारथी निवास करते थे, जो समूह से बिछुड़े हुए असहाय, सहायकों से हीन, युद्ध से भागने वाले और शब्द वेधी बाण द्वारा बेधे जा सकने वाले व्यक्तियों पर बाण नहीं चलाते थे। जो अपने सधे हुए हाथों से शीघ्रता पूर्वक निशाना लगा सकते थे और अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग में कुशल थे, तथा जो वन में गर्जते हुए मतवाले सिंहों, बाघों और सूअरों को तीखे शस्त्रों और भुजाओं से भी बल पूर्वक मार सकते थे।

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां
द्विजोत्तमैर्वेदषड्गपारगैः ।
सहस्त्रदैः सत्यरतैर्महात्मभि-
र्महर्षिकल्पैः ऋषिभिश्च केवलैः।।१८।।

उस नगरी को गुणवान, अग्निहोत्री वेद वेदांगों के विद्वान, श्रेष्ठ ब्राह्मण, जो सहस्त्रों का दान करते थे, सत्यवादी महात्मा थे और महर्षियों के समान थे, सदा घेरे रहते थे।

तस्यां पुर्यामयोध्यायां, वेदवित् सर्वसंग्रहः।
दीर्घदर्शी महातेजाः, पौरजानपदप्रियः।।१९।।
इक्ष्वाकूणामतिरथी, यज्वा धर्मपरो वशी।
महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।२०।।
बलवान् निहतामित्रो, मित्रवान् विजितेन्द्रियः।
धनैश्च संचयैश्चान्यैः, शक्रवैश्रवणोपमः।।२१।।
यथा मनुर्महातेजा, लोकस्य परिरक्षिता।
तथा दशरथो राजा, लोकस्य परिरक्षिता।।२२।।

उस नगरी में राजा दशरथ रहते थे। वे वेदों के जानकार और सब पदार्थो का संग्रह करने वाले थे, वे दूरदर्शी, महान तेजस्वी और नगर वासियों के प्रिय थे। इक्ष्वाकुवंश के अतिरथी वीर थे। वे यज्ञशील, धर्मपरायण और जितेन्द्रिय थे। महर्षियों के समान वे राजर्षि तीनों लोको में प्रसिद्ध थे। वे बलवान थे। उन्होने अपने शत्रुओं को समाप्त कर दिया था अतः वे मित्रों से युक्त थे। धन तथा दूसरों पदार्थो में वे इन्द्र और कुबेर के समान थे। वे मनु के समान अपनी प्रजा का पालन करते थे।

तेन सत्याभिसंधेन, त्रिवर्गमनुतिष्ठता।
पालिता सा पुरी श्रेष्ठा, इन्द्रेणेवामरावती।। २३।।
तस्मिन् पुरवरे हृष्टा, धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः।। २४।।

जैसे इन्द्र अमरावती का पालन करते हैं, वैसे ही उन सत्यवादी तथा धर्म, अर्थ और काम का सम्पादन करने वाले राजा के द्वारा अयोध्या नगरी का पालन किया जाता था। उस श्रेष्ठ नगर में रहने वाले मनुष्य भी सब प्रसन्न, धार्मिक तथा विद्वान थे। वे अपने धन से सन्तुष्ट, लालच से रहित और सत्यवादी थे।

नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत् तस्मिन् पुरोत्तमे।
कुटुम्बीयो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्।। २५।।
कामी वा न कदर्यो वा, नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां, नाविद्वान् न च नास्तिकः।। २६।।

उस नगर में सभी के पास वस्तुओं का बड़ी मात्रा में संग्रह था। सभी धर्म अर्थ और काम को सिद्ध करने वाले थे। सभी के पास गाय, बैल, घोड़े और धन धान्य थे। अयोध्या में कहीं भी ऐसा व्यक्ति जो कामी हो, कायर हो, निर्दय हो, या अशिक्षित या नास्तिक हो देखने को नहीं मिलता था।

सर्वे नराश्च नार्यश्च, धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां, महर्षय इवामलाः।। २७।।
नाकुण्डली नामुकुटी, नास्त्रग्वीनाल्पभोगवान्।
नामृष्टो न नलिप्ताङ्गो, नासुगन्धश्च विद्यते।। २८।।

वहाँ सारे नर और नारी धार्मिक, जितेन्द्रिय, प्रसन्नचित्त और शील तथा सदाचार में ऋषियों के समान निर्मल थे। वहाँ कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं था जिसके पास कुण्डल, मुकुट तथा पुष्पहार न हों, या भोग सामग्री कम हो, या स्वच्छ शरीर वाला न हों, या जो सुगन्धों से वंचित हो तथा जिसने चन्दन आदि का लेप न किया हुआ हो।

नामृष्टभोजी नादाता, नाप्यनङ्गदनिष्कधृक्।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान्।। २९।।
नानाहिताग्निर्नायज्वा, न क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां, न चावृत्तो न संकरः।। ३०।।

वहाँ कोई भी अपवित्र भोजन को नहीं करता था, या कोई भी दानरहित नहीं था। वहाँ सभी ने अंगद, निष्क तथा अन्य हाथ के आभूषण धारण किये हुए थे। मन को वश में न रखने वाला तो वहाँ कोई था ही नहीं। वहाँ कोई भी व्यक्ति छोटे पन से युक्त, चोर, सदाचार से रहित या वर्णसंकर नहीं था। वहाँ सभी अग्निहोत्र और यज्ञों के करने वाले थे।

स्वकर्मनिरता नित्यं, ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः।
दानाध्ययनशीलाश्च, संयताश्च प्रतिग्रहे।। ३१।।
नास्तिको नानृती वापि, न कश्चिदबहुश्रुतः।
नासूयको न चाशक्तो, नाविद्वान् विद्यते कचित्।। ३२।।

वहाँ के ब्राह्मण जितेन्द्रिय तथा सदा अपने-अपने कार्य में लगे रहते थे। वे प्रतिग्रह में संयम से युक्त थे और स्वभाव से दान और स्वाध्याय युक्त थे। वहाँ कोई भी ब्राह्मण नास्तिक, झूठ बोलने वाला, कम पढ़ा लिखा, दूसरों से द्वेष रखने वाला, कमजोर तथा अविद्वान न था।

वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु, देवतातिथिपूजकाः।
कृतज्ञाश्च वदान्याश्च, शूरा विक्रमसंयुताः।। ३३।।
दीर्घायुषो नराः सर्वे, धर्मं सत्यं च संश्रिताः।
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च, नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे।। ३४।।

उस श्रेष्ठ नगर में चारों वर्णो के लोग विद्वानों और अतिथियों की पूजा करते थे। वे कृतज्ञता के भाव से युक्त, वीर, तेजस्वी और उदार थे। वहाँ सभी लोग दीर्घायु, धर्म और सत्य का आश्रय लेने वाले तथा स्त्री, पुत्र पौत्रों से युक्त थे।

क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्, वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।
शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिणः।। ३५।।
योधानामग्निकल्पानां, पेशलानाममर्षिणाम्।
सम्पूर्णा कृतविद्यानां, गुहा केसरिणामिव।। ३६।।

वहाँ क्षत्रिय ब्राह्मणों के आधीन थे और वैश्य क्षत्रियों के और शूद्र अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए तीनों वर्णों की सेवा करते थे। वह नगरी अग्नि के समान तेजस्वी, कुटिलता से रहित, अपमान को न सहन करने वाले तथा शिक्षित योद्धाओं से उसी प्रकार भरी रहती थी जैसे पर्वतों की गुफाएँ सिंहों से भरी रहती हैं।

काम्बोजविषये जातैर्बाह्लीकैश्च हयोत्तमैः।
वनायुजैर्नदीजैश्च, पूर्णा हरिहयोत्तमैः।। ३७।।
विन्ध्यपर्वतजैर्मत्तैः, पूर्णा हैमवतैरपि।
मदान्वितैरतिबलैर्मातङ्गैः पर्वतोपमैः।। ३८।।
ऐरावतकुलीनैश्च, महापद्मकुलैस्तथा।
अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपि च द्विपैः।। ३९।।

वह नगरी काम्बोज देश के, बाह्लीक देश के, वनायु देश के तथा सिन्धुनदी के निकटवर्ती स्थानों में उत्पन्न घोड़ों से, जो उच्चैश्रवा के समान श्रेष्ठ थे, भरी रहती थी। वह विन्ध्य पर्वत तथा हिमालय पर्वत में उत्पन्न, मतवाले, पर्वतों के समान विशाल बलशाली हाथियों से भी भरी रहती थी।

भद्रैर्मन्द्रैर्मृगैश्चैव, भद्रमन्द्रमृगैस्तथा।
भद्रमन्द्रैर्भद्रमृगैर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी।। ४०।।
नित्यमत्तैः सदा पूर्णा, नागैरचलसंनिभैः।
सा योजने द्वे च भूयः, सत्यनामा प्रकाशते।। ४१।।
तां पुरीं स महातेजा, राजा दशरथो महान्।
शशास शमितामित्रो, नक्षत्राणीव चन्द्रमाः।। ४२।।

वह नगर भद्र, जाति के, मन्द्र जाति के और मृग जाति के तथा इनके मेल से उत्पन्न संकर जाति के जैसे भद्र मन्द्र और मृग के संकर, भद्र और मन्द्र के संकर, भद्र और मृग के संकर और मृग और मन्द्र के संकर, हाथियों से जो सदा मस्त रहने वाले और पर्वत के समान विशाल थे सम्पूर्ण था। वहाँ दो योजन भूमि में तो किसी के लिये भी युद्ध करना असंभव था, इसी से वह नगरी अपने अयोध्या नाम को सार्थक कर रही थी। ऐसे उस नगर का महा तेजस्वी राजा दशरथ, जिन्होंने अपने शत्रुओ को नष्ट कर दिया था, नक्षत्रों का चन्द्रमा के समान शासन करते थे।

दूसरा सर्गः

राज मन्त्रियों के गुण और नीति

तस्यामात्या गुणैरासन्निक्ष्वाकोः सुमहात्मनः।
मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च, नित्यं प्रियहिते रताः।। १।।
अष्टौ बभूवुर्वीरस्य, तस्यामात्या यशस्विनः।
शुचयश्चानुरक्ताश्च, राजकृत्येषु नित्यशः।। २।।
धृष्टिर्जयन्तो विजयः, सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः।
अकोपो धर्मपालश्च, सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्।। ३।।

उन इक्ष्वाकुवंशी, वीर और महान आत्मा वाले राजा के आठ गुणवान मंत्री थे, जो विचार के रहस्य को जानने वाले और बाह्य चेष्टाओं द्वारा मनोभावों को समझने वाले तथा राजा की भलाई में दत्तचित्त थे। वे यशस्वी सदा राजकीय कार्यो में लगे रहते थे। वे स्नेह से युक्त और पवित्र अचार विचार वाले थे उनके नाम थे— धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र जो अर्थशास्त्र के ज्ञाता भी थे।

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ, तस्यास्तामृषिसत्तमौ।
वसिष्ठो वामदेवश्च, मन्त्रिणश्च तथापरे।। ४।।
सुयज्ञोऽप्यथ जाबालिः, काश्यपोऽप्यथ गौतमः।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुस्तथा कात्यायनो द्विजः।। ५।।

उनके दो ऋषियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ और वामदेव ऋत्विज (पुरोहित) थे तथा दूसरे भी सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घायु मार्कण्डेय और कात्यायन नाम के मंत्री थे।

एतैर्ब्रह्मर्षिभिर्नित्यमृत्विजस्तस्य पौर्वकाः।
विद्याविनीता ह्रीमन्तः, कुशला नियतेन्द्रियाः।। ६।।
श्रीमन्तश्च महात्मानः, शस्त्रज्ञा दृढविक्रमाः।
कीर्तिमन्तः प्रणिहिता, यथावचनकारिणः।। ७।।
तेजक्षमायशःप्राप्ताः, स्मितपूर्वाभिभाषिणः।
क्रोधात् कामार्थहेतोर्वा, न ब्रूयुरनृतं वचः।। ८।।

इन ब्रह्मर्षियों के साथ राजा के पूर्व काल से चले आने वाले दूसरे ऋत्विज भी थे। वे सब विद्यावान, विनयशील, लज्जावान, कुशल, जितेन्द्रिय, शोभावान, महान आत्मा वाले, शस्त्र विद्या के जानने वाले, महान वीर, कीर्तिवान, सावधान, आदेश का पालन करने वाले, तेजस्वी, क्षमाशील, यशस्वी, मुस्कराहट के साथ बोलने वाले, काम या क्रोध के भी कारण असत्य न बोलने वाले थे।

तेषामविदितं किंचित्, स्वेषु नास्ति परेषु वा।
क्रियमाणं कृतं वापि, चारेणापि चिकीर्षितम्।। ९।।
कुशला व्यवहारेषु, सौहृदेषु परीक्षिताः।
प्राप्तकालं यथा दण्डं, धारयेयुः सुतेष्वपि।। १०।।

उन मन्त्रियों से अपनी या पराई कोई भी बात छिपी नहीं रहती थी। क्या किया गया है, क्या किया जा रहा है और क्या करना चाहते हैं यह सब गुप्तचरों के द्वारा उन्हें मालूम रहता था। वे व्यवहार करने में कुशल थे। उनकी मित्रता की परीक्षा की हुई थी। समय आने पर वे अपने पुत्रों को भी दण्ड दे सकते थे।

कोशसंग्रहणे युक्ता, बलस्य च परिग्रहे।
अहितं चापि पुरुषं, न हिंस्युरविदूषकम्।। ११।।
वीराश्च नियतोत्साहा, राजशास्त्रमनुष्ठिताः।
शुचीनां रक्षितारश्च, नित्यं विषयवासिनाम्।। १२।।

वे मन्त्री लोग राजकोश तथा सेना की वृद्धि का सदा ध्यान रखते थे। शौर्य तथा उत्साह से युक्त वे निरपराध शत्रु की भी हिंसा नहीं करते थे और राज्य निवासी सत्पुरुषों के सदा रक्षक थे।

सुवाससः सुवेषाश्च, ते च सर्वे शुचिव्रताः।
हितार्थाश्च नरेन्द्रस्य, जाग्रतो नयचक्षुषा।। १३।।
गुरोर्गुणगृहीताश्च, प्रख्याताश्च पराक्रमैः।
विदेशेष्वपि विज्ञाताः, सर्वतो बुद्धिनिश्चयाः।। १४।।

राजा दशरथ के वे अच्छी वेशभूषा युक्त मन्त्री पवित्र व्रतों का पालन करते हुए राजा की भलाई को अपनी नीति रूपी आँखों से देखते हुए सदा सावधान रहते थे। गुणों के कारण वे सदा राजा के अनुगृहीत तथा गुरु के समान आदरणीय थे। बुद्धि के द्वारा ही निश्चय करने तथा पराक्रम के कारण उनकी प्रसिद्धि विदेशों में भी थी।

मन्त्रसंवरणे शक्ताः, शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु।
नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः, सततं प्रियवादिनः।। १५।।
ईदृशैस्तैरमात्यैश्च, राजा दशरथोऽनघः।
उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद् वसुन्धराम्।। १६।।

सदा प्रिय बोलने वाले, तथा नीतिशास्त्र के विशेषज्ञ वे मंत्री अपने अन्दर सूक्ष्म विचार करने की तथा राज मंत्रणा को गुप्त

रखने की सामर्थ्य को रखते थे। निष्पाप राजा दशरथ ऐसे गुणवान मन्त्रियों की सहायता से पृथ्वी का पालन करते थे।

अवेक्ष्यमाणश्चारेण, प्रजा धर्मेण रक्षयन्।
प्रजानां पालनं कुर्वन्नधर्मं परिवर्जयन्।। १७।।
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु, वदान्यः सत्यसंगरः।
मित्रवान्नतसामन्तः, प्रतापहतकण्टकः।। १८।।

उन राजा दशरथ ने अधर्म का त्याग किया हुआ था। वे गुप्त चरों के द्वारा सभी परिस्थितियों पर निगाह रखते हुए अपनी प्रजा की धर्मानुसार पालना तथा रक्षा किया करते थे। उदारता और सत्य प्रतिज्ञता में वे तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे। वे मित्रों से युक्त थे। उनके सामन्त उन्हे प्रणाम करते थे। उन्होंने प्रताप से अपने रास्ते की रुकावटों को दूर कर दिया था।

तीसरा सर्गः

राजा का पुत्र के लिये यज्ञ करने का प्रस्ताव और मन्त्रियों तथा ब्राह्मणों द्वारा उसकी तैयारी

तस्य चैवंप्रभावस्य, धर्मज्ञस्य महात्मनः।
सुतार्थं तप्यमानस्य, नासीद् वंशकरः सुतः।। १।।
स निश्चितां मतिं कृत्वा, यष्टव्यमिति बुद्धिमान्।
मन्त्रिभिः सह धर्मात्मा, सर्वैरपि कृतात्मभिः।। २।।
ततोऽब्रवीन्महातेजाः, सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तम।
शीघ्रमानय मे सर्वान्, गुरूंस्तान् सपुरोहितान्।। ३।।

ऐसे प्रभाव शाली तथा धर्म को जानने वाले उन राजा दशरथ के वंश को चलाने वाला कोई पुत्र नहीं था, इसलिये वे पुत्र के लिये दुःखी रहते थे। अपने बुद्धिमान मंत्रियों के साथ यह निश्चय करके कि मुझे इसके लिये यज्ञ करना चाहिये उस महा तेजस्वी राजा ने तब सुमन्त्र से कहा हे मन्त्रिवर! मेरे सभी गुरुओं और पुरोहितों को जल्दी बुलवाओ।

ततः सुमन्त्रस्त्वरितं, गत्वा त्वरितविक्रमः।
समानयत् स तान् सर्वान्, समस्तान् वेदपारगान्।। ४।।
सुयज्ञं वामदेवं च, जाबालिमथ काश्यपम्।
पुरोहितं वसिष्ठं च, ये चाप्यन्ये द्विजोत्तमाः।। ५।।
तान् पूजयित्वा धर्मात्मा, राजा दशरथस्तदा।
इदं धर्मार्थसहितं, श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत्।। ६।।

तब तुरन्त अपने विक्रम को प्रकट करने वाले सुमन्त्र जल्दी से जाकर उन समस्त वेद के ज्ञाताओं को बुला लाये। तब धर्मात्मा दशरथ ने सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, तथा पुरोहित वसिष्ठ और दूसरे जो भी श्रेष्ठ ब्राह्मण थे उन सबकी पूजा करके, धर्म और अर्थ से युक्त यह मधुर वचन कहे।

मम लालप्यमानस्य, सुतार्थं नास्ति वै सुखम्।
तदहं यष्टुमिच्छामि, शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।। ७।।
ततः साध्विति तद्वाक्यं, ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन्।। ८।।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे, पार्थिवस्य मुखेरितम्।

मुझे कुछ भी सुख नहीं है, क्योंकि मैं पुत्र के लिए दुखी रहता हूँ। अतः मैं शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ करना चाहता हूँ। इसलिये आप बुद्धि से विचार कीजिये कि मेरी कामना कैसे पूरी होगी। राजा के मुख से कहे गये उन वचनों की वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणों ने बहुत अच्छा कह कर प्रशंसा की।

ऊचुश्च परमप्रीताः, सर्वे दशरथं वचः।। ९।।
सर्वथा प्राप्स्यसे पुत्रानभिप्रेतांश्च पार्थिव।
यस्य ते धार्मिकी बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता।। १०।।

अत्यन्त प्रसन्न होकर उन सबने दशरथ जी से कहा हे राजा क्योंकि तुम्हारे हृदय में पुत्र के लिये धार्मिक बुद्धि का उदय हुआ है अतः तुम अपने मन चाहे पुत्रों को अवश्य प्राप्त कर लोगे।

ततस्तुष्टोऽभवद् राजा, श्रुत्वेतद् द्विजभाषितम्।
अमात्यानब्रवीद् राजा, हर्षव्याकुललोचनः।। ११।।
सम्भाराः सम्भ्रियन्तां मे, गुरूणां वचनादिह।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे, यज्ञभूमिर्विधीयताम्।। १२।।
शान्तयश्चापि वर्धन्तां, यथाकल्पं यथाविधि।
शक्यः प्राप्तुमयं यज्ञः, सर्वेणापि महीक्षिता।। १३।।
नापराधो भवेत् कष्टो, यद्यस्मिन् क्रतुसत्तमे।
छिद्रं हि मृगयन्ते स्म, विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः।। १४।।

ब्राह्मणों की यह बात सुनकर राजा प्रसन्न हो गये, खुशी से उनकी आँखें खिल गईं और उन्होंने मन्त्रियों से कहा कि मेरे गुरुओं की आज्ञा से आप लोग यज्ञ के लिये तैयारी कीजिये। सरयू के उत्तरी किनारे पर यज्ञ भूमि का निर्माण

कीजिये, शान्ति स्थापना कार्य का विस्तार नियम के अनुसार किया जाये। यदि इस श्रेष्ठ यज्ञ में कष्टप्रद अपराधों की सम्भावना न हो सभी राजा इसका निर्वाह कर लें, पर ऐसा नहीं है, विद्वान ब्रह्मराक्षस लोग इसमें दोषों को ढूंढा करते हैं।

विधिहीनस्य यज्ञस्य, सद्यः कर्ता विनश्यति।
तद्यथा विधिपूर्वं मे, क्रतुरेष समाप्यते।। १५।।
तथा विधानं क्रियतां, समर्थाः साधनेष्विति।
तथेति चाब्रुवन् सर्वे, मन्त्रिणः प्रतिपूजिताः।। १६।।
पार्थिवेन्द्रस्य तद् वाक्यं, यथापूर्वं निशम्य ते।

विधान से रहित यज्ञ करने वाला तुरन्त नष्ट हो जाता है अर्थात् उसकी कीर्ति नष्ट हो जाती है। इसलिये इस प्रकार से कार्य कीजिये जिससे मेरा यह यज्ञ विधि के अनुसार सम्पन्न हो जाये, आप सब लोग ऐसा करने में समर्थ हैं। राजा के द्वारा सम्मानित वे मन्त्री राजा की बात सुनकर बोले कि ऐसा ही होगा।

अभिवाद्य वसिष्ठं च, न्यायतः प्रतिपूज्य च।। १७।।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं, प्रसवार्थं द्विजोत्तमम्।
यज्ञो मे क्रियतां ब्रह्मन्, यथोक्तं मुनिपुङ्गव।। १८।।
यथा न विघ्नाः क्रियन्ते, यज्ञाङ्गेषु विधीयताम्।

तब राजा ने वसिष्ठ जी को प्रणाम करके और न्यायानुसार उनका पूजन करके पुत्र की प्राप्ति के लिये उनसे विनय पूर्वक कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मन्! आप मेरा यज्ञ ऐसा कराइये, जिससे उसके किसी भी अंश में विघ्न न पड़े।

भवान् स्निग्धः सुहृन्मह्यं, गुरुश्च परमो महान्।। १९।।
वोढव्यो भवता चैव, भारो यज्ञस्य चोद्यतः।
यथेति च स राजानमब्रवीद् द्विजसत्तमः।। २०।।
करिष्ये सर्वमेवैतद्, भवता यत् समर्थितम्।

आपका मुझपर स्नेह है, आप मेरे मित्र हैं, आप मेरे परम महान गुरु हैं। इसलिये यह जो यज्ञ का उत्तरदायित्व उपस्थित हुआ है, इसे आप ही वहन करेंगे। तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मण ने राजा से कहा कि आपने जो कुछ मुझसे कहा है, वह मैं वैसा ही करूँगा।

ततः सुमन्त्रमाहूय, वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्।। २१।।
निमन्त्रयस्व नृपतीन्, पृथिव्यां ये च धार्मिकाः।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः।। २२।।

तब वसिष्ठ जी ने सुमन्त्र को बुलाकर कहा कि इस पृथ्वी पर जो हजारों की संख्या में धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं, उन सबको निमन्त्रण दो।

समानयस्व सत्कृत्य, सर्वदेशेषु मानवान्।
मिथिलाधिपतिं शूरं, जनकं सत्यवादिनम्।। २३।।
तमानय महाभागं, स्वयमेव सुसत्कृतम्।
पूर्वं सम्बन्धिनं ज्ञात्वा, ततः पूर्वं ब्रवीमि ते।। २४।।

सब देशों में जो भी अच्छे व्यक्ति है उन्हें सम्मान पूर्वक बुलाओ। मिथिला के राजा जो शूर और सत्यवादी जनक हैं, उन महाभाग को तुम स्वयं ही जाकर सत्कार पूर्वक बुला कर लाओ, वे हमारे पूर्व सम्बन्धी हैं, यह समझ कर मैं तुमसे पहले ही कह रहा हूँ।

तथा काशिपतिं स्निग्धं, सततं प्रियवादिनम्।
सद्वृत्तं देवसंकाशं, स्वयमेवानयस्व ह।। २५।।
तथा केकयराजानं, वृद्धं परमधार्मिकम्।
श्वशुरं राजसिंहस्य, सपुत्रं तमिहानय।। २६।।

इसी प्रकार काशी के राजा सदा प्रिय बोलने वाले और हमारे मित्र हैं, वे देवताओं के समान अच्छे आचरण वाले हैं, उन्हें भी स्वयं ही जाकर लेकर आओ। इसी प्रकार केकय के राजा, जो वृद्ध और राजा के ससुर हैं, वे राजसिंह अत्यन्त धार्मिक हैं, उन्हें पुत्र सहित यहाँ बुलाकर लाओ।

अङ्गेश्वरं महेष्वासं, रोमपादं सुसत्कृतम्।
वयस्यं राजसिंहस्य, सपुत्रं तमिहानय।। २७।।
तथा कोसलराजानं, भानुमन्तं सुसत्कृतम्।
मगधाधिपतिं शूरं, सर्वशास्त्रविशारदम्।। २८।।
प्राप्तिज्ञं परमोदारं, सत्कृतं पुरुषर्षभम्।

अंग देश के स्वामी रोमपाद जो महा धनुर्धर और राजसिंह के मित्र हैं, उन्हें भी पुत्र सहित यहाँ सत्कार पूर्वक बुलाकर लाओ। इसी प्रकार कोसल राज भानुमान को और मगध के राजा प्राप्तिज्ञ को जो शूर, सब शास्त्रों को जानने वाले, अत्यन्त उदार और पुरुश्रेष्ठ हैं उनको भी सत्कार पूर्वक बुलाकर लाओ।

राज्ञः शासनमादाय, चोदयस्व नृपर्षभान्।। २९।।
प्राचीनान् सिन्धुसौवीरान्, सौराष्ट्रेयांश्च पार्थिवान्।
दाक्षिणात्यान् नरेन्द्रांश्च, समस्तानानयस्व ह।। ३०।।
सन्ति स्निग्धाश्च ये चान्ये, राजानः पृथिवीतले।

तानानय यथा क्षिप्रं, सानुगान् सहबान्धवान्।। ३१।।
एतान् दूतैर्महाभागैरानयस्व नृपाज्ञया।

राजा की आज्ञा से पूर्व देश के तथा सिन्धु सौवीर देश के और सौराष्ट्र देश के राजाओं को यहाँ आने के लिये प्रेरित करो। दक्षिण देश के भी सारे राजाओं को बुलाओ, और जो भी इस पृथिवी पर राजा के प्रति स्नेह भाव रखने वाले दूसरे राजा हैं उन्हें जल्दी मित्रों और सेवको के साथ महाराज की आज्ञा से सौभाग्यशाली दूतों के द्वारा बुला लो।

वसिष्ठवाक्यं तच्छ्रुत्वा, सुमन्त्रस्त्वरितं तदा।। ३२।।
व्यादिशत् पुरुषांस्तत्र, राज्ञामानयने शुभान्।
स्वयमेव हि धर्मात्मा, प्रयातो मुनिशासनात्।। ३३।।
सुमन्त्रस्त्वरितो भूत्वा, समानेतुं महामति।

वसिष्ठ जी की यह बात सुनकर सुमन्त्र ने जल्दी ही उन राजाओं को बुलाने के लिये सेवकों को आज्ञा दे दी। धर्मात्मा सुमन्त्र मुनि के आदेश से राजाओं के लाने के लिये स्वयं भी चले गये।

ते च कर्मान्तिकाः सर्वे, वसिष्ठाय महर्षये।। ३४।।
सर्वं निवेदयन्ति स्म, यज्ञे यदुपकल्पितम्।
ततः प्रीतो द्विजश्रेष्ठस्तान् सर्वान् मुनिरब्रवीत्। ३५।।
अवज्ञया न दातव्यं, कस्यचिल्लीलयापि वा।
अवज्ञया कृतं हन्याद्, दातारं नात्र संशयः।। ३६।।

यज्ञ की व्यवस्था के लिये जो सेवक नियुक्त किये गये थे, वे जो कुछ भी कार्य पूरा कर लेते थे, वह सब वसिष्ठ जी को निवेदन कर दिया करते थे। उन श्रेष्ठ ब्राह्मण और मुनि ने इससे प्रसन्न होकर उनसे कहा कि किसी को भी उपेक्षा या अनादर पूर्वक दान नहीं देना चाहिये। अवज्ञा के साथ दिया हुआ दान दानकर्ता को नष्ट कर देता है। इसमें कोई शक नहीं है।

ततः कैश्चिदहोरात्रैरुपयाता महीक्षितः।
बहूनि रत्नान्यादाय, राज्ञो दशरथस्य ह।। ३७।।
ततो वसिष्ठः सुप्रीतो, राजानमिदमब्रवीत्।
उपयाता नरव्याघ्र, राजानस्तव शासनात्।। ३८।।
मयापि सत्कृताः सर्वे, यथार्हं राजसत्तम।

तब कुछ दिनों के पश्चात् राजा लोग, भेंट के लिये बहुत सारे रत्नों के लेकर वहाँ आने लगे। तब वसिष्ठ जी ने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि हे पुरुष सिंह! आपके आग्रह से राजा लोग उपस्थित हो गये हैं। हे नृप श्रेष्ठ! मैनें भी उनका यथायोग्य सत्कार किया है।

यज्ञियं च कृतं सर्वं, पुरुषैः सुसमाहितैः।। ३९।।
निर्यातु च भवान् यष्टुं, यज्ञायतनमन्तिकात्।
सर्वकामैरुपहृतैरुपेतं वै समन्ततः।। ४०।।
द्रष्टुमर्हसि राजेन्द्र, मनसेव विनिर्मितम्।

कार्यकर्ता पुरुषों ने यज्ञ की सारी तैयारी सावधानी से कर दी है, अब आप भी यज्ञ करने के लिये यज्ञ शाला के समीप चलिये। यज्ञ मण्डप को सारी वांछनीय वस्तुओं से सब तरह से युक्त कर दिया गया है, मन के संकल्प के समान यह सारी तैयारी बड़ी शीघ्रता से की गयी है। हे राजेन्द्र! आप स्वयं देख सकते हैं।

ततो वसिष्ठप्रमुखाः, सर्व एव द्विजोत्तमाः।। ४१।।
ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य, यज्ञकर्मारभंस्तदा।
यज्ञवाटं गताः सर्वे, यथाशास्त्रं यथाविधि
श्रीमांश्च सह पत्नीभी राजा दीक्षामुपाविशत्।। ४२।।

तत्पश्चात् वसिष्ठ आदि सारे श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रृष्यश्रृंग को आगे करके यज्ञ शाला में गये और उन्होंने शास्त्रोक्त विधियों के अनुसार यज्ञ का आरम्भ किया। श्रीमान राजा ने भी पत्नियों सहित दीक्षा ली।

चौथा सर्ग

महाराज दशरथ के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान

कर्म कुर्वन्ति विधिवद्, याजका वेदपारगाः।
यथाविधि यथान्यायं, परिक्रामन्ति शास्त्रतः।। १।।
प्रवर्ग्यं शास्त्रतः कृत्वा, यथैवोपसदं द्विजाः।
चक्रुश्च विधिवत् सर्वमधिकं कर्म शास्त्रतः।। २।।
प्रातःसवनपूर्वाणि, कर्माणि मुनिपुङ्गवाः।

उस यज्ञ में वेदों को जानने वाले याजक लोग सभी कर्मो को शास्त्रों की विधि तथा न्याय के अनुसार कर रहे थे। उन ब्राह्मणों ने विधि के अनुसार प्रवर्ग्य तथा उपसद नाम की क्रियाएँ कीं। प्रातः सवन आदि और दूसरे कर्म भी उन मुनि श्रेष्ठों ने विधि पूर्वक सम्पन्न किये।

ततोऽब्रवीदृष्यशृङ्गं, राजा दशरथस्तदा।। ३।।
कुलस्य वर्धनं तत् तु, कर्तुमर्हसि सुव्रत।
यथेति च स राजानमुवाच द्विजसत्तमः।। ४।।
भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः।

तब राजा दशदथ ने ऋष्यश्रृंग से कहा कि हे अच्छे व्रत का पालन करने वाले अब आप मेरे कुल को बढ़ाने वाला कार्य कीजिये। तब द्विज श्रेष्ठ ऋष्यशृंग राजा से बोले कि ऐसा ही होगा। हे राजन् आपके कुल के भार को वहन करने वाले चार पुत्र होंगे।

इदं तु नृपशार्दूल, पायसं देवनिर्मितम्।। ५।।
प्रजाकरं गृहाण त्वं, धन्यमारोग्यवर्धनम्।
भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै।। ६।।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान्, यदर्थं यजसे नृप।

हे राजसिंह यह विद्वानों के द्वारा बनाई हुई, आरोग्य को बढ़ाने वाली, सन्तान को उत्त्पन्न करने वाली और प्रशंसा से युक्त खीर हैं। तुम इसे ग्रहण करो। तुम इसे अपनी योग्य पत्नियों को खाने के लिये दो। इससे जिनके लिये तुम यज्ञ कर रहे हो उन पुत्रों की प्राप्ति होगी।

ततो दशरथः प्राप्य, पायसं देवनिर्मितम्।। ७।।
बभूव परमप्रीतः, प्राप्य वित्तमिवाधनः।
हर्षरश्मिभिरुद्द्योतं, तस्यान्तःपुरमावभौ।। ८।।
शारदस्याभिरामस्य, चन्द्रस्येव नभोऽशुभिः।

राजा दशरथ विद्वानों के द्वारा बनाई हुई उस खीर को पाकर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे किसी निर्धन को धन मिल गया हो। उस समय राजा का अन्तःपुर भी प्रसन्नता की किरणों से ऐसे जगमगाने लगा जैसे शरद ऋतु के सुन्दर चन्द्रमा की किरणों से आकाश उद्भासित होता है।

सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव, कौसल्यामिदमब्रवीत्।। ९।।
पायसं प्रतिगृह्णीष्व, पुत्रीयं त्विदमात्मनः।
कौसल्यायै नरपतिः, पायसार्धं ददौ तदा।। १०।।
अर्धादर्धं ददौ चापि, सुमित्रायै नराधिपः।

राजा ने अन्तः पुर में प्रवेश करते ही कौशल्या से कहा कि तुम अपने लिये पुत्र प्राप्त कराने वाली इस खीर को ग्रहण करो। राजा ने तब खीर का आधा भाग कौशल्या को दे दिया, फिर आधे का आधा भाग सुमित्रा को दिया।

कैकेय्यै चावशिष्टार्धं, ददौ पुत्रार्थकारणात्।। ११।।
प्रददौ चावशिष्टार्धं, पायसस्यामृतोपमम्।
अनुचिन्त्य सुमित्रायै, पुनरेव महामतिः।
एवं तासां ददौ राजा, भार्याणां पायसं पृथक्।। १२।।

इसके पश्चात् अमृत के समान उस शेष खीर का आधा भाग उन्होंने कैकेयी को दिया और बचे हुए आधे भाग को महा बुद्धिमान राजा ने कुछ सोच कर पुनः सुमित्रा को दे दिया। इस प्रकार उन्होंने सभी रानियों पृथक् पृथक् खीर बाँट दी।

पाँचवाँ सर्ग

राजाओं तथा ऋष्यशृंग को विदा करके राजा दशरथ का रानियों सहित पुरी में आगमन। श्रीराम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के जन्म, संस्कार, शील स्वभाव एवं सद्गुण। राजा के दरबार में विश्वामित्र का आगमन और उनका सत्कार।

समाप्तदीक्षानियमः, पत्नीगणसमन्वितः।
प्रविवेश पुरीं राजा, सभृत्यबलवाहनः।। १।।
यथार्हं पूजितास्तेन, राज्ञा च पृथिवीश्वराः।
मुदिताः प्रययुर्देशान्, प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्।। २।।

यज्ञ की दीक्षा का नियम समाप्त होने पर राजा ने अपनी पत्नियों, सेवकों, सैनिकों और सवारियों के साथ अपने नगर में प्रवेश किया। दूसरे देशों के राजा लोग भी राजा दशरथ से यथायोग्य सम्मानित होकर, प्रसन्न होते हुए मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी को प्रणाम करके अपने अपने देशों को चले गये।

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यशृङ्गः सुपूजितः।
अनुगम्यमानो राज्ञा च, सानुयात्रेण धीमता।। ३।।
एवं विसृज्य तान् सर्वान्, राजा सम्पूर्णमानसः।
उवास सुखितस्तत्र, पुत्रोत्पत्तिं विचिन्तयन्।। ४।।

ऋष्यशृंग मुनि भी अपनी पत्नी शान्ता के साथ अच्छी तरह से सम्मानित होकर अपने घर गये। बुद्धिमान राजा

अपने सेवकों के साथ कुछ दूर तक उन्हें छोड़ने पीछे पीछे गये। इस प्रकार सबको विदा करके सन्तुष्ट चित्त वाले राजा पुत्रोत्पत्ति की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ सुख से रहने लगे।

ततो यज्ञे समाप्ते तु, ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे, चैत्रे नावमिके तिथौ।। ५।।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये, स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने, वाक्पताविन्दुना सह।। ६।।
कौसल्याजनयद् रामं, दिव्यलक्षणसंयुतम्।

जब यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् छै ऋतुएँ व्यतीत हो गयीं तब बारहवें मास में चैत्र की नवमी तिथि को, पुनर्वसु नक्षत्र में, पाँच ग्रहों के अपने उच्च स्थान में विद्यमान होने पर, जब बृहस्पति, चन्द्रमा के साथ कर्क लग्न में थे कौशल्या ने दिव्य लक्षणों से युक्त श्रीराम को जन्म दिया।

नोट– पुनर्वसु नक्षत्र क्योंकि चैत्र मास में शुक्ल पक्ष में ही आता है इसलिये यहाँ नवमी शुक्ल पक्ष की ही समझनी चाहिये।

भरतो नाम कैकेय्यां, जज्ञे सत्यपराक्रमः।। ७।।
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ, सुमित्राजनयत् सुतौ।
पुष्ये जातस्तु भरतो, मीनलग्ने प्रसन्नधीः।। ८।।
सार्पे जातौ तु सौमित्री, कुलीरेऽभ्युदिते रवौ।

उसके पश्चात् कैकेयी से भरत नाम के सत्य पराक्रमी पुत्र का जन्म हुआ और तदनन्तर सुमित्रा ने लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया। भरत जी का जन्म पुष्य, नक्षत्र तथा मीन लग्न में हुआ था। वे सदा प्रसन्न रहते थे। सुमित्रा के दोनों पुत्र आश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्न में पैदा हुए थे। उस समय सूर्य उच्च स्थान में विद्यमान थे।

राज्ञः पुत्रा महात्मानश्चत्वारो जज्ञिरे पृथक्।। ९।।
गुणवन्तोऽनुरूपाश्च, रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः।
उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।। १०।।
रथ्याश्च जनसम्बाधा, नटनर्तकसंकुलाः।

राजा के चारों पुत्र महान आत्मा वाले थे। वे अलग अलग अपने गुणों से सम्पन्न थे। अपने गुणों के समान ही वे दर्शनीय प्रोष्ठपदा नाम के तारों के समान प्रतीत होते थे। उनके जन्म पर अयोध्या में बड़ा उत्सव मनाया गया, जहाँ लोगों की बड़ी भीड़ एकत्र हुई। उस समय सड़कों पर नट तथा नर्तक अपनी कलाएँ दिखा रहे थे, वे लोगों से भरी हुई थीं।

गायनैश्च विराविण्यो, वादनैश्च तथापरैः।। ११।।
विरेजुर्विपुलास्तत्र, सर्वरत्नसमन्विताः।
प्रदेयांश्च ददौ राजा, सूतमागधवन्दिनाम्।। १२।।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं, गोधनानि सहस्रशः।

वहाँ गाने वलों, बजाने वालों तथा दूसरे लोगों की आवाजें गूँज रहीं थी। सब जगह गरीबों के लिये लुटाये गये सब तरह के रत्न भारी मात्रा में बिखरे पड़े थे। राजा ने सूतों, मागधों और बन्दी जनों को देने योग्य पुरस्कार दिये। उन्होंने ब्राह्मणों को धन और हजारों गायें दान कीं।

अतीत्यैकादशाहं तु, नामकर्म तथाकरोत्।। १३।।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं, भरतं कैकयीसुतम्।
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति, शत्रुघ्नमपरं तथा।। १४।।
वसिष्ठः परमप्रीतो, नामानि कुरुते तदा।

ग्यारहवाँ दिन बीतने पर वसिष्ठ जी ने उनके नाम कर्म किये। उन्होंने महान आत्मा सबसे बड़े का नाम राम, कैकेयी पुत्र का भरत, सुमित्रा के एक पुत्र का नाम लक्ष्मण और दूसरे का शत्रुघ्न नाम रखा।

ब्राह्मणान् भोजयामास, पौरजानपदानपि।। १५।।
अददद् ब्राह्मणानां च, रत्नौघममलं बहु।
तेषा जन्मक्रियादीनि, सर्वकर्माण्यकारयत्।। १६।।
तेषां केतुरिव ज्येष्ठो, रामो रतिकरः पितुः।
सर्वे देवविदः शूराः, सर्वे लोकहिते रताः।। १७।।

उस समय राजा ने ब्राह्मणों को, पुर वासियों को तथा देशवासियों को भी भोजन कराया। उसने ब्राह्मणों को उज्वल रत्नों की राशि भी प्रदान की। उन सारे बच्चों के जातकर्म आदि सारे संस्कार समय समय पर कराये गये। उनमें सबसे बड़े श्रीराम जो कि कुल की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली पताका के समान थे, पिता के बहुत प्यारे थे। बड़े होने पर वे सारे पुत्र वेदों के विद्वान, शूरवीर और लोगों की भलाई में लगे रहने वाले हुए।

सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः, सर्वे समुदिता गुणैः।
तेषामपि महातेजा, रामः सत्यपराक्रमः।। १८।।
इष्टः सर्वस्य लोकस्य, शशाङ्क इव निर्मलः।
गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च, रथचर्यासु सम्मतः।। १९।।
धनुर्वेदे च निरतः, पितुः शुश्रूषणे रतः।

वे सभी पुत्र ज्ञानवान और गुणों से सम्पन्न थे। उनमें भी श्रीराम महान तेजस्वी और सत्य पराक्रमी थे, वे निर्मल

चद्रमा के समान सब लोगों के प्रिय थे। वे हाथी की सवारी, घोड़े की सवारी और रथ को हॉकने की क्रिया में प्रतिष्ठित थे। वे सदा धनुर्विद्या के अभ्यास तथा पिता की सेवा में लगे रहते थे।

बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो, लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः। २०।
रामस्य लोकरामस्य, भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः।
सर्वप्रियकरस्तस्य, रामस्यापि शरीरतः।। २१।।

बचपन से ही लक्ष्मी को बढ़ाने वाले लक्ष्मण अपने बड़े भाई लोगों को आनन्द देने वाले श्रीराम के प्रति विशेष प्रेम रखते थे। वे अपने शरीर से उनकी सेवा में ही लगे रहते थे और उनके सारे प्रिय कार्यों को करते थे।

लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो, बहिःप्राण इवापरः।
न च तेन विना निद्रां, लभते पुरुषोत्तमः।। २२।।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं बिना।

शोभा से युक्त लक्ष्मण भी राम के लिये बाहर विद्यमान दूसरे प्राण के समान थे, उनके बिना उन पुरुषोत्तम को नींद भी नहीं आती थी। खाने के लिये लाये गये सुस्वादु भोजन को भी वे लक्ष्मण के बिना नहीं खाते थे।

यदा हि हयमारूढो, मृगयां याति राघवः।। २३।।
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति, सधनुः परिपालयन्।
भरतस्यापि शत्रुघ्नो, लक्ष्मणावरजो हि सः।। २४।।
प्राणैः प्रियतरो नित्यं, तस्य चासीत् तथा प्रियः।

जब घोड़े पर चढ़कर श्रीराम शिकार के लिये जाते थे, तब लक्ष्मण धनुष लेकर उनकी रक्षा करते हुए पीछे-पीछे चलते थे। लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न भी इसी प्रकार भरत जी को प्राणों से बढ़ कर प्यारे थे और वे भी उनसे बहुत प्रेम करते थे।

ते यदा ज्ञानसम्पन्नाः, सर्वे समुदिता गुणैः।। २५।।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च, सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः।
ते चापि मनुजव्याघ्रा, वैदिकाध्ययने रताः।। २६।।
पितृशुश्रूषणरता, धनुर्वेदे च निष्ठिताः।

वे बच्चे जब समझदार हुए तब सारे गुणों से सम्पन्न हो गये। वे सब लज्जाशील, कीर्तिवान, दूरदर्शी और सर्वज्ञ थे। पुरुषों में सिंह के समान वे सदा वेदों के स्वाध्याय, पिता की सेवा तथा धनुर्वेद का अभ्यास करने में लगे रहते थे।

अथ राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति।। २७।।
चिन्तयामास धर्मात्मा, सोपाध्यायः सबान्धवः।
तस्य चिन्तयमानस्य, मन्त्रिमध्ये महात्मनः।। २८।।
अभ्यागच्छन्महातेजा, विश्वामित्रो महामुनिः।

एक बार धर्मात्मा राजा दशरथ उन पुत्रों के विवाह के विषय में अपने पुरोहितों और बन्धुओं के साथ विचार कर रहे थे, तभी मन्त्रियों के साथ उनके विचार करते हुए महान मुनि महा तेजस्वी विश्वामित्र वहाँ पधारे।

स राज्ञो दर्शनाकाङ्क्षी, द्वाराध्यक्षानुवाच ह।। २९।।
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं, कौशिकं गाधिनः सुतम्।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य, राज्ञो वेश्म प्रदुद्रुवुः।। ३०।।
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे, तेन वाक्येन चोदिताः।

राजा के दर्शन की इच्छा से उन्होंने द्वारपालों से कहा कि तुम लोग राजा से जल्दी जाकर कहो कि कुशिकवंशी गाधि के पुत्र विश्वामित्र आये हैं। उनकी बात सुनकर और उनकी बातों से प्रेरित होकर वे सभी हड़बड़ाये हुए दौड़ कर राजा के घर में गये।

ते गत्वा राजभवनं, विश्वामित्रमृषिं तदा।। ३१।।
प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा।
तेषां तद् वचनं श्रुत्वा, सपुरोधाः समाहितः।। ३२।।
स दृष्ट्वाज्वलितं दीप्त्या, तापसं संशितव्रतम्।
प्रहृष्टवदनो राजा, ततोऽर्घ्यमुपहारयत्।। ३३।।

उन्होंने राजा के महल में जाकर इक्ष्वाकुवंशी राजा से निवेदन किया कि विश्वामित्र ऋषि आये हैं। द्वारपालों की बात सुन कर राजा अपने पुरोहितों के साथ सावधान हो गये। उन्होंने विश्वामित्र जी का जो कि कठोर व्रत का पालन करने वाले थे और अपनी तपस्या के तेज से जगमगा रहे थे, दर्शन किया और प्रसन्नता के साथ उन्हें अर्घ्य प्रदान कर उनका सम्मान किया।

स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं, शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
कुशलं चाव्ययं चैव, पर्यपृच्छन्नराधिपम्।। ३४।।
पुरे कोशे जनपदे, बान्धवेषु सुहृत्सु च।
कुशलं कौशिको राज्ञः, पर्यपृच्छत् सुधार्मिकः।। ३५।।

राजा के उस अर्घ्य को शास्त्र विधि से स्वीकार करके ऋषि ने उनसे उनका कुशल मंगल पूछा। धर्मात्मा विश्वामित्र ने राजा से उनके नगर, कोश, देश, बन्धुओं और मित्रों की कुशलता पूछी।

अपि ते संनताः सर्वे, सामन्तरिपवो जिताः।
दैवं च मानुषं चैव, कर्म ते साध्वनुष्ठितम्।। ३६।।

वसिष्ठं च समागम्य, कुशलं मुनिपुङ्गवः।
ऋषींश्च तान् यथान्यायं, महाभाग उवाच ह।। ३७।।

उन्होंने पूछा कि हे राजा! क्या तुम्हारे सीमा प्रान्तों में रहने वाले शत्रु राजा तुम्हारे समक्ष नतमस्तक हैं? क्या तुम देव यज्ञ तथा अतिथि सेवा आदि मुनष्य कर्म तो ठीक तरह से सम्पन्न करते रहते हो? इसके बाद उन महाभाग मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने वसिष्ठ जी तथा अन्य ऋषियों से मिलकर यथा योग्य उन सबका कुशल समाचार पूछा।

ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम्।
विविशुः पूजितास्तेन, निषेदुश्च यथार्हतः।। ३८।।
अथ हृष्टमना राजा, विश्वामित्रं महामुनिम्।
उवाच परमोदारो, हृष्टस्तमभिपूजयन्।। ३९।।

फिर वे सब प्रसन्न मन से राजा के दरबार में गये। वहाँ यथा योग्य सम्मान पाकर वे यथा स्थान बैठे। तब परम उदार और प्रसन्न चित राजा ने विश्वामित्र महामुनि की पूजा करते हुए प्रसन्नता के साथ कहा—

यथामृतस्य सम्प्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके।
यथा सदृशदारेषु, पुत्रजन्माप्रजस्य वै।। ४०।।
प्रणष्टस्य यथा लाभो, यथा हर्षो महोदयः।
तथैवागमनं मन्ये, स्वागतं ते महामुने।। ४१।।
कं च ते परमं कामं, करोमि किमु हर्षितः।

हे महामुनि! मृत प्राय मनुष्य को अमृत के मिलने पर, निर्जल प्रदेश में जल की वर्षा होने पर, सन्तान हीन व्यक्ति को योग्य पत्नी के गर्भ से पुत्र की प्राप्ति पर, खोये हुए खजाने के मिल जाने पर जैसे महान हर्ष होता है वैसे ही आपके आने पर मुझे प्रसन्नता हुई है। आपका स्वागत है। आपकी कौन सी इच्छा है, जिसे में प्रसन्नता के साथ पूरी करूँ?

पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन्, दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद।। ४२।।
अद्य मे सफलं जन्म, जीवितं च सुजीवितम्।
यस्माद् विप्रेन्द्रमद्राक्षं, सुप्रभाता निशा मम।। ४३।।
पूर्वं राजर्षिशब्देन, तपसा द्योतितप्रभः।
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः, पूज्योऽसि बहुधा मया।। ४४।।
तदद्‍भुतमभूद् विप्र, पवित्रं परमं मम।

हे ब्रह्मन्! आप मुझ से सेवा लेने के योग्य हैं। हे सम्मान युक्त! मेरे सौभाग्य से आपका यहाँ आगमन हुआ है। आज मेरा जन्म सफल और जीवन सुखों से युक्त हो गया। आपके दर्शन से मेरी रात्रि सुन्दर प्रभात हो गयी। पहले आप राजर्षि थे, पुनः तपस्या की प्रभा से द्योतित होते हुए आपने ब्रह्मर्षि पद पाया। आप मेरे लिये अनेक प्रकार से पूज्य हैं। आपका दर्शन मेरे लिये परम पवित्र और अद्‍भुत है।

शुभक्षेत्रगतश्चाहं, तव संदर्शनात् प्रभो।। ४५।।
ब्रूहि यत् प्रार्थितं तुभ्यं, कार्यमागमनं प्रति।
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं, त्वदर्थं परिवृद्धये।। ४६।।
कार्यस्य न विमर्शं च, गन्तुमर्हसि सुव्रत।
कर्ता चाहमशेषेण, दैवतं हि भवान् मम।। ४७।।
मम चायमनुप्राप्तो, महानभ्युदयो द्विज।
तवागमनजः कृत्स्नो, धर्मश्चानुत्तमो द्विज।। ४८।।

हे प्रभो! आपके दर्शन से मेरा घर पवित्र हो गया है। आप बताईये कि किस कार्य से आपका आना हुआ है? आप क्या चाहते हैं? हे अच्छे व्रत का पालन करने वाले! मैं अनुगृहीत हो कर अपनी समृद्धि के लिये आपके प्रयोजन को पूरा करना चाहता हूँ। आपको अपने कार्य के विषय में सोच विचार नहीं करना चाहिये। आप मेरे लिये देवता स्वरूप हैं। मैं आपके कार्य को सम्पूर्ण रूप से पूरा करूँगा। हे ब्राह्मण! आपके आने से मेरा महान अभ्युदय हुआ है। मुझे सारे धर्मों का श्रेष्ठ फल प्राप्त हो गया।

इति हृदयसुखं निशम्य वाक्यं,
श्रुतिसुखमात्मवता विनीतमुक्तम्।
प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टः,
परमऋषिः परमं जगाम हर्षम्।। ४९।।

इस प्रकार उन मनस्वी नरेश के कहे हुए कानों और हृदय को सुख देने वाले, विनय से युक्त वाक्यों को सुनकर विख्यात गुण और यश वाले गुणों से सम्पन्न महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

छठा सर्ग

विश्वामित्र के मुख से श्रीराम को साथ ले जाने की माँग सुन कर राजा दशरथ का दु:खित एवं मूर्च्छित होना।

तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य, वाक्यमद्भुतविस्तरम्।
हृष्टरोमा महातेजा, विश्वामित्रोऽभ्यभाषत।। १।।
सदृशं राजशार्दूल, तवैव भुवि नान्यतः।
महावंशप्रसूतस्य, वसिष्ठव्यपदेशिनः।। २।।

राजसिंह राजा दशरथ के उन अद्भुत और विस्तार से युक्त वचनों को सुनकर महा तेजस्वी विश्वामित्र पुलकित होकर बोले कि हे राजसिंह! आपने जो बात कही, वह संसार में आप ही कह सकते हैं, दूसरा नहीं। आपने महान वंश में जन्म लिया है और आप वसिष्ठ जी के उपदेश को ग्रहण करने वाले हैं।

यत् तु मे हृद्गतं वाक्यं, तस्य कार्यस्य निश्चयम्।
कुरुष्व राजशार्दूल, भव सत्यप्रतिश्रवः।। ३।।
अहं नियममातिष्ठे, सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ।
तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु, राक्षसौ कामरूपिणौ।। ४।।

अब जो मेरे हृदय में बात है, उसे पूरा करने का निश्चय किजिये। हे राजसिंह! अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करिये। हे पुरुष श्रेष्ठ! मैने एक नियम की सिद्धि के लिये उसका अनुष्ठान किया हुआ है। उसमें दो इच्छानुसार रूप धारण करने वाले राक्षस विघ्न डाला करत्ते हैं।

नोट— राक्षस के विषय में विशेष व्याख्या विस्तृत भूमिका में देखिये।

व्रते तु बहुशश्चीर्णे, समाप्त्यां राक्षसाविमौ।
मारीचश्च सुबाहुश्च, वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ।। ५।।
तौ मांसरुधिरौघेण, वेदिं तामभ्यवर्षताम्।
अवधूते तथाभूते, तस्मिन् नियमनिश्चये।। ६।।
कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद् देशादपाक्रमे।
न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं, बुद्धिर्भवति पार्थिव।। ७।।

मेरे इस व्रत का अधिकांश भाग पूरा हो चुका है। समाप्ति के समय उन दोनों मारीच और सुबाहु नाम के राक्षसों ने, जो कि बलवान और सुशिक्षित हैं, वेदी पर मांस और रुधिर की वर्षा कर दी, जिससे मेरा व्रत अधूरा रह गया। अपने परिश्रम के व्यर्थ हो जाने पर निरुत्साहित हो कर मैं उस स्थान से चला आया हूँ। मेरे मन में यह विचार नहीं आता कि मैं स्वयं उन पर क्रोध करूँ।

स्वपुत्रं राजशार्दूल, रामं सत्यपराक्रमम्।
काकपक्षधरं वीरं, ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि।। ८।।
शक्तो ह्येष मया गुप्तो, दिव्येन स्वेन तेजसा।
राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने।। ९।।
श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि, बहुरूपं न संशयः।

हे राजसिंह! तुम अपने ज्येष्ठ पुत्र, काकपक्ष धारण करने वाले, सत्य पराक्रमी, वीर राम को मुझे दे दीजिये। यह मेरे द्वारा सुरक्षित रह कर अपने दिव्य तेज से विघ्न कारी राक्षासों को नष्ट कर सकते हैं। मैं इनका अनेक प्रकार से कल्याण करूँगा, इसमें संशय नहीं है।

त्रयाणामपि लोकानां, येन ख्यातिं गमिष्यति।। १०।।
न च तौ राममासाद्य, शक्तौ स्थातुं कथंचन।
न च तौ राघवादन्यो, हन्तुमुत्सहते पुमान्।। ११।।
वीर्योत्सिक्तौ हि तौ पापौ, कालपाशवशं गतौ।
रामस्य राजशार्दूल, न पर्याप्तौ महात्मनः।। १२।।

इस कार्य से ये तीनों लोकों में प्रसिद्धि को प्राप्त होंगे। वे दोनों राक्षस श्रीराम का किसी प्रकार भी सामना नहीं कर सकते। राम के सिवाय कोई दूसरा उन्हें मारने का साहस नहीं कर सकता। वे अपने बल के घमण्डी पापी मृत्यु के बन्धन में आने वाले हो गये हैं, इसलिये हे राजसिंह! वे राम के सामने नहीं ठहर सकते।

न च पुत्रगतं स्नेहं, कर्तुमर्हसि पार्थिव।
अहं ते प्रतिजानामि, हतौ तौ विद्धि राक्षसौ।। १३।।
अहं वेद्मि महात्मानं, रामं सत्यपराक्रमम्।
वसिष्ठोऽपि महातेजा, ये चेमे तपसि स्थिताः।। १४।।

सत्य पराक्रमी महात्मा राम के सामर्थ्य को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। ये महान तेजस्वी वसिष्ठ तथा दूसरे तपस्वी भी जानते हैं, इसलिये हे राजा! आप पुत्र के स्नेह को मत कीजिये। मैं आपसे प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ कि वे दोनों राक्षस इनके हाथ से अवश्य मारे जायेंगे।

यदि ते धर्मलाभं तु, यशश्च परमं भुवि।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र, रामं मे दातुमर्हसि।। १५।।
यद्यभ्यनुज्ञां काकुत्स्थ, ददते तव मन्त्रिणः।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे, ततो रामं विसर्जय।। १६।।

यदि आप अपने अत्यधिक प्रसिद्धि और धर्म के लाभ को संसार में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं तो हे राजेन्द्र! आप राम को मुझे दे दीजिये। हे ककुत्स्थ वंशी! यदि आपके ये वसिष्ठ आदि सारे मन्त्री अनुमति दें तो आप राम को मेरे साथ विदा कर दीजिये।

अभिप्रेतमसंसक्तमात्मजं दातुमर्हसि।
दशरात्रं हि यज्ञस्य, रामं राजीवलोचनम्।। १७।।
नात्येति कालो यज्ञस्य, यथायं मम राघव।
तथा कुरुष्वभद्रं ते, मा च शोके मनः कृथाः।। १८।।
इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा, धर्मार्थसहितं वचः।
विरराम महातेजा, विश्वामित्रो महामतिः।। १९।।

आपके ये पुत्र, जो मेरे अभीष्ट हैं, तथा परिवार की आसक्ति से भी रहित हैं और कमल के समान आँखों वाले हैं, इन्हें यज्ञ के दस दिनों के लिये मुझे दे दीजिये। हे रघुनन्दन! आप ऐसा कीजिये। जिससे मेरे यज्ञ का समय समाप्त न हो जाये। आपका कल्याण हो। आप मन में शोक मत कीजिये। वे धर्मात्मा, महातेजस्वी, महामति विश्वामित्र, धर्म और अर्थ से युक्त इस प्रकार के वचन कह कर चुप हो गये।

सातवाँ सर्ग

राजा दशरथ का विश्वामित्र को अपना पुत्र देने से इनकार करना। विश्वामित्र का कुपित होना और वसिष्ठ जी का राजा को समझाना।

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो, विश्वामित्रस्य भाषितम्।
मुहूर्तमिव निःसंज्ञः, संज्ञावानिदमब्रवीत्।। १।।
इयमक्षौहिणी सेना, यस्याहं पतिरीश्वरः।
अनया सहितो गत्वा, योद्धाहं तैर्निशाचरैः।। २।।

विश्वामित्र की बात सुनकर राजसिंह दशरथ एक मुहूर्त के लिये चेतना शून्य से हो गये। उसके बाद होश में आकर उन्होंने कहा कि यह मेरी अक्षौहिणी सेना है, जिसका मैं पालन कर्ता स्वामी हूँ। इसके साथ मैं स्वयं जाकर उन राक्षसों से युद्ध करूँगा।

इमे शूराश्च विक्रान्ता, भृत्यामेऽस्त्रविशारदाः।
योग्या रक्षोगणैर्योद्धुं, न रामं नेतुमर्हसि।। ३।।
अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि।
यावत् प्राणान् धरिष्यामि, तावद् योत्स्ये निशाचरैः।४।।

मेरे ये सैनिक पराक्रमी और वीर हैं, ये अस्त्र विद्या में कुशल हैं। ये राक्षसों से युद्ध करने की योग्यता रखते हैं, इसलिये आप राम को न ले जाइये। मैं स्वयं ही धनुष हाथ में लेकर आपके यज्ञ की रक्षा करूँगा और जब तक प्राण हैं, मैं युद्ध क्षेत्र में राक्षसों से युद्ध करता रहूँगा।

निर्विघ्ना व्रतचर्या सा, भविष्यति सुरक्षिता।
अहं तत्र गमिष्यामि, न रामं नेतुमर्हसि।। ५।।
बालो ह्यकृतविद्यश्च, न च वेत्ति बलाबलम्।
न चास्त्रबलसंयुक्तो, न च युद्धविशारदः।। ६।।

मेरे द्वारा सुरक्षित हो कर आपकी व्रतचर्या निर्विघ्न समाप्त हो जायेगी। मैं वहाँ चलूँगा, अतः आप राम को न ले जाइये। यह अभी बच्चा है, इसने अभी पूरी विद्या प्राप्त नहीं की है, यह शत्रु के बलाबल को नहीं जानता है। इसमें अभी अस्त्रों को चलाने की शक्ति नहीं है और ना हीं यह युद्ध करने में चतुर है।

न चासौ रक्षसां योग्यः, कूटयुद्धा हि राक्षसाः।
विप्रयुक्तो हि रामेण, मुहूर्तमपि नोत्सहे।। ७।।
जीवितुं मुनिशार्दूल, न रामं नेतुमर्हसि।
यदि वा राघवं ब्रह्मन्, नेतुमिच्छसि सुव्रत।। ८।।
चतुरङ्गसमायुक्तं, मया सह च तं नय।

यह राक्षसों से युद्ध करने के योग्य नहीं है। क्योंकि राक्षस कपट से युद्ध करते हैं, फिर राम से अलग होने पर मैं एक मुहूर्त भी जीवित रहना नहीं चाहता, इसलिये आप कृपया राम को न ले जाइये। हे अच्छे व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण! यदि आप राम को ले जाना ही चाहते हैं, तो चतुरंगिणी सेना के साथ मैं भी चलता हूँ। मेरे साथ इसे ले चलिये।

चतुर्णामात्मजानां हि, प्रीतिः परमिका मम।। ९।।
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च, न रामं नेतुमर्हसि।
किंवीर्या राक्षसास्ते च, कस्य पुत्राश्च के च ते।। १०।।
कथंप्रमाणाः के चैतान्, रक्षन्ति मुनिपुङ्गव।
कथं च प्रतिकर्तव्यं, तेषां रामेण रक्षसाम्।। ११।।

मेरे चारों पुत्रों में राम सबसे बड़े और धर्म प्रधान हैं। इन पर मेरा प्रेम सबसे अधिक है, इसलिये आप राम को न ले जाइये। वे राक्षस कौन हैं? कैसे पराक्रमी हैं और किसके पुत्र हैं? उनका डील डौल कैसा है? और कौन उनकी रक्षा करता है? हे मुनि श्रेष्ठ! राम उनका सामना कैसे कर सकता है?

मामकैर्वा बलैर्ब्रह्मन्, मया वा कूटयोधिनाम्।
सर्वं मे शंस भगवन्, कथं तेषां मया रणे।। १२।।
स्थातव्यं दुष्टभावानां, वीर्योत्सिक्ता हि राक्षसाः।

हे ब्रह्मन्! मेरे सैनिकों द्वारा या मेरे द्वारा उन कपट से युद्ध युद्ध करने वाले दुष्टों के साथ कैसे युद्ध करना चाहिये? यह सब मुझे बताओ, क्योंकि राक्षसों में अपने बल का घमण्ड होता है।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, विश्वामित्रोऽभ्यभाषत।। १३।।
पौलस्त्यवंशप्रभवो, रावणो नाम राक्षसः।
श्रूयते च महाराज, रावणो राक्षसधिपः।। १४।।
साक्षाद्वैश्रवणभ्राता, पुत्रो विश्रवसो मुनेः।

राजा के उन वचनों को सुनकर विश्वामित्र ने कहा पुलस्त्य वंशी रावण नाम का राक्षस है। महाराज! यह सुना जाता है कि रावण राक्षसों का राजा है। वह विश्रवा मुनि का पुत्र और कुबेर का साक्षात् भाई है।

यदा न खलु यज्ञस्य, विघ्नकर्ता महाबलः।। १५।।
तेन संचोदितौ तौ तु, राक्षसौ च महाबलौ।
मारीचश्च सुबाहुश्च, यज्ञविघ्नं करिष्यतः।। १६।।

वह महाबली स्वयं यज्ञ में विघ्न नहीं डालता पर उसकी प्रेरणा से वे दो महा बलवान सुबाहु और मारीचि राक्षस यज्ञ में विघ्न डालेंगे।

इत्युक्तो मुनिना तेन, राजोवाच मुनिं तदा।
नहि शक्तोऽस्मि संग्रामे, स्थातुं तस्य दुरात्मनः।। १७।।
स त्वं प्रसादं धर्मज्ञ, कुरुष्व मम पुत्रके।
मम चैवाल्पभाग्यस्य, दैवतं हि भवान् गुरुः।। १८।।

मुनि के ऐसा कहने पर राजा ने उनसे कहा कि उस दुष्ट के साथ तो मैं युद्ध नहीं कर सकता। हे धर्म को जानने वाले आप मेरे पुत्र पर कृपा कीजिये। मुझ मन्दभागी के आप ही देवता और गुरु हैं।

देवदानवगन्धर्वा, यक्षाः पतगपन्नगाः।
न शक्ता रावणं सोढुं, किं पुनर्मानवा युधि।। १९।।
स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावणः।
तेन चाहं न शक्तोऽस्मि, संयोद्धुं तस्य वा बलैः।। २०।।
सबलो वा मुनिश्रेष्ठ, सहितो वा ममात्मजैः।

देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, गरुड़ और नाग भी रावण का युद्ध में सामना नहीं कर सकते, मनुष्य की तो बात ही क्या है? हे मुनिश्रेष्ठ! रावण युद्ध में बलवानों के बल का अपहरण कर लेता है। इसलिये मैं स्वयं अपनी सेना के साथ, या पुत्रों के साथ उससे या उसकी सेना से युद्ध करने में समर्थ नहीं हूँ।

कथमप्यमरप्रख्यं, संग्रामाणामकोविदम्।। २१।।
बालं मे तनयं ब्रह्मन्, नैव दास्यामि पुत्रकम्।
अथ कालोपमौ युद्धे, सुतौ सुन्दोपसुन्दयोः।। २२।।
यज्ञ विघ्नकरौ तौ ते, नैव दास्यामि पुत्रकम्।
मारीचश्च सुबाहुश्च, वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ।। २३।।
तयोरन्यतरं योद्धुं, यास्यामि ससुहृद्गणः।
अन्यथा त्वनुनेष्यामि, भवन्तं सहबान्धवः।। २४।।

मैं अपने देवोपम, संग्राम की कला से अनभिज्ञ, बालक पुत्र को किसी प्रकार भी नहीं दूंगा। वे यज्ञ में विघ्न डालने वाले मारिचि और सुबाहु सुन्द और उपसुन्द के पुत्र हैं, वे बलशाली और अच्छी शिक्षा प्राप्त हैं, वे युद्ध में मृत्यु के समान हैं, इसलिये उनसे युद्ध करने के लिये मैं अपने पुत्र को नहीं दूंगा। उन दोनों में से किसी एक के साथ युद्ध के लिये मैं अपने मित्रों के साथ चलूँगा, अथवा मैं अपने बन्धु बान्धवों के साथ आपसे विनती करूँगा कि आप राम को न ले जायें।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य, स्नेहपर्याकुलाक्षरम्।
समन्युः कौशिको वाक्यं, प्रत्युवाच महीपतिम्।। २५।।
पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्य, प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि।
राघवाणामयुक्तोऽयं, कुलस्यास्य विपर्ययः।। २६।।

राजा की यह बात, जिसका एक एक अक्षर पुत्र के स्नेह से भरा हुआ था, सुनकर विश्वामित्र ने शोक के साथ राजा को उत्तर दिया कि हे राजन! पहले प्रतिज्ञा करके आप फिर

प्रतिज्ञा को तोड़ना चाहते हैं, यह रघुवंशियों के लिये ठीक नहीं है। इससे कुल का नाश हो जायेगा।

यदीदं ते क्षमं राजन्, गमिष्यामि यथागतम्।
मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ, सुखी भव सुहृद्वृतः।। २७।।
इक्ष्वाकूणां कूले जातः, साक्षाद् धर्म इवापरः।
धृतिमान् सुव्रतः श्रीमान्, न धर्मं हातुमर्हसि।। २८।।

हे राजन्! यदि आप को यही ठीक लगता है तो मैं जैसे आया था वैसा ही लौट जाऊँगा। हे काकुत्स्थ कुलश्रेष्ठ! तुम अपनी प्रतिज्ञा को असत्य करके मित्रों के साथ सुख से रहो। तब अच्छे व्रत का पालन करने वाले, धैर्यवान वसिष्ठ जी ने राजा से कहा कि हे धीमान! आप इच्छ्वाकु वंश में पैदा हुए हैं, आप धैर्यवान हैं, अच्छे व्रत का पालन करते हुए आप साक्षात् धर्म के दूसरे रूप हैं। आपको अपने धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये।

त्रिषु लोकेषु विख्यातो, धर्मात्मा इति राघवः।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व, नाधर्मं वोढुमर्हसि।। २९।।
प्रतिश्रुत्य करिष्येति, उक्तं वाक्यमकुर्वतः।
इष्टापूर्तवधो भूयात्, तस्माद् रामं विसर्जय।। ३०।।

हे रघुवंशी! आप तीनों लोकों में धर्मात्मा के रूप में प्रसिद्ध हैं, इसलिये अपने धर्म का पालन कीजिये, अधर्म का बोझ मत उठाइये। जो, मैं ऐसा करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा करके, वैसा नहीं करता हैं, उसके इष्ट और पूर्त दोनों प्रकार के शुभ कर्मो का नाश हो जाता है। इसलिये आप राम को विश्वामित्र के साथ भेज दीजिये।

कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा, नैमं शक्ष्यन्ति राक्षसाः।
गुप्तं कुशिकपुत्रेण, ज्वलनेनामृतं यथा।। ३१।।
एष विग्रहवान् धर्म, एष वीर्यवतां वरः।
एष विद्याधिको लोके, तपसश्च परायणम्।। ३२।।

चाहे राम ने अस्त्र विद्या सीखी हो या न सीखी हो, कुशिक पुत्र विश्वामित्र से सुरक्षित रहने पर इनका राक्षस सामना नहीं कर सकते। अग्नि के द्वारा सुरक्षित अमृत को कोई हाथ नहीं लगा सकता। ये विश्वामित्र साक्षात् धर्म के रूप हैं, ये तेजस्वियों में श्रेष्ठ हैं। ये महानतपस्वी और विद्या में सबसे अधिक हैं।

एषोऽस्त्रान् विविधान् वेत्ति, त्रैलोक्ये सचराचरे।
नैनमन्यः पुमान् वेत्ति, न च वेत्स्यन्ति केचन।। ३३।।
एवंवीर्यो महातेजा, विश्वामित्रो महायशाः।
न रामगमने राजन्, संशयं गन्तुमर्हसि।। ३४।।
तेषां निग्रहणे शक्तः, स्वयं च कुशिकात्मजः।
तव पुत्रहितार्थाय, त्वामुपेत्याभियाचते।। ३५।।

ये चराचर सहित तीनों लोकों में विविध प्रकार के जो अस्त्र हैं, उस सबको जानते हैं, इन्हें मेरे सिवाय कोई दूसरा मनुष्य न तो जानता है और न जानेगा। हे राजन! ये विश्वामित्र ऐसे वीर्यवान, महान तेजस्वी और महान यशवाले हैं कि तुम्हें इनके साथ राम को भेजने में संशय नहीं करना चाहिये। ये कुशिक के पुत्र स्वयं भी उन राक्षसों को वश में कर सकते हैं। पर आपके पुत्र के हित के लिये स्वयं आकर आपसे इसकी याचना कर रहे हैं।

इतिमुनिवचनात् प्रसन्नचित्तो,
रघुवृषभश्च मुमोद पार्थिवाग्र्यः।
गमनमभिरुरोच राघवस्य,
प्रथितयशाः कुशिकात्मजाय बुद्ध्या।। ३६।।

मुनि के इन वचनों को सुनकर, रघुकुलशिरोमणि, प्रख्यात यश वाले, राजाओं में श्रेष्ठ दशरथ जी प्रसन्न हो गये और उन्हें विश्वामित्र के लिये श्रीराम का जाना रुचिकर प्रतीत होने लगा।

आठवाँ सर्ग

राजा दशरथ का राम लक्ष्मण को मुनि के साथ भेजना उनका गंगा सरयू के संगम के समीप पुण्य आश्रम में रात में ठहरना।

तथा वसिष्ठे ब्रुवति, राजा दशरथः स्वयम्।
प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम्।। १।।
कृतस्वस्त्ययनं मात्रा, पित्रा दशरथेन च।
पुरोधसा वसिष्ठेन, मङ्गलैरभिमन्त्रितम्।। २।।

वसिष्ठ जी के ऐसा कहने पर, प्रसन्न वदन राजा दशरथ ने स्वयं राम को लक्ष्मण सहित बुलाया। फिर माता कौशल्या तथा पिता दशरथ ने उनका स्वस्ति वाचन किया और वसिष्ठ जी ने मांगलिक मन्त्रों से अभिमन्त्रित किया।

स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय, राजा दशरथस्तदा।
ददौ कुशिकपुत्राय, सुप्रीतेनान्तरात्मना।। ३।।
विश्वामित्रो ययावग्रे, ततो रामो महायशाः।
काकपक्षधरो धन्वी, तं च सौमित्रिरन्वगात्।। ४।।

राजा दशरथ ने अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो पुत्रों का सिर सूंघ कर उन्हें विश्वामित्र के साथ कर दिया। उस समय विश्वामित्र जी आगे जा रहे थे, उनके पीछे महा यशस्वी काकपक्षधारी राम धनुष लेकर जा रहे थे और उनके पीछे सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण जा रहे थे।

कलापिनौ धनुष्पाणी, शोभमानौ दिशो दश।
विश्वामित्रं महात्मानं, त्रिशीर्षाविव पन्नगौ।। ५।।
अनुयातौ श्रिया दीप्तौ, शोभयन्तावनिन्दितौ।
तदा कुशिकपुत्रं तु, धनुष्पाणी स्वलंकृतौ।। ६।।
बुद्धगोधाङ्गुलित्राणौ, खड्गवन्तौ महाद्युती।
कुमारौ चारुवपुषौ, भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। ७।।
अनुयातौ श्रिया दीप्तौ, शोभयेतामनिन्दितौ।
गुरुकार्याणि सर्वाणि, नियुज्य कुशिकात्मजे।
ऊषुस्तां रजनीं तत्र, सरय्वां ससुखं त्रयः।। ८।।

पीछे तरकस बाँधे और हाथ में धनुष लिये हुए, और दसों दिशाओं को सुशोभित करते हुए वे दोनों महात्मा विश्वामित्र जी के पीछे चलते हुए ऐसे लग रहे थे जैसे तीन फन वाले सर्प हों। विश्वामित्र जी के पीछे जाते हुये वे दोनों राम लक्ष्मण भाई अच्छे आभूषण धारण किये हुए और हाथ में धनुष लिये हुये थे। उन्होंने अंगुलियों में गोह के चमड़े के दस्ताने पहन रखे थे, और जगमगाती हुई तलवारें बाँध रखीं थीं। सुन्दर शरीर वाले वे निन्दा से रहित और अपने तेज से जगमगाते हुए सुशोभित हो रहे थे। शाम को सरयू के तट पर उन्होंने विश्वामित्र जी की गुरु के समाज सेवा की और वहीं नदी के क़िनारे तीनों ने सुख से रात बिताई।

दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां,
तृणशयनेऽनुचिते तदोषिताभ्याम्।
कुशिकसुतवचोऽनुलालिताभ्यां,
सुखमिव सा विबभौ विभावरी च।। ९।।

यद्यपि वह तृण शय्या उन राज कुमारों के सोने योग्य नहीं थी, पर वे उस पर सोये। उस समय विश्वामित्र जी मधुर वचनों से उनसे लाड़ प्यार कर रहे थे। इसलिये वह रात उन्हें सुखभरी प्रतीत हुई।

प्रभातयां तु शर्वर्यां, विश्वामित्रो महामुनिः।
अभ्यभाषत काकुत्स्थौ, शयानौ पर्णसंस्तरे।। १०।।
कौसल्या सुप्रजा राम, पूर्वसंध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल, कर्तव्यं दैवमाह्निकम्।। ११।।

जब रात बीत जाने पर प्रभात हुआ तब महामुनि विश्वामित्र ने उन दोनों ककुत्स्थ वंशी राजकुमारों से, जो पत्तों की शय्या पर सोये हुए थे, कहा कि हे कौशल्या के सुपुत्र राम अब प्रातःकाल की सन्ध्या का समय हो गया है। हे नरश्रेष्ठ! उठो। अब देवताओं सम्बन्धी नित्यकर्मों को पूरा करो।

तस्यर्षेः परमोदारं, वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
कृताह्निकौ महावीर्यौ, विश्वामित्रं तपोधनम्।। १२।।
अभिवाद्यातिसंहृष्टौ, गमनायाभितस्थतुः।
तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ, दिव्यां त्रिपथगां नदीम्।। १३।।
ददृशाते ततस्तत्र, सरय्वाः संगमे शुभे।

उन ऋषि के उन उदार वचनों को सुनकर उन दोनों महा तेजस्वी नर श्रेष्ठों ने अपने दैनिक कर्म किये और तपस्वी विश्वामित्र को प्रणाम कर के अत्यन्त प्रसन्नता के साथ जाने के लिये तैयार हो गये। वहाँ से जाकर उन दोनों महा बलवान राजकुमारों ने सरयू और गंगा के संगम पर गंगाजी के दर्शन किये।

तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम्।। १४।।
बहुवर्षसहस्राणि, तप्यतां परमं तपः।
इहाद्य रजनीं राम, वसेम शुभदर्शन।। १५।।
पुण्ययोः सरितोर्मध्ये, श्वस्तरिष्यामहे वयम्।
अभिगच्छामहे सर्वे, शुचयः पुण्यमाश्रमम्।। १६।।
इह वासः परोऽस्माकं, सुखं वत्स्यामहे निशाम्।
स्नाताश्च कृतजप्याश्च, हुतहव्या नरोत्तम।। १७।।

वहाँ शुद्ध अन्तःकरण वाले ऋषियों का एक आश्रम था, वहाँ हजारों वर्षों से ऋषि लोग तपस्या करते चले आ रहे थे। वहाँ विश्वामित्रजी ने कहा कि हे शुभ दर्शन राम! आज रात को हम यहीं दोनों पवित्र नदियों के बीच में रहेंगे और प्रातः इन्हें पार करेंगे। हम पवित्र भाव से इस आश्रम में चलते हैं। यहाँ ठहरना हमारे लिये अच्छा रहेगा। यहाँ हमारी रात सुख से व्यतीत होगी। यहाँ हम स्नान करके जप और हवन करेंगे।

तेषां संवदतां तत्र, तपोदीर्घेण चक्षुषा।
विज्ञाय परमप्रीता, मुनयो हर्षमागमद्।। १८।।

अर्घ्यं पाद्यं तथाऽऽतिथ्यं, निवेद्य कुशिकात्मजे।
रामलक्ष्मणयोः पश्चादकुर्वन्नतिथिक्रियाम्।। १९।।
सत्कारं समनुप्राप्य, कथाभिरभिरञ्जयन्।
यथार्हमजपन् संध्यामृषयस्ते समाहिताः।। २०।।

वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि वहाँ के निवासी मुनियों ने तपस्या द्वारा प्राप्त दूर दृष्टि से उनके आने के विषय में जान लिया और प्रसन्न हुए। उन्होंने विश्वामित्र जी के लिये अर्घ्य, पैर धोने का जल और आतिथ्य सामग्री भेंट की और तत्पश्चात राम और लक्ष्मण का भी सत्कार किया। सत्कार के पश्चात उन्होंने अनेक कथाओं से उनका मनोरंजन किया और उसके पश्चात् उन सब ने यथा योग्य सन्ध्योपासना और जप किया।

तत्र वासिभिरानीता, मुनिभिः सुव्रतैः सह।
न्यवसन् ससुखं तत्र, कामाश्रमपदे तथा।। २१।।
कथाभिरभिरामाभिरभिरामौ नृपात्मजौ।
रमयामास धर्मात्मा, कौशिको मुनिपुङ्गवः।। २२।।

तब वहाँ के निवासी मुनियों ने उन्हें ठीक स्थान में ठहरा दिया। वहाँ उन्होंने अच्छे व्रत वाले मुनियों के साथ, उस कामनाओं की पूर्ति करने वाले आश्रम में सुख के साथ निवास किया। तब धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र जी ने सुन्दर कथाओं के द्वारा उन राजकुमारों का मनोरंजन किया।

नौवाँ सर्ग

विश्वामित्रजी का राम और लक्ष्मण को मलद, करूष एवं ताटका वन का परिचय देते हुए उन्हें ताटकावध के लिये आज्ञा प्रदान करना।

ततः प्रभाते विमले, कृताह्निकमरिन्दमौ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य, नद्यास्तीरमुपागतौ।। १।।
ते च सर्वे महात्मानो, मुनयः संशितव्रताः।
उपस्थाप्य शुभां नावं, विश्वामित्रमथाब्रुवन्।। २।।
आरोहतु भवान् नावं, राजपुत्रपुरस्कृतः।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं, मा भूत् कालस्य पर्ययः।। ३।।
विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा, तानृषीन् प्रतिपूज्य च।
ततार सहितस्ताभ्यां, सरितं सागरङ्गमाम्।। ४।।

तब निर्मल प्रभात होने पर दैनिक कर्म करने के उपरान्त वे दोनों शत्रुओं को दमन करने वाले विश्वामित्र जी को आगे करके नदी के किनारे आये। तब उत्तम व्रत का पालन करने वाले सारे महात्माओं ने एक सुन्दर नाव मँगाई और विश्वामित्र जी से कहा कि आप राजपुत्रों के साथ नाव पर विराजिये और कल्याण मय रास्ते पर यात्रा कीजिये। आपके कार्य में विलम्ब न हो। विश्वामित्र जी ने तब अच्छा कह कर उन महात्माओं का समादर किया और उन दोनों के साथ समुद्रगामिनी उस नदी को पार किया।

तीरं दक्षिणमासाद्य, जग्मतुर्लघुविक्रमौ।
स वनं घोरसंकाशं, दृष्ट्वा नरवरात्मजः।। ५।।
अविप्रहतमैक्ष्वाकः, पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम्।
अहो वनमिदं दुर्गं, झिल्लिकागणसंयुतम्।। ६।।

भैरवैः श्वापदैः कीर्णं, शकुन्तैर्दारुणारवैः।
नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः।। ७।।

नदी के दक्षिणी किनारे पर आकर वे जल्दी-जल्दी चलने लगे। तब इक्ष्वाकु पुत्र राजकुमार श्रीराम ने एक भयानक वन को देखकर मुनि श्रेष्ठ से पूछा कि यह तो बड़ा भयानक जंगल है। इसमें सब तरफ झिल्लियाँ झनकार रहीं है। यह हिंसक जन्तुओं से भरा हुआ है। यहाँ हर जगह भयानक बोली बोलने वाले भयानक पक्षी अपनी भयानक बोलियाँ बोल रहे हैं।

सिंहव्याघ्रवराहैश्च, वारणैश्चापि शोभितम्।
धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः ।। ८।।
संकीर्णं बदरीभिश्च, किंन्विदं दारुणं वनम्।

शेर, बाघ, सूअर और हाथी इस जंगल की शोभा बढ़ा रहे हैं। यह वन धव, अश्वकर्ण, ककुभ (अर्जुन) बेल, तिन्दुक (तेन्दू) पाटल (पाडर) तथा बेर के वृक्षों से भरा हुआ है। इस भयंकर वन का नाम क्या है?

तमुवाच महातेजा, विश्वामित्रो महामुनिः।। ९।।
श्रूयतां वत्स काकुत्स्थ, यस्यैतद् दारुणं वनम्।
एतौ जनपदौ स्फीतौ, पूर्वमास्तां नरोत्तम।। १०।।
मलदाश्च करूषाश्च, देवनिर्माणनिर्मितौ।

तब महा तेजस्वी महामुनि विश्वामित्र जी ने उनसे कहा कि हे ककुत्स्थ वंशी पुत्र! सुनो। मैं तुम्हें बताता हूँ कि यह वन किसके अधिकार में है। पहले यहाँ मलद और करूष नाम के दो देश थे, जिन्हें विद्वान पुरुषों ने बसाया था।

कस्यचित्त्वथ कालस्य, यक्षिणी कामरूपिणी।। ११।।
बलं नागसहस्रस्य, धारयन्ती तदा ह्यभूत्।
ताटका नाम भद्रं ते, भार्या सुन्दस्य धीमतः।। १२।।
मारीचो राक्षसः पुत्रो, यस्याः शक्रपराक्रमः।
वृत्तबाहुर्महाशीर्षो, विपुलास्यतनुर्महान्।। १३।।

कुछ काल पहले से यहाँ एक यक्षिणी, जिसका नाम ताटका है, जो इच्छा अनुसार रूप धारण करती है, तथा जो अनेक हाथियों के बराबर शक्ति को धारण करती है, यहां निवास करती है। वह बुद्धिमान सुन्द नाम के राक्षस की पत्नी है। तुम्हारा कल्याण हो। इन्द्र के समान पराक्रमी मारीचि उसी का पुत्र है। उसकी भुजाएँ गोल, सिर बड़ा, मुख विशाल और शरीर लम्बा चौड़ा है।

राक्षसो भैरवाकारो, नित्यं त्रासयते प्रजाः।
इमौ जनपदौ नित्यं, विनाशयति राघव।। १४।।
मलदांश्च करूषांश्च, ताटका दुष्टचारिणी।

वह भयानक आकृति वाला राक्षस यहाँ की जनता को सर्वदा पीड़ित करता रहता है और वह दुराचारिणी ताटका भी इन दोनों मलद और करुष जनपदों का सदा विनाश करती रहती है।

सेयं पन्थानमावृत्य, वसत्यत्यर्धयोजने।। १५।।
अत एव च गन्तव्यं, ताटकाया वनं यतः।
स्वबाहुबलमाश्रित्य, जहीमां दुष्टचारिणीम्।। १६।।

वह यहाँ डेढ़ योजन तक के रास्ते को घेर कर रहती है। इसलिये हमे उसी रास्ते से चलना चाहिये जिधर ताटका वन है। तुम अपने बाहु बल से उस दुराचारिणी को मार डालो।

मन्नियोगादिमं देशं, कुरु निष्कण्टकं पुनः।
नहि कश्चिदिमं देशं, शक्तो ह्यागन्तुमीदृशम्।। १७।।
यक्षिण्या घोरया राम, उत्सादितमसह्यया।
एतत्ते सर्वमाख्यातं, यथैतद् दारुणं वनम्।। १८।।
यक्ष्या चोत्सादितं, सर्वमद्यापि न निवर्तते।

तुम मेरे आदेश से इस देश को निष्कण्टक बना दो। अन्यथा यहाँ ऐसी अवस्था है कि कोई यहाँ आ नहीं सकता। हे राम उस भयानक और असह्य यक्षिणी ने इस देश को उजाड़ दिया है। इस प्रकार यह वन भयानक क्यों है, यह मैने तुम्हें बता दिया है। उस यक्षिणी ने ही सारे देश को उजाड़ा है और आज भी उजाड़ रही है।

एनां राघव दुर्वृत्तां, यक्षीं परमदारुणाम्।। १९।।
गोब्राह्मणहितार्थाय, जहि दुष्टपराक्रमाम्।
नहि ते स्त्रीवधकृते, घृणा कार्या नरोत्तम।। २०।।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि, कर्तव्यं राजसूनुना।

हे रघुनन्दन! तुम अत्यधिक भयानक और दुष्ट पराक्रम वाली यक्षिणी को गौ और ब्राह्मणों की भलाई के लिये मार डालो। स्त्री हत्या समझ कर तुम इस कार्य से घृणा न करना। राजपुत्र को चारों वर्णों की भलाई के लिये स्त्री हत्या भी कर देनी चाहिये।

नृशंसमनृशंसं वा, प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा, कर्तव्यं रक्षता सदा।। २१।।
राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः।
अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ, धर्मो ह्यस्यां न विद्यते।। २२।।

प्रजा की रक्षा करने वाले को चाहे क्रूरता पूर्ण, क्रूरता रहित या पाप और दोषो से युक्त कार्य भी करना पड़े तो उसे रक्षा करते हुए कर लेना चाहिये। राज्य के उत्तरदायित्व से युक्त व्यक्ति का तो यह सनातन धर्म है। हे ककुत्स्थ नन्दन! वह ताटका अधर्म रूपिणी है, उसमें धर्म लेशमात्र भी नहीं है, इसलिये उसे मार दो।

दसवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा ताटका का वध

मुनेर्वचनमक्लीबं, श्रुत्वा नरवरात्मजः।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा, प्रत्युवाच दृढव्रतः।। १।।
पितुर्वचननिर्देशात्, पितुर्वचनगौरवात्।
वचनं कौशिकस्येति, कर्तव्यमविशङ्कया।। २।।
अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां, गुरुमध्ये महात्मना।
पित्रा दशरथेनाहं, नावज्ञेयं हि तद्वचः।। ३।।

मुनि के इन वीरता युक्त वचनों को सुन कर दृढ़व्रत का पालन करने वाले रघुवंशी राजकुमार ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया कि मेरे पिता महात्मा दशरथ ने अयोध्या में मुझे गुरुओं के बीच में यह आदेश दिया था कि पिता के वचनों के आदेश से, पिता के महत्व को ध्यान में रखते हुए विश्वामित्र जी की बात को बिना शंका के पूरी करना। उनकी बात की अवहेलना नहीं करनी है।

सोऽहं पितुर्वचः श्रुत्वा, शासनाद् ब्रह्मवादिनः।
करिष्यामि न संदेहस्ताटकावधमुत्तमम्।। ४।।
गोब्राह्मणहितार्थाय, देशस्य च हिताय च।
तव चैवाप्रमेयस्य, वचनं कर्तुमुद्यतः।। ५।।

इसलिये मैं पिता के वचन को सुनकर आप जैसे ब्रह्मवादी की आज्ञा से ताटका वध के उत्तम कार्य को अवश्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। गौ, ब्राह्मण तथा देश के हित के लिये आप जैसे प्रमेय अर्थात् अनुपम प्रभाव वाले महात्मा के आदेश को पूरा करने के लिये मैं तैयार हूँ।

एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये, बद्ध्वा मुष्टिमरिंदमः।
ज्याघोषमकरोत् तीव्रं, दिशः शब्देन नादयन्।। ६।।
तेन शब्देन वित्रस्तास्ताटकावनवासिनः।
ताटका च सुसंक्रुद्धा, तेन शब्देन मोहिता।। ७।।

ऐसा कहकर शत्रुओं का दमन करने वाले श्रीराम ने धनुष को मध्य भाग से मुठ्ठी को कस कर के पकड़ा और जोर से प्रत्यंचा को टंकारा। उसकी तीव्र ध्वनि से सारी दिशाएँ गूँजने लगीं। उस शब्द से ताटका वन के निवासी प्राणी डरने लगे। ताटका भी पहले मोहित सी होकर पुनः क्रोध में भर गई।

तं शब्दमभिनिध्याय, राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता।
श्रुत्वा चाभ्यद्रवत् क्रुद्धा, यत्र शब्दो विनिःसृतः।। ८।।
तां दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां, विकृतां विकृताननाम्।
प्रमाणेनातिवृद्धां च, लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत।। ९।।

वह राक्षसी उस शब्द को सुनकर क्रोध से अचेत सी हो गयी थी। वह जिधर से आवाज आ रही थी, उसी तरफ रोष पूर्वक दौड़ी। उस क्रोध से भरी हुई, भयानक शरीर तथा भयानक मुखवाली तथा विशाल डील डौल वाली राक्षसी को देख कर रघुनन्दन श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि—

पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या, भैरवं दारुणं वपुः।
भिद्येरन् दर्शनादस्या, भीरूणां हृदयानि च।। १०।।
एवं ब्रुवाणे रामे, ताटका क्रोधमूर्च्छिता।
उद्यम्य बाहुं गर्जन्ती, राममेवाभ्यधावत।। ११।।

हे लक्ष्मण! देखो। इस यक्षिणी का शरीर कितना भयानक और डरावना है। कायरों के हृदय इसको देखने से ही फट सकते हैं। राम के ऐसा कहते हुए ही, क्रोध से मूर्च्छित ताटका अपनी बाँह उठाकर गर्जती हुई उन्ही की तरफ झपटी।

विश्वामित्रस्तु ब्रह्मर्षिर्हुंकारेणाभिभर्त्स्य ताम्।
स्वस्ति राघवयोरस्तु, जयं चैवाभ्यभाषत।। १२।।
उद्धुन्वाना रजो घोरं, ताटका राघवावुभौ।
रजोमेघेन महता, मुहूर्तं सा व्यमोहयत्।। १३।।

तब ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने हुंकार के द्वारा उसको डाँटा और कहा कि इन दोनो रघुवंशियों का कल्याण हो और इनकी विजय हो। तत्पश्चात भयानक रूप से धूल उड़ाती हुई ताटका ने धूल के बादलों से उन दोनों रघुवंशियों को मुहूर्त भर के लिये मोहित कर दिया।

ततो मायां समास्थाय, शिलावर्षेण राघवौ।
अवाकिरत् सुमहता, ततश्चुक्रोध राघवः।। १४।।
शिलावर्षं महत् तस्याः, शरवर्षेण राघवः।
प्रतिवार्योपधावन्त्याः, करौ चिच्छेद पत्रिभिः।। १५।।

पुनः उसने माया का आश्रय लेकर उन दोनों को पत्थरों की वर्षा से ढक दिया। तब रामचन्द्र जी को क्रोध आया। उन्होंने उस महान शिला वर्षा का अपनी बाणवर्षा से निवारण करके अपने समीप आती हुई उस राक्षसी के दोनों हाथ बाणों से काट डाले।

तामापतन्तीं वेगेन, विक्रान्तामशनीमिव।
शरेणोरसि विव्याध, सा पपात ममार च।। १६।।
ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः।
मूर्ध्नि राममुपघ्राय, इदं वचनमब्रवीत्।। १७।।

उसे तत्पश्चात विद्युत के समान अपनी तरफ आते हुए देख उन्होंने बाण से उसकी छाती को बींध दिया। तब वह भूमि पर गिर पड़ी और मर गयी। तब ताटका के वध से सन्तुष्ट और स्नेह से युक्त उस मुनिवर ने श्रीराम का सिर सूँघ कर यह बात कही कि—

इहाद्य रजनीं राम, वसाम शुभदर्शन।
श्वः प्रभाते गमिष्यामस्तदाश्रमपदं मम।। १८।।
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा, हृष्टो दशरथात्मजः।
उवास रजनीं तत्र, ताटकाया वने सुखम्।। १९।।

हे शुभ दर्शन राम! आज की राज हम यहीं ठहरते हैं। सवेरे अपने आश्रम की तरफ चलेंगे। विश्वामित्र जी की बात सुन कर दशरथ के पुत्र श्रीराम प्रसन्न हुए और उन्होंने ताटका वन में वह रात सुख से व्यतीत की।

ग्यारहवाँ सर्ग

विश्वामित्र द्वारा श्रीराम को दिव्यास्त्रों की शिक्षा तथा अपने आश्रम सिद्धाश्रम पर पहुँचना।

अथ तां रजनीमुष्य, विश्वामित्रो महायशाः।
प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम्।। १।।
परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते, राजपुत्र महायशः।
प्रीत्या परमया युक्तो, ददाम्यस्त्राणि सर्वशः।। २।।

उस रात को व्यतीत कर महा यशस्वी विश्वामित्र ने हँस कर मीठी ध्वनि में श्री रामचन्द्र जी से कहा कि हे महान यश वाले राजकुमार! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। मैं अत्यधिक स्नेह से युक्त होकर तुम्हे अपने सारे अस्त्रों को दे रहा हूँ।

देवासुरगणान् वापि, सगन्धर्वोरगान् भुवि।
यैरमित्रान् प्रसह्याजौ, वशीकृत्य जयिष्यसि।। ३।।
तानि दिव्यानि भद्रं ते, ददाम्यस्त्राणि सर्वशः।
दण्डचक्रं महद् दिव्यं, तव दास्यामि राघव।। ४।।
धर्मचक्रं ततो वीर, कालचक्रं तथैव च।
विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्रं चक्रं तथैव च।। ५।।

इनकी सहायता से तुम अपने शत्रुओं को चाहे वे देव, असुर, नाग, गन्धर्व कोई भी हों रणभूमि में बलपूर्वक अपने वश में कर उन्हें जीत लोगे। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें वे सारे अस्त्र दे रहा हूँ। मैं तुम्हें दिव्य और महान दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र तथा भयानक ऐन्द्रचक्र दूँगा।

वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ, शैवं शूलवरं तथा।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव, ऐषीकमपि राघव।। ६।।
ददामि ते महाबाहो, ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम्।

हे नर श्रेष्ठ राघव! मैं तुम्हें इन्द्र का वज्रास्त्र, शिव का शूल, ब्रह्मा का श्रेष्ठ ब्रह्म शिरःअस्त्र तथा ऐषीकास्त्र देता हूँ।

गदे द्वे चैव काकुत्स्थ, मोदकीशिखरी शुभे।। ७।।
प्रदीप्ते नरशार्दूल, प्रयच्छामि नृपात्मज।
धर्मपाशमहं राम, कालपाशं तथैव च।। ८।।
वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम्।

हे ककुत्स्थ वंशी! मैं तुम्हें दो गदाएँ, जिसके नाम मौदकी और शिखरी हैं, जो कान्ति युक्त और सुन्दर हैं, देता हूँ। हे नरसिंह राजकुमार! मैं तुम्हें धर्मपाश, कालपाश और श्रेष्ठ वरुण पाश भी दे रहा हूँ।

अशनी द्वे प्रयच्छापि, शुष्कार्द्रे रघुनन्दन।। ९।।
ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा।
आग्नेयमस्त्रं दयितं, शिखरं नाम नामतः।। १०।।
वायव्यं प्रथमं नाम, ददामि तव चानघ।

हे रघुनन्दन! दो प्रकार की गीली और सूखी अशनि, नारायणास्त्र और पिनाकास्त्र भी तुम्हें दे रहा हूँ। मैं तुम्हें आग्नेय अस्त्र, जो शिखरास्त्र के नाम से भी प्रसिद्ध है तथा अस्त्रों में प्रधान वायव्यास्त्र को भी दे रहा हूँ।

अस्त्रं हयशिरो नाम, क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च।। ११।।
शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ, ददामि तव राघव।
कंकालं मुसलं घोरं, कापालमथ किङ्किणीम्।। १२।।
वधार्थं रक्षसां यानि, ददाम्येतानि सर्वशः।

हे ककुत्स्थ और रघुवंशी! मैं तुम्हें हयशिर नाम का अस्त्र तथा क्रौंचास्त्र तथा दो शक्तियों को भी दे रहा हूँ।

वैद्याधरं महास्त्रं च, नन्दनं नाम नामतः।। १३।।
असिरत्नं महाबाहो, ददामि नृवरात्मज।

मैं तुम्हें घोर कंकाल, मूसल, कपाल, किंकिणी, आदि अस्त्र जो राक्षसों के वध के लिये उपयोगी हैं दे रहा हूँ। हे विशाल भुजाओं वाले राजकुमार! मैं तुम्हें नन्दन नाम का विधाधरों का महान अस्त्र और श्रेष्ठ तलवार भी दे रहा हूँ।

गान्धर्वमस्त्रं दयितं, मोहनं नाम नामतः।। १४।।
प्रस्वापनं प्रशमनं, दद्मि सौम्यं च राघव।
वर्षणं शोषणं चैव, संतापनविलापने।। १५।।
मादनं चैव दुर्धर्षं, कन्दर्पदयितं तथा।
गान्धर्वमस्त्रं दयितं, मानवं नाम नामतः।। १६।।
पैशाचमस्त्रं दयितं, मोहनं नाम नामतः।
प्रतीच्छ नरशार्दूल, राजपुत्र महायशः।। १७।।

हे राघव! मैं तुम्हें गन्धर्वों का प्रिय अस्त्र सम्मोहन, प्रस्वापन, प्रशमन और सौम्य अस्त्र भी दे रहा हूँ। हे महायशस्वी, पुरुषसिंह, राजकुमार! तुम मुझसे वर्षण, शोषण, संतापन, विलापन तथा कामदेव का दुर्धर्ष अस्त्र मादन, गन्धर्वों का प्रिय मानवास्त्र, तथा पिशाचों का प्रिय अस्त्र मोहन भी मुझसे ग्रहण करना।

तामसं नरशार्दूल, सौमनं च महाबलम्।
संवर्तं चैव दुर्धर्षं, मौसलं च नृपात्मज।। १८।।
सत्यमस्त्रं महाबाहो, तथा मायामयं परम्।
सौरं तेजःप्रभं नाम, परतेजोऽपकर्षणम्।। १९।।

हे नर श्रेष्ठ, महाबाहु राजपुत्र! मैं तुम्हें तामस, महाबलवान सौमन, संवर्त, दुर्धर्ष मौसल, सत्य, और उत्तम मायामय अस्त्र तथा सूर्य का तेजःप्रभ जो कि शत्रु के तेज का नाश करने वाला है, तुम्हें दे रहा हूँ।

सोमास्त्रं शिशिरं नाम, त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम्।
दारुणं च भगस्यापि, शीतेषुमथ मानवम्।। २०।।
ततः प्रीतमना रामो, विश्वामित्रं महामुनिम्।
अभिवाद्य महातेजा, गमनायोपचक्रमे।। २१।।

सोम देव का शिशिर नाम का अस्त्र, अत्यन्त भयानक त्वाष्ट्र अस्त्र, भग देवता का भयानक अस्त्र तथा मनु का शीतेषु अस्त्र भी तुम्हे दे रहा हूँ।

तब अत्यन्त प्रसन्न होकर महा तेजस्वी श्रीराम ने महामुनि विश्वामित्र को प्रणाम किया और आगे की यात्रा आरम्भ की।

गच्छन्नेवाथ मधुरं, श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत्।
किमेतन्मेघसंकाशं, पर्वतस्याविदूरतः।। २२।।
वृक्षखण्डमितो भाति, परं कौतूहलं हि मे।

उन्होंने चलते चलते ही मधुर वाणी में पूछा कि यह पहाड़ के समीप, बादलों के समान, वृक्षों से भरा हुआ कौन सा स्थान है, जो यहीं से सुन्दर लग रहा है। मुझे इसे जानने की बड़ी उत्सुकता है।

दर्शनीयं मृगाकीर्णं, मनोहरमतीव च।। २३।।
नानाप्रकारैः शकुनैर्वल्गुभाषैरलंकृतम्।
निःसृताःस्मो मुनिश्रेष्ठ, कान्तारादु रोमहर्षणात्।। २४।।
अनया त्ववगच्छामि, देशस्य सुखवत्तया।

यह दर्शनीय स्थान मृगों से भरा होने के कारण बड़ा मनोहर लग रहा है। यह तरह-तरह के पक्षियों की सुन्दर चहचहाट से सुशोभित हो रहा है। इस देश के सुखदायी होने से, हे मुनि श्रेष्ठ! मैं समझता हूँ कि हम भयानक जंगल से बाहर निकल आये हैं।

सर्वं मे शंस भगवन्, कस्याश्रमपदं त्विदम्।। २५।।
सम्प्राप्ता यत्र ते पापा, ब्रह्मध्ना दुष्टचारिणः।
तव यज्ञस्य विघ्नाय, दुरात्मानो महामुने।। २६।।
भगवंस्तस्य को देशः, सा यत्र तव याज्ञिकी।
रक्षितव्या क्रिया ब्रह्मन्, मया वध्याश्च राक्षसाः।२७।।
एतत् सर्वं मुनिश्रेष्ठ, श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो।

हे भगवन! आप मुझे सब कुछ बताइये कि यह किसका आश्रम है? वह कौन सा देश है जहाँ आपकी यज्ञ क्रिया हो रही है, जहाँ वे पापी, दुष्ट आचरण वाले, ब्रह्म हत्यारे राक्षस आपके यज्ञ में विघ्न डालने के लिये आया करते हैं? जहाँ मुझे आपके यज्ञ की रक्षा करनी है और राक्षसों का वध करना है। हे ब्रह्मन! यह सब मुझे बताइये। मैं सुनना चाहता हूँ।

अथ तस्याप्रमेयस्य, वचनं परिपृच्छतः।। २८।।
विश्वामित्रो महातेजा, व्याख्यातुमुपचक्रमे।
एनमाश्रममायान्ति, राक्षसा विघ्नकारिणः।। २९।।
अत्र ते पुरुषव्याघ्र, हन्तव्या दुष्टचारिणः।
अद्य गच्छामहे राम, सिद्धाश्रममनुत्तमन्।। ३०।।
तदाश्रमपदं तात, तवाप्येतद् यथा मम।

उन अत्यधिक प्रभाव वाले श्रीराम के प्रश्नों का तब महा तेजस्वी विश्वामित्र ने उत्तर देना आरम्भ किया कि इसी आश्रम पर विघ्न डालने वाले राक्षस आया करते हैं। हे पुरुष सिंह! यहीं तुम्हें उन दुष्टों का नाश करना है। हे राम! अब हम इस उत्तम सिद्धाश्रम में पहुँच रहे हैं। यह आश्रम जैसे मेरा है, वैसे ही तुम्हारा भी है।

इत्युक्त्वा परमप्रीतो, गृह्य रामं सलक्ष्मणम्।। ३१।।
प्रविशन्नाश्रमपदं, व्यरोचत महामुनिः।
शशीव गतनीहारः, पुनर्वसुसमन्वितः।। ३२।।

ऐसा कह कर अत्यधिक प्यार से लक्ष्मण सहित राम के हाथ पकड़ कर आश्रम में प्रवेश करते हुए वे महा मुनि ऐसे ही शोभायमान हुए जैसे पुनवर्सु नाम के दो नक्षत्रों के बीच में तुषार रहित चन्द्रमा हो।

तं दृष्ट्वा मुनयः, सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः।
उत्पत्योत्पत्य सहसा, विश्वामित्रपूजयन्।। ३३।।
यथार्हं चक्रिरे पूजां, विश्वामित्राय धीमते।
तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम्।। ३४।।

उनको देख कर सिद्धाश्रम के निवासी सारे मुनि लोग दौड़ कर उनके पास आये। उन्होंने बुद्धिमान विश्वामित्र जी की यथा योग्य पूजा की और राजकुमारों का भी अतिथि सत्कार किया।

मुहूर्तमथ विश्रान्तौ, राजपुत्रावरिंदमौ।
प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ।। ३५।।

अद्यैव दीक्षां प्रविश, भद्रं ते मुनिपुंगव।
सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः, स्यात् सत्यमस्तु वचस्तव।। ३६।।

तब एक मुहूर्त विश्राम करने के पश्चात् उन शत्रुओं का नाश करने वाले रघुवंशी राजकुमारों ने हाथ जोड़ कर मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र जी से कहा कि हे मुनि श्रेष्ठ! आप आज ही दीक्षा में प्रवेश कीजिये, जिससे यह सिद्धाश्रम अपने नाम को सार्थक करे और राक्षसों के वध के विषय में आपका कथन सत्य हो।

एवमुक्तो महातेजा, विश्वामित्रो महानृषिः।
प्रविवेश तदा दीक्षां, नियतो नियतेन्द्रियः।। ३७।।

कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ।
प्रभातकाले चोत्थाय, पूर्वां संध्यामुपास्य च।। ३८।।
प्रशुची परमं जाप्यं, समाप्य नियमेन च।
हुताग्निहोत्रमासीनं, विश्वामित्रमवन्दताम्।। ३९।।

उनके ऐसा कहने पर महा तेजस्वी महर्षि विश्वामित्र ने जितेन्द्रिय भाव से नियम पूर्वक दीक्षा में प्रवेश किया। दोनों कुमारों ने भी सुख के साथ रात्रि व्यतीत की और प्रातः उठकर, स्नान आदि से पवित्र होकर, सन्ध्या और नियम पूर्वक जप करके, अग्नि होत्र के पश्चात बैठे हुए विश्वामित्र के चरणों में प्रणाम किया।

बारहवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण के द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा तथा राक्षसों का संहार।

अथ तौ देशकालज्ञौ, राजपुत्रावरिंदमौ।
देशे काले च वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः।। १।।
भगवञ्छ्रोतुमिच्छावो, यस्मिन् काले निशाचरौ।
संरक्षणीयौ तौ ब्रूहि, नातिवर्तेत तत्क्षणम्।। २।।

उसके पश्चात् शत्रुओं का दमन करने वाले वे दोनो राजपुत्र जो देश और काल को जानने वाले और देशकाल के अनुसार बोलने में चतुर थे, कौशिक मुनि से इस प्रकार बोले कि हे भगवन हम यह सुनना चाहते हैं कि किस समय राक्षसों से रक्षा की आवश्यकता होती है। यह हमे बताइये, ताकि वह समय निकल न जाये।

एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ, त्वरमाणौ युयुत्सया।
सर्वे ते मुनयः प्रीताः, प्रशशंसुर्नृपात्मजौ।। ३।।
अद्य प्रभृति षड्रात्रं, रक्षतां राघवौ युवाम्।
दीक्षां गतो ह्येष मुनिर्मौनित्वं च गमिष्यति।। ४।।

ऐसा कहते हुए और युद्ध के लिए शीघ्रता करते हुए उन दोनों ककुत्स्थवंशी राजकुमारों को देख कर वे सारे मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उनकी प्रशंसा की और कहने लगे कि ये विश्वामित्र मुनि यज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं, अतः ये मौन रहेंगे। आज से लेकर छै रात्रितक आप इनके यज्ञ की रक्षा करते रहें।

तौ तु तद्वचनं श्रुत्वा, राजपुत्रौ यशस्विनौ।
अनिद्रं षडहोरात्रं, तपोवनमरक्षताम्।। ५।।
उपासांचक्रतुर्वीरौ, यत्तौ परमधन्विनौ।
ररक्षतुर्मुनिवरं, विश्वामित्रमरिंदमौ।। ६।।

अथ काले गते तस्मिन्, षष्ठेऽहनि तदागते।
सौमित्रिमब्रवीद् रामो, यत्तो भव समाहितः।। ७।।

यह सुन कर वे दोनों यशस्वी राजपुत्र छै दिन तक बिना निद्रा लिये, रात दिन लगातार तपोवन की रक्षा करते रहे। वे महान धनुर्धर तथा शत्रु का दमन करने वाले वीर विश्वामित्र के समीप रह कर उनकी रक्षा में लगे रहे। उस समय के बीत जाने पर जब छठा दिन आया तब राम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम प्रयत्न पूर्वक सावधान हो जाओ।

सदर्भचमसस्रुक्का, ससमित्कुसुमोच्चया।
विश्वामित्रेण सहिता, वेदिर्जज्वाल सर्त्विजा।। ८।।
मन्त्रवच्च यथान्यायं, यज्ञोऽसौ सम्प्रवर्तते।
आकाशे च महाञ्छब्दः, प्रादुरासीद् भयानकः।। ९।।

इसके बाद कुश, चमस, स्रुक, समिधा तथा फूलों के ढेर से युक्त तथा विश्वामित्र और अन्य ऋत्विजों से घिरी हुई वेदी में अग्नि प्रज्वलित की गयी और मन्त्रों के द्वारा शास्त्रों की विधि के अनुसार यज्ञ को प्रारम्भ किया गया। तभी आकाश में भयानक शब्द गूँजने लगा।

आवार्य गगनं मेघो, यथा प्रावृषि दृश्यते।
तथा मायां विकुर्वाणौ, राक्षसावभ्यधावताम्।। १०।।
मारीचश्च सुबाहुश्च, तयोरनुचरास्तथा।
आगम्य भीमसंकाशा, रुधिरौघानवासृजन्।। ११।।

जैसे वर्षाऋतु में बादल आकाश को घेरते हुए दिखाई देते हैं, वैसे ही मारीच और सुबाहु तथा उनके साथी

राक्षस अपनी माया फैलाते हुए भागे चले आ रहे थे। उन भयानक राक्षसों ने आ कर रक्त के ढेर फैंकने आरम्भ कर दिये।

तावापतन्तौ सहसा, दृष्ट्वा राजीवलोचनः।
लक्ष्मणं त्वभिसम्प्रेक्ष्य, रामो वचनमब्रवीत्।। १२।।
पश्य लक्ष्मण दुर्वृत्तान्, राक्षसान् पिशिताशनान्।
मानवास्त्रसंमाधूताननिलेन यथा घनान्।। १३।।

उन दोनों को सहसा आते हुए देख कमलयन श्रीराम ने लक्ष्मण की तरफ देख कर कहा कि लक्ष्मण देखो! मैं इन माँसाहारी दुष्ट राक्षसों को मानवास्त्र से ऐसे भगा दूंगा जैसे वायु बादलों को छितरा देती है।

इत्युक्त्वा वचनं रामश्चापे संधाय वेगवान्।
मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम्।। १४।।
चिक्षेप परमक्रुद्धो, मारीचोरसि राघवः।
विचेतनं विघूर्णन्तं, शीतेषुबलपीडितम्।। १५।।
निरस्तं दृश्य मारीचं, रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।

ऐसा कहकर अत्यन्त क्रुद्ध वेगशाली रघुवंशी श्रीराम ने धनुष पर परम उदार और परम तेजस्वी मानव अस्त्र का संधान किया और उसके द्वारा मारीच की छाती में प्रहार किया। शीतेषु नामक मानवास्त्र से पीडित हो कर मारीच अचेत सा हो कर चक्कर काटता हुआ दूर चला जा रहा था। तब श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा।

पश्य लक्ष्मण शीतेषु, मानवं मनुसंहितम्।। १६।।
मोहयित्वा नयत्येनं, न च प्राणैर्वियुज्यते।
इमानपि वधिष्यामि, निर्घृणान् दुष्टचारिणः।। १७।।
राक्षसान् पापकर्मस्थान्, यज्ञघ्नान् रुधिराशनान्।

लक्ष्मण देखो! यह मनु के द्वारा निर्मित शीतेषु नाम का मानवास्त्र इसे मोहित करके भगा रहा है पर इसके प्राण नही ले रहा है। मैं अब इन दूसरे निर्दय, दुष्ट आचरण वाले, पापकर्मी, खून पीने वाले और यज्ञ को नष्ट करने वाले राक्षसों को भी मार गिराता हूँ।

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु, लाघवं दर्शयन्निव।। १८।।
विगृह्य सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः।
सुबाहूरसि चिक्षेप, स विद्धः प्रापतद् भुवि।। १९।।
शेषान् वायव्यमादाय, निजघान् महायशाः।
राघवः परमोदारो, मुनीनां मुदमावहन्।। २०।।

लक्ष्मण से ऐसा कह कर रघुनन्दन राम ने शीघ्रता से अपना कौशल दिखाते हुए महान आग्नेयास्त्र को लेकर उसके द्वारा सुबाहु की छाती पर प्रहार किया, जिससे चोट खाकर वह भूमि पर गिर पड़ा। तब उन महान यश वाले, परम उदार राघव ने वायव्यास्त्र लेकर उन शेष राक्षसों का संहार कर दिया और मुनियों को प्रसन्नता प्रदान की।

अथ यज्ञे समाप्ते तु, विश्वामित्रो महामुनिः।
निरीतिका दिशो दृष्ट्वा, काकुत्स्थमिदमब्रवीत्।। २१।।
कृतार्थोऽस्मि महाबाहो, कृतं गुरुवचस्त्वया।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं, कृतं वीर महायश।
स हि रामं प्रशस्यैवं, ताभ्यां संध्यामुपागमत्।। २२।।

तत्पश्चात् यज्ञ के समाप्त होने पर सारी दिशाओं को बाधा रहित देख महामुनि विश्वामित्र ककुत्स्थ वंशी श्रीराम से यह बोले कि हे महान यश वाले, महाबाहु वीर! मैं तुमसे कृतार्थ हूँ। तुमने गुरु के वचनों का पालन किया। तुमने इस सिद्धाश्रम को वास्तव में सिद्धाश्रम बना दिया। इस प्रकार राम की प्रशंसा कर उन्होंने उन दोनों के साथ सन्ध्योपासना की।

तेरहवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण तथा ऋषियों सहित विश्वामित्र का मिथिला को प्रस्थान तथा मार्ग में संध्या के समय शोणभद्र के तट पर विश्राम और वहाँ से गंगा तट पर पहुँचना।

अथ तां रजनीं तत्र, कृतार्थौ रामलक्ष्मणौ।
ऊषतुर्मुदितौ वीरौ, प्रहृष्टेनान्तरात्मना।। १।।
प्रभातायां तु शर्वर्यां, कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ।
विश्वामित्रमृषींश्चान्यान्, सहितावभिजग्मतुः।। २।।

इसके पश्चात् कृतार्थ हुए राम लक्ष्मण ने बड़े प्रसन्न हृदय के साथ वह रात्रि व्यतीत की। सवेरा होने पर प्रातःकालीन क्रियाएँ कर के वे साथ साथ विश्वामित्र तथा अन्य ऋषियों के पास गये।

अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं, ज्वलन्तमिव पावकम्।
ऊचतुः परमोदारं, वाक्यं मधुरभाषितौ।। ३।।
इमौ स्म मुनिशार्दूल, किंकरौ समुपागतौ।
आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ, शासनं करवाव किम्।। ४।।

जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी, मुनि श्रेष्ठ को प्रणाम करके उन दोनों मधुरभाषियों ने यह परम उदार वचन कहा कि हे मुनि श्रेष्ठ! ये हम आपके सेवक आपकी सेवा में समुपस्थित हैं। अब आज्ञा दीजिये कि हम आपकी क्या सेवा करें?

एवमुक्ते तयोर्वाक्ये, सर्व एव महर्षयः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य, रामं वचनमब्रुवन्।। ५।।
मैथिलस्य नरश्रेष्ठ, जनकस्य भविष्यति।
यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तत्र यास्यामहे वयम्।। ६।।

उन दोनों के द्वारा ऐसा कहने पर सारे ऋषियों ने विश्वामित्र को आगे करके राम से कहा कि हे नरश्रेष्ठ! मिथिला के राजा जनक का परम धर्म से युक्त यज्ञ होने वाला है। हम सब वहीं जायेंगे।

त्वं चैव नरशार्दूल, सहास्माभिर्गमिष्यसि।
अद्भुतं च धनूरत्नं, तत्र त्वं द्रष्टुमर्हसि।। ७।।
नास्य देवा न गन्धर्वा, नासुरा न च राक्षसाः।
कर्तुमारोपणं शक्ता, न कथंचन मानुषाः।। ८।।

हे नर श्रेष्ठ! तुम भी वहाँ हमारे साथ चलोगे। वहाँ एक अद्भुत धनुष रत्न को तुम देखोगे। उस धनुष पर देवता, गन्धर्व, असुर और राक्षस कोई भी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सकते। मनुष्यों की तो बात क्या है?

धनुषस्तस्य वीर्यं हि, जिज्ञासन्तो महीक्षितः।
न शेकुरारोपयितुं, राजपुत्रा महाबलाः।। ९।।
तद्धनुर्नरशार्दूल, मैथिलस्य महात्मनः।
तत्र द्रक्ष्यसि काकुत्स्थ, यज्ञं च परमद्भुतम्।। १०।।

उस धनुष की शक्ति को जानने की इच्छा वाले कई राजा लोग और राजपुत्र उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिये प्रयत्न कर चुके हैं, पर वे समर्थ नहीं हुए। हे ककुत्स्थ वंशी पुरुषसिंह राम! तुम वहाँ महात्मा मिथिला नरेश के उस धनुष को और परम अद्भुत यज्ञ को भी देख सकोगे।

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः, कौशिकः स तपोधनः।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य, प्रस्थातुमुपक्रमे।। ११।।
वासं चक्रुर्मुनिगणः, शोणाकूले समाहिताः।
तेऽस्तं गते दिनकरे, स्नात्वा हुतहुताशनाः।। १२।।

ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ कौशिक मुनि ने जो तपस्या के धनी थे, उत्तर दिशा की तरफ प्रस्थान प्रारम्भ किया। दूर तक रास्ता तय करने के पश्चात् सायं काल सूर्य के अस्त होने पर उन मुनियों ने शोण भद्र नदी के तट पर वास किया और स्नान कर करके अग्निहोत्र किया।

उपास्य रात्रिशेषं तु, शोणाकूले महर्षिभिः।
निशायां सुप्रभातायां, विश्वामित्रोऽभ्यभाषत।। १३।।
सुप्रभाता निशा राम, पूर्वा संध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते, गमनायाभिरोचय।। १४।।

ऋषियों के साथ विश्वामित्र जी ने रात्रि का शेष भाग वहाँ शोणभद्र के तट पर बिताया। प्रातः होने पर वे बोले कि हे राम सवेरा हो गया। प्रातः काल की सन्ध्या का समय हो गया। तुम्हारा कल्याण हो। उठो और चलने की तैयारी करो।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य, कृतपूर्वाह्निकक्रियः।
गमनं रोचयामास, वाक्यं चेदमुवाच ह।। १५।।
अयं शोणः शुभजलोऽगाधः पुलिनमण्डितः।
कतरेण पथा ब्रह्मन्, संतरिष्यामहे वयम्।। १६।।

उनकी इस बात को सुनकर राम प्रातःकाल की क्रियाएँ करके चलने के लिये तैयार हो गये और कहने लगे कि यह शोण नदी पवित्र जल वाली और अपने किनारों से सुशोभित हो रही है। इसका पानी गहरा है। हे ब्रह्मन्! हम किस रास्ते से इसे पार करेंगे?

एवमुक्तस्तु रामेण, विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम्।
एष पन्था मयोद्दिष्टो, येन यान्ति महर्षयः।। १७।।
एवमुक्ता महर्षयो, विश्वामित्रेण धीमता।
पश्यन्तस्ते प्रयाता वै, वनानि विविधानि च।। १८।।

राम के ऐसा कहने पर विश्वामित्र ने कहा कि ऋषि लोग जिस रास्ते से यहाँ जाते हैं, वह रास्ता मैंने निश्चय किया हुआ है। वह यह है। बुद्धिमान विश्वामित्र के ऐसा कहने पर वे तरह तरह के वनों को देखते हुए वहाँ से चल दिये।

ते गत्वा दूरमध्वानं, गतेऽर्धदिवसे तदा।
गंगां सरितां श्रेष्ठां, ददृशुर्मुनिसेविताम्।। १९।।
तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां, हंससारससेविताम्।
बभूवुर्मुनयाः सर्वे, मुदिताः सहराघवाः।। २०।।

शोण नदी को पार करने के बाद दूर तक रास्ते पर चल कर आधा दिन बीतने पर वे नदियों में श्रेष्ठ गंगा पर पहुँचे। वह गंगा पवित्र चल वाली थी, उसमें हंस और सारस उड़ रहे थे, उसे देख कर राम चन्द्रजी के साथ वे सारे मुनि बहुत प्रसन्न हुये।

चौदहवाँ सर्ग

विश्वामित्र आदि का गंगा को पार करके विशाला नगरी में पहुँचना और विशाला नगरी एवं वहाँ के राजाओं का परिचय देना

उत्तरं तीरमासाद्य, सम्पूज्यर्षिगणं ततः।
गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम्।। १।।
ततो मुनिवरस्तूर्णं, जगाम सह राघवः।
विशालां नगरीं रम्यां, दिव्यां स्वर्गोपमां तदा।। २।।

उसके पश्चात् गंगा के उत्तरी किनारे पर पहुँच कर उन्होंने वहाँ रहने वाले ऋषियों का अभिवादन किया और वहीं ठहर कर वहाँ पर विद्यमान विशाला नाम की नगरी की शोभा को देखने लगे। पुनः मुनिवर विश्वामित्र रामचन्द्र जी के साथ जल्दी से उस स्वर्ग के समान सुन्दर दिव्य विशाला नगरी के अन्दर गये।

अथ रामो महाप्राज्ञो, विश्वामित्रं महामुनिम्।
पप्रच्छ प्रांजलिभुर्त्वा, विशालामुत्तमां पुरीम्।। ३।।
कतमो राजवंशोऽयं, विशालायां महामुनि।
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते, परं कौतूहलं हि मे।। ४।।

तब महा प्राज्ञ श्रीराम ने हाथ जोड़ कर महा मुनि विश्वामित्र जी से उस उत्तम विशाला नगरी के विषय में पूछा कि हे महामुनि! आपका कल्याण हो। विशाला में इस समय कौन सा राज वंश राज्य कर रहा है? मैं इसे सुनना चाहता हूँ। मुझे इसे जानने की बड़ी इच्छा है।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, रामस्य मुनिपुङ्गवः।
आख्यातुं तत्समारेभे, विशालायाः पुरातनम्।। ५।।
इक्ष्वाकोस्तु नरव्याध्र, पुत्रः परमधार्मिकः।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति बिश्रुतः।। ६।।
तेन चासीदिह स्थाने, विशालेति पुरी कृता।

उनके उस वचन को सुन कर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने विशाला के पुराने इतिहास को बताना आरम्भ किया। वे बोले कि हे पुरुषसिंह! इक्ष्वाकु के अलम्बुषा नाम की रानी से उत्पन्न एक परम धार्मिक पुत्र थे जो विशाल नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने इस स्थान पर विशाला नाम की नगरी बसाई थी।

विशालस्य सुतो राम, हेमचन्द्रो महाबलः।
सुचन्द्र इति विख्यातो, हेमचन्द्रादनन्तरः।। ७।।
सुचन्द्रतनयो राम, धूम्राश्व इति निश्रुतः।
धूम्राश्वतनयश्चापि, सृंजयः समपद्यत।। ८।।
सृंजयस्य सुतः श्रीमान्, सहदेवः प्रतापवान्।
कुशाश्वः सहदेवस्य, पुत्रः परमधार्मिकः।। ९।।

हे राम! विशाल का पुत्र महाबलवान हेमचन्द्र था। हेमचन्द्र का पुत्र सुचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हे राम! सुचन्द्र का पुत्र धूम्राश्व था ऐसा प्रसिद्ध है। धूम्राश्व का पुत्र सृंजय हुआ। सृंजय का प्रतापी पुत्र श्रीमान सहदेव हुआ। सहदेव का पुत्र कुशाश्व परम धार्मिक था।

कुशाश्वस्य महातेजाः, सोमदत्तः प्रतापवान्।
सोमदत्तस्य पुत्रस्तु, काकुत्स्थ इति विश्रुतः।। १०।।
तस्य पुत्रो महातेजाः, सम्प्रत्येष पुरीमिमाम्।
आवसत् परमप्रख्यः, सुमतिर्नाम दुर्जयः।। ११।।

कृशाश्व का पुत्र महातेजस्वी प्रतापी सोमदत्त था। सोमदत्त का काकुत्स्थ था ऐसा प्रसिद्ध है। उसका पुत्र इस समय सुमति नाम का है जो महा तेजस्वी दुर्जय, और महान प्रसिद्धि वाला है। वही इस पुरी में रहता है।

इहाद्य रजनीमेकां, सुखं स्वप्स्यामहे वयम्।
श्वः प्रभाते नरश्रेष्ठ, जनकं द्रष्टुमर्हसि।। १२।।
सुमतिस्तु महातेजा, विश्वामित्रमुपागतम्।
श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठः, प्रत्यागच्छन्महायशाः।। १३।।

यहाँ हम एक रात सुख से रहेंगे। कल सवेरे हे नरश्रेष्ठ! तुम जनक के दर्शन करोगे। महान तेजस्वी, महा यशस्वी, राजाओं में श्रेष्ठ सुमति ने जब विश्वामित्र को आया हुआ सुना तो वे उनकी अगवानी करने के लिए आये।

पूजां च परमां कृत्वा, सोपाध्यायः सबान्धवः।
प्रांजलिः कुशलं पृष्ट्वा, विश्वामित्रमथाब्रवीत्।। १४।।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि, यस्य मे विषयं मुने।
सम्प्राप्तो दर्शनं चैव, नास्ति धन्यतरो मम।। १५।।

उन्होंने अपने पुरोहित और बान्धवों सहित उनकी उत्तम पूजा करके उनका कुशल समाचार पूछा और हाथ जोड़ कर उनसे कहा कि मैं धन्य हूँ, मैं अनुगृहीत हूँ। हे मुने! जिसके राज्य में पधार कर आपने दर्शन दिया। मेरे समान कोई दूसरा धन्य नहीं हैं।

पन्द्रहवाँ सर्ग

राजा सुमति से सत्कृत हो एक रात विशाला में रह कर मुनियों सहित श्रीराम का मिथिलापुरी में पहुँचना। राज जनक द्वारा विश्वामित्र का सत्कार एवं श्रीराम और लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करना।

पृष्ट्वा तु कुशलं तत्र, परस्परसमागमे।
कथान्ते सुमतिर्वाक्यं, व्याजहार महामुनिम्।। १।।
भूषयन्ताविमं देशं, चन्द्रसूर्याविवाम्बरम्।
परस्परेण सदृशौ, प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः।। २।।
किमर्थं च नरश्रेष्ठौ, सम्प्राप्तौ दुर्गमे पथि।
वरायुधधरौ वीरौ, श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।। ३।।

परस्पर मिलने पर एक दूसरे की कुशल पूछ कर वार्तालाप के अन्त में सुमति ने महामुनि विश्वामित्र से कहा कि ये दोनों शरीर का प्रमाण, चेष्टाएँ और संकेतो से एक दूसरे समान हैं और आकाश को सुशोभित करने वाले सूर्य और चन्द्रमा के समान इस देश को सुशोभित कर रहे हैं। ये अच्छे आयुधों को धारण करने वाले नरश्रेष्ठ वीर इस दुर्गम रास्ते पर किस लिए आये हैं? यह मैं वास्तविक रूप से जानना चाहता हूँ।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, यथावृत्तं न्यवेदयत्।
सिद्धाश्रमनिवासं च, राक्षसानां वधं यथा।। ४।।
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा, राजा परमविस्मितः।
अतिथी परमं प्राप्तौ, पुत्रौ दशरथस्य तौ।। ५।।
पूजयामास विधिवत्, सत्कारार्हौ महाबलौ।
ततः परमसत्कारं, सुमतेः प्राप्य राघवौः।। ६।।
उष्य तत्र निशामेकां, जग्मतुर्मिथिलां ततः।

उनके इस वचन को सुन कर मुनि ने सब पिछला वृत्तान्त, सिद्धार्थ आश्रम में रहना तथा राक्षसों का वध आदि यथार्थ रूप में कह सुनाया। विश्वामित्र जी के वचन सुन कर राजा को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने परम अतिथि के रूप में आये हुए, सत्कार के योग्य, दशरथजी के महा बलवान पुत्रों का विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया। तब सुमति से अत्यधिक सत्कार को प्राप्त करके वे दोनों राघव वहाँ एक रात रहे और प्रातः उठकर मिथिला की तरफ चल दिये।

तां दृष्ट्वां मुनयः सर्वे, जनकस्य पुरीं शुभाम्।। ७।।
साधु साध्विति शंसन्तो, मिथिलां समपूजयन्।
ततः प्रागुत्तरां गत्वा, रामः सौमित्रिणा सह।। ८।।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य, यज्ञवाटमुपागमत्।

राजा जनक की उस पुरी को देख कर सारे मुनियों ने साधु-साधु कहकर मिथिला की प्रशंसा की। उसके पश्चात् विश्वामित्र जी को आगे करके श्रीराम लक्ष्मण के साथ पूर्वोत्तर दिशा की तरफ चले और यज्ञ मण्डप में जा पहुँचे।

रामस्तु मुनिशार्दूलमुवाच सहलक्ष्मणः।। ९।।
साध्वी यज्ञसमृद्धिर्हि, जनकस्य महात्मनः।
बहूनीह सहस्राणि, नानादेशनिवासिनाम्।। १०।।
ब्राह्मणानां महाभाग, वेदाध्ययनशालिनाम्।
ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते, शकटीशतसंकुलाः।। ११।।
देशो विधीयतां ब्रह्मन्, यत्र वत्स्यामहे वयम्।

तब राम ने लक्ष्मण के साथ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र जी से कहा कि महात्मा जनक के यज्ञ की शोभा तो बहुत अच्छी है। हे महाभाग! यहाँ नाना देशों के निवासी हजारों वेदाध्ययन में लगे हुए ब्राह्मण आये हुए हैं। ऋषियों के बाड़े सैंकड़ों छकड़ों से भरे हुए हैं। हे ब्रह्मन्! अब ऐसी जगह निश्चित कीजिये, जहाँ हम लोग ठहरें।

रामस्य वचनं श्रुत्वा, विश्वामित्रो महामुनिः।। १२।।
निवासमकरोद् देशे, विविक्ते सलिलान्विते।
विश्वामित्रमनुप्राप्तं, श्रुत्वा नृपवरस्तदा।। १३।।
शतानन्दं पुरस्कृत्य, पुरोहितमनिन्दितः।
ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्ध्यमादायसत्वरम्।। १४।।
प्रत्युज्जगाम सहसा, विनयेन समन्वितः।
विश्वामित्राय धर्मेण, ददौ धर्मपुरस्कृतम्।। १५।।

राम की बात सुनकर महामुनि विश्वामित्र ने एक एकान्त और पानी से युक्त स्थान पर निवास किया। विश्वामित्र जी को आया हुआ सुन अनिन्दित आचरण वाले नृपश्रेष्ठ राजा जनक अपने पुरोहित शतानन्द को आगे करके उनके स्वागत के लिये चले। उनके साथ दूसरे महात्मा ऋत्विज भी अर्घ्य सामग्री लेकर जल्दी से साथ हो गये। राजा ने विनय से युक्त हो आगे बढ़कर धर्म से युक्त, धर्म शास्त्र के अनुसार वह अर्घ्य विश्वामित्र को प्रदान किया।

प्रतिगृह्य तु तां पूजां, जनकस्य महात्मनः।
पप्रच्छ कुशलं राज्ञो, यज्ञस्य च निरामयम्।। १६।।

स तांश्चाथ मुनीन्, पृष्ट्वा सोपाध्यायपुरोधसः।
यथार्हमृषिभिः सर्वैः, समागच्छत् प्रहृष्टवत्।। १७।।

मुनि ने महात्मा जनक की उस पूजा ग्रहण कर राजा की और राजा के यज्ञ की कुशलता के विषय में पूछा। उन्होंने उनके साथ जो मुनि, उपाध्याय और पुरोहित आये थे, उन सबका भी कुशल समाचार पूछा और बड़े हर्ष के साथ उन सभी से यथा योग्य मिले।

अथ राजा मुनिश्रेष्ठं, कृतांजलिरभाषत।
आसने भगवानास्तां, सहैभिर्मुनिपुङ्गवैः।। १८।।
जनकस्य वचः श्रुत्वा, निषसाद महामुनिः।
पुरोधा ऋत्विजश्चैव, राजा च सहमन्त्रिभिः।। १९।।
आसनेषु यथान्यायमुपविष्टाः समन्ततः।

इसके पश्चात् राजा ने हाथ जोड़ कर उन मुनिश्रेष्ठ से कहा कि हे भगवन्! आप इन श्रेष्ठ मुनियों के साथ आसन पर विराजिये। जनक के वचन सुनकर वे महामुनि विश्वामित्र आसन पर बैठ गये। फिर पुरोहित, ऋत्विज और राजा भी मन्त्रियों के साथ सब तरफ यथायोग्य आसनों पर बैठ गये।

दृष्ट्वा स नृपतिस्तत्र, विश्वामित्रमथाब्रवीत्।। २०।।
अद्य यज्ञसमृद्धिर्मे, सफला दैवतैः कृता।
अद्य यज्ञफलं प्राप्तं, भगवद्दर्शनान्मया।। २१।।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि, यस्य मे मुनिपुङ्गवः।
यज्ञोपसदनं ब्रह्मन्, प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह।। २२।।

फिर विश्वामित्र की तरफ देखकर राजा ने कहा कि आज देवताओं ने मेरे यज्ञ की समृद्धि को सार्थक बना दिया। आज आपके दर्शनों से मैंने अपने यज्ञ करने का फल प्राप्त कर लिया। मैं धन्य हूँ और आपका बहुत अनुगृहीत हूँ क्योंकि हे मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मन्! आपने इन मुनियों के साथ मेरे यज्ञ मण्डप में पदार्पण किया है।

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं, प्रहृष्टवदनस्तदा।
पुनस्तं परिपप्रच्छ, प्रांजलिः प्रयतो नृपः।। २३।।
इमौ कुमारौ भद्रं ते, देवतुल्यपराक्रमौ।
गजतुल्यगती वीरौ, शार्दूलवृषभोपमौ।। २४।।
पद्मपत्रविशालाक्षौ, खड्गतूणीधनुर्धरौ।
अश्विनाविव रूपेण, समुपस्थितयौवनौ।। २५।।
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ, किमर्थं कस्य वा मुने।
वरायुधधरौ वीरौ, कस्य पुत्रौ महामुने।। २६।।
काकपक्षधरौ वीरौ, श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।

मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र जी से ऐसा कह कर जितेन्द्रिय, प्रसन्न मुख वाले राजा ने हाथ जोड़ कर पुनः उनसे पूछा कि हे महामुने! आपका कल्याण हो। देवताओं के समान पराक्रमी, हाथी के समान चलने वाले, सिंह और सांड के समान वीर, कमल के समान विशाल आँखों वाले, तलवार, तूणीर और धनुष धारण करने वाले, सौन्दर्य में अश्विनी कुमार के समान ये नव युवक किसके पुत्र हैं? ये यहाँ पैदल ही कैसे, किसलिये आये हैं? इन वीरों ने श्रेष्ठ आयुध तथा काकपक्ष धारण किये हुए हैं। इनके विषय में वास्तविक रूप से जानना चाहता हूँ।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, जनकस्य महात्मनः।। २७।।
न्यवेदयदमेयात्मा, पुत्रौ दशरथस्य तौ।
सिद्धाश्रमनिवासं च, राक्षसानां वधं तथा।। २८।।
तत्रागमनमव्यग्रं, विशालायाश्च दर्शनम्।
एतत् सर्वं महातेजा, जनकाय महात्मने।। २९।।

महात्मा जनक की यह बात सुनकर महान आत्मा वाले विश्वामित्र जी ने यह निवेदन किया कि ये दोनों दशरथ जी के पुत्र हैं। उन्होंने सिद्धाश्रम में रहना, राक्षसों का वध करना, बिना घबराहट के यहाँ तक आना, विशाला नगरी को देखना तथा महान धनुष के विषय में अपनी जिज्ञासा को पूरी करने के लिये यहाँ आना यह सब उन महान मुनि ने महात्मा जनक को निवेदन किया और फिर चुप हो गये।

सोलहवाँ सर्ग

शतानन्द और राजा जनक द्वारा विश्वामित्र की प्रशंसा

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य, विश्वामित्रस्य धीमतः।
शतानन्दो महातेजा, रामं वचनमब्रवीत्।। १।।
स्वागतं ते नरश्रेष्ठ, दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य, महर्षिमपराजितम्।। २।।

धीमान विश्वामित्र की यह बात सुनकर महातेजस्वी शतानन्द जी ने रामचन्द्र जी से कहा कि हे नरश्रेष्ठ राघव! आपका स्वागत है। यह हमारा सौभाग्य है कि आप किसी से पराजित न होने वाले विश्वामित्र जी को साथ लेकर यहाँ पधारे हैं।

अचिन्त्यकर्मा तपसा, ब्रह्मर्षिरमितप्रभः।
विश्वामित्रो महातेजा, वेद्म्येनं परमां गतिम्।। ३।।
नास्ति धन्यतरो राम, त्वत्तोऽन्यो भुमि कश्चन।
गोप्ता कुशिकपुत्रस्ते, येन तप्तं महत्तपः।। ४।।

ये तपस्या से ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त हुए विश्वामित्र जी महान् तेजस्वी और महान कान्ति वाले हैं। इनके महान कार्यों का चिन्तन नहीं किया जा सकता। मैं इन्हें जानता हूँ। ये सब के परम हितैषी हैं। हे राम! इस संसार में आपसे अधिक धन्य दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि ये कुशिक पुत्र, जिन्होंने महान तपस्या की है, आपके रक्षक हैं।

एष राम मुनिश्रेष्ठः, एष विग्रहवांस्तपः।
एष धर्मः परो नित्यं, वीर्यस्यैष परायणम्।। ५।।
एवमुक्त्वा महातेजा, विरराम द्विजोत्तमः।
शतानन्दवचः श्रुत्वा, रामलक्ष्मणसंनिधौ।। ६।।
जनकः प्रांजलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम्।

हे राम! ये मुनियों श्रेष्ठ विश्वामित्र जी तपस्या के सक्षात् रूप हैं। ये पराक्रम से युक्त सदा धर्म परायण रहते हैं। ऐसा कहकर वे महान तेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मण चुप हो गये। शतानन्द जी की बात सुनकर जनक जी ने राम और लक्ष्मण के समीप विश्वामित्र जी से हाथ जोड़ कर कहा कि—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि, यस्य मे मुनिपुङ्गव।। ७।।
यज्ञं काकुत्स्थसहितः, प्राप्तवानसि कौशिक।
पावितोऽहं त्वया ब्रह्मन्, दर्शनेन महामुने।। ८।।
कर्मकालो मुनिश्रेष्ठ, लम्बते रविमण्डलम्।
श्वः प्रभाते महातेजो, द्रष्टुमर्हसि मां पुनः।। ९।।
स्वागतं जपतां श्रेष्ठ, मामनुज्ञातुमर्हसि।

हे मुनि श्रेष्ठ! मैं धन्य हूँ। मैं अनुगृहीत हूँ। हे महामुनि कौशिक! आप मेरे यज्ञ में ककुत्स्थ वंशी राजकुमारों के साथ पधारे हैं। हे महामुनि, हे ब्रह्मन्! मैं आपके दर्शनों से पवित्र हो गया हूँ। अब यज्ञ कर्म का समय हो गया है, सूर्य अस्त होने लगा है। अतः कल सवेरे आप मुझसे फिर मिले। हे जप करने वालो में श्रेष्ठ! अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

एवमुक्तो मुनिश्वरः, प्रशस्य पुरुषर्षभम्।। १०।।
विससर्जाशु जनकं, प्रीतं प्रीतमनास्तदा।
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं, वैदेहो मिथिलाधिपः।
प्रदक्षिणं चकाराशु, सोपाध्यायः सबान्धवः।। ११।।

ऐसा कहे जाने पर उन मुनिश्रेष्ठ ने प्रसन्न हृदय से उन पुरुष श्रेष्ठ राजा जनक की प्रशंसा की और तुरन्त उन्हें विदा कर दिया। मिथिला के अधिपति विदेह राज ने भी इस प्रकार अपनी बात कह कर जल्दी से अपने बान्धवों और पुरोहित के साथ उनकी परिक्रमा की और चले गये।

सत्रहवाँ सर्ग

राजा जनक द्वारा धनुष को दिखाना और अपनी प्रतिज्ञा के विषय में बताना। श्रीराम के द्वारा धनुर्भंग तथा दशरथ जी को बुलाने के लिये मन्त्रियों को भेजा जाना

ततः प्रभाते विमले, कृतकर्मा नराधिपः।
विश्वामित्रं महात्मानमाजुहाव सराघवम्।। १।।
तमर्चयित्वा धर्मात्मा, शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
राघवौ च महात्मानौ, तदा वाक्यमुवाच ह।। २।।

उसके पश्चात् प्रातः होने पर राजा ने अपने नित्य कर्म करके श्रीराम के साथ विश्वामित्र जी को बुलवाया। उन धर्मात्मा ने शास्त्र के अनुसार विश्वामित्र जी की पूजा करके उनसे तथा दोनों रघुवंशी राजकुमारों से यह बात कही कि—

भगवन् स्वागतं तेऽस्तु, किं करोमि तवानघ।
भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवतो ह्यहम्।। ३।।
एवमुक्तः स धर्मात्मा, जनकेन महात्मना।
प्रत्युवाच मुनिश्रेष्ठो, वाक्यं वाक्यविशारदः।। ४।।

हे भगवन्! आपका स्वागत है। हे पाप रहित! आप आज्ञा दीजिये। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मैं आपका आज्ञा पालक हूँ। महात्मा और धर्मात्मा जनक के द्वारा ऐसा कहे जाने पर बोलने में चतुर मुनि श्रेष्ठ ने उत्तर दिया कि—

पुत्रौ दशरथस्येमौ, क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ।
द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं, यदेतत्त्वयि तिष्ठति।। ५।।
एतद् दर्शय भद्रं ते, कृतकामौ नृपात्मजौ।
दर्शनादस्य धनुषो, यथेष्टं प्रतियास्यतः।। ६।।

ये दशरथ के दोनो पुत्र लोक प्रसिद्ध वीर क्षत्रिय हैं। ये उस श्रेष्ठ धनुष को, जो आप के पास है, देखना चाहते हैं। आपका कल्याण हो। आप इन राजकुमारों को उस धनुष को दिखा दीजिये। उसके दर्शन से इनकी कामना पूरी हो जायेगी और ये अपनी इच्छानुसार वापिस चले जायेंगे।

एवमुक्तस्तु जनकः, प्रत्युवाच महामुनिम्।
श्रूयतामस्य धनुषो, यदर्थमिह तिष्ठति।। ७।।
व्यवर्धत ममात्मजा, नाम्ना सीतेति विश्रुता।
वरयामासुरागत्य, राजानो मुनिपुंगव।। ८।।

ऐसा कहे जाने पर जनक ने उन महामुनि को उत्तर दिया कि आप सुनिये कि यह धनुष मेरे यहाँ किस लिये रखा गया है। हे मुनि श्रेष्ठ मेरी सुपुत्री जो कि सीता नाम से प्रसिद्ध है, अब बड़ी हो गयी है। अनेक राजाओं ने आकर इसका वरण करने की इच्छा प्रकट की।

नोट— सीता जी के विषय में विशेष व्याख्या विस्तृत भूमिका में देखिये।

तेषां वरयतां कन्यां, सर्वेषां पृथिवीक्षिताम्।
वीर्यशुल्केति भगवन्, न ददामि सुतामहम्।। ९।।
ततः सर्वे नृपतयः, समेत्य मुनिपुङ्गव।
मिथिलामप्युपागम्य, वीर्यं जिज्ञासवस्तदा।। १०।।

उन मेरी कन्या का वरण करने की इच्छा वाले सभी राजाओं को मैने यह बता दिया कि मेरी कन्या वीर्य शुल्का है। अर्थात् अपना पराक्रम प्रकट करने वाले को ही वह मिलेगी, किसी दूसरे को नहीं दूँगा। हे मुनि श्रेष्ठ! तब वे सारे राजा मिलकर मिथिला में आये और उन्होंने निश्चित किये गये पराक्रम को जानने की इच्छा की।

तेषां जिज्ञासमानानां, शैवं धनुरुपाहतम्।
न शेकुर्ग्रहणे तस्य, धनुषस्तोलनेऽपि वा।। ११।।
तदेतन्मुनिशार्दूल, धनुः परमभास्वरम्।
रामलक्ष्मणयोश्चापि, दर्शयिष्यामि सुव्रत।। १२।।

मैने उन जिज्ञासु राजाओं के समक्ष यह शिव का धनुष रखा। पर वे इसे ठीक प्रकार से पकड़ने और प्रत्यंचा चढ़ाने में समर्थ नहीं हो सके। हे मुनि श्रेष्ठ! वही यह अति तेजस्वी धनुष है। हे अच्छे व्रत का पालन करने वाले। मैं उसे राम और लक्ष्मण को भी दिखाऊँगा।

यद्यस्य धनुषो रामः, कुर्यादारोपणं मुने।
सुतामयोनिजां सीतां, दद्यां दाशरथेरहम्।। १३।।
जनकस्य वचः श्रुत्वा, विश्वामित्रो महामुनिः।
धनुर्दर्शय रामाय, इति होवाच पार्थिवम्।। १४।।

हे मुनि! यदि राम उस पर प्रत्यंचा को चढ़ा दें, तो मैं अपनी पुत्री अयोनिजा सीता को दशरथ पुत्र के हाथ में दे दूँ। जनक जी की बात सुन कर महामुनि विश्वामित्र ने राजा से कहा कि राम को धनुष दिखाओ।

जनकेन समादिष्टाः, सचिवाः प्राविशन् पुरम्।
तद्धनुः पुरतः कृत्वा, निर्जग्मुरमितौजसः।। १५।।
तामादाय सुमंजूषामायसीं यत्र तद्धनुः।
सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः।। १६।।

जनक की आज्ञा से वे अमित तेजस्वी मन्त्री नगर में गये और उस धनुष को आगे करके, नगर से बाहर आये। लोहे की उस सुन्दर सन्दूक को, जिसमें वह धनुष रखा था लाकर देवताओं के समान उस राजा जनक से मन्त्रियों ने कहा कि-

इदं धनुर्वरं राजन्, पूजितं सर्वराजभिः।
मिथिलाधिप राजेन्द्र, दर्शनीयं यदीच्छसि।। १७।।
तेषां नृपो वचः श्रुत्वा, कृतांजलिरभाषत।
विश्वामित्रं महात्मानं, तावुभौ रामलक्ष्मणौ।। १८।।

हे राजन्! यह सब राजाओं द्वारा सम्मानित श्रेष्ठ धनुष है। हे मिथिला के राजा राजेन्द्र! यदि आप चाहते हैं तो इसे दिखाइये। उनकी बात सुनकर राजा ने हाथ जोड़ कर महात्मा विश्वामित्र जी से तथा उन दोनों राम लक्ष्मण से कहा कि—

इदं धनुर्वरं ब्रह्मन्, जनकैरभिपूजितम्।
राजभिश्च महावीर्यैरशक्तैः पूरितुं तदा।। १९।।
पिश्वामित्रः सरामस्तु, श्रुत्वा जनकभाषितम्।
वत्स राम धनुः पश्य, इति राघवमब्रवीत्।। २०।।

हे ब्रह्मन्! यही वह धनुष है, जिसका जनक वंशी राजा सम्मान करते आये हैं और जिस पर महा पराक्रमी राजा लोग प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सके। विश्वामित्र जी ने श्रीराम के साथ जनक जी की बात सुनकर राघव से कहा कि वत्स राम! इस धनुष को देखो।

महर्षेर्वचनाद् रामो, यत्र तिष्ठति तद्धनुः।
मंजूषां तामपावृत्य, दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत्।। २१।।
इदं धनुर्वरं दिव्यं, संस्पृशामीह पाणिना।
यत्नवांश्च भविष्यामि, तोलने पूरणेऽपि वा।। २२।।

महर्षि के वचनों से राम ने जिस सन्दूक में वह धनुष रखा था, उसे खोल कर और धनुष को देख कर कहा कि मैं इस धनुष में हाथ लगाता हूँ। मैं इसे ग्रहण करने और प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयत्न करूँगा।

बाढमित्यब्रवीद् राजा, मुनिश्च समभाषत।
लीलया स धनुर्मध्ये, जग्राह वचनान्मुने।। २३।।
पश्यतां नृसहस्राणां, बहूनां रघुनन्दनः।
आरोपयत् स धर्मात्मा, सलीलमिव तद्धनुः।। २४।।

तब मुनि और राजा दोनों ने हाँ ऐसा कहा। मुनि के वचनों से रघुनन्दन राम ने धनुष को बीच में से पकड़ कर लीला से उठा लिया और उस धर्मात्मा ने कई हजार लोगों के देखते हुए लीला के द्वारा ही उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी।

आरोपयित्वा मौर्वीं च, पूरयामास तद्धनुः।
तद् बभंज धनुर्मध्ये, नरश्रेष्ठो महायशाः।। २५।।
तस्य शब्दो महानासीत्, सर्वे शब्देन मोहिताः।
वर्जयित्वा मुनिवरं, राजानं तौ च राघवौ।। २६।।

प्रत्यंचा चढ़ाकर उन महान यश वाले नरश्रेष्ठ ने जैसे ही उसे खींचा, वह धनुष बीच में से टूट गया। टूटते हुए उससे बड़ी भारी आवाज हुई। उस शब्द से विश्वामित्र, राजा जनक और दोनों राजकुमारों को छोड़कर सभी स्तब्ध हो गये।

प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन्, राजा विगतसाध्वसः।
उवाच प्रांजलिर्वाक्यं, वाक्यज्ञो मुनिपुङ्गवम्।। २७।।
भगवन् दृष्टवीर्यो मे, रामो दशरथात्मजः।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च, अतर्कितमिदं मया।। २८।।

तत्पश्चात् लोगों के सँभलने पर, निर्भय हुए राजा ने जो बोलने में चतुर थे, हाथ जोड़ कर मुनि श्रेष्ठ से कहा कि हे भगवन्! मैंने दशरथ जी के पुत्र श्रीराम का पराक्रम देख लिया है। यह कार्य अति अद्भुत, अचिन्त्य और अतर्कित हुआ है।

जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता।
सीता भर्तारमासाद्य, रामं दशरथात्मजम्।। २९।।
मम सत्या प्रतिज्ञा सा, वीर्यशुल्केति कौशिक।
सीता प्राणैर्बहुमता, देया रामाय मे सुता।। ३०।।

मेरी सुपुत्री सीता, दशरथ जी के पुत्र श्रीराम को पतिरूप में पाकर जनक वंशी राजाओं के कुल की कीर्ति को बढ़ायेगी। मैंने सीता वीर्य शुल्का है ऐसी जो प्रतिज्ञा की थी, वह सत्य हो गयी। हे कौशिक! मेरी पुत्री सीता मेरे लिये प्राणों से भी बढ़कर है। मैं उसे राम को दूँगा।

भवतोऽनुमते ब्रह्मन्, शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः।
मम कौशिक भद्रं ते, अयोध्यां त्वरिता रथैः।। ३१।।
राजानं प्रश्रितैर्वाक्यैरानयन्तु पुरं मम।
प्रदानं वीर्यशुल्कायाः, कथयन्तु च सर्वशः।। ३२।।

हे ब्रह्मन्, हे कौशिक! आपका कल्याण हो। आपकी अनुमति से मेरे मन्त्री जन जल्दी से रथों के द्वारा अयोध्या को जायें और राजा दशरथ को विनय पूर्वक वाक्यों से मेरे नगर में लिवा लायें। वे पूरी तरह से बता भी दें कि वीर्य शुल्का मेरी कन्या का विवाह होने जा रहा है।

मुनिगुप्तौ च काकुत्स्थौ, कथयन्तु नृपाय वै।
प्रीतियुक्तं तु राजानमानयन्तु सुशीघ्रगाः।। ३३।।
कौशिकस्तु तथेत्याह, राजा चाभाष्य मन्त्रिणः।
अयोध्यां प्रेषयामास, धर्मात्मा कृतशासनान्।
यथावृत्तं समाख्यातुमानेतुं च नृपं तथा।। ३४।।

वे राजा से यह भी कह दें कि आपके दोनों ककुत्स्थ वंशी पुत्र मुनि के द्वारा संरक्षित हैं। वे जल्दी से जाने वाले मन्त्री प्रेम के साथ राजा को ले आयें। तब विश्वामित्र जी ने ऐसा ही हो यह कहा धर्मात्मा राजा ने भी सलाह करके आज्ञा पालक मन्त्रियों को दशरथ जी को सब समाचार बताने और उन्हें वहाँ लाने के लिये अयोध्या भेज दिया।

अठारहवाँ सर्ग

राजा जनक का संदेश पाकर मन्त्रियों सहित महाराज दशरथ का मिथिला जाने के लिये उद्यत होना।

जनकेन समादिष्टा, दूतास्ते क्लान्तवाहनाः।
त्रिरात्रमुषिता मार्गे, तेऽयोध्यां प्राविशन् पुरीम्।। १।।
ते राजवचनाद् गत्वा, राजवेश्म प्रवेशिताः।
ददृशुर्देवसंकाशं, वृद्धं दशरथं नृपम्।। २।।

राजा जनक की आज्ञा से उनके दूत तीन रातें रास्ते में व्यतीत करके, थके हुए वाहनों वाले अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए। राजा की आज्ञा से उनका राज महल में प्रवेश कराया गया। वहाँ उन्होने देवताओं के समान बूढ़े राजा दशरथ को देखा।

बद्धांजलिपुटाः सर्वे, दूता विगतसाध्वसाः।
राजानं प्रश्रितं वाक्यमब्रुवन् मधुराक्षरम्।। ३।।
मैथिलो जनको राजा, साग्निहोत्रपुरस्कृतः।
मुहुर्मुहुर्मधुरया, स्नेहसंरक्तया गिरा।। ४।।
कुशलं चाव्ययं चैव, सोपाध्यायपुरोहितम्।
जनकस्त्वां महाराज, पृच्छते सपुरःसरम्।। ५।।

वहाँ उन दूतों ने हाथ जोड़कर, निर्भय होकर राजा से मधुर वाणी में विनय के साथ कहा कि महाराज! मिथिला देश के जनक वंशी राजा जनक, अग्नि होत्र को समक्ष करके, मधुर और स्नेह से युक्त वाणी से उपाध्याय और पुरोहितों तथा परिवार के सहित आपकी कुशलता और आरोग्य के विषय में बारबार पूछ रहे हैं।

पृष्ट्वा कुशलमव्यमं, वैदेहो मिथिलाधिपः।
कौशिकानुमते वाक्यं, भवन्तमिदमब्रवीत्।। ६।।
पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता, वीर्यशुल्का ममात्मजा।
राजानश्च कृतामर्षा, निर्वीर्या विमुखीकृताः।। ७।।

व्यग्रता रहित विदेहराज मिथिलाधिपति ने आपकी कुशलता के विषय में पूछ कर विश्वामित्र जी की अनुमति से आपको यह सन्देश दिया है कि आपको मेरी पहली प्रतिज्ञा मालूम होगी कि मेरी कन्या वीर्य शुल्का है। अनेक राजा लोग अमर्ष में भर कर यहाँ आये पर निर्वीर्य सिद्ध होकर वापिस चले गये।

सेयं मम सुता राजन्, विश्वामित्रपुरस्कृतैः।
यदृच्छयागते राजन्, निर्जिता तव पुत्रकैः।। ८।।
तच्च रत्नं धनुर्दिव्यं, मध्ये भग्नं महात्मना।
रामेण हि महाबाहो, महत्यां जनसंसदि।। ९।।

हे राजन्! मेरी उस कन्या को विश्वामित्र जी के साथ स्वेच्छा से आये हुए आपके पुत्रों ने जीत लिया है। महाबाहु महात्मा राम ने उस दिव्य धनुष रत्न को बड़े जन समुदाय के समक्ष बीच में से तोड़ दिया है।

अस्मै देया मया सीता, वीर्यशुल्का महात्मने।
प्रतिज्ञां तर्तुमिच्छामि, तदनुज्ञातुमर्हसि।। १०।।
सोपाध्यायो महाराज, पुरोहितपुरस्कृतः।
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते, द्रष्टुमर्हसि राघवौ।। ११।।

अब मुझे आपके महात्मा पुत्र को अपनी वीर्य शुल्का सीता देनी है। मैं अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करना चाहता हूँ। इसके लिए आप आज्ञा दीजिये। महाराज आपका कल्याण हो। उपाध्याय और पुरोहितों के साथ आप जल्दी यहाँ आयें और दोनों रघुवंशियों को देखें।

प्रतिज्ञां मम राजेन्द्र, निर्वर्तयितुमर्हसि।
पुत्रयोरुभयोरेव, प्रीतिं त्वमुपलप्स्यसे।। १२।।
एवं विदेहाधिपतिर्मधुरं वाक्यमब्रवीत्।
विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः, शतानन्दमते स्थितः।। १३।।

हे राजेन्द्र! आप मेरी प्रतिज्ञा को पूरा कराइये। आप यहाँ दोनों पुत्रों के प्रेम को भी प्राप्त करेंगे। विदेहराज ने विश्वामित्र जी आज्ञा से और शतानन्द जी की सलाह से मधुर ध्वनि से आपको यह बात कही है।

दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा, राजा परमहर्षितः।
वसिष्ठं वामदेवं च, मन्त्रिणश्चैवमब्रवीत्।। १४।।
गुप्तः कुशिकपुत्रेण, कौसल्यानन्दवर्धनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा, विदेहेषु वसत्यसौ।। १५।।

दूतों की इस बात को सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वसिष्ठ जी, वामदेवजी और मन्त्रियों को यह कहा कि कुशक पुत्र विश्वामित्र जी से संरक्षित कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले श्रीराम भाई लक्ष्मण के साथ मिथिला में रह रहे हैं।

दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो, जनकेन महात्मना।
सम्प्रदानं सुतायास्तु, राघवे कर्तुमिच्छति।। १६।।
यदि वो रोचते वृत्तं, जनकस्य महात्मनः।
पुरीं गच्छामहे शीघ्रं, मा भूत् कालस्य पर्ययः।। १७।।

महात्मा जनक के द्वारा उस ककुत्स्थ वंशी का पराक्रम देखा गया है। वह उस राघव को अपनी कन्या देना चाहते हैं। यदि आपको महात्मा जनक का कथन अच्छा लगता हो तो हम जल्दी ही उनके नगर को चलेंगे, जिससे विलम्ब न हो।

मन्त्रिणो बाढमित्याहुः, सह सर्वैर्महर्षिभिः।
सुप्रीतश्चाब्रवीद् राजा, श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः।। १८।।
मन्त्रिणस्तु नगेन्द्रस्य, रात्रिं परमसत्कृताः।
ऊषुः प्रमुदिताः सर्वे, गुणैः सर्वैः समन्विताः।। १९।।

मन्त्रियों ने सब ऋषियों के साथ ठीक है ऐसा कहा। तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा कल यात्रा की जायेगी। राजा के मन्त्री सब गुणों से युक्त थे, राजा ने उनका बड़ा सत्कार किया था। उन्होंने वह रात्रि बड़ी प्रसन्नता से व्यतीत की।

उन्नीसवाँ सर्ग

दलबलसहित राजा दशरथ की मिथिला यात्रा और वहाँ राजा जनक के द्वारा उनका स्वागत सत्कार

ततो रात्र्यां व्यतीतायां, सोपाध्यायः सबान्धवः।
राजा दशरथो हृष्टः, सुमन्त्रमिदमब्रवीत्।। १।।
अद्य सर्वे धनाध्यक्षा, धनमादाय पुष्कलम्।
व्रजन्त्वग्रे सुविहिता, नानारत्नसमन्विताः।। २।।

तब रात के बीतने पर अपने उपाध्याय और बान्धवों के साथ, प्रसन्न हुए राजा दशरथ ने सुमन्त्र से यह कहा कि आज हमारे सारे धनाध्यक्ष बहुत सा धन लेकर नाना रत्नों से युक्त हो कर सुरक्षा के साथ आगे आगे चलें।

चतुरङ्गबलं चापि, शीघ्रं निर्यातु सर्वशः।
ममाज्ञासमकालं च, यानं युग्यमनुत्तमम्।। ३।।
वसिष्ठो वामदेवश्च, जाबालिरथ कश्यपः।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुः, ऋषिः कात्यायनस्तथा।। ४।।
एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे, स्यन्दनं योजयस्व मे।
यथा कालात्ययो न स्याद्, दूता हि त्वरयन्ति माम्।। ५।।

मेरी आज्ञा के साथ ही सारी चतुरंगिणी सेना भी शीघ्र कूच कर दे और उत्तम सवारियों में उत्तम छोड़े जुते हुए हों। वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, दीर्घायु मार्कण्डेय ऋषि और कात्यायन, ये ब्राह्मण आगे चलें। मेरे रथ को तैयार करो। देर न हो क्योंकि ये दूत मुझे शीघ्रता के लिये कह रहे हैं।

वचनाच्च नरेन्द्रस्य, सेना च चतुरङ्गिणी।
राजानमृषिभिः सार्धं, व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वयात्।। ६।।
गत्वा चतुरहं मार्गं, विदेहानभ्युपेयिवान्।
राजा च जनकः श्रीमान्, श्रुत्वा पूजामकल्पयत्।। ७।।

राजा की आज्ञा से उसकी चतुरंगिणी सेना ऋषियों के साथ जाते हुए राजा के पीछे पीछे चलने लगी। चार दिन का मार्ग तय करके वे विदेह राज के राज्य में पहुँचे। श्रीमान राजा जनक ने जब यह सुना तो उन्होंने उनकी पूजा की तैयारी की।

ततो राजानमासाद्य, वृद्धं दशरथं नृपम्।
मुदितो जनको राजा, प्रहर्षं परमं ययौ।। ८।।
उवाच वचनं श्रेष्ठो, नरश्रेष्ठं मुदान्वितम्।
स्वागतं ते नरश्रेष्ठ, दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव।। ९।।

तब वृद्ध राजा दशरथ के समीप आकर प्रसन्न चित्त राजा जनक अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुए। उस श्रेष्ठ राजा ने हर्ष से युक्त नरश्रेष्ठ राजा से कहा कि हे रघुवंशी नरश्रेष्ठ राजा। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप यहाँ पधारे। आपका स्वागत है।

पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं, लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम्।
दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा, वसिष्ठो भगवानृषिः।। १०।।
दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना, दिष्ट्या मे पूजितं कुलम्।
राघवैः सह सम्बन्धाद्, वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः।। ११।।

यहाँ आप अपने दोनों पुत्रों के प्रेम को प्राप्त करेंगे, जो उन्होंने अपने पराक्रम से अर्जित किया है। मेरा सौभाग्य है कि महा तेजस्वी भगवान ऋषि वसिष्ठ भी यहाँ पधारे हैं। वीर्य में श्रेष्ठ महा बलवान रघुवंशियों के साथ सम्बन्ध होने से मेरे सौभाग्य का उदय हो गया है। यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे कुल का सम्मान बढ़ रहा है और मेरे सारे विघ्न समाप्त हो गये है।

श्व प्रभाते नरेन्द्र त्वं, संवर्तयितुमर्हसि।
यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ, विवाहमृषिसत्तमैः।। १२।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, ऋषिमध्ये नराधिपः।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः, प्रत्युवाच महीपतिम्।। १३।।

हे नरश्रेष्ठ राजा! कल प्रभात में मेरे यज्ञ के समाप्त होने पर इन महर्षियों के साथ आप विवाह की क्रिया को सम्पन्न करायें। ऋषियों के बीच में राजा जनक की यह बात सुन कर वाक्यमर्मज्ञों में श्रेष्ठ राजा दशरथ ने राजा जनक को उत्तर दिया कि—

प्रतिग्रहो दातृवशः, श्रुतमेतन्मया पुरा।
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ, तत् करिष्यामहे वयम्।। १४।।
तद् धर्मिष्ठं यशस्यं च, वचनं सत्यवादिनः।
श्रुत्वा विदेहाधिपतिः, परं विस्मयमागतः।। १५।।

हे धर्मज्ञ! मैने सुना है कि दान लेना देने वाले के आधीन होता है। इसलिये आप जैसा कहेंगे हम वैसा करेंगे। उन सत्यवादी राजा की उस यशोवर्धन और धर्म से युक्त बात को सुनकर राजा जनक को बड़ा आश्चर्य हुआ।

ततः सर्वे मुनिगणाः, परस्परसमागमे।
हर्षेण महता युक्तास्तां, रात्रिमवसन् सुखम्।। १६।।
अथ रामो महातेजा, लक्ष्मणेन समं ययौ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य, पितुः पादावुपस्पृशन्।। १७।।

तब सारे ऋषि लोग, परस्पर मिल कर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने रात्रि सुख से बिताई। महा तेजस्वी राम भी लक्ष्मण के साथ, विश्वामित्र जी को करके पिता के समीप गये और उन्होंने उनके चरणों को स्पर्श किया।

राजा च राघवौ पुत्रौ, निशाम्य परिहर्षितः।
उवास परमप्रीतो, जनकेनाभिपूजितः।। १८।।
जनकोऽपि महातेजाः, क्रिया धर्मेण तत्त्ववित्।
यज्ञस्य च सुताभ्यां च, कृत्वा रात्रिमुवास ह।। १९।।

राजा भी अपने दोनों रघुवंशी पुत्रों को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। जनक के द्वारा सम्मान प्राप्त करते हुए वे बड़ी खुशी से वहां रहे। महातेजस्वी, धर्म के तत्व को जानने वाले राजा जनक ने भी यज्ञ तथा दोनों पुत्रियों के लिये आवश्यक क्रियाओं को कर के वह रात्रि व्यतीत की।

बीसवाँ सर्ग

राज जनक का अपने भाई कुशध्वज को सांकाश्या नगरी से बुलाना। राजा दशरथ के अनुरोध से वसिष्ठ जी का सूर्य वंश का परिचय देते हुए श्रीराम और लक्ष्मण के लिये सीता तथा उर्मिला को वरण करना

ततः प्रभाते जनकः, कृतकर्मा महर्षिभिः।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः, शतानन्दं पुरोहितम्।। १।।
भ्राता मम महातेजा, वीर्यवानतिधार्मिकः।
कुशध्वज इति ख्यातः, पुरीमध्यवसच्छुभाम्।। २।।
वार्याफलकपर्यन्तां, पिबन्निक्षुमतीं नदीम्।
सांकाश्यां पुण्यसंकाशां, विमानमिव पुष्पकम्।। ३।।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि, यज्ञगोप्ता स मे मतः।
प्रीतिं सोऽपि महातेजा, इमां भोक्ता मया सह।। ४।।

तब सवेरे जनक जी ने जब ऋषियों के साथ अपने कार्य को समाप्त कर लिया तब वे वाक्य मर्मज्ञ शतानन्द पुरोहित जी से बोले कि मेरे भाई जो महा तेजस्वी वीर्यवान और बड़े धार्मिक हैं, जो कुशध्वज नाम से विख्यात है, जो इक्षुमती नदी का पानी पीते हुए, उसके किनारे बसी हुई सांकाश्या नाम की पवित्र नगरी में जो चारों तरफ से परकोटों से घिरी हुई है और पुष्पक विमान के समान विशाल है, रहते हैं, उन्हें मैं यहाँ देखना चाहता हूँ। वह मेरे अनुसार मेरे यज्ञ के रक्षक हैं। वह महान तेजस्वी भी इस सुख को भोगने में मेरे सहभागी होंगे।

एवमुक्ते तु वचने, शतानन्दस्य संनिधौ।
आगताः केचिदव्यग्रा, जनकस्तान् समादिशत्।। ५।।
शासनात् तु नरेन्द्रस्य, प्रययुः शीघ्रवाजिभिः।
सांकाश्यां ते समागम्य, ददृशुश्च कुशध्वजम्।। ६।।
न्यवेदयन् यथावृत्तं, जनकस्य च चिन्तितम्।

राजा जनक के इस प्रकार शतानन्द जी से कहने पर उनके पास कुछ धैर्यवान् पुरुष आये और राजा ने उन्हें आदेश दिया। राजा के आदेश से वे तेज घोड़ों से गये और सांकाश्या में जाकर कुशध्वज से मिले। वहाँ उन्होंने जनक जी का सारा समाचार और अभिप्राय भी निवेदन कर दिया।

तद्वृत्तं नृपतिः श्रुत्वा, दूतश्रेष्ठैर्महाजवैः।। ७।।
आज्ञया तु नरेन्द्रस्य, आजगाम कुशध्वजः।

स ददर्श महात्मानं, जनकं धर्मवत्सलम्।। ८।।
सोऽभिवाद्य शतानन्दं, जनकं चातिधार्मिकम्।
राजार्हं परमं दिव्यमासनं सोऽध्यरोहत।। ९।।

वेगशाली उन श्रेष्ठ दूतों से उस वृत्तान्त को सुन कर और राजा की आज्ञा से कुशध्वज वहाँ मिथिला में आ गये। वहाँ उन्होंने धर्म प्रिय महात्मा जनक के दर्शन किये। उन्होंने परम धार्मिक शतानन्द जी को तथा जनक जी को अभिवादन किया और राजा के योग्य परम दिव्य आसन पर बैठे।

उपविष्टावुभौ तौ तु, भ्रातरावमितद्युती।
प्रेषयामासतुर्वीरौ, मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम्।। १०।।
गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमिक्ष्वाकुममितप्रभम्।
आत्मजैः सह दुर्धर्षमानयस्व समन्त्रिणम्।। ११।।

उन दोनों विराजमान अमित द्युति वीर भाइयों ने सुदामा नाम के श्रेष्ठ मन्त्री को भेजा और कहा हे मन्त्रिवर आप जल्दी ही अमित प्रभा वाले इक्ष्वाकुवंशी दुर्धर्ष राजा दशरथ के पास जाइये और उन्हें पुत्रों तथा मन्त्रियों के साथ यहाँ ले आइये।

औपकार्यां स गत्वा तु, रघूणां कुलवर्धनम्।
ददर्श शिरसा चैनमभिवाद्येदमब्रवीत्।। १२।।
अयोध्याधिपते वीर, वैदेहो मिथिलाधिपः।
स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः, सोपाध्यायपुरोहितम्।। १३।।

तब वह मन्त्री रघुवंशियों के खेमे में जा कर अपने कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाले राजा दशरथ से मिले और उन्हें सिर झुका कर प्रणाम करके यह कहा कि हे अयोध्या के वीर अधिपति! मिथिला के स्वामी विदेहराज उपाध्याय और पुरोहितों के सहित आपके दर्शन करना चाहते हैं।

मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा, राजा सर्षिगणस्तथा।
सबन्धुरगमत् तत्र, जनको यत्र वर्तते।। १४।।
राजा च मन्त्रिसहितः, सोपाध्यायः सबान्धवः।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो, वैदेहमिदमब्रवीत्।। १५।।

उस श्रेष्ठ मन्त्री के वचन सुनकर राजा दशरथ ऋषियों और बन्धुओं के साथ वहाँ गये जहाँ राजा जनक थे। वहाँ अपने उपाध्याय, बान्धवों और मन्त्रियों के साथ वाक्य मर्मज्ञों में श्रेष्ठ राजा ने विदेहराज से यह कहा कि—

विदितं ते महाराज, इक्ष्वाकुकुलदैवतम्।
वक्ता सर्वेषु कृत्येषु, वसिष्ठो भगवानृषिः।। १६।।
विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः, सह सर्वैर्महर्षिभिः।
एष वक्ष्यति धर्मात्मा, वसिष्ठो मे यथाक्रमम्।। १७।।

हे महाराज आपको मालूम होगा कि भगवान ऋषि वसिष्ठ हमारे इक्ष्वाकुवंश के देवता हैं। ये ही सारे कार्यों का हमें उपदेश देते हैं। ये सब ऋषियों के साथ विश्वामित्र जी की आज्ञा से मेरी कुलपरम्परा का क्रम से परिचय देंगे।

तूष्णीभूते दशरथे, वसिष्ठो भगवानृषिः।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो, वैदेहं सपुरोधसम्।। १८।।
मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः।
तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम्।। १९।।

दशरथ जी के चुप होने पर वाक्य मर्मज्ञ भगवान ऋषि वसिष्ठ ने पुरोहित सहित विदेहराज से यह कहा कि मनु पहले प्रजा के स्वामी थे। इक्ष्वाकु मनु के पुत्र थे। उन इक्ष्वाकु को अयोध्या का पहला राजा जानिये।

नोट– यहाँ पुत्र से साक्षात् पुत्र के अतिरिक्त पुत्र परम्परा ऐसा भी मानना चाहिये, इसीलिये राम और जनक की वंशावली में इतने थोड़े नाम हैं। ये नाम केवल प्रसिद्ध व्यक्तियों के हैं, सबके नहीं।

इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान्, कुक्षिरित्येव विश्रुतः।
कुक्षेरथात्मजः श्रीमान्, विकुक्षिरुदपद्यत।। २०।।
विकुक्षेस्तु महातेजा, बाणः पुत्रः प्रतापवान्।
बाणस्य तु महातेजा, अनरण्यः प्रतापवान्।। २१।।
अनरण्यात् पृथुर्जज्ञे, त्रिशङ्कुस्तु पृथोरपि।
त्रिशङ्कोरभवत् पुत्रो, धुन्धुमारो महायशाः।। २२।।

इक्ष्वाकु के तेजस्वी पुत्र कुक्षि थे, ऐसा प्रसिद्ध है। कुक्षि से तेजस्वी विकुक्षि का जन्म हुआ। विकुक्षि के महा तेजस्वी बाण नाम के प्रतापी पुत्र हुए। बाण के महा तेजस्वी और प्रतापी अनरण्य हुए। अनरण्य से पृथु का जन्म हुआ और पृथु से त्रिशंकु का। त्रिशंकु के महान यशस्वी धुन्धुमार नाम के पुत्र हुए।

धुन्धुमारान्महातेजा, युवनाश्वो महारथः।
युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः।। २३।।
मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान्, सुसंधिरुदपद्यत।
सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ, ध्रुवसंधिः प्रसेनजित्।। २४।।
यशस्वी ध्रुवसंधेस्तु, भरतो नाम नामतः।
भरतात् तु महातेजा, असितो नाम जायत।। २५।।

धुन्धुमार से महा तेजस्वी, महारथी युवनाश्व का जन्म हुआ। युवनाश्व के पुत्र पृथिवी का पालन करने वाले मान्धाता

थे। मान्धाता के पुत्र सुसन्धि का जन्म हुआ। सुसन्धि के दो पुत्र थे ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित्। यशस्वी ध्रुवसन्धि से भरत नाम का पुत्र हुआ। भरत से महा तेजस्वी असित का जन्म हुआ।

यस्यैते प्रतिराजान, उदपद्यन्त शत्रवः।
हैहयास्तालजङ्घाश्च, शूराश्च शशबिन्दवः।। २६।।
तांश्च स प्रतियुध्यन् वै, युद्धे राजा प्रवासितः।
हिमवन्तमुपागम्य, भार्याभ्यां सहितस्तदा।। २७।।
असितोऽल्पबलो राजा, कालधर्ममुपेयिवान्।
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ, बभूवतुरिति श्रुतिः।। २८।।

जिसके हैहय, तालजंघ और शशविन्दु ये तीन शूरवीर शत्रु हो गये थे, वह राजा उनसे युद्ध करते हुए प्रवासी हो गये और दोनों पत्नियों के साथ हिमालय पर चले गये। कम शक्ति वाले असित वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गये। उस समय उनकी दोनों पत्नियाँ गर्भवती थीं, ऐसा सुना जाता है।

एका गर्भविनाशार्थं, सपत्न्यै सगरं ददौ।
ततः शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः।। २९।।
भार्गवश्च्यवनो नाम, हिमवन्तमुपाश्रितः।
तत्र चैका महाभागा, भार्गवं देववर्चसम्।। ३०।।
ववन्दे पद्मपत्राक्षी, काङ्क्षन्ती सुतमुत्तमम्।
तमृषिं साभ्युपागम्य, कालिन्दी चाभ्यवादयत्।। ३१।।

उनमें से एक रानी ने गर्भ को नष्ट करने के लिए अपनी सौत को विषैला भोजन दे दिया। उस समय हिमालय का आश्रय लेकर उस सुन्दर पर्वत पर भृगुंवशी च्यवन ऋषि तपस्या कर रहे थे। तब उस कालिन्दी नाम की महाभागा, कमल के समान नेत्र वाली रानी ने, जिसे जहर दिया गया था, जो उत्तम पुत्र की इच्छा रखती थी, देवताओं के समान तेजस्वी च्यवन ऋषि को जाकर प्रणाम किया।

स तामभ्यवदद् विप्रः, पुत्रेप्सुं पुत्रजन्मनि।
तव कुक्षौ महाभागे, सुपुत्रः सुमहाबलः।। ३२।।
महावीर्यो महातेजा, अचिरात् संजनिष्यति।
गरेण सहितः श्रीमान्, मा शुचः कमलेक्षणे।। ३३।।
च्यवनं च नमस्कृत्य, राजपुत्री पतिव्रता।
पत्या विरहिता तस्मात्, पुत्रं देवी व्यजायत।। ३४।।

तब उस ब्राह्मण ने पुत्र की इच्छा रखने वाली रानी से पुत्र जन्म के विषय में कहा कि हे महाभागे! तुम्हारे पेट से जल्दी ही एक महा बलवान, महा वीर्यवान, महा तेजस्वी, अच्छा पुत्र विष के साथ ही जन्म लेगा। वह ऐश्वर्य वाला होगा। हे कमल के समान नेत्रों वाली तू शोक मत कर। तब उस विधवा, पतिव्रता राजकुमारी ने च्यवन मुनि को नमस्कार किया। उसने उसके बाद एक पुत्र को जन्म दिया।

सपत्न्या तु गरस्तस्यै, दत्तो गर्भजिघांसया।
सह तेन गरेणैव, संजातः सगरोऽभवत्।। ३५।।
सगरस्यासमंजस्तु, असमंजादथांशुमान्।
दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो, दिलीपस्य भगीरथः।। ३६।।
भगीरथात्ककुत्स्थश्च, ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा।
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी, प्रवृद्धः पुरुषादकः।। ३७।।

क्योंकि सौत ने उसे गर्भ को नष्ट करने की इच्छा से गर अर्थात् विष दिया था और वह पुत्र उस गर के साथ ही उत्पन्न हुआ, अतः उसका नाम सगर रखा गया। सगर के पुत्र असमंजा और असमंजा से अंशुमान हुए। अंशुमान के पुत्र दिलीप और दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए। भगीरथ से ककुत्स्थ और ककुत्स्थ से रघु हुए। रघु के तेजस्वी पुत्र प्रवृद्ध हुए, जो राक्षस बन गये थे।

कल्माषपादोऽप्यभवत्, तस्माजातस्तु शङ्खणः।
सुदर्शनः शङ्खणस्य, अग्निवर्णः सुदर्शनात्।। ३८।।
शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य, शीघ्रगस्य मरुः सुतः।
मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात्।। ३९।।
अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः।
नहुषस्य ययातिस्तु, नाभागस्तु ययातिजः।। ४०।।
नाभागस्य बभूवाज, अजाद् दशरथोऽभवत्।
अस्माद् दशरथाज्जातौ, भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। ४१।।

वे कल्माष पाद नाम से भी प्रसिद्ध हुए। कल्माष पाद से शंखण नाम के पुत्र हुए। शंखण के सुदर्शन पुत्र हुए। सुदर्शन से अग्निवर्ण का जन्म हुआ। अग्निवर्ण के शीघ्रग पुत्र हुए। शीघ्रग के मरुः नाम के पुत्र हुए। मरुः से प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक से अम्बरीष का जन्म हुआ। अम्बरीष के पुत्र नहुष राजा हुए। नहुष के ययाति पुत्र हुए और ययाति से नाभाग का जन्म हुआ। नाभाग से अज का जन्म हुआ। अज से दशरथ जी हुए और इन दशरथ जी से ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण उत्पन्न हुए हैं।

आदिवंशविशुद्धानां, राज्ञां परमधर्मिणाम्।
इक्ष्वाकुकुलजातानां, वीराणां सत्यवादिनाम्।। ४२।।
रामलक्ष्मणयोरर्थे, त्वत्सुते वरये नृप।
सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ, सदृशे दातुमर्हसि।। ४३।।

इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न होने वाले वीर राजाओं का वंश आरम्भ से ही शुद्ध रहा है। वे सब परम धार्मिक और सत्यवादी रहे हैं। हे नरश्रेष्ठ राजा। मैं राम और लक्ष्मण के लिये आपकी दोनों पुत्रियों का वरण करता हूँ। ये दोनों आपकी कन्याओं के सदृश हैं। ये कन्याएँ भी इनके सदृश हैं। अतः आप इन्हें इनके लिये दीजिये।

इक्कीसवाँ सर्ग

राजा जनक का अपने कुल का परिचय देते हुए श्रीराम और लक्ष्मण के लिये क्रमशः सीता और उर्मिला को देने की प्रतिज्ञा करना।

एवं ब्रुवाणं जनकः, प्रत्युवाच कृताञ्जलिः।
श्रोतुमर्हसि भद्रं ते, कुलं नः परिकीर्तितम्।। १।।
प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ, कुलं निरवशेषतः।
वक्तव्यं कुलजातेन, तन्निबोध महामत।। २।।

जब वसिष्ठ जी इस प्रकार इक्ष्वाकुवंश का परिचय दे चुके, तब राजा जनक ने हाथ जोड़कर उन्हें उत्तर दिया कि हे महाराज! आपका कल्याण हो। अब हमारे कुल के विषय में भी कुछ सुन सकते हैं। कुलीन व्यक्ति के लिये कन्या दान के समय अपने कुल के विषय में सम्पूर्ण रूप में बताना चाहिये। इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ महामति! आप सुनिये।

राजाभूत् त्रिषु लोकेषु, विश्रुतः स्वेन कर्मणा।
निमिः परमधर्मात्मा, सर्वसत्त्ववतां वरः।। ३।।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम, जनको मिथिपुत्रकः।
प्रथमो जनको राजा, जनकादप्युदावसुः।। ४।।
उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः।
नन्दिवर्धसुतः शूरः सुकेतुर्नाम नामतः।। ५।।

पहले एक निमिनाम के राजा थे। वे परम धर्मात्मा, सब गुणवानों में श्रेष्ठ और अपने कार्यो से तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे। उनके मिथि नाम के पुत्र हुए और मिथि के पुत्र जनक हुए वे पहले जनक थे। उनसे उदावसु का जन्म हुआ। उदावसु से धर्मात्मा नन्दिवर्धन ने जन्म लिया। नन्दिवर्धन के शूरवीर पुत्र का नाम सुकेतु था।

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः।
देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः।। ६।।
बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान्।
महावीरस्य धृतिमान् सुधृतिः सत्यविक्रमः।। ७।।
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः।
धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः।। ८।।

सुकेतु के पुत्र महाबलशाली और धर्मात्मा देवरात हुए और राजर्षि देवरात के बृहद्रथ नाम के पुत्र थे ऐसा स्मरण किया जाता है। बृहद्रथ के शूरवीर और प्रतापी महावीर नाम के पुत्र हुए। महावीर के धैर्यवान और सत्य विक्रमी सुधृति नाम के पुत्र हुए। सुधृति के धर्मात्मा धृष्टकेतु हुए तो अच्छे धार्मिक थे। राजर्षि धृष्टकेतु के हर्यश्व नाम के पुत्र थे, ऐसा प्रसिद्ध है।

हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतीन्धकः।
प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः।। ९।।
पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः।
देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः।। १०।।
महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः।
कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत।। ११।।

हर्यश्व के पुत्र मरु थे। मरु के पुत्र प्रतीन्धक थे। प्रतीन्धक के धर्मात्मा पुत्र कीर्तिरथ थे। कीर्तिरथ के भी पुत्र देवमीढ थे ऐसा स्मरण किया जाता है। देवमीढ के विबुध और विबुध के महीध्रक नाम के पुत्र हुए। महीध्रक के पुत्र महाबलवान कीर्तिरात थे। राजर्षि कीर्तिरात के महारोमा ने जन्म लिया।

महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत।
स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत।। १२।।
तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः।
ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः।। १३।।

महारोमा से स्वर्णरोमा ने जन्म लिया। राजर्षि स्वर्ण रोमा से ह्रस्वरोम उत्पन्न हुए। उन धर्मज्ञ और महात्मा राजा के दो पुत्र हैं। उनमें बड़ा मैं और छोटा मेरा भाई वीर कुशध्वज है।

मां तु ज्येष्ठं पिता राज्ये सोऽभिषिच्य पिता मम।
कुशध्वजं समावेश्य भारं मयि वनं गतः।। १४।।

वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम्।
भ्रातरं देवसंकाशं स्नेहात् पश्यन् कुशध्वजम्।। १५।।

मेरे पिता जी मेरे बड़े होने के कारण मुझे राजसिंहासन पर बिठाकर और कुशध्वज का भार मुझे सौंपकर वन में चले गये। वृद्ध पिता के दिवंगत होने पर मैं देवता के समान अपने छोटे भाई को स्नेह से देखता हुआ धर्मानुसार राज्य का भार वहन करने लगा।

कस्यचित्त्वथ कालस्य सांकाश्यादागतः पुरात्।
सुधन्वा वीर्यवान् राजा मिथिलामवरोधकः।। १६।।
स च मे प्रेषयामास शैवं धनुरनुत्तमम्।
सीता च कन्या पद्माक्षी मह्यं वै दीयतामिति ।। १७।।

कुछ समय के बाद सांकाश्य नगर से सुधन्वा नाम के पराक्रमी राजा ने मिथिला को घेर लिया। उसने मुझे सन्देश भिजवाया कि तुम शिव के धनुष और अपनी कमलनयनी पुत्री सीता को मुझे दे दो।

तस्याप्रदानान्महर्षे युद्धमासीन्मया सह।
स हतोऽभिमुखो राजा सुधन्वा तु मया रणे।। १८।।
निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम्।
सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिञ्चं कुशध्वजम्।। १९।।

हे महर्षे! उसके न देने से उसका मेरे साथ युद्ध हुआ। तब युद्ध में वह राजा सुधन्वा मेरे द्वारा मारा गया। हे मुनिश्रेष्ठ! उस राजा सुधन्वा को मारकर मैंने सांकाश्या नगरी में अपने शूरवीर भाई कुशध्वज का अभिषेक कर दिया।

कनीयानेष मे भ्राता अहं ज्येष्ठो महामुने।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुङ्गव।। २०।।
सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय वै।
वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम्।। २१।।
द्वितीयामुर्मिलां चैव त्रिर्वदामि न संशयः।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुङ्गव।। २२।।

हे महामुने! यह मेरा भाई मुझसे छोटा है। मैं बड़ा हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ आपको दो वधुएँ भेंट करता हूँ। सीता को राम के लिये और उर्मिला को लक्ष्मण के लिये। आपका कल्याण हो। मैं अपनी वीर्य शुल्का कन्या देवपुत्री के समान सीता को और दूसरी उर्मिला को देता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है। मैं ऐसा तीन बार कहता हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं अत्यन्त स्नेह के सथ आपको दो वधुएँ दे रहा हूँ।

मघा ह्यद्य महाबाहो तृतीयदिवसे प्रभो।
फल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन् वैवाहिकं कुरु।
रामलक्ष्मणयोरर्थे दानं कार्यं सुखोदयम्।। २३।।

हे महाबाहु! आज मघा नक्षण है। तीसरे दिन उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र है। हे राजन्! तब आप विवाह का कार्य कराइये। अब आप राम लक्ष्मण के लिये दान का कार्य कीजिये। यह सुखदायी है।

बाईसवाँ सर्ग

विश्वामित्र के द्वारा भरत और शत्रुघ्न के लिये कुशध्वज की कन्याओं का कुरण। व राजा जनक द्वारा इसकी स्वीकृति तथा राजा दशरथ का अपने पुत्रों के मंगल के लिये गोदान करना।

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम्।। १।।
अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि नरपुङ्गव।
इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्ति कश्चन।। २।।
सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसम्पदा।
रामलक्ष्मणयो राजन् सीता चोर्मिलया सह।। ३।।

विदेहराज के ऐसा कहने पर महामुनि विश्वामित्र ने वसिष्ठ जी के साथ वीर राजा से कहा कि हे नरश्रेष्ठ! इक्ष्वाकु और विदेह दोनों ही कुल अपनी महत्ता के कारण अचिन्त्य और अप्रमेय हैं अर्थात इनकी महानता के विषय में न तो सोचा जा सकता है और न उसे गाया जा सकता है। इनके समान कोई दूसरा कुल नहीं है। हे राजन! राम और लक्ष्मण का सीता और उर्मिला के साथ यह धर्म सम्बन्ध एक दूसरे के समान है और उनकी सौन्दर्य शीलता भी एक दूसरे के समान है।

वक्तव्यं च नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं मम।
भ्राता यवीयान् धर्मज्ञ एष राजाकुशध्वजः।। ४।।
अस्य धर्मात्मनो राजन् रूपेणाप्रतिमं भुवि।

सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे।। ५।।
भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य धीमतः।
वरये ते सुते राजंस्तयोरर्थे महात्मनोः।। ६।।

हे नरश्रेष्ठ! अब मुझे एक बात कहनी है। आप मेरी बात सुनिये। आपके ये छोटे भाई कुशध्वज धर्म को जानने वाले हैं। हे राजन! हे नरश्रेष्ठ! हम इन धर्मात्मा राजा की दोनों पुत्रियों का भी, जो पृथिवी पर सौन्दर्य में अद्वितीय है, कुमार भरत और धीमान शत्रुघ्न की पत्नी के रूप में वरण कर रहे है। हे राजन्! इन दोनों महात्माओं के लिये वरण कर रहे है।

उभयोरपि राजेन्द्र सम्बन्धेनानुबध्यताम्।
इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः।। ७।।
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते सदा।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुङ्गवौ।। ८।।

हे राजेन्द्र! आप पुण्यकर्मा हैं। इन दोनों भाइयों के साथ भी सम्बन्ध करके आप इक्ष्वाकु कुल को बिना किसी व्यग्रता के बाँध लीजिये। वसिष्ठ जी की सलाह के अनुसार विश्वामित्र जी की बात सुनकर जनक जी ने दोनों मुनिश्रेष्ठों को हाथ जोड़कर कहा।

कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुङ्गवौ।
सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम्।। ९।।
एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे।
पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ।। १०।।
एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने।
पाणीन् गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः।। ११।।

मेरा यह कुल धन्य है, जिसे आप दोनों मुनिश्रेष्ठ इक्ष्वाकु जैसे कुल के साथ जोड़ने की स्वयं आज्ञा दे रहे हैं। आपका कल्याण हो। कुशध्वज की इन दोनों कन्याओं को भरत और शत्रुघ्न दोनों अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करें। हे महामुनि! ये चारों महाबली राजकुमार एक ही दिन इन चारों राजकुमारियों का पाणिग्रहण करें।

उत्तरे दिवसे ब्रह्मन् फल्गुनीभ्यां मनीषिणः।
वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः।। १२।।
एवमुक्त्वा वचः सौम्यं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।
उभौ मुनिवरौ राजा जनको वाक्यमब्रवीत्।। १३।।

हे ब्रह्मन! अगले दो दिन फाल्गुनि नाम के नक्षत्र से युक्त हैं। विद्वान लोग भग प्रजापति वाले नक्षत्र की विवाह के लिये प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार सुन्दर वचन बोलकर राजा जनक हाथ जोड़ कर खड़े हो गये और दोनों मुनिश्रेष्ठों से बोले।

परो धर्मः कृतो मह्यं शिष्योऽस्मि भवतोस्तथा।
इमान्यासनमुख्यानि आस्यतां मुनिपुङ्गवौ।। १४।।
यथा दशरथस्येयं तथायोध्या पुरी मम।
प्रभुत्वे नास्ति संदेहो यथार्हं कर्तुमर्हथ।। १५।।

हे दोनों मुनिश्रेष्ठों! आपने मेरे लिये परम धर्म का सम्पादन किया है। मैं आपका शिष्य हूँ। उन मुख्य आसनों पर आप दोनों विराजिये। जैसे आपके लिये दशरथ जी की अयोध्या है, वैसी ही मेरी जगरी भी है। वैसा ही आपका यहाँ भी अधिकार है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, अतः आप जैसे चाहें वैसे करिये।

तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः।
राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम्।। १६।।
युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ।
ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः।। १७।।
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामः स्वमालयम्।
श्राद्धकर्माणि विधिवद्विधास्य इति चाब्रवीत्।। १८।।

विदेहराज जनक के ऐसा कहने पर रघुनन्दन राजा दशरथ ने प्रसन्न होकर राजा को उत्तर दिया कि आप दोनों मिथिला के राजा भाइयों के गुण असंख्य हैं। आपने ऋषियों और राजाओं का भली भाँति सत्कार किया है। आपका कल्याण हो। आप मंगल को प्राप्त हों। अब हम विश्राम स्थान को जाएँगे। मैं श्रद्धापूर्वक किये जाने वाले कार्यों को भी विधिवत करूँगा, यह भी उन्होंने कहा।

तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा।
मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः।। १९।।
स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम्।। २०।।

तब राजा दशरथ राजा जनक से अनुमति ले दोनों ऋषियों को आगे करके शीघ्र अपने निवास पर चले गये। वहाँ जाकर राजा ने विधान के अनुसार श्रद्धा से किये जाने वाले कार्य किये। तत्पश्चात सवेरे समयानुसार उत्तम गोदान के कार्य को किया।

गवां शतसहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः।
एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः।। २१।।
सुवर्णशृङ्ग्यः सम्पन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः।
गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुर्षभः।। २२।।

वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः।
ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः।। २३।।

उस समय राजा ने एक-एक पुत्र के लिये हजारों गायें ब्राह्मणों को दान कीं। उस पुरूष श्रेष्ठ, पुत्रवत्सल रघुनन्दन राजा ने सुनहले सींगों से सुशोभित, काँसे के दुग्धपात्र और बछड़ों वाली हजारों-हजारों गायें चार बार और बहुत सा धन पुत्रों के लिये ब्राह्मणों को दिया।

तेइसवाँ सर्ग

श्रीराम आदि चारों भाइयों का विवाह।

यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम्।
तस्मिंस्तु दिवसे वीरो युधाजित् समुपेयिवान्।। १।।
पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद्भरतमातुलः।
दृष्ट्वा पृष्ट्वा च कुशलं राजानमिदमब्रवीत्।। २।।

जिस दिन राजा ने गोदान किया, उसी दिन वीर युधाजित, जो कि केकयराज के पुत्र और भरत के सगे मामा थे, वहाँ आ गये। उन्होंने महाराज के दर्शन किये, कुशल समाचार पूछा और फिर उनसे कहा।

केकयाधिपती राजा स्नेहात् कुशलमब्रवीत्।
येषां कुशलकामोऽसि तेषां सम्प्रत्यनामयम्।। ३।।
स्वस्रीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामो महीपतिः।
तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दन।। ४।।

केकय अधिपति ने बड़े प्रेम से आपका कुशल समाचार पूछा है। आप जिनका कुशल समाचार जानना चाहते हैं, वे सभी इस समय सकुशल है। हे राजेन्द्र! राजा मेरे भांजे को देखना चाहते हैं। हे रघुनन्दन! उसी के लिये मैं अयोध्या में आया था।

श्रुत्वा त्वहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान्।
मिथिलामुपयातांस्तु त्वया सह महीपते।। ५।।
त्वरयाभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम्।
अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थितम्।
दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत्।। ६।।

हे महीपति! अयोध्या में यह सुनकर कि आपके पुत्र विवाह के लिये आपके साथ मिथिला गये हैं, मैं अपनी बहिन के पुत्र को देखने के लिये जल्दी से यहाँ आ गया हूँ। तब राजा दशरथ ने अपने उस पूजा के योग्य, प्रिय अतिथि को देख कर अत्यधिक सत्कार के साथ उसकी पूजा की।

ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः।। ७।।
प्रभाते पुनरुत्थाय कृत्वा कर्माणि तत्त्ववित्।
ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत्।। ८।।
युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः।
भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमङ्गलः।। ९।।
वसिष्ठं पुरतः कृत्वा महर्षीनपरानपि।
वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत्।। १०।।

तब अपने महात्मा पुत्रों के साथ उस तत्त्वज्ञ राजा ने वह रात व्यतीत की और प्रातः उठकर नित्य कर्म किये, फिर ऋषियों को आगे करके यज्ञशाला में पहुँच गये। तदनन्तर विजय नाम के उचित मुहूर्त के आने पर अपने सब प्रकार के आभूषणों से भूषित अपने भाइयों के साथ श्रीराम मंगल कार्यों को सम्पन्न करके, वसिष्ठ जी तथा दूसरे महर्षियों को आगे करके वहाँ आये। भगवान वसिष्ठ जी ने जनक जी से जाकर यह कहा।

राजा दशरथो राजन् कृतकौतुकमङ्गलैः।
पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठो दातारमभिकाङ्क्षते।। ११।।
दातृप्रतिग्रहीतृभ्यां सर्वार्थाः सम्भवन्ति हि।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व कृत्वा वैवाह्यमुत्तमम्।। १२।।
इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना।
प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित्।। १३।।

हे राजन! राजाओं में श्रेष्ठ राजा दशरथ अपने पुत्रों के साथ, जिन्होंने सारे मंगल कार्य पूर्ण कर लिये हैं, दाता के आदेश की इच्छा कर रहे हैं, क्योंकि देने वाले और लेने वाले का संयोग होने पर ही सारे कार्य सम्पन्न होते है। आप उत्तम विवाह कर्म को करवाकर अपने धर्म का पालन कीजिये। महात्मा वसिष्ठ जी के यह कहने पर परम उदार, धर्म के महान् मर्मज्ञ, महातेजस्वी राजा जनक ने उत्तर दिया।

कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां सम्प्रतीक्षते।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव।। १४।।
कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः।

मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्ता बह्नेरिवार्चिषः।। १५।।
सद्योऽहं त्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः।
अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलम्ब्यते।। १६।।

हे मुनिश्रेष्ठ! मेरा कौन सा पहरेदार उनके लिये खड़ा हुआ है? वे किसकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं? अपने घर में क्या विचार है? जैसे यह मेरा राज्य है, वैसे ही आपका भी है। मेरी अग्नि की ज्वाला के समान कान्तिमान कन्याएँ भी सारे मंगलकृत्यों को करके यज्ञवेदी के पास आकर बैठी हुई है। मैं भी तैयार होकर आपकी प्रतीक्षा में इस वेदी पर बैठा हूँ। आप निर्विघ्नतापूर्वक सारे कार्य पूर्ण कीजिये। विलम्ब किसके लिये करते हैं।

तद् वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तदा।
प्रवेशयामास सुतान सर्वानृषिगणानपि।। १७।।
ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत्।
कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभिः सह धार्मिक।। १८।।
रामस्य लोकरामस्य क्रियां वैवाहिकीं प्रभो।

जनक जी के उन वाक्यों को सुनकर तब दशरथ जी ने अपने पुत्रों तथा ऋषियों को महल में प्रवेश कराया। तब विदेहराज ने वसिष्ठ जी से कहा कि हे प्रभो! हे धार्मिक ऋषि! आप ऋषियों के साथ लोकाभिराम श्रीराम की वैवाहिक क्रियाओं को सम्पन्न कराइये।

तथेत्युक्त्वा तु जनकं वसिष्ठो भगवानृषिः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य शतानन्दं च धार्मिकम्।। १९।।
प्रपामध्ये तु विधिवद् वेदिं कृत्वा महातपाः।
अलंचकार तां वेदिं गन्धपुष्पैः समन्ततः।। २०।।
सुवर्णपालिकाभिश्च चित्रकुम्भैश्च साङ्कुरै।
अङ्कुराढ्यैः शरावैश्च पूपपात्रैः सधूपकैः।। २१।।
शङ्खपात्रैः स्रुवैः स्रग्भिः पात्रैरर्घ्यादिपूजितैः।
लाजपूर्णैश्च पात्रीभिरक्षतैरपि संस्कृतैः।। २२।।
दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्।
अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिमन्त्रपुरस्कृतम्।। २३।।
जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः।। २४।।

तब महातपस्वी भगवान वसिष्ठ ऋषि ने जनक जी से अच्छा यह कहकर, विश्वमित्र जी और धार्मिक शतानन्द जी को आगे करके, विवाह मण्डप के मध्यभाग में विधिपूर्वक वेदी का निर्माण किया। फिर उस वेदी को सब तरफ से सुगन्धित फूलों से सजाया। उसके चारों तरफ सुवर्ण पालिकाएँ, अंकुरों से युक्त चित्रित कलश, अंकुरों से युक्त सकोरे, धूप से युक्त धूपपात्र, शंखपात्र, स्रुवा, स्रुक्, अर्घ्य पूजा वाले पात्र, लाजा से भरी हुई परातें, धुले हुए अक्षत रखे हुए थे। समान रूप से कुशाओं को बिछाकर महातेजस्वी मुनि वसिष्ठ जी ने विधिपूर्वक और मन्त्रों के साथ अग्नि का वेदी में आधान किया और विधान के मन्त्रों के साथ हवन किया।

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम्।
समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा।। २५।।
अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम्।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचारी तव।। २६।।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा।। २७।।

पुन सब प्रकार के आभूषणों से सजी हुई सीता को लाकर अग्नि और श्रीराम के समक्ष बैठाकर कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले राम से राजा जनक ने कहा कि यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणी के रूप में उपस्थित है। तुम्हारा कल्याण हो, तुम इसे ग्रहण करो, इसके हाथ को अपने हाथ से ग्रहण करो। यह महती सौभाग्यवती, पतिव्रता, छाया के समान तुम्हारे साथ रहेगी।

इत्युक्त्वा प्राक्षिपद् राजा मन्त्रपूतं जलं तदा।
साधुसाध्विति देवानामृषीणां वदतां तदा।। २८।।
एवं दत्त्वा सुतां सीतां मन्त्रोदकपुरस्कृताम्।
अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुतः।। २९।।
लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया।
प्रतीच्छ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत् कालस्य पर्ययः।। ३०।।

ऐसा कहकर राजा जनक में विद्वानों और ऋषियों द्वारा कहे जाने वाले साधुवादों के बीच में पवित्र किये हुए उस संकल्प जल को छोड़ दिया। इस प्रकार अपनी पुत्री सीता का मन्त्रों और संकल्प जल के द्वारा दान कर प्रसन्नता से भरे हुए राजा जनक ने कहा कि हे लक्ष्मण आओ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरे द्वारा तैयार की हुई इस उर्मिला को स्वीकार करो। इसके हाथ को ग्रहण करो। इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये।

तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत।
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन।। ३१।।
शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीन्मिथिलेश्वरः।
श्रुतकीर्तेर्महाबाहो पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।। ३२।।
सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः।
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत् कालस्य पर्ययः।। ३३।।

उनसे ऐसा कहकर जनक जी ने भरत जी से कहा कि हे रघुनन्दन! तुम माण्डवी का हाथ अपने हाथ में

धारण करो। शत्रुघ्न को भी मिथिलेश्वर ने कहा कि महाबाहु! तुम श्रुतकीर्ति का हाथ अपने हाथ में ग्रहण करो। आप सब सुन्दर हैं और अच्छे चरित्रवाले हैं। हे ककुत्स्थवंशियो! आप सब अपनी पत्नियों से युक्त हो जीओ। विलम्ब मत करो।

जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन् पाणिभिरस्पृशन्।
चत्वारस्ते चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः।। ३४।।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च।
ऋषींश्चापि महात्मानः सहभार्या रघूद्वहाः।। ३५।।
यथोक्तेन तत श्चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम्।
अथोपकार्यं जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दाः।। ३६।।
राजाप्यनुययौ पश्यन् सर्षिसङ्घः सबान्धवः।

जनक जी के वचन सुनकर उन चारों राजकुमारों ने उन राजकुमारियों के हाथों को अपने हाथों से स्पर्श किया और वसिष्ठ जी की आज्ञा से अग्नि की, वेदी की और राजा दशरथ की और महात्मा ऋषियों की पत्नियों के साथ प्रदक्षिणा की और विधिपूर्वक विवाह के कार्य पूरे किये। तत्पश्चात् वे रघुनन्दन पत्नियों के साथ अपने निवास स्थान पर चले आये। राजा भी अपने बान्धव और ऋषियों के साथ उन्हें देखते हुए उनके पीछे-पीछे गये।

चौबीसवाँ सर्ग

विश्वामित्र का अपने आश्रम को प्रस्थान। राजा जनक का राजा दशरथ को विदा करना। मार्ग में परशुराम जी द्वारा श्रीराम की शक्ति परीक्षा।

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः।
आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम्।। १।।
विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम्।
आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम्।। २।।

इसके पश्चात रात्रि के व्यतीत होने पर महामुनि विश्वामित्र उन दोनों राजाओं से विदा लेकर उत्तर पर्वत पर चले गये। उनके जाने पर राजा दशरथ भी मिथिलापति विदेह राज से विदा लेकर जल्दी ही अपने नगर की तरफ चल दिये।

ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम्।
भार्गवं जामदग्न्येयं राजा राजविमर्दनम्।। ३।।
तं दृष्ट्वा भीमसंकाशं ज्वलन्तमिव पावकम्।
वसिष्ठप्रमुखा विप्रा जपहोमपरायणाः।। ४।।
संगता मुनयः सर्वे संजजल्पुरथो मिथः।। ५।।

उस समय मार्ग में राजा दशस्थ ने भयानक, आकृति वाले, जटाओं के समूह को धारण किये हुए, राजाओं का विनाश करने वाले, कन्धे पर परशु और विद्युत के समान दीप्तिवान धनुष को धारण किये हुए, भृगुवंशी जमदग्नि के पुत्र परशुराम को देखा। उन अग्नि के समान प्रज्वलित और भयानक आकृति वाले परशुराम जी को देखकर जप और हवन परायण वसिष्ठ और ब्राह्मण, एकत्र होकर परस्पर कहने लगे कि –

कच्चित् पितृवधामर्षी क्षत्रं नोत्सादयिष्यति।
पूर्वं क्षत्रवधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः।। ६।।
क्षत्रस्योत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम्।
एवमुक्त्वार्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम्।। ७।।
ऋषयो राम रामेति मधुरं वाक्यमब्रुवन्।
प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान्।। ८।।
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत।

अपने पिता के वध से क्रुद्ध ये क्षत्रियों का संहार तो नहीं कर डालेंगे? पहले क्षत्रियों का वध करके इन्होंने अपना क्रोध उतार लिया है। अब पुनः तो इन्हें क्षत्रियों का विनाश वास्तव में नहीं करना चाहिये। ऐसा कहकर उन भयानक आकृति वाले भार्गव का उन ऋषियों ने राम राम कहकर मधुर वाणी में स्वागत किया और उन्हें अर्घ्य दिया। उन प्रतापी जामदग्न्य राम ने ऋषियों की पूजा को स्वीकार किया और दशरथ के पुत्र राम से यह कहा।

राम दाशरथे वीर वीर्यं ये श्रूयतेऽद्भुतम्।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम्।। ९।।
तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा।
तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्यापरं शुभम्।। १०।।

हे दशरथ के पुत्र वीर राम! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है ऐसा सुना गया है। तुम्हारा धनुष को तोड़ने का कार्य सम्पूर्ण रूप से मैंने सुन लिया है। उस धनुष के भेदन रूपी उस अद्भुत और अचिन्तनीय कार्य के विषय में सुनकर मैं एक दूसरे उत्तम धनुष को लेकर आया हूँ।

तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च।। ११।।

तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव।। १२।।

वह यह वैसा ही भयानक परशुराम का विशाल धनुष है। तुम इस पर बाण चढ़ाओ और अपने बल को दिखाओ। इस धनुष के भी चढ़ाने में तुम्हारे बल को देखकर मैं तुम्हारे पराक्रम के लिये स्पृहणीय द्वन्द्व युद्ध को प्रदान करूँगा।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राजा दशरथस्तदा।
विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।। १३।।
क्षत्ररोषात् प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपाः।
बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि।। १४।।
भार्गवाणां कुले जातः स्वाधयाव्रतशालिनाम्।
सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं प्रक्षिप्तवानसि।। १५।।

उनकी उस बात को सुनकर तब राजा दशरथ उदास मुख से दीनता के साथ हाथ जोड़कर बोले कि क्षत्रियों पर क्रोध करके आप शान्त हो गए हैं। आप ब्राह्मण हैं और महातपस्वी हैं। मेरे पुत्र अभी बालक हैं। आप उन्हें अभय प्रदान कीजिये। आप स्वाध्याय और व्रत का पालन करने वाले भार्गवों के कुल में उत्पन्न हुए हैं। आपने इन्द्र के समक्ष प्रतिज्ञा करके शस्त्रों का भी त्याग कर दिया है।

मम सर्वविनाशाय सम्प्राप्तस्त्वं महामुने।
न चैकस्मिन् हते रामे सर्वे जीवामहे वयम्।। १६।।
ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्न्यः प्रतापवान्।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत।। १७।।

हे महामुने! मेरा सर्वनाश करने के लिये आप आये हैं। क्योंकि एक राम के मारे जाने पर ही हम सब जीवित नहीं रहेंगे। दशरथ के ऐसा कहते हुए भी उनकी बात का अनादर करके प्रतापी परशुराम ने राम से बातचीत जारी रखी।

श्रुत्वा तु जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा।
गौरवाद्यन्त्रितकथः पितू राममथाब्रवीत्।। १८।।
कृतवानसि यत् कर्म श्रुतवानस्मि भार्गव।
अनुरुध्यामहे ब्रह्मन् पितुरानृण्यमास्थितः।। १९।।
वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम्।। २०।।

तब दशरथ के पुत्र राम ने जो पिता के गौरव के कारण कुछ बोल नहीं रहे थे, परशुरामजी की उस बात को सुनकर उनसे कहा कि हे भार्गव! आपने जो कार्य किया है उसके विषय में मैंने सुन लिया है, क्योंकि आप पिता के ऋण से उऋण होना चाहते थे अतः हम उस कार्य का अनुमोदन करते हैं। किन्तु हे भार्गव! आप मुझे तेजहीन के समान दुर्बल मानकर मेरा तिरस्कार कर रहे हैं तो मेरे तेज और पराक्रम को आप क्षत्रिय धर्म के साथ देखिये।

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम्।
शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः।। २१।।
आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह।। २२।।
जडीकृते तदा लोके रामे वरधनुर्धरे।
निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुदैक्षत।। २३।।
स हतान् दृश्य रामेण स्वाँल्लोकांस्तपसार्जितान्।
जामदग्न्यो जगामाशु महेन्द्रं पर्वतोत्तमम्।। २४।।

ऐसा कहकर रघुवंशी श्री राम ने क्रुद्ध होकर परशुराम के उस श्रेष्ठ धनुष और बाण को थोड़े ही पराक्रम से अर्थात सरलता से ग्रहण कर लिया और उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उसपर बाण को रख दिया। तब राम के उस महान कार्य को देख कर सब लोग आश्चर्य से हक्के बक्के हो गये और परशुराम भी तेजहीन होकर राम की तरफ देखने लगे। तब अपने परिश्रम द्वारा उपार्जित अपनी कीर्ति को श्रीराम के द्वारा नष्ट होती हुई देखकर परशुराम जी शीघ्र ही श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर चले गये।

पच्चीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का पुत्रों और वधुओं के साथ अयोध्या में प्रवेश। शत्रुघ्न सहित भरत का मामा के यहाँ जाना। श्रीराम के बर्ताव से सबका सन्तोष तथा सीता और श्रीराम का पारस्परिक प्रेम।

अभिवाद्य ततो रामो वसिष्ठप्रमुखानृषीन्।
पितरं विकलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः।। १।।
जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी।
अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता।। २।।

परशुराम जी के चले जाने पर राम ने वसिष्ठ आदि ऋषियों को प्रणाम करके अपने पिता जी को व्याकुल देखकर उनसे कहा कि पिता जी जमदग्नि के पुत्र परशुराम चले गये हैं, अब आपके स्वामित्व में सुरक्षित यह चतुरंगिणी सेना अयोध्या की तरफ प्रस्थान करे।

रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः सुतम्।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य मूर्ध्न्यूपाघ्राय राघवम्।। ३।।
गतो राम इति श्रुत्वा हृष्टः प्रमुदितो नृपः।
पुनर्जातं तदा मेने पुत्रमात्मानमेव च।। ४।।
चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम्।
पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्घुष्टनिनादिताम्।। ५।।

श्रीराम के इन वचनों को कि परशुराम चले गये, सुनकर राजा दशरथ ने उत्यन्त हर्षित होकर राघव श्रीराम को हाथों से खींचकर छाती से लगा लिया। उन्होंने उनके सिर को सूँघकर अपने और पुत्र के पुनर्जन्म को हुआ माना। उन्होंने सेना को चलने की आज्ञा दी और वे सब जल्दी ही नगर में पहुँच गये। उस समय अयोध्या नगरी में सब तरफ ध्वजों से युक्त पताकाएँ सौन्दर्य को बढ़ा रहीं थीं और वाद्यों की ध्वनि से वह गुंजित हो रही थी।

सिक्तराजपथारम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम्।
राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलपाणिभिः।। ६।।
सम्पूर्णां प्राविशद् राजा जनौघैः समलंकृताम्।
पौरैः प्रत्युद्गतो दूरे द्विजैश्च पुरवासिभिः।। ७।।
पुत्रैरनुगतः श्रीमाञ्श्रीमद्भिश्च महायशाः।
प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम्।। ८।।

वहाँ उस समय राजमार्गों पर छिड़काव करके फूल बिखेरे हुए थे, जिससे वह नगरी सुन्दर लग रही थी। जिन-जिन मार्गों में राजा ने प्रवेश करना था उन-उन मार्गों पर मंगल पदार्थ हाथों में लिये हुए पुरवासी खड़े हुए थे। वे सारे मार्ग नागरिकों से भरे हुए थे। पुरवासियों ने ब्राह्मणों के साथ आगे बढ़कर उनकी आगवानी की। वे श्रीमान महायशस्वी राजा अपने कान्तिमान पुत्रों के साथ अपने हिमालय के समान प्रिय राजमहल में प्रविष्ट हुए।

ननन्द स्वजनै राजा गृहे कामैः सुपूजितः।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा।। ९।।
वधूप्रतिग्रहे युक्ता याश्चन्या राजयोषितः।

अपने घर में विभिन्न कामनामय कार्यों से सन्तुष्ट होते हुए राजा अपने प्रियजनों के साथ बड़े आनन्दित हुए। कौशल्या, सुमित्रा और सुन्दर कमर वाली कैकेयी तथा और दूसरी राजमहल की स्त्रियाँ वधुओं के स्वागत में जुट गयीं।

ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम्।। १०।।
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः।
मङ्गलालापनैर्होमैः शोभिताः क्षौमवाससः।। ११।।

तब राजमहल की स्त्रियों ने महान सौभाग्यवती सीता को और यशस्विनी उर्मिला को और कुशध्वज की दोनों पुत्रियों को सवारियों से उतारा। वे सब रेशमी साड़ियों में और मंगलगीतों से तथा होम कार्यों से सुशोभित हो रहीं थीं।

अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा।
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिर्मुदिता रहः।। १२।।
कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः ससुहृज्जनाः।
शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः।। १३।।
कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम्।
भरतं कैकयीपुत्रमब्रवीद् रघुनन्दनः।। १४।।

तब उन सब राजकुमारियों ने अपने पूजनीयों का अभिवादन किया। वे सब प्रसन्नता के साथ अपने पतियों सहित आनन्द से एकान्त में समय व्यतीत करने लगीं। वे चारों पुरुषश्रेष्ठ विवाहित होकर, अस्त्र विद्या में निपुण होकर धन धान्य और मित्रों के साथ पिता की सेवा करते हुए रह रहे थे। कुछ दिनों पश्चात् रघुनन्दन राजा दशरथ ने कैकेयी पुत्र भरत से कहा।

अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक।
त्वां नेतुमागतो वीरो युधाजिन्मातुलस्तव।। १५।।
श्रुत्वा दशरथस्यैतद् भरतः कैकयीसुतः।
गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा।। १६।।
आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम्।
मातॄंश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्नसहितो ययौ।। १७।।

हे पुत्र! ये केकयराज के पुत्र तुम्हारे मामा वीर युधाजित्, तुम्हे लेने के लिये आए हुए हैं। दशरथ जी की यह बात सुनकर कैकेयी पुत्र भरत ने तब शत्रुघ्न के साथ जाने की तैयारी की। वह शूरवीर नरश्रेष्ठ भरत, पिता से, सरलतापूर्वक कार्यों को सम्पन्न करने वाले श्रीराम से, और माताओं से पूछकर शत्रुघ्न के साथ चले गये।

युधाजित् प्राप्य भरतं सशत्रुघ्नं प्रहर्षितः।
स्वपुरं प्राविशद् वीरः पिता तस्य तुतोष ह।। १८।।

गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा।। १९।।
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः।
चकार रामः सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च।। २०।।

वीर युधाजित् भरत को शत्रुघ्न के साथ लेकर बड़े हर्षित हुए। उन्होंने उनके साथ अपने नगर में प्रवेश किया, जिससे उनके पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई। भरत जी के जाने पर श्रीराम और महाबली लक्ष्मण, अपने देवता के समान पिता की सदा सेवा किया करते थे। पिता की आज्ञा को मानकर श्रीराम पुरवासियों के कल्याणकारी और प्रिय कार्यों को सब प्रकार से किया करते थे।

मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः।
गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत।। २१।।

एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा।
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः।। २२।।
रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून्।
मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः।। २३।।

वे अपने को संयम में रखते हुए माताओं के लिये उनके कार्य किया करते और गुरूओं के महान कार्यों को समय समय पर पूरा करने के लिये ध्यान रखते थे। श्रीराम के अच्छे स्वभाव और व्यवहार से राजा दशरथ, ब्राह्मण, व्यापारी लोग और सारे देशवासी प्रसन्न रहते थे। उन मनस्वी राम का मन सीता में ही लगा रहता था। सीता के हृदय में भी राम ही सदा विद्यमान रहते थे। इस प्रकार राम ने सीता के साथ अनेक ऋतुओं तक विहार किया।

अयोध्याकाण्ड

पहला सर्ग

श्री राम के सद्‌गुणों का वर्णन। राजा दशरथ का श्रीराम को युवराज बनाने का विचार।

सर्व एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः।
स्वशरीराद् विनिर्वृत्ताश्चत्वार इव बाहवः।। १।।
तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः।। २।।

राजा दशरथ के अपने चारों पुरूष श्रेष्ठ पुत्र अपने शरीर से निकली चार भुजाओं के समान प्रिय थे। उनमें भी महातेजस्वी राम सभी में अधिक गुणवान होने के कारण ऐसे अधिक प्रिय थे, जैसे सभी प्राणियों को परमात्मा प्रिय है।

स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः।। ३।।
स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते।। ४।।

वे सौन्दर्यवान्, वीर्यवान्, द्वेष न करने वाले, सारी पृथ्वी पर अनुपम, और गुणों में राजा दशरथ के समान योग्यपुत्र थे। वह सदा शान्त चित्त रहते थे, सबसे मधुरतापूर्वक बोलते थे। कठोर वचन कहे जाने पर भी उत्तर नहीं देते थे।

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया।। ५।।
शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः।
कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि।। ६।।

कभी उपकार किये जाने पर वे उसके एक उपकार से ही सन्तुष्ट रहते थे। आत्मवान होने के कारण किये हुए सौ अपकारों को भी याद नहीं रखते थे। अस्त्र शस्त्रों के अभ्यास के बीच में भी वे शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध सज्जनों से बात करने का समय निकाल लेते थे।

बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।
वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः।। ७।।
न चानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजकः।
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते।। ८।।

वे बुद्धिमान थे, सबसे मीठा और प्यारा बोलते थे। दूसरे के बोलने से पहले स्वयं ही बोलते थे। वे पराक्रमी थे, पर अपने महान पराक्रम पर उन्हें कोई अभिमान नहीं था। वे कभी असत्य नहीं बोलते थे। वृद्धों की पूजा करते थे। वे प्रजा से प्रेम करते थे और प्रजा भी उनसे प्रेम करती थी।

सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः।। ९।।
नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः।
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा।। १०।।

वे दयालु और क्रोध को जीतने वाले तथा ब्राह्मणों की पूजा करने वाले थे। वे दीनों पर दया करते थे। उन्होने इन्द्रियों को सदा वश में किया हुआ था। वे धर्म को जानने वाले और पवित्र थे। उनकी अमंगलमय कार्यों में तथा शास्त्रविरुद्ध बातों में रुचि नहीं थी। वे अपने पक्ष के समर्थन में बृहस्पति के समान युक्तियाँ देते थे।

अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित्।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः।। ११।।
स तु श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः।
बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः।। १२।।
सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत् साङ्गवेदवित्।

वे स्वस्थ और सुन्दर शरीर वाले तरुण और वाक्‌चतुर थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि ~~संसार के सारे कि~~ संसार के सारे पुरुषों के तत्वों को समझने वाले एक साधु पुरुष के रूप में उन्हें उत्पन्न किया गया है। वे राजकुमार श्रेष्ठ गुणों से युक्त थे और प्रजाओं के बाहर विचरने वाले दूसरे प्राण के समान प्यारे थे। वे सारी विद्याओं में चतुर और अंगों सहित सारे वेदों के यथार्थ वेत्ता थे।

कल्याणाभिजनः साधुरदीनः सत्यवागृजुः।
वृद्धैरभिविनीतश्च द्विजैर्धर्मार्थदर्शिभिः।। १३।।

धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।। १४।।
लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः।

वे कल्याण की भूमि, सज्जन, दीनता से रहित, सत्यवादी और कोमल स्वभाव के थे। धर्म और अर्थ को जानने वाले वृद्ध ब्राह्मणों द्वारा उन्हें शिक्षा दी गई थी। वे धर्म, अर्थ और काम रहस्य को जानने वाले, स्मरणशक्ति से युक्त प्रतिभाशाली लौकिक समयोचित कर्त्तव्य व्यवहार में समर्थ और कुशल थे।

निभृतः संवृताकारो गुप्तमन्त्रः सहायवान्।
अमोघक्रोधहर्षश्च त्यागसंयमकालवित्।। १५।।
दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचः।। १६।।
निस्तन्द्रीरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित्।

वे दृढ़ संकल्पशील, अपनी मंत्रणा और मनोभावों को छिपाने वाले और सहायकों से युक्त थे। वे त्याग और संग्रह के समय को समझते थे। उनका हर्ष और क्रोध दोनों व्यर्थ नहीं होते थे। उनकी बड़ों के प्रति भक्ति दृढ़ थी। वे स्थितप्रज्ञ, असत् पदार्थों को त्यागने वाले, दुर्वचनों से रहित बिना आलस्य और प्रमाद के तथा अपने और पराये दोषों के ज्ञाता थे।

शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च पुरुषान्तरकोविदः।
यः प्रग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायं विचक्षणः।। १७।।
आयकर्मण्युपायज्ञः सदृष्टव्ययकर्मवित्।। १८।।

वे शास्त्रों के ज्ञाता, कृतज्ञ और पुरुषों के मनोभावों को जानने वाले थे। वे यथायोग्य अनुग्रह करने और निग्रह करने में चतुर थे। वे धन के आय तथा व्यय के कार्यों को अच्छी तरह समझते थे।

वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित्।
आरोहे विनये चैव, युक्तो वारणवाजिनाम्।। १९।।
धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसम्मतः।
अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः।। २०।।

वे ललित कलाओं के विभाग सहित जानकार थे। हाथियों और घोड़ों की सवारी तथा उन्हें वश में करने में भी वे कुशल थे। वे संसार के सभी धनुर्वेदज्ञों में श्रेष्ठ और सम्मानित अतिरथी थे। सेनाओं के संचालन, शत्रुओं पर आक्रमण और प्रहार करने में वे विशारद थे।

नावज्ञेयश्च भूतानां न च कालवशानुगः।
एवं श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः।। २१।।
सम्मतस्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये चापि शचीपतेः।। २२।।

न तो वे समय के पीछे चलते थे और न किसी प्राणी के प्रति उनके मन में अवज्ञा का भाव था। वे पृथ्वी के समान क्षमाशील, बुद्धि में बृहस्पति के समान, पराक्रम में इन्द्र के समान और समस्त प्राणियों के लिये आदरणीय थे।

तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितुः।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः।। २३।।
एतैस्तु बहुभिर्युक्तं गुणैरनुपमैः सुतम्।
दृष्ट्वा दशरथो राजा चक्रे चिन्तां परंतपः।। २४।।

इस प्रकार सारी प्रजा को अच्छे लगने वाले और पिता की प्रीति उत्पादक गुणों के कारण रामचन्द्र जी अपनी किरणों से सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार बहुत से अनुपम गुणों से युक्त अपने पुत्र को देखकर परंतप राजा दशरथ उनके विषय में चिन्तन करने लगे।

वृद्धिकामो हि लोकस्य सर्वभूतानुकम्पकः।
मत्तः प्रियतरो लोके पर्जन्य इव वृष्टिमान्।। २५।।
इत्येवं विविधैस्तैस्तैरन्यपार्थिवदुर्लभैः।
शिष्टैरपरिमेयैश्च लोके लोकोत्तरैर्गुणैः।। २६।।
तं समीक्ष्य तदा राजा युक्तं समुदितैर्गुणैः।
निश्चित्य सचिवैः सार्धं यौवराज्यममन्यत।। २७।।

वे यह सोचने लगे कि श्रीराम सब प्राणियों पर दया रखते हैं और वर्षा करने वाले बादल के समान संसार में मुझसे भी ज्यादा प्रिय हो गये हैं। इस प्रकार उन्हें उन अनेक प्रकार के दूसरे राजाओं में दुर्लभ, शिष्ट, अगणित लौकिक और लोकोत्तर उच्च गुणों से युक्त देखकर राजा ने मंत्रियों के साथ उनके यौवराज्य के लिये निश्चय किया।

दूसरा सर्ग

राजा दशरथ द्वारा श्रीराम के यौवराज्याभिषेक का प्रस्ताव तथा सभासदों द्वारा उक्त प्रस्ताव का समर्थन तथा श्रीराम के गुणों की प्रशंसा।

ततः परिषदं सर्वामामन्त्र्य वसुधाधिपः।
हितमुद्धर्षणं चैवमुवाच प्रथितं वचः।। १।।
दुन्दुभिस्वरकल्पेन गम्भीरेणानुनादिना।
स्वरेण महता राजा जीमूत इव नादयन्।। २।।

तब राजा ने सारी राज्यपरिषद को बुलाकर दुन्दुभि के समान गूंजती हुई गम्भीर और ऊँची आवाज से, मेघों के समान घोष करते हुए इस कल्याणकारी और आनन्द बढ़ाने वाली स्पष्ट बात को कहा।

विदितं भवतामेतद् यथा मे राज्यमुत्तमम्।
पूर्वकैर्मम राजेन्द्रैः सुतवत् परिपालितम्।। ३।।
मयाप्याचरितं पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता।
प्रजा नित्यमनिद्रेण यथाशक्त्यभिरक्षिताः।। ४।।

आप सब यह जानते ही है कि मुझ से पहले राजाओं ने इस उत्तम राज्य का किस प्रकार पुत्र की तरह पालन किया था। पूर्वजों द्वारा चले हुए रास्ते पर चलते हुए मैंने भी सदा जागरूक रहकर यथाशक्ति प्रजाओं की रक्षा की है।

इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरता हितम्।
पाण्डुरस्यातपत्रस्य च्छायायां जरितं मया।। ५।।
राजप्रभावजुष्टां च दुर्वहामजितेन्द्रियैः।
परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्य गुर्वीं धर्मधुरं वहन्।। ६।।

सारे संसार की भलाई करते हुए, श्वेत राजछत्र की छाया में मैंने इस शरीर को बूढ़ा किया है। जिसमें राजाओं के शौर्य आदि गुणों का होना अत्यावश्यक है, जिसको अजितेन्द्रिय पुरूष वहन नहीं कर सकते, ऐसे इस जन संरक्षण के धर्मपूर्वक भारी उत्तरदायित्व को वहन करते हुए अब मैं थक गया हूँ।

सोऽहं विश्राममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते।
संनिकृष्टानिमान् सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान्।। ७।।
अनुजातो हि मां सर्वैर्गुणैः श्रेष्ठो ममात्मजः।
पुरन्दरसमो वीर्ये रामः परपुरंजयः।। ८।।

इसलिये अपने पास बैठे हुए इन सारे द्विज श्रेष्ठों की सलाह लेकर, अपने पुत्र श्रीराम को प्रजा की भलाई में नियुक्त करके मैं विश्राम करना चाहता हूँ। मेरे श्रेष्ठ पुत्र राम सब गुणों में मुझसे श्रेष्ठ हैं। ये शत्रु के नगर पर विजय पाने वाले शक्ति में इन्द्र के समान हैं।

तं चन्द्रमिव पुष्येण युक्तं धर्मभृतां वरम्।
यौवराज्ये नियोक्तास्मि प्रातः पुरुषपुङ्गवम्।। ९।।
अनुरूपः स वो नाथो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः।
त्रैलोक्यमपि नाथेन येन स्यान्नाथवत्तरम्।। १०।।

कल प्रातः जिस प्रकार चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र से युक्त होगा, उसी प्रकार मैं धार्मिकों में श्रेष्ठ इन पुरुष श्रेष्ठ को यौवराज्य के पद पर बैठा दूँगा। ऐश्वर्यवान और लक्ष्मण के बड़े भाई ये राम तुम्हारे योग्य स्वामी बनेंगे। ये इतने योग्य हैं कि सारा संसार भी इन जैसे स्वामी को पाकर कृतार्थ हो सकता है।

अनेन श्रेयसा सद्यः संयोक्ष्येऽहमिमां महीम्।
गतक्लेशो भविष्यामि सुते तस्मिन् निवेश्य वै।। ११।।
यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्।। १२।।

मैं इस राज्य को जल्दी ही कल्याण से युक्त करूँगा। अपने पुत्र पर राज्य भार को रखकर क्लेशों से रहित हो जाऊँगा। यदि मेरा यह प्रस्ताव आप लोगों के विचारों के अनुसार है, मैंने ठीक विचार किया है तो आप लोग मुझे अनुमति दीजिये अथवा बताइये कि मैं क्या करूँ।

यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद् विचिन्त्यताम्।
अन्या मध्यस्थचिन्ता तु विमर्दाभ्यधिकोदया।। १३।।
तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः।
ब्राह्मणा बलमुख्याश्च पौरजानपदैः सह।। १४।।
समेत्य ते मन्त्रयितुं समतागतबुद्धयः।
ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम्।। १५।।

यद्यपि यह श्रीराम के यौवराज्याभिषेक का विचार मेरे लिये बड़ा प्रीतियुक्त है, पर यदि कोई दूसरा रास्ता भी अधिक अच्छा हो तो आप सोचियें, क्योंकि मध्यस्थ लोगों का जो दूसरा विचार होता है वह सोच विचार से युक्त होने के कारण अधिक अभ्युदय करने वाला होता है। तब उस धर्म और अर्थ को जानने वाले राजा के विचार को पूरी तरह से समझ कर, ब्राह्मण और सेना प्रमुख

नगर और देश के प्रधान व्यक्तियों के साथ विचार करने के लिये बैठे और एक समान निश्चय पर पहुँचकर मन से सब कुछ समझ कर बूढ़े राजा दशरथ से बोले।

दिव्यैर्गुणैः शक्रसमो रामः सत्यपराक्रमः।
इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशाम्पते।। १६।।
रामः सत्पुरुषो लोके सत्यः सत्यपरायणः।
साक्षाद् रामाद् विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह।। १७।।

हे राजा। श्रीराम अपने दिव्य गुणों में इन्द्र के समान हैं और सत्य पराक्रमी हैं। इक्ष्वाकुकुल में भी वे सबसे श्रेष्ठ हैं। इस संसार में सत्यवादी और सत्य पर चलने वाले राम ऐसे सत्पुरूष हैं, मानो धर्म का अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ इन्हीं में से अवतरण हुआ है।

प्रजा सुखत्वे चन्द्रस्य, वसुधायाः क्षमागुणैः।
धर्मज्ञः सत्यसंघश्च शीलवाननसूयकः।। १८।।
शान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः।

ये प्रजा के सुख देने में चन्द्रमा के समान और क्षमा करने में पृथ्वी के समान हैं। ये धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, शीलवान्, द्वेष न करने वाले शान्त, सान्त्वनायुक्त, मृदुभाषी और जितेन्द्रिय हैं।

बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता।
तेनास्येहातुला कीर्तिर्यशस्तेजश्च वर्धते।। १९।।
देवासुर मनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः।
सम्यग् विद्याव्रतस्नातो यथावत् साङ्गवेदवित्।। २०।।
गान्धर्वे च भुवि श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः।। २१।।
कल्याणाभिजनः साधुरदीनात्मा महामतिः।

वे सदा विद्वानों, वृद्धों और ब्राह्मणों की संगति किये रहते हैं। इसलिये इनकी कीर्ति अनुपम है। इनका यश और तेज बढ़ता रहता है। देव, मनुष्यों और असुरों के सारे अस्त्रों का इन्हें ज्ञान है। इन्होंने सारी विद्याओं में स्नान किया हुआ है। वेदों का भी इन्होंने अंग सहित अध्ययन किया है। ये भरत के बड़े भाई गान विद्या में भी संसार में श्रेष्ठ हैं। ये कल्याणकारी भूमि, साधु स्वभाव, उदारहृदय और महामति हैं।

द्विजैरभिविनीतश्च श्रेष्ठैर्धर्मार्थनैपुणैः।
यदा व्रजति संग्रामं ग्रामार्थे नगरस्य वा।। २२।।
गत्वा सौमित्रिसहितो नाविजित्य निवर्तते।
संग्रामात् पुनरागत्य कुञ्जरेण रथेन वा।। २३।।
पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति।। २४।।
पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च।

उन्हें धर्म और अर्थ को जानने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने शिक्षा दी है। जब वे लक्ष्मण के साथ ग्राम या नगर की रक्षा के लिये जाते हैं तब बिना जीते नहीं लौटते। हाथी या रथ के द्वारा लौटते हैं। वे पुरवासियों से अपने बान्धवों की भाँति सदा उनके पुत्रों, पत्नियों सेवकों, शिष्यों और अग्निहोत्र की कुशलता पूछते रहते हैं।

निखिलेनानुपूर्व्या च पिता पुत्रानिवौरसान्।। २५।।
शुश्रूषन्ते च वः शिष्याः कच्चिद् वर्मसु दंशिताः।
इति वः पुरुषव्याघ्रः सदा रामोऽभिभाषते।। २६।।
व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति।। २७।।

जैसे पिता अपने सगे पुत्रों का कुशल मंगल पूछता है, पुरूषसिंह राम वैसे ही प्रजाजनों के सारे कुशल समाचार क्रम पूर्वक पूछते हैं। वे ब्राह्मणों से पूछते हैं कि क्या आपके शिष्य आपकी सेवा करते हैं? क्षत्रियों से पूछते हैं कि क्या आपके कवच सुरक्षित हैं? लोगों के संकट में वे बहुत दुःखी होते हैं और उनकी खुशी में वे पिता के समान प्रसन्न होते हैं।

रामो लोकाभिरामोऽयं शौर्यवीर्यपराक्रमैः।
प्रजापालनसंयुक्तो न रागोपहतेन्द्रियः।। २८।।
हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति।
युनक्त्यर्थैः प्रहृष्टश्च तमसौ यत्र तुष्यति।। २९।।
दान्तैः सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैर्नृणाम्।
गुणैर्विरोचते रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः।। ३०।।
राममिन्दीवरश्यामं सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम्।। ३१।।

लोगों को अच्छे लगने वाले ये राम अपने शौर्य बल और पराक्रम से प्रजा के पालन में लगे रहते हैं, कभी भी इन्द्रियों को रागों से दूषित नहीं होने देते। जो वध करने योग्य हैं उनका ये नियमपूर्वक वध कर देते हैं। जो वध करने योग्य नहीं हैं, उन पर ये क्रोध नहीं करते। जिस पर ये प्रसन्न हो जाते हैं उसे ये धन से भर देते हैं। अपने शोभनीय गुणों के द्वारा जो लोगों में प्रेम को बढ़ाने वाले हैं और प्रजाओं को अच्छे लगने वाले हैं, श्रीराम ऐसे ही सुशोभित हो रहे हैं, जैसे तेजस्वी सूर्य अपनी किरणों से शोभा पाते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! हम आपके सब शत्रुओं का नाश करने वाले, नील कमल के समान श्यामवर्ण पुत्र श्री राम को यौवराज्य के पद पर विराजमान देखना चाहते हैं।

तीसरा सर्ग

राजा दशरथ का वसिष्ठ और वामदेव जी को श्रीराम के यौराज्याभिषेक की तैयारी के लिये कहना। राजा की आज्ञा से सुमन्त्र का श्रीराम को राजसभा में बुला लाना और राजा का उन्हें हितकर राजनीति की बातें बताना।

तेषामञ्जलिपद्मानि प्रगृहीतानि सर्वशः।
प्रतिगृह्याब्रवीद् राजा तेभ्यः प्रियहितं वचः।। १।।
अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम।
यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ।। २।।
इति प्रत्यर्चितान् राजा ब्राह्मणानिदमब्रवीत्।
वसिष्ठं वामदेवं च तेषामेवोपशृण्वताम्।। ३।।

राजा ने उनकी बात के समर्थन में प्रजा के लोगों ने जो कमल पुष्प के समान अपनी अंजलियों को सिर से लगाया हुआ था, उन सबको स्वीकार किया और उनसे यह हितकारी और प्रिय वचन कहे कि आप लोग जो मेरे ज्येष्ठ प्रिय पुत्र को युवराज बना हुआ देखना चाहते हैं, इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरा प्रभाव वास्तव में अधिक है। इस प्रकार सम्मानित करके राजा ने उनके सुनते हुए ही वसिष्ठ और वामदेव और दूसरे ब्राह्मणों को कहा कि।

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम्।। ४।।
राज्ञस्तूपरते वाक्ये जनघोषो महानभूत्।
शनैस्तस्मिन् प्रशान्ते च जनघोषे जनाधिपः।। ५।।
वसिष्ठं मुनिशार्दूलं राजा वचनमब्रवीत्।

यह चैत्र का मास बड़ा सुन्दर और पवित्र है, इस समय बगीचों में फूल खिले हुए है। आप लोग राम के यौराज्याभिषेक के लिये तैयारी कीजिये। राजा के चुप होते ही जनता ने महान हर्षध्वनि की। धीरे-धीरे जब यह हर्ष ध्वनि शान्त हो गई तब राजा ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी से यह कहा कि–

अभिषेकाय रामस्य यत् कर्म सपरिच्छदम्।। ६।।
तदद्य भगवन् सर्वमाज्ञापयितुमर्हसि।
तच्छ्रुत्वा भूमिपालस्य वसिष्ठो मुनिसत्तमः।। ७।।
आदिदेशाग्रतो राज्ञः स्थितान् युक्तान् कृताञ्जलीन्।
उदिते विमले सूर्ये पुण्ये चाभ्यागतेऽहनि।। ८।।
लग्ने कर्कटके प्राप्ते जन्म रामस्य च स्थिते।
सूर्येऽभ्युदितमात्रे श्वो भविता स्वस्तिवाचनम्।। ९।।
ब्राह्मणाश्च निमन्त्र्यन्तां कल्प्यन्तामासनानि च।

राम के अभिषेक के लिये जिन-जिन भी सांगोपांग कार्यों की आवश्यकता है, उन सबके लिये आप आज्ञा दीजिये। महाराज की यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने राजा के आगे हाथ जोड़कर खड़े हुए सेवकों को यह आज्ञा दी कि कल जब निर्मल सूर्य उदय होगा, दिन में पुष्य नक्षत्र आ जायेगा, कर्क लग्न प्राप्त होगा तथा राम का जन्म समय उपस्थित होगा तब सूर्योदय होते ही स्वस्तिवाचन होगा, उसके लिये ब्राह्मणों को आमंत्रित करो और आसनों का प्रबन्ध करो।

दीर्घासिबद्धगोधाश्च संनद्धा मृष्टवाससः।। १०।।
महाराजाङ्गनं शूराः प्रविशन्तु महोदयम्।
एवं व्यादिश्य विप्रौ तु क्रियास्तत्र विनिष्ठितौ।। ११।।
चक्रतुश्चैव यच्छेषं पार्थिवाय निवेद्य च।
कृतमित्येव चाब्रूतामभिगम्य जगत्पतिम्।। १२।।
यथोक्तवचनं प्रीतो हर्षयुक्तौ द्विजोत्तमौ।

महाराज के महान अभ्युदयशाली प्राँगण में स्वच्छ वस्त्र पहने, लम्बी तलवारें लिये और गोधाचर्म के दस्ताने पहने शूरवीर सावधान अवस्था में प्रवेश करें। ऐसा आदेश देकर उन दोनों ब्राह्मणों वसिष्ठ और वामदेव ने पुरोहितों के लिये जो कार्य था उसे स्वयं ही किया और जो शेष कार्य बचा था, उसे भी राजा से कहकर उन्होंने कर लिया। उसके बाद वे दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण हर्ष और प्रेम में भरे हुए महाराज से जाकर बोले कि जैसा आपने कहा था वैसा कर दिया गया है।

ततः सुमन्त्रं द्युतिमान् राजा वचनमब्रवीत्।। १३।।
रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति।
स तथेति प्रतिज्ञाय सुमन्त्रो राजशासनात्।। १४।।
रामं तत्रानयांचक्रे रथेन रथिनां वरम्।

तब तेजस्वी राजा ने सुमन्त्र से कहा मनस्वी राम को यहाँ जल्दी बुला लाओ। तब सुमन्त्र जो आज्ञा ऐसा कहकर राजा के आदेश से रथियों में श्रेष्ठ उन श्रीराम को रथ के द्वारा ले आए।

न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः।। १५।।
अवतार्य सुमन्त्रस्तु राघवं स्यन्दतोत्तमात्।

पितुः समीपं गच्छन्तं प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात्॥ १६॥
स तं कैलासशृङ्गाभं प्रासादं रघुनन्दनः।
आरुरोह नृपं द्रष्टुं सहसा तेन राघवः॥ १७॥
स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिके।
नाम स्वं श्रावयन् रामो ववन्दे चरणौ पितुः॥ १८॥

आते हुए श्रीराम को देखते हुए राजा की तृप्ति नहीं हो रही थी। सुमन्त्र ने रघुनन्दन को रथ से उतारा। उनके पिता जी के समीप जाते हुए के पीछे-पीछे सुमन्त्र भी हाथ जोड़कर चले। वह राजप्रसाद कैलाशपर्वत की चोटी के समान ऊँचा था। रघुनन्दन श्रीराम राजा के दर्शन के लिये उस पर सहसा चढ़ गये। वे हाथ जोड़े हुए पिता के समीप गये और अपना नाम सुनाते हुए, उन्होंने झुककर पिता के चरणों में प्रणाम किया।

तं दृष्ट्वा प्रणतं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं नृपः।
गृह्याञ्जलौ समाकृष्य सस्वजे प्रियमात्मजम्॥ १९॥
तस्मै चाभ्युद्यतं सम्यङ्मणिकाञ्चनभूषितम्।
दिदेश राजा रुचिरं रामाय परमासनम्॥ २०॥
तथाऽऽसनवरं प्राप्य व्यदीपयत राघवः।
स्वयैव प्रभया मेरुमुदये विमलो रविः॥ २१॥
तेन विभ्राजिता तत्र सा सभापि व्यरोचत।
विमलग्रहनक्षत्रा शारदी द्यौरिवेन्दुना॥ २२॥
तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम्।
अलंकृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ॥ २३॥

दोनों हाथ जोड़कर उनके समीप आकर प्रणाम करते हुए देखकर राजा ने अपने पुत्र के जुड़े हुए हाथों को पकड़ कर और खींचकर उन्हें छाती से लगा लिया और पहले से तैयार किये गये, अच्छी तरह से मणियों और सोने से सजाये हुए परम सुन्दर आसन पर बैठने की आज्ञा दी। जैसे उदय होता हुआ निर्मल सूर्य अपनी प्रभा से मेरु पर्वत को भी प्रकाशित कर देता है, ऐसे ही श्रीराम ने भी उस आसन पर बैठकर अपनी प्रभा से उस आसन को भी सुशोभित कर दिया। उनके वहाँ विद्यमान होने से वह सभा भी ऐसी जगमगा रही थी जैसे चन्द्रमा की उपस्थिति से निर्मल ग्रह, नक्षत्रों वाला आकाश। जैसे व्यक्ति अपनी सजी हुई सुन्दर आकृति को दर्पण में देखकर प्रसन्नता को प्राप्त होता है, वैसे ही राजा भी उस समय अपने प्रिय पुत्र को देखकर प्रसन्न हो रहे थे।

उवाचेदं वचो राज पुत्रं पुत्रवतां वरः।
ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशः सुतः॥ २४॥
उत्पन्नस्त्वं गुणज्येष्ठो मम रामात्मजः प्रियः।
त्वया यतः प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुरञ्जिताः॥ २५॥
तस्मात् त्वं पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि।
कामतस्त्वं प्रकृत्यैव निर्णीतो गुणवानिति॥ २६॥
गुणवत्यपि तु स्नेहात् पुत्र वक्ष्यामि ते हितम्।
भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः॥ २७॥

पुत्रवानों में श्रेष्ठ राजा दशरथ ने तब अपने पुत्र श्रीराम से यह कहा कि बेटा राम। तुम मेरे अनुकूल आचरण वाली मेरी सबसे बड़ी पत्नी से उसी के समान गुणों को लेकर उत्पन्न हुए हो। तुम गुणों में भी सबसे बड़े हो और मेरे प्यारे पुत्र हो क्योंकि तुमने अपने गुणों से यह सारी प्रजा प्रसन्न कर दी है। अतः कल पुष्य नक्षत्र के आरम्भ होते ही युवराज के पद को प्राप्त करो। यद्यपि तुम स्वभाव से ही गुणवान हो पर हे पुत्र फिर भी स्नेह से मैं तुम्हारे हित की कहूँगा। तुम और भी अधिक विनय का सहारा लेकर सदा जितेन्द्रिय बने रहो।

कामक्रोधसमुत्थानि त्यजस्व व्यसनानि च।
परोक्षया वर्तमानो वृत्त्या प्रत्यक्षया तथा॥ २८॥
तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः।
त्वरिताः शीघ्रमागत्य कौसल्यायै न्यवेदयन्॥ २९॥
सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च।
व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा॥ ३०॥

काम क्रोध से जन्म लेने वाले व्यसनों का त्याग कर दो और गुप्तचरों पर आधारित परोक्षवृत्ति तथा सामने देखी और सुनी पर आधारित प्रत्यक्षवृत्ति इन दोनों के सहारे से शासन करो। राजा की ये बाते सुनकर राम के हितैषी उनके मित्रों ने जल्दी से आकर कौशल्या से सारा समाचार निवेदन कर दिया। तब स्त्रियों में श्रेष्ठ कौशल्या ने शुभसमाचार सुनाने वालों को सुवर्ण, गायें तथा अनेक प्रकार के रत्न पुरस्कार में दिये।

चौथा सर्ग

राजा का सुमन्त्र द्वारा पुनः श्रीराम को अपने अन्तः पुर में बुलवाकर उन्हें आवश्यक बातें बताना। श्रीराम का कौशल्या के भवन में जाकर माता को यह समाचार बताना और माता से आशीर्वाद पाकर अपने महल में जाना।

गतेष्वथ नृपो भूयः पौरेषु सह मन्त्रिभिः।
मन्त्रयित्वा ततश्चक्रे निश्चयज्ञः स निश्चयम्।। १।।
श्व एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषेच्यस्तु मे सुतः।
रामो राजीवपत्राक्षो युवराज इति प्रभुः।। २।।

नगरवासियों के चले जाने पर उस सामर्थ्यवान राजा ने अपने निश्चय के महत्व को जानते हुए मन्त्रियों के साथ पुनः विचार किया और तत्पश्चात यह निश्चय किया कि काल ही पुष्य नक्षत्र होगा और कल ही कमलनयन राम का युवराजपद पर अभिषेक कर देना चाहिये।

अथान्तर्गृहमाविश्य राजा दशरथस्तदा।
सूतमामन्त्रयामास रामं पुनरिहानय।। ३।।
प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं सूतः पुनरुपयायौ।
रामस्य भवनं शीघ्रं राममानयितुं पुनः।। ४।।

इसके पश्चात अपने विश्रामगृह में जाकर राजा दशरथ ने सूत को बुलाया और आज्ञा दी कि राम को पुनः यहाँ ले आओ। उनके आदेश को ग्रहण करके सूत राम को दुबारा लाने के लिये फिर उनके महल में शीघ्रता से गये।

द्वाःस्थैरावेदितं तस्य रामायागमनं पुनः।
श्रुत्वैव चापि रामस्तं प्राप्तं शङ्कान्वितोऽभवत्।। ५।।
प्रवेश्य चैनं त्वरितो रामो वचनमब्रवीत्।
यदागमनकृत्यं ते भूस्तद्ब्रूह्यशेषतः।। ६।।

द्वारपाल ने राम को सूत का पुनः आना निवेदित किया। यह सुनते ही राम में मन में सन्देह हुआ। उनको जल्दी प्रवेश कराकर राम ने उनसे कहा कि जिस कारण से आपको पुनः आने की आवश्यकता हुई वह पूरी तरह बताइये।

तमुवाच ततः सूतो राजा त्वां द्रष्टुमच्छिति।
श्रुत्वा प्रमाणं तत्र त्वं गमनायेतराय वा।। ७।।
इति सूतवचः श्रुत्वा रामोऽपि त्वरयान्वितः।
प्रययौ राजभवनं पुनर्द्रष्टुं नरेश्वरम्।। ८।।

तब सूत ने उनसे कहा कि राजा आपको देखना चहाते हैं। मेरी बात सुनकर आप स्वयं निर्णय करें कि आप जायेंगे या नहीं जायेंगे। सूत की यह बात सुनकर राम भी जल्दी से राजा के पुनः दर्शन करने के लिये राजभवन की तरफ चल दिये।

तं श्रुत्वा समनुप्राप्तं रामं दशरथो नृपः।
प्रवेशयामास गृहं विवक्षुः प्रियमुत्तमम्।। ९।।
प्रविशन्नेव च श्रीमान् राघवो भवनं पितुः।
ददर्श पितर दूरात् प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।। १०।।

राजा दशरथ ने राम को आया हुआ सुनकर उन्हें उत्तम और प्रिय बात कहने की इच्छा से अन्दर बुला लिया। श्रीराम ने पिता के भवन में प्रवेश करते ही पिता को देखा और हाथ जोड़कर दूर से ही उन्हें प्रणाम किया।

प्रणमन्तं तमुत्थाप्य सम्परिष्वज्य भूमिपः।
प्रदिश्य चासनं चास्मै रामं च पुनरब्रवीत्।। ११।।
राम वृद्धोऽस्मि दीर्घायुर्भुक्ता भोगा यथेप्सिताः।
अन्नवद्भिः क्रतुशतैर्यथेष्टं भूरिदक्षिणैः।। १२।।

राजा ने उन प्रणाम करते हुए को उठाकर छाती से लगा लिया और उन्हें आसन देकर राम से फिर कहा कि हे राम! अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मैंने लम्बी आयु तक मन चाहे भोग-भोग लिये हैं। अन्न और दूसरी दक्षिणाओं वाले सैकड़ों यज्ञ भी कर लिये।

जातमिष्टमपत्यं मे त्वमद्यानुपमं भुवि।
दत्तमिष्टमधीतं च मया पुरुषसत्तम।। १३।।
न किंचिन्मम कर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात्।। १४।।
अतो यत्त्वामहं ब्रूयां तन्मे त्वं कर्तुमर्हसि।

तुम मेरी मनचाही सन्तान के रूप में आज जो संसार में अनुपम है, मुझे प्राप्त हुए हो। हे पुरुषश्रेष्ठ! मैंने दान भी कर लिये, यज्ञ भी कर लिये और स्वाध्याय भी कर लिया। मैंने देवताओं, ऋषियों और ब्राह्मणों का भी ऋण उतार दिया। अब मेरे लिये तुम्हें युवराज बनाने के लिये अतिरिक्त और कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है। इसलिये जो मैं तुम्हें कहूँ, उसका तुम पालन करना।

अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम्।। १५।।
अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक।

तस्मात् त्वयाद्यप्रभृति निशेयं नियतात्मना।। १६।।
सह वध्वोपवस्तव्या दर्भप्रस्तरशायिना।

हे पुत्र! सारी प्रजा तुम्हें राजा बनाना चाहती है, इसलिये मैं तुम्हें युवराज बनाऊँगा। अतः तुम्हें आज से रात, जितेन्द्रिय रहकर बहू के साथ कुश की शय्या पर बितानी है।

इत्युक्तः सोऽभ्यनुज्ञातः श्वोभाविन्यभिषेचने।। १७।।
व्रजेति रामः पितरमभिवाद्याभ्ययाद् गृहम्।
प्रविश्य चात्मनो वेश्म राज्ञाऽऽदिष्टेऽभिषेचने।। १८।।
तत्क्षणादेव निष्क्रम्य मातुरन्तःपुरं ययौ।

ऐसा कहने पर और कल होने वाले अभिषेक की तैयारी के लिये जाओ, इस प्रकार आज्ञा दिये जाने पर राम पिता को प्रणाम करके अपने घर चले गये। राजा के द्वारा अभिषेक की तैयारी के लिये आदेश देने पर राम ने पहले अपने महल में प्रवेश किया, फिर तुरन्त वहाँ से निकलकर माता के अन्तः पुर में गये।

तत्र तां प्रवणामेव मातरं क्षौमवासिनीम्।। १९।।
वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम्।
प्रागेव चागता तत्र सुमित्रा लक्ष्मणस्तथा।। २०।।
सीता चानयिता श्रुत्वा प्रियं रामाभिषेचनम्।

वहाँ उन्होंने देखा कि माता कौशल्या रेशमी वस्त्र धारण किये, विनीत अवस्था में मौन होकर देव मन्दिर अर्थात उपासना घर में राजलक्ष्मी की याचना कर रही है। सुमित्रा और लक्ष्मण वहाँ पहले ही आ गए थे। सीता को राम के अभिषेक के प्रिय समाचार को सुनकर वहाँ बुला लिया गया था।

तस्मिन् कालेऽपि कौसल्या तस्थावामीलितेक्षणा।। २१।।
सुमित्रयान्वास्यमाना सीतया लक्ष्मणेन च।
श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्येऽभिषेचनम्।। २२।।
प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम्।

उस समय भी कौशल्या आँख बंद किये हुए बैठी थी और सुमित्रा, सीता और लक्ष्मण उनकी सेवा में खड़े थे। पुष्य नक्षत्र में पुत्र का यौवराज्य पद पर अभिषेक को सुनकर वह प्राणायाम के द्वारा परम पुरूष जनार्दन का ध्यान कर रही थी।

तथा सनियमामेव सोऽभिगम्याभिवाद्य च।। २३।।
उवाच वचनं रामो हर्षयंस्तामिदं वरम्।
अम्ब पित्रा नियुक्तोऽस्मि प्रजापालनकर्मणि।। २४।।
भविताश्वोऽभिषेको मे यथा मे शासनं पितुः।
सीतयाप्युपवस्तव्या रजनीयं मया सह।। २५।।
एवमुक्तमुपाध्यायैः स हि मामुक्तवान् पिता।

इसी अवस्था में विद्यमान माता को राम ने जाकर प्रणाम किया और उन्हें प्रसन्नता प्रदान करते हुए यह कहा कि माता! पिता ने मुझे प्रजा पालन के कार्य में नियुक्त किया है। कल मेरा अभिषेक होगा। जैसा पिता जी का मेरे लिये आदेश है, उसके अनुसार, सीता को भी इस रात मेरे साथ उपवास करना है, पिता जी ने कहा है कि ऐसा उपाध्यायों ने बताया है।

यानि यान्यत्र योग्यानि श्वोभाविन्यभिषेचने।। २६।।
तानि मे मङ्गलान्यद्य वैदेह्याश्चैव कारय।
एतच्छ्रुत्वा तु कौसल्या चिरकालाभिकाङ्क्षितम्।। २७।।
हर्षबाष्पाकुलं वाक्यमिदं राममभाषत।
वत्स राम चिरं जीव हतास्ते परिपन्थिनः।। २८।।
ज्ञातीन् मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्च नन्दय।
इत्येवमुक्तोमात्रातु, रामो मातरावभिवाद्य च।। २९।।
अभ्यनुज्ञाप्य सीतां च ययौ स्वं च निवेशनम्।

कल होने वाले अभिषेक में जो जो मेरे और सीता के लिये मंगलकार्य हों, उन्हें आज कराओ। चिरकाल से चाहना की हुई बात को सुनकर कौशल्या ने खुशी से आँसू बहाते हुए गद्गद ध्वनि में राम से यह कहा कि हे पुत्र! तुम चिरंजीवी हो। तुम्हारे शत्रु नष्ट हो जायें। तुम राम लक्ष्मी से मुक्त हो कर मेरे और सुमित्रा के बन्धु बान्धवों को आनन्दित करो। माता के द्वारा ऐसा कहे जाने पर श्रीराम दोनों माताओं को प्रणाम कर और सीता को आज्ञा दिलाकर उसके साथ अपने महल में चले गए।

पाँचवाँ सर्ग

राजा दशरथ के अनुरोध से वसिष्ठ जी का श्रीराम और सीता को उपवासव्रत की दीक्षा देकर आना।

संदिश्य रामं नृपतिः श्वोभाविन्यभिषेचने।
पुरोहितं समाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत्॥ १॥
गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन।
श्रेयसे राज्यलाभाय वध्वा सह यतव्रत॥ २॥

राजा ने कल होने वाले अभिषेक के विषय में राम को आवश्यक बातें बताकर, पुरोहित वसिष्ठ जी को बुलवाया और यह कहा कि हे व्रतों का पालन करने वाले तपस्वी! आप कल्याण और राज्य की प्राप्ति के लिये श्रीराम से सपत्नीक उपवास व्रत का पालन कराइये।

तथेति च स राजानमुक्त्वा वेदविदां वरः।
स्वयं वसिष्ठो भगवान् ययौ रामनिवेशनम्॥ ३॥
उपवासयितुं वीरं मन्त्रवन्मिन्त्रकोविदम्।
ब्राह्मं रथवरं युक्तमास्थाय सुधृतव्रतः॥ ४॥

अच्छा ऐसा ही होगा राजा से ऐसा कहकर वे वेदज्ञों में श्रेष्ठ भगवान वसिष्ठ स्वयं राम के महल की तरफ चले। वे मन्त्रों के विद्वान, उत्तम व्रतधारी, ब्राह्मणों के योग्य जुते हुए रथ पर बैठकर, मन्त्रवेत्ता वीर राम को उपवास की दीक्षा देने के लिये जा रहे थे।

स रामभवनं प्राप्य पाण्डुराभ्रघनप्रभम्।
तिस्रः कक्ष्या रथेनैव विवेश मुनिसत्तमः॥ ५॥
तमागतमृषिं रामस्त्वरन्निव ससम्भ्रमम्।
मानयिष्यन् स मानार्हं निश्चक्राम निवेशनात्॥ ६॥
अभ्येत्य त्वरमाणोऽथ रथाभ्याशं मनीषिणः।
ततोऽवतारयामास परिगृह्य रथात् स्वयम्॥ ७॥

श्वेत बादलों के समान प्रभा वाले श्रीराम के महल में पहुँच कर उन्होंने उसकी तीन ड्योढियाँ रथ के द्वारा ही पार कीं। उन आये हुए मान्य ऋषि का सम्मान करने के लिये श्रीराम शीघ्रता करते हुए उतावली के साथ अपने वास स्थान से निकले। शीघ्रता के साथ रथ के समीप आकर श्रीराम ने उन मनीषी को हाथ पकड़कर स्वयं रथ से उतारा।

स चैनं प्रश्रितं दृष्ट्वा सम्भाष्याभिप्रसाद्य च।
प्रियार्हं हर्षयन् राममित्युवाच पुरोहितः॥ ८॥
उपवासं भवानद्य करोतु सह सीतया।
प्रातस्त्वामभिषेक्ता हि यौवराज्ये नराधिपः॥ ९॥
पिता दशरथः प्रीत्या ययातिं नहुषो यथा।

पुरोहित जी ने उन प्रिय वचन सुनने योग्य श्रीराम को विनीत देखकर मधुर भाषण से उन्हें प्रसन्न किया और फिर उन्हें और हर्षित करते हुए बोले कि आप आज सीता के साथ उपवास करें। प्रातः आपके पिता राजा दशरथ आपको प्रेम से युवराज के पद पर ऐसे ही अभिषिक्त करेंगे जैसे नहुष ने ययाति को किया था।

इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतः॥ १०॥
मन्त्रवत् कारयामास वैदेह्या सहितं शुचिः।
ततो यथावद् रामेण स राज्ञो गुरुरर्चितः॥ ११॥
अभ्यनुज्ञाप्य काकुत्स्थं ययौ रामनिवेशनात्।
सुहृद्भिस्तत्र रामोऽपि सहासीनः प्रियंवदैः॥ १२॥
सभाजितो विवेशाथताननुज्ञाप्य सर्वशः।

ऐसा कहकर उन व्रतधारी ऋषि ने मन्त्रों के द्वारा राम को सीता के साथ उपवास के व्रत की दीक्षा दी। तब राम ने उनकी यथावत् पूजा की और फिर वे राम की अनुमति लेकर उनके महल से बाहर निकले। राम भी अपने प्रिय बोलने वाले मित्रों के साथ वहाँ अर्थात महल के बाहरी भाग में कुछ देर बैठे रहे। फिर उनसे सम्मानित हो और उनकी अनुमति ले महल के भीतर चले गये।

हृष्टनारीनरयुतं रामवेश्म तदा बभौ॥ १३॥
यथा मत्तद्विजगणं प्रफुल्लनलिनं सरः।
स राजभवनप्रख्यात् तस्माद् रामनिवेशनात्॥ १४॥
निर्गत्य ददृशे मार्गं वसिष्ठो जनसंवृतम्।

श्रीराम का घर तब प्रसन्न नर नारियों की भीड़ से सुशेभित हो रहा था, जैसे खिले हुए कमलों वाला सरोवर मस्त पक्षियों के कलरव से सुशोभित हो रहा हो! राज महलों में श्रेष्ठ उस श्रीराम के भवन से निकल कर वसिष्ठ जी ने सारे मार्ग को लोगों से भरा हुआ देखा।

वृन्दवृन्दैरयोध्यायां राजमार्गाः समन्ततः॥ १५॥
बभूवुरभिसम्बाधाः कुतूहलजनैर्वृताः।
जनवृन्दोर्मिसंघर्षहर्षस्वनवृतस्तदा ॥ १६॥
बभूव राजमार्गस्य सागरस्यैव निःस्वनः।

अयोध्या के राजमार्ग, सब तरफ से कौतुहल से भरे लोगों की भीड़ से भरे हुए थे। जन समुदाय के द्वारा की जाने वाली हर्ष ध्वनियों से गुंजित होता हुआ राजमार्ग ऐसे लग रहा था, जैसे सागर में लहरें परस्पर टकरा कर ध्वनि उत्पन्न कर रही हों।

सिक्तसम्मृष्टरथ्या हि तथा च वनमालिनी।। १७।।
आसीदयोध्या तदहः समुच्छ्रितगृहध्वजा।
तदा ह्ययोध्यानिलयः सस्त्रीबालाकुलो जनः।। १८।।
रामाभिषेकमाकाङ्क्षन्नाकाङ्क्षन्नुदयं रवेः।

बगीचों की मालाओं से युक्त अयोध्या में सड़कों को झाड़ बुहार कर पानी छिड़क दिया गया था तथा घरों पर ऊँची ध्वजाएँ लहरा रहीं थीं। उस समय अयोध्या के निवासी अपने स्त्री और बच्चों के साथ, श्रीराम के अभिषेक समारोह को देखने के लिये सूर्योदय की कामना कर रहे थे।

एवं तज्जनसम्बाधं राजमार्गं पुरोहितः।। १९।।
व्यूहन्निव जनौघं तं शनै राजकुलं ययौ।
सिताभ्रशिखरप्रख्यं प्रासादमधिरुह्य च।। २०।।
समीयाय नरेन्द्रेण शक्रेणेव बृहस्पतिः।

इस प्रकार उस लोगों की भीड़ से भरे हुए राजमार्ग में अपना रास्ता बनाते हुए पुरोहित जी धीरे-धीरे राजमहल की तरफ गये। वहाँ उस श्वेत बादलों के समान शोभा देने वाले उस राजमहल में चढ़ कर वसिष्ठ जी राजा दशरथ से उसी प्रकार मिले जैसे बृहस्पति इन्द्र से मिल रहे हों।

तमागतमभिप्रेक्ष्य हित्वा राजासनं नृपः।। २१।।
पप्रच्छ स्वमतं तस्मै कृतमित्यभिवेदयत्।।
गुरुणा त्वभ्यनुज्ञातो मनुजौघं विसृज्य तम्।
विवेशान्तःपुरं राजा सिंहो गिरिगुहामिव।। २२।।

उनको आया हुआ देखकर राजा अपने आसन को छोड़ कर खड़े हो गये और उनसे अपने बताये कार्य के विषय में पूछा। उन्होंने 'हाँ' कर दिया, यह उत्तर दिया। उसके पश्चात् गुरू जी की आज्ञा लेकर लोगों की भीड़ को विदा कर राजा ने अपने अन्तःपुर में उसी प्रकार प्रवेश किया जैसे सिंह पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करता है।

छठा सर्ग

श्रीराम के अभिषेक का समाचार पाकर खिन्न हुई मन्थरा का कैकेयी को उभाड़ना, परन्तु प्रसन्न हुई कैकेयी का उसे पुरस्कार में आभूषण देना और वर माँगने के लिये प्रेरित करना।

ज्ञातिदासी यतो जाता कैकेय्या तु सहोषिता।
प्रासादं चन्द्रसंकाशमारुरोह यदृच्छया।। १।।
सा हर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम्।
अवदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा।। २।।

कैकेयी के पास एक दासी थी, जो उसके मायके से आयी हुई थी, उसके मायके में ही वह पैदा हुई थी और वह कैकेयी के पास ही रहती थी। वह अपनी इच्छा से ही उस दिन कैकेयी के चन्द्रमा के समान महल की छत पर चढ़ गयी। उसने समीप ही खड़ी हुई धाय (राम की) को जो पीले रंग की रेशमी साड़ी पहने हुए थी और जिसके नयन प्रसन्नता से खिले हुए थे, देखा। तब मन्थरा ने उससे पूछा।

उत्तमेनाभिसंयुक्ता हर्षेणार्थपरा सती।
राममाता धनं किंनु जनेभ्यः सम्प्रयच्छति।। ३।।
अमितात्रं प्रहर्षः किं जनस्यास्य च शंस मे।
कारयिष्यति किं वापि सम्प्रहृष्टो महीपतिः।। ४।।

हे धाय! आज राजमाता कौशल्या बड़े हर्ष से मनोरथ की पूर्ति में लगी हुई लोगों को धन क्यों बाँट रही है। मुझे बता इन लोगों को अत्यधिक हर्ष क्यों हो रहा है? राजा प्रसन्न होकर कौन सा काम करायेंगे?

विदीर्यमाणा हर्षेण धात्री तु परया मुदा।
आचचक्षेऽथ कुब्जायै भूयसीं राघवे श्रियम्।। ५।।
श्वः पुष्येण जितक्रोधं यौवराज्येन चानघम्।
राजा दशरथो राममभिषेक्ता हि राघवम्।। ६।।

तब हर्ष से जो फूली नहीं समाती थी, उस धाय ने अत्यन्त प्रसन्नता से उस कुब्जा को बताया कि राम को बहुत ऐश्वर्य प्राप्त होने वाला है। कल पुष्य नक्षत्र के आरम्भ होते ही राजा दशरथ निष्पाप और क्रोध

को जीतने वाले राम को युवराज के पद पर अभिषिक्त करेंगे।

धात्र्यास्तु वचनं श्रुत्वा कुब्जा क्षिप्रममर्षिता।
कैलासशिखराकारात् प्रासादादवरोहत।। ७।।
सा दह्यमाना क्रोधेन मन्थरा पापदर्शिनी।
शयानामेव कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत्।। ८।।

धात्री के वचनों को सुनकर वह कुब्जा क्रोध में भर कर कैलाश पर्वत की चोटी के समान ऊँचे उस महल से तुरन्त नीचे उतर आयी। बुरी बातों को ही देखने वाली वह मन्थरा क्रोध से जलती हुई सोती हुई कैकेयी के ही पास जाकर यह बोली।

अनिष्टे सुभगाकारे सौभाग्येन विकत्थसे।
चलं हि तव सौभाग्यं नद्याः स्रोत इवोष्णगे।। ९।।
एवमुक्ता तु कैकेयी रुष्टया परुषं वचः।
कुब्जया पापदर्शिन्या विषादमगमत् परम्।। १०।।

तू अपने उस पति रूपी सौभाग्य पर जो बाहर से सुन्दर आकार बनाये रखते हैं, पर अन्दर से तेरा अनिष्ट सोचते हैं, बड़ी डींग मारा करती है। पर जैसे नदी का प्रवाह ग्रीष्म ऋतु में सूखने लगता है, वैसे ही तेरा वह सौभाग्य अब तेरे हाथ से छूट कर चले जाना चाहता है। उस पापदर्शिनी और क्रोध में भरी हुई कुब्जा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर कैकेयी को बड़ा दुःख हुआ।

कैकेयी त्वब्रवीत् कुब्जां कच्चित् क्षेमं च मन्थरे।
विषण्णवदनां हि त्वां लक्षये भृशदुःखिताम्।। ११।।
मन्थरा तु वचः श्रुत्वा कैकेय्या मधुराक्षरम्।
उवाच क्रोधसंयुक्ता वाक्यं वाक्यविशारदा।। १२।।
सा विषण्णतरा भूत्वा कुब्जा तस्यां हितैषिणी।
विषादयन्ती प्रोवाच भेदयन्ती च राघवम्।। १३।।

तब कैकेयी ने कुब्जा से कहा कि हे मन्थरा! शायद तेरी तबियत ठीक नहीं है, क्योंकि मैं तुझे बड़ी दुःखी और उदास मुख वाली देख रही हूँ। कैकेयी के इन मीठे वचनों को सुनकर बोलने में चतुर कुब्जा और भी क्रोध में भरकर और अधिक उदास होकर कैकेयी को अपना शुभचिन्तक रूप दिखाती हुई और उसके मन में राम के प्रति विषाद तथा भेदभाव प्रकट करती हुई बोली।

अक्षयं सुमहद् देवि प्रवृत्तं त्वद्विनाशनम्।
रामं दशरथो राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति।। १४।।
सास्म्यगाधे भये मग्ना दुःखशोकसमन्विता।
दह्यमानानलेनेव त्वद्धितार्थमिहागता।। १५।।

हे देवी! तुम्हारे महान विनाश का ऐसा कार्य जिसे हटाया जा नहीं सकता, प्रारम्भ हो गया है और वह यह है कि राजा दशरथ राम को युवराज बनायेंगे। यह सुनकर मैं भय के गहरे समुद्र में डूब गई हूँ। दुःख और शोक से भरकर आग से जलाये जाने के समान हो रही हूँ। अब मैं तेरी भलाई के लिये यहाँ आयी हूँ।

नराधिपकुले जाता महिषी त्वं महीपतेः।
उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुध्यसे।। १६।।
उपस्थितः प्रयुञ्जानस्त्वयि सान्त्वमनर्थकम्।
अर्थेनैवाद्य ते भर्ता कौसल्यां योजयिष्यति।। १७।।

तुम राजकुल में पैदा हुई हो और राजा की रानी हो फिर राजधर्म की उग्रता को क्यों नहीं जान रही हो। तुम्हारे पति यहाँ आकर जो तुम्हें सान्त्वना देते हैं, वह सब बेकार है क्योंकि वे आज कौशल्या को ऐश्वर्य से युक्त करने जा रहे हैं।

अपवाह्य तु दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु।
काल्ये स्थापयिता रामं राज्ये निहतकण्टके।। १८।।
शत्रुः पतिप्रवादेन मात्रेव हितकाम्यया।
आशीविष इवाङ्केन बाले परिधृतस्त्वया।। १९।।

उन दुष्टात्मा ने भरत को तो तुम्हारे बान्धवों के पास भेज दिया है इस प्रकार निष्कंटक राज्य पर वे कल राम का अभिषेक करेंगे। तुमने हित की कामना से जिसका माता के समान पालन किया वह पति कहलाने वाला तुम्हारा शत्रु निकला। तुमने जहरीले साँप के समान उसे अपने अंक में स्थान दिया।

यथा हि कुर्याच्छत्रुर्वा सर्पो वा प्रत्युपेक्षितः।
राज्ञा दशरथेनाद्य सपुत्रा त्वं तथा कृता।। २०।।
पापेनानृतसान्त्वेन बाले नित्यं सुखोचिता।
रामं स्थापयता राज्ये सानुबन्धा हता ह्यसि।। २१।।

हे बालिका! तुम सदा सुख भोगने योगय हो, पर पाप के साथ झूठी सान्त्वना देने वाले राजा ने राम को राज्य पर स्थापित करते हुए तुम्हें बन्धुबान्धवों सहित मार दिया है। जैसे उपेक्षा किया हुआ सर्प या शत्रु करता है वैसे ही राजा दशरथ ने आज तुम्हें पुत्र सहित कर दिया है।

सा प्राप्तकालं कैकेयि क्षिप्रं कुरु हितं तव।
त्रायस्व पुत्रमात्मानं मां च विस्मयदर्शने।। २२।।
मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात् सा शुभानना।
उत्तस्थौ हर्षसम्पूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी।। २३।।

अतीव सा तु संतुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता।
दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्।। २४।।

हे आश्चर्य से देखने वाली! अब समय आ गया है। जल्दी अपनी भलाई का काम कर और अपनी, अपने पुत्र की और मेरी रक्षा कर। मन्थरा की बात सुनकर वह सुन्दर मुखवाली शरद ऋतु के समान हर्ष से भरकर शय्या से उठ बैठी। उस कैकेयी ने अतीव सन्तुष्ट हो और आश्चर्य से युक्त हो कुब्जा को एक सुन्दर और दिव्य गहना दिया।

दत्त्वा त्वाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रमदोत्तमा।
कैकेयी मन्थरां हृष्टा पुनरेवाब्रवीदिदम्।। २५।।

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते।। २६।।
रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात् तुष्टास्मि यद् राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति।। २७।।

कुब्जा को वह आभूषण देकर श्रेष्ठ नारी कैकेयी ने मथरा से पुनः हर्ष में भकर कहा कि हे मन्थरा! यह तो तू ने मुझे बहुत प्रिय समाचार सुनाया है। यह जो तू ने मुझे प्यारी खबर दी है इसके लिये बता मैं तेरा और क्या करूँ? मैं राम में और भरत में कोई भेद नहीं देखती, इसलिये राम का राज्य पर अभिषेक होगा तो मैं इससे प्रसन्न हूँ।

सातवाँ सर्ग

मन्थरा का पुनः कैकेयी को युक्तियों द्वारा भड़काने का प्रयत्न करना। कैकेयी द्वारा श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुए मन्थरा का प्रतिवाद, पर अन्त में उसका मन्थरा की बात मान लेना।

मन्थरा त्वभ्यसूय्यैनामुत्सृज्याभरणं हि तत्।
उवाचेदं ततो वाक्यं कोपदुःखसमन्विता।। १।।
हर्षं किमर्थमस्थाने कृतवत्यसि बालिशे।
शोकसागरमध्यस्थं नात्मानमवबुध्यसे।। २।।

मन्थरा ने उस आभूषण को नफरत की निगाहों से देखा और उसे उठाकर फैंक दिया और फिर क्रोध तथा दुःख से भरकर बोली! हे नादान बच्ची! तुम यह गलत जगह पर खुश क्यों हो रही हो? तुम दुःख के समुद्र में डूबते हुए अपने आप को नहीं पहचान रही हो।

मनसा प्रसहामि त्वां देवि दुःखार्दिता सती।
यच्छोचितव्ये हृष्टासि प्राप्य त्वं व्यसनं महत्।। ३।।
शोचामि दुर्मतित्वं ते का हि प्राज्ञा प्रहर्षयेत्।
अरेः सपत्नीपुत्रस्य वृद्धिं मृत्योरिवागताम्।। ४।।

महान दुःख को प्राप्त होने पर जहाँ तुम्हें शोक करना चाहिये, वहाँ तुम प्रसन्न हो रही हो, यह देख मन में परेशान होने पर भी मुझे तुम्हारे ऊपर हँसी आती है। मुझे तुम्हारी दुर्बुद्धि के लिये शोक हो रहा है, क्योंकि कौन बुद्धिमान स्त्री इस अवसर पर प्रसन्न होगी? अरे सौत के पुत्र की बढ़ोतरी तो मृत्यु के आने के समान होती है।

भरतादेव रामस्य राज्यसाधारणाद् भयम्।
तद् विचिन्त्य विषण्णासि भयं भीताद्धि जायते।। ५।।

लक्ष्मणो हि महाबाहू रामं सर्वात्मना गतः।
शत्रुघ्नश्चापि भरतं काकुत्स्थं लक्ष्मणो यथा।। ६।।

यह राज्य राम और लक्ष्मण दोनों के लिये समानरूप से भोग्य है। इसलिये राम को भरत से ही भय हो सकता है यही सोचकर मैं दुःखी हूँ कि आज जो डरा हुआ है कल राज्य मिलने पर वही डर का कारण बन सकता है। महाबाहु लक्ष्मण पूरी तरह से राम के साथी हैं उसी तरह शत्रुघ्न भी ककुत्स्थवंशी भरत के मित्र हैं।

प्रत्यासन्नक्रमेणापि भरतस्यैव भामिनि।
राज्यक्रमो विसृष्टस्तु तयोस्तावद्यवीयसोः।। ७।।
विदुषः क्षत्रचारित्रे प्राज्ञस्य प्राप्तकारिणः।
भयात् प्रवेपे रामस्य चिन्तयन्ती तवात्मजम्।। ८।।

जन्म के क्रम से भी राम के बाद भरत की ही राज्याधिकार की बारी है। वे दोनों छोटे तो राज्य के अधिकार से बहुत दूर हैं (अर्थात् उनकी बारी आ ही नहीं सकती? इसीलिये राम को भरत से डर होना चाहिये) राम राजनीति के विद्वान हैं और समयोचित कर्तव्य को अच्छी तरह से जानते हैं अतः भविष्य में उनका तुम्हारे पुत्र के प्रति कैसा बर्ताव होगा यह सोचकर मैं भय से काँपने लगती हूँ।

सुभगा किल कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते।
यौवराज्येन महता श्वः पुष्येण द्विजोत्तमैः।। ९।।
प्राप्तां वसुमतीं प्रीतिं प्रतीतां हतविद्विषम्।
उपस्थास्यसि कौसल्यां दासीवत् त्वं कृताञ्जलिः।। १०।।

कौशल्या वास्तव में सौभाग्यवाली है, जिसका पुत्र, कल पुष्य नक्षत्र में श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा महान युवराज के पद पर बैठाया जायेगा। वह राजा की विश्वासपात्र है, क्योंकि शत्रुओं से रहित राज्य को प्राप्त कर लेगी और तुम दासी के समान उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ी रहा करोगी।

एवं च त्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यसि।
पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यत्वं हि गमिष्यति।। ११।।
तां दृष्ट्वा परमप्रीतां ब्रुवन्तीं मन्थरां ततः।
रामस्यैव गुणान् देवी कैकेयी प्रशशंस ह।। १२।।

इस प्रकार तुम हमारे साथ उसकी दासी बन जाओगी और तुम्हारे पुत्र को राम की सेवा करनी पड़ेगी। तब उस मन्थरा को बड़ी अप्रसन्नता से बोलती हुई देखकर कैकेयी ने राम के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा कि—

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति।। १३।।
भ्रातॄन् भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्।। १४।।

राम धर्मज्ञ, गुणवान, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र हैं। वे राजा के सबसे बड़े पुत्र होने के कारण युवराज बनने योग्य है। हे कुब्जा तू राम के अभिषेक की बात सुनकर क्यों दुखी हो रही है? दीर्घायु राम भाइयों और सेवकों का पिता के समान पालन करेंगे।

सा त्वमभ्युदये प्राप्ते दह्यमानेव मन्थरे।
भविष्यति च कल्याणे किमिदं परितप्यसे।। १५।।
यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु।। १६।।

अब जब कि अभ्युदय और कल्याण का अवसर प्राप्त हुआ है हे मन्थरा तू क्यों जलती हुई सी परेशान हो रही है। मेरे लिये जैसे भरत मान्य है, उससे भी अधिक राम मान्य है क्योंकि वह कौसल्या से भी अधिक मेरी बहुत सेवा करते हैं।

राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत् तदा।
मन्यते हि यथाऽऽत्मानं यथा भ्रातॄंस्तु राघवः।। १७।।
कैकेया वचनं श्रुत्वा मन्थरा भृशदुःखिता।
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य कैकेयीमिदमब्रवीत्।। १८।।

यदि राम का राज्य होगा तो वह भरत का भी होगा, क्योंकि राम भाइयों को भी अपने जैसा ही समझते हैं। कैकेयी की बातें सुनकर मन्थरा बहुत दुःखी हुई। वह लम्बे और गर्म साँस लेकर कैकेयी से यह बोली।

अनर्थदर्शिनी मौर्ख्यान्नात्मानमवबुध्यसे।
शोकव्यसनविस्तीर्णे मज्जन्ती दुःखसागरे।। १९।।
भविता राघवो राजा राघवस्य च यः सुतः।
राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते।। २०।।

अपने लाभ को न देखने वाली, तुम मूर्खता से अपनी स्थिति को नहीं समझ रही हो। तुम शोक और संकट से भरे हुए विस्तृत दुःख सागर में डूब रही हो। हे कैकेयी! राम के राजा बनने पर भविष्य में राम का पुत्र भी राजा बनेगा। भरत तो राज परम्परा से अलग हो जायेंगे।

असावत्यन्तनिर्भग्नस्तव पुत्रो भविष्यति।
अनाथवत् सुखेभ्यश्च राजवंशाच्च वत्सले।। २१।।
साहं त्वदर्थे सम्प्राप्ता त्वं तु मां नावबुद्ध्यसे।
सपत्निवृद्धौ या मे त्वं प्रदेयं दातुमर्हसि।। २२।।

हे अपने पुत्र से प्रेम करने वाली। तब तुम्हारा पुत्र अनाथों के समान राजपरम्परा से और सुखों से बहुत ही अलग टूटे हुए के समान हो जायेगा। मैं इसलिये तुम्हे समझाने के लिये आई हूँ और तुम सौत की बढ़ोतरी पर मुझे पारितोषिक दे रही हो।

ध्रुवं तु भरतं रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम्।
देशान्तरं नाययिता लोकान्तरमथापि वा।। २३।।
गोप्ता हि रामं सौमित्री, लक्ष्मणं चापिराघवः।
तस्मान्न लक्ष्मणे रामः पापं किंचित् करिप्यति।। २४।।
रामस्तु भरते पापं कुर्यादेव न संशयः।

यह निश्चित है कि निष्कंटक राज्य को पाकर राम भरत को विदेश में या परलोक में भी भेज देंगे। लक्ष्मण राम की रक्षा करते हैं और राम लक्ष्मण की रक्षा करते हैं इसलिये राम लक्ष्मण का तो अनिष्ट नहीं करेंगे पर भरत का तो वे भी अनिष्ट करेंगे ही इसमें संशय नहीं है।

एवं ते ज्ञातिपक्षस्य श्रेयश्चैव भविष्यति।। २५।।
यदि चेद् भरतो धर्मात् पित्र्यं राज्यमवाप्स्यति।
स ते सुखोचितो बालो रामस्य सहजो रिपुः।। २६।।
समृद्धार्थस्य नष्टार्थो जीविष्यति कथं वशे।

यदि भरत धर्म के अनुसार पिता के राज्य को प्राप्त कर लें तो तुम्हारा भी और तुम्हारे मायके वालों का भी भला होगा। वह सुखों को भोगने वाला बालक भरत जो कि राम का स्वाभाविक शत्रु है, वह राज्य धन से वंचित होकर राज्य पाकर समृद्ध बने हुए राम के वश में रहकर कैसे जीयेगा।

अभिद्रुतमिवारण्ये सिंहेन गजयूथपम्।। २७।।
प्रच्छाद्यमानं रामेण भरतं त्रातुमर्हसि।
दर्पान्निराकृता पूर्वं त्वया सौभाग्यवत्तया।
राममाता सपत्नी ते कथं वैरं न यापयेत्।। २८।।

जैसे वन में सिंह के द्वारा हाथियों के यूथपति को भगया जाता है, उसी प्रकार राम के द्वारा तिरकृत होते हुए भरत को तुम्हें बचाना चाहिये। पति के प्रेमरूपी सौभाग्य के घमंड से पहले तुमने जिसका निरादर किया है वही तुम्हारी सौत राजमाता कौशल्या अपने बैर का बदला क्यों नहीं लेगी?

यदा च रामः पृथिवीमवाप्स्यते
प्रभूतरत्नाकरशैलसंयुताम् ।
तदा गमिष्यस्यशुभं पराभवं
सहैव दीना भरतेन भामिनि।। २९।।

जब राम समुद्रों और पर्वतों से युक्त इस पृथ्वी का राज्य प्राप्त कर लेंगे, तब तुम हे भामिनी! भरत के साथ दीनता और अशुभ पराजय को प्राप्त करोगी।

आठवाँ सर्ग

कुब्जा के कुचक्र से कैकेयी का कोप भवन में प्रवेश।

एवमुक्ता तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना।
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मन्थरामिदमब्रवीत्।। १।।
इदं त्विदानीं सम्पश्य केनोपायेन साधये।
भरतः प्राप्नुयाद् राज्यं न तु रामः कथंचन।। २।।

मन्थरा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर कैकेयी का मुख क्रोध से तमतमाने लगा। वह लम्बी गर्म साँस लेकर मन्थरा से बोली कि अब तुम यह तो देखो कि किस प्रकार से मैं यह कार्य सिद्ध करूँ कि किसी प्रकार राम को राज्य न मिले और भरत को मिले।

एवमुक्ता तदा देव्या मन्थरा पापदर्शिनी।
रामार्थमुपहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत्।। ३।।
पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः।
अगच्छत् त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत्।। ४।।

कैकेयी द्वारा ऐसा कहे जाने पर, पापदर्शिनी मन्थरा, राम के कल्याण को नष्ट करती हुई कैकेयी से बोली कि पहले देवताओं के असुरों के साथ युद्ध में राजर्षियों के साथ तुम्हारे पति भी तुम्हे साथ लेकर देवराज की सहायता के लिये गये थे।

तत्राकरोन्महायुद्धं राजा दशरथस्तदा।
असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः।। ५।।
अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया।। ६।।

वहाँ राजा दशरथ ने महान युद्ध किया, पर उन महाबाहु को असुरों ने अपने शस्त्रों से घायल कर दिया। जब राजा की चेतना नष्ट हो गई तब तुमने उसे संग्राम से दूर हटाकर उसकी रक्षा की। पर तब भी जब राक्षसों ने उन्हें और घायल कर दिया तब तुमने वहाँ से भी दूसरी जगह ले जाकर अपने पति को बचाया।

तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने।
स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरम्।। ७।।
गृह्णीयां तु तदा भर्तस्तथेत्युक्तं महात्मना।
अनभिज्ञा ह्यहं देवि त्वयैव कथितं पुरा।। ८।।

हे शुभदर्शने! तब महाराज ने प्रसन्न होकर तुम्हें दो वर दिये थे। हे देवी! तब तुमने अपने पति से कहा था कि जब मैं चाहूँगी तब इन्हें ले लूँगी। तब उन महात्मा राजा ने ऐसा ही होगा यह कहा था। मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था, तुमने ही पहले मुझसे यह कहा था।

कथैषा तव तु स्नेहान्मनसा धार्यते मया।
रामाभिषेकसम्भारान्निगृह्य विनिवर्तय।। ९।।
तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्।
प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश।। १०।।

इस कहानी को तब से मैं तुम्हारे स्नेह के कारण मन में याद रखे हुए हूँ। तुम इन वरों से राम के अभिषेक की तैयारियों को जबरदस्ती पलट दो। तुम उन दोनों

वरों को अपने स्वामी से माँगो कि एक भरत का अभिषेक और राम को चौदह वर्ष तक वन में निवास।

चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम्।
प्रजाभावगतस्नेहः स्थिरः पुत्रो भविष्यति।। ११।।
क्रोधागारं प्रविश्याद्य क्रुद्धेवाश्वपतेः सुते।
शेष्वानन्तर्हितायां त्वं भूमौ मलिनवासिनी।। १२।।

चौदह वर्ष के लिये राम के वन में चले जाने पर तब तक प्रजा की भावना में अपना प्रेम जमा कर तुम्हारा पुत्र अपने राज्य में स्थिर हो जायेगा। हे अश्वपति की पुत्री! तुम क्रुद्ध होने का अभिनय करती हुई कोप भवन में प्रवेश कर मैले कपड़े पहन, बिना बिस्तरे की भूमि पर ही लेट जाओ।

मा स्मैनं प्रत्युदीक्षेथा मा चैनमभिभाषथाः।
रुदन्ती पार्थिवं दृष्ट्वा जगत्यां शोकलालसा।। १३।।
दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः।
त्वत्कृते च महाराजो विशेदपि हुताशनम्।। १४।।

राजा को देखकर, उनकी तरफ मत देखना, न उनसे बोलना और शोक में भरकर रोती हुई भूमि पर पड़ी रहना। इसमें संशय नहीं है कि तुम सदा पति की प्यारी रही हो। तुम्हारे लिये महाराजा आग में भी प्रवेश कर सकते हैं।

न त्वां क्रोधयितुं शक्तो न क्रुद्धां प्रत्युदीक्षितुम्।
तव प्रियार्थं राजा तु प्राणानपि परित्यजेत्।। १५।।
न ह्यतिक्रमितुं शक्तस्तव वाक्यं महीपतिः।
मन्दस्वभावे बुध्यस्व सौभाग्यबलमात्मनः।। १६।।

राजा न तो तुम्हें क्रोधित कर सकते हैं और न तुम्हें क्रुद्ध अवस्था में देख सकते हैं। तुम्हारा प्रिय करने के लिये वे प्राणों को भी छोड़ सकते हैं। इसलिये राजा तुम्हारी बात को टाल नहीं सकते। हे मुग्धे! तुम अपने सौभाग्य की शक्ति को समझो।

मणिमुक्तासुवर्णानि रत्नानि विविधानि च।
दद्याद् दशरथो राजा मा स्म तेषु मनः कृथाः।। १७।।
यौ तौ देवासुरे युद्धे वरौ दशरथो ददौ।
तौ स्मारय महाभागे सोऽर्थो न त्वां क्रमेदति।। १८।।

राजा तुम्हें मणि, मुक्ता, सुवर्ण और अनेक प्रकार के रत्न दें तो उनमें अपना मन न चलाना। दशरथ ने जो देवासुर युद्ध में दो वर दिये थे, उन्हें स्मरण दिलाना। हे महाभागे! उनकी याचना असफल नहीं हो सकती।

यदा तु ते वरं दद्यात् स्वयमुत्थाप्य राघवः।
व्यवस्थाप्य महाराजं त्वमिमं वृणुया वरम्।। १९।।
रामप्रव्रजनं दूरं नव वर्षाणि पञ्च च।
भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभ।। २०।।

जब वे राघव तुम्हें स्वयं उठाकर वर देने को तैयार हो जायें, तब उन्हें दृढ़ करके इन वरों को माँगना कि हे नृपश्रेष्ठ! भरत को राजा बना दीजिये और राम को चौदह वर्ष के लिये दूर भेज दीजिये।

चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम्।
रूढश्च कृतमूलश्च शेषं स्थास्यति से सुतः।। २१।।
रामप्रवाजनं चैव देवि याचस्व तं वरम्।
एवं सेत्स्यन्ति पुत्रस्य सर्वार्थास्तव कामिनि।। २२।।

चौदह वर्ष के लिये राम के वन में जाने पर तुम्हारा पुत्र राज्य में स्थिर हो जायेगा, उसकी जड़ जम जायेगी। उसके पश्चात् आगे के समय के लिये वह स्वयं संभाल लेगा। राम को निष्कासित करने का हे देवी वर अवश्य माँगना। उसके द्वारा ही हे कामिनी तुम्हारे पुत्र के सारे कार्य सिद्ध होंगे।

एवं प्रव्राजितश्चैव रामोऽरामो भविष्यति।
भरतश्च गतामित्रस्तव राजा भविष्यति।। २३।।
येन कालेन रामश्च वनात् प्रत्यागमिष्यति।
अन्तर्बहिश्च पुत्रस्ते कृतमूलो भविष्यति।। २४।।

इस प्रकार वन में जाने पर राम राम नहीं रह जायेंगे अर्थात उनका प्रभाव समाप्त हो जायेगा और भरत अपने शत्रु से रहित राजा होंगे। जब राम वन से वापिस आयेंगे तब तक तुम्हारा पुत्र बाहर और भीतर सब तरफ अपनी जड़ जमा लेगा।

संगृहीतमनुष्यश्च सुहृद्भिः साकमात्मवान्।
प्राप्तकां नु मन्येऽहं राजानं वीतसाध्वसा।। २५।।
रामाभिषेकसंकल्पान्निगृह्य विनिवर्तय।

तब तक उसके पास सैन्यबल हो जायेगा। वह मनस्वी अपने मित्रों को तैयार कर लेगा। इसलिये मैं यह समझती हूँ कि यह अच्छा समय है। तुम निडर होकर राजा को जबर्दस्ती वश में कर उन्हें राम के अभिषेक के विचार से हटा दो।

अनर्थमर्थरूपेण ग्राहिता सा ततस्तया।। २६।।
हृष्टा प्रतीता कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत्।
प्रज्ञां ते नावजानामि श्रेष्ठे श्रेष्ठाभिधायिनि।। २७।।
त्वमेव तु ममार्थेषु नित्ययुक्ता हितैषिणी।
नाहं समवबुद्ध्येयं कुब्जे राज्ञश्चिकीर्षितम्।। २८।।

इस प्रकार मन्थरा ने यह अनर्थ विचार उसकी बुद्धि में सार्थक रूप में जमा दिया। कैकेयी तब प्रसन्न हो मन्थरा से बोली कि अच्छी बात कहने में तू सबसे श्रेष्ठ है। मैं तेरी बुद्धि की अवहेलना नहीं करूँगी। तू ही मेरी भलाई में सदा लगी रहती है। तू ही मेरी हितैषिणी है। हे कुब्जा! यदि तू न बताती तो मैं राजा क्या करना चाहते हैं, इसे कभी अच्छी तरह न समझ पाती।

इति प्रशस्यमाना सा कैकेयीमिदमब्रवीत्।
शयानां शयने शुभ्रे वेद्यामाग्निशिखामिव।। २९।।
गतोदके सेतुबन्धो न कल्याणि विधीयते।
उत्तिष्ठ कुरु कल्याणं राजानमनुदर्शय।। ३०।।

इस प्रकार से प्रशंसा किये जाने पर वह शुभ्र शय्या पर वेदी में अग्नि की ज्वाला के समान शयन करने वाली उस कैकेयी से बोली कि हे कल्याणी! पानी बह जाने पर बाँध बनाने से कोई लाभ नहीं है। इसलिये उठो और अपना कल्याण करो और राजा को अपना रूप दिखाओ।

तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह।
क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्यमदगर्विता।। ३१।।
अनेकशतसाहस्रं मुक्ताहारं वराङ्गना।
अवमुच्य वरार्हाणि शुभान्यन्याभरणानि च।। ३२।।
तदा हेमोपमा तत्र कुब्जावाक्यवशंगता।
संविश्य भूमौ कैकेयी मन्थरामदिमब्रवीत्।। ३३।।

इस प्रकार प्रोत्साहित किये जाने पर वह सोने के समान कान्तिवाली, अपने सौभाग्य के गर्व से गर्वीली, बड़ी आँखों वाली सुन्दर स्त्री देवी कैकेयी मन्थरा के साथ कोप भवन में जाकर लाखों के मोतियों के हारों को और बहुमूल्य सुन्दर आभूषणों को फेंककर कुब्जा की बातों के वश में होकर भूमि पर लेट कर मन्थरा से बोली।

इह वा मां मृतां कुब्जे नृपायावेदयिष्यसि।
वनं तु राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यते क्षितिम्।। ३४।।
सुवर्णेन न मे ह्यर्थो न रत्नैर्न च भोजनैः।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते।। ३५।।

हे कुब्जे! या तो तू राजा को मेरी मृत्यु का समाचार सुनायेगी या राम के वन में जाने पर भरत राज्य को प्राप्त करेगा। मुझे न सुवर्ण से मतलब है और न रत्नों से और ना ही मैं भोजन करूँगी। यदि राम का अभिषेक किया जाता है तो यह मेरे जीवन का अन्त होगा।

नवाँ सर्ग

राजा दशरथ का कैकेयी के भवन में जाना और उसे कोपभवन में स्थित देखकर दुःखी होना तथा उसे अनेक प्रकार से सान्त्वना देना।

सा दीना निश्चयं कृत्वा मन्थरावाक्यमोहिता।
नागकन्येव निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च भामिनी।। १।।
मुहूर्तं चिन्तयामास मार्गमात्मसुखावहम्।
आज्ञाप्य तु महाराजो राघवस्याभिषेचनम्।। २।।
उपस्थानमनुज्ञाप्य प्रविवेश निवेशनम्।

मन्थरा की बातों से दीन और मोहित बनी हुई उस भामिनी कैकेयी ने एक मुहूर्त तक अपने लिये सुखदायी मार्ग के विषय में विचार किया और फिर नागकन्या के समान लम्बी और गर्म साँसे छोड़ने लगी। उधर श्रीराम के अभिषेक के लिये उचित आज्ञाएँ देकर और सबको यथासमय उपस्थित होने के लिये कहकर महाराज दशरथ ने अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया।

अद्य रामाभिषेको वै प्रसिद्ध इति जज्ञिवान्।। ३।।
प्रियार्हां प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी।
स कैकेय्या गृहं श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः।। ४।।
पाण्डुराभ्रमिवाकाशं राहुयुक्तं निशाकरः।

उन्होंने समझा कि आज ही राम के अभिषेक की प्रसिद्धि की गई है, अतः शायद रानियों को इस विषय में मालूम नहीं होगा। इसलिये अपनी प्यारी रानी को यह समाचार सुनाने के लिये उन जितेन्द्रिय ने अन्तःपुर में प्रवेश किया, जैसे राहु से युक्त श्वेत बादलों वाले आकाश में चन्द्रमा पदार्पण करता है।

वादित्ररवसंघुष्टं कुब्जावामनिकायुतम्।। ५।।
लतागृहैश्चित्रगृहैश्चम्पकाशोकशोभितैः ।
दान्तराजत सौवर्णवेदिकाभिः समायुतम्।। ६।।
नित्यपुष्पफलैर्वृक्षैर्वापीभिरुपशोभितम् ।

वहाँ वाद्ययंत्रों की ध्वनि गूँज रही थी। उस महल में कुब्जा और बौनी दासियाँ सेवा करती थीं। वहाँ

लतागृहों, चम्पक और अशोकवृक्षों से सुशोभित चित्रगृह थे। वहाँ हाथीदाँत, चाँदी और सोने की वेदियाँ बनी हुई थीं। वह महल सदा खिलने वाले फूलों, फलवाले वृक्षों और बावलियों से सुशोभित था।

दान्तराजतसौवर्णैः संवृतं परमासनैः।। ७।।
विविधैरन्नपानैश्च भक्ष्यैश्च विविधैरपि।
उपपन्नं महार्हैश्च भूषणैस्त्रिदिवोपमम्।। ८।।
स प्रविश्य महाराजः स्वमन्तःपुरमृद्धिमत्।
न ददर्श स्त्रियं राजा कैकेयीं शयनोत्तमे।। ९।।

वहाँ हाथीदाँत, चाँदी और सोने के सुन्दर सिंहासन रखे हुए थे। वहाँ बहुत प्रकार के अन्न, पान और खाद्य पदार्थ विद्यमान थे। बहुमूल्य आभूषणों से सम्पन्न वह भवन स्वर्ग के समान शोभा पा रहा था। महाराज ने अपने उस समृद्धिशाली अन्तःपुर में प्रवेश कर वहाँ उत्तम शय्या पर अपनी रानी कैकेयी को नहीं देखा।

स कामबलसंयुक्तो रत्यर्थी मनुजाधिपः।
अपश्यन् दयितां भार्यां पप्रच्छ विषसाद च।। १०।।
नहि तस्य पुरा देवी तां वेलामत्यवर्तत।
न राजा गृहं शून्यं प्रविवेश कदाचन।। ११।।
ततो गृहगतो राजा कैकेयीं पर्यपृच्छत।
यथापुरमविज्ञाय स्वार्थलिप्सुमपण्डिताम्।। १२।।

कामनाओं से युक्त, प्रेम का इच्छुक वह राजा अपनी पत्नी को न देखकर दुःखी होकर उसके विषय में पूछने लगा। उससे पहले कभी भी रानी राजा के आगमन के समय कहीं नहीं गयी थी और न ही राजा ने सूने घर में कभी प्रवेश किया था। तब वे यह न जानते हुए कि वह मूर्खा स्वार्थ को पूरा करना चाहती है, पहले के समान घर में जाकर कैकेयी के विषय में पूछताछ करने लगे।

प्रतिहारी त्वथोवाच संत्रस्ता तु कृताञ्जलिः।
देव देवी भृशं क्रुद्धा क्रोधागारमभिद्रुता।। १३।।
प्रतीहार्या वचः श्रुत्वा राजा परमदुर्मनाः।
विषसाद पुनर्भूयो लुलितव्याकुलेन्द्रियः।। १४।।

डरी हुई प्रतिहारी ने तब हाथ जोड़कर कहा कि देव! देवी बहुत क्रोध में भरकर कोपभवन की तरफ दौड़ी हुई गयीं हैं। प्रतिहारी की बात सुनकर राजा बहुत दुःखी हो गये। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं और वे बहुत उदास हो गये।

तत्र तां पतितां भूमौ शयानामतथोचिताम्।
प्रतप्त इव दुःखेन सोऽपश्यज्जगतीपतिः।। १५।।
सवृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।
अपापः पापसंकल्पां ददर्श धरणीतले।। १६।।

राजा ने दुःख से जलते हुए के समान देखा कि कैकेयी कोप भवन में भूमि पर अनुचित अवस्था में पड़ी हुई थी। राजा बूढ़े थे, उनकी वह पत्नी जवान थी, वह उन्हें प्राणों से भी प्यारी थी। राजा निष्पाप थे, पर वह पाप का संकल्प लेकर धरती पर पड़ी हुई थी।

लतामिव विनिष्कृत्तां हरिणीमिव संयताम्।
करेणुमिव दिग्धेन विद्धां मृगयुना वने।। १७।।
परिमृज्य च पाणिभ्यामभिसंत्रस्तचेतनः।
कामी कमलपत्राक्षीमुवाच वनितामिदम्।। १८।।

भूमि पर पड़ी हुई कैकेयी ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे कटी हुई लता हो, या जाल में बाँधी हुई हरिणी हो। तब कामनाओं से युक्त राजा ने, जिसकी आत्मा भयभीत थी, उसके अंगों को ऐसे ही सहलाया जैसे जंगल में शिकारी के द्वारा जहरीले बाण से बीधी हुई और दुःख पाती हुई हथिनी को गजराज स्नेह से स्पर्श करता है। वह उस कमलनयन पत्नी से यह बोला।

न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संश्रितम्।। १९।।
देवि केनाभियुक्तासि केन वासि विमानिता।
यदिदं मम दुःखाय शेषे कल्याणि पांसुषु।। २०।।
भूमौ शेषे किमर्थं त्वं मयि कल्याणचेतसि।

हे देवि! तुमने अपने अन्दर क्रोध जो एकत्र किया हुआ है, उसके विषय में मैं नहीं जान रहा हूँ। किसने तुम्हारा अपराध किया है? या किसने तुम्हारा अपमान किया है? मैं तुम्हारे लिये अपने हृदय में सदा कल्याण की भावना रखता हूँ। फिर मेरे रहते हुए हे कल्याणी मुझे दुःख देने के लिये जमीन पर धूल में क्यों लेट रही हो?

सन्ति मे कुशला वैद्यास्त्वभितुष्टाश्च सर्वशः।। २१।।
सुखितां त्वां करिष्यन्ति व्याधिमाचक्ष्व भामिनि।
कस्य वापि प्रियं कार्यं केन वा विप्रियं कृतम्।। २२।।
कः प्रियं लभतामद्य को वा सुमहदप्रियम्।

हे भामिनी! तुम अपनी बीमारी बताओ। मेरे पास सब तरह से सन्तुष्ट किये हुए कुशल चिकित्सक हैं। वे तुम्हें नीरोग कर देंगे। या बताओ किसका प्रिय करना है? या किसने तुम्हारा अप्रिय किया है? किसको प्रिय पारितोषिक दूँ या किसको महान दण्ड दिया जाये?

मारौत्सीर्मा च कार्षीस्त्वं देवि सम्परिशोषणम्॥ २३॥
अवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम्।
दरिद्रः को भवेदाढ्यो द्रव्यवान् वाप्यकिंचनः॥ २४॥

हे देवी! रोओ मत, अपने शरीर को मत सुखाओ। बताओ किस न वध करने योग्य का वध कर दिया जाये या किस वध करने योग्य को छोड़ दिया जाये। किस दरिद्र को धनवान बना दिया जाये या किस धनवान को दरिद्र बना दिया जाये?

अहं च हि मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः।
न ते कंचिदभिप्रायं व्याहन्तुमहमुत्सहे॥ २५॥
आत्मनो जीवितेनापि ब्रूहि यन्मनसि स्थितम्।
बलमात्मनि जानन्ती न मां शङ्कितुमर्हसि॥ २६॥
करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे।

मैं और मेरे सारे सेवक तुम्हारे आधीन हैं। मैं तुम्हारे किसी भी मनोरथ को भंग करने की हिम्मत नहीं कर सकता, चाहे मुझे अपने प्राण ही क्यों न देने पड़े। इसलिये जो तुम्हारे मन में हो उसे बताइये। अपने मन में तुम मेरी शक्ति को जानती हो, इसलिये तुम्हें शंका नहीं करनी चाहिये। मैं अपने अच्छे कर्मों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा।

किमायासेन ते भीरु उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शोभने॥ २७॥
तत्त्वं मे ब्रूहि कैकेयि यतस्ते भयमागतम्।
तत् ते व्यपनयिष्यामि नीहारमिव रश्मिवान्॥ २८॥
तथोक्ता सा समाश्वस्ता वक्तु कामा तदप्रियम्।
परिपीडयितुं भूयो भर्तारमुपचक्रमे॥ २९॥

इतना परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है? हे भीरू! हे शोभने! उठो उठो। हे कैकेयी तुम्हें किससे भय प्राप्त हुआ है, मैं उसे ऐसे ही दूर कर दूँगा जैसे सूर्य कुहरे को कर देते हैं। राजा के ऐसा कहने पर कैकेयी आश्वस्त हुई। तब इस अप्रिय बात को कहने के लिये उसने अपने पति को और अधिक पीड़ा देना प्रारम्भ किया।

दसवाँ सर्ग

कैकेयी का राजा को प्रतिज्ञाबद्ध करके उन्हें पहले के दिये दो वरों का स्मरण कराकर भरत के लिये अभिषेक और राम के लिये चौदह वर्ष का बनवास माँगना।

तं मन्मथशरैर्विद्धं कामवेगवशानुगम्।
उवाच पृथिवीपालं कैकेयी दारुणं वचः॥ १॥
नास्मि विप्रकृता देव केनचिन्नावमानिता।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित् तमिच्छामि त्वया कृतम्॥ २॥

तब कैकेयी ने राजा से जो कामदेव के बाणों से बिंधे हुए, कामनाओं के वश में होकर उसकी खुशामद कर रहे थे, यह भयानक वचन कहे कि हे देव! न तो मेरा किसी ने अपकार किया है और न अपमान किया किया है। मैं तो अपने किसी मनोरथ को तुम्हारे द्वारा पूरा किया हुआ देखना चाहती हूँ।

प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि।
अथ ते व्याहरिष्यामि यथाभिप्रार्थितं मया॥ ३॥
तामुवाच महाराजः कैकेयीमीषदुत्स्मयः।
कामी हस्तेन संगृह्य मूर्धजेषु भुवि स्थिताम्॥ ४॥

यदि तुम करना चाहते हो तो प्रतिज्ञा करो। इसके पश्चात मैं अपने अभिप्राय को आपसे कहूँगी। राजा दशरथ काम के आधीन हो रहे थे। वह कुछ मुस्कारते हुए भूमि पर पड़ी हुई कैकेयी के बालों को हाथों से पकड़कर उससे बोले।

अवलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम।
मनुजो मनुजव्याघ्राद् रामादन्यो न विद्यते॥ ५॥
तेनाजय्येन मुख्येन राघवेण महात्मना।
शपे जीवनार्हेण ब्रूहि यन्मनसेप्सितम्॥ ६॥

हे अपने सौभाग्य पर घमण्ड करने वाली! क्या तुम नहीं जानती कि मुझे तुमसे अधिक प्यारा नरश्रेष्ठ राम के सिवाय कोई मनुष्य नहीं है। मैं उस जीवन के समान मूल्यवान, अजेय, प्रमुख पुरूष, महात्मा राम की शपथ खाता हूँ। तुम अपने मन की बात कहो।

यं मुहूर्तमपश्यंस्तु न जीवे तमहं ध्रुवम्।
तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम्॥ ७॥
आत्मना चात्मजैश्चान्यैर्वृणे यं मनुजर्षभम्।
तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम्॥ ८॥

हे कैकेयी! जिस राम को एक घड़ी न देखने पर भी मैं निश्चितरूप से जीवित नहीं रह सकता, उस राम

की शपथ खाकर मैं तुम्हारे वचनों को पूरा करूँगा। जिस पुरूषश्रेष्ठ को मैं अपने आपको, तथा दूसरे पुत्रों को भी देकर लेना चाहता हूँ, उस राम की शपथ खाकर मैं तुम्हारे वचनों को पूरा करूँगा।

तेन वाक्येन संहृष्टा तमभिप्रायमात्मनः।
व्याजहार महाघोरमभ्यागतमिवान्तकम्।। ९।।
स्मर राजन् पुरा वृत्तं तस्मिन् देवासुरे रणे।
तत्र त्वां च्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा।। १०।।

राजा के उन वाक्यों से कैकेयी बड़ी प्रसन्न हुई। तब उसने समीप आयी हुई मृत्यु के समान अपने उस महा भयानक अभिप्राय को प्रकट किया। वह बोली कि हे राजा! याद करो पहले देवासुर संग्राम के समय युद्धस्थल में शत्रु ने आपको अत्यन्त घायल कर दिया था, केवल प्राण नहीं लिये थे।

तत्र चापि मया देव यत् त्वं समभिरक्षितः।
जग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्रददौ वरौ।। ११।।
तौ दत्तौ च वरौ देव निक्षेपौ मृगयाम्यहम्।
तवैव पृथिवीपाल सकाशे रघुनन्दन।। १२।।

हे देव! वहाँ मैंने सारी रात जागते हुए तथा अन्य प्रयत्नों से आपकी रक्षा की थी। तब आपने मुझे दो वर दिये थे। उन दोनों को मैंने आपके पास ही धरोहर के रूप में रख दिया था। अब मैं उन्हीं वरों की खोज कर रही हूँ।

तत् प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद् दास्यसि मे वरम्।
अद्यैव हि प्रहास्यामि जीवितं त्वद्विमानिता।। १३।।
वाङ्मात्रेण तदा राजा कैकेय्या स्ववशे कृतः।
प्रचस्कन्द विनाशाय पाशं मृग इवात्मनः।। १४।।

यदि आप धर्मपूर्वक प्रतिज्ञा करके मेरे वरों को नहीं देंगे तो मैं आपसे अपमानित होकर आज ही प्राणों को त्याग दूँगी। इस प्रकार वाणी मात्र से राजा कैकेयी के द्वारा उस प्रकार वश में कर लिये गये जैसे हिरण अपने विनाश के लिये जाल में फँस जाता है।

ततः परमुवाचेदं वरदं काममोहितम्।
अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः।। १५।।
अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम्।
नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।। १६।।
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः।
भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम्।। १७।।
एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे।
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने।। १८।।

उसके पश्चात् कैकेयी ने काम से मोहित और वर देने के लिये उद्यत राजा से यह कहा कि आपने यह जो राम के अभिषेक का सामान जुटाया है। इसी सामान से भरत का अभिषेक कर दिया जाये। इसके साथ हे धीर स्वभाव वाले। राम वल्कल तथा मृगचर्म धारण कर तपस्वी के वेश में चौदह वर्ष तक दण्डकारण्य में निवास करें। आज भरत को निष्कंटक युवराज पद प्राप्त हो जाये। मैं आपके द्वारा पहले दिये हुए वर को ही माँग रही हूँ। मेरी यह परम कामना है कि आज ही राम को वन में जाता हुआ देखूँ।

स राजराजो भव सत्यसंगरः
कुलं च शीलं च हि जन्म रक्ष च।
परत्र वासे हि वदन्त्यनुत्तमं
तपोधनाः सत्यवचो हितं नृणाम्।। १९।।

आप राजाओं के राजा है। इसलिये सत्य का पालन कीजिये और अपने कुल, शील और जन्म की रक्षा कीजिये। तपस्वी लोग कहते हैं कि सत्यवाणी ही लोगों के लिये हितकारी है, यह परलोक में भी कल्याणकारी है।

ग्यारहवाँ सर्ग

महाराज दशरथ की चिन्ता, विलाप, कैकेयी को फटकारना, समझाना और उससे वैसा वर न माँगने के लिये अनुरोध करना।

ततः श्रुत्वा महाराजः कैकेय्या दारुणं वचः।
चिन्तामभिसमापेदे मुहूर्तं प्रतताप च।। १।।
किं नु मेऽयं दिवास्वप्नश्चित्तमोहोऽपि वा मम।
इति संचिन्त्य तद् राजा नाध्यगच्छत् तदासुखम्।। २।।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां कैकेयीवाक्यतापितः।

तब कैकेयी के उन दारुण वचनों को सुनकर महाराज को बड़ी चिन्ता हुई वे एक मुहूर्त तक उस चिन्ता से सन्तप्त होते रहे। वे सोचने लगे कि क्या मैं दिन में ही स्वप्न देख रहा हूँ? या मेरे चित्त में मोह छा गया है? तब ऐसा सोचते हुए राजा अपने उस दुःख को समझ

नहीं पाये। फिर कुछ होश से आने पर उन्हें कैकेयी के वाक्यों पर संताप होने लगा।

व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः।। ३।।
असंवृतायामासीनो जगत्यां दीर्घमुच्छ्वसन्।
अहो धिगिति सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिपः।। ४।।
मोहमापेदिवान् भूयः शोकोपहतचेतनः।

वे उस आसन रहित जमीन पर बैठे हुए लम्बी सांसे लेते हुए ऐसे ही दुःखी और बेचैन हो रहे थे जैसे बाधिन को देखकर हिरण होता है। राजा दशरथ रोष के साथ अरे धिक्कार है, यह कहकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गये। शोक से उनकी चेतना नष्ट हो गई थी।

चिरेण तु नृपः संज्ञां प्रतिलभ्य सुदुःखितः।। ५।।
कैकेयीमब्रवीत् क्रुद्धो निर्दहन्निव तेजसा।
नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि।। ६।।
किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा।

राजा को देर में होश आया। होश में आकर वे अत्यन्त दुःखी होकर, कैकेयी को मानो अपने तेज से जलाते हुए क्रोध के साथ बोले हि हे निर्दय, दुष्टिनी। तू इस कुल का विनाश करने वाली है। हे पापिनी! राम ने या मैंने तेरा क्या अपराध किया है?

सदा ते जननीतुल्यां वृत्तिं वहति राघवः।। ७।।
तस्यैवं त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता।
त्वं मयाऽऽत्मविनाशाय भवनं स्वं निवेशिता।। ८।।
अविज्ञानान्नृपसुता व्याला तीक्ष्णविषा यथा।

श्रीराम तुम्हारे साथ सदा सगी माता जैसा व्यवहार करते हैं। उसी के इस प्रकार के अनिष्ट के लिये तू किस लिये तैयार हुई है? मैंने अपने विनाश के लिये ही तुझे अपने घर में रखा हुआ था। मैं नहीं जानता था कि तू राजकुमारी के रूप में तेज जहर वाली सर्पिणी है।

जीवलोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम्।। ९।।
अपराधं कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम्।
कौसल्यां च सुमित्रां च त्येजेयमपि वाश्रियम्।। १०।।
जीवितं चात्मनो रामं न त्वेव पितृवत्सलम्।

जब सारे प्राणी राम के गुणों का गान करते हैं तब अपने उस प्रिय पुत्र को किस अपराध से छोड़ दूँ? मैं कौशल्या को, सुमित्रा को, या ऐश्वर्य को या अपने प्राणों को भी छोड़ सकता हूँ, पर उस पितृभक्त राम को नहीं छोड़ सकता।

परा भवति मे प्रीतिर्दृष्ट्वा तनयमग्रजम्।। ११।।
अपश्यतस्तु मे रामं नष्टं भवति चेतनम्।
तिष्ठेल्लोको बिना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना।। १२।।
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्।

अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को देखकर मेरी प्रीति उमड़ने लगती है और जब मैं उसको नहीं देखता हूँ, तो मेरी चेतना नष्ट होने लगती है। संसार सूर्य के बिना रह सकता है, हरियाली पानी के बिना रह सकती है, किन्तु बिना राम के मेरा जीवन मेरे शरीर में नहीं रह सकता।

तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये।। १३।।
अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे।
किमर्थं चिन्तितं पापे त्वया परमदारुणम्।। १४।।

इसलिये हे पाप से युक्त निश्चय वाली। अपने इस निश्चय को छोड़ दे। मैं तेरे पैरों पर अपना सिर रखता हूँ। तू मुझ पर प्रसन्न हो जा। हे पापिनी! तू ने यह अत्यन्त भयानक विचार क्यों सोचा?

अथ जिज्ञाससे मां त्वं भरतस्य प्रियाप्रिये।
अस्तु यत्तत्त्वया पूर्वं व्याहृतं राघवं प्रति।। १५।।
स मे ज्येष्ठसुतः श्रीमान् धर्मज्येष्ठ इतीव मे।
तत् त्वया प्रियवादिन्या सेवार्थं कथितं भवेत्।। १६।।

यदि तू यह जानना चाहती है कि मैं भरत को प्यार करता हूँ या नहीं तो तेरा पहला माँगा वर पूरा कर देता हूँ अर्थात भरत का राज्यभिषेक कर देता हूँ। तू जो पहले कहा करती थी कि राम मेरे सबसे बड़े लड़के हैं, वे धर्मपालन में भी सबसे बड़े हैं। वह प्यारी बात तू शायद राम से अपनी सेवा कराने के लिये कहा करती थी।

इक्ष्वाकूणां कुले देवि सम्प्राप्तः सुमहानयम्।
अनयो नयसम्पन्ने यत्र ते विकृता मतिः।। १७।।
नहि किंचिदयुक्तं वा विप्रियं वा पुरा मम।
अकरोस्त्वं विशालाक्षि तेन न श्रद्दधामि ते।। १८।।

हे देवी। न्यायप्रिय इक्ष्वाकुवंश में यह बड़ा भारी अन्याय उपस्थित हो गया है जो तेरी बुद्धि विकृत हो गयी है। पहले तूने हे विशालनेत्रोंवाली कभी भी मेरे प्रति अनुचित या अप्रिय बर्ताव नहीं किया, इसलिये आज तेरी बातों पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है।

ननु ते राघवस्तुल्यो भरतेन महात्मना।
बहुशो हि स्म बाले त्वं कथाः कथयसे मम।। १९।।
तस्य धर्मात्मनो देवि वने वासं यशस्विनः।
कथं रोचसे भीरु नव वर्षाणि पञ्च च।। २०।।

हे बाले! तेरे लिये तो वास्तव में श्रीराम महात्मा भरत के ही समान हैं, ऐसा तू ने अनेक बार बातचीत के दौरान मुझसे कहा है। हे भीरू, हे देवी! उस धर्मात्मा तथा यशस्वी राम का चौदह वर्ष के लिये वन में रहना तुझे कैसे अच्छा लग रहा है।

अत्यन्तसुकुमारस्य तस्य धर्मे कृतात्मनः।
कथं रोचयसे वासमरण्ये भृशदारुणे।। २१।।
रोचस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने।
तव शुश्रूषमाणस्य किमर्थं विप्रवासनम्।। २२।।

अरी अत्यन्त कठोर दिल वाली! जिसने अपने आपको धर्म में लगाया हुआ है। जो अत्यन्त सुकुमार है, उस राम का वन में रहना तुझे कैसे अच्छा लगता है! हे सुन्दर आँखों वाली! जो सुन्दर राम तेरी सेवा में लगे रहते हैं, उसको देश निकाला देना तुझे क्यों अच्छा लग रहा है।

रामो हि भरताद् भूयस्तव शुश्रूषते सदा।
विशेषं त्वयि तस्मात् तु भरतस्य न लक्षये।। २३।।
शुश्रुषां गौरवं चैव प्रमाणं वचनक्रियाम्।
कस्तु भूयस्तरं कुर्यादन्यत्र पुरुषर्षभात्।। २४।।

राम भरत से भी अधिक तेरी सेवा करते हैं! मैं तो नहीं देखता कि भरत उनसे अधिक तेरी सेवा करते हों। उस पुरुषश्रेष्ठ राम से बढ़कर कौन है जो गुरुओं की सेवा करने, उन्हें गौरव देने और उनकी वाणी के अनुसार कार्य करने में अधिक तत्परता दिखाता हो।

सान्त्वयन् सर्वभूतानि रामः शुद्धेन चेतसा।
गृह्णाति मनुजव्याघ्रः प्रियैर्विषयवासिनः।। २५।।
सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान् दानेन राघवः।
गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान्।। २६।।

नरश्रेष्ठ राम अपने शुद्ध हृदय से सान्त्वना देते हुए प्रिय व्यवहार से प्रजा के लोगों को, दान से ब्राह्मणों को, सेवा से गुरुओं को और धनुष से युद्ध में शत्रुओं को अपने आधीन कर लेते हैं।

सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे।। २७।।
तस्मिन्नार्जवसम्पन्ने देवि देवोपमे कथम्।
पापमाशंससे रामे महर्षिसमतेजसि।। २८।।

रामचन्द्र जी में सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, कोमलता, विद्या और गुरुओं की सेवा ये गुण तो स्थिररूप से विद्यमान रहते हैं। हे देवि! उस राम का जो सरलता से युक्त हैं, देवताओं के समान है तेज में महर्षियों के समान तेजस्वी हैं, तू किस लिये अनिष्ट करना चाहती है।

क्षमा यस्मिंस्तपस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता।
अप्यहिंसा च भूतानां तमृते का गतिर्मम।। २९।।
मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः।
दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि।। ३०।।

जिसमें क्षमा है, जिसमें तप, त्याग, सत्य धर्म और कृतज्ञता है, जिसमें प्राणियों के लिये अहिंसा है, उस राम के बिना मेरा क्या हाल होगा? हे कैकेयी! मैं बूढ़ा हूँ, मेरी मृत्यु समीप है, मेरे तपस्या करने के दिन हैं, मैं दीनता के साथ गिड़गिड़ा रहा हूँ। तुझे मुझ पर दया करनी चाहिये।

पृथिव्यां सागरान्तायां यत् किंचिदधिगम्यते।
तत् सर्वं तव दास्यामि मा च त्वं मन्युमाविश।। ३१।।
अञ्जलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते।
शरणं भव रामस्य माधर्मो मामिह स्पृशेत्।। ३२।।

समुद्र तक फैली हुई पृथ्वी पर जो कुछ भी मिल सकता है, वह सारा मैं तुझे दे दूँगा, पर दुराग्रह में मत पड़। हे कैकेयी मैं तेरे सामने हाथ जोड़ता हूँ और तेरे पैरों को भी छूता हूँ। तू राम को शरण दे, जिससे मुझे पाप न लगे।

इति दुःखाभिसंतप्तं विलपन्तमचेतनम्।
घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम्।। ३३।।
पारं शोकार्णवस्याशु प्रार्थयन्तं पुनः पुनः।
प्रत्युवाचाथ कैकेयी रौद्रा रौद्रतरं वचः।। ३४।।

महाराज दशरथ इस प्रकार दुःख से संतप्त होकर विलाप कर रहे थे। उनकी चेतनता जा रही थी, वे चक्कर खा रहे थे। शोक से भरे हुए वे उस शोक सागर से शीघ्र पार उतरने के लिये बार-बार कैकेयी से प्रार्थना कर रहे थे, किन्तु कैकेयी और भी भयानक रूप ध ारण कर कठोरतर वाणी में बोली।

यदि दत्त्वा वरौ राजन् पुनः प्रत्यनुतप्यसे।
धार्मिकत्वं कथं वीर पृथिव्यां कथयिष्यसि।। ३५।।
यदा समेता बहवस्त्वया राजर्षयः सह।
कथयिष्यन्ति धर्मज्ञ तत्र किं प्रतिवक्ष्यसि।। ३६।।

हे राजन्! यदि दोनों वरो को देकर, फिर उनके लिये पश्चाताप करते हो तो हे वीर! आप पृथिवी पर अपने धार्मिक होने के विषय में कैसे बताओगे? हे धर्म को जानने

वाले! जब बहुत से राजर्षि लोग इकट्ठे होकर तुम्हें वरों के विषय में कहेंगे, तब तुम उन्हें क्या उत्तर दोगे?

यस्याः प्रसादे जीवामि या च मामभ्यपालयत्।
तस्याः कृता मया मिथ्या कैकेय्या इति वक्ष्यसि।। ३७।।
किल्बिषं त्वं नरेन्द्राणां करिष्यसि नराधिप।
यो दत्त्वा वरमद्यैव पुनरन्यानि भाषसे।। ३८।।

आप यही कहेंगे कि जिस कैकेयी की कृपा से मैं जिन्दा हूँ, जिसने मेरा पालन किया है, उस कैकेयी से की हुई प्रतिज्ञा मैंने झूठी कर दी, यदि आप आज ही वर देकर फिर उससे विपरीत बातें कहेंगे तो हे राजा! आप अपने कुल के राजाओं के माथे कलंक लगायेंगे।

अलर्कश्चक्षुषी दत्त्वा जगाम गतिमुत्तमाम्।
समयं मानृतं कार्षीः पूर्ववृत्तमनुस्मरन्।। ३९।।
स त्वं धर्मं परित्यज्य रामं राज्येऽभिषिच्य च।
सह कौसल्यया नित्यं रन्तुमिच्छसि दुर्मते।। ४०।।

राजा अलर्क ने अपनी आँखे देकर उत्तम गति पाई थी। आप भी पुराने चरित्रों को यादकर अपनी प्रतिज्ञा को असत्य मत करिये। हे दुर्मति राजा! आप धर्म को छोड़कर, राम का अभिषेक कर सदा कौशलया के साथ मौज उड़ाना चाहते हैं।

भवत्वधर्मो धर्मो वा सत्यं वा यदि वानृतम्।
यत्त्वया संश्रुतं मह्यं तस्य नास्ति व्यतिक्रमः।। ४१।।
अहं हि विषमद्यैव पीत्वा बहु तवाग्रतः।
पश्यतस्ते मरिष्यामि रामो यद्यभिषिच्यते।। ४२।।

चाहे धर्म हो या अधर्म, सत्य हो या असत्य, जो तुमने मुझसे प्रतिज्ञा की है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। यदि राम का अभिषेक होता है तो मैं आज ही बहुत सा जहर पीकर तुम्हारे सामने तुम्हारे देखते हुए ही मर जाऊँगी।

एकाहमपि पश्येयं यद्यहं राममातरम्।
अञ्जलिं प्रतिगृह्णन्तीं श्रेयो ननु मृतिर्मम।। ४३।।
भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप।
यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात्।। ४४।।

यदि मैं एक दिन भी राम की माता को राजमाता के रूप में लोगों के प्रणामों को स्वीकार करती देख लूँगी, उस समय मेरे लिये मृत्यु अधिक कल्याणकारी होगी। हे राजा! मैं अपनी और भरत की शपथ खाकर कहती हूँ कि राम के निर्वासन के बिना किसी और बात से मैं सन्तुष्ट नहीं होऊँगी।

एतावदुक्त्वा वचनं कैकेयी विरराम ह।
विलपन्तं च राजानं न प्रतिव्याजहार सा।। ४५।।
श्रुत्वा तु राजा कैकेय्या वाक्यं परमशोभनम्।
रामस्य च वने वासमैश्वर्यं भरतस्य च।। ४६।।
नाभ्यभाषत कैकेयीं मुहूर्तं व्याकुलेन्द्रियः।
प्रैक्षतानिमिषो देवीं प्रियामप्रियवादिनीम्।। ४७।।

विलाप करते हुए राजा को उसने कोई उत्तर नहीं दिया। राजा कैकेयी के राम का वन में रहना और भरत का राज्य करना इन अत्यन्त अशुभ वचनों को सुनकर एक मुहूर्त तक कैकेयी से कुछ भी नहीं बोले। उनकी इन्द्रियों व्याकुल हो रहीं थीं। वे अपनी अप्रिय बोलने वाली प्यारी रानी को एकटक देखते रहे।

स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम्।
ध्यात्वा रामेति निःश्वस्य च्छिन्नस्तरुरिवापतत्।। ४८।।
दीनयाऽऽतुरया वाचा इति होवाच कैकयीम्।
अनर्थमिममर्थाभं केन त्वमुपदेशिता।। ४९।।

तत्पश्चात देवी कैकेयी के दृढ़ निश्चय और भयानक शपथ का ध्यान आते ही 'हा राम' कहकर उन्होंने लम्बी साँस ली और कटे हुए वृक्ष की तरह गिर पड़े। फिर उन्हेंने दीन और व्याकुल वणी में कैकेयी से कहा कि ऐसी इस अच्छे न लगने वाले अनर्थ की शिक्षा तुझे किसने दी?

राष्ट्रे भरतमासीनं वृणीषे राघवं वने।
विरमैतेन भावेन त्वमेतेनानृतेन च।। ५०।।
यदि भर्तुः प्रियं कार्यं लोकस्य भरतस्य च।
नृशंसे पापसंकल्पे क्षुद्रे दुष्कृतकारिणि।। ५१।।

हे निर्दय और दुष्ट संकल्पवाली! हे क्षुद्र पापिनी! यदि तू अपने पति का, संसार का और भरत का प्रिय करना चाहती है तो राज्य सिंहासन पर जो तू भरत को और राम को वन में भेजना चाहती है इस असत्य विचार को छोड़ दे।

किं नु दुःखमलीकं वा मयि रामे च पश्यसि।
न कथंचिदृते रामाद् भरतो राज्यमावसेत्।। ५२।।
रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्।
कथं द्रक्ष्यामि रामस्य वनं गच्छेति भाषिते।। ५३।।
मुखवर्णं विवर्णं तु यथैवेन्दुमुपप्लुतम्।

तू मुझ में या राम में कौन सी दुःखदायक या असत्य बात देख रही है। राम के बिना भरत किसी प्रकार भी राज्य को स्वीकार नहीं करेंगे। मैं उन्हें राम से भी अधिक

धर्म का पालक मानता हूँ। तुम वन को जाओ यह कहने पर ग्रस्त हुए चन्द्रमा के समान कान्तिहीन हुए राम के मुख को मैं कैसे देख सकूँगा।

तां तु मे सुकृतां बुद्धिं सुहृद्भिः सह निश्चिताम्।। ५४।।
कथं द्रक्ष्याम्यपावृत्तां परैरिव हतां चमूम्।
यदा हि बहवो वृद्धा गुणवन्तो बहुश्रुताः।। ५५।।
परिप्रक्ष्यन्ति काकुत्स्थं वक्ष्यामीह कथं तदा।
कैकेय्या क्लिश्यमानेन पुत्रः प्रव्राजितो मया।। ५६।।

राम के अभिषेक संबन्धी अच्छे कार्य का विचार मैंने मित्रों के साथ सलाह करके निश्चित किया था। अब मैं शत्रुओं द्वारा पराजित सेना की भाँति उसे उलटा हुआ कैसे देखूँगा। जब बहुत से वृद्ध, गुणवान और विद्वान लोग मुझसे राम के विषय में पूछेंगे तो मैं उनसे कैसे कहूँगा कि कैकेयी के दबाव में आने के कारण मैंने उसे घर से निकाल दिया।

यदि सत्यं ब्रवीम्येतत् तदसत्यं भविष्यति।
किं मां वक्ष्यति कौसल्या राघवे वनमास्थिते।। ५७।।
किं चैनां प्रतिवक्ष्यामि कृत्वा विप्रियमीदृशम्।

यदि मैं कहूँ कि मैंने सत्य का पालन किया है तो पहले राम के अभिषेक की कही हुई मेरी बात असत्य हो जाती है। राम के वन में जाने पर कौशल्या मुझसे क्या कहेगी? उसका इतना बड़ा अपकार करके मैं उसको क्या उत्तर दूँगा?

यदा यदा च कौसल्या दासीव च सखीव च।। ५८।।
भार्यावद् भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति।
सततं प्रियकामा मे प्रियपुत्रा प्रियंवदा।। ५९।।
न मया सत्कृता देवी सत्कारार्हा कृते तव।

हे देवी! तेरे लिये मैंने कभी उस कौशल्या का सत्कार नहीं किया, जिसका पुत्र मुझे सबसे अधिक प्यारा है। जो सदा मेरी भलाई चाहती हुई, प्रिय बोलती हुई, दासी, सखी, भार्या, बहिन, और माता के समान मेरी सेवा में उपस्थित रहती है। यद्यपि वह सत्कार पाने योग्य है।

इदानीं तत्तपति मां यन्मया सुकृतं त्वयि।। ६०।।
अपथ्यव्यञ्जनोपेतं भुक्तमन्नमिवातुरम्।
विप्रकारं च रामस्य सम्प्रयाणं वनस्य च।। ६१।।
सुमित्रा प्रेक्ष्य वै भीता कथं मे विश्वसिष्यति।

मैंने पहले जो तेरे साथ अच्छा व्यवहार किया, वह मुझे इसी प्रकार कष्ट दे रहा है जैसे बीमार व्यक्ति के द्वारा खाया गया स्वादिष्ट पर अपथ्य से युक्त अन्न उसे दुःख देता है। राम के साथ मेरा उलटा व्यवहार और उनके वन में जाने को देखकर सुमित्रा भी डर जायेगी और मेरे ऊपर विश्वास नहीं करेगी।

कृपणं बत वैदेही श्रोष्यति द्वयमप्रियम्।। ६२।।
मां च पञ्चत्वमापन्नं रामं च वनमाश्रितम्।
वैदेही बत मे प्राणाञ्शोचन्ती क्षपयिष्यति।। ६३।।
हीना हिमवतः पार्श्वे किंनरेणेव किंनरी।

हाय कितने दुःख कि बात है कि सीता को दो अप्रिय समाचार सुनने पड़ेंगे। मेरी मृत्यु और राम का वनगमन। राम के लिये शोक करती हुई सीता मेरे प्राणों को नष्ट कर देगी अर्थात मैं उस समय जीवित नहीं रह सकूँगा। जैसे हिमालय की घाटी में किन्नर से बिछुड़ी हुई किन्नरी की अवस्था होती है, वैसी ही अवस्था तब सीता की होगी।

नहि राममहं दृष्ट्वा प्रवसन्तं महावने।। ६४।।
चिरं जीवितुमाशंसे रुदन्तीं चापि मैथिलीम्।
सा नूनं विधवा राज्यं सपुत्रा कारयिष्यसि।। ६५।।

मैं राम को वन में रहते हुए और सीता को रोते हुए देखकर, देर तक जीवित रहना नहीं चाहता। तू फिर विधवा होकर पुत्र के साथ राज्य करना।

सतीं त्वामहमत्यन्तं व्यवस्याम्यसतीं सतीम्।
रूपिणीं विषसंयुक्तां पीत्वेव मदिरां नरः।। ६६।।
अनृतैर्बत मां सान्त्वैः सान्त्वयन्ती स्म भाषसे।
गीतशब्देन संरुध्य लुब्धो मृगमिवावधीः।। ६७।।

जैसे अच्छी दिखाई देने वाली जहरीली शराब को पीकर बाद में पीने वाला पछताता है, वैसे ही मैं भी तुझ दुष्टा को सती साध्वी समझता रहा, पर अब पछता रहा हूँ। तू झूठे ही मुझे मधुर वाणी में सान्त्वना दिया करती थी। गीत के द्वारा मोहित करके हिरण को मारने वाले शिकारी के समान तू ने मुझे मारा है।

अनार्य इति मामार्याः पुत्रविक्रायकं ध्रुवम्।
विकरिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मणं यथा।। ६८।।
अहो दुःखमहो कृच्छ्रं यत्र वाचः क्षमे तव।
दुःखमेवंविधं प्राप्तं पुरा कृतमिवाशुभम्।। ६९।।

अब निश्चितरूप से श्रेष्ठ लोग मुझे एक अनार्य, पुत्र को बेचदेने वाला कहकर गलियों में मेरी ऐसी निन्दा करेंगे जैसे शराब पीने वाले ब्राह्मण की करते हैं। अरे यह कितने दुःख की, कितने कष्ट की बात है कि मुझे

तेरी ये बातें क्षमा करनी पड़ रही हैं। वास्तव में ये मेरे पिछले बुरे कर्मों का फल है, जो इस प्रकार की मुसीबत मेरे ऊपर आई है।

चिरं खलु मया पापे त्वं पापेनाभिरक्षिता।
अज्ञानादुपसम्पन्ना रज्जुरुद्बन्धनी यथा।।७०।।
रममाणस्त्वया सार्थं मृत्युं त्वां नाभिलक्ष्ये।
बालो रहसि हस्तेन कृष्णसर्पमिवास्पृशम्।।७१।।

हे पापिनी! मुझ पापी ने तेरी बहुत दिनों तक रक्षा की और अज्ञानवश तुझे गले लगाया जैसे कोई अज्ञानवश फाँसी की रस्सी को गले में डाल लेता है, जैसे बच्चा खेलता हुआ काले साँप को पकड़ लेता है वैसे ही मैंने भी तेरे साथ एकान्त में रमण किया पर यह नहीं समझा तू मेरी मृत्यु है।

तं तु मां जीवलोकोऽयं नूनमाक्रोष्टुमर्हति।
मया ह्यपितृकः पुत्रः स महात्मा दुरात्मना।।७२।।
बालिशो बत कामात्मा राजा दशरथो भृशम्।
स्त्रीकृते यः प्रियं पुत्रं वनं प्रस्थापयिष्यति।।७३।।

मुझ दुष्ट ने अपने महात्मा पुत्र को पिता रहित कर दिया। इसलिये दुनिया के लोग निश्चित रूप से मुझे गालियाँ देंगे और उन्हें देनी चाहिये। वे मेरी निन्दा करते हुए कहेंगे कि राजा दशरथ बड़ा मूर्ख और कामी है जो स्त्री के लिये प्यारे बेटे को वन में भेज रहा है।

वेदैश्च ब्रह्मचर्यैश्च गुरुभिश्चोपकर्शितः।
भोगकाले महत्कृच्छ्रं पुनरेव प्रपत्स्यते।।७४।।
नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रतिभाषितुम्।
स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वक्ष्यति।।७५।।

श्रीराम अब तक तो वेदाध्ययन, ब्रह्मचर्य और गुरुओं की आज्ञा पालन में ही दुर्बल होते चले आये हैं, अब जब उनके सुख भोगने का समय आया है वे फिर कष्टमय जीवन में पड़ जायेंगे। वे इतने आज्ञाकारी हैं कि मेरे वन में जाओ, यह कहने पर ही वह, बहुत अच्छा, यही उत्तर देंगे, कोई दूसरी बात कह कर मुझे उलटा जवाब नहीं देंगे।

यदि मे राघवः कुर्याद् वनं गच्छेति चोदितः।
प्रतिकूलं प्रियं मे स्यान्न तु वत्सः करिष्यति।।७६।।
राघवे हि वनं प्राप्ते सर्वलोकस्य धिक्कृतम्।
मृत्युरक्षमणीयं मां नयिष्यति यमक्षयम्।।७७।।

यदि वन में जाओ यह कहने पर श्रीराम मेरे कथन के प्रतिकूल आचरण करें तो यह मेरे लिये प्रिय होगा, पर मेरा बेटा ऐसा नहीं करेगा। राम के वन को चले जाने पर सारे लोगों द्वारा धिक्कारा जाता हुआ मुझ अक्षम्य को मृत्यु समाप्त कर देगी।

मृते मयि गते रामे वनं मनुजपुङ्गवे।
इष्टे मम जने शेषे किं पापं प्रतिपत्स्यसे।।७८।।
कौसल्यां च सुमित्रां च मां च पुत्रैस्त्रिभिः सह।
प्रक्षिप्य नरके सा त्वं कैकेयि सुखिता भव।।७९।।

नरश्रेष्ठ राम के वन जाने पर, मेरे मर जाने पर मेरे जो प्रिय जन बचेंगे, उन पर तू कौन से अत्याचार करेगी? हे कैकेयी! तू कौशलिया को, सुमित्रा को, और तीनों पुत्रों के साथ मुझको दुःख रूपी नरक में फेंककर सुखी हो जाना।

मया रामेण च त्यक्तं शाश्वतं सत्कृतं गुणैः।
इक्ष्वाकुकुलमक्षोभ्यमाकुलं पालयिष्यसि।।८०।।
प्रियं चेद् भरतस्यैतत् रामप्रव्राजनं भवेत्।
मा स्म मे भरतः कार्षीत् प्रेतकृत्यं गतायुषः।।८१।।

गुणों से युक्त, शाश्वत, क्षोभरहित यह इक्ष्वाकु कुल मेरे और राम से रहित होकर व्याकुल हो जायेगा, तब तू इसका पालन करना यदि भरत को राम को वन में भेजा जाना अच्छा लगे तो मेरे मरने पर वह मेरी अन्त्येष्टि न करे।

त्वं राजपुत्रि दैवेन न्यवसो मम वेश्मनि।
अकीर्तिश्चातुला लोके ध्रुवः परिभवश्च मे।।८२।।
सर्वभूतेषु चावज्ञा यथा पापकृतस्तथा।
कथं रथैर्विभुर्यात्वा गजाश्वैश्च मुहुर्मुहुः।।८३।।
पद्भ्यां रामो महारण्ये वत्सो मे विचरिष्यति।

हे राजकुमारी! यह मेरा दुर्भाग्य था कि तू मेरे घर में आकर बस गयी। क्योंकि तेरे कारण मुझे पापी के समान अत्यधिक उपयश, तिरस्कार और सारे, प्राणियों की अवहेलना प्राप्त होगी। मेरा पुत्र सामर्थ्यशाली राम बार बार रथों, घोड़ों और हाथियों के द्वारा यात्रा करके कैसे अब घने जंगलों में पैदल घूमेगा?

यस्य चाहारसमये सूदाः कुण्डलधारिणः।।८४।।
अहंपूर्वाः पचन्ति स्म प्रसन्नाः पानभोजम्।
स कथं नु कषायाणि तिक्तानि कटुकानि च।।८५।।
भक्षयन् वन्यमाहारं सुतो मे वर्तयिष्यति।

जिसके भोजन करने के समय कुण्डल पहने हुए रसोइये प्रसन्न होकर पहले मैं बनाऊँगा ऐसा कहते हुए खाने पीने की सामग्री तैयार करते हैं, वह मेरा पुत्र जंगली कसैले, कड़वे और तीखे फल खाकर कैसे निर्वाह करेगा।

महार्हवस्त्रसम्बद्धो भूत्वा चिरसुखोचितः।। ८६।।
काषायपरिधानस्तु कथं रामो भविष्यति।
कस्येदं दारुणं वाक्यमेवंविधमपीरितम्।। ८७।।
रास्यारण्यगमनं भरतस्याभिषेचनम्।
धिगस्तु योषितो नाम शठाः स्वार्थपरायणाः।
न ब्रवीमि स्त्रियः सर्वा भरतस्यैव मातरम्।। ८८।।

जो राम बहुमूल्य वस्त्र पहनने हुए चिरकाल से सुख में ही रहे हैं अब वे गेरुए वस्त्र पहन कर कैसे रहेंगे। इस प्रकार के भयानक वाक्य कि भरत का अभिषेक और राम का वन में जाना तूने किसकी प्रेरणा से कहे है? स्त्रियों को धिक्कार है, वे दुष्ट और स्वार्थी होती है। पर मैं सारी स्त्रियों को नहीं कह रहा हूँ, केवल भरत की माता ही ऐसी है।

परित्यजेयुः पितरोऽपि पुत्रान्
भार्याः पतींश्चापि कृतानुरागाः।
कृत्स्नं हि सर्वं कुपितं जगत् स्याद्
दृष्ट्वैव रामं व्यसने निमग्नम्।। ८९।।

राजु जैसे व्यक्ति को कष्टों में डूबा हुआ देखकर भविष्य में सारा संसार विपरीत व्यवहार वाला बन जाएगा। पिता अपने पुत्रों को छोड़ देंगे और प्रेम करने वाली स्त्रियाँ भी अपने पतियों को छोड़ देंगी।

नृशंसवृत्ते व्यसनप्रहारिणि
प्रसह्य वाक्यं यदिहाद्य भाषसे।
न नाम ते तेन मुखात् पतन्त्यधो
विशीर्यमाणा दशनाः सहस्रधा।। ९०।।

हे दुष्ट आचरण वाली! तू मुझ संकट में पड़े हुए पर प्रहार कर रही है। तू जो दुराग्रहपूर्वक कठोर बातों को आज मुख से निकाल रही है, तो तेरे दाँत टुकड़े टुकड़े होकर तेरे मुख से क्यों नहीं गिर पड़ते।

न किंचिदाहाहितमप्रियं वचो
न वेत्ति रामः परुषाणि भाषितुम्।
कथं तु रामे ह्यभिरामवादिनि
ब्रवीषि दोषान् गुणनित्यसम्मते।। ९१।।

श्री राम का अपने गुणें के कारण नित्य सम्मान होता है। उन्होंने कभी किसी से अप्रिय और अनर्थकारी बात नहीं कही। राम कठोर वचन बोलना जानते ही नहीं। ऐसे प्रिय बोलने वाले राम में तू दोषों को कैसे बता रही है?

प्रताम्य वा प्रज्वल वा प्रणश्य वा
सहस्रशो वा स्फुटितां महीं व्रज।
न ते करिष्यामि वचः सुदारुणं
ममाहितं केकेयराजपांसने।। ९२।।

ओ केकयराज को कलंकित करने वाली! तेरे इन कठोर और मर्म को छेदने वाले वचनों को मैं पूरा नहीं करूँगा। चाहे तू ग्लानि में डूब जा, या आग में जल जा या किसी और तरह से मर जा या धरती में हजारों दरारें बनाकर उनमें समा जा।

क्षुरोपमां नित्यमसत्प्रियंवदां
प्रदुष्टभावां स्वकुलोपघातिनीम्।
न जीवितुं त्वां विषहेऽमनोरमां
दिधक्षमाणां हृदय सबन्धनम्।। ९३।।

तू उस्तरे के समान काटने वाली है। तू सदा अनिष्ट से भरी हुई मीठी बातें बनाया करती है। तू कुल को नष्ट करने वाली है। तू बदसूरत है। तू मेरे हृदय को मेरे प्राणों के साथ जला रही है। मै तेरा जीवित रहना सहन नहीं कर सकता।

न जीवितं मेऽस्ति कुतः पुनः सुखं
विनात्मजेनात्मवतां कुतो रतिः।
ममाहितं देवि न कर्तुमर्हसि
स्पृशामि पादावपि ते प्रसीद मे।। ९४।।

देवी! अपने पुत्र राम के बिना मेरा जीवन नहीं रहेगा। सुख की बात क्या है? अत्मज्ञ लोगों को भी पुत्र से अलग होकर सुख कैसे मिल सकता है? इसलिये तू मेरा अहित मत कर। मैं तेरे पैर छूता हूँ। तू मुझ पर प्रसन्न हो।

स भूमिपालो विलपन्ननाथवत्
स्त्रिया गृहीतो हृदयेऽतिमात्रया।
पपात देव्याश्चरणौ प्रसारिता-
वुभावसम्प्राप्य यथाऽऽतुरस्तथा।। ९५।।

इस प्रकार स्त्री के द्वारा हृदय को अत्यधिक जकड़ लिये जाने पर वह राजा अनाथ की तरह से रोते हुए उस देवी के फैलाए हुए पैरों को छूने का प्रयत्न करते हुए, उन्हें प्राप्त न कर उसी प्रकार गिर पड़े जैसे कोई बीमार व्यक्ति किसी वस्तु को लेना चाहे पर कमजोरी के कारण उस पदार्थ तक न पहुँचकर बीच में ही गिर जाये।

बारहवाँ सर्ग

राजा का विलाप और कैकेयी से अनुरोध करना।

अनर्थरूपासिद्धार्था ह्यभीता भयदर्शिनी।
पुनराकारयामास तमेव वरमङ्गना।। १।।
त्वं कत्थसे महाराज सत्यवादी दृढव्रतः।
मम चेदं वरं कस्माद् विधारयितुमिच्छसि।। २।।

वह अनर्थरूप कैकेयी, जो बिल्कुल निडर थी और भरत के लिये भविष्य में भय को देख रही थी, फिर उसी वर के लिये राजा से कहने लगी। हे महाराज! आप तो अपने को सत्यवादी और दृढ़व्रत कहते थे, फिर मेरे वर को क्यों हड़पना चाहते हो?

एवमुक्तस्तु कैकेय्या राजा दशरथस्तदा।
प्रत्युवाच ततः क्रुद्धो मुहूर्तं विह्वलन्निव।। ३।।
मृते मयि गते रामे वनं मनुजपुङ्गवे।
हन्तानार्ये ममामित्रे सकामा सुखिनी भव।। ४।।

कैकेयी के ऐसा कहने पर तब राजा दशरथ दो घड़ी तक बेचैनी की अवस्था में रहे फिर क्रुद्ध होकर उसे उत्तर देने लगे कि अरी नीच! तू मेरी शत्रु है! जब नरश्रेष्ठ राम वन में चले जायेंगे और मैं मर जाऊँगा तब मेरी कामना पूरी हो जायेगी! तू सुख से रहना।

अपुत्रेण मया पुत्रः श्रमेण महता महान्।
रामो लब्धो महातेजाः स कथं त्यज्यते मया।। ५।।
शूरश्च कृतविद्यश्च जितक्रोधः क्षमापरः।
कथं कमलपत्राक्षो मया रामो विवास्यते।। ६।।

मैं पुत्रहीन था। मैंने बड़े परिश्रम से राम जैसा महान तेजस्वी पुत्र प्राप्त किया है, उसे मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? राम शूर है, विद्यावान है, उन्होंने क्रोध को जीत रखा है, वे क्षमाशील है, ऐसे कमलनयन को मैं कैसे निकाल सकता हूँ।

कथमिन्दीवरश्यामं दीर्घबाहुं महाबलम्।
अभिराममहं रामं स्थापयिष्यामि दण्डकान्।। ७।।
सुखानामुचितस्यैव दुःखैरनुचितस्य च।
दुःखं नामानुपश्येयं कथं रामस्य धीमतः।। ८।।

जो नीले कमल के समान कान्तिवाले हैं, जिनकी बाहें लम्बी हैं, जो महाबलशाली हैं, जो सुन्दर हैं, उन्हें मैं दण्डकारण्य में भेज दूँ? जो धीमान सुखों के ही योग्य हैं, दुःखों के योग्य बिल्कुल नहीं हैं, उन्हें दुःख भोगते मैं कैसे देखूँगा?

यदि दुःखमकृत्वा तु मम संक्रमणं भवेत्।
अदुःखार्हस्य रामस्य ततः सुखमवाप्नुयाम्।। ९।।
नृशंसे पापसंकल्पे रामं सत्यपराक्रमम्।
किं विप्रियेण कैकेयि प्रियं योजयसे मम।। १०।।
अकीर्तिरतुला लोके ध्रुवं परिभविष्यति।

जो राम दुःख के लिये अयोग्य हैं, उन्हें दुःख देने से पहले ही मेरी मृत्यु हो जाये तो मुझे सुख हो जाये। अरी निर्दय और पापपूर्ण विचार वाली! सत्य पराक्रमी राम मेरे बहुत प्रिय हैं। तू उनका मुझसे बिछोह क्यों करा रही है? तेरी संसार में ऐसी अकीर्ति होगी कि जिसकी कोई तुलना नहीं होगी।

सा त्रियामा तदार्तस्य चन्द्रमण्डलमण्डिता।। ११।।
राज्ञो विलपमानस्य न व्यभासत शर्वरी।
सदैवोष्णं विनिश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः।। १२।।
विललापार्तवद् दुःखं गगनासक्तलोचनः।

यद्यपि वह रात चन्द्रमा की चाँदनी से सुशोभित हो रही थी, पर दुःखी और विलाप करते हुए राजा को वह बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगी। बूढ़े राजा दशरथ लगातार गर्म साँसें भरते हुए, आकाश की तरफ देखते हुए आर्त व्यक्ति के समान दुःखपूर्ण विलाप करते रहे।

न प्रभातं त्वयेच्छामि निशे नक्षत्रभूषिते।। १३।।
क्रियतां मे दया भद्रे मयायं रचितोऽञ्जलिः।
अथवा गम्यतां शीघ्रं नाहमिच्छामि निर्घृणाम्।। १४।।
नृशंसां कैकयीं द्रष्टुं यत्कृते व्यसनं मम।

वे कहने लगे कि हे नक्षत्रों से भरी हुई रात्रि मैं नहीं चाहता कि तुम प्रातः काल को उपस्थित करो। मैं तुम्हें हाथ जोड़ता हूँ। हे कल्याणि! तुम मेरे ऊपर दया करो। अथवा तुम जल्दी चली जाओ। मैं इस दुष्ट और निर्दय कैकेयी को, जिसके कारण मुझे पर मुसीबत आई है, देखना नहीं चाहता।

साधुवृत्तस्य दीनस्य त्वद्गतस्य गतायुषः।। १५।।
प्रसादः क्रियतां भद्रे देवि राज्ञो विशेषतः।
शून्ये न खलु सुश्रोणि मयेदं समुदाहृतम्।। १६।।
कुरु साधुप्रसादं मे बाले सहृदया ह्यसि।

हे कल्याणमयी देवी! जो साधु स्वभाव है, दीन है, जिसकी आयु समाप्त हो रही है, जो तेरे आश्रित है,

और विशेषरूप से राजा है, ऐसे मुझ पर दया कर। हे सुन्दर कमर वाली! मैंने राम के अभिषेक की घोषणा किसी शून्य स्थान में नहीं अपितु भरी सभा में की है। इसलिये हे बाले! तू बड़ी सहृदय है। तू मेरी भलाई कर, मुझ पर कृपा कर।

प्रसीद देवि रामो मे त्वद्दत्तं राज्यमव्ययम्।। १७।।
लभतामसितापाङ्गे यशः परमवाप्स्यसि।
मम रामस्य लोकस्य गुरूणां भरतस्य च।
प्रियमेतद् गुरूश्रोणि कुरु चारुमुखेक्षणे।। १८।।

हे काली आँखों वाली देखी! प्रसन्न हो। तुम्हें बहुत यश मिलेगा। हे सुन्दर मुख और आँखों वाली, हे स्थूल नितम्बों वाली! तू मेरा, राम का, सारी प्रजा का, गुरुओं का और भरत का भी यह प्रिय कार्य कर।

विशुद्धभावस्य हि दुष्टभावा
दीनस्य ताम्राश्रुकलस्य राज्ञः।
श्रुत्वा विचित्रं करुणं विलापं
भर्तुर्नृशंसा न चकार वाक्यम्।। १९।।

उस दुःखभावना वाली, निर्दय कैकेयी ने अपने शुद्ध भावना वाले, राजा पति की, जो दीन बने हुए थे, जिनकी आँसुओं से भरी आँखें लाल हो गयी थीं, जो अनेक प्रकार से करुण विलाप कर रहे थे, आज्ञा को नहीं माना।

ततः स राजा पुनरेव मूर्च्छितः
प्रियामतुष्टां प्रतिकूलभाषिणीम्।
समीक्ष्य पुत्रस्य विवासनं प्रति
क्षितौ विसंज्ञो निपपात दुःखितः।। २०।।

इसके बाद जब राजा ने देखा कि उनकी प्रिय कैकेयी अब भी असन्तुष्ट है और उलटा बोल रही है। तब पुत्र के बनवास की बात सोचकर दुःख के कारण पुनः चेतना रहित मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

इतीव राज्ञो व्यथितस्य सा निशा
जगाम घोरं श्वसतो मनस्विनः।
विबोध्यमानः प्रतिबोधनं तदा
निवारयामास स राजसत्तमः।। २१।।

इस प्रकार उस मनस्वी राजा की व्यथित होकर भयानक साँसे लेते हुए ही रात बीत गयी। प्रातः उन्हें जगाने के लिये जब मंगलगान होने लगा तब उस राजशिरोमणि ने उसे बन्द करवा दिया।

तेरहवाँ सर्ग

राजा की आज्ञा से सुमन्त्र का श्रीराम को बुलाने के लिये जाना।

ततः सूतो यथापूर्वं पार्थिवस्य निवेशने।
सुमन्त्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा तुष्टाव जगतीपतिम्।। १।।
यथा नन्दति तेजस्वी सागरो भास्करोदये।
प्रीतः प्रीतेन मनसा तथा नन्दय नस्ततः।। २।।

तत्पश्चात सूत सुमन्त्र प्रतिदिन की भाँति राजा के आवास पर उपस्थित हुए और उस संसार के स्वामी की हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। वे कहने लगे कि हे महाराज! जैसे सूर्य के उदय होने पर तेजस्वी समुद्र लोगों को प्रसन्न करता हे, वैसे ही आप भी प्रसन्न होकर प्रसन्न हृदय से हमें आनन्दित कीजिये।

उत्तिष्ठ सुमहाराज कृतकौतुकमङ्गलः।
विराजमानो वपुषा मेरोरिव दिवाकरः।। ३।।
गता भगवती रात्रिः कृतं कृत्यमिदं तव।
बुध्यस्व नृपशार्दूल कुरु कार्यमनन्तरम्।। ४।।

हे अच्छे महाराज! मेरु पर्वत से ऊपर उठने वाले सूर्य के समान आप भी उठिये और उत्सवकालीन मंगलकृत्यों को कर सुन्दर शरीर से सिंहासन पर विराजमान होइये। हे राजश्रेष्ठ! भगवती रात्रि व्यतीत हो गई है। आपके सारे कार्य कर दिये गये हैं। आप इस बात को समझकर आगे के कार्यों को कीजिये।

उदतिष्ठत रामस्य समग्रमभिषेचनम्।
पौरजानपदाश्चापि नैगमश्च कृताञ्जलिः।। ५।।
यथा ह्यपालाः पशवो यथा सेना ह्यनायका।
यथा चन्द्रं विना रात्रिर्यथा गावो विना वृषम्।। ६।।
एवं हि भविता राष्ट्रं यत्र राजा न दृश्यते।

श्रीराम के अभिषेक की सारी तैयारियाँ हो चुकी है। देशवासी, पुरवासी और व्यापारी भी हाथ जोड़े हुए उपस्थित हैं। जैसे पालक के बिना पशुओं की, बिना नायक के सेना की, बिना चन्द्रमा के रात्रि की, बिना

साँड के गौओं की अवस्था होती है, वैसे ही उस देश की अवस्था होती है जहाँ राजा का दर्शन नहीं होता।

एवं तस्य वचः श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमिवार्थवत्।। ७।।
अभ्यकीर्यत शोकेन भूय एव महीपतिः।
ततस्तु राजा तं सूतं सन्नहर्षः सुतं प्रति।। ८।।
शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुद्वीक्ष्योवाच धार्मिकः।
वाक्यैस्तु खलु मर्माणि मम भूयो निकृन्तसि।। ९।।

इस प्रकार सुमन्त्र के सार्थक और सान्त्वनापूर्ण वचनों को सुनकर राजा फिर शोक से भर गये। तब उस धर्म का पालन करने वाले श्रीमान राजा ने, जो पुत्र के प्रति विषाद से युक्त थे, शोक से जिनकी आँखें लाल हो गई थीं, सूत को देख कर कहा कि तुम अपने वाक्यों से मेरे मर्म स्थानों को बार बार काट रहे हो।

सुमन्त्रः करुणं श्रुत्वा दृष्ट्वा दीनं च पार्थिवम्।
प्रगृहीताञ्जलिः किंचित् तस्माद् देशादपाक्रमत्।। १०।।
यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः।
तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह।। ११।।

सुमन्त्र उन करुण वचनों को सुनकर और राजा की दीन दशा को देखकर हाथ जोड़े हुए ही उस स्थान से थोड़ा पीछे हट गये। जब दीनता के कारण राजा स्वयं न बोल सके तब मन्त्रणा का ज्ञान रखने वाली कैकेयी ने सुमन्त्र को उत्तर दिया।

सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः।। १२।।
तद् गच्छ त्वरितं सूत राजपुत्रं यशस्विनम्।
राममानय भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा।। १३।।

हे सुमन्त्र! राम के हर्ष की उत्कंठा से राजा सारी रात जागते रहने से थक गये हैं, अब इन्हें नींद आ रही है। इसलिये तुम जल्दी जाओ और यशस्वी राजपुत्र राम को बुला लाओ। इसमें कुछ सोचने की बात नहीं है।

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि।
तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत्।
सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्।। १४।।

तब सुमन्त्र ने कहा कि हे भामिनी! मैं राजा के वचनों को सुने बिना कैसे जा सकता हूँ? मन्त्री की यह बात सुनकर राजा ने मन्त्री से कहा कि हे सुमन्त्र! मैं सुन्दर राम को देखूँगा। तुम उन्हें जल्दी लाओ।

चौदहवाँ सर्ग

सुमन्त्र का श्रीराम को बुलाने के लिये उनके महल में जाना।

स राजवचनं श्रुत्वा शिरसा प्रतिपूज्य तम्।
निर्जगाम नृपावासान्मन्यमानः प्रियं महत्।। १।।
प्रपन्नो राजमार्गं च पताकाध्वजशोभितम्।

तब वे राजा की बात सुनकर, सिर झुकाकर उनका सम्मान करते हुए, अपना अहोभाग्य मानते हुए, राजमहल से बाहर निकल आये। वे ध्वजों और पताकाओं से सुशोभित राजमार्ग पर आ गये।

हृष्टः प्रमुदितः सूतो जगामाशु विलोकयन्।। २।।
स सूतस्तत्र शुश्राव रामाधिकरणाः कथाः।
अभिषेचनसंयुक्ताः सर्वलोकस्य हृष्टवत्।। ३।।

वहाँ से वे उल्लास और हर्ष में भरकर सब तरफ देखते हुए जल्दी से चलने लगे। वे सारे लोगों की राम के अभिषेक की राम सम्बन्धी सुखदायी बातों को सुनते जा रहे थे।

ततो ददर्श रुचिरं कैलाससदृशप्रभम्।
रामवेश्म सुमन्त्रस्तु शक्रवेश्मसमप्रभम्।। ४।।
महाकपाटपिहितं वितर्दिशतशोभितम्।
शारदाभ्रघनप्रख्यं मणिविद्रुमतोरणम्।। ५।।

तब सुमन्त्र ने राम के महल को देखा, जो कैलाश पर्वत की प्रभा के समान सुन्दर था। वह इन्द्र के भवन के समान कान्तिमान था। सैकड़ों वैदिकाओं से वह सुशोभित था और उसका मुख्य द्वार बड़े किवाड़ों से बन्द था। वह शरद ऋतु के श्वेत बादलों के समान लग रहा था। उसके तोरण में मणि और मूँगे जड़े हुए थे।

मणिभिर्वरमाल्यानां सुमहद्भिरलंकृतम्।
मुक्तामणिभिराकीर्णं चन्दनागुरुभूषितम्।। ६।।
गन्धान् मनोज्ञान् विसृजद् दार्दुरं शिखरं यथा।
सारसैश्च मयूरैश्च विनदद्भिर्विराजितम्।। ७।।

श्रेष्ठ मालाओं की महान मणियों से उसे सजाया हुआ था, उसमें मोती और मणि जड़े हुए थे, चन्द और अगर

की सुगन्ध उसकी सुन्दरता को बढ़ा रही थी। मलयाचल के समीपवर्ती दादुर शिखर के समान वह भवन मनोहर सुगन्धों को बिखेर रहा था। नाद करते हुए सारस और मोर उसकी शोभा को बढ़ा रहे थे।

सुकृतेहामृगाकीर्णमुत्कीर्णं भक्तिभिस्तथा।
मनश्चक्षुश्च भूतानामाददत् तिग्मतेजसा॥ ८॥
मेरुशृङ्गसमं सूतो रामवेश्म ददर्श ह।
उपस्थितैः समाकीर्णं जनैरञ्जलिकारिभिः॥ ९॥
उपादाय समाक्रान्तैस्तदा जानपदैर्जनैः।
रामाभिषेकसुमुखैरुन्मुखैः समलंकृतम्॥ १०॥

सुन्दर रूप से बनाई हुई भेड़ियों की मूर्तियों से वह भरा हुआ था। वहाँ उत्कृष्ट नक्काशी की हुई थी। अपनी उत्कृष्ट शोभा से वह प्राणियों का मन और आँखों को आकृष्ट कर रहा था। सुमन्त्र ने मेरुपर्वत के समान राम के महल को देखा। वहाँ उपस्थित हाथ जोड़े खड़े लोगों से वह भरा हुआ था। राम के अभिषेक के समाचार से जिनके मुख प्रसन्न थे, जो उपहारों को लेकर वहाँ आये हुए थे, ऐसे उत्सुक देशवासी लोगों से वह भवन सुशोभित हो रहा था।

स वाजियुक्तेन रथेन सारथिः
समाकुलं राजकुलं विराजयन्।
वरूथिना राजगृहाभिपातिना
पुरस्य सर्वस्य मनांसि हर्षयन्॥ ११॥

सूत सुमन्त्र अच्छे घोड़ों से युक्त रथ के द्वारा भीड़ से भरे हुए राजमार्ग की शोभा बढ़ाते हुए, सारे पुरवासियों के मनों को हर्षित करते हुए, राज भवन की तरफ जाने वाले रास्ते से उस महल के पास जा पहुँचे।

ततः समासाद्य महाधनं महत्
प्रहृष्टरोमा स बभूव सारथिः।
मृगैर्मयूरैश्च समाकुलोल्बणं
गृहं वरार्हस्य शचीपतेरिव॥ १२॥

तब सुमन्त्र के शरीर में उत्तम पदार्थ को प्राप्त करने योग्य श्रीराम के, उस इन्द्र के घर के समान सुन्दर प्रासाद के, जो मृगों और मोरों से भरा हुआ था और महान समृद्धिशाली था, समीप पहुँचकर हर्ष के कारण रोमांच हो गया।

स तत्र कैलासनिभाः स्वलंकृताः
प्रविश्य कक्ष्यास्त्रिदशालयोपमाः।
प्रियान् वरान् राममते स्थितान् बहून्
व्यपोह्य शुद्धान्तमुपस्थितौ रथी॥ १३॥

वह वहाँ कैलाश पर्वत और स्वर्ग के समान सजाई ड्यौढ़ियों को पार कर, राम की आज्ञा के लिये वहाँ स्थित बहुत से श्रेष्ठ मनुष्यों को बीच में छोड़कर रथ के द्वारा अन्तःपुर के द्वार पर उपस्थित हुए।

स तत्र शुश्राव च हर्षयुक्ता
रामाभिषेकार्थकृतां जनानाम्।
नरेन्द्रसूनोरभिमङ्गलार्थाः
सर्वस्य लोकस्य गिरः प्रहृष्टाः॥ १४॥

वहाँ उन्होंने राम के अभिषेक का कार्य करने वाले लोगों की तथा दूसरे सारे लोगों की तथा दूसरे सारे लोगों की भी हर्ष से भरी हुई और राजकुमार के मंगल को प्रकट करने वाली बातें सुनीं।

ततो महामेघमहीधराभं
प्रभिन्नमत्यङ्कुशमत्यसह्यम्।
रामोपवाह्यं रुचिरं ददर्श
शत्रुञ्जयं नागमुदग्रकायम्॥ १५॥

उसके पश्चात उन्होंने राम की सवारी में काम आने वाले उस शत्रुंजय नाम के विशालकाय सुन्दर हाथी को देखा, जो बादलों से ढके हुए विशाल पर्वत के समान था, जिसके गण्डस्थल से मद बह रहा था, जो एक अंकुश से वश में नहीं किया जा सकता था और जो शत्रुओं के लिये असह्य था।

स्वलंकृतान् साश्वरथान् सकुञ्जरा-
नमात्यमुख्यांश्च ददर्श वल्लभान्।
व्यपोह्य सूतः सहितान् समन्ततः॥
समृद्धमन्तः पुरमाविवेश ह॥ १६॥

वहाँ उन्होंने राजा के प्रिय और प्रमुख मंत्रियों को भी देखा, जो अच्छी तरह से सुसज्जित थे, घोड़े, रथ और हाथियों के साथ वहाँ आये हुए थे। सुमन्त्र उन सबको एक तरफ हटाकर श्रीराम के समृद्धिशाली अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए।

पन्द्रहवाँ सर्ग

सुमन्त्र का श्रीराम को महाराज का सन्देश सुनाना और श्रीराम का सीता से अनुमति ले लक्ष्मण के साथ रथ पर बैठकर मार्ग में स्त्री पुरूषों की बातें सुनते हुए जाना।

स तदन्तःपुरद्वारं समतीत्य जनाकुलम्।
प्रविविक्तां ततः कक्ष्यामाससाद पुराणवित्।। १।।
प्रासकार्मुकबिभ्रद्भिर्युवभिर्मृष्टकुण्डलैः ।
अप्रमादिभिरेकाग्रैः स्वानुरक्तैरधिष्ठिताम्।। २।।

वे सुमन्त्र जो पुरातन वृतान्तों के जानकार थे, भीड़ से भरे हुए उस अन्तःपुर के द्वार को पार कर एकान्त कक्षा में जा पहुँचे। वह एकान्त कक्षा कुण्डल धारण किये हुए, हाथों में प्रास और धनुष लिये हुए, एकाग्र, अप्रभारी और स्वामीभक्त युवकों से सुरक्षित थी।

तत्र काषायिणो वृद्धान् वेत्रपाणीन् स्वलंकृतान्।
ददर्श विष्ठितान् द्वारि स्त्र्यध्यक्षान् सुसमाहितान्।। ३।।
ते समीक्ष्य समायान्तं रामप्रियचिकीर्षवः।
सहसोत्पतिताः सर्वे ह्यासनेभ्यः ससम्भ्रमाः।। ४।।

वहाँ उन्होंने अन्तःपुर की स्त्रियों के अध्यक्ष, गेरुए वस्त्र पहने हुए, अच्छी तरह से सजे हुए और हाथों में बेंत लिये हुए, वृद्ध व्यक्तियों को सावधान अवस्था में बैठे हुए देखा। वे सब श्रीराम का प्रिय करने की इच्छा रखते थे, वे सुमन्त्र को आता हुआ देखकर वेग पूर्वक सहसा अपने आसनों से उठकर खड़े हो गए।

तानुवाच विनीतात्मा सूतपुत्रः प्रदक्षिणः।
क्षिप्रमाख्यात रामाय सुमन्त्रो द्वारि तिष्ठति।। ५।।
ते राममुपसङ्गम्य भर्तुः प्रियचिकीर्षवः।
सहभार्याय रामाय क्षिप्रमेवाचचक्षिरे।। ६।।

सुमन्त्र ने जो कि राजकार्यों में विशेष कुशल थे और विनयशील थे, उनसे कहा कि श्रीराम को जल्दी जाकर कहो कि सुमन्त्र द्वार पर खड़े हैं। तब उन्होंने जो राम का प्रिय करने के इच्छुक थे, राम के समीप जाकर, पत्नी सहित राम से तुरन्त यह सन्देश कहा।

प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यन्तरं पितुः।
तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया।। ७।।
तं वैश्रवणसंकाशमुपविष्टं स्वलंकृतम्।
ददर्श सूतः पर्यङ्कः सौवर्णे सोत्तरच्छदे।। ८।।

सन्देश सुनकर पिता का प्रिय करने की इच्छा से श्रीराम ने सूत को वहीं अन्दर बुलवा लिया। वहाँ सूत ने देखा कि अच्छी तरह से अलंकृत हो जो कुबेर के समान लग रहे थे, वे राम सुनहले और बिछौना बिछे हुए पलंग पर विद्यमान थे।

वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगन्धिना।
अनुलिप्तं परार्घ्येन चन्दनेन परंतपम्।। ९।।
स्थितया पार्श्वतश्चापि वालव्यजनहस्तया।
उपेतं सीतया भूयश्चित्रया शशिनं यथा।। १०।।

शत्रुओं को तपाने वाले राम ने अपने अंगों में वाराह के रुधिर के समान लाल, पवित्र और उत्तम सुगन्धि वाले चन्दन का लेप लिया हुआ था, साथ में सीता जी हाथ में छोटा पंखा लिये बैठीं थीं। सीता जी के साथ वे चित्रा नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा की भाँति लग रहे थे।

तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा।
ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत्।। ११।।
प्राञ्जलिः सुमुखं दृष्ट्वा विहारशयनासने।
राजपुत्रमुवाचेदं सुमन्त्रो राजसत्कृतः।। १२।।

विनय के जानने वाले सेवक सुमन्त्र ने उन वर देने वाले श्रीराम को, जो अपने तेज से सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे, विनीत होकर प्रणाम किया। उन सुन्दर मुख वाले राजपुत्र को जो विहार के समय सोने के लिये आसन था, उस पर बैठे देखकर राज सत्कार से सम्मानित सुमन्त्र ने हाथ जोड़कर कहा।

कौसल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति।
महिष्यापि हि कैकेय्या गम्यतां तत्र मा चिरम्।। १३।।
एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः।
ततः सम्मानयामास सीतामिदमुवाच ह।। १४।।

हे कौशल्या की अच्छी सन्तान राम! रानी कैकेयी के साथ बैठे हुए आपके पिता आपको देखना चाहते हैं। अतः आप जल्दी वहाँ जाइये। ऐसा कहे जाने पर, महातेजस्वी, नरश्रेष्ठ श्रीराम ने प्रसन्न होकर, सीता का सम्मान करते हुए उनसे कहा।

देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे।
मन्त्रयेते ध्रुवं किंचिदाभिषेचनसंहितम्।। १५।।

लक्षयित्वा ह्यभिप्रायं प्रियकामा सुदक्षिणा।
संचोदयति राजानं मदर्थमसितेक्षणा।। १६।।

हे देवी! पिता जी और माता जी मेरे सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं। यह निश्चित है कि मेरे अभिषेक के सम्बन्ध में ही कोई बात होगी। राजा के अभिप्राय को समझकर वह प्रिय कामना वाली, विदग्ध और काले नेत्रों वाली कैकेयी मेरे लिये राजा को कुछ प्रेरणा देती होगी।

सा प्रहृष्टा महाराजं हितकामानुवर्तिनी।
जननी चार्थकामा मे केकयाधिपतेः सुता।। १७।।
दिष्ट्या खलु महाराजो महिष्या प्रियया सह।
सुमन्त्रं प्राहिणोद् दूतमर्थकामकरं मम।। १८।।

वह केकयराज की पुत्री, मेरा भला चाहने वाली माता, महाराज की भलाई चाहने वाली और उनकी अनुयायी हैं। वे मेरे अभिषेक की बात से महाराज से प्रसन्न होंगी। यह सौभाग्य की बात है कि इस समय महाराज अपनी प्यारी रानी के पास बैठे हुए हैं और मेरी कामना और भलाई को सिद्ध करने वाले सुमन्त्र को ही उन्होंने दूत के रूप में भेजा है।

यादृशी परिषत् तत्र तादृशो दूत आगतः।
ध्रुवमद्यैव मां राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति।। १९।।
हन्त शीघ्रमितो गत्वा द्रक्ष्यामि च महीपतिम्।
सह त्वं परिवारेण सुखमास्स्व रमस्व च।। २०।।

जैसी वहाँ सलाहकार समिति बैठी हुई है, वैसे ही दूत यहाँ आए हैं, इसलिये निश्चय ही राजा आज मुझे युवराज बनायेंगे। अब मैं जल्दी यहाँ से जाकर राजा के दर्शन करूँगा। तुम परिवार के साथ सुख से बैठो और आनन्द करो।

पतिसम्मानिता सीता भर्तारमसितेक्षणा।
आ द्वारमनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी।। २१।।
अथ सीतामनुज्ञाप्य कृतकौतुकमङ्गलः।
निश्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात्।। २२।।

पति के द्वारा सम्मानित काले नेत्रों वाली सीता, मंगल कामना करती हुई पति के पीछे द्वार तक उन्हें विदा करने गयीं। तब उत्सव के मंगलकार्यों को कर और सीता की अनुमति लेकर श्रीराम सुमन्त्र के साथ अपने आवास से बाहर निकले।

पर्वतादिव निष्क्रम्य सिंहो गिरिगुहाशयः।
लक्ष्मणं द्वारि सोऽपश्यत् प्रह्वाञ्जलिपुटं स्थितम्।। २३।।
अथ मध्यमकक्ष्यायां समागच्छत् सुहृज्जनैः।
स सर्वानर्थिनो दृष्ट्वा समेत्य प्रतिनन्द्य च।। २४।।
ततः पावकसंकाशमारुरोह रथोत्तमम्।
वैयाघ्रं पुरुषव्याघ्रो राजितं राजनन्दनः।। २५।।

जैसे पहाड़ की गुफाओं में रहने वाला सिंह पहाड़ से निकल कर आता है उसी प्रकार अपने प्रासाद से निकलकर उन्होंने द्वार पर हाथ जोड़े खड़े हुए लक्ष्मण जी को देखा। इसके पश्चात् बीच की ड्यौढ़ी में आकर वे मित्रों से मिले, फिर सब प्रार्थियों को देखकर, उनसे मिलकर, उनका प्रतिस्वागत कर, अग्नि के समान तेजस्वी, और व्याघ्रचर्म से आवृत्त श्रेष्ठ रथ पर वे नरश्रेष्ठ राजकुमार विराजमान हुए।

मेघनादमसम्बाधं मणिहेमविभूषितम्।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि प्रभया मेरुवर्चसम्।। २६।।
प्रययौ तूर्णमास्थाय राघवो ज्वलितः श्रिया।। २७।।
स पर्जन्य इवाकाशे स्वनवानभिनादयन्।
निकेतान्निर्ययौ श्रीमान् महाभ्रादिव चन्द्रमाः।। २८।।

उस रथ की ध्वनि, बादलों की ध्वनि के समान थी, वह बाधाओं से रहित था और मणियों तथा सुवर्ण से विभूषित था, अपनी कान्ति से लोगों की आँखों को चौंधियाता हुआ वह रथ मेरु पर्वत के समान जान पड़ता था। उसमें बड़े पुष्ट घोड़े जो हाथी के बच्चों की तरह लग रहे थे, जुते हुए थे। अपनी शोभा से प्रकाशित श्रीराम उस रथ पर जल्दी से चढ़कर वहाँ से चल पड़े। आकाश में गर्जते हुए बादलों के समान ध्वनि वाला वह तेजस्वी रथ राम के प्रासाद से उसी प्रकार निकला जैसे बड़े बादलों के बीच में से चन्द्रमा निकलता है।

चित्रचामरपाणिस्तु लक्ष्मणो राघवानुजः।
जुगोप भ्रातरं भ्राता रथमास्थाय पृष्ठतः।। २९।।
ततो हलहलाशब्दस्तुमुलः समजायत।
तस्य निष्क्रमभाणस्य जनौघस्य समन्ततः।। ३०।।

राम के पश्चात् जन्म लेने वाले भाई लक्ष्मण, चित्रित चँवर को हाथ में लेकर, रथ में बैठकर पीछे से भाई की रक्षा करने लगे। तब लोगों की भीड़ के सब तरफ से निकलने के कारण ऊँची कोलाहल की ध्वनि होने लगी।

ततो हयवरा मुख्या नागाश्च गिरिसंनिभाः।
अनुजग्मुस्तथा रामं शतशोऽथ सहस्रशः।। ३१।।
अग्रतश्चास्य संनद्धाश्चन्दनागुरुभूषिताः।
खड्गचापधराः शूरा जग्मुराशंसवो जनाः।। ३२।।

तब श्रेष्ठ घोड़े और पर्वतों के समान हाथी, सैकड़ों हजारों की संख्या में राम के पीछे-पीछे चले। उनके आगे, चन्दन और अगर से सुशोभित खड्ग और धनुष धारण किये शूरवीर सावधान होकर तथा मंगलगान करने वाले लोग चल रहे थे।

रामं सर्वानवद्याङ्ग्यो रामपिप्रीषया ततः।
वचोभिरग्र्यैर्हर्म्यस्थाः क्षितिस्थाश्च ववन्दिरे।। ३३।।
नूनं नन्दति ते माता कौसल्या मातृनन्दन।
पश्यन्ती सिद्धयात्रं त्वां पित्र्यं राज्यमुपस्थितम्।। ३४।।

उस समय अट्टालिकाओं पर खड़ी हुई और भूतल पर खड़ी हुई सर्वांगसुन्दरी स्त्रियाँ, राम का प्रिय करने की इच्छा से श्रेष्ठ वचनों के द्वारा उनकी वन्दना करने लगीं। वे कहने लगीं कि हे माता को सुख देने वाले राम! जब तुम्हारी यह यात्रा सफल हो जायेगी और पिता का राज्य तुम्हें मिल जायेगा, तब तुम्हें इस अवस्था में देखकर तुम्हारी माता कौशल्या वास्तव में प्रसन्न होगी।

सर्वसीमन्तिनीभ्यश्च सीतां सीमन्तिनीं वराम्।
अमन्यन्त हिता नार्यो रामस्य हृदयप्रियाम्।। ३५।।
तया सुचरितं देव्या पुरा नूनं महत् तपः।
रोहिणीव शशाङ्केन रामसंयोगमाप या।। ३६।।
इति प्रासादशृङ्गेषु प्रमदाभिर्नरोत्तमः।
शुश्राव राजमार्गस्थः प्रिय वाच उदाहृताः।। ३७।।

वे स्त्रियाँ राम के हृदय की प्यारी सीता को सारी सौभाग्यवती स्त्रियों से अच्छा समझ रहीं थीं कि उस देवी ने वास्तव में पहले बड़ा तप किया होगा जो चन्द्रमा से युक्त रोहिणी के समान राम को प्राप्त किया। राजमार्ग पर विद्यमान वे नरश्रेष्ठ राम प्रासाद शिखरों पर से स्त्रियों द्वारा कही गयीं उन प्यारी बातों को सुन रहे थे।

स राघवस्तत्र तदा प्रलापा —
ञ्शुश्राव लोकस्य समागतस्य।
आत्माधिकारा विविधाश्च वाचः
प्रहृष्टरूपस्य पुरे जनस्य।। ३८।।

वे राम उस समय नगर में आए हुए प्रसन्नता से युक्त लोगों की अपने विषय में तथा और दूसरी बातों को भी सुन रहे थे।

एष श्रियं गच्छति राघवोऽद्य
राजप्रसादाद् विपुलां गमिष्यन्।
एते वयं सर्वसमृद्धकामा
येषामयं नो भविता प्रशास्ता।। ३९।।

वे कह रहे थे कि राजा की कृपा से ये जाने वाले श्रीराम विपुल ऐश्वर्य को प्राप्त हो जायेंगे। जब ये हमारे शासक होंगे तब हम सबकी कामनाएँ पूरी हो जाएँगीं।

लाभो जनस्यास्य यदेष सर्वं
प्रपत्स्यते राष्ट्रमिदं चिराय।
न ह्यप्रियं किंचन जातु कश्चित्
पश्येन्न दुःखं मनुजाधिपेऽस्मिन्।। ४०।।

यदि ये सारे राज्य को चिरकाल के लिये प्राप्त कर लेते हैं तो इस जनता को बड़ा लाभ होगा और किसी दुःख को प्राप्त नहीं होगी।

सोलहवाँ सर्ग

राजपथ की शोभा देखते हुए श्रीराम का पिता के भवन में प्रवेश।

स रामो रथमास्थाय सम्प्रहृष्टसुहृज्जनः।
पताकाध्वजसम्पन्नं महार्हागुरुधूपितम्।। १।।
अपश्यन्नगरं श्रीमान् नानाजनसमन्वितम्।
स गृहैरभ्रसंकाशैः पाण्डुरैरुपशोभितम्।। २।।
राजमार्गं ययौ रामो मध्येनागुरुधूपितम्।

रथ में बैठे हुए श्रीराम मित्रों को प्रसन्न करते हुए ध्वजों और पताकाओं से सुशोभित, बहुमूल्य अगरू और धूप से सुगन्धित, अनेक प्रकार के लोगों से भरे हुए उस नगर को देखते हुए जा रहे थे। वे जिस राजमार्ग से जा रहे थे वह बादलों के समान श्वेत घरों से सुशोभित और अगरू की धूप से सुगन्धित था।

स राजकुलमासाद्य मेघसङ्घोपमैः शुभैः।। ३।।
प्रसादशृङ्गैर्विविधैः कैलासशिखरोपमैः।
आवारयद्भिर्गगनं विमानैरिव पाण्डुरैः।। ४।।
वर्धमानगृहैश्चापि रत्नजालपरिष्कृतैः।
तत् पृथिव्यां गृहवरं महेन्द्रसदनोपमम्।। ५।।
राजपुत्रः पितुर्वेश्म प्रविवेश श्रिया ज्वलन्।

श्रीराम तत्पश्चात उस राजमहल के समीप पहुँचे जो बादलों के समूह के समान सुन्दर, कैलाशपर्वत की चोटियों, के समान ऊँचे, विविध प्रकार के प्रासाद शिखरों से, जो अपनी ऊँचाई से मानों आकाश का उल्लंघन कर रहे थे और रत्नों की जालियों से सजाये हुए क्रीड़ाघरों से भी सुशोभित था तथा जो इन्द्र के भवन के समान पृथ्वी पर श्रेष्ठ घर था। ऐसे पिता के घर में उन्होंने मानो अपनी कान्ति से प्रज्वलित होते हुए प्रवेश किया।

स कक्ष्या धन्विभिर्गुप्तास्तिस्रोऽतिक्रम्य वाजिभिः।। ६।।
पदातिरपरे कक्ष्ये द्वे जगाम नरोत्तमः।
स सर्वाः समतिक्रम्य कक्ष्या दशरथात्मजः।
संनिवर्त्य जनं सर्वं शुद्धान्तः पुरमत्यगात्।। ७।।

धनुर्धर वीरों द्वारा सुरक्षित तीन ड्योढ़ियों को उन्होंने रथ के द्वारा ही पार किया और दूसरी दो ड्योढ़ियों में पैदल ही गये। सारी ड्योढ़ियों को पार कर, साथ के सभी लोगों को लौटाकर वे दशरथ के पुत्र अन्तःपुर के अन्दर गये।

सत्रहवाँ सर्ग

श्रीराम का कैकेयी से पिता के चिन्तित होने का कारण पूछना और कैकेयी का कठोरतापूर्वक अपने माँगे हुए वरों का वृत्तान्त बताकर श्रीराम को बनवास के लिये प्रेरित करना।

स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे।
कैकेय्या सहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता।। १।।
स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत्।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः।। २।।

उन्होंने वहाँ एक सुन्दर आसन पर अपने पिता को कैकेयी के सथ बैठे देखा। उनका मुख सूख रहा था और वे दीन बने हुए थे। उन्होंने पहले विनय के साथ पिता के चरणों में प्रणाम किया और फिर सावधानी से कैकेयी के चरणों में वन्दना की।

रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम्।। ३।।
तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा रूपं भयावहम्।
रामोऽपि भयमापन्नः पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम्।। ४।।

दीन अवस्था में विद्यमान राजा की आँखों में आँसू भरे हुए थे। उन्होंने एक बार 'राम' ऐसा कहा, फिर उसके बाद वे न तो कुछ बोल सके और न राम की तरफ देख सके। राजा का वह भयानक रूप, जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, देख कर राम भी ऐसे भयभीत हो गये जैसे उन्होंने किसी साँप को पैर से छू दिया हो।

इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसंतापकर्शितम्।
निश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम्।। ५।।
ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिव सागरम्।
उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा।। ६।।

उन महाराज की इन्द्रियों में प्रसन्नता नहीं थी, उन्हें विषाद और दुःख ने कुचल दिया था, वे लम्बी साँस ले रहे थे, उनकी आत्मा बेचैन और घबरा रही थी। वे ऐसे लग रहे थे, जैसे अक्षोभ्य सागर में क्षोभ हो रहा हो, सूर्य में ग्रहण लग रहा हो या किसी ऋषि ने झूठ बोल दिया हो।

अचिन्त्यकल्पं नृपतेस्तं शोकमुपधारयन्।
बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि।। ७।।
चिन्तयामास चतुरो रामः पितृहिते रतः।
किंस्विदद्यैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति।। ८।।

महाराज के उस शोक के विषय में, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, उसका कारण सोचते हुए वे पूर्णिमा के दिन सागर की तरह से विक्षुब्ध हो गये। पिता की भलाई में लगे चतुर राम यह सोचने लगे कि आज ही महाराज किस लिये मुझसे प्रसन्न होकर नहीं बोल रहे हैं।

अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति।
तस्य मामद्य सम्प्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते।। ९।।
स दीन इव शोकार्तो विषण्णवदनद्युतिः।
कैकेयीमभिवाद्यैव रामो वचनमब्रवीत्।। १०।।

और दिन तो पिता जी क्रुद्धावस्था में भी मुझे देखकर प्रसन्न हो जाते थे, वही आज मेरी तरफ देखने में भी क्यों परेशानी अनुभव कर रहे हैं। यह सोचकर श्रीराम दीन से हो गये। उनके हृदय में दुःख भर गया, विषाद

के कारण उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गयी। तब कैकेयी को प्रणाम कर श्रीराम उनसे बोले।

कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद् येन मे पिता।
कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय।। ११।।
अप्रसन्नमनाः किं नु सदा मां प्रति वत्सलः।
विषण्णवदनो दीनः नहि मां प्रति भाषते।। १२।।

कहीं मुझसे अज्ञान में अपराध तो नहीं, हो गया, जिससे पिता मुझ पर क्रोध कर रहे हैं, यह मुझे बताओ। तुम ही इन्हें मनाओ। ये तो सदा मुझसे प्यार करते थे, आज ये मुझसे नाराज़ क्यों हैं? इनका मुख उदास है ये दीन बने हुए हैं और मुझसे बोल नहीं रहे हैं।

शरीरो मानसो वापि कच्चिदेनं बाधते।
संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम्।। १३।।
कच्चिन्न किंचिद् भरते कुमारे प्रियदर्शने।
शत्रुघ्ने वा महासत्त्वे मातॄणां वा ममाशुभम्।। १४।।

कहीं इन्हें कोई शारिरिक संताप या मानसिक अभिताप अर्थात् चिन्ता तो परेशान नहीं कर रही है? क्योंकि सदा सुख ही रहे यह बड़ा कठिन है। कहीं प्रिय दर्शन कुमार भरत या महाबली शत्रुघ्न, या मेरी माताओं का तो कुछ अमंगल नहीं हुआ?

अतोषयन् महाराजमकुर्वन् वा पितुर्वचः।
मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे।। १५।।
यतोमूलं नरः पश्येत् प्रादुर्भावमिहात्मनः।
कथं तस्मिन् न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते।। १६।।

महाराज को सन्तुष्ट न करके, पिता के वचनों को पूरा न करके, या राजा को कुपित करके मैं एक मुहूर्त भी जीवित रहना नहीं चाहता। जिसके आधार से मनुष्य अपने जन्म को इस संसार में देखता है, उस प्रत्यक्ष देवता के समान पिता के अनुकूल वर्ताव वह क्यों नहीं करेगा।

कच्चित्ते परुषं किंचदभिमानात् पिता मम।
उक्तो भवत्या रोषेण येनास्य लुलितं मनः।। १७।।
एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः।
किंनिमित्तमपूर्वोऽयं विकारो मनुजाधिपे।। १८।।

कहीं आपने तो अभिमान से या रोष में कुछ कठोर तो नहीं कह दिया, जिससे इनका मन परेशान है? हे देवी मैं सत्य बात पूछ रहा हूँ, मुझे वह बताओ। इन मनुष्याधिपति में किस कारण से ऐसा परिवर्तन हो गया है जो पहले कभी नहीं हुआ।

एवमुक्ता तु कैकेयी राघवेण महात्मना।
उवाचेदं सुनिर्लज्जा धृष्टमात्महितं वचः।। १९।।
न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किंचन।
किंचिन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्नानुभाषते।। २०।।

महात्मा श्रीराम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर कैकेयी धृष्टता और निर्लज्जता के साथ अपने स्वर्थ की बात बोली कि हे राम! राजा न तो क्रुद्ध हैं और न इन्हें कोई कष्ट है। इनके मन में कोई बात है, जिसे ये तुम्हारे डर से कह नहीं पा रहे हैं।

प्रियं त्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्तते।
तदवश्यं त्वया कार्यं यदनेनाश्रुतं मम।। २१।।
एष मह्यं वरं दत्त्वा पुरा मामभिपूज्य च।
स पश्चात् तप्यते राजा यथान्यः प्राकृतस्तथा।। २२।।

तुम इनके प्यारे हो! इसलिये तुम्हारे लिये अप्रिय बात इनके मुख से नहीं निकल रही है। इसलिये तुम्हें वह बात अवश्य पूरी करनी चाहिये, जिसके लिये इन्होंने आज मुझसे प्रतिज्ञा की है। इन्होंने पहले मेरा सत्कार करते हुए मुझे वर दिया था, पर अब दूसरे सामान्य मनुष्यों के समान दुःखी हो रहे हैं।

अतिसृज्य ददानीति वरं मम विशाम्पतिः।
स निरर्थं गतजले सेतुं बन्धितुमिच्छति।। २३।।
धर्ममूलमिदं राम विदितं च सतामपि।
तत् सत्यं न त्यजेद् राजा कुपितस्त्वत्कृते यथा।। २४।।

ये राजा पहले यह प्रतिज्ञा करके कि मैं तुम्हे वर दूँगा, अब उसके निवारण करने की ऐसे ही व्यर्थ चेष्टा कर रहे है, जैसे कोई पानी के बह जाने पर बाँध बनाना चाहे। हे राम सत्य ही धर्म का मूल है, यह सब भले आदमी जानते हैं। उस सत्य को ये मुझ पर क्रुद्ध होने वाले राजा तुम्हारे लिये न छोड़ दें, ऐसा प्रयत्न करो।

यदि तद् वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाशुभम्।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम्।। २५।।
यदि त्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते।
ततोऽहमभिधास्यामि न ह्येष त्वयि वक्ष्यति।। २६।।

राजा जो कुछ शुभ या अशुभ बात कहेंगे, तुम उसे पूरा करोगे तो मैं वह सारी कह दूँगी। यदि राजा के द्वारा कही हुई बात तुम्हारे अन्दर नष्ट नहीं हो जाएगी, तो मैं कह दूँगी। ये राजा तुमसे नहीं कहेंगे।

एतत् तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम्।
उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसंनिधौ।। २७।।

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके।। २८।।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च।। २९।।
तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते।। ३०।।

कैकेयी के द्वारा कहे हुए ये वचन सुनकर, राम दुःखी होकर राजा के समीप देवी कैकेयी से बोले कि अरे धिक्कार है। देवी आपको मुझे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मैं राजा के कहने से आग में भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष का पान कर सकता हूँ, समुद्र में भी गिर सकता हूँ क्योंकि राजा मेरे पिता, गुरु और हितैषी हैं। इसलिये हे देवी! राजा की मनचाही बात बताओ। मैं उसे करूँगा, इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ। राम दो तरह की बात नहीं करता।

तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम्।
उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम्।। ३१।।
पुरा देवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव।
रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे।। ३२।।

तब वह अनार्या कैकेयी कोमलता से युक्त सत्यवादी राम से वह अत्यन्त भयानक वचन कहने लगी। उसने कहा कि हे राम पहले देवासुर युद्ध में घायल हुए तुम्हारे पिता ने रक्षा किये जाने पर मुझे दो वर दिये थे।

तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम्।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव।। ३३।।
यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि।
आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु।। ३४।।

वहाँ मैंने राजा से भरत का राज्य अभिषेक और तुम्हारा दण्डकारण्य में जाना माँगा है। यदि तुम हे नरश्रेष्ठ! अपने पिता को और अपने आपको सत्यप्रतिज्ञ करना चाहते हो तो मेरी यह बात सुनो।

संनिदेशे पितुस्तिष्ठ यथानेन प्रतिश्रुतम्।
त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च।। ३५।।
भरतश्चाभिषिच्येत यदेतदभिषेचनम्।
त्वदर्थे विहितं राज्ञा तेन सर्वेण राघव।। ३६।।

जैसी इन्होंने प्रतिज्ञा की है, तुम उसके अनुसार पिता की आज्ञा के आधीन रहो और उसके अनुसार तुम्हें चौदह वर्ष के लिये वन में प्रवेश करना चाहिये और राजा ने जो यह सामग्री तुम्हारे अभिषेक के लिये जुटायी है, उससे भरत का अभिषेक किया जाये।

सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
अभिषेकमिदं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव।। ३७।।
भरतः कोसलपतेः प्रशास्तु वसुधामिमाम्।
नानारत्नसमाकीर्णां सवाजिरथसंकुलाम्।। ३८।।

तुम इस अभिषेक को छोड़ कर जटा और चीर धारण करके चौदह वर्ष तक दण्डकारण्य में रहो। भरत कोशल का राजा बनकर रथ और घोड़ों से भरी हुई, अनेक तरह के रत्नों से भरपूर इस पृथ्वी का शासन करे।

एतेन त्वां नरेन्द्रोऽयं कारुण्येन समाप्लुतः।
शोकैः संक्लिष्टवदनो न शक्नोति निरीक्षितुम्।। ३९।।
एतत् कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन।
सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम्।। ४०।।

इस बात से राजा दुःख से भर गये हैं। विषाद से इनका मुख सूख गया है और ये तुम्हें देख नहीं पा रहे हैं। हे रघुनन्दन तुम राजा की इस आज्ञा का पालन करो और सत्य के द्वारा हे राम इन राजा को संकट से उबारो।

अठारहवाँ सर्ग

श्रीराम का वन में जाना स्वीकार करके माता कौशल्या के पास आज्ञा लेने के लिये जाना।

तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम्।
श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयीं चेदमब्रवीत्।। १।।
एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन्।। २।।

कैकेयी के उस मृत्यु के समान अप्रिय वचन को सुनकर शत्रु को नष्ट करने वाले राम दुःखी नहीं हुए और बोले कि ऐसा ही होगा। मैं वन में रहने के लिये यहाँ से चला जाऊँगा। राजा की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये मैं जटा और चीर धारण करूँगा।

इदं तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं मां महीमतिः।
नाभिनन्दति दुर्धर्षो यथापूर्वमरिंदमः।। ३।।
मन्युर्न च त्वया कार्यो देवि ब्रूमि तवाग्रतः।
यास्यामि भव सुप्रीता वनं चीरजटाधरः।। ४।।

पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि ये शत्रुओं को नष्ट करने वाले दुधर्ष राजा मुझसे पहले की प्रसन्नता के साथ क्यों नहीं बोल रहे हैं। हे देवी मैं तुम्हारे सामने यह बात पूछ रहा हूँ, इसलिये तुम क्रोध मत करना। आप प्रसन्न रहो। मैं चीर वस्त्र और जटाएँ धारण कर वन में चला जाऊँगा।

हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च।
नियुज्यमानो विस्रब्धः किं न कुर्यामहं प्रियम्।। ५।।
अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहते मम।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम्।। ६।।

ये राजा मेरे पिता, हितकारी, गुरू और कृतज्ञ हैं। इनके द्वारा आदेश होने पर कौनसा ऐसा प्रिय कार्य है, जिसे मैं निश्शंक होकर नहीं कर सकता, पर एक ही बात मेरे मन को और हृदय को जला रही है कि राजा ने भरत के अभिषेक के विषय में मुझसे स्वयं नहीं कहा।

यथाश्वासय ह्रीमन्तं किं त्विदं यन्महीपतिः।
वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुञ्चति।। ७।।
गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः।
भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात्।। ८।।

तुम इन लज्जालु राजा को इस प्रकार आश्वासन दो, जिससे इन्हें तसल्ली हो। ये क्यों भूमि की तरफ आँखें लगाकर धीरे-धीरे आँसू बहा रहे हैं? राजा की आज्ञा से आज ही तेज दौड़ने वाले घोड़ों से दूत भरत को मामा के घर से लाने के लिये चले जायें।

दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः।
अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश।। ९।।
स हृष्टा तस्य वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकयी।
प्रस्थानं श्रद्दधाना सा त्वरयामास राघवम्।। १०।।

मैं पिता जी की बात पर बिना कुछ विचार किये चौदह वर्ष तक वन में रहने के लिये दण्डकारण्य में जल्दी से चला ही जाता हूँ। राम के उन वाक्यों को सुनकर वह कैकेयी प्रसन्न हुई और उनके प्रस्थान के विषय में विश्वास करती हुई राम को जल्दी जाने के लिये प्रेरणा देने लगी।

एवं भवतु यास्यन्ति दूताः शीघ्रजवैर्हयैः।
भरतं मातुलकुलादिहावर्तयितुं नराः।। ११।।
तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम्।
राम तस्मादितः शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि।। १२।।

वह बोली कि ऐसा ही हो। दूत लोग तेजगति वाले घोड़ों से भरत को मामा के घर से यहाँ लाने के लिये जायेंगे। मैं समझती हूँ कि तुम तो स्वयं वन में जाने के लिये उत्सुक हो। इसलिये तुम्हारा विलम्ब करना ठीक नहीं है। इसलिये हे राम! तुम जल्दी ही यहाँ से वन में जाओ।

व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते।
नैतत् किंचिन्नरश्रेष्ठ मन्युरेषोऽपनीयताम्।। १३।।
यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरम्।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा।। १४।।

राजा लज्जा के कारण जो तुमसे नहीं बोल रहे हैं, यह कोई बड़ी बात नहीं है। हे नरश्रेष्ठ! तुम इस दुःख को अपने मन से दूर कर दो। जब तक तुम इस नगर से जल्दी से वन में नहीं चले जाते तब तक हे राम तुम्हारे पिता न तो स्नान करेंगे और न खाना खायेंगे।

धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः।
मूर्च्छितो न्यपतत् तस्मिन् पर्यङ्के हेमभूषिते।। १५।।
रामोऽप्युत्थाप्य राजानं कैकेय्याभिप्रचोदितः।
कशयेव हतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः।। १६।।

तब राजा शोक से भरकर और लम्बी साँस लेकर हाय धिक्कार है, बड़ा दुःख है ऐसा कहते हुए उस स्वर्णभूषित पलंग पर गिर पड़े। राम ने राजा को उठाया, पर कैकेयी के द्वारा बार बार कहे जाने के कारण कोड़े से मारे गये घोड़े के समान बन में जाने के लिये जल्दी करने लगे।

तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोदयम्।
श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत्।। १७।।
नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम्।। १८।।

अनार्या कैकेयी के उन अप्रिय दारुणता के साथ कहे हुए वचनों को सुनकर भी श्रीराम व्यथित नहीं हुए और वे कैकेयी से बोले कि हे देवी, मैं धन का उपासक होकर संसार में रहना नहीं चाहता। तुम मुझे ऋप्पियों के समान धर्म में स्थिर समझो।

यत् तत्रभवतः किंचिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया।
प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत्।। १९।।
न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।। २०।।

इस संसार में पिता की सेवा और उनके वचनों का पालन करने से अधिक कोई धर्म का आचरण नहीं है। इसलिये आपका जो कुछ भी प्रिय कार्य मैं कर सकता हूँ उसे प्राणों को भी छोड़कर मेरे द्वारा किया हुआ समझें।

अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम्।
वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश।। २१।।
न न्यूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान्।
यद् राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती।। २२।।

यद्यपि वन जाने के विषय में श्रीमान पिताजी ने मुझे नहीं कहा है, पर आपके कहने से ही मैं चौदह वर्ष तक निर्जन वन में रहूँगा। यद्यपि आप मेरी स्वामिनी हैं, पर ऐसा होते हुए भी आपने मेरे विषय में पिता जी से कहा, सीधे मुझसे नहीं कहा। हे कैकेयी! तुम्हें मेरे अन्दर गुणों की कोई कमी नहीं समझनी चाहिये।

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम्।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद् वनम्।। २३।।
भरतः पालयेद् राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा।
तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः।। २४।।

जाने से पहले मैं माता कौशल्या से आज्ञा ले लूँ और सीता को भी समझा दूँ। फिर मैं आज ही दण्डकारण्य के विशाल वन में चला जाऊँगा। आप ऐसा प्रयत्न करना कि जिससे भरत राज्य का पालन करे और पिता की सेवा करे, यही सनातन धर्म है।

रामस्य तु वचः श्रुत्वा भृशं दुःखगतः पिता।
शोकादशक्नुवन् वक्तुं प्ररुरोद महास्वनम्।। २५।।
वन्दित्वा चरणौ राज्ञो विसंज्ञस्य पितुस्तदा।
कैकेय्याश्चाप्यनार्याया निष्पपात महाद्युतिः।। २६।।

राम की बात सुनकर उनके पिता को बहुत दुःख हुआ। वे कुछ बोल न सके और जोर जोर से रोने लगे। तब वे महान तेजस्वी राम अचेत पड़े हुए अपने पिता राजा के चरणों में प्रणाम कर और अनार्या कैकेयी के भी चरणों में प्रणाम करके वहाँ से निकल गये।

निष्क्रम्यान्तःपुरात् तस्मान् स्वं ददर्श सुहृज्जनम्।
तं बाष्पपरिपूर्णाक्षः पृष्ठतोऽनुजगाम ह।। २७।।
लक्ष्मणः परमक्रुद्धः सुमित्रानन्दवर्धनः।
न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति।। २८।।
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः।

अन्तपुर से बाहर निकल कर राम अपने मित्र जनों से मिले, सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले लक्ष्मण इस अन्याय से बहुत क्रुद्ध थे, वे आँखों में पानी भरकर राम के पीछे चले गए। राज्य के छिनने से लोक कमनीय राम के महान तेज में कोई कमी नहीं आई, जैसे चन्द्रमा का घटना उसकी स्वाभाविक कान्ति में कोई अन्तर नहीं डालता।

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम्।। २९।।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया।
प्रतिषिध्य शुभं छत्रं व्यजने च स्वलंकृते।। ३०।।
विसर्जयित्वा स्वजनं रथं पौरांस्तथा जनान्।
धारयन् मनसा दुःखमिन्द्रियाणि निगृह्य च।। ३१।।
प्रविवेशात्मवान् वेश्म मातुरप्रियशंसिवान्।

पृथ्वी के राज्य को छोड़ते हुए और वन जाने के इच्छुक उन राम के मुख पर कोई विकार नहीं दिखाई दिया जैसे सब लोगों से अलग रहने वाले जीवन्मुक्त व्यक्ति में होता है। इस सुन्दर छत्र तथा सुशोभित दोनों पंखों को मना करके, रथ को, अपने मित्रों को और नगरवासियों को लौटाकर इन्द्रियों को वश में करके उन मनस्वी ने माता के घर में अप्रिय समाचार सुनाने के लिये प्रवेश किया।

सर्वोऽप्यभिजनः श्रीमाञ्श्रीमतः सत्यवादिनः।। ३२।।
नालक्षयत रामस्य कंचिदाकारमानने।
वाचा मधुरया रामः सर्वं सम्मानयञ्जनम्।
मातुः समीपं धर्मात्मा प्रविवेश महायशाः।। ३३।।

जो श्रीमान उनके मित्र उनके समीप रहते थे, उन्होंने भी उस समय उन सत्यवादी श्रीमान राम के मुख पर कोई विकार नहीं देखा। धर्मात्मा, महान यशस्वी राम मधुर वचनों से सबका सम्मान करते हुए माता के समीप गए।

उन्नीसवाँ सर्ग

श्रीराम का कौशल्या जी को अपने वनवास की बात बताना। कौशल्या का अचेत होना और विलाप करना।

रामस्तु भृशमायस्तो निःश्वसन्निव कुञ्जरः।
जगाम सहितो भ्रात्रा मातुरन्तःपुरं वशी॥ १॥
प्रविश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्श सः।
ब्राह्मणान् वेदसम्पन्नान् वृद्धान् राज्ञाभिसत्कृतान्॥ २॥

अपने मन को वश में करने वाले राम, स्वजनों के दुःख से परेशान, हाथी के समान साँसे भरते हुए भाई लक्ष्मण के साथ माता के अन्तःपुर में गये। पहली ड्यौढ़ी पार कर दूसरी ड्यौढ़ी में उन्होंने राजा के द्वारा सत्कृत वेदज्ञ बूढ़े ब्राह्मणों को देखा।

प्रणम्य रामस्तान् वृद्धांस्तृतीयायां ददर्श सः।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धश्च द्वाररक्षणतत्पराः॥ ३॥
वर्धयित्वा प्रहृष्टास्ताः प्रविश्य च गृहं स्त्रियः।
न्यवेदयन्त त्वरितं राममातुः प्रियं तदा॥ ४॥

राम उन्हें प्रणाम कर जब तीसरी ड्यौढ़ी में पहुँचे तो वहाँ उन्होंने नौजवान तथा बूढ़ी स्त्रियों को देखा, जो द्वार की रक्षा में तत्पर थीं। उन स्त्रियों ने प्रसन्न होकर उन्हें बधाई दी और फिर जल्दी से घर में प्रवेश कर राजमाता को प्रिय निवेदन किया।

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत् कृतमङ्गला॥ ५॥
प्रविश्य तु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम्।
ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम्॥ ६॥

वे कौसल्या उस समय रेशमीवस्त्र पहले प्रसन्न होकर निरन्तर व्रत में लगी हुई, मंगलकार्य करके, मंत्रों के साथ अग्नि में हवन कर रही थी। राम ने माता के पवित्र अन्तःपुर में प्रवेश करके वहाँ हवन कराती हुई माता को देखा।

देवकार्यनिमित्तं च तत्रापश्यत् समुद्यतम्।
दध्यक्षतघृतं चैव मोदकान् हविषस्तथा॥ ७॥
समिधः पूर्णकुम्भांश्च ददर्श रघुनन्दनः।

देवयज्ञ के लिये तैयार किये गये, दही, चावल, घी, लड्डू, सामग्री, समिधाएँ और भरे हुए घड़ों को श्रीराम ने वहाँ देखा।

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दमागतम्॥ ८॥
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा।
स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः॥ ९॥
परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि।

वह कौसल्या, माता का आनन्द बढ़ाने वाले अपने पुत्र को बहुत देर के पश्चात आया हुआ देखकर हर्ष में भरकर उसकी तरफ चली जैसे गाय अपने बछड़े की तरफ जाती है। माता को समीप आये हुए देखकर श्रीराम ने उसके चरणों में प्रणाम किया, माता ने उन्हें दोनों भुजाओं से छाती से लगा लिया और उनके सिर को सूँघा।

तमुवाच दुराधर्षं राघवं सुतमात्मनः॥ १०॥
कौसल्या पुत्रवात्सल्यादिदं प्रियहितं वचः।
वृद्धानां धर्मशीलानां राजर्षीणां महात्मनाम्॥ ११॥
प्राप्नुह्यायुश्च कीर्तिं च धर्मं चाप्युचितं कुले।
सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानं पश्य राघव॥ १२॥
अद्यैव त्वां स धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति।

कौशल्या ने पुत्र के प्रेम से, शत्रुओं के लिये दुर्जय उन राम से यह प्यारी और भलाई की बात कही कि हे पुत्र! तुम धर्मशील, वृद्ध, राजर्षियों और महात्माओं की आयु और कीर्ति तथा कुलोचित धर्म को प्राप्त करो। हे राम! तुम अपने सत्यप्रतिज्ञ पिता से मिलो। वे आज ही तुम्हारा यौवराज्य के पद पर अभिषेक करेंगे।

दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमन्त्रितः॥ १३॥
मातरं राघवः किंचत् प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत्।
स स्वभावविनीतश्च गौरवाच्च तथानतः॥ १४॥
प्रस्थितो दण्डकारण्यमाप्रष्टुमुपचक्रमे।

उन्होंने उन्हें छाती से लगाने के बाद आसन दिया और भोजन के लिये कहा। तब राम अंजलि फैलाकर माता से कुछ कहने लगे। वे स्वभाव से ही विनम्र थे, फिर माता के गौरव से भी उनके सामने झुके हुए थे, पर दण्डकारण्य में उन्हें प्रस्थान करना था, अतः वे आज्ञा लेने का प्रयत्न करने लगे।

देवि नूनं न जानीषे महद् भयमुपस्थितम्॥ १५॥
इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च।

गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे।। १६।।
विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः।

वे बोले हे देवी! वास्तव में तुम नहीं जानती हो। मैं अब दण्डकारण्य में जाऊँगा। अब मेरा इस आसन से क्या काम? मेरा समय तो अब चटाई पर बैठने का है! यह तुम्हारे, सीता के और लक्ष्मण के लिये बड़ी भयानक बात हो गयी है।

भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति।। १७।।
मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम्।
स षट् चाष्टौ च वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।। १८।।
आसेवमानो वन्यानि फलमूलैश्च वर्तयन्।

महाराज भरत को युवराज बना रहे हैं और मुझे तपस्वी बनाकर दण्डकारण्य में भेज रहे हैं। मैं निर्जन जंगल में चौदह वर्ष वन्य पदार्थों का सेवन करता हुआ और फलमूल का आहार करता हुआ रहूँगा।

सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने।। १९।।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता।
तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव।। २०।।
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम्।

यह सुनकर वह देवी कौशल्या एक दम वन में कुल्हाड़े से काटी गयी शाल वृक्ष की शाखा के समान ऐसे गिर पड़ी जैसे कोई तारिका आकाश से अलग होकर गिर पड़ी हो। जो दुःख के योग्य नहीं थी, उस माता को कदली के समान अचेतावस्था में पड़ा हुआ देखकर राम ने उसे उठाया।

उपावृत्योत्थितां दीनां वडवामिव वाहिताम्।। २१।।
पांसु गुंठित सर्वांगीं, विममर्श च पाणिना।
सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता।। २२।।
उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे।

जैसे कोई बोझा ढोने से थकी हुई घोड़ी धूल में लेट कर उठी हो, उसी तरह से दीन बनी हुई सारे अंगों में धूल से लिपटी हुई माता की धूल को श्रीराम ने हाथ से मसलकर झाड़ा। वे कौशल्या जी, जो सुख भोगने योग्य थीं, पर अब दुःख से पीड़ित हो रही थीं, समीप बैठे हुए उस पुरुषश्रेष्ठ राम से लक्ष्मण के सुनते हुए बोलीं।

यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव।। २३।।
न स्म दुःखमतो भूयः, पश्येयमहमप्रजाः।
एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः।
अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते।। २४।।

हे राम! यदि मुझे दुःख देने वाले तुमने जन्म न लिया होता तो मैं वन्ध्या होने के दुःख से भी बड़े इस दुःख को न देखती। क्योंकि वन्ध्या को तो हे पुत्र! एक ही शोक होता है कि इसके पुत्र नहीं है।

न दृष्टपूर्वं कल्याणं, सुखं वा पतिपौरुषे।। २५।।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थितं मया।
अतो दुःखतरं किं नु, प्रमदानां भविष्यति।। २६।।
मम शोको विलापश्च, यादृशोऽयमनन्तकः।
त्वयि संनिहितेऽप्येवमहमासं निराकृता।। २७।।
किं पुनः प्रोषिते तात, ध्रुवं मरणमेव हि।

हे राम! पति के राज्य में मैंने कभी कल्याण या सुख को नहीं देखा। पुत्र के राज्य में देखूँगी ऐसी आशा में ही मैं जीवित रही। स्त्रियों के लिये इससे अधिक दुःखदायी बात और क्या हो सकती है? इसलिये मेरा दुःख और विलाप जैसा है उसका कभी अन्त नहीं है। तुम्हारे यहाँ रहते हुए भी मैं इस प्रकार अपमानित रही हूँ, तुम्हारे बाहर चले जाने पर तो मेरी मृत्यु निश्चित है।

अत्यन्तं निगृहीतास्मि, भर्तुर्नित्यमसम्मता।। २८।।
परिवारेण कैकेय्याः, समा वाप्यथवावरा।
यो हि मां सेवते कश्चिदपि वाप्यनुवर्तते।। २९।।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य, स जनो नाभिभाषते।

मैं पति से सदा ही तिरस्कृत और फटकारी जाती रही हूँ। मेरी स्थिति कैकेयी की दास दासियों या उनसे नीची रही है। उनमें से जो भी कभी मेरी सेवा करता या मेरी आज्ञा का पालन करता है वह कैकेयी के पुत्र को देखकर चुप हो जाता है।

नित्यक्रोधतया तस्याः, कथं नु खरवादि तत्।। ३०।।
कैकेय्याः वदनं द्रष्टुं, पुत्र शक्ष्यामि दुर्गता।
अपश्यन्ती तव मुखं, परिपूर्णशशिप्रभम्।
कृपणा वर्तयिष्यामि, कथं कृपणजीविका।। ३१।।
उपवासैश्च योगैश्च, बहुभिश्च परिश्रमैः।
दुःखसंवर्धितो मोघं, त्वं हि दुर्गतया मया।। ३२।।
स्थिरं नु हृदयं मन्ये, ममेदं यन्न दीर्यते।
प्रावृषीव महानद्याः, स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा।। ३३।।

हे पुत्र! सदा क्रोध में रहने के कारण, कटुवचन बोलने वाले कैकेयी के उस मुख को मैं इस दुर्गति

में पड़कर कैसे देख सकूँगी? मैं तो पहले ही मुसीबत में पड़ी हुई हूँ, अब तुम्हारे पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख न देखने से और मुसीबत मे पड़कर कैसे निर्वाह करूँगी। मुझ अभागिनी ने उपवासों से, मनोयोग से और बहुत से परिश्रमों से तथा दुःखों से तुम्हे बेकार ही पालकर बड़ा किया। मैं समझती हूँ कि वास्तव में मेरा हृदय बड़ा कठोर है जो वर्षा ऋतु में नये पानी के प्रवाह से टकराते हुए महानदी के किनारों की तरह से फट नहीं जाता।

ममैव नूनं मरणं न विद्यते,
न चावकाशोऽस्ति यमक्षये मम।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति,
प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव।। ३४।।

वास्तव में मेरी ही मौत नहीं है। मौत के घर में भी मेरे लिये जगह नहीं है, इसी लिये जैसे रोती हुई हिरणी को शेर जबरदस्ती उठा कर ले जाता है, वैसे मुझे आज मृत्यु भी ले जाना नहीं चाहती है।

स्थिरं हि नूनं हृदयं ममायसं,
न भिद्यते यद् भुवि नो विदीर्यते।
अनेन दुःखेन च देहमर्पितं,
ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते।। ३५।।

वास्तव में मेरा दिल लोहे का बना हुआ बड़ा मजबूत है जो फट नहीं जाता! इस दुःख मे जमीन पर गिरने पर इस शरीर के भी टुकड़े नहीं होते। निश्चित रूप से जब तक समय न हो मृत्यु नहीं होती।

इदं तु दुःखं यदनर्थकानि मे,
व्रतानि दानानि च संयमाश्च हि।
तपश्च तप्तं यदपत्यकाम्यया,
सुनिष्फलं बीजमिवोप्तमूषरे।। ३६।।

यह बड़े दुःख की बात है कि मेरे सारे व्रत, दान और संयम, सन्तान की इच्छा से तपा हुआ तप, सब ऐसे ही व्यर्थ हो गये जैसे ऊसर भूमि में बोया हुआ बीज नष्ट हो जाता है।

यदि ह्यकाले मरणं यदृच्छया,
लभेत कश्चिद् गुरुदुःखकर्शितः।
गताहमद्यैव परेतसंसदं,
विना त्वया धेनुरिवात्मजेन वै।। ३७।।

यदि कोई भयानक दुःख से पीड़ित होकर बिना समय के ही मृत्यु को प्राप्त कर सके तो मैं तेरे बिना, बछड़े से बिछुड़ी हुई गाय की तरह आज ही मृत्यु के घर चली जाऊँ।

अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा,
त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ।
अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः,
सुदुर्बला वत्समिवाभिकाङ्क्षया।। ३८।।

अथवा हे चन्द्रमा के समान अपने मुख की सुन्दरता वाले! मैं तुम्हारे बिना अपने व्यर्थ के जीवन को क्यों बिताऊँ? जैसे गाय कमजोर होने पर भी अपने बछड़े की इच्छा से उसके पीछे पीछे चल देती है, वैसे ही मैं भी तुम्हारे साथ वन चली चलूँगी।

भृशमसुखममर्षिता तदा बहु,
विललाप समीक्ष्य राघवम्।
व्यसनमुपनिशाम्य सा महत्,
सुतमिव बद्धमवेक्ष्य किंनरी।। ३९।।

इस प्रकार भारी दुःख को सहने में असमर्थ, माता कौसल्या, आने वाले दुःख का विचार कर और राम की तरफ देखकर बिलखने वाली किन्नरी के समान अत्यधिक विलाप करने लगी।

बीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का रोष और श्रीराम को बलपूर्वक राज्य पर अधिकार कर लेने के लिये प्रेरित करना, पर श्रीराम का पिता की आज्ञा को ही धर्म बताकर माता और लक्ष्मण को समझाना।

तथा तु विलपन्तीं तां, कौसल्यां राममातरम्।
उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः।। १।।
न रोचते ममाप्येतदार्ये यद् राघवो वनम्।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत, स्त्रिया वाक्यवशंगत।। २।।
विपरीतश्च वृद्धश्च, विषयैश्च प्रधर्षितः।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः।। ३।।

इस प्रकार विलाप करती हुई राम की माता कौसल्या को दीन बने हुए लक्ष्मण ने उस समय के योग्य बात कही। वे बोले कि हे आर्ये! मुझे भी यह अच्छा नहीं लग रहा कि श्रीराम राज्यलक्ष्मी को त्यागकर वन में जायें। राजा तो स्त्री के वश में हो गए हैं, विषयों के वश में होकर, बुढ़ापे में उनका दिमाग उलट गया है। कामदेव से प्रेरित होकर वे क्या नहीं कह सकते?

नास्यापराधं पश्यामि, नापि दोषं तथाविधम्।
येन निर्वास्यते राष्ट्राद्, वनवासाय राघव।। ४।।
न तं पश्याम्यहं लोके, परोक्षमपि यो नरः।
स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि, योऽस्य दोषमुदाहरेत्।। ५।।

श्रीराम को वन में रहने के लिये जो निकाला जा रहा है, मैं तो इस प्रकार कोई दोष इनमें नहीं देखता। मैं संसार में किसी भी मनुष्य को ऐसा नहीं देखता जो इनका शत्रु या तिरस्कृत होने पर भी इनके दोषों को इनके पीछे से भी बता सके।

देवकल्पमृजुं दान्तं, रिपूणामपि वत्सलम्।
अवेक्षमाणः को धर्मं, त्यजेत् पुत्रमकारणात्।। ६।।
तदिदं वचनं राज्ञः, पुनर्बाल्यमुपेयुषः।
पुत्रः को हृदये कुर्याद्, राजवृत्तमनुस्मरन्।। ७।।

धर्म का पालन करने वाला कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो इन जैसे देवताओं के समान, कोमल स्वभाव, दमनशील, शत्रुओं से भी प्रेम करने वाले ऐसे पुत्र को बिना किसी कारण से छोड़ दे। इसलिये उन राजा के जो बाल्यस्वभाव को प्राप्त हो रहे हैं, इन वचनों को राजनीति का पालन करने वाला कौन पुत्र अपने हृदय में स्थान देगा?

यावदेव न जानाति, कश्चिदर्थमिमं नरः।
तावदेव मया सार्धमात्मस्थं करु शासनम्।। ८।।
मया पार्श्वे सधनुषा, तव गुप्तस्य राघव।
कः समर्थोऽधिकं कर्तुं, कृतान्तस्येव तिष्ठतः।। ९।।

जब तक कोई दूसरा मनुष्य इस बात को नहीं जानता तब तक आप मेरे साथ इस राज्य को अपने आधीन कर लीजिये। जब मैं धनुष लेकर आपकी रक्षा में होऊँ अब आपके मृत्यु के समान युद्ध के लिये डट जाने पर कौन मनुष्य आपसे अधिक पौरुष प्रकट कर सकता है?

निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये।। १०।।
भरतस्याथ पक्ष्यो वा, यो वास्य हितमिच्छति।
सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि, मृदुर्हि परिभूयते।। ११।।

हे नरश्रेष्ठ! यदि कोई हमारे विरोध में खड़ा होगा तो मैं तीव्र बाणों में इस सारी अयोध्या को मनुष्यों से रहित कर दूँगा। जो भरत का पक्षपाती होगा, या उनका हित चाहने वाला होगा, उन सबको मैं मार दूँगा, क्योंकि जो कोमल होता हैं उसी का सब तिरस्कार करते हैं।

प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या, संतुष्टो यदि नः पिता।
अमित्रभूतो निःसंङ्गं, वध्यतां वध्यतामपि।। १२।।
गुरोरप्यवलिप्तस्य, कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य, कार्यं भवति शासनम्।। १३।।

कैकेयी के द्वारा प्रोत्साहित यदि हमारे पिता स्वयं भी सन्तुष्ट होकर हमारे शत्रु बन गये हैं, तो हमें भी मोह से रहित होकर इन्हें मार देना चाहिये। क्योंकि यदि गुरु भी घमंड में आ जाये, कार्य और अकार्य को समझना बन्द कर दे, बुरे मार्ग पर चलने लगे, तो उसे दण्ड देना चाहिये।

बलमेष किमाश्रित्य, हेतुं वा पुरुषोत्तम।
दातुमिच्छति कैकेय्यै, उपस्थितमिदं तव।। १४।।
त्वया चैव मया चैव, कृत्वा वैरमनुत्तमम्।
कास्य शक्तिः श्रियं दातुं, भरतायारिशासन।। १५।।

हे नरश्रेष्ठ! ये राजा किस बल का या किस कारण का सहारा लेकर तुम्हारा भाग कैकेयी को देना चाहतें हैं? शत्रुओं को नष्ट करने वाले आपसे और मुझसे वैर करके, इनकी क्या शक्ति कि ये राज्य लक्ष्मी भरत को दे दें।

अनुरक्तोऽस्मि भावेन, भ्रातरं देवि तत्त्वतः।
सत्येन धनुषा चैव, दत्तेनेष्टेन ते शपे।। १६।।
दीप्तमग्निमरण्यं वा, यदि रामः प्रवेक्ष्यति।
प्रविष्टं तत्र मां देवि, त्वं पूर्वमवधारय।। १७।।

हे देवी! मैं अपने इन भाई में सत्य भाव से अनुरक्त हूँ; यह मैं अपने धनुष, सत्य, दान और यज्ञ की शपथ खाकर सत्य कहता हूँ। हे देवी! यदि राम जलती हुई आग में या वन में प्रवेश करेंगे तो मैं इनसे पहले वहाँ प्रवेश करूँगा, यह समझ लो।

हरामि वीर्याद् दुःखं ते, तमः सूर्य इवोदितः।
देवी पश्यतु मे वीर्यं, राघवश्चैव पश्यतु।। १८।।
हनिष्ये पितरं वृद्धं, कैकेय्यासक्तमानसम्।
कृपणं च स्थितं बाल्ये, वृद्धभावेन गर्हितम्।। १९।।

हे देवी! आप मेरी शक्ति को देखिये, श्रीराम भी देखेंगे। मैं अपने पराक्रम से आपके दुःख को ऐसे हीं दूर कर दूँगा जैसे उदय होता हुआ सूर्य अन्धकार को दूर कर देता है। मैं इन बूढ़े पिता जी को, जो कैकेयी में आसक्त हैं, दीन बन गये हैं, बच्चों जैसी मूर्खता कर रहे हैं और बुढ़ापे के कारण निन्दित हो रहे हैं मार दूँगा।

एतत् तु वचनं श्रुत्वा, लक्ष्मणस्य महात्मनः।
उवाच रामं कौसल्या, रुदती शोकलालसा।। २०।।
भ्रातुस्ते वदतः पुत्र, लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया।
यदत्रानन्तरं तत्त्वं, कुरूष्व यदि रोचते।। २१।।

महात्मा लक्ष्मण के ये वचन सुन कर शोक मग्न कौसल्या रोती हुई राम से यह बोली– कि हे पुत्र तुमनें अपने भाई लक्ष्मण की बात सुनी। अब जो सही बात हो और तुम्हें यदि अच्छी लगे उसे करो।

न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा, सपत्न्या मम भाषितम्।
विहाय शोकसंतप्तां, गन्तुमर्हसि मामितः।। २२।।
धर्मज्ञ इति धर्मिष्ठ, धर्मं चरितुमिच्छसि।
शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं, चर धर्ममनुत्तमम्।। २३।।

तुम्हें मेरी सौत की कही हुई अधर्म से युक्त बात सुनकर मुझे दुःख से पीड़ित को छोड़ कर यहाँ से नहीं जाना चाहिये। हे धर्म का पालन करने वाले! तुम धर्म को जानते हो और धर्म का पालन करना चाहते हो तो तुम यहीं रहकर मेरी सेवा करो और श्रेष्ठ धर्म का पालन करो।

यथैव राजा पूज्यस्ते, गौरवेण तथा ह्यहम्।
त्वां साहं नानुजानामि, न गन्तव्यमितो वनम्।। २४।।
त्वद्वियोगान्न मे कार्यं, जीवितेन सुखेन च।
त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम्।। २५।।

जैसे गौरव के कारण राजा तुम्हारे पूज्य हैं, वैसे ही मैं भी हूँ, इसलिये मैं तुम्हें आज्ञा नहीं देती। तुम्हें वन में नहीं जाना चाहिये। तुम्हारा वियोग होने पर मुझे इस जीवन और सुख से कोई प्रयोजन नहीं है और तुम्हारे साथ रहकर मुझे तिनके खाना भी कल्याणकारी है।

यदि त्वं यास्यसि वनं, त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्।
अहं प्रायमिहासिष्ये, न च शक्ष्यामि जीवितुम्।। २६।।
विलपन्तीं तथा दीनां, कौसल्यां जननीं ततः।
उवाच रामो धर्मात्मा, वचनं धर्मसंहितम्।। २७।।

यदि तुम शोक में डूबी हुई मुझे छोड़कर वन में चले जाओगे तो मैं उपवास पर बैठकर प्राणों को छोड़ दूँगी। इस प्रकार विलाप करती हुई और दीन बनी हुई कौसल्या माता से धर्मात्मा श्रीराम धर्म से युक्त वचन बोले।

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं, समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा, गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्।। २८।।
ऋषिणा च पितुर्वाक्यं, कुर्वता वनचारिणा।
गौर्हता जानताधर्मं, कण्डुना च विपश्चिता।। २९।।

हे माता! मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं पिता जी की बात का उल्लंघन करूँ, इसलिये मैं वन में जाना चाहता हूँ और सिर झुकाकर तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ। विद्वान वनवासी ऋषि कण्डु ने अधर्म समझते हुए भी पिता की आज्ञा से गौ की हत्या कर दी थी।

जामदग्न्येन रामेण, रेणुका जननी स्वयम्।
कृत्ता परशुनारण्ये, पितुर्वचनकारणात्।। ३०।।
एतैरन्यैश्च बहुभिर्देवि देवसमैः कृतम्।
पितुर्वचनमक्लीबं, करिष्यामि पितुर्हितम्।। ३१।।

जमदग्नि के पुत्र राम ने अपनी माता रेणुका को वन में पिता की आज्ञा के कारण परशु से काट डाला था। हे देवी! इन्होंने और दूसरे बहुत से देवताओं के समान लोगों ने पिता का वचन पूरा किया इसलिये मैं

भी पिता के कल्याण की बात बिना शिथिलता के पूरी करूँगा।

नाहं धर्ममपूर्वं ते, प्रतिकूलं प्रवर्तये।
पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो, मार्गोऽनुगम्यते।। ३२।।
तदेतत् तु मया कार्यं, क्रियते भुवि नान्यथा।
पितुर्हि वचनं कुर्वन्, न कश्चिन्नाम हीयते।। ३३।।

हे माता! मैं आपके प्रतिकूल किसी नये धर्म का प्रारम्भ नहीं कर रहा हूँ। मैं तो पहले के लोगों द्वारा प्रवर्तित मार्ग पर ही चल रहा हूँ। मुझे वही करना चाहिये जो संसार में किया जा रहा है, उससे विपरीत नहीं करना चाहिये। पिता की आज्ञा का पालन करने से कोई धर्म से नहीं गिरता है।

तामेवमुक्त्वा जननीं, लक्ष्मणं पुनरब्रवीत्।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः, श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्।। ३४।।
तव लक्ष्मण जानामि, मयि स्नेहमनुत्तमम्।
विक्रमं चैव सत्त्वं च, तेजश्च सुदुरासदम्।। ३५।।

माता से इस प्रकार कह कर, बोलने वालो में तथा धनुर्धरों में श्रेष्ठ राम लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण! मैं जानता हूँ कि तुम्हारा मुझ पर बहुत स्नेह है। मैं तुम्हारे विक्रम, शक्ति और दुर्धर्ष तेज को भी जानता हूँ।

मम मातुर्महद् दुःखमतुलं शुभलक्षण।
अभिप्रायं न विज्ञाय, सत्यस्य च शमस्य च।। ३६।।
धर्मो हि परमो लोके, धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मसंश्रितमप्येतत्, पितुर्वचनमुत्तमम्।। ३७।।

हे शुभलक्षण लक्ष्मण! मेरी माता को सत्य और शम के विषय में मेरे अभिप्राय को न समझने के कारण महान दुःख हो रहा है। संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। पिता जी का यह वचन भी धर्म पर आधारित होने के कारण उत्तम है।

संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं, मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा।
न कर्तव्यं वृथा वीर, धर्ममाश्रित्य तिष्ठता।। ३८।।
सोऽहं न शक्ष्यामि, पुनर्नियोगमतिवर्तितुम्।
पितुर्हि वचनाद् वीर, कैकेय्याहं प्रचोदितः।। ३९।।

तदेतां विसृजानार्यां, क्षेत्रधर्माश्रितां मतिम्।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं, मद्बुद्धिरनुगम्यताम्।। ४०।।

हे वीर! धर्म का आश्रय लेकर चलने वाले मनुष्य को पिता माता या ब्राह्मण के वचनों के पालन की प्रतिज्ञा करके उसे व्यर्थ नहीं करना चाहिये। इसलिये मैं पिता जी के वचनों का उल्लंघन नहीं कर सकता। हे वीर! पिताजी के वचनों ही से कैकेयी ने मुझसे कहा है। इसलिये इस अनार्य और केवल क्षात्रधर्म पर अवलम्बित बुद्धि को छोड़ो। धर्म का आश्रय लो, कठोरता का नहीं। मेरी सलाह के अनुसार चलो।

तमेवमुक्त्वा सौहार्दाद्, भ्रातरं लक्ष्मणाग्रजः।
उवाच भूयः कौसल्यां, प्राञ्जलिः शिरसा नतः।। ४१।।
अनुमन्यस्व मां देवि, गमिष्यन्तमितो वनम्।
शापितासि मम प्राणैः, कुरु स्वस्त्ययनानि मे।। ४२।।

लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने उस भाई से प्यार से ऐसा कह कर फिर हाथ जोड़कर और सिर झुका कर कौसल्या से कहा कि हे देवी मैं यहाँ से वन को जाऊँगा, तुम मुझे आज्ञा दो। तुम्हें मेरे प्राणों की शपथ है। तुम मेरा स्वस्तिवाचन कराओ।

शोकः संधार्यतां मातर्हृदये साधु मा शुचः।
वनवासादिहैष्यामि, पुनः कृत्वा पितुर्वचः।। ४३।।
त्वया मया च वैदेह्या, लक्ष्मणेन सुमित्रया।
पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः सनातनः।। ४४।।
अम्ब सम्भृत्य सम्भारान्, दुःखं हृदि निगृह्य च।
वनवासकृता बुद्धिर्मम धर्म्यानुवर्त्यताम्।। ४५।।

हे माता! दुःख को दिल में अच्छी तरह दबाये रखो। शोक मत करो। मैं पिता के वचनों को पूरा करके वनवास से फिर यहाँ आ जाऊँगा। आपको, मुझे, सीता को, लक्ष्मण को, और सुमित्रा को पिता जी के कहने में ही रहना चाहिये। यही सनातन धर्म है। हे माता! दुःख को हृदय में दबाकर सामान इकट्ठा कर मेरी जो वनवास के विषय में धर्म के अनुसार बुद्धि है, उसके अनुसार काम करो अर्थात मेरा स्वस्तिवाचन करो।

इक्कीसवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण को समझाते हुए अपने वनवास में दैव को ही कारण बताना।

अथ तं व्यथया दीनं, सविशेममर्षितम्।
सरोषमिव नागेन्द्रं, रोषविस्फारितेक्षणम्।। १।।
आसाद्य रामः सौमित्रिं, सुहृदं भ्रातरं प्रियम्।
उवाचेदं स धैर्येण, धारयन् सत्त्वमात्मवान्।। २।।

लक्ष्मण उस समय मानसिक दुःख से बहुत दीन बने हुए थे। उन्हें विशेषरूप से अमर्ष हो रहा था। वें क्रुद्ध हुए हाथी के समान रोष से आँखें फाड़कर देख रहे थे। सुमित्रा के पुत्र अपने प्रिय भाई और मित्र को इस अवस्था में देखकर वे मनस्वी राम अपने हृदय को वश में रखते हुए धीरज के साथ उनसे बोले।

सौमित्रे योऽभिषेकार्थे, मम सम्भारसम्भ्रमः।
अभिषेकनिवृत्त्यर्थे, सोऽस्तु सम्भारसम्भ्रमः।। ३।।
यस्या मदभिषेकार्थे, मानसं परितप्यते।
माता नः सा यथा न स्यात्, सविशङ्का तथा कुरु।। ४।।

हे सुमित्रा के पुत्र! मेरे अभिषेक की तैयारी में तुम्हारा जो उत्साह था, वही अब तुम्हारा मेरा अभिषेक रोकनें में भी होना चाहिये। जिसे मेरे अभिषेक के कारण सन्ताप हो रहा है. उस हमारी माता को अब वह न हो तुम वैसा ही काम करो।

तस्याः शङ्कामयं दुःखं, मुहूर्तमपि नोत्सहे।
मनसि प्रतिसंजातं, सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम्।। ५।।
न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं, स्मरामीह कदाचन।
मातॄणां वा पितुर्वाहं, कृतमल्पं च विप्रियम्।। ६।।

हे लक्ष्मण! उसके मन में शंका के कारण जो दुःख उत्पन्न हो गया है उसे मैं एक मुहूर्त के लिये भी न तो सहन कर सकता हूँ और न उसकी उपेक्षा करना चाहता हूँ। मुझे यह याद नहीं है कि मैंने कभी बुद्धिपूर्वक या अनजाने भी माताओं का, या पिता जी का कभी छोटा सा भी अप्रिय कार्य किया हो।

सत्यः सत्याभिसंधश्च, नित्यं सत्यपराक्रमः।
परलोकभयाद् भीतो, निर्भयोऽस्तु पिता मम।। ७।।
मम प्रव्राजनादद्य, कृतकृत्या नृपात्मजा।
सुतं भरतमव्यग्रमभिषेचयतां ततः।। ८।।
मयि चीराजिनधरे, जटामण्डलधारिणि।
गतेऽरण्यं च कैकेय्या, भविष्यति मनः सुखम्।। ९।।

मेरे पिता सत्यवादी, सत्य का पालन करने वाले और सदा सत्य के लिये पराक्रम करने वाले रहे है। वे परलोक से डरते रहे हैं। मेरे कार्य से उनका भय दूर होना चाहिये। मेरे चले जाने से वह राजपुत्री आज कृतकृत्य हो जायेगी। वह उसके पश्चात निर्भय होकर अपने पुत्र भरत का अभिषेक कराये। मेरे वल्कल और मृगचर्य तथा जटाओं को धारण कर वन में चले जाने पर कैकेयी का मन सुखी हो जाएगा।

कृतान्त एव सौमित्रे, द्रष्टव्यो मत्प्रवासने।
राजस्य च वितीर्णस्य, पुनरेव निवर्तने।। १०।।
कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हि, कथं स्यान्मम वेदने।
यदि तस्या न भावोऽयं, कृतान्तविहितो भवेत्।। ११।।

हे सुमित्रा के पुत्र! मेरे वनवास और मिले हुए राज्य के पुनः हाथ से निकल जाने में परमात्मा की इच्छा को ही कारण समझना चाहिये। कैकेयी का मेरे प्रति यह विपरीत भाव परमात्मा की व्यवस्था के ही कारण है। यदि ऐसा न होता तो वह मुझे पीड़ा देने का विचार क्यों करती।

जानासि हि यथा सौम्य, न मातृषु समान्तरम्।
भूतमपूर्व विशेषो वा, तस्या मयि सुतेऽपि वा।। १२।।
सोऽभिषेकनिवृत्त्यर्थैः, प्रवासार्थैश्च दुर्वचैः।
उग्रैर्वाक्यैरहं तस्या, नान्यद् दैवात् समर्थये।। १३।।

हे सौम्य! तु जानते ही हो कि मैंने कभी माताओं के लिये मन में भेदभाव नहीं किया और— कैकेयी भी मुझमें और अपने पुत्र में अन्तर नहीं समझती थीं। उसी कैकेयी ने मेरे अभिषेक को रोकने और मुझे वन में भेजने के लिये जिन क्रोधपूर्ण बुरे वाक्यों का प्रयोग किया है, उसमें मैं परमात्मा की इच्छा के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं समझता।

कथं प्रकृतिसम्पन्ना, राजपुत्री तथागुणा।
ब्रूयात् सा प्राकृतेव स्त्री, मत्पीड्यं भर्तृसंनिधौ।। १४।।
यदचिन्त्यं तु यद् दैवं, भूतेष्वपि न हन्यते।
व्यक्तं मयि च तस्यां च, पतितो हि विपर्ययः।। १५।।

यदि ऐसा न होता तो वह कैकेयी जो उत्तम स्वभाव और गुणों से युक्त थी, पति के समीप मुझे पीड़ा देने वाली बाते सामान्य कोटि की स्त्री की भाँति क्यों

कहती? जिसके विषय में सोचा नहीं जा सकता तथा जिसका कोई प्राणी निवारण नहीं कर सकता, वही परमात्मा की व्यवस्था है। उसी के कारण मुझमें और कैकेयी में इतना परिवर्तन हुआ है।

कश्च दैवेन सौमित्रे, योद्धुमुत्सहते पुमान्।
यस्य नु ग्रहणं किंचित्, कर्मणोऽन्यन्न दृश्यते।। १६।।
सुखदुःखे भयक्रोधौ, लाभालाभौ भवाभवौ।
यस्य किंचित् तथाभूतं, ननु दैवस्य कर्म तत्।। १७।।

हे सौमित्र! जिसका ज्ञान कर्म फल के अतिरिक्त और कहीं नहीं होता, परमात्मा की उस व्यवस्था से कौन पुरुष लड़ सकता है? सुख, दुःख, भय, क्रोध, लाभ, हानि, उत्पत्ति, विनाश तथा और भी दूसरे कार्य, जिनका कोई कारण दिखाई नहीं देता वे परमात्मा की व्यवस्था के ही कारण हैं।

असंकल्पितमेवेह, यदकस्मात् प्रवर्तते।
निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत्।। १८।।
एतया तत्त्वया बुद्ध्या, संस्तभ्यात्मानमात्मना।
व्याहतेऽप्यभिषेके मे, परितापो न विद्यते।। १९।।

मा च लक्ष्मण संतापं, कार्षीर्लक्ष्म्या विपर्यये।
राज्यं वा वनवासो वा, वनवासो महोदयः।। २०।।

जिसके बारे में हमने कभी सोचा नहीं और जो अकस्मात् हमारे ऊपर आ पड़ती है और हमारे प्रयत्नों को निष्फल कर कोई नई परिस्थिति प्रस्तुत कर देती है वह परमात्मा की ही व्यवस्था का परिणाम है। इस तत्त्व का ज्ञान होने के कारण अभिषेक में विघ्न होने पर भी मुझे दुःख नहीं हो रहा है। हे लक्ष्मण! लक्ष्मी के इस उलट फेर से तुम सन्ताप मत करो। अब मेरे लिये राज्य और– वनवास समान है। बल्कि वनवास मुझे महान अभ्युदय वाला प्रतीत हो रहा है।

न लक्ष्मणास्मिन् मम राज्यविघ्ने,
माता यवीयस्यभिशङ्कितव्या।
दैवाभिपन्ना न पिता कथंचि-
ज्जानासि दैवं हि तथाप्रभावम्।। २१।।

हे लक्ष्मण! मेरे इस राज्य के विघ्न में छोटी माता को कारण समझने की शंका नहीं करनी चाहिये और ना ही पिता भी इसमें कारण हैं। ये सब परमात्मा की व्यवस्था के आधीन हैं। परमात्मा की व्यवस्था, इच्छा के प्रभाव को तुम तो जानते ही हो।

बाईसवाँ सर्ग

लक्ष्मण द्वारा दैव का खण्डन और पुरुषार्थ का प्रतिपादन तथा श्रीराम के अभिषेक के लिये विरोधियों से लोहा लेने के लिये उद्यत होना।

इति ब्रुवति रामे तु, लक्ष्मणोऽवाक्शिरा इव।
ध्यात्वा मध्यं जगामाशु, सहसा दैन्यहर्षयोः।। १।।
तदा तु बद्ध्वा भ्रुकुटीं, भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः।
निशश्वास महासर्पो, बिलस्थ इव रोषितः।। २।।

श्रीराम के इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण जी सिर झुकाये चुपचाप कुछ सोचते रहे, फिर वे अचानक जल्दी ही दीनता और हर्ष दोनों की स्थिति में पहुँच गये। फिर वे नरश्रेष्ठ दोनों भौंहों के बीच के माथे पर बल डालकर बिल में विद्यमान क्रोधित भयानक सर्प के समान लम्बी साँस लेने लगे।

तस्य दुष्प्रतिवीक्ष्यं, तद् भ्रुकुटीसहितं तदा।
बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य, मुखस्य सदृशं मुखम्।। ३।।
अग्रहस्तं विधुन्वंस्तु, हस्ती हस्तमिवात्मनः।
तिर्यगूर्ध्वं शरीरे च, पातयित्वा शिरोधराम्।। ४।।
अग्राक्ष्णा वीक्षमाणस्तु, तिर्यग्भ्रातरमब्रवीत्।

उस समय क्रुद्ध सिंह के मुख के समान उनका भौंहे चढ़ा हुआ मुख ऐसा भयानक हो रहा था कि उसकी तरफ देखना भी कठिन था। वे जैसे हाथी अपनी सूँड हिलाया करता है, उसी तरह अपने दाहिने हाथ को हिलाते हुए और गर्दन को शरीर के ऊपर सीधा टेढ़ा हिलाते हुए तथा आँखों के अग्रभाग से भाई की तरफ टेढ़ा देखते हुए उनसे बोले।

अस्थाने सम्भ्रमो यस्य, जातो वै सुमहानयम्।। ५।।
धर्मदोषप्रसङ्गेन, लोकस्यानेतिशङ्कया।
कथं ह्येतदसम्भ्रातान्तस्त्वद्विधो वक्तु मर्हति।। ६।।
यथा ह्येवमशौण्डीरं, शौण्डीरः क्षत्रियर्षभः।
किं नाम कृपणं, दैवमशक्तमभिशंससि।। ७।।

हे भाई! धर्म के उल्लंघन की आशंका से और लोगों के एतराज की शंका से आप में जो वन जाने के लिए बड़ा उतावलापन आ गया है, यह अनुचित है। आप

जैसा वीर भ्रम से रहित, क्षत्रियों में श्रेष्ठ व्यक्ति कैसे ऐसी बात कर सकता है। आप कायर, दीन और कमजोर व्यक्तियों के आश्रय दैव की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?

पापयोस्ते कथं नाम, तयोः शङ्का न विद्यते।
सन्ति धर्मोपधासक्ता, धर्मात्मन् किं न बुध्यसे।। ८।।
तयोः सुचरितं स्वार्थं, शाठ्यात् परिजिहीर्षतोः।
यदि नैवं व्यवसितं, स्याद्धि प्रागेव राघव।। ९।।
तयोः प्रागेव दत्तश्च, स्याद् वरःप्रकृतश्च सः।

हे धर्मात्मन्! आपको उन दोनों पापियों पर सन्देह क्यों नहीं होता? संसार में धर्म का ढोंग करने वाले बहुत से लोग हैं, क्या आप यह नहीं जानते? हे राघव! यह उन दोनों का आपका त्याग करने की इच्छा से शठता से अपने स्वार्थ को पूरा करने का कार्य है। यदि ऐसा नहीं है तो यह कार्य पहले ही हो जाना चाहिये था। यह वर देने की क्रिया पहले ही स्वाभाविक रूप से हो जाती।

लोकविद्विष्टमारब्धं, त्वदन्यस्याभिषेचनम्।। १०।।
नोत्सहे सहितुं वीर, तत्र मे क्षन्तुमर्हसि।
येनैवमागता द्वैधं, तव बुद्धिर्महामते।। ११।।
सोऽपि धर्मो मम द्वेष्यो, यत्प्रसङ्गाद् विमुह्यसि।

आप सबसे बड़े हैं, आपके अतिरिक्त दूसरे का अभिषेक करना लोक मर्यादा के विरुद्ध है! मैं इसे सहन नहीं कर सकता। आप मुझे यहाँ क्षमा करें। जिस पिता के वचन से हे महामति! आपकी बुद्धि मोह में पड़ गयी है, वह भी अधर्मयुक्त है! मैं उसका विरोध करता हूँ।

कथं त्वं कर्मणा शक्तः, कैकेयीवशवर्तिनः।। १२।।
करिष्यसि पितुर्वाक्यमधर्मिष्ठं विगर्हितम्।
यदयं किल्बिषाद् भेदः, कृतोऽप्येवं न गृह्यते।। १३।।
जायते तत्र मे दुःख, धर्मसङ्गश्च गर्हितः।

आप सब कुछ करने में समर्थ होने पर भी, कैकेयी के बस में हुए पिता के अधर्म पूर्ण और निन्दनीय वाक्यों का पालन कैसे करेंगे। आपके अभिषेक को रोकने के लिये यह वरदान की पापपूर्ण कल्पना की गयी है, फिर भी आप इसके वास्तविक रूप को नहीं समझ रहे हैं ऐसे कपट वाले धर्म के प्रति आसक्ति निन्दनीय है। इसके लिये मुझे बड़ा दुःख है।

तवायं धर्मसंयोगो, लोकस्यास्य विगर्हितः।। १४।।
मनसापि कथं कामं, कुर्यात् त्वां कामवृत्तयोः।
तयोस्त्वहितयोर्त्यिं, शत्रवोः पित्रभिधानयोः।। १५।।
यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते, दैवी चापि तयोर्मतम्।
तथाप्युपेक्षणीयं ते, न मे तदपि रोचते।। १६।।

इस अधर्म वाले धर्म में आपकी प्रवृत्ति लोक में निन्दनीय है! उन दोनों माता पिता नाम के शत्रुओं, जो आपके अहित साधन में लगे हुए हैं, के मनोरथ को कौन व्यक्ति मन से भी कैसे पूरा कर सकता है? आपका यह विचार कि उन दोनों का मेरे लिये यह विचार दैव के कारण है, मुझे अच्छा नहीं लगता। आपको उसकी उपेक्षा करनी चाहिये।

विक्लवो वीर्यहीनो यः, स दैवमनुवर्तते।
वीराः सम्भावितात्मानो, न दैवं पर्युपासते।। १७।।
दैवं पुरुषकारेण, यः समर्थः प्रबाधितुम्।
न दैवेन विपन्नार्थः, पुरुषः सोऽवसीदति।। १८।।

जो कायर हैं, जिसमें पराक्रम नही है, वे ही दैव का सहारा लेते हैं। दृढ़ आत्मा वाले वीर लोग दैव को नहीं मानते। जो अपने पुरुषार्थ से दैव को उलटने में समर्थ है, ऐसा पुरुष दैव द्वारा विपत्ति में पड़ने पर दुखी नहीं होता।

द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य, पौरुषं पुरुषस्य च।
दैवमानुषयोरद्य, व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति।। १९।।
अद्य मे पौरुषहतं, दैवं द्रक्ष्यन्ति वै जनाः।
यैर्दैवादाहतं तेऽद्य, दृष्टं राज्याभिषेचनम्।। २०।।

आज लोग देखेंगे कि दैव बड़ा है या पौरुष? दैव और मनुष्य दोनों की शक्ति की आज परीक्षा हो जायेगी। जिन लोगों ने आज दैव के द्वारा आपके अभिषेक को नष्ट होते हुए देखा है, वे आज पुरुषार्थ के द्वारा दैव का विनाश देख लेंगे।

अत्यङ्कुशमिवोद्दामं, गजं मदजलोद्धतम्।
प्रधावितमहं दैवं, पौरुषेण निवर्तये।। २१।।
लोकपालाः समस्तास्ते, नाद्य रामाभिषेचनम्।
न च कृत्स्नास्त्रयो लोका, विहन्युः किं पुनः पिता।। २२।।

मैं उस दैव को जो अंकुश की परवाह न करने वाले, मद की धारा बहाते हुए उद्दंड हाथी के समान दौड़ रहा है अपने पुरुषार्थ से वापिस कर दूँगा। सारे संसार का पालन करने वाले राजा लोग और तीनों लोकों के प्राणी भी राम के अभिषेक को नहीं रोक सकते। पिता जी की तो बात ही क्या है?

यैर्विवासस्तवारण्ये, मिथो राजन् समर्थितः।
अरण्ये ते विवत्स्यन्ति, चतुर्दश समास्तथा।। २३।।
अहं तदाशां धक्ष्यामि, पितुस्तस्याश्च या तव।
अभिषेकविघातेन, पुत्रराज्याय वर्तते।। २४।।

हे राजन! जिन लोगों ने आपके अरण्य में वास का आपस में मिलकर समर्थन किया वे ही चौदह वर्ष के लिये वन में रहेंगे। मैं पिता जी की और उसकी, जो आपके अभिषेक में विघ्न डालकर पुत्र के राज्य के लिये प्रयत्न कर रही है, आशा को जलाकर भस्म कर दूँगा।

मद्बलेन विरुद्धाय, न स्याद् दैवबलं तथा।
प्रभविष्यति दुःखाय, यथोग्रं पौरुषं मम।। २५।।
पूर्वराजर्षिवृत्त्या हि, वनवासोऽभिधीयते।
प्रजा निक्षिप्य पुत्रेषु, पुत्रवत् परिपालने।। २६।।

मेरे विरोधी को दैव की शक्ति उतना सुख नहीं देगी, जितना मेरा पौरुष उसे पीड़ा देगा। पुराने राजर्षियों की परम्परा में तो बूढ़े लोगों के लिये, प्रजा को पुत्रवत् पालन के लिये पुत्रों के हाथ में सौंप कर स्वयं वन में जाना उचित बताया गया है।

प्रतिजाने च ते वीर, मा भूवं वीलोकभाक्।
राज्यं च तव रक्षेयमहं वेलेव सागरम्।। २७।।
मङ्गलैरभिषिञ्चस्व, तत्र त्वं व्यापृतो भव।
अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात्।। २८।।

हे वीर! मैं आपके समक्ष यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आपके राज्य की ऐसे ही रक्षा करूँगा, जैसे तट समुद्र को रोकता है। यदि मैं ऐसा न करूँ तो मुझे वीरों के लोक की प्राप्ति न हो। इसलिये आप अभिषेक के कार्य में लग जाइये, मंगल सामग्री से अपना अभिषेक होने दीजिये। मैं विरोधी राजाओं को शक्तिपूर्वक रोक सकता हूँ।

तेईसवाँ सर्ग

विलाप करती हुई कौसल्या का श्रीराम से अपने को भी साथ ले चलने के लिये आग्रह करना तथा पति की सेवा ही नारी का धर्म है, यह बताकर श्रीराम का उन्हें रोकना और वन जाने के लिये उनकी अनुमति प्राप्त करना।

तंसमीक्ष्य व्यवसितं, पितुर्निर्देशपालने।
कौसल्या बाष्पसंरुद्धा, वचो धर्मिष्ठमब्रवीत्।। १।।
अदृष्टदुःखो धर्मात्मा, सर्वभूतप्रियंवदः।
मयि जातो दशरथात्, कथमुञ्छेन वर्तयेत्।। २।।

जब कौसल्या ने देखा कि यह धर्मिष्ठ राम पिता की आज्ञा पालन में दृढ़ है तब गद्-गद् वाणी में आँसुओं से रुँधे गले से बोली कि मेरा दशरथ से उत्पन्न धर्मात्मा पुत्र, जिसने कभी दुःख नहीं देखा और जो सारे प्राणियों से प्रिय बोलता है, अब खेतों में पड़े हुए एक-एक दाने को बीन कर कैसे जीवन निर्वाह करेगा।

यस्य भृत्याश्च दासाश्च, मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते।
कथं स भोक्ष्यते रामो, वने मूलफलान्ययम्।। ३।।
क एतच्छ्रद्दधेच्छ्रुत्वा, कस्य वा न भवेद् भयम्।
गुणवान् दयितो राज्ञः, काकुत्स्थो यद् विवास्यते।। ४।।

जिसके नौकर चाकर भी सुस्वादु भोजन करते हैं, वह यह राम अब फल मूल का आहार अब कैसे करेगा? कौन इस बात को सुनकर विश्वास करेगा और किसको यह सुनकर भय नहीं होगा कि राजा का प्यारा, गुणवान, ककुत्स्थ वंशी पुत्र देश से निकाला जा रहा है।

नूनं तु बलवाँल्लोके, कृतान्तः सर्वमादिशन्।
लोके रामाभिरामस्त्वं, वनं यत्र गमिष्यसि।।५।।
कथं हि धेनुः स्वं वत्सं, गच्छन्तमनुगच्छति।
अहं त्वानुगमिष्यामि, यत्र वत्स गमिष्यसि।। ६।।
यथा निगदितं मात्रा, तद् वाक्यं पुरुषर्षभः।
श्रुत्वा रामोऽब्रवीद् वाक्यं, मातरं भृशदुःखिताम्।। ७।।

हे राम! वास्तव में संसार में परमात्मा की इच्छा ही सर्वोपरि है, उसी के आदेश में सबको रहना पड़ता है, इसीलिये तुम्हें सारे संसार का प्रिय होने पर भी वन में जाना पड़ रहा है। हे बेटा! मैं भी वन में तुम्हारे साथ चलूँगी। गाय अपने बछड़े के पीछे-पीछे कैसे चली जाती है। माता की कही हुई बातों को सुनकर नरश्रेष्ठ राम ने अत्यन्त दुखी माता से कहा।

कैकेय्या वंचितो राजा, मयि चारण्यमाश्रिते।
भवत्या च पतित्यक्तो, न नूनं वर्तयिष्यति।। ८।।

भर्तुः किल परित्यागो, नृशंसः केवलं स्त्रियाः।
स भवत्या न कर्तव्यो, मनसापि विगर्हितः॥ ९॥

हे माता! कैकेयी के द्वारा ठगे गये राजा को मेरे वन जाने पर जब तुम भी उन्हें छोड़ दोगी तब तो वे निश्चित रूप से जीवित नहीं रहेंगे। स्त्री के लिये पति का त्याग बड़ा क्रूरता पूर्ण कार्य है। ऐसा निन्दनीय कार्य आपको मन से भी नहीं करना चाहिये।

यावज्जीवति काकुत्स्थः, पिता मे जगतीपतिः।
शुश्रूषा क्रियतां तावत, स हि धर्मः सनातनः॥ १०॥
एवमुक्ता तु रामेण, कौसल्या शुभदर्शना।
तथेत्युवाच सुप्रीता, राममक्लिष्टकारिणम्॥ ११॥

संसार के स्वामी, ककुत्स्थवंशी मेरे पिता जब तक जीवित हैं तब तक तुम उनकी सेवा करो यही सनातन धर्म है। राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर अच्छे कार्यों को देखने वाली कौसल्या ने सन्तुष्ट होकर अनायास ही कार्यों को पूरा करने वाले राम से कहा कि अच्छा ऐसा ही करूँगी।

एवमुक्तस्तु वचनं, रामो धर्मभृतां वरः।
भूयस्तामब्रवीद् वाक्यं, मातरं भृशदुःखिताम्॥ १२॥
मया चैव भवत्या च, कर्तव्यं वचनं पितुः।
राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः, सर्वेषामीश्वरः प्रभुः॥ १३॥
इमानि तु महारण्ये, विहृत्य नव पञ्च च।
वर्षाणि परमप्रीत्या, स्थास्यामि वचने तव॥ १४॥

ऐसा कहे जाने पर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राम ने अत्यन्त दुःखी माता से फिर यह बात कही कि मुझे और आपको पिताजी का कहा मानना चाहिये क्योंकि वे हमारे राजा हैं, हमारे भरण करने वाले हैं, हमारे गुरु हैं, हमसे श्रेष्ठ हैं और हम पर शासन करने वाले प्रभु हैं। मैं इन चौदह वर्षों को वन में घूम कर बिता दूँगा, फिर आकर बड़े प्रेम से आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

एवमुक्ता प्रियं पुत्रं, बाष्पपूर्णानना तदा।
उवाच परमार्ता तु, कौसल्या सुतवत्सला॥ १५॥
नय मामपि काकुत्स्थ, वनं वन्यां मृगीमिव।
यदि ते गमने बुद्धिः, कृता पितरपेक्षया॥ १६॥

ऐसा कहने पर कौसल्या के मुख पर फिर आँसू बहने लगे। वह पुत्रवत्सला बहुत दुखी होकर अपने प्रिय पुत्र से बोली कि हे काकुत्स्थ! यदि तुमने पिता की आज्ञा पालन के लिये वन जाने का निश्चय कर लिया है तो मुझे भी जँगली हरिणी के समान वन में ही ले चलो।

तां तथा रुदतीं रामो, रुदन् वचनमब्रवीत्।
जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता, दैवतं प्रभुरेव च॥ १७॥
भवत्या मम चैवाद्य, राजा प्रभवति प्रभुः।
न ह्यनाथा वयं राज्ञा, लोकनाथेन धीमता॥ १८॥
भरतश्चापि धर्मात्मा, सर्वभूतप्रियंवदः।
भवतीमनुवर्तेत, स हि धर्मरतः सदा॥ १९॥

उसे इस प्रकार रोता हुआ देख कर राम भी रोते हुए बोले कि स्त्री के लिये जीते जी उसका पति ही उसका देवता और स्वामी है। राजा तुम्हारे भी और मेरे भी स्वामी हैं। प्रजा के स्वामी धीमान राजा के होते हुए हम अनाथ नहीं हैं। भरत भी धर्मात्मा है और सबसे प्रिय बोलने वाला हे, वह सदा धर्म का पालने वाला है, वह आपकी सेवा करेगा।

यथा मयि तु निष्क्रान्ते, पुत्रशोकेन पार्थिवः।
श्रमं नावाप्नुयात् किंचिदप्रमत्ता तथा कुरु॥ २०॥
दारुणश्चाप्ययं शोको, यथैनं न विनाशयेत्।
राज्ञो वृद्धस्य सततं, हितं चर समाहिता॥ २१॥

तुम सावधानी से ऐसा प्रयत्न करना कि जिससे मेरे चले जाने पर राजा को पुत्र शोक से अधिक कष्ट न हो। यह भयानक दुःख कहीं उनका जीवन नष्ट न कर दे, इसलिये तुम सावधानी से बूढ़े राजा की सदा भलाई करते रहना।

व्रतोपवासनिरता, या नारी परमोत्तमा।
भर्तारं नानुवर्तेत, सा च पापगतिर्भवेत्॥ २२॥
शुश्रूषामेव कुर्वीत, भर्तुः प्रियहिते रता।
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः॥ २३॥

व्रत और उपवास में लगी हुई, परम उत्तम स्वभाव की नारी भी यदि पति की सेवा नहीं करती तो पापियों को गति को प्राप्त करती है। वेदों में और संसार में भी स्त्रियों के लिये यही नित्य धर्म प्रसिद्ध है कि वह पति की भलाई में लगी हुई पति की सेवा ही करे।

एवमुक्ता तु रामेण, बाष्पपर्याकुलेक्षणा।
कौसल्या पुत्रशोकार्ता, रामं वचनमब्रवीत्॥ २४॥
गमने सुकृतां बुद्धिं, न ते शक्नोमि पुत्रक।
विनिवर्तयितुं वीर, नूनं कालो दुरत्ययः॥ २५॥

राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर, पुत्र शोक से आतुर कौसल्या आँखों में आँसू भर कर कहने लगी कि हे वीर पुत्र! वास्तव में काल को टाला नहीं जा सकता,

इसलिये तुम्हारे जाने के विषय में किये गये दृढ़ निश्चय को मैं बदल नहीं सकती।

गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो, भद्रं तेऽस्तु सदा विभो।
पुनस्त्वयि निवृत्ते तु, भविष्यामि गतक्लमा।। २६।।
प्रत्यागते महाभागे, कृतार्थे चरितव्रते।
पितुरानृण्यतां प्राप्ते, स्वपिष्ये परमं सुखम्।। २७।।

हे सामर्थ्यशाली पुत्र! तुम एकाग्रचित्त होकर जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। जब तुम लौटोगे तब मेरा दुःख दूर होगा। हे महाभाग! जब तुम कृतार्थ होकर व्रत का पालन कर, पिता के ऋण को चुका कर वापिस आओगे तभी मैं सुख की नींद सो सकूँगी।

कृतान्तस्य गतिः पुत्र, दुर्विभाव्या सदा भुवि।
यस्त्वां संचोदयति मे, वच आविध्य राघव।। २८।।
गच्छेदानीं महाबाहो, क्षेमेण पुनरागतः।
नन्दयिष्यसि मां पुत्र, साम्ना श्लक्ष्णेन चारुणा।। २९।।
अपीदानीं स कालः स्याद्, वनात् प्रत्यागतं पुनः।
यत् त्वां पुत्रक पश्येयं, जटावल्कलधारिणम्।। ३०।।

संसार में काल की गति को समझना बहुत कठिन है। हे राघव! वही तुम्हें मेरी बात काट कर वन में जाने के लिये प्रेरित कर रहा है। हे विशाल भुजाओं वाले पुत्र! अब तुम जाओ। जब कुशलता पूर्वक वापिस लौटोगे, तब अपनी सुन्दर, मधुर और सान्त्वनापूर्ण बातों से मुझे प्रसन्न करना। हे पुत्र क्या वह समय आयेगा जब मैं तुम्हें जटा और वल्कल धारण किये हुए वापिस लौटते हुए देखूँगी।

तथा हि रामं वनवासनिश्चितं,
ददर्श देवी परमेण चेतसा।
उवाच रामं शुभलक्षणं वचो,
बभूव च स्वस्त्ययनाभिकाङ्क्षिणी।। ३१।।

जब देवी कौसल्या ने राम को दृढ़ हृदय से वनवास का निश्चय किये हुए देखा तब उसने शुभ लक्षणों वाले वचन कहे अर्थात् आशीर्वाद दिये और उनका स्वस्तिवाचन करने की इच्छा करने लगी।

चौबीसवाँ सर्ग

कौसल्या का स्वस्तिवाचन करना और श्री राम का उन्हें प्रणाम करके सीता के भवन की ओर जाना।

सा विनीय तमायासमुपस्पृश्य जलं शुचि।
चकार माता रामस्य, मङ्गलानि मनस्विनी।। १।।
न शक्यसे वारयितुं, गच्छेदानीं रघूत्तम।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व, वर्तस्व च सतां क्रमे।। २।।

तब राम की मनस्विनी माता उस शोक को दूर कर, पवित्र जल से आचमन करके राम के लिये मंगल कृत्यों को करने लगीं और कहने लगीं कि हे रघुकुलश्रेष्ठ! तुम्हें अब लौटाया नहीं जा सकता। इसलिये अब तुम जाओ। जल्दी वापिस आना और अच्छे पुरुषों के रास्ते पर चलना।

यं पालयसि धर्मं, त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल, धर्मस्त्वामभिरक्षतु।। ३।।
यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि, विश्वामित्रेण धीमता।
तानि त्वामभिरक्षन्तु, गुणैः समुदितं सदा।। ४।।

हे रघुश्रेष्ठ! तुम जिस धर्म का प्रेम और नियम से पालन करते हो, वह धर्म तुम्हारी रक्षा करे। तुम अपने सद्गुणों से प्रकाशित रहो। धीमान विश्वामित्र ने तुम्हें जो शस्त्रास्त्र दिये हैं, वे तुम्हारी रक्षा करें।

पितृशुश्रूषया पुत्र, मातृशुश्रूषया तथा।
सत्येन च महाबाहो, चिरं जीवाभिरक्षितः।। ५।।
ऋतवः षट् च ते सर्वे, मासाः संवत्सराः क्षपाः।
दिनानि च मुहूर्ताश्च, स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा।
श्रुतिः स्मृतिश्च धर्मश्च, पातु त्वां पुत्र सर्वतः।। ६।।

हे महाबाहु पुत्र! तुम पिता और माता की सेवा द्वारा तथा सत्यपालन के द्वारा सुरक्षित रहकर चिरंजीवी बनो। छहों ऋतुएँ, सारे मास, वर्ष, दिन, रात्रि, मुर्हूत सदा तुम्हारा कल्याण करें। श्रुतियाँ, स्मृतियाँ तथा धर्म तुम्हारी सब तरफ से रक्षा करे।

राक्षसानां पिशाचानां, रौद्राणां क्रूरकर्मणाम्।। ७।।
क्रव्यादानां च सर्वेषां, मा भूत् पुत्रक ते भयम्।
प्लवगा वृश्चिका दंशा, मशकाश्चैव कानने।। ८।।
सरीसृपाश्च कीटाश्च, मा भूवन् गहने तव।

महाद्विपाश्च सिंहाश्च, व्याघ्रा ऋक्षाश्च दंष्ट्रिणः।। ९।।
महिषाःशृङ्गिणो रौद्रा, न ते द्रुह्यन्तु पुत्रक।

हे पुत्र! तुम्हें क्रूर कर्म वाले, भयानक, मांसाहारी सभी राक्षसों और पिशाचों का भय न हो। गहन वन में मेढक, बिच्छू, डाँस, मच्छर, साँप और कीड़े, बड़े-बड़े हाथी, सिंह, बाघ, रीछ और अन्य दाँतों वाले, सींगों वाले भयंकर भैंसे तुमसे द्रोह न करें।

आगमास्ते शिवाः सन्तु, सिध्यन्तु च पराक्रमाः।। १०।।
सर्वसम्पत्तयो राम, स्वस्तिमान् गच्छ पुत्रक।
स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यः, पार्थिवेभ्यः पुनः पुनः।। ११।।
अग्निर्वायुस्तथा धूमो, मन्त्राश्चर्षिमुखच्युताः।
उपस्पर्शनकाले तु, पान्तु त्वां रघुनन्दन।।१२।।

हे राम! हे पुत्र! तुम्हारे मार्ग तुम्हारे लिये कल्याणकारी हों, तुम्हारे पराक्रम सफल हो। तुम्हें सारी सम्पत्तियाँ प्राप्त हों, तुम्हारा कल्याण हो। तुम जाओ! तुम्हें अन्तरिक्ष और पृथ्वी के सभी प्राणियों से कल्याण प्राप्त हो। यज्ञ करते हुए अग्नि, वायु, धूप तथा ऋषियों के मुख से उच्चरित मन्त्र तुम्हारी रक्षा करें।

ज्वलनं समुपादाय, ब्राह्मणेन महात्मना।
हावयामास विधिना, राममङ्गलकारणात्।। १३।।
मधुदध्यक्षतघृतैः, स्वस्तिवाच्यं द्विजांस्ततः।
वाचयामास रामस्य, वने स्वस्त्ययनक्रियाम्।। १४।।
ततस्तस्मै द्विजेन्द्राय, राममाता यशस्विनी।
दक्षिणां प्रददौ काम्यां, राघवं चेदमब्रवीत्।। १५।।

तत्पश्चात् उन्होंने अग्नि को लाकर राम के मंगल के लिये महात्मा ब्राह्मण से विधिपूर्वक हवन कराया। मधु दधि, अक्षत और घृत के द्वारा राम का वन में मंगल हो इस कामना से ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन क्रिया करवाई। फिर उन ब्राह्मणों को यथेच्छ दक्षिणा देकर राजमाता श्रीराम से यह बोली।

ऋषयः सागरा द्वीपा, वेदा लोका दिशश्च ते।
मङ्गलानि महाबाहो, दिशन्तु शुभमङ्गलम्।। १६।।
इति पुत्रस्य शेषाश्च, कृत्वा शिरसि भामिनी।
गन्धैश्चापि समालभ्य, राममायतलोचना।। १७।।
औषधीं च सुसिद्धार्थां, विशल्यकरणीं शुभाम्।
चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रैरभिजजाप च।। १८।।

हे महाबाहु! ऋषि, समुद्र, द्वीप वेद, सारे लोक, दिशाएँ सब तुम्हारे लिये मंगलकारी हों। इस प्रकार शेष सारी क्रियाएँ करके उस विशाल आँखों वाली भामिनी कौसल्या ने पुत्र के सिर पर सुगन्धित पदार्थों को रखकर विशल्यकरणी नाम की शुभ और सिद्धयर्थ वाली ओषधि को उनके हाथ में रक्षासूत्र के रूप में बाँधकर मंत्रों का जाप किया।

उवाचापि प्रहृष्टेव, सा दुःखवशवर्तिनी।
वाङ्मात्रेण न भावेन, वाचा संसज्जमानया।। १९।।
आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय, परिष्वज्य यशस्विनी।
अवदत् पुत्रमिष्टार्थो, गच्छ राम यथासुखम्।। २०।।
अरोगं सर्वसिद्धार्थमयोध्यां पुनरागतम्।
पश्यामि त्वां सुखं वत्स, संधितं राजवर्त्मसु।। २१।।

दुःख के वश में होकर भी वह प्रसन्नता सी दिखाती हुई, लड़खड़ाती हुई वाणी से ही बोल रही थी, मन से नहीं। इसके बाद उनके सिर को झुकाकर, सूँघकर और छाती से लगाकर, वह यशस्विनी माता पुत्र के इष्टार्थ की पूर्ति के लिये बोली कि हे राम! अब तुम सुख के साथ वन में जाओ। जब मैं तुम्हें स्वस्थ अवस्था में सारे कार्यों को पूरा करके वापिस आये हुए को अयोध्या में राजमार्ग पर विद्यमान देखूँगी, तभी सुख को प्राप्त करूँगी।

प्रणष्टदुःखसंकल्पा, हर्षविद्योतितानना।
द्रक्ष्यामि त्वां वनात् प्राप्तं, पूर्णचन्द्रमिवोदितम्।। २२।।
भद्रासनगतं राम, वनवासादिहागतम्।
द्रक्ष्यामि च पुनस्त्वां तु, तीर्णवन्तं पितुर्वचः।। २३।।
मङ्गलैरुपसम्पन्नो, वनवासादिहागतः।
वध्वाश्च मम नित्यं त्वं, कामान् संवर्ध याहि भोः।। २४।।

उदय होते हुए पूर्ण चन्द्रमा के समान जब मैं तुम्हें वन से आये हुए देखूँगी तब मेरे दुःख मिटेंगे और मुख पर प्रसन्नता होगी, जब मैं तुम्हें पिता की आज्ञा पूरी करके वन से यहाँ आकर सिंहासन पर बैठा देखूँगी, तब मुझे प्रसन्नता होगी, अब जाओ। वापिस यहाँ आकर, मंगल कार्यों से युक्त होकर मेरी बहू सीता की कामनाएँ पूरी करते रहो।

अतीव चाश्रुप्रतिपूर्णलोचना,
समाप्य च स्वस्त्ययनं यथाविधि।
प्रदक्षिणं चापि चकार राघवं,
पुनः पुनश्चापि निरीक्ष्य सस्वजे।। २५।।

इस प्रकार आँखों में अत्यन्त आँसू भकर स्वस्तिवाचन की क्रिया को विधिपूर्वक समाप्त कर, माता ने राम की प्रदक्षिणा की और बार-बार उन्हें देखते हुए छाती से लगाया।

निपीड्य मातुश्चरणौ पुनः पुनः।
जगाम सीतानिलयं महायशाः,
स राघवः प्रज्वलितस्तया श्रिया।। २६।।

उस देवी के द्वारा प्रदक्षिणा करने पर, माता के चरणों में बार-बार प्रणाम कर महा यशस्वी राम मंगलकामना की शोभा से जगमगाते हुए सीता के भवन की तरफ चले।

पच्चीसवाँ सर्ग

श्रीराम को उदास देखकर सीता का उनसे कारण पूछना और श्रीराम का पिता की आज्ञा से वन में जाने का निश्चय बताते हुए सीता को घर में रहने के लिये समझाना।

वैदेही चापि तत् सर्वं, न शुश्राव तपस्विनी।
तदेव हृदि तस्याश्च, यौवराज्याभिषेचनम्।। १।।
देवकार्यं स्म सा कृत्वा, कृतज्ञा हृष्टचेतना।
अभिज्ञा राजधर्माणां, राजपुत्री प्रतीक्षति।। २।।

तपस्विनी सीता जी ने ये सारी बातें अभी तक नहीं सुनी थीं, इसलिये उसके हृदय में राज्यभिषेक की बात ही विद्यमान थी। वह राजधर्मों की जानकार राजपुत्री सन्ध्योपासना आदि देवकार्यों को कर कृतज्ञ और प्रसन्न हृदय से श्रीराम के आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

प्रविवेशाथ रामस्तु, स्ववेश्म सुविभूषितम्।
प्रहृष्टजनसम्पूर्णं, ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः।। ३।।
अथ सीता समुत्पत्य, वेपमाना च तं पतिम्।
अपश्यच्छोकसंतप्तं, चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम्।। ४।।

तभी राम ने उस सजे हुए और प्रसन्न चित्त लोगों से भरे हुए अपने भवन में लज्जा से मुख कुछ नीचा किये हुए प्रवेश किया। तब सीता तुरन्त अपने आसन से उठी और शोक से भरे हुए तथा चिन्ता से व्याकुल इन्द्रियों वाले अपने पति को देखकर काँपने लगीं।

तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा, न शशाक मनोगतम्।
तं शोकं राघवः सोढुं, ततो विवृततां गतः।। ५।।
विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं, प्रस्विन्नममर्षणम्।
आह दुःखाभिसंतप्ता, किमिदानीमिदं प्रभो।। ६।।

उसे देखकर वह धर्मात्मा राम मन में विद्यमान शोक को सहन करने में समर्थ न हो सके और वह शोक बाहर प्रकट हो गया। उनका मुख कान्तिहीन हो गया। शरीर से पसीना छूट रहा था, वे अपने शोक को सहन नहीं कर पा रहे थे। ऐसे श्रीराम को देखकर सीता दुःख से सन्तप्त हो गयीं और बोली कि हे प्रभो! आपको यह क्या हो गया है।

न ते शतशलाकेन, जलफेननिभेन च।
आवृतं वदनं वल्गु, च्छत्रेणाभिविराजते।। ७।।
व्यजनाभ्यां च मुख्याभ्यां, शतपत्रनिभेक्षणम्।
चन्द्रहंसप्रकाशाभ्यां, वीज्यते न तवाननम्।। ८।।

आपका सुन्दर मुख, सौ तीलियों वाले जल के फेन के समान श्वेत राजछत्र से सुशोभित नहीं हो रहा है। आपके कमल के समान सुन्दर नेत्रों को धारण करने वाले मुख पर चन्द्रमा और हंस के समान सुन्दर और श्रेष्ठ दो पंखों द्वारा हवा नहीं की जा रही है।

वाग्मिनो वन्दिनश्चापि, प्रहृष्टास्त्वां नरर्षभ।
स्तुवन्तो नाद्य दृश्यन्ते, मङ्गलैः सूतमागधाः।। ९।।
न त्वां प्रकृतयः सर्वाः, श्रेणीमुख्याश्च भूषिताः।
अनुव्रजितुमिच्छन्ति पौरजानपदास्तथा।। १०।।

बोलने में चतुर, वन्दना करने वाले सूत और मागध भी हे नरश्रेष्ठ! मंगल वचनों द्वारा आपकी स्तुति करते हुए नहीं दिखाई रहे हैं। आज आपके पीछे प्रमुख पुर और देशवासी और सेठ साहूकार आदि प्रजा के लोग भी चलने की इच्छा नहीं कर रहे हैं।

चतुर्भिर्वेगसम्पन्नैर्हयैः काञ्चनभूषणैः।
मुख्यः पुष्परथो युक्तः किं न गच्छति तेऽग्रतः।। ११।।
न हस्ती चाग्रतः श्रीमान्, सर्वलक्षणपूजितः।
प्रयाणे लक्ष्यते वीर, कृष्णमेघगिरिप्रभः।। १२।।

सुनहरे साज से सजे हुए चार वेगवान घोड़ों से जुता हुआ आपका पुष्परथ आज आपके आगे आगे क्यों नही चल रहा है? और ना ही काले मेघ और पर्वत के समान, सारे महान लक्षणों से युक्त निशाल हाथी आपके आगे चलता हुआ दिखाई दे रहा है।

न च काञ्चनचित्रं ते, पश्यामि प्रियदर्शन।
भद्रासनं पुरस्कृत्य, यान्तं वीर पुरःसरम्।। १३।।

अभिषेको यदा सज्जः, किमिदानीमिदं तव।
अपूर्वो मुखवर्णश्च, न प्रहर्षश्च लक्ष्यते।। १४।।

आज मैं आपके सोने के सुन्दर भद्रासन को लेकर आपके आगे-आगे चलने वाले सेवक को नहीं देख रही हूँ। जब अभिषेक की तैयारियाँ हो रही हैं तब आपके मुख का रंग यह कैसा अपूर्व सा हो रहा है? आपके मुख पर प्रसन्नता भी नहीं है। ऐसा क्यों है?

इतीव विलपन्तीं तां, प्रोवाच रघुनन्दनः।
सीते तत्रभवांस्तातः, प्रव्राजयति मां वनम्।। १५।।
कुले महति सम्भूते, धर्मज्ञे धर्मचारिणि।
शृणु जानकि येनेदं, क्रमेणाद्यागतं मम।। १६।।

इस प्रकार विलाप करती उससे रघुनन्दन श्रीराम यह कहने कि हे सीता! पूज्य पिता जी मुझे वन में भेज रहे हैं। हे महान कुल में जन्म लेने वाली, धर्म को जानने और आचरण करने वाली सीता तुम सारी बात सुनो मुझे यह वन क्यों प्राप्त हुआ है?

राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन, पित्रा दशरथेन वै।
कैकेय्यै मम मात्रे तु, पुरा दत्तौ महावरौ।। १७।।
तयाद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते।
प्रचोदितः स समयो, धर्मेण प्रतिनिर्जितः।। १८।।

सत्य प्रतिज्ञ पिता दशरथ ने पहले कभी माता कैकेयी को दो महान वर दिये थे। उसने आज के मेरे अभिषेक के लिये तैयार होने पर उन्हें धर्म से वश में करके उन दोनों वरों की पूर्ति के लिये विवश किया।

चतुर्दश हि वर्षाणि, वस्तव्यं दण्डके मया।
पित्रा मे भरतश्चापि, यौवराज्ये नियोजितः।। १९।।
सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं, प्रस्थितो विजनं वनम्।
भरतस्य समीपे ते, नाहं कथ्यः कदाचन।। २०।।
ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा, न सहन्ते परस्तवम्।
तस्मान्न ते गुणाः कथ्या, भरतस्याग्रतो मम।। २१।।

उसके अनुसार पिता जी ने भरत को युवराज पद पर नियुक्त किया और मुझे चौदह वर्ष तक दण्डकारण्य में रहना होगा। इसलिये मैंने वन में प्रस्थान की तैयारी कर ली है और मैं तुमसे मिलने के लिये आया हूँ। तुम भरत के समीप मेरे विषय में कभी कुछ मत कहना क्योंकि ऐश्वर्यवाले पुरुष दूसरों की प्रशंसा सहन नहीं करते इसलिये तुम भरत के आगे मेरे गुणों की प्रशंसा मत करना।

अहं ते नानुवक्तव्यो, विशेषेण कदाचन।
अनुकूलतया शक्यं, समीपे तस्य वर्तितुम्।। २२।।
तस्मै दत्तं नृपतिना, यौवराज्यं सनातनम्।
स प्रसाद्यस्त्वया सीते, नृपतिश्च विशेषतः।। २३।।

तुम्हें विशेषकर अपनी सखियों के साथ भी भरत के सामने मेरा जिक्र नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसके अनुकूल होने पर ही तुम उसके निकट रह सकती हो। हे सीता! राजा ने सदा के लिये भरत को यौवराज्य पद दे दिया है इसलिये तुम्हें उन्हें विशेष कर प्रसन्न रखना चाहिये और राजा को भी प्रसन्न रखना चाहिये।

अहं चापि प्रतिज्ञां तां, गुरोः समनुपालयन्।
वनमद्यैव यास्यामि, स्थिरीभव मनस्विनि।। २४।।
याते म मयि कल्याणि, वनं मुनिनिषेवितम्।
व्रतोपवासपरया, भवितव्यं त्वयानघे।। २५।।

हे मनस्विनी! मैं पिता की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये आज ही वन को चला जाऊँगा। तुम धीरज रखना। हे कल्याणी! हे निष्पाप। मेरे मुनियों से सेवित वन में जाने पर तुम्हें व्रत और उपवास करते हुए रहना चाहिये।

वन्दितव्यो दशरथः, पिता मम जनेश्वरः।
माता च मम कौसल्या, वृद्धा संतापकर्शिता।। २६।।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा, त्वत्तः सम्मानमर्हति।
वन्दितव्याश्च ते नित्यं, याः शेषा मम मातरः।। २७।।
स्नेहप्रणयसम्भोगैः, समा हि मम मातरः।

तुम्हें मेरे पिता प्रजा के स्वामी दशरथ की वन्दना करनी चाहिये। मेरी माता कौसल्या, जो कि बूढ़ी है और दुःख से कमजोर हो गयी हैं। धर्म के अनुसार वे तुमसे सम्मान पाने के योग्य हैं। तुम्हें नित्य मेरी शेष माताओं की भी वन्दना करनी चाहिये क्योंकि स्नेह, विशेष प्रेम और ऐश आराम सब में मेरी माताएँ मेरे लिये समान हैं।

विप्रियं च न कर्तव्यं, भरतस्य कदाचन।। २८।।
स हि राजा च वैदेहि, देशस्य च कुलस्य च।
सा त्वं वसेह कल्याणि, राज्ञः समनुवर्तिनी।
भरतस्य रता धर्मे, सत्यव्रतपरायणा।। २९।।

हे वैदेही! तुम्हें भरत का कभी भी बुरा नहीं करना चाहिये क्योंकि वह इस समय देश और कुल के राजा

हैं। इसलिये हे कल्याणी! तुम राजा भरत के अनुकूल बर्ताव करती हुई धर्म और सत्यव्रतों में लगी हुई यहाँ रहो।

अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये,
त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि।
यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित्-
तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम।। ३०।।

हे प्रिये! हे भामिनी! मैं महान वन में चला जाऊँगा और तुम्हें यहीं रहना है। किसी को कष्ट न देते हुए तुम्हें मेरे कहने के अनुसार कार्य करना चाहिये।

छब्बीसवाँ सर्ग

सीता की श्रीराम से अपने को भी साथ ले चलने के लिये प्रार्थना।

एवमुक्ता तु वैदेही, प्रियार्हा प्रियवादिनी।
प्रणयादेव संक्रुद्धा, भर्तारमिदमब्रवीत्।। १।।
किमिदं भाषसे राम, वाक्यं लघुतया ध्रुवम्।
त्वया यदपहास्यं मे, श्रुत्वा नरवरोत्तम।। २।।
वीराणां राजपुत्राणां, शस्त्रास्त्रविदुषां नृप।
अनर्हमयशस्यं च, न श्रोत्वयं त्वयेरितम्।। ३।।

प्रिय सुनने के योग्य और प्रिय वादिनी सीता से जब ये बातें कही गयीं, तब प्रेम से ही वह क्रोधित होकर अपने पति से बोली- हे राम! आप ये निश्चितरूप से छोटेपन की बातें किसलिये कर रहे हैं? हे नरश्रेष्ठ! आपने जो कुछ कहा उसे सुनकर मुझे हँसी आती है। हे राजा! आपने जो कहा वह वीर राजपुत्रों, शस्त्रास्त्र जानने वालों के लिये उचित नहीं है। यह उनके अपयश को बढ़ाने वाली हैं और सुनने योग्य भी नहीं हैं।

आर्यपुत्र पिता माता, भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः, स्वं स्वं भाग्यमुपासते।। ४।।
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका, प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा, वने वस्तव्यमित्यपि।। ५।।

हे आर्यपुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू ये सब अपने-अपने पुण्यकर्मों को भोगते हैं और अपने-अपने कर्मों का फल पाते हैं। पर हे नरश्रेष्ठ! पति के भाग्य को एक उसकी पत्नी ही प्राप्त करती है। अतः आपके साथ मुझे भी यह आदेश हुआ है कि मुझे वन में रहना है।

न पिता नात्मजो वात्मा, न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां, पतिरेको गतिः सदा।। ६।।
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं, वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि, मृद्नन्ती कुशकण्टकान्।। ७।।

स्त्रियों के लिये न तो पिता, न माता, न पुत्र न उसका अपना शरीर और सखियाँ उसकी सहायक हैं। उसका पति ही यहाँ इस लोक में तथा परलोक में भी उसका सहारा है। हे राघव! यदि तुम दुर्गम वन के लिये आज ही प्रस्थान कर रहे हो तो मैं आपके आगे-आगे कुश और काँटों को कुचलती हुई चलूँगी।

ईर्ष्यां रोषं बहिष्कृत्य, भुक्तशेषमिवोदकम्।
नय मां वीर विस्रब्धः, पापं मयि न विद्यते।। ८।।
प्रासादग्रे विमानैर्वा, वैहायसगतेन वा।
सर्वावस्थागता भर्तुः, पादच्छाया विशिष्यते।। ९।।

हे वीर! आप ईर्ष्या और रोष को निकालकर पीने से बचे हुए जल के समान निश्चिन्त होकर मुझे अपने साथ ले चलिये। मुझ में कोई पाप नहीं है। ऊँची अट्टालिकाओं में रहना, या विमानों पर चढ़कर घूमना या पक्षियों के समान आकाश में स्वतन्त्र विचरना, स्त्री के लिये इन सारी अवस्थाओं से भी बढ़ कर पति के चरणों की छाया में रहना विशेष महत्वपूर्ण है।

अनुशिष्टास्मि मात्रा च, पित्रा च विविधाश्रयम्।
नास्मि सम्प्रति वक्तव्या, वर्तितव्यं यथा मया।। १०।।
अहं दुर्गं गमिष्यामि, वनं पुरुषवर्जितम्।
नानामृगगणाकीर्णं, शार्दूलगणसेवितम्।। ११।।

मुझे मेरे माता पिता ने शिक्षा दी हुई है कि अलग-अलग प्रकार के आश्रय में रहते हुए कैसे व्यवहार करना चाहिये, इसलिये मुझे कब कैसे व्यवहार करना चाहिये, इस विषय में बताने की आवश्यकता नहीं है। मैं मनुष्यों से रहित उस दुर्गम वन में जो अनेक प्रकार के जंगली पशुओं से भरा हुआ है और सिंहों का आश्रय स्थान है, अवश्य जाऊँगी।

सुखं वने निवत्स्यामि, यथैव भवने पितुः।
अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम्।। १२।।

शुश्रूषमाणा ते नित्यं, नियता ब्रह्मचारिणी।
सह रंस्ये त्वया वीर, वनेषु मधुगन्धिषु।। १३।।

हे वीर! जैसे मैं पिता के घर में रहती थी, वैसे ही सुख से मैं वन में भी रहूँगी। मैं वहाँ शेष तीनों लोकों के विषय में न सोचकर अपने पतिव्रत धर्म के विषय में सोचूँगी। मैं वहाँ नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए, आपकी सेवा करते हुए मीठी सुगन्ध वाले वनों में आपके साथ ही सुख उठाऊँगी।

त्वं हि कर्तुं वने शक्तो, राम सम्परिपालनम्।
अन्यस्यापि जनस्येह, किं पुनर्मम मानद।। १४।।
साहं त्वया गमिष्यामि, वनमद्य न संशयः।
नाहं शक्या महाभाग, निवर्तयितुमुद्यता।। १५।।

हे सम्माननीय! आप तो वन में दूसरों का पालन कर सकते हैं फिर मेरा क्यों नहीं कर सकते? इसलिये इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है कि मैं आज आपके साथ वन में जाऊँगी। हे महाभाग! मैं तैयार हूँ। मुझे रोका नहीं जा सकता।

फलमूलाशना नित्यं, भविष्यामि न संशयः।
न ते दुःखं करिष्यामि, निवसन्ती त्वया सदा।। १६।।
अग्रतस्ते गमिष्यामि, भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि।
इच्छामि परः शैलान्, पल्वलानि सरांसि च।। १७।।
द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता, त्वया नाथेन धीमता।

आप सन्देह मत करिये मैं सदा आपके साथ रहती हुई आपको दुःख नहीं दूँगी और प्रतिदिन फल मूल ही खाकर रहूँगी। मैं आपके आगे-आगे चलूँगी, आपके खा चुकने पर खाऊँगी। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं आप धीमान स्वामी के साथ निर्भय होकर पर्वतों को छोटे तालाबों को और सरोवरों को देखूँ।

हंसकारण्डवाकीर्णाः, पद्मिनीः साधुपुष्पिताः।। १८।।
इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं, त्वया वीरेण संगता।
अभिषेकं करिष्यामि, तासु नित्यमनुव्रता।। १९।।
सह त्वया विशालाक्ष, रंस्ये परमनन्दिनी।

तुम जैसे वीर के साथ रहती हुई मैं हंस और कारण्डव नाम के पक्षियों से भरे हुए, खिले हुए कमलों से युक्त सुन्दर सरोवरों को सुखपूर्वक देखना चाहती हूँ। हे विशाल आँखों वाले! मैं व्रत का पालन करते हुए नित्य उन सरोवरों में स्नान किया करूँगी और बड़ी प्रसन्नता के साथ मैं आपके सहित आनन्द का अनुभव करूँगी।

एवं वर्षसहस्राणि, शतं वापि त्वया सह।। २०।।
व्यतिक्रमं न वेत्स्यामि, स्वर्गोऽपि हि न मे मतः।
स्वर्गेऽपि च विना वासो, भविता यदि राघव।
त्वया विनानरव्याघ्र, नाहं तदपि रोचये।। २१।।

इस प्रकार मैं सैकड़ों हजारों वर्ष तक भी आपके साथ रहती हुई दुःख का अनुभव नहीं करूँगी। उसकी तुलना में स्वर्ग भी मुझे स्वीकृत नहीं। हे राघव! आपके बिना मुझे स्वर्ग भी रहने को मिले तो हे नरश्रेष्ठ! मुझे वह भी अच्छा नहीं लगेगा।

अहं गामिष्यामि वनं सुदुर्गमं,
मृगायुतं वानरवारणैश्च।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे,
तवैव पादावुपगृह्य सम्मता।। २२।।

मैं उन वनों में जाऊँगी, जो बड़े दुर्गम हैं, जो मृगों, वानरों और हाथियों से भरे हुए हैं। आपके ही चरणों की सेवा करती हुई आपके ही अनुसार मैं वहाँ ऐसे रहूँगी, जैसे पिता के घर में रही थी।

अनन्यभावामनुरक्त चेतसं,
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।
नयस्व मां साधु कुरुष याचनां,
नातो मया ते गुरुता भविष्यति।। २३।।

मेरा आपसे ही प्रेम है, मेरा हृदय आपमें ही अनुरक्त है। आपसे बिछुड़कर मेरी मृत्यु निश्चित है, इसलिये आप मुझे ले चलिये। मेरी इस याचना को सफल कीजिये। ऐसा करने से मेरे द्वारा आप पर कोई भार नहीं पड़ेगा।

तथा ब्रुवाणामपि धर्मवत्सलां,
न च स्म सीतां नृवरो निनीषति।
उवाच चैनां बहु संनिवर्तने
वने निवासस्य च दुःखितां प्रति।। २४।।

उस धर्म प्रेमी सीता के इस प्रकार कहने पर भी उन नरश्रेष्ठ श्रीराम ने सीता को साथ ले जाने की इच्छा नहीं की और वे उसे अपने विचार से लौटाने के लिये अनेक प्रकार से वन में निवास करने के दुःखों का वर्णन करने लगे।

सताईसवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता को वन के कष्टों का वर्णन करते हुए चलने से मना करना।

सान्त्वयित्वा ततस्तां तु, बाष्पदूषितलोचनाम्।
निवर्तनार्थे धर्मात्मा, वाक्यमेतदुवाच ह।। १।।
सीते महाकुलीनासि, धर्मे च निरता सदा।
इहाचरस्व धर्मं त्वं, यथा मे मनसः सुखम्।। २।।

इस प्रकार आँसू भरे नेत्रों वाली सीता को वनवास के विचार से निवृत्त करने के लिये वे धर्मात्मा उसे सान्त्वना देते हुए यह बोले कि हे सीता! तुमने महानकुल में जन्म लिया है, तुम सदा धर्म का पालन करती हो। तुम यहीं रहकर धर्म का पालन करो, जिससे मेरे मन को सुख हो।

सीते यथा त्वां वक्ष्यामि, तथा कार्यं त्वयाबले।
वने दोषा हि बहवो, वसतस्तान् निबोध मे।। ३।।
सीते विमुच्यतामेषा, वनवासकृता मतिः।
बहुदोषं हि कान्तारं, वनमित्यभिधीयते।। ४।।

हे सीता! तुम अबला हो। वन में रहने वालों को बहुत से दोष प्राप्त होते हैं। इसलिये जैसा मैं कहूँ, वैसा ही करो। हे सीता! विशाल, निर्जन वन बहुत प्रकार के दोषों से युक्त होते हैं। इसलिये यह वन में रहने का विचार छोड़ दो।

हितबुद्ध्या खलु वचो, मयैतदभिधीयते।
सदा सुखं न जानामि, दुःखमेव सदा वनम्।। ५।।
गिरिनिर्झरसम्भूता, गिरिनिर्दरिवासिनाम्।
सिंहानां निनदा दुःखाः, श्रोतुं दुःखमतो वनम्।। ६।।

मैं तुम्हारी भलाई के विचार से ही यह कह रहा हूँ। मेरी जानकारी के अनुसार वन में सदा सुख नहीं होता, वहाँ सदा दुःख ही होता है। पहाड़ी झरनों की आवाज़ सुनकर वहाँ पहाड़ों की गुफाओं में रहने वाले सिंहों के दहाड़ने की ध्वनि सुनने में बड़ी दुःखदायी होती है। इसलिये वन दुःख से भरे हुए हैं।

क्रीडमानाश्च विस्रब्धा, मत्ताः शून्ये तथा मृगाः।
दृष्ट्वा समभिवर्तन्ते, सीते दुःखमतो वनम्।। ७।।
सग्राहाः सरितश्चैव, पङ्कवत्यस्तु दुस्तराः।
मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम्।। ८।।

वहाँ एकान्त में निश्चिन्त होकर खेलते हुए मतवाले जंगली पशु मनुष्य को देखते ही उस पर आक्रमण कर देते हैं, इसलिये वन दुःखों से भरा हुआ है। वहाँ नदियों में कीचड़ भरा होने के कारण उन्हें पार करना कठिन होता है। उनमें मगरमच्छ निवास करते हैं। वहाँ वन में मतवाले हाथी घूमते रहते हैं। इसलिये वन में बहुत दुःख हैं।

लताकण्टकसंकीर्णाः, कृकवाकूपनादिताः।
निरपाश्च सुदुःखाश्च, मार्गा दुःखमतो वनम्।। ९।।
सुप्यते पर्णशय्यासु, स्वयंभग्नासु भूतले।
रात्रिषु श्रमखिन्नेन, तस्माद् दुःखमतो वनम्।। १०।।

वहाँ जंगली रास्तों पर चलने में बड़ा दुःख होता है। वे लताओं और काँटों से भरे होते हैं, वहाँ पानी नहीं मिलता। वहाँ जंगली मुर्गे बोला करते हैं। इसलिये वन दुःख से भरे हुए है। थकावट से परेशान होकर वहाँ जमीन पर अपने आप टूटकर गिरे हुए पत्तों के बिस्तरे पर, जमीन पर रात में सोना पड़ता है, इसलिये जंगलों में बहुत दुःख हैं।

अहोरात्रं च संतोषः, कर्तव्यो नियतात्मना।
फलैर्वृक्षापवतितैः, सीते दुःखमतो वनम्।। ११।।
उपवासश्च कर्तव्यो, यथा प्राणेन मैथिलि।
जटाभारश्च कर्तव्यो, वल्कलाम्बरधारणम्।। १२।।

हे सीता! वहाँ रात दिन अपने आपको बस में रखते हुए वृक्षों के नीचे पड़े हुए फलों को खाकर ही सन्तोष करना पड़ता है, इसलिये वनों में बहुत दुःख है। हे मैथिली! वहाँ यथाशक्ति उपवास करना, वल्कल वस्त्र धारण करना और जटाओं के बोझ को ढोना होता है।

अतीव वातस्तिमिरं, बुभुक्षा चाति नित्यशः।
भयानि च महान्त्यत्र, ततो दुःखतरं वनम्।। १३।।
सरीसृपाश्च बहवो, बहुरूपाश्च भामिनि।
चरन्ति पथि ते दर्पात्, ततो दुःखतरं वनम्।। १४।।
नदीनीलयनाः सर्पा, नदीकुटिलगामिनः।
तिष्ठन्त्यावृत्य पन्थानमतो दुःखतरं वनम्।। १५।।

वहाँ वन में भयानक आँधी, अँधेरा, नित्य भूख का कष्ट और दूसरे महान भय होते हैं इसलिये वन में रहना बड़ा दुःखदायी है। हे भामिनी! वहाँ बहुत सारे बहुत प्रकार के रेंगने वाले जन्तु अभिमान में भरे हुए रास्ते में चलते रहते हैं। नदियों में रहने वाले और नदियों के समान टेढ़ा चलने वाले, साँप वहाँ रास्ते को रोककर

पड़े रहते हैं। इसलिये वन में रहना बड़ा दुखदायी है।

पतङ्गा वृश्चिकाः, कीटा, दंशाश्च मशकैः सह।
बाधन्ते नित्यमबले, सर्वं दुःखमतो वनम्।। १६।।
द्रुमाः कण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि।
वने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुःखमतो वनम्।। १७।।

हे अबले! वहाँ पतंगे, बिच्छू, कीड़े डाँस और मच्छर सदा तंग करते रहते हैं। हे भामिनी! वहाँ काँटेदार पेड़, कुश और कास होते हैं। पेड़ों की टहनियाँ सब तरफ फैली हुई होती हैं। इसलिये वन में बहुत कष्ट होते हैं।

कायक्लेशाश्च बहवो, भयानि विविधानि च।
अरण्यवासे वसतो, दुःखमेव सदा वनम्।। १८।।
क्रोधलोभौ विमोक्तव्यौ, कर्तव्या तपसे मतिः।
न भेतव्यं च भेतव्ये, दुःखं नित्यमतो वनम्।। १९।।
तदलं ते वनं गत्वा, क्षमं नहि वनं तव।
विमृशन्निव पश्यामि, बहुदोषकरं वनम्।। २०।।

वन में रहते हुए वहाँ बहुत सारे शारीरिक कष्ट और अनेक प्रकार के भय प्राप्त होते हैं। वहाँ रहते हुए क्रोध और लोभ को छोड़ना पड़ता है तथा तपस्या में ध्यान लगाना होता है। डर होने पर भी वहाँ डरना नहीं पड़ता। इसलिये वन में बहुत दुःख है। अतः वन तुम्हारे लिये कल्याणकारी नहीं हैं, तुम्हें वन में नहीं जाना चाहिये। मैं बहुत सोचकर यही समझता हूँ कि वन में बहुत दोष हैं।

अट्ठाईसवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम को उनके साथ अपने वन गमन का औचित्य बताना।

एतत् तु वचनं श्रुत्वा, सीता रामस्य दुःखिता।
प्रसक्ताश्रुमुखी मन्दमिदं वचनमब्रवीत्।। १।।
ये त्वया कीर्तिता दोषा, वने वस्तव्यतां प्रति।
गुणानित्येव तान् विद्धि, तव स्नेहपुरस्कृता।। २।।

राम के इन वचनों को सुनकर सीता बहुत दुःखी हुई। उसके मुख पर आसुओं की धारा बहने लगी और वह धीमी आवाज से यह बोली कि आपने वन में रहने के जो दोष बताये हैं, वे आपके स्नेह से मेरे लिये सारे गुण बन जाएँगे। यह आप समझ लीजिये।

मृगाः सिंहा गजाश्चैव, शार्दूलाः शरभास्तथा।
चमराः सृमराश्चैव, ये चान्ये वनचारिणः।। ३।।
अदृष्टपूर्वरूपत्वात्, सर्वे ते तव राघव।
रूपं दृष्ट्वापसर्पेयुस्तव सर्वे हि बिभ्यति।। ४।।

हे रघुनन्दन! आपसे तो सभी डरते हैं। मृग, सिंह, हाथी, बाघ, शरभ, चमरी गाय, नील गाय ये सब आपकी निर्भय अदृष्टपूर्व आकृति को देखकर भाग जायेंगे।

त्वया च सह गन्तव्यं, मया गुरुजनाज्ञया।
त्वद्वियोगेन मे राम, त्यक्तव्यमिह जीवितम्।। ५।।
पतिहीना तु या नारी, न सा शक्ष्यति जीवितुम्।
काममेवंविधं राम, त्वया मम निदर्शितम्।। ६।।

मुझे गुरुजनों की आज्ञा से आपके साथ ही जाना है। आपके वियोग में मुझे यहाँ इस जीवन को त्याग देना है। हे राम! पतिव्रता स्त्री पति से अलग होकर जीवित नहीं रह सकती, यह बात आपने मुझे भली प्रकार समझाई है।

वनवासे हि जानामि, दुःखानि बहुधा किल।
प्राप्यन्ते नियतं वीर, पुरुषैरकृतात्मभिः।। ७।।
प्रसादितश्च वै पूर्वं, त्वं मे बहुतिथं प्रभो।
गमनं वनवासस्य, काङ्क्षितं हि सह त्वया।। ८।।

हे वीर! मैं पहले से ही जानती हूँ कि वन में रहने में बहुत दुःख हैं, पर वे निश्चितरूप से उन्हीं को प्राप्त होते हैं जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियों को वश में नहीं किया है। आपके साथ मेरी वन में रहने की बहुत पहले की इच्छा है। मैंने आपको कई बार प्रार्थना करके इसके लिये आपको प्रसन्न भी कर लिया था।

कृतक्षणाहं भद्रं, ते गमनं प्रति राघव।
वनवासस्य शूरस्य, मम चर्या हि रोचते।। ९।।
शुद्धात्मन् प्रेमभावाद्धि, भविष्यामि विकल्मषा।
भर्तारमनुगच्छन्ती, भर्ता हि परदैवतम्।। १०।।

हे राघव! आपका कल्याण हो। मैंने इस प्रकार वन में जाने के लिये आपकी अनुमति पहले ही प्राप्त कर ली थी। मुझे अपने वनवासी शूरवीर पति की सेवा ही अधिक अच्छी लगती है। हे शुद्धात्मन्! आपके साथ जाती हुई मैं आपके प्रति प्रेम भाव से ही दुःखों से

रहित हो जाऊँगी। स्त्री के लिये उसका पति ही परम देवता है।

एवमस्मात् स्वकां नारीं, सुवृत्तां हि पतिव्रताम्।
नाभिरोचयसे नेतुं, त्वं मां केनेह हेतुना।। ११।।
भक्तां पतिव्रतां दीनां, मां समां सुखदुःखयोः।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ, समानसुखदुः खिनीम्।। १२।।

मैं उत्तम व्रत का पालन करने वाली पतिव्रता आपकी पत्नी हूँ, फिर किस लिये आप मुझे यहाँ से ले जाना नही चाहते? हे काकुत्स्थ! मैं आपकी भक्त हूँ, पतिव्रता हूँ, आपके वियोग में दीन हो रही हूँ। मैं आपके दुःख सुख में समानरूप से हाथ बँटाने वाली हूँ। इसलिये आप मुझे साथ ले चलने की कृपा करें।

यदि मां दुःखितामेवं, वनं नेतुं न चेच्छसि।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात्।। १३।।
एवं बहुविधं तं सा, याचते गमनं प्रति।
नानुमेने महाबाहुस्तां नेतुं विजनं वरम्।। १४।।

यदि आप इस प्रकार से दुःख को प्राप्त हो रही मुझे वन में ले जाना नहीं चाहते, तो मैं मृत्यु के लिये विष खा लूँगी। आग में समा जाऊँगी या जल में डूब जाऊँगी। इस प्रकार बहुत तरह से जाने के लिये प्रार्थना करती हुई सीता को उस महाबाहु ने निर्जन वन में ले जाने की आज्ञा नहीं दी।

एवमुक्ता तु सा चिन्तां, मैथिली समुपागता।
स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः।। १५।।
चिन्तयन्तीं तदा तां तु, निवर्तयितुमात्मवान्।
क्रोधाविष्टां तु वैदेहीं, काकुत्स्थो बह्वसान्त्वयत्।। १६।।

राम के द्वारा इस प्रकार अस्वीकार कर देने पर मैथिली को बड़ी चिन्ता हुई। वे आँखों से गिरने वाले गरम आसुँओं से पृथ्वी को नहलाने लगीं। तब उस ककुत्स्थवंशी मनस्वी राम ने उन्हें चिन्ता और क्रोध से युक्त देखकर उन्हें वनवास के विचार से हटाने के लिये अनेक प्रकार से समझाया।

उनत्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता को माता-पिता और गुरुजनों की सेवा का महत्व बताना, पर सीता के विलाप और घबराहट को देखकर साथ चलने की स्वीकृति देना तथा घर की वस्तुओं को दान करने की आज्ञा देना।

सान्त्व्यमाना तु रामेण, मैथिली जनकात्मजा।
वनवासनिमित्तार्थं, भर्तारमिदमब्रवीत्।। १।।
सा तमुत्तमसंविग्ना, सीता विपुलवक्षसम्।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च, परिचिक्षेप राघवम्।। २।।

राम के द्वारा समझाये जाने पर जनकपुत्री मैथिली वनवास के लिये पति से यह बोली। वे अत्यधिक बेचैन थीं, वे विशाल वक्षस्थल वाले उन श्रीराम से प्रेम तथा स्वाभिमान पूर्वक आक्षेप को करते हुए कहने लगी।

किं त्वामन्यत वैदेहः, पिता मे मिथिलाधिपः।
राम जामातरं प्राप्य, स्त्रियं पुरुषविग्रहम्।। ३।।
अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद् यदि वक्ष्यति।
तेजोनास्ति परं रामे, तपतीव दिवाकरे।। ४।।

हे राम! क्या मेरे पिता विदेहराज, मिथिला के स्वामी जनक ने आपको जामाता के रूप में पाकर यह सोचा था कि आप पुरुष के शरीर में स्त्री हैं। आपके चले जाने पर यदि अज्ञान के कारण लोग यह असत्य बोलेंगे कि सूर्य के समान तपते हुए श्रीराम में तेज नहीं है, तो मेरे लिये कितने दुःख की बात होगी।

किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते।
यत् परित्यक्तुकामस्त्वं, मामनन्यपरायणाम्।। ५।।
द्युमत्सेनसुतं वीरं, सत्यवन्तमनुव्रताम्।
सावित्रीमिव मां विद्धि, त्वमात्मवशवर्तिनीम्।। ६।।

आप क्या सोचकर उदास हैं? आपको कौन सा डर है? जो आप मुझे, जो केवल आपके ही आश्रित है, छोड़ना चाहते हैं। आप मुझे वीर द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान के पीछे चलने वाली सावित्री के समान अपनी आज्ञा के आधीन समझिये।

यस्य पथ्यंचरामात्थ, यस्य चार्थेऽवरुध्यसे।
त्वं तस्य भव वश्यश्च, विधेयश्च सदानघ।। ७।।
स मामनादाय वनं, न त्वं प्रस्थितुमर्हसि।
तपो वा यदि वारण्यं, स्वर्गो वा स्यात् त्वया सह।। ८।।

हे निष्पाप राम! आपने जिसके अनुसार चलने के लिये मुझे कहा है और जिसकी भलाई के कारण आपका

अभिषेक रोक दिया गया, आप ही उसके वशवर्ती और आज्ञा पालक बनिये मैं नहीं बन सकती। आप मुझे वन में न ले जाकर स्वयं भी नहीं जा सकते। मुझे चाहे वन में तपस्या करनी हो या स्वर्ग में जाना हो सब आपके साथ ही होगा।

कुशकाशशरेषीका, ये च कण्टकिनो द्रुमाः।
तूलाजिनसमस्पर्शा, मार्गे मम सह त्वया।। ९।।
महावातसमुद्भूतं, यन्मामवकरिष्यति।
रजो रमण तन्मन्ये, परार्ध्यमिव चन्दनम्।। १०।।
शाद्वलेषु यदा शिश्ये, वनान्तर्वनगोचरा।
कुथास्तरणयुक्तेषु, किं स्यात् सुखतरं ततः।। ११।।

आपके साथ चलते हुए रास्ते में जो कुश कास, सरकण्डे, सींक और काँटेदार वृक्ष मिलेंगे वे मुझे रुई और मृगचर्म के समान स्पर्श वाले लगेंगे। प्रचण्ड आँधी से उड़ने वाली धूल जो मुझे चारों तरफ से भर देगी, उस धूत के लिपटने को मैं उत्तम चन्दन के समान समझूँगी। वन के अन्दर के भागों में विचरण करती हुई, जब मैं आपके साथ घासों पर शयन करूँगी तब उस शयन से कालीनों और मुलायम बिछौनों पर सोना क्या अधिक सुखदायी हो सकता है?

पत्रं मूलं फलं यत्तु, अल्पं वा यदि वा बहु।
दास्यसे स्वयमाहृत्य, तन्मेऽमृतरसोपमम्।। १२।।
न मातुर्न पितुस्तत्र, स्मरिष्यामि न वेश्मनः।
आर्तवान्युपभुञ्जाना, पुष्पाणि च फलानि च।। १३।।

आप वहाँ अपने हाथ से फल, मूल और जड़ जो कुछ भी थोड़ा बहुत लाकर खाने को देंगे वह मेरे लिये अमृत रस के समान होगा। वहाँ मैं ऋतु के अनुसार फूलों और फलों को खाते हुए माता पिता और घर को कभी याद नहीं करूँगी।

न च तत्र ततः किंचिद्, द्रष्टुमर्हसि विप्रियम्।
मत्कृते न च ते शोको, न भविष्यामि दुर्भरा।। १४।।
यस्त्वया सह स स्वर्गो, निरयो यस्त्वया विना।
इति जानन् परां प्रीतिं, गच्छ राम मया सह।। १५।।

आप मेरा वहाँ कोई भी प्रतिकूल व्यवहार नहीं देखेंगे। वहाँ मेरे लिये आपको कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। मैं वहाँ आपके लिये दूभर नहीं बनूँगी। मेरे लिये आपके साथ रहते हुए जो कुछ है, वह स्वर्ग के समान सुखदायी है और आपके बिना नरक के समान दुःखदायी है। हे राम! आप इस प्रकार मेरे अत्यधिक प्रेम को जानकर आप मेरे साथ वन में जाइये, अकेले नहीं।

अथ मामेवमव्यग्रां, वनं नैव नयिष्यसे।
विषमद्यैव पास्यामि, मा वशं द्विषतां गमम्।। १६।।
इमं हि सहितुं शोकं, मुहूर्तमपि नोत्सहे।
किं पुनर्दश वर्षाणि, त्रीणि चैकं च दुःखिता।। १७।।

मुझे वन में रहने से कोई घबराहट नहीं है, पर फिर भी यदि आप मुझे वन में नहीं ले जाएँगे तो मैं आज ही विषपान कर लूँगी, पर द्वेष करने वालों के वश में होकर नहीं रहूँगी। मैं आपके वियोगजन्य दुःख को एक मुहूर्त भी सहन नहीं कर सकती, फिर चौदह वर्ष कैसे व्यतीत कर सकती हूँ?

इति सा शोकसंतप्ता, विलप्य करुणं बहु।
चुक्रोश पतिमायस्ता, भृशमालिङ्ग्य सस्वरम्।। १८।।
सा विद्धा बहुभिर्वाक्यैर्दिग्धैरिव गजाङ्गना।
चिरसंनियतं बाष्पं, मुमोचाग्निमिवारणिः।। १९।।

इस प्रकार बहुत तरह से करुणायुक्त विलाप करके सीता पति को आलिंगन कर शिथिल हो, जोर-जोर से रोने लगी। विषैले बाणों से घायल की हुई, हथिनी के समान, वह भी श्रीराम के द्वारा समझाने के लिये कहे हुए वचनों से मर्माहत हो गई थी, वे अपने बहुत देर से रोके हुए आँसुओं को ऐसे ही बड़े वेग से बहाने लगीं, जैसे अरणि नाम की लकड़ी में से घिसे जाने पर अचानक अग्नि प्रकट हो जाती है।

तस्याः स्फटिकसंकाशं, वारि संतापसम्भवम्।
नेत्राभ्यां परिसुस्राव, पङ्कजाभ्यामिवोदकम्।। २०।।
तत्सितामलचन्द्राभं, मुखमायतलोचनम्।
पर्यशुष्यत बाष्पेण, जलोद्धृतमिवाम्बुजम्।। २१।।
तां परिष्वज्य बाहुभ्यां, विसंज्ञामिव दुःखिताम्।
उवाच वचनं रामः, परिविश्वासयंस्तदा।। २२।।

जिस प्रकार दो कमलों से जल की धारा गिर रही हो, उसी प्रकार दुःख के कारण प्रकट होने वाली स्फटिक के समान निर्मल आसुँओं की धारा उसकी आँखों से लगातार बह रही थी। उनका पूर्णिमा के निर्मल चन्द्र के समान सुन्दर मुख जिसमें बड़ी-बड़ी आँखें थीं, इस प्रकार से सूख गया जैसे पानी से उखाड़ने के पश्चात कमल सूख जाता है। तब श्रीराम जी ने उन सीता जी को जो दुःख के कारण अचेतन सी हो रही थी हाथों से उठा कर छाती से लगा लिया और उन्हें सान्त्वना देते हुए कहने लगे कि-

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने।
वासं न रोचयेऽरण्ये, शक्तिमानपि रक्षणे।। २३।।

यत् सृष्टसि मया सार्धं, वनवासाय मैथिलि।
न विहातुं मया शक्या, प्रीतिरात्मवता यथा।। २४।।

हे शुभानने! यद्यपि मैं वन में तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ हूँ, पर तुम्हारी भावना को जाने बिना तुम्हें वन में ले जाना मुझे अच्छा नहीं लगता था। हे मैथिली! यदि तुम मेरे साथ वन में रहने के लिये ही उत्पन्न हुई तो मैं तुम्हें इसी प्रकार नहीं छोड़ सकता जैसे आत्मवान पुरुष अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता को नहीं छोड़ सकते।

न खल्वहं न गच्छेयं, वनं जनकनन्दिनि।
वचनं तन्नयति मां, पितुः सत्योपबृंहितम्।। २५।।
एष धर्मश्च सुश्रोणि, पितुर्मातुश्च वश्यता।
आज्ञां चाहं व्यतिक्रम्य, नाहं जीवितुमुत्सहे।। २६।।

हे जनक पुत्री! पिता जी का सत्य से युक्त वचन मुझे वन की तरफ ले जा रहा है। इसलिये यह तो हो नहीं सकता कि मैं वन में न जाऊँ। हे सुश्रोणि! यह पुत्र का धर्म है कि वह माता और पिता के आधीन रहे। उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके मैं जीवित भी रहना नहीं चाहता।

अस्वाधीनं कथं दैवं, प्रकारैरभिराध्यते।
स्वाधीनं समतिक्रम्य, मातरं पितरं गुरुम्।। २७।।
यत्र त्रयं त्रयो लोकाः, पवित्रं तत्समं भुवि।
नान्यदस्ति शुभापाङ्गे, तेनेदमभिराध्यते।। २८।।

जिनको सेवा के द्वारा अपने आधीन किया जा सकता है उन माता पिता और गुरु को छोड़कर और दूसरे देवताओं की दूसरे-दूसरे तरीकों से सेवा कैसे की जा सकती है? जो अपने आधीन नहीं है। जहाँ ये तीनों होते हैं वहीं तीनों लोकों की विद्यमानता है। हे सुन्दर नेत्रवाली! इसलिये इनकी पूजा की जाती है क्योंकि संसार में इनके समान पवित्र और कोई नहीं है।

न सत्यं दानमानौ वा, यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणाः।
तथा बलकराः सीते, यथा सेवा पितुर्मता।। २९।।
स्वर्गो धनं वा धान्यं वा, विद्या पुत्राः सुखानि च।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन, न किंचिदपि दुर्लभम्।। ३०।।

हे सीता! न सत्य, न दान, न मान और न दक्षिणा वाले यज्ञ इतने कल्याणकारी माने गये हैं, जितनी पिता की सेवा मानी गयी है। गुरु की सेवा से स्वर्ग, धनधान्य, विद्या, पुत्र तथा अन्य सुख सभी की प्राप्ति हो सकती है।

स मा पिता यथा शास्ति, सत्यधर्मपथे स्थितः।
तथा वर्तितुमिच्छामि, स हि धर्मः सनातनः।। ३१।।

मम सन्ना मतिः सीते, नेतुं त्वां दण्डकावनम्।
वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता।। ३२।।

इसलिये सत्य और धर्म के पथ पर स्थित पिता जी मुझे जैसी आज्ञा दे रहे हैं, मैं वैसा ही करना चाहता हूँ। यही सनातन धर्म है। हे सीता! तुमने मैं आपके साथ वन में अवश्य रहूँगी ऐसा कहकर जो मेरे साथ चलने का दृढ़ निश्चय किया है, उससे मेरी दण्डकारण्य में ले चलने के विषय में मति बदल गयी है।

सा हि दिष्टानवद्याङ्गि, वनाय मदिरेक्षणे।
अनुगच्छस्व मां भीरु, सहधर्मचरी भव।। ३३।।
सर्वथा सदृशं सीते, मम स्वस्य कुलस्य च।
व्यवसायमनुक्रान्ता, कान्ते त्वमतिशोभनम्।। ३४।।

हे मदभरे नेत्रों वाली सुन्दरी! तुम्हें मैंने आज्ञा दे दी है। हे भीरु! तुम मेरी अनुगामिनी बनो। मेरे साथ रहकर धर्म का पालन करो। हे सुन्दरी सीता! तुमने बहुत सुन्दर आचरण किया है। यह तुम्हारे और मेरे कुल के सर्वथा अनुरूप है।

आरभस्व शुभश्रोणि, वनवासक्षमताः क्रियाः।
नेदानीं त्वदृते सीते, स्वर्गोऽपि मम रोचते।। ३५।।
ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि, भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम्।
देहि चाशंसमानेभ्यः, संत्वरस्व च मा चिरम्।। ३६।।

हे सुश्रोणी! अब तुम वन में चलने के कार्य आरम्भ करो। हे सीते! अब मुझे तुम्हारे बिना स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगता। तुम ब्राह्मणों को रत्न और भिक्षुओं को भोजन दो। शीघ्रता करो, देर मत करो।

भूषणानि महार्हाणि, वरवस्त्राणि यानि च।
रमणीयाश्च ये केचित, क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः।। ३७।।
शयनीयानि यानानि, मम चान्यानि यानि च।
देहि स्वभृत्यवर्गस्य, ब्राह्मणानामनन्तरम्।। ३८।।
अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः।
क्षिप्रं प्रमुदिता देवी, दातुमेव प्रचक्रमे।। ३९।।

तुम्हारे पास जो भी बहुमूल्य गहने और सुन्दर वस्त्र हों और जो भी सुन्दर सामान हो तथा मनोरंजन के साधन हों, मेरी शय्याएँ तथा सवारियाँ तथा अन्य वस्तुएँ हों, उन सबको ब्राह्मणों के पश्चात अपने सेवकों को दे दो। पति ने मेरा वन में जाना स्वीकार कर लिया है यह जानकर देवी सीता बहुत प्रसन्न हुई और जल्दी से दान करने में ही जुट गयीं।

तीसवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण का संवाद, श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण का सुहृदों से पूछकर दिव्य आयुध लाकर वन गमन के लिये तैयार होना। श्रीराम का उनसे दान के लिये कहना।

एवं श्रुत्वा स संवादं, लक्ष्मणः पूर्वमागतः।
बाष्पपर्याकुलमुखः, शोकं सोढुमशक्नुवन्।। १।।
स भ्रातुश्चरणौ गाढं, निपीड्य रघुनन्दनः।
सीतामुवाचातियशां, राघवं च महाव्रतम्।। २।।

लक्ष्मण जी थोड़ा पहले ही आ गये थे और राम और सीता के संवाद को सुन रहे थे। उनके इस संवाद को सुन कर वे अपने शोक को सहन नहीं कर सके और उनका मुख आँसुओं से भर गया। वे रघुनन्दन तब भाई के चरणों को जोर से पकड़ कर अति यशस्वी सीताजी और महानव्रतधारी श्रीराम से कहने लगे।

यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम्।
अहं त्वानुगमिष्यामि, वनमग्रे धनुर्धरः।। ३।।
मया समेतोऽरण्यानि, रम्याणि विचरिष्यसि।
पक्षिभिर्मृगयूथैश्च, संघुष्टानि समन्ततः।। ४।।

कि यदि आपने मृगों और हाथियों से भरे वन में जाने का निश्चय कर लिया है तो मैं धनुष लेकर आपके पीछे चलूँगा। आप मेरे साथ पशु पक्षियों से भरे हुए वनों में सब तरफ विचरण करिये।

न देवलोकाक्रमणं, नामरत्वमहं वृणे।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां, कामये न त्वया विना।। ५।।
एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः।
रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत्।। ६।।

मैं आपके बिना स्वर्गलोक में जाना, अमरता की प्राप्ति और संसार के ऐश्वर्य की प्राप्ति की इच्छा नहीं करता। इस प्रकार से कहते हुए लक्ष्मण जी को राम ने बहुत तरह से समझा कर मना किया, पर वनवास के लिये दृढ़ निश्चय करके वे बोले।

अनुज्ञातस्तु भवता, पूर्वमेव यदस्म्यहम्।
किमिदानीं पुनरपि, क्रियते मे निवारणम्।। ७।।
यदर्थं प्रतिषेधो मे, क्रियते गन्तुमिच्छतः।
एतदिच्छामि विज्ञातुं, संशयो हि ममानघ।। ८।।

आपने तो पहले ही मुझे अपने साथ रहने की आज्ञा दे रखी है, फिर क्यों अब पुनः आप मुझे रोक रहे हैं? हे निष्पाप! आप जिस लिये मुझे अपने साथ ले जाने के लिये मना कर रहे हैं, मैं उस कारण को जानना चाहता हूँ। मुझे इस विषय में संशय है।

ततोऽब्रवीन्महातेजा, रामो लक्ष्मणमग्रतः।
स्थितं प्रागगामिनं धीरं, याचमानं कृताञ्जलिम्।। ९।।
स्निग्धो धर्मरतो धीरः, सततं सत्पथे स्थितः।
प्रियः प्राणसमो वश्यो, विजेयश्च सखा च मे।। १०।।

तब महातेजस्वी श्रीराम ने अपने आगे खड़े, और हाथ जोड़ कर जाने के लिये याचना करते हुए धीरज वाले लक्ष्मण जी से कहा कि हे लक्ष्मण! तुम स्नेह से युक्त, धर्म में लगे हुए, धीरज वाले और सदा अच्छे मार्ग पर चलने वाले हो। तुम मेरे प्राणों के समान प्यारे हो और मेरे वश में रहने वाले आज्ञा पालक सखा हो।

मयाद्य सह सौमित्रे, त्वयि गच्छति तद्वनम्।
को भजिष्यति कौसल्यां, सुमित्रां वा यशस्विनीम्।। ११।।
अभिवर्षति कामैर्यः, पर्जन्यः पृथिवीमिव।
स कामपाशपर्यस्तो, महातेजा महीपतिः।। १२।।

हे सुमित्रा के पुत्र! मेरे साथ तुम्हारे भी उस वन में जाने पर यशस्विनी कौशल्या और सुमित्रा की सेवा कौन करेगा? जैसे बादल पृथ्वी पर जल की वर्षा करते हैं, वैसे ही जो प्रजा की कामनाऐं पूरी करते थे, वे ही महातेजस्वी राजा अब कामनाओं के बन्धन में बन्ध गये हैं।

सा हि राज्यमिदं प्राप्य, नृपस्याश्वपतेः सुता।
दुःखितानां सपत्नीनां न करिष्यति शोभनम्।। १३।।
न भरिष्यति कौसल्यां, सुमित्रां च सुदुःखिताम्।
भरतो राज्यमासाद्य, कैकेय्यां पर्यवस्थितः।। १४।।

वह राजा अश्वपति की पुत्री कैकेयी, इस राज्य को पाकर अपनी दुःखी सौतों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करेगी। भरत भी कैकेयी के आधीन रहने के कारण दुःखी कौशल्या और सुमित्रा का भरण पोषण नहीं करेंगे।

तामार्यां स्वयमेवेह, राजानुग्रहणेन वा।
सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुं चर।। १५।।
एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता।
धर्मज्ञगुरुपूजायां, धर्मश्चाप्यतुलो महान्।। १६।।

इसलिये हे लक्ष्मण! तुम स्वयं ही यहाँ रहकर, राजा का अनुग्रह प्राप्त कर कौसल्या का पालन करो और मेरी कही हुई बात को पूरा करो। तुम्हारे ऐसा करने से तुम्हारी मेरे प्रति जो भक्ति है, वह भी प्रकट हो जायेगी और धर्मज्ञ गुरुओं की सेवा करने से महान तथा अतुलनीय धर्म भी प्राप्त होगा।

एवं कुरुष्व सौमित्रे, मत्कृते रघुनन्दन।
अस्माभिर्विप्रहीणाया, मातुर्नो न भवेत् सुखम्।। १७।।
एवमुक्तस्तु रामेण, लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा।
प्रत्युवाच तदा रामं, वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम्।। १८।।

हे सुमित्रा के पुत्र रघुनन्दन! तुम मेरे लिये ऐसा ही करो। क्योंकि हमसे बिछुड़ी हुई माता को सुख नहीं मिलेगा। राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वाक्य चतुर लक्ष्मण ने मधुर वाणी से वाक्यचतुर श्रीराम से कहा।

तवैव तेजसा वीर, भरतः पूजयिष्यति।
कौसल्यां च सुमित्रां च, प्रयतो नास्ति संशयः।। १९।।
यदि दुःस्थो न रक्षेत, भरतो राज्यमुत्तमम्।
प्राप्य दुर्मनसा वीर, गर्वेण च विशेषतः।। २०।।
तमहं दुर्मतिं क्रूरं, वधिष्यामि न संशयः।
तत्पक्षानपि तान् सर्वांस्त्रैलोक्यमपि किं तु सा।। २१।।
कौसल्या बिभृयादार्या, सहस्रं मद्विधानपि।
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां, सम्प्राप्तमुपजीविनाम्।। २२।।

हे वीर! आपके प्रभाव से ही भरत कौसल्या और सुमित्रा दोनों की प्रयत्न से पूजा करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि भरत इस उत्तम राज्य को पाकर बुरे रास्ते पर चलने और विशेषतः अभिमानयुक्त होने के कारण माताओं की रक्षा नहीं करेंगे तो मैं निस्सन्देह उस दुष्ट और क्रूर का वध कर दूँगा, मैं उसका पक्ष लेने वाले तीनों लोकों के लोगों का भी वध कर दूँगा। किन्तु कौसल्या तो स्वयं मेरे जैसे हजारों का पालन कर सकती है, क्योंकि उन्हें अपने आश्रितों का पालन करने के लिये एक हजार गाँव मिले हुए हैं।

कुरुष्व मामनुचरं, वैधर्म्यं नेह विद्यते।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि, तव चार्थः प्रकल्प्यते।। २३।।
धनुरादाय सगुणं, खनित्रपिटकाधरः।
अग्रतस्ते गमिष्यामि, पन्थानं तव दर्शयन्।। २४।।

इसलिये आप मुझे अपना अनुचर बना लीजिये, यह अधर्म नहीं है। मैं इससे कृतार्थ हो जाऊँगा तथा आपका भी कार्य हो जाया करेगा। मैं प्रत्यंचा धनुष तथा खंती और पिटारी लेकर आपको रास्ता दिखाता हुआ आपके आगे-आगे चला करूँगा।

आहरिष्यामि ते नित्यं, मूलानि च फलानि च।
वन्यानि च तथान्यानि, स्वाहार्हाणि तपस्विनाम्।। २५।।
भवांस्तु सह वैदेह्या, गिरिसानुषु रंस्य से।
अहं सर्वं करिष्यामि, जाग्रतः स्वपतश्च ते।। २६।।

मैं नित्य आपके लिये फल और मूल तथा दूसरे वन्य पदार्थ और तपस्वी लोगों के हवन की सामग्री लाया करूँगा। आप वैदेही के साथ पर्वतों की चोटी पर घूमना और मैं जागते और सोते हुए आपके सारे कार्य पूरे करता रहूँगा।

रामस्त्वनेन वाक्येन, सुप्रीतः प्रत्युवाच तम्।
व्रजापृच्छस्व सौमित्रे, सर्वमेव सुहृज्जनम्।। २७।।
ये च राज्ञो ददौ दिव्ये, महात्मा वरुणः स्वयम्।
जनकस्य महायज्ञे, धनुषी रौद्रदर्शने।। २८।।
अभेद्ये कवचे दिव्ये, तूणी चाक्षय्यसायकौ।
आदित्यविमलाभौ द्वौ, खड्गौ हेमपरिष्कृतौ।। २९।।
सत्कृत्य निहितं सर्वमेतदाचार्यसद्मनि।
सर्वमायुधमादाय, क्षिप्रमाव्रज लक्ष्मण।। ३०।।

लक्ष्मण जी के इन वाक्यों से राम ने प्रसन्न होकर उनसे कहा कि हे सुमित्रा के पुत्र! जाओ अपने सभी सुहृदजनों से पूछकर उनकी अनुमति ले लो। महात्मा वरुण ने राजा जनक के यज्ञ में स्वयं जो दो देखने में भयानक दिव्य धनुष दिये थे, जो दो अभेद्य कवच, दो अक्षय तरकस, सूर्य की भाँति निर्मल दीप्ति से प्रकाशित सुवर्ण भूषित खड्ग दिये थे, उन सभी को सम्मान के साथ आचार्य वसिष्ठ जी के घर में रखा हुआ है। हे लक्ष्मण! उन सब आयुधों को लेकर जल्दी आओ।

स सुहृज्जनमामन्त्र्य, वनवासाय निश्चितः।
इक्ष्वाकुगुरुमागम्य, जग्राहायुधमुत्तमम्।। ३१।।
तमुवाचात्मवान् रामः, प्रीत्या लक्ष्मणमागतम्।
काले त्वमागतः सौम्य, कांक्षिते मम लक्ष्मण।। ३२।।

तब लक्ष्मण जी अपने सुहृदजनों से आज्ञा लेकर वनवास का निश्चय करके इक्ष्वाकु कुल के गुरु वसिष्ठ जी के घर जाकर उन उत्तम हथियारों को ले आये। तब मनस्वी राम ने आये हुए लक्ष्मण जी से प्रेम से कहा कि तुम समय पर आये। मैं तुम्हारी इच्छा कर रहा था।

वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यं,
त्वमानयाशु प्रवरं द्विजानाम्।
अपि प्रयास्यामि वनं समस्ता-
नभ्यर्च्य शिष्टानपरान् द्विजातीन्।। ३३।।

वसिष्ठ जी के पुत्र जो आर्य सुयज्ञ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। तुम उन्हें जल्दी बुला कर लाओ। मैं उनका तथा दूसरे श्रेष्ठ ब्राह्मणों का सत्कार करके वन में जाऊँगा।

इकत्तीसवाँ सर्ग

राम लक्ष्मण और सीता द्वारा अपनी सम्पत्ति का दान

ततः शासनमाज्ञाय, भ्रातुः प्रियकरं हितम्।
गत्वा स प्रविवेशाशु, सुयज्ञस्य निवेशनम्।। १।।
तं विप्रमग्न्यगारस्थं, वन्दित्वा लक्ष्मणोऽब्रवीत्।
सखेऽभ्यागच्छ पश्य त्वं, वेश्म दुष्करकारिणः।। २।।

तब भाई के प्रिय और हितकारी आदेश को सुनकर लक्ष्मण ने जाकर जल्दी से सुयज्ञ के घर में प्रवेश किया। यज्ञशाला में बैठे हुए उस ब्राह्मण को प्रणाम कर लक्ष्मण जी ने उनसे कहा कि हे सखा! तुम दुष्कर्म करने वाले श्रीराम के घर आओ और उनके कार्य देखो।

ततः संध्यामुपास्थाय, गत्वा सौमित्रिणा सह।
ऋद्धं स प्राविशल्लक्ष्म्या, रम्यं रामनिवेशनम्।। ३।।
तमागतं वेदविदं, प्राञ्जलिः सीतया सह।
सुयज्ञमभिचक्राम, राघवोऽग्निमिवार्चितम्।। ४।।

तब उन्होंने सन्ध्या उपासना पूरी करके लक्ष्मण जी के साथ जाकर श्रीराम के लक्ष्मी से भरपूर सुन्दर भवन में प्रवेश किया। तब श्रीराम ने अग्नि के समान तेजस्वी वेदज्ञ सुयज्ञ की सीता जी के साथ हाथ जोड़कर अगवानी की।

जातरूपमयैर्मुख्यैरङ्गदैः कुण्डलैः शुभैः।
सहेमसूत्रैर्मणिभिः, केयूरैर्वलयैरपि।। ५।।
अन्यैश्च रत्नैर्बहुभिः, काकुत्स्थः प्रत्यपूजयत्।
सुयज्ञं स तदोवाच, रामः सीताप्रचोदितः।। ६।।
हारं च हेमसूत्रं च, भार्यायै सौम्य हारय।
रशनां चाथ सा सीता, दातुमिच्छति ते सखी।। ७।।

उसके बाद श्री राम ने सुवर्ण के बने, अंगद, सुन्दर कुण्डल, सुनहले सूत्र में पिरोई हुई मणियों, बाजूबन्द, कंगन और दूसरे बहुत से रत्नों के द्वारा उनकी पूजा की। फिर सीता जी की प्रेरणा से श्रीराम ने सुयज्ञ से कहा कि हे सौम्य! इस हार, स्वर्णसूत्र और करधनी को अपनी पत्नी के लिये ले जाओ, तुम्हारी पत्नी की सखी सीता उसे देना चाहती है।

अङ्गदानि च चित्राणि, केयूराणि शुभानि च।
प्रयच्छति सखी तुभ्यं, भार्यायै गच्छती वनम्।। ८।।
पर्यङ्कमग्र्यास्तरणं, नानारत्नविभूषितम्।
तमपीच्छति वैदेही, प्रतिष्ठापयितुं त्वयि।। ९।।

तुम्हारी स्त्री की सखी, जो वन को जा रही है, तुम्हें अपनी पत्नी के लिये अंगद और सुन्दर केयूर दे रही है। नानारत्नों से युक्त और श्रेष्ठ बिस्तरे से युक्त पलंग भी वैदेही तुम्हारे घर भिजवाना चाहती है।

नागः शत्रुंजयो नाम, मातुलोऽयं ददौ मम।
तं ते निष्कसहस्रेण, ददामि द्विजपुङ्गव।। १०।।
इत्युक्तः स तु रामेण, सुयज्ञः प्रतिगृह्य तत्।
रामलक्ष्मणसीतानां, प्रयुयोजाशिषः शिवाः।। ११।।

यह शत्रुंजय नाम का हाथी है, जिसे मेरे मामा ने दिया था। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! इसे मैं एक सहस्र मुद्राओं के साथ आपको देता हूँ। राम के ऐसा कहने पर सुयज्ञ ने सारी सामग्री ग्रहण कर ली और राम तथा सीता को मंगलमय आशीर्वाद दिये।

अथाब्रवीद् बाष्पगलांस्तिष्ठतश्चोपजीविनः।
स प्रदाय बहुद्रव्यमेकैकस्योपजीवनम्।। १२।।
लक्ष्मणस्य च यद वेश्म, गृहं च यदिदं मम।
अशून्यं कार्यमेकैकं, यावदागमनं मम।। १३।।

इसके पश्चात् श्रीराम ने अपने वहाँ खड़े हुए सेवकों को जिनका गला आँसूओं से भरा हुआ था, बुलाकर उनहें एक एक को बहुत सा धन देकर कहा कि जब तक मैं लौट कर न आऊँ, मेरे तथा लक्ष्मण के घर को कभी सूना न करना।

इत्युक्त्वा दुःखितं सर्वं, जनं तमुपजीविनम्।
उवाचेदं धनाध्यक्षं, धनमानीयतां मम।। १४।।
ततोऽस्य धनमाजह्रुः, सर्व एवोपजीविनः।
स राशिः सुमहांस्तत्र, दर्शनीयो ह्यदृश्यत।। १५।।

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद् धनं सहलक्ष्मणः।
द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः, कृपणेभ्यो ह्यदापयत्।। १६।।

अपने दुःखी सारे सेवकों से ऐसा कह कर श्रीराम ने अपने कोषाध्यक्ष से कहा कि मेरे सारे धन को ले आओ। तब वे सारे सेवक उनके सारे धन को ले आए। धन की वह विशाल राशि देखने योग्य थी। तब उन नरश्रेष्ठ श्रीराम ने लक्ष्मण जी के साथ वह सारा धन ब्राह्मणों, बच्चों बूढ़ों और दुःखियों में बाँट दिया।

बत्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण का कैकेयी के महल में जाना।

दत्त्वा तु सह वैदेह्या, ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु।
जग्मतुः पितरं द्रष्टुं, सीतया सह राघवौ।। १।।
ततः प्रासादहर्म्याणि, विमानशिखराणि च।
अभिरुह्य जनः श्रीमानुदासीनो व्यलोकयत्।। २।।
न हि रथ्याः सुशक्यन्ते, गन्तुं बहुजनाकुलाः।
आरुह्य तस्मात् प्रासादाद्, दीनाः पश्यन्ति राघवम्।।३।।

ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान करके वे दोनों रघुवंशी राजपुत्र सीता के साथ पिता जी को देखने के लिये गये। तब धनी लोग अपने अपने प्रासादों और विमानों के शिखरों पर चढ कर उदासीन हो कर देख रहे थे। क्योंकि सड़कें पहले ही भरी हुई थी, उन पर चलना कठिन था, इसलिये दुःखी लोग अपने मकानों की छतों पर चढ़ कर श्रीराम को देख रहे थे।

पदातिं सानुजं दृष्ट्वा, ससीतं च जनास्तदा।
ऊचुर्बहुजना वाचः, शोकोपहतचेतसः।। ४।।
यं यान्तमनुयाति स्म, चतुरङ्गबलं महत्।
तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मणः।। ५।।
ऐश्वर्यस्य रसज्ञः सन्, कामानां चाकरो महान्।
नेच्छत्येवानृतं कर्तुं, वचनं धर्मगौरवात्।। ६।।

उस समय श्रीराम को अपने छोटे-भाई तथा सीता के साथ पैदल जाता हुआ देख कर शोक से पीड़ित बहुत से लोग कहने लगे कि हाय जिनके चलते हुए पीछे पीछे चतुरंगिणी विशाल सेना चला करती थी, उन्हीं श्रीराम के पीछे आज केवल सीता और उनके छोटे भाई चल रहे हैं। जो ऐश्वर्य के आनन्द को भोगने वाले हैं। जिनके पास कामनाओं की पूर्ति का भण्डार है, वे धर्म के पालन के लिये पिता के वचन को असत्य नहीं करना चाहते हैं।

या न शक्या पुरा द्रष्टुं, भूतैराकाशगैरपि।
तामद्य सीतां पश्यन्ति, राजमार्गगता जनाः।। ७।।
अङ्गरागोचितां सीतां, रक्तचन्दनसेविनीम्।
वर्षमुष्णं च शीतं च, नेष्यत्याशु विवर्णताम्।। ८।।

पहले जिस सीता को आकाश में उड़ने वाले पक्षी भी नहीं देख पाते थे, उसी सीता को आज सड़क पर खड़े हुए लोग देख रहे हैं। लाल चन्दन लगाने वाली तथा अंगराग का सेवन करने वाली सीता के अंग अब वर्षा, गर्मी और सर्दी के कारण जल्दी ही कान्तिहीन हो जायेंगे।

निर्गुणस्यापि पुत्रस्य, कथं स्याद् विनिवासनम्।
किं पुनर्यस्य लोकोऽयं, जितो वृत्तेन केवलम्।। ९।।
आनृशंस्यमनुक्रोशः, श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते, षड्गुणाः पुरुषर्षभम्।। १०।।
तस्मात् तस्योपघातेन, प्रजाः परमपीडिताः।
औदकानीव सत्त्वानि, ग्रीष्मे सलिलसंक्षयात्।। ११।।

पुत्र गुणहीन हो तो भी उसे कौन घर से निकालता है? फिर इन की तो बात क्या है? जिन्होंने अपने अच्छे आचरण से सारी जनता के हृदयों को जीत लिया है। नरश्रेष्ठ श्रीराम में कोमलता दया, विद्या, शील, इन्द्रियों का दमन और मन का निग्रह ये गुण विद्यमान हैं। इसलिये इनके ऊपर आघात करने अर्थात इनके अभिषेक में विघ्न डालने से प्रजा उसी प्रकार से अत्यन्त दुःखी हो रही है जैसे ग्रीष्म ऋतु में तालाब का पानी कम होने पर जल के जन्तु तड़पने लगते हैं।

ते लक्ष्मण इव क्षिप्रं, सपत्न्यः सहबान्धवाः।
गच्छन्तमनुगच्छामो, येन गच्छति राघवः।। १२।।
उद्यानानि परित्यज्य, क्षेत्राणि च गृहाणि च।
एकदुःखसुखा राममनुगच्छाम धार्मिकम्।। १३।।

इसलिये चलो अब हम भी लक्ष्मण जी के समान जल्दी ही अपने पत्नी और बन्धु बान्धवों के साथ इन श्रीराम के पीछे पीछे वहीं चलते हैं जहाँ ये जा रहे हैं।

हम अपने बाग बगीचों, खेतों और घरों को छोड़कर इन धर्म का पालन करने वाले श्रीराम के सुख दुःख में समान भागी होकर इनके पीछे चलते हैं।

समुद्धृतनिधानानि, परिध्वस्ताजिराणि च।
उपात्तधानधान्यानि, हृतसाराणि सर्वशः।। १४।।
मूषकैः परिधावद्भिरुद्बिलैरावृतानि च।
अपेतोदकधूमानि, हीनसम्मार्जनानि च।। १५।।
प्रणष्टबलिकर्मेज्यामन्त्रहोमजपानि च।
दुष्कालेनेव भग्नानि, भिन्नभाजनवन्ति च।। १६।।
अस्मत्त्यक्तानि कैकेयी, वेश्मानि प्रतिपद्यताम्।

हम अपने धनों को भूमि में से उखाड़ लें। आँगन के फर्श तोड़ दें, सारा धन धान्य साथ ले लें, सारे आवश्यक पदार्थ ले लें। चूहे बिलों से निकल कर हमारे घरों में दौड़ लगाने लगें, उन्हीं से सारा घर भर जाये, न हमारे घरों में आग जले, न वहाँ पानी हो न झाडू लगायी जाये, सब तरह के यज्ञ आदि धार्मिक कार्य वहाँ बन्द हो जायें। अकाल की तरह घर टूटी फूटी अवस्था में हो जायें, जहाँ बर्तन टूटे बिखरे पड़े हों। हमारे इस प्रकार के छोड़े हुए घरों को कैकेयी प्राप्त कर उन पर राज्य करे।

वनं नगरमेवास्तु, येन गच्छति राघवः।। १७।।
अस्माभिश्च परित्यक्तं, पुरं सम्पद्यतां वनम्।
बिलानि दंष्ट्रिणः सर्वे, सानूनि मृगपक्षिणः।। १८।।
त्यजन्त्वस्मद्भयाद्भीता, गजाः सिंहा वनान्यपि।

जिस वन में श्रीराम रहने के लिये जा रहे हैं वह वन ही नगर बन जाये और हमारे द्वारा छोड़ा हुआ यह नगर ही वन बन जाये। श्रीराम के सुथ वन में हमारे रहने से साँप अपने बिलों को, मृग और पक्षी पर्वत की चोटियों को और शेर तथा हाथी वनों को छोड़ कर दूसरी जगह चले जायें।

अस्मत्त्यक्तं प्रपद्यन्तु, सेव्यमानं त्यजन्तु च।। १९।।
तृणमांसफलादानां, देशं व्यालमृगद्विजम्।
प्रपद्यतां हि कैकेयी, सपुत्रा सह बान्धवैः।। २०।।
राघवेण वयं सर्वे, वने वत्स्याम निर्वृताः।

वे सर्पादि जहाँ हम रहें उन वनों को छोड़कर यहाँ इस नगर में आ जायें, जिसे हम छोड़ देंगे। यह स्थान घास, मांस और फलों को खाने वाले जन्तुओं का स्थान बन जाये। यहाँ साँप, मृग और पक्षी रहने लगें। कैकेयी इस स्थान को अपने बान्धवों के साथ प्राप्त करे। हम तो सब श्री राम के साथ वन में आनन्द से रहेंगे।

इत्येवं विविधा वाचो, नानाजनसमीरिताः।। २१।।
शुश्राव राघवः श्रुत्वा, न विचक्रेऽस्य मानसम्।
स तु वेश्म पुनर्मातुः, कैलासशिखरप्रभम्।। २२।।
अभिचक्राम धर्मात्मा, मत्तमातङ्गविक्रमः।
विनीतवीरपुरुषं, प्रविश्य तु नृपालयम्।
ददर्शावस्थितं दीनं, सुमन्त्रमविदूरतः।। २३।।

इस प्रकार अनेक तरह की बातें तरह तरह के लोगों की कही हुई श्रीराम ने सुनी, पर उनके मन में कोई विकार नहीं आया। वे मतवाले हाथी के समान पराक्रमी, धर्मात्मा श्रीराम माता कैकेयी के कैलाश पर्वत के समान भवन में गये। उस विनयशील वीर पुरुषों से युक्त राजभवन में प्रवेश कर उन्होंने समीप ही सुमन्त्र को दीनावस्था में खड़े हुए देखा।

तत्पूर्वमैक्ष्वाकसुतो महात्मा,
रामो गमिष्यन् नृपमार्तरूपम्।
व्यतिष्ठत प्रेक्ष्य तदा सुमन्त्रं,
पितुर्महात्मा प्रतिहारणार्थम्।। २४।।

शोकाकुल अवस्था से युक्त राजा के पास जाने की इच्छा वाले इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राम तब सुमन्त्र को देख कर पिता के पास अपने आने की सूचना भिजवाने के लिये पहले वहाँ रुक गये।

पितुर्निदेशेन तु धर्मवत्सलो,
वनप्रवेशे कृतबुद्धिनिश्चयः।
स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्रवी-,
न्निवेदयस्वागमनं नृपाय मे।। २५।।

धर्म से प्रेम करने वाले श्रीराम, जिन्होंने पिता की आज्ञा से वन में प्रवेश का निश्चय कर लिया था, सुमन्त्र को देखकर उससे यह बोले कि राजा को मेरे आगमन के विषय में बताओ।

तेतीसवाँ सर्ग

सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का राजा दशरथ जी से वनवास के लिये विदा माँगना। राजा का शोक और मूर्च्छा। श्री राम का उन्हें समझाना तथा राजा का श्री राम को हृदय से लगाकर पुनः मूर्च्छित हो जाना।

स रामप्रेषितः क्षिप्रं, संतापकलुषेन्द्रियम्।
प्रविश्य नृपतिं सूतो, निःश्वसन्तं ददर्श ह।। १।।
उपरक्तमिवादित्यं, भस्मच्छन्नमिवानलम्।
तटाकमिव निस्तोयमपश्यज्जगतीपतिम्।। २।।
आबोध्य च महाप्राज्ञः, परमाकुलचेतनम्।
राममेवानुशोचन्तं, सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत्।। ३।।

तब सुमन्त्र ने राम की प्रेरणा से शीघ्र ही अन्दर प्रवेश कर राजा को, जिसकी इन्द्रियाँ संताप से बेचैन हो रही थीं और जो लम्बी सांसें ले रहे थे देखा। वे राहू से ग्रस्त सूर्य के समान, राख से ढकी हुई अग्नि के समान और सूखे हुए तालाब के समान निस्तेज हो रहे थे। उस महाराज की चेतना बहुत आकुल हो रही थी, और वे राम के विषय में ही चिन्ता कर रहे थे। सूत ने हाथ जोड़कर उन्हें सम्बोधन करके कहा।

अयं स पुरुषव्याघ्रो, द्वारि तिष्ठति ते सुतः।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा, सर्वं चैवोपजीविनाम्।। ४।।
स त्वां पश्यतु भद्रं ते, रामः सत्यपराक्रमः।
सर्वान् सुहृद आपृच्छ्य, त्वां हीदानीं दिदृक्षते।। ५।।
गमिष्यति महारण्यं, तं पश्य जगतीपते।
वृतं राजगुणैः सर्वैरादित्यमिव रश्मिभिः।। ६।।

हे जगतीपति! आपका कल्याण हो। ये आपके नरश्रेष्ठ पुत्र सत्य पराक्रम राम द्वार पर खड़े हैं। वे ब्राह्मणों और सेवकों को अपना सारा धन देकर, सब मित्रों से विदा लेकर आपके दर्शनों की इच्छा रखते हैं, उन्हें आज्ञा दीजिये। वे रश्मियों से युक्त सूर्य के समान सारे राजकीय गुणों से युक्त हैं। वे अब महान वन में जायेंगे। आप उन्हें देख लीजिये।

स सत्यवाक्यो धर्मात्मा, गाम्भीर्यात् सागरोपमः।
उवाच राजा तं सूतं, सुमन्त्रानय मे सुतम्।। ७।।
स सूतो राममादाय, लक्ष्मणं मैथिलीं तथा।
जगामाभिमुखस्तूर्णं, सकाशं जगतीपतेः।। ८।।
सोऽभिदुद्राव वेगेन, रामं दृष्ट्वा विशाम्पतिः।
तमसम्प्राप्य दुःखार्तः, पपात भुवि मूर्च्छितः।। ९।।

तब उन सत्यवादी, धर्मात्मा और सागर के समान गम्भीर राजा ने उस सूत से कहा कि हे सुमन्त्र! मेरे पुत्र को ले आओ। तब सुमन्त्र राम लक्ष्मण और मैथिली को लेकर जल्दी से राजा के सम्मुख गये। तब राम को देखकर वे प्रजा के स्वामी तेजी से उनकी तरफ दौड़े, पर उनके पास पहुँचने से पहले दुःख से व्याकुल होकर भूमि पर गिर कर मूर्च्छित हो गये।

तं रामोऽभ्यपतत् क्षिप्रं, लक्ष्मणश्च महारथः।
विसंज्ञमिव दुःखेन, सशोकं नृपतिं तथा।। १०।।
तं परिष्वज्य बाहुभ्यां, तावुभौ रामलक्ष्मणौ।
पर्यङ्के सीतया सार्धं, रुदन्तः समवेशयन्।। ११।।

तब राम और महारथी लक्ष्मण तेजी से दौड़ कर दुःख से चेतना रहित, शोकाकुल राजा के समीप पहुँचे। उन दोनों ने उन्हें हाथों से उठाया और तीनों ने रोते हुए महाराज को पलंग पर लिटा दिया।

अथ रामो मुहूर्तस्य, लब्धसंज्ञं महीपतिम्।
उवाच प्राञ्जलिर्बाष्पशोकार्णवपरिप्लुतम्।। १२।।
आपृच्छे त्वां महाराज, सर्वेषामीश्वरोऽसि नः।
प्रस्थितं दण्डकारण्यं, पश्य त्वं कुशलेन माम्।। १३।।

शोक सागर में डूबे हुए राजा को जब एक मुहूर्त में होश हुआ तब राम ने हाथ जोड़ कर उनसे कहा कि हे महाराज! आप हम सबके स्वामी हैं। मैं आपसे आज्ञा ले रहा हूँ। दण्डकारण्य को जाते हुए मेरी तरफ आप कुशलतापूर्वक देखिये।

लक्ष्मणं चानुजानीहि, सीता चान्वेतु मां वनम्।
करणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः।। १४।।
अनुजानीहि सर्वान् नः, शोकमुत्सृज्य मानद।
लक्ष्मणं मां च सीतां च, प्रजापतिरिवात्मजान्।। १५।।

आप लक्ष्मण और सीता को भी मेरे साथ जाने की आज्ञा दीजिये। मैंने बहुत से तथ्ययुक्त कारणों को बता कर इन्हें रोका, पर ये रुकना नहीं चाहते। हे मान प्रदान करने वाले! आप शोक का त्याग कर लक्ष्मण, सीता और मुझे, हम सबको उसी प्रकार आज्ञा दीजिये जैसे प्रजापति ने अपने पुत्रों को दी थी।

प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः।
उवाच राजा सम्प्रेक्ष्य, वनवासाय राघवम्।। १६।।
अहं राघव कैकेय्या, वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य, भव राजा निगृह्य माम्।। १७।।

वनवास के लिये आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए व्यग्रता रहित राम को देखकर राजा ने कहा कि हे राघव! मुझे कैकेयी ने वरदान से मोहित कर दिया है। तुम मुझे कैद कर आज ही अयोध्या के राजा बन जाओ।

एवमुक्तो नृपतिना, रामो धर्मभृतां वरः।
प्रत्युवाचाञ्जलिं कृत्वा, पितरं वाक्यकोविदः।। १८।।
भवान् वर्षसहस्राय, पृथिव्या नृपते पतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि, न मे राज्यस्य काङ्क्षिता।। १९।।
नव पञ्च च वर्षाणि, वनवासे विहृत्य ते।
पुनः पादौ ग्रहीष्यामि, प्रतिज्ञान्ते नराधिप।। २०।।

राजा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर बोलने में चतुर और धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम ने हाथ जोड़कर राजा से कहा कि हे महाराज! आप हजार वर्ष तक पृथ्वी के स्वामी बने रहें। मैं तो वन में रहूँगा। राज्य की मुझे इच्छा नहीं है। हे राजा! मैं चौदह वर्ष वन में घूमकर, प्रतिज्ञा समाप्त होने पर फिर आपके चरणों को स्पर्श करूँगा?

रुदन्नार्तः प्रियं पुत्रं, सत्यपाशेन संयुतः।
कैकेय्या चोद्यमानस्तु, मिथो राजा तमब्रवीत्।। २१।।
श्रेयसे वृद्धये तात, पुनरागमनाय च।
गच्छस्वारिष्टमव्यग्रः, पन्थानमकुतोभयम्।। २२।।

कैकेयी ने राजा को सत्य के बन्धन में बाँध दिया था और वह एकान्त में उन्हें बाध्य कर रही थी। इसलिये वे अतिभाव से रोते हुए अपने प्यारे पुत्र से बोले कि हे तात तुम कल्याण के लिये, वृद्धि के लिये, पुनः वापिस आने के लिये, कुशलतापूर्वक, व्यग्रतारहित हो कर जाओ, तुम्हारे मार्ग भय से रहित हों।

न हि सत्यात्मनस्तात, धर्माभिमनसस्तव।
संनिवर्तयितुं बुद्धिः, शक्यते रघुनन्दन।। २३।।
अद्य त्विदानीं रजनीं, पुत्र मा गच्छ सर्वथा।
एकाहं दर्शनेनापि, साधु तावच्चराम्यहम्।। २४।।

हे रघुनन्दन! तुम सत्यात्मा और धर्मात्मा हो। तुम्हारे विचारों को बदला नहीं जा सकता। पर आज रात को तुम बिल्कुल मत जाओ। मैं तुम्हारे दर्शन एक दिन अच्छी तरह से कर लूँ।

मातरं मां च सम्पश्यन्, वसेमामद्य शर्वरीम्।
तर्पितः सर्वकामैस्त्वं, श्वः काल्ये साधयिष्यसि।। २५।।
दुष्करं क्रियते पुत्र, सर्वथा राघव प्रिय।
त्वया हि मत्प्रियार्थं तु, वनमेवमुपाश्रितम्।। २६।।

तुम अपनी माता और मेरी तरफ देखते हुए आज की रात रह जाओ। सब कामनाओं से तृप्त होकर कल प्रातः चले जाना। हे पुत्र तुम बड़ा दुष्कर कार्य कर रहे हो। तुमने मेरे प्रिय के लिये ही वन में रहना स्वीकार किया है।

न चैतन्मे प्रियं पुत्र, शपे सत्येन राघव।
छन्नया चलितस्त्वस्मि, स्त्रिया भस्माग्निकल्पया।। २७।।
वंचना या तु लब्धा मे, तां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि।
अनया वृत्तसादिन्या, कैकेय्याभिप्रचोदितः।। २८।।

हे राघव! मैं सत्य की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यह मुझे प्रिय नहीं है। मुझे इस राख में छिपी आग के समान भयानक स्त्री ने विचलित कर दिया है। इस आचार को नष्ट करने वाली कैकेयी ने मुझे प्रेरित कर जो धोखा मुझे दिया है, तुम मुझे उससे निकालना चाहते हो।

न चैतदाश्चर्यतमं यत्, त्वं ज्येष्ठः सुतो मम।
अपानृतकथं पुत्र, पितरं कर्तुमिच्छसि।। २९।।
अथ रामस्तदा श्रुत्वा, पितुरार्तस्य भाषितम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा, दीनो वचनमब्रवीत्।। ३०।।

पुत्र! तुम मेरे गुण और अवस्था दोनों में ज्येष्ठ पुत्र हो, इसलिये तुम्हारे लिये यह आश्चर्य की बात नहीं है कि तुम मुझे सत्यवादी बनाना चाहते हो। तब राम अपने दुःखी पिता की बातें सुनकर अपने भाई लक्ष्मण के साथ दुःखी होकर बोले।

प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्, को मे श्वस्तान् प्रदास्यति।
अपक्रमणमेवातः, सर्वकामैरहं वृणे।। ३१।।
इयं सराष्ट्रा सजना, धनधान्यसमाकुला।
मया विसृष्टा वसुधा, भरताय प्रदीयताम्।। ३२।।

मैं आज जाकर जिन गुणों को प्राप्त करूँगा, उन गुणों को मुझे कल कौन देगा! इसलिये मैं सारी कामनाओं के बदले आज ही जाना ठीक समझता हूँ। यह देश तथा लोगों के सहित धनधान्य से भरी हुई पृथ्वी मैंने छोड़ दी है। इसे भरत को दीजिये।

वनवासकृता बुद्धिर्न च मेऽद्य चलिष्यति।
यस्तु युद्धे वरो दत्तः, कैकेय्यै वरद त्वया।। ३३।।
दीयतां निखिलेनैव, सत्यस्त्वं भव पार्थिव।

अहं निदेशं भवतो, यथोक्तमनुपालयन्।। ३४।।
चतुर्दश समा वत्स्ये, वने वनचरैः सह।
मा विमर्शो वसुमती, भरताय प्रदीयताम्।। ३५।।

वनवास के लिये किया गया मेरा संकल्प अब बदल नहीं सकता। हे पार्थिव! हे वरदायक! आपने युद्ध में कैकेयी को जो वर दिये थे उन्हें पूरी तरह से दीजिये और सत्यवादी बनिये। मैं आपकी आज्ञा का ठीक प्रकार से पालन करता हुआ चौदह वर्ष वनवासियों के साथ रहूँगा। आप सोच विचार मत कीजिये। इस पृथ्वी को भरत को दीजिये।

नहि मे काङ्क्षितं राज्यं, सुखमात्मनि वा प्रियम्।
यथानिदेशं कर्तुं वै, तवैव रघुनन्दन।। ३६।।
अपगच्छतु ते दुःखं, मा भूर्बाष्पपरिप्लुतः।
नहि क्षुभ्यति दुर्धर्षः, समुद्रः सरितां पतिः।। ३७।।

हे रघुनन्दन! मैंने राज्य की इच्छा अपने सुख या बान्धवों का प्रिय करने की इच्छा से नहीं की थी। मैंनें तो आपकी आज्ञा की पूर्ति के लिये ही उसे ग्रहण करना चाहा था। आप आँसू मत बहाइये। अपने दुःख को दूर कीजिये। नदियों का स्वामी दुस्तर समुद्र कभी अपनी मर्यादा का त्याग नहीं करता।

नैवाहं राज्यमिच्छामि, न सुखं न च मेदिनीम्।
नैव सर्वानिमान् कामान्, न स्वर्गं न च जीवितुम्।। ३८।।
त्वामहं सत्यमिच्छामि, नानृतं पुरुषर्षभ।
प्रत्यक्षं तव सत्येन, सकृतेन च ते शपे।। ३९।।

मैं न तो राज्य को चाहता हूँ, न सुख को, और न पृथ्वी को चाहता हूँ। मैं इन सारी इच्छाओं को, स्वर्ग को और अपने जीवन को भी नहीं चाहता। हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं आपको सत्यवादी बनाना चाहता हूँ, असत्यवादी नहीं। यह मैं आपके सामने अपने सत्य और शुभ कर्मों की शपथ खाकर कहता हूँ।

न च शक्यं मया तात, स्थातुं क्षणमपि प्रभो।
स शोकं धारयस्वेमं, नहि मेऽस्ति विपर्ययः।। ४०।।
अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या, वनं गच्छेति राघव।
मया चोक्तं व्रजामीति, तत्सत्यमनुपालये।। ४१।।

हे प्रभो! अब मैं यहां एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। आप अपने इस शोक को दबा कर रखिये। मेरे विचारों में अब परिवर्तन नहीं होगा। मुझसे कैकेयी ने भी प्रार्थना की है कि तुम वन में जाओ। मैंने भी कह दिया कि जा रहा हूँ। मैं उस सत्य का पालन कर रहा हूँ।

मा चोत्कण्ठां कृथा देव, वने रंस्यामहे वयम्।
प्रशान्तहरिणाकीर्णे, नानाशकुनिनादिते।। ४२।।
पिता हि दैवतं तात, देवतानामपि स्मृतम्।
तस्माद् दैवतमित्येव, करिष्यामि पितुर्वचः।। ४३।।

हे देव! आप हमारे विषय में उत्कंठित न हों। हम शान्त स्वभाव वाले हरिणों से भरे हुए वन में बड़े सुख से रहेंगे। हे तात! पिता को देवों का भी देव कहा गया है। अतः मैं आपको देवता समझकर ही आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

चतुर्दशसु वर्षेषु, गतेषु नृपसत्तम।
पुनर्द्रक्ष्यमि मां प्राप्तं, संतापोऽयं विमुच्यताम्।। ४४।।
येन संस्तम्भनीयोऽयं, सर्वो बाष्पकलो जनः।
स त्वं पुरुषशार्दूल, किमर्थं विक्रियां गतः।। ४५।।

हे नृपश्रेष्ठ! आप अपने दुःख को छोड़िये चौदह वर्ष व्यतीत होने पर आप मुझे फिर वापिस आया हुआ देखोगे। इन सारे आँसू बहाते हुए लोगों को तो आपको ढाढस बँधाना चाहिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! फिर आप स्वयं इतने शोक को क्यों प्राप्त हो रहे हैं?

पुरं च राष्ट्रं च मही च केवला,
मया विसृष्टा भरताय दीयताम्।
अहं निदेशं भवतोऽनुपालयन्,
वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम्।। ४६।।

मैंने आपकी आज्ञा का पालन करते हुए इस देश, नगर और भूमि को छोड़ दिया है। इसे भरत को दीजिये। मैं लम्बे समय के लिये वन में निवास करने के लिये जा रहा हूँ।

मया विसृष्टां भरतो महीमिमां,
सशैलखण्डां सपुरोपकाननाम्।
शिवासु सीमास्वनुशास्तु केवलं,
त्वया यदुक्तं नृपते कथास्तु तत्।। ४७।।

हे राजा! मेरे द्वारा छोड़ी हुई इस पर्वतों, नगरों और बगीचों सहित भूमि का भरत कल्याण युक्त मर्यादाओं में रह कर पालन करें। आपने जैसा कहा है वैसा ही होगा।

न मे तथा पार्थिव धीयते मनो,
महत्सु कामेषु न चात्मनः प्रिये।
यथा निदेशे तव शिष्टसम्मते,
व्यपैतु दुःखं तव मत्कृतेऽनघ।। ४८।।

हे निष्पाप राजा! मेरा मन अपनी महान कामनाओं की पूर्ति और अपना प्रिय करने में उतना नहीं लगता

जितना सत्पुरुषों से अनुमोदित आपके आदेश की पूर्ति में लगता है। आपका मेरे लिये जो दुःख है, वह दूर हो जाना चाहिये।

तदद्य नैवानघ राज्यमव्ययं
न सर्वकामान् वसुधां न मैथिलीम्।
न चिन्तितं त्वामनृतेन योजयन्
वृणीय सत्यं व्रतमस्तु ते तथा।। ४९।।

हे निष्पाप! आपको असत्यवादी बना कर मैं आज अविनाशी राज्य को, सारी कामनाओं को, पृथ्वी को और सीता को भी स्वीकार नहीं कर सकता। आपका व्रत सत्य हो।

फलानि मूलानि च भक्षयन् वने,
गिरींश्च पश्यन् सरितः सरांसि च।
वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं,
सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः।। ५०।।

मैं फल मूल खाता हुआ, पहाड़ों को, नदियों को, तालाबों को देखता हुआ विचित्र वृक्षों से युक्त वन में प्रवेश करके सुख से रहूँगा। इसलिये आपका शोक दूर हो जाना चाहिये।

एवं स राजा व्यसनाभिपन्न-
स्तापेन दुःखेन च पीड्यमानः।
आलिङ्ग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो,
भूमिं गतो नैव चिचेष्ट किंचित्।। ५१।।

राम के ऐसा कहने पर दुःख में पड़े हुए, संताप और कष्ट से पीड़ित राजा पुत्र को छाती से लगा कर मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े। उन्होंने तब कुछ भी चेष्टा नहीं की।

देव्यः समस्ता रुरुदुः समेता-
स्तां वर्जयित्वा नरदेवपत्नीम्।
रुदन् सुमन्त्रोऽपि जगाम मूर्च्छां,
हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम्।। ५२।।

तब कैकेयी को छोड़कर सारी वहाँ की स्त्रियाँ रोने लगीं। रोते हुए सुमन्त्र भी मूर्च्छित हो गये। वहाँ सब तरफ हा हा कार होने लगा।

चौंतीसवाँ सर्ग

सुमन्त्र के समझाने और फटकारने पर भी कैकेयी का टस से मस न होना।

ततो निधूय सहसा, शिरो निःश्वस्य चासकृत्।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य, दन्तान् कटकटाय्य च।। १।।
लोचने कोपसंरक्ते, वर्णं पूर्वोचितं जहत्।
कोपाभिभूतः सहसा, संतापमशुभं गतः।। २।।
मनः समीक्षमाणश्च, सूतो दशरथस्य च।
कम्पयन्निव कैकेय्या, हृदयं वाक्शरैः शितैः।। ३।।

इसके पश्चात् सुमन्त्र को होश आया। तब वे सहसा उठ कर खड़े हो गये। उनके मन में उस समय अमंगल करने वाला महान सन्ताप था। वे बार-बार लम्बी साँसें लेने और सिर को पीटने लगे। वे उस समय दोनों हाथों को मलते हुए दाँतों को कटकटा रहे थे। उनके मुख की स्वाभाविक कान्ति बदल गयी थी और क्रोध से आँखें लाल हो रही थीं। वे दशरथ जी की मन की अवस्था को विचारते हुए तीखे वाक्यरूपी बाणों से कैकेयी के हृदय को कँपाने सा लगे।

यस्यास्तव पतिस्त्यक्तो, दशरथः स्वयम्।
भर्ता सर्वस्य जगतः, स्थावरस्य चरस्य च।। ४।।
नह्यकार्यतमं किंचित्तव देवीह विद्यते।
पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये, कुलघ्नीमपि चान्ततः।। ५।।

वे कहने लगे कि हे देवी! जब तुमने अपने पति राजा दशरथ को, जो कि सारी प्रजा के स्थावरों और जंगम पदार्थों के स्वामी हैं, भी अपने आप छोड़ दिया तो इस संसार में कोई भी ऐसा बुरा कार्य नहीं है, जिसे तुम न कर सको। मैं तुम्हें पति की हत्या करने वाली और अन्त में सारे कुल की हत्या करने वाली भी समझता हूँ।

यन्महेन्द्रमिवाजय्यं, दुष्प्रकम्प्यमिवाचलम्।
महोदधिमिवाक्षोभ्यं, संतापयसि कर्मभिः।। ६।।
मावमंस्था दशरथं, भर्तारं वरदं पतिम्।
भर्तुरिच्छा हि नारीणां, पुत्रकोट्या विशिष्यते।। ७।।

जो इन्द्र के समान अजेय और पर्वत के समान अकम्पनीय हैं और समुद्र के समान अक्षोभ्य हैं, उनको भी तुम अपने कार्यों से संताप दे रही हो। तुम अपने वरदाता पति दशरथ का अपमान मत करो। स्त्रियों के लिये पति की इच्छा करोड़ों पुत्रों से भी बढ़ कर होती है।

यथावयो हि राज्यानि, प्राप्नुवन्ति नृपक्षये।
इक्ष्वाकुकुलनाथेऽस्मिंस्तं, लोपयितुमिच्छसि।। ८।।
राजा भवतु ते पुत्रो, भरतः शास्तु मेदिनीम्।
वयं तत्र गमिष्यामो, यत्र रामो गमिष्यति।। ९।।

राजा की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र आयु के अनुसार ही राज्य प्राप्त करते हैं। तुम इक्ष्वाकुकुल के स्वामी के जीते जी इस परम्परा को लुप्त करना चाहती हो। तुम्हारे पुत्र भरत राजा हो जायें, वे पृथिवी पर शासन करें पर हम तो वही जायेंगें, जहाँ राम जायेंगे।

न च ते विषये कश्चिद् ब्राह्मणो वस्तुमर्हति।
तादृशं त्वममर्यादमद्य कर्म चिकीर्ष्यसि।। १०।।
नूनं सर्वे गमिष्यामो, मार्गं रामनिषेवितम्।
त्यक्ता या बान्धवैः सर्वैर्ब्राह्मणैः साधुभिः सदा।। ११।।
का प्रीती राज्यलाभेन, तव देवि भविष्यति।
तादृशं त्वममर्यादं, कर्म कर्तुं चिकीर्षसि।। १२।।

तुम आज ऐसा मर्यादा रहित कार्य करोगी कि तुम्हारे राज्य में कोई ब्राह्मण नहीं रहेगा। हम सब राम के मार्ग पर ही चले जाएँगे। तुम ऐसा मर्यादा से रहित काम करना चाहती हो, जिसके कारण तुम सारे बान्धवों, ब्राह्मणों और साधु पुरुषों के द्वारा सदा के लिये त्याग दी जाओगी। हे देवी! फिर तुम्हें उस राज्य को प्राप्त कर क्या सुख मिलेगा?

मा त्वं प्रोत्साहिता पापैर्देवराजसमप्रभम्।
भर्तारं लोकभर्तारमसद्धर्ममुपादध।। १३।।
नहि मिथ्या प्रतिज्ञातं, करिष्यति तवानघः।
श्रीमान् दशरथो राजा, देवि राजीवलोचनः।। १४।।
ज्येष्ठो वदान्यः कर्मण्यः, स्वधर्मस्यापि रक्षिता।
रक्षिता जीवलोकस्य, बली रामोऽभिषिच्यताम्।। १५।।

पापी मनुष्यों के द्वारा प्रोत्साहित होकर तुम इन्द्र के समान कान्ति वाले, संसार के स्वामी अपने पति को गलत कार्य में मत लगाओ। पाप से रहित, कमलनयन, श्रीमान राजा दशरथ तुमसे की हुई प्रतिज्ञा को असत्य नहीं करेंगे। सबसे बड़े, उदार, कर्मठ, अपने धर्म की रक्षा करने वाले और दूसरे प्राणियो के भी रक्षक, बलवान, श्रीराम का अभिषेक हो जाने दो।

परिवादो हि ते देवि, महाँल्लोके चरिष्यति।
यदि रामो वनं याति, विहाय पितरं नृपम्।। १६।।
स्वराज्यं राघवः पातु, भव त्वं विगतज्वरा।
नहि ते राघवादन्यः, क्षमः पुरवरे वसन्।। १७।।
रामे हि यौवराज्यस्थे, राजा दशरथो वनम्।
प्रवेक्ष्यति महेष्वासः, पूर्ववृत्तमनुस्मरन्।। १८।।

हे देवी! यदि राम अपने पिता राजा को छोड़ कर वन में चले जायेंगे, तो संसार में तुम्हारा बड़ा अपयश फैलेगा, इसलिये राम अपने राज्य का पालन करे, तुम अशान्ति से रहित हो जाओ। राम के सिवाय कोई दूसरा इस उत्तम नगर में तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव नहीं कर सकता। राम के युवराज बन जाने पर महाधनुर्धर दशरथ पूर्वजों के आचरण को देखते हुए वन में प्रवेश करेंगे।

इति सान्त्वैश्च तीक्ष्णैश्च, कैकेयीं राजसंसदि।
भूयः संक्षोभयामास, सुमन्त्रस्तु कृताञ्जलिः।। १९।।
नैव सा क्षुभ्यते देवी, न च स्म परिदूयते।
न चास्या मुखवर्णस्य, लक्ष्यते विक्रिया तदा।। २०।।

इस प्रकार सुमन्त्र ने उस राजभवन में सान्त्वना वचनों से और तीखे वचनों से भी हाथ जोड़कर कैकेयी को विचलित करने का बार-बार प्रयत्न किया। किन्तु वह देवी कैकेयी न तो विचलित हुई और नाही उसके मुख पर कोई विकार दिखाई दिया।

पैंतीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का श्रीराम के साथ खजाना और सेना भेजने का आदेश। कैकेयी द्वारा इसका विरोध। सिद्धार्थ का कैकेयी को समझाना तथा राजा का श्रीराम के साथ जाने की इच्छा प्रकट करना।

ततः सुमन्त्रमैक्ष्वाकः, पीडितोऽत्र प्रतिज्ञया।
सबाष्पमतिनिःश्वस्य, जगादेदं पुनर्वचः।। १।।
सूत रत्नसुसम्पूर्णा, चतुर्विधबला चमूः।
राघवस्यानुयात्रार्थं, क्षिप्रं प्रतिविधीयताम्।। २।।

तब राजा दशरथ, जो कि अपनी प्रतिज्ञा से पीड़ित हो रहे थे, आँसू बहाते हुए लम्बे साँस लेकर सुमन्त्र से बोले कि हे सूत! रत्नों से भरी पूरी चतुरंगिणी सेना श्रीराम के साथ जाने के लिये तैयार कराओ।

धान्यकोशश्च यः कश्चिद्, धनकोशश्च मामकः।
तौ राममनुगच्छेतां, वसन्तं निर्जने वने।। ३।।
यजन् पुण्येषु देशेषु, विसृजंश्चाप्तदक्षिणाः।
ऋषिभिश्चापि संगम्य, प्रवत्स्यति सुखं वने।। ४।।

निर्जन वन में रहने वाले राम के साथ मेरा जो कुछ भी खजाना और अन्न भंडार है, वह भी जाये। ये वहाँ पवित्र स्थानों में यज्ञ करते हुए, दक्षिण देते हुए, ऋषियों के साथ मिल कर सुख से रहेंगे।

भरतश्च महाबाहुरयोध्यां पालयिष्यति।
सर्वकामैः पुनः श्रीमान्, रामः संसाध्यतामिति।। ५।।
एवं ब्रुवति काकुत्स्थे, कैकेय्या भयमागतम्।
मुखं चाप्यगमच्छोषं, स्वरश्चापि व्यरुध्यत।। ६।।

महाबाहु भरत अयोध्या का पालन करेंगे। राम को सारे कामना पूर्ति के साधनों से युक्त करके भेजा जाये। ककुत्स्थवंशी राजा के ऐसा कहने पर कैकेयी भयभीत हो गयी। उसका मुख सूख गया और आवाज भी रुँध गयी।

सा विषण्णा च संत्रस्ता, मुखेन परिशुष्यता।
राजानमेवाभिमुखी, कैकेयी वाक्यमब्रवीत्।। ७।।
राज्यं गतधनं साधो, पीतमण्डां सुरामिव।
निरास्वाद्यतमं शून्यं, भरतो नाभिपत्स्यते।। ८।।
कैकेय्यां मुक्तलज्जायां, वदन्त्यामतिदारुणम्।
राजा दशरथो वाक्यमुवाचायतलोचनाम्।। ९।।

वह उदास और डरी हुई कैकेयी सूखे हुए मुख से राजा की तरफ मुख करके बोली कि हे महाराज! जिसका सारभाग पहले ही पी लिया है, ऐसी स्वादरहित शराब की तरह के राज्य को, जहाँ धन नहीं होगा, और सूनापन होगा, भरत नहीं लेगा। निर्लज्ज होकर इस प्रकार भयानक बातें कहती हुई विशाल आँखों वाली कैकेयी से तब राजा दशरथ बोले।

वहन्तं किं तुदसि मां, नियुज्य धुरि माहिते।
अनार्ये कृत्यमरब्धं किं, न पूर्वमुपारुधः।। १०।।
तस्यैतत् क्रोधसंयुक्तमुक्तं श्रुत्वा वराङ्गना।
कैकेयी द्विगुणं क्रुद्धा, राजानमिदमब्रवीत्।। ११।।

हे अहित करने वाली अनार्ये! तूने मुझे वनवास देने जैसे बोझे को ढोने के लिये जोत दिया है। जब मैं उसे ढो रहा हूँ, तब तू मुझे क्यों तंग कर रही है? तूने जो यह नया कार्य राम के साथ सुख के साधन न भेजने देने का आरम्भ किया है, उसके लिये पहले क्यों नहीं कहा था? उनके ये क्रोध से भरे वचन सुन कर वह सुन्दरी कैकेयी उससे भी दुगनी क्रुद्ध होकर बोली।

तवैव वंशे सगरो, ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत्।
असमञ्ज इति ख्यातं, तथायं गन्तुमर्हति।। १२।।
एवमुक्तो धिगित्येव, राजा दशरथोऽब्रवीत्।
व्रीडितश्च जनः सर्वः, सा च तन्नावबुध्यत।। १३।।
तत्र वृद्धो महामात्रः, सिद्धार्थो नाम नामतः।
शुचिर्बहुमतो राज्ञः, कैकेयीमिदमब्रवीत्।। १४।।

तुम्हारे ही वंश में सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को जो असमंज नाम से प्रसिद्ध था, वन में भेज दिया था, वैसे ही राम को जाना चाहिये। उसके ऐसा कहने पर राजा दशरथ ने कहा तुम्हें धिक्कार है। वहाँ विद्यमान सारे दूसरे लोग लज्जा से युक्त हो गये, पर उस कैकेयी की समझ में कुछ भी न आया। वहाँ राजा के प्रधानमंत्री, जो बूढ़े थे, और जिनका नाम सिद्धार्थ था, जो पवित्र आचरण वाले और राजा के बड़े मान्य थे, वे कैकेयी से इस प्रकार बोले।

असमञ्जो गृहीत्वा तु, क्रीडतः पथि दारकान्।
सरय्वां प्रक्षिपन्नप्सु, रमते तेन दुर्मतिः।। १५।।
इत्येनमत्यजद् राजा, सगरो वै सुधार्मिकः।
रामः किमकरोत् पापं, येनैवमुपरुध्यते।। १६।।
नहि कंचन पश्यामो, राघवस्यागुणं वयम्।
दुर्लभो ह्यस्य निरयः, शशाङ्कस्येव कल्मषम्।। १७।।

असमंज तो बड़ा दुष्ट बुद्धि था। वह तो राह में खेलते हुए बच्चों को पकड़ कर उन्हें सरयू नदी में फेंक देता था और उससे उसे आनन्द मिलता था। इसलिये महा धार्मिक सगर ने उसे त्याग दिया था, पर श्रीराम ने क्या पाप कर्म किया है? जो इन्हें इस प्रकार वन में भेजा जा रहा है। हम तो राम में कोई अवगुण नहीं देखते। इनमें अवगुण की प्राप्ति तो चन्द्रमा में मलिनता के समान दुर्लभ है।

अथवा देवि त्वं कंचिद्, दोषं पश्यसि राघवे।
तमद्य ब्रूहि तत्त्वेन, तदा रामो विवास्यते।। १८।।
तदलं देवि रामस्य, श्रिया विहतया त्वया।
लोकतोऽपि हि ते रक्ष्यः, परिवाद शुभानने।। १९।।

श्रुत्वा तु सिद्धार्थवचो, राजा श्रान्ततरस्वरः।
शोकोपहतया वाचा, कैकेयीमिदमब्रवीत्।। २०।।

हे शुभानने। हे देवी! यदि तुम राम में कोई दोष देखती हो तो सत्य बताओ, जिससे राम को वन में भेजा सके। इस लिये तुम राम की राज्यलक्ष्मी को विनष्ट करना बन्द करो। तुम्हें संसार में फैलने वाले अपयश का भी ध्यान रखना चाहिये। सिद्धार्थ की बात सुनकर राजा थके हुए स्वर में शोक से युक्त वाणी से कैकेयी से यह बोले।

एतद्वचो नेच्छसि पापरूपे,
हितं न जानासि ममात्मनोऽथवा।
आस्थाय मार्गं कृपणं कुचेष्टा,
चेष्टा हि ते साधुपथादपेता।। २१।।

हे पापिनी! क्या तुझे ये बातें अच्छी नहीं लगीं? तू न तो अपनी भलाई समझती है और न मेरी। दुष्टता के रास्ते को अपना कर तू ऐसी कुचेष्टा कर रही है, जो सन्मार्ग से बिल्कुल परे है।

अनुव्रजिष्याम्यहमद्य रामं,
राज्यं परित्यज्य सुखं धनं च।
सर्वे च राज्ञा भरतेन च त्वं,
यथासुखं भुङ्क्ष्व चिराय राज्यम्।। २२।।

मैं भी आज राज्य को, सुख को, और धन को त्याग कर राम के पीछे चला जाऊँगा। ये सब लोग भी चले जाएँगे। तू अकेली राजा भरत के साथ सुखपूर्वक लम्बे समय तक राज्य का सुख भोग।

छत्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम आदि का वल्कल वस्त्र धारण। सीता के वल्कल धारण से गुरु वसिष्ठ का कैकेयी को फटकारते हुए सीता के वल्कलधारण का अनौचित्य बताना।

महामात्रवचः श्रुत्वा, रामो दशरथं तदा।
अभ्यभाषत वाक्यं तु, विनयज्ञो विनीतवत्।। १।।
त्यक्तभोगस्य मे राजन्, वने वन्येन जीवतः।
किं कार्यमनुयात्रेण, त्यक्तसङ्गस्य सर्वतः।। २।।

प्रधानमंत्री की बातें सुनकर, विनय को जानने वाले श्रीराम दशरथ जी से विनीत होकर बोले कि राजन्! मैं तो अब सारे भोग छोड़ चुका हूँ, वन में वन्य पदार्थों से ही मुझे जीवन निर्वाह करना है मैंने सारे साथियों का साथ छोड़ दिया है तो मुझे अब सेना की क्या आवश्यकता है?

यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं, कक्ष्यायां कुरुते मनः।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य, त्यजतः कुञ्जरोत्तमम्।। ३।।
तथा मम सतां श्रेष्ठ, किं ध्वजिन्या जगत्पते।
सर्वाण्येवानुजानामि, चीराण्येवानयन्तु मे।। ४।।

जो व्यक्ति श्रेष्ठ हाथी को तो दान में दे दे पर उसकी रस्सी में मन लगाए रखे तो वह कार्य उचित नहीं माना जाता क्योंकि श्रेष्ठ हाथी के सम्मुख उसकी रस्सी का क्या महत्व है जो उसे छोड़ देने के पश्चात् उससे प्रेम किया जाये! इसलिये हे सज्जनों में श्रेष्ठ! हे संसार के स्वामी! मुझे सेना लेकर क्या लाभ? मैं सारे पदार्थ भरत को देने की आज्ञा देता हूँ। मेरे लिये तो चीर वस्त्र ही लाओ।

खनित्रपिटके चोभे, समानयत गच्छत।
चतुर्दश वने वासं, वर्षाणि वसतो मम।। ५।।
अथ चीराणि कैकेयी, स्वयमाहृत्य राघवम्।
उवाच परिधत्स्वेति, जनौघे निरपत्रपा।। ६।।

मेरे लिये तो खन्त्री और पिटारी जा कर ले आओ! चौदह वर्ष तक वन में रहते हुए मेरे लिये ये ही उपयोगी होंगी। तब निर्लज्ज कैकेयी स्वयं जाकर चीर वस्त्र ले आयी और लोगों की भीड़ में ही श्रीराम से बोली कि इन्हें ले लो और पहन लो।

स चीरे पुरुषव्याघ्रः, कैकेय्याः प्रतिगृह्य ते।
सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य, मुनिवस्त्राण्यवस्त ह।। ७।।
लक्ष्मणश्चापि तत्रैव, विहाय वसने शुभे।
तापसाच्छादने चैव, जग्राह पितुरग्रतः।। ८।।

तब उन नरश्रेष्ठ ने कैकेयी से दो चीर वस्त्र ले लिये और अपने बारीक वस्त्रों को उतार कर उन मुनियों के वस्त्रों को पहन लिया। लक्ष्मण ने भी वहीं अपने सुन्दर कपड़ों को छोड़ कर पिता के सामने ही तपस्वियों के वस्त्रों को पहन लिया।

अथात्मपरिधानार्थं, सीता कौशेयवासिनी।
सम्प्रेक्ष्य चीरं संत्रस्ता, पृषती वागुरामिव।। ९।।

सा व्यपत्रपमाणेव, प्रगृह्य च सुदुर्मनाः।
कैकेय्याः कुशचीरे ते, जानकी शुभलक्षणा।। १०।।
अश्रुसम्पूर्णनेत्रा च, धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी।
गन्धर्वराजप्रतिमं, भर्तारमिदमब्रवीत्।। ११।।
कथं नु चीरं बध्नन्ति, मुनयो वनवासिनः।
इति ह्यकुशला सीता, सा मुमोह मुहुर्मुहुः।। १२।।

उसके बाद रेशमी वस्त्र पहने हुए सीता अपने पहनने के लिये उस चीर वस्त्र को देख कर ऐसे ही डर गयीं जैसे हिरणी बिछे हुए जाल को देख कर हो जाती है। वे शुभ लक्षण वाली जानकी, लज्जित सी होकर, कैकेयी से वे कुशचीर के वस्त्र लेकर, दुःख से भरी हुई, आँखों में आँसू भर कर, धर्म को जानने वाली धार्मिक सीता, अपने गन्धर्वराज के समान सुन्दर पति से कहने लगी कि वन में रहने वाले मुनि इन चीर वस्त्रों को कैसे बाँधते हैं? इस प्रकार उन्हें बाँधना न जानने वाली सीता उन्हें पहनते हुए बार बार मोह में पड़ जाती थी।

कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना।
तस्थौ ह्यकुशला तत्र, व्रीडिता जनकात्मजा।। १३।।
तस्यास्तत् क्षिप्रमागत्य, रामो धर्मभृतां वरः।
चीरं बबन्ध सीतायाः, कौशेयस्योपरि स्वयम्।। १४।।

तब एक वस्त्र को गले में डालकर और एक को हाथ में लेकर अनजान और लज्जित सीता वहाँ खड़ी रह गयी। तब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राम ने जल्दी उसके समीप आकर उसके रेशमी वस्त्रों के ऊपर स्वयं वह वल्कल वस्त्र बाँध दिया।

चीरे गृहीते तु तया, सबाष्पो नृपतेर्गुरुः।
निवार्य सीतां कैकेयीं, वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्।। १५।।
अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे, कैकेयि कुलपांसनि।
वञ्चयित्वा तु राजानं, न प्रमाणेऽवतिष्ठसि।। १६।।

सीता को चीर धारण करते हुए देख, राजा के गुरु वसिष्ठ आँखों में आँसू भर कर, सीता को चीर पहनने से मना करते हुए कैकेयी से यह बात बोले कि हे कुल को कलंकित करने वाली, दुष्टबुद्धि, अधर्म में अति प्रवृत्त कैकेयी! तू राजा को ठग कर अब अपनी सीमा में नहीं रहना चाहती।

न गन्तव्यं वनं देव्या, सीतया शीलवर्जिते।
अनुष्ठास्यति रामस्य, सीता प्रकृतमासनम्।। १७।।
आत्मा हि दाराः सर्वेषां, दारसंग्रहवर्तिनाम्।
आत्मेयमिति रामस्य, पालयिष्यति मेदिनीम्।। १८।।

हे शील का परित्याग करने वाली! देवी सीता वन में नहीं जायेंगी। यह यहीं रहकर राम की जगह राज्य करेंगी। गृहस्थों के लिये पत्नी उनकी आत्मा मानी जाती है। क्योंकि सीता राम की आत्मा है, अतः वह उसकी जगह पृथ्वी का पालन करेगी।

अथ यास्यति वैदेही, वनं रामेण संगता।
वयमत्रानुयास्यामः, पुरं चेदं गमिष्यति।। १९।।
अन्तपालाश्च यास्यन्ति, सदारो यत्र राघवः।
सहोपजीव्यं राष्ट्रं च, पुरं च सपरिच्छदम्।। २०।।

यदि सीता राम के साथ वन में जायेगी, तो हम भी उसके साथ जायेंगे और यह सारा नगर भी जायेगा। अन्तःपुर के रक्षक भी वहीं चलेंगे जहाँ श्रीराम अपनी पत्नी के साथ होंगे। वहीं इस नगर और देश के लोग भी अपने सामान और धन दौलत के साथ जायेंगे।

भरतश्च सशत्रुघ्नश्चीरवसा वनेचरः।
वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम्।। २१।।
ततः शून्यां गतजनां, वसुधां पादपैः सह।
त्वमेका शाधि दुर्वृत्ता, प्रजानामहिते स्थिता।। २२।।

भरत भी शत्रुघ्न के साथ चीर वस्त्र धारण करके वन में रहते हुए बड़े भाई श्रीराम के साथ-साथ रहेंगे। हे बुरे आचरणवाली और प्रजा के अहित में विद्यमान। फिर तुम अकेली यहाँ वृक्षों के साथ रह कर पृथ्वी पर राज्य करना।

न हि तद् भविता राष्ट्रं, यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं, यत्र रामो निवत्स्यति।। २३।।
न ह्यदत्तां महीं पित्रा, भरतः शास्तुमिच्छति।
त्वयि वा पुत्रवद् वस्तुं, यदि जातो महीपतेः।। २४।।

जहाँ राम नहीं होंगे, वह राष्ट्र राष्ट्र नहीं रहेगा और जहाँ राम रहेंगे वहाँ वन में राष्ट्र बन जायेगा। यदि भरत राजा दशरथ से उत्पन्न हुए हैं तो पिता के द्वारा नहीं दिये गये राज्य को वे नहीं लेना चाहेंगे और ना ही तेरे साथ पुत्र के समान रहना भी पसन्द करेंगे।

यद्यपि त्वं क्षितितलाद्, गगनं चोत्पतिष्यसि।
पितृवंशचरित्रज्ञः, सोऽन्यथा न करिष्यति।। २५।।
तत् त्वया पुत्रगर्धिन्या, पुत्रस्य कृतमप्रियम्।
लोके नहि स विद्येत, यो न राममनुव्रतः।। २६।।

चाहे तू पृथिवी तल से आकाश में उड़ जाये, फिर भी पिता के वंश व्यवहार को जानने वाला भरत विपरीत

कार्य नहीं करेगा। इसलिये तू ने पुत्र के लिये लालच करते हुए उसका बुरा ही किया है। संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो राम को नहीं जानता हो।

अथोत्तमान्याभरणानि देवि,
देहि स्नुषायै व्यपनीय चीरम्।
न चीरमस्याः प्रविधीयतेति,
न्यवारयत् तद् वसनं वसिष्ठः।। २७।।

हे देवी! इस पुत्रवधु के शरीर के वल्कल वस्त्र हटा कर उत्तम आभरण इसे दे। इसका वल्कल वस्त्र पहनना उचित नहीं है। ऐसा कहकर वसिष्ठ जी ने उसे चीर वस्त्र पहनाने से मना कर दिया।

एकस्य रामस्य वने निवास-,
स्त्वया वृतः केकयराजपुत्रि।
विभूषितेयं प्रतिकर्मनित्या,
वसत्वरण्ये सह राघवेण।। २८।।

वसिष्ठ जी फिर कहने लगे कि हे कैकेयराज की पुत्री! तूने एक राम का वनवास ही माँगा था, इसलिये यह सीता सदा वस्त्र आभूषणों से अलंकृत होकर राम के साथ वन में रहेगी।

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये,
गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा,
प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा।। २९।।

ब्राह्मण शिरोमणि अद्वितीय प्रभावशाली राजा के गुरु वसिष्ठ के ऐसा कहने पर भी सीता अपने प्रिय पति के अनुरूप रहने की इच्छा से वल्कल वस्त्र को पहनने से अलग नहीं हुई।

सैतीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का सीता को वल्कल धारण करना अनुचित बताकर कैकेयी को फटकारना और श्रीराम का उनसे कौशल्या पर कृपा दृष्टि रखने के लिये अनुरोध करना।

तस्यां चीरं वसानायां, नाथवत्यामनाथवत्।
प्रचुक्रोश जनः सर्वो, धिक् त्वां दशरथं त्विति।। १।।
तेन तत्र प्रणादेन, दुःखितः स महीपतिः।
चिच्छेद जीविते श्रद्धां, धर्मे यशसि चात्मनः।। २।।
स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत्।
कैकेयि कुशचीरेण, न सीता गन्तुमर्हति।। ३।।
सुकुमारी च बाला च, सततं च सुखोचिता।
नेयं वनस्य योग्येति, सत्यमाह गुरुर्मम।। ४।।

जब सनाथ होकर भी सीता अनाथ के समान चीर वस्त्र पहनने लगी तब वहाँ विद्यमान सारे लोग चिल्लाने लगे कि हे राजा दशरथ तुम्हें धिक्कार है। उनके इस चिल्लाने से दुःखी राजा ने अपने जीवन, धर्म तथा यश की उत्कट इच्छा को छोड़ दिया। वे इक्ष्वाकुवंशी तब लम्बी गर्म साँस लेकर पत्नी से बोले कि हे कैकेयी! सीता वल्कल वस्त्र पहन कर नहीं जायेगी। यह सुकुमारी है, अभी बच्ची है, सदा सुख में रही है, यह वन के योग्य नहीं है। यह मेरे गुरु ने ठीक कहा है।

इयं हि कस्यापि करोति किंचित्,
तपस्विनी राजवरस्य पुत्री।
या चीरमासाद्य जनस्य मध्ये,
स्थिता विसंज्ञा श्रमणीव काचित्।। ५।।

यह राजश्रेष्ठ जनक की पुत्री तपस्विनी सीता क्या किसी का कुछ बिगाड़ती है, जो चीर वस्त्र पहन कर लोगों के बीच में चेतना रहित सी होकर खड़ी हुई है?

चीराण्यपास्वाज्जनकस्य कन्या,
नेयं प्रतिज्ञा मम दत्तपूर्वा।
यथासुखं गच्छतु राजपुत्री,
वनं समग्रा सह सर्वरत्नैः।। ६।।

यह जनकपुत्री अपने चीर वस्त्र उतार डाले। यह चीर वस्त्र धारण करे यह वचन मैंने कभी नहीं दिया। यह राजपुत्री जैसे यह सुख प्राप्त कर सके वैसे ही सब वस्त्राभूषणों से युक्त होकर वन में जायेगी।

अजीवनार्हेण मया नृशंसा,
कृता प्रतिज्ञा नियमेन तावत्।
त्वया हि बाल्यात् प्रतिपन्नमेतत्,
तन्मा दहेद् वेणुमिवात्मपुष्पम्।। ७।।

मैंने जो नियम के साथ ऐसी कठोर प्रतिज्ञा कर ली, इसलिये मैं जीवित रहने योग्य नहीं हूँ। तू ने अपनी मूर्खता

से यह काम कर दिया। अब यह तेरा कार्य मुझे बाँस के फूल के समान जला देगा।

रामेण यदि ते पापे, किंचित्कृतमशोभनम्।
उपकारः क इह ते, वैदेह्या दर्शितोऽधमे।। ८।।
मृगीवोत्फुल्लनयना, मृदुशीला मनस्विनी।
अपकारं कमिव ते, करोति जनकात्मजा।। ९।।

हे अधम! राम ने तेरा यदि कुछ बुरा किया हो, तो तूने वनवास दे दिया, पर हे पापिनी! तूने वैदेही के द्वारा किया हुआ कौन सा अपकार देखा है? यह हरिणी के समान खिले नेत्रों वाली, कोमल स्वभाव वाली, मनस्विनी, जनक पुत्री तेरा कौन सा अपकार कर रही है?

ननु पर्याप्तमेवं ते पापे, रामविवासनम्।
किमेभिः कृपणैर्भूयः, पातकैरपि ते कृतैः।। १०।।
प्रतिज्ञातं मया तावम्, त्वयोक्तं देवि शृण्वता।
रामं यदभिषेकाय, त्वमिहागतमब्रवीः।। ११।।
तत्त्वेतत् समतिक्रम्य, निरयं गन्तुमिच्छसि।
मैथिलीमपि या हि त्वमीक्षसे चीरवासिनीम्।। १२।।

हे पापिनी! तू ने राम को वनवास दिया, यही बहुत बड़ा पाप है, फिर तू सीता को वल्कल वस्त्र पहना कर वन में भेजने जैसे दूसरे पाप क्यों कर रही है? राम जब अभिषेक के लिये यहाँ आये थे, तब तूने उनसे जो कुछ कहा था उसे सुनकर मैंने केवल उन्हीं बातों के लिये प्रतिज्ञा की थी, पर तू उनका भी उल्लंघन कर जो तू मैथिली को चीरवस्त्र पहनाना चाहती है तो तू वास्तव में नरक में जाना चाहती है।

एवं ब्रुवन्तं पितरं, रामः सम्प्रस्थितो वनम्।
अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत्।। १३।।
इयं धार्मिक कौसल्या, मम माता यशस्विनी।
वृद्धा चाक्षुद्रशीला च, न च त्वां देव गर्हते।। १४।।
मया विहीनां वरद, प्रपन्नां शोकसागरम्।
अदृष्टपूर्वव्यसनां, भूयः सम्मन्तुमर्हसि।। १५।।
पुत्रशोकं यथा नर्च्छेत्, त्वया पूज्येन पूजिता।
मां हि संचिन्तयन्ती, सा त्वयि जीवेत् तपस्विनी।। १६।।

सिर नीचा कर इस प्रकार कहते हुए पिता से वन को प्रस्थान करते हुए राम कहने लगे कि हे धर्मात्मा! यह मेरी यशस्विनी माता कौशल्या, वृद्ध और उच्च चरित्रवाली है। यह आपकी निन्दा नहीं करती है। मुझसे अलग होकर यह शोक के सागर में डूब रही है, ऐसा दुःख इसने पहले कभी नहीं देखा था। आप इसका सम्मान करें जिससे आप पूज्य के द्वारा पूजी जाती हुई यह पुत्र के शोक को प्राप्त न हो। यह तपस्विनी मेरा चिन्तन करती हुई आपके आश्रय में जीवित रहे ऐसा प्रयत्न कीजिये।

इमां महेन्द्रोपम जातगर्धिनीं,
तथा विधातुं जननीं ममार्हसि।
यथा वनस्थे मयि शोककर्शिता,
न जीवितं न्यस्य यमक्षयं व्रजेत्।। १७।।

हे इन्द्र के समान महाराज! पुत्र की इच्छुक मेरी माता के लिये आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे मेरे शोक में व्याकुल यह मेरे वन में जाने पर, प्राणों को छोड़ कर मृत्यु लोक को न चली जाये।

अड़तीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का विलाप, सुमन्त्र का राम के लिये रथ तैयार करके लाना, कोषाध्यक्ष का सीता को बहुमूल्य रत्न और आभूषण देना। कौशल्या का सीता को पतिसेवा का उपदेश, श्रीराम का अपनी माता से पिता के प्रति दोष दृष्टि न रखने का अनुरोध करके अन्य माताओं से भी विदा माँगना।

रामस्य तु वचः श्रुत्वा, मुनिवेषधरं च तम्।
नैनं दुःखेन संतप्तः, प्रत्यवैक्षत राघवम्।। १।।
न चैनमभिसम्प्रेक्ष्य, प्रत्यभाषत दुर्मनाः।
विललाप महाबाहू, राममेवानुचिन्तयन्।। २।।

राम की बात सुना कर दुःख से सन्तप्त राजा मुनिवेश धारण किये उनकी तरफ देख नहीं सके और देख कर भी दुःख के कारण कुछ बोल नहीं सके। वे महाबाहु राम के विषय में ही सोचते हुए विलाप करने लगे।

मन्ये खलु मया पूर्वं, विवत्सा बहवः कृताः।
प्राणिनो हिंसिता वापि, तन्मामिदमुपस्थितम्।। ३।।
न त्वेवानागते काले, देहाच्च्यवति जीवितम्।
कैकेय्या क्लिश्यमानस्य, मृत्युर्मम न विद्यते।। ४।।

वे विलाप करते हुए कहने लगे कि मैं समझता हूँ कि मैंने पूर्व जन्म में बहुत सी गायों का उनके बछड़ों से बिछोह कराया है या बहुत से प्राणियों की हिंसा की है जो मुझे यह कष्ट उपस्थित हुआ है। जब तक समय न आए उससे पहले प्राण भी शरीर को नहीं छोड़ते, इसलिये कैकेयी से इतना क्लेश पाने पर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है।

योऽहं पावकसंकाशं, पश्यामि पुरतः स्थितम्।
विहाय वसने सूक्ष्मे, तापसाच्छादमात्मजम्।। ५।।
एकस्याः खलु कैकेय्याः, कृतेऽयं खिद्यते जनः।
स्वार्थे प्रयतमानायाः, संश्रित्य निकृतिं त्विमाम्।। ६।।

मैं अपने अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र को कोमल वस्त्रों का त्याग कर तपस्वियों वाले वस्त्रों को पहने देख रहा हूँ, पर मेरे प्राण नहीं निकलते। केवल इस एक कैकेयी के कारण जो कि दुष्टता का सहारा लेकर स्वार्थ में लगी हुई है, ये सारे लोग कष्ट पा रहे हैं।

एवमुक्त्वा तु वचनं, बाष्पेण विहतेन्द्रियः।
रामेति सकृदेवोक्त्वा, व्याहर्तुं न शशाक सः।। ७।।
संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव, मुहूर्तात् स महीपतिः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां, सुमन्त्रमिदमब्रवीत्।। ८।।

ऐसा कह कर आँसुओं के बहने के कारण जिनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो रहीं थीं, एक बार राम कह कर चुप हो गये और आगे कुछ भी न बोल सके। एक मुहूर्त के बाद होश में आ कर और आँखों में आँसू भर कर वे राजा सुमन्त्र से इस प्रकार बोले।

औपवाह्यं रथं युक्त्वा, त्वमायाहि हयोत्तमैः।
प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात् परम्।। ९।।
एवं मन्ये गुणवतां, गुणानां फलमुच्यते।
पित्रा मात्रा च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम्।। १०।।

तुम सवारी के योग्य रथ में उत्तम घोड़ों को जोत कर लाओ और इन महाभाग को देश की सीमा तक पहुँचा दो। ऐसा प्रतीत होता है कि शायद गुणवान लोगों के गुणों का यही फल बताया गया है कि सज्जन और वीर पुत्र को माता पिता के द्वारा ही वन में भेजा रहा रहा है।

राज्ञो वचनमाज्ञाय, सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः।
योजयित्वा ययौ तत्र, रथमश्वैरलंकृतम्।। ११।।
राजा सत्वरमाहूय, व्यापृतं वित्तसंचये।
उवाच देशकालज्ञो, निश्चितं सर्वतः शुचिः।। १२।।

राजा के वचन सुन कर सुमन्त्र शीघ्रता के साथ सुशोभित रथ को घोड़े जोत कर ले आये। तब देश और काल को समझने वाले, सब तरफ से पवित्र राजा ने धन संग्रह के कार्य में युक्त कोषाध्यक्ष को बुलाकर यह निश्चययुक्त बात कही।

वासांसि च वरार्हाणि, भूषणानि महान्ति च।
वर्षाण्येतानि संख्याय, वैदेह्याः क्षिप्रमानय।। १३।।
नरेन्द्रेणैवमुक्तस्तु, गत्वा कोशगृहं ततः।
प्रायच्छत् सर्वमाहृत्य, सीतायै क्षिप्रमेव तत्।। १४।।

तुम बहुमूल्य वस्त्र और महान आभूषण, जो चौदह वर्ष तक काम में आ सकें सीता के लिये जल्दी ला कर दो। राजा के ऐसा कहने पर कोषाध्यक्ष ने कोषागार में जाकर जल्दी ही वहाँ से सारा सामान लाकर सीता को दे दिया।

सा सुजाता सुजातानि, वैदेही प्रस्थिता वनम्।
भूषयामास गात्राणि, तैर्विचित्रैर्विभूषणैः।। १५।।
व्यराजयत वैदेही वेश्म, तत् सुविभूषिता।
उद्यतोंऽशुमतः काले, खं प्रभेव विवस्वतः।। १६।।

तब उस उत्तम कुल में उत्पन्न सीता ने जो वन को प्रस्थान कर रही थी, उन सुन्दर आभूषणों से अपने सुन्दर गात्रों को भूषित कर लिया। उन वस्त्राभूषणों से सजी हुई सीता अपनी सुन्दरता से उस घर को ऐसे ही सुशोभित करने लगी जैसे उदय होते हुए किरणों वाले सूर्य की प्रभा आकाश को सुशोभित करती है।

तां भुजाभ्यां परिष्वज्य, श्वश्रूर्वचनमब्रवीत्।
अनाचरन्तीं कृपणं, मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम्।। १७।।
असत्यः सर्वलोकेऽस्मिन्, सततं सत्कृताः प्रियैः।
भर्तारं नानुमन्यन्ते, विनिपातगतं स्त्रियः।। १८।।

उस समय उसकी सास कौसल्या ने उस सीता को, जिसने कभी किसी के साथ बुरा बर्ताव नहीं किया था, अपनी भुजाओं में कसकर छाती से लगा लिया और उसका सिर सूँघ कर कहने लगी कि जो स्त्रियाँ अपने पति के द्वारा सदा सत्कार किये जाने पर भी उसके संकट में पड़ने पर उसका साथ नहीं देतीं वे सारे संसार में 'असती' कहलाती हैं।

एष स्वभावो नारीणामनुभूय पुरा सुखम्।
अल्पामप्यापदं प्राप्य, दुष्यन्ति प्रजहत्यपि।। १९।।
असत्यशीला विकृता, दुर्गा अहृदयाः सदा।
असत्यः पापसंकल्पाः, क्षणमात्रविरागिणः।। २०।।

उन स्त्रियों का यह स्वभाव होता है कि पहले खूब सुख भोगती हैं पर पीछे थोड़ी सी भी मुसीबत को प्राप्त होने पर वे पति को दोष देती हैं और उसे छोड़ भी देती हैं। वे असती स्त्रियाँ असत्यवादी, विकारयुक्त, बुरे मार्ग पर चलने वाली, हृदयहीन, पापयुक्त विचारों वाली क्षणमात्र में पति से विरक्त होने वाली होती हैं।

न कुलं न कृतं विद्या, न दत्तं नापि संग्रहः।
स्त्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृदया हि ताः।। २१।।
साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते।
स्त्रीणां पवित्रं परमं, पतिरेको विशिष्यते।। २२।।

असती स्त्रियाँ न तो उत्तम कुल का, न किये हुए उपकार का, न दिये हुए पदार्थ का, और ना ही संग्रह किये हुए सामान का हृदय में विचार करती हैं, क्योंकि उनका हृदय चंचल होता है। किन्तु सती स्त्रियों के लिये, जो अपने अच्छे शील, सत्य और विद्या में स्थिर रहती हैं, उनका पति ही सबसे महान और पवित्र देवता होता है।

स त्वया नावमन्तव्यः, पुत्रः प्रव्राजितो वनम्।
तव देवसमस्त्वेष, निर्धनः सधनोऽपि वा।। २३।।
विज्ञाय वचनं सीता, तस्या धर्मार्थसंहितम्।
कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं, श्वश्रूमभिमुखे स्थिता।। २४।।

इसलिये तुम अपने पति का जो मेरा पुत्र है और वन में जा रहा है, कभी अपमान मत करना। वह चाहे धनवान हो या निर्धन, तुम्हारा देवता है। तब सीता अपनी सास के धर्म और अर्थ से युक्त वचनों को समझ कर, उनके सम्मुख खड़ी हुई, दोनों हाथों को जोड़ कर उनसे बोली।

करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम्।
अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे।। २५।।
न मामसज्जनेनार्या, समानयितुमर्हति।
धर्माद् विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा।। २६।।

हे आर्या! आप जो मुझे उपदेश दे रही हैं। मैं वह सारा करूँगी। पति से कैसे व्यवहार करना चाहिये। इसके विषय में मैंने सुन रखा है इसलिये यह जानती हूँ। आप मुझे असती स्त्रियों के समान न समझें, जैसे चन्द्रमा से उसकी प्रभा अलग नहीं हो सकती, वैसे ही मैं भी अपने धर्म से विचलित नहीं हो सकती।

नातन्त्री वाद्यते वीणा, नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेन, या स्यादपि शतात्मजा।। २७।।
मितं ददाति हि पिता, मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं, भर्तारं का न पूजयेत्।। २८।।
साहमेवंगता श्रेष्ठा, श्रुतधर्मपरावरा।
आर्ये किमवमन्येयं, स्त्रिया भर्ता हि दैवतम्।। २९।।
सीताया वचनं श्रुत्वा, कौसल्या हृदयङ्गमम्।
शुद्धसत्त्वा मुमोचाश्रु, सहसा दुःखहर्षजम्।। ३०।।
तां प्राञ्जलिरभिप्रेक्ष्य, मातृमध्येऽतिसत्कृताम्।
रामः परमधर्मात्मा, मातरं वाक्यमब्रवीत्।। ३१।।

हे आर्ये! मैंने इस प्रकार श्रेष्ठ स्त्रियों से स्त्रियों के सामान्य और विशेष धर्मों को सुना है। स्त्री का तो पति ही देवता होता है। फिर मैं पति की अवहेलना क्यों करूँगी? सीता के ये हृदय पर प्रभाव डालने वाले वचन सुनकर शुद्ध अन्तःकरण वाली कौसल्या सहसा दुःख और हर्ष से आँसू बहाने लगी। तब परम धर्मात्मा राम ने अति सम्मानित अपनी माता को माताओं के बीच में देख कर उनसे हाथ जोड़कर कहा।

अम्ब मा दुःखिता भूत्वा, पश्येस्त्वं पितरं मम।
क्षयोऽपि वनवासस्य, क्षिप्रमेव भविष्यति।। ३२।।
सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति, नव वर्षाणि पञ्च च।
समग्रमिह सम्प्राप्तं, मां द्रक्ष्यसि सुहृद्वृतम्।। ३३।।

हे माता! आप पिता को दुःखी होकर मत देखना। मेरे वनवास का समय जल्दी ही समाप्त हो जाएगा। ये चौदह वर्ष तुम्हारे सोते हुए ही निकल जायेंगे। फिर आप मुझे सम्पूर्ण रूप से आया हुआ और मित्रों से घिरा हुआ देखोगी।

मुरजपणवमेघघोषवद्,
दशरथवेश्मबभूव यत् पुरा।
विलपितपरिदेवनाकुलं,
व्यसनगतं तदभूत् सुदुःखितम्।। ३४।।

दशरथ जी का वह महल जो पहले मुरज, पणव और मेघ आदि बाघ्य यन्त्रों की ध्वनि से गूँजता रहता था वही अब विलाप और रोदन से व्याप्त हो गया जैसे कोई मुसीबत में पड़कर बहुत दुःखी हो रहा हो।

उन्तालीसवाँ सर्ग

सीता राम और लक्ष्मण का दशरथ की परिक्रमा करके कौसल्यादि को प्रणाम करना। सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश। राम, सीता और लक्ष्मण का रथ में बैठकर वन की ओर प्रस्थान।

अथ रामश्च सीता च, लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।
उपसंगृह्य राजानं, चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणम्।। १।।
तं चापि समनुज्ञाप्य, धर्मज्ञः सह सीतया।
राघवः शोकसम्मूढो, जननीमभ्यवादयत्।। २।।

उसके पश्चात राम, सीता और लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर दीनभाव से उनके चरण स्पर्श किये और उनकी प्रदक्षिणा की। उनसे आज्ञा लेकर धर्मज्ञ राम ने सीता के साथ शोक से युक्त होकर माता का अभिवादन किया।

अन्वक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः, कौसल्यामभ्यवादयत्।
अपि मातुः सुमित्राया, जग्राह चरणौ पुनः।। ३।।
तं वन्दमानं रुदती, माता सौमित्रिमब्रवीत्।
हितकामा महाबाहुं, मूर्ध्न्युपाघ्राय लक्ष्मणम्।। ४।।

भाई के बाद लक्ष्मण ने कौसल्या को प्रणाम किया और फिर माता सुमित्रा के चरण छूए। उस प्रणाम करते हुए महाबाहु लक्ष्मण से रोती हुई माता सुमित्रा, उसके सिर को सूँघ कर उसके हित की कामना करते हुए बोली।

सृष्टस्त्वं वनवासाय, स्वनुरक्तः सुहृज्जने।
रामे प्रमादं मा कार्षीः, पुत्र भ्रातरि गच्छति।। ५।।
व्यसनी वा समृद्धो वा, गति रेष तवानघ।
एष लोके सतां धर्मो, यज्ज्येष्ठवशगो भवेत्।। ६।।
इदं हि वृत्तमुचितं? कुलस्यास्य सनातनम्।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु, तनुत्यागो मृधेषु हि।। ७।।

तुम अपने भाई से बहुत प्रेम करते हो, इसलिये मैं तुम्हें वन में वास के लिये विदा करती हूँ। हे पुत्र! भाई के पीछे चलते हुए उनकी सेवा में प्रमाद मत करना। चाहे ये संकट में हो, चाहे समृद्धि में, हे निष्पाप! ये ही तुम्हारी गति हैं। अच्छे व्यक्तियों का यही धर्म है कि बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार चलें इस कुल का यही पुराना और उचित आचार है कि दान करना चाहिये, यज्ञों की दीक्षा लेनी चाहिये और युद्ध में प्राण त्यागने चाहिये।

लक्ष्मणं त्वेवमुक्त्वासौ, संसिद्धं प्रियराघवम्।
सुमित्रा गच्छ गच्छेति, पुनः पुनरुवाच तम्।। ८।।
रामं दशरथं विद्धि, मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि, गच्छ तात यथासुखम्।। ९।।

अपने पुत्र लक्ष्मण से ऐसा कह कर सुमित्रा ने वनवास के लिये सबके प्रिय श्रीराम से बार बार बेटा जाओ, बेटा जाओ, ऐसा कहा और फिर लक्ष्मण से बोली। पुत्र! तुम राम को अपना पिता दशरथ और जनक पुत्री सीता को माता सुमित्रा समझना, वन को अयोध्या समझना। हे तात! सुखपूर्वक यहाँ से जाओ।

ततः सुमन्त्रः काकुत्स्थं, प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।
विनीतो विनयज्ञश्च, मातलिर्वासवं यथा।। १०।।
रथमारोह भद्रं ते, राजपुत्र महायशः।
क्षिप्रं त्वां प्रापयिष्यामि, यत्र मां राम वक्ष्यसे।। ११।।

उसके पश्चात् जैसे इन्द्र के सारथी मातलि इन्द्र को सम्बोधन करते हैं, उसी प्रकार विनय को जानने वाले सुमन्त्र ने हाथ जोड़ कर विनम्रता से ककुत्स्थवंशी श्रीराम से कहा कि हे महान यश वाले राजपुत्र राम! आपका कल्याण हो! आप रथ पर सवार होइये। आप जहाँ कहेंगे वहीं मैं आपको जल्दी पहुँचा दूँगा।

चतुर्दश हि वर्षाणि, वस्तव्यानि वने त्वया।
तान्युपक्रमितव्यानि, यानि देव्या प्रचोदितः।। १२।।
तं रथं सूर्यसंकाशं, सीता हृष्टेन चेतसा।
आरुरोह वरारोहा, कृत्वालंकारमात्मनः।। १३।।
अथो ज्वलनसंकाशं, चामीकरविभूषितम्।
तमारुरुहतुस्तूर्णं, भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। १४।।

आपको चौदह वर्ष वन में रहना है, वे चौदह वर्ष आज से आरंभ हो गये, जिनके लिये देवी कैकेयी ने आपको प्रेरित किया है। तब उस सूर्य के समान प्रकाशित रथ पर सुन्दरी सीता अपने अलंकारों को धारण कर प्रसन्नचित से आरूढ़ हुई। इसके बाद उस अग्नि के समान देदीप्यमान और सुवर्ण से भूषित रथ पर दोनों भाई राम और लक्ष्मण भी जल्दी से बैठे।

चालीसवाँ सर्ग

श्रीराम के वनगमन से रनिवास की स्त्रियों का विलाप।

ततः सबालवृद्धा सा, पुरी परमपीडिता।
राममेवाभिदुद्राव, घर्मार्तः सलिलं यथा।। १।।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि, लम्बमानास्तदुन्मुखाः।
बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे, तमूचुर्भृशनिः स्वनाः।। २।।

तब बच्चों और बूढ़ों के साथ सारे नगर वासी बड़े दु:खी हो कर राम की तरफ ही ऐसे दौड़े जैसे गर्मी का सताया हुआ व्यक्ति पानी की तरफ दौड़ता है। बहुत से लोग रथ के बगल में तथा रथ के पीछे लटक गये। वे उनकी तरफ देख रहे थे, उनकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। वे उच्च स्वर में कहने लगे।

संयच्छ वाजिनां रश्मीन्, सूत याहि शनैः शनैः।
मुखं द्रक्ष्याम रामस्य, दुर्दर्शं नो भविष्यति।। ३।।
आयसं हृदयं नूनं, राममातुरसंशयम्।
यद् देवगर्भप्रतिमे, वनं याति न भिद्यते।। ४।।

हे सूत! घोड़ों की लगाम खीचो! धीरे धीरे ले चलो। हम श्रीराम के मुख को देखेंगे, फिर तो देखने को नहीं मिलेगा। राम की माता का हृदय वास्तव में लोहे का बना हुआ है, जो देवकुमार को समान इनके वन में जाने पर फट नहीं गया।

कृतकृत्या हि वैदेही, छायेवानुगता पतिम्।
न जहाति रता धर्मे, मेरुमर्कप्रभा यथा।। ५।।
अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः, सततं प्रयवादिनम्।
भ्रतारं देवसंकाशं, यत्त्वं परिचरिष्यसि।। ६।।
महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च, यदेनमनुगच्छसि।। ७।।

वैदेही का जीवन सफल हो गया जो छाया के समान अपने पति का अनुकरण कर रही है और धर्म में लगी हुई उन्हें इस प्रकार नहीं छोड़ रही जैसे सूर्य की प्रभा मेरु पर्वत का त्याग नहीं करती। (यहाँ मेरु पर्वत का अर्थ आकाश समझना चाहिये। या आकाश में कल्पित विशेष स्थान जिसके चारों तरफ सारे नक्षत्र चक्कर लगाते हैं।) हे लक्ष्मण! तुम्हारा भी जीवन सफल हो गया, जो तुम अपने प्रियवादी, देवताओं के समान भाई की लगातार सेवा करोगे। तुम्हारी बुद्धि महान है। तुम जो इनके साथ जा रहे हो। तुम्हारा महान अभ्युदय होगा यह कार्य तुम्हारे लिये स्वर्ग का मार्ग है।

एवं वदन्तस्ते सोढुं, न शेकुर्बाष्पमागतम्।
नरास्तमनुगच्छन्ति, प्रियमिक्ष्वाकुनन्दनम्।। ८।।
अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं, द्रक्ष्यामीति ब्रुवन् गृहात्।। ९।।
शुश्रुवे चाग्रतः स्त्रीणां, रुदतीनां महास्वनः।
यथा नादः करेणूनां, बद्धे महति कुञ्जरे।। १०।।

ऐसा कहते हुए वे मनुष्य जो अपने प्रिय इक्ष्वाकुपुत्र के पीछे जा रहे थे, अपने आँसुओं को न रोक सके। तब राजा दशरथ जो दयनीय अवस्था को प्राप्त हो रहे थे, दीनता से युक्त स्त्रियों से घिरे हुए, मैं अपने प्यारे पुत्र को देखूँगा, यह कहते हुए महल के बाहर निकल आये। उन्होंने अपने आगे रोती हुई स्त्रियों का हा हा कार सुना। वे स्त्रियाँ ऐसे ही रो रहीं थीं जैसे विशाल हाथी के बाँध दिये जाने पर हथनियाँ चीत्कार करती हैं।

पिता हि राजा काकुत्स्थः, श्रीमान् सन्नस्तदा बभौ।
परिपूर्णः शशी काले, ग्रहेणोपप्लुतो यथा।। ११।।
स च श्रीमानचिन्त्यात्मा, रामो दशरथात्मजः।
सूतं संचोदयामास, त्वरितं वाह्यतामिति।। १२।।
रामो याहीति तं सूतं, तिष्ठेति च जनस्तथा।
उभयं नाशकत् सूतः, कर्तुमध्वनि चोदितः।। १३।।

श्रीराम के पिता राजा दशरथ उस समय विषाद के कारण ऐसे कान्तिहीन हो रहे थे जैसे ग्रहण के समय पूर्ण चन्द्रमा। तब दशरथ के पुत्र, अभय आत्मा, श्रीराम ने सारथी को रथ को शीघ्र चलाने के लिये कहा। उस समय राम तो सारथी से चलने के लिये कह रहे थे, तो दूसरी तरफ जनता के लोग उन्हें रुकने के लिये कह रहे थे। इस प्रकार सुमन्त्र विवशता से रथ को न तो रोक सके और न चला सके।

सुस्राव नयनैः स्त्रीणामस्रमायाससम्भवम्।
मीनसंक्षोभचलितैः, सलिलं पङ्कजैरिव।। १४।।
दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम्।
निपपातैव दु:खेन, कृत्तमूल इव द्रुमः।। १५।।

उस समय स्त्रियों की आँखों से खेद के कारण आँसू उसी प्रकार बह रहे थे, जैसे मछली के द्वारा हिलाये जाने पर कमल पर से पानी के कण बिखरते हैं। जब

राजा ने देखा कि सारे नगरवासियों का चित्त राम में ही लगा हुआ है तो वे दु:ख के कारण जड़ कटे वृक्ष की तरह गिर पड़े।

ततो हलहलाशब्दो, जज्ञे रामस्य पृष्ठतः।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं, सीदन्तं भृशदु:खितम्।। १६।।
हा रामेति जनाः केचिद्, राममातेति चापरे।
अन्तःपुरसमृद्धं च, क्रोशन्तं पर्यदेवयन्।। १७।।

राजा को दु:ख से व्यथित होते हुए देखकर राम के पीछे की तरफ लोगों का महान हा हाकार का शब्द प्रकट हुआ। अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ राजा को चिल्लाते हुए देखकर कोई मनुष्य हाय राम और कोई मनुष्य हाय राजमाता कह कर रोने लगे।

अन्वीक्षमाणो रामस्तु, विषण्णं भ्रान्तचेतसम्।
राजानं मातरं चैव, ददर्शानुगतौ पथि।। १८।।
स बद्ध इव पाशेन, किशोरो मातरं यथा।
धर्मपाशेन संयुक्तः, प्रकाशं नाभ्युदैक्षत।। १९।।
पदातिनौ च यानार्हावदु:खार्हौ सुखोचितौ।
दृष्ट्वा संचोदयामास, शीघ्रं याहीति सारथिम्।। २०।।

राम ने जब पीछे घूमकर देखा तो उन्होंने उदासीन और भ्रान्तचित्त राजा और माता कौसल्या को पीछे आते हुए देखा। उस समय जैसे रस्सी से बाँधा हुआ घोड़े का बच्चा अपनी मा को नहीं देख पाता वैसे ही वे भी धर्म के बन्धन से बँधे हुए होने के कारण अपनी माता को स्पष्टरूप से न देख सके। उन दोनों को जो सवारी पर चलने सुख भोगने तथा दु:खों को न सहन करने योग्य थे, पैदल ही अपने पीछे आते देख उन्होंने सारथी से कहा कि जल्दी से चलो।

नहि तत् पुरुषव्याघ्रो, दु:खजं दर्शनं पितुः।
मातुश्च सहितुं शक्तोस्तोत्रैर्नुन्न इव द्विपः।। २१।।
प्रत्यगारमिवायान्ती, सवत्सा वत्सकारणात्।
बद्धवत्सा यथा धेनू, राममाताभ्यधावत।। २२।।

जैसे अंकुश से ताड़ित होता हुआ हाथी, उस पीड़ा को सहन नहीं कर पाता है, वैसे ही वह पुरुष व्याघ्र राम पिता और माता के उस दु:ख भरे दर्शन को सहन न कर सके। जैसे शाम को घर लौटती हुई बछड़े वाली गाय, बछड़े के प्रति प्रेम के कारण अपने उस बँधे हुए बछड़े की तरफ दौड़ पड़ती है वैसे ही राम की माता उनकी तरफ दौड़ी आ रही थी।

तथा रुदन्तीं कौसल्यां, रथं तामनुधावतीम्।
क्रोशन्तीं राम रामेति, हा सीते लक्ष्मणेति च।। २३।।
रामलक्ष्मणसीतार्थं, स्रवन्तीं वारि नेत्रजम्।
असकृत् प्रैक्षत् स तां, नृत्यन्तीमिव मातरम्।। २४।।

रथ के पीछे दौड़ती हुई, इस प्रकार रोती हुई, हे राम, हे सीता, हे लक्ष्मण चिल्लाती हुई, राम लक्ष्मण और सीता के लिये आँसू बहाती हुई और चक्कर सी खाती हुई माता को श्रीराम ने अनेक बार देखा।

तिष्ठेति राजा चुक्रोश, याहि याहीति राघव।।
सुमन्त्रस्य बभूवात्मा, चक्रयोरिव चान्तरा।। २५।।
नाश्रौषमिति राजानमुपालब्धोऽपि वक्ष्यसि।
चिरं दु:खस्य पापिष्ठमिति रामस्तमब्रवीत्।। २६।।
स रामस्य वचः कुर्वन्ननुज्ञाप्य च तं जनम्।
व्रजतोऽपि हयाञ्शीघ्रं, चोदयामास सारथिः।। २७।।

राजा ने सुमन्त्र से चिल्लाकर कहा कि ठहरो, पर श्रीराम ने कहा कि चलो, इस प्रकार दोनों आदेशों के मध्य सुमन्त्र की स्थिति उस समय दो पहिये के बीच में फँसे हुए मनुष्य के समान हो रही थी। राम ने सारथि से कहा कि यहाँ देर करना बहुत ही अधिक दु:ख का कारण होगा, इसलिये तुम चलो। यदि राजा बाद में उलाहना दें तो कह देना कि मैंने सुना नहीं था। तब सुमन्त्र ने राम की बात मान कर लोगों से आज्ञा ली और जाते हुए घोड़ों को और भी अधिक तेजी से चलाया।

यमिच्छेत् पुनरायातं, नैनं दूरमनुव्रजेत्।
इत्यमात्या महाराजमूचुर्दशरथं वचः।। २८।।
तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नः,
प्रस्विन्नगात्रः प्रविषण्णरूपः।
निशम्य राजा कृपणः सभार्यो,
व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः।। २९।।

तब मन्त्रियों ने महाराज दशरथ से कहा कि महाराज! जिसके वापिस आने की इच्छा की जाए उसके पीछे दूर तक नहीं जाना चाहिये। तब उनकी बात सुनकर वे सर्वगुण सम्पन्न राजा जो विषाद की मूर्ति बने हुए थे, जिनके शरीर से पसीना बह रहा था, ऐसे संकट में ग्रस्त पत्नियों सहित ठहर गये और पुत्र के रास्ते की तरफ देखने लगे।

इकतालीसवाँ सर्ग

शोक के कारण राजा दशरथ का भूमि पर गिरना और कैकेयी का परित्याग करना। कौशल्या और सेवकों की सहायता से उनका कौशलया के भवन में जाना और वहाँ भी राम के लिये विलाप करना।

यावत् तु निर्यतस्तस्य, रजोरूपमदृश्यत।
नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत्, संजहारात्मचक्षुषी।। १।।
यावद् राजा प्रियं पुत्रं, पश्यत्यत्यन्तधार्मिकम।
तावद् व्यवर्धतेवास्य, धरण्यां पुत्रदर्श २।।
न पश्यति रजोऽप्यस्य, यदा रामस्य भूमिपः।
तदार्तश्च निषण्णश्च, पपात धरणीतले।। ३।।

जब तक श्रीराम के रास्ते की धूल उड़ती हुई दिखाई देती रही, राजा दशरथ ने तब तक अपनी आँखें उधर से नहीं लौटाईं। तब तक वे अपने अत्यन्त धार्मिक प्रिय पुत्र के रास्ते की तरफ देखते रहे और यह अनुभव करते रहे मानो उनके शरीर की लम्बाई बढ़ रही है। जब राजा दशरथ को राम के रथ की धूल भी दिखाई देनी बन्द हो गई तब वे बड़े दुःखी और उदास होकर भूमि पर गिर पड़े।

तस्य दक्षिणमन्वागात्, कौसल्या बाहुमङ्गना।
परं चास्यान्वगात् पार्श्वं, कैकेयी सा सुमध्यमा।। ४।।
तां नयेन च सम्पन्नो, धर्मेण विनयेन च।
उवाच राजा कैकेयीं, समीक्ष्य व्यथितेन्द्रियः।। ५।।

तब उनकी दायीं बाँह की तरफ उनकी पत्नी कौसल्या आयी और बायीं बाहु की तरफ सुन्दरी कैकेयी पहुँची। तब नीति, विनय, और धर्म से सम्पन्न राजा दुःखी होकर उस कैकेयी से बोले।

कैकेयि मामकाङ्गानि, मा स्प्राक्षीः पापनिश्चये।
नहि त्वां द्रष्टुमिच्छामि, न भार्या न च बान्धवी।। ६।।
ये च त्वामनुजीवन्ति, नाहं तेषां न ते मम।
केवलार्थपरां हि त्वां, त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम।। ७।।
अगृह्णां यच्च ते पाणिमग्निं पर्यणयं च यत्।
अनुजानामि तत् सर्वमस्मिंल्लोके परत्र च।। ८।।

अरी पाप से भरे विचार वाली कैकेयी! तू मेरे अंगों को मत छू। मैं तुझे देखना नहीं चाहता। अब तू मेरी न तो पत्नी है और न बान्धवी है। जो तेरे आश्रित हैं मैं उनका भी स्वामी नहीं हूँ और वे मेरे अपने हैं। तूने धर्म को छोड़ दिया है और केवल धन का सहारा लिया है। मैंने जो तेरा हाथ पकड़ा और अग्नि की परिक्रमा की, उस सबको मैं त्याग रहा हूँ। मैंने यह सम्बन्ध इस लोक ही के लिये नहीं बल्कि परलोक के लिये भी छोड़ दिया है।

अथ रेणुसमुद्ध्वस्तं, समुत्थाप्य नराधिपम्।
न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्शिता।। ९।।
हत्वेव ब्राह्मणं कामात्, स्पृष्ट्वाग्निमिव पाणिना।
अन्वतप्यत धर्मात्मा, पुत्रं संचिन्त्य राघवम्।। १०।।

तब धूल में लिपटे हुए उन महाराज को उठा कर शोक से संतप्त देवी कौसल्या वापिस लौटी। जैसे कोई इच्छापूर्वक ब्राह्मण की हत्या कर या अग्नि का हाथ से स्पर्श कर दुःखी होता है, वैसे ही वे अपने पुत्र राम की चिन्ता पर दुःखी हो रहे थे।

निवृत्यैव निवृत्यैव, सीदतो रथवर्त्मसु।
राज्ञो नातिबभौ रूपं, ग्रस्तस्यांशुमतो यथा।। ११।।
विललाप स दुःखार्तः, प्रियं पुत्रमनुस्मरन्।
नगरान्तमनुप्राप्तं, बुद्ध्वा पुत्रमथाब्रवीत्।। १२।।

वे उलट उलट कर दुःखी होते हुए रथ के रास्ते को देखते थे। उनका यह रूप ग्रहण में पड़े हुए सूर्य के समान सुन्दर नहीं लग रहा था। वे अपने प्यारे पुत्र को याद कर दुःखी होकर विलाप करने लगे। पुत्र को नगर की सीमा से बाहर पहुँचा हुआ समझ वे कहने लगे।

वाहनानां च मुख्यानां, वहतां तं मामात्मजम्।
पदानि पथि दृश्यन्ते, स महात्मा न दृश्यते।। १३।।
यः सुखेनोपधानेषु, शेते चन्दनरूषितः।
वीज्यमानो महार्हाभिः, स्त्रीभिर्मम सुतोत्तमः।। १४।।
स नूनं क्वचिदेवाद्य, वृक्षमूलमुपाश्रितः।
काष्ठं वा यदि वाश्मानमुपधाय शयिष्यते।। १५।।

मेरे बेटे को ले जाने वाले श्रेष्ठ वाहनों अर्थात् घोड़ों के पद चिह्न तो दिखाई दे रहे हैं, पर वह महात्मा मेरा पुत्र नहीं दिखाई दे रहा है। जो चन्दन का लेप करा कर सुखदायी बिस्तरों पर सोया करता है, उस समय मेरे उत्तम पुत्र पर बहुमूल्य अलंकारों से सुशोभित स्त्रियाँ पंखा किया करती हैं, वह आज निश्चय ही वृक्ष की

जड़ के पास, किसी लकड़ी या पत्थर का तकिया बनाकर सोयेगा।

उत्थास्यति च मेदिन्याः, कृपणः पांसुगुण्ठितः।
विनिःश्वन् प्रस्रवणात्, करेणूनामिवर्षभः।। १६।।
द्रक्ष्यन्ति नूनं पुरुषा, दीर्घबाहुं वनेचराः।
राममुत्थाय गच्छन्तं, लोकनाथमनाथवत्।। १७।।

सो चुकने के बाद वे धूल में लिपटे हुए, लम्बी साँस लेते हुए, दीन की भाँति इस प्रकार उठेंगे जैसे झरनों के पास से हथनियों का स्वामी गजराज उठता है।

सा नूनं जनकस्येष्टा, सुता सुखसदोचिता।
कण्टकाक्रमणक्लान्ता, वनमद्य गमिष्यति।। १८।।
अनभिज्ञा वनानां सा, नूनं भयमुपैष्यति।
श्वपदानर्दितं श्रुत्वा, गम्भीरं रोमहर्षणम्।। १९।।

वह जनक की प्यारी पुत्री सीता जो सदा सुखों में ही पली है, काँटों के चुभने से परेशान होती हुई वन में जायेगी। वह वनों से अपरिचित है, इसलिये जँगली जानवरों की रोंगटे खड़े करने वाली भयानक गर्जना को सुनकर अवश्य ही डर जायेगी।

सकामा भव कैकेयि, विधवा राज्यमावस।
नहि तं पुरुषव्याघ्रं, विना जीवितुमुत्सहे।। २०।।
इत्येवं विलपन् राजा, जनौघेनाभिसंवृतः।
अपस्नात इवारिष्टं, प्रविवेश गृहोत्तमम्।। २१।।

हे कैकेयी! तू अपनी कामना पूरी कर ले। तू विधवा हो कर राज्य को प्राप्त हो, क्योंकि उस पुरुष व्याघ्र राम के बिना मेरी जीने की कोई इच्छा नहीं है। इस प्रकार विलाप करते हुए, लोगों की भीड़ से घिरे हुए राजा ने श्मशान भूमि से आने वाले लोगों के समान अपने उत्तम महल में प्रवेश किया।

शून्यचत्वरवेश्मान्तां, संवृतापणवेदिकाम्।
क्लान्तदुर्बलदुःखार्तां, नात्याकीर्णमहापथाम्।। २२।
तामवेक्ष्य पुरीं सर्वां, राममेवानुचिन्तयन्।
विलपन् प्राविशद् राजा, गृहं सूर्य इवाम्बुदम्।। २३।।

आते हुए उन्होंने देखा कि नगर में घरों के बाहर के चबूतरे और अन्दर के भाग भी सूने पड़े हैं। नगर के मार्गों पर भीड़ भी नहीं है। जनता के लोग थके हुए, दुखी और परेशान हैं। उस नगर की यह अवस्था देख कर और राम का चिन्तन करते हुए और विलाप करते हुए राजा ने महल में ऐसे ही प्रवेश किया जैसे सूर्य बादलों में प्रवेश करता है।

महाह्रदमिवाक्षोभ्यं, सुपर्णेन हृतोरगम्।
रामेण रहितं वेश्म, वैदेह्या लक्ष्मणेन च।। २४।।
अथ गद्गदशब्दस्तु, विलपन् वसुधाधिपः।
उवाच मृदु मन्दार्थं, वचनं दीनमस्वरम्।। २५।।

जैसे बड़े तालाब में से गरुड़ नाम का पक्षी किसी नाग को उठा कर ले जाये और उसके बाद वह तालाब क्षोभ रहित दिखाई दे, उसी प्रकार राजभवन भी राम, लक्ष्मण और सीता से रहित होकर दिखाई दे रहा था। तब दशरथ जी ने विलाप करते हुए दीनतायुक्त गद्गद् स्वर से मृदु, अस्पष्ट और स्वाभाविकता से रहित यह बात कही।

कौसल्याया गृहं शीघ्रं, राममातुर्नयन्तु माम्।
नह्यन्यत्र ममाश्वासो, हृदयस्य भविष्यति।। २६।।
इति ब्रुवन्तं राजानमनयन् द्वारदर्शिनः।
कौसल्याया गृहं तत्र, न्यवेस्यत विनीतवत्।। २७।।

मुझे जल्दी ही राम की माता कौसल्या के महल में पहुँचा दो। मेरे हृदय को कहीं दूसरी जगह शान्ति नहीं मिलेगी। ऐसा कहते हुए राजा को द्वारपालों ने विनय के साथ कौसल्या के महल में पहुँचा दिया और वहाँ सुला दिया।

ततस्तत्र प्रविष्टस्य, कौसल्याया निवेशनम्।
अधिरुह्यापि शयनं, बभूव लुलितं मनः।। २८।।
पुत्रद्वयविहीनं च, स्नुषया च विवर्जितम्।
अपश्यद् भवनं राजा, नष्टचन्द्रमिवाम्बरम्।। २९।।

तब वहाँ कौसल्या के घर में प्रवेश कर बिस्तरे पर सोने पर भी उनका मन बेचैन ही रहा। दोनों पुत्रों और पुत्रवधु के बिना वह भवन राजा को चन्द्रमा से शून्य आकाश की भाँति प्रतीत हुआ।

तच्च दृष्ट्वा महाराजो, भुजमुद्यम्य वीर्यवान्।
उच्चैःस्वरेण प्राक्रोशद्धा राम विजहासि नौ।। ३०।।
सुखिता बत तं कालं, जीविष्यन्ति नरोत्तमाः।
परिष्वजन्तो ये रामं, द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम्।। ३१।।

उसे देखकर उन पराक्रमी महाराज ने अपनी बाँह उठा कर, ऊँची आवाज से विलाप करते हुए कहा कि हे राम। तुम हम दोनों माता पिता को छोड़ रहे हो। वे ही नरश्रेष्ठ वास्तव में सुखी हैं, जो तुम्हारे लौटने के समय तक जीवित रहेंगे और तुम्हें लौटा हुआ देखेंगे और तुम्हें छाती से लगायेंगे।

अथ रात्र्यां प्रपन्नायां, कालरात्र्यामिवात्मनः।
अर्धरात्रे दशरथः, कौसल्यामिदमब्रवीत्।। ३२।।

न त्वां पश्यामि कौसल्ये, साधु मां पाणिना स्पृश।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते।। ३३।।

उसके पश्चात् राजा दशरथ ने अपनी कालरात्रि के समान रात्रि के आने पर आधी रात में कौसल्या से कहा कि हे कौसल्या! मेरी निगाह तो ऐसा प्रतीत होता है कि राम के साथ ही चली गयी और अभी वहाँ से लौटी नहीं है, इसलिये मैं तुम्हें नहीं देख पा रहा हूँ। तुम अपने हाथ से मुझे अच्छी तरह से स्पर्श करो।

तं राममेवानुविचिन्तयन्तं,
समीक्ष्य देवी शयने नरेन्द्रम्।
उपोपविश्याधिकमार्तरूपा,
विनिश्वसन्तं विललाप कृच्छ्रम्।। ३४।।

जब देवी कौसल्या ने उस राजा को बिस्तरे में हुए राम के ही विषय में सोचते हुए और लम्बी साँसें भरते हुए देखा तो वह उनके समीप बैठ कर अधिक दुखी होकर बड़े कष्ट से विलाप करने लगी।

बयालीसवाँ सर्ग

महारानी कौसल्या का विलाप।

ततः समीक्ष्य शयने, सन्नं शोकेन पार्थिवम्।
कौसल्या पुत्रशोकार्ता, तमुवाच महीपतिम्।। १।।
राघवे नरशार्दूले, विषं मुक्त्वाहिजिह्मगा।
विचरिष्यति कैकेयी, निर्मुक्तेव हि पन्नगी।। २।।

तब शय्या पर लेटे हुए राजा को शोक से व्याकुल देखकर स्वयं भी पुत्र के शोक में दुखी कौसल्या बोली कि नरश्रेष्ठ श्रीराम पर अपना विष उड़ेल कर अब कैकेयी केंचुली छोड़कर टेढ़ी चाल से चलने वाली साँपिनी के समान विचरेगी।

विवास्य रामं सुभगा, लब्धकामा समाहिता।
त्रासयिष्यति मां भूयो, दुष्टाहिरिव वेश्मनि।। ३।।
अथास्मिन् नगरे रामश्चरन् भैक्षं गृहे वसेत्।
कामकारो वरं दातुमपि दासं ममात्मजम्।। ४।।

राम को वनवास देकर उसकी कामना पूरी हुई, अब वह दुष्टा सुन्दरी घर में रहने वाले साँप के समान, सावधान होकर मुझे बराबर कष्ट देती रहेगी। यदि राम घर में इसी नगर में भिक्षा माँगते हुए रहते, या उन्हें दास बना दिया जाता, तब भी उनकी वह अवस्था मेरे लिये अधिक अच्छी होती।

नागराजगतिर्वीरो, महाबाहुर्धनुर्धरः।
वनमाविशते नूनं, सभार्यः सहलक्ष्मणः।। ५।।
वने त्वदृष्टदुःखानां, कैकेय्यनुमते त्वया।
त्यक्तानां वनवासाय, कान्यावस्था भविष्यति।। ६।।

गजराज के समान गति वाले, वीर विशाल भुजाओं वाले धुनर्धर राम निश्चित रूप से अब पत्नी और भाई लक्ष्मण के साथ वन में प्रवेश कर रहे होंगे। जिन्होंने कभी दुख नहीं देखा, जिन्हें तुमने कैकेयी की सलाह से वनवास के लिये छोड़ दिया, उनकी अब वन में क्या अवस्था हो रही होगी?

ते रत्नहीनास्तरुणाः, फलकाले विवासिताः।
कथं वत्स्यन्ति कृपयाः, फलमूलैः कृताशनाः।। ७।।
अपीदानीं स कालः, स्यान्मम शोकक्षयः शिवः।
सहभार्यं सह भ्रात्रा, पश्येयमिह राघवम्।। ८।।

उन तरुणों का सुख को भोगने का समय आया था, तभी तुमने उन्हें धन दौलत से रहित करके वन में निर्वासित कर दिया। वे दुःख में पड़े हुए वहाँ फल और मूल खाकर कैसे समय व्यतीत करेंगे। क्या मेरे शोक को नष्ट करने वाला कल्याणकारी समय फिर आयेगा जब मैं पत्नी और भाई के साथ राम को वापिस लौटा हुआ देखूँगी।

श्रुत्वैवोपस्थितौ वीरौ, कदायोध्या भविष्यति।
यशस्विनी हृष्टजना, सूच्छ्रितध्वजमालिनी।। ९।।
कदा प्रेक्ष्य नरव्याघ्रावरण्यात् पुनरागतौ।
भविष्यति पुरी हृष्टा, समुद्र इव पर्वणि।। १०।।

वह समय कब आयेगा? जब यह सुन कर कि दोनों वीर आ गये हैं। इस यशस्विनी अयोध्या के निवासी प्रसन्न होकर अपने घरों पर ऊँचे ध्वज फहरा कर इसकी शोभा बढ़ायेंगे। कब यह देखकर कि वे दोनों नरश्रेष्ठ वन से लौट आये, यह नगर पूर्णिमा के दिन समुद्र के समान प्रसन्नता से उद्वेलित होने लगेगा।

कदायोध्यां महाबाहुः, पुरीं वीरः प्रवेक्ष्यति।
पुरस्कृत्य रथे सीतां, वृषभो गोवधूमिव।। ११।।

कदा प्राणिसहस्राणि, राजमार्गे ममात्मजौ।
लाजैरवकरिष्यन्ति प्रविशन्तावरिंदमौ।। १२।।

कब वह समय आयेगा जब महाबाहु राम गायके पीछे चलने वाले साँड के समान सीता को रथ में बैठा हुआ आगे करके उसके पीछे स्वयं नगर में प्रवेश करेंगे? कब शत्रुओं का दमन करने वाले मेरे दोनों पुत्र अयोध्या में प्रवेश करेंगे और हजारों मनुष्य राजमार्ग में उन पर खीलों की वर्षा कर उनका स्वागत करेंगे।

प्रविशन्तौ कदायोध्यां, द्रक्ष्यामि शुभकुण्डलौ।
उदग्रायुधनिस्त्रिंशौ, सश्रृङ्गाविव पर्वतौ।। १३।।
कदा सुमनसः कन्या, द्विजातीनां फलानि च।
प्रदिशन्त्यः पुरं हृष्टाः, करिष्यन्ति प्रदक्षिणम्।। १४।।

कब मैं अच्छे कुण्डल धारण किये, उत्तम आयुध और तलवार लिये शिखर वाले पर्वत के समान प्रतीत होने वाले उन दोनों को अयोध्या में प्रवेश करता हुआ देखूँगी। कब उनके आने पर ब्राह्मणों की कन्याएँ फूलों और फलों का दान करती हुई प्रसन्नता के साथ नगरी की प्रदक्षिणा करेंगी?

कदा परिणतो बुद्ध्या, वयसा चामरप्रभाः।
अभ्युपैष्यति धर्मात्मा, सुवर्ष इव लालयन्।। १५।।
निःसंशयं मया मन्ये, पुरा वीर कदर्यया।
पातुकामेषु वत्सेषु, मातॄणां शातिताः स्तनाः।। १६।।

कब वे राम जो बुद्धि में वृद्ध हैं पर आयु में देवताओं के समान कान्तिवाले हैं, जो धर्मात्मा है और अच्छी वर्षा के समान प्रजा का पालन करते हैं, यहाँ वापिस आयेंगे। मैं समझती हूँ कि मुझ दुष्टिनी ने निश्चितरूप से पूर्वजन्म में बछड़ों के दूध पीने के लिये उद्यत होते ही उनकी माताओं के स्तन काट दिये होंगे, जिनका फल अब मुझे मिल रहा है।

साहं गौरिव सिंहेन, विवत्सा वत्सला कृता।
कैकेय्या पुरुषव्याघ्र, बालवत्सेव गौर्बलात्।। १७।।
नहि तावद्गुणैर्जुष्टं, सर्वशास्त्रविशारदम्।
एकपुत्रा विना पुत्रमहं जीवितुमुत्सहे।। १८।।
न हि मे जीविते किंचित्, सामर्थ्यमिह कल्प्यते।
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं, लक्ष्मणं च महाबलम्।। १९।।

जैसे अपने छोटे बछड़े को प्यार करने वाली गौ को सिंह के द्वारा बछड़े से रहित कर दिया जाये उसी गौ के समान मुझे हे नरश्रेष्ठ। कैकेयी ने अपने बेटे से अलग कर दिया है। मेरा एक ही पुत्र है, मैं अपने उस गुणवान, सारे शास्त्रों को जानने वाले पुत्र के बिना जीवित रहना नहीं चाहती। महाबली लक्ष्मण को और अपने प्रिय पुत्र को न देखती हुई अब मुझमें जीवित रहने की कुछ भी शक्ति नहीं है।

अयं हि मां दीपयतेऽद्य वह्नि-
स्तनूजशोकप्रभवो महाहितः।
महीमिमां रश्मिभिरुत्तमप्रभो,
यथा निदाघे भगवान् दिवाकरः।। २०।।

पुत्र के शोक से उत्पन्न यह महान अहितकारी वियोग की आग आज मुझे ऐसे ही जलाये दे रही है जैसे ग्रीष्म की ऋतु में उत्तम प्रभावाला सूर्य अपनी किरणों से पृथिवी को तपाता है।

तेतालीसवाँ सर्ग

सुमित्रा का कौसल्या को आश्वासन देना।

विलपन्तीं तथा तां तु, कौसल्यां प्रमदोत्तमाम्।
इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं, सुमित्रा वाक्यमब्रवीत्।। १।।
तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः, स पुत्रः पुरुषोत्तमः।
किं ते विलपितेनैवं, कृपणं रुदितेन वा।। २।।

नारीश्रेष्ठ कौसल्या को इस प्रकार विलाप करते हुए देख कर धर्म में स्थित सुमित्रा इस प्रकार धर्म से युक्त वाक्य बोली कि हे आर्ये! तुम्हारा वह पुत्र राम पुरुषों में श्रेष्ठ है, अच्छे गुणवाला है, फिर तुम्हारे इस प्रकार दुखी होकर विलाप करने से क्या लाभ?

यस्तवार्ये गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः।
साधु कुर्वन् महात्मानं, पितरं सत्यवादिनम्।। ३।।
शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत् प्रेत्य फलोदये।
रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो, न स शोच्यः कदाचनः।। ४।।

हे आर्ये! तुम्हारा वह महाबलवान पुत्र पिता को अच्छी तरह से सत्यवादी बनाने के लिये राज्य को छोड़ कर चला गया, यह उसका कार्य शिष्ट लोगों के आचरण के अनुसार है और यह सदा परलोक में भी भली प्रकार फल देने वाला हैं ऐसे धर्म में विद्यमान श्रेष्ठ राम के लिये कभी शोक नहीं करना चाहिये।

वर्तते चोत्तमां वृत्तिं, लक्ष्मणोऽस्मिन् सदानघः।
दयावान् सर्वभूतेषु, लाभस्तस्य महात्मनः।। ५।।
अरण्यवासे यद् दुःखं, जानन्त्येव सुखोचिता।
अनुगच्छति वैदेही, धर्मात्मानं तवात्मजम्।। ६।।

निष्पाप लक्ष्मण, जो कि सारे प्राणियों पर दया करते हैं, सदा राम से उत्तम प्रेम करते हैं। यह भी उस महात्मा के लिये लाभ की बात है। सुख में रहने वाली सीता जो तुम्हारे पुत्र के साथ गयी है, वह वनवास के दुःखों के विषय में जानती ही है।

ददौ चास्त्राणि दिव्यानि, यस्मै ब्रह्मा महौजसे।
दानवेन्द्रं हतं दृष्ट्वा, तिमिध्वजसुतं रणे।। ७।।
स शूरः पुरुषव्याघ्रः, स्वबाहुबलमाश्रितः।
असंत्रस्तो ह्यरण्येऽसौ, वेश्मनीव निवत्स्यते।। ८।।

तिमिरध्वज राक्षस के पुत्र दानवेन्द्र को युद्ध में मारा हुआ देख कर महातेजस्वी श्रीराम को विश्वामित्र जी ने दिव्य अस्त्र दिये थे। वे नरश्रेष्ठ स्वयं भी बड़े शूर हैं। वे अपने बाहुबल के आश्रय से वन में भी घर के समान निडर होकर रहेंगे।

या श्रीः शौर्यं च रामस्य, या च कल्याणसत्त्वता।
निवृत्तारण्यवासः स्वं, क्षिप्रं राज्यमवाप्स्यति।। ९।।
पृथिव्या सह वैदेह्या, श्रिया च पुरुषर्षभः।
क्षिप्रं तिसृभिरेताभिः, सह रामोऽभिषेक्ष्यते।। १०।।

श्री राम की जैसी कान्ति है, जैसा उनका शौर्य है, और जैसी उनमें कल्याण करने की शक्ति है, उससे यह निश्चित है कि वनवास से लौट कर वह जल्दी अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे। उस समय नरश्रेष्ठ राम पृथ्वी, सीता और लक्ष्मी तीनों के साथ शीघ्र ही अभिषेक को प्राप्त होंगे।

दुःखजं विसृजत्यश्रु, निष्क्रामन्तमुदीक्ष्य यम्।
अयोध्यायां जनः सर्वः, शोकवेगसमाहतः।। ११।।
कुशचीरधरं वीरं, गच्छन्तमपराजितम्।
सीतेवानुगता लक्ष्मीस्तस्य किं नाम दुर्लभम्।। १२।।

जिस अपराजित वीर को कुश और चीरवस्त्र धारण करके, नगर से निकल कर जाते हुए देख कर, अयोध्या में सारे लोग दुख से भर गये और आँसू बहाने लगे और सीता के समान लक्ष्मी उनके साथ चली गयी, उन श्रीराम के लिये क्या चीज़ दुर्लभ है?

धनुर्ग्रहवरो यस्य, बाणखड्गास्त्रभृत् स्वयम्।
लक्ष्मणो व्रजति ह्यग्रे, तस्य किं नाम दुर्लभम्।। १३।।
निवृत्तवनवासं तं, द्रष्टासि पुनरागतम्।
जहि शोकं च मोहं च, देवि सत्यं ब्रवीमि ते।। १४।।

धनुर्धारियों में श्रेष्ठ लक्ष्मण स्वयं बाण, खड्ग और शस्त्रों को धारण करके उनके आगे आगे गये हैं। उनके लिये क्या दुर्लभ है। हे देवी! तुम वनवास से लौटे हुए उनको पुनः देखोगी, यह मैं तुमसे सत्य कहती हूँ। इसलिये शोक और मोह को छोड़ दो।

शिरसा चरणावेतौ, वन्दमानमनिन्दिते।
पुनर्द्रक्ष्यसि कल्याणि, पुत्रं चन्द्रमिवोदितम्।। १५।।
पुनः प्रविष्टं दृष्ट्वा, तमभिषिक्तं महाश्रियम्।
समुत्स्रक्ष्यसि नेत्राभ्यां, शीघ्रमानन्दजं जलम्।। १६।।

हे अनिन्दिते! हे कल्याणी! तुम उदय होते हुए चन्द्रमा के समान अपने पुत्र को सिर झुकाकर इन चरणों में प्रणाम करता हुआ पुनः देखोगी। तुम राजभवन में पुनः प्रवेश करके, अभिषेक को और महान लक्ष्मी को प्राप्त हुए अपने पुत्र को देखकर जल्दी ही आँखों से आनन्द के आँसू बहाओगी।

मा शोको देवि दुःखं, वा न रामे दृष्यतेऽशिवम्।
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पुत्रं, त्वं ससीतं सहलक्ष्मणम्।। १७।।
त्वयाशेषो जनश्चायं, समाश्वास्यो यतोऽनघे।
किमिदानीमिदं देवि, करोषि हृदि विक्लवम्।। १८।।

हे देवी! राम में कोई अकल्याणकारी बात नहीं है। इसलिये तुम राम के लिये शोक या दुःख मत करो। तुम जल्दी ही सीता और लक्ष्मण के साथ अपने पुत्र को देखोगी। हे देवी। तुम्हें तो इन शेष दूसरे लोगों को ढाढस बँधाना चाहिये।

नार्हा त्वं शोचितुं देवि, यस्यास्ते राघवः सुतः।
नहि रामात् परो लोके, विद्यते सत्पथे स्थितः।। १९।।
अभिवादयमानं तं, दृष्ट्वा ससुहृदं सुतम्।
मुदाश्रु मोक्ष्यसे क्षिप्रं, मेघरेखेव वार्षिकी।। २०।।

हे देवी! जिसका राम जैसा पुत्र है, ऐसी तुम्हें तो शोक करना ही नहीं चाहिये, क्योंकि राम से बढ़ कर सन्मार्ग में स्थित रहने वाला संसार में कोई नहीं है। तुम जल्दी ही अपने सुहृदों के साथ उस राम को प्रणाम करता हुआ देख कर उसी प्रकार प्रसन्नता के आँसू बहाओगी, जैसे वर्षा ऋतु में मेघ जल बरसाते हैं।

पुत्रस्ते वरदः क्षिप्रमयोध्यां पुनरागतः।
कराभ्यां मृदुपीनाभ्यां, चरणौ पीडयिष्यति।। २१।।

अभिवाद्य नमस्यन्तं, शूरं ससुहृदं सुतम्।
मुदास्नैः प्रोक्षसे पुत्रं, मेघराजिरिवाचलम्।। २२।।

तुम्हारे वरदान देने वाले पुत्र शीघ्र ही अपने मुलायम और मोटे हाथों से पुनः अयोध्या में आकर तुम्हारे चरणों को दबायेंगे। जब अपने सुहृदों के साथ तुम्हारे शूर पुत्र तुम्हारा अभिवादन कर नमस्कार करेंगे तब तुम अपना प्रसन्नता के आँसुओं से उसका इस प्रकार अभिषेक करोगी जैसे बादल पर्वतों का करते हैं।

आश्वासयन्ती विविधैश्च वाक्यै-,
र्वाक्योपचारे कुशलानवद्या।
रामस्य तां मातरमेवमुक्त्वा,
देवी सुमित्रा विरराम रामा।। २३।।
निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यं,
रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः।
सद्यः शरीरे विननाश शोकः,
शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः।। २४।।

लक्ष्मण की माता के इन वाक्यों को सुनकर दशरथ की पत्नी और राम की माता कौसल्या के शरीर अर्थात् मन से सारा शोक तुरन्त उसी प्रकार नष्ट हो गया, जैसे शरद ऋतु के आने पर छोड़े पानी वाला बादल आकाश में विलीन हो जाता है।

चवालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का पुरवासियों से भरत और महाराज दशरथ के प्रति प्रेमभाव रखने का अनुरोध करते हुए लौट जाने के लिये कहना। नगर के वृद्ध ब्राह्मणों का श्रीराम से लौट चलने के लिये आग्रह करना तथा उन सबके साथ श्रीराम का तमसा के तट पर पहुँचना।

अनुरक्ता महात्मानं, रामं सत्यपराक्रमम्।
अनुजग्मुः प्रयान्तं तं, वनवासाय मानवाः।। १।।
स याच्यमानः काकुत्स्थस्ताभिः प्रकृतिभिस्तदा।
कुर्वाणः पितरं सत्यं, वनमेवान्वपद्यत।। २।।

जब सत्य पराक्रमी महात्मा राम वन की तरफ जा रहे थे, तब बहुत से पुरवासी जो कि राम में अनुरक्त थे, स्वयं वनवास की इच्छा से उनके पीछे पीछे चल दिये। उन पुरवासियों द्वारा लौटने की प्रार्थना करने पर भी वे काकुत्स्थ श्रीराम, पिता के वचन को सत्य करने की इच्छा से वन की तरफ ही चलते गये।

अवेक्षमाणः सस्नेहं, चक्षुषा प्रपिबन्निव।
उवाच रामः सस्नेहं, ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव।। ३।।
या प्रीतिर्बहुमानश्च, मय्ययोध्यानिवासिनाम्।
मत्प्रियार्थं विशेषेण, भरते सा विधीयताम्।। ४।।

श्रीराम इन प्रजाजनों को स्नेह के साथ ऐसे देख रहे थे, मानो उन्हें आँखों से पी जाएँगे। उन्होंने उनसे अपनी सन्तान के समान प्रेम से कहा, कि मुझ में अयोध्यावासियों का जो प्रेम और सम्मान है वही प्रेम और सम्मान आप लोग मेरा प्रिय करने के लिये भरत से भी कीजिये।

स हि कल्याणचारित्रः, कैकेय्यानन्दवर्धनः।
करिष्यति यथावद् वः, प्रियाणि च हितानि च।। ५।।
ज्ञानवृद्धो वयोबालो, मृदुर्वीर्यगुणान्वितः।
अनुरूपः स वो भर्ता, भविष्यति भयापहः।। ६।।

वह कल्याणकारी चरित्रवाले हैं। वे कैकेयी का आनन्द बढ़ाने वाले भरत आपका यथावत् हित और कल्याण करेंगे। वे आयु में तो छोटे हैं पर ज्ञान में बड़े हैं। वे स्वभाव में कोमल पर पराक्रम के गुण से युक्त है। वे भय को दूर करने वाले आपके अनुकूल स्वामी होंगे।

स हि राजगुणैर्युक्तो, युवराजः समीक्षितः।
अपि चापि मया शिष्टैः, कार्यं वो भर्तृशासनम्।। ७।।
न संतप्येद् यथा चासौ, वनवासं गते मयि।
महाराजस्तथा कार्यो, मम प्रियचिकीर्षया।। ८।।

वह भरत राजकीय गुणों में मुझसे भी अधिक हैं, इसलिये उन्हें युवराज बनाया गया है। आप लोगों को अपने उन स्वामी की आज्ञा का पालन करना चाहिये। आपको मेरा प्रिय करने की इच्छा से ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे मेरे वनवास के लिये जाने पर महाराज दशरथ का मन दुःखी न हो।

यथा यथा दाशरथिर्धर्ममेवाश्रितो भवेत्।
तथा तथा प्रकृतयो, रामं पतिमकामयन्।। ९।।
बाष्पेण पिहितं दीनं, रामः सौमित्रिणा सह।
चकर्षेव गुणैर्बद्धं, जनं पुरनिवासिनम्।। १०।।

दशरथ के पुत्र राम ने उस समय जितनी जितनी धर्म के पालन में अपनी रुचि दिखाई वैसे वैसे ही प्रजा के लोग उन्हें अपना स्वामी बनाने के लिये अधिक कामना करने लगे। उन सारे पुरवासियों की आँखों में आँसू भरे हुए थे, वे सब दीनता को प्राप्त हो रहे थे ऐसे उन लोगों को श्रीराम लक्ष्मण के साथ मानों अपने गुणों से बाँध कर खींचे लिये जा रहे थे।

ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा, ज्ञानेन वयसौजसा।
वयःप्रकम्पशिरसो, दूरादूचुरिदं वचः।।११।।
वहन्तो जना रामं, भो भो जात्यास्तुरंगमाः।
निवर्तध्वं न गन्तव्यं, हिता भवत भर्तरि।।१२।।

उनमें से वे ब्राह्मण जो ज्ञान, आयु, और तेज इन तीनों में वृद्ध थे, जिनके सिर आयु की अधिकता के कारण काँप रहे थे, वे दूर से ही यह कहने लगे कि जाति से तेज चलने वाले, और श्रीराम को ले जाने वाले घोड़ो! तुम लौट आओ, आओ मत। तुम्हें अपने स्वामी की भलाई करनी चाहिये।

कर्णवन्ति हि भूतानि, विशेषेण तुरङ्गमाः।
यूयं तस्मान्निवर्तध्वं, याचनां प्रतिवेदिताः।।१३।।
धर्मतः स विशुद्धात्मा, वीरः शुभदृढव्रतः।
उपवाह्यस्तु वो भर्ता, नापवाह्यः पुराद् वनम्।।१४।।

सब प्राणियों के कान होते हैं, घोड़ों के तो विशेष बड़े होते हैं, इसलिये तुमने हमारी प्रार्थना तो सुन ली होगी, तुम लौट आओ। तुम्हारे स्वामी विशुद्ध आत्मा से धर्म का पालन करते हैं, वे वीर हैं और अच्छे व्रतों का दृढ़ता से पालन करते हैं। ऐसे अपने स्वामी को तुम्हें पुर से वन की तरफ नहीं ले जाना चाहिये अपितु वन से नगर की तरफ लाना चाहिये।

एवमार्तप्रलापांस्तान्, वृद्धान् प्रलपतो द्विजान्।
अवेक्ष्य सहसा रामो, रथादवततार ह।।१५।।
पद्भ्यामेव जगामाथ, ससीतः सहलक्ष्मणः।
संनिकृष्टपदन्यासो, रामो वनपरायणः।।१६।।

इस प्रकार दुःख पूर्वक विलाप करते हुए बूढ़े ब्राह्मणों को देखकर श्रीराम अचानक रथ से उतर गये और सीता तथा लक्ष्मण के साथ पैदल ही चलने लगे। वन का उद्देश्य रख कर चलने वाले उन राम ने उन ब्राह्मणों के लिये अपने पैरों का न्यास अर्थात् फैलाव भी छोटा कर दिया।

द्विजातीन् हि पदातींस्तान् रामश्चारित्रवत्सलः।
न शशाक घृणाचक्षुः, परिमोक्तुं रथेन सः।।१७।।
गच्छन्तमेव तं दृष्ट्वा, रामं सम्भ्रान्तमानसाः।
ऊचुः परम संतप्ता, रामं वाक्यमिदं द्विजाः।।१८।।

राम के चरित्र में प्रेम था, उनके नेत्रों में दया भरी हुई थी, इसलिये वे उन पैदल चलने वाले ब्राह्मणों को रथ के द्वारा पीछे छोड़ देने की हिम्मत नहीं कर सके। वे ब्राह्मण राम को वन की तरफ जाते हुए देख कर जिनके मन में परेशानी बढ़ने लगी, बड़े दुःखी होकर संतप्त भाव से श्रीराम से यह बोले।

ब्राह्मण्यं कृत्स्नमेतत् त्वां, ब्रह्मण्यमनुगच्छति।
द्विजस्कन्धाधिरूढास्त्वामग्नयोऽप्यनुयान्त्वमी।।१९।।

हे राम! तुम ब्राह्मणों के हितैषी हो, इसलिये यह सारा ब्राह्मण समाज तुम्हारे पीछे चल रहा हैं ये ब्राह्मणों के कन्धों पर चढ़कर अग्निदेव भी तुम्हारा अनुगमन कर रहे हैं। हे पुत्र! हमारी जो बुद्धि सदा वेद के पीछे चलती है, वह तुम्हारे लिये अब वनवास की तरफ जा रही है।

या हि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसारिणी।
त्वत्कृते सा कृता वत्स वनवासानुसारिणी।।२०।।
हृदयेष्ववतिष्ठन्ते वेदा ये नः परं धनम्।
वत्स्यन्त्य पिगृहेष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः।।२१।।
पुनर्न निश्चयः कार्यस्त्वद्गतौ सुकृता मतिः।
त्वयि धर्मव्यपेक्षे तु किं स्याद् धर्मपथे स्थितम्।।२२।।

हमने अपने परम धन वेदों को अपने हृदय में स्थित किया हुआ है अर्थात् क्योंकि हमें वेद कण्ठाग्र हैं अतः हम वन में रहते हुए भी बिना पुस्तकों के वेदों का स्वाध्याय कर सकते हैं। हमारी स्त्रियों का चरित्रबल हमारे पीछे से घरों में उनकी रक्षा करेगा। हमें अपने कर्तव्य के विषय में अब और कोई निश्चय नहीं करना है। हमने तुम्हारे पीछे चलने का निश्चय कर लिया है। पर जब तुम ही आज्ञा पालन के धर्म को छोड़ रहे हो तो और दूसरा कौन धर्म का पालन करेगा।

याचितो नो निवर्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः।
शिरोभिर्निभृताचार महीपतनपांसुलैः।।२३।।
बहूनां वितता यज्ञा द्विजानां य इहागताः।
तेषां समाप्तिरायत्ता तव वत्स निवर्तने।।२४।।
एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने।
ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम्।।२५।।

हे सदाचार का पालन करने वाले राम! हमारे सिर के बाल हंस के समान सफेद हो गये हैं, पृथ्वी पर सिर झुकार प्रणाम करने से इनमें धूल भर गई हैं, इस

प्रकार के अपने सिरों को झुकाकर हम प्रार्थना कर रहे हैं कि आप लौट चलो। हममें बहुतों ने अपने यज्ञ प्रारम्भ किये हुए हैं अर्थात् यज्ञों के बीच में से उठ कर वे आपके पीछे आ रहे हैं, हे पुत्र! उनके यज्ञों की समाप्ति आपके लौटने पर ही आश्रित है। इस प्रकार श्रीराम को लौटाने के लिये ब्राह्मणों के पुकारते हुए, श्रीराम को मानो रोकने के लिये तमसा नदी दिखाई दी।

ततः सुमन्त्रोऽपि रथाद् विमुच्य
श्रान्तान् हयान् सम्परिवर्त्य शीघ्रम्।
पीतोदकांस्तोयपरिप्लुताङ्गाः-
नचारयद् वै तमसाविदूरे।। २६।।

तब सुमन्त्र ने भी शीघ्र थके हुए घोड़ों को रथ से अलग कर टहलाया, पानी लिया और नहलाया और फिर तमसा के समीप चरने के लिये छोड़ दिया।

पैंतालीसवाँ सर्ग

श्रीराम लक्ष्मण और सीता का रात्रि में तमसा तट पर निवास, माता पिता और अयोध्या के लिये चिन्ता तथा पुरवासियों को सोते छोड़कर वन की ओर जाना।

ततस्तु तमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः।
सीतामुद्वीक्ष्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत्।। १।।
इयमद्य निशा पूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनम्।
वनवासस्य भद्रं ते न चोत्कण्ठितुमर्हसि।। २।।

उसे पश्चात् तमसा नदी के सुन्दर किनारे पर श्रीराम सीता को देखकर लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण! तुम्हारा कल्याण हो। वनवास के लिए वन को जाते हुए यह हमारी पहली रात है। अब तुम्हें नगरवास के विषय में उत्कंठित नहीं होना चाहिए।

पश्य शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः।
यथा निलयमायद्भिर्निलीनानि मृगद्विजैः।। ३।।
अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम।
सस्त्रीपुंसा गतानस्माञ्शोचिष्यति न संशयः।। ४।।

देखो! ये सूने जंगल जो जँगली पशु और पक्षियों से भरे हुए हैं, इस समय उन पशु और पक्षियों की ध्वनियों से, जो वे अपने अपने आवास पर आकर बोल रहे हैं, सब तरफ से रोते हुए से प्रतीत हो रहे हैं। आज मेरे पिता की राजधानी अयोध्या नगरी स्त्री और पुरुषों सहित हमारे यहाँ आने पर, हमारे विषय में शोकमग्न होगी, इसमें कोई संशय नहीं है।

अनुरक्ता हि मनुजा राजानं बहुभिर्गुणैः।
त्वां च मां च नरव्याघ्र शत्रुघ्नभरतौ तथा।। ५।।
पितरं चानुशोचामि मातरं च यशस्विनीम्।
अपि नान्धौ भवेतां नौरुदन्तौ तावभीक्ष्णशः।। ६।।

हे नरश्रेष्ठ! प्रजा के लोग बहुत से अच्छे गुणों के कारण महाराज में, मुझमें, तुममें और भरत शत्रुघ्न में बहुत अनुरक्त हैं। मैं पिता जी और यशस्विनी माता के विषय में शोक कर रहा हूँ। कहीं वे हमारे लिये लगातार रोते हुए अन्धे न हो जायें।

भरतः खलु धर्मात्मा पितरं मातरं च मे।
धर्मार्थकामसहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति।। ७।।
भरतस्यानृशंसत्वं संचिन्त्याहं पुनः पुनः।
नानुशोचामि पितरं मातरं च महाभुज।। ८।।

भरत निश्चितरूप से धर्मात्मा है। वे पिता को और मेरी माता को धर्म अर्थ और कामयुक्त वाक्यों से सान्त्वना देंगे। हे महान भुजाओं वाले! भरत के कोमल स्वभाव के विषय में सोच सोच कर मुझे माता और पिता के लिये अधिक चिन्ता नहीं होती है।

त्वया कार्यं नरव्याघ्र मामनुव्रजता कृतम्।
अन्वेष्टव्या हि वैदेह्या रक्षणार्थं सहायता।। ९।।
अद्भिरेव हि सौमित्रे वत्स्याम्यद्य निशामिमाम्।
एतद्धि रोचते मह्यं वन्येऽपि विविधे सति।। १०।।

हे नरश्रेष्ठ! तुमने मेरे साथ आकर महान कार्य किया है क्योंकि नहीं तो मुझे सीता की रक्षा के लिये एक सहायक ढूँढ़ना पड़ता। यद्यपि यहाँ अनेक प्रकार के जंगली फल फूल खाने के लिये मिल सकते हैं, परन्तु आज रात्रि में यहाँ मैं पानी पीकर ही रहूँगा। यही मुझे अच्छा लगता है।

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं सुमन्त्रमपि राघवः।
अप्रमत्तस्त्वमश्वेषु भव सौम्येत्युवाच ह।। ११।।
सोऽश्वान् सुमन्त्रः संयम्य सूर्येऽस्तं समुपागते।
प्रभूतयवसान् कृत्वा बभूव प्रत्यनन्तरः।। १२।।

लक्ष्मण से ऐसा कहकर राम ने सुमन्त्र से कहा कि हे सौम्य! तुम घोड़ों की तरफ से सावधान रहना। तब सूर्य के छिप जाने पर सुमन्त्र घोड़ों को बाँध कर उनके आगे बहुत सा भूसा डालकर श्रीराम के समीप आ गये।

उपास्य तु शिवां संध्यां दृष्ट्वा रात्रिमुपागताम्।
रामस्य शयनं चक्रे सूतः सौमित्रिणा सह।। १३।।
तां शय्यां तमसातीरे वीक्ष्य वृक्षदलैर्वृताम्।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सभार्यः संविवेश ह।। १४।।

तब कल्याणमयी सन्ध्योपासना कर और यह देखकर कि रात्रि आ गयी है, सुमन्त्र ने लक्ष्मण के साथ राम के सोने के लिये व्यवस्था की। तमसा के किनारे पत्तों से बनी हुई उस शय्या को देखकर राम, लक्ष्मण और सीता के साथ उस पर बैठे।

सभार्यं सम्प्रसुप्तं तु श्रान्तं सम्प्रेक्ष्य लक्ष्मणः।
कथयामास सूताय रामस्य विविधान् गुणान्।। १५।।
जाग्रतोरेव तां रात्रिं सौमित्रेरुदितो रविः।
सूतस्य तमसातीरे रामस्य ब्रुवतो गुणान्।। १६।।

राम को पत्नी सहित थक कर सोया हुआ देख कर लक्ष्मण ने सूत से अनेक गुणों का वर्णन किया। तब उन दोनों लक्ष्मण और सुमन्त्र के राम के गुणों का वर्णन करते हुए ही तमसा के किनारे पर रात्रि व्यतीत हो गयी और सूर्योदय का समय निकट आ गया।

उत्थाय च महातेजाः प्रकृतीस्ता निशाम्य च।
अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम्।। १७।।
अस्मद्व्यपेक्षान् सौमित्रे निर्व्यपेक्षान् गृहेष्वपि।
वृक्षमूलेषु संसक्तान् पश्य लक्ष्मण साम्प्रतम्।। १८।।

वे महातेजस्वी राम बहुत सवेरे उठे और उन प्रजा के लोगों को सोया हुआ देख कर वे पवित्र लक्षण वाले भाई लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण! इन लोगों को देखो, जो हमारे लिये अपने घरों से भी इच्छा रहित होकर इस समय पेड़ों के नीचे सो रहे हैं।

यथैते नियमं पौराः कुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने।
अपि प्राणान् न्यसिष्यन्ति न तु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम्।। १९।।
यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु।
रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतोभयम्।। २०।।

ये नगरवासी हमें लौटाने के लिये जैसा प्रयत्न कर रहे हैं, उससे प्रतीत होता है कि ये प्राणों को त्याग देंगे पर अपना निश्चय नहीं छोड़ेंगे। ये जब तक सोये हुए हैं, तब तक धीरे से रथ पर चढ़कर भय रहित मार्ग पर चले जाते हैं।

अतो भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः।
स्वपेयुरनुरक्ता मा वृक्षमूलेषु संश्रिताः।। २१।।
पौरा ह्यात्मकृताद् दुःखाद् विप्रमोच्या नृपात्मजैः।
न तु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः।। २२।।

ये हममें अनुरक्त अयोध्यावासी तब फिर वृक्षों के नीचे नहीं सोयेंगे। राजकुमारों को अपने कारण से उत्पन्न दुःखों से नगरवासियों को बचाना चाहिये। अपने दुःख से उन्हें जोड़ना नहीं चाहिये।

अब्रवील्लक्ष्मणो रामं साक्षाद् धर्ममिव स्थितम्।
रोचते मे तथा प्राज्ञ क्षिप्रमारुह्यतामिति।। २३।।
अथ रामोऽब्रवीत् सूतं शीघ्रं संयुज्यतां रथः।
गमिष्यामि ततोऽरण्यं गच्छ शीघ्रमितः प्रभो।। २४।।

तब लक्ष्मण ने साक्षात् धर्म के समान विद्यमान राम से कहा कि हे प्राज्ञ! मुझे भी यही अच्छा लगता है। आप जल्दी रथ में बैठिये। तब राम ने सुमन्त्र से कहा कि रथ को जल्दी तैयार को। मैं जल्दी ही यहाँ से वन में जाऊँगा।

सूतस्ततः संत्वरितः स्यन्दनं तैर्हयोत्तमैः।
योजयित्वा तु रामस्य प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत्।। २५।।
अयं युक्तो महाबाहो रथस्ते रथिनां वर।
त्वरयाऽऽरोह भद्रं ते ससीतः सहलक्ष्मणः।। २६।।

तब सुमन्त्र ने शीघ्रता के साथ उन उत्तम घोड़ों को रथ में जोड़ दिया और हाथ जोड़ कर राम से निवेदन किया कि हे महाबाहु! हे रथियों में श्रेष्ठ! रथ तैयार है। आपका कल्याण हो। आप सीता और लक्ष्मण के साथ जल्दी रथ में बैठ जाइये।

तं स्यन्दनमधिष्ठाय राघवः सपरिच्छदः।
शीघ्रगामाकुलावर्तां तमसामतरन्नदीम्।। २७।।
स संतीर्य महाबाहुः श्रीमाञ्शिवमकण्टकम्।
प्रापद्यत महामार्गमभयं भयदर्शिनाम्।। २८।।

तब श्रीराम सबके साथ रथ पर बैठ कर उस तीव्रगति वाली और भँवरों से युक्त तमसा नदी को पार कर गये। पार पहुँच कर वे महाबाहु श्रीमान राम ऐसे बड़े मार्ग पर पहुँचे जो कल्याणकारी काँटों से रहित और भयभीत लोगों के लिये भी भय से रहित था।

मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद् वचः।
उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमारुह्य सारथे।। २९।।
मुहूर्तं त्वरितं गत्वा निवर्तय रथं पुनः।
यथ न विद्युः पौरा मां तथा कुरु समाहितः।। ३०।।

रामस्य तु वचः श्रुत्वा तथा चक्रे च सारथिः।
प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत्।। ३१।।

तब पुरवासियों को भ्रमित करने के लिये राम ने कहा कि हे सारथी! तुम एकाग्र चित्त होकर, रथ को लेकर उत्तर की तरफ जाओ और एक मुहूर्त में तेजी से जाकर फिर धूम कर आ जाओ, जिससे पुरवासी हमारे मार्ग के विषय में जान न पायें। राम की बात सुन कर सुमन्त्र ने वैसा ही किया और वापिस आकर राम के सन्मुख रथ को उपस्थित कर दिया।

तौ सम्प्रयुक्तं तु रथं समास्थितौ
तदा ससीतौ रघुवंशवर्धनौ।
प्रचोदयामास ततस्तुरंगमान्
स सारथिर्येन पथा तपोवनम्।। ३२।।

तब वे दोनों रघुवंश की वृद्धि करने वाले सीता के साथ उस वापिस लौटे हुए रथ में बैठे। तब सारथी ने घोड़ों को उस मार्ग की तरफ बढ़ाया, जिससे तपोवन पर जाया जा सकता था।

छियालीसवाँ सर्ग

प्रातः उठकर पुरवासियों का विलाप और निराश होकर नगर को लौटना।

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना।
शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः।। १।।
शोकजाश्रुपरिद्यूना वीक्षमाणास्ततस्ततः।
आलोकमपि रामस्य न पश्यन्ति स्म दुःखिताः।। २।।

प्रभात होने पर जब वे पुर वासी उठे तब राम को न देख कर उनकी चेतना शोक से नष्ट सी हो गयी और वे हक्के बक्के हो कर रह गये। शोक से आँसू बहाते हुए और इधर उधर देखते हुए उन दुःखी लोगों ने ढूँढने पर भी राम के पद चिन्हों को नहीं पाया।

ते विषादार्तवदना रहितास्तेन धीमता।
कृपणाः करुणा वाचो वदन्ति स्म मनीषिणः।। ३।।
धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहतचेतसः।
नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम्।। ४।।

वे मनीषी पुर वासी धीमान राम से अलग होकर विषाद से दुःखी हो करुणाजनक वचन कहने लगे। वे कहने लगे कि हमारी नींद को धिक्कार है, जिसके कारण हम चेतना रहित होकर विशाल भुजाओं और चौड़ी छाती वाले राम को नहीं देख पा रहे हैं।

किं वक्ष्यामो महाबाहुरनसूयः प्रियंवदः।
नीतः स राघवोऽस्माभिरिति वक्तुं कथं क्षमम्।। ५।।
सा नूनं नगरी दीना दृष्ट्वास्मान् राघवं विना।
भविष्यति निरानन्दा सस्त्रीबालवयोऽधिका।। ६।।
निर्यातास्तेन वीरेण सह नित्यं महात्मना।
विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम्।। ७।।

हम नगर में जा कर क्या यह कहेंगे कि उस बड़ी भुजाओं वाले, किसी से द्वेष न करने वाले, मधुरभाषी राम को हमने वन में पहुँचा दिया। यह हम कैसे कहेंगे? वह नगरी हमें राम के बिना देख कर निश्चित ही स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों सहित दीन और आनन्द रहित हो जायेगी। हम उस महात्मा वीर के साथ यह सोच कर निकले थे कि सदा इनके साथ रहें, पर अब उनसे रहित होकर उस नगर को कैसे देख सकेंगे?

इतीव बहुधा वाचो बाहुमुद्यम्य ते जनाः।
विलपन्ति स्म दुःखार्ता हृतवत्सा इवाग्र्यगाः।। ८।।
ततो मार्गानुसारेण गत्वा किंचित् ततः क्षणम्।
मार्गनाशाद् विषादेन महता समभिप्लुताः।। ९।।

इस प्रकार वे लोग अपनी बाहें उठा कर बहुत सी बातें कहते हुए उसी तरह विलाप कर रहे थे और दुखी हो रहे थे जैसे बछड़ों से बिछुड़ी हुई गायें। फिर मार्ग को ढूँढते हुए राम की खोज में कुछ दूर गये, पर क्षण भर पश्चात् मार्ग के नष्ट हो जाने के कारण वे महान विषाद में डूब गये।

तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः।
अयोध्यामगमन् सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम्।। १०।।
आलोक्य नगरीं तां च क्षयव्याकुलमानसाः।
आवर्तयन्त तेऽश्रूणि नयनैः शोकपीडितैः।। ११।।

तब वे परेशान हो कर जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से उस अयोध्या में लौट आये जहाँ सारे सत्पुरुष राम के बिना व्यथित थे। परेशानी से व्याकुल हृदय वाले वे लोग उस नगरी को देख कर शोकाकुल नेत्रों से आँसुओं की वर्षा करने लगे।

एषा रामेण नगरी रहिता नातिशोभते।
आपगा गरुडेनेव ह्रदादुद्धृतपन्नगा।। १२।।

चन्द्रहीनमिवाकाशं तोयहीनमिवार्णवम्।
अपश्यन् निहतानन्दं नगरं ते विचेतसः।। १३।।

वे कहने लगे कि यह राम से रहित नगरी इसी प्रकार अच्छी नहीं लग रही है जैसे नदी अपने गहरे कुण्ड से वहाँ के निवासी नाग को गरुड़ द्वारा निकाल लिये जाने पर होती है। उन्होंने चेतना रहित से होते हुए उस अयोध्या नगरी को चन्द्रमा से रहित आकाश और जल से रहित समुद्र के समान आनन्द से रहित देखा।

सैंतालीसवाँ सर्ग

नगरवासिनी स्त्रियों का विलाप।

स्वं स्वं निलयमागम्य पुत्रदारैः समावृताः।
अश्रूणि मुमुचुः सर्वे बाष्पेण पिहिताननाः।। १।।
न चाहृष्यन् न चामोदन् वणिजो न प्रसारयन्।
न चाशोभन्त पण्यानि नापचन् गृहमेधिनः।। २।।

वे सब लोग वापिस अपने घर आकर अपने पुत्रों और पत्नी से घिरे हुए आँसू बहाने लगे। उनके मुख आँसुओं की धारा से भरे हुए थे। उस समय उनके घर में कोई प्रसन्नता नहीं थी। उस दिन दुकानदारों ने अपनी दुकानें नहीं खोली, बाजारों में रौनक नहीं थी और गृहस्त्रियों ने घरों में खाना नहीं बनाया।

नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन् विपुलं वा धनागमम्।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाप्यनन्दत।। ३।।
गृहे गृहे रुदत्यश्च भर्तारं गृहमागतम्।
व्यगर्हयन्त दुःखार्ता वाग्भिस्तोत्त्रैरिव द्विपान्।। ४।।

शोक के कारण खोये हुए पदार्थ के या विपुल सम्पत्ति के मिल जाने पर भी लोगों ने हर्ष नहीं मनाया और माता को अपने पहले पुत्र के जन्म होने पर भी प्रसन्नता नहीं हुई। हर घर में खाली हाथ लौटे हुए अपने पति को देखकर उनकी दुःख से पीड़ित रोती हुई पत्नियों ने उन्हें कठोर वाणी से ऐसे पीड़ित किया जैसे महावत अंकुश से हाथी को करता है।

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया।
योऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन् वन।।५।।
आपगाः कृतपुण्यास्ताः पद्मिन्यश्च सरांसि च।
येषु यास्यति काकुत्स्थो विगाह्य सलिलं शुचि।।६।।

वे कहने लगीं कि संसार में बस एक ही लक्ष्मण ऐसे सत्पुरुष हैं, जो सीता के साथ राम की सेवा करते हुए उनके साथ वन में गये हैं। वे नदियाँ, वे कमलों से युक्त बावलियाँ, और वे तालाब पुण्यशाली हैं जिनके पवित्र जल में स्नान करके श्रीराम आगे जायेंगे।

शोभयिष्यन्ति काकुत्स्थमटव्यो रम्यकाननाः।
आपगाश्च महानूपाः सानुमन्तश्च पर्वताः।। ७।।
काननं वापि शैलं वा यं रामोऽनुगमिष्यति।
प्रियातिथिमिव प्राप्तं नैनं शक्ष्यन्त्यनर्चितुम्।। ८।।

सुन्दर वृक्षावलि वाले वन, विशाल कछार वाली नदियाँ और चोटियों वाले पर्वत अब राम की सुन्दरता को बढ़ायेंगे। वे वन वे पर्वत जहाँ भी श्रीराम जायेंगे, अपने प्रिय अतिथि को देखकर उनका सवागत किये बिना नहीं रह सकते।

विचित्रकुसुमापीडा बहुमञ्जरिधारिणः।
राघवं दर्शयिष्यन्ति नगा भ्रमरशालिनः।। ९।।
अकाले चापि मुख्यानि पुष्पाणि च फलानि च।
दर्शयिष्यन्त्यनुक्रोशाद् गिरयो राममागतम्।। १०।।
प्रस्नविष्यन्ति तोयानि विमलानि महीधराः।
विदर्शयन्तो विविधान् भूयश्चित्रांश्च निर्झरान्।। ११।।

वहाँ वन में विचित्र फूलों के गुच्छों से युक्त, बहुत सी मंजरियों को धारण करने वाले और भ्रमरों वाले वृक्ष राम को अपनी शोभा दिखायेंगे राम को आया हुआ देख कर पर्वत अत्यन्त आदर से समय न होने पर भी उन्हें अपने उत्तम फूल और फल दिखायेंगे। वे पर्वत राम के लिये अपने अनेक प्रकार के सुन्दर झरनों को बहाते हुए निर्मल जल की धाराओं को दिखायेंगे।

यया पुत्रश्च भर्ता च त्यक्तावैश्वर्यकारणात्।
कं सा परिहरेदन्यं कैकेयी कुलपांसनी।। १२।।
कैकेय्या न वयं राज्ये भृतका हि वसेमहि।
जीवन्त्या जातु जीवन्त्यः पुत्रैरपि शपामहे।। १३।।

जिस कैकेयी ने ऐश्वर्य के लिये अपने पुत्र और पति को छोड़ दिया, वह कुल कलंकिनी और किसका त्याग नहीं कर सकती? हम अपने पुत्रों की शपथ खाकर कहती हैं कि जब तक कैकेयी जीवित है, हम तब तक जीते

जी इसके राज्य में नहीं रहेगी, भले ही यहाँ हमारा पालन पोषण होता रहे।

या पुत्रं पार्थिवेन्द्रस्य प्रवासयति निर्घृणा।
कस्तां प्राप्य सुखं जीवेदधर्म्यां दुष्टचारिणीम्।। १४।।
उपद्रुतमिदं सर्वमनालम्भमनायकम्।
कैकेय्यास्तु कृते सर्वं विनाशमुपयास्यति।। १५।।

जिस निर्दया ने राजा के पुत्र को प्रवासित कर दिया उस अधर्मिणी और दुष्ट आचरण वाली केकेयी को प्राप्त कर कौन सुख से जी सकता है? यह सारा राज्य अब उपद्रव से युक्त, यज्ञ रहित और नेता रहित बन गया है। कैकेयी के कारण अब इसका विनाश हो जायेगा।

नहि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपतिः।
मृते दशरथे व्यक्तं विलोपस्तदनन्तरम्।। १६।।
ते विषं पिबतालोड्य क्षीणपुण्याः सदुःखिताः।
राघवं वानुगच्छध्वमश्रुतिं वापि गच्छत।। १७।।

राम के चले जाने पर अब दशरथ जी जीवित नहीं रहेंगे। दशरथ जी की मृत्यु के बाद इस राज्य का लोप होना निश्चित है। अब हमारे पुण्य नष्ट हो गये हैं, इसलिये हमें दुःख ही मिलेगा। इसलिये आप लोग या तो जहर घोल कर पीलो या हम राम के पीछे जाते हैं या किसी ऐसे स्थान पर चले जाँय जहाँ कैकेयी का नाम भी न सुनाई पड़े।

मिथ्याप्रव्राजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः।
भरते संनिबद्धाः स्मः सौनिके पशवो यथा।। १८।।
पूर्णचन्द्राननः श्यामो गूढजत्रुररिंदमः।
आजानुबाहुः पद्माक्षो रामो लक्ष्मणपूर्वजः।। १९।।
पूर्वाभिभाषी मधुरः सत्यवादी महाबलः।
सौम्यश्च सर्वलोकस्य चन्द्रवत् प्रियदर्शनः।। २०।।

झूठे वर की कल्पना करके श्रीराम को पत्नी और लक्ष्मण के साथ देश निकाला दे दिया और हमें उसी प्रकार भरत के साथ बाँध दिया गया है जैसे पशु को कसाई के घर बाँध दिया जाये। वे श्रीराम जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान है, जो श्यामवर्ण हैं, जिनके गले की हँसली माँस से ढकी हुई है, जो शत्रुओं का दमन करने वाले हैं, जिनके बाहू घुटनों तक लम्बे हैं, जिनकी आँखें कमल के समान हैं और जो लक्ष्मण के बड़े भाई हैं, जो मिलने पर पहले ही स्वयं बोलते हैं, जो मधुर भाषी हैं, सत्यवादी हैं, महाबलशाली हैं, सारे लोगों के लिये सौम्यस्वभाव हैं, उनका दर्शन चन्द्रमा के समान प्रिय लगने वाला है।

नूनं पुरुषशार्दूलो मत्तमातङ्गविक्रमः।
शोभयिष्यत्यरण्यानि विचरन् स महारथः।। २१।।
तास्तथा विलपन्त्यस्तु नगरे नागरस्त्रियः।
चुक्रुशुर्दुःखसंतप्ता मृत्योरिव भयागमे।। २२।।

मतवाले हाथी के समान विक्रम वाले, महारथी पुरुष व्याघ्र श्रीराम वन में विचरण करते हुए वास्तव में वनों की सुन्दरता को बढ़ायेंगे। वे सब नगरवासियों की पत्नियाँ इस प्रकार विलाप करती हुईं, दुःख से संतप्त होकर ऐसे जोर जोर से रोने लगीं जैसे उन्हें मृत्यु का भय उपस्थित हो गया हो।

इत्येव विलपन्तीनां स्त्रीणां वेश्मसु राघवम्।
जगामास्तं दिनकरो रजनी चाभ्यवर्तत।। २३।।
नष्टज्वलनसंतापा प्रशान्ताध्यायसत्कथा।
तिमिरेणानुलिप्तेव तदा सा नगरी बभौ।। २४।।

इस प्रकार राम के लिये स्त्रियाँ घरों में विलाप करती रहीं। उनके विलाप करते हुए ही सूर्य अस्त हो गया और रात्रि आ गयी। उस समय नगर में किसी के घर यज्ञ के लिये आग नहीं जलाई गयी। स्वाध्याय और धार्मिक कथाएँ भी नहीं हुई। वह नगरी उस समय अँधेरे में पुती हुई सी लग रही थी।

अड़तालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का कोसल जनपद को लाँघते हुए, वेदश्रुति, गोमती और स्यंदिका नदियों को पार करके आगे जाना।

रामोऽपि रात्रिशेषेण तनैव महदन्तरम्।
जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन्।। १।।
तथैव गच्छतस्तस्य व्यपायाद् रजनी शिवा।
उपास्य तु शिवां संध्यां विषयानत्यगाहत।। २।।

उधर राम भी पिता की आज्ञा को ध्यान में रख कर बची हुई शेष रात्रि में, पर्याप्त दूरी पर निकल गये। उसी तरह चलते चलते जब वह कल्याणकारी रात्रि व्यतीत हो गई तब वे मंगलमयी संध्योपासना

कर और दूसरी बस्तियों और गाँवों को पार कर गये।

ग्रामान् विकृष्टसीमान्तान् पुष्पितानि वनानि च।
पश्यन्नतिययौ शीघ्रं शनैरिव हयोत्तमैः।। ३।।
शृण्वन् वाचो मनुष्याणां ग्रामसंवासवासिनाम्।
राजानं धिग् दशरथं कामस्य वशमास्थितम्।। ४।।

वे उन ग्रामों को जिनकी सीमाओं के समीप की भूमि को जोता हुआ था और उन वनों को जिनमें फूल खिले हुए थे, देखते हुए श्रेष्ठ घोड़ों के द्वारा शीघ्रता से उन्हें पार कर गये, यद्यपि देखने की तन्मयता के कारण वे घोड़ों को धीमा ही समझ रहे थे। वहाँ के दृश्यों को देखने के साथ वे वहाँ ग्रामों के समूहों के निवासी लोगों की बातें भी सुन रहे थे जो कह रहे थे कि कामनाओं के वश में पड़े हुए राजा दशरथ को धिक्कार है।

हा नृशंसाद्य कैकेयी पापा पापानुबन्धिनी।
तीक्ष्णा सम्भिन्नमर्यादा तीक्ष्णकर्मणि वर्तते।। ५।।
या पुत्रमीदृशं राज्ञः प्रवासयति धार्मिकम्।
वनवासे महाप्राज्ञं सानुक्रोशं जितेन्द्रियम्।। ६।।

हाय निर्दय, पाप में लगी हुई, पापिनी, धर्म की मर्यादा को छिन्न करने वाली और तीव्र स्वभाव वाली कैकेयी अब निष्ठुर कार्यों में लगी हुई है, जिसने राजा के इतने धार्मिक महाप्राज्ञ, जितेन्द्रिय तथा दयालु पुत्र को वनवास के लिये घर से निकलवा दिया है।

कथं नाम महाभागा सीता जनकनन्दिनी।
सदा सुखेष्वभिरता दुःखान्यनुभविष्यति।। ७।।
अहो दशरथो राजा निःस्नेहः स्वसुतं प्रति।
प्रजानामनघं रामं परित्यक्तुमिहेच्छति।। ८।।

महाभाग जनकपुत्री सीता, जो सदा सुखों में रही है अब दुःखों को कैसे सहन करेगी? अरे राजा दशरथ भी अपने पुत्र के लिये स्नेह रहित हो गये जो प्रजाओं के लिये निष्पाप राम को त्यागने की इच्छा कर रहे हैं।

ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम्।
उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम्।। ९।।
गत्वा तु सुचिरं कालं ततः शीतवहां नदीम्।
गोमतीं गोयुतानूपामतरत् सागरङ्गमाम्।। १०।।

उसके पश्चात श्रीराम कल्याणमय जल से युक्त वेदश्रुति नाम की नदी को पार कर, अगस्त्य मुनि की दक्षिण दिशा की तरफ चल दिये। उसके बाद देर तक चलने के उपरान्त उन्होंने शीतल जल वाली, और समुद्रगामिनी गोमती, नदी को, जिसके कछार में गायें चर रहीं थीं, पार किया।

गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः।
मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम्।। ११।।
स महीं मनुना राज्ञा दत्तामिक्ष्वाकवे पुरा।
स्फीतां राष्ट्रवृतां रामो वैदेहीमन्वदर्शयत्।। १२।।

गोमती नदी को पार करके श्रीराम तेज घोड़ों के द्वारा मोरों और हंसों के कलरव से गुंजायमान स्यन्दिका नदी को भी पार कर गये। तब श्रीराम ने सीता को वह भूमि दिखलाई, जिसे पहले मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था। यह धनधान्य से भरपूर और अनेक जनपदों से घिरी हुई थी।

उनंचासवाँ सर्ग

श्रीराम का अयोध्यापुरी से वनवास की आज्ञा माँगना और शृंगवेरपुर में गंगा तट पर पहुँच कर रात्रि में निवास करना। वहाँ निषादराज गुह द्वारा उनका सत्कार।

विशालान् कोसलान् रम्यान् यात्वा लक्ष्मणपूर्वजः।
अयोध्यामुन्मुखो धीमान् प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।। १।।
आपृच्छे त्वां पुरिश्रेष्ठे काकुत्स्थपरिपालिते।
दैवतानि च यानि त्वां पालयन्त्यावसन्ति च।। २।।
निवृत्तवनवासस्त्वामनृणो जगतीपतेः।
पुनर्द्रक्ष्यामि मात्रा च पित्रा च सह संगतः।। ३।।

इसके पश्चात् विशाल और सुन्दर कोसल देश को पार कर लक्ष्मण के बड़े भाई धीमान् राम ने अयोध्या की तरफ अपना मुँह करके कहा कि हे रघुवंशी राजाओं से परिपालित श्रेष्ठ पुरी अयोध्या! मैं तुमसे और उन देवताओं से अर्थात् विद्वान् तथा तथा सदाचारी पुरुषों से जो तुम्हारे अन्दर रहते हैं, और तुम्हारी रक्षा करते हैं, अपने विदा होने की आज्ञा चाहता हूँ। जब मेरा वनवास समाप्त हो जायेगा, मैं राजा के ऋण से उऋण हो जाऊँगा, तब मैं पुनः आपके दर्शन करूँगा और अपने माता पिता से भी मिलूँगा।

मध्येन मुदितं स्फीतं रम्योद्यानसमाकुलम्।
राज्यं भोज्यं नरेन्द्राणां ययौ धृतिमतां वरः।। ४।।
तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयामशैवलाम्।
ददर्श राघवो गङ्गां रम्यामृषिनिषेविताम्।। ५।।

कोसल देश से आगे बढ़ने पर धैर्यवानों में श्रेष्ठ श्रीराम ऐसे राज्य के मध्य में से निकले, जहाँ के निवासी प्रसन्नता से युक्त थे, जो धनधान्य से भरपूर था और सुन्दर बागों से भरा हुआ था। वह राज्य सीमावर्ती राजाओं के अधि कार में था। वहाँ श्रीराम ने दिव्य नदी त्रिपथ गामिनी गंगा को देखा, जिसका जल शीतल था, जिसमें शैवाल नहीं थी, जो रमणीय थी और जिसके साथ ऋषियों के आश्रम बने हुए थे।

जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मलहासिनीम्।
क्वचिद् वेणीकृतजलां क्वचिदावर्तशोभिताम्।। ६।।
क्वचित् स्तिमितगम्भीरां क्वचिद् वेगसमाकुलाम्।
क्वचिद् गम्भीरनिर्घोषां क्वचिद् भैरवनिःस्वनाम्।। ७।।

जल के पत्थरों से टकराने पर वहाँ जो ऊँची आवाज हो रही थी, वह मानो गंगा का अट्टहास था। जो फेन प्रकट हो रहा था, वह मानो गंगा का निर्मल हँसी थी। गंगा की धारा कहीं तो वेणी की आकृति सी थी और कहीं वह भँवरों से सुशोभित हो रही थी। कहीं तो उसकी धारा रुकी हुई सी और गहरे पानी वाली थी और कहीं तीव्रता के साथ बह रही थी। कहीं वह गम्भीर ध्वनि प्रकट कर रही थी और कहीं उसमें से भयानक नाद उठ रहा था।

देवसंघाप्लुतजलां निर्मलोत्पलसंकुलाम्।
क्वचिदाभोगपुलिनां क्वचिन्निर्मलवालुकाम्।। ८।।
हंससारससंघुष्टां चक्रवाकोपशोभिताम्।
सदामत्तैश्च विहगैरभिपन्नामनिन्दिताम्।। ९।।

उसमें विद्वान और सदाचारी लोग गोते लगा रहे थे। कहीं उसमें निर्मल कमल खिले हुए थे। कहीं उसका विशाल किनारा दिखाई दे रहा था तो कहीं स्वच्छ रेत फैली हुई थी। उस अनिन्दित नदी पर हंस और सारसों की ध्वनि गूँज रही थी। चकवे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। सदा मस्त रहने वाले अन्य प्रकार के पक्षी उसके ऊपर सदा मँडराते रहते थे।

क्वचित् तीररुहैर्वृक्षैर्मालाभिरिव शोभिताम्।
क्वचित् फुल्लोत्पलच्छन्नां क्वचित् पद्मवनाकुलाम्।। १०।।
क्वचित् कुमुदखण्डैश्च कुड्मलैरुपशोभिताम्।
नानापुष्परजोध्वस्तां समदामिव च क्वचित्।। ११।।

कहीं तटवर्ती वृक्ष माला का सा रूप धारण कर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। कहीं उसकी धारा फूले हुए उत्पलों से आच्छादित थी तो कहीं कमलों के वनों से भरी हुई थी। कहीं वह कुमुदों के समूहों से तथा कलिकाओं से सुशोभित हो रही थी। कहीं कहीं वह धारा तरह तरह की पुष्पों की धूल से व्याप्त होकर मदमस्त नारी के समान प्रतीत होती थी।

व्यपेतमलसंघातां मणिनिर्मलदर्शनाम्।
प्रमदामिव यत्नेन भूषितां भूषणोत्तमैः।। १२।।
फलपुष्पैः किसलयैर्वृतां गुल्मैर्द्विजैस्तथा।
शिंशुमारैश्च नक्रैश्च भुजंगैश्च समन्विताम्।। १३।।
आससाद महाबाहुः शृङ्गवेरपुरं प्रति।
तामूर्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्य महारथः।। १४।।
सुमन्त्रमब्रवीत् सूतमिहैवाद्य वसामहे।

गंगा का जल मल को दूर करने वाला और मणि के समान निर्मल था। गंगा, फलों, पुष्पों पत्तों, गुल्मों और पक्षियों से घिर कर सुन्दर अलंकारों से यत्नपूर्वक सुशोभित स्त्री के समान सुन्दर लग रही थी। उसके जल में सूँस, घड़ियाल और साँप रहते थे। गंगा की वह ध रा शृंगवेरपुर के राज्य में थी। तब उस गंगा को, जिसके भँवर लहरों से व्याप्त थे, देख कर महारथी राम ने सारथी सुमन्त्र से कहा कि आज हम यहीं रहेंगे।

अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान्।। १५।।
सुमहानिङ्गुदीवृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे।
लक्ष्मणश्च सुमन्त्रश्च बाढमित्येव राघवम्।। १६।।
उक्त्वा तमिङ्गुदीवृक्षं तदोपययतुर्हयैः।

यह नदी के समीप ही बहुत से फूलों और नये पत्तों वाला इंगुदी का विशाल वृक्ष है, हे सारथी! हम इसके नीचे ही रहेंगे। तब लक्ष्मण और सुमन्त्र श्रीराम से 'अच्छा' ऐसा कह कर घोड़ों के द्वारा उस वृक्ष के समीप गये।

रामोऽभियाय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः।। १७।।
रथादवतरत् तस्मात् सभार्यः सहलक्ष्मणः।
सुमन्त्रोऽप्यवतीर्याथ मोचयित्वा हयोत्तमान्।। १८।।
वृक्षमूलगतं राममुपतस्थे कृताञ्जलिः।

तब उस सुन्दर वृक्ष के समीप पहुँचकर इक्ष्वाकुनन्दन राम लक्ष्मण और सीता के साथ रथ से उतर गये। सुमन्त्र भी रथ से उतर कर, घोड़ों को रथ से खोल कर, पेड़ के नीचे बैठे श्रीराम के पास जाकर हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा।। १९।।
निषादजात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः।
स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम्।। २०।।
वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः।

वहाँ गुह नाम का राजा राम का उनकी आत्मा के समान प्रिय मित्र था। वह निषाद जाति का था। वह बलवान व निषादों का प्रसिद्ध राजा था। वह नरश्रेष्ठ राम को अपने देश में आया हुआ सुन कर, वृद्ध लोगों, मंत्रियों और अपने बान्धवों से घिर कर राम के समीप आया।

ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम्।। २१।।
सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद् गुहेन सः।
तमार्तः सम्परिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत्।। २२।।
यथायोध्या तथेदं ते राम किं करवाणि ते।
ईदृशं हि महाबाहो कः प्राप्स्यत्यतिथिं प्रियम्।। २३।।

तब निषादों के राजा को दूर से ही आया हुआ देख कर राम लक्ष्मण के साथ आगे बढ़ कर उससे मिले। गुह ने श्रीराम को गले से लगा लिया और उनकी अवस्था से दुःखी हो कर कहा कि हे राम! तुम्हारे लिये जैसी अयोध्या है, वैसा ही यह देश है। आप बताइये कि मैं आपके लिये क्या करूँ? हे महाबाहु! आप जैसा प्यारा अतिथि किसको मिलेगा?

ततो गुणवदन्नाद्यमुपादाय पृथग्विधम्।
अर्घ्यं चोपानयच्छीघ्रं वाक्यं चेदमुवाच ह।। २४।।
स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही।
वयं प्रेष्या भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः।। २५।।
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम्।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते।। २६।।

फिर वह अनेक तरह के गुणवान् अन्नादि खाद्य पदार्थ लेकर आया और शीघ्रता से श्रीराम को अर्घ्य समर्पित कर उनसे बोला कि हे महाबाहु! आपका स्वागत है। यह सारी भूमि आपकी है। हम आपके सेवक हैं, आप हमारे स्वामी हैं, आप हमारे राज्य का अच्छी तरह से शासन कीजिये। ये आपके लिये खाने वाले, स्वाद लेने वाले, चाटने वाले, और पीने वाले पदार्थ उपस्थित हैं। अच्छे बिस्तरे और घोड़ों का भोजन भी है।

गुहमेव ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह।
अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वदा वयम्।। २७।।
पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च।
भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत्।। २८।।
दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च।। २९।।

गुह के ऐसा कहने पर श्रीराम ने उत्तर दिया कि आपने पैदल यहाँ आकर जो स्नेह दिखाया है, इसी के द्वारा आपने हमारी पूजा कर दी और हमें प्रसन्न कर दिया। उन्होंने अपनी अच्छी गोल भुजाओं द्वारा गुह का आलिंगन करते हुए यह कहा कि हे गुह! सौभाग्य की बात है कि मैं तुम्हें बान्धवों के साथ सकुशल देख रहा हूँ। क्या आपके देश में, मित्रों में और वनों में भी कुशलता है?

यत् त्विदं भवता किंचित् प्रीत्या समुपकल्पितम्।
सर्वं तदनुजानामि नहि वर्ते प्रतिग्रहे।। ३०।।
कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम्।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम्।। ३१।।

आपने प्रेम से जो कुछ भी पदार्थ यहाँ प्रस्तुत किये हैं, मैं उन्हें वापिस ले जाने की आज्ञा देता हूँ क्योंकि मैं इन उपहारों का उपयोग नहीं करता हूँ। तुम मुझे इस समय कुश चीर और मृगचर्म धारण करने वाला, फल मूल खाने वाला, धर्म में लगा हुआ वन में विचरने वला तपस्वी समझो।

अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित्।
एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः।। ३२।।
एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे।
एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः।। ३३।।

इस समय मैं घोड़ो के भोजन का ही अर्थी हूँ किसी और का नहीं। इसी के द्वारा मेरा सत्कार हो जाएगा। ये घोड़े पिता दशरथ के प्रिय हैं। इनका अच्छा प्रबन्ध कर देने से ही मेरा सत्कार हो जायेगा।

ततश्चीरोत्तरासङ्गः संध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।
जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम्।। ३४।।
तस्य भूमौ शयानस्य पदौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः।
सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः।। ३५।।
गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन्।
अन्वजाग्रत् ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः।। ३६।।

उसके बाद वल्कल का उत्तरीय धारण करने वाले श्रीराम ने साँयकाल की संध्या करके भोजन के रूप में लक्ष्मण द्वारा लाया हुआ जल ही ग्रहण किया। श्रीराम पत्नी के साथ भूमि पर सोये। लक्ष्मण उनके पैरों को धोकर थोड़ा दूर हट कर वृक्ष का सहारा लेकर बैठ गये। गुह भी सुमन्त्र के साथ लक्ष्मण से बात करते हुए, धनुष लेकर सावधानी से राम की रक्षा करता हुआ जागता रहा।

पचासवाँ सर्ग

निषादराज गुह के समक्ष लक्ष्मण का विलाप।

तं जाग्रतमदम्भेन भ्रातुरर्थाय लक्ष्मणम्।
गुहः संतापसंतप्तो राघवं वाक्यमब्रवीत्।। १।।
इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता।
प्रत्याश्वसिहि साध्वस्यां राजपुत्र यथासुखम्।। २।।

बिना किसी अभिमान के स्वाभाविक रूप से लक्ष्मण को भाई के लिये जागता हुआ देख कर गुह ने दुखी हो कर उनसे यह कहा कि हे तात! यह सुख दायक शय्या आपके लिये बनाई है। इसमें सुखपूर्वक अच्छी तरह से आराम कर लो।

उचितोऽयं जनः सर्वः क्लेशानां त्वं सुखोचितः।
गुप्त्यर्थं जागरिष्यामः काकुत्स्थस्य वयं निशाम्।। ३।।
नहि रामात् प्रियतमो ममास्ते भुवि कश्चन।
ब्रवीम्येव च ते सत्यं सत्येनैव च ते शपे।। ४।।

तुम सदा सुख में रहे हो। हम यह यहाँ कष्टों को सहने के अभ्यासी हैं। राम की रक्षा के लिये हम रात में जागते रहेंगे। मैं सत्य की शपथ खा कर तुमसे सत्य कहता हूँ कि राम से अधिक मुझे संसार में कोई और प्यारा नहीं है।

सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया।
रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वथा ज्ञातिभिः सह।। ५।।
न मेऽस्त्यविदितं किंचिद् वनेऽस्मिंश्चरतः सदा।
चतुरङ्गं ह्यतिबलं सुमहत् संतरेमहि।। ६।।

मैं सोते हुए अपने प्रिय सखा राम की सीता के साथ अपने बान्धवों के सहित हाथ में धनुष लेकर रक्षा करूँगा। मुझे यहाँ वन में घूमते रहने के कारण यहाँ की कोई भी बात अविदित नहीं है। हम यहाँ बड़ी चतुरंगिणी सेना को भी जीत सकते हैं।

लक्ष्मणस्तु तदोवाच रक्ष्यमाणास्त्वयानघ।
नात्र भीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता।। ७।।
कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा।। ८।।

लक्ष्मण ने तब कहा कि हे निष्पाप! धर्म का आचरण ही करने वाले तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर यहाँ हमें कोई भय नहीं है। पर दशरथ के पुत्र श्रीराम के सीता के साथ भूमि पर सोने पर मैं जीवित रहने या सुख प्राप्त करने के लिये कैसे सो सकता हूँ?

यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि।
तं पश्य सुखसंसुप्तं तृणेषु सह सीतया।। ९।।
अस्मिन् प्रव्रजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति।
विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति।। १०।।

जिनको युद्ध में देवता और असुर भी सहन नहीं कर सकते, उन श्रीराम को सीता के साथ तिनकों पर सुख के साथ सोया हुआ देखो। इनके वन में प्रवास करने पर राजा दशरथ निश्चित रूप से अधिक देर तक जीवित नहीं रहेंगे और यह पृथ्वी जल्दी ही विधवा हो जायेगी।

विनद्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः।
निर्घोषोपरतं तात मन्ये राजनिवेशनम्।। ११।।
कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम।
नाशंसे यदि जीवन्ति सर्वे ते शर्वरीमिमाम्।। १२।।

मैं यह मानता हूँ कि रनिवास की स्त्रियाँ जोर-जोर से रो कर अब थकावट के कारण चुप हो गयी होंगी। राजभवन में भी होने वाला हा हाकार और चीत्कार अब समाप्त हो गया होगा। मैं यह नहीं कह सकता कि कौसल्या, राजा और मेरी माता इस रात्रि में जीवित रहेंगी या नहीं?

जीवेदपि हि मे माता शत्रुघ्नस्यान्ववेक्षया।
तद् दुःखं यदि कौसल्या वीरसूर्विनशिष्यति।। १३।।
अनुरक्तजनाकीर्णा सुखालोकप्रियावहा।
राजव्यसनसंसृष्टा सा पुरी विनशिष्यति।। १४।।

शायद मेरी माता शत्रुघ्न के कारण जीवित रह जाये, पर यदि वीरमाता कौसल्या नष्ट हो गयी तो यह बड़े दुःख की बात होगी। वह अयोध्यापुरी जो राम में अनुरक्त लोगों से भरी हुई है, जो सुख का दर्शन कराने वाले प्रिय पदार्थों की प्राप्ति कराने वाली है, वह राजा के देहान्त रूप कष्ट से युक्त होकर विनाश को प्राप्त हो जायेगी।

कथं पुत्रं महात्मानं ज्येष्ठपुत्रमपश्यतः।
शरीरं धारयिष्यन्ति प्राणा राज्ञो महात्मनः।। १५।।
विनष्टे नृपतौ पश्चात् कौसल्या विनशिष्यति।
अनन्तरं च मातापि मम नाशमुपैष्यति।। १६।।

अपने ज्येष्ठ पुत्र महात्मा राम को न देखने के कारण महात्मा राजा अपने प्राणों को कैसे धारण करेंगे? राजा

के देहान्त के पश्चात् कौसल्या की भी मृत्यु हो जायेगी और उसके पश्चात् मेरी माता भी विनाश को प्राप्त हो जाएगी।।

अपि जीवेद् दशरथो वनवासात् पुनर्वयम्।
प्रत्यागम्य महात्मानमपि पश्याम सुव्रतम्।। १७।।
अपि सत्यप्रतिज्ञेन सार्धं कुशलिना वयम्।
निवृत्ते वनवासेऽस्मिन्नयोध्यां प्रविशेमहि।। १८।।
परिदेवयमानस्य दुःखार्तसय महात्मनः।
तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत।। १९।।

क्या पिता दशरथ जीवित रहेंगे? क्या वनवास से वापिस लौट कर हम उन अच्छे व्रत वाले महात्मा को पुनः देख सकेंगे? क्या वनवास की समाप्ति पर हम सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम के साथ कुशलपूर्वक अयोध्या में प्रवेश कर सकेंगे? इस प्रकार दुःख से पीड़ित होकर विलाप करते हुए उन महात्मा राजपुत्र लक्ष्मण की वह रात्रि व्यतीत हो गयी।

तथा हि सत्यं ब्रुवति प्रजाहिते
नरेन्द्रसूनौ गुरुसौहृदाद् गुहः।
मुमोच वाष्पं व्यसनाभिपीडितो
ज्वरातुरो नाग इव व्यथातुरः।। २०।।

इस प्रकार राजपुत्र लक्ष्मण के प्रजा के हित की यथार्थ बात करने पर महान प्रेम के कारण गुह भी दुःख से पीड़ित हो, ज्वर से युक्त पीड़ा से बेचैन हाथी के समान आँसू बहाने लगा।

इक्यावनवाँ सर्ग

श्री राम की आज्ञा से गुह का नाव मँगाना, श्रीराम का सुमन्त्र को अयोध्यापुरी लौट जाने के लिये आज्ञा देना और माता पिता से कहने के लिये सन्देश सुनाना। नाव से पार उतर कर श्रीराम आदि का साँयकाल एक वृक्ष के नीचे विश्राम करना।

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।। १।।
भास्करोदयकालोऽसौ गता भगवती निशा।
असौ सुकृष्णो विहगः कोकिलस्तात कूजति।। २।।

सवेरा होने पर महान यश तथा विशाल वक्ष वाले राम ने शुभ लक्षणों वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण से यह कहा कि हे तात! सूर्योदय का समय हो गया है, भगवती रात्रि व्यतीत हो गयी है और यह काले रंग का पक्षी कोकिल कूक रही है।

बर्हिणानां च निर्घोषः श्रूयते नदतां वने।
विज्ञाय रामस्य वचः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः।। ३।।
गुहमामन्त्र्य सूतं च सोऽतिष्ठद् भ्रातुरग्रतः।

वन में बोलते हुए मोरों की ध्वनि सुनाई दे रही है। तब मित्रों को आनन्द पहुँचाने वाले लक्ष्मण ने राम की बात को समझ कर सूत और गुह को बुलाया तथा भाई के आगे खड़े हो गये।

स तु रामस्य वचनं निशम्य प्रतिगृह्य च।। ४।।
स्थपतिस्तूर्णमाहूय सचिवानिदमब्रवीत्।
अस्यवाहनसंयुक्तां कर्णग्राहवतीं शुभाम्।। ५।।
सुप्रतारां दृढां तीर्थे शीघ्रं नावमुपाहर।

गुह ने श्रीराम का वचन सुन कर और समझ कर जल्दी ही अपने मंत्रियों को बुलाया और कहा कि डॉड लगी हुई, और कर्णधार वाली ऐसी सुन्दर और दृढ़ नाव को घाट पर लेकर आओ, जिसको सुगमता पूर्वक खेया जा सके।

तं निशम्य गुहादेशं गुहामात्यो गतो महान्।। ६।।
उपोह्य रुचिरां नावं गुहाय प्रत्यवेदयत्।
ततः स प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहो राघवमब्रवीत्।। ७।।
उपस्थितेयं नौर्देव भूयः किं करवाणि ते।

गुह के उस आदेश को सुनकर गुह का वह महान मंत्री गया ओर एक सुन्दर नाव को ला कर गुह को उसकी सूचना दी। तब गुह ने हाथ जोड़ कर श्रीराम से कहा कि नाव उपस्थित है। हे देव अब फिर बताइये कि मैं आपके लिये क्या करूँ?

तवामरसुतप्रख्य तर्तुं सागरगामिनीम्।। ८।।
नौरियं पुरुषव्याघ्र शीघ्रमारोह सुव्रत।
अथोवाच महातेजा रामो गुहमिदं वचः।। ९।।
कृतकामोऽस्मि भवता शीघ्रमारोप्यतामिति।

हे देवपुत्र के समान प्रख्याति वाले, अच्छे व्रतवाले, नरश्रेष्ठ! इस समुद्रगामिनी गंगा को पार करने के लिये

यह नाव है। आप जल्दी ही इस पर आरूढ़ होइये। तब महातेजस्वी राम ने कहा कि आपके द्वारा मेरी कामना पूरी हो गयी। अब शीघ्र ही सामान नाव पर चढ़वा दो।

ततः कलापान् संनह्य खड्गौ बध्वा च धन्विनौ।। १०।।
जग्मतुर्येन तां गङ्गां सीतया सह राघवौ।
राममेवं तु धर्मज्ञमुपागत्य विनीतवत्।। ११।।
किमहं करवाणीति सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत्।

इसके पश्चात उन दोनों राम लक्ष्मण ने कवच धारण कर लिये, खड्ग बाँध कर धनुष हाथ में ले लिये और सीता के साथ, जिससे सब जाया करते थे उसी मार्ग से वे गंगा की तरफ गये। तब सुमन्त्र धर्मज्ञ राम के समीप जाकर विनय के साथ हाथ जोड़कर बोले कि मुझे क्या करना चाहिये?

ततोऽब्रवीद् दाशरथिः सुमन्त्रं
स्पृशन् करेणोत्तमदक्षिणेन।
सुमन्त्र शीघ्रं पुनरेव याहि
राज्ञः सकाशे भव चाप्रमत्तः।। १२।।

तब श्रीराम ने उत्तम दायें हाथ से सुमन्त्र को स्पर्श करते हुए कहा कि हे सुमन्त्र तुम जल्दी ही पुनः राजा के पास जाओ और सावधान होकर रहो।

निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धि कृतं मम।
रथं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामो महावनम्।। १३।।
आत्मानं त्वभ्यनुज्ञातमवेक्ष्यार्तः स सारथिः।
सुमन्त्रः पुरुषव्याघ्रमैक्ष्वाकमिदमब्रवीत्।। १४।।

अब तुम जाओ उन्होंने उससे कहा कि मैंने यहाँ तक ही रथ से यात्रा की है। अब रथ को छोड़कर हम पैदल ही महान वन में जाएँगे। तब अपने को लौटने का आदेश दिया हुआ देख कर दुःख से पीड़ित हो कर वह सारथी सुमन्त्र नरश्रेष्ठ श्रीराम से यह बोले।

नातिक्रान्तमिदं लोके पुरुषेणेह केनचित्।
तव सभ्रातृभार्यस्य वासः प्राकृतवद् वने।। १५।।
न मन्ये ब्रह्मचर्ये वा स्वधीते वा फलोदयः।
मार्दवार्जवयोर्वापि त्वां चेद् व्यसनमागतम्।। १६।।

परमात्मा की इच्छा का संसार में कोई भी मनुष्य उलंघन नहीं कर सकता, जिसके कारण आपको भाई और पत्नी के साथ वन में सामान्य मनुष्यों की भाँति निवास करना पड़ेगा। यदि आपको भी संकट से ग्रस्त होना पड़ा तो मैं समझता हूँ कि ब्रह्मचर्य का पालन करना, अच्छे शास्त्रों का अध्ययन करना, मृदुता और कोमलता से रहना इन सब का कोई फल नहीं है।

वयं खलु हता राम ये त्वया ह्युपवञ्चिताः।
कैकेय्या वशमेष्यामः पापाय दुःखभागिनः।। १७।।
इति ब्रुवन्नात्मसमं सुमन्त्रः सारथिस्तदा।
दृष्ट्वा दूरगतं रामं दुःखार्तो रुरुदे चिरम्।। १८।।

हे राम! आपके द्वारा हमें त्याग देने हम बुरी तरह से मारे गये। अब हम पापिनी कैकेयी के वश में रह कर दुःख के भागी बनेंगे। ऐसा कहते हुए तब सारथी सुमन्त्र आत्मा के समान प्रिय राम को दूर जाते हुए देख कर दुःख से व्याकुल हो देर तक रोते रहे।

ततस्तु विगते बाष्पे सूतं स्पृष्टोदकं शुचिम्।
रामस्तु मधुरं वाक्यं पुनः पुनरुवाच तम्।। १९।।
इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये।
यथा दशरथो राजा मां न शोचेत् तथा कुरु।। २०।।

तब आँसुओं के रुकने पर आचमन कर पवित्र हुए सारथी को राम ने मधुर वाणी में उससे बार बार यह कहा हे सुमन्त्र! इक्ष्वाकुवंशियों का आप जैसा हित चिन्तक मित्र मैं और किसी को नहीं देखता। इसलिये आप वहाँ जाकर जिससे राजा दशरथ मेरी चिन्ता न करें वैसा ही करो।

शोकोपहतचेताश्च वृद्धश्च जगतीपतिः।
कामभारावसन्नश्च तस्मादेतद् ब्रवीमि ते।। २१।।
यद् यथा ज्ञापयेता किंचित् स महात्मा महीपतिः।
कैकेय्याः प्रियकामार्थं कार्यं तदविकाङ्क्षया।। २२।।

संसार के स्वामी महाराज दशरथ बूढ़े हैं, उनकी मनोकामनाएँ विफल हो गयीं हैं और उनका हृदय शोक से पीड़ित है, इसलिये वे महात्मा राजा जो कुछ भी कैकेयी का प्रिय करने की इच्छा से आपको आज्ञा करें, उसे आप आदर पूर्वक करें।

एतदर्थं हि राज्यानि प्रशासति नराधिपाः।
यदेषां सर्वकृत्येषु मनो न प्रतिहन्यते।। २३।।
यद् यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति।
न च ताम्यति शोकेन सुमन्त्र कुरु तत् तथा।। २४।।

राजा लोग इसीलिये राज्य करते हैं जिससे उनके सारे कार्यों में उनकी इच्छा का प्रतिरोध न हो। इसलिये जिस तरह से महाराज खिन्नता को प्राप्त न हों और शोक से दुर्बल न हों, हे सुमन्त्र तुम वैसा ही करो।

अदृष्टदु:खं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम्।
ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैव मम हेतोरिदं वचः।। २५।।
न चाहमनुशोचामि लक्ष्मणो न च शोचति।
अयोध्यायाश्च्युताश्चयुताश्चेति वने वत्स्यामहेति वा।। २६।।

महाराज ने कभी दु:ख को नहीं देखा है, वे वृद्ध हैं, आर्य और जितेन्द्रिय हैं। तुम उनको प्रणाम कर मेरी तरफ से यह कहना कि हम अयोध्या से निकल गये, या हमें वन में रहना पड़ेगा, इस बात में न तो मुझे शोक है और न लक्ष्मण को है।

चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनः पुनः।
लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसे शीघ्रमागतान्।। २७।।
आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवन्दनम्।
सीताया मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च।। २८।।

चौदह वर्ष समाप्त होने पर हम पुनः लौट आयेंगे और आप, मुझे लक्ष्मण को और सीता को शीघ्र ही आया हुआ देखोगे। आप माता कौसल्या को मुझ ज्येष्ठ पुत्र की, लक्ष्मण की और सीता की तरफ से प्रणाम कहना और हमारी कुशलता के बारे में बताना।

ब्रूयाश्चापि महाराजं भरतं क्षिप्रमानय।
आगतश्चापि भरतः स्थाप्यो नृपमते पदे।। २९।।
भरतं च परिष्वज्य यौवराज्येऽभिषिच्य च।
अस्मत्संतापजं दु:खं न त्वामभिभविष्यति।। ३०।।

आप महाराज से यह भी कहना कि आप भरत को जल्दी बुलवाइये और उनके आने पर अपने अभीष्ट पद पर उनको स्थापित कीजिये। भरत को छाती से लगा कर उसे युवराज बना कर हमारे वियोग का दु:ख आपको दुर्बल नहीं करेगा।

भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे।
तथा मातृषु वर्तेथाः सर्वास्वेवाविशेषतः।। ३१।।
यथा च तव कैकेयी सुमित्रा चाविशेषतः।
तथैव देवी कौसल्या मम माता विशेषतः।। ३२।।

भरत से भी हमारा यह सन्देश कहना कि तुम जैसा राजा के प्रति बर्ताव करोगे, वैसा ही सारी माताओं के साथ भी समान बर्ताव करना। जैसी तुम्हारे लिये कैकेयी है वैसे ही सुमित्रा और मेरी माता कौसल्या भी होनी चाहिये। इनमें कोई अन्तर मत रखना।

तातस्य प्रियकामेन यौवराज्यमवेक्षता।
लोकयोरुभयोः शक्यं नित्यदा सुखमेधितुम्।। ३३।।
निवर्त्यमानो रामेण सुमन्त्रः प्रतिबोधितः।
तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा स्नेहात् काकुत्स्थमब्रवीत्।। ३४।।

पिता जी का प्रिय करने की इच्छा से तुम यौवराज्य पद को स्वीकार कर लोगे तो दोनों लोकों में सदा सुख को प्राप्त कर सकोगे। विदा करते हुए सुमन्त्र को जब श्रीराम ने इस प्रकार समझाया तब सारी बातें सुन कर वे प्रेम से बोले।

यदहं नोपचारेण ब्रूयां स्नेहादविक्लवम्।
भक्तिमानिति तत् तावद् वाक्यं त्वं क्षन्तुमर्हसि।। ३५।।
कथं हि त्वद्विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम्।
तव तात वियोगेन पुत्रशोकातुरामिव।। ३६।।

यदि मैं स्नेह के कारण औपचारिकता का पालन न करते हुए निडरता के साथ आप से बोलूँ तो आप यह समझ कर कि यह मेरा भक्त है, मुझे क्षमा कर दें। मैं आपके बिना उस नगर मैं कैसे जाऊँगा जो आपके वियोग से हे तात! पुत्र शोक से आकुल है।

सराममपि तावन्मे रथं दृष्ट्वा तदा जनः।
विना रामं रथं दृष्ट्वा विदीर्येतापि सा पुरी।। ३७।।
दैन्यं हि नगरी गच्छेद् दृष्ट्वा शून्यमिमं रथम्।
सूतावशेषं स्वं सैन्यं हतवीरमिवाहवे।। ३८।।

पहले मेरे रथ को राम के सहित देख कर अब उसे राम से रहित देख कर उस नगर का हृदय दु:ख से विदीर्ण हो जाएगा। वह नगरी इस सूने रथ को देख कर उसी प्रकार दीन हो जाएगी जैसे युद्ध में अपने स्वामी वीर रथी के मारे जाने पर सूने केवल सारथी वाले रथ को देखकर उसकी सेना हो जाती है।

दूरेऽपि निवसन्तं त्वां मानसेनाग्रतः स्थितम्।
चिन्तयन्तोऽद्य नूनं त्वां निराहाराः कृताः प्रजाः।। ३९।।
आर्तनादो हि यः पौरैरुन्मुक्तस्त्वत्प्रवासने।
सरथं मां निशाम्यैव कुर्युः शतगुणं ततः।। ४०।।

जो प्रजा आपके दूर रहते हुए भी आपको अपने मन से सामने ही खड़ा हुआ सोचती है, उसने निश्चय ही अब खाना-पीना छोड़ दिया होगा। आपके नगर से बाहर निकलते हुए प्रजा के लोगों ने जो आर्तनाद किया था, अब मुझे केवल रथ के ही साथ लौटा हुआ देख कर वे उससे सौ गुणा अधिक आर्तनाद करेंगे।

अहं किं चापि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया।
नीतोऽसौ मातुलकुलं संतापं मा कृथा इति।। ४१।।
असत्यमपि नैवाहं ब्रूयां वचनमीदृशम्।
कथमप्रियमेवाहं ब्रूयां सत्यमिदं वचः।। ४२।।

मैं महारानी कौसल्या से क्या कहूँगा कि हे देवी! आपके पुत्र को मैं मामा के घर छोड़ आया हूँ, दु:ख

मत करो। ऐसी बात असत्य हो तो भी नहीं कही जा सकती, फिर इस कड़वी सत्य बात को कि मैं राम को वन में पहुँचा आया हूँ, कैसे कह सकूँगा?

तन्न शक्ष्याम्यहं गन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ।
वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि।। ४३।।
त्वत्कृतेन मया प्राप्तं रथचर्याकृतं सुखम्।
आशंसे त्वत्कृतेनाहं वनवासकृतं सुखम्।। ४४।।

इसलिये हे निष्पाप! आपके बिना मैं अयोध्या जाने में समर्थ नहीं हूँ। आप मुझे भी वनवास के लिये चलनें की आज्ञा दीजिये। आपकी कृपा से मुझे आपको रथ से यहाँ तक लाने का सुख प्राप्त हुआ। अब मैं आपकी कृपा से ही आपके साथ वनवास का सुख भी प्राप्त करना चाहता हूँ।

प्रसीदेच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः।
प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव से प्रत्यनन्तरः।। ४५।।
तव शुश्रूषणं मूर्ध्ना करिष्यामि वने वसन्।
अयोध्यां देवलोकं वा सर्वथा प्रजहाम्यहम्।। ४६।।

आप प्रसन्न हो इये। मैं वन में आपके पास रहना चाहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि आप प्रेम से यह कह दें कि तुम वन में मेरे सारथी रहो। मैं वन में रहते हुए आपकी सेवा अपने सिर से अर्थात् सम्पूर्ण बुद्धि से करूँगा। मैं अयोध्या का या देवलोक का भी पूरी तरह से त्याग कर दूँगा।

वनवासे क्षयं प्राप्ते ममैष हि मनोरथः।
यदनेन रथेनैव त्वां वहेयं पुरीं पुनः।। ४७।।
चतुर्दश हि वर्षाणि सहितस्य त्वया वने।
क्षणभूतानि यास्यन्ति शतसंख्यानि चान्यथा।। ४८।।

मेरी यह इच्छा है कि वनवास के समाप्त हो जाने पर इस ही रथ में मैं आपको पुनः अयोध्या ले जाऊँ। आपके साथ वन में रहने से ये चौदह वर्ष क्षण के समान व्यतीत हो जायेंगे। नहीं तो ये चौदह सौ वर्षों के समान प्रतीत होंगे।

भृत्यवत्सल तिष्ठन्तं भर्तृपुत्रगते पथि।
भक्तं भृत्यं स्थितं स्थित्या न मा त्वं हातुमर्हसि।। ४९।।
एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः।
रामो भृत्यानुकम्पी तु सुमन्त्रमिदमब्रवीत्।। ५०।।

हे भृत्यों पर प्रेम करने वाले। आप मेरे स्वामी के पुत्र हैं आपके जाने के मार्ग पर मैं भी जाने को तैयार हूँ। मैं आपका भक्त हूँ और भृत्य हूँ तथा भृत्यपन की मर्यादा में विद्यमान हूँ। आप मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार दीनता के साथ अनेक प्रकार से बार बार प्रार्थना करते हुए सुमन्त्र से भृत्यों पर कृपा करने वाले राम यह कहने लगे।

जानामि परमां भक्तिमहं ते भर्तृवत्सल।
शृणु चापि तदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः।। ५१।।
नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी।
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः।। ५२।।

हे स्वामी से प्रेम करने वाले सुमन्त्र! मैं आपकी अपने प्रति परम भक्ति को मानता हूँ। पर तुम सुनो जिस लिये मैं तुम्हें यहाँ से अयोध्या को भेजना चाहता हूँ। तुम्हें नगर में गया हुआ देख कर मेरी छोटी माता कैकेयी को यह विश्वास हो जायेगा कि राम वन में चला गया है।

विपरीते तुष्टिहीना वनवासं गते मयि।
राजानं नातिशङ्केत मिथ्यावादीति धार्मिकम्।। ५३।।
एष मे प्रथमः कल्पो यदम्बा मे यवीयसी।
भरतरक्षितं स्फीतं पुत्रराज्यमवाप्स्यते।। ५४।।

इसके विपरीत होने पर अर्थात् आपके न जाने पर, मेरे वनवास को जाने के विषय में उसकी सन्तुष्टि नहीं होगी और पह धार्मिक राजा के प्रति यह शंका न करे कि यह मिथ्यावादी है। यह मेरा पहला उद्देश्य है कि मेरी छोटी माता भरत के लिए आरक्षित धनधान्यपूर्ण पुत्र के राज्य को प्राप्त कर ले।

मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज।
संदिष्टश्चापि यानर्थांस्तांस्तान् ब्रूयास्तथा तथा।। ५५।।
इत्युक्त्वा वचनं सूतं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः।
गुहं वचनमक्लीबो रामो हेतुमदब्रवीत्।। ५६।।

हे सुमन्त्र! तुम मेरा तथा राजा का प्रिय करने के लिये अयोध्या अवश्य जाओ और जो बातें मैंने आपसे जिन जिन से कहने को कहीं हैं, उन्हें उनसे अवश्य कहिये। सूत से यह कह कर और उन्हें बार-बार सान्त्वना देकर श्रीराम ने उत्साह के साथ गुह से विशेष उद्देश्य से यह कहा।

नेदानीं गुह योग्योऽयं वासो मे सजने वने।
अवश्यमाश्रमे वासः कर्तव्यस्तद्गतो विधिः।। ५७।।
सोऽहं गृहीत्वा नियमं तपस्विजनभूषणम्।
हितकामः पितुर्भूयः सीताया लक्ष्मणस्य च।। ५८।।
जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय।
तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत्।। ५९।।

हे गुह मेरे लिये ऐसे वन में वास करना उचित नहीं है जहाँ लोगों का आना जाना हो। मुझे आश्रम में रहते हुए वहाँ के नियमों का पालन अवश्य करना चाहिये। इसलिये मैं तपस्वियों की शोभा बढ़ाने वाले नियमों को ग्रहण करके पिता, सीता और लक्ष्मण के हित की कामना से जटाएँ धारण करके जाऊँगा। तुम इसके लिये बड़ के दूध को ले आओ। तब गुह ने उन राजपुत्र के लिये जल्दी से वह दूध लाकर दे दिया।

लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः।
दीर्घबाहुर्नरव्याघ्रो जटिलत्वमधारयत्।। ६०।।
तौ तदा चीरसम्पन्नौ जटामण्डलधारिणौ।
अशोभेतामृषिसमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। ६१।।

तब राम ने उससे लक्ष्मण की और अपनी जटाएँ बनायीं और इस प्रकार वे विशालभुजा वाले नरश्रेष्ठ जटाधारी बन गये। वल्कल वस्त्र तथा जटाओं को धारण किये हुए वे दोनों भाई उस समय ऋषियों के समान सुशोभित हो रहे थे।

स तु दृष्ट्वा नदीतीरे नावमिक्ष्वाकुनन्दनः।
तितीर्षुः शीघ्रगां गङ्गामिदं वचनमब्रवीत्।। ६२।।
आरोह त्वं नरव्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः।
सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम्।। ६३।।

तत्पश्चात! इक्ष्वाकुनन्दन राम नदी के किनारे नाव को देख कर उस तीव्रगति वाली गंगा के पार जाने की इच्छा से लक्ष्मण से यह बोले कि हे नरश्रेष्ठ! तुम सामने विद्यमान इस नाव पर मनस्विनी सीता को पकड़ कर धीरे से बैठा दो और स्वयं भी इस पर बैठ जाओ।

स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रतिकूलयन्।
आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः।। ६४।।
अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः।
ब्रह्मवत्क्षत्रवच्चैव जजाप हितमात्मनः।। ६५।।

भाई के आदेश को सुन कर उस आत्मवान लक्ष्मण ने उसका पूरी तरह से पालन करते हुए पहले सीता को चढ़ाया और फिर स्वयं नाव पर चढ़ गये। इसके पश्चात! वे तेजस्वी लक्ष्मण के बड़े भाई भी नाव पर आरूढ़ हुए। वे अपने लिये कल्याणकारी ब्राह्मणों और क्षत्रियों के जपने योग्य वैदिक मंत्रों का जाप करने लगे।

अनुज्ञाय सुमन्त्रं च सबलं चैव तं गुहम्।
आस्थाय नावं रामस्तु चोदयामास नाविकान्।। ६६।।
ततस्तैश्चालिता नौका कर्णधारसमाहिता।
शुभस्फ्यवेगाभिहता शीघ्रं सलिलमत्यगात्।। ६७।।

इसके बाद सेना सहित गुह को और सुमन्त्र को जाने की आज्ञा देकर नाव पर भलीभाँति बैठकर उन्होंने नाविकों को नाव चलाने के लिये कहा। तब कर्णधार की सावधानी से युक्त उन मल्लाहों के द्वारा चलाई गई वह नाव सुन्दर पतवारों के संचालन से शीघ्र ही पानी पर बढ़ने लगी।

तीरं तु समनुप्राप्यनावं हित्वा नरर्षभः।
प्रातिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परंतपः।। ६८।।
अथाब्रवीन्महाबाहुः सुमित्रानन्दवर्धनम्।
भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा।। ६९।।
अवश्यं रक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने वने।
अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु।। ७०।।
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन्।
अन्योन्यस्य हिं नो रक्षा कर्तव्या पुरुषर्षभ।। ७१।।

किनारे पर पहुँचकर, शत्रुओं को तपाने वाले उन नरश्रेष्ठ ने नाव को छोड़ कर भाई और सीता के साथ आगे के लिये प्रस्थान कर दिया। उसके पश्चात् वे महाबाहु सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले लक्ष्मण से बोले कि तुम अब चाहे निर्जन प्रदेश हो या लोगों से युक्त प्रदेश हो, हर जगह सीता की रक्षा के लिये सावधान हो जाओ। हम जैसे लोगों को निर्जन वन में स्त्री की रक्षा अवश्य करनी चाहिये। इसलिये हे लक्ष्मण! तुम आगे चलो। सीता तुम्हारे पीछे चलेगी और मैं उसके पीछे तुम्हारी और सीता की देख भाल करता हुआ चलूँगा। हे पुरुषश्रेष्ठ! हमें एक दूसरे की रक्षा करनी चाहिये।

न हि तावदतिक्रान्तासुकरा काचन क्रिया।
अद्य दुःखं तु वैदेही वनवासस्य वेत्स्यति।। ७२।।
प्रणष्टजलसम्बाधं क्षेत्रारामविवर्जितम्।
विषमं च प्रपातं च वनमद्य प्रवेक्ष्यति।। ७३।।
श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रतस्थे लक्ष्मणोऽग्रतः।
अनन्तरं च सीताया राघवो रघुनन्दनः।। ७४।।

हमारा कोई भी कठिन कार्य अभी तक पूरा नहीं हुआ है। आज सीता को वनवास के दुःखों का ज्ञान होगा। अब यह ऐसे वन में प्रवेश करेगी जहाँ लोगों का आना जाना नहीं होगा, खेत और बगीचे नहीं होंगे, भूमि ऊँची नीची होगी, जिसमें गिरने का भय होगा। राम की बात सुन कर लक्ष्मण आगे चले और उसके पश्चात् सीता के पीछे राम चले।

गतं तु गङ्गापरपारमाशु
रामं सुमन्त्रः सततं निरीक्ष्य।
अध्वप्रकर्षाद् विनिवृत्तदृष्टि-
र्मुमोच बाष्पं व्यथितस्तपस्वी।। ७५।।

गंगा के दूसरे किनारे पर शीघ्रता से पहुँचे श्रीराम को सुमन्त्र लगातार देखते रहे। जब रास्ते पर दूर चले जाने पर वे दृष्टि से ओझल हो गये तब वे दुखी तपस्वी सुमन्त्र आँसू बहाने लगे।

बावनवाँ सर्ग

श्रीराम का यात्रा करते हुए गंगा और यमुना के संगम पर भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर पहुँचना।

स तं वृक्षं समासाद्य संध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।
रामोरमयतां श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम्।। १।।
अद्येयं प्रथमा रात्रिर्याता जनपदाद् बहिः।
या सुमन्त्रेण रहिता तां नोत्कण्ठितुमर्हसि।। २।।

सारे दिन चलते हुए शाम को एक वृक्ष के नीचे पहुँच कर राम ने सॉयकाल की सन्ध्योपासना की और उसके पश्चात् लक्ष्मण से बोले हे लक्ष्मण! बस्ती से बाहर आज यह सुमन्त्र के बिना हमें पहली रात्रि प्राप्त हुई है, इसलिये तुम उद्विग्न मत होना।

जागर्तव्यमतन्द्रिभ्यामद्यप्रभृति रात्रिषु।
योगक्षेमौ हि सीताया वर्तेते लक्ष्मणावयोः।। ३।।
रात्रिं कथंचिदेवेमां सौमित्रे वर्तयामहे।
अपवर्तामहे भूमावास्तीर्य स्वयमर्जितैः।। ४।।

हे लक्ष्मण! आज से हम दोनों को रात्रि में जागना होगा क्योंकि सीता के योग क्षेम हम दोनों के ही आधीन हैं। हम इस रात्रि को किसी प्रकार बिताएँगे। स्वयं एकत्र किये हुए पत्तों को भूमि पर शैया के रूप में फैला कर उस पर किसी तरह सो लेंगे।

ततस्तत्र समासीनौ नातिदूरे निरीक्ष्य ताम्।
न्यग्रोधे सुकृतां शय्यां भेजाते धर्मवत्सलौ।। ५।।
ते तु तस्मिन् महावृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम्।
विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद् देशात् प्रतस्थिरे।। ६।।

उसके पश्चात् वहाँ बैठे हुए राम और सीता ने समीप ही वट के वृक्ष के नीचे लक्ष्मण के द्वारा बनाई हुई सुन्दर शय्या को देखा और उसका उन धर्म प्रेमियों ने आश्रय लिया। इस प्रकार उस महान वृक्ष के नीचे वह सुन्दर रात्रि बिताकर निर्मल सूर्य के उदय होने पर वे उस स्थान से आगे चल दिये।

यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाभिप्रवर्तते।
जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद् वनम्।। ७।।
तेभूमिभागान् विविधन् देशांश्चापि मनोहरान्।
अदृष्टपूर्वान् पश्यन्तस्तत्र तत्र यशस्विनः।। ८।।
यथा क्षेमेण सम्पश्यन् पुष्पितान् विविधान् द्रुमान्।
निर्वृत्तमात्रे दिवसे रामः सौमित्रिमब्रवीत्।। ९।।

उस विशाल वन के भीतर वे जहाँ भागीरथी गंगा से यमुना मिलती है, वहाँ पहुँचने के लिए यात्रा कर रहे थे। वे यशस्वी यात्री उन तरह-तरह के सुन्दर भूमि भागों और देशों को, जो उन्होंने पहले नहीं देखे थे, देखते हुए तथा अनेक प्रकार के फूलों वाले वृक्षों को भी देखते हुए आराम के साथ अर्थात उठते बैठते हुए जा रहे थे। तब जब दिन समाप्त होने को हो गया, श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा।

प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम्।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये संनिहितो मुनिः।।१०।।
नूनं प्राप्ताः स्म सम्भेदं गङ्गायमुनयोर्वयम्।
तथाहि श्रूयते शब्दो वारिणोर्वारिघर्षजः।।११।।

हे लक्ष्मण! सामने प्रयाग को देखो। अग्नि की ध्वजा के समान इस उठते हुए अच्छे धूएँ को भी देखो। मैं समझता हूँ कि भरद्वाज मुनि यहीं हैं। निश्चय ही हम गंगा यमुना के संगम पर आ गये हैं क्योंकि पानी के पानी से टकराने का शब्द सुनाई दे रहा है।

दारूणि परिभिन्नानि वनजैरुपजीविभिः।
छिन्नाश्चाप्याश्रमे चैते दृश्यन्ते विविधा द्रुमाः।। १२।।
धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लम्बमाने दिवाकरे।
गङ्गायमुनयोः संधौ प्रापतुर्निलयं मुनेः।। १३।।

वन्य पदार्थों से अपनी जीविका चलाने वालों द्वारा यहाँ लकड़ियाँ काटी हुई हैं और आश्रम में ऐसे अनेक

प्रकार के वृक्ष दिखाई दे रहे हैं। जिनकी लकड़ियाँ काटी गई हैं। इस प्रकार वे दोनों धनुर्धर आराम से चलते हुए, सूर्य के अस्ताचल को जाते हुए गंगा यमुना के संगम पर भरद्वाज मुनि के आश्रम पर जा पहुँचे।

तरेपनवाँ सर्ग

श्रीराम का भरद्वाज आश्रम में मुनि के द्वारा अतिथि सत्कार तथा उन्हें चित्रकूट पर्वत पर ठहरने का आदेश।

रामस्त्वाश्रममासाद्य त्रासयन् मृगपक्षिणः।
गत्वा मुहूर्तमध्वानं भरद्वाजमुपागमत्।। १।।
ततस्त्वाश्रममासाद्य मुनेर्दर्शनकाङ्क्षिणौ।
सीतयानुगतौ वीरौ दूरादेवावतस्थतुः।। २।।

राम आश्रम की सीमा में पहुँच कर मुहूर्त भर रास्ते पर चलते हुए वहाँ के पशु पक्षियों को डराते हुए भरद्वाज मुनि के समीप जा पहुँचे। आश्रम के अन्दर पहुँचकर मुनि के दर्शन की इच्छा से सीता के साथ वे दोनों वीर दूर ही खड़े हो गये।

स प्रविश्य महात्मानमृषिं शिष्यगणैर्वृतम्।
संशितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम्।। ३।।
हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागः कृताञ्जलिः।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत्।। ४।।

उन्होंने वहाँ प्रवेश कर, जिन्होंने व्रतों का पालन किया हुआ था, जिन्होंने तपस्या के द्वारा ज्ञान के नेत्रों को प्राप्त कर लिया था, तथा जो अग्निहोत्र कर शिष्यों से घिरे हुए थे ऐसे महात्मा भरद्वाज ऋषि को देखा। उन्हें देखकर महाराजा श्रीराम ने लक्ष्मण और सीता के साथ हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः।
पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन् रामलक्ष्मणौ।। ५।।
भार्या ममेयं कल्याणी वैदेही जनकात्मजा।
मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता।। ६।।

तब लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीराम ने उनसे निवेदन किया कि हम दोनों दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं। यह कल्याणी जनकपुत्री सीता मेरी पत्नी है। यह अनिन्दिता निर्जन वन में मेरा साथ देने के लिये आयी है।

पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिरनुजः प्रियः।
अयमन्वगमद् भ्राता वनमेव धृतव्रतः।। ७।।
पित्रा नियुक्ता भगवन् प्रवेक्ष्यामस्तपोवनम्।
धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः।। ८।।

पिता के द्वारा मुझे वन में भेजे जाते हुए देख यह सुमित्रा का पुत्र मेरा प्रिय छोटा भाई भी व्रत को धारण कर मेरे पीछे आ गया है। पिता की आज्ञा से हम हे भगवन्! तपोवन में प्रवेश करेंगे और वहाँ फल मूल खाते हुए धर्म का ही पालन करेंगे।

मृगपक्षिभिरासीनो मुनिभिश्च समन्ततः।
राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनागतं मुनिः।। ९।।
प्रतिगृह्य तु तामर्चामुपविष्टं स राघवम्।
भरद्वाजोऽब्रवीद् वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा।। १०।।

भरद्वाज मुनि चारों तरफ से मुनियों से और पशु पक्षियों से घिरे हुए बैठे थे। उन्होंने अतिथि के रूप में आये राम का स्वागत और सत्कार किया। मुनि के द्वारा किये गये स्वगात को ग्रहण कर जब श्रीराम बैठ गये, तब भरद्वाज जी ने उनसे धर्म से युक्त यह बात कही।

अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे।
पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान् सुखम्।। ११।।
एवमुक्तस्तु वचनं भरद्वाजेन राघवः।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं रामः सर्वहिते रतः।। १२।।

दोनों महानदियों के संगम के समीप यह स्थान बड़ा एकान्त, पवित्र और सुन्दर है। आप यहाँ आराम से रहिये। भरद्वाज के द्वारा यह कहने पर सबकी भलाई में लगे हुए रघुनन्दन श्रीराम ने इन सुन्दर वाक्यों द्वारा उत्तर दिया।

भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदो जनः।
सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम्।। १३।।
आगमिष्यति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये।। १४।।

हे भगवन्! नगर के और जनपद के वासी यहाँ से समीप हैं। मैं समझता हूँ कि यहाँ मुझे सुगमता पूर्वक देखने योग्य समझ कर वे इस आश्रम में मुझे तथा सीता को देखने के लिये आ जायेंगे। इस कारण से मैं यहाँ रहना उचित नहीं समझता।

एकान्ते पश्च भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम्।
रमते यत्र वेदेही सुखार्हा जनकात्मजा।। १५।।
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनिः।
राघवस्य तु तद् वाक्यमर्थग्राहकमब्रवीत्।। १६।।

आप किसी एकान्त में आश्रम के योग्य उत्तम स्थान को देखिये, जहाँ इस सुख के योग्य जनकपुत्री का मन लग जाये। श्रीराम के उन सुन्दर वचनों को सुन कर महामुनि भरद्वाज ने उनके उद्देश्य को सिद्ध कराने वाली बात कही।

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि।
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः।। १७।।
गोलाङ्गूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः।
चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसंनिभः।। १८।।
प्रविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम्।
इह वा वनवासाय वस राम मया सह।। १९।।

हे तात! यहाँ से दस कोस दूर एक सुन्दर पवित्र और ऋषियों द्वारा सेवित पर्वत है, जहाँ तुम रहोगे, वहाँ, लंगूर विचरते हैं वानर और रीछ भी रहते हैं, उसे चित्रकूट कहते हैं, वह गन्धमादन पर्वत के समान सुन्दर है। मैं उस एकान्त स्थान पर तुम्हारा सुखदायी निवास समझता हूँ। या हे राम तुम वनवास के लिये यहीं मेरे साथ रहो।

नोट :- आधुनिक नाप के अनुसार इस समय प्रयाग से चित्रकूट ८० मील है। एक मील में १७६० गज होते हैं, जबकि एक कोस २००० गज का होता है। उस समय यह दूरी नदी के प्रवाह बदलने के कारण कम होगी।

स रामं सर्वकामैस्तं भरद्वाजः प्रियातिथिम्।
सभार्यं सह च भ्रात्रा प्रतिजग्राह हर्षयन्।। २०।।
तस्य प्रयागे रामस्य तं महर्षिमुपेयुषः।
प्रपन्ना रजनी पुण्या चित्राः कथयतः कथाः।। २१।।
सीतातृतीयः काकुत्स्थः परिश्रान्तः सुखोचितः।
भरद्वाजाश्रमे रम्ये तां रात्रिमवसत् सुखम्।। २२।।

ऐसा कहकर भरद्वाज ने उस प्रिय अतिथि राम का हर्ष बढ़ाते हुए, सब कामनायुक्त पदार्थों से भाई और पत्नी सहित उनका आतिथ्य किया। वहाँ प्रयाग में उन महर्षि के पास बैठकर विचित्र कथाएँ कहते हुए, राम के लिये मंगलमयी रात्रि का आगमन हो गया। सीता और लक्ष्मण के साथ सुख भोगने योग्य राम उस समय परिश्रम से थक गये थे। वे भरद्वाज के उस सुन्दर आश्रम में रात्रि में सुख से रहे।

प्रभातायां तु शर्वर्यां भरद्वाजमुपागमत्।
उवाच नरशार्दूलो मुनिं ज्वलिततेजसम्।। २३।।
शर्वरीं भगवन्नद्य सत्यशील तवाश्रमे।
उषिताः स्मोऽह वसतिमनुजानातु नो भवान्।। २४।।

प्रातः होने पर वे नरश्रेष्ठ भरद्वाज मुनि के समीप आये और अपने तेज से देदीप्यमान मुनि से बोले कि हे भगवन्! हे सत्यशील! आज की रात्रि हमने आपके आश्रम में बिता दी है। अब आप हमें अपने गन्तव्य स्थान पर जाने की आज्ञा दें।

चौवनवाँ सर्ग

भरद्वाज जी का श्रीराम को चित्रकूट का मार्ग बताना। उन सबका अपने ही बनाये हुए बेड़े से यमुना नदी को पार करना। यमुना के तट पर रात्रि में निवास करना।

तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकार ह।
प्रस्थितान् प्रेक्ष्य तांश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान्।। १।।
ततः प्रचक्रमे वक्तुं वचनं स महामुनिः।
भरद्वाजो महातेजा रामं सत्यपराक्रमम्।। २।।

उनको जाता हुआ देख कर महर्षि ने जैसे पिता अपने सगे पुत्रों का करता है, उसी प्रकार उनका स्वस्तिवाचन किया। तब महातेजस्वी महामुनि भरद्वाज ने सत्य पराक्रम राम से यह कहना प्रारम्भ किया।

गङ्गायमुनयोः संधिमासाद्य मनुजर्षभौ।
कालिन्दीमनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम्।। ३।।
अथासाद्य तु कालिन्दी प्रतिस्त्रोतः समागताम्।
तस्यास्तीर्थे प्रचरितं प्रकामं प्रेक्ष्य राघव।। ४।।
तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम्।

हे नरश्रेष्ठों! तुम गंगा यमुना के संगम पर पहुँच कर उस यमुना के निकट जाना जो वहाँ पश्चिम मुखी हो रही है, जिसका प्रवाह वहाँ उलटा हो गया है उस यमुना

के निकट जाकर हे राम तुम उसके पार करने योग्य घाट को जो लोगों के आने जाने से पूरी तरह से स्पष्ट प्रतीत हो रहा हो, वहाँ से तुम बेड़ा बनाकर सूर्य की किरणों से जगमगाती हुई और तेज गतिवाली यमुना को पार कर जाना।

ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम्।। ५।।
परीतं बहुभिर्वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम्।
क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं प्रेक्ष्य च काननम्।। ६।।
सल्लकीबदरीमिश्रं रम्यं वंशैश्च यामुनैः।

तब उसके बाद आगे जाने पर एक बड़ा हरे पत्तों वाला बरगद का पेड़ मिलेगा। उसका नाम श्यामवट है और वह बहुत से वृक्षों से घिरा हुआ है। उसके नीचे अनेक सिद्ध लोग रहते हैं। उससे एक कोस आगे जाकर तुम्हें नीले रंग का वन मिलेगा। उसमें चीड़ और बेर के पेड़ हैं। यमुना के किनारे बाँस के पेड़ों से वह बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है।

स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतस्य बहुशो मया।। ७।।
रम्यो मार्दवयुक्तश्च दावैश्चैव विवर्जितः।
इति पन्थानमादिश्य महर्षिः संन्यवर्तत।। ८।।
अभिवाद्य तथेत्युक्त्वा रामेण विनिवर्तितः।

वहाँ से चित्रकूट को रास्ता जाता है। मैं उस रास्ते से बहुत बार गया हूँ। वह सुन्दर और कोमल मार्ग है। वहाँ दावानल का भय नहीं है। इस प्रकार रास्ते के विषय में बताने पर राम ने तथास्तु ऐसा कहा और प्रणाम करके उन्हें लौटा दिया, तब महर्षि वापिस चले गये।

उपावृत्ते मुनौ तस्मिन् रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।। ९।।
कृतपुण्याः स्म भद्रं ते मुनिर्यन्नोऽनुकम्पते।
इति तौ पुरुषव्याघ्रौ मन्त्रयित्वा मनस्विनौ।। १०।।
सीतामेवाग्रतः कृत्वा कालिन्दीं जग्मतुर्नदीम्।

मुनि के लौट जाने पर राम ने लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण! तुम्हारा कल्याण हो, हमने पुण्य किये हैं, इसलिये ये मुनि हमारे ऊपर इतनी कृपा करते हैं। इस प्रकार वे दोनों नरश्रेष्ठ! मनस्वी, वार्तालाप करते हुए सीता को आगे करके यमुना नदी के पास गये।

अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतस्विनीं नदीम्।। ११।।
चिन्तामापेदिरे सद्यो नदीजलतितीर्षवः।
तौ काष्ठसंघाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम्।। १२।।
शुष्कैर्वंशैः समाकीर्णमुशीरैश्च समावृतम्।
ततो वैतसशाखाश्च जम्बुशाखाश्च वीर्यवान्।। १३।।
चकार लक्ष्मणश्छित्त्वा सीतायाः सुखमासनम्।

उस तेज गति वाली यमुना नदी के पास पहुँच कर, जल्दी नदी के पानी को पार करने के इच्छुक वे चिन्ता को प्राप्त हो गये कि कैसे इसे पार किया जाये? तब उन्होंने सूखी लकड़ियों से एक बेड़ा बनाया। उसमें सूखे बाँस लगे हुए थे और खस बिछाया हुआ था। फिर बेंत की और जामुन की टहनियों को काटकर तेजस्वी लक्ष्मण ने सीता के लिये एक सुखदायक आसन तैयार किया।

तत्र श्रियमिवाचिन्त्यां रामो दाशरथिः प्रियाम्।। १४।।
ईषत्स लज्जमानां तामध्यारोपयत प्लवम्।
पार्श्वे तत्र च वैदेह्या वसने भूषणानि च।। १५।।
प्लवे कठिनकाजं च रामश्चक्रे समाहितः।

तब दशरथ पुत्र श्रीराम ने अपनी प्रिया सीता को जो लक्ष्मी के समान अचिन्त्य शोभावली थी और कुछ लज्जित हो रही थी, उस बेड़े पर चढ़ा दिया। उसके समीप सीता के कपड़े और आभूषण तथा बकरे के चमड़े से मढी पिटारी सावधानी से रख दी।

आरोप्य सीतां प्रथमं संघाटं परिगृह्य तौ।। १६।।
ततः प्रतेरतुर्यत्तौ प्रीतौ दशरथात्मजौ।
ते तीर्णाः प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात्।। १७।।
श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम्।

इस प्रकार पहले सीता को उस पर चढ़ा कर इन दोनों दशरथ के पुत्रों ने प्रेम और प्रयत्न के साथ बेड़े को पकड़ कर खेना आरम्भ कर दिया। पार उतर कर उन्होंने बेड़े को वहीं छोड़ दिया और यमुना के उस वन में प्रस्थान कर वे हरे पत्ते व शीतल छाया वाले श्यामवट के पास जा पहुँचे।

एकैकं पादपं गुल्मं लतां वा पुष्पशालिनीम्।। १८।।
अदृष्टरूपां पश्यन्ती रामं प्रपच्छ साबला।
रमणीयान् बहुविधान पादपान् कुसुमोत्करान्।। १९।।
सीतावचनसंरब्ध आनयामास लक्ष्मणः।

वह अबला सीता उस समय एक-एक वृक्ष, झाड़ी और फूलों वाली लता को, जिसे उन्होंने पहले नहीं देखा था, उसके विषय में राम से पूछती थी। सीता के कहने के अनुसार लक्ष्मण बहुत तरह की सुन्दर वृक्ष की टहनियों को और फूलों के गुच्छों को उन्हें लाकर देते थे।

विचित्रवालुकजलां हंससारसनादिताम्।
रेमे जनकराजस्य सुता प्रेक्ष्य तदा नदीम्।। २०।।

जनक की पुत्री सीता विचित्र रेत और जलवाली, हंस और सारसों से गुंजित उस यमुना नदी को देख बहुत आनन्दित होती थीं।

विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते
शुभे वने वारणवानरायुते।
समं नदीवप्रमुपेत्य सत्वरं
निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः ॥ २१॥

इस प्रकार वे उदार दृष्टि वाले तीनों, मोरों के समूहों से निनादित, हाथी और वानरों से युक्त उस सुन्दर वन में घूम कर शीघ्र ही यमुना के समतल किनारे पर आ गये और रात में उन्होंने वहीं निवास किया।

पचपनवाँ सर्ग

वन की शोभा देखते हुए श्रीराम आदि का चित्रकूट में पहुँचना। वहाँ लक्ष्मण द्वारा पर्णशाला का निर्माण।

अथ रात्र्यां व्यातीतायामवसुप्तमनन्तरम्।
प्रबोधयामास शनैर्लक्ष्मणं रघुपुङ्गवः॥ १॥
सौमित्रे शृणु वन्यानां वल्गु व्याहरतां स्वनम्।
सम्प्रतिष्ठामहे कालः प्रस्थानस्य परंतप॥ २॥

तत्पश्चात् रात के व्यतीत होने पर स्वयं जाग कर रघुश्रेष्ठ श्रीराम ने लक्ष्मण को धीरे से जगाया और कहा कि हे सुमित्रा कुमार! बोलते हुए वन्य पक्षियों की मधुर ध्वनि सुनो। हे परंतप! यह प्रस्थान करने का समय है। हम यहाँ से चलेंगे।

प्रसुप्तस्तु ततो भ्रात्रा समये प्रतिबोधितः।
जहौ निद्रां च तन्द्रां च प्रसक्तं च परिश्रमम्॥ ३॥
तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम्।
पन्थानमृषिभिर्जुष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः॥ ४॥

भाई के द्वारा समय पर जगाये जाने पर, तब लक्ष्मण ने अपने अन्दर विद्यमान निद्रा, आलस्य और थकावट को त्याग दिया। तब सबने उठकर नदी के पवित्र जल में स्नान किया और चित्रकूट के उस ऋषियों द्वारा सेवित मार्ग पर चल दिये।

ततः सम्प्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह।
सीतां कमलपत्राक्षीमिदं वचनमब्रवीत्॥ ५॥
आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पितान् नगान्।
स्वैः पुष्पैः किंशुकान् पश्य मालिनः शिशिरात्यये॥ ६॥
पश्य भल्लातकान् बिल्वान् नरैरनुपसेवितान्।
फलपुष्पैरवनतान् नूनं शक्ष्याम जीवितुम्॥ ७॥

तत्पश्चात् सुमित्रापुत्र के साथ समय पर प्रस्थान करके श्रीराम कमलनयनी सीता से यह बोले कि हे वैदेही! सब तरफ से फूलों वाले इन ढाक के वृक्षों को देखो। ये वसन्तऋतु में अपने फूलों की मालाओं को धारण किये हुए और सुन्दरता के कारण जलते हुए से प्रतीत होते हैं। इन भिलावे और बेल के वृक्षों को देखो, जिसका यहाँ कोई भी मनुष्य सेवन नहीं करता है, जो अपने फलों और फूलों के भार से झुके हुए हैं, निश्चय ही हम इनसे जीवन निर्वाह कर सकेंगे।

पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण।
मधूनि मधुकारीभिः सम्भृतानि नगे नगे॥ ८॥
एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति।
रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे॥ ९॥

हे लक्ष्मण! देखो यहाँ एक एक वृक्ष में मधुमक्खियों द्वारा लगाये गये मधु के छत्ते कितने पुष्ट और एक-एक द्रोण अर्थात् लगभग १५ किलो मधुवाले लटक रहे हैं। इस सुन्दर वनप्रांत में मार्ग पर फूलों का बिछौना बिछा हुआ है। यह पपीहा बोल रहा है और मोर भी अपनी बोली में मानो उसको प्रत्युत्तर दे रहा है।

मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम्।
त्रिकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम्॥ १०॥
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते।
पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने॥ ११॥

इस ऊँचे शिखर वाले चित्रकूट पर्वत को देखो। हाथियों के झुंड उसी तरफ जा रहे हैं और पक्षियों के समूह चह चहा रहे हैं। हम चित्रकूट के वन में उस भूमि पर जो समतल है, सुन्दर है, बहुत से वृक्षों से घिरी हुई है और पवित्र है, आनन्द से रहेंगे।

ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया।
रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम्॥ १२॥

तं तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम्।
बहुमूलफलं रम्यं सम्पन्नसरसोदकम्।। १३।।

तब वे सीता के साथ पैदल जाते हुए उस सुन्दर और आनन्ददायक चित्रकूट के पर्वत पर जा पहुँचे। वह पर्वत अनेक पक्षियों से भरा हुआ था, वहाँ फल मूल की बहुतायत थी, वह मधुर जल से युक्त था और सुन्दर था, वहाँ पहुँच कर राम ने कहा।

मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः।
बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे।। १४।।
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिञ्शिलोच्चये।
अयं वासो भवेत् तात वयमत्र वसेमहि।। १५।।

हे सौम्य! यह पर्वत अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से युक्त है और बहुत सुन्दर है मुझे लगता है कि यहाँ आराम से जीवन व्यतीत हो सकता है। यहाँ पर्वत पर महात्मा मुनि लोग रहते हैं। यह हमारे रहने योग्य है। हम यहीं रहेंगे।

लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च।
कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः।। १६।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान् द्रुमान्।
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिंदमः।। १७।।

हे सौम्य लक्ष्मण! तुम अच्छी मजबूत लकड़ियाँ लाओ और कुटिया बना दो। यहाँ निवास के लिये मेरा मन चाहता है। उनके ये वचन सुनकर लक्ष्मण अनेक प्रकार की लकड़ियाँ ले आये और उसके बाद उन शत्रुओं को नष्ट करने वाले ने पर्णशाला तैयार की।

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं
नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम्।
ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां
जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात्।। १८।।

उस सुन्दर चित्रकूट को तथा अनेक पवित्र स्थानों वाली माल्यवती नदी को जो अनेक वन्य पशु और पक्षियों द्वारा सेवित थी, प्राप्त कर श्रीराम बड़े हर्षित और आनन्दित हुए। उन्होंने अयोध्या से दूर होने के कष्ट को भुला दिया।

छप्पनवाँ सर्ग

सुमन्त्र का अयोध्या को लौटना, उनके मुख से श्रीराम का सन्देश सुन कर पुरवासियों का विलाप, राजा दशरथ और कौसल्या की मूर्च्छा।

कथयित्वा तु दुःखार्तः सुमन्त्रेण चिरं सह।
रामे दक्षिणकूलस्थे जगाम स्वगृहं गुहः।। १।।
भरद्वाजाभिगमनं प्रयागे च सभाजनम्।
आ गिरेर्गमनं तेषां तत्रस्थैरभिलक्षितम्।। २।।
अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान्।
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ गाढदुर्मनाः।। ३।।

इसके बाद जब श्रीराम गंगा के दक्षिणी किनारे पर उतर गये? तब दुखित गुह देर तक सुमन्त्र के साथ वार्तालाप करता रहा, और फिर उसे लेकर अपने घर चला गया। श्रीराम का भरद्वाज मुनि के आश्रम पर प्रयाग में जाना वहाँ आतिथ्य ग्रहण करना और वहाँ से चित्रकूट जाना। यह सब शृंगवेरपुर के गुप्तचरों ने देख लिया और गुह को इस सूचना से अवगत कराया। इसके बाद सुमन्त्र गुह से बिदा लेकर, घोड़ों को रथ में जोत कर, गहरे दुःख के साथ अयोध्या नगरी की तरफ ही लौट पड़े।

ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह।। ४।।
स शून्यामिव निःशब्दां दृष्ट्वा परमदुर्मनाः।
सुमन्त्रश्चिन्तयामास शोकवेगसमाहतः।। ५।।

वे दूसरे दिन साँयकाल अयोध्या में पहुँचे और वहाँ पहुँच कर उन्होंने अयोध्या को आनन्द शून्य पाया। वहाँ कोई शब्द नहीं था, मानो वहाँ कोई मनुष्य न हो। उस नगरी को इस अवस्था में देखकर बहुत दुःखी सुमन्त्र शोक के वेग से पीड़ित होकर चिन्ता करने लगे।

इति चिन्तापरः सूतो वाजिभिः शीघ्रयायिभिः।
नगरद्वारमासाद्य त्वरितः प्रविवेश ह।। ६।।
सुमन्त्रमभिधावन्तः शतशोऽथ सहस्रशः।
क्व राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवन् नराः।। ७।।

इस प्रकार चिन्ता में डूबे हुए सुमन्त्र तीव्रगति वाले घोड़ों से नगर के द्वार पर पहुँचे। उन्होंने जल्दी से उसमें प्रवेश किया। तब सुमन्त्र को देख कर सैकड़ों और हजारों

लोग दौड़ते हुए, राम कहाँ है? यह पूछते हुए उनके रथ के साथ दौड़ने लगे।

तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छ्य राघवम्।
अनुज्ञातो निवृत्तोऽस्मि धार्मिकेण महात्मना।। ८।।
ते तीर्णा इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा नराः।
अहो धिगिति निःश्वस्य हा रामेति विचुक्रुशुः।। ९।।

उस समय सुमन्त्र ने उनसे कहा कि गंगा पर श्रीराम ने मुझे लौटने का आदेश दिया। तब मैं उनसे बिदा लेकर लौट कर आया हूँ। तब यह जान कर कि वे राम आदि सब गंगा के पार चले गए, वे लोग आँखों से आँसू बहाते हुए लम्बी साँस लेकर हा धिक्कार है, हा राम! इस प्रकार से विलाप करने लगे।

शुश्राव च वचस्तेषां वृन्दं वृन्दं च तिष्ठताम्।
हताः स्म खलु ये नेह पश्याम इति राघवम्।। १०।।
दानयज्ञविवाहेषु समाजेषु महत्सु च।
न द्रक्ष्यामः पुनर्जातु धार्मिकं राममन्तरा।। ११।।
किं समर्थं जनस्यास्य किं प्रियं किं सुखावहम्।
इति रामेण नगरं पित्रेव परिपालितम्।। १२।।

सुमन्त्र ने उनकी बातें सुनी, वे जगह-जगह झुण्ड बनाकर खड़े थे और कह रहे थे कि हाय हम मारे गये। अब हम श्रीराम को नहीं देख पायेंगे। अब हम दान, यज्ञ, विवाह, तथा बड़े सामाजिक उत्सवों में धर्म प्रेमी श्रीराम को अपने बीच में नहीं देख सकेंगे। इस व्यक्ति के लिये क्या पदार्थ उपयोगी है? क्या करने से इसका प्रिय होगा और किस बात से उसे सुख मिलेगा। इस प्रकार विचार कर श्रीराम पिता के समान नगर की पालना करते थे।

वातायनगतानां च स्त्रीणामन्वन्तरापणम्।
रामेवाभितप्तानां शुश्राव परिदेवनाम्।। १३।।
स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहिताननः।
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम्।। १४।।

बाजार के बीच में से जाते हुए उन्होंने मकानों की खिड़कियों से आती हुई राम के लिये दुःखी स्त्रियों के रोने की आवाज़ें सुनी। तब राजमार्ग से जाते हुए सुमन्त्र ने अपना मुख ढक लिया और दशरथ जी के महल की ही तरफ गये।

सोऽवतीर्य रथाच्छीघ्रं राजवेश्म प्रविश्य च।
कक्ष्याः सप्ताभिचक्राम महाजनसमाकुलाः।। १५।।
स प्रविश्याष्टमीं कक्ष्यां राजानं दीनमातुरम्।
पुत्रशोकपरिद्यूनमपश्यत् पाण्डुरे गृहे।। १६।।

महल के पास पहुँच कर सुमन्त्र रथ से उतर कर राजमहल में शीघ्रता से प्रवेश कर गये। बहुत से लोगों से भरी हुई सात ड्यौढ़ियों को पार कर आठवीं ड्योढ़ी में उन्होंने एक श्वेत भवन में पुत्रशोक से मलिन, दीन और आतुर राजा को देखा।

अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाद्य च।
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत्।। १७।।
स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः।
मूर्च्छितो न्यपतद् भूमौ रामशोकाभिपीडितः।। १८।।

सुमन्त्र ने राजा के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया और राम के दिये हुए सन्देश को उन्हें सुनाया। राजा ने व्याकुल चित्त से वह सब चुपचाप ही सुन लिया और फिर राम के शोक से अधिक पीड़ित हो वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्च्छिते पृथिवीपतौ।
उच्छ्रित्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ।। १९।।
सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम्।
उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत्।। २०।।

तब राजा के मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरने पर सारा अन्तःपुर दुःखी हो गया और बाहें उठा कर विलाप करने लगा। तब कौसल्या ने सुमित्रा के साथ अपने गिरे हुए पति को उठाया और कहने लगीं।

इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः।
वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे।। २१।।
अद्येममनयं कृत्वा व्यपत्रपसि राघव।
उत्तिष्ठ सुकृतं तेऽस्तु शोके न स्यात् सहायता।। २२।।
देव यस्या भयाद् रामं नानुपृच्छसि सारथिम्।
नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम्।। २३।।
सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा।
धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी।। २४।।

हे महाभाग! उन दुष्कर कार्य करने वाले श्रीराम के ये दूत वनवास से आये हैं। इनसे आप क्यों नहीं बोल रहे हैं। आज इस अन्याय को कर आप लज्जित हो रहे हैं। आप उठिये। आपको सत्य बोलने का पुण्य मिले। शोक में कोई सहायक नहीं होता। हे देव! जिस कैकेयी के भय से आप सारथी से राम का हाल नहीं पूछ रहे हैं, वह यहाँ नहीं है। इसलिये निर्भय होकर बात कीजिये। आँसुओं से गला भर जाने के कारण जिससे और बोला नहीं गया, वह शोक से पीड़ित कौसल्या महाराज से ऐसा कह कर एकदम भूमि पर गिर पड़ी।

सत्तावनवाँ सर्ग

महाराज दशरथ की आज्ञा से सुमन्त्र का श्रीराम और लक्ष्मण के सन्देश सुनाना।

प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात् प्रत्यागतस्मृतिः।
तदाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात्।। १।।
तदा सूतो महाराजं कृताञ्जलिरुपस्थितः।
राममेवानुशोचन्तं दुःखशोकसमन्वितम्।। २।।

जब राजा की मूर्च्छा दूर हुई और उनकी चेतना लौट कर आयी तब उन्होंने राम का वृत्तान्त पूछने के लिये सुमन्त्र को बुलाया। तब सुमन्त्र हाथ जोड़ कर राम के ही विषय में सोचते हुए दुःख और शोक से भरे हुए महाराज दशरथ के सामने उपस्थित हुए।

वृद्धं परमसंतप्तं नवग्रहमिव द्विपम्।
विनिःश्वसन्तं ध्यायन्तमस्वस्थमिव कुञ्जरम्।। ३।।
राजा तु रजसा सूतं ध्वस्ताङ्गं समुपस्थितम्।
अश्रुपूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवत्।। ४।।

वृद्ध राजा दशरथ राम का ध्यान करते हुए बहुत सन्तप्त हो रहे थे।नये पकड़कर लाये गये बेचैन हाथी के समान वे लम्बी साँस ले रहे थे। उन्होंने धूल से सने हुए शरीर वाले, आँसुओं से भरे हुए और दीन बने हुए सुमन्त्र को सामने उपस्थित देखकर अत्यन्त आर्त होकर उनसे पूछा।

क्व नु वत्स्यति धर्मात्मा वृक्षमूलमुपाश्रितः।
सोऽत्यन्तसुखितः सूत किमशिष्यति राघवः।। ५।।
दुःखस्यानुचितो दुःखं सुमन्त्र शयनोचितः।
भूमिपालात्मजो भूमौ शेते कथमनाथवत्।। ६।।

हे सूत! वे धर्मात्मा श्रीराम वृक्ष की जड़ का सहारा लेकर कहाँ रहेंगे? वे राम जो अत्यन्त सुख में पले थे, अब क्या खायेंगे? हे सूत! जो दुःख भोगने योग्य नहीं हैं। उन्हीं को दुःख प्राप्त हो गया हैं जो सुन्दर शय्या पर सोने योग्य हैं, वे ही राजा के पुत्र अब अनाथों के समान कैसे भूमि पर सोया करते होंगे?

यं यान्तमनुयान्ति स्म पदातिरथकुञ्जराः।
स वत्स्याति कथं रामो विजनं वनमाश्रितः।। ७।।
व्यालैर्मृगैराचरितं कृष्णसर्पनिषेवितम्।
कथं कुमारौ वैदेह्या सार्धं वनमुपाश्रितौ।। ८।।

जिनके चलते समय पीछे-पीछे पैदल रथ और हाथी चलते थे, वे राम अब सुनसान वन में कैसे रहेंगे? जहाँ अजगर और जंगली पशु रहते हैं, जहाँ काले साँप भी निवास करते हैं। उसी वन में वे दोनों राजकुमार सीता के साथ कैसे रहेंगे?

सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया।
राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद् गतौ।। ९।।
किमुवाच वचो रामः किमुवाच च लक्ष्मणः।
सुमन्त्र वनमासाद्य किमुवाच च मैथिली।। १०।।

हे सुमन्त्र! सुकुमारी, तपस्विनी सीता के साथ रथ से उतरकर वे दोनों राजकुमार कैसे पैदल ही गये। हे सुमन्त्र! वन में पहुँच कर राम ने तुमसे क्या कहा? लक्ष्मण ने क्या कहा? और सीता ने क्या कहा?

इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सज्जमानया।
उवाच वाचा राजानं स बाष्पपरिबद्धया।। ११।।
अब्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन्।
अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च।। १२।।
सूत मद्वचनात् तस्य तातस्य विदितात्मनः।
शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः।। १३।।
सर्वमन्तःपुरं वाच्यं सूत मद्वचनात् त्वया।
आरोग्यमविशेषेण यथार्हमभिवादनम्।। १४।।

राजा के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर सूत ने आँसुओं से रुँधी हुई लड़खड़ाती हुई आवाज में राजा से कहा। वे बोले महाराज! श्रीराम ने धर्म का पालन करते हुए, हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर प्रणाम करते हुए यह कहा कि हे सूत तुम मेरी तरफ से आत्मज्ञानी, महात्मा वन्दनीय पिता जी के दोनों चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करना। मेरी तरफ से सारे अन्तःपुर को यथायोग्य अभिवादन कर उनसे हमारे आरोग्य के विषय में बताना।

माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम्।
अप्रमादं च वक्तव्या ब्रूयाश्चैनामिदं वचः।। १५।।
धर्मनित्या यथाकालमग्न्यगारपरा भव।
देवि देवस्य पादौ च देववत् परिपालय।। १६।।

इसके पश्चात् मेरी माता कौसल्या को मेरा प्रणाम, मेरी कुशलता और मेरे धर्म पालन में अप्रमाद के विषय में कहना। उनसे मेरी तरफ से कहना कि तुम धर्म का नित्य पालन करती हुई यथासमय अग्निहोत्र करती रहो। हे देवी! महाराज के चरणों की देवता के समान सेवा करना।

अभिमानं च मानं च त्यक्त्वा वर्तस्व मातृषु।
अनुराजानमार्यां च कैकेयीमम्ब कारय।। १७।।
कुमारे भरते वृत्तिर्वर्तितव्या च राजवत्।
अप्यज्येष्ठा हि राजानो राजधर्ममनुस्मर।। १८।।

आप अभिमान और मान की भावना को छोड़ कर सारी माताओं से मिल कर रहना। हे माता! जिसमें राजा का प्रेम है, उस कैकेयी का भी सत्कार करना। कुमार भरत के साथ आप राजाओं जैसा बर्ताव करें। राजा आयु में छोटे हों तो भी आदर के योग्य होते हैं, इस राज धर्म को याद रखना।

भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च।
सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु।। १९।।
वक्तव्यश्च महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः।
पितरं यौवराज्यस्थो राजस्थमनुपालय।। २०।।
अतिक्रान्तवया राजा मा स्मैनं व्यपरोरुधः।
कुमारराज्ये जीवस्व तस्यैवाज्ञाप्रवर्तनात्।। २१।।

इक्ष्वाकुकुल को अनिन्दित करने वाले भरत से यह कहना कि तुम राज्यसिंहासन पर विद्यमान पिता जी की युवराज बने रह कर रक्षा करना। राजा बूढ़े हो गये हैं, ऐसा सोच कर उनका विरोध मत करना। उनकी आज्ञा का पालन करते हुए युवराज रहते हुए ही जीवन निर्वाह करना। भरत से मेरी कुशलता बता कर मेरी तरफ से यह भी कहना कि तुम सभी माताओं से न्याययुक्त बर्ताव करना।

अब्रवीच्चापि मां भूयो भृशमश्रूणि वर्तयन्।
मातेव मम माता ते द्रष्टव्या पुत्रगर्धिनी।। २२।।
इत्येवं मां महाबाहुर्ब्रुवन्नेव महायशाः।
रामो राजीवपत्राक्षो भृशमश्रूण्यवर्तयत्।। २३।।

फिर मुझे दुबारा आँखों से बहुत आँसू बहाते हुए भरत के लिये यह कहा कि हे भरत मेरी पुत्रवत्सला माता को अपनी माता के समान ही देखना। इस प्रकार वे महान यशस्वी, महाबाहु, कमल नयन श्रीराम मुझसे कहते हुए बड़े ज़ोर से आँसू बहाने लगे।

लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो निःश्वसन् वाक्यमब्रवीत्।
केनायमपराधेन राजपुत्रो विवासितः।। २४।।
राज्ञा तु खलु कैकेय्या लघु चाश्रुत्य शासनम्।
कृतं कार्यमकार्यं वा वयं येनाभिपीडिताः।। २५।।

लक्ष्मण तो बहुत क्रुद्ध होकर लम्बी साँस लेते हुए यह बोले कि किस अपराध से इन राजकुमार को निर्वासित किया गया है? राजा ने तो कैकेयी का आदेश सुनकर तुरन्त प्रतिज्ञा कर ली। वह उनका कार्य उचित हो या अनुचित, पर इससे हमें दुःख भोगना पड़ रहा है।

यदि प्रव्राजितो रामो लोभकारणकारितम्।
वरदाननिमित्तं वा सर्वथा दुष्कृतं कृतम्।। २६।।
इदं तावद् यथाकाममीश्वरस्य कृते कृतम्।
रामस्य तु परित्यागे न हेतुमुपलक्षये।। २७।।

राम को देश से बाहर भेजना लोभ के कारण हुआ या वरदान के कारण हुआ, यह पूरी तरह से पाप किया गया है। यह राम को वनवास स्वेच्छाचारिता के कारण दिया गया या ईश्वर की इच्छा के कारण मैं इसमें उचित कारण को नहीं देखता।

असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात्।
जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम्।। २८।।
अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः।। २९।।

बुद्धि की तुच्छता के कारण बिना विचार किये यह जो राम का वनवास न्याय के विरुद्ध किया गया है, यह असन्तोष और क्रोध को जन्म देता है। मैं तो महाराज में पितृत्व का कोई लक्षण नहीं देख रहा हूँ। इसलिए मेरे पिता, स्वामी और भाई और बन्धु तो श्रीराम ही हैं।

सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रतम्।
सर्वलोकोऽनुरज्येत कथं चानेन कर्मणा।। ३०।।
सर्वप्रजाभिरामं हि रामं प्रव्राज्य धार्मिकम्।
सर्वलोकविरोधेन कथं राजा भविष्यति।। ३१।।

जो सारी प्रजा की भलाई में लगे रहते हैं, सारी प्रजा के प्यारे हैं, उन राम को त्याग कर राजा के इस कार्य से कैसे लोग उनसे प्रेम कर सकते हैं? सारी प्रजा के प्यारे धार्मिक राम को देश से निकाल कर सारे लोगों का विरोध कर राजा अब राजा कैसे रह सकेंगे?

अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी।
तेन दुःखेन रुदती नैव मां किंचिदब्रवीत्।। ३२।।
उद्वीक्षमाणा भर्तारं मुखेन परिशुष्यता।
मुमोच सहसा बाष्पं प्रयान्तमुपवीक्ष्य सा।। ३३।।

महाराज। तपस्विनी जानकी तो, जिसने पहले कभी दुःख नहीं देखा था, वह यशस्विनी राजकुमारी, लम्बी

साँस लेती हुई, उस दुःख के कारण रोती रहीं, कुछ बोली नहीं। मुझे आता हुआ देख कर वे अपने पति को सूखे हुए मुख से देखती हुई सहसा आँसू बहाने लगी थीं।

तथैव रामोऽश्रुमुखः कृताञ्जलिः
स्थितोऽब्रवील्लक्ष्मणबाहुपालितः।
तथैव सीता रुदती तपस्विनी
निरीक्षते राजरथं तथैव माम्।। ३४।।

लक्ष्मण की भुजाओं का सहारा लिये और आँखों में आँसू भरे हुए राम उस समय हाथ जोड़े खड़े हुए थे और वह तपस्विनी सीता रोती हुई मेरी तरफ और आपके इस रथ की तरफ देख रही थी।

अट्ठावनवाँ सर्ग

सुमन्त्र द्वारा श्रीराम के शोक से अयोध्यापुरी की दुरवस्था का वर्णन और राजा दशरथ का विलाप।

गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान् बहून्।
आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति।। १।।
प्रविशन्तमयोध्यायां न कश्चिदभिनन्दति।
नरा राममपश्यन्तो निःश्वसन्ति मुहुर्मुहुः।। २।।

हे महाराज! मैं गुह के साथ कई दिनों तक वहाँ ठहरा रहा कि शायद राम पुनः मुझे बुला लें। यहाँ अयोध्या में प्रवेश करते हुए लोगों ने मेरे साथ राम को न देखकर मेरा स्वागत नहीं किया और सब लम्बी साँसें लेने लगे।

देव राजरथं दृष्ट्वा विना राममिहागतम्।
दूरादश्रुमुखः सर्वो राजमार्गे गतो जनः।। ३।।
हर्म्यैर्विमानैः प्रासादैरवेक्ष्य रथमागतम्।
हाहाकारकृता नार्यो रामादर्शनकर्शिताः।। ४।।

राजमार्ग पर आये लोगों ने जब यह देखा कि राजा का रथ राम के बिना यहाँ लौट आया है, तब वे दूर से ही आँसू बहाने लगे। अपने सात मंजिला मकानों, अट्टालिकाओं और प्रासादों से स्त्रियों ने जब रथ को आया हुआ देखा, तब राम के दर्शन न होने से दुःखी होकर वे हा हाकार करने लगीं।

आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवेगपरिप्लुतैः ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तेऽव्यक्तमार्ततराः स्त्रियः।। ५।।
नामित्राणां न मित्राणामुदासीनजनस्य च।
अहमार्ततया कंचिद् विशेषं नोपलक्षये।। ६।।

वे अत्यन्त दुखी स्त्रियाँ अपने आँसुओं के वेग में डूबे हुए बड़े-बड़े नेत्रों से एक दूसरी की तरफ अव्यक्त भाव से देख रहीं थीं। मैंने अयोध्या में शत्रु, मित्र, मध्यस्थ तीनों तरह के लोगों को समानरूप से दुःखी पाया। उनके दुःखी होने में कोई कम या अधिक होने की बात नहीं है।

आर्तस्वरपरिम्लाना विनिःश्वसितनिःस्वना।
निरानन्दा महाराज रामप्रव्राजनातुरा।। ७।।
कौसल्या पुत्रहीनेव अयोध्या प्रतिभाति मे।
सूतस्य वचनं श्रुत्वा वाचा परमदीनया।। ८।।
बाष्पोपहतया सूतमिदं वचनमब्रवीत्।

हे महाराज! राम के निष्कासन के कारण सारी नगरी मुझे आर्तनाद करती हुई उदास, लम्बी साँसें लेती हुई, आनन्द से रहित, पुत्रहीन कौसल्या के समान प्रतीत हो रही है। सुमन्त्र की बात सुनकर राजा ने अत्यन्त दीन और आँसुओं से भरी हुई वाणी से यह कहा।

कैकेय्या विनियुक्तेन पापाभिजनभावया।। ९।।
मया न मन्त्रकुशलैर्वृद्धैः सह समर्थितम्।
न सुहृद्भिर्न चामात्यैर्मन्त्रयित्वा सनैगमैः।। १०।।
मयायमर्थः सम्मोहात् स्त्रीहेतोः सहसा कृतः।

हे सूत! जो पापपूर्ण कुल और पापपूर्ण भावनाओं वाली है, उस कैकेयी के द्वारा प्रेरित होकर मैंने विचार कुशल वृद्धों से सलाह नहीं ली। मैंने मंत्रियों से, मित्रों से, वेद वेत्ताओं से कोई सलाह नहीं ली। मैंने यह कार्य स्त्री के कारण मोह में आकर अचानक कर दिया।

भवितव्यतया नूनमिदं वा व्यसनं महत्।। ११।।
कुलस्यास्य विनाशाय प्राप्तं सूत यदृच्छया।
सूत यद्यस्ति ते किंचिन्मयापि सुकृतं कृतम्।। १२।।
त्वं प्रापयाशु मां रामं प्राणाः सत्वरयन्ति माम्।
यद्यद्यापि ममैवाज्ञा निवर्तयतु राघवम्।। १३।।
न शक्ष्यामि विना रामं मुहूर्तमपि जीवितुम्।

हे सूत! वास्तव में यह महान विपत्ति, परमात्मा की इच्छा से ही इस कुल के विनाश के लिये आयी है। हे सूत! मैंने यदि तुम्हारे साथ थोड़ा सा भी कभी अच्छा कार्य किया हो तो तुम मुझे जल्दी राम के पास पहुँचा दो। मेरे प्राण मुझे जल्दी करने की प्रेरणा दे रहे हैं। यदि आज भी मेरी आज्ञा मानी जाती है तो मेरी आज्ञा है कि राम को लौटा लाओ। मैं राम के बिना एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकता।

अथवापि महाबाहुर्गतो दूरं भविष्यति।। १४।।
मामेव रथमारोप्य शीघ्रं रामाय दर्शय।
वृत्तदंष्ट्रो महेष्वासः क्वासौ लक्ष्मणपूर्वजः।। १५।।
यदि जीवामि साध्वेनं पश्येयं सीतया सह।

अथवा वह महाबाहु अब तक दूर चले गये होंगे, मुझे ही रथ में बैठाकर राम के दर्शन कराओ। गोल और दृढ़ दाँतों वाले, महाधनुर्धर और लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीराम कहाँ है? यदि मैं सीता के साथ उनका अच्छी तरह से दर्शन कर लूँ तभी जीवित रह सकता हूँ।

लोहिताक्षं महाबाहुमामुक्तमणिकुण्डलम्।। १६।।
रामं यदि न पश्येयं गमिष्यामि यमक्षयम्।
अतो नु किं दुःखतरं योऽहमिक्ष्वाकुनन्दनम्।। १७।।
इमामवस्थामापन्नो नेह पश्यामि राघवम्।
हाराम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत्।। १८।।

मैं लाल नेत्रों वाले, विशाल भुजाओं वाले और मणियों के कुण्डल धारण करने वाले श्रीराम को यदि नहीं देखूँगा तो मृत्युलोक को चला जाऊँगा। मेरे लिये इससे अधिक दुःखदायक बात क्या होगी कि मैं इस बुरी अवस्था में आकर भी यहाँ इक्ष्वाकुनन्दन श्रीराम को नही देख रहा हूँ। हा राम, हा लक्ष्मण, हा तपस्विनी सीता। तुम नहीं जानते कि मैं दुःख से अनाथ के समान मर रहा हूँ।

अशोभनं योऽहमिहाद्य राघवं
दिदृक्षमाणो न लभे सलक्ष्मणम्।
इतीव राजा विलपन् महायशाः
पपात तूर्णं शयने स मूर्च्छितः।। १९।।

यह मेरे पाप का फल है कि मैं लक्ष्मण सहित राम को देखना चाहता हूँ, पर इनको नहीं देख रहा हूँ। इस प्रकार महा यशस्वी राजा विलाप करते हुए तुरन्त बिस्तरे पर गिर गये और मूर्च्छित हो गये।

इति विलपति पार्थिवे प्रणष्टे
करुणतरं द्विगुणं च रामहेतोः।
वचनमनुनिशम्य तस्य देवी
भयमगमत् पुनरेव राममाता।। २०।।

इस प्रकार राम के कारण और भी अधिक करुणा से विलाप करते हुए राजा के मूर्च्छित हो जाने पर उनके वचनों को सुन कर राम की माता कौसल्या को पुनः दुगुना भय हो गया।

उनसठवाँ सर्ग

कौसल्या का विलाप और सुमन्त्र का उन्हें समझाना।

धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सूतमब्रवीत्।
नय मां यत्र काकुत्स्थः सीता यत्र च लक्ष्मणः।। १।।
तान् विना क्षणमप्यद्य जीवितुं नोत्सहे ह्यहम्।
निवर्तय रथं शीघ्रं दण्डकान् नय मामपि।। २।।
अथ तान् नानुगच्छामि गमिष्यामि यमक्षयम्।

उस समय कौसल्या भी राम के शोक में पृथिवी पर मूर्च्छित सी होकर गिर पड़ी और भूमि पर पड़े हुए ही वे सूत से कहने लगी कि हे सुमन्त्र तुम मुझे वहीं ले चलो जहाँ श्रीराम सीता और लक्ष्मण हैं। उनके बिना मुझे क्षणभर भी जीवित रहने की इच्छा नहीं है। तुम अपने रथ को जल्दी ही दण्डकारण्य की तरफ लौटाओ और मुझे भी वहाँ ले चलो। यदि मैं उनके समीप नहीं जा सकी तो मृत्यु के घर चली जाऊँगी।

बाष्पवेगोपहतया स वाचा सज्जमानया।। ३।।
इदमाश्वासयन् देवीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
त्यज शोकं च मोहं च सम्भ्रमं दुःखजं तथा।। ४।।
व्यवधूय च संतापं वने वत्स्यति राघवः।

तब सूत ने हाथ जोड़ कर, आँसुओं के वेग से रुकी हुई और लड़खड़ाती हुई वाणी से देवी कौसल्या को इस प्रकार आश्वासन दिया कि हे महारानी। शोक को, मोह को और दुःख से पैदा होने वाली व्याकुलता को छोड़िये। श्रीराम अपने सारे सन्ताप भुलाकर वन में रह रहे हैं।

लक्ष्मणश्चापि रामस्य पादौ परिचरन् वने।। ५।।
आराधयति धर्मज्ञः परलोकं जितेन्द्रियः।
विजनेऽपि वने सीता वासं प्राप्य गृहेष्विव।। ६।।
विस्रम्भं लभतेऽभीता रामेविन्यस्तमानसा।

धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय लक्ष्मण भी वन में राम के चरणों की सेवा करते हुए अपने परलोक का निर्माण कर रहे हैं। सीता निर्जन वन में भी राम के प्रति अपना मन लगाकर, निडरता के साथ घर की तरह सुख को प्राप्त कर रही है।

नास्या दैन्यं कृतं किंचित् सुसूक्ष्ममपि लक्ष्यते।। ७।।
उचितेव प्रवासानां वैदेही प्रतिभाति मे।
नगरोपवनं गत्वा यथा स्म रमते पुरा।। ८।।
तथैव रमते सीता निर्जनेषु वनेष्वपि।

उनके अन्दर थोड़ा सा भी दीनता का भाव नहीं दिखाई देता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि सीता को विदेश में रहने का पहले से ही अभ्यास है। जैसे वह पहले नगर के बगीचों में जाकर आनन्द लेती थी वैसे ही वह निर्जन वन में भी आनन्द उठाती है।

बालेव रमते सीताबालचन्द्रनिभानना।। ९।।
रामा रामे ह्यदीनात्मा विजनेऽपि वने सती।
तद्गतं हृदयं यस्यास्तदधीनं च जीवितम्।। १०।।
अयोध्या हि भवेदस्या रामहीना तथा वनम्।

निर्जन वन में भी पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली सती सीता, बिना किसी भय के राम के समीप बालिका के समान आनन्द उठाती और खेलती रहती है। उनका हृदय राम में ही लगा हुआ है, उनका जीवन भी उन्हीं के आधीन है। राम के बिना तो उसके लिये अयोध्या भी वन के समान होगी।

परिपृच्छति वैदेही ग्रामांश्च नगराणि च।। ११।।
गतिं दृष्ट्वा नदीनां च पादपान् विविधानपि।
रामं वा लक्ष्मणं वापि दृष्ट्वा जानाति जानकी।। १२।।
अयोध्या क्रोशमात्रे तु विहारमिव साश्रिता।

सीता मार्ग में आने वाले ग्रामों, नगरों, नदियों के प्रवाहों और तरह-तरह के वृक्षों को देख कर उनके विषय में पूछा करती है। राम को या लक्ष्मण को अपने पास देख कर सीता यही समझती है कि अयोध्या से एक कोस दूर ही वह घूमने के लिये आयी है।

इदमेव स्मराम्यस्याः सहसैवोपजल्पितम्।। १३।।
कैकेयीसंश्रितं जल्पं नेदानीं प्रतिभाति माम्।
ध्वंसयित्वा तु तद् वाक्यं प्रमादात् पर्युपस्थितम्।। १४।।
ह्लादनं वचनं सूतो देव्या मधुरमब्रवीत्।

मुझे सीता के विषय में इतना ही याद है, कैकेयी को लक्ष्य करके जो कोई बात उन्होंने सहसा कही थी, वह मुझे याद नहीं आ रही। इस प्रकार गलती से जो बात (कैकेयी के विषय में) सूत के मुख से निकल गयी थी, उसे उलट कर उसने प्रसन्नतादायक मधुर वाणी में देवी कौसल्या से कहा।

अध्वना वातवेगेन सम्भ्रमेणातपेन च।। १५।।
न विगच्छति वैदेह्याश्चन्द्रांशुसदृशी प्रभा।
सदृशं शतपत्रस्य पूर्णचन्द्रोपमप्रभम्।। १६।।
वदनं तद् वदान्याया वैदेह्या न विकम्पते।

रास्ते की थकावट, वायु के वेग, धूप और घबराहट से भी सीता की चन्द्रमा के समान कान्ति मलिन नहीं होती है। उस उदार हृदय सीता का कमल के समान सुन्दर पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति से युक्त मुख कभी भी मलिन नहीं प्रतीत होता।

अलक्तरसरक्ताभावलक्तरसवर्जितौ ।। १७।।
नूपुरोत्कृष्टलीलेव खेलं गच्छति भामिनी।। १८।।
इदानीमपि वैदेही तद्रागान्यस्तभूषणा।

यद्यपि उनमें महावर के रंग नहीं लगाये हुए हैं, फिर भी सीता के दोनों चरण महावर के समान लाल और कमल कोश के समान कान्तिमान हैं। अब भी सीता ने क्योंकि श्रीराम के प्रेम के कारण आभूषण पहने हुए हैं, इसलिये वह भामिनी नूपुरों की उत्कृष्ट लीला अर्थात् झंकार से खेल सी करती हुई चलती है।

गजं वावीक्ष्य सिंहं वा व्याघ्रं वा वनमाश्रिता।। १९।।
नाहारयति संत्रासं बाहू रामस्य संश्रिता।
न शोच्यास्ते न चात्मा ते शोच्यो नापि जनाधिपः।
इदं हि चरितं लोके प्रतिष्ठास्यति शाश्वतम्।। २०।।

राम की भुजाओं का आश्रय लेकर वह वन में रहती हुई, हाथी, शेर या बाघ को देखकर कभी भय नहीं समझती। आपको उनके विषय में, अपने विषय में और महाराज के विषय में भी शोक नहीं करना चाहिये। श्रीराम का यह महान चरित्र संसार में सदा स्थिर रहेगा।

विधूय शोकं परिहृष्टमानसा
महर्षियाते पथि सुव्यवस्थिताः।
वने रता वन्यफलाशनाः पितुः
शुभां प्रतिज्ञां प्रतिपालयन्ति ते।। २१।।

वे तीनों ही शोक को दूर कर, प्रसन्न हृदय से, महर्षियों के मार्ग में अच्छी तरह से चल रहे हैं। वन में रहते हुए, वन्य फलों को खाते हुए वे पिता की उत्तम प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं।

तथापि सूतेन सुयुक्तवादिना
निवार्यमाणा सुतशोककर्शिता।
न चैव देवी विरराम कूजितात्
प्रियेति पुत्रेति च राघवेति च।। २२।।

यद्यपि सुमन्त्र ने अच्छी युक्तियों सहित बातें कह कर पुत्र के शोक से पीड़ित कौसल्या को शोक करने से रोका, पर फिर भी वह देवी विलाप करने से रुकी नहीं और हा। पुत्र! हा राघव। इस प्रकार क्रन्दन करती रही।

साठवाँ सर्ग

कौसल्या का विलाप पूर्वक राजा दशरथ को उपालम्भ देना।

कौसल्या रुदती चार्ता भर्तारमिदमब्रवीत्।
यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद् यशः।। १।।
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः।
कथं नरवरश्रेष्ठ पुत्रौ तौ सह सीतया।। २।।
दुःखितौ सुखसंवृद्धौ वने दुःखं सहिष्यतः।

उस समय रोती हुई कौसल्या आर्त होकर अपने पति से इस प्रकार बोली कि हे महाराज। यद्यपि तीनों लोकों में आपका यश फैला हुआ है कि रघुवंशी राजा दशरथ बड़े दयालु उदार और प्रियवादी हैं, पर हे नरश्रेष्ठ! आपने यह नहीं सोचा कि वे दोनों सुख में पले हुए पुत्र अब दुःख में पड़कर सीता के साथ वन में कैसे कष्टों को सहन करेंगे।

सा नूनं तरुणी श्यामा सुकुमारी सुखोचिता।। ३।।
कथमुष्णं च शीतं च मैथिली विसहिष्यते।
भुक्त्वाशनं विशालाक्षी सूपदंशान्वितं शुभम्।। ४।।
वन्यं नैवारमाहारं कथं सीतोपभोक्ष्यते।
गीतवादित्रनिर्घोषं श्रुत्वा शुभसमन्विता।। ५।।
कथं क्रव्यादसिंहानां शब्दं श्रोष्यत्यशोभनम्।

वह सुन्दर तरुणी सीता, जो सुखों को भोगने योग्य है कैसे गर्मी और सर्दी को सहन करेगी? जो विशाल नेत्रों वाली सीता पहले स्वादिष्ट भोज्यसामग्री से युक्त भोजन खा चुकी हैं, वह अब जंगली नीवार (तिन्नी) के चावलों को कैसे खायेगी? जो पहले मंगलमय पदार्थों से युक्त होकर गीत और वाद्यों की मधुर ध्वनि सुना करती थी, वह अब मांसाहारी सिंहों का अमंगलकारी शब्द कैसे सुनेगी?

पद्मवर्णं सुकेशान्तं पद्मनिश्वासमुत्तमम्।। ६।।
कदा द्रक्ष्यामि रामस्य वदनं पुष्करेक्षणम्।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं मे न संशयः।। ७।।
अपश्यन्त्या न तं यद् वै फलतीदं सहस्रधा।

जो कमल के समान कान्ति मान है, जिसके ऊपर सुन्दर बाल लहराते रहते हैं, जिसकी निश्वास भी कमल के समान गन्धवाली है, जिसके कमल के समान नेत्र हैं, श्रीराम के उस मुख को मैं कब देखूँगी? मेरा हृदय वास्तव में लोहे का बना हुआ है, जो राम को न देख कर इसके हजारों टुकड़े नहीं हो जाते।

यत् त्वया करुणं कर्म व्यपोह्य मम बान्धवाः।। ८।।
निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने।
यदि पञ्चदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति।। ९।।
जह्याद् राज्यं च कोशं च भरतो नोपलक्ष्यते।

मेरे बान्धवों को निकाल कर आपने यह दुःखदायी काम किया है। अब वे सुख भोगने योग्य, निकाले जाने के कारण दुःख में पड़े हुए वन में भाग रहे हैं। यदि राम पन्द्रहवें वर्ष में पुनः आये तब यह दिखाई नहीं देता कि भरत राज्य और खजाने को उनके लिये छोड़ दें।

ब्राह्मणेष्वपि वृत्तेषु भुक्तशेषं द्विजोत्तमाः।। १०।।
नाभ्युपेतुमलं प्राज्ञाः शृङ्गच्छेदमिवर्षभाः।
एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशाम्पते।। ११।।
भ्राता ज्येष्ठो वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते।

पहली पंक्ति में ब्राह्मणों के भोजन करने पर भी श्रेष्ठ और विद्वान् ब्राह्मण शेष और बचे हुए भोजन को स्वीकार नहीं करते। जैसे उत्तम बैल सींग कटाने को तैयार नहीं होते। इसी प्रकार हे महाराज! छोटे भाई के भोगे हुए राज्य को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ भाई क्यों नहीं तिरस्कृत करेंगे?

न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति॥ १२॥
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मंस्यते।
नैवंविधमसत्कारं राघवो मर्षयिष्यति॥ १३॥
बलवानिव शार्दूलो वालधेरभिमर्शनम्।

जैसे बाघ दूसरे जन्तुओं के लाये हुए भक्ष्य पदार्थ को खाना नहीं चाहता, वैसे ही वे पुरुष व्याघ्र श्रीराम दूसरे के द्वारा चाटे हुए राज्य भोग को स्वीकार नहीं करेंगे। जैसे बलवान शेर अपनी पूँछ का पकड़ा जाना सहन नहीं कर सकता वैसे ही श्रीराम अपना इस प्रकार का अपमान सहन नहीं करेंगे।

नैतस्य सहिता लोका भयं कुर्युर्महामृधे॥ १४॥
अधर्मं त्विह धर्मात्मा लोकं धर्मेण योजयेत्।
स तादृशः सिंहबलो वृषभाक्षो नरर्षभः॥ १५॥
स्वयमेव हतः पित्रा जलजेनात्मजो यथा।

सारे संसार के लोग भी एकत्र होकर आ जायें, तो भी वे युद्ध में श्रीराम को भयभीत नहीं कर सकते। फिर भी उन्होंने अधर्म समझकर राज्य को नहीं लिया। जो सारे संसार को धर्म में लगाते हैं, वे स्वयं अधर्म कैसे कर सकते हैं। सिंह के समान बलवान और बैल के समान नेत्र वाले नरश्रेष्ठ श्रीराम अपने पिता के ही हाथों मारे गये, जैसे मछली का बच्चा मछली के द्वारा खा लिया जाता है।

द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रे दृष्टः सनातनैः॥ १६॥
यदि ते धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते।
गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः॥ १७॥
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते।
तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया॥ १८॥

धर्म में लगे हुए पुत्र को आपने निर्वासित कर दिया। वह धर्म जिसका ऋषियों ने वेद में दर्शन किया हुआ है और ब्राह्मणों के द्वारा आचरण में लाया हुआ है, आपकी दृष्टि में क्या सत्य है? स्त्रियों के लिये पहला आश्रय पति है, दूसरा पुत्र है, तीसरा आश्रय उसके बन्धु बान्धव हैं, चौथा कोई नहीं है। उनमें से पति के रूप में आप मेरे नहीं हैं अर्थात् मेरी सौत कैकेयी के हैं। पुत्र राम को वन में भेज दिया गया। आपको छोड़कर मैं वन में जाना नहीं चाहती। तो मैं तो सब तरफ से मारी गई।

हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं
हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः
सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ॥ १९॥

आपने राम को वन में भेजकर इस देश का साथी राज्यों सहित नाश कर दिया। मंत्रियों सहित सारी प्रजा मारी गई, सारे नगर वासी मारे गये। केवल आपका बेटा भरत और पत्नी कैकेयी ही प्रसन्न हुए हैं।

इकसठवाँ सर्ग

दुःखी हुए राजा दशरथ का कौसल्या को हाथ जोड़कर मनाना और कौसल्या का उनके चरणों में पड़कर क्षमा माँगना।

एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया।
श्रावितः परुषं वाक्यं चिन्तयामास दुःखितः॥ १॥
चिन्तयित्वा स च नृपो मोहव्याकुलितेन्द्रियः।
अथ दीर्घेण कालेन संज्ञामाप परंतपः॥ २॥

इस प्रकार शोक से युक्त और क्रुद्ध राम की माता के द्वारा कठोर वाक्य सुनाये जाने पर राजा दशरथ दुःखी होकर चिन्ता करने लगे। चिन्ता करते हुए राजा मोह में घिर गये। उनकी सारी इन्द्रियाँ बेचैन हो गयीं। लम्बे समय के बाद उन शत्रुओं को तपाने वाले राजा को चेतना आयी।

स संज्ञामुपलभ्यैव दीर्घमुष्णं च निःश्वसन्।
कौसल्यां पार्श्वतो दृष्ट्वा ततश्चिन्तामुपागमत्॥ ३॥
तस्य चिन्तयमानस्य प्रत्यभात् कर्म दुष्कृतम्।
यदनेन कृतं पूर्वमज्ञानाच्छब्दवेधिना॥ ४॥

चेतन होकर लम्बी और गर्म साँस लेते हुए उन्होंने पास में कौसल्या को बैठे हुए देखा। उसे देखकर वे फिर चिन्ता में पड़ गये। उनके चिन्ता करते हुए उन्हें अपना एक बुरा कर्म याद आया जो उन्होंने अज्ञान से शब्दवेधी बाण के द्वारा किया था।

अमनास्तेन शोकेन रामशोकेन च प्रभुः।
द्वाभ्यामपि महाराजः शोकाभ्यामभितप्यते॥ ५॥
दह्यमानस्तु शोकाभ्यां कौसल्यामाह दुःखितः।
वेपमानोऽञ्जलिं कृत्वा प्रसादार्थमवाङ्मुखः॥ ६॥

उस बुरे कर्म के शोक से और राम के शोक से मन में बेचैन। वे महाराज दोनों ही शोकों से उस समय तप रहे थे। उन दोनों शोकों से जलते हुए दुःखी महाराज नीचा मुख करके काँपते हुए हाथों को जोड़ कर कौसल्या से उसे मनाने के लिये बोले।

प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि।। ७।।
भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान् निर्गुणोऽपि वा।
धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम्।। ८।।

हे कौसल्या! मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिये प्रार्थना करता हूँ। ये मैंने दोनों हाथ जोड़ रखे हैं। तुम तो दूसरों पर भी प्रेम और दया दिखाने वाली हो। हे देवी! धर्म का आचरण करने वाली स्त्रियों के लिये तो पति चाहे गुणवान हो या निर्गुण हो, फिर भी साक्षात् देवता के समान होता है।

सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा।
नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुःखितापि सुदुःखितम्।। ९।।
तद् वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम्।
कौसल्याव्यसृजद् वाष्पं प्रणालीव नवोदकम्।। १०।।

तुम तो सदा धर्म का पालन करती हो। तुमने लोक के अच्छे और बुरे कार्यों को देखा है। यद्यपि तुम दुःखी हो पर मैं भी बहुत अधिक दुःखी हूँ। तुम्हें मुझ से कठोर बातें नहीं कहनी चाहिये। दीन बने हुए राजा के उन दुःख से भरे हुए वाक्यों को सुन कर कौसल्या आँखों से ऐसे आँसू बहाने लगी जैसे नाली से वर्षा का नूतन जल गिर रहा हो।

सा मूर्ध्नि बद्ध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम्।
सम्भ्रमादब्रवीत् त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः।। ११।।
प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते।
याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया।। १२।।

वह रोती हुई राजा की कमल के समान अंजुलि को अपने सिर से लगाकर घबराहट के साथ डरी हुई जल्दी से एक-एक अक्षर पर ज़ोर देती हुई यह वचन बोली कि हे देव! मैं भूमि पर पड़ी हुई, सिर झुकाकर याचना करती हूँ। आप प्रसन्न होइये। आपने मुझसे याचना की है तो मैं मारी गयी। मुझे क्षमा कर दीजिये।

नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता।
उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या सम्प्रसाद्यते।। १३।।
जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम्।
पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम्।। १४।।

जो स्त्री दोनों लोकों में श्लाघनीय और धीमान अपने पति के द्वारा इस लोक में प्रार्थना द्वारा मनाई जाती है, वह कुलस्त्री नहीं है। हे धर्मज्ञ! मैं धर्म को जानती हूँ और आप को भी जानती हूँ कि आप सत्यवादी हैं, पर पुत्रशोक के कारण वह मेरे मुख से कुछ भी निकल गया।

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः।। १५।।
शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः।
सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते।। १६।।

शोक धैर्य को नष्ट कर देता है। शोक विद्या को नष्ट कर देता है। शोक सब कुछ नष्ट कर देता है। शोक सबसे बड़ा शत्रु है। शत्रु के हाथ से अपने ऊपर पड़े हुए प्रहार को सहन करना सम्भव है पर आया हुआ थोड़ा सा भी शोक सहन नहीं किया जाता।

वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽत्र गण्यते।
यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम।। १७।।
तं हि चिन्तयमानायाः शोकोऽयं हृदि वर्धते।
नदीनामिव वेगेन समुद्रसलिलं महत्।। १८।।

राम को वन के लिये गये अब तक पाँच रात्रियाँ बीत गयीं हैं। मेरे हर्ष को शोक ने समाप्त कर दिया है, अतः ये पाँच रात्रियाँ मेरे लिये पाँच वर्ष के समान व्यतीत हुई हैं। उस राम की चिन्ता करते हुए मेरे हृदय में शोक बढ़ रहा है जैसे नदियों के वेग से समुद्र का जल बढ़ जाता है।

एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः।
मन्दरश्मिरभूत् सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत।। १९।।
अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः।
शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान्।। २०।।

कौसल्या जब इस प्रकार पवित्र वचन कह रही थी, तब सूर्य की किरणे धीमी हो गयीं और रात्रि आने लगी। अब देवी कौसल्या के वाक्यों से प्रसन्न हुए तथा शोक से भी युक्त राजा नींद के वश में हो गये।

बासठवाँ सर्ग

राजा दशरथ का शोक और उनका कौसल्या से अपने द्वारा मुनि कुमार के मारे जाने का प्रसंग सुनाना।

प्रतिबुद्धो मुहूर्तेन शोकोपहतचेतनः।
अथ राजा दशरथः स चिन्तामभ्यपद्यत।। १।।
स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम्।
अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद् दुष्कृतं कृतम्।। २।।
स राजा पुत्रशोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः।
कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत्।। ३।।

शोक से जिनकी चेतना समाप्त सी हो रही थी, वे राजा दशरथ एक मुहूर्त के पश्चात् जाग गये और चिन्ता करने लगे। राम के वन के लिये जाने पर उस छठी रात को आधी रात के समय राजा को अपने द्वारा किये गये एक पाप कर्म की याद आई। पुत्रशोक से पीड़ित राजा अपने पाप कर्म को याद कर पुत्रशोक से पीड़ित कौसल्या से यह वचन बोले।

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः।। ४।।
गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम्।
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते।। ५।।

हे भद्रे! मनुष्य जो कुछ भी अच्छे या बुरे कार्य करता है, उसी अपने कार्य का फल वह प्राप्त करता है। कार्य को आरम्भ करते हुए उसके फल की गुरुता या लघुता या गुण और दोष को जो नहीं जानता उसे (बालक) अज्ञानी कहा जाता है।

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः।। ६।।
सोऽहमाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च न्यषेचयम्।
रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः।। ७।।

जो मनुष्य फल के विषय में न जान कर कर्म की तरफ ही दौड़ता है वह फल प्राप्ति के समय पलाश के वृक्ष को सींचने वाले की तरह शोक करता है। मैंने भी आम के वृक्षों को काटकर पलाशों को सींचा था, इस लिये फल प्राप्ति के समय राम को खो कर मैं दुष्टबुद्धि अब शोक कर रहा हूँ।

लब्धशब्देन कौसल्ये कुमारेण धनुष्मता।
कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम्।। ८।।
तदिदं मेऽनुसम्प्राप्तं देवि दुःखं स्वयंकृतम्।
सम्मोहादिह बालेन यथा स्याद् भक्षितं विषम्।। ९।।
यथान्यः पुरुषः कश्चित् पलाशैर्मोहितो भवेत्।
एवं मयाप्यविज्ञातं शब्दवेध्यमिदं फलम्।। १०।।

हे कौसल्या। कुमारावस्था में जब मैं धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था, तब मुझे शब्दवेधी बाण चलाने में बड़ी प्रवीणता प्राप्त हो गयी थी। कुमार शब्दवेधी बाण चलाने में कुशल है, इस ख्याति के कारण मुझ से यह पाप हो गया। जैसे कोई बच्चा अज्ञान से किसी विष को खा ले, उसी प्रकार मेरे द्वारा किया हुआ पाप कर्म अब दुःख के रूप में प्रकट हुआ है। जैसे कोई दूसरा मूर्ख व्यक्ति पलाश के फूलों पर मोहित हो जाये, वैसे ही मैं भी शब्दवेधी विद्या पर मोहित हो गया, जिसका अब यह फल मैं भोग रहा हूँ।

देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम्।
ततः प्रावृडनुप्राप्ता मम कामविवर्धिनी।। ११।।
उष्णमन्तर्दधे सद्यः स्निग्धा ददृशिरे घनाः।
ततो जहृषिरे सर्वे भेकसारङ्गबर्हिणः।। १२।।

हे देवी। तुम्हारा विवाह नहीं हुआ था, मैं अभी युवराज था, तब एक बार मेरी इच्छाओं को जगाने वाली वर्षा ऋतु आई। तब गर्मी तुरन्त शान्त हो गयी, पानी वाले बादल दिखाई देने लगे। मेंढक, चातक और मोरों में हर्ष छा गया।

क्लिन्नपक्षोत्तराः स्नाताः कृच्छ्रादिव पतत्रिणः।
वृष्टिवातावधूताग्रान् पादपानभिपेदिरे।। १३।।
पतितेनाम्भसाऽऽच्छन्नः पतमानेन चासकृत्।
आबभौ मत्तसारङ्गस्तोयराशिरिवाचलः।। १४।।

वर्षा में स्नान करते हुए पक्षियों की पाँखें ऊपर से भीग गयीं थीं। वे वर्षा और वायु से उद्वेलित डालियों के अग्रभाग पर कठिनता से पहुँच पाते थे। गिरते हुए और गिरे हुए पानी से भीगा हुआ मस्त हाथी सागर और पर्वत के समान शोभित हो रहा था।

पाण्डुरारुणवर्णानि स्रोतांसि विमलान्यपि।
सुस्रुवुर्गिरिधातुभ्यः सभस्मानि भुजंगवत्।। १५।।

तस्मिन्नतिसुखे काले धनुष्मानिषुमान् रथी।
व्यायामकृतसंकल्पः सरयूमन्वगां नदीम्।। १६।।

पर्वतों से गिरने वाले झरने निर्मल होने पर भी, पर्वत की धातुओं के कारण सफेद, लाल रंग के और भस्म वाले साँप के समान टेढ़ी चाल से बह रहे थे। उस बड़े सुखदायी समय में मैं धनुष बाण लेकर, रथ पर सवार होकर शिकार खेलने का विचार कर सरयू नदी के किनारे गया।

निपाने महिषं रात्रौ गजं वाभ्यागतं मृगम्।
अन्यद् वा श्वापदं किंचिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः।। १७।।
अथान्धाकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः।
अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येव नर्दतः।। १८।।

मैं उस समय इन्द्रियों के वश में हो रहा था। मैंने सोचा कि रात में घाट पर आये हाथी, मृग या किसी अन्य जन्तु को मारूँगा। उसके बाद मैंने अँधेरे में पानी में घड़े के भरने की ध्वनि सुनी। क्योंकि मुझे दिखाई नहीं दे रहा था इसलिये मैंने उसे हाथी के पानी पीने की आवाज समझा।

ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम्।
शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम्।। १९।।
तत्र वागुषसि व्यक्ता प्रादुरासीद् वनौकसः।
हा हेति पततस्तोये बाणाद् व्यथितमर्मणः।। २०।।
तस्मिन्निपतिते भूमौ वागभूत् तत्र मानुषी।

तब मैंने जहरीले साँप के समान दीप्त बाण को निकाला और यह समझ कर कि हाथी ही पानी पी रहा है, उस शब्द को लक्ष्य कर बाण चला दिया। तब उस उषा काल के समय किसी वनवासी की आवाज सुनाई देने लगी। वह उसके पानी में गिरने और हा हा कार करने की आवाज थी, उसका मर्म बाण से भिद् गया था। उसके गिरने पर मनुष्य की यह वाणी सुनाई देने लगी।

कथमस्मद्विधे शस्त्रं निपतेच्च तपस्विनि।। २१।।
प्रविविक्तां नदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः।
इषुणाभिहतः केन कस्य वापकृतं मया।। २२।।
ऋषेर्हि न्यस्तदण्डस्य वने वन्येन जीवतः।
कथं नु शस्त्रेण वधः मद्विधस्य विधीयते।। २३।।
जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः।
को वधेन ममार्थी स्यात् किं वास्यापकृतं मया।। २४।।
एवं निष्फलमारब्धं केवलानर्थसंहितम्।

कोई कह रहा था कि मेरे जैसे तपस्वी पर यह शस्त्र का प्रहार क्यों हुआ? मैं तो यहाँ एकान्त स्थान पर नदी से पानी लेने आया था। मुझे किसने बाण मारा? मैं तो ऋषि हूँ, दण्डधारण कर वन में वन्य पदार्थों से निर्वाह करता हूँ। मुझ जैसे जटाधारी, वल्कल तथा मृगचर्म को धारण करने वाले का शस्त्र से वध क्यों किया जा रहा है? मैंने किसका अपकार किया है या मेरे वध से किसको लाभ होगा। मेरी हत्या से हत्यारे को कोई लाभ नहीं होगा बल्कि अनर्थ ही प्राप्त होगा।

न क्वचित् साधु मन्येत यथैव गुरुतल्पगम्।। २५।।
नेमं तथानुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः।
मातरं पितरं चोभावनुशोचामि मद्वधे।। २६।।
तदेतन्मिथुनं वृद्धं चिरकालभृतं मया।
मयि पञ्चत्वमापन्ने कां वृत्तिं वर्तयिष्यति।। २७।।
वृद्धौ च मातापितरावहं चैकेषुणा हतः।
केन स्म निहताः सर्वे सुबालेनाकृतात्मना।। २८।।

गुरुपत्नी गामी के समान उस हत्यारे को कोई भला नहीं कहेगा। मैं अपनी मृत्यु के लिये शोक नही करता मैं तो अपने वध से माता पिता की चिन्ता कर रहा हूँ। वे दोनों बूढ़े हैं। मैंने बहुत दिनों तक उनका पालन किया है? मेरे मरने पर वे कैसे अपना जीवन निर्वाह करेंगे? उसने एक ही बाण से मुझे और मेरे माता-पिता तीनों को मार दिया। किस मूर्ख और अजितेन्द्रिय ने यह काम किया है?

तां गिरं करुणं श्रुत्वा मम धर्मानुकाङ्क्षिणः।
कराभ्यां सशरं चापं व्यथितस्यापतद् भुवि।। २९।।
तस्याहं करुणं श्रुत्वा ऋषेर्विलपतो निशि।
सम्भ्रान्तः शोकवेगेन भृशमासं विचेतनः।। ३०।।

मैं धर्म की इच्छा रखता था। उस दुःख से भरी कराह को सुन कर मेरे हाथ से धनुष बाण गिर गया और मैं बड़ा दुःखी हुआ। रात में उस ऋषि के करुण विलाप को सुनकर शोक के वेग से घबरा गया और मेरी चेतना अत्यन्त विलुप्त हो गयी।

तं देशमहमागम्य दीनसत्त्वः सुदुर्मनाः।
अपश्यमिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम्।। ३१।।
अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम्।
पांसुशोणितदिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम्।। ३२।।
स मामुद्वीक्ष्य नेत्राभ्यां त्रस्तमस्वस्थचेतनम्।
इत्युवाच वचः क्रूरं दिधक्षन्निव तेजसा।। ३३।।

मैं बहुत डरा हुआ और दीन बना हुआ उस स्थान पर आया और वहाँ मैंने एक तपस्वी को बाण से बिंधा हुआ देखा। उसकी जटाएँ बिखरी हुई थीं, घड़े का पानी बिखर गया था। उनका शरीर धूल और खून से लिपटा हुआ था। वे भूमि पर पड़े थे। मैं उस समय घबरा रहा था, मेरा चित्त ठिकाने नहीं था। उन्होंने अपने नेत्रों से मुझे देख कर अपने तेज से जलाते हुए के समान ये कठोर वचन कहे।

किं तवापकृतं राजन् वने निवसता मया।
जिहीर्षुरम्भो गुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया।। ३४।।
एकेन खलु वाणेन मर्मण्यभिहते मयि।
द्वावन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे।। ३५।।

हे राजन्! वन में रहते हुए मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है? जो माता पिता के लिये पानी ले जाने का प्रयत्न करते हुए मुझे तूने मारा है। तूने एक बाण से ही मेरे मर्म को छेद कर मेरे बूढ़े और अंधे दोनों माता पिता को भी मार दिया ।

तौ नूनं दुर्बलावन्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ।
चिरमाशां कृतां कष्टां तृष्णां संधारयिष्यतः।। ३६।।
न नूनं तपसो वास्ति फलयोगः श्रुतस्य वा।
पिता यन्मां न जानीते शयानं पतितं भुवि।। ३७।।
जानन्नपि च किं कुर्यादशक्तश्चापरिक्रमः।
भिद्यमानमिवाशक्तस्त्रातुमन्यो नगो नगम्।। ३८।।

वे दोनों अन्धे मेरी प्रतीक्षा में प्यासे बैठे हुए हैं। वे मेरी आशा में दुःखदायी प्यास को सहन करते हुए देर तक बैठे रहेंगे। वास्तव में तपस्या या विद्या पढ़ने का कोई फल नहीं है, क्योंकि पिता जी को यह नहीं मालूम है कि मैं भूमि पर मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ हूँ। यदि वे जान भी जायें तो क्या कर सकते हैं? वे असमर्थ और असहाय हैं। जैसे एक वृक्ष के तोड़े जाने पर दूसरा वृक्ष उसे बचाने के लिये कुछ भी नहीं कर सकता।

पितुस्त्वमेव मे गत्वा शीघ्रमाचक्ष्व राघव।
इयमेकपदी राजन् यतो मे पितुराश्रमः।। ३९।।
विशल्यं कुरु मां राजन् मर्म मे निशितः शरः।
रुणद्धि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा।। ४०।।

हे राघव! अब तुम्ही जाकर शीघ्र मेरे पिता को इसके विषय में कह दो। यह पगडंडी उधर ही गयी है, जहाँ मेरे पिता का आश्रम है। हे राजन्! तुम मेरे शरीर से बाण निकाल दो। यह तीक्ष्ण बाण मेरे मर्म को ऐसे ही काट रहा है, जैसे नदी के पानी का बहाव उसके रेत के कोमल किनारों को काट देता है।

सशल्यः क्लिश्यते प्राणैर्विशल्यो निवशिष्यति।
इत मामविशच्चिन्ता तस्य शल्यापकर्षणे।। ४१।।
दुःखितस्य च दीनस्य मम शोकातुरस्य च।
लक्षयामास स ऋषिश्चिन्तां मुनिसुतस्तदा।। ४२।।

उसके बाण को निकालने में मुझे यह चिन्ता होने लगी कि बाण न निकालने पर इन्हें कष्ट होता है और निकालने पर इनकी मृत्यु हो जायेगी। तब शोक से बेचैन, दुःखी और दीन बने हुए मेरी उस चिन्ता को मुनिपुत्र ने लक्षित करके –

ताम्यमानं स मां कृच्छ्रादुवाच परमार्थवित्।
सीदमानो विवृत्ताङ्गोऽचेष्टमानो गतः क्षयम्।। ४३।।
संस्तभ्य शोकं धैर्येण स्थिरचित्तो भावाम्यहम्।
ब्रह्महत्याकृतं तापं हृदयादपनीयताम्।। ४४।।
न द्विजातिरहं राजन् मा भूत् ते मनसो व्यथा।

मुझे ग्लानि में पड़ा हुआ देख उस परमार्थ को जानने वाले ने मुझ से बड़े कष्ट से कहा कि मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है, मेरे अंगों में तड़पन है, मैं विनाश को प्राप्त हो रहा हूँ और कोई चेष्टा नहीं कर सकता फिर भी शोक को वश में कर धैर्य से स्थिरचित्त होकर कहता हूँ कि तुम ब्रह्महत्या के दुःख को दिल से निकाल दो क्योंकि हे राजन्! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, तुम व्यथित मत हो।

शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप।। ४५।।
इतीव वदतः कृच्छ्राद् बाणाभिहतमर्मणः।
विघूर्णतो विचेष्टस्य वेपमानस्य भूतले।। ४६।।
तस्य त्वाताम्यमानस्य तं वाणमहमुद्धरम्।
स मामुद्वीक्ष्य संत्रस्तो जहौ प्राणांस्तपोधनः।। ४७।।

हे राजा! मैं वैश्य से शूद्रा से उत्पन्न हुआ हूँ। इस प्रकार कष्ट से कहते हुए, जिनका मर्म बाण से छिन्न हो गया था, जिसकी आँखें घूम रहीं थीं, जो चेष्टा रहित होते जा रहे थे और पृथ्वी पर पड़े छटपटा रहे थे, इस प्रकार कष्ट पाते हुए उनका बाण मैंने निकाल दिया। तब उन तपस्वी ने भयभीत हो मेरी तरफ देखते हुए अपने प्राणों को छोड़ दिया।

तिरेसठवाँ सर्ग

राजा दशरथ द्वारा मुनिकुमार के मारे जाने का प्रसंग सुना कर कौसल्या के समीप रोते बिलखते हुए आधी रात के समय अपने प्राणों को त्याग देना।

ततस्तं घटमादाय पूर्णं परमवारिणा।
आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः।। १।।
तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ।
अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविव द्विजौ।। २।।

फिर मैंने उस घड़े को लेकर उसे सरयू के पवित्र पानी से भरा और जैसे बताया था उसी रास्ते से उनके आश्रम में गया। वहाँ मैंने कमजोर, अन्धे, बूढ़े सहायक रहित उसके माता पिता को देखा, जो पर कटे पक्षी के समान थे।

तन्निमित्ताभिरासीनौ कथाभिरपरिश्रमौ।
तामाशां मत्कृते हीनावुपासीनावनाथवत्।। ३।।
शोकोपहतचित्तश्च भयसंत्रस्तचेतनः।
तच्चाश्रमपदं गत्वा भूयः शोकमहं गतः।। ४।।

वे अपने पुत्र की चर्चा करते हुए, उसी के लिये बैठे थे। पुत्र की चर्चा करते हुए उन्हें कोई थकावट नहीं हो रही थी। यद्यपि पुत्र के आने की जिस आशा का उन्हें सहारा था, वह मेरे कारण समाप्त हो गयी थी और वे अनाथ होकर बैठे हुए थे। मेरा हृदय शोक से पीड़ित था, मेरी चेतना भय से घबराई हुई थी, उस आश्रम में आकर मैं फिर और अधिक शोक में पड़ गया।

पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत।
किं चिरायसि मे पुत्र पानीयं क्षिप्रमानय।। ५।।
यन्निमित्तमिदं तात सलिले क्रीडितं त्वया।
उत्कण्ठिता ते मातेयं प्रविश क्षिप्रमाश्रमम्।। ६।।

मेरे पैरों की आहट सुन कर मुनि ने कहा कि पुत्र बड़ी देर कर दी, जल्दी पानी लाओ। तुमने जल में खेल करते हुए जो देर लगा दी, उससे तुम्हारी माता तुम्हारे लिये चिन्तित हो गयी थी। जल्दी आश्रम में प्रवेश करो।

यद् व्यलीकं कृतं पुत्र मात्रा ते यदि वा मया।
न तन्मनसि कर्तव्यं त्वया तात तपस्विना।। ७।।
त्वं गतिस्त्वगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम्।
समासक्तास्त्वयि प्राणाः कथं त्वं नाभिभाषसे।। ८।।

हे तात! तुम्हारी माता ने या मैंने कुछ अप्रिय कर दिया हो तो, तुम उसे मन में मत रखना, क्योंकि तुम तपस्वी हो। हम चल नहीं सकते हैं, तुम्हीं हमारे सहारे हो, हम देख नहीं सकते हैं, तुम ही हमारी आँखें हो। हमारे प्राण तुम्हारे साथ लगे हुए हैं, तुम क्यों नहीं बोल रहे हो?

मुनिमव्यक्तया वाचा तमहं सज्जमानया।
हीनव्यञ्जनया प्रेक्ष्य भीतचित्त इवाब्रुवम्।। ९।।
क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः।
सज्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम्।। १०।।

मुनि को देखकर मैं भयभीत सा हो गया। तब मैं लड़खड़ाती हुई, अस्पष्ट, अभिव्यक्ति रहित वाणी से उनसे बोला, कि हे महात्मन्! मैं आपका पुत्र नहीं हूँ। मैं दशरथ नाम का क्षत्रिय हूँ। मैंने अपने कर्मों से ऐसा दुःख प्राप्त किया है, जिसकी सज्जन लोग निन्दा करते हैं।

भगवंश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः।
जिघांसुः श्वापदं किंचिन्निपाने वागतं गजम्।। ११।।
ततः श्रुतो मया शब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः।
द्विपोऽयमिति मत्वाहं बाणेनाभिहतो मया।। १२।।

हे भगवन्! मैं धनुष बाण लेकर सरयू नदी के किनारे आया था। मैं घाट पर पानी पीने के लिये आये किसी जंगली हाथी या हिंसक पशु को मारना चाहता था। तब मैंने पानी में घड़ा भरने की आवाज सुनी। मैंने यह समझ कर कि यह हाथी की आवाज है, उस पर बाण चला दिया।

गत्वा तस्यास्ततस्तीरमपश्यमिषुणा हृदि।
विनिर्भिन्नं गतप्राणं शयानं भुवि तापसम्।। १३।।
ततस्तस्यैव वचनादुपेत्य परितप्यतः।
स मया सहसा बाण उद्धृतो मर्मतस्तदा।। १४।।
स चोद्धृतेन बाणेन सहसा स्वर्गमास्थितः।
भगवन्तावुभौ शोचन्नन्धाविति विलप्य च।। १५।।

फिर मैंने सरयू के किनारे जा कर देखा कि एक तपस्वी की छाती में बाण लगा है और वे मरणासन्न होकर भूमि पर पड़े हैं। तब उन्हें बाण से बड़ी पीड़ा हो रही थी। मैंने उनके कहने से ही उनके पास जाकर बाण को उनके मर्म स्थान से सहसा निकाल दिया। बाण के निकालने से वह तुरन्त स्वर्ग को चले गये। इससे पहले

उन्होंने आप दोनों के लिये वे अन्धे हैं ऐसा कहकर बड़ा शोक और विलाप किया था।

अज्ञानाद् भवतः पुत्रः सहसाभिहतो मया।
स तच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं मया तदघशंसिना।। १६।।
स बाष्पपूर्णवदनो निःश्वसञ्छोकमूर्च्छितः।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम्।। १७।।

इस प्रकार अज्ञानवश आपका पुत्र मेरे द्वारा मारा गया है। मेरे द्वारा उस पाप को प्रकट करने वाले क्रूर वचन को सुनकर वह महातेजस्वी आँसुओं से भरे मुख से लम्बी साँस लेते हुए मूर्च्छित हो गये। मैं उनके सामने हाथ जोड़े खड़ा था। तब उन्होंने मुझ से कहा—

नय नौ नृपं तं देशमिति मां चाभ्यभाषत।
अद्य तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पश्चिमदर्शनम्।। १८।।
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं प्रकीर्णाजिनवाससम्।
शयानं भुवि निःसंज्ञं धर्मराजवशं गतम्।। १९।।
अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ।
अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया।। २०।।

हे राजा! तुम हमें उसी स्थान पर ले चलो। उन्होंने मुझ से कहा हम उसके अन्तिम दर्शन करना चाहते हैं। तब मैं अकेला ही उन दोनों को, जो बहुत दुःखी हो रहे थे, उस जगह पर ले गया और उस मुनि का उसकी पत्नी के साथ, उसके पुत्र के शरीर का स्पर्श कराया, जो खून से सना हुआ था, जिसके वल्कल वस्त्र बिखरे पड़े थे, जो मृत्यु के वश में होकर चेतना रहित होकर भूमि पर पड़ा हुआ था।

तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ।
निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चैनमुवाच ह।। २१।।
नाभिवादयसे माद्य न च मामभिभाषसे।
किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि।। २२।।

वे दोनों (माता पिता) अपने पुत्र को स्पर्श कर, उसके समीप जाकर उसके शरीर पर गिर पड़े और पिता ने उससे कहा हे पुत्र! तुम आज मुझे प्रणाम नहीं करते, मुझसे बोलते भी नहीं हो। तुम धरती पर क्यों सो रहे हो? क्या तुम मुझसे कुपित हो?

नन्वहं तेऽप्रियः पुत्र मातरं पश्य धार्मिकीम्।
किं च नालिङ्गसे पुत्र सुकुमार वचो वद।। २३।।
कस्य वा परराात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयङ्गमम्।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद् विशेषतः।। २४।।

यदि मैं तुम्हारा प्यारा नही हूँ तो तुम अपनी धर्म का पालन करने वाली माता को तो देखो। तुम उसके हृदय से क्यों नहीं लग जाते? हे सुकुमार पुत्र! कुछ बोलो। अब तुम्हारे न होने पर मैं पिछली रात में किसके मुख से किसी शास्त्र या किसी अन्य ग्रन्थ को मधुर ध्वनियों से पढ़ते हुए हृदय को प्रभावित करने वाली बातें सुनुँगा।

को मां संध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः।
श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम्।। २५।।
कन्दमूलफलं हृत्वा यो मां प्रियमिवातिथिम्।
भोजयिष्यत्यकर्मण्यमप्रग्रहमनायकम् ।। २६।।
इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम्।
कथं पुत्र भरिष्यामि कृपणां पुत्रगर्धिनीम्।। २७।।

अब कौन मुझे पुत्रशोक के भय से पीड़ित होने पर, स्नान करके, सन्ध्योपासना और अग्निहोत्र से निवृत्त होकर मेरे समीप बैठ कर मुझे सान्त्वना देगा? अब कौन मुझ अकर्मण्य संग्रहरहित और असहाय व्यक्ति को कन्दमूल और फल लाकर प्रिय अतिथि के समान खिलायेगा? तुम्हारी यह माता अन्धी है, बूढ़ी है, तपस्विनी है, दीन है और पुत्र के लिये चिन्ता करने वाली है। मैं इसका भरण कैसे करूँगा?

तिष्ठ मा मा गमः पुत्र यमस्य सदनं प्रति।
श्वो मया सह गन्तासि जनन्या च समेधितः।। २८।।
उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपणौ वने।
क्षिप्रमेव गमिष्यावस्त्वया हीनौ यमक्षयम्।। २९।।

हे पुत्र! ठहरो अभी यमराज के घर मत जाओ। कल मेरे और अपनी माता के साथ जाना। तुम्हारे न रहने पर हम दोनों भी इस वन में शोक से पीड़ित, अनाथ और दीन होकर जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे।

अपापोऽसि यथा पुत्र निहतः पापकर्मणा।
तेन सत्येन गच्छाशु ये लोकास्त्वस्त्रयोधिनाम्।। ३०।।
यां हि शूरा गतिं यान्ति संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
हतास्त्वभिमुखाः पुत्र गतिं तां परमां व्रज।। ३१।।

हे पुत्र! तुम पाप रहित हो। पर एक पापी ने तुम्हें मारा है। इसलिये सत्य के प्रभाव से तुम शीघ्र उन लोकों में जाओ जो क्षत्रियों को प्राप्त होते हैं। जो गति युद्ध में पीठ न दिखाने वालों को प्राप्त होती है, हे पुत्र तुम उसी परम गति को प्राप्त करो।

यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः।
नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक।। ३२।।
भूमिदस्याहिताग्नेश्च एकपत्नीव्रतस्य च।। ३३।।

गोसहस्रप्रदातॄणां गुरुसेवाभृतामपि।
देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक।।३४।।

हे पुत्र! जिस गति को सगर, शैव्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष और धुन्धुमार प्राप्त हुए तुम उसी गति को प्राप्त करो। सारे प्राणियों को जो गति स्वाध्याय करने से, तपस्या से, भूमि दान करने से, अग्निहोत्र करने से, एक पत्नी व्रत वाले को, हजार गायों का दान करने वाले को, गुरू की सेवा करने वाले को, और दूसरों के लिये देह त्याग करने वाले को प्राप्त होती है, वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो।

नहि त्वस्मिन् कुले जातो गच्छत्यकुशलां गतिम्।
स तु यास्यति येन त्वं निहतो मम बान्धवः।। ३५।।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम्।।३६।।

हमारे इस कुल में जन्म लेने वाला कोई बुरी गति को प्राप्त नहीं होता, बुरी गति को तो वह प्राप्त होगा जिसने मेरे बान्धव को मार दिया हैं इस प्रकार उन्होंने दीनता के साथ वहाँ अनेक बार विलाप किया। फिर वे महातेजस्वी हाथ जोड़कर खड़े हुए मुझसे कहने लगे।

अद्यैव जहि मां राजन् मरणे नास्ति मे व्यथा।
यः शरेणैकपुत्रं मां त्वमकार्षीरपुत्रकम्।। ३७।।
पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्रशनेकेन राजन् कालं करिष्यसि।। ३८।।

हे राजन्! तुमने बाण से मुझ एक पुत्र वाले को पुत्रहीन बना दिया। इसलिये तुम आज ही मुझे मार दो। मुझे मरने में दुःख नहीं होगा। हे राजन्! मुझे इस समय पुत्र के कष्ट से जैसा दुःख हो रहा है, ऐसे ही तुम भी पुत्र के शोक के द्वारा ही मृत्यु को प्राप्त करोगे।

एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु।
चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात्।। ३९।।
तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः।
अपथ्यैः सह सम्भुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा।। ४०।।

इस प्रकार मेरे लिये अहित कामना करते हुए और अनेक प्रकार से दुःख भरे विलाप करते हुए, चिता लगवा कर वे दोनों दम्पती मृत्यु को प्राप्त हो गये। हे देवी! मेरे उसी बुरे काम का फल अब उपस्थित हुआ है। जैसे स्वादिष्ट अन्न को अपथ्य के साथ खाने पर उसके पश्चात् बीमारी उपस्थित हो जाती है।

इत्युक्त्वा स रुदंस्त्रस्तो भार्यामाह तु भूमिपः।
यदहं पुत्रशोकेन संत्यजिष्यामि जीवितम्।। ४१।।
चक्षुर्भ्यां त्वां न पश्यामि कौसल्ये त्वं हि मां स्पृश।

ऐसा कह कर रोते हुए और भयभीत राजा ने पत्नी से कहा कि मैं अब पुत्र के शोक से अपने प्राणों को छोड़ूँगा। मुझे अब आँखों से दिखाई नहीं दे रहा है। हे कौसल्या तुम मेरा स्पर्श करो।

न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम्।। ४२।।
सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि।
दुर्वृत्तमपि कः पुत्रं त्यजेद् भुवि विचक्षणः।। ४३।।
कश्च प्रव्राज्यमानो वा नासूयेत् पितरं सुतः।

हे देवी! मैंने श्रीराम के साथ जो बर्ताव किया, वह मेरे योग्य नहीं था, पर श्रीराम ने जो मेरे साथ व्यवहार किया वह उनके योग्य था। कौन बुद्धिमान व्यक्ति अपने पुत्र के बुरे आचरण वाला होने पर भी उसे छोड़ता है? और कौन ऐसा पुत्र है जिसे निकाला जाये और वह पिता को बुरा भला न कहे?

चक्षुषा त्वां न पश्यामि स्मृतिर्मम विलुप्यते।। ४४।।
अतस्तु किं दुःखतरं यदहं जीवितक्षये।
नहि पश्यामि धर्मज्ञं रामं सत्यपराक्रमम्।। ४५।।

हे कौसल्या! मैं आँखों से तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ। मेरी स्मरण शक्ति भी लोप हो रही है। मेरे लिये इससे अधिक दुःख की बात क्या होगी कि मैं अपने देहान्त के समय सत्य पराक्रमी और धर्मज्ञ राम को नहीं देख रहा हूँ।

तस्यादर्शनजः शोकः सुतस्याप्रतिकर्मणः।
उच्छोषयति वै प्राणान् वारि स्तोकमिवातपः।। ४६।।
न ते मनुष्या देवास्ते ये चारुशुभकुण्डलम्।
मुखं द्रक्ष्यन्ति रामस्य वर्षे पञ्चदशे पुनः।। ४७।।

अपने अद्वितीय पुत्र को न देख पाने का शोक मेरे प्राणों को उसी तरह से सुखा रहा है जैसे धूप थोड़े से पानी को सुखा देती है। वे मनुष्य नहीं बल्कि देवता हैं, जो पन्द्रहवें वर्ष में श्रीराम के पवित्र और सुन्दर कुण्डलों वाले मुख को पुनः देखेंगे।

पद्मपत्रेक्षणं सुभ्रु सुदंष्ट्रं चारुनासिकम्।
सदृशं शारदस्येन्दोः फुल्लस्य कमलस्य च।। ४८।।
सुगन्धिं मम रामस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति ये मुखम्।

वे मनुष्य धन्य हैं जो कमल के समान नेत्रों वाले, सुन्दर भौहों वाले, स्वच्छ दाँतों वाले, मनोहर नासिका वाले फूले हुए कमल और शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान सुन्दर मेरे राम के मुख को देखेंगे।

कौसल्ये चित्तमोहेन हृदयं सीदतेतराम्।। ४९।।
वेदये न च संयुक्ताञ्शब्दस्पर्शरसानहम्।

चित्तनाशाद् विपद्यन्ते सर्वाण्येवेन्द्रियाणि हि।।५०।।
क्षीणस्नेहस्य दीपस्य संरक्ता रश्मयो यथा।

हे कौसल्या! मेरे चित्त में मोह छा रहा है। मेरा दिल डूबता जा रहा हैं। मैं शब्द, स्पर्श और रस का इन्द्रियों के संयोग होने पर भी अनुभव नहीं कर रहा हूँ। चेतना के नष्ट होने से मेरी सारी इन्द्रियाँ बेकार हो रही हैं, जैसे तेल के समाप्त हो जाने से दीपक की अरुण रंग की प्रकाश किरणें नष्ट हो जाती है।

अयमात्मभवः शोको मामनाथमचेतनम्।।५१।।
संसाधयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः।
हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन।।५२।।
हा पितृप्रिय मे नाथ हा ममासि गतः सुत।

मेरा अपना ही उत्पन्न किया हुआ शोक मुझे अनाथ और अचेतन बनाये डाल रहा है, जैसे नदी के पानी का वेग उसके किनारे को काट देता है। हा महाबाहु राम! हा मेरे दुःखों को दूर करने वाले! हा पिता के प्यारे। हा मेरे नाथ बेटे! तुम मुझे छोड़ कर चले गये हो।

हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि।।५३।।
हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसनि।
इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत्।। ५४।।

हा कौसल्या! हा तपस्विनी सुमित्रा! मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। हा निर्दय, मेरी शत्रुकुल को नष्ट करने वाली कैकेयी! इस प्रकार राम की माता और सुमित्रा के समीप शोकपूर्वक रोते हुए राजा दशरथ मृत्यु को प्राप्त हो गये।

चौसठवाँ सर्ग

राजा दशरथ के दिवंगत होने पर कौसल्या का करुण विलाप तथा पुरवासियों का शोक। राजा के शव को तेल भरे कड़ाह में रखना।

कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम्।
हा नाथेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले।। १।।
सा कोसलेन्द्रदुहिता चेष्टमाना महीतले।
न भ्राजते रजोध्वस्ता तारेव गगनच्युता।। २।।

तब कौसल्या और सुमित्रा ने महाराज दशरथ के शरीर को देखा और स्पर्श किया, पुनः हा नाथ ऐसे चिल्लाती हुई वे भूमि पर गिर पड़ीं। उस समय भूमि पर गिर कर छटपटाती हूई, धूल में लिपटी हुई कोसलराज की पुत्री कौसल्या ऐसे ही शोभाहीन हो रहीं थीं जैसे आकाश से गिरी हुई कोई तारिका हो।

तत् परित्रस्तसम्भ्रान्तपर्युत्सुकजनाकुलम्।
सर्वतस्तुमुलाक्रन्दं परितापार्तबान्धवम्।। ३।।
सद्योनिपतितानन्दं दीनं विक्लवदर्शनम्।
बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः।। ४।।

मृत्यु को प्राप्त हुए राजा का वह महल भयभीत, घबराये हुए और अत्युत्सुक लोगों से भर गया। वहाँ सब तरफ राजा के शोक से पीड़ित बन्धु बान्धव तुमुल स्वर में क्रन्दन कर रहे थे। वहाँ आनन्द समाप्त हो गया था, दीनता और व्याकुलता व्याप्त दिखाई देती थी।

तमग्निमिव संशान्तमम्बुहीनमिवार्णवम्।
नतप्रभमिवादित्यं स्वर्गस्थं प्रेक्ष्य भूमिपम्।। ५।।
कोसल्या बाष्पपूर्णाक्षी विविधं शोककर्शिता।
उपगृह्य शिरो राज्ञः कैकेयीं प्रत्यभाषत।। ६।।

उस शान्त हुई अग्नि के समान, जल रहित समुद्र के समान, प्रभाहीन सूर्य के समान दिवंगत राजा को देख कर अनेक प्रकार के शोकों से व्याकुल कौसल्या राजा के सिर को गोद में लेकर आँसू भरे नेत्रों के साथ कैकेयी से बोली।

सकामा भव कैकेयी भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्।
त्यक्त्वा राजानमेकाग्रा नृशंसे दुष्टचारिणि।। ७।।
विहाय मां गतो रामो भर्ता च स्वर्गतो मम।
विपथे सार्थहीनेव नाहं जीवितुमुत्सहे।। ८।।

हे कैकेयी! तेरी इच्छा पूरी हुई। हे निर्दय और दुष्ट आचरण वाली! अब राजा को भी छोड़कर तू एकाग्र चित्त से निष्कंटक राज्य का भोग कर। मेरा पुत्र राम मुझे छोड़कर चला गया। जैसे कोई साथियों से दूर छूटकर दुर्गम रास्ते में पड़ जाये, वैसी ही अवस्था मेरी हो गयी है। अब मुझे जीवित रहने की कोई इच्छा नहीं है।

भर्तारं तु परित्यज्य का स्त्री दैवतमात्मनः।
इच्छेज्जीवितुमन्यत्र कैकेय्यास्त्यक्तधर्मणः।। ९।।
न लुब्धो बुध्यते दोषान् किंपाकमिव भक्षयन्।
कुब्जानिमित्तं कैकेय्या राघवाणां कुलं हतम्।। १०।।

जिसने अपने धर्म को छोड़ दिया है, उस कैकेयी के सिवाय दूसरी कौन स्त्री है, जो अपने देवता स्वरूप पति का त्याग कर अन्यत्र जीना चाहेगी। जैसे धन का लालची व्यक्ति धन के लिये दूसरों को विष खिलाते हुए उसके दोषों पर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार कुब्जा के कारण कैकेयी ने रघुवंशियों का कुल नष्ट कर दिया।

अनियोगे नियुक्तेन राज्ञा रामं विवासितम्।
सभार्यं जनकः श्रुत्वा परितप्स्यत्यहं यथा।। ११।।
स मामनाथां विधवां नाद्य जानाति धार्मिकः।
रामः कमलपत्राक्षो जीवन्नाशमितो गतः।। १२।।

कैकेयी के द्वारा बुरे कार्यों में लगाये हुए राजा के द्वारा राम का निर्वासन, जब राजा जनक पत्नी के साथ सुनेंगे, तब वे भी मेरे ही समान दुःख से तप्त होंगें। कमलपत्र के समान नेत्र वाले धार्मिक श्रीराम यह नहीं जानते कि मैं विधवा और अनाथ हो गयी हूँ। वे तो जीते जी यहाँ से अदृश्य हो गये हैं।

विदेहराजस्य सुता तथा चारुतपस्विनी।
दुःखस्यानुचिता दुःखं वने पर्युद्विजिष्यति।। १३।।
नदतां भीमघोषाणां निशासु मृगपक्षिणाम्।
निशम्यमाना संत्रस्ता राघवं संश्रयिष्यति।। १४।।

विदेहराज की पुत्री सीता, जो सुन्दर तपस्या कर रही है, दुःख भोगने योग्य नहीं है। वन में दुःख से बेचैन हो जायेगी। रात में भयानक रूप से ध्वनि करते हुए हिंसक पशु और पक्षियों को सुनकर वह डरी हुई राम का ही सहारा लेगी।

वृद्धश्चैवाल्पपुत्रश्च वैदेहीमनुचिन्तयन्।
सोऽपि शोकसमाविष्टो नूनं त्यक्ष्यति जीवितम्।। १५।।
तां ततः सम्परिष्वज्य विलपन्तीं तपस्विनीम्।
व्यपनिन्युः सुदुःखार्तां कौसल्यां व्यावहारिकाः।। १६।।

जो बूढ़े हो गये हैं, जिनके पुत्र नहीं है, वे राजा जनक भी सीता की चिन्ता करते हुए शोक से व्याकुल होकर निश्चय ही अपने जीवन त्याग कर देंगे। इस प्रकार पति के शरीर को छाती से लगाकर रोती हुई शोकाकुल उस तपस्विनी कौसल्या को मंत्रियों आदि ने वहाँ से हटवा दिया।

तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम्।
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम्।। १७।।
न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः।
सर्वज्ञाः कर्तुमीषुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम्।। १८।।

फिर उन्होंने राजा के शरीर को तेल के कड़ाह में रख कर, वसिष्ठादि के आदेशानुसार राजा के लिये उचित कार्यों को सम्पन्न किया। वे मंत्रीगण पुत्र के बिना राजा का अन्त्येष्टि कर्म न कर सके अतः वे उनके शव की रक्षा करने लगे।

निशा नक्षत्रहीनेव स्त्रीव भर्तृविवर्जिता।
पुरी नाराजतायोध्या हीना राज्ञा महात्मना।। १९।।
बाष्पपर्याकुलजना हाहाभूतकुलाङ्गना।
शून्यचत्वरवेश्मान्ता न बभ्राज यथापुरम्।। २०।।

जैसे रात्रि नक्षत्रों से रहित होकर, स्त्री पति से रहित होकर सुशोभित नहीं होती, वैसे ही वह पुरी राजा से रहित होकर उस समय शोभा रहित हो गयी थी। लोग आँसुओं से युक्त और बेचैन थे। स्त्रियाँ हा हाकार कर रहीं थीं। चबूतरे और घरों के द्वार सूने थे। इस प्रकार वह नगर पहले की भाँति अच्छा नहीं लग रहा था।

गतप्रभा द्यौरिव भास्करं विना
व्यपेतनक्षत्रगणेव शर्वरी।
पुरी बभासे रहिता महात्मना
कण्ठास्रकण्ठाकुलमार्गचत्वरा ।। २१।।

महात्मा राजा दशरथ के बिना, कान्तिहीन वह पुरी ऐसी लग रही थी, जैसे सूर्य के बिना दिन, नक्षत्रों के बिना रात्रि। रास्ते और चौराहे शोक के आँसुओं से भरे हुए नेत्रों और रुँधे हुए गले वाले लोगों से भर गये थे।

नराश्च नार्यश्च समेत्य संघशो
विगर्हमाणा भरतस्य मातरम्।
तदा नगर्यां नरदेवसंक्षये
बभूवुरार्ता न च शर्म लेभिरे।। २२।।

राजा की मृत्यु होने पर उस नगरी में नर और नारी झुंड बनाकर एकत्र होकर भरत की माता कैकेयी की निन्दा करने लगे। वे बड़े व्याकुल थे। उन्हें शान्ति नहीं मिल रही थी।

पैंसठवाँ सर्ग

मार्कण्डेय आदि मुनियों तथा मंत्रियों का वसिष्ठ जी से किसी को राजा बनाने के लिये अनुरोध।

आक्रन्दिता निरानन्दा सास्रकण्ठजनाविला।
अयोध्यायामवतता सा व्यतीयाय शर्वरी।। १।।
व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः।
समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः।। २।।

इस प्रकार आँसु भरे गलों से क्रन्दन करते हुए लोगों की वह आनन्दरहित लम्बी रात्रि अयोध्या में कठिनाई से बीती। तब रात्रि व्यतीत होने और सूर्योदय होने पर राज्य प्रबन्ध करने वाले ब्राह्मण लोग एकत्र होकर दरबार में आए।

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः।
कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः।। ३।।
एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन्।
वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम्।। ४।।

मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम, और महायशस्वी जाबालि ये सारे ब्राह्मण श्रेष्ठ राजपुरोहित वसिष्ठ जी के सामने बैठ कर मंत्रियों सहित अपनी अलग अलग सम्मति देने लगे।

अतीता शर्वरी दुःखं या नो वर्षशतोपमा।
अस्मिन पञ्चत्वमापन्ने पुत्रशोकेन पार्थिवे।। ५।।
स्वर्गस्थश्च महाराजो रामश्चारण्यमाश्रितः।
लक्ष्मणश्चापि तेजस्वी रामेणैव गतः सह।। ६।।

पुत्र शोक से राजा की मृत्यु हो जाने से यह रात्रि हमारे लिये सौ वर्षों के समान बड़े दुःख से बीती है। महाराज स्वर्ग में चले गये, राम वन में रहने लगे, तेजस्वी लक्ष्मण भी राम के ही साथ चले गये।

उभौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परंतपौ।
पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने।। ७।।
इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद् राजा विधीयताम्।
अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्।। ८।।
जीत्यपि महाराजे तवैव वचनं वयम्।
नातिक्रमामहे सर्वे बेलां प्राप्येव सागरः।। ९।।

शत्रुओं को तपाने वाले दोनों भरत शत्रुघ्न नाना के यहाँ केकय देश में राजगृह नगर में रह रहे हैं। ऐसी स्थिति में यहाँ आज ही इक्ष्वाकुवंशियों में से किस को राजा बनाया जाये? क्योंकि बिना राजा के राज्य नष्ट हो सकता है। हे वसिष्ठ जी! जैसे समुद्र तट को प्राप्त कर उसका उल्लंघन नहीं करता, वैसे ही महाराज के जीवन काल में भी हम आपकी ही बात का उल्लंघन नहीं करते थे।

स नः समीक्ष्य द्विजवर्य वृत्तं
नृपं विना राष्ट्रमरण्यभूतम्।
कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं
त्वमेव राजानमिहाभिषेचय।। १०।।

इसलिये हे विप्रवर! आप ही राजा के बिना वन के समान बने इस राष्ट्र की अवस्था तथा हमारे व्यवहार के विषय में विचार कर किसी इक्ष्वाकुवंशी राजकुमार को या किसी दूसरे व्यक्ति को यहाँ राजा बना दीजिये।

छियासठवाँ सर्ग

वसिष्ठ जी की आज्ञा से पाँच दूतों का भरत जी को बुलाने के लिये केकय देश के राजगृह नगर में जाना। उनके जाने के रास्ते का वर्णन।

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह।
मित्रामात्यजनान् सर्वान् ब्राह्मणांस्तानिदं वचः।। १।।
यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी।
भरतो वसति भ्रात्रा शत्रुघ्नेन मुदान्वितः।। २।।

उनके ये वचन सुन कर वसिष्ठ जी ने मित्रों, मंत्रियों और सारे ब्राह्मणों से यह वचन कहा कि जिसको राज्य दिया गया है, वह भरत भाई शत्रुघ्न के साथ मामा के घर बड़े सुख और आनन्द से रह रहे हैं।

तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः।
आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम्।। ३।।
गच्छन्त्विति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रुवन्।
तेषां तद् वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्।। ४।।

इसलिये तेज जाने वाले दूत शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा उन दोनों वीर भाइयों को लाने के लिये जाँयें, इसके अतिरिक्त हम क्या विचार कर सकते हैं? तब उन सबने कहा कि हाँ दूत जाने चाहियें। उनकी यह बात सुनकर वसिष्ठ जी ने कहा–

एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोकनन्दन।
श्रूयतामितिकर्तव्यं सर्वानेव ब्रवीमि वः।। ५।।
पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः।
त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद् भरतो मम।। ६।।
पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया।। ७।।

हे सिद्धार्थ, विजय, जयन्त, अशोक और नन्दन! मैं तुम सबसे ही कहता हूँ, तुम्हें जो कार्य करना है उसे सुनो। तेज चाल वाले घोड़ों से शीघ्र ही राजगृह नगर में जाकर मेरी आज्ञा से शोक को त्याग कर अर्थात उसे प्रकट न करते हुए भरत से कहो कि पुरोहित और सारे मंत्रियों ने आपसे कुशलता कही है। आप जल्दी यहाँ से चलिये। आपको अत्यन्त आवश्यक कार्य है।

मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम्।
भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामितः क्षयम्।। ८।।
कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च।
क्षिप्रमादाय राज्ञश्च भरतस्य च गच्छत।। ९।।

उन्हें राम का वन में जाना और पिता जी की मृत्यु के विषय में कुछ मत बताना। यहाँ रघुकुल में जो विनाश हो रहा है उसे भी मत बताना। भेंट के लिये अच्छे आभूषण और रेशमी वस्त्र कैकेय राजा और भरत के लिये लेकर तुम जल्दी जाओ।

दत्तपथ्यशना दूता जग्मुः स्वं स्वं निवेशनम्।
केकयांस्ते गमिष्यन्तो हयानारुह्य सम्मतान्।। १०।।
ततः प्रस्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनन्तरम्।
वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूताः संत्वरितं ययुः।। ११।।

तब केकय देश को प्रस्थान करने वाले वे दूत मार्ग व्यय लेकर और अच्छे घोड़ों पर सवार होकर अपने अपने घर को गये। फिर यात्रा का आवश्यक सामान लेकर तथा शेष आवश्यक कार्य करके वसिष्ठ जी की आज्ञा से जल्दी ही चल दिये।

न्यन्तेनापरतालस्य प्रलम्बस्योत्तरं प्रति।
निषेवमाणास्ते जग्मुर्नदीं मध्येन मालिनीम्।। १२।।
ते हास्तिनपुरे गङ्गां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखा ययुः।
पाञ्चालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम्।। १३।।

वे दूत अपरताल पर्वत के अन्तिम भाग और प्रलम्ब गिरि के उत्तरी भाग के बीच में बहती हुई मालिनी नदी का सेवन करते हुए आगे बढ़े। वे उसके बाद पाँचाल देश पहुँचकर कुरुजांगल देश के बीच में से होते हुए, हस्तिनापुर में गंगा को पार कर पश्चिम की तरफ गये।

सरांसि च सुफुल्लानि नदीश्च विमलोदकाः।
निरीक्षमाणाजग्मुस्ते दूताः कार्यवशादद्रुतम्।। १४।।
ते प्रसन्नोदकां दिव्यां नानाविहगसेविताम्।
उपातिजग्मुर्वेगेन शरदण्डां जलाकुलाम्।। १५।।

खिले हुए कमलों से युक्त तालाबों और निर्मल जल वाली नदियों को देखते हुए वे दूत कार्य को पूरा करने के लिये तेजी से आगे बढ़ते गये। उसके पश्चात उन्होंने निर्मल जलवाली दिव्य, अनेक पक्षियों से युक्त तथा पानी से भरी हुई शरदण्डा नाम की नदी के समीप पहुँच कर उसे जल्दी से पार किया।

निकूलवृक्षमासाद्य, कुलिंगां, प्राविशन् पुरीम्।
अभिकालं ततः प्राप्य तेजोऽभिभवनाच्च्युताः।। १६।।
पितृपैतामहीं पुण्यां तेरुरिक्षुमतीं नदीम्।

फिर वे निकूल नाम से प्रसिद्ध वृक्ष के पास पहुँच कर, कुलिंगा नाम की नगरी में प्रविष्ट हुए। फिर तेजोऽभिभवन को पार कर अभिकाल नामक स्थान पर पहुँचे। उसके पश्चात राजा दशरथ के पूर्वजों के द्वारा सेवित पवित्र नदी इक्षुमती को उन्होंने पार किया।

अवेक्ष्याञ्जलिपानांश्च ब्राह्मणान् वेदपारगान्।। १७।।
ययुर्मध्येन बाह्लीकान् सुदामानं च पर्वतम्।
वर्दीवापीतटाकानि, विपाशां च सरांसि च।। १८।।

वहाँ वेदों के विद्वान ब्राह्मणों के दर्शन कर और अंजुलि से आचमन कर वे बाल्हीक देश के बीच में से सुदामा नाम के पर्वत के पास पहुँचे। उसके पश्चात विपाशा नदी और उसके किनारे के शाल्मलि वृक्ष के पास पहुँचे।

पश्यन्तो विविधांश्चापि सिंहान् व्याघ्रान् मृगान् द्विपान्।
ययुः पथातिमहता शासनं भर्तुरीप्सवः।। १९।।

ते श्रान्तवाहना दूता विकृष्टे सता पथा।
गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरञ्जसा।। २०।।

उससे आगे चल कर वे दूसरी नदियों, बावलियों, तालाबों और बहुत से सिंह, व्याघ्र, मृग, हाथी आदि वन्य जन्तुओं को देखते हुए उस बड़े रास्ते पर अपने स्वामी के आदेश को पूरा करने के लिये आगे बढ़ने लगे। मार्ग बहुत बड़ा होने के कारण उनके घोड़े थक गये थे, पर फिर भी वे शीघ्र ही उस श्रेष्ठ नगर गिरिव्रज में जा पहुँचे।

सड़सठवाँ सर्ग

दूतों का भरत को वसिष्ठ जी का सन्देश सुनाना। भरत जी का शत्रुघ्न के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान करना।

समागम्य च राज्ञा ते राजपुत्रेण चार्चिताः।
राज्ञः पादौ गृहीत्वा च तमूचुर्भरतं वचः।। १।।
पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया।। २।।

नगर में पहुँच कर उन दूतों ने केकय देश के राजा और राजकुमार से भेंट कर उनका अभिनन्दन किया। उनके चरणों को स्पर्श कर तथा उनसे सत्कृत होकर उन्होंने भरत जी से कहा कि हे कुमार! पुरोहित जी और सारे मंत्रियों ने आपसे अपनी कुशलता के विषय में कहा है और निवेदन किया है कि आपसे अत्यन्त आवश्यक कार्य है। अतः आप शीघ्र ही यहाँ से चलिये।

इमानि च महार्हाणि वस्त्राण्याभरणानि च।
प्रतिगृह्य विशालाक्ष मातुलस्य च दापय।। ३।।
प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं स्वनुरक्तः सुहृज्जने।
दूतानुवाच भरतः कामैः सम्प्रतिपूज्य तान्।। ४।।

ये उपहार के लिये बहुमूल्य आभूषण हैं। हे विशाल नेत्रों वाले! आप इन्हें स्वीकार कर मामा जी को भी दीजिये। भरत ने उन सबको लेकर उन्हें अपने में अनुरक्त मामा आदि सुहृदों को दे दिया, फिर कामना पूर्तियों द्वारा दूतों का सत्कार कर उनसे उन्होंने कहा।

कच्चित् स कुशली राजा पिता दशरथो मम।
कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि।। ५।।
आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मवादिनी।
अरोगा चापि कौसल्या माता रामस्य धीमतः।। ६।।

क्या मेरे पिता राजा दशरथ सकुशल हैं? क्या महात्मा राम और लक्ष्मण आरोग्य युक्त हैं? क्या राम की माता धर्म को जानने वाली, धर्म के अनुसार बोलने वाली और धर्म का पालन करने वाली आर्या कौसल्या नीरोग है?

कच्चित् सुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या।
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्यमा।। ७।।
आत्मकाया सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी।
अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह।। ८।।

क्या धर्म को जानने वाली लक्ष्मण और वीर शत्रुघ्न की जननी मँझली माता सुमित्रा नीरोग है? मेरी माता कैकेयी जो सदा अपनी ही इच्छा पूरी करना चाहती है, अपने को बुद्धिमान समझती है, उग्रस्वभाव की और क्रोध में रहने वाली है, भी क्या नीरोग है? उसने क्या कहा है?

एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना।
ऊचुः सम्प्रश्रितं वाक्यमिदं तं भरतं तदा।। ९।।
कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि
भरतश्चापि तान् दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत।। १०।।
आपृच्छेऽहं महाराजं दूताः संत्वरयन्ति माम्।
एवमुक्त्वा तु तान् दूतान् भरतः पार्थिवात्मजः।। ११।।
दूतैः संचोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह।

महात्मा भरत के द्वारा ऐसा पूछे जाने पर दूतों ने तब विनयपूर्वक कहा कि हे नरश्रेष्ठ! जिनके विषय में आप पूछ रहे हैं, वे सब ठीक हैं। तब भरत ने उन दूतों से कहा कि मैं महाराज से पूछता हूँ कि ये दूत मुझसे जल्दी अयोध्या चलने के लिये कह रहे हैं। दूतों से ऐसा कह कर राजकुमार भरत, जिन्हें दूत जल्दी के लिये प्रेरित कर रहे थे, अपने नाना से बोले।

राजन् पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः।। १२।।
पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि।
भरतेनैवमुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा।। १३।।
तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम्।

हे राजन्! दूतों के कहने के अनुसार अब मैं पिता जी के पास जाऊँगा। जब आप याद करेंगे तब दुबारा

भी आपकी सेवा में आ जाऊँगा। भरत के ऐसा कहने पर उनके नाना राजा ने उनका सिर सूँघ कर यह शुभ वाक्य कहा।

गच्छ तातानुजाने त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया।। १४।।
मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप।
पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः।। १५।।
तौ च तात महेष्वासौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।

हे तात! जाओ, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम्हारे द्वारा कैकेयी अच्छी सन्तान वाली है। हे परंतप! अपनी माता और पिता को यहाँ का कुशल समाचार देना। पुरोहित जी तथा दूसरे श्रेष्ठ ब्राह्मणों से भी कुशलता कहना और महाधनुर्धर दोनों भाई राम और लक्ष्मण को भी हमारा कुशल समाचार देना।

तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान् कम्बलानजिनानि च।। १६।।
सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम्।
अन्तःपुरेऽतिसंवृद्धान् व्याघ्रवीर्यबलोपमान्।। १७।।
दंष्ट्रायुक्तान् महाकायाञ्शुनश्चोपायनं ददौ।

केकय राजा ने तब भरत का सत्कार कर उन्हें बहुत सा धन, श्रेष्ठ हाथी, विचित्र कम्बल और मृगचर्म दिये। उन्होंने उन्हें ऐसे बहुत महाकाय कुते भी दिये जिन्हें अन्तःपुर में पाल कर बड़ा किया गया था, जो बाघ के समान बली और पराक्रमी भी थे तथा बड़ी-बड़ी दाढ़ों वाले थे।

तदामात्यानभिप्रेतान् विश्वास्यांश्च गुणान्वितान्।। १८।।
ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः।
ऐरावतानैन्द्रशिरान् नागान् वै प्रियदर्शनान्।। १९।।
खराञ्शीघ्रान् सुसंयुक्तान् मातुलोऽस्मै धनं ददौ।
स दत्तं केकयेन्द्रेण धनं तन्नाभ्यनन्दत।। २०।।
भरतः केकयीपुत्रो गमनत्वरया तदा।

उसके बाद अश्वपति ने, अपने विश्वसनीय, गुणवान् और प्रिय मंत्रियों को शीघ्र भरत जी के साथ जाने की आज्ञा दी। भरत जी के मामा ने इन्द्रसिर नामक स्थान में पैदा हुए ऐरावत वंश के प्रिय दिखाई देने वाले हाथियों को तथा सुशिक्षित और तेज चलने वाले खच्चरों को भेंट में दिया। कैकेयी पुत्र भरत ने तब जाने की जल्दी के कारण केकयराज के दिये उस धन का अभिनन्दन नहीं किया।

स स्ववेश्माभ्यतिक्रम्य नरनागाश्वसंकुलम्।। २१।।
प्रपेदे सुमहच्छ्रीमान् राजमार्गमनुत्तमम्।
अभ्यतीत्य ततोऽपश्यदन्तःपुरमनुत्तमम्।। २२।।
ततस्तद् भरतः श्रीमानाविवेशानिवारितः।
स मातामहमापृच्छ्य मातुलं च युधाजितम्।। २३।।
रथमारुह्य भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ।

वे अपने निवास स्थान से निकल कर मनुष्यों हाथी घोड़ों से भरे हुए श्रेष्ठ राजमार्ग पर आये। उस समय उनके पास बड़ी सम्पत्ति थी। राजमार्ग को पार कर वे तब श्रेष्ठ अन्तःपुर में गये। वहाँ नानी, मामी, नाना मामा युधाजित् से विदा लेकर तथा शत्रुघ्न के साथ रथ पर सवार होकर उन्होंने अयोध्या के लिये यात्रा आरम्भ की।

अड़सठवाँ सर्ग

भरत जी के अयोध्या लौटने के मार्ग का वर्णन। भरत जी का अयोध्या की दुरावस्था देखते हुए राजभवन में प्रवेश।

स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान्।
ततः सुदामां द्युतिमान् संतीर्यावेक्ष्य तां नदीम्।। १।।
ह्लादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोतस्तरङ्गिणीम्।
शतद्रुमतरच्छ्रीमान् नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः।। २।।

राजगृह से निकल कर वे इक्ष्वाकुनन्दन भरत पूर्व की तरफ चलते हुए सुदामा नदी के पास पहुँचे। उसे पार कर वे तेजस्वी श्रीमान भरत जिसका पाट दूर तक फैला हुआ था, जिसकी तरंगे पश्चिमाभिमुख थीं, उस शब्द कारने वाली शतद्रु नदी के पार पहुँचे।

नोट- भरत जी का मार्ग दूतों के मार्ग से भिन्न था।

ऐलधने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान्।
शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम्।। ३।।
सत्यसंधः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम्।
अभ्यगात् स महाशैलान् वनं चैत्ररथं प्रति।। ४।।
उत्तरान् वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद् वनम्।
वेगिनीं च कुलिङ्गाख्यां ह्लादिनीं पर्वतावृताम्।। ५।।
यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत् तदा।

इसके बाद वे वीरमत्स्य देशों के उत्तरवर्ती देशों में पहुँचे और वहाँ से उन्होंने भारुण्ड वन में प्रवेश किया। उसके बाद वे कुलिंगा नाम की नदी को जो तेज बहाव वाली थी, पर्वतों से घिरी हुई थी और नाद करने वाली थी, पार कर वे यमुना नदी के पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने सैनिकों को विश्राम कराया।

राजपुत्रो महारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम्।। ६।।
भद्रो भद्रेण यानेन मारुतः खमिवात्यगात्।
भागीरथीं दुष्प्रतरां सोंऽशुधाने महानदीम्।। ७।।
उपायाद् राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे।

उसके पश्चात् उस राजपुत्र ने एक महान निर्जन वन को अपने मंगलमय रथ से ऐसे ही पार कर लिया जैसे वायु आकाश को पार कर जाती है। इसके बाद भरत जी अंशुधान नामक स्थान पर गंगा को पार करना कठिन समझकर शीघ्र ही प्राग्वट नाम के प्रसिद्ध नगर में आ गये।

स गङ्गां प्राग्वटे तीर्त्वा समायात् कुटिकोष्टिकाम्।। ८।।
सबलस्तां स तीर्त्वाथ समगाद् धर्मवर्धनम्।
तोरणं दक्षिणार्धेन जम्बूप्रस्थं समागमत्।। ९।।
वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः।

वहाँ प्राग्वट में गंगा को पार कर वे कुटिकोटिका नाम की नदी के पास पहुँचे। सेना के साथ उसको भी पार कर वे धर्मवर्धन नाम के स्थान पर पहुँचे। वहाँ दशरथ के पुत्र तोरण ग्राम के दक्षिणार्ध भाग से निकलते हुए जम्बू प्रस्थ में पहुँचे और उसके बाद वे बरूथ नाम के एक सुन्दर ग्राम में पहुँचे।

तत्ररम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ।। १०।।
उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः।
स तांस्तु प्रियकान् प्राप्य शीघ्रानास्थाय वाजिनः।। ११।।
अनुज्ञाप्याथ भरतो वाहिनीं त्वरितो ययौ।

वहाँ रमणीय वन में निवास करके वे पूर्व की तरफ चलते हुए उज्जिहाना नाम की नगरी के उद्यान में पहुँचे जहाँ कदम्ब के वृक्षों की बहुतायत थी। वहाँ कदम्ब के उद्यान में सेना को धीरे-धीरे आने के लिये कह कर स्वयं तीव्र गति के घोड़ों के साथ आगे चल दिये।

वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तानिकां नदीम्।। १२।।
अन्या नदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरङ्गमैः।
हस्तिपृष्ठकमासाद्य कुटिकामप्यवर्तत।। १३।।
ततार च नरव्याघ्रो लोहित्ये च कपीवतीम्।

उसके बाद सर्व तीर्थ नाम के स्थान पर एक रात रहकर उत्तानिका नाम की नदी को पार कर तथा दूसरी नदियों को भी अनेक तरह के पहाड़ी घोड़ों से पार कर हस्तिपृष्ठक नाम के स्थान पर पहुँच कर कुटिका नदी को पार किया। उसके पश्चात् उस नरश्रेष्ठ ने लोहित्य नाम के स्थान पर पहुँच कर कपीवती नदी को पार किया।

एकसाले स्थाणुमतीं विनते गोमतीं नदीम्।। १४।।
कलिङ्गनगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा।
भरतः क्षिप्रमागच्छत् सुपरिश्रान्तवाहनः।। १५।।
वनं च समतीत्याशु शर्वर्यामरुणोदये।
अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह।। १६।।
तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि।

फिर एकसाल नाम के नगर पर स्थाणुमती नदी को और विनत नाम के स्थान पर गोमती नदी को पार कर भरत कलिंग नगर के समीप एक सालवन में पहुँचे। तब भरत जी के घोड़े थक गये थे, उन्हें रात्रि में विश्राम देकर और तब उस वन को पार कर उन्होंने प्रातः काल मनु की बसाई अयोध्या नगरी का दर्शन किया। उन पुरुष श्रेष्ठ की इस समय मार्ग में सात रात्रियाँ व्यतीत हो गयीं थीं।

अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा सारथिं चेदमब्रवीत्।। १७।।
एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यशस्विनी।
अयोध्या दृश्यते दूरात् सारथे पाण्डुमृत्तिका।। १८।।
यज्विभिर्गुणसम्पन्नैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
भूयिष्ठमृद्धैराकीर्णा राजर्षिवरपालिता।। १९।।

अयोध्या नगरी को अपने सामने देख कर वे सारथी से बोले कि यह पवित्र उद्यानों वाली यशस्विनी अयोध्या नगरी मुझे आज अधिक अच्छी नहीं लग रही है। यह दूर से सफेद मिट्टी के ढेर की तरह लग रही है। यह यज्ञ करने वाले, गुणवान, वेदज्ञ ब्राह्मणों से तथा बहुत से धनवान लोगों से भरी हुई है। यह राजर्षियों में श्रेष्ठ राजा दशरथ के द्वारा पालित है।

अयोध्यायां पुरा शब्दः श्रूयते तुमुलो महान्।
समन्तान्नरनारीणां तमद्य न शृणोम्यहम्।। २०।।
अरण्यभूतेव पुरी सारथे प्रतिभाति माम्।
नह्यत्र यानैर्दृश्यन्ते न गजैर्न च वाजिभिः।। २१।।
निर्यान्तो वाभियान्तो वा नरमुख्या यथा पुरा।

पहले अयोध्या में सब तरफ से नर और नारियों की बड़ी ऊँची आवाज सुनाई दिया करती थी, पर मैं आज

उसे नहीं सुन रहा हूँ। हे सारथी। यह पुरी मुझे जंगल के समान प्रतीत हो रही है। आज यहाँ नगर के प्रमुख लोग वाहनों से, हाथियों से और घोड़ों से बाहर और अन्दर आते जाते नहीं दिखाई दे रहे हैं, जैसे पहले दिखाई दिया करते थे।

उद्यानानि पुरा भान्ति मत्तप्रमुदितानि च।। २२।।
जनानां रतिसंयोगेष्वत्यन्तगुणवन्ति च।
तान्येतान्यद्य पश्यामि निरानन्दानि सर्वशः।। २३।।
भेरीमृदङ्गवीणानां कोणसंघट्टितः पुनः।
किमद्य शब्दो विरतः सदादीनगतिः पुरा।। २४।।

यहाँ के बगीचे पहले लोगों के प्रेम मिलन के लिये अत्यन्त सुविधा सम्पन्न होने के कारण मस्ती और आनन्द से भरे हुए सुशोभित होते थे, उन्हीं को मैं आज सब जगह आनन्द से रहित देख रहा हूँ। भेरी, मृदंग और आदि वीणा वाद्ययन्त्रों की जो आघातजनित ध्वनि यहाँ पहले सदा सुनाई देती थी, वह अब क्यों रुकी हुई है?

विषण्णः श्रान्तहृदयस्त्रस्तः संलुलितेन्द्रियः।
भरतः प्रविवेशाशु पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम्।। २५।।
द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छ्रान्तवाहनः।
द्वाःस्थैरुत्थाय विजयमुक्तस्तैः सहितो ययौ।। २६।।
स त्वनेकाग्रहृदयो द्वाःस्थं प्रत्यर्च्य तं जनम्।
सूतमश्वपतेः क्लान्तमब्रवीत् तत्र राघवः।। २७।।

भरत जी उस समय उदास हो रहे थे। उनका हृदय शिथिल था, वे डरे हुए थे, उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रहीं थीं। उस अवस्था में उन्होंने शीघ्रता से इक्ष्वाकुओं के द्वारा पालित अयोध्या में प्रवेश किया। उनके घोड़े थक गये थे। उन्होंने वैजयन्त नाम के द्वार से प्रवेश किया। तब द्वारपालों ने उठ कर उनका जयकार किया। वे उनके साथ अन्दर गये क्योंकि उस समय उनका हृदय एकाग्र नहीं था, अतः द्वारपालों को सत्कृत कर उन्होंने उन्हें लौटा दिया और उस केकय राज अश्वपति के थके हुए सारथी से वे रघुनन्दन बोले।

सम्मार्जनविहीनानि परुषाण्युपलक्षये।
असंयतकवाटानि श्रीविहीनानि सर्वश।। २८।।
बलिकर्मविहीनानि धूपसम्मोदनेन च।
अनाशितकुटुम्बानि प्रभाहीनजनानि च।। २९।।
अलक्ष्मीकानि पश्यामि कुटुम्बिभवनान्यहम्।

मैं देख रहा हूँ कि गृहस्थों के घर बिना झाड़ू सफाई के, रूखे से और शोभा रहित दिखाई दे रहे हैं। उनके किवाड़ खुले हुए हैं, उनमें न तो बालिवैश्वदेव कर्म हुए हैं और न वहाँ धूप की सुगन्ध है। तेज से रहित लोग ऐसे दिखाई दे रहे हैं जैसे उनके परिवार में किसी को भी खाना न मिला हो, उनके मकानों में मानों लक्ष्मी का निवास नहीं रहा हो।

माल्यापणेषु राजन्ते नाद्य पण्यानि वा तथा।। ३०।।
दृश्यन्ते वणिजोऽप्यद्य न यथापूर्वमत्र वै।
ध्यानसंविग्नहृदया नष्टव्यापारयन्त्रिताः।। ३१।।
मलिनं चाश्रुपूर्णाक्षं दीनं ध्यानपरं कृशम्।
सस्त्रीपुंसं च पश्यामि जनमुत्कण्ठितं पुरे।। ३२।।

मालाओं और फूलों के बाजार में आज पहले जैसी दुकानें नहीं हैं। व्यापारी लोग भी यहाँ पहले की तरह दिखाई नहीं दे रहे हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे व्यापार के नष्ट हो जाने के कारण वे जड़ से हो रहे हों और चिन्ता से उनका हृदय उद्विग्न हो रहा हो। नगर में स्त्री और पुरुष सभी मैले कुचैले, आँखों में आँसू भरे दीन, चिन्तामग्न और कमजोर तथा उत्कण्ठा से भरे हुए दिखाई दे रहे हैं।

तां शून्यशृङ्गाटकवेश्मरथ्यां
रजोरुणद्वारकवाटयन्त्राम्।
दृष्ट्वा पुरीमिन्द्रपुरीप्रकाशां
दुःखेन सम्पूर्णतरो बभूव।। ३३।।

जो पुरी पहले इन्द्र के नगर के समान प्रकाशित रहा करती थी, उसी को अब सूने चौराहों, घरों और सड़कों वाला तथा दरवाजों के किवाड़ों को धूल से भरा हुआ देख कर भरत जी पूरी तरह से शोक मग्न हो गए।

बभूव पश्यन् मनसोऽप्रियाणि
यान्यन्यदा नास्य पुरे बभूवुः।
अवाक्शिरा दीनमना न हृष्टः
पितुर्महात्मा प्रविवेश वेश्म।। ३४।।

मन को अप्रिय लगने वाली बातें जो पहले कभी उस नगर में नहीं हुईं थीं, उन्हें देखकर वे प्रसन्नता से रहित और दीन हो गए। उस महात्मा ने तब गर्दन झुकाए हुए पिता के घर में प्रवेश किया।

उनहत्तरवाँ सर्ग

भरत जी का कैकेयी से पिता के परलोकवास का समाचार पाकर विलाप करना तथा श्रीराम के विषय में पूछने पर कैकेयी द्वारा राम के वन गमन के वृतान्त से अवगत होना।

अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये।
जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये।। १।।
अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकेयी प्रोषितं सुतम्।
उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम्।। २।।

पिता को अपने घर में न देखकर भरत माता को देखने के लिये माता के घर में गये। अपने परदेस गए हुए पुत्र को आया हुआ देख कर कैकेयी तब उछल कर अपने सुवर्ण आसन को छोड़ कर खड़ी हो गयी।

स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम्।
भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ।। ३।।
तं मूर्ध्नि समुपाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनम्।
अङ्के भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे।। ४।।

उन धर्मात्मा भरत ने प्रवेश करके ही अपने उस घर को शोभा रहित देख कर, माता के पवित्र चरणों का स्पर्श किया। तब कैकेयी ने उन यशस्वी भरत को छाती से लगा कर, गोद में बैठा कर उनका सिर सूँघ कर पूछना प्रारम्भ किया।

अद्य ते कतिचिद् रात्र्यश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः।
अपि नाध्वश्रमः शीघ्रं रथेनापततस्तव।। ५।।
आर्यकस्ते सुकुशली युधाजिन्मातुलस्तव।
प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि।। ६।।

बेटा! आज तुम्हें नाना के घर से चले कितनी रातें बीत गयीं? रथ से शीघ्रता पूर्वक आते हुए तुम्हें रास्ते की थकावट तो नहीं हुई? तुम्हारे नाना सकुशल हैं? तुम्हारे मामा युधाजित् भी क्या सकुशल हैं? क्या तुम घर से बाहर सुख से रहे? यह सब मुझे बताओ।

एवं पृष्टस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः।
आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः।। ७।।
अद्य मे सप्तमी रात्रिश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः।
अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे।। ८।।

इस प्रकार कैकेयी के प्यार से पूछने पर दशरथ पुत्र कमलनयन भरत ने सारी बातें माता को बतायीं कि आज नाना जी के घर से चले सात रात्रियाँ व्यतीत हो चुकी हैं। मेरे नाना और मामा सकुशल हैं।

यन्मे धनं च रत्नं च ददौ राजा परंतपः।
परिश्रान्तं पथ्यभवत् ततोऽहं पूर्वमागतः।। ९।।
राजवाक्यहरैर्दूतैस्त्वर्यमाणोऽहमागतः ।
यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्बा वक्तुमर्हति।। १०।।

शत्रुओं को तपाने वाले राजा ने जो धन और रत्न मुझे दिया था, उसके कारण सब लोग राह में थक गये थे, तब मैं राजकीय सन्देश लेकर गये हुए दूतों के शीघ्रता के लिये कहने पर पहले आ गया हूँ। अब जो कुछ मैं पूछना चाहता हूँ, उसका तुम उत्तर दो।

शून्योऽयं शयनीयस्ते पर्यङ्को हेमभूषितः।
न चायमिक्ष्वाकुजनः प्रहृष्टः प्रतिभाति मे।। ११।।
राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने।
तमहं नाद्य पश्यामि द्रष्टुमिच्छन्निहागतः।। १२।।
पितुर्ग्रहीष्ये पादौ च तं ममाख्याहि पृच्छतः।
आहोस्विदम्बाज्येष्ठायाः कौसल्याया निवेशने।। १३।।

तुम्हारा स्वर्णभूषित यह पलंग आज सूना है और ये महाराज के परिजन मुझे प्रसन्न नहीं दिखाई दे रहे हैं। राजा अधिकतर मेरी माता के ही घर में रहते हैं, उनको आज मैं यहाँ नहीं देख रहा हूँ। मैं उनके दर्शन की इच्छा से यहाँ आया हूँ। मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे उनके विषयों में बताओ। मैं उनके चरणों का स्पर्श करूँगा। क्या वे इस समय बड़ी माँ कौसल्या के घर में हैं?

तं प्रत्युवाच कैकेयी प्रियवद् घोरमप्रियम्।
अजानन्तं प्रजानन्ती राज्यलोभेन मोहिता।। १४।।
या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः।
राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतां गतिः।। १५।।

तब राज्य के लोभ से मोहित, उस घोर अप्रिय समाचार को प्रिय सा समझती हुई कैकेयी ने सारी बातें न जानने वाले भरत को उत्तर दिया, कि बेटा तुम्हारे पिता जो महात्मा, तेजस्वी, यज्ञ करने वाले सज्जन पुरुषों के आश्रयदाता राजा थे, ~~तेजस्वी, यज्ञ करने वाले सज्जन~~

पुरुषों के आश्रयदाता सम्राट् थे, वे उसी गति को प्राप्त हो गये, जिसको सारे प्राणी प्राप्त होते हैं।

तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं धर्माभिजनवाञ्छुचिः।
पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्दितः॥ १६॥
हा हतोऽस्मीति कृपणां दीनां वाचमुदीरयन्।
निपपात महाबाहुर्बाहू विक्षिप्य वीर्यवान्॥ १७॥
ततः शोकेन संवीतः पितुर्मरणदुःखितः।
विललाप महातेजा भ्रान्ताकुलितचेतनः॥ १८॥

धार्मिक कुल में उत्पन्न, पवित्र हृदय वाले भरत जी यह बात सुनकर पितृशोक से अत्यन्त पीड़ित होकर हाय! मैं मारा गया, यह दुःख से भरी हुई दीन वाणी कहते हुए तुरन्त भूमि पर गिर पड़े। वे महाबाहु अपनी भुजाओं को भूमि पर पटक-पटक पर पृथ्वी पर लोटने और गिरने लगे। वे महातेजस्वी भरत उस समय चेतना से भ्रान्त और व्याकुल हो गये थे। पिता की मृत्यु से दुःखी और शोक से मग्न होकर वे विलाप करने लगे।

एतत् सुरुचिरं भाति पितुर्मे शयनं पुरा।
शशिनेवामलं रात्रौ गगनं तोयदात्यये॥ १९॥
तदिदं न विभात्यद्य विहीनं तेन धीमता।
व्योमेव शशिना हीनमप्शुष्क इव सागरः॥ २०॥

शरद्ऋतु की रात्रि में निर्मल चन्द्रमा से सुशोभित होने वाले आकाश के समान यह धीमान पिता जी का शयन स्थान पहले बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था पर अब उन पिता जी के बिना यह चन्द्रमा से रहित आकाश और सूखे हुए सागर की तरह अच्छा नहीं लग रहा है।

तमार्तं देवसंकाशं समीक्ष्य पतितं भुवि।
निकृत्तमिव सालस्य स्कन्धं परशुना वने॥ २१॥
माता मातङ्गसंकाशं चन्द्रार्कसदृशं सुतम्।
उत्थापयित्वा शोकार्तं वचनं चेदमब्रवीत्॥ २२॥

उस हाथी के समान पुष्ट, सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी, देवतुल्य अपने पुत्र भरत को जो वन में फरसे से काटे हुए शालवृक्ष के समान दुःख से पीड़ित होकर पृथ्वी पर पड़े हुए थे माता कैकेयी उठा कर इस प्रकार कहने लगी।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे राजन्नत्र महायशः।
त्वद्विधा नहि शोचन्ति सन्तः सदसि सम्मताः॥ २३॥
दानयज्ञाधिकारा हि शीलश्रुतितपोनुगा।
बुद्धिस्ते बुद्धिसम्पन्न प्रभेवार्कस्य मन्दिरे॥ २४॥

हे महायशस्वी राजन्! भूमि पर क्यों पड़े हुए हो। उठो, उठो। सभाओं में सम्मान पाने वाले तुम्हारे जैसे शोक नहीं किया करते। हे बुद्धि सम्पन्न! तुम्हारी बुद्धि तुममें ऐसे ही निश्चल है, जैसे सूर्यमण्डल में उसकी प्रभा। यह तुम्हारी बुद्धि सदाचार, वेद तथा तपस्या का अनुसरण करने वाली है और दान तथा यज्ञ की अधिकारिणी है।

स रुदित्वा चिरं कालं भूमौ परिविवृत्य च।
जननीं प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृतः॥ २५॥
अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते।
इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम॥ २६॥
तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनो मम।
पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम्॥ २७॥

वह भरत अत्यधिक शोक से आवृत्त होकर भूमि पर लोटते हुए बहुत देर तक रोते रहे, फिर वे माता से बोले कि मैंने तो सोचा था कि राजा राम का अभिषेक करेंगे और यज्ञ करेंगे। यही सोच कर मैं बड़ी प्रसन्नता से यात्रा करता हुआ आया था। पर यहाँ तो उलटा ही हो गया है। वे पिता जी जो सदा मेरे हित में लगे रहते थे, उन्हें नहीं देखने के कारण मेरा हृदय फटा जा रहा है।

अम्ब केनात्यागाद् राजा व्याधिना मय्यनागते।
धन्या रामादयः सर्वे यैः पिता संस्कृतः स्वयम्॥ २८॥
न नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति कीर्तिमान्।
उपजिघ्रेत् तु मां मूर्ध्नि तातः संनाम्य सत्वरम्॥ २९॥
क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः।
यो हि मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति॥ ३०॥

हे माता! पिता जी को कौन सी बीमारी हो गयी थी? जो मेरे पहुँचने से पहले ही वे चले गये। रामादि वे सारे धन्य हैं, जिन्होंने स्वयं पिता जी का अन्त्येष्टि संस्कार किया था। वे कीर्तिमान महाराज निश्चय ही मेरे आगमन के विषय में नहीं जानते। नहीं तो वे शीघ्रता से मेरे सिर को झुका कर उसे सूँघते। अनायास ही वह महान कर्मों के करने वाले पिता जी का हाय वह सुख स्पर्शवाला हाथ कहाँ है? जो मेरे धूल से सने शरीर को लगातार पोंछा करता था।

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ ३१॥
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम॥ ३२॥

अब जो मेरे भाई, पिता और बंधु हैं, जिन अनायास ही महान कर्म करने वाले राम का मैं प्रिय सेवक हूँ, उनके विषय में मुझे शीघ्र ही बताओ। धर्म को जानने वाले आर्य पुरुष के लिये बड़ा भाई ही पिता के समान होता हैं मैं उन्हीं के पैरों को ग्रहण करूँगा। वे ही मेरे आश्रय हैं।

धर्मविद् धर्मशीलश्च महाभागो दृढव्रतः।
आर्ये किमब्रवीद् राजा पिता मे सत्यविक्रमः।। ३३।।
पश्चिमः साधुसंदेशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः।

हे आर्य! मेरे राजा पिता, जो धर्म को जानने वाले, धर्मशील और व्रत का दृढ़ता से पालन करने वाले थे, उन सत्य पराक्रमी महाभाग ने मेरे लिये क्या अन्तिम उत्तम सन्देश दिया था, उसे मैं सुनना चाहता हूँ।

इति पृष्टा यथातत्त्वं कैकेयी वाक्यमब्रवीत्।। ३४।।
रामेति राजा विलपन् हा सीते लक्ष्मणेति च।
स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः।। ३५।।
इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव।
कालधर्मं परिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः।। ३६।।
सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया।
लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम्।। ३७।।

ऐसा पूछे जाने पर कैकेयी सही-सही बताती हुई कहने लगी कि वे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ महात्मा हे राम! हे सीता! हे लक्ष्मण! ऐसा विलाप करते हुए परलोक चले गये। बन्धनों से बन्धे हुए श्रेष्ठ हाथी के समान कालधर्म के वश में होकर तुम्हारे पिता ने इस अन्तिम वाणी को कहा था कि वही लोग कृतार्थ होंगे, जो राम को सीता के साथ और महाबाहु लक्ष्मण को पुनः आया हुआ देखेंगे।

तच्छ्रुत्वा विषसादैव द्वितीयाप्रियशंसनात्।
विषण्णवदनो भूत्वा भूयः पप्रच्छ मातरम्।। ३८।।
क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समागतः।। ३९।।

माता के द्वारा यह दूसरी अप्रिय बात कही जाने पर, उसे सुन कर भरत जी और भी दुःखी हो गये। उन्होंने विषादयुक्त मुखवाला होकर माता से फिर पूछा कि कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले वे धर्मात्मा राम भाई लक्ष्मण और सीता के साथ कहाँ गये है?

तथा पृष्टा यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे।
मातास्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशंसया।।४०।।

स हि राजसुतः पुत्र चीरवासा महावनम्।
दण्डकान् सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः।। ४१।।

इस प्रकार पूछे जाने पर उनकी माता कैकेयी ने उस अप्रिय बात को प्रिय बनाने की इच्छा से उचित रीति से एक साथ कहना आरम्भ किया। कि हे पुत्र! वह राजपुत्र सीता के साथ, लक्ष्मण जिसका अनुसरण कर रहे थे, वल्कल पहन कर महान वन दण्डकारण्य में चले गये।

तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशङ्कया।
स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात् प्रष्टुं समुपचक्रमे।। ४२।।
कच्चिन्न ब्राह्मणधनं, हृतं रामेण कस्यचित्।
कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा, तेनापापो विहिंसितः।। ४३।।
कच्चिन्न परदारान् वा राजपुत्रोऽभिमन्यते।
कस्मात् स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः।। ४४।।

यह सुन कर भरत जी भाई के चरित्र की शंका से डर गये ओर अपने वंश की महिमा के कारण वे पुनः पूछने लगे कि क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन हर लिया था? या किसी निर्दोष निर्धन या धनवान की हत्या कर डाली थी? क्या उन राजकुमार का मन किसी पराई स्त्री की तरफ चला गया था? किस कारण से भाई राम को दण्डकारण्य में निर्वासित कर दिया गया?

एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना।
उवाच वचनं हृष्टा वृथापण्डितमानिनी।। ४५।।
न ब्राह्मणधनं किंचिद्धृतं रामेण कस्यचित्।
कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः।
न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति।। ४६।।
मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्येहाभिषेचनम्।
याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्।। ४७।।

महात्मा भरत के द्वारा ऐसा कहे जाने पर अपने आप को व्यर्थ ही पंडित मानने वाली कैकेयी प्रसन्न होकर कहने लगी। श्रीराम ने किसी भी ब्राह्मण का कुछ भी धन नहीं हरण किया। उसने किसी पाप रहित निर्धन या धनाढ्य की हत्या भी नहीं की। राम परायी स्त्रियों को बुरी आँखों से भी नहीं देखते हैं। हे पुत्र! मैंने ही यहाँ राम का अभिषेक होने वाला है यह सुन कर तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिये राज्य और राम का निर्वासन माँगा है।

स स्ववृत्तिं समास्थाय पिता ते तत् तथाकरोत्।
रामस्तु सहसौमित्रिः प्रेषितः सह सीतया।। ४८।।
तमपश्यन् प्रिय पुत्रं महीपालो महायशाः।
पुत्रशोकपरिद्यूनः पञ्चत्वमुपपेदिवान्।। ४९।।

अपने सत्यप्रतिज्ञ स्वभाव पर स्थिर रह कर तुम्हारे उन पिता ने राम को सीता और लक्ष्मण के साथ वन में भेज दिया। फिर उस महायशस्वी राजा ने अपने प्रिय पुत्र को न देखने के कारण पुत्र शोक से पीड़ित होकर पंचत्व को प्राप्त कर लिया।

त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम्।
त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम्।।५०।।
मा शोकं मा च संतापं धैर्यमाश्रय पुत्रक।
त्वदधीना हि नगरी राज्यं चैतदनामयम्।।५१।।

हे धर्मज्ञ! तुम अब इस राज्य को प्राप्त करो। मैंने तुम्हारे लिये ही यह सब कुछ इस प्रकार से किया है। शोक और संताप मत करो। धैर्य धारण करो। यह नगर और यह निष्कंटक राज्य तुम्हारे ही आधीन है।

तत् पुत्र शीघ्रं विधिना विधिज्ञै–
र्वसिष्ठमुख्यैः सहितो द्विजेन्द्रैः।
संकाल्य राजानमदीनसत्त्व–
मात्मानमुर्व्यामभिषेचयस्व ।।५२।।

इसलिये हे पुत्र! तुम शीघ्र ही विधि और विधान के ज्ञाता वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ उदार हृदय वाले राजा का अंत्येष्टि संस्कार कर इस पृथ्वी के राज्य पर अपना अभिषेक कराओ।

सत्तरवाँ सर्ग

भरत जी का कैकेयी को धिक्कारना और उसके प्रति महान शेष प्रकट करना।

श्रुत्वा च स पितुर्वृत्तं भ्रातरौ च विवासितो।
भरतो दुःखसंतप्त इदं वचनमब्रवीत्।। १।।
किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च।। २।।

पिता जी का समाचार और दोनों भाइयों के निर्वासन के विषय में सुनकर भरत जी दुःख से संतप्त होकर यह कहने लगे कि हाय तू ने मुझे पिता जी से और पिता के समान भाई से अलग करके मार दिया। अब शोक में डूबे हुए मुझे राज्य को लेकर क्या करना है?

दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः।
राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम्।। ३।।
कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता।
अङ्गारमुपगूह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान्।। ४।।

जैसे घाव पर नमक छिड़क दिया जाये वैसे ही तू ने राजा को परलोक भेज कर और राम को तपस्वी बना कर मुझे एक दुःख के ऊपर दूसरा दुःख दे दिया है। तू इस कुल के विनाश के लिये काल रात्रि के समान यहाँ आई थी। तुझे पिताजी ने अपनी पत्नी के रूप में अंगारे को गले लगाया था, पर उस समय उन्हें यह पता नहीं था।

मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि।
सुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसनि।। ५।।
त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसंधो महायशाः।
तीव्रदुः खाभिसंतप्तो वृत्तो दशरथो नृपः।। ६।।

अरी पाप दर्शिनी! तूने मेरे महाराज को मार दिया। अरी कुलघातिनी! तूने मोह के कारण इस कुल में से सुख को समाप्त कर दिया। तुझे प्राप्त करके ही आज मेरे महायशस्वी, सत्यसंध, राजा दशरथ, तीव्र दुःख से संतप्त होकर मृत अवस्था को चले गये।

विनाशितो महाराजः पिता मे धर्मवत्सलः।
कस्मात् प्रव्राजितो रामः कस्मादेव वनं गतः।। ७।।
कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकाभिपीडिते।
दुष्करं यदि जीवेतां प्राप्य त्वां जननीं मम।। ८।।

तूने मेरे धर्मवत्सल पिता को नष्ट कर दिया। तूने श्रीराम को क्यों निर्वासित किया? वे भी तेरे कहने से क्यों वन में चले गए? अब तो तुझ मेरी माता को प्राप्त कर पुत्रशोक से पीड़ित कौसल्या और सुमित्रा के लिये भी जीवित रहना कठिन है।

नन्वार्योऽपि च धर्मात्मा त्वयि वृत्तिमनुत्तमाम्।
वर्तते गुरुवृत्तिज्ञो यथा मातरि वर्तते।। ९।।
तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी।
त्वयि धर्मं समास्थाय भगिन्यामिव वर्तते।।१०।।

आर्य श्रीराम भी बड़े धर्मात्मा हैं, बड़ों के प्रति कैसा बर्ताव करना चाहिये, वे यह जानते हैं। वे तेरे साथ भी वैसा ही व्यवहार करते थे, जैसा माता के साथ करना

चाहिये। उसी तरह मेरी बड़ी माता कौसल्या भी दूरदर्शिनी है, वे भी धर्म का आश्रय लेकर तेरे साथ बहिन का सा व्यवहार करती हैं।

तस्याः पुत्रं महात्मानं चीरवल्कलवाससम्।
प्रस्थाप्य वनवासाय कथं पापे न शोचसे।। ११।।
अपापदर्शिनं शूरं कृतात्मानं यशस्विनम्।
प्रव्राज्य चीरवसनं किं नु पश्यसि कारणम्।। १२।।

अरी पापिनी! उनके महात्मा पुत्र को वल्कल वस्त्र पहना कर वनवास के लिये भेज कर तुझे शोक क्यों नहीं हो रहा है? जो किसी की बुराई नहीं देखते, उन शूरवीर मनस्वी और यशस्वी श्रीराम को किस कारण से तू ने वल्कल वस्त्रों के साथ निर्वासित कर दिया?

लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा।
तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं त्वयाऽऽनीतो महानयम्।। १३।।
अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन् रामलक्ष्मणौ।
केन शक्तिप्रभावेण राज्यं रक्षितुमुत्सहे।। १४।।

मैं समझता हूँ कि तुझ लोभिनी ने यह नहीं समझा कि मेरा श्रीराम के प्रति कैसा प्रेम है? तभी तूने राज्य के लिये यह महान अन्याय से युक्त अनर्थ कर दिया। मैं भी पुरुष व्याघ्र श्रीराम और लक्ष्मण के बिना किस की शक्ति के प्रभाव से राज्य की रक्षा के लिये उत्साहित हो सकता हूँ?

तं हि नित्यं महाराजो बलवन्तं महौजसम्।
उपाश्रितोऽभूद् धर्मात्मा मेरुर्मेरुवनं यथा।। १५।।
सोऽहं कथमिमं भारं महाधुर्यसमुद्यतम्।
दम्यो धुरमिवासाद्य सहेयं केन चौजसा।। १६।।

उन बलवान महातेजस्वी श्रीराम का तो धर्मात्मा महाराज भी नित्य आश्रय लिया करते थे, जैसे मेरु पर्वत अपने ऊपर उगने वाले गहन वन का आश्रय लेता है। मैं इस राज्य के भार का, जिसे महान धुरन्धर ने धारण किया था, बड़े बोझ को नये बछड़े के समान प्राप्त कर किस शक्ति से सहन कर सकता हूँ।

अथवा मे भवेच्छक्तिर्योगैर्बुद्धिबलेन वा।
सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्रगर्द्धिनीम्।। १७।।
न मे विकाङ्क्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम्।
यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत् सदा।। १८।।

अथवा मुझ में नाना उपायों और बुद्धिबल से राज्य को सँभालने की शक्ति हो भी तो मैं तुझ पुत्र के लिये लालचिन की इच्छा को पूरा नहीं होने दूँगा। यदि राम तुझे सदा अपनी माता के समान नहीं समझते होते तो तुझ पापिनी को छोड़ने में मुझे जरा भी हिचक नहीं होती।

उत्पन्ना तु कथं बुद्धिस्तवेयं पापदर्शिनी।
साधुचारित्रविभ्रष्टे पूर्वेषां नो विगर्हिता।। १९।।
अस्मिन् कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते।
अपरे भ्रातरस्तस्मिन् प्रवर्तन्ते समाहिताः।। २०।।

अरी! उस उत्तम चरित्र से गिरी हुई तुझ में हमारे पूर्वजों द्वारा निन्दित, यह पाप को देखने वाली बुद्धि कैसे पैदा हो गयी? इस कुल में सारे भाइयों में सबसे बड़ा ही राज्य पर अभिषिक्त होता है और दूसरे भाई उसके आधीन रहकर सावधानी से कार्य करते हैं।

न हि मन्ये नृशंसे त्वं राजधर्ममवेक्षसे।
गतिं वा न विजानासि राजवृत्तस्य शाश्वतीम्।। २१।।
सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते।
राज्ञामेतत् समं तत् स्यादिक्ष्वाकूणां विशेषतः।। २२।।

उसी निर्दय! मैं समझता हूँ कि तू राजधर्म को नहीं देखती है अथवा तू राजाओं के सनातन व्यवहार के स्वरूप को नहीं जानती है। राजपुत्रों में सबसे बड़े का ही सदा अभिषेक होता हैं। सभी राजाओं में यह नियम समान है और इक्ष्वाकुवंश में तो इसका विशेष पालन होता है।

तेषां धर्मैकरक्षाणां कुलचारित्रशोभिनाम्।
अद्य चारित्रशौटीर्यं त्वां प्राप्य विनिवर्तितम्।। २३।।
तत्रापि सुमहाभागे जनेन्द्रकुलपूर्वके।
बुद्धिमोहः कथमयं सम्भूतस्त्वयि गर्हितः।। २४।।

उन धर्म के द्वारा ही सुरक्षित और कुल के चरित्र से सुशोभित इक्ष्वाकुवंशियों का चरित्र विषयक अभिमान आज तुझे प्राप्त कर समाप्त हो गया। अरी महाभाग! तेरा भी तो जन्म महाराज केकय के कुल में हुआ है। फिर तेरे अन्दर यह निन्दित बुद्धिमोह कैसे हो गया?

न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये।
यया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम।। २५।।
एष त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानघम्।
निवर्तयिष्यामि वनाद् भ्रातरं स्वजनप्रियम्।। २६।।
निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः।
दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना।। २७।।

अरी पाप का निश्चय रखने वाली। मैं तेरी इस कामना को पूरा नहीं करूँगा, जिसने मेरे प्राणों को हरने वाली मुसीबत प्रारम्भ कर दी है। यह मैं अभी तेरे अप्रिय के

लिये तैयार हूँ। मैं उन निष्पाप, अपने बन्धुओं के प्रिय भाई श्रीराम को वन से वापिस लौटाकर लाऊँगा। मैं उन महोजस्वी राम को लौटा कर उनका दास बन कर स्वस्थ चित्त वाला हो जाऊँगा।

इत्येवमुक्त्वा भरतो महात्म
प्रियेतरैर्वाक्यगणैस्तुदंस्ताम् ।
शोकार्दितश्चापि ननाद भूयः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।। २८।।

ऐसा कह कर महात्मा भरत जली कटी बातों से उस कैकेयी को पीड़ित करते हुए शोक में मग्न होकर बार बार फटकारने लगे जैसे मन्दाचल की कन्दरा में बैठा हुआ सिंह गरज रहा हो।

इकहत्तरवाँ सर्ग

भरत का कैकेयी को कड़ी फटकार देना।

तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा।
रोषेण महताविष्टः पुनरेवाब्रवीद् वचः।। १।।
राज्याद् भ्रंशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि।
परित्यक्तासि धर्मेण मा मृतं रुदती भव।। २।।

इस प्रकार माता की निन्दा करके भरत बड़े क्रोध में भर कर फिर यह बोले कि अरी दुष्ट आचरणवाली निर्दय कैकेयी! तू राज्य से भ्रष्ट हो जा। तुझे धर्म ने त्याग दिया है इसलिये तू मृत महाराज के लिये रोना मत।

किं नु तेऽदूषयद् रामो राजा वा भृशधार्मिकः।
ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ।। ३।।
भ्रूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात्।
कैकेयि नरकं गच्छ मा च तातसलोकताम्।। ४।।

श्री राम ने और अत्यन्त धार्मिक राजा ने तेरा क्या बिगाड़ा था, जो तेरे कारण उन्हें एक साथ वनवास और मृत्यु को भोगना पड़ा। इस कुल का विनाश करने के कारण तू भ्रूण हत्या के पाप को प्राप्त हुई है। हे कैकेयी! तुझे पिता जी का लोक न मिले, तू नरक को प्राप्त हो।

यत्त्वया हीदृशं पापं कृतं घोरेण कर्मणा।
सर्वलोकप्रियं हित्वा ममाप्यापादितं भयम्।। ५।।
त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः।
अयशो जीवलोके च त्वयाहं प्रतिपादितः।। ६।।

तू ने अपने भयानक कर्म के द्वारा सारे लोगों का सुख समाप्त कर जो इतना बड़ा पाप किया है, उससे मुझे भी भय लग रहा है। तेरे कारण से मेरे पिता मृत हो गये और श्रीराम वन में चले गये। तू ने मुझे भी संसार में अपयश का भागी बना दिया।

मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके।
न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि।। ७।।
न त्वमश्वपतेः कन्या धर्मराजस्य धीमतः।
राक्षसी तत्र जातासि कुलप्रध्वंसिनी पितुः।। ८।।

हे राज्य की लालचिन, निर्दय, दुष्ट आचरण वाली, पति की हत्यारी! तू माता के रूप में मेरी शत्रु है। मुझे तुझसे बात नहीं करनी चाहिये। तू धीमान और धर्मराज अश्वपति की पुत्री नहीं है। तू पिता के कुल को नष्ट करने वाली राक्षसी के रूप में वहाँ उत्पन्न हुई है।

यत् त्वया धार्मिको रामो नित्यं सत्यपरायणः।
वनं प्रस्थापितो वीरः पितापि त्रिदिवं गतः।। ९।।
यत् प्रधानासि तत् पापं मयि पित्रा विना कृते।
भ्रातृभ्यां च परित्यक्ते सर्वलोकस्य चाप्रिये।। १०।।

तू ने नित्य सत्य परायण धार्मिक राम को वन में भेज दिया। वीर पिता भी परलोक को चले गये। इस प्रकार तू ने जिस प्रमुख पाप को किया है, उसके कारण मैं अपने पिता और दोनों भाइयों से रहित हो गया और सारे लोगों का बुरा बन गया।

कौसल्यां धर्मसंयुक्तां वियुक्तां पापनिश्चये।
कृत्वा कं प्राप्स्यसे ह्यद्य लोकं निरयगामिनि।। ११।।
किं नावबुध्यसे क्रूरे नियतं बन्धुसंश्रयम्।
ज्येष्ठं पितृसमं रामं कौसल्यायात्मसम्भवम्।। १२।।

अरी पापपूर्ण विचार वाली और नरक को जाने वाली! आज धर्म से युक्त कौसल्या को पति और पुत्र से अलग कर तू किस लोक में जायेगी? अरी निर्दय! कौसल्या के पुत्र श्रीराम मेरे बड़े भाई और पिता के समान हैं। वे जितेन्द्रिय और बन्धुओं के आश्रयदाता हैं। क्या तू उन्हें जानती है?

अङ्गप्रतयङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते।
तस्मात् प्रियतरो मातुः प्रिया एव तु बान्धवाः।। १३।।
एकपुत्रा च साध्वी च विवत्सेयं त्वया कृता।
तस्मात् त्वं सततं दुःखं प्रेत्य चेह च लप्स्यसे।। १४।।

वैसे तो सारे बन्धु-बान्धव प्यारे होते हैं, पर माता को पुत्र सबसे अधिक प्रिय होता है, क्योंकि वह उसके अंग प्रत्यंग और हृदय से उत्पन्न होता है, पर तू ने साध्वी और इकलौते बेटे वाली कौसल्या का उसके पुत्र से वियोग करा दिया, इसलिये तू यहाँ और परलोक में भी सदा दुःख को प्राप्त होगी।

अहं त्वपचितिं भ्रातुः पितुश्च सकलामिमाम्।
वर्धनं यशसश्चापि करिष्यामि न संशयः।। १५।।
आनाय्य च महाबाहुं कोसलेन्द्रं महाबलम्।
स्वयमेव प्रवेक्ष्यामि वनं मुनिनिषेवितम्।। १६।।

मैं तो अब निश्चितरूप से पिता की अन्त्येष्टि और भाई की क्षति पूर्ति रूप राज्य प्रतिष्ठा और पूजा कर अपने यश की वृद्धि करूँगा। मैं महाबाहु महाशक्तिशाली कोसलेन्द्र श्रीराम को लाकर स्वयं मुनियों से सेवित वन में प्रवेश कर जाऊँगा।

नह्यहं पापसंकल्पे पापे पापं त्वया कृतम्।
शक्तो धारयितुं पौरैरश्रुकण्ठैर्निरीक्षितः।। १७।।
सा तवमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान्।
रज्जुं बद्ध्वाथवा कण्ठे नहि तेऽन्यत् परायणम्।। १८।।

हे पापपूर्ण विचारवाली! मैं आँसू बहाते हुए और भरे हुए गले से पुरवासियों को देखते हुए तेरे किये हुए पाप को धारण नहीं कर सकता। इसलिये तू चाहे अग्नि में प्रवेश कर या दण्डकारण्य में चली जा या गले में रस्सी बाँध ले। कुछ भी कर तुझे और दूसरा सहारा नहीं है।

अहमप्यवनीं प्राप्ते रामे सत्यपराक्रमे।
कृतकृत्यो भविष्यामि विप्रवासितकल्मषः।। १९।।
इति नाग इवारण्ये तोमराङ्कुशतोदितः।
पपात भुवि संक्रुद्धो निश्वसन्निव पन्नगः।। २०।।

सत्य पराक्रमी राम जब इस भूमि पर आयेंगे, तभी मैं कलंक रहित बनूँगा और मैं कृतकृत्य होऊँगा। ऐसा कहकर भरत जी वन में तोमर और अंकुश द्वारा पीड़ित हाथी के समान भूमि पर गिर पड़े और क्रोधित सर्प के समान लम्बी साँसें लेने लगे।

बहत्तरवाँ सर्ग

कौशल्या के समाने भरत का शपथ खाना।

दीर्घकालात् समुत्थाय संज्ञां लब्ध्वा स वीर्यवान्।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां दीनामुद्वीक्ष्य मातरम्।। १।।
सोऽमात्यमध्ये भरतो जननीमभ्यकुत्सयत्।
राज्यं न कामये जातु मन्त्रये नापि मातरम्।। २।।
अभिषेकं न जानामि योऽभूद् राज्ञा समीक्षितः।
विप्रकृष्टे ह्यहं देशे शत्रुघ्नसहितोऽभवम्।। ३।।
वनवासं न जानामि रामस्याहं महात्मनः।
विवासनं च सौमित्रेः सीतायश्च यथाभवत्।। ४।।

लम्बे समय के बाद होश में आकर और उठ कर आँसू भरे नेत्रों से दीन बनी हुई माता को देख कर वह तेजस्वी भरत मन्त्रियों के बीच में माता की निन्दा करते हुए बोले कि मैं कदापि राज्य को नहीं चाहता, न मैंने कभी माता से इस विषय में मन्त्रणा की, जिसके लिये राजा ने निश्चय किया। उस अभिषेक के विषय में भी मुझे पता नहीं था। मैं तो शत्रुघ्न के साथ दूर देश में था। मैं बिल्कुल नहीं जानता कि कैसे महात्मा राम, लक्ष्मण और सीता का निर्वासन तथा वनवास हुआ।

तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः।
कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रां चेदमब्रवीत्।। ५।।
आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम्।। ६।।
एवमुक्त्वा सुमित्रां ता विवर्णवदना कृशा।
प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना।। ७।।
स तु राजात्मजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा।
प्रतस्थे भरतो येन कौसल्याया निवेशनम्।। ८।।

महात्मा भरत के इस प्रकार अपनी माता को कोसते हुए सुन कर और उसकी आवाज को पहचान कर कौसल्या सुमित्रा से बोली कि क्रूर कर्म करने वाली कैकेयी का पुत्र भरत आ गया है। मैं उस दूरदर्शी को देखना चाहती हूँ। सुमित्रा से ऐसा कह कर वह उदास मुखवाली, कमजोर, अचेतन सी बनी हुई कौसल्या

काँपती हुई उस तरफ चली जहाँ भरत जी थे। उधर राजपुत्र भरत भी शत्रुघ्न के साथ तभी उस मार्ग से कौसल्या के भवन की तरफ चले।

ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ।
पर्यष्वजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम्।। ९।।
रुदन्तौ रुदती दुःखात् समेत्यार्या मनस्विनी।
भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता।। १०।।

तब शत्रुघ्न और भरत ने दुःख से आर्त होकर गिरी हुई और मूर्च्छित हुई कौसल्या को देख कर दुःख से रोते हुए दौड़ कर उन्हें छाती से लगा लिया। तब वह अत्यन्त दुःखी मनस्विनी कौसल्या भरत से बोली।

इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा।। ११।।
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्र मे वनवासिनम्।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी।। १२।।

बेटा तुम राज्य चाहते थे। अब तुम्हें निष्कंटक राज्य मिल गया है, पर कैकेयी ने जल्दी के कारण बड़े क्रूर कर्म के द्वारा इसे प्राप्त किया है। वह क्रूरता पूर्वक देखने वाली कैकेयी मेरे बेटे को यहाँ से निकाल कर और वल्कल वस्त्र पहना कर, वनवासी बना कर क्या कल्याण देख रही है?

क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति।
हिण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः।। १३।।
अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः।। १४।।

अब कैकेयी मुझे भी वहाँ भेज दे जहाँ मेरा सुन्दर नाभिवाला महायशस्वी पुत्र विद्यमान है। अथवा मैं स्वयं ही सुमित्रा के साथ, अग्निहोत्र को आगे कर जहाँ राम हैं, वहाँ सुखपूर्वक चली जाऊँगी।

कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि।
यत्रासौ पुरुषव्याघ्रस्तप्यते मे सुतस्तपः।। १५।।
इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम्।
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं राज्यं निर्यातितं तया।। १६।।

या तुम स्वयं ही अपनी इच्छानुसार मुझे वहाँ पहुँचा दो जहाँ पुरुषों में श्रेष्ठ मेरा पुत्र तपस्या कर रहा हैं। उस कैकेयी ने यह विस्तृत, धन-धान्य से भरपूर, हाथी, रथ और घोड़ों से पूर्ण राज्य तुम्हें दिलाया है।

इत्यादिबहुभिर्वाक्यैः क्रूरैः सम्भर्त्सितोऽनघः।
विव्यथे भरतोऽतीव व्रणे तुद्येव सूचिना।। १७।।
पपात चरणौ तस्यास्तदा सम्भ्रान्तचेतनः।
विलप्य बहुधासंज्ञो लब्धसंज्ञस्तदाभवत्।। १८।।

इस प्रकार अनेक क्रूर वाक्यों से भर्त्सना पाकर वह निष्पाप भरत और अधिक व्यथित होने लगे जैसे कि घाव में सूई चुभा दी हो। चित्त में घबराहट लिये हुए वे कौसल्या के चरणों में गिर पड़े और अनेक प्रकार से विलाप करके मूर्च्छित हो गये। कुछ देर बाद उन्हें होश आया, तब इस प्रकार विलाप करती हुई और बहुत से शोकों से घिरी हुई कौसल्या से भरत जी हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले।

एवं विलपमानां तां प्राञ्जलिर्भरतस्तदा।
कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम्।। १९।।
आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम्।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे।। २०।।
कृतशास्त्रनुगा बुद्धिर्मा भूत् तस्य कदाचन।
सत्यसंधः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः।। २१।।

हे आर्ये! यहाँ जो कुछ भी हुआ, मुझे इसके बारे में कुछ भी पता नहीं है, मैं निरपराध हूँ। आप जानती हैं कि श्रीराम में मेरा कितना प्रेम है, फिर भी आप मुझे क्यों दोष दे रही हैं। सत्यसंघ, सज्जनों में श्रेष्ठ आर्य राम जिसकी सलाह के आधार पर वन में गये हैं, उसकी बुद्धि शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी उनका पालन करने वाली न बने।

कारयित्वा महत् कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम्।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः।। २२।।
परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत्।।
ततस्तु द्रुह्यतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः।। २३।।
बलिषड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः।। २४।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को जाना पड़ा उसे वही पाप लगे जो सेवकों से मुफ्त में ही बड़ा परिश्रम वाला कार्य कराने वाले स्वामी को लगता है। जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा उसे वही पाप लगे जो प्रजा का पुत्र के समान पालन करने वाले राजा से द्रोह करने वाले को लगता हैं। जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा, उसे वही पाप लगे जो प्रजा से आय का छठा हिस्सा कर के रूप में लेने पर भी उसकी रक्षा न करने वाले राजा को लगता है।

संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रे वै यज्ञदक्षिणाम्।
तां चापलतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः।। २५।।
उपदिष्टं सुसूक्ष्मार्थं शास्त्रं यत्नेन धीमता।
स नाशयतु दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः।। २६।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा उसे वही पाप लगे जो यज्ञ में दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा कर बाद में न देने वाले को लगता है। जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा वह बुद्धिमान गुरु के द्वारा यत्नपूर्वक उपदेश किये हुए शास्त्र के सूक्ष्म अर्थ को भूल जाये।

मा च तं व्यूढबाह्वंसं चन्द्रभास्करतेजसम्।
द्राक्षीद् राज्यस्थमासीनं यस्यार्योऽनुमते गतः।। २७।।
अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तात्मा निरपत्रपः।
लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योऽनुमते गतः।। २८।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा वह विशाल बाहु और कन्धे से युक्त, सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी श्रीराम को राज्यसिंहासन पर बैठा हुआ न देख सके। जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा वह उपकार न करने वाला, कृतघ्न, लोगों के द्वारा परित्यक्त, निर्लज्ज और संसार में सबका द्वेषपात्र हो।

अप्राप्यसदृशान् दाराननपत्यः प्रमीयताम्।
अनवाप्य क्रियां धर्म्यां यस्यार्योऽनुमते गतः।। २९।।
माऽऽत्मनः संततिं द्राक्षीत् स्वेषु दारेषु दुःखितः।
आयुःसमग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः।। ३०।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा, उसे अनुकूल पत्नी न मिले, वह सन्तान रहित हो और वह यज्ञ आदि धार्मिक क्रियाओं के बिना ही मर जाये। जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा, वह अपनी पत्नी से जन्म लेने वाली सन्तान का मुख न देख सके, वह सदा दुःखी रहे और अल्प आयु में ही मर जाये।

राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत् पापमुच्यते।
भृत्यत्यागे च यत् पापं तत् पापं प्रतिपद्यताम्।। ३१।।
संग्रामे समुपोढे च शत्रुपक्षभयंकरे।
पलायमानो वध्येत यस्यार्योऽनुमते गतः।। ३२।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा, उसे वही पाप लगे जो राजा, स्त्री, बालक और बूढ़ों की हत्या में लगता है। सेवक का त्याग करने में जो पाप लगता है, उसे वह प्राप्त हो। शत्रुओं के लिये भयंकर संग्राम के उपस्थित होने पर भाग जाने वाले को जो पाप लगता है, वह उसे लगे।

कपालपाणिः पृथिवीमटतां चीरसंवृतः।
भिक्षमाणो यथोन्मत्तो यस्यार्योऽनुमते गतः।। ३३।।
संचितान्यस्य वित्तानि विविधानि सहस्रशः।
दस्युभिर्विप्रलुप्यन्तां यस्यार्योऽनुमते गतः।। ३४।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा उसे फटे पुराने वस्त्र पहन कर, खप्पर हाथ में लेकर पागलों के समान भीख माँगते हुए पृथ्वी पर घूमना पड़े। जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा उसकी एकत्र की हुई हजारों प्रकार की सम्पत्तियों को डाकू लूट कर ले जायें।

उभे संध्ये शयानस्य यत् पापं परिकल्प्यते।
तच्च पापं भवेत् तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः।। ३५।।
यदग्निदायके पापं यत् पापं गुरुतल्पगे।
मित्रद्रोहे च यत् पापं तत् पापं प्रतिपद्यताम्।। ३६।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा उसे वही पाप लगे, जो दोनों संध्याओं के समय सोने वाले को लगता है। उसे वे सारे पाप लगें जो आग लगाने वाले को, गुरुपत्नीगामी को, और मित्रद्रोही को लगते हैं।

बहुभृत्यो दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः।
समायात् सततं क्लेशं यस्यार्योनुमते गतः।। ३७।।
विप्रलुप्तप्रजातस्य दुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत्।
तदेतत् प्रतिपद्येत यस्यार्योऽनुमते गतः।। ३८।।

जिसकी सलाह से श्रीराम को वन में जाना पड़ा, वह निर्धन हो जाये, उसके परिवार में भरण करने योग्य बहुत सारे व्यक्ति हों, वह सदा ज्वर से पीड़ित होकर दुःख को प्राप्त करता रहे। जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा, उसे वही दुःख प्राप्त हो जो सन्तान के नष्ट होने वाले ब्राह्मण को होता है।

पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके।
यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः।। ३९।।
तृषार्तं सति पानीये विप्रलम्भेन योजयन्।
यत् पापं लभते तत् स्याद् यस्यार्योऽनुमते गतः।। ४०।।
भक्त्या विवदमानेषु मार्गमाश्रित्य पश्यतः।
तेन पापेन युज्येत यस्यार्योऽनुमते गतः।। ४१।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को वन में जाना पड़ा उसे वही पाप लगे, जो पानी को दूषित करने वाले और दूसरों को जहर देने वाले को लगता है। उसे वही पाप

लगे जो पानी होने पर भी प्यासे को उससे वंचित करने वाले को लगता है, उसे वही पाप लगे जो आपस में झगड़ते हुए लोगों के झगड़े को पक्षपात के साथ मार्ग में खड़ा होकर देखने वाले को लगता है।

एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह।
विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः।। ४२।।
तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम्।
भरतं शोकसंतप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत्।। ४३।।
मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे।। ४४।।

इस प्रकार पति और पुत्र से बिछुड़ी हुई कौसल्या को आश्वासन देते हुए वे राजकुमार भरत दुःख से आर्त होकर गिर पड़े। तब कष्टपूर्ण शपथों के द्वारा अपराधी को कोसते हुए उन शोक से संतप्त भरत से कौसल्या ने कहा कि हे बेटा! तुम अनेक शपथ खा कर मेरे प्राणों को पीड़ित कर रहे हो। इससे मेरा दुःख और बढ़ रहा है।

दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः।
वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि।। ४५।।
इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम्।
परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता।। ४६।।

बेटा! यह सौभाग्य की बात है कि अच्छे लक्षणों से युक्त तुम्हारा हृदय धर्म से विचलित नहीं हुआ है। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो। तुम सत्पुरुषों के लोकों को प्राप्त करोगे। ऐसा कह कर उन मातृवत्सल, महाबाहु भरत को गोद में खींच कर और गले लगाकर वह अत्यन्त दुःखी कौसल्या फूट फूट कर रोने लगी।

तिहत्तरवाँ सर्ग

राजा दशरथ का अन्त्येष्टि संस्कार।

तमेवं शोकसंतप्तं भरतं कैकयीसुतम्।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वसिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः।। १।।
अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः।
प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तमम्।। २।।

तब अच्छी वाणी बोलने वाले, बोलने वालों में श्रेष्ठ ऋषि वसिष्ठ इस प्रकार शोक में सन्तप्त उन कैकेयी के पुत्र भरत से बोले कि हे महायशस्वी राजकुमार! तुम्हारा कल्याण हो। अब शोक मत करो और इस समय जो उचित है राजा के उस उत्तम अन्त्येष्टि संस्कार को करो।

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः।
प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित्।। ३।।
उद्धृत्य तैलसंसेकात्! स तु भूमौ निवेशितम्।।
आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम्।। ४।।

वसिष्ठ जी के वचन सुन कर भरत जी ने पृथ्वी पर लेट कर उन्हें प्रणाम किया और उस धर्म को जानने वाले ने पिता के अन्त्येष्टि कार्यों को कराने का प्रबन्ध करवाया। उन्होंने राजा के शव को तेल के कड़ाह से निकाल कर भूमि पर लिटाया। उस समय उनका मुख कुछ पीला हो गया था और वे सोये हुए से लग रहे थे।

संवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते।
ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः।। ५।।
किं ते व्यवसितं राजन् प्रोषिते मय्यनागते।
विवास्य रामं धर्मज्ञं लक्ष्मणं च महाबलम्।। ६।।

फिर नाना रत्नों से भूषित सुन्दर बिस्तरे पर उन्हें लिटाया। उस समय उनके पुत्र भरत बहुत दुःखी होकर विलाप करने लगे। वे कहने लगे कि हे राजन् यह आपने क्या किया? मेरे आने से पहले ही धर्मज्ञ राम और महाबली लक्ष्मण को वन में भेज कर आप स्वयं भी स्वर्गवासी हो गये।

क्व यास्यसि महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम्।
हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा।। ७।।
योगक्षेमं तु तेऽव्यग्रं कोऽस्मिन् कल्पयिता पुरे।
त्वयि प्रयाते स्वस्तात रामे च वनमाश्रिते।। ८।।

हे महाराज! अनायास ही महान कर्म करने वाले पुरुषसिंह राम से रहित इस दुःखी सेवक को छोड़ कर आप कहाँ जायेंगे? आपके परलोक जाने पर श्रीराम के वन में जाने पर इस नगर के लोगों के योगक्षेम की निश्चिन्तता के साथ व्यवस्था कौन करेगा?

विधवा पृथिवी राजंस्त्वया हीना न राजते।
हीनचन्द्रेव रजनी नगरी प्रतिभाति माम्।। ९।।

एवं विलपमानं तं भरतं दीनमानसम्।
अब्रवीद् वचनं भूयो वसिष्ठस्तु महामुनिः।। १०।।

हे राजन्! आपके बिना विधवा स्त्री के समान यह पृथ्वी अच्छी नहीं लग रही है। मुझे यह नगरी चन्द्रमा से रहित रात्रि के समान प्रतीत हो रही है। इस दीनता के साथ विलाप करते हुए भरत से महामुनि वसिष्ठ जी फिर यह बोले।

प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशाम्पतेः।
तान्यव्यग्रं महाबाहो क्रियतामविचारितम्।। ११।।
तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठस्याभिपूज्य तत्।
ऋत्विक्पुरोहिताचार्यांस्त्वरयामास सर्वशः।। १२।।

हे महाबाहु! इन महाराज के जो अन्त्येष्टि कर्म हैं, उन्हें बिना विचार किये शान्ति के साथ करो। तब भरत जी ने अच्छा ऐसा कहकर वसिष्ठ जी की बात को शिरोधार्य किया और ऋत्विजों, पुरोहितों और आचार्यों को शीघ्रता के लिये कहा।

ये त्वग्नयो नरेन्द्रस्य अग्न्यगाराद् बहिष्कृताः।
ऋत्विग्भिर्याजकैश्चैव ते हूयन्ते यथाविधि।। १३।।
शिबिकायामथारोप्य राजानं गतचेतनम्।
बाष्पकण्ठा विमनसस्तमूहुः परिचारकाः।। १४।।

राजा की यज्ञशाला से जो अग्नि निकाली गई, उससे ऋत्विजों और याजकों द्वारा यथा विधि हवन किया गया। फिर उन चेतना रहित राजा को शिबिका (पालकी) में स्थापित कर आँसुओं से भरे गले वाले उदास परिचारक लोग उन्हें श्मशान भूमि की तरफ ले जाने लगे।

हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च।
प्रकिरन्तो जना मार्गे नृपतेरग्रतो ययुः।। १५।।
चन्दनागुरुनिर्यासान् सरलं पद्मकं तथा।
देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे।। १६।।
गन्धानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम्।
तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः।। १७।।

मार्ग में लोग राजा के आगे सुवर्ण तथा बहुमूल्य पदार्थ और अनेक प्रकार के वस्त्र गिराते हुए जा रहे थे। वहाँ जा कर ऋत्विजों ने मृत राजा को चिता पर रखा। चिता पर लोगों ने चन्दन, अगर गुग्गुल, सरल और पद्मक और देवदारु की लकड़ियों को लाकर रखा और दूसरे लोगों ने दूसरे-दूसरे सुगन्धित पदार्थ लाकर रखे।

तदा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तदृत्विजः।
जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः।। १८।।
शिबिकाभिश्च यानैश्च यथार्हं तस्य योषितः।
नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तथा।। १९।।
प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम्।
स्त्रियश्च शोकसंतप्ताः कौसल्याप्रमुखास्तदा।। २०।।

उसके पश्चात अग्नि में आहुति देकर ऋत्विजों ने वेदमंत्रों का जाप किया और सामगान करने वाले विद्वान शास्त्रों के अनुसार सामवेद का गान करने लगे। फिर राजा की रानियाँ शिविकाओं और यथायोग्य सवारियों पर आरूढ़ होकर बूढ़े लोगों से घिरी हुईं नगर से निकल कर आयीं। कौसल्या आदि अन्तःपुर की नारियों ने तथा ऋत्विजों ने अग्नि में स्थापित राजा के शव के सम्मुख अपने यज्ञोपवीतों को दाहिने कन्धे, पर कर लिया।

क्रौञ्चीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे।
आर्तानां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्रशः।। २१।।
ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः।
यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्नृपाङ्गनाः।। २२।।

उस समय कुररी के समान अनेक प्रकार के करुणक्रन्दन करती हुई दुःखी स्त्रियों का चीत्कार सुनाई दे रहा था। पुनः वे रोती हुई विवश राजनारियाँ बार बार विलाप करके सवारियों से सरयू के किनारे उतरीं।

कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं
नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च।
पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा
भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम्।। २३।।

उन स्त्रियों ने, मन्त्रियों और पुरोहितों ने भरत के साथ स्नान किया और आँसू भरे नेत्रों के साथ नगर में आकर दस दिन तक भूमि पर सोते हुए बड़े दुःख के साथ वह समय बिताया।

चौहत्तरवाँ सर्ग

तेरहवें दिन विलाप करते हुए भरत शत्रुघ्न द्वारा अस्थिचयन क्रिया और वसिष्ठ और सुमन्त्र द्वारा उन्हें समझाया जाना।

ततः प्रभातसमये दिवसे च त्रयोदशे।
विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्च्छितः।। १।।
शब्दापिहितकण्ठश्च शोधनार्थमुपागतः।
चितामूले पितुर्वाक्यमिदमाह सुदुःखितः।। २।।
तात यस्मिन् निसृष्टोऽहं त्वया भ्रातरि राघवे।
तस्मिन् वनं प्रव्रजिते शून्ये त्यक्तोऽस्म्यहं त्वया।। ३।।

इसके बाद तेरहवें दिन प्रातः के समय महाबाहु शोक से बेसुध होकर विलाप करने लगे। उनका गला भर आया था। वे अस्थिचयन के लिये श्मशान भूमि में आये थे। वे पिता के चिता स्थान पर बड़े दुःख के साथ यह कहने लगे कि हे पिता! आपने जिन भाई राम के हाथ में मुझे सौंपा था उनके वन में जाने पर आपने मुझे सूने में ही छोड़ दिया।

यस्या गतिरनाथायाः पुत्रः प्रव्राजितो वनम्।
तामम्बां तात कौसल्यां त्यक्त्वा त्वं क्व गतो नृप।। ४।।
दृष्ट्वा भस्मारुणं तच्च दग्धास्थि स्थानमण्डलम्।
पितुः शरीरनिर्वाणं निष्टनन् विषसाद ह।। ५।।

हे राजा! जिस अनाथा का एकमात्र सहारा पुत्र वन में भेज दिया गया, उस माता कौसल्या को छोड़ कर आप कहाँ गये? पिता के शरीर के उस निर्वाहस्थान को, जो जलती हुई हड्डियों से और राख से भरा हुआ था, तथा कुछ लाल रंग का था, देख कर वे विलाप करते हुए शोक में डूब गये।

शत्रुघ्नश्चापि भरतं दृष्ट्वा शोकपरिप्लुतम्।
विसंज्ञो न्यपतद् भूमौ भूमिपालमनुस्मरन्।। ६।।
उन्मत्त इव निश्चित्तो विललाप सुदुःखितः।
स्मृत्वा पितुर्गुणाङ्गानि तानि तानि तदा तदा।। ७।।

भरत जी को शोकमग्न देखकर शत्रुघ्न भी राजा को याद करते हुए मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। वे पिता के तब-तब अनुभव में आए उन-उन गुणों को याद कर बड़े दुःखी होकर पागल के समान चेतना रहित से होकर विलाप करने लगे।

मन्थराप्रभवस्तीव्र कैकेयीग्राहसंकुलः।
वरदानमयोऽक्षोभ्योऽमज्जयच्छोकसागरः ।। ८।।

सुकुमारं च बालं च सततं लालितं त्वया।
क्व तात भरतं हित्वा विलपन्तं गतो भवान्।। ९।।

वे कहने लगे कि हमें इस भयानक शोकसागर ने जो मन्थरा के द्वारा उत्पन्न किया हुआ है, जिसमें कैकेयी रूप ग्राह भरे हुए हैं, जो वरदान युक्त है, जिसे मिटाया नहीं जा सकता, पूरी तरह से अपने में डुबा दिया है। हे तात! जो अभी सुकुमार और बालक हैं, जिनका आपने प्यार से सदा पालन किया था उस रोते हुए भरत को छोड़ कर आप कहाँ चले गये।

ननु भोज्येषु पानेषु वस्त्रेष्वाभरणेषु च।
प्रवारयति सर्वान् नस्तन्नः कोऽद्य करिष्यति।। १०।।
पितरि स्वर्गमापन्ने रामे चारण्यमाश्रिते।
किं मे जीवितसामर्थ्यं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।। ११।।

आप हम सबको खाद्य पदार्थों, पेय पदार्थों और आभूषणों को ग्रहण करने के लिये आग्रह किया करते थे, पर अब हमें उनके लिये कौन ऐसा करेगा? पिता के स्वर्ग को चले जाने और श्रीराम के वन में आश्रय लेने पर अब मुझ में जीने की क्या सामर्थ्य है? इसलिये मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।

हीनो भ्रात्रा च पित्रा च शून्यामिक्ष्वाकुपालिताम्।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि प्रवेक्ष्यामि तपोवनम्।। १२।।
तयोर्विलपितं श्रुत्वा व्यसनं चाप्यवेक्ष्य तत्।
भृशमार्ततरा भूयः सर्व एवानुगामिनः।। १३।।

मैं इस अयोध्या में जो इक्ष्वाकुवंशी राजाओं द्वारा पालित है, पर अब भाई और पिता जी से रहित है, प्रवेश नहीं करूँगा। इसकी अपेक्षा मैं वन में चला जाऊँगा। इस प्रकार उन दोनों के विलाप को सुन कर और संकट को देख कर उनके साथ रहने वाले सारे व्यक्ति पुनः अत्यन्त शोक से आर्त हो गए।

ततो विषण्णौ श्रान्तौ च शत्रुघ्नभरतावुभौ।
धरायां स्म व्यचेष्टेतां भग्नशृङ्गाविवर्षभौ।। १४।।
ततः प्रकृतिमान् वैद्यः पितुरेषां पुरोहितः।
वसिष्ठो भरतं वाक्यमुत्थाप्य तमुवाच ह।। १५।।

उस समय वे भरत और शत्रुघ्न दोनों उदास और थके हुए भूमि पर सींग के टूट जाने पर बैल के समान लोट

रहे थे। तब प्रकृति से स्वस्थ, विद्वान और उनके पिता के पुरोहित वसिष्ठ जी ने भरत को उठा कर उनसे कहा।

त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो।
सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे।। १६।।
त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः।
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि।। १७।।

हे प्रभो! आपके पिता की अन्त्येष्टि हुए यह तेरहवाँ दिन है, अब तुम इस अवशिष्ट अस्थिसंचय के कार्य में क्यों विलम्ब कर रहे हो? प्राणियों में तीन द्वन्द्व जैसे जन्म मरण, सुख-दुःख, सर्दी, गर्मी सभी को सामान्य रूप से भोगने पड़ते हैं। उन अपरिहार्य द्वन्द्वों के लिये तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये।

सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च।
श्रावयामास तत्त्वज्ञः सर्वभूतभवाभवौ।। १८।।
अश्रूणि परिमृद्नन्तौ रक्ताक्षौ दीनभाषिणौ।
अमात्यास्त्वरयन्ति स्म तनयौ चापराः क्रियाः।। १९।।

सुमन्त्र ने भी शत्रुघ्न को उठा कर उनके चित्त को शान्त किया। उन तत्त्वज्ञ ने उन्हें प्राणियों की जन्म और मृत्यु की अनिवार्यता के विषय में समझाया। दीनतापूर्वक बोलने वाले उन दोनों राजपुत्रों ने अपनी लाल आँखों से बहते हुए आँसुओं को पूछते हुए, मंत्रियों के द्वारा शीघ्रता के लिये प्रेरित होते हुए और दूसरी क्रियाएँ पूरी कीं।

पिचहत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्न का कुब्जा के प्रति रोष, उसे घसीटना और भरत जी के कहने से उसे मूर्च्छित अवस्था में छोड़ना।

अथ यात्रां समीहन्तं शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः।
भरतं शोकसंतप्तमिदं वचनमब्रवीत्।। १।।
गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः।
स रामः सत्त्वसम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम्।। २।।

इसके पश्चात जब भरत जी श्रीराम के पास वनयात्रा के विषय में विचार कर रहे थे, तब लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न ने उन शोक संतप्त भरत से यह कहा कि जो राम दुःख के समय अपनों की तो बात क्या है, दूसरे सारे प्राणियों को भी सहारा दिया करते थे, वे सत्वगुण सम्पन्न राम एक स्त्री के कारण वन में भेज दिये गये।

बलवान् वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम्।। ३।।
पूर्वमेव तु निग्राह्यः समवेक्ष्य नयानयौ।
उत्पथं यः समारूढो नार्या राजा वशं गतः।। ४।।
इति सम्भाषमाणे तु शत्रुघ्ने लक्ष्मणानुजे।
प्राग्द्वारेऽभूत् तदा कुब्जा सर्वाभरणभूषिता।। ५।।

वे जो बलवान और पराक्रमी लक्ष्मण थे, उन्होंने भी पिता को बन्दी बनाकर राम को संकट से क्यों नहीं छुड़ा लिया। जो राजा नारी के वश में होकर बुरे मार्ग पर चलने लगे थे, उन्हें न्याय और अन्याय का विचार कर पहले ही कैद कर लेना चाहिये था। इस प्रकार लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न के कहते हुए, कुब्जा सारे आभूषणों से सुसज्जित होकर भवन के पूर्व द्वार पर उपस्थित हो गई।

लिप्ता चन्दनसारेण राजवस्त्राणि बिभ्रती।
विविधं विविधैस्तैस्तैर्भूषणैश्च विभूषिता।। ६।।
मेखलादामभिश्चित्रैरन्यैश्च वरभूषणैः।
बभासे बहुभिर्बद्धा रज्जुभिरिव वानरी।। ७।।

उसने शरीर पर सब तरफ चन्दन का लेप लगाया हुआ था, राजकीय वस्त्र धारण किये हुए थे और अनेक प्रकार के आभूषणों से अपने आपको अनेक प्रकार से सजाया हुआ था। करधनी से, मालाओं से और दूसरे सुन्दर आभूषणों से सजी हुई वह बहुत सी रस्सियों से बँधी हुई बन्दरिया के समान लग रही थी।

तां समीक्ष्य तदा द्वाःस्थो भृशं पापस्य कारिणीम्।
गृहीत्वाकरुणं कुब्जां शत्रुघ्नाय न्यवेदयत्।। ८।।
यस्याः कृते वने रामो न्यस्तदेहश्च वः पिता।
सेयं पापा नृशंसा च तस्याः कुरु यथामति।। ९।।

उसे देख कर और यह सोच कर कि यही सारे पाप की करवाने वाली है, द्वारपाल ने उसे निर्दयता से पकड़ लिया और उस कुब्जा को शत्रुघ्न के पास ला कर बोला कि जिसके कारण से राम वन में गये और आपके पिता को शरीर छोड़ना पड़ा, वही यह

दुष्टा और निर्दया है। इसके साथ आप जैसा उचित समझें, व्यवहार करें।

शत्रुघ्नश्च तदाज्ञाय वचनं भृशदु:खितः।
अन्तःपुरचरान् सर्वानित्युवाच धृतव्रतः॥ १०॥
तीव्रमुत्पादितं दु:खं भ्रातॄणां मे तथा पितुः।
यथा सेयं नृशंसस्य कर्मणः फलमश्नुताम्॥ ११॥

शत्रुघ्न द्वारपाल के वचनों को समझ कर और भी दु:खी हो गये, उन्होंने अपने कर्त्तव्य का निश्चय किया और सारे अन्तःपुर के लोगों को सुना कर यह बोले कि इसने मेरे भाइयों और पिता के लिये भयानक दु:ख दिया है अब यह अपने उस निर्दय कर्म का फल प्राप्त करे।

एवमुक्त्वा च तेनाशु सखीजनसमावृता।
गृहीता बलवत् कुब्जा सा तद् गृहमनादयत्॥ १२॥
ततः सुभृशसंतप्तस्तस्याः सर्वः सखीजनः।
क्रुद्धमाज्ञाय शत्रुघ्नं व्यपलायत सर्वशः॥ १३॥

ऐसा कह कर उसने जल्दी से उस सहेलियों से घिरी हुई कुब्जा को जबर्दस्ती पकड़ लिया। तब कुब्जा ने चिल्ला कर सारे महल को गुंजा दिया। तब वे सारी सखियाँ शत्रुघ्न को क्रुद्ध जान कर अत्यन्त दु:खी हो कर सब तरफ भाग गयीं।

स च रोषेण संवीतः शत्रुघ्नः शत्रुशासनः।
विचकर्ष तदा कुब्जां क्रोशन्तीं पृथिवीतले॥ १४॥
तस्यां ह्याकृष्यमाणायां मन्थरायां ततस्ततः।
चित्रं बहुविधं भाण्डं पृथिव्यां तद्व्यशीर्यत॥ १५॥

वह शत्रुओं पर शासन करने वाले शत्रुघ्न तब क्रोध में भर कर उस चिल्लाती हुई कुब्जा को पृथ्वी पर घसीटने लगे। घसीटी जाती हुई मन्थरा के अनेक प्रकार के सुन्दर और बहुमूल्य गहने टूट टूट कर पृथ्वी पर बिखरने लगे।

स बली बलवत् क्रोधाद् गृहीत्वा पुरुषर्षभः।
कैकेयीमभिनिर्भर्त्स्य बभाषे परुषं वचः॥ १६॥
तैर्वाक्यैः परुषैर्दु:खैः कैकेयी भृशदु:खिता।
शत्रुघ्नभयसंत्रस्ता पुत्रं शरणमागता॥ १७॥

उन पुरुष श्रेष्ठ बलवान शत्रुघ्न ने क्रोध से कुब्जा को बलपूर्वक पकड़ कर घसीटते हुए कैकेयी को भी जो मन्थरा को छुड़ाने आयी थी, डाँटकर कठोर वचन कहे। उन दु:खदायी, कठोर वाक्यों से अत्यन्त दु:खी और शत्रुघ्न से अत्यन्त डरी हुई वह कैकेयी अपने पुत्र भरत की शरण में आयी।

तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।
अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति॥ १८॥
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्॥ १९॥

तब क्रोध में भरे हुए शत्रुघ्न को देख कर भरत उनसे बोले कि स्त्रियाँ सब लोगों के लिये अवध्य होती हैं। इसलिये इसे क्षमा करो। यदि मुझ मातृघातक से श्रीराम घृणा न करें तो मैं भी इस दुष्ट आचरणवाली कैकेयी को मार डालता।

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥ २०॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः।
न्यवर्तत ततो दोषात् तां मुमोच च मूर्च्छिताम्॥ २१॥

इस कुब्जा को भी मारा हुआ यदि श्रीराम जान लेंगे तो वे धर्मात्मा निश्चित रूप से तुमसे और मुझ से बोलना छोड़ देंगे। भरत की बात सुन कर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न उस मन्थरा के वधरूपी रोष से हट गये और उन्होंने कुब्जा को मूर्च्छित अवस्था में ही छोड़ दिया।

शत्रुघ्नविक्षेपविमूढसंज्ञां
समीक्ष्य कुब्जां भरतस्य माता।
शनैः समाश्वासयदार्तरूपां
क्रौञ्चीं विलग्नामिव वीक्षमाणाम्॥ २२॥

शत्रुघ्न के पटकने और घसीटने से मूर्च्छित हुई उस कुब्जा को देख कर भरत की माता कैकेयी धीरे-धीरे उसे धीरज बँधाने लगी। वह उस समय परेशान और घबरायी हुई क्रौंची की तरह उसकी तरफ देख रही थी।

छियत्तरवाँ सर्ग

प्रातः काल के मंगलवाद्य को सुनकर भरत जी का दुःखी होना और उसे बन्द कराकर विलाप करना। वसिष्ठ जी का सभा में आकर मंत्रियों को बुलवाना।

अथ प्रभात समये, दिवसेऽथ चतुर्दशे।
तुष्टुवुः सविशेषज्ञाः स्तवैर्मङ्गलसंस्तवैः।। १।।
सुवर्णकोणाभिहतः प्राणदद्यामदुन्दुभिः।
दध्मुः शङ्खांश्च शतशो वाद्यांश्चोच्चावचस्वरान्।। २।।

चौदहवें दिन प्रातः के समय स्तुतिकला के विशेषज्ञों ने मंगलमय स्तुतियों के द्वारा भरत का स्तवन प्रारम्भ किया। प्रहर की समाप्ति को बताने वाली दुन्दुभि स्वर्ण के डंडे से ताड़ित होकर बजने लगी, शंख बजाये जाने लगे और अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्र तरह-तरह की ध्वनि करने लगे।

स तूर्यघोषः सुमहान् दिवमापूरयन्निव।
भरतं शोकसंतप्तं भूयः शोकैररन्धयत्।। ३।।
ततः प्रबुद्धो भरतस्तं घोषं संनिवर्त्य च।
नाहं राजेति चोक्त्वा तं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।। ४।।

आकाश को भरता हुआ वह महान वाद्यों का शब्द शोक संतप्त भरत को पुनः दुःख की अग्नि से राँधने लगा। तब जाग कर और मैं राजा नहीं हूँ, ऐसा कह कर उन्होंने उन वाद्यों को बन्द कराया और शत्रुघ्न से बोले।

पश्य शत्रुघ्न कैकेय्या लोकस्यापकृतं महत्।
विसृज्य मयि दुःखानि राजा दशरथो गतः।। ५।।
तस्यैषा धर्मराजस्य धर्ममूला महात्मनः।
परिभ्रमति राजश्रीर्नौरिवाकर्णिका जले।। ६।।

देखो शत्रुघ्न! कैकेयी ने लोगों का महान अपकार किया है कि राजा दशरथ मुझ पर दुःखों को छोड़ कर चले गये। उन महात्मा धर्मराज की धर्ममूला राज्यलक्ष्मी अब जल में बिना नाविक के नाव की तरह डगमगा रही है।

यो हि नः सुमहान् नाथः सोऽपि प्रव्राजितो वने।
अनया धर्ममुत्सृज्य मात्रा मे राघवः स्वयम्।। ७।।
इत्येवं भरतं वीक्ष्य विलपन्तमचेतनम्।
कृपणा रुरुदुःसर्वाः सुस्वरं योषितस्तदा।। ८।।

जो हमारे बड़े स्वामी श्रीराम हैं, उन्हें भी मेरी इस माता ने धर्म को छोड़कर स्वयं वन में निर्वासित कर दिया। इस प्रकार चेतना रहित भरत को विलाप करते देख कर राजमहल की सारी स्त्रियाँ दुःखी होकर जोर जोर से रोने लगीं।

तथा तस्मिन् विलपति वसिष्ठो राजधर्मवित्।
सभामिक्ष्वाकुनाथस्य प्रविवेश महायशाः।। ९।।
स काञ्चनमयं पीठं स्वस्यास्तरणसंवृतम्।
अध्यास्त सर्ववेदज्ञो दूताननुशशास च।। १०।।

जब भरत जी इस प्रकार विलाप कर रहे थे, तब राजधर्म को जानने वाले महायशस्वी वसिष्ठ जी ने इक्ष्वाकुनाथ राजा दशरथ की सभा में प्रवेश किया। सारे वेदों को जानने वाले वसिष्ठ जी सुवर्णमय पीठ पर जो स्वस्तिकाकार आसन से ढका हुआ था बैठे और उन्होंने दूतों को आज्ञा दी।

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् योधानमात्यान् गणवल्लभान्।
क्षिप्रमानयताव्यग्राः कृत्यमात्ययिकं हि नः।। ११।।
सराजपुत्रं शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम्।
युधाजितं सुमन्त्रं च ये च तत्र हिता जनाः।। १२।।

उन्होंने कहा कि अत्यन्त आवश्यक कार्य है। तुम लोग जल्दी ही शान्त भाव से ब्राह्मणों को, क्षत्रियों को, योद्धाओं को मंत्रियों को और सेनापतियों को, यशस्वी तथा सम्मानित राजपुत्र भरत और शत्रुघ्न को मन्त्री युधाजित और सुमन्त्र को तथा दूसरे जो हितैषी पुरुष हैं, सभी को बुला लाओ।

ततो हलहलाशब्दो महान् समुदपद्यत।
रथैरश्वैर्गजैश्चापि जनानामुपगच्छताम्।। १३।।
ततो भरतमायान्तं शतक्रतुमिवामराः।
प्रत्यनन्दन् प्रकृतयो यथा दशरथं तथा।। १४।।

तब रथों, घोड़ों और हाथियों से आते हुए लोगों का महान कोलाहल शब्द प्रारम्भ हो गया। पुनः प्रजा के लोगों ने इन्द्र का देवताओं के समान आते हुए भरत का उसी प्रकार अभिनन्दन किया जैसे वे पहले दशरथ जी का किया करते थे।

सतत्तरवाँ सर्ग

वसिष्ठ जी का भरत को राज्य पर अभिषिक्त होने के लिये आदेश देना तथा भरत का उसे अनुचित बताकर अस्वीकार करना और श्रीराम को लौटा लाने के लिए वन में चलने के लिये सबको आदेश देना।

राज्ञस्तु प्रकृतीः सर्वाः स सम्प्रेक्ष्य च धर्मवित्।
इदं पुरोहितो वाक्यं भरतं मृदु चाब्रवीत्।। १।।
तात राजा दशरथः स्वर्गतो धर्ममाचरन्।
धनधान्यवतीं स्फीतां प्रदाय पृथिवीं तव।। २।।

तब राजा की सारी प्रजा को उपस्थित देख कर धर्म को जानने वाले पुरोहित वसिष्ठ जी ने भरत को यह मधुर वचन कहा कि तात! राजा दशरथ धर्म का पालन करते हुए स्वर्ग को चले गए, वे धनधान्य से भरपूर इस विस्तृत पृथिवी को तुम्हें दे गये हैं।

रामस्तथा सत्यवृत्तिः सतां धर्ममनुस्मरन्।
नाजहात् पितुरादेशं शशी ज्योत्स्नामिवोदितः।। ३।।
पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम्।
तद् भुङ्क्ष्व मुदितामात्यः क्षिप्रमेवाभिषेचय।। ४।।
उदीच्याश्च प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च केवलाः।
कोट्यापरान्ताः सामुद्रा रत्नान्युपहरन्तु ते।। ५।।

सत्य का आचरण करने वाले राम ने भी सत्पुरुषों के धर्म का पालन करते हुए पिता के आदेश का उसी प्रकार त्याग नहीं किया जैसे उदित हुआ चन्द्रमा अपनी चाँदनी को नहीं छोड़ता है। पिता और भाई के द्वारा दिये हुए इस निष्कंटक राज्य का तुम भोग करो और मन्त्रियों को प्रसन्न करते हुए अपना अभिषेक कराओ। जिससे उत्तर, दक्षिण, पश्चिम के और सारे सीमा प्रान्तों के तथा समुद्र में व्यापार करने वाले असंख्य लोग तुम्हें असंख्य रत्नों को प्रदान करें।

तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः।
जगाम मनसा रामं धर्मज्ञो धर्मकाङ्क्षया।। ६।।
सबाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा।
विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्।। ७।।

यह सुन कर शोक से भरे हुए धर्मज्ञ भरत जी ने धर्म की इच्छा से मन में श्रीराम को स्मरण किया। वे नवयुवक तब आँसुओं से भरी गद्‌गद् और कलहंस के समान मधुर ध्वनि में सभा में विलाप करते हुए पुरोहित जी को उपालम्भ देने लगे।

चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः।
धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत्।। ८।।
कथं दशरथाज्जातो भवेद् राज्यापहारकः।
राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि।। ९।।

वे कहने लगे जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, जिन धीमान ने सम्पूर्ण विद्याओं का अध्ययन किया है, जो धर्म में लगे हुए हैं, उन श्रीराम के राज्य को मेरे जैसा कौन पुरुष हर सकता है? दशरथ जी का कोई भी पुत्र राज्य का अपहरण करने वाला कैसे हो सकता है? मैं और राज्य दोनों ही राम के हैं, अतः आप धर्मयुक्त बात कहिये।

ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च धर्मात्मा दिलीपनहुषोपमः।
लब्धुमर्हति काकुत्स्थो राज्यं दशरथो यथा।। १०।।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्यां पापमहं यदि।
इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः।। ११।।

धर्मात्मा श्रीराम मुझसे बड़े और श्रेष्ठ हैं, वे दिलीप और नहुष के समान हैं। अतः वे ककुत्स्थवंशी ही राजा दशरथ के समान राज्य को प्राप्त कर सकते हैं। अनार्यों द्वारा किये जाने वाले, नरक में पहुँचाने वाले राज्य अपहरण रूपी पाप को यदि मैं करूँगा तो इक्ष्वाकुओं के कुल में मैं कुल कलंक समझा जाऊँगा।

यद्धि मात्रा कृतं पापं नाहं तदपि रोचये।
इहस्थो वनदुर्गस्थं नमस्यामि कृताञ्जलिः।। १२।।
राममेवानुगच्छामि स राजा द्विपदां वरः।
त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति।। १३।।

जो पाप मेरी माता ने किया है, मैं उसे बिल्कुल पसन्द नहीं करता इसलिये मैं यहाँ होते हुए भी दुर्गमवनों में विद्यमान उन श्रीराम को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ। मैं तो राम के ही साथ रहूँगा। मनुष्यों में श्रेष्ठ श्रीराम ही राजा हैं। वे तीनों लोकों के राजा होने योग्य हैं।

तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः।
हर्षान्मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः।। १४।।

यदि त्वार्यं न शक्ष्यामि विनिवर्तयितुं वनात्।
वने तत्रैव वत्स्यामि यथार्यो लक्ष्मणतस्तथा।। १५।।
सर्वोपायं तु वर्तिष्ये विनिवर्तयितुं बलात्।
समक्षमार्यमिश्राणां साधूनां गुणवर्तिनाम्।। १६।।
एवमुक्त्वा तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः।
समीपस्थमुवाचेदं सुमन्त्रं मन्त्रकोविदम्।। १७।।

भरत जी के उन धर्मयुक्त वाक्यों को सुन कर सारे सभासद हर्ष से आँसू बहाने लगे और श्रीराम को याद करने लगे। भरत जी फिर बोले यदि मैं आर्य राम को वन से लौटाने में सफल नहीं हुआ तो मैं लक्ष्मण के समान वहीं वन में निवास करूँगा। मैं आप सभी आर्य लोगों, सज्जनों और गुणवानों के समक्ष श्रीराम को लौटाने के लिये बल पूर्वक सारे उपाय करूँगा। ऐसा कह कर भ्रातृवत्सल, धर्मात्मा भरत मन्त्रणा में चतुर और समीप बैठे हुए सुमन्त्र से बोले कि–

तूर्णं त्वमुत्थाय सुमन्त्र गच्छ
बलस्य योगाय बलप्रधानान्।
आनेतुमिच्छामि हि तं वनस्थं
प्रसाद्य रामं जगतो हिताय।। १८।।

मैं संसार के हित के लिये वन में विद्यमान श्रीराम को मना कर लाना चाहता हूँ, इसलिये हे सुमन्त्र तुम जल्दी उठ कर सेनापतियों को सेना तैयार करने के लिये कहो।

स सूतपुत्रो भरतेन सम्य–
गाज्ञापितः सम्परिपूर्णकामः।
शशास सर्वान् प्रकृतिप्रधानान्
बलस्य मुख्यांश्च सुहृज्जनं च।। १९।।

भरत के द्वारा इस प्रकार आज्ञा दिये जाने पर उन सूतपुत्र सुमन्त्र ने अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को पूरा हुआ समझा और उन्होंने प्रजा के सभी प्रमुख लोगों को, सेनापतिों को और मित्रों को भरत जी का आदेश सुना दिया।

ततः समुत्थाय कुले कुले ते
राजन्यवैश्या वृषलाश्च विप्राः।
अयूयुजन्नुष्ट्ररथान् खरांश्च
नागान् हयांश्चैव कुलप्रसूतान्।। २०।।

तब प्रत्येक घर के क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण लोग अपने अच्छी जाति के ऊँट, रथ, गधों, हाथियों और घोड़ों को चलने के लिये उठ उठ कर जोतने लगे।

अठत्तरवाँ सर्ग

भरत जी की वनयात्रा और शृंगवेर पुर में पड़ाव।

ततः समुत्थितः कल्पमास्थाय स्यन्दनोत्तमम्।
प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाम्यया।। १।।
अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः।
अधिरुह्य हयैर्युक्तान् रथान् सूर्यरथोपमान्।। २।।

उसके पश्चात प्रातः काल उठ कर और उत्तम रथ पर आरूढ़ होकर भरत जी शीघ्र ही राम के दर्शनों की इच्छा से चल दिये। उनके आगे आगे सारे मन्त्री और पुरोहित सूर्य के रथ के समान और घोड़ों से जुते हुए उत्तम रथों पर आरूढ़ होकर चल रहे थे।

कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी।
रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता।। ३।।
प्रयाताश्चार्यसंघाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम्।
तस्यैव च कथाश्चित्राः कुर्वाणा हृष्टमानसाः।। ४।।

कैकेयी, सुमित्रा और यशस्विनी कौसल्या राम को लौटा लाने के उस प्रयत्न से संतुष्ट होकर दीप्तिमान रथ के द्वारा जा रहीं थीं। प्रजा में श्रेष्ठ लोगों के समूह लक्ष्मण सहित राम को देखने के लिये चल दिये। वे प्रसन्न हृदय से उन्हीं के विषय में विचित्र बातें करते हुए जा रहे थे।

मेघश्यामं महाबाहुं स्थिरसत्त्वं दृढव्रतम्।
कदा द्रक्ष्यामहे रामं जगतः शोकनाशनम्।। ५।।
दृष्ट एव हि नः शोकमपनेष्यति राघवः।
तमः सर्वस्य लोकस्य समुद्यन्निव भास्करः।। ६।।
इत्येवं कथयन्तस्ते सम्प्रहृष्टाः कथाः शुभाः।
परिष्वजानाश्चान्योन्यं ययुर्नागरिकास्तदा।। ७।।

वे कह रहे थे कि बादलों के समान श्यामवर्ण, महाबाहु, स्थितप्रज्ञ, व्रत का दृढ़ता से पालन करने वाले और संसार के शोक को नष्ट करने वाले श्रीराम को हम कब देखेंगे। वे राघव दर्शन देते ही हमारे शोकों को उसी प्रकार दूर कर देंगे, जैसे सूर्य उदय होते ही सारे संसार के अंधकार को हर लेता है। इस प्रकार प्रसन्नता के साथ सुखदायक बातें करते हुए और एक

दूसरे को खुशी में गले लगाते हुए वे अयोध्या के नागरिक यात्रा कर रहे थे।

ये च तत्रापरे सर्वे सम्मता ये च नैगमाः।
रामं प्रतिययुर्हृष्टाः सर्वाः प्रकृतयः शुभाः।। ८।।
सुवेषाः शुद्धवसनास्ताम्रमृष्टानुलेपिनः।
सर्वे ते विविधैर्यानैः शनैर्भरतमन्वयुः।। ९।।

वहाँ जो दूसरे प्रतिष्ठित वेदज्ञ, तथा व्यापारी और अन्य शुभ विचारों वाले प्रजा के लोग थे, वे सब प्रसन्न होकर राम से मिलने के लिये जा रहे थे। सबने शुद्ध वस्त्र सुन्दर तरीके से धारण किये हुए थे। ताम्बे के रंग का सुन्दर अंगराग उन्होंने लगाया हुआ था। वे सब अनेक प्रकार की सवारियों के द्वारा धीरे-धीरे भरत जी के पीछे चल रहे थे।

प्रहृष्टमुदिता सेना सान्वयात् कैकेयीसुतम्।
भ्रातुरानयने यातं भरतं भ्रातृवत्सलम्।। १०।।
ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुञ्जरैः।
समासेदुस्ततो गङ्गां शृङ्गवेरपुरं प्रति।। ११।।

सेना भी प्रसन्नता और आनन्द से युक्त होकर भाई को लाने के लिये जाते हुए कैकेयी के पुत्र, भ्रातृवत्सल भरत के पीछे-पीछे जा रही थी। वे सब रथ, घोड़े, पालकी और हाथियों के द्वारा दूर तक मार्ग पर यात्रा करते हुए शृंगवेरपुर के पास गंगा के किनारे जा पहुँचे।

यत्र रामसखा वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः।
निवसत्यप्रमादेन देशं तं परिपालयन्।। १२।।
उपेत्य तीरं गङ्गायाश्चक्रवाकैरलंकृतम्।
व्यवतिष्ठत सा सेनाभरतस्यानुयायिनी।। १३।।

उस शृंगवेरपुर में श्रीराम का सखा वीर गुह अपने बन्धु बान्धवों के साथ सावधानी पूर्वक उस देश की परिपालना करता हुआ रहता था। चक्रवाकों से सुशोभित गंगा के उस किनारे पर पहुँच कर भरत जी के पीछे चलने वाली सेना वहाँ ठहर गयी।

निरीक्ष्यानुत्थितां सेनां तां च गङ्गां शिवोदकाम्।
भरतः सचिवान् सर्वानब्रवीद् वाक्यकोविदः।। १४।।
निवेशयत मे सैन्यमभिप्रायेण सर्वतः।
विश्रान्ताः प्रतरिष्यामः श्व इमां सागरङ्गमाम्।। १५।।
तस्यैवं ब्रुवतोऽमात्यास्तथेत्युक्त्वा समाहिताः।
न्यवेशयंस्तांश्छन्देन स्वेन स्वेन पृथक् पृथक्।। १६।।

उस पवित्र जलवाली गंगा को देख कर और अपनी सेना को थका हुआ समझ कर वार्तालाप में कुशल भरत जी ने अपने सभी मन्त्रियों से कहा कि मेरी सेना को उसकी इच्छा के अनुसार यहाँ सब तरफ ठहरा दो। विश्राम कर लेने के पश्चात कल हम इस समुद्र की तरफ जाने वाली गंगा को पार करेंगे। उनके ऐसा कहने पर मन्त्रियों ने 'अच्छा' ऐसा कह कर वहाँ उन सैनिकों को सावधानी के साथ, उनकी इच्छा के अनुसार, अलग-अलग ठहरा दिया।

निवेश गङ्गामनु तां महानदीं
चमूं विधानैः परिबर्हशोभिनीम्।
उवास रामस्य तदा महात्मनो
विचिन्तमानो भरतो निवर्तनम्।। १७।।

उस महानदी गंगा के किनारे-किनारे खेमों तम्बुओं आदि से सुशोभित होने वाली सेना को व्यवस्था पूर्वक ठहरा कर महात्मा राम के लौटाने के विषय में चिन्ता करते हुए भरत जी ने वहाँ निवास किया।

उनासीवाँ सर्ग

निषादराज गुह का अपने साथियों को नदी की रक्षा तथा युद्ध के लिये तैयार रहने का आदेश देकर भरत से भेंट।

ततो निविष्टां ध्वजिनीं गङ्गामन्वाश्रितां नदीम्।
निषादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन् स परितोऽब्रवीत्।। १।।
महतीयमितः सेना सागराभा प्रदृश्यते।
नास्यान्तमवगच्छामि मनसापि विचिन्तयन्।। २।।

तब गंगा नदी के किनारे ठहरी हुई उस सेना को देखकर निषादों का राजा गुह अपने बांधवों से बोला कि यह विशाल सेना समुद्र के समान दिखाई दे रही है। मैं मन से सोचने पर भी इसका पार नहीं समझ रहा हूँ।

यदा न खलु दुर्बुद्धिर्भरतः स्वयमागतः।
स एष हि महाकायः कोविदारध्वजो रथे।। ३।।
बन्धयिष्यति वा पाशैरथ वास्मान् वधिष्यति।
अनु दाशरथिं रामं पित्रा राज्याद् विवासितम्।। ४।।

निश्चय ही वह दुर्बुद्धि भरत यहाँ स्वयं आया हुआ है। यह विशाल कोविदार के चिह्न से युक्त ध्वजा उसके रथ पर लहरा रही है। यह हमें पाशों से बँधवा देगा या मार देगा और फिर पिता के द्वारा निर्वासित दशरथ के पुत्र राम के पीछे जा कर उनके साथ भी यही बर्ताव करेगा।

सम्पन्नां श्रियमन्विच्छंस्तस्य राज्ञः सुदुर्लभाम्।
भरतः कैकेयीपुत्रो हन्तुं समधिगच्छति।। ५।।
भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम।
तस्यार्थकामाः संनद्धा गङ्गानूपेऽत्र तिष्ठत।। ६।।

कैकेयी का पुत्र भरत राजा दशरथ की उस सुदुर्लभ और सम्पन्न राज्य लक्ष्मी को पूरी तरह से लेना चाहता है और इसलिये वह श्रीराम का वध करना चाहता है। दशरथ के पुत्र श्रीराम मेरे स्वामी और सखा हैं। इसलिये उनकी भलाई की इच्छा से तुम सब तैयार होकर गंगा के किनारे विद्यमान रहो।

नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम्।
संनद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत्।। ७।।
यदि तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति।
इयं स्वस्तिमती सेना गङ्गामद्य तरिष्यति।। ८।।

पाँच सौ नावों में से एक-एक पर मल्लाहों के सौ जवान तैयार होकर बैठें ऐसा उसने आदेश दिया। उसनें कहा कि यदि भरत का विचार राम के प्रति सन्तोष जनक हुआ तभी उसकी सेना गंगा के पार कुशलता के साथ जा सकेगी।

इत्युक्त्वोपायनं गृह्य, ज्ञातिभिः परिवारितः।
आगम्य भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत्।। ९।।
निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम्।
निवेदयाम ते सर्वं स्वके दाशगृहे वस।। १०।।
आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यत्येनां विभावरीम्।
अर्चितो विविधैः कामैः श्वः ससैन्यो गमिष्यसि।। ११।।

ऐसा कह कर उपहार सामग्री ले कर, अपने बन्धुओं के साथ घिरा हुआ वह गुह भरत के पास आकर विनम्रता के साथ बोला कि हमारा यह देश आपके घर का बगीचा है, पर आपने हमें आपने की सूचना न देकर धोखे में रखा। हम अपना सब कुछ आपको अर्पित करते हैं। ये निषादों के घर आपके ही हैं, आप यहाँ निवास कीजिये। हमें आशा है कि हमारा भोजन स्वीकार कर आपकी सेना आज की रात्रि यहीं ठहरेगी। आप हमारे द्वारा विविध प्रकार की मनोवांछित सामग्री से सत्कृत होकर सेना के साथ कल यहाँ से जाँयें।

अस्सीवाँ सर्ग

गुह और भरत जी की बातचीत और भरत जी का शोक प्रकट करना।

एवमुक्तस्तु भरतो निषादाधिपतिं गुहम्।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम्।। १।।
ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे।
यो मे त्वमीदृशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि।। २।।

ऐसा कहे जाने पर महाप्राज्ञ भरत ने गुह से युक्ति और प्रयोजन से युक्त वाक्यों द्वारा उत्तर दिया। वे बोले कि तुम जो मेरी इतनी बड़ी सेना का सत्कार करना चाहते हो तो हे मेरे बड़े भाई के मित्र! तुम समझ लो कि तुम्हारे कहने से ही तुम्हारी कामना पूरी हो गयी।

इत्युक्त्वा स महातेजा गुहं वचनमुत्तमम्।
अब्रवीद् भरतः श्रीमान् पन्थानं दर्शयन् पुनः।। ३।।
कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं यथा।
गहनोऽयं भृशं देशो गङ्गानूपो दुरत्ययः।। ४।।

ऐसा कह कर उन महातेजस्वी श्रीमान भरत ने रास्ते को दिखाते हुए पुनः यह उत्तम बात कही कि भरद्वाज मुनि के आश्रम को हम किस मार्ग से जायेंगे? यह गंगा के किनारे का प्रदेश तो बड़ा गहन और कठिनता से पार किया जा सकने वाला है।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहो गहनगोचरः।। ५।।
दाशास्त्वनुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः।
अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल।। ६।।

उन धीमान राजपुत्र की उस बात को सुनकर उस गहन वन की भूमि में विचरण करने वाले गुह ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे महाबली राजकुमार! मल्लाह लोग जो यहाँ के इलाके को जानते हैं और सावधान रहते हैं, आपके साथ जायेंगे और मैं भी आपके साथ जाऊँगा।

कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे।। ७।।
तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः।
भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत्।। ८।।

पर यह आपकी बड़ी सेना मेरे मन में शंका सी उत्पन्न कर रही है। कहीं आप अनायास ही महान कर्म करने वाले श्रीराम के प्रति बुरी भावना से तो नहीं जा रहे हैं? उसके ऐसा कहने पर आकाश के समान निर्मल चरित्र वाले भरत मधुरवाणी में गुह से बोले।

मा भूत् स कालो यत् कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः।। ९।।
तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम्।
बुद्धिरन्या न मे कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते।। १०।।

वह दुखदायी समय कभी न आये। तुम्हें मुझ पर शंका नहीं करनी चाहिये। श्रीराम मेरे बड़े भाई और मेरे पिता के समान हैं। मैं उन ककुत्स्थवंशी, वन में रहने वाले श्रीराम को लौटाने के लिये जा रहा हूँ। हे गुह! मैं सत्य कह रहा हूँ। मेरे विषय में कोई दूसरा विचार मत करो।

स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम्।
पुनरेवाब्रवीद् वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः।। ११।।
धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि।। १२।।

भरत जी की यह बात सुन कर गुह का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। फिर वह प्रसन्न होकर भरत से कहने लगा कि आप धन्य हैं। मैं संसार में आपके जैसा किसी और को नहीं देखता, जो आप अनायास ही हाथ में आये राज्य को छोड़ना चाहते हैं।

शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति।
यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि।। १३।।
एवं सम्भाषमाणस्य गुहस्य भरतं तदा।
बभौ नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत।। १४।।

आप जो कष्ट में पड़े हुए राम को वापिस लाना चाहते हो, इससे आपकी कीर्ति सर्वदा संसार में फैली रहेगी। इस प्रकार गुह के भरत से बात करते हुए सूर्य की प्रभा नष्ट हो गयी और रात्रि आ गयी।

संनिवेश्य स तां सेनां गुहेन परितोषितः।
शत्रुघ्नेन समं श्रीमाञ्छयनं पुनरागमत्।। १५।।
रामचिन्तामयः शोको भरतस्य महात्मनः।
उपस्थितो ह्यनर्हस्य धर्मप्रेक्षस्य तादृशः।। १६।।

गुह के बर्ताव से सन्तुष्ट, श्रीमान भरत तब सेना की स्थापना करवा कर शत्रुघ्न के साथ बिस्तरे पर चले गये। उस समय धर्म पर ही दृष्टि रखने वाले, शोक के अयोग्य महात्मा भरल के हृदय में राम की चिन्ता से ऐसा शोक होने लगा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

अन्तर्दाहे दहनः संतापयति राघवम्।
वनदाहाग्निसंतप्तं गूढोऽग्निरिव पादपम्।। १७।।
प्रसृतः सर्वगात्रेभ्यः स्वेदं शोकाग्निसम्भवम्।
यथा सूर्यांशुसंतप्तो हिमवान् प्रसृतो हिमम्।। १८।।

जैसे दावाग्नि से संतप्त होते हुए वृक्ष को उसके खोखल में छिपी हुई आग और भी अधिक जलाती है, उसी प्रकार दशरथ जी की मृत्यु के अन्तर्दाह से दग्ध उस रघुनन्दन को राम की चिन्तारूपी आग और भी अधिक जलाने लगी। जैसे सूर्य की किरणों से संतप्त हो हिमालय की बर्फ पिघल कर बहने लगती है, वैसे ही शोक की अग्नि के कारण उनके सारे अंगों से पसीना बहने लगा।

विनिश्वसन् वै भृशदुर्मनास्ततः
प्रमूढसंज्ञः परमापदं गतः।
शमं न लेभे हृदयज्वरार्दितो
नरर्षभो यूथहतो यथर्षभः।। १९।।

मन में अत्यधिक दुःखी हो कर वे लम्बी साँसें लेने लगे, उनकी चेतना मोहित हो गयी थी, वे बड़ी विपत्ति को अनुभव कर रहे थे। हृदय में विद्यमान चिन्तारूपी ज्वर से पीड़ित उन नरश्रेष्ठ को अपने झुंड से बिछुड़े वृषभ के समान शान्ति नहीं मिल रही थी।

गुहेन सार्धं भरतः समागतो
महानुभावः सजनः समाहितः।
सुदुर्मनास्तं भरतं तदा पुन–
र्गुहः समाश्वासयदग्रजं प्रति।। २०।।

वे एकाग्रचित्त महानुभाव भरत जब परिवार सहित गुह से मिले, तब वे अपने बड़े भाई के लिये बड़े दुःखी थे। तब गुह ने उन्हें पुनः आश्वासन दिया।

इक्यासीवाँ सर्ग

निषादराज गुह के द्वारा लक्ष्मण के सद्भाव और विलाप का वर्णन।

आचचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः।
भरतायाप्रमेयाय गुहो गहनगोचरः।। १।।
तं जाग्रतं गुणैर्युक्तं वरचापेषुधारिणम्।
भ्रातृगुप्त्यर्थमत्यन्तमहं लक्ष्मणमब्रुवम्।। २।।

तब उस गहन वन में विचरण करने वाले गुह ने अचिन्त्य आत्मा भरत से महात्मा लक्ष्मण के सद्भाव का इस प्रकार वर्णन किया। उसने कहा कि उन श्रेष्ठ धनुष बाण धारण करने वाले और भाई की रक्षा के लिये जागते हुए गुणवान लक्ष्मण से मैंने अत्यन्त आग्रह से कहा कि।

इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता।
प्रत्याश्वसिहि शेष्वास्यां सुखं राघवनन्दन।। ३।।
उचितोऽयं जनः सर्वो दुःखानां त्वं सुखोचितः।
धर्मात्मंस्तस्य गुप्त्यर्थं जागरिष्यामहे वयम्।। ४।।

हे तात! यह सुखदायक शय्या आपके लिये तैयार की गयी है। हे रघुनन्दन! तुम इस पर सुखपूर्वक सोओ। तुमने अब तक सुख भोगा है, पर हमें दुःख सहने का अभ्यास है। इसलिये हे धर्मात्मा हम पर विश्वास करो। इन श्रीराम की रक्षा के लिये हम जागते रहेंगे।

नहि रामात् प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन।
मोत्सुको भूर्ब्रवीम्येतदथ सत्यं तवाग्रतः।। ५।।
नहि मेऽविदितं किंचिद् वनेऽस्मिंश्चरतः सदा।
चतुरङ्गं ह्यपि बलं प्रसहेम वयं युधि।। ६।।

मेरे लिये संसार में श्रीराम से अधिक प्रिय कोई नहीं है, यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ, इसलिये आप राम की रक्षा के लिये उत्सुक मत होइये। इस वन में क्योंकि मैं घूमता रहता हूँ, अतः यहाँ का प्रत्येक स्थान मेरा परिचित है। हम यहाँ युद्ध में चतुरंगिणी सेना का भी सामना कर सकते हैं।

एवमस्माभिरुक्तेन लक्ष्मणेन महात्मना।
अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता।। ७।।
कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितानि सुखानि वा।। ८।।

हमारे इस प्रकार कहने पर महात्मा लक्ष्मण ने धर्म पर ही दृष्टि रखते हुए अनुनय पूर्वक हमसे कहा कि दशरथपुत्र श्रीराम के सीता के साथ भूमि पर सोने पर मैं कैसे निद्रा, जीवनधारण करने या सुख प्राप्त करने के प्रयत्न कर सकता हूँ।

यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि।
तं पश्य गुह संविष्टं तृणेषु सह सीतया।। ९।।
महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः।
एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः।। १०।।
अस्मिन् प्रव्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति।
विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति।। ११।।

हे गुह! जिसे देवता और असुर भी युद्ध में रोक नहीं सकते, उन्हीं श्रीराम को सीता के साथ तिनकों पर सोया हुआ देखो। बड़े तप और अनेक प्रकार के प्रयत्नों से दशरथ जी को ये अपने समान गुणवाले पुत्र प्राप्त हुए हैं। इनके वन में चले जाने पर राजा देर तक जीवित नहीं रहेंगे और यह पृथ्वी निश्चय ही जल्दी विधवा हो जायेगी।

विनद्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः।
निर्घोषो विरतो नूनमद्य राजनिवेशने।। १२।।
कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम।
नाशंसे यदि ते सर्वे जीवेयुः शर्वरीमिमाम्।। १३।।
जीवेदपि च मे माता शत्रुघ्नस्यान्वेक्षया।
दुःखिता या हि कौसल्या वीरसूर्विनशिष्यति।। १४।।

निश्चय ही अब तक जोर-जोर से रोती हुई स्त्रियाँ श्रम के कारण चुप हो गयीं होंगी। राजमहल में होने वाला कोलाहल भी अब शान्त हो गया होगा। मैं नहीं कह सकता कि कौसल्या, राजा और मेरी माता इस रात्रि में जीवित रह पायेंगी या नहीं। मेरी माता शत्रुघ्न की आशा से जीवित भी रहे, पर वीर पुत्र को जन्म देने वाली कौसल्या दुःख के कारण अवश्य नष्ट हो जायेंगी।

अपि सत्यप्रतिज्ञेन सार्धं कुशलिना वयम्।
निवृत्ते समये ह्यस्मिन् सुखिताः प्रविशेमहि।। १५।।
परिदेवयमानस्य तस्यैवं हि महात्मनः।
तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत।। १६।।
प्रभाते विमले सूर्ये कारयित्वा जटा उभौ।
अस्मिन् भागीरथीतीरे सुखं संतारितौ मया।। १७।।

वनवास का समय समाप्त हो जाने पर इन सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम के साथ हम कुशलतापूर्वक सुख के साथ क्या

अयोध्या में प्रवेश कर सकेंगे? इस प्रकार उस महात्मा राजपुत्र के विलाप करते हुए, वह रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातः काल निर्मल सूर्य के उदय होने पर उन दोनों की जटाएँ बनवा कर मैंने उन्हें सुखपूर्वक गंगा के पार उतार दिया।

जटाधरौ तौ द्रुमचीरवाससौ
महाबलौ कुञ्जरयूथपोपमौ।
वरेषुधीचापधरौ परंतपौ
व्यपेक्षमाणौ सह सीतया गतौ।। १८।।

वल्कल पहने हुए और जटाएँ धारण किये हुए वे दोनों हाथियों के महाबलवान यूथपतियों के समान प्रतीत होते थे। वे दोनों परंतप श्रेष्ठ धनुषबाण धारण किये हुए, सावधानी से इधर उधर देखते हुए सीता के साथ चले गये।

बयासीवाँ सर्ग

भरत की मूर्च्छा से गुह, शत्रुघ्न और माताओं का दुःखी होना। होश में आने पर भरत का गुह से श्रीराम आदि के भोजन और शयन आदि के विषय में पूछना और गुह का उन्हें सब बातें बताना।

गुहस्य वचनं श्रुत्वा भरतो भृशमप्रियम्।
ध्यानं जगाम तत्रैव यत्र तच्छ्रुतमप्रियम्।। १।।
सुकुमारो महासत्त्वः सिंहस्कन्धो महाभुजः।
पुण्डरीकविशालाक्षस्तरुणः प्रियदर्शनः।। २।।
प्रत्याश्वस्य मुहूर्तं तु कालं परमदुर्मनाः।
ससाद सहसा तोत्रैर्हृदि विद्ध इव द्विपः।। ३।।

गुह की राम के विषय में कही गयी अप्रिय बातों को सुन कर भरत जी चिन्ता में मग्न हो गये। वे उन्हीं अप्रिय बातों के विषय में विचार करने लगे वे सुकुमार प्रकृति के महाबाहु और सिंह के समान कंधे वाले महातेजस्वी भरत जो कमल के समान विशाल नेत्र वाले थे, नवयुवक और प्रियदर्शन थे, दो घड़ी तक तो अत्यन्त दुःख के साथ धैर्य धारण किये रहे फिर अचानक अंकुश से हृदय में प्रहार किये गये हाथी के समान गिरकर मूर्च्छित हो गये।

भरतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा विवर्णवदनो गुहः।
बभूव व्यथितस्तत्र भूमिकम्पे यथा द्रुमः।। ४।।
तदवस्थं तु भरतं शत्रुघ्नोऽनन्तरस्थितः।
परिष्वज्य रुरोदोच्चैर्विसंज्ञः शोककर्शितः।। ५।।

भरत को मूर्च्छित देख कर गुह के मुख का रंग फीका पड़ गया। वह भूचाल के समय काँपते हुए वृक्ष के समान व्यथित होने लगा। भरत को इस अवस्था में देख कर, समीप बैठे हुए शत्रुघ्न उन्हें हृदय से लगा कर जोर-जोर से रोने लगे। शोक से पीड़ित होकर वे भी बेसुध से हो गये।

ततः सर्वाः समापेतुर्मातरो भरतस्य ताः।
उपवासकृशा दीना भर्तृव्यसनकर्शिताः।। ६।।
ताश्च तं पतितं भूमौ रुदत्यः पर्यवारयन्।
कौसल्या त्वनुसृत्यैनं दुर्मनाः परिषस्वजे।। ७।।

तब भरत जी की सारी माताएँ वहाँ आ गयीं। वे पति वियोग से पीड़ित और उपवास से कमजोर तथा दीन हो रहीं थीं। उन्होंने भूमि पर पड़े हुए भरत जी को रोते हुए चारों तरफ से घेर लिया। दुःख से कातर कौशल्या ने तो उनके समीप जाकर उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।

वत्सला स्वं यथा वत्समुपगुह्य तपस्विनी।
परिपप्रच्छ भरतं रुदती शोकलालसा।। ८।।
पुत्र व्याधिर्न ते कच्चिच्छरीरं प्रति बाधते।
अस्य राजकुलस्याद्य त्वदधीनं हि जीवितम्।। ९।।

जैसे बछड़े से प्यार करने वाली गाय उसे प्यार से चाटती है उसी प्रकार भरत को छाती से लगा कर शोक से व्याकुल वह तपस्विनी कौसल्या रोती हुई पूछने लगी कि हे पुत्र! तेरे शरीर में कोई बीमारी तो कष्ट नहीं पहुँचा रही है? इस परिवार का जीवन अब तेरे ही सहारे है।

त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते।
वृत्ते दशरथे राज्ञि नाथ एकस्त्वमद्य नः।। १०।।
कच्चिन्न लक्ष्मणे पुत्र श्रुतं ते किंचिदप्रियम्।
पुत्रे वा ह्येकपुत्रायाः सहभार्ये वनं गते।। ११।।

भाई के साथ राम के वन में जाने पर और राजा दशरथ के दिवंगत हो जाने पर हे पुत्र! अब तुम्हें ही देख कर जी रही हूँ। हमारा अब तू ही अकेला रक्षक है। क्या तुमने लक्ष्मण के विषय में या मुझ एक पुत्रवती

के पत्नी के साथ वन में गए पुत्र के विषय में तो कोई अप्रिय बात नहीं सुनी।

स मुहूर्तं समाश्वस्य रुदन्नेव महायशाः।
कौसल्यां परिसान्त्वयेदं गुहं वचनमब्रवीत्।। १२।।
भ्राता मे क्वावसद् रात्रौ क्व सीता क्व च लक्ष्मणः।
अस्वपच्छयने कस्मिन् किं भुक्त्वा गुह शंस मे।। १३।।

तब एक मुहूर्त में महायशस्वी भरत ने स्वस्थ होकर रोते हुए ही कौसल्या को सान्त्वना देकर गुह से कहा कि मेरे भाई, सीता और लक्ष्मण रात्रि में कहाँ रहे थे, क्या खा कर किस शय्या पर सोये थे? यह सब मुझे बताओ।

सोऽब्रवीद् भरतं हृष्टो निषादाधिपतिर्गुहः।
यद्विधं प्रतिपेदे च रामे प्रियहितेऽतिथौ।। १४।।
अन्नमुच्चावचं भक्ष्याः फलानि विविधानि च।
रामायाभ्यवहारार्थं बहुशोऽपहृतं मया।। १५।।

तब निषादों के राजा गुह ने प्रसन्न होकर भरत से बताया कि उसने अपने प्रिय हितकारी अतिथि के आने पर उसके साथ कैसा बर्ताव किया था? और कहा कि मैंने अनेक प्रकार के अन्न, भक्ष्य पदार्थ, बहुत तरह के फल श्रीराम के खाने के लिये प्रस्तुत किये थे।

तत् सर्वं प्रत्यनुज्ञासीद् रामः सत्यपराक्रमः।
न हि तत् प्रत्यगृह्णात् स क्षत्रधर्ममनुस्मरन्।। १६।।
नह्यस्माभिः प्रतिग्राह्यं सखे देयं तु सर्वदा।
इति तेन वयं सर्वे अनुनीता महात्मना।। १७।।

सत्य पराक्रमी राम ने उन्हें स्वीकार तो कर लिया, पर क्षत्रिय धर्म को स्मरण कर उन्हें खाया नहीं, आदरपूर्वक लौटा दिया। उन महात्मा ने अनुनय पूर्वक हमसे कहा कि हे सखे! हमें कभी किसी से लेना नहीं चाहिये, अपितु देना ही चाहिये।

लक्ष्मणेन यदानीतं पीतं वारि महात्मना।
औपवास्यं तदाकार्षीद् राघवः सह सीतया।। १८।।
ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत् तदा।
वाग्यतास्ते त्रयः संध्यां समुपासन्त संहिताः।। १९।।

लक्ष्मण जो पानी लाये थे, उन महात्मा ने केवल वह पानी ही पीया। उस समय श्रीराम ने सीता के साथ उपवास ही किया। फिर शेष बचे हुए जल को लक्ष्मण ने पिया। तीनों ने मौन और एकाग्र चित्त होकर संध्या की।

सौमित्रिस्तु ततः पश्चादकरोत् स्वास्तरं शुभम्।
स्वयमानीय बर्हींषि क्षिप्रं राघवकारणात्।। २०।।
तस्मिन् समाविशद् रामः स्वास्तरे सह सीतया।
प्रक्षाल्य च तयोः पादौ व्यपाक्रामत् स लक्ष्मणः।। २१।।
एतत् तदिङ्गुदीमूलमिदमेव च तत् तृणम्।
यस्मिन् रामश्च सीता च रात्रिं तां शयितावुभौ।। २२।।

तत्पश्चात् लक्ष्मण ने स्वयं कुशा लाकर शीघ्र ही श्रीराम के लिये सुन्दर बिस्तरा बनाया। उस सुन्दर बिस्तरे पर श्रीराम सीता के साथ विराजमान हुए। तब लक्ष्मण उन दोनों के पैर धोकर वहाँ से हट गये। यह इंगुदी के पेड़ की जड़ है, यही वह घास है, जिस पर श्रीराम और सीता उस रात्रि सोये थे।

नियम्य पृष्ठे तु तलाङ्गुलित्रवान्-
शरैः सुपूर्णाविषुधी परंतपः।
महद्धनुः सज्जमुपोह्य लक्ष्मणो
निशामतिष्ठत् परितोऽस्य केवलम्।। २३।।

परंतप लक्ष्मण कमर पर बाणों से भरे हुए दो तरकस बाँध कर, हाथों में दस्ताने पहन कर और विशाल धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर रात्रि में उनके चारों तरफ केवल घूमते ही रहे।

ततस्त्वहं चोत्तमबाणचापभृत्
स्थितोऽभवं तत्र स यत्र लक्ष्मणः।
अतन्द्रितैर्ज्ञातिभिरात्तकार्मुकै-
र्महेन्द्रकल्पं परिपालयंस्तदा।। २४।।

तब मैं भी उत्तम धनुष बाण लेकर लक्ष्मण के साथ खड़ा हो गया। मैं हाथ में धनुष लिये निद्रा रहित अपने जाति भाइयों के साथ इन्द्र के समान उन श्रीराम की रक्षा करता रहा।

तिरासीवाँ सर्ग

श्रीराम की कुश शय्या देख कर भरत का शोक पूर्ण उद्‌गार और स्वयं भी वल्कल और जटा धारण करके वन में रहने का विचार प्रकट करना।

तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः।
इङ्गुदीमूलमागम्य रामशय्यामवेक्षत।। १।।
अब्रवीज्जननीः सर्वा इह तस्य महात्मनः।
शर्वरी शयिता भूमाविदमस्य विमर्दितम्।। २।।
महाराजकुलीनेन महाभागेन धीमता।
जातोदशरथेनोर्व्यां न रामः स्वप्तुमर्हति।। ३।।
अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरणसंचये।
शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले।। ४।।

गुह की बातें ध्यान से सुन कर भरत जी ने मंत्रियों के साथ उस इंगुदी के वृक्ष के नीचे आ कर राम के बिस्तरे को देखा और वे सारी माताओं से बोले कि यहीं उन महात्मा की रात्रि व्यतीत हुई थी। यही उनके अंगों से कुचली हुई शय्या है। महाराजाओं के कुल में महाभाग, धीमान दशरथ के द्वारा उत्पन्न श्रीराम पृथ्वी पर सोने के योग्य नहीं हैं। जो पुरुष व्याघ्र विशेष मृगचर्म बिछाए हुए, सुन्दर चादरों से ढके हुए बिस्तरों पर सोते थे, वे अब भूमि पर कैसे सोते हैं?

अश्रद्धेयमिदं लोके न सत्यंप्रतिभाति मा।
मुह्यते खलु मे भावः स्वप्नोऽयमिति मे मतिः।। ५।।
न नूनं दैवतं किंचित् कालेन बलवत्तरम्।
यत्र दाशरथी रामो भूमावेवमशेत सः।। ६।।
यस्मिन् विदेहराजस्य सुता च प्रियदर्शना।
दयिता शयिता भूमौ स्नुषा दशरथस्य च।। ७।।

यह बात संसार में विश्वास के योग्य नहीं है। मुझे यह सत्य नहीं लगती। मेरे विचारों में मोह छा रहा है। मैं सोचता हूँ कि मैं कोई स्वप्न देख रहा हूँ। वास्तव में काल से अधिक बलवान कोई देवता नहीं है। जिसके कारण दशरथ के पुत्र राम इस प्रकार पृथिवी पर सोते हैं। उसी के कारण विदेहराज की सुन्दरी पुत्री और दशरथ की प्यारी पुत्रवधु को भी भूमि पर सोना पड़ा।

इयं शय्या मम भ्रातुरिदमावर्तितं शुभम्।
स्थण्डिले कठिने सर्वं गात्रैर्विमृदितं तृणम्।। ८।।
मन्ये साभरणा सुप्ता सीतास्मिञ्शयने शुभा।
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते सक्ताः कनकबिन्दवः।। ९।।
उत्तरीयमिहासक्तं सुव्यक्तं सीतया तदा।
तथा ह्येते प्रकाशन्ते सक्ताः कौशेयतन्तवः।। १०।।

यह मेरे भाई की पवित्र शय्या है। यहाँ उन्होंने करवटें बदलीं थीं। इस कठोर भूमि पर सारी घास उनके शरीर से कुचली हुई हैं। मैं समझता हूँ कि शुभ लक्षण वाली सीता इस बिस्तरे पर आभूषणों के साथ ही सोई थी, इसलिये इस पर जहाँ-तहाँ स्वर्ण के कण चिपके हुए दिखाई दे रहे हैं। यह अच्छी तरह से प्रकट हो रहा है कि यहाँ उनका उत्तरीय अटक गया था, क्योंकि यहाँ रेशम के तन्तु चिपके हुए चमक रहे हैं।

मन्ये भर्तुः सुखा शय्या येन बाला तपस्विनी।
सुकुमारी सती दुःखं न विजानाति मैथिली।। ११।।
हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत् सभार्यः कृते मम।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत्।। १२।।

मैं समझता हूँ कि पति की शय्या, चाहे वह कैसी ही हो सुखदायी होती ही है, इसलिये वह तपस्विनी सुकुमारी बाला, सती सीता दुःख का अनुभव नहीं कर रही है। हाय मैं मारा गया। मैं बड़ा निर्दय हूँ, जिसके कारण श्रीराम पत्नी के साथ, अनाथों के समान इस प्रकार की शय्या पर सोते हैं।

सार्वभौमकुले जातः सर्वलोकसुखावहः।
सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम्।। १३।।
कथमिन्दीवरश्यामो रक्ताक्षः प्रियदर्शनः।
सुखभागी न दुःखार्हः शयितो भुवि राघवः।। १४।।

चक्रवर्ती राजाओं के कुल में उत्पन्न, सारे लोगों को सुख देने वाले, सबको प्रिय लगने वाले, नील कमल के समान श्याम, लाल नेत्र वाले सुदर्शन, सुख का भोग करने वाले श्रीराम श्रेष्ठ राज्य को छोड़ कर कैसे भूमि पर सोते हैं? वे दुःख भोगने के योग्य नहीं हैं।

धन्यः खलु महाभागो लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
भ्रातरं विषमे काले यो राममनुवर्तते।। १५।।
सिद्धार्था खलु वैदेही पतिं यानुगता वनम्।
वयं संशयिताः सर्वे हीनास्तेन महात्मना।। १६।।

वे महाभाग शुभलक्षण लक्ष्मण धन्य हैं, जो इस कष्ट के समय भाई राम का अनुसरण कर रहे हैं। वह सीता

भी कृतकृत्य हैं, जो पति के साथ वन में गयी हैं। उन महात्मा से बिछुड़े हुए हम सब संशय में पड़े हुए हैं।

अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा।
फलमूलाशनोनित्यं जटाचीराणि धारयन्।। १७।।
तस्याहमुत्तरं कालं निवत्स्यामि सुखं वने।
तत् प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति।। १८।।
वसन्तं भ्रातुरर्थाय शत्रुघ्नो मानुवत्स्यति।
लक्ष्मणेन सहायोध्यामार्यो मे पालयिष्यति।। १९।।

आज से मैं भी भूमि पर या तिनकों पर ही सोऊँगा, मैं भी फल मूल ही खाऊँगा और चीरवस्त्र तथा जटाएँ धारण करके रहूँगा। वनवास के बचे हुए दिनों तक मैं सुख से वन में रहूँगा, जिससे उन आर्य की प्रतिज्ञा असत्य नहीं होगी। भाई के लिये वन में रहते हुए शत्रुघ्न मेरे साथ रहेंगे और मेरे बड़े भाई लक्ष्मण के साथ अयोध्या का पालन करेंगे।

प्रसाद्यमानः शिरसा मया स्वयं
बहुप्रकारं यदि न प्रपत्स्यते।
ततोऽनुवत्स्यामि चिराय राघवं
वनेचरं नार्हति मामुपेक्षितुम्।। २०।।

यदि मेरे द्वारा उनके चरणों पर सिर रख कर बहुत प्रकार से मनाये जाने पर भी वे नहीं मानेंगे तो मैं लम्बे समय तक उन्ही के साथ ही रहूँगा। वन में रहते हुए वे मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे।

चौरासीवाँ सर्ग

भरत का सेना सहित गंगा पर करके भरद्वाज जी के आश्रम पर जाना।

व्युष्य रात्रिं तु तत्रैव गङ्गाकूले स राघवः।
काल्यमुत्थाय शत्रुघ्नमिदं वचनमब्रवीत्।। १।।
शत्रुघ्नोत्तिष्ठ किं शेषे निषादाधिपतिं गुहम्।
शीघ्रमानय भद्रं ते तारयिष्यति वाहिनीम्।। २।।
जागर्मि नाहं स्वपिमि तथैवार्यं विचिन्तयन्।
इत्येवमब्रवीद् भ्राता शत्रुघ्नो विप्रचोदितः।। ३।।

उस रात्रि को वहीं गंगा के किनारे बिता कर वे रघुनन्दन प्रातः काल उठ कर शत्रुघ्न से यह बोले हे शत्रुघ्न उठो। क्यों सो रहे हो? निषादों के राजा गुह को बुला लो। वह ही सेना को गंगा के पार उतारेगा तुम्हारा कल्याण हो। इस प्रकार प्रेरित किये जाने पर शत्रुघ्न ने कहा मैं सो नहीं रहा हूँ। बड़े भाई के विषय में सोचता हुआ जाग रहा हूँ।

इति संवदतोरेवमन्योन्यं नरसिंहयोः।
आगम्य प्राञ्जलिः काले गुहो वचनमब्रवीत्।। ४।।
कच्चित् सुखं नदीतीरेऽवात्सीः काकुत्स्थ शर्वरीम्।
कच्चिच्च सहसैन्यस्य तव नित्यमनामयम्।। ५।।

उन दोनों नरसिंहों के परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करते हुए, उचित समय में गुह भी आ गया और हाथ जोड़ कर उनसे बोला हे काकुत्स्थ! यहाँ नदी के किनारे आपकी रात्रि सुख से व्यतीत हुई? क्या सेना के सहित आप सर्वथा नीरोग हैं?

गुहस्य तत् तु वचनं श्रुत्वा स्नेहादुदीरितम्।
रामस्यानुवशो वाक्यं भरतोऽपीदमब्रवीत्।। ६।।
सुखा नः शर्वरी धीमन् पूजिताश्चापि ते वयम्।
गङ्गां तु नौभिर्बह्वीभिर्दाशाः संतारयन्तु नः।। ७।।

स्नेह से युक्त कहे गये गुह के उन वचनों को सुन कर श्रीराम के वश में रहने वाले भरत ने भी यह कहा कि हे धीमान्! हमारी रात्रि सुख से व्यतीत हो गयी। आपने हमारा सत्कार भी कर दिया। आपके मल्लाह अब बहुत सी नावों के द्वारा हमें पार उतार दें।

ततो गुहः संत्वरितः श्रुत्वा भरतशासनम्।
प्रतिप्रविश्य नगरं तं ज्ञातिजनमब्रवीत्।। ८।।
उत्तिष्ठत प्रबुध्यध्वं भद्रमस्तु हि वः सदा।
नावः समुपकर्षध्वं तारयिष्यामि वाहिनीम्।। ९।।

तब भरत जी का आदेश सुन कर गुह तुरन्त अपने नगर में गया और अपने जाति भाइयों से बोला उठो, जागो। तुम्हारा कल्याण हो। नावों को ले आओ। मैं सेना को पार उतारूँगा।

ते तथोक्ताः समुत्थाय त्वरिता राजशासनात्।
पञ्च नावां शतान्येव समानिन्युः समन्ततः।। १०।।
अन्याः स्वस्तिकविज्ञेया महाघण्टाधरावराः।
शोभमानाः पताकिन्यो युक्तवाहाः सुसंहताः।। ११।।

वे इस प्रकार कहे जाने पर राजा के आदेश से शीघ्रता से उठे और सब तरफ से पाँच सौ नावों को एकत्र कर लाये। उनके अतिरिक्त कुछ स्वस्तिक नाम की नावें थीं जिनमें पताकाएँ और बड़ी-बड़ी श्रेष्ठ घंटियाँ लगीं हुई थीं। उनमें चतुर नाविक बैठे थे।

ततः स्वस्तिकविज्ञेयां पाण्डुकम्बलसंवृताम्।
सनन्दिघोषां कल्याणीं गुहो नावमुपाहरत्।। १२।।
तामारुरोह भरतः शत्रुघ्नश्च महाबलः।
कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या राजयोषितः।। १३।।
पुरोहितश्च तत् पूर्वं गुरवो ब्राह्मणाश्च ये।

उनमें एक स्वस्तिक नाम वाली, जिसमें सफेद कम्बल बिछा हुआ था, और जिसमें मांगलिक शब्द हो रहा था, ऐसी मंगलमयी नाव को स्वयं गुह लेकर आया। उस नाव पर पहले पुरोहित, गुरु और ब्राह्मण बैठे। उनके पश्चात् महाबली भरत और शत्रुघ्न, कौसल्या, सुमित्रा और दूसरी जो राजमहल की स्त्रियाँ थीं, बैठीं।

पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः।। १४।।
वहन्त्यो जनमारूढं तदा सम्पेतुराशुगाः।
नारीणामभिपूर्णास्तु काश्चित् काश्चित् तु वाजिनाम्।। १५।।
काश्चित् तत्र वहन्ति स्म यानयुग्यं महाधनम्।

उन नावों पर झण्डे लहरा रहे थे और मल्लाह बैठे हुए थे, वे तेजी से चलने वाली थीं। वे आरूढ़ लोगों को गंगा पार ले जाने लगीं। कुछ नावें स्त्रियों से भरी हुईं थीं, कुछ घोड़ों से भरी हुई थीं, कुछ नावें गाड़ियों उनमें जुड़ने वाले पशुओं को ले जा रहीं थीं तथा कुछ धन को ले जा रहीं थीं।

तास्तु गत्वा परं तीरमवरोप्य च तं जनम्।। १६।।
निवृत्ता काण्डचित्राणि क्रियन्ते दाशबन्धुभिः।
सवैजयन्तास्तु गजा गजारोहैः प्रचोदिताः।। १७।।
तरन्तः स्म प्रकाशन्ते सपक्षा इव पर्वताः।

वे नावें दूसरे किनारे पर लोगों को उतार कर वापिस लौटीं, तब मल्लाहों के द्वारा नावों की विचित्र-विचित्र गतियों का प्रदर्शन किया जाने लगा। हाथियों पर वैजयन्ती पताकाएँ लहरा रहीं थीं, वे हाथी महावतों के द्वारा प्रेरित होकर गंगा को स्वयं ही पार करने लगे। उस समय वे पंखवाले पर्वतों के समान प्रतीत होते थे।

नावश्चारुरुहुस्त्वन्ये प्लवैस्तेरुस्तथापरे।। १८।।
अन्ये कुम्भघटैस्तेरुरन्ये तेरुश्च बाहुभिः।
सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गां दाशैः संतारिता स्वयम्।। १९।।
मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम्।

कई लोग नावों पर सवार थे, कई बेड़ों पर बैठे हुए थे और कई कलशों और घड़ों से और कई अपने हाथों से ही तैर कर गंगा को पार कर रहे थे। इस प्रकार वह सारी पवित्र सेना मल्लाहों की सहायता से गंगा के पार उतार दी गयी। इसके पश्चात् वे सब मैत्र नामक मुहूर्त में श्रेष्ठ प्रयाग वन की तरफ चल दिये।

पिचासीवाँ सर्ग

भरत और भरद्वाज मुनि की भेंट एवं बातचीत तथा मुनि का उन्हें अपने आश्रम पर ही ठहरने का आदेश देना।

भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्षभः।
जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः।। १।।
पद्भ्यामेव तु धर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः।
वसानो वाससी क्षौमे पुरोधाय पुरोहितम्।। २।।

भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँच कर वहाँ से एक कोस पहले ही उन नरश्रेष्ठ भरत ने उन सारे लोगों को ठहरा दिया और फिर वे धर्मज्ञ अपने शस्त्रों तथा राजोचित परिधानों को वहीं रख कर, रेशमी दो वस्त्र पहन कर पुरोहित वसिष्ठ जी को आगे करके पैदल ही वहाँ गये।

ततः संदर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः।
मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामानुपुरोहितम्।। ३।।
वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः।
संलचालासनात् तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन्।। ४।।

पुनः दूर से ही भरद्वाज मुनि के दिखाई देने पर उन्होंने मंत्रियों को वहीं खड़ा कर दिया और पुरोहित जी को आगे करके ऋषि के पास गये। वसिष्ठ जी को देखते ही महातपस्वी भरद्वाज अपने आसन से शीघ्र उठ कर खड़े हो गए और उन्होंने अपने शिष्यों को अर्घ्य लाने को कहा।

समागम्य वसिष्ठेन भरतनाभिवादितः।
अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्य तम्।।५।।
ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्त्वा पश्चात् फलानि च।
आनपूर्व्याच्च धर्मज्ञः पप्रच्छ कुशलं कुले।।६।।

भरद्वाज मुनि के वसिष्ठ जी से मिलने पर भरत जी ने उनका अभिवादन किया। महातेजस्वी भरद्वाज जी समझ गये, कि ये दशरथ जी के पुत्र हैं। उन दोनों को अर्घ्य, पैर धोने का जल, फल देकर उन धर्मज्ञ ने क्रम से उन दोनों के कुल का कुशल मंगल पूछा।

अयोध्यायां बले कोशे मित्रेष्वपि च मन्त्रिषु।
जानन् दशरथं वृत्तं न राजानुमुदाहरत्।। ७।।
वसिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम्।
शरीरेऽग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु।। ८।।
तथेति तु प्रतिज्ञाय भरद्वाजो महायशाः।
भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात्।। ९।।

इसके पश्चात उन्होंने अयोध्या, सेना, खजाना, मंत्री और मित्रों की कुशलता के विषय में पूछा। राजा दशरथ की मृत्यु के विषय में उन्हें पता था, इसलिये उनके विषय में उन्होंने कुछ नहीं पूछा। वसिष्ठ जी और भरत जी ने भी उनके शरीर, अग्नि, शिष्य, वृक्षों और मृगों तथा पक्षियों के विषय में पूछा। महायशस्वी भरद्वाज ने ठीक हैं ऐसा कह कर श्रीराम के प्रति स्नेह होने के कारण भरत जी से पूछा कि–

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः।
एतदाचक्ष्व सर्वं मे न हि मे शुध्यते मनः।। १०।।
सुषुवे यममित्रघ्नं कौसल्याऽऽनन्दवर्धनम्।
भ्रात्रा सह सभार्यो यश्चिरं प्रव्राजितो वनम्।। ११।।
नियुक्तः स्त्रीनिमित्तेन पित्रा योऽसौ महायशाः।
वनवासी भवेतीह समाः किल चतुर्दश।। १२।।
कच्चिन्न तस्यापापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि।
अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च।। १३।।

राज्य का शासन करते हुए तुम्हें यहाँ आने का क्या कार्य हो गया है? यह मुझे बताओ। मेरा मन तुम्हारे प्रति शुद्ध नहीं है। शत्रुओं का नाश करने वाले जिन आनन्दवर्धन राम को कौसल्या ने जन्म दिया, जिन महायशस्वी को पिता ने स्त्री के कारण से तुम चौदह वर्ष के लिये वनवासी बनो, ऐसी आज्ञा देकर भाई और पत्नी के साथ लम्बे समय के लिये वन में भेज दिया, क्या तुम उस निष्पाप श्रीराम का तथा उनके छोटे भाई का राज्य को निष्कंटक भोगने के लिये अनिष्ट तो नहीं करना चाहते हो?

एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह।
पर्यश्रुनयनो दुःखाद् वाचा संसज्जमानया।। १४।।
हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते।
मत्तो न दोषमाशङ्के मैवं मामनुशाधि हि।। १५।।

ऐसा पूछे जाने पर दुःख से आँखों में आँसू भर कर लड़खड़ाती हुई ध्वनि से भरत जी ने भरद्वाज जी को उत्तर दिया यदि आप भगवान भी मुझे ऐसा समझते हैं तो मैं मारा गया। मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि इस प्रकरण में मुझ से कोई दोष नहीं हुआ है। आप मुझ से इस प्रकार कठोर बातें न कहें।

न चैतदिष्टं माता मे यदवोचन्मदन्तरे।
नाहमेतेन तुष्टश्च न तद्वचनमाददे।। १६।।
अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः।
प्रतिनेतुमयोध्यायां पादौ चास्याभिवन्दितुम्।। १७।।
तं मामेवंगतं मत्वा प्रसादं कर्तुमर्हसि।
शंस मे भगवन् रामः क्व सम्प्रति महीपतिः।। १८।।

मेरी माता ने मेरा सहारा लेकर जो कुछ भी कहा, यह मुझे स्वीकृत नहीं है। मैं उसकी बात को न तो स्वीकार करता हूँ और न मैं उससे सन्तुष्ट हूँ। मैं तो उन नरश्रेष्ठ के समीप उन्हें प्रसन्न करने के लिये, उन्हें अयोध्या में लौटाने के लिये और उनके चरणों में प्रणाम करने के लिये जा रहा हूँ। मेरे इस उद्देश्य को मान कर आप मुझ पर कृपा कीजिये और हे भगवान् मुझे बताइये कि वे महाराज श्रीराम इस समय कहाँ हैं?

वसिष्ठादिभिर्ऋत्विग्भिर्याचितो भगवांस्ततः।
उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद् भरतं वचः।। १९।।
त्वय्येतत् पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे।
गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता।। २०।।
जाने चैतन्मनःस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति।
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन्।। २१।।

जब वसिष्ठादि पुरोहितों ने भी प्रार्थना की तब भगवान भरद्वाज प्रसन्न हो कर भरत से बोले कि हे नरश्रेष्ठ! रघु के वंश में उत्पन्न तुम्हारे में यह गुरुओं का आदर, इन्द्रिय दमन तथा साधुओं का अनुयायी होना उचित ही है। मैं तुम्हारे मन की बात जानता हूँ, पर मैंने तुम्हारी भावना को दृढ़ करने के लिये और तुम्हारी कीर्ति को अत्यधिक बढ़ाने के लिये ऐसा पूछा।

जानेऽहं रामं धर्मज्ञं ससीतं सहलक्ष्मणम्।
अयं वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ।। २२।।
श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सह मन्त्रिभिः।
एतं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद।। २३।।

मैं सीता और लक्ष्मण सहित राम के विषय में जानता हूँ। वह चित्रकूट नाम के श्रेष्ठ पर्वत पर रहते हैं। आज तुम मंत्रियों के साथ यहाँ रहो। कल वहाँ चले जाना। हे महाभाग्य! काम्य पदार्थों की पूर्ति में समर्थ, तुम मेरी यह इच्छा पूरी करो।

ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनः
प्रतीतरूपो भरतोऽब्रवीद् वचः।
चकार बुद्धिं च तदाश्रमे तदा
निशानिवासाय नराधिपात्मजः।। २४।।

तब जिनके रूप और स्वभाव का परिचय मिल गया था, उन उदारदर्शन भरत ने 'अच्छा' ऐसा कहा और उस राजपुत्र ने वहाँ आश्रम में रात्रि निवास करने का विचार किया।

छियासीवाँ सर्ग

भरत का भरद्वाज मुनि से श्रीराम के आश्रम पर जाने का मार्ग जानना और मुनि को अपनी माताओं का परिचय देकर वहाँ से चित्रकूट के लिये सेना सहित प्रस्थान करना।

ततस्तां रजनीं व्युष्य भरतः सपरिच्छदः।
कृतातिथ्यो भरद्वाजं कामादभिजगाम ह।। १।।
तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा भरतोऽभिप्रणम्य च।
आश्रमादुपनिष्क्रान्तमृषिमुत्तमतेजसम् ।। २।।

तब परिवार सहित वह रात्रि वहाँ बिता कर और आतिथ्य स्वीकार कर भरत जी जाने की कामना लेकर भरद्वाज जी के पास गये। आश्रम से बाहर निकले हुए उन उत्तम तेजस्वी भरद्वाज ऋषि को भरत जी ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और कहा।

आमन्त्रयेऽहं भगवन् कामं त्वामृषिसत्तम।
समीपं प्रस्थितं भ्रातुर्मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा।। ३।।
आश्रमं तस्य धर्मज्ञ धार्मिकस्य महात्मनः।
आचक्ष्व कतमो मार्गः कियानिति च शंस मे।। ४।।

हे ऋषिश्रेष्ठ भगवन्! मैं अपनी कामना पूर्ति के लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ। अपने भाई के समीप जाने वाले मुझे आप स्नेह दृष्टि से देखिये। हे धर्मज्ञ महात्मा! आप मुझे उन धार्मिक श्रीराम के आश्रम का पता बताइये। आप बताइये कि वहाँ जाने के लिये कौन सा मार्ग है और कितनी दूर है?

इति पृष्टस्तु भरतं भ्रातुर्दर्शनलालसम्।
प्रत्युवाच महातेजा भरद्वाजो महातपाः।। ५।।
भरतार्धतृतीयेषु योजनेष्वजने वने।
चित्रकूटगिरिस्तत्र रम्यनिर्झरकाननः।। ६।।

तब उन महातेजस्वी महातपस्वी भरद्वाज ने भाई के दर्शन की लालसा वाले भरत को उत्तर दिया कि यहाँ से ढाई योजन दूर निर्जन वन में, चित्रकूट नाम का पर्वत है, वहाँ सुन्दर झरने और वन हैं।

उत्तरं पार्श्वमासाद्य तस्य मन्दाकिनी नदी।
पुष्पितद्रुमसंछन्ना रम्यपुष्पितकानना।। ७।।
अनन्तरं तत्सरितश्चित्रकूटं च पर्वतम्।
तयोः पर्णकुटीं तात तत्र तौ वसतो ध्रुवम्।। ८।।

उसके उत्तरी छोर पर मन्दाकिनी नदी है। वह फूलों वाले वृक्षों से ढकी हुई है। उसके साथ सुन्दर फूलों का वन है। उस नदी के परे चित्रकूट पर्वत है। उन दोनों पर्वत और नदी के बीच में पत्तों की कुटी है। हे तात् वे दोनों निश्चित रूप से वहीं रहते हैं।

दक्षिणेन च मार्गेण सव्यदक्षिणमेव च।
गजवाजिसमाकीर्णां वाहिनीं वाहिनीपते।। ९।।
वाहयस्व महाभाग ततो द्रक्ष्यसि राघवम्।

हे सेनापति! तुम अपनी हाथी और घोड़ों से भरी हुई सेना को यमुना के दक्षिण के मार्ग से ले जाओ। उसके आगे जो मार्ग मिलें, उनमें भी बायें दक्षिणी मार्ग पर ही सेना को ले जाओ। हे महाभाग! तब श्रीराम को देख लोगे।

प्रयाणमिति च श्रुत्वा राजराजस्थ योषितः।। १०।।
हित्वा यानानि यानार्हा ब्राह्मणं पर्यवारयन्।
वेपमाना कृशा दीना सह देव्या सुमित्रया।। ११।।
कौसल्या तत्र जग्राह कराभ्यां चरणौ मुनेः।

अब यहाँ से जाना है, यह सुन कर महाराजा दशरथ की स्त्रियों ने जो सवारी पर चलने योग्य थीं, अपनी

सवारियों को छोड़ कर भरद्वाज मुनि को घेर लिया। देवी सुमित्रा के साथ काँपती हुई, कमजोर और दीन बनी हुई कौसल्या ने मुनि के चरणों को हाथों से पकड़ लिया।

असमृद्धेन कामेन सर्वलोकस्य गर्हिता।। १२।।
कैकेयी तत्र जग्राह चरणौ सव्यपत्रपा।
तं प्रदक्षिणमागम्य भगवन्तं महामुनिम्।। १३।।
अदूराद् भरतस्यैव तस्थौ दीनमनास्तदा।

इसके बाद जो अपनी असफल कामना के कारण सारे लोगों के द्वारा निन्दित हो गयी थी, उस कैकेयी ने लज्जित होकर मुनि के चरणों का स्पर्श किया और भगवान महामुनि की परिक्रमा करके वह दीनता के साथ भरत के समीप खड़ी हो गयी।

तत्र पप्रच्छ भरतं भरद्वाजो महामुनिः।। १४।।
विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातॄणां तव राघव।
एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धार्मिकः।। १५।।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यं वचनकोविदः।

वहाँ महामुनि भरद्वाज ने भरत से पूछा कि राघव मैं तुम्हारी माताओं का विशेष परिचय जानना चाहता हूँ। भरद्वाज के द्वारा ऐसा कहे जाने पर धार्मिक और वाक्य चतुर भरत ने हाथ जोड़ कर यह कहा कि–

यामिमां भगवन् दीनां शोकानशनकर्शिताम्।। १६।।
पितुर्हि महिषीं देवीं देवतामिव पश्यसि।
एषा तं पुरुषव्याघ्रं सिंहविक्रान्तगामिनम्।। १७।।
कौसल्या सुषुवे रामं धातारमदितिर्यथा।

हे भगवन्! आप जिस पिता की महारानी देवी को, जो दीन है और शोक तथा उपवास के कारण दुर्बल हो गयी है तथा साक्षात् देवता के समान प्रतीत होती है, इन्ही कौसल्या ने सिंह के समान पराक्रम युक्त गति से चलने वाले पुरुषव्याघ्र राम को उसी प्रकार जन्म दिया है जैसे अदिति ने धाता नामक आदित्य को दिया था।

अस्या वामभुजं श्लिष्टा या सा तिष्ठति दुर्मनाः।। १८।।
इयं सुमित्रा दुःखार्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा।
कर्णिकारस्य शाखेव शीर्णपुष्पा वनान्तरे।। १९।।
एतस्यास्तौ सुतौ देव्याः कुमारौ देववर्णिनौ।
उभौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ वीरौ सत्यपराक्रमौ।। २०।।

इनकी बायीं भुजा से चिपकी हुई जो दुखित मन से खड़ी हुई है, यह देवी राजा की मझली रानी शोक पीड़ित सुमित्रा है जो वन में झड़े हुए फूलों वाली कनेर की डाल के समान दिखाई दे रही है। इसी देवी के देवताओं के समान, सत्य पराक्रमी दोनों पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं।

यस्याः कृते नरव्याघ्रौ जीवनाशमितो गतौ।
राजा पुत्रविहीनश्च स्वर्गं दशरथो गतः।। २१।।
क्रोधनामकृतप्रज्ञां दृप्तां सुभगमानिनीम्।
ऐश्वर्यकामां कैकेयीमनार्यामार्यरूपिणीम्।। २२।।
ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम्।
यतोमूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः।। २३।।

जिसके कारण से वे दोनों नरश्रेष्ठ मृत्यु के संकट तक पहुँच गये और राजा दशरथ पुत्रविहीन होकर स्वर्ग को चले गये, जो क्रोध करने वाली और बुद्धि रहित है। जो अभिमानिनी और अपने को सबसे सुन्दर समझने वाली है, जो ऐश्वर्य की इच्छुक है, जो आर्यों जैसी आकृति होने पर भी अनार्या है, पापनिश्चय वाली निर्दया उस स्त्री को आप मेरी माता कैकेयी समझिये। इसके कारण से ही मैं अपने ऊपर आये महान संकट को देख रहा हूँ।

इत्युक्त्वा नरशार्दूलो बाष्पगद्गदया गिरा।
विनिःश्वस्य स ताम्राक्षः क्रुद्धो नाग इवश्वसन्।। २४।।
भरद्वाजो महर्षिस्तं ब्रुवन्तं भरतं तदा।
प्रत्युवाच महाबुद्धिरिदं वचनमर्थवित्।। २५।।
न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।
रामप्रव्राजनं ह्येतत् सुखोदर्कं भविष्यति।। २६।।

आँसू गिराते हुए गद्‌गद् स्वर से ऐसा कहते हुए वे ताँबे के समान लाल आँखों वाले नरश्रेष्ठ भरत क्रुद्ध साँप के समान लम्बी-लम्बी साँस खींचने लगे। तब महाबुद्धिमान तथा अभिप्राय को समझने वाले भरद्वाज महाऋषि अपनी माता के विषय में ऐसा कहते हुए भरत को कहने लगे कि हे भरत तुम कैकेयी के प्रति दोष दृष्टि मत रखो। राम को वन में जाना भविष्य में सुखदायी होगा।

अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम्।
आमन्त्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामिति चाब्रवीत्।। २७।।
ततो वाजिरथान् युक्त्वा दिव्यान् हेमविभूषितान्।
अध्यारोहत् प्रयाणार्थं बहून् बहुविधो जनः।। २८।।

तब भरत जी ने मुनि को प्रणाम कर, उनकी प्रदक्षिणा कर, उनसे चलने की अनुमति प्राप्त कर अपने को कृतकृत्य समझ कर सेना को चलने का आदेश दिया। उसके पश्चात् सुवर्णभूषित दिव्य रथों को घोड़ों से युक्त करके बहुत सारे लोग बहुत प्रकार के रथों पर आरूढ़ हो गये।

गजकन्या गजाश्चैव हेमकक्ष्याः पताकिनः।
जीमूता इव घर्मान्ते सघोषाः सम्प्रतस्थिरे।। २९।।
विविधान्यपि यानानि महान्ति च लघूनि च।
प्रययुः सुमहार्हाणि पादैरपि पदातयः।। ३०।।

हथनियाँ और हाथी सुनहरे रस्सों से बँधे हुए थे, उनके ऊपर पताकाएँ लहरा रहीं थीं। वे ग्रीष्म के अन्त में घोष वाले बादलों के समान प्रतीत हो रहे थे। अनेक प्रकार की बहुमूल्य छोटी बड़ी सवारियाँ भर कर जा रही थीं और पैदल सैनिक पैरों से ही यात्रा कर रहे थे।

अथ यानप्रवेकैस्तु कौसल्याप्रमुखाः स्त्रियः।
रामदर्शनकाङ्क्षिण्यः प्रययुर्मुदितास्तदा।। ३१।।
चन्द्रार्कतरुणाभासां नियुक्तां शिविकां शुभाम्।
आस्थाय प्रययौ श्रीमान् भरतः सपरिच्छदः।। ३२।।
सा प्रयाता महासेना गजवाजिसमाकुला।
दक्षिणां दिशमावृत्य महामेघ इवोत्थितः।। ३३।।

इसके बाद श्रेष्ठ सवारियों पर आरूढ़ हो कर कौसल्या आदि स्त्रियाँ राम के दर्शन की इच्छा से प्रसन्नता के साथ चलीं। श्रीमान भरत ने नवोदित चन्द्रमा और सूर्य के समान दीप्तिमान शुभ पालकी पर बैठ, आवश्यक सामग्री के साथ प्रस्थान किया। हाथी और घोड़ों से भरी हुई विशाल सेना दक्षिण दिशा को घेरकर उमड़ते हुए विशाल बादलों के समान वहाँ से चली।

सत्तासीवाँ सर्ग

सेना सहित भरत की चित्रकूट यात्रा का वर्णन।

तया महत्या यायिन्या ध्वजिन्या वनवासिनः।
अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाः सम्प्रदुद्रुवुः।। १।।
ऋक्षाः पृषतमुख्याश्च रुरवश्च समन्ततः।
दृश्यन्ते वनवाटेषु गिरिष्वपि नदीषु च।। २।।

उस यात्रा करने वाली विशाल सेना से वन में रहने वाले मतवाले गजराज अपने अपने समूहों के साथ भागने लगे। रीछ, चितकबरे मृग तथा रुरु नाम के मृग सब तरफ वनों में, पर्वतों में और नदियों के किनारे परेशान दिखाई दे रहे थे।

स सम्प्रतस्थे धर्मात्मा प्रीतो दशरथात्मजः।
वृतो महत्या नादिन्या सेनया चतुरङ्गया।। ३।।
सागरौघनिभा सेना भरतस्य महात्मनः।
महीं संछादयामास प्रावृषि द्यामिवाम्बुदः।। ४।।
तुरंगौघैरवतता वारणैश्च महाबलैः।
अनालक्ष्या चिरं कालं तस्मिन् काले बभूव सा।। ५।।

वह दशरथ के पुत्र धर्मात्मा भरत, उस बड़ी कोलाहल करने वाली चतुरंगिणी सेना से घिरे हुए प्रसन्नता के साथ यात्रा कर रहे थे। महात्मा भरत की उस सागर के समान विशाल सेना ने वर्षाऋतु में बादलों के द्वारा आकाश के समान पृथिवी को ढक लिया था। घोड़ों के समूहों और महाबली हाथियों से भरी हुई वह सेना उस समय बहुत देर तक दृष्टिपथ से परे नहीं होती थी।

स गत्वा दूरमध्वानं सम्परिश्रान्तवाहनः।
उवाच वचनं श्रीमान् वसिष्ठं मन्त्रिणां वरम्।। ६।।
यादृशं लक्ष्यते रूपं यथा चैव मया श्रुतम्।
व्यक्तं प्राप्ताः स्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत्।। ७।।
अयं गिरिश्चित्रकूटस्तथा मन्दाकिनी नदी।
एतत् प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम्।। ८।।

दूर तक का रास्ता व्यतीत करने पर जब सवारियाँ थक गयीं तब उन श्रीमान् भरत ने मंत्रियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी से कहा– कि इस देश का जैसा रूप दिखाई दे रहा है और इसके विषय में जैसा मैंने सुना है, मेरे विचार से हम उसी देश में आ पहुँचे हैं जिसके विषय में भरद्वाज जी ने कहा है। यह चित्रकूट पर्वत है और यह मंदाकिनी नदी है और यह दूर से नीले बादल के समान वन प्रकाशित हो रहा है।

एते मृगगणा भान्ति शीघ्रवेगाः प्रचोदिताः।
वायुप्रविद्धाः शरदि मेघजाला इवाम्बरे।। ९।।
निष्कूजमिव भूत्वेदं वनं घोरप्रदर्शनम्।
अयोध्येव जनाकीर्णा सम्प्रति प्रतिभाति मे।। १०।।

ये शीघ्रता के साथ भागते हुए हरिण इसी प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, जैसे शरदऋतु के आकाश में बादल वायु से उड़ाये जाने पर लगते हैं। ये वन जो पहले नीरव होने के कारण भयानक दिखाई देता था, अब यह हमारे साथ आये लोगों के कारण जन समूह से भरी हुई अयोध्या के समान प्रतीत हो रहा है।

खुरैरुदीरितो रेणुर्दिवं प्रच्छाद्य तिष्ठति।
तं वहत्यनिलः शीघ्रं कुर्वन्निव मम प्रियम्।। ११।।

स्यन्दनांस्तुरगोपेतान् सूतमुख्यैरधिष्ठितान्।
एतान् सम्पततः शीघ्रं पश्य शत्रुघ्न कानने।। १२।।

घोड़ों के खुरों से उड़ती हुई धूल आकाश को भर कर स्थिर हो जाती है, उसी को वायु मेरा प्रिय करती हुई शीघ्र ही उड़ा कर ले जाती है। हे शत्रुघ्न! श्रेष्ठ सूतों के द्वारा संचालित, तथा घोड़ों से जुते हुए रथों को वन में शीघ्रता से आगे बढ़ते हुए देखो।

एतान् वित्रासितान् पश्य बर्हिणः प्रियदर्शनान्।
एवमापततः शैलमधिवासं पतत्रिणः।। १३।।
अतिमात्रमयं देशो मनोज्ञः प्रतिभाति मे।
तापसानां निवासोऽयं व्यक्तं स्वर्गपथोऽनघ।। १४।।

इन सुन्दर पर, डरे हुए मोरों को देखो। इसी प्रकार अपने पर्वतीय घोंसलों की तरफ उड़ान भरते हुए दूसरे पक्षियों को भी देखो। हे निष्पाप! यह सुन्दर स्थान मुझे बहुत अधिक अच्छा लगा है। यह तपस्वियों का निवास स्थान वास्तव में स्वर्ग की तरफ पहुँचाने वाले मार्ग की तरह है।

मृगा मृगीभिः सहिता बहवः पृषता वने।
मनोज्ञरूपा लक्ष्यन्ते कुसुमैरिव चित्रिताः।। १५।।
साधुसैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम्।
यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणौ।। १६।।

इस वन में बहुत से पृषत नाम के मृग अपनी मृगियों के साथ घूमते हुए ऐसे सुन्दर लग रहे हैं, जैसे उन्हें फूलों से सजाया गया हो। ये मेरे सैनिक अच्छी तरह से वन में प्रतिष्ठित हों और वहाँ खोज करें, जिससे वे नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण दिखाई दे जायें।

भरतस्य वचः श्रुत्वा पुरुषाः शस्त्रपाणयः।
विविशुस्तद्वनं शूरा धूमाग्रं ददृशुस्ततः।। १७।।
ते समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः।
नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैव राघवौ।। १८।।

भरत की बात सुन कर सशस्त्र शूरवीर पुरुष उस वन में प्रविष्ट हुए। उन्हें वहाँ धूआँ उठता हुआ दिखाई दिया। वे धूएँ को देख कर आ कर भरत से बोले कि बिना मनुष्य के अग्नि नहीं होती, अतः वहीं राम और लक्ष्मण होंगे।

अथ नात्र नरव्याघ्रौ राजपुत्रौ परंतपौ।
अन्ये रामोपमाः सन्ति व्यक्तमत्र तपस्विनः।। १९।।
तच्छ्रुत्वा भरतस्तेषां वचनं साधुसम्मतम्।
सैन्यानुवाच सर्वांस्तानमित्रबलमर्दनः।। २०।।

यदि यहाँ वे नरश्रेष्ठ! शत्रुओं को तपाने वाले राजकुमार नहीं हैं तो उन जैसे ही कोई और तपस्वी तो होंगे ही, यह स्पष्ट है। भरत जी उनकी श्रेष्ठ पुरुषों जैसी बातें सुन कर शत्रुओं के बल का मर्दन करने वाले उन सारे सैनिकों से बोले।

यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु नेतो गन्तव्यमग्रतः।
अहमेव गमिष्यामि सुमन्त्रो धृतिरेव च।। २१।।
एवमुक्तास्ततः सैन्यास्तत्र तस्थुः समन्ततः।
भरतो यत्र धूमाग्रं तत्र दृष्टिं समादधत्।। २२।।

आप लोग सावधानी से यहीं ठहरें। यहां से आगे नहीं जाना। मैं ही आगे जाऊँगा, सुमन्त्र और धृति भी मेरे साथ रहेंगे। ऐसा कहने पर सैनिक लोग वहाँ सब तरफ ठहर गये और भरत ने जिधर धूआँ उठ रहा था उधर निगाह करके देखा।

अठासीवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता को चित्रकूट की शोभा दिखाना।

वैदेह्याः प्रियमाकाङ्क्षन् स्वं च चित्तं विलोभयन्।
अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकूटमदर्शयत्।। १।।
न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम्।। २।।

एक बार श्रीराम सीता का प्रिय करने के लिये और अपने मन का भी मनोरंजन करने के लिये उन्हें चित्रकूट पर्वत की सुन्दरता को दिखाने लगे। वे कहने लगे कि हे भद्रे! इस सुन्दर पर्वत को देखकर मुझे राज्य का छूट जाना और सुहृदों से अलग हो जाना भी कष्ट नहीं देता।

पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम्।
शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम्।। ३।।
केचिद् रजतसंकाशाः केचित् क्षतजसंनिभाः।
पीतमाञ्जिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः।। ४।।
पुष्पार्ककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः।
विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः।। ५।।

हे भद्रे! इस पर्वत को देखो। तरह-तरह के पक्षियों के झुंड यहाँ विद्यमान हैं। यह पर्वत तरह-तरह की धातुओं से मंडित और आकाश को बींधने वाले अपने शिखरों से सुशोभित हो रहा है। इस पर्वतराज के विभिन्न स्थान धातुओं से विभूषित होने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार से सुशोभित हो रहे हैं। कुछ चाँदी के समान चमक रहे हैं, तो कुछ रक्त के समान लाल वर्ण के हैं, कुछ मजीठ के समान पीले दिखाई देते हैं तो कुछ मणियों की प्रभा के समान जगमगा रहे हैं। कुछ स्थान पुखराज जैसे और कुछ केवड़े के समान, तो कुछ नक्षत्रों और पारे के समान जगमगा रहे हैं।

नानामृगगणैर्द्वीपितरक्ष्वृक्षगणैर्वृतः ।
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः।। ६।।
आम्रजम्ब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः।
अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुकवेणुभिः ।।७।।
काश्मर्यरिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि ।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनबीजकैः ।। ८।।
पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः ।
एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः।। ९।।

बहुत से पक्षियों से भरा हुआ यह पर्वत अनेक हरिणों, चीतों, तरक्षु, रीछों के समूह से जिन्होंने अपने दुष्ट भाव को छोड़ दिया है, सुशोभित हो रहा है। आम, जामुन, असन, लोध, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्य, तिनिश, बिल्व, तिन्दुक, बाँस, काश्मरी, अरिष्ट, वरण, महुआ, तिलक, बेर, आँवला, नीप, बेंत, धन्वन्, अनार आदि सुन्दर वृक्षों से जो फूलों वाले तथा छाया वाले भी हैं और फलवाले भी हैं भरा हुआ यह पर्वत इस स्थान की सुन्दरता को बढ़ा रहा है।

जलप्रपातैरुद्भेदैर्निष्यन्दैश्च क्वचित् क्वचित्।
स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवनमद इव द्विपः।। १०।।
गुहासमीरणो गन्धान् नानापुष्पभवान् बहून्।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत्।। ११।।

इस पर्वत पर झरने इसकी शोभा को बढ़ा रहे हैं, ये झरने कहीं तो ऊँचे से गिर रहे हैं तो कहीं भूमि को फोड़ कर बह रहे हैं। इन झरनों के कारण यह पर्वत मद को बहाने वाले हाथी के समान प्रतीत हो रहा है। गुफाओं से निकलने वाली वायु अनेक प्रकार के पुष्पों की गन्धों को धारण कर, जब आ कर नासिका को तृप्त करती है तो किसको हर्षित नहीं कर देती?

यदीह शरदोऽनेकास्त्वया सार्धमनिन्दिते।
लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति।। १२।।
बहुपुष्पफले रम्ये नानाद्विजगणायुते।
विचित्रशिखरे ह्यस्मिन् रतवानस्मि भामिनि।। १३।।

हे अनिन्दिते! यदि यहाँ मैं तुम्हारे और लक्ष्मण के साथ अनेक वर्षों तक रहता रहूँ तो भी मुझे शोक पीड़ित नहीं करेगा। हे भामिनी! बहुत प्रकार के फूलों और फलों वाले, अनेक तरह के पक्षियों से युक्त, विचित्र शिखरों वाले इस सुन्दर पर्वत में मेरा मन लगा हुआ है।

वैदेहि रमसे कच्चिच्चित्रकूटे मया सह।
पश्यन्ती विविधान् भावान् मनोवाक्कायसम्मतान्।। १४।।
इदमेवामृतं प्राहू राज्ञि राजर्षयः परे।
वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपितामहाः।। १५।।

हे वैदेही! इन तरह-तरह के मन, वाणी और शरीर को सुख पहुँचाने वाले विविध प्रकार के पदार्थों को मेरे साथ देखती हुई, क्या तुम्हारा मन इस चित्रकूट पर सुखी हो रहा है? हे रानी! पुराने राजर्षियों मेरे बाबा आदि ने मृत्यु के पश्चात् परम कल्याण की प्राप्ति के लिये इस वनवास को ही अमृत के समान बताया है।

शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशालाः शतशोऽभितः।
बहुला बहुलैर्वर्णैर्नीलपीतसितारुणैः।। १६।।
निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशनशिखा इव।
ओषध्यः स्वप्रभालक्ष्म्या भ्राजमानाः सहस्रशः।। १७।।

पर्वत के चारों तरफ विद्यमान सैकड़ों विशाल शिलाएँ, जो कि बहुत प्रकार के नीले, पीले, सफेद और लाल रंग की हैं, बड़ी सुन्दर लग रही हैं। रात्रि में इस पर्वतराज के ऊपर ओषधियाँ, अपनी दीप्ति से हजारों तरह से चमकती हुई अग्नि शिखा के समान सुशोभित होती हैं।

केचित् क्षयनिभा देशाः केचिदुद्यानसंनिभाः।
केचिदेकशिला भान्ति पर्वतस्यास्य भामिनि।। १८।।
भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः।
चित्रकूटस्य कूटोऽयं दृश्यते सर्वतः शुभः।। १९।।

इस पर्वत के कुछ स्थान घर के समान लगते हैं तो कुछ बगीचों के समान प्रतीत होते हैं। हे भामिनी! कुछ स्थान एक ही विशाल शिला से सुशोभित हो रहे हैं। यह चित्रकूट ऐसा लग रहा है मानो पृथिवी को फोड़ कर ऊपर उठा हो। चित्रकूट का यह शिखर सभी तरह से सुन्दर दिखाई दे रहा है।

नवासीवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता से मन्दाकिनी नदी की शोभा का वर्णन।

अथ शैलाद् विनिष्क्रम्य मैथिलीं कोसलेश्वरः।
अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम्।। १।।
अब्रवीच्च वरारोहां चन्द्रचारुनिभाननाम्।
विदेहराजस्य सुतां रामो राजीवलोचनः।। २।।

इसके पश्चात् वे कोसलाधीश श्रीराम पर्वत से निकल कर सीता को पवित्र जलवाली सुन्दर मन्दाकिनी नदी को दिखाने लगे। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली और सुन्दर कटि प्रदेश वाली विदेहराज की पुत्री सीता से कमलनयन श्रीराम इस प्रकार बोले।

विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम्।
कुसुमैरुपसम्पन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्।। ३।।
नानाविधैस्तीररुहैर्वृतां पुष्पफलद्रुमैः।
राजन्तीं राजराजस्य नलिनीमिव सर्वतः।। ४।।

देखो इस मन्दाकिनी नदी को देखो। इसके विचित्र प्रकार के किनारे कितने सुन्दर हैं? हंस और सारस इसका सेवन कर रहे हैं। यह फूलों से भरी हुई है। इसके किनारों को अनेक प्रकार के फूलों और फलों वाले वृक्षों ने घेरा हुआ है। यह नदी कुबेर के सौगन्धिक सरोवर की तरह सब तरफ से सुशोभित हो रही है।

मृगयूथनिपीतानि कलुषाम्भांसि साम्प्रतम्।
तीर्थानि रमणीयानि रतिं संजनयन्ति मे।। ५।।
जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तरवाससः।
ऋषयस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये।। ६।।

यद्यपि इस समय हरिणों के झुंडों ने पानी पीकर इसके पानी को गदला कर दिया है, पर फिर भी इसके रमणीय घाट मेरे मन में आनन्द-को उत्पन्न कर रहे हैं। हे प्रिये! देखो! जटा तथा मृगचर्म और वल्कल के उत्तरीय को धारण करने वाले ऋषि लोग उचित समय में आकर इस मन्दाकिनी नदी में स्नान कर रहे हैं।

मारुतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः।
पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम्।। ७।।
क्वचिन्मणिनिकाशोदां क्वचित् पुलिनशालिनीम्।
क्वचित् सिद्धजनाकीर्णां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्।। ८।।

वायु से हिलाये जाते हुए शिखरों से जो वृक्ष नदी के दोनों तरफ फूल और पत्ते बिखेर रहे हैं उन वृक्षों के कारण यह पर्वत नाचता हुआ सा प्रतीत हो रहा है। तुम इस मन्दाकिनी नदी को देखो। कहीं इसका जल मणियों के समान स्वच्छ है तो कहीं ऊँचे-ऊँचे किनारे इसकी सुन्दरता को बढ़ा रहे हैं तो कहीं सिद्ध लोग इसमें स्नान कर रहे हैं।

निर्धूतान् वायुना पश्य विततान् पुष्पसंचयान्।
पोप्लूयमानानपरान् पश्य त्वं तनुमध्यमे।। ९।।
पश्यैतद्वल्गुवचसो रथाङ्गाह्वयना द्विजाः।
अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः।। १०।।

हे सूक्ष्म कटिवाली सीते! देखो वायु से उड़ाये हुए ये पुष्पों के ढेर कहीं किनारे पर फैले हुए हैं तो कहीं दूसरे जल में तैरते जा रहे हैं। हे कल्याणी! देखो। ये मधुर बोली बोलने वाले चक्रवाक पक्षी सुन्दर कलध्वि करते हुए किनारों पर बैठे हुए हैं।

दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने।
अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात्।। ११।।
विधूतकल्मषैः सिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः।
नित्यविक्षोभितजलां विगाहस्व मया सह।। १२।।

हे शोभने! चित्रकूट के, मन्दाकिनी के और तुम्हारे दर्शन होते रहने से मैं यहाँ रहना अयोध्या से भी अच्छा समझता हूँ! जिस मन्दाकिनी के जल में जिन्होंने अपने पापों को धो दिया है, जो तप, दम और शम से युक्त हैं, ऐसे सिद्ध लोग नित्य स्नान करते हैं, उसके जल में तुम भी मेरे साथ स्नान करो।

सखीवच्च विगाहस्व सीते मन्दाकिनीं नदीम्।
कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि।। १३।।
त्वं पौरजनवद् व्यालानयोध्यामिव पर्वतम्।
मन्यस्व वनिते नित्यं सरयूवदिमां नदीम्।। १४।।

हे भामिनी! जैसे एक सखी दूसरी सखी के साथ क्रीड़ा करती है, वैसे ही तुम भी श्वेत और लाल कमलों को पानी में डुबाती हुई, मन्दाकिनी नदी में स्नान करो। हे प्रिये! तुम वन वासियों को अयोध्यावासियों के समान, इस पर्वत को अयोध्या के समान और इस मन्दाकिनी को सरयू नदी के समान मानो।

इमां हि रम्यां गजयूथलोडितां
निपीततोयां गजसिंहवानरैः।

सुपुष्पितां पुष्पभरैरलंकृतां
न सोऽस्ति यः स्यान्न गतक्लमः सुखी।। १५।।

हाथियों के समूह जिसे आलोडित करते हैं, हाथी, सिंह, और वानर जिसका जल पीते हैं, जो फूलों वाले वृक्षों से अलंकृत होने के कारण स्वयं फूलों वाली लग रही है, ऐसी इस मन्दाकिनी का सेवन करके कौन ऐसा मनुष्य है जो थकावट से रहित और सुखी न हो जाये?

इतीव रामो बहुसंगतं वचः
प्रियासहायः सरितं प्रति ब्रुवन्।
चचार रम्यं नयनाञ्जनप्रभं
स चित्रकूटं रघुवंशवर्धनः।। १६।।

इस प्रकार उस नदी के प्रति अनेक तरह की सुसंगत बातें कहते हुए रघुवंश की वृद्धि करने वाले श्रीराम अपनी प्रिया के साथ उस आँखों के अंजन के समान शोभा वाले चित्रकूट पर्वत पर विचरण करने लगे।

नब्बेवाँ सर्ग

वन जन्तुओं के भागने के कारण जानने के लिये श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण का शालवृक्ष पर चढ़कर भरत की सेना को देखना और उनके प्रति अपना रोषपूर्ण उद्‌गार प्रकट करना।

तथा तत्रासतस्तस्य भरतस्योपयायिनः।
सैन्यरेणुश्च शब्दश्च प्रादुरास्तां नभस्पृशौ।। १।।
एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः।
अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाद् दुद्रुवुर्दिशः।। २।।

जब श्रीराम उस प्रदेश में इस प्रकार विद्यमान थे, तभी समीप आते हुए भरत की सेना से धूल और कोलाहल वहाँ प्रकट होकर आकाश में फैलने लगे। इसी बीच उस महान शब्द से पीड़ित और डरे हुए मतवाले हाथियों के यूथपति अपने यूथों के साथ चारों तरफ भागने लगे।

तांश्च विप्रद्रुतान् दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा महास्वनम्।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम्।। ३।।
हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रा सुप्रजास्त्वया।
भीमस्तनितगम्भीरं तुमुलः श्रूयते स्वनः।। ४।।

उस भारी कोलाहल को सुन कर उन हाथियों को भागता हुआ देख कर, श्रीराम ने दीप्त तेज वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण! तुम्हारे द्वारा सुमित्रा अच्छी सन्तान वाली है। यहाँ देखो यह भयानक, गम्भीर और महान कोलाहल सुनाई दे रहा है।

गजयूथानि वारण्ये महिषा वा महावने।
वित्रासिता मृगाः सिंहैः सहसा प्रद्रुता दिशः।। ५।।
राजा वा राजपुत्रो वा मृगयामटते वने।
अन्यद्वा श्वापदं किंचित् सौमित्रे ज्ञातुमर्हसि।। ६।।

वन में हाथियों के झुंड, या भैंसे या मृग सहसा चारों तरफ भाग रहे हैं, वे सिंहों के द्वारा डराये हुए हैं या कोई राजा या राजपुत्र मृगया के लिये वन में घूम रहा है, या कोई दूसरा हिंसक जन्तु इसका कारण है? हे सुमित्रापुत्र! तुम यह पता लगाओ।

स लक्ष्मणः संत्वरितः सालमारुह्य पुष्पितम्।
प्रेक्षमाणो दिशः सर्वाः पूर्वां दिशमवैक्षत।। ७।।
उदङ्मुखः प्रेक्षमाणो ददर्श महतीं चमूम्।
गजाश्वरथसम्बाधां यत्तैर्युक्तां पदातिभिः।। ८।।

तब लक्ष्मण शीघ्रता से एक फूलों वाले शालवृक्ष पर चढ़ गये और चारों तरफ देखते हुए उन्होंने पूर्व दिशा की तरफ देखा। फिर उत्तर की तरफ मुख करके देखने पर उन्होंने एक विशाल सेना को देखा जो हाथी घोड़ों और रथों के समूह तथा पैदल सैनिकों से युक्त थी।

तामश्वरथसम्पूर्णां रथध्वजविभूषिताम्।
शशंस सेनां रामाय वचनं चेदमब्रवीत्।। ९।।
अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम्।
सज्यं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा।। १०।।

उस घोड़ों और रथों से परिपूर्ण तथा रथों की पताकाओं से भूषित सेना के विषय में उन्होंने राम को सूचना दी और यह कहा कि हे आर्य! आप अग्नि को बुझा दीजिये। सीता गुफा में चली जायें। आप धनुष बाण और कवच को तैयार कर लें।

तं रामः पुरुषव्याघ्रो लक्ष्मणं प्रत्युवाच ह।
अङ्गावेक्षस्व सौमित्रे कस्येमां मन्यसे चमूम्।। ११।।
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
दिधक्षन्निव तां सेनां रुषितः पावको यथा।। १२।।

तब नरश्रेष्ठ श्रीराम ने लक्ष्मण को उत्तर दिया कि हे प्रिय सुमित्रा के पुत्र! देखो। यह तुम्हारे विचार से किस की सेना हो सकती है? राम के द्वारा ऐसा कहने पर लक्ष्मण जलाने की इच्छा वाली अग्नि के समान क्रोध से सेना को देखने लगे और यह बोले।

सम्पन्नं राज्यमिच्छंस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम्।
आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः।। १३।।
एष वै सुमहाञ्छ्रीमान् विटपी सम्प्रकाशते।
विराजत्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारध्वजो रथे।। १४।।

अपना अभिषेक करा कर प्राप्त हुए राज्य को निष्कंटक करने के लिये, हम दोनों को मारने के लिये कैकेयी का पुत्र भरत आ रहा है। यह जो सामने एक विशाल और शोभायुक्त वृक्ष सुशोभित हो रहा है, उसके समीप रथ पर उज्ज्वल तने से युक्त कोविदार वृक्ष के चिह्न वाली पताका शोभा पा रही है।

गृहीतधनुषावावां गिरिं वीर श्रयावहे।
अथवेहैव तिष्ठावः संनद्धावुद्यतायुधौ।। १५।।
अपि नौ वशमागच्छेत् कोविदारध्वजो रणे।
अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत्।। १६।।
त्वया राघव सम्प्राप्तं सीतया च मया तथा।
यन्निमित्तं भवान् राज्याच्च्युतो राघव शाश्वतात्।। १७।।

हे वीर! हम दोनों धनुष ग्रहण करके पर्वत के शिखर चलें या अपने शस्त्रास्त्रों के साथ हमें यहीं युद्ध के लिये तैयार हो कर ठहरना चाहिये। आज युद्ध में यह कोविदार का ध्वज हमारे आधीन हो जायेगा। आज मैं भरत को देखूँगा, जिसके कारण यह महान विपत्ति हे राघव! आपके ऊपर, सीता के ऊपर और मेरे ऊपर आयी है। जिसके कारण आप अपने स्वाभाविक राज्य से अलग कर दिये गये।

सम्प्राप्तोऽयमरिर्वीर भरतो वध्य एव हि।
भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव।। १८।।
पूर्वापकारिणं हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते।
पूर्वापकारी भरतस्त्यागेऽधर्मश्च राघव।। १९।।

हे राघव! यह हमारा शत्रु भरत सामने आ गया है, इसलिये वध के योग्य है। मैं भरत को मारने में कोई दोष नहीं देखता। जिसने पहले अपकार किया हो उसे मारकर कोई अधर्म नहीं होता, अपितु पहले अपकार करने वाले भरत को छोड़ देने में अधर्म है।

एतस्मिन् निहते कृत्स्नामनुशाधि वसुंधराम्।
अद्य पुत्रं हतं संख्ये कैकेयी राज्यकामुका।। २०।।
मया पश्येत् सुदुःखार्ता हस्तिभिन्नमिव द्रुमम्।
कैकेयीं च वधिष्यामि सानुबन्धां सबान्धवाम्।। २१।।
कलुषेणाद्य महता मेदिनी परिमुच्यताम्।

इसके मारे जाने पर आप सारी भूमि पर राज्य कीजिये। राज्य की इच्छुक कैकेयी आज दुःख से पीड़ित हो अपने पुत्र को युद्ध में मेरे द्वारा ऐसे ही मारा हुआ देखे जैसे हाथी पेड़ को तोड़ देता है और मैं कैकेयी को भी उसके सम्बन्धियों और शुभचिन्तकों के साथ मार दूँगा। यह पृथिवी फिर बड़े पाप से मुक्त हो जायेगी।

अद्येमं संयतं क्रोधमसत्कारं च मानद।। २२।।
मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम्।
अद्यैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः।। २३।।
छिन्दञ्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम्।

हे माननीय! मैं अपने इस रोके हुए क्रोध और असत्कार को शत्रु की सेना पर ऐसे छोड़ूँगा जैसे घास फूस के ढेर में आग लगा दी जाती है! आज चित्रकूट के वन को अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं के शरीरों के टुकड़े टुकड़े कर रक्त से सींच दूँगा।

शरैर्निर्भिन्नहृदयान् कुञ्जरांस्तुरगांस्तथा।। २४।।
श्वापदाः परिकर्षन्तु नरांश्च निहतान् मया।
शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन् महावने।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः।। २५।।

बाणों से फटे हुए हृदय वाले हाथियों और घोड़ों को तथा मेरे द्वारा मारे गये व्यक्तियों को भी जंगली पशु आज इधर-उधर घसीटेंगे। इस महावन में मैं अपने बाणों और धनुष के ऋण से सेना सहित भरत को मार कर उऋण हो जाऊँगा, इसमें कोई संशय नहीं है।

इक्यानवैवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण के रोष को शान्त करने के लिये भरत के सद्भाव का वर्णन करना। लक्ष्मण का लज्जित हो श्रीराम के पास खड़ा होना और भरत की सेना का पर्वत के नीचे छावनी डालना।

सुसंरब्धं तु भरतं लक्ष्मणं क्रोधमूर्च्छितम्।
रामस्तु परिसान्त्व्याथ वचनं चेदमब्रवीत्।। १।।
किमत्र धनुषा कार्यमसिना वा सचर्मणा।
महाबले महोत्साहे भरते स्वयमागते।। २।।

तब भरत के प्रति अच्छी तरह से क्रोध में डूबे हुए और उस क्रोध के कारण अचेतन से बने हुए लक्ष्मण को श्रीराम ने सान्त्वना देकर यह कहा कि जब महाबली और महा उत्साही भरत यहाँ स्वयं आ गये हैं, तो यहाँ धनुष, ढाल और तलवार का क्या काम है?

पितुः सत्यं प्रतिश्रुत्य हत्वा भरतमाहवे।
किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण।। ३।।
यद् द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत्।
नाहं तत् प्रतिगृह्णीयां भक्ष्यान् विषकृतानिव।। ४।।

पिता के सत्य को पूरा करने की प्रतिज्ञा करके और फिर भरत को युद्ध में मार कर मैं उस अपयश वाले राज्य का क्या करूँगा? अपने बान्धवों और मित्रों का विनाश करके जो सम्पत्ति प्राप्त होती है, मैं उसे विष मिश्रित भोजन की तरह से ग्रहण नहीं करूँगा।

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते।। ५।।
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे।। ६।।

हे लक्ष्मण! धर्म अर्थ, काम और पृथ्वी का राज्य भी मैं तुम लोगों के लिये चाहता हूँ, यह मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ। मैं सत्यता के लिये धनुष को स्पर्श करके यह कहता हूँ कि राज्य को भी मैं भाइयों के सुख और बढ़ोतरी के लिये ही चाहता हूँ।

नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा।
नहीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण।। ७।।
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किंचिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी।। ८।।

हे सौम्य! मेरे लिये समुद्र तक विस्तृत यह भूमि दुर्लभ नहीं है, पर हे लक्ष्मण! मैं अधर्म से इन्द्रत्व को भी नहीं चाहता! हे मान के योग्य! जो सुख मुझे भरत के, तुम्हारे और शत्रुघ्न के बिना प्राप्त होता हो, अग्नि उसको भस्म कर डाले।

मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः।
मम प्राणैः प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन्।। ९।।
श्रुत्वा प्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम्।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम।।१०।।
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथाऽऽगतः।।११।।

मैं समझता हूँ कि मेरे प्राणों से प्रिय भ्रातृवत्सल भरत अयोध्या में आकर और यह सुन कर कि मैं जानकी और तुम्हारे साथ वल्कल वस्त्र धारण कर वन में प्रवेश कर गया हूँ। हे पुरुषोत्तम! वह शोक से व्याकुल इन्द्रियों और स्नेह से भरे हृदय के साथ कुल धर्म को स्मरण करता हुआ हमसे मिलने के लिये यहाँ आ रहा है, किसी और कारण से नहीं आ रहा है।

अम्बां च केकयीं रुष्य भरतश्चाप्रियं वदन्।
प्रसाद्य पितरं श्रीमान् राज्यं मे दातुमागतः।।१२।।
प्राप्तकालं यथैषोऽस्मान् भरतो द्रष्टुमर्हति।
अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किंचिदाचरेत्।।१३।।

श्रीमान् भरत माता कैकेयी को क्रोध से अप्रिय बोल कर और पिता जी को प्रसन्न करके मुझे राज्य को देने के लिये आ रहा है। भरत हमसे मिलने के लिये उचित समय पर ही आ रहा है। वह हमारा मन से भी कुछ अहित नहीं कर सकता।

विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम्।
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद् विशङ्कसे।।१४।।
नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते।।१५।।

क्या भरत ने कभी तुम्हारा कुछ बुरा किया है, जो आज तुम उससे इतने डर रहे हो और उसके विषय में शंका कर रहे हो? तुम भरत से कोई कठोर या अप्रिय बात नहीं कहना। भरत से कही हुई बात मुझे कही हुई समझी जाएगी।

कथं तु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि।
भ्राता वा भ्रातरं हन्यात् सौमित्रे प्राणमात्मनः।। १६।।
यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम्।। १७।।
उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद्वचः।
राजयमस्मै प्रयच्छैति बाढमित्येव मंस्यते।। १८।।

हे सुमित्रानन्दन! किसी आपत्ति के आने पर पुत्र पिता की हत्या कैसे कर सकते हैं? या भाई अपने प्राण के समान भाई को कैसे मार सकता है? यदि तुम राज्य के लिये ऐसा कहते हो तो मैं भरत से कह दूँगा कि तुम इसे राज्य दे दो। हे लक्ष्मण! मेरे द्वारा यह कहने पर कि राज्य इसे दे दो, वह अच्छा ऐसा ही कह कर मेरी बात मान लेगा।

तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः।
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया।। १९।।
तद्वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा व्रीडितः प्रत्युवाच ह।
त्वां मन्ये द्रष्टुमायातः पिता दशरथः स्वयम्।। २०।।

धर्मशील भाई के द्वारा यह कहने पर उन्हीं की भलाई में लगे रहने वाले लक्ष्मण लज्जा के कारण अपने अंगों में ही मानो समा गये। वह बात सुन कर लज्जित होकर लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि मैं समझता हूँ कि आपको देखने के लिये पिता दशरथ स्वयं आ रहे हैं।

व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह।
एष मन्ये महाबाहुरिहास्मान् द्रष्टुमागतः।। २१।।
अथवा नौ ध्रुवं मन्ये मन्यमानः सुखोचितौ।
वनवासमनुध्याय गृहाय प्रतिनेष्यति।। २२।।
इमां चाप्येष वैदेहीमत्यन्तसुखसेविनीम्।
पिता मे राघवः श्रीमान् वनादादाय यास्यति।। २३।।

लक्ष्मण को लज्जित देख कर श्रीराम ने उत्तर दिया कि हाँ यह मैं मानता हूँ कि वे महाबाहु हमें देखने के लिये आये हैं अथवा हम दोनों को सुख भोगने के योग्य समझ कर मैं समझता हूँ कि वे वनवास के कष्टों को सोचते हुए हमें निश्चय ही घर लौटा ले जायेंगे। इस वैदेही को भी जो अत्यन्त सुख में रही मेरे पिता श्रीमान रघुनन्दन वन से लेकर जायेंगे।

भरतेनाथ संदिष्टा सम्मर्दो न भवेदिति।
समन्तात् तस्य शैलस्य सेना वासमकल्पयत्।। २४।।
अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनं पर्वतस्य ह।
पार्श्वे न्यविशदावृत्य गजवाजिनराकुला।। २५।।

उधर भरत के द्वारा यह संदेश देने पर कि पर्वत पर भीड़ और कोलाहल नहीं होना चाहिये, उस पर्वत के सामने सेना ने निवास कर लिया। इक्ष्वाकुवंशी राजा की हाथी, घोड़ों और मनुष्यों से भरी हुई सेना डेढ़ भोजन का स्थान घेर कर पर्वत के साथ पड़ाव डाले हुए थी।

बानवैवाँ सर्ग

भरत के द्वारा श्रीराम के आश्रम की खोज का प्रबन्ध और उन्हें आश्रम का दर्शन।

निवेश्य सेनां तु विभुः पद्भ्यां पादवतां वरः।
अभिगन्तुं स काकुत्स्थमियेष गुरुवर्तकम्।। १।।
निविष्टमात्रे सैन्ये तु यथोद्देशं विनीतवत्।
भरतो भ्रातरं वाक्यं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।। २।।

सेना को ठहरा कर उस प्रभावशाली भरत ने जो पैर वालों में श्रेष्ठ थे, पैदल ही गुरु की सेवा करने वाले ककुत्स्थवंशी राम के पास जाने की इच्छा की। जब सारी सेना यथास्थान नम्रता के साथ ठहर गयी, तब भरत ने भाई शत्रुघ्न को यह वाक्य कहा।

क्षिप्रं वनमिदं सौम्य नरसंघैः समन्ततः।
लुब्धैश्च सहितैरेभिस्त्वमन्वेषितुमर्हसि।। ३।।
गुहो ज्ञातिसहस्रेण शरचापासिपाणिना।
समन्वेषतु काकुत्स्थावस्मिन् परितृतः स्वयम्।। ४।।

हे सौम्य! तुम्हें लोगों के समूहों के साथ और निषादों के साथ इस वन में खोज करनी चाहिये। गुह अपने हजारों बन्धु बान्धवों के साथ धनुष बाण और तलवार लेकर स्वयं उन दोनों ककुत्स्थ वंशियों की खोज करें।

अमात्यैः सह पौरैश्च गुरुभिश्च द्विजातिभिः।
सह सर्वं चरिष्यामि पद्भ्यां परिवृतः स्वयम्।। ५।।
यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम्।
वैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्भविष्यति।। ६।।

मैं मंत्रियों, पुरवासियों, गुरुओं ब्राह्मणों से घिरा हुआ स्वयं ही पैदल इस सारे वन में विचरण करूँगा। मैं जब तक श्रीराम को, महाबलवान लक्ष्मण को और वैदेही को नहीं देख लूँगा, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।

यावन्न चन्द्रसंकाशं तद् द्रक्ष्यामि शुभाननम्।
भ्रातुः पद्मविशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति।। ७।।
सिद्धार्थः खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम्।
मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युति।। ८।।

जब तक मैं भाई के कमल के समान विशाल आँखों वाले, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख को नहीं देख लूँगा, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। सुमित्रा के महातेजस्वी पुत्र लक्ष्मण कृतार्थ हैं, जो वह निर्मल चन्द्रमा के समान कमल नयन राम के मुख को देखते हैं।

यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ।
शिरसा प्रग्रहीष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति।। ९।।
यावन्न राज्ये राज्यार्हः पितृपैतामहे स्थितः।
अभिषिक्तो जलक्लिन्नो न मे शान्तिर्भविष्यति।। १०।।

जब तक मैं भाई के राजाओं के लक्षणों से युक्त चरणों को सिर से स्पर्श नहीं कर लूँगा, मुझे शान्ति नहीं होगी। जब तक राज्य के योग्य वे श्रीराम, पिता और पितामह के राज्य पर बैठ कर अभिषेक के जल से स्नान नहीं कर लेंगे, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।

कृतकृत्या महाभागा वैदेही जनकात्मजा।
भर्तारं सागरान्तायाः पृथिव्या यानुगच्छति।। ११।।
कृतकार्यमिदं दुर्गवनं व्यालनिषेवितम्।
यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः।। १२।।

जनक की पुत्री सीता वास्तव में कृतार्थ हैं जो समुद्र पर्यन्त विस्तृत भूमि के स्वामी अपने पति के पीछे चलती हैं। सर्पों से सेवित यह दुर्गम वन भी कृतकृत्य है, जिसमें शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महाराज श्रीराम निवास करते हैं।

एवमुक्त्वा महाबाहुर्भरतः पुरुषर्षभः।
पद्भ्यामेव महातेजाः प्रविवेश महद् वनम्।। १३।।
स तानि द्रुमजालानि जातानि गिरि सानुषु।
पुष्पिताग्राणि मध्येन जगाम वदतां वरः।। १४।।

ऐसा कह कर वे महातेजस्वी, महाबाहु नरश्रेष्ठ पैदल ही उस महान वन में प्रविष्ट हो गये। बोलने वालों में श्रेष्ठ वे पर्वत शिखरों पर उत्पन्न उन वृक्षों के मध्य में से हो कर निकले जिनकी शाखाओं के अग्रभाग फूलों से भरे हुए थे।

स गिरेश्चित्रकूटस्य सालमारुह्य सत्वरम्।
रामाश्रमगतस्याग्रेर्ददर्श ध्वजमुच्छ्रितम्।। १५।।
तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान् मुमोद सहबान्धवः।
अत्र राम इति ज्ञात्वा गतः पारमिवाम्भसः।। १६।।

उन्होंने चित्रकूट के एक साल वृक्ष पर शीघ्रता से चढ कर राम के आश्रम से ऊपर उठते हुए धूएँ को देखा। उसको देख कर श्रीमान भरत बान्धवों के साथ अत्यन्त प्रसन्न हुए और यहाँ श्रीराम हैं, ऐसा जान कर उन्होंने ऐसा अनुभव किया मानो अथाह जलराशि को पार कर लिया हो।

स चित्रकूटे तु गिरौ निशम्य
रामाश्रमं पुण्यजनोपपन्नम्।
गुहेन सार्धं त्वरितो जगाम
पुनर्निवेश्यैव चमूं महात्मा।। १७।।

वे महात्मा चित्रकूट पर्वत पर पवित्र लोगों से युक्त राम के आश्रम के विषय में जान कर, सेना को पुनः स्थापित कर, गुह के साथ शीघ्रता से आश्रम की तरफ चल दिये।

तिरानवेंवाँ सर्ग

भरत का शत्रुघ्न आदि के साथ श्रीराम के आश्रम पर जाना, उनकी पर्णशाला को देखना और रोते हुए उनके चरणों पर गिर जाना। श्रीराम का उन सबको हृदय से लगाना।

ऋषिं वसिष्ठं संदिश्य मातॄर्मे शीघ्रमानय।
इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः।। १।।
सुमन्त्रस्त्वपि शत्रुघ्नमदूरादवपद्यत।
रामदर्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च।। २।।

गुरु वत्सल भरत ऋषि वसिष्ठ को यह सन्देश देकर कि आप माताओं को शीघ्रता से लाइये, वे जल्दी से आगे चल दिये। सुमन्त्र भी शत्रुघ्न के पीछे-पीछे चल रहे थे, भरत जी के समान उन्हें भी राम के दर्शन की प्यास थी।

गच्छन्नेव महाबाहुर्द्युतिमान् भरतस्तदा।
शत्रुघ्नं चाब्रवीद्धृष्टस्तानमात्यांश्च सर्वशः।। ३।।
मन्ये प्राप्ताः स्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत्।
नातिदूरे हि मन्येऽहं नदीं मन्दाकिनीमितः।। ४।।

जाते-जाते ही उन महाबाहु और तेजस्वी भरत ने प्रसन्न हो कर शत्रुघ्न से और उन सभी मन्त्रियों से कहा कि मैं समझता हूँ कि हम उस देश में आ पहुँचे हैं, जिसके बारे में भरद्वाज ऋषि ने बताया था। मैं मानता हूँ कि मन्दाकिनी नदी यहाँ समीप ही है।

उच्चैर्बद्धानि चीराणि लक्ष्मणेन भवेदयम्।
अभिज्ञानकृतः पन्था विकाले गन्तुमिच्छता।। ५।।
यमेवाधातुमिच्छन्ति तापसाः सततं वने।
तस्यासौ दृश्यते धूमः संकुलः कृष्णवर्त्मनः।। ६।।

ये ऊपर ऊँचाई पर बाँधे हुए चीर वस्त्र लक्ष्मण ने ही समय असमय में जाने वाले के लिये रास्ते की पहचान के लिये बाँधे होंगे। तपस्वी लोग वन में जिसका आधान सर्वदा करना चाहते हैं, उस अग्नि का यह गहरा धुँआ दिखाई दे रहा है।

अत्राहं पुरुषव्याघ्रं गुरुसत्कारकारिणम्।
आर्यं द्रक्ष्यामि संहृष्टं महर्षिमिव राघवम्।। ७।।
अथ गत्वा मुहूर्तं तु चित्रकूटं स राघवः।
मन्दाकिनीमनु प्राप्तस्तुं जनं चेदमब्रवीत्।। ८।।

यहाँ गुरुओं का सत्कार करने वाले पुरुष व्याघ्र आर्य श्रीराम को देखूँगा, जो महर्षियों के समान यहाँ प्रसन्नता से रहते हैं। इसके पश्चात् वे रघुनन्दन भरत एक मुहूर्त में मन्दाकिनी के किनारे विराजमान चित्रकूट पर्वत पर जा पहुँचे और अपने साथ वाले लोगों से इस प्रकार बोले।

जगत्यां पुरुषव्याघ्र आस्ते वीरासने रतः।
जनेन्द्रो निर्जनं प्राप्य धिङ्मे जन्म सजीवितम्।। ९।।
मत्कृते व्यसनं प्राप्तो लोकनाथो महाद्युतिः।
सर्वान् कामान् परित्यज्य वने वसति राघवः।। १०।।

वे नरेन्द्र पुरुष व्याघ्र इस निर्जन में आकर मेरे ही कारण वीरासन में आराम करते हुए बैठते हैं, इसलिये मेरे संसार में जन्म और जीवन को धिक्कार है। वे महातेजस्वी लोकनाथ, मेरे ही कारण से दुःखों को प्राप्त हुए हैं। वे राघव इस समय सारी कामनाओं का त्याग करके यहाँ वन में रह रहे हैं।

इति लोकसमाक्रुष्टः पादेष्वद्य प्रसादयन्।
रामं तस्य पतिष्यामि सीताया लक्ष्मणस्य च।। ११।।
एवं स विलपंस्तस्मिन् वने दशरथात्मजः।
ददर्श महतीं पुण्यां पर्णशालां मनोरमाम्।। १२।।

लोगों के द्वारा निन्दा को प्राप्त हुआ मैं श्रीराम को प्रसन्न करने के लिये आज उनके पैरों पर गिर जाऊँगा। मैं सीता लक्ष्मण के भी पैरों पर पडूँगा। इस प्रकार से विलाप करते हुए उन दशरथ जी के पुत्र भरत ने वन में एक बड़ी पवित्र और सुन्दर पर्णशाला को देखा।

सालतालाश्वकर्णानां पर्णैर्बहुभिरावृताम्।
विशालां मृदुभिस्तीर्णां कुशैर्वेदिमिवाध्वरे।। १३।।
प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम्।
ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने।। १४।।

वह पर्णशाला, शाल, ताल और अश्वकर्ण के बहुत सारे पत्तों से ढकी हुई थी और ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों यज्ञ में मुलायम कुशों से आवृत्त एक बड़ी वेदी हो। वहाँ उन्होंने ईशानकोण की तरफ से कुछ नीची विशाल और पवित्र वेदी भी देखी जिसमें अग्नि प्रज्वलित हो रही थी।

निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम्।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम्।। १५।।
कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम्।
ददर्श रामासीनमभितः पावकोपमम्।। १६।।

थोड़ी देर तक उस तरफ देखने पर भरत ने अपने गुरु श्रीराम को कुटी में बैठे हुए देखा, जिन्होंने जटामण्डल धारण किया हुआ था। काला मृगचर्म धारण किया हुआ था और चीर तथा वल्कल के वस्त्र पहन रखे थे। उन्होंने अपने सामने अग्नि के समान तेजस्वी श्रीराम को बैठे हुए देखा।

तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमाञ्शोकमोहपरिप्लुतः।
अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः कैकयीसुतः।। १७।।
दृष्ट्वैव विललापार्तो बाष्पसंदिग्धया गिरा।
अशक्नुवन् वारयितुं धैर्याद् वचनमब्रुवन्।। १८।।

उनको देखकर कैकेयी के पुत्र श्रीमान् धर्मात्मा भरत शोक और मोह से भरकर जोर से दौड़े। भाई को देखते ही वे दुःखी होकर विलाप करने लगे। वे धैर्य से अपने आँसुओं को न रोक सके और आँसुओं से भरी गद्गद् वाणी से कहने लगे कि –

यः संसदि प्रकृतिभिर्भवेद् युक्त उपासितुम्।
वन्यैर्मृगैरुपासीनः सोऽयमास्ते ममाग्रजः।। १९।।
वासोभिर्बहुसाहस्रैर्यो महात्मा पुरोचितः।
मृगाजिने सोऽयमिह प्रवस्ते धर्ममाचरन्।। २०।।

जो मेरे बड़े भाई राजसभा में प्रजाजनों से सम्मान पाने योग्य हैं वे इस समय जँगली पशुओं के साथ यहाँ बैठे हुए हैं। जो महात्मा पहले हजारों वस्त्रों को उपयोग

में लाते थे, वे अब धर्म का आचरण करते हुए यहाँ मृगचर्म में रह रहे हैं।

अधारयद् यो विविधाश्चित्राः सुमनसः सदा।
सोऽयं जटाभारमिमं सहते राघवः कथम्।। २१।।
यस्य यज्ञैर्यथादिष्टैर्युक्तो धर्मस्य संचयः।
शरीरक्लेशसम्भूतं स धर्मं परिमार्गते।। २२।।

जो पहले सदा अनेक प्रकार के सुन्दर फूल धारण किया करते थे, वे श्रीराम अब जटाओं का बोझ कैसे सहन कर रहे हैं? जिनके लिये विधि के अनुसार यज्ञों के द्वारा धर्म का पालन करना उचित है, वे ही अब शरीर को कष्ट पहुँचाकर धर्म का आचरण कर रहे हैं।

चन्दनेन महार्हेण यस्याङ्गमुपसेवितम्।
मलेन तस्याङ्गमिदं कथमार्यस्य सेव्यते।। २३।।
मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम्।। २४।।

बहुमूल्य चन्दन के द्वारा जिनके अंगों की सेवा की जाती थी, उन्हीं आर्य के अंग अब मैल मिट्टी से कैसे सेवित हो रहे हैं? श्रीराम सुख भोगने के योग्य हैं, पर मेरे कारण इस दुःख को प्राप्त हो रहे हैं। मुझ निर्दय के लोगों से निन्दित इस जीवन को धिक्कार है।

इत्येवं विलपन् दीनः प्रस्विन्नमुखपङ्कजः।
पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन्।। २५।।
दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः।
उक्त्वाऽऽर्येति सकृद् दीनं पुनर्नोवाच किंचन।। २६।।

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्।। २७।।

इस प्रकार दीनता से विलाप करते हुए भरत के मुख कमल पर पसीना आ गया था। वे भरत जी रोते हुए श्री राम के पैरों को प्राप्त करने से पहले ही गिर पड़े। दुःख से अभितप्त महाबली राजपुत्र भरत एक बार दीनता के साथ 'आर्य' ऐसा बोल कर पुनः कुछ न बोल सके। शत्रुघ्न भी रोते हुए श्रीराम के चरणों पर गिर पड़े। श्रीराम ने उन दोनों को छाती से लगा लिया और उनकी आँखों से भी आँसू बहने लगे।

ततः सुमन्त्रेण गुहेन चैव
समीयत् राजसुतावरण्ये।
दिवाकरश्चैव निशाकरश्च
यथाम्बरे शुक्रबृहस्पतिभ्याम्।। २८।।

इसके पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मण, सुमन्त्र और गुह से उस वन में मिले, जैसे सूर्य और चन्द्रमा आकाश में शुक्र और बृहस्पति से मिल रहे हो।

तान् पार्थिवान् वारणयूथपार्हान्
समागतांस्तत्र महत्यरण्ये।
वनौकसस्तेऽभिसमीक्ष्य सर्वे
त्वश्रूण्यमुञ्चन् प्रविहाय हर्षम्।। २९।।

यूथपति गजराज की सवारी के योग्य उन राजकुमारों को उस महान वन में आया हुआ देख कर वे सारे वनवासी लोग हर्ष को छोड़ कर आँसू बहाने लगे।

चौरानवेंवाँ सर्ग

श्रीराम का भरत को कुशल प्रश्न के बहाने राजनीति का उपदेश करना।

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम्।
अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम्।। १।।
चिरस्य बत पश्यामि दूराद् भरतमागतम्।
दुष्प्रतीकमरण्येऽस्मिन् किं तात वनमागतः।। २।।

इसके पश्चात् राम ने उन रघुनन्दन भरत के सिर को सूँघ कर, छाती से लगा कर और गोद में बैठा कर आदर से पूछा कि मैं दूर से आये हुए भरत को बहुत दिनों के बाद इस वन में देख रहा हूँ। ये दुर्बल हो गये हैं। हे तात! तुम वन में क्यों आये हो?

कच्चित् सौम्य न ते राज्यं भ्रष्टं बालस्य शाश्वतम्।
कच्चिच्छुश्रूषसे तात पितुः सत्यपराक्रम।। ३।।
कच्चिद् दशरथो राजा कुशली सत्यसंगरः।
स कच्चिद् ब्राह्मणो विद्वान् धर्मनित्यो महाद्युतिः।। ४।।
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत् तात पूज्यते।

हे सौम्य! तुम अभी बालक हो, इसलिये तुम्हारा परम्परा से चला आने वाला राज्य नष्ट तो नहीं हो गया? हे तात! क्या तुम सत्य पराक्रमी पिता की सेवा करते हो? वे सत्यसंघ राजा दशरथ क्या कुशलपूर्वक हैं? क्या

तुम उन विद्वान महातेजस्वी वसिष्ठ जी की पूजा करते हो? जो सदा धर्म में लगे रहते हैं और इक्ष्वाकुओं के उपाध्याय हैं।

तात कच्चिच्च कौसल्या सुमित्रा च प्रजावती।। ५।।
सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकेयी।
कच्चिद् विनयसम्पन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः।। ६।।
अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः।

हे तात! क्या कौसल्या और उत्तम सन्तान वाली सुमित्रा सुख से हैं? क्या आर्या कैकेयी प्रसन्न है? क्या हमारे वे पुरोहित जो विनयशील हैं, उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हैं, विद्वान हैं, किसी से द्वेष नहीं रखते हैं और धर्म पर दृष्टि रखते हैं, तुम्हारे द्वारा सत्कृत होते रहते हैं?

कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः।। ७।।
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा।
कच्चिद् देवान् पितृन् भृत्यान् गुरून् पितृसमानपि।। ८।।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे।
इष्वस्त्रवरसम्पन्नमर्थशास्त्रविशारदम् ।
सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित् त्वं तात मन्यसे।। ९।।

तुमने विधि को जानने वाले मतिमान और कोमल स्वभाव वाले जिस ब्राह्मण को अग्निहोत्र के लिये नियुक्त किया हुआ है, वह क्या तुम्हें समय पर सूचना देते हैं कि अमुक प्रकार की आहुतियाँ दे दी गई हैं और भविष्य में अमुक प्रकार की दी जायेंगी? क्या तुम वृद्धों, चिकित्सकों और ब्राह्मणों का सम्मान करते हो? जो श्रेष्ठ बाण विद्या से सम्पन्न हैं और जो अर्थशास्त्र विशारद हैं, उन सुधन्वा नाम के आचार्य का क्या तुम सम्मान करते हो?

कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः।। १०।।
मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।
सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः।। ११।।

हे तात! क्या तुमने अपने समान शूरवीर, विद्वान, जितेन्द्रिय, कुलीन और संकेत से ही समझने वाले पुरुषों को ही मन्त्री बनाया है? हे राघव! श्रेष्ठ मन्त्रियों और शास्त्रों में विद्वान आमात्यों द्वारा अच्छी तरह से गुप्त रखी हुई मंत्रणा ही राजाओं की विजय का कारण बनती है।

कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित् कालेऽवबुध्यसे।
कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थनैपुणम्।। १२।।
कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह।
कच्चित् ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परि ावति।। १३।।

कभी तुम नींद के वश में तो नहीं होते हो? क्या तुम समय पर जाग जाते हो? क्या रात्रि के पिछले पहर में तुम अर्थ की वृद्धि के विषय में विचार करते हो? क्या तुम केवल अकेले ही तो विचार नहीं करते? क्या तुम बहुत से लोगों के साथ भी तो विचार नहीं करते? क्या तुम्हारी गुप्त मन्त्रणा सारे देश में तो नहीं फैल जाती?

कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम्।
क्षिप्रमारभसे कर्म न दीर्घयसि राघव।। १४।।
कच्चिन्नु सुकृतान्येव कृतरूपाणि वा पुनः।
विदुस्ते सर्वकार्याणि न कर्तव्यानि पार्थिवाः।। १५।।

क्या तुम ऐसे कार्य को निश्चय करके जिसका साधन छोटा और फल बड़ा हो, प्रारम्भ करने में देर तो नहीं करते? उसे जल्दी प्रारम्भ कर देते हो? क्या तुम्हारे कार्य दूसरे राजाओं को तभी ज्ञात होते हैं? जब वे पूरे हो जायें या पूरे होने वाले हों? कार्य करने से पूर्व तो नहीं पता पड़ जाते?

कच्चिन्न तर्कैर्युक्त्या वा ये चाप्यपरिकीर्तिताः।
त्वया वा तव वामात्यैर्बुध्यते तात मन्त्रितम्।। १६।।
कच्चित् सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम्।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निः श्रेयसं महत्।। १७।।

क्या तुम्हारे द्वारा या तुम्हारे मंत्रियों द्वारा की हुई मन्त्रणा को प्रकट न करने पर भी लोग तर्क और युक्तियों द्वारा तो उसे नहीं जान लेते? क्या हजारों मूर्खों की अपेक्षा एक विद्वान को पसन्द करते हो? एक पण्डित भी अर्थ संकट के समय बड़ा कल्याण कर सकता है।

सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः।
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता।। १८।।
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्।। १९।।

राजा यदि हजार या दस हजार मूर्खों को भी अपने पास रखे, वे उसकी कोई सहायता नहीं कर सकते। पर यदि एक भी अमात्य उसका मेधावी, शूर, दक्ष और बुद्धिमान हो तो वह राजा या राजपुत्र को महान ऐश्वर्य की प्राप्ति करा सकता है।

कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजिताः।। २०।।
अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन्।
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसि कर्मसु।। २१।।

क्या तुम प्रधान कर्मचारियों को ही उच्चकोटि के कार्यों में, मध्यम श्रेणी के कर्मचारियों को मध्यम कोटि के कार्यों में और निम्न श्रेणी के कर्मचारियों को निम्न श्रेणी के कार्यों में लगाते हो? क्या तुम श्रेष्ठ कार्यों में श्रेष्ठ, पवित्र, रिश्वत न लेने वाले, पिता और पितामह के समय से चले आ रहे मन्त्रियों को ही लगाते हो।

कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजिताः प्रजाः।
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकयीसुत।। २२।।
कच्चित् त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा।
उग्रप्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः।। २३।।

क्या तुम्हारी प्रजा उग्र दण्ड से अत्यधिक उत्तेजित होकर मन्त्रियों का तिरस्कार तो नहीं करती? जैसे याजक पतित यजमान का और स्त्रियाँ कामचारी पुरुष का तिरस्कार कर देती हैं, उसी प्रकार क्या तुम्हारे कठोरता पूर्वक अधिक कर लेने से प्रजा तुम्हारा तिरस्कार तो नहीं करती?

उपायकुशलं वैद्यं भृत्यसंदूषणे रतम्।
शूरमैश्वर्यकामं च यो हन्ति न स हन्यते।। २४।।
कच्चिद् धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान् मतिमाञ्छुचिः।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः।। २५।।

जो राजा ऐसे पुरुष को, जो साम दाम आदि उपायों के प्रयोग में कुशल हो, विद्वान हो, भृत्यों को बहकाने में लगा हुआ हो, शूर हो, ऐश्वर्य को चाहता हो, नहीं मार देता वह उसके द्वारा मारा जाता है। क्या तुमने सन्तुष्ट रहने वाले, शूरवीर, धैर्यवान, मतिमान और पवित्र, अच्छे कुल में उत्पन्न, अपने में अनुरक्त चतुर व्यक्ति को सेनापति बनाया है?

बलवन्तश्च कच्चित् ते मुख्या युद्धविशारदाः।
दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः।। २६।।
कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे।। २७।।

क्या तुम्हारे प्रमुख युद्धविशारद योद्धा लोग बलवान हैं? क्या तुमने उनके शौर्य की परीक्षा कर ली है? क्या तुम उनका सत्कार कर सम्मानित करते रहते हो? क्या तुम सेना के लोगों को उनका यथोचित वेतन और भत्ता, जो उन्हें समय पर देना चाहिये, दे देते हो? विलम्ब तो नहीं करते?

कालातिक्रमणे ह्येव भक्तवेतनयोर्भृताः।
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् कृतः।। २८।।
कच्चित् सर्वेऽनुरक्तास्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः।
कच्चित् प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति समाहिताः।। २९।।

भत्ते और वेतन देने में विलम्ब करने पर सेवक अपने स्वामी पर भी अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं और उससे उनका महान अनर्थ हो जाता है। तुम्हारे उत्तम कुल में उत्पन्न हुए प्रधान-अधिकारी क्या तुम्हारे प्रति प्रेम करते हैं? क्या वे एकचित्त होकर तुम्हारे लिये प्राणों को छोड़ने के लिये उद्यत रहते हैं?

कच्चिज्जानपदो विद्वान् दक्षिणः प्रतिभानवान्।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः।। ३०।।
कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः।। ३१।।

हे भरत! तुमने राजदूत के पद पर क्या ऐसे प्रतिभाशाली और पण्डित व्यक्ति को प्रतिष्ठित किया है, जो अपने देश का निवासी, विद्वान, चतुर और जैसा कहा जाये वैसा ही दूसरों से कहने वाला है। क्या तुम शत्रु पक्ष के अठारह और अपने पक्ष के पन्द्रह तीर्थों की तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरों के द्वारा जाँच कराते रहते हो?

कच्चिद् व्यापास्तानहितान् प्रतियातांश्च सर्वदा।
दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन।। ३२।।
कच्चिन्न लोकायतिकान् ब्राह्मणांस्तात सेवसे।
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः।। ३३।।

जिस शत्रुओं को राज्य से निकाल दिया गया है, वे यदि वापिस लौट कर आते हैं, तो तुम उन्हें कमजोर समझ कर हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! उनकी उपेक्षा तो नहीं करते? क्या तुम कभी नास्तिक ब्राह्मणों को तो साथ नहीं रखते। ये बच्चे के समान अज्ञानी होने पर भी अपने आपको पण्डित मानने वाले और अनर्थ कराने में चतुर होते हैं।

धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते।। ३४।।
वीरैरध्युषितां पूर्वमस्माकं तात पूर्वकैः।
सत्यनामां दृढद्वारां हस्त्यश्वरथसंकुलाम्।। ३५।।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः स्वकर्मनिरतैः सदा।
जितेन्द्रियैर्महोत्साहैर्वृतामार्यैः सहस्रशः।। ३६।।
प्रसादैर्विविधाकारैर्वृतां वैद्यजनाकुलाम्।
कच्चित् समुदितां स्फीतामयोध्यां परिरक्षसे।। ३७।।

ये नास्तिक लोक वेदादि प्रमुख धर्मशास्त्रों के प्रति दुर्भावना रखते हैं और तर्क बुद्धि को प्राप्त कर उनके

सहारे व्यर्थ ही वितण्डा किया करते हैं। अयोध्या नगरी हमारे पुराने पूर्वजों की भूमि है। यह वीरों का निवास स्थान है। यह अपने नाम को सार्थक करने वाली है। इसके किले के द्वार दृढ़ हैं। यह हाथी रथ और घोड़ों से भरी हुई है। यह हजारों अपने-अपने कर्तव्य में लगे हुए, सदा जितेन्द्रिय, महान उत्साही, श्रेष्ठ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों से युक्त है। इसमें विविध आकार के प्रासाद सुशोभित हैं। यह विद्वानों से भरी हुई है। ऐसी समृद्धिशाली और अभ्युदयवाली अयोध्या की रक्षा तुम अच्छी तरह से करते हो न?

कच्चिच्चैत्यशतैर्जुष्टः सुनिविष्टजनाकुलः।
देवस्थानैः प्रपाभिश्च तटाकैश्चोपशोभितः।। ३८।।
प्रहृष्टनरनारीकः समाजोत्सवशोभितः।
सुकृष्टसीमापशुमान् हिंसाभिरभिवर्जितः।। ३९।।
अदेवमातृको रम्यः श्वापदैः परिवर्जितः।
परित्यक्तो भयैः सर्वैः खनिभिश्चोपशोभितः।। ४०।।
विवर्जितो नरैः पापैर्मम पूर्वैः सुरक्षितः।
कच्चिज्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव।। ४१।।

हे रघुनन्दन! क्या हमारा कोसलदेश, जिसमें सैकड़ों आराधना स्थल हैं, जहाँ लोगों का समुदाय अच्छी तरह से निवास करता है। जो अनेक विद्वानों की निवास भूमि, प्याऊ और तालाबों से सुशोभित हैं! जहाँ के नर नारियाँ सदा प्रसन्न रहते हैं। जहाँ अनेक सामाजिक उत्सव शोभा बढ़ाते हैं, जहाँ अच्छी तरह से जुताई करने वाले पशु हैं, जहाँ हिंसा नहीं होती। जहाँ खेती वर्षा जल पर निर्भर नहीं है, जो मनोहर है, जो हिंसक पशुओं से रहित है, जहाँ किसी भी प्रकार का भय नहीं है, जहाँ अनेक प्रकार की खानें हैं, जहाँ पापी मनुष्य नहीं है। जो हमारे पूर्वजों के द्वारा सुरक्षित है, वह सुखपूर्वक और धन धान्य से युक्त हो कर बस रहा है?

कच्चित् ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते।। ४२।।
तेषां गुप्तिपरीहारैः कच्चित् ते भरणं कृतम्।
रक्ष्या हि राज्ञा धर्मेण सर्वे विषयवासिनः।। ४३।।

क्या खेती और गौपालन के द्वारा जीविका चलाने वाले वैश्य लोग सारे तुम्हारे प्रेम पात्र हैं? लोग अपने व्यापार में लगे रहने पर ही सुख को प्राप्त करते हैं? उनको इष्ट कामनाओं की प्राप्ति करा कर तथा उनके अनिष्ट को करने वाली बातों को निवारण कर तुम उनका भरण करते हो? राजा को सारे ही देशवासियों की रक्षा करनी चाहिये।

कच्चिन्नागवनं गुप्तं कच्चित् ते सन्ति धेनुकाः।
कच्चिन्न गणिकाश्वानां कुञ्जराणां च तृप्यसि।। ४४।।
कच्चिद् दर्शयसे नित्यं मानुषाणां विभूषितम्।
उत्थायोत्थाय पूर्वाह्ने राजपुत्र महापथे।। ४५।।

क्या तुम्हारे हाथियों के वन तो सुरक्षित हैं? क्या तुम्हारे पास दूध देने वाली गायें पर्याप्त मात्रा में हैं? क्या तुम हथिनियों, हाथियों और घोड़ों का संग्रह करने में सन्तुष्ट तो नहीं हो जाते? हे राजपुत्र? क्या तुम नित्य उठ कर अच्छे वस्त्रों से भूषित होकर दिन के पूर्व भाग में राजपथ पर मनुष्यों को दर्शन देते हो?

कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षास्तेऽविशङ्कया।
सर्वे वा पुनरुत्सृष्टा मध्यमेवात्र कारणम्।। ४६।।
कच्चिद् दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः।
यन्त्रैश्च प्रतिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः।। ४७।।

क्या सारे कर्मचारी कार्य में लगे हुए बिना किसी डर और आशंका के तुम्हारे सामने तो नहीं आ जाते? या डर के कारण तुम से बिल्कुल ही दूर तो नहीं रहते? यहाँ मध्यम अवस्था ही अभ्युदय का कारण होती है। क्या तुम्हारे सारे किले धन, धान्य, शस्त्रास्त्रों, जल, यन्त्रों, शिल्पियों और धनुर्धरों से भरे रहते हैं?

आयस्ते विपुलः कच्चित् कच्चिदल्पतरो व्ययः।
अपात्रेषु न ते कच्चित् कोषो गच्छति राघव।। ४८।।
देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु च।
योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद् गच्छति ते व्ययः।। ४९।।

हे राघव! क्या तुम्हारी आय अधिक और व्यय कम है? क्या तुम्हारा धन अपात्रों पर तो व्यय नहीं हो जाता? क्या तुम्हारा धन विद्वानों, वृद्धों, ब्राह्मणों, अतिथियों, योद्धाओं और मित्रों पर ही व्यय होता है?

कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा।
अदृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद् बध्यते शुचिः।। ५०।।
गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः।
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ।। ५१।।

कहीं श्रेष्ठ और शुद्धात्मा लोग दुष्टों द्वारा मिथ्यादोषारोपित तो नहीं कर दिये जाते और कहीं शास्त्रज्ञों द्वारा लोभवश बिना जाँच किये उन पवित्रात्माओं को दण्ड तो नहीं दे दिया जाता? क्या कहीं ऐसे चोर को जो रंगे हाथ पकड़ा गया है या छिपकर चोरी करते हुए देखा गया हो या पूछताछ के समय युक्तियों से जिसकी चोरी सिद्ध हो गयी हो, धन के लोभ से बिना दण्ड दिये छोड़ तो नहीं दिया जाता?

व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्बलस्य च राघव।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः।।५२।।
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि राघव।
तानि पुत्रपशून् घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः।।५३।।

हे राघव! कभी किसी धनी और निर्धन में कोई झगड़ा हो तो तुम्हारे विद्वान अमात्य लोग क्या धन के लोभ से रहित होकर उस पर विचार करते हैं? हे राघव! जब मिथ्या दोषारोपण कर किसी को दण्ड दिया जाता है, तब उस निरपराध के बहते हुए आँसू उस पक्षपात पूर्ण राज्य करने वाले राजा के पुत्रों और पशुओं का विनाश कर देते हैं।

कच्चिद् वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यान् मुख्यांश्च राघव।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्बुभूषसे।।५४।।
कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः।
उभौ वा प्रीतिलोभेन कामेन न विबाधसे।।५५।।

क्या तुम बूढ़ों, बच्चों और प्रधान वैद्यों का मान, मानसिक प्रेम, और वाणी से सत्कार करते रहते हो? क्या अर्थ के द्वारा धर्म को, या धर्म के द्वारा अर्थ को या धर्म और अर्थ दोनों को आसक्ति, लोभ, और कामनाओं के द्वारा अवरुद्ध तो नहीं करते?

कच्चिदर्थं च कामं च धर्मं च जयतां वर।
विभज्य काले कालज्ञ सर्वान् वरद सेवसे।।५६।।
कच्चित् ते ब्राह्मणाः शर्म सर्वशास्त्रार्थकोविदाः।
आशंसन्ते महाप्राज्ञ पौरजानपदैः सह।।५७।।

हे विजय प्राप्त करने वालों में श्रेष्ठ और समयोचित कर्त्तव्य को जानने वाले! क्या तुम अर्थ, काम और धर्म के समय का विभाग कर तीनों का उचित समय में सेवन करते हो? हे महाप्राज्ञ! क्या तुम्हारे राज्य के सारे शास्त्रों के विद्वान ब्राह्मण लोग पुरवासियों और देशवासियों के साथ तुम्हारे लिये आशीर्वाद देते हैं?

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम्।।५८।।
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मन्त्रणम्।
निश्चितानामनारम्भं मन्त्रस्यापरिरक्षणम्।।५९।।
मङ्गलाद्यप्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः।
कच्चित् त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश।।६०।।

राजाओं के ये चौदह दोष हैं १. नास्तिकता, २. असत्य, ३. क्रोध, ४. प्रमाद, ५. धीरे कार्य करना, ६. ज्ञानियों से न मिलना, ७. आलस्य, ८. पाँचों इन्द्रियों के बस में होना, ९. राज्य के कार्यों के विषय में अकेले ही विचार करना, १०. अज्ञानी लोगों से मन्त्रणा करना, ११. निश्चित किये कार्य को आरम्भ न करना, १२. मन्त्रणा को गुप्त न रखना, १३. माँगलिक कार्यों का अनुष्ठान न करना, १४. सारे शत्रुओं पर एक साथ चढ़ाई कर देना। क्या तुमने इन दोषों का परित्याग किया हुआ है?

दशपञ्चचतुर्वर्गान् सप्तवर्गं च तत्त्वतः।
अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्रश्च राघव।।६१।।
इन्द्रियाणां जयं बुद्ध्वा षाड्गुण्यं दैवमानुषम्।
कृत्यं विंशतिवर्गं च तथा प्रकृतिमण्डलम्।।६२।।
यात्रादण्डविधानं च द्वियोनी संधिविग्रहौ।
कच्चिदेतान् महाप्राज्ञ यथावदनुमन्यसे।।६३।।

हे महाप्राज्ञ भरत! क्या तुम राजा के लिये त्रिवर्ग, चतुर्वर्ग, पंचवर्ग, सप्तवर्ग, अष्टवर्ग, दशवर्ग, तीन विद्या, बुद्धि के द्वारा इन्द्रिय विजय, छैः गुण, दैवी और मानुषी बाधाएँ, नीति पूर्ण कार्य, विंशतिवर्ग, प्रकृति मंडल, यात्रा, दण्डविधान, दो-दो गुणों की योनिभूत सन्धि और विग्रह इन सबकी तरफ यथार्थ रूप से ध्यान देते हो? इनमें से त्यागने योग्य दोषों को त्यागकर गुणों को ग्रहण करते हो?

मन्त्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा।
कच्चित् समस्तैर्व्यस्तैश्च मन्त्रं मन्त्रयसे बुध।।६४।।
कच्चित् ते सफला वेदाः कच्चित् ते सफलाः क्रियाः।
कच्चिदेषैव ते बुद्धिर्यथोक्ता मम राघव।।६५।।
आयुष्या च यशस्या च धर्मकामार्थसंहिता।

हे विद्वान! क्या तुम अपने उद्देश्य में तीन या चार मन्त्रियों के साथ अलग-अलग और इकट्ठे सबके साथ मन्त्रणा करते हो? क्या तुम वेदों का अनुसरण कर उन्हें सफल करते हो? क्या तुम्हारी सारी क्रियाएँ सफल होती हैं? क्या जैसा मैंने अब कहा है, वैसा ही विचार तुम्हारा भी है? ये विचार आयु, यश, धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि करने वाले हैं।

यां वृत्तिं वर्तते तातो यां च नः प्रपितामहः।।६६।।
तां वृत्तिं वर्तसे कच्चिद् या च सत्पथगा शुभा।
कच्चित् स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव।
कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः सम्प्रयच्छसि।।६७।।

जिस मार्ग का हमारे पिता अनुसरण करते हैं, जिसका हमारे पितामह ने अनुसरण किया है, क्या तुम उसी सत्य

और शुभ मार्ग पर चलते हो? क्या स्वादिष्ट भोजन को तुम अकेले ही तो नहीं खा जाते? क्या आशा रखने वाले मित्रों को भी उसे देते हो?

राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा
महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम्।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथाव-
दितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान्।। ६८।।

भूमि का स्वामी, दण्ड को धारण करने वाला राजा प्रजाओं का धैर्य से पालन कर सारी भूमि को प्राप्त कर लेता है और वह विद्वान मृत्यु के पश्चात् उत्तम गति को प्राप्त होता है।

पिचानवेंवाँ सर्ग

भरत का श्रीराम को पिता की मृत्यु का समाचार बताना और उन सबका विलाप करना।

रामस्य वचनं श्रुत्वा भरतः प्रत्युवाच ह।
किं मे धर्माद् विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति।। १।।
शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राजान् न कनीयान् भवेन्नृपः।। २।।

श्रीराम की बातें सुनकर भरत जी ने उत्तर दिया कि जब मैं धर्म से विहीन हूँ, तो मेरे लिये राजधर्म की क्या आवश्यकता है? हे नरश्रेष्ठ! हमारे यहाँ सदा यह धर्म चला आया है कि बड़े पुत्र के विद्यमान रहते हुए छोटा पुत्र राजा नहीं हो सकता।

स समृद्धां मया सार्धमयोध्यां गच्छ राघव।
अभिषेचय चात्मानं कुलस्यास्य भवाय नः।। ३।।
राजानं मानुषं प्राहुर्देवत्वे सम्मतो मम।
यस्य धर्मार्थसहितं वृत्तमाहुरमानुषम्।। ४।।

इसलिये वे सबसे बड़े आप हे राघव! मेरे साथ उस समृद्धि युक्त अयोध्या को चलिये और हमारे कुल के अभ्युदय के लिये अपना अभिषेक कराइये। राजा को मनुष्य कहते हैं, पर मेरे विचार में वह देवता होता है क्योंकि उसका धर्म और अर्थ युक्त जो आचरण बताया गया है वह साधारण मनुष्य के लिये असम्भव है।

केकयस्थे च मयि तु त्वयि चारण्यमाश्रिते।
धीमान् स्वर्गं गतो राजा याजजूकः सतां मतः।। ५।।
त्वामेव शोचंस्तव दर्शनेप्सु-
स्त्वय्येव सक्तामनिवर्त्य बुद्धिम्।
त्वया विहीनस्तव शोकरुग्ण-
स्त्वां संस्मरन्नेव गतः पिता ते।। ६।।

जब मैं केकय देश में था और आप वन में आ गये, तो सत्पुरुषों द्वारा सम्मानित और यज्ञों के कर्ता श्रीमान राजा स्वर्ग को चले गये। आपके लिये शोक करते हुए, आपके दर्शन की इच्छा रखते हुए, आप में ही लगी हुई बुद्धि को आपकी ओर से न हटा कर, आपसे रहित हो, आपके शोक में बीमार होकर आपके पिता आपको याद करते हुए ही चले गये।

तां श्रुत्वा करुणां वाचं पितुर्मरणसंहिताम्।
राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतनः।। ७।।
तं तु वज्रमिवोत्सृष्टमाहवे दानवारिणा।
वाग्वज्रं भरतेनोक्तममनोज्ञं परंतपः।। ८।।
प्रगृह्य रामो बाहू वै पुष्पिताङ्ग इव द्रुमः।
वने परशुना कृत्तस्तथा भुवि पपात ह।। ९।।

भरत जी के द्वारा कही हुई उस पिता की मृत्यु सूचना से युक्त करुणा से भरी हुई वाणी को सुन कर श्रीराम मूर्च्छित हो गये। युद्ध में दानव शत्रु इन्द्र के द्वारा चलाये गये वज्र के समान भरत के द्वारा कहे गये उस दुखदायक वाणी रूपी वज्र को सुन कर परंतप श्रीराम अपनी दोनों बाहें ऊपर उठा कर भूमि पर ऐसे ही गिर पड़े जैसे फूलों वाली डालियों वाला कोई वृक्ष कुल्हाड़े से काटे जाने पर गिर पड़ता है।

तथा हि पतितं रामं जगत्यां जगतीपतिम्।
कूलघातपरिश्रान्तं प्रसुप्तमिव कुञ्जरम्।। १०।।
भ्रातरस्ते महेष्वासं सर्वतः शोककर्शितम्।
रुदन्तः सह वैदेह्या सिषिचुः सलिलेन वै।। ११।।

पृथिवीपति श्रीराम को इस प्रकार पृथिवी पर पड़ा हुआ, जैसे नदी के किनारे को दाँतों से तोड़ने के परिश्रम से कोई हाथी थक कर सो रहा हो, देखकर उस शोक से पीड़ित महाधनुर्धर को वे सारे भाई सीता जी के साथ घेर कर रोते हुए आँसुओं के जल से सींचने लगे।

स तु संज्ञां पुनर्लब्ध्वा नेत्राभ्यामश्रुमुत्सृजन्।
उपाक्रामत काकुत्स्थः कृपणं बहु भाषितुम्।। १२।।
किं नु तस्य मया कार्यं दुर्जातेन महात्मनः।
यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः।। १३।।
अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा त्वयानघ।
शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः।। १४।।

कुछ देर बाद होश में आकर वे काकुत्स्थ श्रीराम आँखों से आँसू बहाते हुए दीनता के साथ बहुत प्रकार से विलाप करने लगे। वे कहने लगे कि हाय मेरे जैसे दुष्टता के साथ जन्म लेने वाले ने उन महात्मा का कौन सा कार्य पूरा किया है? वे मेरे ही शोक में मरे और मैं उनका अन्तिम संस्कार भी न कर सका। हे भरत! तुम कृतार्थ हो जो तुमने और शत्रुघ्न ने उनके मृत्यु उपरान्त सारे कार्य करके उनका सत्कार किया है।

निष्प्रधानामनेकाग्रां नरेन्द्रेण विना कृताम्।
निवृत्तवनवासोऽपि नायोध्यां गन्तुमुत्सहे।। १५।।
समाप्तवनवासं मामयोध्यायां परंतप।
कोऽनुशासिष्यति पुनस्ताते लोकान्तरं गते।। १६।।

राजा के बिना अयोध्या अपने प्रधान शासक से रहित होकर व्याकुल हो रही है। ऐसी अयोध्या में तो अब वनवास की समाप्ति पर भी जाने की मेरी इच्छा नहीं होगी? हे परंतप भरत! वनवास समाप्त होने पर यदि मैं अयोध्या जाऊँ तो पिता जी के दिवंगत हो जाने पर कौन मुझे कर्तव्य पालन के लिये कहेगा?

पुरा प्रेक्ष्य सुवृत्तं मां पिता यान्याह सान्त्वयन्।
वाक्यानि तानि श्रोष्यामि कुतः कर्ण सुखान्यहम्।। १७।।
एवमुक्त्वाथ भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः।
उवाच शोकसंतप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।। १८।।

पहले मेरे अच्छे कार्य को देख कर पिता जी मुझे सान्त्वना देते हुए जो कानों को सुख देने वाली बातें कहा करते थे, अब उन बातों को कहाँ से सुनूँगा? भरत से ऐसा कह कर शोक से सन्तप्त श्रीराम पूर्णचन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली अपनी पत्नी से कहने लगे।

सीते मृतस्ते श्वशुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण।
भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपतेः।। १९।।
ततो बहुगुणं तेषां बाष्पं नेत्रेष्वजायत।
तथा ब्रुवति काकुत्स्थे कुमाराणां यशस्विनाम्।। २०।।

हे सीता! तुम्हारे ससुर चल बसे। हे लक्ष्मण! अब तुम पिता के बिना हो गये हो। भरत पृथिवीपति के स्वर्ग जाने की यह दुःख भरी बात कह रहे हैं। श्री राम के ऐसा कहने पर उन यशस्वी कुमारों की आँखों से और अनेक गुणा अधिक आँसू बहने लगे।

सा सीता स्वर्गतं श्रुत्वा श्वशुरं तं महानृपम्।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां न शशाकेक्षितुं प्रियम्।। २१।।
तेषां तु रुदतां शब्दात् प्रतिशब्दोऽभवद् गिरौ।
भ्रातॄणां सह वैदेह्या सिंहानां नर्दतामिव।। २२।।

अपने ससुर महाराज दशरथ को स्वर्ग में गया हुआ सुन कर वैदेही अपने आँसू भरे नेत्रों से रोती हुई पति की तरफ देख न सकी। सीता जी के साथ उन चारों रोते हुए भाइयों की रुदनध्वनि पर्वत में दहाड़ते हुए सिंहों की ध्वनि के समान गूँज रही थी।

छियानवैवाँ सर्ग

वसिष्ठ जी के साथ आती हुई कौशल्या का मन्दाकिनी के तट पर सुमित्रा आदि के सकक्ष दुःखपूर्ण उद्गार। श्रीराम लक्ष्मण और सीता के द्वारा माताओं की चरणवन्दना तथा वसिष्ठ जी को प्रणाम करके श्रीराम आदि का सबके साथ बैठना।

वसिष्ठः पुरतः कृत्वा दारान् दशरथस्य च।
अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्षितः।। १।।
राजपत्न्यश्च गच्छन्त्यो मन्दं मन्दाकिनीं प्रति।
ददृशुस्तत्र तत् तीर्थं रामलक्ष्मणसेवितम्।। २।।

वसिष्ठ जी तब दशरथ जी की पत्नियों को आगे कर श्रीराम को देखने की इच्छा से श्रीराम के उस निवास स्थान की ओर चले। राजा की पत्नियाँ धीरे-धीरे चलती हुई मन्दाकिनी नदी के किनारे पर पहुँची, जहाँ उन्होंने उस स्नान स्थल को देखा, जहाँ राम लक्ष्मण स्नान किया करते थे।

कौसल्या बाष्पपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता।
सुमित्रामब्रवीद् दीनां याश्चान्या राजयोषितः।। ३।।

इदं तेषामनाथानां क्लिष्टमक्लिष्टकर्मणाम्।
वने प्राक्कलनं तीर्थं ये ते निर्विषयीकृताः।। ४।।

कोसल्या आँसू भरे और सूखे मुख से दीन सुमित्रा और दूसरी महल की नारियों से बोली कि अनयास हीं महान कार्य करने वाले, मेरे अनाथ बच्चों का, जिन्हें राज्य से निकाल दिया गया है, यह वन में स्वीकार किया हुआ पहला दुर्गम स्नान स्थल है।

इतः सुमित्रे पुत्रस्ते सदा जलमतन्द्रितः।
स्वयं हरति सौमित्रिर्मम पुत्रस्य कारणात्।। ५।।
अद्यायमपि ते पुत्रः क्लेशानामतथोचितः।
नीचानर्थसमाचारं सज्जं कर्म प्रमुञ्चतु।। ६।।

हे सुमित्रा! तुम्हारा पुत्र बिना आलस्य के सदा इसी स्थान से मेरे पुत्र के लिये जल ले जाया करता है। तुम्हारा यह पुत्र भी क्लेशों को भोगने के योग्य नहीं है, पर यदि श्रीराम लौट चलें तो आज छोटे लोगों के योग्य और कष्टों से भरे हुए उस कार्य को वह छोड़ दें।

तं भोगैः सम्परित्यक्तं रामं सम्प्रेक्ष्य मातरः।
आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्शिताः।। ७।।
तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान्।
मातृणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंगरः।। ८।।

इसके बाद वे माताएँ भोगों का त्याग किये हुए श्रीराम को देख कर शोक से पीड़ित और दुःखी होकर आँसू बहाती हुई जोर-जोर से रोने लगीं। पुरुषव्याघ्र और सत्यनिष्ठ श्रीराम ने उठ कर सारी माताओं के चरणों को स्पर्श किया।

ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वङ्गुलितलैः शुभैः।
प्रममार्जू रजः पृष्ठाद् रामस्यायतलोचनाः।। ९।।
सौमित्रिरपि ताः सर्वा मातृः सम्प्रेक्ष्य दुःखितः।
अभ्यवादयदासक्तं शनै रामादनन्तरम्।। १०।।

तब उन विशाल आँखों वाली माताओं ने अपने सुखदायी स्पर्श वाले हाथों से और मुलायम हथेलियों से राम की कमर की धूल पौंछी। दुःखी लक्ष्मण ने भी श्रीराम के पश्चात उन सारी माताओं को देख कर धीरे-धीरे स्नेह के साथ अभिवादन किया।

यथा रामे तथा तस्मिन् सर्वा ववृतिरे स्त्रियः।
वृत्तिं दशरथाज्जाते लक्ष्मणे शुभलक्षणे।। ११।।
सीतापि चरणांस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता।
श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी सम्बभूवाग्रतः स्थिता।। १२।।

तब उन स्त्रियों ने जैसे राम के प्रति स्नेह को प्रकट किया था वैसे ही उन्होंने दशरथ पुत्र, शुभलक्षण लक्ष्मण के साथ भी किया। नेत्रों में आँसू भरे हुए दुःखी सीता भी उन सभी अपनी सासों के चरण स्पर्श कर उनके आगे खड़ी हो गयीं।

तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा।
वनवासकृतां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत्।। १३।।
वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च।
रामपत्नी कथं दुःखं सम्प्राप्ता विजने वने।। १४।।

जैसे माता अपनी बेटी को गले लगा लेती है वैसे ही दुःख से पीड़ित माता कौशल्या वनवास से दीन बनी हुई उस सीता को हृदय से लगा कर बोली कि हे विदेहराज की पुत्री राजा दशरथ की पुत्रवधु और राम की पत्नी! तुम निर्जन वन में दुःख को क्यों प्राप्त कर रही हो?

पद्ममातपसंतप्तं परिक्लिष्टमिवोत्पलम्।
काञ्चनं रजसा ध्वस्तं क्लिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः।। १५।।
मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम्।
भृशं मनसि वैदेहि व्यसनारणिसम्भवः।। १६।।
ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः।
पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः।। १७।।

तुम्हारा मुख धूप से तपे कमल के समान, कुचले हुए उत्पल के समान, धूल में भरे स्वर्ण के समान और बादलों से ढके चन्द्रमा के समान कान्तिहीन हो रहा है। तुम्हारे इस मुख को देख कर जैसे अग्नि अपने उत्पत्ति स्थान काठ को जला देती है वैसे ही दुःखरूपी अरणि से मेरे मन में जन्म लेने वाली शोक की आग मुझे अत्यधिक जलाये दे रही है! दुःखी माता के इस प्रकार विलाप करते हुए भरत के बड़े भाई श्रीराम ने आगे बढ़ कर वसिष्ठ जी के पैरों को पकड़ लिया।

ततो जघन्यं सहितैः स्वमन्त्रिभिः
पुरप्रधानैश्च तथैव सैनिकैः।
जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवा-
नुपोपविष्टो भरतस्तदाग्रजम्।। १८।।

उसके पश्चात धर्मात्मा भरत अपने मन्त्रियों, नगर के प्रधान पुरुषों, सैनिकों और परम धर्मज्ञ पुरुषों के साथ अपने बड़े भाई के समीप उनके पीछे जाकर बैठ गये।

किमेष वाक्यं भरतोऽद्य राघवं
प्रणम्य सत्कृत्य च साधु वक्ष्यति।
इतीव तस्यार्यजनस्य तत्त्वतो
बभूव कौतूहलमुत्तमं तदा।। १९।।

उस समय वहाँ उपस्थित श्रेष्ठ लोगों में यथार्थ रूप से यह उत्तम कौतूहल हो रहा था कि देखो यह महात्मा भरत आज श्रीराम को प्रणाम करके और सत्कार करके किस प्रकार अपनी बात उनके सामने प्रस्तुत करते हैं।

सत्तानवैवाँ सर्ग

भरत का श्रीराम को अयोध्या में चलकर राज्य ग्रहण करने के लिये कहना, श्रीराम का जीवन की अनित्यता बताते हुए पिता की मृत्यु के लिये शोक न करने का भरत को उपदेश और पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये ही राज्य ग्रहण न करके वन में रहने का ही दृढ़ निश्चय बताना।

ततः पुरुषसिंहानां वृतानां तैः सुहृद्गणैः।
शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्यवर्तत।। १।।
रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृताः।
मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन्।। २।।

तब अपने मित्रों से घिरे हुए उन पुरुषसिंहों की वह रात्रि शोक करते हुए ही दुःख से व्यतीत हुई। प्रातः होने पर वे भाई परिवार से घिरे हुए मन्दाकिनी नदी पर जा कर वहाँ हवन और जप कर श्रीराम के समीप बैठ गये।

तूष्णीं ते समुपासीना न कश्चित् किंचिदब्रवीत्।
भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमब्रवीत्।। ३।।
सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद् ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्।। ४।।

वे सब चुपचाप बैठे हुए थे, कोई कुछ भी नहीं बोला। तब सुहृदयों के मध्य बैठे हुए भरत जी ने श्रीराम से कहा कि मेरी माता को सन्तुष्ट कर दिया गया, मुझे यह राज्य दे दिया गया। अब मैं इस राज्य को आपको देता हूँ। आप निष्कंटक रूप से इसका भोग कीजिये।

महतेवाम्बुवेगेन भिन्नः सेतुर्जलागमे।
दुरावरं त्वदन्येन राज्यखण्डमिदं महत्।। ५।।
गतिं खर इवाश्वस्य तार्क्ष्यस्येव पतत्त्रिणः।
अनुगन्तुं न शक्तिर्मे गतिं तव महीपते।। ६।।

बाढ़ आ जाने पर पानी के वेग से टूटे हुए बाँध के समान यह महान राज्य आपके बिना किसी दूसरे से नहीं सँभाला जा सकता। हे पृथ्वीनाथ! जैसे गधा घोड़े की चाल नहीं चल सकता उसी प्रकार मैं आपके आचरण की नकल नहीं कर सकता।

यथा तु रोपितो वृक्षः पुरुषेण विवर्धितः।
ह्रस्वकेन दुरारोहो रूढस्कन्धो महाद्रुमः।। ७।।
स यदा पुष्पितो भूत्वा फलानि न विदर्शयेत्।
स तां नानुभवेत् प्रीतिं यस्य हेतोः प्ररोपितः।। ८।।
एषोपमा महाबाहो तदर्थं वेत्तुमर्हसि।
यत्र त्वमस्मान् वृषभो भर्ता भृत्यान् न शाधि हि।। ९।।

जैसे कोई पुरुष वृक्ष को लगाये, उसे बड़ा करे, वह बड़ा हो कर विशाल तने वाला नाटे कद वाले के लिये प्राप्त करना कठिन हो जाये। फूलों वाला हो कर भी उसमें फल न लगें, तब लगाने वाले ने जिस उद्देश्य से उसे लगाया था, उसका वह उद्देश्य पूरा न होने पर उसे प्रसन्नता नहीं होगी। इस उपमा के आधार पर ही है महाबाहो! आप समझ सकते हैं। यदि आप श्रेष्ठ और भरण पोषण में समर्थ हो कर भी हम सेवकों का शासन नहीं करेंगे, तो यह उपमा आप पर लागू होगी।

श्रेणयस्त्वां महाराज पश्यन्त्वग्र्याश्च सर्वशः।
प्रतपन्तमिवादित्यं राज्यस्थितमरिंदमम्।। १०।।
तथानुयाने काकुत्स्थ मत्ता नर्दन्तु कुञ्जराः।
अन्तःपुरगता नार्यो नन्दन्तु सुसमाहिताः।। ११।।
तस्य साध्वनुमन्यन्त नागरा विविधा जनाः।
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः।। १२।।

हे महाराज! शत्रुओं का दमन करने वाले आपके विभिन्न जातियों के संघ और प्रधान पुरुष, सब तरफ से तपते हुए सूर्य के समान आपको राज्य सिंहासन पर विराजमान देखें। हे काकुत्स्थ! आपके वापिस अयोध्या में लौटते हुए मस्त हाथी गर्जन करें और अन्तःपुर की

नारियाँ प्रसन्नता के साथ आपका स्वागत करें। भरत की राम से राज्य के लिये प्रार्थना करती हुई वाणी को सुन कर नगर के भिन्न-भिन्न लोगों ने उनका भली प्रकार अनुमोदन किया।

तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम्।
रामः कृतात्मा भरतं समाश्वासयदात्मवान्।। १३।।
नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति।। १४।।

उन यशस्वी भरत को इस प्रकार दुःखी हो कर विलाप करते हुए देख कर मनस्वी और आत्मज्ञ राम ने उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि मनुष्य भगवान नहीं है, इसलिये यह पूरी तरह से स्वतन्त्र नहीं है। काल इसको इधर उधर खींचता ही रहता है।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।। १५।।
यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम्।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम्।। १६।।
यथाऽऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति।
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगताः।। १७।।
अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम्।। १८।।
अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः।। १९।।

जो रात्रि बीत जाती है, वापिस नहीं आती। यमुना जल से पूर्ण समुद्र की तरफ जाती ही है, वहाँ से आती नहीं है। रात दिन बीतते चले जा रहे हैं। सारे प्राणियों की आयु का विनाश कर रहे हैं। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरण पानी को सुखाती रहती है, बुढ़ापे और मृत्यु के वश में पड़े हुए मनुष्य उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे मजबूत खम्बों पर बना हुआ मकान भी अन्त में कमजोर हो कर गिर जाता है।

आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि।
आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्यास्य गतस्य च।। २०।।
सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते।। २१।।

तुम अपने कर्तव्य के विषय में सोचो। दूसरे के कर्त्तव्य के विषय में क्यों सोचते हो? इसकी जिसकी अर्थात् प्रत्येक मनुष्य की, चाहे वह यहाँ विद्यमान हो या अन्यत्र गया हुआ हो, आयु तो क्षीण होती ही रहती है। वह उसके साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है, लम्बे मार्ग की यात्रा करने पर भी वह उसके साथ ही जाती है और उसके वापिस लौटने पर उसके साथ ही लौटती है।

गात्रेषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैव शिरोरुहाः।
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत्।। २२।।
नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम्।। २३।।

शरीर के अंगों में झुर्रियाँ पड़ गयीं, सिर के बाल सफेद हो गये, बुढ़ापे से शरीर में कमजोरी आ गयी, फिर मनुष्य क्या करके मृत्यु को प्रभावित कर सकता है? लोग सूर्य के उदय होने पर प्रसन्न होते हैं, सूर्य के अस्त होने पर भी प्रसन्न होते हैं। पर वे अपने जीवन के कम होने को जो प्रतिदिन हो रहा है, नहीं समझते।

हृष्यन्त्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवं नवमिवागतम्।
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः।। २४।।
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन।। २५।।
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः।। २६।।

ऋतु को प्रारम्भ हुआ देख कर लोग ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे यह पहली बार ही आयी है, पर वे इस बात पर ध्यान नहीं देते कि ऋतुओं के परिवर्तन से प्राणियों की आयु भी कम होती जा रही है। जैसे विशाल सागर में एक लकड़ी का टुकड़ा बहता हुआ दूसरे लकड़ी के टुकड़े से मिल जाता है और कुछ समय वे दोनों टुकड़े इकट्ठे तैर कर फिर एक दूसरे से अलग हो कर अलग-अलग दिशाओं में बहते हुए चले जाते हैं, उसी प्रकार पत्नी, पुत्र, परिवार के लोग और धन सम्पत्ति सब परस्पर मिल कर फिर अलग हो जाते हैं। इनका वियोग अवश्यंभावी है।

नात्र कश्चिद् यथाभावं प्राणी समतिवर्तते।
तेन तस्मिन् न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः।। २७।।
यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति।। २८।।
एवं पूर्वैर्गता मार्गः पैतृपितामहैर्ध्रुवः।
तमापन्नः कथं शोचेद् यस्य नास्ति व्यतिक्रमः।। २९।।

क्योंकि मृत्यु प्रत्येक प्राणी के साथ लगी हुई है, इसलिये दूसरे मृत व्यक्ति के लिये शोक करते हुए भी उसमें यह सामर्थ्य नहीं होती कि वह अपनी मृत्यु का

निवारण कर सके। जैसे व्यापारियों के समूह को जो यात्रा पर चल रहा है, राह में खड़ा हुआ कोई व्यक्ति यह कहे कि तुम आगे चलो, मैं भी तुम्हारे पीछे आता हूँ, उसी प्रकार जिस मृत्यु की राह पर पहले हमारे बाबा और पिता गये हैं, जिस पर जाना प्रत्येक के लिये निश्चित है, जिसे निवारण नहीं किया जा सकता, जिस पर हम स्वयं विद्यमान हैं, उसी पर जाने वाले दूसरे व्यक्ति के लिये शोक क्यों किया जाये?

वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः।
आत्मासुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः।। ३०।।
धर्मात्मा सुशुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः।
धूतपापो गतः स्वर्गं पिता नः पृथिवीपतिः।। ३१।।

पानी का बहाव आगे बढ़ता जाता है वह वापिस नहीं लौटता, उसी प्रकार आयु ढलती जा रही है, वह वापिस नहीं लौटती, इसलिये हमें अपनी आत्मा को कल्याण के कार्य में लगाना चाहिये, क्योंकि सारे व्यक्ति कल्याण की कामना करते हैं। हमारे पिता पृथिवी के स्वामी, धर्मात्मा थे, उन्होंने प्रायः सारे ही पवित्र यज्ञों को किया और पर्याप्त दक्षिणाएँ दीं। उन्होंने अपने पापों को धो दिया था। उन्हें उत्तम गति प्राप्त हुई है।

भृत्यानां भरणात् सम्यक् प्रजानां परिपालनात्।
अर्थादानाच्च धर्मेण पिता नस्त्रिदिवं गतः।। ३२।।
आयुरुत्तममासाद्य भोगानपि च राघवः।
न स शोच्यः पिता तात स्वर्गतः सत्कृतः सताम्।। ३३।।

उन्होंने सेवकों का भली प्रकार भरण पोषण किया, प्रजा के लोगों का अच्छी तरह से पालन किया। उन्होंने धर्म के अनुसार सम्पत्ति का दान किया, इसलिये हमारे पिता परलोक में उत्तम गति को प्राप्त हुए हैं। वे रघुनन्दन उत्तम आयु को प्राप्त कर, भोगों को भी भोग कर परलोक में गये हैं, इसलिये सत्पुरुषों के द्वारा सम्मानित उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

तं तु नैवंविधः कश्चित् प्राज्ञः शोचितुमर्हसि।
त्वद्विधो मद्विधश्चापि श्रुतवान् बुद्धिमत्तरः।। ३४।।
स स्वस्थो भव मा शोको यात्वा चावस तां पुरीम्।
तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतां वर।। ३५।।

किसी भी समझदार व्यक्ति को, जो तुम्हारे और मेरे जैसा विद्वान और बुद्धिमान है, उन पिता जी के लिये शोक नहीं करना चाहिये। इसलिये हे बोलने वालों में श्रेष्ठ भरत। तुम स्वस्थ हो जाओ, शोक मत करो, और जा कर उस अयोध्या नगरी में रहो। मन को वश में करने वाले पिता ने तुम्हारे लिये यही नियुक्त किया है।

यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम्।। ३६।।
न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिंदम।
स त्वयापि सदा मान्यः स वै बन्धुः स नः पिता।। ३७।।
तद् वचः पितुरेवाहं सम्मतं धर्मचारिणाम्।
कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव।। ३८।।

उन पुण्य कर्म करने वाले पिताजी ने मुझे भी जहाँ रहने की आज्ञा दी है, मैं पूज्य पिताजी के आदेश का पालन करते हुए वहीं रहूँगा। हे शत्रुओं को दमन करने वाले! मेरे लिये उनके आदेश का उल्लंघन करना कदापि न्याययुक्त नहीं है, तुम्हें भी उनके आदेश का पालन करना चाहिये। क्योंकि वे हमारे पालन करने वाले पिता थे और हितैषी बन्धु थे। इसलिये हे राघव! मैं धार्मिक लोगों द्वारा समर्थन किये हुए पिता जी के वचन का ही वनवास के कार्य द्वारा पालन करूँगा।

धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना।
भवितव्यं नरव्याध्र परलोकं जिगीषता।। ३९।।
आत्मानमनुतिष्ठ त्वं स्वभावेन नरर्षभ।
निशम्य तु शुभं वृत्तं पितुर्दशरथस्य नः।। ४०।।

हे नरव्याघ्र! परलोक पर विजय प्राप्त कने की इच्छा वाले मनुष्य को धार्मिक, निर्दयता से रहित और गुरूओं का आज्ञापालक होना चाहिये। हे मनुष्यों में श्रेष्ठ भरत! तुम पिता दशरथ के पवित्र आचरण को देख कर अपने स्वभाव से आत्मा की उन्नति के लिये प्रयत्न करो।

अट्ठानवैवाँ सर्ग

भरत की पुनःश्रीराम से अयोध्या लौटने और राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना।

एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत्।
ततो मन्दाकिनीतीरे रामं प्रकृतिवत्सलम्।। १।।
उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः।
को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिंदम्।। २।।

राम के इस प्रकार युक्तिवचन कह कर चुप हो जाने पर मन्दाकिनी के किनारे पर प्रजा प्रेमी श्रीराम से धर्म का पालन करने वाले भरत ने विचित्र और धर्म से युक्त बात कही कि हे शत्रुओं का दमन करने वाले। संसार में आपके समान कौन हो सकता है?

न त्वां प्रव्यथयेद् दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत्।
सम्मतश्चापि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि संशयान्।। ३।।
यथा मृतस्तस्था जीवन् यथासति तथासति।
यस्यैष बुद्धिलाभः स्यात् परितप्येत केन सः।। ४।।

आपको न तो दुःख व्यथित करता और न ही आपको प्रेम हर्षित करता है। वृद्धों के द्वारा सम्मानित होने पर भी आप उनसे संशय निवारण की बात पूछते हैं। जैसा मृत है, वैसे ही जीवित है, जैसी पदार्थ की प्राप्ति पर स्थिति है, वैसी ही उसके अभाव में भी है, ऐसी आप जैसी बुद्धि जिसे प्राप्त हो उसे किससे संताप होगा?

परावरज्ञो यश्च स्याद् यथा त्वं मनुजाधिप।
स एव व्यसनं प्राप्य न विषीदितुमर्हति।। ५।।
अमरोपमसत्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसंगरः।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च बुद्धिमांश्चासि राघव।। ६।।

हे नरेश्वर! जिसे आपके समान परलोक और इहलोक का ज्ञान हो, वह विपत्ति को प्राप्त कर भी दुःखी नहीं हो सकता। हे राघव! आप तो देवताओं के समान सत्त्वगुणों से युक्त हैं, महात्मा हैं, सत्य का पालन करने वाले हैं, आप सब कुछ समझने और देखने वाले हैं और बुद्धिमान हैं।

न त्वामेवंगुणैर्युक्तं प्रभवाभवकोविदम्।
अविषह्यतमं दुःखमासादयितुमर्हति।। ७।।
प्रोषिते मयि यत् पापं मात्रा मत्कारणात् कृतम्।
क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान् मम।। ८।।

इस प्रकार गुणों से युक्त जन्म और मरण के रहस्य को जानने वाले आपके पास अत्यन्त असह्य दुःख भी नहीं आ सकता। मेरे विदेश में होने पर भी क्षुद्र माता ने जो पाप मेरे लिये कर दिया है, उसे मैं नहीं चाहता। आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये।

धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि तेनेमां नेह मातरम्।
हन्मि तीव्रेण दण्डेन दण्डार्हां पापकारिणीम्।। ९।।
कथं दशरथाज्जातः शुभाभिजनकर्मणः।
जानन् धर्ममधर्मं च कुर्यां कर्म जुगुप्सितम्।। १०।।

मैं धर्म के बन्धन में बँधा हुआ हूँ, इस कारण इस पाप को करने वाली दण्ड के योग्य माता को कठोर दण्ड दे कर मार नहीं रहा हूँ। अच्छे कुल और अच्छे कर्म वाले दशरथ का पुत्र हो कर धर्म और अधर्म को जानते हुए मैं कैसे इस घृणित कार्य को कर सकता हूँ।

गुरुः क्रियावान् वृद्धश्च राजा प्रेतः पितेति च।
तातं न परिगर्हेऽहं दैवतं चेति संसदि।। ११।।
को हि धर्मार्थयोर्हीनमीदृशं कर्म किल्बिषम्।
स्त्रियः प्रियचिकीर्षुः सन् कुर्याद् धर्मज्ञ धर्मवित्।। १२।।

महाराज पिताजी मेरे गुरु, अच्छे कर्म करने वाले, वृद्ध और देवता रहे हैं। वे अब स्वर्गवासी भी हो चुके हैं, इसलिये मैं सभा में उनकी निन्दा नहीं कर रहा हूँ। हे धर्मज्ञ! धर्म को अच्छी तरह जानने वाला कौन ऐसा पुरुष है जो स्त्री का प्रिय करने की इच्छा से धर्म और अर्थ से रहित ऐसे बुरे कार्य को कर दे।

अन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पुरा श्रुतिः।
राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुतिः कृता।। १३।।
साध्वर्थमभिसंधाय क्रोधान्मोहाच्च साहसात्।
तातस्य यदतिक्रान्तं प्रत्याहरतु तद् भवान्।। १४।।

यह पुरानी कहावत है कि अन्तकाल में लोगों की बुद्धि मोहित हो जाती है। राजा ने यह कार्य करके इस कहावत को चरितार्थ कर दिया। क्रोध, मोह और साहस के कारण उचित समझ कर पिता जी के द्वारा जो धर्म का उल्लंघन हुआ उसे आप संशोधित कर दें।

पितुर्हि समतिक्रान्तं पुत्रो यः साधु मन्यते।
तदपत्यं मतं लोके विपरीतमतोऽन्यथा।। १५।।
तदपत्यं भवानस्तु मा भवान् दुष्कृतं पितुः।
अति यत् तत् कृतं कर्म लोके धीरविगर्हितम्।। १६।।

जो पिता के द्वारा धर्म के अतिक्रमण को ठीक कर देता है, वही उत्तम सन्तान माना गया है, जो इसके विपरीत करता है, वह ऐसा नहीं माना जाता है। इसलिये आप पिताजी की उत्तम सन्तान बने रहिये, उनके उस बुरे कार्य का समर्थन मत कीजिये, जो धर्म से परे है और जिसकी धीर पुरुषों ने निन्दा की है।

कैकेयी मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च नः।
पौरजानपदान् सर्वांस्त्रातुं सर्वमिदं भवान्।। १७।।
क्व चारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटाः क्व च पालनम्।
ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान् कर्तुमर्हति।। १८।।

कैकेयी, मेरी, पिताजी की, मित्रों की, हमारे बान्धवों की, सारे पुरवासियों और देशवासियों की रक्षा के लिये आप जो कुछ प्रार्थना की जा रही है, उसे स्वीकार करें। कहाँ वन में रहना कहाँ क्षात्र धर्म का पालन करना, कहाँ जटा धरण करना और कहाँ प्रजा का पालन करना, ये परस्पर विरोधी कार्य आपको नहीं करने चाहिये।

एष हि प्रथमो धर्मः क्षत्रियस्याभिषेचनम्।
येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम्।। १९।।
कश्च प्रत्यक्षमुत्सृज्य संशयस्थमलक्षणम्।
आयतिस्थं चरेद् धर्मं क्षत्रबन्धुरनिश्चितम्।। २०।।

हे महाप्राज्ञ! क्षत्रिय का पहला धर्म यही है कि उसका राज्य पर अभिषेक हो, इसी के द्वारा वह प्रजा का पालन कर सकता है। कौन ऐसा क्षत्रिय है जो अपने वर्तमान प्रत्यक्ष कर्त्तव्य को छोड़ कर, भविष्य में फल देने वाले संशय से युक्त, लक्षणों से रहित, अनिश्चितता से युक्त धर्म का आचरण करेगा?

अथ क्लेशजमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि।
धर्मेण चतुरो वर्णान् पालयन् क्लेशमाप्नुहि।। २१।।
चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमिच्छसि।। २२।।

यदि आप क्लेशयुक्त धर्म का ही पालन करना चाहते हैं, तो धर्मानुसार चारों वर्णों का पालन करते हुए ही कष्ट उठाइये। चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सबसे श्रेष्ठ और उत्तम बताया गया है। हे धर्मज्ञ! धर्म को जानने वाले ऐसा ही करते हैं, फिर आप क्यों गृहस्थ का परित्याग करना चाहते हैं?

श्रुतेन बालः स्थानेन जन्मना भवतो ह्यहम्।
स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति।। २३।।
हीनबुद्धिगुणो बालो हीनस्थानेन चाप्यहम्।
भवता च विनाभूतो न वर्तयितुमुत्सहे।। २४।।

मैं विद्या और आयु दोनों में आपके सामने बच्चा हूँ। आपके रहते हुए मैं भूमि का पालन कैसे करूँगा? मैं बुद्धि और गुणों में हीन हूँ, बालक हूँ, मेरे स्थिति आपसे बहुत छोटी है। बिना आपके मैं जीवन निर्वाह भी नहीं कर सकता।

इदं निखिलमप्यग्र्यं राज्यं पित्र्यमकण्टकम्।
अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञ सह बान्धवैः।। २५।।
इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह।
ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्रकोविदाः।। २६।।

हे धर्मज्ञ! पिताजी का यह सारा राज्य श्रेष्ठ है और निष्कंटक है। आप बान्धवों के साथ धर्मानुसार इसका पालन कीजिये। वसिष्ठ जी के साथ सारे ऋत्विज जो मन्त्रों के ज्ञाता और मन्त्रणा करने में चतुर हैं, सारी प्रजा के समक्ष आपका यहीं अभिषेक कर दें।

ऋणानि त्रीण्यपाकुर्वन् दुर्हृदः साधु निर्दहन्।
सुहृदस्तर्पयन् कामैस्त्वमेवात्रानुशाधि माम्।। २७।।
अद्यार्य मुदिताः सन्तु सुहृदस्तेऽभिषेचने।
अद्य भीताः पलायन्तु दुष्प्रदास्ते दिशो दश।। २८।।

आप हमारे द्वारा अपना अभिषेक करा कर अयोध्या के पालन के लिये चलिये। वहाँ तीनों ऋणों को चुकायें और दुष्टों का अच्छी तरह से दमन करें। मित्रों को उनकी कामनाओं से तृप्त करते रहें और मुझे धर्म की शिक्षा देते रहें। आपके अभिषेक से आज आपके मित्र प्रसन्न हों और आपके शत्रु दशों दिशाओं में भाग जायें।

आक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ।
अद्य तत्रभवन्तं च पितरं रक्ष किल्बिषात्।। २९।।
शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणा मयि।
बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः।। ३०।।
अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम्।। ३१।।

हे नरश्रेष्ठ! आप मेरी माता के कलंकों को धो पोंछ कर पूज्य पिता जी को भी निन्दा से बचाइये। मैं आपके चरणों में सिर झुका कर याचना करता हूँ। मुझ पर दया कीजिये। अथवा यदि आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार न कर वन में जायेंगे तो मैं भी आपके साथ वन में जाऊँगा।

तथाभिरामो भरतेन ताम्यता।
प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः।

न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्
मतिं पितुस्तद् वचने प्रतिष्ठितः।। ३२।।

इस प्रकार ग्लानि से युक्त भरत के द्वारा चरणों में सिर रख कर प्रार्थना किये जाने पर भी, उन अभिराम, पृथिवीपति, और सत्वगुण सम्पन्न श्रीराम ने पिता के वचन में दृढ़ रहते हुए अयोध्या जाने के लिये बुद्धि में विचार नहीं किया।

तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे
समं जनो हर्षमवाप दुःखितः।
नयात्ययोध्यामितिदुःखितोऽभवत्
स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः।। ३३।।

श्रीराम की उस अद्भुद् स्थिरता को देख कर प्रजा के लोगों को एक साथ हर्ष और शोक दोनों हुए। उनके अयोध्या न चलने के कारण वे दुःखी हुए और उनकी प्रतिज्ञा में स्थिरता को देख कर वे हर्षित हुए।

तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभा-
स्तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः।
तथा ब्रुवाणं भरतं प्रतुष्टुवुः
प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह।। ३४।।

उन श्रीराम को पुरवासियों और व्यापारियों के समुदायों के नेताओं ने, ऋत्विजों ने और आँसू बहाती हुई और अचेत सी बनी हुई माताओं ने यथा योग्य रूप से अयोध्या लौटने की याचना की और उपर्युक्त प्रकार से प्रार्थना करते हुए भरत की उन्होंने प्रशंसा की।

निन्यानवैवाँ सर्ग

श्रीराम का भरत को समझाकर उन्हें अयोध्या जाने का आदेश देना और जाबाली का नास्तिकों के मत का सहारा लेकर श्री राम को समझाना।

पुनरेवं ब्रुवाणं तं भरतं लक्ष्मणाग्रजः।
प्रत्युवाच ततः श्रीमाञ्ज्ञातिमध्ये सुसत्कृतः।। १।।
उपपन्नमिदं वाक्यं यस्त्वमेवमभाषथाः।
जातः पुत्रो दशरथात् कैकय्यां राजसत्तमात्।। २।।

भरत जी पुनः इस प्रकार प्रार्थना करने लगे, तब लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीमान् श्रीराम ने, जो कुटुम्बी लोगों के बीच में सत्कार के साथ बैठे हुए थे कहा कि हे भाई! जो तुमने कहा है, यह तुम्हारे ही योग्य है, क्योंकि तुम श्रेष्ठ राजा दशरथ से कैकेयी के गर्भ से पैदा हुए हो।

देवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः।
सम्प्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः।। ३।।
ततः सा सम्प्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी।
अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी।। ४।।

देवासुर संग्राम में तुम्हारी माता के द्वारा बड़ी सेवा करने पर उससे प्रसन्न हो कर राजा ने उसे वरदान दिया। फिर उसी की पूर्ति के लिये प्रतिज्ञा करा कर तुम्हारी यशस्विनी और सुन्दर वर्ण वाली माता ने नरश्रेष्ठ राजा से दो वर माँगे।

तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा।
तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम्।। ५।।
तेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम्।। ६।।

उसने तुम्हारे लिये राज्य माँगा और मेरे लिये वनवास माँगा। राजा ने उससे प्रेरित हो कर उसको वे वर दे दिये। हे नरश्रेष्ठ! उन पिता जी ने वरदान के रूप में मुझे चौदह वर्ष वन में रहने के लिये नियुक्त किया।

सोऽयं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः।
सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः।। ७।।
भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम्।
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषिञ्चनात्।। ८।।

इसलिये मैं पिता को सत्य वचन में रखने के लिये लक्ष्मण और सीता के साथ यहाँ निर्जन वन में आया हूँ। यहाँ मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। हे राजेन्द्र! आप भी जल्दी अपना अभिषेक करा कर पिता को सत्यवादी बना सकते हैं।

ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम्।
पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय।। ९।।
अयोध्यां गच्छ भरत प्रकृतीरुपरञ्जय।
शत्रुघ्नसहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः।। १०।।

हे धर्मज्ञ! हे भरत! तुम मेरे लिये हमारे पूज्य पिता राजा को कैकेयी के ऋण से मुक्त करो और अपनी

माता का आनन्द बढ़ाओ। हे वीर भरत! तुम शत्रुघ्न के साथ और सारे द्विजातियों के साथ अयोध्या को जाओ और प्रजा को प्रसन्न करो।

त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां
वन्यानाहमपि राजराण्मृगाणाम्।
गच्छ त्वं पुरवरमद्य सम्प्रहृष्टः
संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान् प्रवेक्ष्ये।। ११।।

हे भरत! तुम मनुष्यों के राजा हो जाओ और मैं भी वन्य पशुओं का सम्राट बनूँगा। तुम प्रसन्न हो कर आज श्रेष्ठ नगर अयोध्या को चले जाओ। मैं भी प्रसन्नता पूर्वक दण्डकारण्य में प्रवेश करूँगा।

छायां ते दिनकरभाः प्रबाधमानं
वर्षत्रं भरत करोतु मुर्ध्नि शीताम्।
एतेषामहमपि काननद्रुमाणां
छायां तामतिशयिनीं शनैः श्रयिष्ये।। १२।।

हे भरत! सूर्य की चमक और वर्षा को रोकने वाला छत्र तुम्हारे सिर पर शीतल छाया करे। मैं भी इस वन के वृक्षों की घनी छाया का धीरे-धीरे आश्रय लूँगा।

शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तु ते सहायः
सौमित्रिर्मम विदितः प्रधानमित्रम्।
चत्वारस्तनयवरा वयं नरेन्द्रं
सत्यस्थं भरत चराम मा विषीद।। १३।।

अतुलित बुद्धि वाले शत्रुघ्न तुम्हारी सहायता में रहें। सुमित्रा के प्रसिद्ध पुत्र लक्ष्मण मेरे प्रमुख मित्र हैं। इस प्रकार नरेद्र के चारों श्रेष्ठ पुत्र, उनके सत्य की रक्षा करते हुए रहें। हे भरत! तुम शोक मत करो।

आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः।
उवाच रामं धर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः।। १४।।
साधु राघव मा भूत् ते बुद्धिरेवं निरर्थिका।
प्राकृतस्य नरस्येव ह्यार्यबुद्धेस्तपस्तिनः।। १५।।

जब श्रीराम भरत को इस प्रकार आश्वासन दे रहे थे, तब ब्राह्मण श्रेष्ठ जाबालि धर्मज्ञ श्रीराम से यह धर्म से रहित वचन कहने लगे कि हे राघव! तुमने ठीक कहा पर तुम श्रेष्ठ बुद्धि वाले और तपस्वी की बुद्धि सामान्य लोगों के समान निरर्थक बातों की ओर नहीं जानी चाहिये।

कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित्।
एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति।। १६।।
तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः।
उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित्।। १७।।

इस संसार में कौन किसका बन्धु है? किसी को किसी से क्या मिलना है? मनुष्य अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मर जाता है। इसलिये हे राम! जो मनुष्य किसी के प्रति यह मेरे पिता हैं, यह मेरी माता है, यह समझ कर आसक्त होता है, उसे पागल समझना चाहिये। संसार में कोई किसी का नहीं है।

यथा ग्रामान्तरं गच्छन् नरः कश्चिद् बहिर्वसेत्।
उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि।। १८।।
एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु।
आवासमात्रं काकुत्स्थ सज्जन्ते नात्र सज्जनाः।। १९।।

जैसे एक गाँव से दूसरे गाँव में जाता हुआ मनुष्य रास्ते में कहीं ठहर जाता है और दूसरे दिन उस स्थान को छोड़ पुनः यात्रा पर आगे बढ़ जाता है, इसी प्रकार मनुष्य के माता पिता, घर सम्पत्ति सब उसके लिये मार्ग में पड़ने वाले अस्थायी आवास के समान हैं। हे काकुत्स्थ! सज्जन लोग इसमें आसक्त नहीं होते।

पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम।
आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम्।। २०।।
समृद्धायामयोध्यायामात्मानमंभिषेचय ।
एकवेणीधरा हि त्वा नगरी सम्प्रतीक्षते।। २१।।

हे नरोत्तम! तुम्हें पिता के राज्य को छोड़ कर इस दुःखदायी, कष्टकाकीर्ण और ऊँचे नीचे कुत्सित मार्ग पर नहीं चलना चाहिये। तुम उस समृद्ध अयोध्या में अपना अभिषेक कराओ। वह नगरी वियुक्त, एक वेणीधारी, नारी के समान आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

न ते कश्चिद् दशरथस्त्वं च तस्य च कश्चन।
अन्यो राजा त्वमन्यस्तु तस्मात् कुरु यदुच्यते।। २२।।
गतः स नृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां त्वं तु मिथ्या विहन्यसे।। २३।।

राजा दशरथ आपके कोई नहीं थे और आप भी राजा दशरथ के कुछ भी नहीं हैं। राजा दशरथ दूसरे थे और आप भी दूसरे हैं, इसलिये जो कुछ लोग कह रहे हैं, उसका पालन करो।

राजा वहीं चले गये जहाँ उन्हें जाना था। यह सभी प्राणियों का स्वभाव है। आप तो व्यर्थ ही कष्ट उठा रहे हैं।

अर्थधर्मपरा ये ये तांस्ताञ्शोचामि नेतरान्।
ते हि दुःखमिह प्राप्य विनाशं प्रेत्य लेभिरे।। २४।।
दानसंवनना ह्येते ग्रन्था मेधाविभिः कृताः।
यजस्व देहि दीक्षस्व तपस्तप्यस्व संत्यज।। २५।।

जो व्यक्ति अर्थपरायण या धर्मपरायण हैं, मैं उनके ही विषय में शोक किया करता हूँ, दूसरों के लिये नहीं, क्योंकि वे इस संसार में दुःख को प्राप्त कर विनाश को प्राप्त हो गये। यज्ञ करो, दीक्षा ग्रहण करो, तपस्या करो, घरबार छोड़ दो, इस प्रकार ये दान और पूजा करने वाले ग्रन्थ बुद्धिमान लोगों ने अपने मतलब के लिये लिखे हैं।

स नास्ति परमित्येतत् कुरु बुद्धिं महामते।
प्रत्यक्षं यत् तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु।। २६।।

सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य सर्वलोकनिदर्शिनीम्।
राज्यं स त्वं निगृह्णीष्व भरतेन प्रसादितः।। २७।।

हे महामति! तुम यह निश्चय करो कि इस संसार से परे कुछ भी नहीं है, इसलिये जो प्रत्यक्ष है उसी का ग्रहण करो और जो परोक्ष है उसे पीछे ढकेल दो। सब लोगों द्वारा दिखायी गयी सत्पुरुषों की बुद्धि को स्वीकार कर तुम भरत के अनुरोध से राज्य को ग्रहण कर लो।

सौवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा जाबाली के नास्तिक मत का खण्डन करके आस्तिक मत का स्थापन। वसिष्ठ द्वारा राम को समझाना।

जाबालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः।
उवाच परया सूक्त्या बुद्ध्याविप्रतिपन्नया।। १।।
भवान् मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान्।
अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्य संनिभम्।। २।।

जाबाली के वचनों को सुन कर सत्य पराक्रमी राम अपनी निश्चित बुद्धि के द्वारा वेदोक्त वचनों का आश्रय ले कर बोले कि हे भगवन! आपने मेरे प्रिय कार्य के लिये जो यहाँ वचन कहे हैं, वे करने योग्य होने के समान होने पर भी अकरणीय हैं और पथ्य के समान दिखाई देने पर भी अपथ्य हैं।

निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः।। ३।।
कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम्।। ४।।

जो मनुष्य मर्यादारहित हो कर पापाचार में लग जाता है, वह अपने आचार विचार के नष्ट हो जाने के कारण सज्जन पुरुषों में सम्मान को प्राप्त नहीं करता। कौन कुलीन है? कौन अकुलीन है? कौन वास्तव में वीर है? कौन व्यर्थ ही अपने को पुरुष मानता है? कौन पवित्र है? कौन अपवित्र है? इन सबकी व्याख्या उस पुरुष का चरित्र ही करता है।

अनार्यस्त्वार्य संस्थानः शौचाद्धीनस्तथा शुचिः।
लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव।। ५।।
अधर्मं धर्मवेषेण यद्यहं लोकसंकरम्।
अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधिविवर्जिताम्।। ६।।

कश्चेतयानः पुरुषः कार्याकार्य विचक्षणः।
बहु मन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम्।। ७।।

आपने जो मार्ग बताया है उस पर चलने वाला बाहर से आर्य दिखाई देने पर भी वास्तव में वह अनार्य होगा। पवित्र दिखाई देने भी वह अपवित्र होगा। उत्तम लक्षणों से युक्त सा प्रतीत होने पर भी लक्षण हीन होगा। आपका उपदेश धर्म के रूप में अधर्म रूप और वर्ण संकरता का प्रसार करने वाला है। यदि मैं आपके उपदेश के अनुसार शुभकार्यों को छोड़ कर विधिहीन निंद्य कार्यों को करने लगूँ तो कार्य और अकार्य की पहचान करने वाला कौन समझदार पुरुष मुझे संसार को कलंकित करने वाले और बुरे आचरण वाले को सम्मान प्रदान करेगा?

कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वा स्वर्गमाप्नुयाम्।
अनया वर्तमानोऽहं वृत्त्या दीनप्रतिज्ञया।। ८।।
कामवृतोऽन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते।
यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः।। ९।।

यदि मैं आपके द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलूँ तो सारी प्रजा स्वेच्छाचारी हो जायेगी, क्योंकि जैसा राजा होता है प्रजा भी वैसी ही बन जाती है। आपकी वृत्ति का अनुसरण कर और अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ कर मैं किस साधन से परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करूँगा और यहाँ संसार में किसके आचरण का अनुकरण करूँगा।

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।। १०।।

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति चाक्षयम्।। ११।।

सत्य ही दया स्वरूप है, सत्य ही राजाओं का पुराना धर्म है इसलिये राज्यप्रणाली भी सत्य से युक्त होनी चाहिये। संसार सत्य पर ही प्रतिष्ठित है। ऋषियों और चरित्रवान विद्वानों ने सत्य का ही सम्मान किया है। इस लोक में सत्यवादी मनुष्य परलोक में अक्षयगति को प्राप्त करता है।

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः।
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते।। १२।।
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।। १३।।

झूठ बोलने वाले मनुष्य साँप की तरह से डरते हैं। संसार में सत्य से युक्त धर्म ही सबका आधार कहा जाता है। संसार में सत्य ही ईश्वर है। सत्य में ही धर्म की स्थापना होती है। सत्य सबकी जड़ है। सत्य से बढ़ कर दूसरा पद नहीं है।

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्।। १४।।
सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये।
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम्।। १५।।

दान देना, यज्ञ करना, हवन, तपस्या, कष्ट सहन करना और वेद इन सबका आधार सत्य ही है, इसलिये सत्य का आश्रय लेना चाहिये। इसलिये मैं पिता जी की आज्ञा का कैसे पालन न करूँ? मैं सत्य प्रतिज्ञ हूँ, सत्य की शपथ खा कर मैंने पिता के आगे प्रतिज्ञा की है।

नैव लोभान्न मोहाद् वा न चाज्ञानात् तमोऽन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः।। १६।।
कायेन कुरुते पापं मनसा सम्प्रधार्य तत्।
अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्म पातकम्।। १७।।
भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत् ततः।। १८।।

सत्य के पालन की प्रतिज्ञा करके मैं न तो लोभ से, न मोह से, न अज्ञान से, और न मोह के बस में हो कर पिता के सत्य की मर्यादा को भंग नहीं करूँगा। मनुष्य पहले पापकर्म को मन में निश्चित करता है, फिर वाणी से उस असत्यरूपी पाप का समर्थन करता है और उसके बाद वह उसे शरीर से करता है। इस प्रकार एक ही पापकर्म मानसिक, वाचिक और कायिक के भेद से तीन प्रकार बन जाता है। संसार में भूमि, कीर्ति तथा लक्ष्मी सब सत्यवादी पुरुष से प्रार्थना करती हैं अर्थात् उसे प्राप्त होती हैं, सभी लोग सत्यवादी का ही अनुसरण करते हैं, इसलिये सत्य को ही ग्रहण करना चाहिये।

श्रेष्ठं ह्यनार्यमेव स्याद् यद् भवानवधार्य माम्।
आह युक्तिकरैर्वाक्यैरिदं भद्रं कुरुष्व ह।। १९।।
कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः।। २०।।
स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसंनिधौ।
प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत् तदा।। २१।।

आपने युक्तियुक्त वाक्यों से समझा कर जो यह कहा है कि राज्य ग्रहण करना कल्याणकारी है, इसे ग्रहण करो, वह श्रेष्ठ प्रतीत होने पर भी अनार्यों के योग्य है। मैं पिताजी के सामने वनवास की प्रतिज्ञा करके, अब उसी बात का उल्लंघन करके भरत की बात कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? पिता के सामने की हुई मेरी प्रतिज्ञा अटल है। जब मैंने प्रतिज्ञा की थी, तब देवी कैकेयी मन में बड़ी प्रसन्न हुई थी।

अमृष्यमाणः पुनरुग्रतेजा
निशम्य तन्नास्तिकवाक्यहेतुम्।
अथाब्रवीत् तं नृपतेस्तनूजो
विगर्हमाणो वचनानि तस्य।। २२।।

उसके पश्चात जाबालि के नास्तिकता से युक्त युक्तिवादों को सुन कर, उन्हें सहन न करते हुए वे उग्र तेजस्वी राजपुत्र श्रीराम उनके वचनों की निन्दा करते हुए पुनः बोले।

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च
भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च
पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः।। २३।।

सत्य, धर्म, पराक्रम, प्राणियों पर दया, प्रिय बोलना, ब्राह्मणों, चरित्रवान विद्वानों और अतिथियों की पूजा, इन कार्यों को साधु पुरुषों ने परलोक में उत्तम गति प्राप्त करने का साधन बताया है।

तेनैवमाज्ञाय यथावदर्थ-
मेकोदयं सम्प्रतिपद्य विप्राः।
धर्मं चरन्तः सकलं यथावत्
काङ्क्षन्ति लोकागममप्रमत्ताः।। २४।।

साधु पुरुषों के उपर्युक्त वचन के अनुसार सावधानी से धर्म के उचित मार्ग को जान कर, ब्राह्मण लोग उन

पर चलते हुए सम्पूर्ण धर्म का भलीभाँति पालन करते हुए, परलोक में उत्तम गति की अभिलाषा करते हैं।

निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्
यस्त्वामगृह्णाद् विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं
सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्।। २५।।

मैं पिता जी के इस कर्म की निन्दा करता हूँ जो उन्होंने आपको अपने यहाँ रखा, क्योंकि आपकी बुद्धि उलटे मार्ग पर स्थित है। आप नास्तिक और धर्म के मार्ग से हटे हुए हैं। आप इस प्रकार अनुचित विचारों वाली बुद्धि से अनुचित बातों का प्रचार कर रहे हैं।

त्वत्तो जनाः पूर्वतरे द्विजाश्च
शुभानि कर्माणिबहूनि चक्रुः।
छित्त्वा सदेमं च परं च लोकं
तस्मद् द्विजाः स्वस्ति कृतं हुतं च।। २६।।
धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेता-
स्तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके
भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः।। २७।।

आपके पहले जो ब्राह्मण हुए हैं, उन्होंने इहलोक और परलोक की कामनाओं को छोड़ कर अर्थात् निष्काम भाव से बहुत से शुभ कार्य किये हैं। इसलिये आजकल भी जो ब्राह्मण स्वस्ति अर्थात अच्छी भावना, कृत अर्थात अच्छे कार्य तथा हुत अर्थात यज्ञ यागादि का निर्वाह करते हैं, धर्म में लगे रहते हैं, सत्पुरुषों का संग करते हैं, अहिंसा का पालन करते हैं और बुराइयों से रहित हैं, वे श्रेष्ठ मुनि संसार में पूजनीय होते हैं।

इति ब्रुवन्तं वचनं सरोषं
रामं महात्मानमदीनसत्त्वम्।
उवाच पथ्यं पुनरास्तिकं च
सत्यं वचः सानुनयं च विप्रः।। २८।।

जब दीनता से रहित महात्मा श्रीराम ने रोष पूर्वक ऐसा कहा, तब वे जाबालि ब्राह्मण फिर अनुनय के साथ सत्य और आस्तिकता से युक्त हित कर वाणी में कहने लगे।

न नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं
न नास्तिकोऽहं न च नास्ति किंचन।
समीक्ष्य कालं पुनरास्तिकोऽभवं
भवेय काले पुनरेव नास्तिकः।। २९।।

मैं नास्तिकों जैसे वचन कह रहा हूँ, पर नास्तिक नहीं हूँ। परलोक आदि कुछ भी नहीं हैं, यह मेरा मत नहीं है। मैं तो समय देख कर उसके अनुसार नास्तिक जैसा बन जाता हूँ। अब मैं फिर आस्तिक हो गया हूँ।

स चापि कालोऽयमुपागतः शनै-
र्यथा मया नास्तिकवागुदीरिता।
निवर्तनार्थं तव राम कारणात्
प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम्।। ३०।।

इस समय ऐसा प्रसंग आ गया था, जिसके कारण मैंने धीरे-धीरे नास्तिकों की बातें कह दीं। हे राम! तुम्हें समझाने और अयोध्या लौटाने के लिये मैंने यह कह दिया था।

क्रुद्धमाज्ञाय रामं तु वसिष्ठः प्रत्युवाच ह।
जाबालिरपि जानीते लोकस्याय गतागतिम्।। ३१।।
तद् गृहाण स्वकं राज्यमवेक्षस्व जगन्नृप।। ३२।।
इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां राजा भवति पूर्वजः।
पूर्वजे नावरः पुत्रो ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते।। ३३।।

श्रीराम को क्रुद्ध जान कर वसिष्ठ जी ने कहा कि जाबाली भी प्राणियों के आवागमन के विषय में जानते हैं, इन्होंने तो तुम्हें लौटाने की इच्छा से ही ये बातें कहीं थीं। हे नरेश्वर! तुम इस अपने राज्य को ग्रहण करो। यह राज्य तुम्हारा है, तुम इसकी देखभाल करो। इक्ष्वाकु वंशियों में ज्येष्ठ पुत्र ही राजा होता है, बड़ा पुत्र होते हुए छोटा पुत्र राजा नहीं होता, ज्येष्ठ का ही अभिषेक किया जाता है।

स राघवाणां कुलधर्ममात्मनः
सनातनं नाद्य विहन्तुमर्हसि।
प्रभूतरत्नामनुशाधि मेदिनीं
प्रभूतराष्ट्रां पितृवन्महायशः।। ३४।।

राघुवंशियों का जो अपना यह कुलधर्म पुराना चला आया है, उसे तुम खण्डित मत करो। हे महायशस्वी! इस रत्नों के भंडार से युक्त और अनेक देशों वाली पृथिवी का पिता के समान पालन करो।

एकसौ एकवाँ सर्ग

वसिष्ठ जी के समझाने पर श्रीराम को पिता की आज्ञा के पालन से विरत होते न देख कर भरत का धरना देने को तैयार होना तथा श्रीराम का उन्हें समझा कर अयोध्या लौटने की आज्ञा देना।

वसिष्ठः स तदा राममुक्त्वा राजपुरोहितः।
अब्रवीद् धर्मसंयुक्तं पुनरेवापरं वचः।। १।।
पुरुषस्येह जातस्य भवन्ति गुरवः सदा।
आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव।। २।।

राजपुरोहित वसिष्ठ जी ने राम से इस प्रकार कह कर, उसके बाद दूसरी धर्म से युक्त बात कही। उन्होंने कहा कि हे काकुत्स्थ। इस संसार में जन्म लेने वाले के तीन गुरु होते हैं – माता, पिता और आचार्य।

पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात् स गुरुरुच्यते।। ३।।
स तेऽहं पितुराचार्यस्तव चैव परंतप।
मम त्वं वचनं कुर्वन् नातिवर्तेः सतां गतिम्।। ४।।

पिता इसको जन्म देता है और हे नरश्रेष्ठ! आचार्य उसे ज्ञान देता है, इसलिये गुरु कहलाता है। हे परंतप! वह मैं तुम्हारे पिता का भी आचार्य हूँ और तुम्हारा भी आचार्य हूँ। मेरे वचन का पालन करते हुए तुम सत्पुरुषों के मार्ग का त्याग नहीं करोगे।

इमा हि ते परिषदो ज्ञातयश्च नृपास्तथा।
एषु तात चरन् धर्मं नातिवर्तेः सतां गतिम्।। ५।।
वृद्धाया धर्मशीलाया मातुर्नार्हस्यवर्तितुम्।
अस्या हि वचनं कुर्वन् नातिवर्तेः सतां गतिम्।। ६।।

हे तात! ये सभासद, बान्धव और दूसरे राजा लोग आये हुए हैं। इनके साथ धर्म का बर्ताव करते हुए तुम सत्पुरुषों के मार्ग का त्याग नहीं करोगे। तुम्हें अपनी धर्मशील बूढ़ी माता की बात तो कभी टालनी नहीं चाहिये। इसकी बात के अनुसार काम करने पर तुम सज्जन पुरुषों के मार्ग का उल्लंघन नहीं करोगे।

भरतस्य वचः कुर्वन् याचमानस्य राघव।
आत्मानं नातिवर्तेस्त्वं सत्यधर्मपराक्रम।। ७।।
एवं मधुरमुक्तः स गुरुणा राघवः स्वयम्।
प्रत्युवाच समासीनं वसिष्ठं पुरुषर्षभः।। ८।।

तुम प्रार्थना करते हुए भरत की बात मान कर हे सत्य, धर्म और पराक्रम से युक्त राघव, तुम अपने आपको झुठलाया हुआ नहीं माने जाओगे। इस प्रकार जब मधुर वचनों से गुरु वसिष्ठ ने कहा तब नरश्रेष्ठ श्रीराम ने वहाँ बैठे वसिष्ठ जी को यह उत्तर दिया।

यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा।
न सुप्रतिकरं तत् तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम्।। ९।।
यथाशक्तिप्रदानेन स्वापनोच्छादनेन च।
नित्यं च प्रियवादेन तथा संवर्धनेन च।। १०।।
स हि राजा दशरथः पिता जनयिता मम।
आज्ञापयन्मां यत् तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति।। ११।।

माता पिता पुत्र के साथ जो स्नेहपूर्वक बर्ताव करते हैं, यथाशक्ति खाने को देते हैं, अच्छे बिछौने पर सुलाने, उबटन लगाने, सदा प्रिय बोलने और पोषण करने का उपकार करते हैं, उसका बदला सरलता से नहीं चुकाया जा सकता। मेरे जन्मदाता पिता ने मुझे जो आज्ञा दी है, उसे मैं मिथ्या नहीं कर सकता।

एवमुक्तस्तु रामेण भरतः प्रत्यनन्तरम्।
उवाच विपुलोरस्कः सूतं परमदुर्मनाः।। १२।।
इह तु स्थण्डिले शीघ्रं कुशानास्तर सारथे।
आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन्मे सम्प्रसीदति।। १३।।
निराहारो निरालोको धनहीनो यथा द्विजः।
शये पुरस्ताच्छालायां यावन्मां प्रतियास्यति।। १४।।

श्रीराम के ऐसा कहने पर भरत जी बहुत उदास हो गये। तब वे विशाल वक्ष वाले समीप बैठे सूत सुमन्त्र से बोले हे सारथी! तुम यहाँ वेदी पर कुशों को बिछा दो। ये जब तक मुझ पर प्रसन्न नहीं होंगे, मैं इनके पास ही बैठा रहूँगा। जैसे निर्धन बनाया हुआ ब्राह्मण साहूकार के मकान के आगे धरने पर पड़ जाता है वैसे ही मैं भी बिना भोजन किये मुँह ढक कर यहाँ लेटा रहूँगा, जब तक ये मेरे साथ अयोध्या को नहीं चलेंगे।

स तु राममवेक्षन्तं सुमन्त्रं प्रेक्ष्य दुर्मनाः।
कुशोत्तरमुपस्थाप्य भूमावेवास्थितः स्वयम्।। १५।।
तमुवाच महातेजा रामो राजर्षिसत्तमः।
किं मां भरत कुर्वाणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसे।। १६।।

सुमन्त्र तब श्रीराम का मुख देखने लगे। यह देख भरत बहुत दुखी हुए। वे स्वयं ही कुशा की चटाई बिछा कर भूमि पर बैठ गये। तब राजर्षियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी राम उससे बोले कि हे तात भरत! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम मेरे आगे धरना दोगे?

ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान् रोद्धुमिहार्हति।
न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने।। १७।।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल हित्वैतद् दारुणं व्रतम्।
पुरवर्यामितः क्षिप्रमयोध्यां याहि राघव।। १८।।

ब्राह्मण एक करवट लेट कर लोगों को अन्याय से रोक सकता है, पर अभिषेक कराने वाले राजाओं के लिये इस प्रकार धरना देने का विधान नहीं है। हे नरसिंह! इस कठोर व्रत को छोड़ कर उठो और जल्दी यहाँ से श्रेष्ठ नगरी अयोध्या को जाओ।

आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम्।
उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशासथ।। १९।।
ते तदोचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः।
काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग् वदति राघवः।। २०।।
एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति।
अत एव न शक्ताः स्मो व्यावर्तयितुमञ्जसा।। २१।।

तब भरत इसी तरह से बैठे हुए सब तरफ से निगाह डाल कर पुर और जनपद के लोगों से बोले कि आप आर्य को क्यों नहीं समझाते? तब वे पुर और जनपद के निवासी महात्मा भरत से बोले कि हम आप काकुत्स्थ को जानते हैं। हे राघव! आप ठीक कहते हैं, पर ये महाभाग भी पिता के वचन का पालन करने पर स्थिर हैं, इसलिये हम उन्हें न्यायपूर्वक लौटाने में समर्थ नहीं हैं।

तेषामाज्ञाय वचनं रामो वचनमब्रवीत्।
एवं निबोध वचनं सुहृदां धर्मचक्षुषाम्।। २२।।
एतच्चैवोभयं श्रुत्वा सम्यक् सम्पश्य राघव।
उत्तिष्ठ त्वं महाबाहो मां च स्पृश तथोदकम्।। २३।।

नगरवासियों की बात समझ कर राम ने तब कहा कि तुम धर्म पर दृष्टि रखने वाले उन सुहृदों की बात समझो। तुम मेरी और इनकी दोनों की बात सुन कर सोचो और हे महाबाहु राघव। उठो और मेरा तथा जल का स्पर्श करो।

अथोत्थाय जलं स्पृष्ट्वा भरतो वाक्यमब्रवीत्।
शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः शृणुयुस्तथा।। २४।।
न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम्।
एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम्।। २५।।
यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः।। २६।।

तब उठ कर और जल को स्पर्श कर भरत जी बोले कि हे समासदों और मन्त्रिवर सुनो। मैंने न तो पिता जी से राज्य माँगा और न मैं माता के कार्य का समर्थन करता हूँ। इसी प्रकार परम धर्मज्ञ राघव के वनवास में भी मेरी कोई सम्मति नहीं है। यदि पिता जी के वचन का पालन करने के लिये वन में रहना आवश्यक है तो मैं ही चौदह वर्ष वन में रहूँगा।

धर्मात्मा तस्य सत्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः।
उवाच रामः सम्प्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम्।। २७।।
विक्रीतमाहितं क्रीतं यत् पित्रा जीवता मम।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा।। २८।।
उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः।

भाई की इस सत्य बात से धर्मात्मा श्रीराम को बड़ा विस्मय हुआ और वे पुर और जनपद के लोगों की तरफ देख कर बोले कि मेरे पिता ने जीवित रहते हुए जो चीज खरीदी या बेची, धरोहर रख दी उसे मैं या भरत पलट नहीं सकते। मुझे वनवास में किसी को प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि सामर्थ्य रहते हुए ऐसा करना निन्दित है।

जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम्।। २९।।
सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसंधे महात्मनि।
अनेन धर्मशीलेन वनात् प्रत्यागतः पुनः।। ३०।।
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः।
वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम्।
अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम्।। ३१।।

मैं जानता हूँ कि भरत बड़े क्षमाशील और गुरुओं का सत्कार करने वाले हैं। इन सत्यसंध महात्मा में सारे ही कल्याणकारी गुण विद्यमान हैं। मैं जब वन से वापिस लौटूँगा तो इन धर्मशील भाई के साथ पृथ्वी का श्रेष्ठ स्वामी बन जाऊँगा। कैकेयी ने राजा से वन माँगा और मैंने उसके पालन के लिये वचन दे दिया, इसलिये तुम इस वचन के पालन के द्वारा हमारे पिता महाराज को असत्य के बन्धन से मुक्त करो।

एकसौ दोवाँ सर्ग

ऋषियों का भरत को श्रीराम की आज्ञानुसार लौट जाने की सलाह देना। भरत का पुनः राम के चरणों पर गिर कर चलने की प्रार्थना करना। श्रीराम का उन्हें समझा कर अपनी चरणपादुका देकर उन सबको विदा करना।

त्रस्तगात्रस्तु भरतः स वाचा सज्जमानया।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं राघवं पुनरब्रवीत्।। १।।
राम धर्ममिमं प्रेक्ष्य कुलधर्मानुसंततम्।
कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ मम मातुश्च याचनाम्।। २।।

उस समय भरत जी का शरीर काँपने लगा। वे हाथ जोड़ कर लड़खड़ाती हुई आवाज में श्रीराम से पुनः पुनः यह बोले कि – हे काकुत्स्थ राम! आप हमारे कुल धर्म से सम्बन्ध रखने वाला यह बड़े भाई का जो कर्त्तव्य है, उसका ध्यान कर मेरी और माता की प्रार्थना स्वीकार कीजिये।

रक्षितुं सुमहद् राज्यमहेकस्तु नोत्सहे।
पौरजानपदांश्चापि रक्तान् रञ्जयितुं तदा।। ३।।
ज्ञातयश्चापि योधाश्च मित्राणि सुहृदश्च नः।
त्वामेव हि प्रतीक्षन्ते पर्यन्यमिव कर्षकाः।। ४।।

मैं आपके बिना इस महान राज्य की रक्षा करने की हिम्मत नहीं कर सकता। आप में अनुरक्त पुर और जनपद वासियों को भी प्रसन्न नहीं कर सकता। हमारे सारे बान्धव, योद्धा, लोग, मित्र और सुहृद आपकी ही उसी प्रकार राह देख रहे हैं, जैसे किसान बादलों की राह देखते हैं।

इदं राज्यं महाप्राज्ञ स्थापय प्रतिपद्य हि।
शक्तिमान् स हि काकुत्स्थ लोकस्य परिपालने।। ५।।
एवमुक्त्वापतद् भ्रातुः पादयोर्भरतस्तदा।
भृशं सम्प्रार्थयामास राघवेऽतिप्रियं वदन्।। ६।।

हे महाप्राज्ञ! आप इस राज्य को स्वीकार कर किसी दूसरे को इसके पालने के लिये लगा दीजिये। हे काकुत्स्थ! वह इसके परिपालन में समर्थ हो सकेगा। ऐसा कह कर भरत जी भाई के चरणों पर गिर पड़े और अति प्रिय वचन बोल कर उनसे राज्य को ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करने लगे।

तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत्।
श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्तहंसस्वरः स्वयम्।। ७।।
आगता त्वामियं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या।
भृशमुत्सहसे तात रक्षितुं पृथिवीमपि।। ८।।

तब श्रीराम ने श्यामवर्ण कमलनयन उस भाई को गोद में बैठा कर मतवाले हंस की सी मधुर ध्वनि में कहा कि हे तात! तुम्हारे अन्दर यह तो अत्यधिक विनययुक्त बुद्धि स्वाभाविक रूप से है, इसके कारण तुम सारी पृथिवी की भी रक्षा कर सकते हो।

अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः।
सर्वकार्याणि सम्मन्त्र्य महान्त्यपि हि कारय।। ९।।
लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः।। १०।।

मंत्रियों, मित्रों, बुद्धिमान् अमात्यों की सहायता से सारे कार्य, चाहे वे महान भी हों करा लिया करना। चाहे चन्द्रमा को उसकी प्रभा छोड़ दे, या हिमालय बर्फ का त्याग कर दे, सागर अपनी सीमा का उल्लंघन कर दे, पर मैं पिता की प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ सकता।

कामाद् वा तात लोभाद् वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम्।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत्।। ११।।
एवं ब्रुवाणं भरतः कौसल्यासुतमब्रवीत्।
तेजसाऽऽदित्यसंकाशं प्रतिपच्चन्द्रदर्शनम्।। १२।।

हे तात! कैकेयी ने कामनावश या लोभ के वश जो कुछ भी तुम्हारे लिये किया है, उसे मन में न रखना और उसके साथ माता जैसा व्यवहार करना। इस प्रकार कहते हुए कौसल्या के पुत्र श्रीराम से जो कि तेज में सूर्य के समान थे, और दर्शन में प्रतिपदा के चन्द्रमा के समान थे अर्थात् जिन्हें प्रतिपदा के चन्द्रमा के समान प्रत्येक व्यक्ति देखना चाहता था, भरत जी ने कहा कि–

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः।। १३।।
सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च।
प्रायच्छत् सुमहातेजा भरताय महात्मने।। १४।।

हे आर्य! आप अपने पैरों में ये स्वर्णभूषित पादुकाएँ पहनिये। ये पादुकाएँ ही सारी प्रजा के योग का निर्वाह करेंगी। तब पुरुषव्याघ्र और महान तेजस्वी श्रीराम ने उन पादुकाओं को पहन कर और फिर पैरों से अलग करके उन्हें महात्मा भरत को दे दिया।

स पादुके सम्प्रणम्य रामं वचनमब्रवीत्।
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्।। १५।।
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन।
तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद् बहिः।। १६।।
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप।

तब भरत जी ने उन पादुकाओं को प्रणाम किया और श्रीराम से बोले कि हे परंतपवीर रघुनन्दन। मैं भी चौदह वर्ष तक जटाओं और चीर वस्त्र को धारण कर फलफूल खाता हुआ रहूँगा। मैं आपके आने की आकांक्षा के साथ नगर के बाहर ही निवास करूँगा। मैं राज्य का भार आपकी इन पादुकाओं पर ही रख कर सारा कार्य करूँगा।

चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम।। १७।।
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम्।। १८।।
शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्।
मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति।। १९।।
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।
इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह।। २०।।

हे रघूत्तम! चौदह वर्ष के पूरे होने पर अगले दिन यदि आपको नहीं देखूँगा तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। तब श्रीराम ने अच्छा कह कर स्वीकार किया और आदर से भरत को हृदय से लगाया और शत्रुघ्न को भी हृदय से लगा कर यह कहा कि तुम माता कैकेयी की रक्षा करना, उसके प्रति क्रोध मत करना हे रघुनन्दन। मैं अपनी और सीता की शपथ दिला कर कहता हूँ। ऐसा कह कर आँसू भरे नेत्रों के साथ उन्होंने भाई को विदा किया।

स पादुके ते भरतः स्वलंकृते
महोज्ज्वले सम्परिगृह्य धर्मवित्।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं
चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि।। २१।।

तब उन धर्मज्ञ भरत ने उन अच्छी तरह से सजाई हुई, महान् उज्ज्वल पादुकाओं को लेकर श्रीराम की परिक्रमा की और उन पादुकाओं को श्रेष्ठ हाथी के सिर पर स्थापित कर दिया।

अथानुपूर्व्या प्रतिपूज्य तं जनं
गुरूंश्च मन्त्रीन् प्रकृतीस्तथानुजौ।
व्यसर्जयद् राघववंशवर्धनः
स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः।। २२।।

तब अपने धर्म में हिमालय की तरह अचल रहने वाले, रघुवंश की वृद्धि करने वाले श्रीराम ने क्रमशः उन सभी लोगों, गुरुओं, मन्त्रियों, प्रजा के लोगों और दोनों भाइयों का सत्कार कर उन्हें विदा किया।

तं मातरो बाष्पगृहीतकण्ठ्यो
दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः।
स चैव मातृरभिवाद्य सर्वा
रुदन् कुटीं स्वां प्रविवेश रामः।। २३।।

उस समय सारी माताओं का गला दुःख के आँसुओं से भर जाने के कारण वे कुछ भी नहीं बोल सकीं। वे श्रीराम भी रोते हुए सारी माताओं को प्रणाम कर अपनी कुटी में चले गये।

एकसौ तीनवाँ सर्ग

भरत का भरद्वाज जी से मिलते हुए अयोध्या को लौट जाना।

आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा।
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिश्च दृढव्रतः।। १।।
अग्रतः प्रययुः सर्वे मन्त्रिणो मन्त्रपूजिताः।
मन्दाकिनीं नदीं रम्यां प्राङ्मुखास्ते ययुस्तदा।। २।।

तब भरत जी प्रसन्न हो कर शत्रुघ्न के साथ रथ पर आरूढ़ हुए। वसिष्ठ, वामदेव और दृढ़ व्रत को पालने वाले जाबालि और सारे मंत्री जो अपनी मन्त्रणा के कारण सम्मानित थे, आगे-आगे चले। वे सब मन्दाकिनी नदी के पूर्व की तरफ चल दिये।

अदूराच्चित्रकूटस्य ददर्श भरतस्तदा।
आश्रमं यत्र स मुनिर्भरद्वाजः कृतालयः।। ३।।
स तमाश्रममागम्य भरद्वाजस्य वीर्यवान्।
अवतीर्य रथात् पादौ ववन्दे कुलनन्दनः।। ४।।

चित्रकूट से आगे थोड़ी दूर जा कर उन्होंने वह स्थान देखा, जहाँ भरद्वाज जी का आश्रम था और वे रहते थे। उस आश्रम में जा कर उन तेजस्वी कुलनन्दन भरत ने रथ से उतर कर मुनि के चरणों में प्रणाम किया।

ततो हृष्टो भरद्वाजो भरतं वाक्यमब्रवीत्।
अपि कृत्यं कृतं तात रामेण च समागतम्।। ५।।
एवमुक्तः स तु ततो भरद्वाजेन धीमता।
प्रत्युवाच भरद्वाजं भरतो धर्मवत्सलः।। ६।।

तब भरद्वाज जी ने प्रसन्न हो कर पूछा कि क्या तुम्हारा कार्य हो गया। क्या रामचन्द्र जी से भेंट हुई? धीमान भरद्वाज के द्वारा ऐसा पूछने पर धर्मवत्सल भरत ने उत्तर दिया कि –

स याच्यमानो गुरुणा मया च दृढविक्रमः।
राघवः परमप्रीतो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत्।। ७।।
पितुः प्रतिज्ञां तामेव पालयिष्यामि तत्त्वतः।
चतुर्दश हि वर्षाणि या प्रतिज्ञा पितुर्मम।। ८।।

मेरे द्वारा और गुरु जी के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उन दृढ़ विक्रम और अत्यधिक प्रेम से युक्त श्रीराम ने वसिष्ठ जी से कहा कि मेरे पिता की चौदह वर्ष की जो प्रतिज्ञा थी, मैं उसी प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करूँगा।

एवमुक्तो महाप्राज्ञो वसिष्ठः प्रत्युवाच ह।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं राघवं वचनं महत्।। ९।।
एते प्रयच्छ संहृष्टः पादुके हेमभूषिते।
अयोध्यायां महाप्राज्ञ योगक्षेमकरो भव।। १०।।

उनके ऐसे कहने पर महाप्राज्ञ और वाक्य प्रयोग को जानने वाले वसिष्ठ जी ने कुशल श्रीराम से यह वचन कहा कि तुम इन स्वर्ण से भूषित पादुकाओं को प्रसन्न हो कर भरत को दे दो और हे महाप्राज्ञ! तुम इन्हीं के माध्यम से अयोध्या में योग और क्षेम को करने वाले बनो।

एवमुक्तो वसिष्ठेन राघवः प्राङ्मुखः स्थितः।
पादुके हेमविकृते मम राज्याय ते ददौ।। ११।।
निवृत्तोऽहमनुज्ञातो रामेण सुमहात्मना।
अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे।। १२।।

वसिष्ठ जी के द्वारा ऐसा कहने पर श्रीराम ने पूर्व दिशा की तरफ, मुख करके, ये स्वर्णभूषित पादुकाएँ राज्य करने के लिये मुझे दीं। मैं तब उनकी पादुकाओं को ले कर और उन महान आत्मा से आज्ञा लेकर अयोध्या को जा रहा हूँ।

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः।
भरद्वाजः शुभतरं मुनिर्वाक्यमुदाहरत्।। १३।।
नैतच्चित्रं नरव्याघ्रे शीलवृत्तविदां वरे।
यदार्थं त्वयि तिष्ठेत्तु निम्नोत्सृष्टमिवोदकम्।। १४।।

महात्मा भरत की यह पवित्र बात सुन कर भरद्वाज मुनि ने यह परम मंगलमय बात कही कि हे आर्य! हे नरश्रेष्ठ! तुम शील और सदाचार जानने वालों में श्रेष्ठ हो। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सारे गुण तुममें उसी प्रकार से विद्यमान हैं, जैसे पानी सब तरफ से बह कर नीची भूमि पर एकत्र होता है।

अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः।। १५।।
तमृषिं तु महाप्राज्ञमुक्तवाक्ये कृताञ्जलिः।
आमन्त्रयितुमारेभे चरणावुपगृह्य च।। १६।।

जिन दशरथ का तुम्हारे जैसा धर्म से प्रेम करने वाला धर्मात्मा पुत्र है, वे महाबाहु तुम्हारे पिता सब प्रकार से मुक्त हो गये। तब भरत जी इस प्रकार कहते हुए उन महाप्राज्ञ भरद्वाज ऋषि के चरणों को स्पर्श कर हाथ जोड़ कर उनसे विदा लेने के लिये उद्यत हुए।

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजं पुनः पुनः।
भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः।। १७।।
यानैश्च शकटैश्चैव हयैर्नागैश्च सा चमूः।
पुनर्निवृत्ता विस्तीर्णा भरतस्यानुयायिनी।। १८।।

तब श्रीमान भरत भरद्वाज ऋषि की बार–बार प्रदक्षिणा कर मन्त्रियों के साथ अयोध्या की तरफ चल दिये। भरत जी के पीछे चलने वाली वह विशाल सेना भी सवारियों, छकड़ों, घोड़ों, हाथियों के साथ वापिस लौट चली।

एकसौ चारवाँ सर्ग

भरत के द्वारा अयोध्या की दुरवस्था का दर्शन तथा अन्तःपुर में प्रवेश करके भरत का दुःखी होना।

स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान् प्रभुः।
अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्रविवेश महायशाः।। १।।
अल्पोष्णक्षुब्धसलिलां धर्मतप्तविहंगमाम्।
लीनमीनझषग्राहां कृशां गिरिनदीमिव।। २।।

तत्पश्चात् महायशस्वी प्रभावशाली भरत ने गम्भीर और मधुर घोष वाले रथ से यात्रा करते हुए शीघ्र ही अयोध्या में प्रवेश किया। उस समय वह पुरी उस पहाड़ी नदी के समान क्षीण दिखाई दे रही थी, जिसका जल गर्मी में सूख कर थोड़ा रह गया हो और गदला हो, जिसके किनारे के पक्षी भी गर्मी से परेशान हो रहे हों और जिसके मीन, मत्स्य और ग्राह वहाँ से चले गये हों।

विधूमामिव हेमाभां शिखामग्नेः समुत्थिताम्।
हविरभ्युक्षितां पश्चाच्छिखां विप्रलयं गताम्।। ३।।
विध्वस्तकवचां रुग्णगजवाजिरथध्वजाम्।
हतप्रवीरामापन्नां चमूमिव महाहवे।। ४।।

श्रीराम के समय जो अयोध्या, स्वर्ण के समान कान्तिवाली धूएँ से रहित ऊपर को उठी हुई अग्नि की शिखा के समान प्रतीत होती थी, वही अब हवन में सामग्री के अधिक मात्रा में डाल दिये जाने पर बुझी हुई आग के समान लग रही थी। वह नगरी ऐसी सेना के समान लग रही थी, जो महान युद्ध में संकट में पड़ गयी हो, जिसे कवच टूट गये हों। हाथी घोड़े, रथ और ध्वज ध्वस्त हो गये हों और वीर योद्धा मार दिये गये हों।

सफेनां सस्वनां भूत्वा सागरस्य समुत्थिताम्।
प्रशान्तमारुतोद्धूतां जलोर्मिमिव निःस्वनाम्।। ५।।
त्यक्तां यज्ञायुधैः सर्वैरभिरूपैश्च याजकैः।
सुत्याकाले सुनिर्वृत्ते वेदिं गतरवामिव।। ६।।

समुद्र की लहरें जो वायु वेग से ऊपर उठ-उठ कर फेन और ध्वनि कर रहीं होती हैं, वे ही वायु के शान्त हो जाने पर जैसे बिल्कुल शान्त और नीरव हो जाती हैं, वैसे अयोध्या नगरी इस समय शब्दशून्य अवस्था में थी। जैसे यज्ञ का समय समाप्त हो जाने पर वेदी पर से यज्ञ का सामान हटा लिया जाता है, याजक भी वहाँ से चले जाते हैं और वेदी स्थल मन्त्रोच्चारण की ध्वनि से रहित शान्त हो जाता है वैसे ही अयोध्या अब श्रीराम के बिना दिखाई देती थी।

प्रभाकराद्यैः सुस्निग्धैः प्रज्वलद्भिरिवोत्तमैः।
वियुक्तां मणिभिर्जात्यैर्नवां मुक्तावलीमिव।। ७।।
पुष्पनद्धां वसन्तान्ते मत्तभ्रमरशालिनीम्।
द्रुतदावाग्निविप्लुष्टां क्लान्तां वनलतामिव।। ८।।

राम के बिना अयोध्या उस नयी मोतियों की माला के समान लग रही थी, जिसकी पद्मराग आदि बड़ी चिकनी चमकीली उत्तम जाति की सुन्दर मणियाँ निकाल दी गयी हों। जैसे किसी जंगली लता में बहुत फूल लगे हों और भौंरे उन पर मंडरा रहे हों, पर वसन्त के अन्त में दावानल के कारण वह झुलस कर मुरझा जाये उसी प्रकार अब अयोध्या नगरी मालूम पड़ रही थी।

सम्मूढनिगमां सर्वां संक्षिप्तविपणापणाम्।
प्रच्छन्नशशिनक्षत्रां द्यामिवाम्बुधरैर्युताम्।। ९।।
भरतस्तु रथस्थः सञ्श्रीमान् दशरथात्मजः।
वाहयन्तं रथश्रेष्ठं सारथिं वाक्यमब्रवीत्।। १०।।

वहाँ के सारे व्यापारी किं कर्तव्यविमूढ हो गये थे। दुकान और बाजार बहुत कम खुले हुए थे, जैसे बादलों के घिर जाने पर आकाश में चन्द्रमा और तारे छिप जाते हैं, वैसे ही अयोध्या नगरी प्रतीत हो रही थी। अयोध्या की यह दशा देख कर दशरथ पुत्र श्रीमान भरत ने रथ में बैठे हुए ही श्रेष्ठ रथ को चलाते हुए सारथी से यह बात कही।

किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्च्छितो न निशाम्यते।
यथापुरमयोध्यायां गीतवादित्रनिः स्वनः।। ११।।
वारुणीमदगन्धश्च माल्यगन्धश्च मूर्च्छितः।
चन्दनागुरुगन्धश्च न प्रवाति समन्ततः।। १२।।

यह कितने कष्ट की बात है कि अब अयोध्या में गीतों और वाद्य यन्त्रों वाली ध्वनि पहले की तरह नहीं सुनाई दे रही है। अब अयोध्या में मदहोश करने वाली मद्य की गन्ध, फूलों की गन्ध और चन्दन तथा अगर की गन्ध सब जगह नहीं फैल रही है।

यानप्रवरघोषश्च सुस्निग्धहयनिःस्वनः।
प्रमत्तगजनादश्च महांश्च रथनिः स्वनः।। १३।।
नेदानीं श्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासिते।
चन्दनागुरुगन्धांश्च महार्हाश्च वनस्रजः।। १४।।
गते रामे हि तरुणाः संतप्ता नोपभुञ्जते।
बहिर्यात्रां न गच्छन्ति चित्रमाल्यधरा नराः।। १५।।

राम के निर्वासित होने पर इस नगरी में सवारियों के चलने की ध्वनि, घोड़ों की हिनहिनाहट की स्निग्ध ध्वनि, मतवाले हाथियों की चिंघाड़ और रथों की घर्घराहट की महान ध्वनि नहीं सुनाई देती। श्रीराम के चले जाने से नौजवान लोग दुःखी हो कर अब बहुमूल्य वन मालाओं, चन्दन और अगर की सुगन्ध का सेवन नहीं करते हैं। लोग अब सुन्दर मालाएँ धारण कर बाहर घूमने के लिए नहीं निकलते हैं।

नोत्सवाः सम्प्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे।
सा हि नूनं मम भ्रात्रा पुरस्यास्य द्युतिर्गता।। १६।।
नहि राजत्ययोध्येयं सासारेवार्जुनी क्षपा।
कदा नु खलु मे भ्राता महोत्सव इवागतः।। १७।।
जनयिष्यत्ययोध्यायां हर्षं ग्रीष्म इवाम्बुदः।

राम के शोक से पीड़ित नगर में अब उत्सव भी नहीं मनाये जाते। वास्तव में इस नगर की शोभा तो मेरे भाई के साथ चली गई। जैसे मूसलाधार वर्षा में चमकीली रात्रि भी नहीं चमकती उसी तरह यह अयोध्या भी सुशोभित नहीं हो रही है। कब मेरे भाई महान उत्सव के समान आयेंगे और ग्रीष्म ऋतु में प्रकट होने वाले बादलों के समान अयोध्या में हर्ष का संचार करेंगे?

तरुणैश्चारुवेषैश्च नरैरुन्नतगामिभिः।। १८।।
सम्पतद्भिरयोध्यायां नाभिभान्ति महापथाः।
इति ब्रुवन् सारथिना दुःखितो भरतस्तदा।। १९।।
अयोध्यां सम्प्रविश्यैव विवेश वसतिं पितुः।
तेन हीनां नरेन्द्रेण सिंहहीनां गुहामिव।। २०।।

अब अयोध्या में बड़ी-बड़ी सड़कें सुन्दर वेषधारी और उछल कर चलने वाले नवयुवकों से तथा समृद्धिशाली लोगों के चलने से सुशोभित नहीं हो रही हैं। दुःखी भरत सारथी से इस प्रकार कहते हुए, अयोध्या में प्रवेश करते ही उन राजा से रहित, पिता के भवन में जो जो सिंह से रहित उसकी गुफा के समान प्रतीत हो रहा था, प्रविष्ट हुए।

एकसौ पाँचवाँ सर्ग

भरत का नन्दिग्राम में जाकर श्रीराम की चरण पादुकाओं को राज्य पर अभिषिक्त करके उन्हें निवेदनपूर्वक राज्य का सब कार्य करना।

ततो निक्षिप्य मातृस्ता अयोध्यायां दृढव्रतः।
भरतः शोकसंतप्तो गुरूनिदमथाब्रवीत्।। १।।
नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः।
तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना।। २।।

तब दुःख से सन्तप्त, दृढव्रत भरत ने अयोध्या में माताओं को ठहरा कर गुरुओं से इस प्रकार कहा कि मैं आप सबसे आज्ञा चाहता हूँ। मैं नन्दीग्राम में जाऊँगा और वहीं श्रीराम के बिना होने वाले दुःखों को सहन करूँगा।

गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम।
रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः।। ३।।
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः।
अब्रुवन् मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः।। ४।।

देखो महाराज स्वर्ग को चले गये और मेरे बड़े भाई वन में विद्यमान हैं। मैं इस राज्य के लिये राम की प्रतीक्षा करता रहूँगा। वे महायशस्वी ही हमारे राजा हैं। महात्मा भरत के ये शुभवचन सुन कर पुरोहित वसिष्ठ और सारे मंत्री बोले।

सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया।
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत्।। ५।।
नित्यं ते बन्धुलुब्धस्य तिष्ठतो भ्रातृसौहृदे।
मार्गमार्यं प्रपन्नस्य नानुमन्यते कः पुमान्।। ६।।

हे भरत! आपने भाई के प्रेम के कारण जो बात कही है, वह अत्यधिक प्रशंसनीय है। वह तुम्हारे ही अनुरूप है। भाई के लिये सौहार्द रखते हुए तुम सदा भाई के लिये लालयित रहते हो। तुम श्रेष्ठ मार्ग पर स्थित हो। तुम्हारी बात का अनुमोदन कौन व्यक्ति नहीं करेगा?

मन्त्रिणां वचनं श्रुत्वा यथाभिलषितं प्रियम्।
अब्रवीत् सारथिं वाक्यं रथो मे युज्यतामिति।। ७।।

प्रहृष्टवदनः सर्वा मातृः समभिभाष्य च।
आरुरोह रथं श्रीमाञ्शत्रुघ्नेन समन्वितः।। ८।।
आरुह्य तु रथं क्षिप्रं शत्रुघ्नभरतावुभौ।
ययतुः परमप्रीतौ वृतौ मन्त्रिपुरोहितैः।। ९।।
अग्रतो गुरवः सर्वे वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः।
प्रययु प्राङ्मुखाः सर्वे नन्दिग्रामो यतो भवेत्।। १०।।

मन्त्रियों से मनचाहे प्रिय वचन सुन कर भरत जी ने सारथी से कहा कि मेरा रथ जोड़ो। फिर प्रसन्नता के साथ उन्होंने सब माताओं से बात की और फिर वे श्रीमान शत्रुघ्न के साथ रथ पर आरूढ़ हुए। रथ पर आरूढ़ हो कर वे दोनों भरत और शत्रुघ्न परम सन्तुष्टि के साथ, मन्त्रियों और पुरोहितों से घिरे हुए शीघ्रता के साथ वहाँ से चले। आगे-आगे वसिष्ठ आदि सारे गुरु और प्रमुख ब्राह्मण थे। वे सब पूर्व दिशा की तरफ उस मार्ग पर चले, जो नन्दिग्राम की तरफ जाता था।

भरतस्तु ततः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः।
अवतीर्य रथात् तूर्णं गुरूनिदमभाषत।। ११।।
एतद् राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम्।
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते।। १२।।

शीघ्र नन्दिग्राम में पहुँच कर जल्दी से रथ से उतर कर भरत जी ने गुरुओं से यह कहा कि यह उत्तम राज्य मेरे भाई ने मुझे धरोहर के रूप में दिया है, उन्होंने सबका योगक्षेम करने वाली ये अपनी स्वर्णभूषित पादुकाएँ भी दी हैं।

अब्रवीद् दुःखसंतप्तः सर्वं प्रकृतिमण्डलम्।
छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ।। १३।।
आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम।

उसके बाद दुःख से संतप्त भरत ने सारी प्रजाओं से कहा कि आप लोग शीघ्र ही इन पदुकाओं के ऊपर छत्र धारण करें। ये आर्य श्रीराम के साक्षात् चरण हैं। इन मेरे गुरु की पादुकाओं से ही राज्य में धर्म की स्थापना होगी।

भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम्।
तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति।। १४।।
क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम्।
चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सहपादुकौ।। १५।।

मेरे भाई ने प्रेम से यह मुझे धरोहर सौंपी है। मैं श्री राघव के आने तक इसकी रक्षा करूँगा। जब वे लौटेंगे तब शीघ्रता से मैं उनके चरणों में इन पादुकाओं को पहना कर पादुकाओं सहित उनके चरणों के दर्शन करूँगा।

राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके।। १६।।
राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपापो भवाम्यहम्।
अभिषिक्ते तु काकुत्स्थे प्रहृष्टमुदिते जने।। १७।।
प्रीतिर्मम यशश्चैव भवेद् राज्याच्चतुर्गुणम्।

उस समय धरोहर के रूप में विद्यमान ये पादुकाएँ, राज्य और अयोध्या को उन्हें लौटा कर मैं पापों से रहित हो जाऊँगा। जब श्रीराम का अभिषेक हो जायेगा, जनता के लोग हर्षित और आनन्दित हो जायेंगे तो मुझे राज्य की अपेक्षा चौगुने प्रेम और यश की प्राप्ति होगी।

एवं तु विलपन् दीनो भरतः स महायशाः।। १८।।
नन्दिग्रामेऽकरोद् राज्यं दुःखितो मन्त्रिभिः सह।
स वल्कलजटाधारी मुनिवेषधरः प्रभुः।
नन्दिग्रामेऽवसद् धीरः ससैन्यो भरतस्तदा।। १९।।

इस प्रकार दीनता के साथ विलाप करते हुए वे महायशस्वी भरत दुःख के साथ मंत्रियों सहित नन्दिग्राम में राज्य करने लगे। वे प्रभावशाली, धैर्यवान भरत तब वल्कल और जटाएँ धारण करके मुनियों के वेष में नन्दिग्राम में ही सेना के साथ रहने लगे।

एकसौ छैवाँ सर्ग

वृद्ध कुलपति सहित बहुत से ऋषियों का चित्रकूट छोड़ कर दूसरे आश्रम में जाना।

प्रतियाते तु भरते वसन् रामस्तदा वने।
लक्षयामास सोद्वेगमथौत्सुक्यं तपस्विनाम्।। १।।
ये तत्र चित्रकूटस्य पुरस्तात् तापसाश्रमे।
राममाश्रित्य निरतास्तानलक्षयदुत्सुकान्।। २।।
नयनैर्भ्रुकुटीभिश्च रामं निर्दिश्य शङ्किताः।
अन्योन्यमुपजल्पन्तः शनैश्चक्रुर्मिथः कथाः।। ३।।

भरत जी के चले जाने पर, तब श्रीराम ने वहाँ रहने वाले तपस्वियों में बेचैनी और उत्सुकता को लक्षित

किया। पहले उस तपस्वियों के आश्रम में जो तपस्वी श्री राम का सहारा ले कर आराम से रहते थे, उन्हीं को उन्होंने उत्सुकता के युक्त देखा। वे लोग आँखों और भौहों के संकेत से राम की तरफ शंकित हो कर निर्देश कर धीरे-धीरे आपस में काना फूसी करते थे।

तेषामौत्सुक्यमालक्ष्य रामस्त्वात्मनि शङ्कितः।
कृताञ्जलिरुवाचेदमृषिं कुलपतिं ततः।। ४।।
न कश्चिद् भगवन् किंचित् पूर्ववृत्तमिदं मयि।
दृश्यते विकृतं येन विक्रियन्ते तपस्विनः।। ५।।

उनके अन्दर उत्सुकता को देख कर श्रीराम को भी अपने प्रति कुछ शंका हुई और उन्होंने हाथ जोड़ कर आश्रम के कुलपति से पूछा कि हे भगवन! क्या मुझ में पहले के राजाओं जैसी कोई बात नहीं है या मुझ में कोई दोष उत्पन्न हुआ दिखाई देने लगा है, जिसके कारण यहाँ के तपस्वी मेरे विषय में विकार को प्राप्त कर रहे हैं।

प्रमादाच्चरितं किंचित् कच्चिन्नावरजस्य मे।
लक्ष्मणस्यर्षिभिर्दृष्टं नानुरूपं महात्मनः।। ६।।
कच्चिच्छुश्रूषमाणा वः शुश्रूषणपरा मयि।
प्रमदाभ्युचितां वृत्तिं सीता युक्तां न वर्तते।। ७।।

क्या ऋषियों ने मेरे छोटे भाई महात्मा लक्ष्मण का प्रमाद से किया हुआ कोई आचरण देखा है जो उनके अनुरूप नहीं हैं? क्या आप लोगों की सेवा में लगी हुई सीता मेरी सेवा में लगी हुई होने के कारण, आपकी सेवा ठीक प्रकार से नहीं कर पाती है?

अथर्षिर्जरया वृद्धस्तपसा च जरां गतः।
वेपमान इवोवाच रामं भूतदयापरम्।। ८।।
कुतः कल्याणसत्त्वायाः कल्याणाभिरतेः सदा।
चलनं तात वैदेह्यास्तपस्विषु विशेषतः।। ९।।

तब प्राणियों पर दया करने वाले श्रीराम से वह ऋषि जो आयु और तपस्या दोनों में वृद्ध थे, काँपते हुए से बोले कि हे तात! वैदेही जो स्वभाव से ही दूसरों की भलाई चाहती है और दूसरों के कल्याण में ही सदा लगी रहती है, वे विशेष कर तपस्वियों की सेवा में लापरवाही कैसे कर सकती है?

त्वन्निमित्तमिदं तावत् तापसान् प्रति वर्तते।
रक्षोभ्यस्तेन संविग्नाः कथयन्ति मिथः कथाः।। १०।।
रावणावरजः कश्चित् खरो नामेह राक्षसः।
उत्पाट्य तापसान् सर्वाञ्जनस्थाननिवासिनः।। ११।।
धृष्टश्च जितकाशी च नृशंसः पुरुषादकः।
अवलिप्तश्च पापश्च त्वां च तात न मृष्यते।। १२।।

हे तात! तुम्हारे कारण से तपस्वियों को राक्षसों से भय उपस्थित होने वाला है, इसलिये वे चिन्तित हैं और आपस में कानाफूसी करते हैं। यहाँ रावण का छोटा भाई खर नाम का कोई राक्षस है, जिसने जन स्थान में रहने वाले सारे तपस्वियों को उखाड़ फेंका है। वह बड़ा ढीठ, जीतने की इच्छा वाला, निर्दय और मनुष्यभक्षी है। हे तात! वह पापों में लगा हुआ आपको सहन नहीं कर रहा है।

त्वं यदाप्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे।
तदाप्रभृति रक्षांसि विप्रकुर्वंति तापसान्।। १३।।
दर्शयन्ति हि बीभत्सैः क्रूरैर्भीषणकैरपि।
नानारूपैर्विरूपैश्च रूपैरसुखदर्शनैः।। १४।।
अप्रशस्तैरशुचिभिः सम्प्रयुज्य च तापसान्।
प्रतिघ्नन्त्यपरान् क्षिप्रमनार्याः पुरतः स्थितान्।। १५।।

हे तात! जब से तुम यहाँ रह रहे हो, तब से वे राक्षस तपस्वियों को परेशान करने लगे हैं। वे अनेक तरह की भयानक, घृणायुक्त, और क्रूरतापूर्ण आकृतियों को बना कर आते हैं। वे अपवित्र और पापयुक्त पदार्थों का तपस्वियों से स्पर्श करा कर दूसरे सामने खड़े हुए तपस्वियों को भी वे अनार्य लोग पीड़ा पहुँचाते हैं।

तेषु तेष्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीय च।
रमन्ते तापसांस्तत्र नाशयन्तोऽल्पचेतसः।। १६।।
अवक्षिपन्ति स्रुग्भाण्डानग्नीन् सिञ्चन्ति वारिणा।
कलशांश्च प्रमर्दन्ति हवने समुपस्थिते।। १७।।

वे उन-उन आश्रमों में अज्ञात रूप से आ कर छिप जाते हैं और असावधान तपस्वियों को नष्ट कर आनन्द का अनुभव करते हैं। वे यज्ञ के प्रारम्भ होने पर हमारे यज्ञ पात्रों को फेंक देते हैं, घड़ों को फोड़ देते हैं और अग्नि में पानी डाल देते हैं।

तैर्दुरात्मभिराविष्टानाश्रमान् प्रजिहासवः।
गमनायान्यदेशस्य चोदयन्त्यृषयोऽद्य माम्।। १८।।
तत् पुरा राम शारीरीमुपहिंसां तपस्विषु।
दर्शयन्ति हि दुष्टास्ते त्यक्ष्याम इममाश्रमम्।। ११।।

उन दुष्टों से प्रभावित आश्रमों को छोड़ने की इच्छा वाले ऋषि लोग मुझे भी यहाँ से दूसरे स्थान पर चलने के लिये प्रेरित कर रहे हैं। इसलिये हे राम! इससे पहले कि वे दुष्ट ऋषियों के प्रति शारीरिक हिंसा का प्रदर्शन करें हम इस आश्रम को छोड़ देंगे।

बहुमूलफलं चित्रमविदूरादितो वनम्।
अश्वस्याश्रममेवाहं श्रयिष्ये सगणः पुनः।। २०।।
खरस्त्वय्यपि चायुक्तं पुरा राम प्रवर्तते।
सहास्माभिरितो गच्छ यदि बुद्धिः प्रवर्तते।। २१।।

यहाँ समीप ही एक विचित्र वन है, जिसमें फल मूल की अधिकता है। वहाँ अश्व मुनि का आश्रम है, मैं ऋषियों के समूह के साथ उसी आश्रम का आश्रय लूँगा। हे राम! खर राक्षस आपके प्रति भी कोई अनुचित व्यवहार करे, इससे पहले ही यदि आपकी बुद्धि कहे तो आप हमारे साथ चल दीजिये।

सकलत्रस्य संदेहो नित्यं युक्तस्य राघव।
समर्थस्यापि हि सतो वासो दुःखमिहाद्य ते।। २२।।
इत्युक्तवन्तं रामस्तं राजपुत्रस्तपस्विनम्।
न शशाकोत्तरैर्वाक्यैरवबद्धुं समुत्सुकम्।। २३।।
अभिनन्द्य समापृच्छ्य समाधाय च राघवम्।
स जगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलैः कुलपतिः सह।। २४।।

हे राघव! यद्यपि आप सदा सावधान रहते हैं और उनका प्रतिकार करने में समर्थ हैं, पर पत्नी सहित यहाँ रहना दुखदायक और सन्देहजनक है। ऐसा कहते हुए उन कुलपति तपस्वी को जो जाने के लिये उत्सुक थे, राजपुत्र राम सान्त्वनामय वाक्यों से रोकने में समर्थ नहीं हो सके। वे कुलपति श्रीराम का अभिनन्दन कर उन्हें आश्वासन दे कर और उनसे विदा ले कर आश्रम को छोड़ कर अपने समूह के ऋषियों के साथ चले गये।

रामः संसाध्य ऋषिगणमनुगमनाद्
देशात् तस्मात् कुलपतिमभिवाद्य ऋषिम्।
सम्यक्प्रीतैस्तैरनुमत उपदिष्टार्थः
पुण्यं वासाय स्वनिलयमुपसम्पेदे।। २५।।

तब श्रीराम उस देश को छोड़ कर जाते हुए ऋषियों के पीछे-पीछे जा कर उन्हें विदा कर, उन्हें प्रणाम कर अत्यन्त प्रसन्न हुए उनके द्वारा अनुमति प्राप्त कर, उनके दिये उपदेश को ग्रहण कर अपने पवित्र आश्रम स्थान पर निवास के लिये लौट आये।

एकसौ सातवाँ सर्ग

श्रीराम का अत्रिमुनि के आश्रम पर जा कर उनके द्वारा सत्कृत होना। अनसूया द्वारा सीता का सत्कार।

राघवस्त्वपयातेषु सर्वेष्वनुविचिन्तयन्।
न तत्रारोचयद् वासं कारणैर्बहुभिस्तदा।। १।।
इह मे भरतो दृष्टो मातरश्च सनागराः।
सा च मे स्मृतिरन्वेति तान् नित्यमनुशोचतः।। २।।
स्कन्धावारनिवेशेन तेन तस्य महात्मनः।
हयहस्तिकरीषैश्च उपमर्दः कृतो भृशम्।। ३।।
तस्मादन्यत्र गच्छाम इति संचिन्त्य राघवः।
प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च संगतः।। ४।।

उन सब ऋषियों के चले जाने पर श्रीराम जब विचार करने लगे तो बहुत से कारणों से उन्हें भी वहाँ रहना रुचि कर नहीं लगा। उन्होंने विचार किया कि यहाँ मैं भरत से, माताओं से, नागरिकों से मिल चुका हूँ, ध्यान करने पर मुझे नित्य उनकी स्मृति आती है। यहाँ का स्थान महात्मा भरत की सेना के ठहरने से कुचल दिया गया है और हाथी घोड़ों की लीद से अपवित्र कर दिया गया है। इसलिये हमें भी यहाँ से दूसरी जगह जाना चाहिये, ऐसा विचार कर श्रीराम वैदेही और लक्ष्मण के साथ वहाँ से चल दिये।

सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः।
तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत् प्रत्यपद्यत।। ५।।
स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसत्कृतम्।
सौमित्रिं च महाभागं सीतां च समसान्त्वयत्।। ६।।

वे तब वहाँ से अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन महायशस्वी राम ने अत्रि मुनि को प्रणाम किया। अत्रि मुनि ने भी उनका पुत्र के समान स्वागत किया। उन्होंने स्वयं ही अच्छा सत्कार और अच्छा आतिथ्य कर उन महाभाग श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को सन्तुष्ट किया।

पत्नीं च तमनुप्राप्तां वृद्धामामन्त्र्य सत्कृताम्।
सान्त्वयामास धर्मज्ञः सर्वभूतहिते रतः।। ७।।
अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम्।
प्रतिगृह्णीष्व वैदेहीमब्रवीदृषिसत्तमः।। ८।।

ऋषियों में श्रेष्ठ, धर्मज्ञ और सारे प्राणियों के हित में लगे हुए, श्री अत्रि मुनि ने अपनी पत्नी महाभागा अनुसूया को जो समीप आ गयी थीं, जो सम्मानित तापसी

तथा धर्मचारिणी थीं और वृद्ध हो गयी थी सम्बोधित करके कहा कि विदेह नन्दिनी सीता का स्वागत करो।

तामिमां सर्वभूतानां नमस्कार्यां तपस्विनीम्।। ९।।
अभिगच्छतु वैदेही वृद्धामक्रोधनां सदा।
एवं ब्रुवाणं तमृषिं तथेत्युक्त्वा स राघवः।। १०।।
सीतामालोक्य धर्मज्ञामिदं वचनमब्रवीत्।

फिर उन्होंने राम को उस तपस्विनी धर्मचारिणी का परिचय दिया और कहा कि ये सारे प्राणियों के लिये नमस्कार्य हैं, इन्हें कभी क्रोध नहीं आता, इन वृद्धा तपस्विनी के पास सीता जी जायें। तब श्रीराम ने ऋषि के ऐसा कहने पर 'अच्छा' ऐसा कहा और धर्मज्ञा सीता की तरफ देख कर यह बोले।

राजपुत्रि श्रुतं त्वेतन्मुनेरस्य समीरितम्।। ११।।
श्रेयोऽर्थमात्मनः शीघ्रमभिगच्छ तपस्विनीम्।
अनसूयेति या लोके कर्मभिः ख्यातिमागता।। १२।।
तां शीघ्रमभिगच्छ त्वमभिगम्यां तपस्विनीम्।

हे राजपुत्री! तुमने इन मुनि का वचन सुना। अपने कल्याण के लिये तुम इन तपस्विनी के पास शीघ्रता से जाओ। ये अनसूया हैं! ये अपने क्रोध न करने के कार्य से भी संसार में इस नाम से प्रसिद्ध हुई हैं। तुम आश्रय लेने योग्य इन तपस्विनी का शीघ्र आश्रय लो।

सीता त्वेतद् वचः श्रुत्वा राघवस्य यशस्विनी।। १३।।
तामत्रिपत्नीं धर्मज्ञामभिचक्राम मैथिली।
शिथिलां वलितां वृद्धां जरापाण्डुरमूर्धजाम्।। १४।।
सततं वेपमानाङ्गीं प्रवाते कदलीमिव।

यशस्विनी मिथिलेश पुत्री सीता श्रीराम की यह बात सुन कर अत्रि मुनि की उस धर्मज्ञा पत्नी के पास गयीं। उन अनसूया का शरीर वृद्धावस्था के कारण शिथिल हो गया था, शरीर में झुर्रियाँ पड़ गयीं थीं, सिर के बाल सफेद हो गये थे। तेज हवा में हिलते हुए केले के पत्ते के समान उनके शरीर के अंग निरन्तर काँपते रहते थे।

तां तु सीता महाभागामनसूयां पतिव्रताम्।। १५।।
अभ्यवादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत्।
अभिवाद्य च वैदेही तापसीं तां दमान्विताम्।। १६।।
बद्धाञ्जलिपुटा हृष्टा पर्यपृच्छदनामयम्।

उन महाभागा, पतिव्रता अनसूया को सीता ने शान्त भाव से प्रणाम किया और अपना नाम बताया। उन इन्द्रियों के दमन से युक्त तपस्विनी को प्रणाम करके सीता ने प्रसन्नता के साथ हाथ जोड़ कर उनका कुशल समाचार पूछा।

ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम्।। १७।।
सान्त्वयन्त्यब्रवीद् वृद्धा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे।
त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि।। १८।।
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि।

तब धर्म पर चलने वाली उस महाभागी सीता को देख कर वे बूढ़ी अनसूया उन्हें सान्त्वना देती हुई बोली कि सौभाग्य की बात है कि तुम धर्म पर ही अपनी निगाह रखती हो। हे मानिनी सीता! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम अपने बन्धु बान्धवों को छोड़ कर सम्मान की बढ़ोतरी का ध्यान न कर वन में भेजे हुए राम का ही अनुसरण कर रही हो।

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः।। १९।।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः।
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।। २०।।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।

अपना पति चाहे वह नगर में रहे, या वन में रहे, बुरे स्वभाव का हो, या स्वेच्छाचारी हो, या धनहीन हो, उत्तम स्वभाव वाली स्त्रियों के लिये पति ही परम देवता होता है।

नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम्।। २१।।
सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपःकृतमिवाव्ययम्।
न त्वेवमनुगच्छन्ति गुणदोषमसत्स्त्रियः।। २२।।
कामवक्तव्यहृदया भर्तृनाथाश्चरन्ति याः।

सोच विचार करने पर मैं पति से श्रेष्ठ अपना बन्धु और किसी को नहीं देखती। हे वैदेही! तपस्या के अविनाशी फल के समान पति ही सब जगह सुख को देने वाला होता है। जो असाध्वी स्त्रियाँ होती हैं वे पति का इस प्रकार अनुसरण नहीं करतीं हैं। वे कामनाओं से युक्त होती हैं और पति पर शासन करती हैं। वे गुणदोष को न जान कर इच्छानुसार विचरती रहती हैं।

प्राप्नुवन्त्ययशश्चैव धर्मभ्रंशं च मैथिलि।। २३।।
अकार्यवशमापन्नाः स्त्रियो याः खलु तद्विधाः।
त्वद्विधास्तु गुणैर्युक्ता दृष्टलोकपरावराः।
स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथा पुण्यकृतस्तथा।। २४।।

हे मैथिली! इस प्रकार की स्त्रियाँ अपयश को प्राप्त करती हैं। वे अनुचित कार्य में फँस कर धर्म से भ्रष्ट हो जाती हैं, किन्तु तुम्हारे समान गुणों से युक्त स्त्रियाँ, जिन्होंने लोक और परलोक को समझा हुआ है, दूसरे पुण्यवानों के समान परलोक में उत्तम गति को प्राप्त होती हैं।

तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती
पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी।
भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी
यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि।। २५।।

इसलिये तुम इसी प्रकार इस व्रत का पालन करते हुए हर समय पति को ही प्रधान मानते हुए उनके अनुसार रहो। अपने पति के साथ रहते ही धर्म का पालन करो, इससे तुम यश और धर्म दोनों को प्राप्त करोगी।

एकसौ आठवाँ सर्ग

सीता अनसूया संवाद, अनसूया का सीता जी को प्रेमोपहार देना तथा श्रीराम का रात्रि में आश्रम पर रह कर प्रातः काल अन्यत्र जाने के लिये विदा लेना।

सा त्वेवमुक्ता वैदेही त्वनसूयानसूयया।
प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे।। १।।
नैतदाश्चर्यमार्यायां यन्मां त्वमनुभाषसे।
विदितं तु ममाप्येतद् यथा नार्याः पतिर्गुरुः।। २।।
यद्यप्येष भवेद् भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः।
अद्वैधमत्र वर्तव्यं यथाप्येष मया भवेत्।। ३।।

अनसूया के द्वारा इस प्रकार उपदेश देने पर किसी से द्वेष न रखने वाली वैदेही ने उनके वचनों की प्रशंसा करके धीरे-धीरे इस प्रकार कहना आरंभ किया कि आप तो सर्वश्रेष्ठ नारी हैं, इसलिये आप जो इतना उत्तम उपदेश मुझे दे रही हैं, इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। मुझे भी यह पता है कि नारी का तो पति ही गुरु है। यदि पति अनार्य और जीविका रहित भी है तो भी मुझे दुविधा नहीं करनी चाहिये और वैसा ही व्यवहार इनके साथ करना चाहिये जैसा अब करती हूँ।

किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः।। ४।।
यां वृत्तिं वर्तते रामः कौसल्यायां महाबलः।
तामेव नृपनारीणामन्यासामपि वर्तते।। ५।।

फिर ऐसे पति की तो बात क्या है, जब ये अपने गुणों के कारण सबके प्रशंसनीय, परम दयालु, जितेन्द्रिय, दृढ़ प्रेम रखने वाले, धर्मात्मा और माता पिता के समान प्रिय हैं। ये महाबली जैसा बर्ताव अपनी माता कौशल्या के साथ करते हैं, वैसा ही महाराज दशरथ की दूसरी स्त्रियों के साथ भी करते हैं।

आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम्।
समाहितं हि मे श्वश्र्वा हृदये यत् स्थिरं मम।। ६।।
पाणिप्रदानकाले च यत् पुरा त्वग्निसंनिधौ।
अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम्।। ७।।
न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि।
पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद् विधीयते।। ८।।

इस प्रकार के निर्जन और भयानक वन में आते हुए मेरी सास ने जो मुझे शिक्षा दी थी, वह मेरे हृदय में स्थिर है। पहले विवाह के समय अग्नि के समक्ष मेरी माता ने जो मुझे शिक्षा दी थी, वह भी मैंने मन में धारण की हुई है। हे धर्मचारिणी! दूसरे और स्वजनों ने भी जो-जो मुझे उपदेश दिये हैं, वह मुझे भूले नहीं हैं। स्त्री के लिये पति की सेवा के अतिरिक्त कोई और दूसरा तप नहीं है।

ततोऽनसूया संहृष्टा श्रुत्वोक्तं सीतया वचः।
शिरस्याघ्राय चोवाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत।। ९।।
उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि।
प्रीता चास्म्युचिता सीते करवाणि प्रियं च किम्।। १०।।

तब अनसूया सीता जी के ये वचन सुन कर बहुत प्रसन्न हुईं। वे उनका सिर सूँघ कर मैथिली का हर्ष बढ़ाते हुए बोलीं कि हे मैथिली! तुमने बहुत ही अच्छी और युक्तियुक्त बात कही है, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। हे सीते! बताओ मैं तुम्हारे लिये कौन सा प्यारा कार्य करूँ?

कृतमित्यब्रवीत् सीता विस्मिता मन्द विस्मया।
सात्वेवमुक्ता धर्मज्ञा तथा प्रीततराभवत्।। ११।।
सफलं च प्रहर्षं ते हन्त सीते करोम्यहम्।

तब विस्मय से मन्द मन्द मुस्कराती हुई सीता ने कहा कि आपने अपनी वाणी से ही सारा प्रिय कार्य कर दिया है। सीता के ऐसा कहने पर धर्मज्ञा अनसूया और भी अधिक प्रसन्न हुई और वह बोली तुम्हारे वचनों से मुझे जो हर्ष हो रहा है, मैं उसे अवश्य सार्थक करूँगी।

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।। १२।।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्।
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत।। १३।।

हे सीते! यह अत्यधिक सुन्दर और श्रेष्ठ माला, वस्त्र और आभूषण हैं। यह बहुमूल्य अंगराग और अनुलेपन है। हे वैदेही! ये मेरी दी हुई चीज़े तुम्हारे अंगों की शोभा बढ़ायेंगी।

रविरस्तं गतः श्रीमानुपोह्य रजनीं शुभाम्।
दिवसं परिकीर्णानामाहारार्थं पतत्त्रिणाम्।। १४।।
संध्याकाले निलीनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः।
एते चाप्यभिषेकार्द्रा मुनयः कलशोद्यताः।। १५।।
सहिता उपवर्तन्ते सलिलाप्लुतवल्कलाः।

अब श्रीमान सूर्य रात्रि को यहाँ पहुँचा कर अस्त हो गये हैं। वे पक्षी जो दिन में भोजन के लिये चारों तरफ बिखरे हुए थे, वे अब संध्या के समय अपने घोंसलों में छिप गये हैं, उनकी चहचहाट सुनाई दे रही है। ये स्नान कर भीगे वल्कल पहरे हुए, मुनि लोग कलश उठा गीले शरीर के साथ एक साथ आश्रम की तरफ लौट रहे हैं।

अग्निहोत्रे च ऋषिणा हुते च विधिपूर्वकम्।। १६।।
कपोताङ्गारुणो धूमो दृश्यते पवनोद्धतः।
अल्पवर्णा हि तरवो घनीभूताः समन्ततः।। १७।।
विप्रकृष्टेन्द्रिये देशे न प्रकाशन्ति वै दिशः।

ऋषियों के द्वारा हवन किये जाने पर यह कबूतर के गले के रंग वाला धुआँ वायु के द्वारा ऊपर को उठ रहा है। इन्द्रियों की पहुँच से दूर के स्थान में स्थित वृक्ष थोड़े पत्ते वाले होने पर भी, अन्धकार के कारण घनीभूत हो गये हैं और इसलिये दिशाएँ प्रतीत नहीं हो रही हैं।

रजनीचरसत्त्वानि प्रचरन्ति समन्ततः।। १८।।
तपोवनमृगा ह्येते वेदितीर्थेषु शेरते।
सम्प्रवृत्ता निशा सीते नक्षत्रसमलंकृता।। १९।।
ज्योत्स्नाप्रवारणश्चन्द्रो दृश्यतेऽभ्युदितोऽम्बरे।

रात में घूमने वाले जन्तु सब तरफ घूम रहे हैं। तपोवन के मृग वेदी के पवित्र स्थान में सो रहे हैं। हे सीता नक्षत्रों से अलंकृत रात्रि आ गई है। चाँदनी से घिरा हुआ चंद्रमा आकाश में उदय होता हुआ दिखाई दे रहा है।

गम्यतामनुजानामि रामस्यानुचरी भव।। २०।।
कथयन्त्या हि मधुरं त्वयाहमपि तोषिता।
अलंकुरु च तावत् त्वं प्रत्यक्षं मम मैथिलि।। २१।।
प्रीतिं जनय मे वत्से दिव्यालंकारशोभिनी।
सा तदा समलंकृत्य सीता सुरसुतोपमा।। २२।।
प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वभिमुखी ययौ।

अब तुम जाओ। मैं आज्ञा देती हूँ। राम की सेवा में लगो। तुमने अपनी मधुर बातों से मुझे भी सन्तुष्ट कर दिया है। पर हे मैथिली! पहले मेरे सामने इन वस्त्राभूषणों से अपने शरीर को सजाओ। इन सुन्दर अलंकारों से सुशोभित हो कर बेटी तुम मुझे भी प्रसन्न करो। तब उस देवकन्या के समान सुन्दरी सीता ने उन आभूषणों से अपना श्रृंगार किया और अनसूया के चरणों में प्रणाम कर राम के सम्मुख गयीं।

न्यवेदयत् ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली।। २३।।
प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरणस्रजाम्।
प्रहृष्टस्त्वभवद् रामो लक्ष्मणश्च महारथः।। २४।।
ततः स शर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम्।
अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः।। २५।।

तब मिथिलेश कुमारी सीता ने तपस्विनी अनसूया के हाथ से वस्त्राभूषण आदि की प्राप्ति की सारी बातें बतायीं। उन्हें सुन कर श्रीराम और महारथी लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए और सारे तपस्वियों द्वारा सम्मानित श्रीराम ने वह रात्रि वहाँ व्यतीत की।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान्।
आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान् वनगोचरान्।। २६।।
तावूचुस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः।
वनस्य तस्य संचारं राक्षसैः समभिप्लुतम्।। २७।।
रक्षांसि पुरुषादानि नानारूपाणि राघव।
वसन्त्यस्मिन् महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः।। २८।।
एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वनं।
अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुंराघव ते क्षमम्।। २९।।

उस रात्रि के व्यतीत होने पर जब तपस्वी लोग स्नान कर अग्निहोत्र कर चुके, तब उन दोनों नरश्रेष्ठों ने वनभूमि में विचरण करने वाले उनसे जाने के लिये आज्ञा ली। वन में विचरण करने वाले, धर्म का आचरण करने वाले तपस्वियों ने उन दोनों को कहा कि हे राघव! इस वन का मार्ग राक्षसों से भरा हुआ है। अनेक प्रकार के रूप बनाने वाले, मनुष्यभक्षी राक्षस इस महान वन में रहते हैं और रक्तभोजी हिंसक पशु भी यहाँ निवास करते हैं। यही वह मार्ग है जिससे लोग वनों में फलों को लेने जाते हैं। हे राघव! इसी मार्ग से इस दुर्गम वन में जा सकते हो।

इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभि-
र्द्विजैः कृतस्वस्त्ययनः परंतपः।
वनं समार्यः प्रविवेश राघवः
सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम्।। ३०।।

जब उन ब्राह्मणों ने हाथ जोड़ कर यह कहा और उनका स्वस्तिवाचन किया तब परंतप राघव लक्ष्मण और सीता के साथ वन में इस प्रकार प्रविष्ट हुए जैसे सूर्य बादलों की घटा में प्रवेश करता है।

अरण्यकाण्ड

पहला सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता का तापसों के आश्रमों में सत्कार।

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान्।
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम्।। १।।
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम्।
यथा प्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमण्डलम्।। २।।

उन मनस्वी और दुर्धर्ष वीर श्रीराम ने उस महान वन दण्डकारण्य में प्रवेश कर वहाँ तपस्वियों के आश्रमों का एक समूह देखा। जैसे आकाश में दुर्दर्श सूर्य मण्डल जगमगाता हे, वैसे वह आश्रमों का समूह भी ब्रह्म विद्या के ऐश्वर्य से व्याप्त था। वहाँ सब तरफ कुश और चीर फैलाये हुए थे।

शरण्यं सर्वभूतानां सुसम्मृष्टाजिरं सदा।
मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम्।। ३।।
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैरजिनैः कुशैः।
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम्।। ४।।
आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम्।

वह आश्रम मण्डल सारे प्राणियों को आश्रय देने वाला था, उसका आँगन अच्छी तरह से झाड़ा बुहारा हुआ था। वह वन्य पशुओं से भरा हुआ था, पक्षियों के समुदाय उसे भी उसे सब तरफ से घेरे रहते थे, उस आश्रम समूह में विशाल यज्ञ शालाएँ थीं, यज्ञ की सामग्रियों, स्रुवा, यज्ञपात्र, मृगचर्म, कुशा, समिधा, जल क्लश फल मूलों से वह सुशोभित था। वह आश्रम स्वादिष्ट फलों से भरे हुए बड़े-बड़े जंगली वृक्षों से घिरा हुआ था।

बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम्।। ५।।
पुष्पैश्चान्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया।
फलमूलाशनैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः ।। ६।।
सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम्।

वहाँ बलिवैश्वदेव और हवन होते रहते थे, इसलिये वह वेदमंत्रों की ध्वनि से गूँजता रहता था। उस पवित्र आश्रम समूह में कमलों से युक्त एक पुष्करिणी विद्यमान थी तथा और भी अन्य प्रकार के फूल बिखरे पड़े रहते थे। उस आश्रम समूह में फलमूल खाने वाले, दमनशील, चीर और कृष्ण मृगचर्मधारी, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी वृद्ध मुनि लोग रहते थे।

ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ।। ७।।
तद् दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम्।
अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद् धनुः।। ८।।
दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः।
अभिजग्मुस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम्।। ९।।

वह आश्रम समुदाय अनेक ब्रह्मविद्या को जानने वाले ब्राह्मणों से सुशोभित था। महातेजस्वी श्रीमान राम उस आश्रम समुदाय को देख कर, अपने महान धनुष की प्रत्यञ्चा उतार कर उसके अन्दर गए। तब दिव्य ज्ञान से सम्पन्न वे महर्षि लोग राम को और यशस्विनी सीता को देख कर बड़ी प्रसन्नता से उनके समीप गये।

ते तु सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणम्।
लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा तु वैदेहीं च यशस्विनीम्।। १०।।
मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन् दृढव्रताः।
अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः।। ११।।
अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन्।

उन दृढ़व्रत वाले ऋषियों ने धर्म का पालन करने वाले और उदय होते हुए चन्द्रमा के समान राम और लक्ष्मण को, यशस्विनी सीता को देख कर उनके लिये मंगलवाक्य बोलते हुए उनका सत्कार किया। सब प्राणियों के हित में लगे हुए उन महाभागों ने अपने अतिथि श्रीराम को पर्णशाला में ठहराया।

ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः।। १२।।
आजह्रुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः।
मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः।। १३।।
मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः।

उन अग्नि के समान तेजस्वी, धर्मचारी, महाभाग ऋषियों ने श्रीराम का विधिवत् सत्कार कर उन्हें जल प्रदान किया और फिर प्रसन्नता के साथ फल, मूल और पुष्प अर्पित किये। इसके पश्चात उन महात्माओं ने वह आश्रम भी उन्हें समर्पित कर दिया।

दूसरा सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता पर विराध राक्षस का आक्रमण।

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति।
आमन्त्र्य स मुनीन् सर्वान् वनमेवान्वगाहत।। १।।
नानामृगगणाकीर्णमृक्षशार्दूलसेवितम् ।
निष्कूजमानशकुनि झिल्लिकागणनादितम्।। २।।
लक्ष्मणानुचरो रामो वनमध्यं ददर्श ह।

रात्रि में वहाँ आतिथ्य स्वीकार कर सूर्य के उदय होने पर सब मुनियों से विदा ले कर वे वन के अंदर ही आगे जाने लगे। लक्ष्मण के साथ वहाँ चलते हुए उन्होंने वन के मध्य में एक भयानक स्थान देखा। वह अनेक प्रकार के वन्य पशुओं से भरा हुआ था। वहाँ रीछ और सिंह रहा करते थे। वहाँ पक्षी भी नहीं चहचहा रहे थे, केवल झींगुरों की झंकार गूँज रही थी।

सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन् घोरमृगायुते।। ३।।
ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम्।
गम्भीराक्षं महावक्त्रं विकटं विकटोदरम्।। ४।।
बीभत्सं विषमं दीर्घं विकृतं घोरदर्शनम्।
वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम्।। ५।।

उन्होंने वन पशुओं से भरे हुए उस भयानक वन में एक ऐसे मनुष्यभक्षी राक्षस को देखा जो पर्वत की चोटी के समान ऊँचा था और ज़ोर से गर्जना कर रहा था। उसकी आँखें गहरी, मुख भयानक और विशाल और पेट विकराल था। वह देखने में बड़ा भयानक, घृणायुक्त, बेडौल, विशाल और विकृत वेश से युक्त था। उसने खून से भरे, चरबी से गीले बाघ के चमड़े को पहन रखा था।

स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वा च मैथिलीम्।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः।। ६।।
स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम्।
अङ्केनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाब्रवीत्।। ७।।
युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिपाणिनौ।। ८।।
कथंतापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह।
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ।। ९।।

वह राम लक्ष्मण और मैथिली सीता को देख कर क्रोध से भरा हुआ, प्रजाओं के प्राणों का अन्त करने वाली मृत्यु के समान, भैरव नाद करता हुआ और भूमि को कम्पित सा करता हुआ उनकी तरफ दौड़ा। वह सीता को गोद में उठा कर, थोड़ी दूर उनसे हट कर बोला कि तुम दोनों जटा और चीर धारण कर, धनुषबाण और तलवार लेकर पत्नी के साथ दण्डकारण्य में जो प्रविष्ट हुए हो, तुम्हारा जीवन अब थोड़ी ही देर का है, तुम तपस्वी हो फिर पत्नी के साथ क्यों रहते हो। तुम दोनों अधर्मचारी, पापी और मुनियों के वेष को दूषित करने वाले हो।

अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः।
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन्।। १०।।
इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति।
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे।। ११।।
तस्यैवं ब्रुवतो दुष्टं विराधस्य दुरात्मनः।
श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं सम्भ्रान्ता जनकात्मजा।
सीता प्रवेपितोद्वेगात् प्रवाते कदली यथा।। १२।।

मैं विराध नाम का राक्षस, इस दुर्गम वन में अस्त्र शस्त्रों के साथ, ऋषियों के माँस को खाता हुआ घूमता रहता हूँ। मैं तुम दोनों पापियों का युद्ध में खून पीऊँगा, और यह सुन्दरी नारी मेरी पत्नी बनेगी। उस दुष्ट विराध की ये दुष्टता और अभिमान से भरी हुई बातें सुन कर सीता घबराहट और उद्वेग से उसी प्रकार काँपने लगी जैसे तेज वायु से केले का वृक्ष हिलता है।

तीसरा सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण और विराध का संघर्ष।

तं रामः प्रत्युवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः।
राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम्।। १।।
क्षुद्र धिक् त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसेध्रुवम्।
रणे प्राप्स्यसि संतिष्ठ न मे जीवन् विमोक्ष्यसे।। २।।

उस भयानक आकृति वाले पापी विराध को क्रोध से आँखें लाल कर श्रीराम ने उत्तर दिया कि अरे नीच तुझे धिक्कार है। तेरी इच्छा बड़ी खोटी है। निश्चित रूप से तू अपनी मृत्यु को ढूँढ रहा है। तू ठहर जा, तुझे वह युद्ध में मिलेगी। तू मेरे हाथ से जीवित नहीं छूटेगा।

ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान्।
सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह।। ३।।
धनुषा ज्यागुणवता सप्त बाणान् मुमोच ह।
रुक्मपुङ्खान् महावेगान् सुपर्णानिलतुल्यगान्।। ४।।

तब राम ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर, तुरन्त तीक्ष्ण बाणों का संधान कर राक्षस को बींधना आरम्भ कर दिया। उन्होंने प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुष से सुनहरे पंख वाले और गरुड़ तथा वायु के समान महान तेज वाले सात बाण छोड़े।

ते शरीरं विराधस्य भित्त्वा बर्हिणवाससः।
निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां पावकोपमाः।। ।।

स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः।
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम्।। ६।।

वे मोर पंख लगे हुए बाण विराध के शरीर को भेद कर खून से सने हुए, आग के समान दिखाई देने वाले, भूमि पर गिर पड़े। बाणों से विद्ध हो कर राक्षस ने सीता को खड़ा कर दिया और शूल उठा कर क्रोध के साथ लक्ष्मण सहित राम की तरफ दौड़ा।

तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वलनोपमम्।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः।। ७।।
तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पाविवोद्यतौ।
तूर्णमापेततुस्तस्य तदा प्रहरतां बलात्।। ८।।
स वध्यमानः सुभृशं भुजाभ्यां परिगृह्य तौ।
अप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत।। ९।।

उसका वह शूल आकाश में अग्नि और वज्र के समान चमक रहा था। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीराम ने दो बाणों के द्वारा उसे काट दिया। तब वे दोनों शीघ्रता से तलवारें निकाल कर तैयार हुए काले साँपों के समान तुरन्त उस पर टूट पड़े और बल पूर्वक प्रहार करने लगे। तब उस भयंकर राक्षस ने अत्यन्त घायल हो कर न कँपाये जा सकने वाले इन दोनों नरव्याघ्रों को हाथों से दृढ़ता से पकड़ लिया और उसने उन्हें किसी दूसरे स्थान पर ले जाना चाहा।

चौथा सर्ग

विराधवध

ह्रियमाणौ तु काकुत्स्थौ दृष्ट्वा सीता रघूत्तमौ।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश प्रगृह्य सुमहाभुजौ।। १।।
एष दशरथी रामः सत्यवाञ्छीलवाञ्शुचिः।
रक्षसा रौद्ररूपेण ह्रियते सहलक्ष्मणः।। २।।
मां हरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम।

उन दोनों श्रेष्ठ ककुत्स्थ और रघु वंशियों को ले जाया जाता हुआ देख कर सीता अपनी विशाल भुजाओं को परस्पर पकड़ कर चिल्लाने लगी कि हाय ये दशरथ के पुत्र सत्यवान, शीलवान और पवित्र हैं। भयानक रूपधरी राक्षस के द्वारा लक्ष्मण के साथ ले जाये जा रहे हैं। हे राक्षसों में श्रेष्ठ, तुम्हें नमस्कार है। इन दोनों ककुत्स्थवंशियों को छोड़ दो और मुझे ले चलो।

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।। ३।।
वेगं प्रचक्रतुर्वीरौ वधे तस्य दुरात्मनः।
तस्य रौद्रस्य सौमित्रिः सव्यं बाहुं बभञ्ज ह।। ४।।
रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः।
स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्च्छितः।। ५।।
धरण्यां मेघसंकाशो वज्रभिन्न इवाचलः।

वैदेही के वचन सुन कर राम लक्ष्मण उस दुरात्मा के वध के लिये शीघ्रता करने लगे। लक्ष्मण ने उस राक्षस की बाईं भुजा तोड़ दी और राम ने शीघ्रता से उसकी दायीं बाँह तोड़ दी। बाहों के टूट जाने पर वह मेघों के समान काला राक्षस बेचैन और मूर्च्छित होकर तुरन्त भूमि पर उसी प्रकार गिर पड़ा जैसे विद्युत् के प्रहार से पर्वत का कोई शिखर गिर जाता है।

कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण।। ६।।
वनेऽस्मिन्सुमहाञ्श्वभ्रः खन्यतां रौद्रकर्मणः।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति।। ७।।
तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान्।

हे लक्ष्मण! हम हाथी के समान भयानक और भयंकर कर्म करने वोल राक्षस के लिये इस वन में एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदो, लक्ष्मण को इस प्रकार गड्ढा खोदने का आदेश देकर वीर्यवान श्रीराम पैर से विराध के गले को दबा कर खड़े हो गये।

ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम्।। ८।।
अखनत् पार्श्वतस्तस्य विराधस्य महात्मनः।
तं मुक्तकण्ठमुत्क्षिप्य शङ्कुकर्णं महास्वनम्।
विराधं प्राक्षिपच्छ्वभ्रे नदन्तं भैरवस्वनम्।। ९।।

तब लक्ष्मण ने कुदाली लेकर उस विशालकाय विराध के बगल में बड़ा गड्ढा खोदा, फिर उसके गले को छोड़ कर, भयानक आवाज करते हुए खूँटी के समान कान वाले विराध को उन्होंने उस गड्ढे में फैंक दिया।

प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ
विराधमुर्व्यां प्रदरे निपात्य तम्।
ननन्दतुर्वीतभयौ महावने
शिलाभिरन्तर्दधतुश्च राक्षसम्।। १०।।

प्रसन्न होते हुए राम लक्ष्मण ने भूमि के अन्दर गढ़े में राक्षस को गिराकर शिलाओं से ढक दिया और उसके पश्चात निर्भय होकर वन में विचरने लगे।

पाँचवाँ सर्ग

श्रीराम का शरभंग मुनि के आश्रम पर जाना, शरभंग मुनि का उन्हें सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम का मार्ग बताकर परलोक गमन। वानप्रस्थ मुनियों की राम से राक्षसों से रक्षा करने की प्रार्थना।

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने।
ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान्।। १।।
अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम्।
कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्मो वनगोचराः।। २।।
अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम्।
आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह।। ३।।

विराध राक्षस को मारकर तेजस्वी श्रीराम ने सीता को हृदय से लगाकर ढाढस बँधाया और फिर अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मण से बोले कि यह वन बड़ा दुर्गम है, हमने पहले ऐसे वन को नहीं देखा। अब हम शीघ्र ही शरभंग मुनि के समीप चलते हैं। इसके पश्चात श्रीराम शरभंग मुनि के आश्रम में पहुँचे।

अग्निहोत्रमुपासीनं शरभंगमुपागमत्।
तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः।। ४।।
निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः।

वे अग्निहोत्र के लिये बैठे हुए शरभंग मुनि के समीप गये। वहाँ राम, लक्ष्मण और सीता उनके चरणों का स्पर्श कर के बैठे। उन्होंने उन्हें आतिथ्य के लिये निमन्त्रित कर रहने के लिये स्थान दिया।

अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः।
ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम्।। ५।।
एवमुक्तो नरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः।
ऋषिणा शरभङ्गेन राघवो वाक्यमब्रवीत्।। ६।।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने।। ७।।

हे नरश्रेष्ठ! मैं ब्रह्मलोक (परलोक) जा रहा हूँ, पर यह जान कर कि आप आश्रम के समीप आ गये हैं, मैंने विचार किया कि आप जैसे प्रिय अतिथि को बिना देखे मैं ब्रह्मलोक नहीं जाऊँगा। ऋषि शरभंग के ऐसा कहने पर, सर्व शास्त्र विशारद, नर व्याघ्र श्रीराम ने कहा कि मैं यहाँ वन में आपके द्वारा बताये हुए आवास को प्राप्त करना चाहता हूँ।

राघवेणैवमुक्तस्तु शक्रतुल्यबलेन वै।
शरभङ्गो महाप्राज्ञः पुनरेवाब्रवीद् वचः।। ८।।

इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः।
वसत्यरण्ये नियतः स ते श्रेयो विधास्यति।। ९।।

इन्द्र के समान बलशाली श्रीराम के ऐसा कहने पर महाप्राज्ञ शरभंग जी ने पुनः यह कहा कि हे राम! यहाँ वन में महा तेजस्वी और धार्मिक मुनि सुतीक्ष्ण नियमपूर्वक निवास करते हैं, वे आपका कल्याण करेंगे।

इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्त्रोतामनुव्रज।
नदीं पुष्पोडुपवहां ततस्तत्र गमिष्यति।। १०।।
एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम्।
यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः।। ११।।

फूलों को नौका के समान बहाने वाली इस मन्दाकिनी नदी के स्रोत की उलटी दिशा में जाओ, तब तुम वहाँ पहुँचोगे। हे नरव्याघ्र! वहाँ जाने का यही मार्ग है, पर तब तक तुम दो घड़ी ठहर जाओ जब तक मैं बुढ़ापे से जीर्ण इस शरीर को साँप की तरह छोड़ दूँ। हे तात! तुम मेरी तरफ देखो।

ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत्।
शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम्।। १२।।
तस्य रोमाणि केशांश्च तदा वह्निर्महात्मनः।
जीर्णां त्वचं तदस्थीनि यच्च मांसं च शोणितम्।। १३।।

फिर उन्होंने अग्नि प्रज्वलित कर उसमें मन्त्रों के साथ घी की आहुति दी, फिर वे महातेजस्वी शरभंग उस अग्नि में प्रवेश कर गये। तब अग्नि ने उन महात्मा के रोम, केश, जीर्ण, त्वचा, हड्डियाँ, माँस और रक्त सबसे जलाकर भस्म कर दिया।

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसङ्घाः समागताः।
अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम्।। १४।।
सर्वे ब्राह्मया श्रिया युक्ता दृढयोगसमाहिताः।
शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः।। १५।।

शरभंग मुनि के दिवंगत हो जाने पर उन प्रज्वलित तेज वाले काकुत्स्थ श्रीराम के पास मुनियों के समूह आये। वे सभी तपस्वी ब्रह्मतेज से युक्त थे और दृढ़ता से योगाभ्यास में लगे हुए थे। वे शरभंग आश्रम में श्रीराम के समीप आये।

अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम्।
ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसङ्घाः समागताः।। १६।।
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु यशसा विक्रमेण च।
पितृव्रतत्वं सत्यं च त्वयि धर्मश्च पुष्कलः।। १७।।
त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम्।
अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि।। १८।।

वे आये हुए धर्मज्ञ ऋषियों, के समुदाय, परम धर्मज्ञ, और धार्मिकों में श्रेष्ठ श्रीराम से बोले कि हे राम! आप अपने यश और वीरता से तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। तुम्हारे अन्दर पिता की आज्ञा पालन का व्रत, सत्य और धर्म पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। आप जैसे धर्मज्ञ, धर्मप्रेमी और महात्मा को प्राप्त कर हम याचना के उद्देश्य से कुछ कहेंगे। आप इसके लिये हमें क्षमा करना।

अधर्मः सुमहान् नाथ भवेत् तस्य तु भूपतेः।
यो हरेद् बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत्।। १९।।
युञ्जानः स्वानिव प्राणान् प्राणैरिष्टान् सुतानिव।
नित्ययुक्तः सदा रक्षन् सर्वान् विषयवासिनः।। २०।।
प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं स बहुवार्षिकीम्।
ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते।। २१।।

हे स्वामी! उस राजा को बड़ा अधर्म प्राप्त होता है, जो प्रजा से आप का छठा भाग तो कर के रूप में ले लेता है, पर उसकी रक्षा पुत्र के समान नहीं करता है। हे राजन्! जो राजा अपने सारे देशवासियों की प्राणों से भी प्यारे पुत्रों के समान, अपने प्राणों को लगा कर सावधानी के साथ सर्वदा रक्षा में लगा रहता है, वह बहुत वर्षों तक स्थायी कीर्ति को प्राप्त करता है और परलोक में भी प्रतिष्ठा को ग्रहण करता है।

सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्।
त्वन्नाथोऽनाथवद् राम राक्षसैर्हन्यते भृशम्।। २२।।
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने।। २३।।

हे राम! यहाँ वन में रहने वाले इन वानप्रस्थियों में अधिकांश संख्या ब्राह्मणों की ही है। ये तुम्हारे जैसे स्वामी के होते हुए राक्षसों के द्वारा अत्यधिक रूप में मारे जा रहे हैं। यहाँ आओ। देखो। ये आत्मज्ञान को प्राप्त हुए उन बहुत से मुनियों के कंकाल हैं, जिन्हें भयानक राक्षसों ने मार दिया है।

पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत्।। २४।।
एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः।। २५।।

पम्पा नदी के किनारे रहने वालों का, मन्दाकिनी नदी के किनारे और चित्रकूट पर्वत पर रहने वाले ऋषियों का भी अर्थात् दोनों स्थानों के मध्यवर्ती स्थानों पर रहने

वालों का भी राक्षसों द्वारा महान संहार किया जा रहा है। भयानक कर्म करने वाले राक्षसों के द्वारा वन में तपस्वियों का जो यह भयानक विनाश किया जा रहा है, वह हमसे सहन नहीं होता।

ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः।
परिपालय नो राम वध्यमानान् निशाचरैः।। २६।।
परा त्वत्तो गतिर्वीर पृथिव्यां नोपपद्यते।
परिपालय न सर्वान् राक्षसेभ्यो नृपात्मज।। २७।।

हे राम! इसलिये हम शरण देने योग्य तुम्हारे पास शरण के लिये उपस्थित हुए है। तुम राक्षसों के द्वारा मारे जाते हुए हमारी रक्षा करो। आपसे बढ़ कर हे वीर! हमें सारे संसार में कोई दूसरा दिखाई नहीं देता। इसलिये हे राजकुमार हम सबको राक्षसों से बचाओ।

एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम्।
इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः।। २८।।
नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम्।
केवलेन स्वकार्येण प्रवेष्टव्यं वनं मया।। २९।।
विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम्।
पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम्।। ३०।।

तपस्या में लगे हुए उन तपस्वियों की यह बात सुन कर वे ककुत्स्थवंशी, धर्मात्मा श्रीराम बोले कि आपको मुझसे इस प्रकार प्रार्थना नहीं करनी चाहिये। मैं तो आपका आज्ञा पालक हूँ। मुझे अपने कार्य से तो वन में प्रवेश करना ही है, मैं पिता के आदेश का पालन करता हुआ, राक्षसों के द्वारा अपके विनाश को दूर करने के लिये ही वन में प्रविष्ट हुआ हूँ।

भवतामर्थमिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया।
तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः।। ३१।।
तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः।। ३२।।

आप लोगों का कार्य पूरा करने के लिये मैं यहाँ अचानक आ गया हूँ। अब मेरा वन में रहना मेरे लिये महान फलदायक होगा। तपस्वियों के शत्रु राक्षसों को मैं युद्ध में मारना चाहता हूँ। आप सब तपोधन ऋषि लोग, भाई के साथ मेरे पराक्रम को देखें।

छठा सर्ग

श्रीराम का सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम पर जाकर उनसे सत्कृत हो रात में वहीं ठहरना।

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः।। १।।
स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः।
ददर्श विमलं शैलं महामेरुमिवोन्नतम्।। २।।
ततस्तदिक्ष्वाकुवरौ सततं विविधैर्द्रुमैः।
काननं तौ विविशतुः सीतया सह राघवौ।। ३।।

परंतप राम भाई और सीता के साथ सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम की तरफ उन ब्राह्मणों को साथ ले कर चले। उन्होंने दूर तक का मार्ग तय कर और अनेक अगाध जल से भरी हुई नदियों को पार कर एक मेरु पर्वत के समान ऊँचे और स्वच्छ पर्वत को देखा। उसके पश्चात लगातार आगे बढ़ते हुए उन दोनों ने वन में प्रवेश किया।

प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमम्।
ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम्।। ४।।
तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजधारिणम्।
रामः सुतीक्ष्णं विधिवत् तपोधनमभाषत।। ५।।

उस घोर वन में प्रवेश कर उन्होंने एकान्त जगह में एक आश्रम देखा, जहाँ फूलों वाले बहुत से वृक्ष थे। जो स्थान स्थान पर टँगे हुए चीर वस्त्रों से उपलक्षित था। वहाँ आन्तरिक मल की शुद्धि के लिये विधिवत् पद्मासन धारण किये हुए तपस्वी मुनि सुतीक्ष्ण जी से श्रीराम ने कहा–

रामोऽहमस्मि भगवन् भवन्तं द्रष्टुमागतः।
तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम।। ६।।
स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतां वरम्।
समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत्।। ७।।
स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर।
आश्रमोऽयं त्वयाऽऽक्रान्तः सनाथ इव साम्प्रतम्।। ८।।

हे धर्मज्ञ! सत्यपराक्रमी, महर्षि, मैं राम हूँ। भगवन मैं आपके दर्शन के लिये आया हूँ। इसलिये आप मुझसे बात कीजिये। तब उन धीर मुनि ने धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ श्रीराम को देख कर, अपनी भुजाओं से उनका आलिंगन कर यह कहा कि हे सत्य को धारण

करने वालों में श्रेष्ठ। रघुश्रेष्ठ राम, तुम्हारा स्वागत है। इस समय आपके यहाँ पधारने से यह आश्रम सनाथ हो गया है।

प्रत्युवाचात्मवान् रामो महर्षिं सत्यवादिनम्।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने।। ९।।
भवान् सर्वत्र कुशलः सर्वभूतहिते रतः।
आख्यातं शरभङ्गेन गौतमेन महात्मना।। १०।।

तब मनस्वी राम ने सत्यवादी उन महर्षि से यह कहा कि हे ऋषि! मैं यहाँ वन में आपके द्वारा बताये जाने पर आवास करना चाहता हूँ। मुझे महात्मा गौतम गोत्रीय शरभंग मुनि ने कहा है कि आप सारे प्राणियों की भलाई में लगे हुए हैं और सब प्रकार के ज्ञान में कुशल हैं।

एवमुक्तस्तु रामेण महर्षिर्लोकविश्रुतः।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं हर्षेण महता युतः।। ११।।
अयमेवाश्रमो राम गुणवान् रम्यतामिति।
ऋषिसंघानुचरितः सदा मूलफलैर्युतः।। १२।।
इममाश्रममागम्य मृगसंघा महीयसः।
अहत्वा प्रतिगच्छन्ति लोभयित्वाकुतोभयाः।। १३।।

राम के द्वारा यह कहने पर वे विश्वविख्यात मुनि महान हर्ष से युक्त हो कर मधुर आवाज में बोले कि हे राम। यही आश्रम गुणों से युक्त है। यहीं आप रहिये। ऋषि लोग यहाँ आते जाते रहते हैं। यह सर्वदा फल मूल से युक्त रहता है। बड़े-बड़े मृगों के झुंड, इस आश्रम में आकर यहाँ के निवासियों को लुभा कर, निर्भय हो कर यहाँ से चले जाते हैं।

नान्यो दोषो भवेदत्र मृगेभ्योऽन्यत्र विद्धि वै।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य महर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः।। १४।।
उवाच वचनं धीरो विगृह्य सशरं धनुः।
तानहं सुमहाभाग मृगसंधान् समागतान्।। १५।।
हन्यां निशितधारेण शरेणानतपर्वणा।
भावास्तत्राभिषज्येत किं स्यात् कृच्छ्रतरं ततः।। १६।।

यह समझो कि यहाँ मृगों के उपद्रवों के अतिरिक्त और कोई दोष नहीं है। महर्षि के उन वचनों को सुन कर लक्ष्मण के बड़े भाई, धैर्यवान श्रीराम ने धनुष बाण हाथ में ले कर कहा कि हे महाभाग! मैं यदि उन आये हुए उपद्रवकारी मृगों को झुकी हुई गाँठ वाले और पैनी धार वाले बाणों से मार डालूँ तो इसमें आपका अपमान होगा; और इससे अधिक कष्टदायक बात हमारे लिये क्या हो सकती है?

एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरंतु न समर्थये।
तमेवमुक्त्वोपरमं रामः संध्यामुपागमत्।। १७।।
अन्वास्य पश्चिमां संध्यां तत्र वासमकल्पयत्।
सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये, सीतया लक्ष्मणेन च।। १८।।

इसलिये मैं इस आश्रम में देर तक निवास नहीं करना चाहता। ऐसा कह कर श्रीराम चुप हो गये और संध्या करने चले गये। सायंकालीन संध्या करके राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ उसी सुन्दर आश्रम में वास किया।

ततः शुभं तापसयोग्यमन्नं
स्वयं सुतीक्ष्णः पुरुषर्षभाभ्याम्।
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा
संध्यानिवृत्तौ रजनीं समीक्ष्य।। १९।।

संध्या बीतने पर रात आयी देख कर उन दोनों नर श्रेष्ठों के लिये महात्मा सुतीक्ष्ण ने स्वयं उनका सत्कार कर उन्हें तपस्वियों के खाने योग्य अन्न समर्पित किया।

सातवाँ सर्ग

सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम से प्रस्थान।

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः।
परिणम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत।। १।।
उत्थाय च यथाकालं राघवः सह सीतया।
उपस्पृश्य सुशीतेन तोयेनोत्पलगन्धिना।। २।।
सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन्।

सुतीक्ष्ण मुनि द्वारा सत्कृत हो कर श्रीराम ने लक्ष्मण के साथ वहाँ रात्रि बिताई और प्रातः उठे। प्रातः काल यथा समय सीता के साथ उठ कर उन्होंने कमल की गन्ध से युक्त शीतल जल से स्नान किया और सुतीक्ष्ण मुनि के समीप जा कर मधुर वाणी से बोले।

सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः।। ३।।
आपृच्छामः प्रास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः।
त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम्।। ४।।
ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम्।

अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनिपुंगवैः।। ५।।
धर्मनित्यैस्तपोदान्तैर्विशिखैरिव पावकैः।

हे भगवन्! आप पूज्य के द्वारा पूजित हो कर हम रात्रि में सुख से रहे। अब हम आपसे विदा लेने के लिये अनुमति चाहते हैं। ये हमारे साथ जाने वाले मुनि शीघ्रता के लिये कह रहे हैं। हम यहाँ दण्डकारण्य में रहने वाले पुण्यशील ऋषियों के सारे आश्रम समूहों को शीघ्र देखना चाहते हैं। हम इन धूम रहित अग्नि के समान तेजस्वी, दमनशील और धर्म में सदा रहने वाले इन मुनि श्रेष्ठों के साथ जाने के लिये आपकी आज्ञा चाहते हैं।

अविषह्यातपो यावत् सूर्यो नातिविराजते।। ६।।
अमार्गेणागतां लक्ष्मीं प्राप्येवान्वयवर्जितः।
तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः।। ७।।
ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः।

अन्याय से प्राप्त सम्पत्ति के कारण उद्धत बने हुए निम्न कुल के व्यक्ति के समान जब तक सूर्य का ताप असहनीय नहीं हो जाता उससे पूर्व ही हम यहाँ से जाना चाहते हैं। ऐसा कह कर लक्ष्मण और सीता के साथ श्रीराम ने उनके चरणों में प्रणाम किया।

तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः।। ८।।
गाढमाश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत्।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह।। ९।।
सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया।

तब उन मुनि श्रेष्ठ ने चरणों को स्पर्श करते हुए उन्हें उठा कर कस कर हृदय से लगा लिया और स्नेह के साथ यह बोले कि हे राम! तुम लक्ष्मण और छाया के समान तुम्हारे पीछे चलने वाली सीता के साथ जाओ। तुम्हारा मार्ग बाधाओं से रहित हो।

पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम्।। १०।।
एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम्।
सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च।। ११।।
प्रशस्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च।

हे वीर! तुम इन दण्डकारण्यवासी तपस्वियों के जिन्होंने तप से अपनी आत्मा को पवित्र कर लिया है, सुन्दर आश्रम स्थलों को देखो। तुम्हें यात्रा में, अत्यधिक फल मूलों से युक्त और फूलों वाले वन मिलेंगे। जहाँ मृगों के बहुत से झुंड हैं और जहाँ पक्षी शान्तरूप में रहते हैं।

फुल्लपङ्कजखण्डानि प्रसन्नसलिलानि च।। १२।।
कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च।
द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च।। १३।।
रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च।

मार्ग में तुम्हें ऐसे तालाब और सरोवर मिलेंगे, जिनका जल बिल्कुल निर्मल है, जिनमें कमलों के झुण्ड खिले हुए हैं, और कारण्डव पक्षी चारों तरफ फैले हुए हैं, तुम वहाँ आँखों को सुन्दर लगने वाले पहाड़ी झरनों को, मोरों की ध्वनि से गुंजित सुन्दर वनों को देखोगे।

गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु।। १४।।
आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति।
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः।। १५।।
प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे।
ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा।। १६।।
ददौ सीता तयोर्भ्रात्रोः खड्गौ च विमलौ ततः।
आबध्य च शुभे तूणी चापे चादाय सस्वने।
निष्क्रान्तावाश्रमाद् गन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ।। १७।।

हे वत्स! सुमित्रा कुमार! तुम भी जाओ। उन आश्रमों को देख कर तुम फिर यहीं आ जाना। ऐसा कहे जाने पर 'अच्छा' ऐसा कह कर लक्ष्मण के साथ श्रीराम ने मुनि की प्रदक्षिणा कर वहाँ से चलने की तैयारी की। तब विशाल नेत्रों वाली सीता ने पवित्र दो तरकस और धनुष तथा निर्मल खड्ग उन दोनों भाइयों को दिये। तब वे दोनों राम लक्ष्मण उन तरकसों को बाँध कर टंकारयुक्त धनुषों को हाथ में लेकर जाने के लिये आश्रम से निकले।

आठवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम से निरपराध राक्षसों को न मारने और अहिंसा धर्म का पालन करने के लिये अनुरोध।

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम्।
हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत्।। १।।
अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान्।
निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात् कामजादिह।। २।।

सुतीक्ष्ण मुनि से विदा हो कर जब राम वन की तरफ चल दिये, तब सीता जी ने हृदय को अच्छी लगने वाली स्नेहयुक्त वाणी से अपने पति से कहा कि आपको सूक्ष्मरीति से एक महान अधर्म प्राप्त होने वाला है। आप कामनाजन्य बुराइयों से रहित हैं, अतः इस अधर्म से भी अपने को बचा सकते हैं।

त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत।
मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद् गुरुतरावुभौ।। ३।।
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता।
मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव।। ४।।

हे राघव! इस संसार में कामनाओं से उत्पन्न होने वाली तीन बुराइयाँ हैं। उनमें झूठ बोलना एक बहुत बड़ा व्यसन है, पर दो बुराइयाँ उससे भी अधिक हैं। वे हैं पर स्त्री गमन और बिना वैर के क्रूरता। उनमें झूठ बोलने का व्यसन आपमें न हुआ है और न होगा।

कुतोऽभिलषण स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम्।
तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत् ते कदाचन।। ५।।
मनस्यपि तथा राम न चैतद् विद्यते क्वचित्।
स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज।। ६।।
धर्मिष्ठः सत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः।
त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।। ७।।
तच्च सर्वं महाबाहो शक्यं बोढुं जितेन्द्रियैः।
तव वश्येन्द्रियत्वं च जानामि शुभदर्शन।। ८।।

दूसरों की स्त्रियों की इच्छारूप धर्म को नष्ट करने वाला व्यसन तो आप में हो ही कैसे सकता है? हे मनुष्येन्द्र! यह आप में न कभी पहले था और न इस समय है! हे राजकुमार! आपके मन में भी ऐसी भावना कभी नहीं हुई, आप नित्य अपनी ही पत्नी में अनुरक्त हैं, आप धर्मिष्ठ, सत्यसंघ और पिता की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। आपके अन्दर धर्म, सत्य और सारे गुण प्रतिष्ठित हैं। ये सारे गुण भी हे महाबाहु! आप जैसे जितेन्द्रिय ही धारण कर सकते हैं। हे शुभदर्शन! मैं आपके जितेन्द्रियत्व को जानती हूँ।

तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम्।
निर्वैरं क्रियते मोहात् तच्च ते समुपस्थितम्।। ९।।
प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम्।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम्।। १०।।
ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः।
त्वद्वृत्तं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं हितम्।। ११।।

तीसरा व्यसन जो दूसरे के प्राणों की हिंसा का है, यह बड़ा भयानक है। यह आपके सम्मुख उपस्थित है। आप मोह के कारण बिना वैर के ही इसका आचरण कर रहे हैं। हे वीर! आपने दण्डकारण्य वासी ऋषियों की रक्षा के लिये युद्ध में राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की है, इसलिये आपको राक्षसों के वध के लिये प्रस्थान करते हुए देख कर मेरा मन चिन्ता से भर जाता है। मैं आपके चरित्र के विषय में विचार करते हुए यही सोचती रहती हूँ कि कैसे आपका कल्याण हो?

त्वं हि बाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रा सह वनं गतः।
दृष्ट्वा वनचरान् सर्वान् कच्चित् कुर्याः शरव्ययम्।। १२।।
क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च।
समीपतः स्थितं तेजोबलमुच्छ्रयते भृशम्।। १३।।
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान् दण्डकाश्रितान्।
अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते।। १४।।

आप धनुष बाण हाथ में लेकर भाई के साथ वन में आए हैं। यहाँ सारे वन में विचरने वाले राक्षसों को देख कर आप उनके ऊपर कदाचित बाण चला दें। जैसे समीप रखा हुआ ईंधन आग को बढ़ा देता है, वैसे ही धनुष का पास होना क्षत्रियों के तेज और बल को अत्यधिक बढ़ा देता है। हे वीर! बिना वैर के ही दण्डकारण्य के राक्षसों को मारने की बुद्धि रखना और अपराध के बिना ही उन्हें मारना संसार के लोग अच्छा नहीं समझेंगे।

क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्।
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम्।। १५।।

क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम्।। १६।।

जितेन्द्रिय क्षत्रिय वीरों का वन में रहते हुए धनुष से इतना ही कार्य है कि वे पीड़ित लोगों की रक्षा करें। कहाँ शस्त्र, कहाँ वन, कहाँ क्षात्र धर्म और कहाँ तपस्या, ये एक दूसरे से विरोध रखने वाली बातें हैं। इनमें से हमें देश धर्म की रक्षा को ही करना चाहिये।

कदर्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात्।
पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षत्रधर्मं चरिष्यसि।। १७।।
अक्षया तु भवेत् प्रीतिः श्वश्रूश्वशुरयोर्मम।
यदि राज्यं हि संन्यस्य भवेस्त्वं निरतो मुनिः।। १८।।

शस्त्रों का सेवन करने से मनुष्य की बुद्धि कृपण पुरुष के समान कलुषित हो जाती है, इसलिये आप अयोध्या में जा कर ही क्षात्र धर्म का पालन करें। आप यहाँ राज्य को त्याग कर आये हैं, यदि आप यहाँ मुनिवृत्ति से रहें तो मेरे सास और ससुर को बहुत सन्तुष्टि होगी।

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।। १९।।
नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने।
सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यामपि तत्त्वतः।। २०।।

धर्म से ही धन प्राप्त होता है, धर्म से ही सुख प्राप्त होता है, धर्म से ही सब कुछ मिलता है। इस संसार में धर्म ही सबका मूल है। इसलिये हे सौम्य! आप पवित्र बुद्धि से तपोवन में रह कर धर्म का पालन कीजिये। त्रिलोक में जो कुछ भी ज्ञान है, उस सबको आप जानते हैं।

स्त्रीचापलादेतदुपाहृतं मे
धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन
यद् रोचते तत् कुरु माचिरेण।। २१।।

मैंने स्त्रियों की सी चपलता के कारण आपको यह कह दिया है, वैसे आपको धर्म के विषय में कौन समझा सकता है? आप छोटे भाई के साथ बुद्धि से विचार कर जो अच्छा लगे वह कीजिये। विलम्ब न कीजिये।

नवाँ सर्ग

श्रीराम का ऋषियों की रक्षार्थ राक्षसों के वध के लिये की हुई प्रतिज्ञा के पालन पर दृढ़ रहने का विचार प्रकट करना।

वाक्यमेतत् तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया।
श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ जानकीम्।। १।।
हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः।
कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे।। २।।

वैदेही सीता के द्वारा पति भक्ति के कारण कहे हुए वाक्यों को सुन कर धर्म में स्थित राम ने जानकी को उत्तर दिया कि हे धर्म को जानने वाली जनकपुत्री! कुलधर्म के विषय में समझाते हुए तुमने अपनी स्नेहभरी वाणी से भरे हित के लिये जो बात कही है, वह तुम्हारे ही योग्य है।

किं नु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति।। ३।।
ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः।
मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गताः।। ४।।

पर मैं देवी तुम्हें क्या कहूँगा, तुमने ही यह कहा है कि क्षत्रियों के द्वारा इसलिये धनुष धारण किया जाता है, जिससे पीड़ितों की ध्वनि न हो सके। हे सीते! वे दण्डकारण्य में कठोर व्रत का पालन करने वाले मुनि लोग पीड़ित हैं, वे मुझ शरण देने के योग्य के पास शरण के लिये आये थे।

वसन्तः कालकालेषु वने मूलफलाशनाः।
न लभन्ते सुखं भीरु राक्षसैः क्रूरकर्मभिः।। ५।।
भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः।
ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः।। ६।।
अस्मानभ्यवपद्येति मामूचुर्द्विजसत्तमाः।

हे भीरु! फल मूल खाने वाले सभी कालों में रहने वाले ये मुनि क्रूर कर्म वाले राक्षसों के कारण सुख को नहीं प्राप्त करते और भयानक मुनष्यभक्षी राक्षसों के द्वारा खाये जाते हैं। वे दण्डकारण्यवासी, राक्षसों के द्वारा खाये जाते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनि, हमारे पास आ कर बोले कि हमारे ऊपर अनुग्रह करो।

मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेवं मुखाच्च्युतम्।। ७।।
कृत्वा वचनशुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम्।

प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा तु ममातुला।। ८।।
यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः।
किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ।। ९।।

मैंने उनके मुख से निकले इस प्रकार के वचनों को सुन कर उन्हें वचनों से धीरज बँधा कर यह बात कहीं कि आप लोग प्रसन्न हों। मेरे लिये यह बड़ी लज्जा का विषय है कि आप जैसे ब्राह्मण मेरे पास आए, जबकि मुझे आपकी सेवा में जाना चाहिये था। मैंने उन ब्राह्मणों के सामने कहा कि बताइये मैं क्या करूँ?

सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता।
राक्षसैर्दण्डकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः।। १०।।
अर्दिताः स्म भृशं राम भवान् नस्तत्र रक्षतु।
होमकाले तु सम्प्राप्ते पर्वकालेषु चानघ।। ११।।
धर्षयन्ति सुदुर्धर्षा राक्षसाः पिशिताशनाः।

उन सबने मिल कर यह बात कही कि दण्डकारण्य में विभिन्न प्रकार के रूप धारण करने वाले राक्षसों के द्वारा हम बहुत पीड़ित हैं। हे राम! आप इस विषय में हमारी रक्षा कीजिये। हे अनघ! हवन का समय आने पर और पर्व के समयों में वे दुर्धर्ष, माँसभोजी राक्षस हमें पीड़ा पहुँचाते हैं।

राक्षसैर्धर्षितानां च तापसानां तपस्विनाम्।। १२।।
गतिं मृगयमाणानां भवान् नः परमा गतिः।
तदर्द्यमानान् रक्षोभिर्दण्डकारण्यवासिभिः।। १३।।
रक्ष नस्त्वं सह भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने।

राक्षसों से आक्रान्त होने वाले, और अपने लिये आश्रम ढूँढते रहने वाले हम तपस्या करने वाले तपस्वियों के आप ही परम आश्रय हैं। इसलिये दण्डकारण्यवासी राक्षसों से पीड़ित होते हुए हमारी आप भाई के साथ रक्षा करो। इस वन में आप ही हमारे रक्षक हैं।

मया चैतद्वचः श्रुत्वा कात्स्न्र्येन परिपालनम्।। १४।।
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे।
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्।। १५।।
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा।
अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।। १६।।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।

हे जनकपुत्री! मैंने उनकी यह बात सुन कर दण्डकारण्य में ऋषियों की पूर्ण रूप से रक्षा की प्रतिज्ञा कर ली। मुनियों के सामने प्रतिज्ञा करके मैं जीते जी उसे मिथ्या नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे सत्य का पालन सदा प्रिय रहा है। चाहे मैं प्राणों को छोड़ दूँ हे सीते! या तुम्हें या लक्ष्मण को छोड़ दूँ, पर प्रतिज्ञा करके विशेष कर ब्राह्मणों के लिये प्रतिज्ञा कर उसे नहीं तोड़ सकता।

तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्।। १७।।
अनुक्तेनापि वैदहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः।
मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वया वचः।। १८।।
परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते।
सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने।
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।। १९।।

इसलिये मुझे तपस्वियों की रक्षा अवश्य करनी है। उनके द्वारा न कहने पर भी करनी चाहिये थी, पर प्रतिज्ञा करके तो कैसे पीछे हट सकता हूँ? हे सीता! तुमने मेरे स्नेह और सौहार्द से मुझे जो बात कही है, मैं उससे बहुत सन्तुष्ट हूँ। क्योंकि जो प्रिय न हो, उसे कोई भलाई का उपदेश नहीं देता। हे शोभने! तुम्हारे वचन तुम्हारे कुल के अनुरूप हैं। तुम मेरी सहधर्मिणि हो, मेरे लिये तुम प्राणों से भी प्रिय हो।

दसवाँ सर्ग

विभिन्न आश्रमों में घूम कर श्रीराम का पुनः सुतीक्ष्ण के आश्रम पर आना। वहाँ कुछ काल तक रह अगस्त्य मुनि के भाई तथा अगस्त्य मुनि के आश्रम पर जाना।

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना।
पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह।। १।।
तौ पश्यमानौ विविधाञ्शैलप्रस्थान् वनानि च।
नदीश्च विविधा रम्या जग्मतुः सह सीतया।। २।।

उसके पश्चात् आगे-आगे राम चले, उनके पीछे बीच में अत्यन्त सुन्दरी सीता चल रही थी और उनके पीछे धनुष हथ में ले कर लक्ष्मण जा रहे थे। सीता के साथ वे दोनों भाई अनेक प्रकार के पहाड़ी स्थानों, वनों और अनेक सुन्दर नदियों को देखते हुए जा रहे थे।

सारसांश्चक्रवाकांश्च नदीपुलिनचारिणः।
सरांसि च सपद्मानि युतानि जलजैः खगैः।। ३।।
यूथबद्धांश्च पृषतान् मदोन्मत्तान् विषाणिनः।
महिषांश्च वराहांश्च गजांश्च द्रुमवैरिणः।। ४।।

नदियों के किनारों पर विचरण करने वाले सारसों, चक्रवाकों, कमलों से भरे हुए, जलपक्षियों से घिरे हुए तालाबों को, झुंड में विचरण करने वाले पृषत् नाम के मृगों को, मतवाले सींगों वाले भैंसों को, सूअरों को और वृक्षों के शत्रु हाथियों को देखते हुए जा रहे थे।

स गत्वा दूरमध्वानम् ददर्शाश्रममण्डलम्।
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम्।। ५।।
प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः।
तदा तस्मिन् स काकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममण्डले।। ६।।
उषित्वा स सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः।

उन्होंने दूर तक रास्ते पर चल कर एक आश्रम के समूह को देखा। वह आश्रम ब्रह्मविद्या के वातावरण से युक्त था। वहाँ स्थान-स्थान पर कुश और चीर के वस्त्र फैलाये हुए थे। उस आश्रम समूह में श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण के साथ प्रवेश कर सुख से निवास किया। वहाँ के ऋषियों ने उनका स्वागत सत्कार किया।

जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम्।। ७।।
येषामुषितवान् पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित्।
क्वचित् परिदशान् मासानेकसंवत्सरं क्वचित्।। ८।।
क्वचिच्च चतुरो मासान् पञ्च षट् च परान् क्वचित्।
अपरत्राधिकान् मासानध्यर्धमधिकं क्वचित्।। ९।।
त्रीन् मासानष्टमासांश्च राघवो न्यवसत् सुखम्।

वे अस्त्र विद्या के महान विद्वान श्रीराम उन तपस्वियों के आश्रमों में बारी-बारी से गये अर्थात रहे। जिन आश्रमों में एक बार रहे वहाँ दुबारा भी जा कर रहे। कहीं वे दस मास रहे, कहीं एक वर्ष रहे, कहीं चार मास रहे, कहीं पाँच, कहीं छै, कहीं उससे भी अधिक अर्थात् आठ, और उससे भी आधा मास अधिक अर्थात् साढ़े आठ और कहीं वे राघव ग्यारह मास सुखपूर्वक रहे।

तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै।। १०।।
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश।
परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया।। ११।।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह।
स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः।। १२।।
तत्रापि न्यवसद् रामः किंचित् कालमरिंदमः।

मुनियों के उन आश्रमों में अनुकूल वातावरण में आनन्द लेते हुए और रहते हुए उनके दस वर्ष व्यतीत हो गये। उन आश्रमों के समूह में घूम फिर कर धर्मज्ञ श्रीराम सीता के साथ सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पुनः आ गये। वे शत्रुओं को नष्ट करने वाले राम मुनियों से सम्मान पाते हुए वहाँ भी कुछ समय रहे।

अथाश्रमस्थोविनयात् कदाचित् तं महामुनिम्।। १३।।
उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत्।
अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः।। १४।।
वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम्।
न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया।। १५।।

उस आश्रम में रहते हुए महामुनि सुतीक्ष्ण के समीप बैठे हुए उन ककुत्स्थवंशी श्रीराम ने किसी दिन विनय के साथ यह कहा कि हे भगवन्! इस वन में मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य मुनि कहीं रहते हैं, ऐसा मैंने प्रतिदिन वार्तालाप करते हुए लोगों से सुना है, पर क्योंकि यह वन महान है, इसलिये मुझे उनके स्थान के विषय में पता नहीं लग पाया है।

कुत्राश्रमपदं रम्यं महर्षेस्तस्य धीमतः।
प्रसादार्थं भगवतः सानुजः सह सीतया।। १६।।
अगस्त्यमधिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम्।
मनोरथो महानेष हृदि सम्परिवर्तते।। १७।।

उन धीमान महर्षि का आश्रम कहाँ है? मेरे हृदय में यह महान मनोरथ घूम रहा है कि मैं उनके अनुग्रह की प्राप्ति के लिये सीता और छोटे भाई के साथ, उन्हें प्रणाम करने के लिये उनके समीप जाऊँ।

यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम्।
इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः।। १८।।
सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम्।
अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम्।। १९।।
अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव।
दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन् स्वयमेव ब्रवीषि माम्।। २०।।

मैं चाहता हूँ कि मैं भी स्वयं उन मुनि श्रेष्ठ की सेवा करूँ। धर्मात्मा राम के ये वचन सुन कर सुतीक्ष्ण मुनि ने दशरथ पुत्र श्रीराम को प्रसन्नता से यह उत्तर दिया कि मैं भी लक्ष्मण के साथ तुम्हें यही कहने वाला था कि हे राम! सीता के साथ अगस्त्य जी के पास जाओ। सौभाग्य की बात है कि इस विषय में अब तुम स्वयं ही कह रहे हो।

अयमाख्यामि ते राम यत्रागस्त्यो महामुनिः।
योजनान्याश्रमात् तात याहि चत्वारि वै ततः।। २१।।
दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्य भ्रातुराश्रमः।

हे राम! मैं तुम्हें बताता हूँ, जहाँ महामुनि अगस्त्य रहते हैं। हे तात! इस आश्रम से दक्षिण की तरफ चार योजन जाओ। वहाँ आपको महान और श्रीमान अगस्त्य मुनि के भाई का आश्रम मिलेगा।

स्थलीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते।। २२।।
बहुपुष्पफलेरम्ये नानाविहगनादिते।
पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः।। २३।।
हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।

उस वन प्रान्त में भूमि प्राय समतल है, वह पीपल के वन से सुशोभित है। उस रम्यस्थान में फल और फूल बहुत हैं, अनेक प्रकार के पक्षियों के कलरव से वह स्थान गुंजित होता रहता है। वहाँ कमलों से भरे हुए अनेक सरोवर हैं, जिनका जल बहुत स्वच्छ है। वे सरोवर हंस और कारंडवों से भरे हुए और चक्रवाकों से सुशोभित हैं।

तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम्।। २४।।
दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः।
तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम्।। २५।।
रमणीये वनोद्देशे बहुपादपशोभिते।
रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह।। २६।।

हे राम! वहाँ एक रात्रि ठहर कर प्रातः आगे जाना। दक्षिण दिशा की तरफ वन प्रदेश के बगल से हो कर जाना। वहाँ एक योजन के पश्चात अगस्त्य जी का आश्रम स्थान है। उस रमणीय वन प्रदेश में, जो कि बहुत प्रकार के वृक्षों से सुशोभित है, तुम्हारे साथ सीता और लक्ष्मण बहुत आनन्द का अनुभव करेंगे।

यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम्।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते।। २७।।
इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राभिवाद्य च।
प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुगः सह सीतया।। २८।।

हे महामति! यदि अगस्त्य महामुनि के दर्शन का विचार है तो आज ही वहाँ जाने का निश्चय कर लो। मुनि के इस प्रकार वचनों को सुन कर श्रीराम भाई के साथ उन्हें अभिवादन कर सीता और भाई के साथ अगस्त्य मुनि के आश्रम की तरफ चल दिये।

पश्यन् वनानि चित्राणि पर्वतांश्चाभ्रसंनिभान्।
सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान्।। २९।।
सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम्।
इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत्।। ३०।।

चित्र विचित्र वनों को और बादलों के समान पर्वतों को देखते हुए, मार्ग में आने वाली नदियों और तालाबों को देखते हुए, सुतीक्ष्ण मुनि के द्वारा बताये हुए मार्ग पर सुखपूर्वक चलते हुए श्रीराम बहुत प्रसन्न हो कर लक्ष्मण जी से बोले।

एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः।
अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः।। ३१।।
यथा हीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः।
संनताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः।। ३२।।
पिप्पलीनांच पक्वानां वनादस्मादुपागतः।
गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः।। ३३।।

निश्चय ही यह उन महात्मा, पुण्यकर्म अगस्त्य मुनि के भाई का आश्रम स्थान प्रतीत होता है क्योंकि जैसे उन्होंने बताया था, वैसे ही रास्ते में ये फलों और फूलों के बोझ से झुके हुए हजारों वृक्ष हैं। वायु के द्वारा उठाई हुई, इस वन में आती हुई, पकी हुई पीपल की गन्ध, अचानक कड़वे स्वाद को फैला रही है।

तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसंचयाः।
लूनाश्च परिदृश्यन्तेदर्भा वैदूर्यवर्चसः।। ३४।।
एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम्।
पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं सम्प्रदृश्यते।। ३५।।
ततः सुतीक्ष्णवचनं यथा सौम्य मया श्रुतम्।
अगत्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति।। ३६।।

यहाँ जहाँ तहाँ छोटे-छोटे लकड़ियों के ढेर दिखाई दे रहे हैं! कटे हुए कुश वैदूर्यमणि के समान दिखाई दे रहे हैं। वन के मध्य में, आश्रम के अन्दर विद्यमान अग्नि के उठते हुए धूएँ का अग्रभाग काले बादलों के ऊपरी भाग के समान दिखाई दे रहा है। हे सौम्य! मैंने सुतीक्ष्ण जी की वाणी से जैसा सुना था, यह निश्चय ही अगस्त्य जी के भाई का आश्रम होगा।

एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह।
रामस्यास्तं गतः सूर्यः संध्याकालोऽभ्यवर्तत।। ३७।।
उपास्य पश्चिमां संध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत्।। ३८।।

सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः।
न्यवसत् तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च।। ३९।।

इस प्रकार श्रीराम के लक्ष्मण से कहते हुए सूर्य अस्त हो गया और सन्ध्याकाल आ गया। तब साँयकाल की सन्ध्या को यथाविधि कर उन्होंने आश्रम में प्रवेश करके उन ऋषि को प्रणाम किया। तब उन मुनि के द्वारा अच्छी तरह से सत्कार किये जाने पर फल और मूल का भोजन कर वे उस रात्रि को वहीं रहे।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले।
भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः।। ४०।।
अभिवादये त्वां भगवन् सुखमस्म्युषितो निशाम्।
आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम्।। ४१।।
गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः।
यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन्।। ४२।।

उस रात्रि के व्यतीत होने पर और सूर्य के उदय होने पर श्रीराम ने अगस्त्य जी के भ्राता से आज्ञा माँगते हुए कहा कि हे भगवन! मैंने रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत की। मैं आपको प्रणाम करता हूँ और आपके गुरु बड़े भाई के दर्शन के लिये आपसे अनुमति चाहता हूँ। तब महर्षि के द्वारा आप 'जाइये' ऐसा कहने पर श्रीराम बताये गये रास्ते से वन की शोभा को देखते हुए चले।

नीवारान् पनसान् सालान् वञ्जुलांस्तिनिशांस्तथा।
चिरिबिल्वान् मधूकांश्च बिल्वानथ च तिन्दुकान्।। ४३।।
पुष्पितान् पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान्।
ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान्।। ४४।।
हस्तिहस्तैर्विमृदितान् वानरैरुपशोभितान्।
मत्तैः शकुनिसङ्घैश्च शतशः प्रतिनादितान्।। ४५।।

श्रीराम ने वहाँ नीवार, कटहल, साल, वंजुल, तिनिश, चिरिबिल्व, महुआ, बेल, तेंदू तथा और भी सैकड़ों जंगली वृक्ष देखे, जो फूलों वाली लताओं से शोभित हो रहे थे। उनमें से कुछ को हाथियों ने अपनी सूँड से विमर्दित कर दिया था, कुछ पर बन्दर बैठे हुए उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। सैकड़ों मस्त पक्षियों के समूह उन पर बैठे कलरव कर रहे थे।

ततोऽब्रवीत् समीपस्थं रामो राजीवलोचनः।
पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम्।। ४६।।
स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजाः।
आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः।। ४७।।

तब कमलनयन श्रीराम, पीछे आते हुए और समीप ही विद्यमान, शोभावर्धक वीर लक्ष्मण से बोले कि जैसे यहाँ के वृक्ष चिकने पत्ते वाले और जैसे यहाँ पशुपक्षी क्षमाशील हैं, उससे प्रतीत होता है कि शुद्ध आत्मा वाले महर्षि का आश्रम दूर नहीं है।

अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा।
आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः।। ४८।।
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीर मालापरिष्कृतः।
प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः।। ४९।।

वे मुनि अपने ही कार्यों से अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध हैं। यह उनका आश्रम है, जो थके हुओं के श्रम को दूर करने वाला है, यहाँ के वन यज्ञों के धुएँ से भरे हुए हैं और चीर वस्त्रों की मालाओं से सुशोभित हैं। यहाँ के मृगों के झुंड शान्त हैं और यहाँ अनेक प्रकार के पक्षी कलख कर रहे हैं।

एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम्।
अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति।। ५०।।
आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यं तं महामुनिम्।
शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो।। ५१।।
आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया।। ५२।।

ये महात्मा सारे लोगों के द्वारा पूजित हैं और सदा सत्पुरुषों की भलाई में लगे रहते हैं। अपने पास आये हुए ये हमें कल्याण की प्राप्ति करायेंगे। मैं यहाँ महामुनि अगस्त्य की आराधना करूँगा। हम आश्रम पर आ पहुँचे हैं। हे सुमित्रापुत्र! पहले तुम आगे जाओ और ऋषि से सीता के साथ मेरे आने के विषय में निवेदन करो।

ग्यारहवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा अगस्त्य मुनि का आतिथ्य सत्कार ग्रहण करना तथा उन्हें अगस्त्य मुनि से दिव्यास्त्रों की प्राप्ति।

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः।
अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह।। १।।
राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली।
रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया।। २।।
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः।
अनुकूलश्च भक्तश्च यदि ते श्रोत्रमागतः।। ३।।
ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात्।
द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम्।। ४।।

तब राम के छोटे भाई लक्ष्मण आश्रम में प्रविष्ट हुए और वहाँ अगस्त्य जी के शिष्य से भेंट कर उनसे बोले कि राजा दशरथ नाम के एक राजा हुए हैं, उनके सबसे बड़े बलवान पुत्र श्रीराम अपनी पत्नी सीता के साथ यहाँ मुनि के दर्शन करने के लिये आये हैं। मैं लक्ष्मण नाम का उनका छोटा भाई, उनकी भलाई में लगा हुआ, उनके अनुकूल चलने वाला और उनका भक्त हूँ। शायद मेरा नाम भी आपने कभी सुना हो। हम पिता के आदेश से अति भयानक वन में प्रविष्ट हुए हैं और सब भगवान के दर्शन करना चाहते हैं। आप उनसे निवेदन कीजिये।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः।
तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम्।। ५।।
स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम्।
कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा।। ६।।
यथोक्तं लक्ष्मणेनैव शिष्योऽगस्त्यस्य सम्मतः।

लक्ष्मण जी के उन वचनों को सुन कर वह तपस्वी अच्छा ऐसा कह कर अगस्त्य जी से निवेदन करने के लिये अग्निशाला में गये। तपस्या के प्रभाव से जो दुर्दमनीय थे, उन मुनि श्रेष्ठ के पास जा कर उन्होंने हाथ जोड़ कर राम के आगमन के विषय में शीघ्रता से उसी प्रकार बताया जैसा लक्ष्मण जी ने उनसे कहा था।

ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम्।। ७।।
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत्।
दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः।। ८।।
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति।
गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः।। ९।।
प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः।

तब शिष्य से यह सुन कर कि राम, लक्ष्मण और महाभागा वैदेही पधारी हैं, महर्षि ने यह कहा कि सौभाग्य की बात है कि राम चिरकाल के पश्चात् आज मुझसे मिलने के लिये आये हैं। मैं मन में चाह रहा था कि वे मेरे आश्रम पर आते। तुम जाओ। पत्नी और लक्ष्मण के साथ श्रीराम को सत्कारपूर्वक प्रवेश कराओ। अब तक उन्हें प्रवेश क्यों नहीं कराया?

तदा निष्क्रम्य सम्भ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत्।। १०।।
कोऽसौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम्।
ततो गत्वाऽऽश्रमपदं शिष्येण सह लक्ष्मणः।। ११।।
दर्शयामास काकुत्स्थं सीतां च जनकात्मजाम्।
तं शिष्यः प्रश्रितं वाक्यमगस्त्यवचनं ब्रुवन्।। १२।।
प्रावेशयद् यथान्यायं सत्कारार्हं सुसत्कृतम्।

तब शिष्य ने शीघ्रता से बाहर आ कर लक्ष्मण जी से कहा कि वे राम कौन हैं? मुनि के दर्शन के लिये वे स्वयं आयें, आश्रम में प्रवेश करें। तब लक्ष्मण ने शिष्य के साथ आश्रम के द्वार पर जा कर श्रीराम और जनकपुत्री सीता जी से उन्हें मिलवाया। शिष्य ने उन्हें विनय के साथ अगस्त्य जी की कही बात सुनाई और उन्हें सत्कार सहित यथोचित रीति से अन्दर ले गया।

ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत्।। १३।।
तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसाम्।
अब्रवीद् वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम्।। १४।।
बहिर्लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः।
औदार्येणावगच्छामि निधानं तपसामिमं।। १५।।

तब शिष्यों के साथ घिरे हुए मुनि अगस्त्य भी अग्निशाला से बाहर आये। मुनियों के आगे आते हुए, तेज से देदीप्यमान उन्हें देख कर वीर राम ने शोभा का विस्तार करने वाले लक्ष्मण जी से कहा कि हे लक्ष्मण! भगवन अगस्त्य ऋषि बाहर आ रहे हैं। ये तपस्या के भंडार हैं। इन्हें मैं इनकी उदार भंगिमा से ही पहचान रहा हूँ।

एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम्।
जग्राहापततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः॥ १६॥
अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः।
सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः॥ १७॥

ऐसा कह कर उन महाबाहु राम ने सामने से आते हुए सूर्य के समान तेजस्वी अगस्त्य मुनि के चरण पकड़ लिये। वे धर्मात्मा राम, लक्ष्मण और सीता के साथ उनका अभिवादन कर, हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वाऽऽसनोदकैः।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत्॥ १८॥
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन् प्रतिपूज्य च।
वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ॥ १९॥

तब महर्षि अगस्त्य ने उन्हें हृदय से लगा लिया और उनका आसन और जल से सत्कार कर उनसे कुशल प्रश्न पूछ कर बैठने के लिये कहा। उन्होंने फिर अग्नि में आहुति दे कर, वानप्रस्थ धर्म के अनुसार अर्घ्य द्वारा उनकी पूजा करके उन्हें भोजन प्रदान किया।

प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुंगवः।
उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम्॥ २०॥
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथिं प्रतिपूजयेत्।
राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः॥ २१॥
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान् प्राप्तः प्रियातिथिः।

तत्पश्चात् धर्मज्ञ मुनि श्रेष्ठ पहले बैठे फिर उसके बाद बैठे हुए और हाथ जोड़े हुए धर्मज्ञ राम को उन्होंने कहा कि पहले अग्नि को आहुति दे कर पुनः अतिथि की अर्घ्य प्रदान के द्वारा पूजा करनी चाहिये। आप सारे लोगों के राजा, धैर्य का आचरण करने वाले और महारथी हैं। आप मेरे प्रिय अतिथि हैं, इसलिये आप हमारे पूज्य और मान्य हैं।

इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम्॥ २२॥
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा।
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः॥ २३॥

यह महान और दिव्य धनुष है। इसमें स्वर्ण और हीरे जड़े हुए हैं। हे पुरुषव्याघ्र! इसका नाम वैष्णव है, इसे विश्वकर्मा ने बनाया है। यह सूर्य के समान अमोघ उत्तम बाण है। इसे ब्रह्मा जी ने दिया है।

महाराजकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥ २४॥
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा॥ २५॥
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम्।
दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत्॥ २६॥

ये प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान तीखे बाणों से भरे हुए दो तरकस हैं। यह सोने के म्यानवाली तलवार है, जो स्वर्ण से विभूषित है। हे मानद! आप विजय पाने के लिये यह धनुष, दो तरकस, यह बाण और खड्ग उसी प्रकार ग्रहण कीजिये जैसे बादल विद्युत को धारण करते हैं। ऐसा कह कर वे महातेजस्वी, भगवान अगस्त्य उन सारे श्रेष्ठ आयुधों को श्रीराम को देकर पुनः उनसे बोले।

बारहवाँ सर्ग

अगस्त्य मुनि की सलाह से पंचवटी में आश्रम बना कर रहने के लिये श्रीराम का पंचवटी की तरफ प्रस्थान।

राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोऽस्मि लक्ष्मण।
अभिवादयितुं यन्मां प्राप्तौ स्थः सह सीतया॥ १॥
अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः।
व्यक्तमुत्कण्ठते वापि मैथिली जनकात्मजा॥ २॥

हे राम! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, हे लक्ष्मण! मैं तुमसे भी बहुत सन्तुष्ट हूँ आप दोनों मुझे प्रणाम करने के लिये ही यहाँ सीता के साथ आये हैं। रास्ते की थकावट के कारण आप लोग परेशान हैं। यह प्रकट हो रहा है कि मैथिली भी थकावट को दूर करना चाहती है।

एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता।
प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता॥ ३॥
यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु।
दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती॥ ४॥

यह सीता सुकुमारी है। पहले कभी इसने दुःखों को सहन नहीं किया, पर यह पति स्नेह से प्रेरित हो कर बाधाओं वाले वन में आ गयी है। हे राम! तुम वैसा ही करो जैसे इसका मन लगे। इसने तुम्हारे साथ वन में आकर बड़ा दुष्कर कार्य किया है।

अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह।
वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिंदम।। ५।।
एवमुक्तस्तु मुनिना राघवः संयताञ्जलिः।
उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिवानलम्।। ६।।

हे शत्रुओं का दमन करने वाले राम! आपके यहाँ लक्ष्मण और सीता के साथ रहने से इस देश की शोभा बढ़ जायेगी। मुनि के द्वारा यह कहे जाने पर श्रीराम ने हाथ जोड़ कर अग्नि के समान तेजस्वी ऋषि से विनयपूर्वक यह कहा।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः।
गुणैः सभ्रातृभार्यस्य गुरुर्नः परितुष्यति।। ७।।
किं तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम्।
यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम्।। ८।।

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं धन्य हूँ। मैं आपका अनुगृहीत हूँ, जो आप पत्नी और भाई सहित हम लोगों के गुणों से सन्तुष्ट हो रहे हैं। पर हे मुने! आप मुझे बहुत वन वाला और जल वाला स्थान बताइये जहाँ मैं आश्रम बनाकर सुखपूर्वक निवास करूँ।

ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य भाषितम्।
ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा ततोवाच वचः शुभम्।। ९।।
इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः।
देशो बहुमृगः श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुतः।। १०।।

राम की बात सुन कर उन धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ ने एक मुहूर्त सोच विचार किया, फिर उन्होंने यह शुभ वचन कहा कि हे तात! यहाँ से दो योजन दूर बहुत फलमूल और जल वाला स्थान है। वहाँ बहुत मृग हैं। वह सुन्दर स्थान पंचवटी नाम से प्रसिद्ध है।

तत्र गत्वाऽऽश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह।
रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन्।। ११।।
स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव।
गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते।। १२।।

वहाँ जा कर सुमित्रापुत्र के साथ आश्रम बना कर पिता की यथोक्त बात का पालन करते हुए आनन्द उठाओ। हे राघव! वह प्रशंसनीय स्थान दूर भी नहीं है। वह गोदावरी के किनारे है। मैथिली वहाँ आनन्द से रहेगी।

प्राज्यमूलफलैश्चैव नानाद्विजगणैर्युतः।
विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च।। १३।।
भवानपि सदाचारः शक्तश्च परिरक्षणे।
अपि चात्र वसन् राम तापसान् पालयिष्यसि।। १४।।

हे महाबाहो! वह स्थान पर्याप्त फलफूल वाला है, तरह-तरह के पक्षी वहाँ निवास करते हैं, एकान्त पवित्र और रमणीय है। आप भी सदाचारी और रक्षा करने में समर्थ हैं। वहाँ रह कर आप तपस्वियों का पालन भी कर सकेंगे।

एतदालक्ष्यते वीर मधूकानां महावनम्।
उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमपि गच्छता।। १५।।
ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः।
ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः।। १६।।

हे वीर! यह महुओं का विशाल वन दिखाई दे रहा है, इसके उत्तर से जाना चाहिये। उसके आगे बरगद का पेड़ है। उस वृक्ष के भी पार कर लेने पर एक ऊँचा मैदान है, उसके बाद एक पर्वत के समीप ही पंचवटी नाम का एक वन है, जो सदा फूलों से भरा रहता है।

अगस्त्येनैवमुक्तस्तुरामः सौमित्रिणा सह।
सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम्।। १७।।
तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ।
तमाश्रमं पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया।। १८।।

अगस्त्य मुनि के ऐसा कहने पर लक्ष्मण के साथ राम ने उनका सत्कार कर उस सत्यवादी ऋषि से जाने की आज्ञा माँगी। उनसे आज्ञा ले कर, उनके चरणों का स्पर्श कर वे दोनों सीता के साथ पंचवटी की तरफ चल दिये।

गृहीतचापौ तु नराधिपात्मजौ
विषक्ततूणी समरेष्वकातरौ।
यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा
प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ।। १९।।

वे दोनों राजकुमार, जो कि युद्ध में निर्भय थे, हाथों में धनुष ले कर तथा कमर पर तरकस बाँधे, महर्षि के द्वारा बताये गये मार्ग से, सावधानी के साथ पंचवटी की तरफ चल दिये।

तेरहवाँ सर्ग

मार्ग में जटायु का मिलना और पंचवटी में पर्णशाला का निर्माण।

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः।
आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम्॥ १॥
तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ।
मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति॥ २॥

पंचवटी की तरफ जाते हुए मार्ग में श्रीराम ने गृद्धजाति के एक विशाल शरीर वाले और भयानक पराक्रम वाले व्यक्ति को देखा। वानप्रस्थ आश्रम में विद्यमान उस पक्षी अर्थात विद्वान व्यक्ति को देख कर उन महाभाग रामलक्ष्मण ने उन्हें कोई राक्षस समझा और उनसे पूछा कि आप कौन हैं?

ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः॥ ३॥
स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः।
स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च॥ ४॥

तब उसने मधुर और कोमल वाणी में उन्हें प्रसन्न सा करते हुए कहा कि पुत्र तुम मुझे अपने पिता का मित्र समझो। तब उसे अपने पिता का मित्र मान कर श्रीराम ने उसका सम्मान किया और शान्त भाव से उनके नाम और कुल को पूछा।

आचचक्षे द्विजस्तस्मै, कुलमात्मानमेव च।
जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिंदम॥ ५॥
सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि।
इदं दुर्गं हि कान्तारं मृगराक्षससेवितम्॥ ६॥
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे।

उस विद्वान व्यक्ति ने अपने कुल और नाम का परिचय देते हुए कहा कि हे शत्रुओं का दमन करने वाले! तुम मुझे श्येनी का पुत्र जटायु जानो। यदि आप चाहें तो मैं यहाँ आपके निवास में सहायक होऊँगा। हे तात! जब तुम इस दुर्गम वन्य पशुओं और राक्षसों से युक्त वन में लक्ष्मण के साथ जायेंगे, तब मैं सीता की रक्षा करूँगा।

जटायुषं तु प्रतिपूज्य राघवो
मुदा परिष्वज्य च संनतोऽभवत्।
पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्मवा-
ञ्जटायुषा संकथितं पुनः पुनः॥ ७॥

तब श्रीराम प्रसन्नता से जटायु का सत्कार कर उसके गले लगे और उसके सम्मुख नतभाव हो गये। उन मनस्वी ने जटायु के द्वारा वर्णित उनकी अपने पिता के साथ मित्रता होने की घटना को बार बार सुना।

स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीं
सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो
रिपून् दिधक्षञ्शलभानिवानलः॥ ८॥

उन्होंने वहाँ जटायु को सीता जी का संरक्षक बना कर उन विद्वान व्यक्ति के साथ ही लक्ष्मण सहित पंचवटी की तरफ प्रस्थान किया। उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो पतंगों को अग्नि के समान अपने शत्रुओं को जलाना चाहते हैं।

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम्।
उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम्॥ ९॥
आगताः स्म यथोद्दिष्टं यं देशं मुनिरब्रवीत्।
अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितकाननः॥ १०॥

तब अनेक प्रकार के सर्प और मृगों से व्याप्त उस पंचवटी में पहुँच कर श्रीराम ने अपने तेजस्वी भाई से कहा कि हे सौम्य! हम उसी स्थान पर आ पहुँचे हैं, जिसके विषय में मुनि ने हमें बताया है। यही फूलों वाले वन से युक्त पंचवटी प्रदेश है।

सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि।
आश्रमः कतस्मिन् नो देशे भवति सम्मतः॥ ११॥
रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण।
तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः॥ १२॥
वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा।
संनिकृष्टं च यस्मिंस्तु समित्पुष्पकुशोदकम्॥ १३॥

हे आर्य! तुम कुशल हो, इसलिये सब तरफ दृष्टि डालो और निश्चय करो कि वन में किस स्थान पर हमारे अनुकूल आश्रम बन सकेगा? हे लक्ष्मण! जहाँ वैदेही का मन प्रसन्न हो और तुम तथा मैं भी प्रसन्नता का अनुभव करें, जहाँ जल का भण्डार समीप हो। जहाँ वन की सुन्दरता और जल की सुन्दरता दोनों ही विद्यमान हो। समिधा, पुष्प, कुशा और पानी जहाँ समीप ही मिल सके।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत्।। १४।।
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद।। १५।।

राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर उन काकुत्स्थ से सीता के समीप यह कहा कि हे काकुत्स्थ! मैं आपके साथ सौ वर्षों तक रहने पर भी आपके आधीन ही रहना चाहता हूँ; इसलिये आप स्वयं ही रुचि कर स्थान के विषय में निर्णय करो और मुझे बता दो।

सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः।
विमृशन् रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम्।। १६।।
स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि।
हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत्।। १७।।

तब महा तेजस्वी राम ने लक्ष्मण की बात से अत्यन्त प्रसन्न हो कर विचार किया और सर्व गुणों से युक्त उस स्थान को पसन्द किया, जो आश्रम बनाने के लिये रुचि कर था। फिर लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर उन्होंने लक्ष्मण को वहाँ ले जाकर कहा।

अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत् कर्तुमर्हसि।। १८।।
इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः।
अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता।। १९।।

यह स्थान सुन्दर और रमणीय है। यह फूलों वाले वृक्षों से भरा हुआ है। यहीं तुम सुन्दर आश्रम को यथोचित रीति से बना सकते हो। यह सूर्य के समान जगमगाते हुए और मनोहर गन्ध वाले कमलों से युक्त सुन्दर पुष्करिणी, जो कमलों के समान ही रमणीय है, समीप ही दिखाई दे रही है।

यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना।
इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता।। २०।।
हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता।
नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता।। २१।।

शुद्ध आत्मा वाले अगस्त्य मुनि ने जैसे कहा था यह सुन्दर गोदावरी नदी फूलों वाले वृक्षों से घिरी हुई है। यह हंस और कारंडव पक्षियों से भरी हुई है। चक्रवाक इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। मृगों के झुण्ड इसके समीप ही विद्यमान रहते हैं। यह नदी इस स्थान से न अधिक दूर ही है और न समीप है।

मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकन्दराः।
दृश्यन्ते गिरयः सौम्य फुल्लैस्तरुभिरावृताः।। २२।।
सौवर्णै राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे तथा शुभैः।
गवाक्षिता इवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः।। २३।।

हे सौम्य! यहाँ से सुन्दर ऊँचे पर्वत, जहाँ बहुत सी कन्दराएँ हैं, जो मोरों की ध्वनि से गूँज रहे हैं, जो फूलों वाले वृक्षों से भरे हुए हैं, दिखाई दे रहे हैं। ये पर्वत स्थान-स्थान पर सोने चाँदी और ताँबे जैसी धातुओं से सुशोभित होते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे अनेक रंगों के झरोखे के आकार की उत्तम शृंगार रचनाओं से अलंकृत हाथी हों।

सालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरैः पनसैर्द्रुमैः।
नीवारैस्तिनिशैश्चैव पुन्नागैश्चोपशोभिताः।। २४।।
चूतैरशोकैस्तिलकैः केतकैरपि चम्पकैः।
पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः।। २५।।
स्यन्दनैश्चन्दनैर्नीपैः पर्णासैर्लकुचैरपि।
धवाश्वकर्णखदिरैः शमीकिंशुकपाटलैः।। २६।।

ये पर्वत, पुष्पों, गुल्मों और लताओं से युक्त साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, नीवार, तिनिश, पुंनाग, आम, अशोक, तिलक, केतक, चम्पक, स्यन्दन, चन्दन, कदम्ब, पर्णास, लकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश, और पाडर आदि वृक्षों से भरे हुए शोभायमान दिखाई दे रहे हैं।

इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम्।
इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा।। २७।।
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः।। २८।।

हे सुमित्रापुत्र! हम इस बहुत से मृग और पक्षियों वाले सुन्दर स्थान पर इस विद्वान जटायु के साथ रहेंगे। राम के द्वारा ऐसा कहने पर शत्रुवीरों का संहार करने वाले महाबली लक्ष्मण ने भाई के लिये जल्दी ही आश्रम बना कर तैयार किया।

पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम्।
सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम्।। २९।।
शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम्।
कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा।। ३०।।
समीकृततलां रम्यां चकार सुमहाबलः।
निवासं राघवस्यार्थे प्रेक्षणीयमनुत्तमम्।। ३१।।

पहले उन्होंने मिट्टी एकत्र कर दीवार बनायी, फिर उसमें सुदृढ़ खम्बे लगाये। उसके ऊपर सुन्दर तरीके से लम्बे और टेढ़े बाँस लगाये। फिर उन बासों को शमी वृक्ष की डालियों से उन पर फैला कर भर दिया। उन डालियों को मजबूत रस्सियों से बाँध दिया। उसके ऊपर कुशा, कास और खस तथा पत्ते बिछा कर अच्छी तरह से ढक दिया। इस प्रकार उन्होंने श्रीराम के लिये एक सुन्दर और दर्शनीय निवास स्थल बनाया।

स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान् नदीं गोदावरीं तदा।
स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः।। ३२।।
स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया।
राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयत् परम्।। ३३।।

आश्रम का निर्माण कर श्रीमान लक्ष्मण गोदावरी नदी पर गये। वहाँ स्नान कर वहाँ से फूल और फल ले कर वापिस लौटे। उस निर्मित आश्रम को सीता के साथ देख कर श्रीराम उस आश्रम में गये और बड़े प्रसन्न हुए।

सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा।
अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत्।। ३४।।
प्रीतोऽस्मि ते महत् कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो।
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः।। ३५।।
भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम।। ३६।।
एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः।
तस्मिन् देशे बहुफले न्यवसत् स सुखं सुखी।। ३७।।

तब अत्यन्त प्रसन्न हो कर उन्होंने लक्ष्मण को दोनों हाथों से कस कर छाती से लगा लिया और कहने लगे कि हे सौभाग्यशाली! तुमने यह जो महान कार्य किया है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। यह कार्य पुरस्कार देने योग्य है। इसलिये मैंने तुम्हें छाती से लगाया है। हे लक्ष्मण! तुम्हारे जैसे भावनाओं को जानने वाले, धर्मज्ञ और कृतज्ञ पुत्र के कारण मेरे धर्मात्मा पिता अभी दिवंगत नहीं हुए हैं। लक्ष्मण से ऐसा कह कर वे शोभा का विस्तार करने वाले, सुखी श्रीराम, उस प्रचुर फलों से युक्त प्रदेश में सुख पूर्वक रहने लगे।

चौदहवाँ सर्ग

लक्ष्मण द्वारा हेमन्त ऋतु का वर्णन, भरत की प्रशंसा तथा श्रीराम आदि का गोदावरी में स्नान।

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः।
शरद्व्यपाये हेमन्तऋतुरिष्टः प्रवर्तत।। १।।
स कदाचित् प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः।
प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम्।। २।।
प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान्।
पृष्ठतोऽनुव्रजन् भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत्।। ३।।

महात्मा श्रीराम के वहाँ पंचवटी में सुख पूर्वक रहते हुए शरद् ऋतु व्यतीत हो गयी। एक दिन रात्रि व्यतीत होने और प्रभात होने पर श्रीराम स्नान के लिये सुन्दर गोदावरी नदी पर गये। वहाँ सीता के साथ पीछे-पीछे कलश हाथ में ले कर चलते हुए तेजस्वी भाई लक्ष्मण ने यह कहा।

अयं स कालः सम्प्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः।। ४।।
नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः।। ५।।

हे प्रियवादी भाई! यह वही ऋतु आ गयी है, जो आपको प्यारी है, जिससे यह पवित्र वर्ष अलंकृत सा सुशोभित हो रहा है। पाला पड़ने के कारण इस समय सारा शरीर रूखा हो रहा है। भूमि पर खेती लहलहा रही है। अधिक शीतल होने के कारण पानी इस समय पीया नहीं जाता और अग्नि अच्छी लगती है।

प्राज्यकामा जनपदाः सम्पन्नतरगोरसाः।
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः।। ६।।
अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः।
दिवसाः सुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः।। ७।।

जनपद के लोगों की इस ऋतु में प्रायः सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। गो रस अर्थात दूध दही आदि की बहुतायत होती है। विजय प्राप्ति के इच्छुक राजा लोग यात्रा के लिये निकल पड़ते हैं। इस ऋतु में सुखदायक सूर्य की धूप स्पर्श करने में अच्छी लगती है, इसलिये दोपहरी घूमने के लिये बहुत रमणीय है। इस समय छाया और जल दुखदायी हैं।

मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समारुताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्।। ८।।
निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः।
शीतवृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम्।। ९।।

आजकल धुन्ध अधिक पड़ती है, सर्दी कड़ाके की और ठंडी हवा चल रही है। सूर्य इस समय कोमल अनुभव हो रहा है। पाला पड़ने से पत्ते झड़ गये हैं और जंगल सूने दिखाई दे रहे हैं। अब खुले आकाश के नीचे कोई नहीं सोता, रात में सर्दी भी अधिक हो जाती है और रात्रि का आकार भी बढ़ गया है। पौष मास की ये रातें पाले के कारण धूसर प्रतीत होती हैं।

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः।
निश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।। १०।।
ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते।। ११।।

चन्द्रमा का सौभाग्य आजकल सूर्य में चला गया है अर्थात चन्द्रमा की अपेक्षा सूर्य अधिक प्रिय लगता है। चन्द्रमा का मण्डल हिमकणों के कारण धूमिल हो रहा है इसलिये निश्वास के द्वारा मलिन किये हुए दर्पण के समान वह सुशोभित नहीं हो रहा है। चन्द्रमा की चाँदनी तुहिन बिन्दुओं से मलिनता को प्राप्त हो कर, पूर्ण मासी के दिन भी सुशोभित नहीं हो रही है। जैसे धूप के कारण सीता का रंग साँवला दिखाई दे रहा है और पहले के समान सुशोभित नहीं हो रहा है।

प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च साम्प्रतम्।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः।। १२।।
बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः।। १३।।

पश्चिम से आने वाली वायु एक तो स्वभाव से ही शीतल होती है, पर इस समय हिमकणों से व्याप्त हो जाने के कारण, दुगुनी ठंडी हो कर बह रही है। जौ और गेहूँ के पौधों वाले वन कुहरे से ढके हुए हैं और सूर्य के उदय होने पर कलरव करते हुए क्रौञ्च और सारसों से बड़े सुशोभित हो रहे हैं।

खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः।
शोभन्ते किंचिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः।। १४।।
मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः।
दूरमभ्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते।। १५।।

ये सुनहरे जड़हन के धान, जिनकी बालें चावलों से भरी हुई है और खजूर के फूल की आकृति वाली हैं, तथा कुछ झुकी हुई हैं, सुशोभित हो रहे हैं। बर्फीले कुहरे से ढकी हुई, फैलती हुई अपनी किरणों के द्वारा दूर उदय होता हुआ सूर्य चन्द्रमा के समान दिखाई देता है।

आग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्णे मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः।
संरक्तः किंचिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ।। १६।।
अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा।। १७।।

लाल रंग तथा कुछ-कुछ पाण्डुरंग की धूप पृथ्वी पर फैलती हुई सुशोभित हो रही है। प्रातः काल तो इसका तेज प्रतीत ही नहीं होता है, मध्याह्न काल में यह स्पर्श से सुखदायक प्रतीत होती है। ओस की बूँदों के गिरने से जहाँ घास कुछ गीली हो गयी है, वनों की यह भूमि उदय होते हुए सूर्य की धूप के प्रवेश करने से सुन्दर लग रही है।

स्पृशन् सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम्।
अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम्।। १८।।
एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः।
नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम्।। १९।।

जंगली हाथी अत्यन्त प्यासा होने के कारण बहुत शीतल जल को स्पर्श तो करता है, पर पानी की शीतलता के कारण अपनी सूँड को वापिस निकाल लेता है। ये जलचर पक्षी जल के निकट तो बैठे हैं, पर अनाड़ी या अकुशल व्यक्तियों के समान, जैसे वे युद्धक्षेत्र में उतरने की, युद्ध में भाग लेने की हिम्मत नहीं कर पाते, वैसे ही ये भी जल में उतर नहीं रहे हैं।

अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृताः।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः।। २०।।
बाष्पसंछन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः।
हिमार्द्रवालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम्।। २१।।

ओस की बूँदों के अँधेरे से और कुहरे के अँधेरे से आच्छादित और ढकी हुई ये फूलों से रहित वन्यवृक्षों की श्रेणियाँ सोई हुई सी प्रतीत होती हैं। नदियों के जल इस समय भाप से ढके हुए होने के कारण किनारे की ओस से भीगी रेत के द्वारा ही और उनमें विचरने वाले सारस अपनी बोली से ही पहचाने जाते हैं, दृष्टिगोचर नहीं होते।

तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद् भास्करस्य च।
शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम्।। २२।।

जराजर्जरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः।। २३।।

बर्फ के पड़ने से, सूर्य के कोमल होने से, और शीत के कारण पर्वतों के शिखर पर विद्यमान जल भी प्रायः रसीला प्रतीत होता है। कमलों के समूह आजकल सुशोभित नहीं हो रहे हैं, क्योंकि उनके पुराने पत्ते झड़ गये हैं, केसर और कर्णिका जीर्ण शीर्ण हो गये हैं। हिमपात से चोट खाये हुए वे इस समय केवल डंठलमात्र ही रह गये हैं।

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे।। २४।।
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान् बहून्।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले।। २५।।

हे पुरुष व्याघ्र! इस समय आपके प्रति प्रेम के कारण धर्मात्मा भरत दुख से युक्त हो कर नगर में तपस्या कर रहे हैं। वह तपस्वी, राज्य को, सम्मान को और तरह-तरह के अनेक भोगों को छोड़ कर, नियत आहार करते हुए इस शीतऋतु में भी भूमि पर शयन करते हैं।

सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम्।। ६।।
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते।। २७।।

वे भी निश्चितरूप से इस समय प्रतिदिन मन्त्री आदि प्रजा के लोगों से घिर कर स्नान के लिये तैयार हो कर सरयू नदी पर जाते होंगे। अत्यन्त सुख में पले हुए वे सुकुमार शीत से पीड़ित होते हुए, पिछले प्रहर में कैसे स्नान करते होंगे?

पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान् निरुदरो महान्।
धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः।। २८।।
प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः।
संत्यज्य विविधान् सौख्यानार्यं सर्वात्मनाश्रितः।। २९।।

कमलदल के समान नेत्रों वाले, साँवले रंग के, महान कान्ति से युक्त, जिनके पेट का पता ही नहीं लगता, धर्मज्ञ, सत्यवादी, लज्जाशील, जितेन्द्रिय, प्रिय बोले वाले, स्वभाव से मधुर, लम्बी भुजाओं वाले, शत्रुओं का दमन करने वाले भरत अनेक प्रकार के सुखों को छोड़ कर आप में पूरी आत्मा से समर्पित हैं।

जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते।। ३०।।
न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः।। ३१।।

आपके भाई महात्मा भरत ने परलोक को जीत लिया है। वे आपके वन में विद्यमान होने पर भी तपस्या में आपका अनुकरण कर रहे हैं। ऐसी कहावत है कि मनुष्य पिता का नहीं माता का अधिक अनुकरण करते हैं, पर भरत ने इस प्रसिद्ध उक्ति को उलटा कर दिया है।

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी।। ३२।।
इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद् वदति धार्मिके।
परिवादं जनन्यास्तमसहन् राघवोऽब्रवीत्।। ३३।।
न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु।। ३४।।

जिसका पति दशरथ है, पुत्र महात्मा भरत है, वह माता कैकेयी इतनी निर्दय कैसे हो गयी। धार्मिक लक्ष्मण के इस प्रकार स्नेह से कहने पर माता की उस बुराई को सहन न करते हुए श्रीराम ने कहा कि हे तात! तुम्हें मझली माता कैकेयी की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये। तुम उन्हीं इक्ष्वाकु वंश के स्वामी भरत की ही बात बताओ।

निश्चितैव हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता।
भरतस्नेहसंतप्ता बालिशीक्रियते पुनः।। ३५।।
संस्मराम्यस्यवाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च।
हृद्यान्यमृतकल्पानि मनः प्रह्लादनानि च।। ३६।।

मेरी बुद्धि निश्चित रूप से वनवास में दृढ़व्रत हो चुकी है, पर भरत के स्नेह से दुःखी हो कर वह पुनः चंचल हो जाती है। मैं उसके प्रिय और मधुर वाक्यों को जो हृदय को आनन्दित करने वाले, अमृत जैसे और मन को प्रसन्न करने वाले हैं, याद कर रहा हूँ।

कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना।
शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन।। ३७।।
इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम्।। ३८।।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया।

हे रघुनन्दन! कब वह दिन आयेगा, जब मैं तुम्हारे साथ चल कर महात्मा भरत और वीर शत्रुघ्न से मिलूँगा। ऐसा विलाप करते हुए उन काकुत्स्थ श्रीराम ने छोटे भाई और सीता के साथ गोदावरी नदी पर जा कर स्नान किया।

पन्द्रहवाँ सर्ग

श्रीराम के आश्रम में शूर्पनखा का आना और उनसे अपनी भार्या बनाने के लिये अनुरोध करना।

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च।
तस्माद् गोदावरीतीरात् ततो जग्मुः स्वमाश्रमम्।। १।।
स रामः पर्णशालायामासीनः सह सीतया।
विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव।। २।।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः।

वहाँ स्नान करके राम, सीता और लक्ष्मण उस गोदावरी के किनारे से पुनः अपने आश्रम में आ गए। उसके पश्चात श्रीराम, पर्णशाला में चित्रा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा के समान, सीता और लक्ष्मण के साथ बैठे हुए अनेक प्रकार की कथाएँ अर्थात वार्तालाप आदि करने लगे।

तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः।। ३।।
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया।
सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः।। ४।।
भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम्।

जब वे इस प्रकार बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे, उस स्थान पर कोई राक्षसी, स्वयं अपनी इच्छा से वहाँ आयी। उसका नाम शूर्पणखा था, वह दशग्रीव नाम के राक्षस की बहन थी, उसने देवताओं के समान उन राम को देखा।

सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम्।। ५।।
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत्।। ६।।
जटी तापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक्।
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम्।। ७।।
किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि।

उसने देखा राम सुकुमार हैं, महातेजस्वी हैं, राजोचित लक्षणों से युक्त हैं और इन्द्र के समान सुन्दर हैं। उन्हें देख कर वह काम से मोहित हो गयी। शरीर में काम भावना के समाविष्ट होने पर वह श्रीराम से बोली कि तुमने जटाएँ धारण की हुई हैं, तपस्वी का वेष बनाया हुआ है, पत्नी तुम्हारे साथ है, धनुषबाण धारण किया हुआ है। तुम इस राक्षसों के देश में किस लिये आये हो? तुम्हारा यहाँ आने का क्या प्रयोजन है? मुझे ठीक-ठीक बताओ।

एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पनख्या परंतपः।। ८।।
ऋजुबुद्धितया सर्वममाख्यातुमुपचक्रमे।
आसीद् दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः।। ९।।
तस्याहमग्रजो पुत्रो, रामो नाम जनैः श्रुतः।
भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान् मानुव्रतः।। १०।।
इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता।

शूर्पणखा के इस प्रकार कहने पर वे परंतप सरल स्वभाव के होने के कारण सब कुछ बताने लगे। उन्होंने कहा कि दशरथ नाम के देवताओं के समान पराक्रमी राजा थे, उनका मैं सबसे बड़ा पुत्र राम नाम से लोगों में प्रसिद्ध हूँ। यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण मेरी आज्ञा के अनुसार रहता है। यह मेरी पत्नी विदेहराज जनक की पुत्री है और सीता नाम से प्रसिद्ध है।

नियोगात् तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः।। ११।।
धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः।
त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा।। १२।।
इह वा किंनिमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः।

अपने पिता महाराज की तथा माता की आज्ञा से प्रेरित हो कर धर्म के पालन की इच्छा रखने वाला मैं धर्म के पालन करने के लिये ही वन में रहने के लिये यहाँ आया हूँ। मैं तुम्हारे बारे में जानना चाहता हूँ। तुम किसकी पुत्री हो, तुम्हारा क्या नाम है और तुम किसकी पत्नी हो? यहाँ किस लिये आयी हो? यह मुझे ठीक बताओ।

साब्रवीद् वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता।। १३।।
श्रूयतां राम तत्त्वार्थं वक्ष्यामि वचनं मम।
अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।। १४।।

कामनाओं से युक्त वह राक्षसी यह सुन कर बोली, हे राम! तुम मेरी बात सुनो। मैं ठीक-ठीक बताऊँगी। मैं शूर्पणखा नाम की इच्छानुसार रूप धारण वाली राक्षसी हूँ।

अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयंकरा।
रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः।। १५।।
वीरो विश्रवसः पुत्रो यदि ते श्रोत्रमागतः।

प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः।। १६।।
विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः।
प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ।। १७।।

मैं सारे प्राणियों के हृदय में भय उत्पन्न करती हुई इस वन में अकेली विचरती रहती हूँ। रावण नाम का मेरा भाई है, यदि तुमने उसके बारे में सुना हो तो। तुमने वह भी सुना होगा कि वह वीर विश्रवा मुनि का पुत्र है। दूसरा मेरा भाई महाबली कुम्भकर्ण है, जो बहुत सोता है। तीसरा भाई विभीषण तो धर्मात्मा है। वह राक्षसों के से कार्य नहीं करता है। युद्ध में जिनका पराक्रम प्रसिद्ध है वे खरदूषण भी मेरे भाई हैं।

तानहं समतिक्रान्तां राम त्वा पूर्वदर्शनात्।
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम्।। १८।।
अहं प्रभावसम्पन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी।
चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि।। १९।।

हे राम! मैं अपने सारे भाइयों से बढ़ कर हूँ। मैं पहले ही दर्शन में तुम्हारे प्रति आसक्त हो कर आयी हूँ। मैं तुम पुरुषोत्तम को अपना पति बनाना चाहती हूँ। मेरा प्रभाव बहुत अधिक है। मैं अपनी शक्ति के कारण कहीं भी जा सकती हूँ। तुम सीता से क्या करोगे? लम्बे समय के लिये मेरे पति बन जाओ।

विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव।
अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम्।। २०।।
ततः पर्वतशृङ्गाणि वनानि विविधानि च।
पश्यन् सह मया कामी दण्डकान् विचरिष्यसि।। २१।।

यह सीता विकारयुक्त और बदसूरत है। यह तुम्हारे समान नहीं है। मैं ही तुम्हारे समान हूँ। तुम मुझे पत्नी के रूप में देखो। मुझे पत्नी बनाने के पश्चात तुम पर्वतों के शिखरों को और अनेक तरह के वनों को देखते हुए कामनाओं से युक्त हो कर दण्डकारण्य में विचरण करोगे।

सोलहवाँ सर्ग

राम और लक्ष्मण दोनों के द्वारा मना करने पर शूर्पणखा द्वारा सीता पर आक्रमण और लक्ष्मण का उसके नाक कान काट लेना।

तां तु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम्।
स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत्।। १।।
कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयंदयिता मम।
त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता।। २।।
अनुस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः।
अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति।। ३।।

तब काम के बन्धन से बँधी हुई उस शूर्पणखा से श्रीराम अपनी इच्छा से मुस्कराहट पूर्वक स्निग्ध वाणी से बोले कि मैं तो विवाह कर चुका हूँ। यह मेरी प्यारी पत्नी है। तुम जैसी स्त्री के लिये सौत का होना तो बड़ा दुखदायी होता है। यह मेरा छोटा भाई शीलवान और प्रियदर्शन है, तुम्हारे इस रूप के लिये तो यह योग्य पति होगा।

एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम।
असपत्ना वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा।। ४।।
इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता।
विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत्।। ५।।

हे विशालनेत्रों वाली सुन्दरी! मेरु पर्वत का सेवन करने वाली सूर्य की प्रभा के समान तुम मेरे इस भाई का, पति के रूप में बिना सौत के भजन करो। राम के द्वारा ऐसा कहने पर वह काम से मोहित राक्षसी राम को छोड़ कर एकदम लक्ष्मण के पास जा पहुँची और उनसे बोली।

अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी।
मया सह सुखं सर्वान् दण्डकान् विचरिष्यसि।। ६।।
एवमुक्तस्तु सौमित्री, लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत्।
कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।। ७।।
सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि।

तुम्हारे इस सौन्दर्य के लिये सुन्दर रंग वाली मैं ही योग्य पत्नी हूँ। तुम मेरे साथ दण्डकारण्य में सुखपूर्वक विचरण करोगे। ऐसा कहे जाने पर सुमित्रापुत्र लक्ष्मण ने युक्तियुक्त उत्तर दिया। हे सुन्दरंग वाली! तुम मुझ दास की भार्या बन कर दासी क्यों बनना चाहती हो? मुझे तो मेरे बड़े भाई ने अपना सेवक बनाया हुआ है।

समृद्धार्थस्य सिद्धार्थ मुदितामलवर्णिनी।। ८।।
आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी।

को हि रूपमिदं श्रेष्ठं संत्यज्य वरवर्णिनि।। ९।।
मानुषीषु वरारोहे कुर्याद् भावं विचक्षणः।

हे निर्मल रंगवाली और विशाल नेत्रों वाली! मेरे बड़े भाई सारे ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं। तुम उन्हीं की छोटी पत्नी बन जाओ, उससे तुम्हारा अर्थ सिद्ध हो जाएगा। और तुम्हें प्रसन्नता होगी। हे सुन्दर रंगवाली सुन्दरी! कौन बुद्धिमान तुम्हारे श्रेष्ठ रूप से छोड़ कर मनुष्य कन्याओं से प्रेम करेगा।

इति सा लक्ष्मणेनोक्ता परिहासाविचक्षणा।। १०।।
सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परंतपम्।
सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत् काममोहिता।। ११।।
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न मां त्वं बहु मन्यसे।। १२।।
अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्।
त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम्।। १३।।

लक्ष्मण के द्वारा ऐसे कहने पर परिहास को न समझने वाली, काम से मोहित वह पर्णशाला में सीता के साथ बैठे हुए दुर्धर्ष और परंतप राम से कहने लगी कि तुम इस बदसूरत, ओछी, भयानक, धँसे हुए पेटवाली, बूढ़ी पत्नी का आश्रय ले कर मुझे बहुत नहीं मानते हो, इसलिये आज तुम्हारे देखते हुए ही, मैं इस मानवी को खा जाऊँगी और उसके पश्चात बिना सौत के तुम्हारे साथ सुखपूर्वक विचरण करूँगी।

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा।
अभ्यगच्छत् सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव।। १४।।
तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः।
विगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत्।। १५।।

ऐसा कह कर अंगारों के समान आँखों वाली शूर्पणखा अत्यन्त क्रोध में भर कर मृगनयनी सीता की तरफ ऐसे झपटी जैसे कोई बड़ी उल्का रोहिणी तारे पर गिरती है। मौत के फन्दे की तरह झपटती हुई उस राक्षसी को महान बलवान श्रीराम ने रोका और क्रोध के साथ लक्ष्मण से कहा –

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन।
न कार्यः पश्य वैदेहीं कथंचित् सौम्य जीवतीम्।। १६।।
इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम्।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि।। १७।।

हे सौम्य लक्ष्मण! क्रूर और अनार्यों से किसी प्रकार का परिहास नहीं करना चाहिये। देखो सीता किसी प्रकार जीवित बच पायी है। हे पुरुषव्याघ्र! अब तुम इस बदसूरत, ओछी, अत्यन्त मतवाली, बड़े पेट वाली राक्षसी को बदसूरत बना दो।

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः।। १८।।
निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम्।। १९।।
सा विरूपा महाघोरा राक्षसी शोणितोक्षिता।
ननाद विविधान् नादान् यथा प्रावृषि तोयदः।। २०।।

जब लक्ष्मण से इस प्रकार कहा गया, तब उस महा बलवान लक्ष्मण ने क्रुद्ध हो कर तलवार निकाल ली और राम के देखते हुए ही उसके नाक और कान काट लिये। नाक और कान कट जाने पर वह भयंकर शूर्पणखा जोर से चिल्ला कर जहाँ से आयी थी वहीं वन में भाग गयी। खून से भरी हुई बदसूरत बनी हुई वह भयानक राक्षसी तरह-तरह की ध्वनियों में इस तरह से चिल्ला रही थी जैसे वर्षाऋतु में बादल गर्जते हैं।

ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं
खरं जनस्थानगतं विरूपिता।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेजसं
पपात भूमौ गगनाद् यथाशनिः।। २१।।

फिर वह कुरूप बनाई हुई शूर्पणखा जनस्थान में रहने वाले, राक्षसों से घिरे हुए, उग्र तेजस्वी भाई खर के समीप जा कर उसी प्रकार भूमि पर गिर पड़ी जैसे आकाश से विद्युत गिरती है।

सत्रहवाँ सर्ग

शूर्पणखा की दुर्दशा देख कर खर का श्रीराम की हत्या के लिये चौदह राक्षस भेजना।

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम्।
भगिनीं क्रोधसंतप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः।। १।।
उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि सम्भ्रमम्।
व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता।। २।।

अपनी उस बहिन को इस प्रकार कुरूप बनाया हुआ, रक्त से भीगा हुआ, भूमि पर पड़ा हुआ देख कर, क्रोध में भर कर खर राक्षस ने उससे पूछा और कहा कि उठो अपनी मूर्च्छा और घबराहट को छोड़ो। मुझे स्पष्ट रूप से बताओ कि किसने तुमको इस प्रकार बदसूरत बना दिया है?

कः कृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम्।
तुदत्यभिसमापन्नमङ्गुल्यग्रेण लीलया।। ३।।
कालपाशं समासज्य कण्ठे मोहान्न बुध्यते।
यस्त्वामद्य समासाद्य पीतवान् विषमुत्तमम्।। ४।।

कौन यह व्यक्ति है, जो भयानक विषवाले काले साँप को, जो कि चुपचाप सामने बैठा हुआ है और निरपराध है, अंगुलियों के अगले भाग से पीड़ा देता हुआ खेल रहा है। वह कौन है जो मृत्यु के फन्दे को गले में डाल कर भी अज्ञान के कारण उसे जानता नहीं है। उसने आज तुम्हारे ऊपर आक्रमण कर उत्तम कोटि का विष पी लिया है।

बलविक्रमसम्पन्ना कामगा कामरूपिणी।
इमामवस्थां नीता त्वं केनान्तकसमागता।। ५।।
कोऽयमेवं महावीर्यस्त्वां निरूपां चकार ह।
नहि पश्याम्हं लोके यः कुर्यान्मम विप्रियम्।। ६।।

तुम तो स्वयं बल और विक्रम से युक्त हो, इच्छा के अनुसार विचरण करने वाली और इच्छा के अनुसार रूप बनाने वाली हो, दूसरे के लिये मृत्यु तुल्य हो, तुम्हें किसने इस अवस्था तक पहुँचाया है? कौन ऐसा महा तेजस्वी है, जिसने तुम्हें कुरूप बनाया है। मैं इस संसार में तो किसी को ऐसा देखता नहीं, जो मेरा अहित कर सके।

अद्याहं मार्गणैः प्राणानादास्ये जीवितान्तगैः।
सलिले क्षीरमासक्तं निष्पिबन्निव सारसः।। ७।।
निहतस्य मया संख्ये शरसंकृत्तमर्मणः।
सफेनं रुधिरं कस्य मेदिनी पातुमिच्छति।। ८।।

आज मैं प्राणान्तकारी बाणों से उसके प्राणों को इस प्रकार खींच लूँगा जैसे सारस जल में मिले हुए दूध को पी लेता है। युद्ध में मेरे बाणों से मर्म स्थानों के काटे जाने के कारण मारे जाने पर किसके भागों वाले रक्त को पृथ्वी पीना चाहती है?

कस्य पत्ररथाः कायान्मांसमुत्कृत्य संगताः।
प्रहृष्टा भक्षयिष्यन्ति निहतस्य मया रणे।। ९।।
तं न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
मयापकृष्टं कृपणं शक्तास्त्रातुं महाहवे।। १०।।

मेरे द्वारा युद्ध में मारे गये किस व्यक्ति के शरीर से पक्षियों के झुंड प्रसन्न हो कर माँस को कुतर-कुतर कर खायेंगे? मेरे द्वारा युद्ध में खींच लिये गये दीन व्यक्ति को देवता, गन्धर्व, राक्षस और पिशाच भी बचा नहीं सकते।

उपलभ्य शनैः संज्ञां तं मे शंसितुमर्हसि।
येन त्वं दुर्विनीतेन वने विक्रम्य निर्जिता।। ११।।
इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः।
ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत्।। १२।।

तुम धीरे-धीरे होश में आ कर मुझे बताओ किस दुष्ट ने वन में विक्रम कर तुम्हें परास्त किया है? विशेष क्रोध में भरे हुए भाई खर का यह वचन सुन कर तब शूर्पणखा ने आँसू बहाते हुए कहा।

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ।। १३।।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।

दो रूप से सम्पन्न, सुकुमार पर महा बली नवयुवक हैं, उनकी आँखें कमल के समान हैं, और उन्होंने काले मृगचर्म तथा चीर वस्त्रों को धारण किया हुआ है। वे दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण नाम के दो भाई हैं।

तरूणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।। १४।।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा।
ताभ्यामुभाभ्यां सम्भूय प्रमदामधिकृत्य ताम्।। १५।।
इमामवस्थां नीताहं यथानाथासती तथा।

उनके बीच में एक सारे आभूषण धारण किये, सौन्दर्यशाली, पतले शरीरवाली नवयुवती भी मैंने देखी है। उस स्त्री के कारण उन दोनों ने मिल कर मुझे अनाथ और कुलटा स्त्रियों की तरह इस दशा को पहुँचाया है।

एष मे प्रथमः कामः कृतस्तत्र त्वया भवेत्।। १६।।
तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे।
इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान्।। १७।।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान्।

यह मेरी पहली इच्छा है, जो तुम्हें पूरी करनी चाहिये कि मैं उस स्त्री का और उन दोनों का रक्त युद्ध में पीऊँ। उसके ऐसा कहने पर क्रुद्ध हुए खर ने मृत्यु के समान भयानक और महा बली चौदह राक्षसों को आदेश दिया।

मानुषौ शस्त्रसम्पन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ।। १८।।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह।
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ।। १९।।
इयं च भगिनी तेषां रुधिरं मम पास्यति।
मनोरथोऽयमिष्टोस्या भगिन्या मम राक्षसाः।
शीघ्र सम्पाद्यतां गत्वा तौ प्रमथ्य स्वतेजसा।। २०।।

चीर वस्त्रों और काले मृगचर्म को धारण करने वाले दो मनुष्य इस भयानक वन में स्त्री के साथ प्रविष्ट हुए हैं। तुम उन दोनों को मार कर उस दुराचारिणी स्त्री के भी प्राण ले लो। यह मेरी बहन उनके रक्त को पीयेगी। हे राक्षसों! यह मेरी बहन का चाहा हुआ मनोरथ है। तुम उन दोनों को अपने तेज से मारकर उसके इस मनोरथ को जल्दी पूरा करो।

अट्ठारहवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा खर के भेजे चौदह राक्षसों का वध।

ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता।
राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया।। १।।
ते रामं पर्णशालायामुपविष्टं महाबलम्।
ददृशुः सीतया सार्धं लक्ष्मणेनापि सेवितम्।। २।।

तब वह भयानक शूर्पणखा श्रीराम के आश्रम पर आयी उसने उन राक्षसों को सीता के साथ उन दोनों भाइयों को दिखाया। उन्होंने देखा कि महा बली श्रीराम पर्णशाला में सीता के साथ बैठे हैं और लक्ष्मण उनकी सेवा कर रहे हैं।

तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्तांश्च राक्षसान्।
अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम्।। ३।।
मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः।
इमानस्या वधिष्यामि पदवीमागतानिह।। ४।।

तब श्रीमान राम ने उस राक्षसी को और उन आये हुए राक्षसों को देख कर तेज से देदीप्यमान भाई लक्ष्मण से कहा कि हे सुमित्रानन्दन! तुम एक मुहूर्त के लिये सीता के पास रहो मैं इस राक्षसी के सहायक बने हुए राक्षसों का वध करूँगा।

वाक्यमेतत् ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः।
तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयन्।। ५।।
राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम्।
चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत्।। ६।।

राम के इस वाक्य को सुन कर राम की शक्ति से परिचित लक्ष्मण ने 'अच्छा' कह कर उनकी आज्ञा का पालन किया। राम ने सुवर्ण भूषित अपने महान धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और उन राक्षसों से बोले।

तिष्ठतैवात्र संतुष्टा नोपवर्तितुमर्हथ।
यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः।। ७।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश।
ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः।। ८।।

हे निशाचरों! यदि तुम्हें से सन्तोष हो तो यहीं ठहरो, भागना मत। यदि तुम्हें अपने प्राणों से प्रयोजन है तो लौट जाओ। उनके इस वाक्य को सुन कर वे हाथ में शूल लिये हुए, ब्रह्म हत्यारे चौदह राक्षस क्रुद्ध हो कर बोले।

क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः।
त्वमेव हास्यसे प्राणान् सद्योऽस्माभिर्हतो युधि।। ९।।
इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः।। १०।।

हमारे स्वामी महात्मा खर के क्रोध को उत्पन्न कर, तू ही आज हमारे द्वारा युद्ध में मारा जा कर अपने प्राणों को छोड़ेगा, ऐसा कह कर उन क्रोध में भरे हुए चौदह राक्षसों ने जो आयुधो और तलवारों से तैयार थे, राम के ऊपर आक्रमण कर दिया।

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् सूर्यसंनिभान्।
जग्राह परमक्रुद्धश्चतुर्दश शिलाशितान्।। ११।।
गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान्।
मुमोच राघवो बाणान् वज्रानिव शतक्रतुः।। १२।।

उसके पश्चात परम क्रुद्ध महा तेजस्वी राघव ने शिला पर तेज किये हुए सूर्य के समान जगमगाते हुए चौदह नाराचों को लिया, और धनुष को खींच कर उन राक्षसों को लक्ष्य कर उन्हें ऐसे छोड़ दिया जैसे इन्द्र वज्रों का प्रहार करता है।

ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद् वक्षांसि रुधिरप्लुताः।
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः।। १३।।

तैर्भग्नहृदया भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः।
निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः।। १४।।

वे बाण राक्षसों के हृदयों को तेजी से भेद कर रक्त से भरे हुए उस भूमि पर ऐसे ही गिर पड़े, जैसे बाँबी से साँप निकल कर पड़े हों। वे राक्षस जिनके हृदय छेद दिये गये थे, रक्त से नहाते हुए, विकृत आकृति वाले तथा निष्प्राण हो कर जड़कटे वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़े।

तान् भूमौ पतितान् दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्छिता।
उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्कशोणिता।। १५।।
पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी।
भ्रातुः समीपे शोकार्ता ससर्ज निनदं महत्।
सस्वरं मुमुचे बाष्पं विवर्णवदना तदा।। १६।।

उन राक्षसों को भूमि पर गिरा हुआ देख कर वह राक्षसी क्रोध से मूर्च्छित सी हो कर, खर के समीप जा कर फिर पीड़ित अवस्था में गिर पड़ी। उस समय तक उसका रक्त कुछ सूख गया था, इसलिये वह गोंद से युक्त लता के समान जान पड़ती थी। भाई के समीप वह शोक से पीड़ित हो कर जोर-जोर से हाय-हाय करने लगी और ऊँची आवाज से फूट-फूट कर रोने लगी। उसका मुख फीका पड़ गया था और वह आँसू बहा रही थी।

उन्नीसवाँ सर्ग

शूर्पणखा द्वारा पुनः खर को राम के विरूद्ध उकसाना।

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः।
उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम्।। १।।
मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाः पिशिताशनाः।
त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः।। २।।
भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः।
हन्यमाना न हन्यन्ते न न कुर्युर्वचो मम।। ३।।

उस शूर्पणखा को जो अनर्थ के लिये उसके पास आयी थी, पुनः अपने सामने गिरती हुई देख कर क्रोध से स्पष्ट वाणी में पुनः उससे बोला कि मैंने तो माँसाहारी शूरवीर राक्षस, तेरे लिये भेजे थे फिर तू क्यों रोती है? वे राक्षस मेरे भक्त, मुझसे प्रेम करने वाले और सदा मेरे हितकारी थे। वे किसी के मारने पर भी नहीं मारे जा सकते और वे मेरी बात पूरी न करें यह हो नहीं सकता।

किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः।
हा नाथेति विनर्दन्ती सर्पवच्चेष्टसे क्षितौ।। ४।।
अनाथवद् विलपसि किं नु नाथे मयि स्थिते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा मैवं वैक्लव्यं त्यज्यतामिति।। ५।।
इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता।
विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत्।। ६।।

फिर कौन सा कारण है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ, जिसके कारण हा नाथ ऐसा डकारती हुई, पृथिवी पर साँप के समान लोट रही हो। मेरे जैसे स्वामी के रहते हुए तू क्यों अनाथ के समान हो रही है? उठो, उठो, ऐसा मत करो, घबराहट छोड़ दो। उस दुर्धर्ष राक्षसी को ऐसा कह कर जब खर ने सान्त्वना दी, तब वह अपने आँसू भरे नेत्रों को पौंछ कर भई खर से बोली।

प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश।
निहन्तुं राघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम्।। ७।।
ते तु रामेण सामर्षाः शूलपट्टिशपाणयः।
समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः।। ८।।

तुमने वे चौदह शूरवीर राक्षस मेरे प्रिय के लिये लक्ष्मण सहित उस भयानक राम को मारने के लिये भेजे थे। उन क्रोध में भरे हुए और हाथों में शूल और पट्टिश आदि शस्त्र लिये हुए सारे राक्षसों को राम ने युद्ध में, मर्मभेदी बाणों के द्वारा मार दिया।

मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च।
रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वास्ति निशाचर।। ९।।
दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम्।
यदि राममित्रघ्नं न त्वमद्य वधिष्यसि।। १०।।
तव चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा।

अब यदि तुम्हें मेरे और उन राक्षसों पर दया आती है, हे राक्षस! यदि राम से लड़ने की तुममें शक्ति और तेज है, तो दण्डकारण्य में रहने वाले राक्षसों के लिये कण्टक राम को मार दो। शत्रुओं को मारने वाले राम को यदि तुम आज नहीं मारोगे तो तुम्हारे ही आगे मैं अपने प्राणों को छोड़ दूँगी। क्योंकि मेरी प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी है।

मानुषौ तौ न शक्रोषि हन्तुं वै रामलक्ष्मणौ।। ११।।
निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशस्त्विह।
रामतेजोऽभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि।। १२।।
स हि तेजःसमायुक्तो रामो दशरथात्मजः।
एवं विलप्य बहुशो राक्षसी प्रदरोदरी।
भ्रातुः समीपे शोकार्ता नष्टसंज्ञा बभूव ह।। १३।।

यदि तुम उन दोनों मनुष्यों राम और लक्ष्मण को नहीं मार सकते तो बेजान और कम शक्ति वाले तुम्हारा यहाँ रहना कैसे हो सकता है, फिर तो तुम राम के तेज से परास्त हो कर जल्दी ही नष्ट हो जाओगे। क्योंकि दशरथ का पुत्र राम बड़ा तेजस्वी है। वह गुफा के समान गहरे पेट वाली राक्षसी इस प्रकार बहुत तरह से विलाप कर शोक से पीड़ित हो भाई के सामने मूर्च्छित हो गई।

बीसवाँ सर्ग

चौदह हजार राक्षसों के साथ खर, दूषण का पंचवटी की तरफ प्रस्थान।

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पनख्या खरस्ततः।
उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः।। १।।
बाष्पः संधार्यतामेष सम्भ्रमश्च विमुच्यताम्।
अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम्।। २।।

इस प्रकार शूर्पणखा के द्वारा तिस्कार किये जाने पर शूरवीर खर ने राक्षसों के बीच अत्यधिक कठोर वाणी में कहा कि तुम कि तुम अपने आयुधों को रोको और अपनी घबराहट को दूर करो। मैं राम को उसके भाई के साथ मृत्यु के घर भेजता हूँ।

परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य भूतले।
रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि।। ३।।
सम्प्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम्।
प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद् भ्रातरं रक्षसां वरम्।। ४।।

हे राक्षसी! आज मेरे फरसे के द्वारा मारे गये निर्जीव हो कर भूमि पर पड़े हुए राम के गर्म खून को तू पीयेगी। खर के मुख से निकले हुए वचनों को सुन कर शूर्पणखा प्रसन्न हुई और राक्षसों में श्रेष्ठ उस भाई खर की मूर्खतावश पुनः प्रशंसा करने लगी।

तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः।
अब्रवीद् दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा।। ५।।
चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम्।
रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम्।। ६।।
नीलजीमूतवर्णानां लोकहिंसाविहारिणाम्।
सर्वोद्योगमुदीर्णानां रक्षसां सौम्य कारय।। ७।।

उसके द्वारा पहले तिरस्कृत और फिर उसके द्वारा प्रशंसित खर ने फिर अपने दूषण नाम के सेनापति से कहा कि मेरे मन के अनुसार चलने वाले, भयानक वेगवाले, युद्ध में पीछे न लौटने वाले, काले बादलों के समान रंग वाले, लोगों की हिंसा में आनन्द लेने वाले, युद्ध में सारे प्रयत्नों से आगे बढ़ने वाले चौदह हजार राक्षसों को तैयार कराओ।

उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च।
शरांश्च चित्रान् खड्गांश्च शक्तीश्च विविधाः शिताः।। ८।।
अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम्।
वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद।। ९।।
इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम्।
सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः।। १०।।

हे सौम्य! जल्दी मेरे रथ को यहाँ मँगवाओ। उसमें बहुत सारे धनुष, बाणों, विचित्र प्रकार के खड्गों को, और अनेक प्रकार की तीक्ष्ण शक्तियों को रख दो। हे रणकोविद! मैं इस दुर्विनीत राम के वध के लिये महात्मा पुलस्त्य वंशियों की सेना के आगे चलना चाहता हूँ। उसके ऐसा कहने पर दूषण ने सूर्य के समान प्रकाशित महान रथ को अच्छे चितकबरे घोड़ों से युक्त कर खर को उसकी सूचना दी।

खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मायुधध्वजम्।
निर्यातेत्यब्रवीत् प्रेक्ष्य दूषणः सर्वराक्षसान्।। ११।।
ततस्तद् राक्षसं सैन्यं घोरचर्मायुधध्वजम्।
निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम्।। १२।।

खर और दूषण ने उस महान सेना को रथ, ढाल, अस्त्र शस्त्र और ध्वजों से युक्त देख कर निकलो, यह आदेश दिया। तब भयानक ढाल, शस्त्रों और ध्वजों से युक्त हो कर राक्षसों की सेना बहुत गर्जना करती हुई तेजी से जन स्थान से बाहर निकली।

तांस्तु निर्धावतो दृष्ट्वा राक्षसान् भीमदर्शनान्।
खरस्याथ रथः किंचिज्जगाम तदनन्तरम्।। १३।।
ततस्ताञ्छबलानश्वांस्तप्तकाञ्चनभूषितान् ।
खरस्य मतमाज्ञाय सारथिः पर्यचोदयत्।। १४।।

उन भयानक राक्षसों को आक्रमण के लिये जाता हुआ देख कर उनके कुछ पीछे खर का रथ भी चल दिया। तब तपे हुए स्वर्ण से भूषित उन चितकबरे घोड़ो को सारथी ने खर का आदेश पा कर हाँका।

इक्कीसवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता सहित लक्ष्मण को पर्वत की गुफा में भेजना और युद्ध के लिये उद्यत होगा।

आश्रमं प्रतियाते तु खरे खरपराक्रमे।
प्रजानामहितान् दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।। १।।
रक्षसां नर्दतां घोरः श्रूयतेऽयं महाध्वनिः।
आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः।। २।।
अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता।
आपदं शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता।। ३।।

भयानक पराक्रमी खर ने जब राम के आश्रम की तरफ प्रयाण किया, तब प्रजा के अहित की सूचना देने वाले लक्षणों को देख कर राम ने लक्ष्मण से कहा कि गर्जते हुए राक्षसों की महान ध्वनि सुनाई दे रही है और क्रूर कर्म करने वाले राक्षसों द्वारा बजाई जाने वाली भेरियों की भयंकर आवाज भी सुनाई दे रही है। कल्याण चाहने वाले विद्वान पुरुष को चाहिये कि विपत्ति की शंका होने पर उसके आने से पहले ही उसके लिये उपाय कर ले।

तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः।
गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम्।। ४।।
प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम्।। ५।।
त्वं हि शूरश्च बलवान् हन्या एतान् न संशयः।
स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान्।। ६।।

इसलिये तुम धनुष बाण धारण कर, सीता को ले कर पर्वत की उस दुर्गम और पेड़ों से ढकी हुई गुफा में चले जाओ। हे वत्स! मैं तुम्हारे द्वारा इस बात का विरोध करना नहीं चाहता। मैं अपने चरणों की शपथ दिला कर कहता हूँ कि देर मत करो। तुम चले जाओ। इसमें कोई संशय नहीं है कि तुम शूरवीर और बलवान हो। इन सबको मार सकते हो। पर इन सारे राक्षसों को मैं स्वयं ही मारना चाहता हूँ।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत्।। ७।।
तस्मिन् प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया।
हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत्।। ८।।
स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः।
बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः।। ९।।

राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर लक्ष्मण धनुष बाण ले कर सीता के साथ उस दुर्गम गुफा में चले गये। सीता के साथ लक्ष्मण के गुफा में प्रवेश करने पर श्रीराम ने बड़े हर्ष की बात है कि लक्ष्मण चले गये, यह कह कर कवच धारण किया। उस अग्नि के समान प्रदीप्त कवच को धारण कर राम अँधेरे में ऊपर को उठती हुई महान अग्नि के समान प्रतीत होने लगे।

स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान्।
सम्बभूवास्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः।। १०।।
ततो गम्भीरनिर्ह्रादं घोरचर्मायुधध्वजम्।
अनीकं यातुधानानां समन्तात् प्रत्यपद्यत।। ११।।

वह तेजस्वी राम, तब बाणों को हाथ में ले कर और महान धनुष को धारण कर, प्रत्यंचा की टंकार से दिशाओं को गुँजाते हुए तैयार हो कर खड़े हो गये। तब गम्भीर गर्जना करती हुई, भयानक, ढाल, शस्त्रों और ध्वजाओं से युक्त राक्षसों की वह सेना श्री राम के सामने आ गयी।

तच्चानीकं महावेगं रामं समनुवर्तत।
धृतनानाप्रहरणं गम्भीरं सागरोपमम्।। १२।।
रामोऽपि चारयंश्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः।
ददर्श खरसैन्यं तद् युद्धायाभिमुखो गतः।। १३।।
वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान्।
क्रोधमाहारयत् तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम्।। १४।।

तब गहरे सागर के समान विस्तृत और नाना प्रकार के शस्त्रों को धारण करने वाली, वह सेना बड़े वेग से राम की तरफ चली। युद्ध के विद्वान राम ने भी सब तरफ अपनी निगाहें घुमाते हुए खर की सेना का निरीक्षण किया और उसका सामना करने के लिये, आगे की तरफ बढ़ गये। अपने भयानक धनुष को खींच कर और तरकस से बाणों को निकाल कर उन्होंने सारे राक्षसों के वध के लिये क्रोध को प्रकट किया।

बाईसवाँ सर्ग

राक्षसों का श्रीराम पर आक्रमण और श्रीराम द्वारा राक्षसों का संहार।

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम्।
ददर्शाश्रममागम्य खरः सह पुरःसरैः।। १।।
तं दृष्ट्वा सगुणं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम्।
रामस्याभिमुखं सूतं चोद्यतामित्यचोदयत्।। २।।

खर ने अपने साथियों के साथ आश्रम के पास पहुँच कर, शत्रुओं का नाश करने वाले क्रुद्ध राम को वहाँ देखा। उन्हें देख कर अपने तीव्र स्वर वाले प्रत्यंचायुक्त धनुष को उठा कर उसने सारथी को कहा कि मेरा रथ राम के सम्मुख ले चलो।

स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान् समचोदयत्।
यत्र रामो महाबाहुरेको धुन्वन् धनुः स्थितः।। ३।।
तं तु निष्पतितं दृष्ट्वा सर्वतो रजनीचराः।
मुञ्चमाना महानादं सचिवाः पर्यवारयन्।। ४।।

खर की आज्ञा से सारथी ने घोड़ों को हाँका और उधर रथ को ले गया जहाँ महाबाहु राम धनुष को टंकारते हुए अकेले खड़े थे। खर को राम के समीप देख कर उसके मन्त्री महान गर्जना करते हुए उसे सब तरफ से घेर कर खड़े हो गये।

स तेषां यातुधानानां मध्ये रथगतः खरः।
बभूव मध्ये ताराणां लोहिताङ्ग इवोदितः।। ५।।
ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम्।
अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः।। ६।।

उन राक्षसों के बीच रथ पर बैठा हुआ खर तारों के बीच में मंगल के समान लग रहा था। तब खर नें युद्ध में अद्वितीय बलशाली राम को एक सहस्र बाणों से पीड़ित कर बड़े जोर से गर्जना की।

ततस्तं भीमधन्वानं क्रुद्धाः सर्वे निशाचराः।
रामं नानाविधैः शस्त्रैरभ्यवर्षन्त दुर्जयम्।। ७।।
तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः।
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः।। ८।।

तब क्रोध में भरे हुए सारे राक्षसों ने उन भयानक धनुष वाले और दुर्जय राम पर अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की वर्षा की। राम ने राक्षसों के द्वारा छोड़े हुए उन शस्त्रों को उसी प्रकार व्यर्थ कर दिया, जैसे समुद्र नदियों के प्रवाह को कर देता है।

स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे।
रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः।। ९।।
ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः।
ससर्ज निशितान् बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः।। १०।।
दुरावारान् दुर्विषहान् कालपाशोपमान् रणे।

यद्यपि उन भयानक शस्त्रास्त्रों के प्रहार से उनका शरीर क्षत विक्षत हो गया था, पर फिर भी श्रीराम ने व्यथा अनुभव नहीं की। जैसे जगमगाती हुई बहुत सी बिजलियों के प्रहार से महान पर्वत विचलित नहीं होता। राम ने तब क्रुद्ध हो कर अपने धनुष को खींच कर गोल बना दिया और उन्होंने सैकड़ों तथा हजारों तीक्ष्ण बाणों को छोड़ा। उनके वे बाण युद्ध में कठिनाई से रोके जा सकने वाले और कठिनाई से सहन किये जा सकने वाले और मृत्यु के बन्धन के समान थे।

असंख्येयास्तु रामस्य सायकाश्चापमण्डलात्।। ११।।
विनिष्पेतुरतीवोग्रा रक्षःप्राणापहारिणः।
तैर्धनूंषि ध्वजाग्राणि चर्माणि कवचानि च।। १२।।
बाहून् सहस्ताभरणानूरून् करिकरोपमान्।
चिच्छेद रामः समरे शतशोऽथ सहस्रशः।। १३।।

राम के मण्डलीकृत धनुष से असंख्य और बड़े भयानक राक्षसों के प्राण लेने वाले बाण छूटने लगे। उन बाणों से राम ने उनके धनुष, ध्वजाओं के अग्रभाग, ढाल, कवच, आभूषणों सहित बाहें, हाथी की सूँड के समान जाँघे सैकड़ों और हजारों की संख्या में छिन्न कर दिये।

ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः।
भीममार्तस्वरं चक्रुश्छिद्यमाना निशाचराः।। १४।।
तत्सैन्यं विविधैर्बाणैरर्दितं मर्मभेदिभिः।
न रामेण सुखं लेभे शुष्कं वनमिवाग्निना।। १५।।

तब श्रीराम के नालीक, नाराच और तीखे अग्रभाग वाले विकर्णी नामक बाणों से छिन्न-भिन्न होते हुए राक्षस भयानक रूप से आर्तनाद करने लगे। अनेक प्रकार के मर्मभेदी बाणों से पीड़ित होती हुई वह सेना सूखे वन में लगी आग के समान सुख को नहीं प्राप्त कर पा रही थी।

केचिद् भीमबलाः शूराः प्रासाञ्शूलान् परश्वधान्।
चिक्षिपुः परमक्रुद्धा रामाय रजनीचराः।। १६।।
तेषां बाणैर्महाबाहुः शस्त्राण्यावार्य वीर्यवान्।
जहार समरे प्राणांश्चिच्छेद च शिरोधरान्।। १७।।

कुछ भयानक बलवाले शूरवीर राक्षसों ने बहुत क्रोध में भर कर राम के ऊपर प्रास, शूल और फरसे फेंके। पर उन महाबाहु तेजस्वी श्रीराम ने उनके शस्त्रों को रोक कर उनके गले काट लिये और प्राणों को हर लिया।

ते छिन्नशिरसः पेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः।
अवशिष्टाश्च ये तत्र विषण्णास्ते निशाचराः।। १८।।
खरमेवाभ्यधावन्त शरणार्थं शराहताः।
तान् सर्वान् धनुरादाय समाश्वास्य च दूषणः।। १९।।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धः क्रुद्धं क्रुद्ध इवान्तकः।

अपने ढाल और धनुषों तथा सिरों के कट जाने पर वे राक्षस वहीं गिर पड़े। जो कुछ बचे थे वे राम के बाणों से घायल और विषाद में डूब कर शरण के लिये खर के पास दौड़ कर गये। तब दूषण उन सबको ढाढस बँधा कर और क्रोध में भर कर, धनुष को उठा कर, मृत्यु के समान उन क्रुद्ध श्रीराम की तरफ दौड़ा।

निवृत्तास्तु पुनः सर्वे दूषणाश्रयनिर्भयाः।। २०।।
राममेवाभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः।
शूलमुद्गरहस्ताश्च पाशहस्ता महाबलाः।। २१।।
सृजन्तः शरवर्षाणि शस्त्रवर्षाणि संयुगे।

दूषण का आश्रय पा कर निर्भय हुए सारे राक्षस फिर निर्भय हो कर साल, ताल के वृक्ष तथा पत्थरों को हथियार बना कर राम की तरफ दौड़े। उन्होंने हाथों में शूल, मुदगर और पाश ले रखे थे। वे महा बलशाली थे। वे युद्ध में बाणों की और शस्त्रों की वर्षा कर रहे थे।

द्रुमवर्षाणि मुञ्चन्तः शिलावर्षाणि राक्षसाः।। २२।।
तद् बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्।
रामस्यास्य महाघोरं पुनस्तेषां च रक्षसाम्।। २३।।

राक्षस लोग वृक्षों की और शिलाओं की वर्षा कर रहे थे। श्रीराम का और राक्षसों का वह बड़ा भयानक, रोंगटे खड़े करने वाला, अद्भुत और तुमुल युद्ध हो रहा था।

ते समन्तादभिक्रुद्धा राघवं पुनरार्दयन्।
ततः सर्वा दिशो दृष्ट्वा प्रदिशश्च समावृताः।। २४।।
राक्षसैः सर्वतः प्राप्तैः शरवर्षाभिरावृतः।
स कृत्वा भैरवं नादमस्त्रं परमभास्वरम्।। २५।।
समयोजयद् गान्धर्वं राक्षसेषु महाबलः।
ततः शरसहस्राणि निर्ययुश्चापमण्डलात्।। २६।।

उन क्रुद्ध राक्षसों ने सब तरफ से राम को पीड़ित किया। तब बाणवर्षा से घिरे हुए राम ने सारी दिशाओं और उपदिशाओं को सब तरफ से आए हुए राक्षसों से भरा हुआ देख कर उन महाबली श्रीराम ने भयानक रूप से गर्जना कर राक्षसों पर दे दीप्यमान गान्धर्व अस्त्र को छोड़ा। उसके बाद राम के मण्डलीकृत धनुष से हजारों बाण छूटे।

नाददानं शरान् घोरान् विमुञ्चन्तं शरोत्तमान्।
विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः।। २७।।
युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम्।
युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत्।। २८।।
निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः।
तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः।। २९।।

राम के बाणों से पीड़ित वे राक्षस राम को भयानक बाणों को लेते हुए, धनुष को खींचते हुए, और उत्तम बाणों को छोड़ते हुए देख ही नहीं पाते थे। एक साथ गिरते हुए, एक साथ मारे हुए, और एक ही साथ गिरे हुए उन राक्षसों से वह भूमि अत्यधिक भर गयी। यहाँ-वहाँ सब जगह वे हजारों राक्षस मारे हुए, गिराये हुए, क्षीण हुए, छिन्न-भिन्न किये हुए और विदीर्ण किये हुए दिखायी देते थे।

सोष्णीषैरुत्तमाङ्गैश्च साङ्गदैर्बाहुभिस्तथा।
ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः।। ३०।।
रामेण बाणाभिहतैर्विच्छिन्नैः शूलपट्टिशैः।। ३१।।
खड्गैः खण्डीकृतैः प्रासैर्विकीर्णैश्च परश्वधैः।
चूर्णिताभिः शिलाभिश्च शरैश्चित्रैरनेकशः।
विच्छिन्नैः समरे भूमिर्विस्तीर्णाभूद् भयंकरा।। ३२।।

राम के बाणों से कटे हुए पगड़ी सहित सिरों, अंगदसहित भुजाओं, तरह-तरह के अलंकारों से युक्त कटी हुई बाहों तथा जाँघों से, छत्र चवरों, तरह-तरह के ध्वजों से, कटे हुए शूलों और पट्टिशों से, टुकड़ा की हुई तलवारों से, बिखरे हुए प्रासों से, फरसों से, चूरा की हुई शिलाओं से और अनेक प्रकार के बाणों से उस युद्ध में भूमि भर गयी थी और भयानक लग रही थी।

तेईसवाँ सर्ग

श्रीराम का दूषण सहित चौदह सहस्र राक्षसों का वध।

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं विलोक्य च।
संदिदेश महाबाहुर्भीमवेगान् दुरासदान्॥ १॥
राक्षसान् पञ्चसाहस्रान् समरेष्वनिवर्तिनः।
ते शूलैः पट्टिशैः खड्गैः शिलावर्षैर्द्रुमैरपि॥ २॥
शरवर्षैरविच्छिन्नं ववर्षुस्तं समन्ततः।

दूषण ने जब अपनी सेना को मारा हुआ देखा तो उस महा बाहु ने भयानक वेग वाले दुर्धर्ष और युद्ध में पीछे न हटने वाले पाँच हजार राक्षसों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। उन राक्षसों ने तब श्रीराम के ऊपर चारों तरफ से शूल पट्टिश, शिलाओं, वृक्ष-शाखाओं और बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी।

तद् द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत्॥ ३॥
प्रतिजग्राह धर्मात्मा राघवस्तीक्ष्णसायकैः।
प्रतिगृह्य च तद् वर्षं निमीलित इवर्षभः॥ ४॥
रामः क्रोधं परं लेभे वधार्थं सर्वरक्षसाम्।

तब धर्मात्मा राघव ने वृक्ष-शाखाओं और पत्थरों की उस महान प्राणों का हरण करने वाली वर्षा को अपने तीखे बाणों द्वारा रोका। उस शस्त्र वर्षा को रोक कर, आँख बन्द कर डट कर खड़े हुए साँड की तरह, राम ने सारे राक्षसों के लिये महान क्रोध को धारण किया।

ततः क्रोधसमाविष्टः प्रदीप्त इव तेजसा॥ ५॥
शरैरभ्यकिरत् सैन्यं सर्वतः सहदूषणम्।
ततः सेनापतिः क्रुद्धो दूषणः शत्रुदूषणः॥ ६॥
शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवारयत्।

तब क्रोध से भरे हुए और तेज से जलते हुए के समान उन्होंने दूषण सहित सारी सेना को ढक दिया। तब क्रोध में भरे हुए शत्रु दूषण, सेनापति दूषण ने वज्र के समान बाणों से श्रीराम को रोका।

ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद धनुः॥ ७॥
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
हत्वा चाश्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः॥ ८॥
शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि।

तब राम ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर, एक क्षुर नाम के बाण से उसके विशाल धनुष को काट दिया और चार बाणों से चारों घोड़ों को मार दिया। घोड़ों को मार कर एक अर्धचंद्र बाण से सारथी का सिर उड़ा दिया और तीन बाण दूषण की छाती में मारे।

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः॥ ९॥
जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं रोमहर्षणम्।
आयसैः शङ्कुभिस्तीक्ष्णैः कीर्णं परवसोक्षितम्॥ १०॥
वज्राशनिसमस्पर्शं परगोपुरदारणम्।

धनुष के टूटने, घोड़ों और सारथी के मारे जाने पर बिना रथ के उस दूषण ने पर्वत की चोटी के समान रोमहर्षी परिघ को हाथ में ले लिया, वह लोहे की तीखी कीलों से भरा हुआ था, शत्रुओं की चरबी उसमें लपेटी हुई थी। उसका स्पर्श हीरे और वज्र के समान कठोर था, वह शत्रुओं के नगर द्वार भी तोड़ सकता था।

तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे॥ ११॥
दूषणोऽभ्यपतद् रामं क्रूरकर्मा निशाचरः।
तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः॥ १२॥
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ।
कराभ्यां च विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः॥ १३॥
विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः।

वह क्रूरकर्मा राक्षस दूषण बड़े साँप के समान उस परिघ को ले कर युद्ध में श्रीराम के ऊपर टूट पड़ा। तब राम ने उस आक्रमण करते हुए दूषण की आभूषण सहित दोनों भुजाओं को काट दिया। तब उन कटे हुए हाथों के साथ दूषण भी भूमि पर ऐसे गिर पड़ा, जैसे दोनों दाँतों को उखाड़ लिये जाने पर महान मस्त हाथी गिर पड़ता है।

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रय: सेनाग्रयायिन:।। १४।।
संहत्याभ्यद्रवन् रामं मृत्युपाशावपाशिता:।
महाकपाल: स्थूलाक्ष: प्रमाथी च महाबल:।। १५।।

इसी बीच तीन सेनापति इकट्ठे हो कर मानो मृत्यु के बन्धन से बँधे हुए, जिनके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलवान प्रमाथी थे, राम की तरफ दौड़े।

महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षस:।
स्थूलाक्ष: पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च परश्वधम्।। १६।।
दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघव: सायकै: शितै:।
तीक्ष्णाग्रै: प्रतिजग्राह सम्प्राप्तानतिथीनिव।। १७।।

महाकपाल राक्षस ने विशाल शूल लिया हुआ था, स्थूलाक्ष के पास पट्टिश था और प्रमाथी के पास परशु था। उन्हें आक्रमण करते देख राम ने तीखी नोक वाले तीक्ष्ण बाणों से उनका आये हुए अतिथि के समान स्वागत किया।

महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दन:।
असंख्येयैस्तु बाणौघै: प्रममाथ प्रमाथिनम्।। १८।।
स्थूलाक्षस्याक्षिणी स्थूले पूरयामास सायकै:।

श्रीराम ने महाकपाल के सिर को उड़ा दिया, प्रमाथी को असंख्य बाण समूह से मथ डाला और स्थूलाक्ष की मोटी आँखों को बाणों से भर दिया।

स पपात हतो भूमौ विटपीव महाद्रुम:।। १९।।
दूषणस्यानुगान् पञ्चसाहस्रान् कुपित: क्षणात्।
हत्वा तु पञ्चसाहस्रैरनयद् यमसादनम्।। २०।।

तब वह तीनों राक्षसों का समूह अनेक शाखाओं वाले महान वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ा। इसके पश्चात क्रुद्ध श्रीराम ने दूषण के साथ चलने वाले पाँच हजार राक्षसों को पाँच हजार बाणों से थोड़ी देर में मृत्यु के घर पहुँचा दिया।

दूषणं निहतं श्रुत्वा तस्य चैव पदानुगान्।
व्यादिदेश खर: क्रुद्ध: सेनाध्यक्षान् महाबलान्।। २१।।
अयं विनिहत: संख्ये दूषण: सपदानुग:।
महत्या सेनया सार्धं युद्ध्वा रामं कुमानुषम्।। २२।।
शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वं सर्वराक्षसा:।

दूषण और उसके साथी सैनिकों को मारा गया सुन कर क्रुद्ध खर ने अपने महाबली सेनापतियों को आदेश दिया कि वह दूषण अपने साथी सैनिकों के साथ मारा गया है, इसलिये तुम सारे राक्षस बड़ी सेना के साथ युद्ध करो और अनेक प्रकार के शस्त्रों के द्वारा, उस दुष्ट मनुष्य राम को मार दो।

एवमुक्त्वा खर: क्रुद्धो राममेवाभिदुद्रुवे।। २३।।
श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहंगम:।
दुर्जय: करवीराक्ष: परुष: कालकार्मुक:।। २४।।
हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशन:।
द्वादशैते महावीर्या बलाध्यक्षा: ससैनिका:।। २५।।
राममेवाभ्यधावन्त विसृजन्त: शरोत्तमान्।

ऐसा कह कर क्रोध में भरे हुए खर ने राम के ऊपर आक्रमण किया। उसके श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य, रुधिराशन, ये बारह महातेजस्वी सेनापति भी सैनिकों के साथ उत्तम बाणों की वर्षा करते हुए राम की तरफ दौड़े।

रक्षसां तु शतं राम: शतेनैकेन कर्णिना।। २६।।
सहस्रं तु सहस्रेण जघान रणमूर्धनि।
तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासना: ।। २७।।
निपेतु: शोणितादिग्धा धरण्यां रजनीचरा:।

उस युद्ध के मुहाने पर तब श्रीराम ने कर्णिनामक सौ बाणों से सौ राक्षसों को और हजार दूसरे बाणों से एक हजार राक्षसों का वध कर दिया। वे राक्षस राम के उन बाणों के द्वारा कवचों के टूट जाने पर, आभूषणों के बिखर जाने पर, धनुषों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर खून से लिपटे हुए भूमि पर गिर पड़े।

तैर्मुक्तकेशै: समरे पतितै: शोणितोक्षितै:।। २८।।
विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदि: कुशैरिव।
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।। २९।।
हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना।
तस्य सैन्यस्यसर्वस्य खर: शेषो महारथ:।
राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदन:।। ३०।।

खून से भरे हुए और बिखरे हुए बालों वाले युद्ध में गिरे हुए उन राक्षसों के कारण सारी भूमि कुशों से बिछायी हुई एक बड़ी वेदी के समान प्रतीत होने लगी। उस समय भयानक कार्य करने वाले चौदह हजार राक्षसों को अकेले पैदल श्रीराम ने ही समाप्त कर दिया। उस सारी सेना में तब महारथी खर और त्रिशिरा नाम का राक्षस ही बचे। उस तरफ शत्रुओं को नष्ट करने वाले श्रीराम युद्ध के लिये डटे हुए थे।

ततस्तु तद्भीमबलं महाहवे
समीक्ष्य रामेण हतं बलीयसा।
रथेन रामं महता खरस्ततः
समाससादेन्द्र इवोद्यताशनिः।। ३१।।

तब उस भयानक सेना को उस महान युद्ध में बलवान राम के द्वारा मारा हुआ देख कर खर एक विशाल रथ पर हाथ में वज्र लिये इन्द्र के समान राम से युद्ध करने के लिये आया।

चौबीसवाँ सर्ग

त्रिशिरा का वध।

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः।
राक्षसस्त्रिशिरा नाम संनिपत्येदमब्रवीत्।। १।।
मां नियोजय विक्रान्तं त्वं निवर्तस्व साहसात्।
पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम्।। २।।

खर को राम के सामने जाते देख सेनापति त्रिशिरा नाम का राक्षस उसे प्रणाम कर यह बोला कि आप मुझ पराक्रमी को युद्ध में लगाइये और आप अभी यह साहस मत कीजिये। आप महाबाहु राम को युद्ध में मारा हुआ देखिये।

प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चाहमालभे।
यथा रामं वधिष्यामि वधार्हं सर्वरक्षसाम्।। ३।।
अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम।
विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव।। ४।।
प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि।
मयि वा निहते रामं संयुगाय प्रयास्यसि।। ५।।

मैं आपके सामने अपने शस्त्रों की शपथ खा कर सत्य कहता हूँ कि सारे राक्षसों के लिये वध के योग्य राम को मैं अवश्य मार दूँगा। युद्ध में मैं या तो इसे मार दूँगा, या यह मेरी मृत्यु बनेगा। आप युद्ध के उत्साह को छोड़ कर मुहूर्त के लिये निर्णायक बन जाइये। या तो राम के मरने पर प्रसन्न हो कर जनस्थान में जायेंगे या मेरे मारे जाने पर आप राम से युद्ध के लिये आक्रमण करिये।

आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः।
धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन् सायकाञ्शितान्।। ६।।
ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः।
अमर्षी कुपितो रामः संरब्ध इदमब्रवीत्।। ७।।

राम ने तब त्रिशिरा को आते हुए देख कर धनुष से तीखे बाणों को छोड़ते हुए उसे रोका। तब त्रिशिरा ने राम के सिर में तीन बाणों से प्रहार किया। तब उसके इस कार्य को न सहन करते हुए क्रोध में भर कर आदेश के साथ बोले।

अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम्।
पुष्पैरिव शरैर्योऽहं ललाटेऽस्मि परिक्षतः।। ८।।
ममापि प्रतिगृह्णीष्व शरांश्चापगुणाच्च्युतान्।
एवमुक्त्वा सुसंरब्धः शरानाशीविषोपमान्।। ९।।
त्रिशिरोवक्षसि क्रुद्धो निजघान चतुर्दश।

अरे बहादुरी प्रकट करने में शूर इस राक्षस का इतना ही बल है जो इन फूल के समान बाणों से मेरे सिर में प्रहार किया है। अब मेरे भी धनुष की प्रत्यंचा से छूटे हुए बाणों को ग्रहण करो। ऐसा कह कर उन्होंने क्रोध में भर कर विषधर सर्पों के समान भयंकर चौदह बाणों को त्रिशिरा की छाती में मारा।

चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः संनतपर्वभिः।। १०।।
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः।
अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत्।। ११।।
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम्।
ततो हतरथात् तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम्।
चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः।। १२।।

फिर उन्होंने चार झुकी गाँठों वाले बाणों से उसके चारों घोड़ों को गिरा दिया और आठ बाणों से उन तेजस्वी ने सारथी को रथ की बैठक में ही गिरा दिया। राम ने उसके ध्वज को भी काट दिया। जब वह राक्षस टूटे रथ से कूद कर भागने लगा तब राम ने बाणों से उसके हृदय को भी छेद कर उसे बेजान कर दिया।

पच्चीसवाँ सर्ग

खर के साथ श्रीराम का घोर युद्ध।

स दृष्ट्वा राक्षसं सैन्यमविषह्यं महाबलम्।
हतमेकेन रामेण दूषणस्त्रिशिरा अपि।। १।।
आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा।

खर ने जब राक्षसों की न सहन करने योग्य महा बलशाली सेना को और दूषण तथा त्रिशिरा को अकेले राम के द्वारा विनष्ट किया हुआ देखा तो उसने राम पर ऐसे आक्रमण किया जैसे नमुचि ने इन्द्र पर किया था।

ज्यां विधुन्वन् सुबहुशः शिक्षयास्त्राणि दर्शयन्।। २।।
चचार समरे मार्गाञ्शरै रथगतः खरः।
हन्तारं सर्वसैन्यस्य पौरुषे पर्यवस्थितम्।। ३।।
परिश्रान्तं महासत्त्वं मेने रामं खरस्तदा।

अपनी शास्त्रास्त्र विद्या के अभ्यास के कारण अनेक प्रकार से प्रत्यंचा को खींचता हुआ, बाणों के द्वारा अस्त्र विद्या का प्रदर्शन करता हुआ, रथ में बैठा हुआ खर वहाँ विभिन्न प्रकार के पैंतरों में विचरण करने लगा। सारी सेना को मारने वाले, अपने पुरूषार्थ में अवस्थित महा तेजस्वी राम को खर ने उस समय थका हुआ समझा।

ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः।। ४।।
आससादाथ तं रामं पतङ्ग इव पावकम्।
ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः।। ५।।
खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन् हस्तलाघवम्।

जैसे पतंगा आग के पास जाये, वैसे ही सूर्य के समान अपने महान रथ से खर राम के समीप गया। तब खर ने अपने हाथों की फुर्ती दिखाते हुए महात्मा राम के बाण सहित धनुष को मुट्ठी की जगह से काट दिया।

स पुनस्त्वपरान् सप्त शरानादाय मर्मणि।। ६।।
निजघान रणे क्रुद्धः शक्राशनिसमप्रभान्।
ततस्तत्प्रहतं बाणैः खरमुक्तैः सुपर्वभिः।। ७।।
पपात कवचं भूमौ रामस्यादित्यवर्चसम्।

इसके बाद उसने फिर सात बाणों को ले कर, क्रोध में भर कर उन इन्द्र के वज्र के समान दीप्यमान बाणों से राम के मर्म स्थानों में आघात किया। खर के द्वारा छोड़े हुए अच्छी गाँठ वाले बाणों से चोट खा कर राम का सूर्य के समान तेजस्वी कवच कट कर भूमि पर गिर पड़ा।

ततो गम्भीरनिर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः।। ८।।
चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्धनुः।
सुमहद् वैष्णवं यत् तदतिसृष्टं महर्षिणा।। ९।।
वरं तद् धनुरुद्यम्य खरं समभिधावत।

तब शत्रुओं को नष्ट करने वाले श्रीराम ने शत्रु के अन्त के लिये गम्भीर ध्वनि वाले दूसरे विशाल धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। महर्षि अगस्त्य ने जो महान वैष्णव धनुष उन्हें दिया था, उसी श्रेष्ठ धनुष को ले कर उन्होंने खर पर आक्रमण किया।

ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः संनतपर्वभिः।। १०।।
चिच्छेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम्।
तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणैः।। ११।।
विव्याध हृदि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोमरैः।
स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिःसृतैः।। १२।।
विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम्।

तब क्रोध में भर कर श्रीराम ने झुकी हुई गाँठों वाले और सुनहरे पंख वाले बाणों से युद्ध स्थल में खर की ध्वजा को काट दिया। तब मर्म स्थानों को जानने वाले, क्रोध में भरे हुए खर ने राम के अंगों और हृदय पर चार बाण मारे, जैसे हाथी पर तोमरों से प्रहार किया जाता है। खर के धनुष से निकले हुए बहुत से बाणों से राम का शरीर विद्ध होने के कारण लहु लुहान हो गया। तब उन्हें बड़ा क्रोध आया।

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः संगृह्य परमहावे।। १३।।
मुमोच परमेष्वासः षट् शरानभिलक्षितान्।
शिरस्येकेन बाणेन द्वाभ्यां बाह्वोरथार्पयत्।। १४।।
त्रिभिश्चन्द्रार्धवक्त्रैश्च वक्षस्यभिजघान ह।

तब धनुधरों में श्रेष्ठ, महा धनुर्धर श्रीराम ने उस महान युद्ध में धनुष को ले कर लक्ष्य निश्चित किये हुए छै बाणों को छोड़ा। उन्होंने एक बाण से खर के सिर में, दो से भुजाओं में और तीन अर्धचंद्राकार बाणों से उसकी छाती में प्रहार किया।

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् भास्करोपमान्।। १५।।
जघान राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान्।
रथस्य युगमेकेन चतुर्भिः शबलान् हयान्।। १६।।
षष्ठेन च शिरः संख्ये चिच्छेद खरसारथेः।

उसके बाद महा तेजस्वी श्रीराम ने क्रुद्ध हो कर शिला पर तेज किये हुए तेरह नाराचों से जो सूर्य के समान जगमगा रहे थे राक्षस को मारा। एक बाण से उन्होंने रथ का जूआ, चार बाणों से उसके चितकबरे घोड़ों को मार दिया, और छठे बाण से खर के सारथी का सिर काट दिया।

त्रिभिस्त्रिवेणून् बलवान् द्वाभ्यामक्षं महाबलः।। १७।।
द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सशरं धनुः।
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव।। १८।।
त्रयोदशेनेन्द्रसमो बिभेदसमरे खरम्।
प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा।। १९।।

शक्तिशाली और महा बलवान राम ने तीन बाणों से रथ के त्रिवेणु को और दो बाणों से रथ के धुरे को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। बारहवें बाण से उन्होंने खर के बाण सहित धनुष को छिन्न कर इन्द्र के समान तेजस्वी राम ने हँसते हुए तेरहवें बाण से खर को युद्ध में घायल कर दिया। जब उसका धनुष टूट गया, घोड़े और सारथी मारे गये, तो वह खर बिना रथ के ही रथ से कूद कर हाथ में गदा ले कर खड़ा हो गया।

छब्बीसवाँ सर्ग

खर और श्रीराम का युद्ध।

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम्।
मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत्।। १।।
पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम्।
अहमासादितो राज्ञा प्राणान् हन्तुं निशाचर।। २।।

खर को बिना रथ के हाथ में गदा ले कर खड़ा हुआ देख कर राम ने पहले कोमल फिर कठोर स्वर में कहा कि घोर पापकर्म करते हुए, संसार के अप्रिय की इच्छा करने वालों के प्राणों को लेने के लिये हे राक्षस मुझे राजा ने भेजा है।

ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः।
तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि।। ३।।
प्रहरस्व यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम।
अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा।। ४।।

तूने दण्डकारण्य में जिन धर्मचारी लोगों को खाया है, आज तू युद्ध में मारा जा कर सेना सहित उनका अनुसरण करेगा। हे कुलाधम! तू जैसी इच्छा हो वैसे ही प्रहार कर ले और यत्न कर ले। आज मैं तेरे सिर को तोड़ कर ताड़ के फल की तरह अवश्य भूमि पर गिराऊँगा।

एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः।
प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन् क्रोधमूर्च्छितः।। ५।।
प्राकृतान् राक्षसान् हत्वा युद्धे दशरथात्मज।
आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि।। ६।।
विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः।
कथयन्ति न ते किंचित् तेजसा चातिगर्विताः।। ७।।

राम के द्वारा ऐसा कहने पर, क्रोध से लाल आँखें करके और क्रोध के ही कारण मूर्च्छित सा हुआ खर हँसता हुआ राम को उत्तर देने लगा। वह बोला कि हे दशरथ के पुत्र! युद्ध में सामान्य राक्षसों को मार कर, अपने आप की जो प्रशंसा के अयोग्य है, क्यों प्रशंसा करते हो? जो नरश्रेष्ठ पराक्रमी और बलवान होते हैं, वे अपने तेज के कारण बड़े घमंड में भर कर कोई भी बात नहीं कहते हैं।

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते।
त्वद्विनाशात् करोम्यद्य तेषामश्रुप्रमार्जनम्।। ८।।
इत्युक्त्वा परमक्रुद्धः स गदां परमाङ्गदाम्।
खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा।। ९।।
तामापतन्तीं महतीं मृत्युपाशोपमां गदाम्।
अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः।। १०।।

तूने चौदह हजार राक्षस मारे हैं, अब मैं तुझे मार कर उन सबके आँसू पोंछूँगा। ऐसा कह कर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए खर ने उस उत्तम वलयों से भूषित गदा को राम के ऊपर प्रज्वलित विद्युत् के समान फैंका। राम ने उस मृत्यु के पाश के समान आती हुई महान गदा को आकाश में ही बहुत से बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया।

सत्ताईसवाँ सर्ग

खर का वध।

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः।
स्मयमान इदं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत्।। १।।
यत् त्वयोक्तं विनष्टानामिदमश्रुप्रमार्जनम्।
राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः।। २।।

धर्म वत्सल राम ने गदा को बाणों से भेद कर मुस्कराते हुए क्रोधयुक्त यह बात कही कि जो तूने कहा था कि मैं मारे हुए राक्षसों के आँसू पोंछूँगा, तेरी वह बात मिथ्या हो गयी।

अद्य ते भिन्नकण्ठस्य फेनबुद्बुदभूषितम्।
विदारितस्य मद्बाणैर्मही पास्यति शोणितम्।। ३।।
तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं वने।
खरो निर्भर्त्सयामास रोषात् खरतरस्वरः।। ४।।
कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये।
कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः।। ५।।

आज मेरे बाणों में तेरे विदीर्ण किये गये शरीर तथा काटे गये गले से निकलते हुए बुलबुलों और फेन से युक्त खून को यह भूमि पीयेगी। उसे इस प्रकार क्रोध भरे स्वर में बोलते हुए श्रीराम को वन में खर क्रोध से और भी कठोर ध्वनि में भर्त्सना करता हुआ बोला। जो लोग मृत्यु के फन्दे में फँस जाते हैं, उनकी छः इन्द्रियाँ व्यर्थ हो जाती हैं और वह कार्य और अकार्य की पहचान नहीं करते।

एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भृकुटिं ततः।
स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः।। ६।।
रणे प्रहरणस्यार्थे सर्वतो ह्यवलोकयन्।
स तमुत्पाटयामास संदष्टदशनच्छदम्।। ७।।
तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनर्दित्वा महाबलः।
रातमुद्दिश्य चिक्षेप हस्तस्त्वमिति चाब्रवीत्।। ८।।

राम से ऐसा कह कर फिर अपनी भौहों को इधर-उधर घुमा कर उस राक्षस ने समीप ही एक शाल के वृक्ष को देखा। युद्ध प्रहार के लिये सब तरफ देखते हुए उसने दाँतों से ओठों को दबा कर उस शाल वृक्ष को उखाड़ लिया। उस वृक्ष को हाथों से उठा कर और गर्जना कर उस महाबली राक्षस ने उसे राम की तरफ फेंक दिया और कहा कि अब तुम मारे गये।

तमापतन्तं बाणौघैश्छित्त्वा रामः प्रतापवान्।
रोषमहारायत् तीव्रं निहन्तुं समरे खरम्।। ९।।
तस्य बाणान्तराद् रक्तं बहु सुस्राव फेनिलम्।
गिरेः प्रस्रवणस्येव धाराणां च परिस्रवः।। १०।।

तब प्रतापी राम ने उस आते हुए वृक्ष को बाणों के समूह से छिन्न कर युद्ध में खर को मारने के लिये अत्यन्त क्रोध को प्रकट किया। उनके बाणों से खर के शरीर से फेन वाला रक्त बहुत मात्रा में बहने लगा। जैसे पर्वत से झरने के जल की धारायें गिर रही हों।

विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे।
मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद् द्रुतम्।। ११।।
तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम्।
अपासर्पद् द्वित्रिपदं किंचित्त्वरितविक्रमः।। १२।।

बाणों से राम ने खर को उस युद्ध में बेचैन कर दिया। वह उस खून की गन्ध से पागल सा हो कर राम की तरफ ही शीघ्रता से दौड़ा। रक्त से भीगे हुए और क्रोध से भरे हुए राक्षस को अपनी तरफ आते हुए देख कर अस्त्र विद्या के ज्ञाता और शीघ्रता से विक्रम को प्रकट करने वाले राम दो तीन कदम कुछ पीछे हट गये।

ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम्।
खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम्।। १३।।
संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति।
व विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः।। १४।।
रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत्।
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना।। १५।।

तब खर के वध के लिये राम ने उस युद्ध में अग्नि तुल्य और दूसरे ब्रह्मदण्ड के समान बाण को लिया और उस धर्मात्मा ने धनुष पर उसका संधान कर उसे खर की तरफ छोड़ दिया। राम के द्वारा धनुष को खींच कर छोड़ते ही वह महान बाण विद्युत् के गिरने के समान नाद करता हुआ खर के हृदय में जा लगा। तब उस बाण की आग से जलता हुआ खर भूमि पर गिर पड़ा।

ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः।
सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन्।। १६।।

तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज।
स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः।। १७।।
एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया।
गिरिदुर्गाद् विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी।। १८।।

तब राजर्षि और महर्षि लोग अगस्त्य ऋषि के साथ एकत्र हो कर वहाँ आये और प्रसन्नता के साथ राम का सत्कार कर बोले कि हे दशरथ के पुत्र! अब ऋषि लोग दण्डकारण्य में निर्भय हो कर अपने धर्म का अनुष्ठान करेंगे। इसी समय वीर लक्ष्मण भी सीता के साथ पर्वत की गुफा से निकल कर प्रसन्नता पूर्वक आश्रम में आ गये।

ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः।। १९।।
प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः।
तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्।। २०।।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे।
मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान् हतान्।
रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा।। २१।।

तब विजयी राम महर्षियों और लक्ष्मण से सम्मानित हो कर अपने आश्रम में प्रविष्ट हुए। महर्षियों को सुख देने वाले, शत्रुहन्ता उस अपने पति को देख कर वैदेही बहुत प्रसन्न हुई और उसने उनका आलिंगन किया। राक्षसों को मारा हुआ देख कर और राम को क्षतिरहित देख कर अत्यन्त प्रसन्नता से युक्त जनकपुत्री सीता को बड़ा सन्तोष हुआ।

अट्ठाईसवाँ सर्ग

शूर्पणखा का लंका में रावण के पास जा कर उसे राम के विरुद्ध भड़काना।

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम्।। १।।
दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे।
दृष्ट्वा पुनर्महानादान् ननाद जलदोपमा।। २।।
सा दृष्ट्वा कर्म रामस्य कृतमन्यैः सुदुष्करम्।
जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम्।। ३।।

तब शूर्पणखा ने यह देख कर कि चौदह हजार भयानक कर्म करने वाले राक्षसों को तथा खर, दूषण और त्रिशिरा को युद्ध में अकेले राम ने मार दिया तो गर्जते हुए बादलों के समान वह फिर जोर-जोर से चिल्लाने और रोने लगी। वह राम के उस कार्य को देख कर जो दूसरों के लिये दुष्कर था, बहुत उद्विग्न हो कर रावण के द्वारा पालित लंका में गयी।

सा ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम्।
आसीनं सूर्यसंकाशे काञ्चने परमासने।। ४।।
रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम्।

उसने वहाँ जा कर देखा कि तेज से देदीप्यमान रावण अपने सात मंजिले मकान के ऊपरी भाग में बैठा हुआ है। रावण अपने सूर्य के समान जगमगाते हुए सोने के सिंहासन, पर बैठा हुआ ऐसे ही प्रतीत हो रहा था मानो सोने की वेदी में घी की अधिक मात्रा में आहुति देने पर ऊपर उठती हुई अग्नि की ज्वाला हो।

कैलासं पर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम्।। ५।।
विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः।
प्राप्तयज्ञहरं दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणम्।। ६।।
कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहिते रतम्।

यह वही रावण था जिसने कैलास पर्वत पर जा कर कुबेर को युद्ध में हरा कर उसके इच्छानुसार[1] चलने वाले पुष्पक विमान को उससे छीन लिया था। वह रावण यज्ञ के समाप्त होने के समय उन्हें जा कर नष्ट कर देता था। वह ब्राह्मणों की हत्या कर देता था और क्रूर कर्म करता था। वह रूखे स्वभाव का, निर्दयी और प्रजाओं के अहित में लगा रहता था।

रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम्।। ७।।
राक्षसी भ्रातरं क्रूरं सा ददर्श महाबलम्।
तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम्।। ८।।
आसने सूपविष्टं तं काले कालमिवोद्यतम्।
राक्षसेन्द्रं महाभागं पौलस्त्यकुलनन्दनम्।। ९।।

उस राक्षसी ने अपने उस भाई को देखा जो महा बलशाली, निर्दयी, सारे प्राणियों को रुलाने वाला और सब लोगों को भय प्रदान करने वाला था। वह महाभाग राक्षसों का राजा, पुलस्त्य कुलनन्दन, दिव्य मालाओं और आभूषणों से सुशोभित हो कर आसन पर अच्छी तरह से बैठा हुआ था और प्रलयकाल में विनाश के लिये तैयार मृत्यु के समान लग रहा था।

नोट – चालक की इच्छानुसार

ततः शूर्पणखा दीना रावणं लोकरावणम्।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धा परुषं वाक्यमब्रवीत्।। १०।।
प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरङ्कुशः।
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे।। ११।।

तब शूर्पणखा ने दीन हो कर, लोगों को रुलाने वाले रावण से मन्त्रियों के बीच में ही यह कठोर और क्रोध से युक्त वाणी बोली, कि तुम विषय भोगों में मस्त हो रहे हो, स्वेच्छाचारी और निरंकुश हो। जो भयानक भय तुम्हारे लिये उपस्थित हो रहा है, उसे तुम्हें जानना चाहिये, पर तुम उसे जान ही नहीं रहे हो।

अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्युतः।
स्वजनं च जनस्थानं निहतं नावबुध्यसे।। १२।।
चर्तुदश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः।। १३।।
ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः।
धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकारिणा।। १४।।
त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च राक्षस।
विषये स्वे समुत्पन्नं यद् भयं नावबुध्यसे।। १५।।

मैं समझती हूँ कि तुम मूर्ख मंत्रियों से घिरे हुए हो और तुमने गुप्तचर भी नियुक्त नहीं किये हुए हैं, इसीलिये तो तुम्हारे अपने आदमी मारे गये और जनस्थान का विनाश कर दिया गया, पर तुम्हें इसका पता नहीं है। भयानक कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षस और खर, तथा दूषण अकेले राम ने मार दिये। उसने ऋषियों को अभय और दण्डकारण्य को कल्याण युक्त कर दिया। उस जनस्थान को विनष्ट कर दिया। हे राक्षस तुम तो लोभ और प्रमाद में फँस कर पराधीन हो रहे हो। इसलिये अपने राज्य में उत्पन्न हुए भय के विषय में तुम्हें पता ही नहीं है।

उनत्तीसवाँ सर्ग

रावण के पूछने पर शूर्पणखा द्वारा उसे राम, लक्ष्मण और सीता का परिचय देना और सीता को अपनी पत्नी बनाने के लिये प्रेरित करना।

ततः शूर्पणखां दृष्ट्वा ब्रुवन्तीं परुषं वचः।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः।। १।।
कश्च रामः कथंवीर्यः किं रूपः किंपराक्रमः।
किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुस्तरम्।। २।।

तब कठोर वचन कहती हुई शूर्पणखा को देख कर मन्त्रियों के बीच क्रुद्ध हो कर रावण उससे पूछने लगा कि राम कौन है? कैसा उसका बल है? कैसा पराक्रम है? कैसा उसका रूप है? वह भयानक दण्डकारण्य में किसलिये प्रविष्ट हुआ है?

आयुधं किं च रामस्य येन ते राक्षसा हताः।
खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा।। ३।।
तत्त्वं ब्रूहि मनोज्ञाङ्गि केन त्वं च विरूपिता।
इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता।। ४।।

राम के पास कौन सा हथियार है, जिससे उसने वे राक्षस मार दिये। खर, दूषण और त्रिशिरा को भी युद्ध में मार दिया। हे सुन्दर अंगवाली। तू मुझे सत्य बता कि किसने तुझे बदसूरत किया है? राक्षसराज के ऐसा कहने पर वह राक्षसी क्रोध से मूर्च्छित हो गयी।

ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे।
दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः।। ५।।
कन्दर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः।
शक्रचापनिभं चापं विकृष्य कनकाङ्गदम्।। ६।।
दीप्तान् क्षिपति नाराचान् सर्पानिव महाविषान्।

तब उसने राम का यथावत् वर्णन करना आरम्भ किया। वह बोली कि उसकी भुजाएँ लम्बी हैं, आँखें विशाल हैं। उसने चीर वस्त्र तथा काला मृगचर्म धारण किया हुआ है, वह श्रीराम दशरथ का पुत्र और कामदेव के समान रूप वाला है। के सोने के छल्ले लगे हुए इन्द्रधनुष के समान अपने धनुष को खींच कर विषैले साँपों के समान तेजस्वी नाराचों को चलाते हैं।

नाददानं शरान् घोरान् विमुञ्चन्तं महाबलम्।। ७।।
न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे।
हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः।। ८।।

मैंने युद्ध में यह नहीं देखा कि वे महाबली राम कब बाणों को लेते हैं, कब धनुष को खींचते हैं और बाणों को छोड़ते हैं? मैं तो उनके बाणों से केवल मारी जाती हुई सेना को देख रही थी।

रक्षसां भीमवीर्याणां सहस्राणि चतुर्दश।
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेन पदातिना।। ९।।
अर्धाधिकमुहूर्तेन खरश्च सहदूषणः।
ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमश्च दण्डकाः।। १०।।
एका कथंचिन्मुक्ताहं परिभूय महात्मना।
स्त्रीवधं शङ्कमानेन रामेण विदितात्मना।। ११।।

अकेले और पैदल राम ने डेढ़ मुहूर्त में ही भीम कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षस और खर तथा दूषण को अपने तीखे बाणों से मार गिराया और ऋषियों को भय रहित करके दण्डकारण्य को उनके लिये कल्याणयुक्त बना दिया। उस महात्मा और आत्मज्ञानी राम ने स्त्रीवध की शंका से मुझे केवल अपमानित करके ही छोड़ दिया।

भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्।। १२।।
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान् बली।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः।। १३।।

उसका भाई भी महा तेजस्वी है। वह उसी के समान गुण और विक्रम वाला है। वह तेजस्वी अपने भाई का भक्त और उसमें अनुरक्त है। उसका नाम लक्ष्मण है। वह बड़ा अमर्षशील, दुर्जय, विजेता, पराक्रमी, बुद्धिमान और बलवान है। वह राम का दायाँ हाथ है और सदा मानो उसका बाहर विचरण करने वाला प्राण ही है।

रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना।
धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रियहिते रता।। १४।।
सा सुकेशी सुनासोरूः सुरूपा च यशस्विनी।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततुङ्गनखी शुभा।। १५।।
सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा।

राम की प्यारी धर्मपत्नी, बड़ी आँखों वाली और पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली है। वह सदा पति के हित और प्रिय करने में लगी रहती है। वह सुन्दर बाल, नासिका और जाँघ वाली बड़ी सुन्दर यशस्विनी है। उसका रंग तपाये हुए सोने जैसा, नाखून ऊँचे और लाल हैं। उस शुभ लक्षणों से युक्त सुन्दरी का नाम सीता है, वह पतली कमर वाली विदेहराज जनक की पुत्री है।

सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि।। १६।।
तवानुरूपा भार्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः।
तां तु विस्तीर्णजघनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम्।। १७।।
भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम्।
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज।। १८।।

उसका स्वभाव सुशील है, शरीर श्लाघनीय और सौन्दर्य पृथिवी पर अद्वितीय है। वह तुम्हारे अनुरूप पत्नी होगी और तुम उसके उत्तम पति होओगे। उस विशाल जाँघों वाली, मोटे तथा उठे हुए पयोधरों वाली सुन्दरी को जब मैं तुम्हारी पत्नी बनाने के लिये लाने को तैयार हुई तब हे महाभुज! उस क्रूर लक्ष्मण ने मुझे कुरूप बना दिया।

यदि तस्यामभिप्रायो भार्यात्वे तव जायते।। १९।।
शीघ्रमुद्ध्रियतां पादो जयार्थमिह दक्षिणः।
रोचते यदि ते वाक्यं ममैतद् राक्षसेश्वर।। २०।।
क्रियतां निर्विशङ्केन वचनं मम रावण।
विज्ञायैषामशक्तिं च क्रियतां च महाबल।
सीता तवानवद्याङ्गी भार्यात्वे राक्षसेश्वर।। २१।।

यदि तुम्हारा विचार उसे अपनी पत्नी बनाने का है तो विजय को लिये शीघ्र ही अपना दायाँ पैर आगे बढ़ाओ। हे राक्षसों के राजा! यदि तुम्हें मेरी बात अच्छी लगती है तो निशशंक हो कर मेरे कहने के अनुसार कार्य करो। तुम इन राम आदि की असमर्थता को जान कर हे महाबली राक्षसों के राजा! सर्वांग सुन्दरी सीता को अपनी भार्या बनाने के लिये प्रयत्न करो।

निशम्य रामेण शरैरजिह्मगै–
हताञ्जनस्थानगतान् निशाचरान्।
खरं च दृष्ट्वा निहतं च दूषणं
त्वद्य कृत्यं प्रतिपत्तुमर्हसि।। २२।।

यह सुन कर कि राम ने अपने सीधे जाने वाले बाणों से जन स्थान गये हुए राक्षसों को मार दिया तथा खर और दूषण को मारा हुआ देख कर तुम आज उनके विरुद्ध अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर सकते हो।

तीसवाँ सर्ग

रावण का मारीच के पास जाना।

ततः शूर्पणखावाक्यं तच्छ्रुत्वा रोमहर्षणम्।
सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम ह।। १।।
तत् कार्यमनुगम्यान्तर्यथावदुपलभ्य च।
दोषाणां च गुणानां च सम्प्रधार्य बलाबलम्।। २।।
इति कर्तव्यमित्येव कृत्वा निश्चयमात्मनः।

तब शूर्पणखा के वे रोंगटे खड़े करने वाले वाक्य सुन कर, अपने सचिवों से सलाह कर और कर्तव्य को निश्चय कर रावण वहाँ से चल दिया। उसने अपने कार्य पर मन ही मन विचार किया, दोषों और गुणों का यथावत् ज्ञान प्राप्त किया, बल और अबल का निश्चय किया और फिर यह कार्य करना है ऐसा मन में निर्धारित किया।

कामगं रथमास्थाय शुशुभे राक्षसाधिपः।। ३।।
विद्युन्मण्डलवान् मेघः सबलाक इवाम्बरे।
सशैलसागरानूपं वीर्यवानवलोकयन्।। ४।।
नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णं सहस्रशः।
शीतमङ्गलतोयाभिः पद्मिनीभिः समन्ततः।। ५।।
विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ।

फिर वह अपने इच्छानुसार जाने वाले रथ अर्थात् विमान पर सवार हुआ। विमान पर सवार हो कर आकाश में जाते हुए वह बिजलियों से तथा वकपंक्तियों से घिरे हुए मेघ के समान सुशोभित हो रहा था। उस पराक्रमी ने वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखा। समुद्र का किनारा पर्वत से युक्त था। वह अनेक प्रकार के हजारों फूलों और फलों वाले वृक्षों से भरा हुआ था। वहाँ सब तरफ शीतल और मंगलकारी जल से भरी हुई पुष्करिणियाँ विद्यमान थीं। वहाँ अनेक ऋषियों के विशाल वेदियों से अलंकृत आश्रम थे।

कदल्यटविसंशोभं नारिकेलोपशोभितम्।। ६।।
सालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्च सुपुष्पितैः।
अत्यन्तनियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः।। ७।।
नागैः सुपर्णैर्गन्धर्वैः किंनरैश्च सहस्रशः।
हंसक्रौञ्चप्लवाकीर्णं सारसैः सम्प्रसादितम्।। ८।।
वैदूर्यप्रस्तरं स्निग्धं सान्द्रं सागरतेजसा।

समुद्र के उस तट पर अत्यन्त नियमपूर्वक आहार करने वाले हजारों महर्षि, नाग, गरुड़, गन्धर्व और किन्नरों से वह स्थान सुशोभित हो रहा था। समुद्र का वह किनारा सब तरफ फैले हुए हंस, क्रौंच, मैंडक और सारसों से सुशोभित हो रहा था। समुद्र के तेज से अर्थात् उसकी लहरों के टकराने से वहाँ पड़ी हुई शिलाएँ घिस कर चिकनी होने के कारण वैदूर्य मणि की तरह सुन्दर दिखाई दे रहीं थीं।

निर्यासरसमूलानां चन्दनानां सहस्रशः।। ९।।
वनानि पश्यन् सौम्यानि घ्राणतृप्तिकराणि च।
अगुरूणां च मुख्यानां वनान्युपवनानि च।। १०।।
तक्कोलानां च जात्यानां फलिनां च सुगन्धिनाम्।
पुष्पाणि च तमालस्य गुल्मानि मरिचस्य च।। ११।।
प्रस्रवाणि मनोज्ञानि प्रसन्नान्यद्भुतानि च।
धनधान्योपपन्नानि स्त्रीरत्नैरावृतानि च।। १२।।
हस्त्यश्वरथगाढानि नगराणि विलोकयन्।

आगे बढ़ने पर उसने जिनकी जड़ों से गोंद निकल रहा था ऐसे हजारों चन्दन के वृक्षों के वनों को जो सुन्दर थे और नाक को तृप्त कर रहे थे, देखा, वहाँ उसने उत्तम अगर के वन देखे, उत्तम जाति के सुगन्धित फल वाले तक्कोलों के बगीचे देखे, कहीं तमाल के फूलों को देखा और मिर्च की झाड़ियों को देखा। जाते हुए कहीं स्वच्छ जल वाले सुन्दर और अद्भुत झरने दिखाई दिये। कहीं उसे ऐसे नगर मिले, जो धन-धान्य, स्त्रियों, रत्नों से भरपूर थे, जो हाथी, रथ और अश्वों से व्याप्त थे।

तं समं सर्वतः स्निग्धं मृदुसंस्पर्शमारुतम्।। १३।।
अनूपे सिन्धुराजस्यददर्श त्रिदिवोपमम्।
ददर्शाश्रममेकान्ते पुण्ये रम्ये वनान्तरे।। १४।।
तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डलधारिणम्।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम्।। १५।।

उसके पश्चात उसने समुद्र के किनारे पर एक ऐसा स्थान देखा जो सब तरफ से समतल और चिकना था। वहाँ मनोहर स्पर्श वाली वायु चल रही थी। वह स्थान स्वर्ग के समान जान पड़ रहा था। उस वन के अन्दर पवित्र एकान्त स्थान पर उसने एक आश्रम देखा। उस आश्रम में वह काला मृगचर्म और जटाओं के समूह को धारण किये हुए, नियमित आहार करते हुए रहने वाले मारीच नाम के राक्षस से मिला।

स रावणः समागम्य विधिवत् तेन रक्षसा।
मारीचेनार्चितो राजा भोजनेनोदकेन च।। १६।।
अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत्।
कच्चित्ते कुशलं राजन्, लंकायां राक्षसेश्वर।। १७।।
एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः।
ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद् वाक्यकोविदः।। १८।।

रावण के वहाँ पहुँचने पर मारीचि राक्षस ने उसका विधिवत् भोजन और जल के द्वारा सत्कार किया। फिर प्रयोजन युक्त वाणी से मारीचि ने उससे पूछा कि हे राक्षसेश्वर! क्या तुम्हारी लंका में सब कुशल हैं? मारीचि के द्वारा ऐसा कहने पर महा तेजस्वी और बोलने में चतुर रावण ने यह कहा कि–

इकत्तीसवाँ सर्ग

रावण का मारीच से सीता के अपहरण में सहायता देने के लिये कहना।

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान् हि परमा गतिः।। १।।
जानीषे त्वं जनस्थानं भ्राता यत्र खरो मम।
दूषणश्च महाबाहुः स्वसा शूर्पणखा च मे।। २।।
त्रिशिराश्च महाबाहु राक्षसः पिशिताशनः।
अन्ये च बहवः शूरा लब्धलक्षा निशाचराः।। ३।।
वसन्ति मन्नियोगेन अधिवासं च राक्षसाः।
बाधमाना महारण्ये मुनीन् ये धर्मचारिणः।। ४।।

हे मारीच! मैं बता रहा हूँ। मेरी बात सुनो मैं इस समय दुःखी हूँ और मुझ दुःखी को तुम्हारा ही सहारा है। तुम जनस्थान को जानते हो, जहाँ मेरा भाई खर और महाबाहु दूषण, मेरी बहन शूर्पणखा, माँसभोजी महाबाहु राक्षस त्रिशिर और बहुत से लक्ष्यवेध में कुशल वीर राक्षस, ये सब मेरी आज्ञा से महान वन में धर्मचारी मुनियों को परेशान करते हुए घर बना कर रहते थे।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
शूराणां लब्धलक्षाणां खरचित्तानुवर्तिनाम्।। ५।।
ते त्विदानीं जनस्थाने वसमाना महाबलाः।
सङ्गताः परमायत्ता रामेण सह संयुगे।। ६।।

भयानक कर्म करने वाले वे चौदह हजार राक्षस जो शूरवीर और लक्ष्यवेध में कुशल थे तथा खर की आज्ञा में रहते थे। वे सब महाबली जनस्थान में रहने वाले राक्षस अच्छी तरह तैयार हो कर, इकट्ठे हो कर राम के साथ युद्ध में जा भिड़े।

नानाशस्त्रप्रहरणाः खरप्रमुखराक्षसाः।
तेन संजातरोषेण रामेण रणमूर्धनि।। ७।।
अनुक्त्वा परुषं किंचिच्छरैर्व्यापारितं धनुः।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम्।। ८।।
निहतानि शरैर्दीप्तैर्मानुषेण पदातिना।
खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः।। ९।।
हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः।

यद्यपि खरादि के राक्षस अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से प्रहार करने वाले थे, पर उस क्रुद्ध हुए राम ने युद्ध के मुहाने पर कोई कठोर बात न कह कर केवल धनुष के द्वारा बाणों की ही वर्षा की। उस पैदल मनुष्य ने उन उग्र तेजस्वी चौदह हजार राक्षसों को अपने जगमगाते हुए बाणों से मार दिया। उसने युद्ध में खर को भी मार दिया, दूषण को भी गिरा दिया और त्रिशिरा को भी मार कर दण्डकारण्य को निर्भय बना दिया।

पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः।। १०।।
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः।
अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः।। ११।।
त्यक्तधर्मा त्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः।
येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम्।। १२।।
कर्णनासापहारेण भगिनीमे विरूपिता।
अस्य भार्यां जनस्थानात् सीतां सुरसुतोपमाम्।। १३।।
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव।

क्रुद्ध पिता के द्वारा पत्नी सहित निकाला हुआ वह राम ही उस सेना को मारने वाला है। अब उसका जीवन थोड़ा ही शेष है। वह शील रहित, कठोर, तीखे स्वभाव वाला, मूर्ख, लोभी और अजितेन्द्रिय है। वह धर्म को छोड़ कर अधर्मात्मा बन प्राणियों की बुराई में लगा रहता है। उसने बिना वैर के ही केवल बल का सहारा ले कर कान और नाक काट कर मेरी बहन को कुरूप बना दिया। मैं उसकी देवपुत्री के समान पत्नी सीता को जनस्थान से बलपूर्वक हर लाऊँगा। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो।

वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव।। १४।।
उपायतो महाञ्शूरो महामायाविशारदः।
एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर।। १५।।
शृणु तत् कर्म साहाय्ये यत् कार्यं वचनान्मम।

तुम युद्ध में पराक्रम में और अभिमान में अद्वितीय हो, तुम उपाय करने में भी महान शूर हो। तुम बड़ी-बड़ी मायाओं का संचालन करने में भी चतुर हो। हे राक्षस! मैं इसीलिये तुम्हारे पास आया हूँ। मेरे कहने से जो तुम मेरी सहायता करोगे, वह सुनो।

सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः।। १६।।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर।
त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम्।। १७।।
गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति।
ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम्।। १८।।
निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव।
ततः पश्चात् सुखं रामे भार्याहरणकर्शिते।
विश्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना।। १९।।

तुम सुनहरे रंग का मृग, जो कि चाँदी की सी बिन्दुओं से चित्रित हो, बन कर राम के आश्रम में सीता के सामने विचरण करो। निश्चय ही तुम्हे मृग के रूप में देख कर सीता, 'इसे पकड़ लाओ– ऐसा अपने पति और लक्ष्मण से कहेगी। जब वे तुम्हें पकड़ने के लिये चले जायेंगे, तब मैं बेधड़क हो कर अकेले में सीता को हरण कर लूँगा। तत्पश्चात राम जब पत्नी के हरण से दुःखी और दुर्बल हो जायेगा, तब मैं निर्भय हो कर, सुखपूर्वक अपने आपको कृतार्थ समझता हुआ उसके ऊपर आक्रमण करूँगा।

बत्तीसवाँ सर्ग

मारीच का रावण को श्रीराम के गुण और प्रभाव बता कर सीता हरण के उद्योग से रोकना।

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः।
प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम्।। १।।
सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। २।।

राक्षसों के राजा की उस बात को सुन कर वह महा तेजस्वी और वाक्य में चतुर मारीचि बोला कि हे राजन! संसार में सदा मीठा बोलने वाले तो बहुत मिल जाते हैं, पर हितकारी और अप्रिय लगने वाली बात को कहने वाले और सुनने वाले दोनों ही कठिनाई से प्राप्त होते हैं।

न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यगुणोन्नतम्।
अपि स्वस्ति भवेत् तात सर्वेषामपि रक्षसाम्।। ३।।
अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान्।
अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा।। ४।।
अपि सीतानिमित्तं च न भवेद् व्यसनं महत्।

महा तेजस्वी और गुणों में उन्नत श्रीराम को वास्तव में तुम नहीं जानते हो। हे तात! सारे राक्षसों का कल्याण हो। कहीं राम क्रुद्ध हो कर लोगों को राक्षसों से शून्य न कर दें। जनक की पुत्री सीता कहीं तुम्हारे जीवन का अन्त करने के लिये तो नहीं उत्पन्न हुई है। कहीं सीता के कारण तुम्हारे ऊपर भयानक संकट न आ जाये।

शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे।। ५।।
रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि।

श्रीराम युद्ध में न बुझाई जा सकने वाली अग्नि के समान हैं, बाण ही उसकी ज्वाला है और धनुष तथा खड्ग उसके ईंधन हैं। उस प्रदीप्त हुई अग्नि में तुम्हें अचानक प्रवेश नहीं करना चाहिये।

किमुद्यमं व्यर्थमिमं कृत्वा ते राक्षसाधिप।। ६।।
दृष्टश्चेत् त्वं रणे तेन तदन्तमुपजीवितम्।
जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम्।। ७।।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम्।

हे राक्षसों के राजा! इस व्यर्थ के परिश्रम से क्या लाभ होगा? यदि राम ने तुम्हें युद्ध में देख लिया तो तुम अपने जीवन का अन्त समझना। जीवन, सुख और राज्य ये कठिनता से मिलते हैं। यदि तुम इनका लम्बे समय तक उपभोग करना चाहते हो तो राम का अपराध मत करो।

स सर्वैः सचिवैः सार्धं विभीषणपुरस्कृतैः।। ८।।
मंन्त्रयित्वा स धर्मिष्ठैः कृत्वा निश्चयमात्मनः।
दोषाणां च गुणानां च सम्प्रधार्य बलाबलम्।। ९।।

आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा राघवस्य च तत्त्वतः।
हितं हि तव निश्चित्य क्षमं त्वं कर्तुमर्हसि।। १०।।

तुम विभिषण आदि धर्मात्मा मंत्रियों के साथ सलाह करके अपना निश्चय करो। राम के दोषों, गुणों, शक्ति और कमजोरी का वास्तविक रूप में निश्चय करके और अपनी शक्ति को भी जान कर अपना हित करने में योग्य कार्य को तुम्हें करना चाहिये।

अहं तु मन्ये तव न क्षमं रणे
समागमं कोसलराजसूनुना।
इदं हि भूयः शृणु वाक्यमुत्तमं
क्षमं च युक्तं च निशाचराधिप।। ११।।

मैं तो कोसलराज के पुत्र के साथ तुम्हारा युद्ध में सामना होना उचित नहीं समझता। इस उत्तम बात को फिर दुबारा सुनो। हे राक्षसों के राजा! यह तुम्हारे लिये उचित और उपयुक्त है।

तेतीसवाँ सर्ग

मारीच का रावण को राम की शक्ति के विषय में अपना अनुभव बताना।

कदाचिदप्यहं वीर्यात् पर्यटन् पृथिवीमिमाम्।
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।। १।।
भयं लोकस्य जनयन् किरीटी परिघायुधः।
विश्वामित्रोऽथ धर्मात्मा मद्वित्रस्तो महामुनिः।। २।।
स्वयं गत्वा दशरथं नरेन्द्रमिदमब्रवीत्।

एक बार मैं अपने पराक्रम के अभिमान में पृथिवी पर घूम रहा था। उस समय मैं काले बादलों के समान रंग वाला, तपे हुए सोने के कुण्डल पहने हुए, मुकुट लगाये, परिघ हाथ में लिये लोगों में भय को उत्पन्न कर रहा था। तब महामुनि विश्वामित्र धर्मात्मा मुझसे डर कर स्वयं राजा दशरथ के पास गये और उनसे बोले कि–

अयं रक्षतु मां रामः पर्वकाले समाहितः।। ३।।
मारीचान्मे भयं घोरं समुत्पन्नं नरेश्वर।
बालोऽप्येष महातेजाः समर्थस्तस्य निग्रहे।। ४।।
गमिष्ये राममादाय स्वस्ति तेऽस्तु परंतप।

हे राजा! मुझे मारीच राक्षस से भय उपस्थित हो रहा है। ये राम पर्व काल में सावधान हो कर मेरी रक्षा करेंगे। हे परंतप! आपका कल्याण हो। यद्यपि ये अभी बच्चे हैं, पर फिर भी बहुत तेजस्वी हैं और उस राक्षस को वश में करने में समर्थ हैं। इसलिये मैं इन्हें ले कर जाऊँगा।

इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तमादाय नृपात्मजम्।। ५।।
जगाम परमप्रीतो विश्वामित्रः स्वमाश्रमम्।
बभूवोपस्थितो रामश्चित्रं विस्फारयन् धनुः।। ६।।

ऐसा कह कर वे मुनि विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हो कर उस राजकुमार को ले कर अपने आश्रम को चले गये। तब राम अपने अद्भुत धनुष को टंकारते हुए उनके साथ ही रक्षा के लिये खड़े हो गये।

ततोऽहं मेघसंकाशः आजगामाश्नमान्तरम्।।
तेन दृष्टः प्रविष्टोऽहं सहसैवोद्यतायुधः।
मां तु दृष्ट्वा धनुः सज्यमसम्भ्रान्तश्चकार ह।। ७।।
अवजानन्नहं मोहाद् बालोऽयमिति राघवम्।
विश्वामित्रस्य तां वेदिमभ्यधावं कृतत्वरः।। ८।।
तेन मुक्तस्ततो बाणः शितः शत्रुनिबर्हणः।

तब बादलों के समान काले शरीर वाला मैं भी आश्रम के अन्दर घुसा। मेरे प्रवेश करते ही श्रीराम ने मुझे देख लिया और एकदम धनुष को उठा लिया और बिना घबराहट के तुरन्त उस पर डोर चढ़ा दी। मैं अज्ञानवश यह समझता हुआ कि राम तो अभी बालक है, उसकी परवाह न कर तेजी से विश्वामित्र की वेदी की तरफ दौड़ा। तभी उन्होंने शत्रु को नष्ट करने वाला एक तीक्ष्ण बाण छोड़ दिया।

नेच्छता तात मां हन्तुं तदा वीरेण रक्षितः।। ९।।
रामस्य शरवेगेन निरस्तो भ्रान्तचेतनः।
प्राप्य संज्ञां चिरात् तात लङ्कां प्रति गतः पुरीम्।। १०।।
एवमस्मि तदा मुक्तः सहायास्ते निपातिताः।
अकृतास्त्रेण रामेण बालेनाक्लिष्टकर्मणा।। ११।।

हे तात! वे वीर राम मुझे मारना नहीं चाहते थे, इसलिये मैं बच गया, पर राम के बाण के वेग से मैं मूर्च्छित हो कर दूर जा कर गिरा। देर में जब मुझे होश हुआ तो मैं लंका में चला गया। इस प्रकार मैं तो बच गया, पर अनायास ही महान कर्म करने वाले श्रीराम ने, जिन्हें अभी अस्त्र विद्या का पूरा अभ्यास

नहीं था और जो अभी बालक थे, मेरे सारे साथी मार दिये।

तन्मया वार्यमाणस्तु यदि रामेण विग्रहम्।
करिष्यस्यापदं घोरां क्षिप्रं प्राप्य न शिष्यसि।। १२।।
क्रीडारतिविधिज्ञानां समाजोत्सवदर्शिनाम्।
रक्षसां चैव संतापमनर्थं चाहरिष्यसि।। १३।।
हर्म्यप्रासादसम्बाधं नानारत्नबिभूषिताम्।
द्रक्ष्यसि त्वं पुरीं लङ्कां विनष्टां मैथिलीकृते।। १४।।

इसलिये यदि तुम मेरे मना करने पर भी राम से झगड़ा करोगे, तो जल्दी ही भयानक विपत्ति को प्राप्त कर अपना अन्त करा लोगे। जो राक्षस आजकल खेलकूद और भोग विलास के तरीकों को जानते हुए सामाजिक उत्सवों को देखते हुए आनन्द से अपना समय बिता रहे हैं, तुम उनके लिये भी कष्ट और विनाश को उपस्थित कर दोगे। सीता के कारण तुम महलों और प्रासादों से भरी हुई तथा अनेक प्रकार के रत्नों से विभूषित लंका को भी नष्ट होता हुआ देखोगे।

दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गान् दिव्याभरणभूषितान्।
द्रक्ष्यस्यभिहतान् भूमौ तव दोषात् तु राक्षसान्।। १५।।
हतदारान् सदारांश्च दश विद्रवतो दिशः।
हतशेषानशरणान् द्रक्ष्यसि त्वं निशाचरान्।। १६।।
शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम् ।
प्रदग्धभवनां लङ्कां द्रक्ष्यसि त्वमसंशयम्।। १७।।
कलत्राणि च सौम्यानि मित्रवर्गं तथैव च।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम्।। १८।।

तुम अपने दोष से उन राक्षसों को, जो आजकल दिव्यचन्दन का लेप करते हैं और दिव्य आभूषण धारण करते हैं, मारा हुआ और भूमि पर पड़ा हुआ देखोगे। तुम देखोगे कि अनेक राक्षसों की पत्नियाँ हर ली गईं हैं, कुछ की बच गयीं हैं, और वे भी मरने से बच गये हैं तो असहाय हो कर सब तरफ भागे फिर रहे हैं। तुम देखोगे कि लंका पर बाणों का जाल सा फैल गया है, लंका आग की लपटों में घिर गयी है और लंका के मकान जल गये हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। यदि तुम सुन्दर स्त्रियों और मित्रों को चिरकाल तक भोगना चाहते हो तो राम का अपराध मत करो।

निवार्यमाणः सुहृदा मया भृशं
प्रसह्य सीतां यदि धर्षयिष्यसि।
गमिष्यसि क्षीणबलः सबान्धवो
यमक्षयं रामशरास्तजीवितः।। १९।।

मैं तुम्हारा मित्र हूँ। मेरे द्वारा बहुत मना करने पर भी यदि तुम सीता का अपहरण करोगे तो सेना के नष्ट होने पर अपने बान्धवों के साथ तुम मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे राम के बाणों से तुम्हारा जीवन समाप्त हो जाएगा।

चौंतीसवाँ सर्ग

रावण का मारीच को फटकारना और सीता हरण में सहायता करने की आज्ञा देना।

मारीचस्य तु तद् वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम्।। १।।
तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः।
अब्रवीत् परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः।। २।।

मारीच की उस सलाह को जो उपयुक्त और उचित थी, रावण ने उसी प्रकार ग्रहण नहीं किया, जैसे मरने की इच्छा वाला रोगी ओषधि को ग्रहण नहीं करता। मृत्यु से प्रेरित वह राक्षसों का राजा उस भलाई और कल्याण की बात कहने वाले मारीच से कठोर वाणी में बोला।

दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते।
वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोषरे।। ३।।
त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे।
मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः।। ४।।

हे बुरे कुल में उत्पन्न मारीच! ये अनुचित बातें जो तुम मुझसे कह रहे हो, मेरे लिये इसी प्रकार व्यर्थ हैं जैसे ऊसर भूमि में बोया हुआ बीज। तुम्हारी बातों से मुझे उस मूर्ख, पापशील, और विशेष कर मनुष्य राम के साथ युद्ध से विचलित नहीं किया जा सकता।

यस्त्यक्त्वा सुहृदो राज्यं मातरं पितरं तथा।
स्त्रीवाक्यं प्राकृतं श्रुत्वा वनमेकपदे गतः।। ५।।
अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः।
प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव संनिधौ।। ६।।

जो स्त्री के मूर्खतायुक्त वचन सुन कर मित्रों, राज्य, माता और पिता को छोड़ कर वन के लिये अकेला चल दिया, जिसने युद्ध में खर का वध कर दिया, उसकी

प्राणों से भी प्रिय सीता का मैं तुम्हारे समीप अवश्य ही अपहरण करूँगा।

दोषं गुणं वा सम्पृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि।
अपायं वा उपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये।। ७।।
सम्पृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता।
उद्यताञ्जलिना राज्ञो य इच्छेद् भूतिमात्मनः।। ८।।

यदि तुमसे दोष या गुण पूछे जायें तब तुम इस प्रकार कह सकते हो। तभी तुम्हें उपाय या अपाय या कार्य को करने के विषय में निश्चय के लिये कहना चाहिये। जो बुद्धिमान सचिव अपने कल्याण को चाहता है, उसे जब उससे पूछा जाये, तब हाथ जोड़ कर अपनी बात करनी चाहिये।

वाक्यमप्रतिकूलं तु मृदुपूर्वं शुभं हितम्।
उपचारेण वक्तव्यो युक्तं च वसुधाधिपः।। ९।।
सवावमर्दं तु यद्वावक्यमथवा हितमुच्यते।
नाभिनन्देत तद् राजा मानार्थी मानवर्जितम्।। १०।।

राजा को उसके अनुकूल भलाई करने वाली कल्याणकारी बात, उचित रीति से मृदुता के साथ कहनी चाहिये। राजा सम्मान को चाहता है, इसलिये मान से रहित, आक्षेप के साथ कही गयी हितकारी बात को भी वह सम्मान नहीं देगा।

औष्ण्यं तथा विक्रमं च सौम्यं दण्ड प्रसन्नताम्।
धारयन्ति महात्मानो राजानः क्षणदाचर।। ११।।
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु मान्याः पूज्याश्च नित्यदा।
त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं मोहमाश्रितः।। १२।।
अभ्यागतं तु दौरात्म्यात् परुषं वदसीदृशम्।
गुणदोषौ न पृच्छामि क्षेमं चात्मनि राक्षस।। १३।।

हे राक्षस! महात्मा राजा लोग अपने में तेज, वीरता, मृदुता, दण्ड और प्रसन्नता को धारण करते हैं। इसलिये राजाओं का सभी अवस्थाओं में सदा सम्मान और पूजन ही करना चाहिये। तुम तो धर्म को जान कर केवल मोह में ही पड़े हुए हो। मैं तुम्हारा अतिथि हूँ, फिर भी तुम दुष्टता के कारण ऐसे कठोर वचन कह रहे हो। हे राक्षस! मैं तुमसे अपनी बात के गुण-दोष नहीं पूछ रहा और न ही मैं अपने कल्याण के विषय में तुमसे जानना चाहता हूँ।

मयोक्तमपि चैतावत् त्वां प्रत्यमितविक्रम।
अस्मिंस्तु स भवान् कृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हसि।। १४।।
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम।
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः।। १५।।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर।
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि।। १६।।

हे अमित विक्रम! मैंने तो तुम्हे केवल इतना कहा था कि तुम्हें मेरे इस कार्य में सहायता करनी चाहिये। तुम वह काम सुनो जो तुम्हें मेरे कहने से करना है। तुम सुनहरे रंग के हिरण बन कर जो चाँदी के समान श्वेत बिन्दुओं से चित्रित हो, राम के आश्रम में सीता के सामने जा कर विचरण करो। वहाँ वैदेही को ललचा कर जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं चले जाना।

त्वां हि मायामयं दृष्ट्वा काञ्चनं जातविस्मया।
आनयैनमिति क्षिप्रं रामं वक्ष्यति मैथिली।। १७।।
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे दूरं गत्वाप्युदाहर।
हा सीते लक्ष्मणेत्येवं रामवाक्यानुरूपकम्।। १८।।

माया से युक्त तुम्हे सुनहरे मृग के रूप में देख कर, विस्मित हो कर वैदेही राम से कहेगी कि इसे जल्दी पकड़ कर लाओ। जब तुम्हें पकड़ने के लिये राम आश्रम से दूर चले जायें तब राम की ही आवाज में हा सीते! हा लक्ष्मण, कह कर पुकारना।

तच्छ्रुत्वा रामपदवीं सीतया च प्रचोदितः।
अनुगच्छति सम्भ्रान्तं सौमित्रिरपि सौहृदात्।। १९।।
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे लक्ष्मणे च यथासुखम्।
आहरिष्यामि वैदेहीं सहस्राक्षः शचीमिव।। २०।।

राम की उस नकल को सुन कर, सीता के द्वारा प्रेरित हो कर और प्रेमभाव के कारण लक्ष्मण भी घबरा कर उनके पीछे उनसे मिलने के लिये चले जायेंगे। तब इस प्रकार राम और लक्ष्मण के चले जाने पर मैं इन्द्र के द्वारा शची के समान सीता का आराम से हरण कर लूँगा।

एवं कृत्वा त्विदं कार्यं यथेष्टं गच्छ राक्षस।
राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि मारीच तव सुव्रत।। २१।।
प्राप्य सीतामयुद्धेन वञ्चयित्वा तु राघवम्।
लङ्कां प्रति गमिष्यामि कृतकार्यः सह त्वया।। २२।।
नो चेत् करोषि मारीच हन्मि त्वामहमद्य वै।
एतत् कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि।
राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते।। २३।।

इस कार्य को इस प्रकार से करके हे राक्षस! तुम जहाँ चाहे चले जाना। हे अच्छे व्रत का पालन करने वाले मारीच! मैं तुम्हें इसके लिये आधा राज्य दे दूँगा।

राम को धोखा दे कर और सीता को बिना युद्ध के ही प्राप्त कर मैं कृतकार्य हो कर तुम्हारे साथ लंका को चला जाऊँगा। हे मारीच! यदि तुम मेरा कार्य नहीं करोगे तो मैं तुम्हें आज ही मार दूँगा। यह कार्य तुम्हें अवश्य ही बलपूर्वक भी करना होगा। राजा के प्रतिकूल चलने वाला कभी सुख प्राप्त नहीं करता।

आसाद्य तं जीवितसंशयस्ते
मृत्युर्ध्रुवो ह्यद्य मया विरुध्यतः।
एतद् यथावत् परिगण्य बुद्ध्या
यदत्र पथ्यं कुरु तत्तथा त्वम्।। २४।।

राम के सामने जा कर तो तुम जीवित रहो या न रहो, यह सन्देह की बात है, पर मेरा विरोध कर आज तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। इस प्रकार अपनी बुद्धि से समझ कर जो तुम्हें उचित लगे, वही और वैसा ही करो।

पैंतीसवाँ सर्ग

मारीच का रावण को विनाश का भय दिखा कर पुनः समझाना।

आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत्।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम्।। १।।
केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा।
सपुत्रस्य सराज्यस्य सामात्यस्य निशाचर।। २।।

राजा के समान रावण के द्वारा ऐसी उलटे कार्यवाली आज्ञा दिये जाने पर मारीच उस राक्षसों के राजा से निश्शंक हो कर यह कठोर वचन बोला कि हे राक्षस! किस पापी ने तुझे यह पुत्र, राज्य और मंत्रियों सहित विनाश का रास्ता बताया है?

केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा।
केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः।। ३।।
शत्रवस्तव सुव्यक्तं हीनवीर्या निशाचर।
इच्छन्ति त्वां विनश्यन्तमुपरुद्धं बलीयसा।। ४।।

कौन वह पापी है जो तुम्हें सुखी देख कर प्रसन्न न हीं हो रहा है? किसने तुम्हें युक्तिपूर्वक मृत्यु के द्वार पर जाने का उपाय बताया है? हे राक्षस! यह निश्चित है कि तुम्हारे कमजोर शत्रु तुम्हें बलवान से लड़ा कर तुम्हें विनष्ट हुआ देखना चाहते हैं।

केनेदमुपदिष्टं ते क्षुद्रेणाहितबुद्धिना।
यस्त्वामिच्छति नश्यन्तं स्वकृतेन निशाचर।। ५।।
वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण।
ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः।। ६।।
अमात्यैः कामवृतो हि राजा कापथमाश्रितः।
निग्राह्यः सर्वथा सद्भिः स निग्राह्यो न गृह्यसे।। ७।।

तुम्हारे अहित का विचार करने वाले किस दुष्ट ने तुम्हें ऐसा करने की सलाह दी है? हे राक्षस! वह तुम्हें अपने ही कार्य से नष्ट हुआ देखना चाहता है। तुम्हारे वे मंत्री जो तुम्हें कुमार्ग पर जाने से रोक नहीं रहे हैं, वध करने योग्य हैं, पर तुम उनका वध नहीं कर रहे हो। अच्छे मंत्रियों को सदा बुरे रास्ते पर चलने वाले स्वेच्छाचारी को रोकना चाहिये। पर तुम रोके जाने योग्य होने पर भी रोके नहीं जा रहे हो।

राज्यं पालयितुं शक्यं त तीक्ष्णेन निशाचर।
न चातिप्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस।। ८।।
ये तीक्ष्णमन्त्राः सचिवा भुज्यन्ते सह तेन वै।
विषमेषु रथाः शीघ्रं मन्दसारथयो यथा।। ९।।

हे राक्षस! राज्य की रक्षा तीक्ष्ण स्वभाव के, प्रजा के बहुत प्रतिकूल चलने वाले और उदण्ड राजा के द्वारा नहीं हो सकती। जो तीक्ष्ण उपायों का उपदेश करते हैं, वे मंत्री भी राजा के साथ उन्हीं कष्टों को भोगते हैं। जैसे सारथी के मूर्ख होने पर रथ को भी ऊँची नीची भूमि पर जा कर चोट सहनी पड़ती है।

बहवः साधवो लोके युक्तधर्ममनुष्ठिताः।
परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः।। १०।।
स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण।
रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मेषा गोमायुना यथा।। ११।।

बहुत सज्जन लोग भी संसार में अपने उचित धर्म का पालन करते हैं, पर दूसरों के अपराध से परिवार सहित नष्ट हो जाते हैं। जो प्रजा उलटा चलने वाले और तीक्ष्ण स्वभाव के राजा के संरक्षण में होती है, वह उसी प्रकार उन्नति को प्राप्त नहीं होती जैसे गीदड़ की रक्षा में रखी गयी भेड़ें।

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः॥ १२॥
तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं मया।
अत्र त्वं शोचनीयोऽसि ससैन्यो विनशिष्यसि॥ १३॥

इसलिये हे रावण! तुम जैसा कर्कश, दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय राजा जिन राक्षसों का है, वे अब अवश्य ही विनाश को प्राप्त होंगे। तुम्हारे कारण से काकतालीय न्याय से अब मेरे ऊपर भी संकट आ गया है, पर मुझे तो तुम्हारे लिये शोक है कि तुम सेना सहित नष्ट हो जाओगे।

मां निहत्य तु रामोऽसावचिरात् त्वां वधिष्यति।
अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये चाप्यरिणा हतः॥ १४॥
दर्शनादेव रामस्य हतं मामवधारय।
आत्मानं च हतं विद्धि हृत्वा सीतां सबान्धवम्॥ १५॥
आनयिष्यसि चेत् सीतामाश्रमात् सहितो मया।
नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः॥ १६॥

मुझे मार कर वे राम शीघ्र ही तुम्हें भी मार देंगे। मैं तो शत्रु के द्वारा मृत्यु को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाऊँगा, पर तुम सीता का हरण कर अपने आपको बान्धवों सहित मारा हुआ समझना। यदि तुम मेरे साथ जाकर आश्रम से सीता को ले आओगे तो न तो तुम रहोगे, न मैं रहूँगा, न लंका रहेगी, और न ये राक्षस रहेंगे।

निवार्यमाणस्तु मया हितैषिणा
न मृष्यसे वाक्यमिदं निशाचर।
परेतकल्पा हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्॥ १७॥

हे निशाचर! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। मैं तुम्हें भलाई की बात कह रहा हूँ, पर तुम्हें वह सहन नहीं हो रही है। वास्तव में जिनकी आयु समाप्त हो गयी है, ऐसे मरणासन्न मनुष्य हितैषियों द्वारा कही गयी कल्याण की बातों को ग्रहण नहीं करते हैं।

छत्तीसवाँ सर्ग

मारीच का सुनहले मृग का रूप धारण करके श्रीराम के आश्रम पर जाना और सीता का उसे देखना।

किं नु कर्तुं मया शक्यमेवं त्वयि दुरात्मनि।
एष गच्छाम्यहं तात स्वस्ति तेऽस्तु निशाचर॥ १॥
प्रहृष्टस्त्वभवत् तेन वचनेन स राक्षसः।
परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत्॥ २॥

मारीच रावण से कहने लगा कि तुम्हारे दुरात्मा बनने पर मैं क्या कर सकता हूँ? मैं अब हे तात राक्षस! तुम्हारे साथ चलता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। मारीच के उस वचन से रावण राक्षस बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे कस कर छाती से लगा कर बोला।

एतच्छौटीर्ययुक्तं ते मच्छन्दवशवर्तिनः।
इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः॥ ३॥
समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः।
ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः॥ ४॥

यह तुमने चतुराई की बात की। अब तुम मेरे वश में हो गये हो। अब तुम मारीच हो, पहले कोई और राक्षस थे। इसके बाद राक्षसों के राजा रावण ने मारीच के साथ जा कर दण्डकारण्य में प्रवेश कर श्रीराम के आश्रम को देखा।

अवतीर्य रथात् तस्मात् ततः काञ्चनभूषणात्।
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत्॥ ५॥
एतद् रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम्।
क्रियतां तत् सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः॥ ६॥

फिर रावण स्वर्णभूषित विमान से उतर कर और मारीच का हाथ पकड़ कर बोला कि यह केलों के पेड़ों से घिरा हुआ राम का आश्रम है। हे सखे! अब तुम जल्दी ही वह काम करो, जिसके लिये हम आए हैं।

स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा।
मृगो भूत्वाऽऽश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह॥ ७॥
स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम्।
मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः॥ ८॥
रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः।
किंचिदभ्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः॥ ९॥
मधूकनिभपार्श्वश्च कञ्जकिञ्जल्कसंनिभः।

रावण की बात सुन कर मारीच राक्षस तब मृग का रूप धारण कर राम के आश्रम के द्वार पर घूमने लगा।

वह उस रूप को धारण कर बहुत अद्‌भुत दिखाई दे रहा था। उसके सींगों के अगले भाग इन्द्रनील मणि से बने से प्रतीत होते थे। मुख का रंग लाल कमल के समान था। मुख पर सफेद और काले धब्बे थे। उसने गर्दन कुछ उठा रखी थी। उसका पेट इन्द्रनील मणि जैसा था। उसके बगल का भाग महुए के पत्ते के समान सफेद था। शरीर का रंग कमल के केसर की तरह था।

वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः।। १०।।
इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः।
रौप्यैर्बिंदुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियदर्शनः।। ११।।
विटपीनां किसलयान् भक्षयन् विचचार ह।

उसके खुर वैदूर्यमणि के समान, जाँघें पतली, शरीर गठा हुआ और पूँछ का ऊपरी भाग इन्द्रधनुष के समान सुशोभित हो रहा था। चाँदी की सी सफेद सैकड़ों बिन्दुओं से चित्रित हो कर वह बड़ा सुन्दर लग रहा था। पेड़ों के पत्ते खाता हुआ वह वहाँ विचरण कर रहा था।

कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः।। १२।।
समाश्रयन् मन्दगतिं सीतासंदर्शनं ततः।
राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः।। १३।।
रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम्।

सीता को देखने के लिये वह केले के बगीचे में जा कर कनेर के कुंज में चला गया और धीरे-धीरे घूमने लगा। कमल के समान सुन्दर कमर वाला वह महान मृग बहुत सुन्दर लग रहा था। राम के आश्रम के समीप वह सुखपूर्वक भ्रमण करने लगा।

पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः।। १४।।
गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते।
विक्रीडंश्च क्वचिद् भूमौ पुनरेव निषीदति।। १५।।
आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति।

वह श्रेष्ठ मृग आश्रम से चला जाता था, फिर वापिस आ कर घूमने लगता था, थोड़ी दूर जाता फिर जल्दी से लौट आता था। खेलता हुआ वह वहीं भूमि पर बैठ जाता था। उस मृगरूप धरे राक्षस की यही इच्छा थी कि सीता की मुझ पर दृष्टि पड़ जाये।

तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना।। १६।।
कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिरानना।
अनर्हा वनवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम्।। १७।।
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना।

उसी समय सुन्दर आँखों वाली और रमणीय मुख वाली सीता फूलों को चुनती हुई वहाँ विचरण करने लगी। उस परम सुन्दरी सीता ने, जो कि वनवास के योग्य नहीं थी, उस हिरण को, जो कि ऐसा प्रतीत होता था मानो उसे रत्नों से बनाया गया है और उसके अंगों में विचित्र मुक्तामणियाँ जड़ी हुई हैं, देखा।

तं वै रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम्।। १८।।
विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत।
स च तां रामदयितां पश्यन् मायामयो मृगः।
विचचार ततस्तत्र दीपयन्निव तद् वनम्।। १९।।

उस मृग को जिसके दाँत और ओष्ठ बड़े सुन्दर थे। जिसके रोयें चाँदी तथा दूसरी धातुओं के से प्रतीत हो रहे थें। सीता विस्मय से खिली आँखों से स्नेह के साथ देखने लगी। वह मायावी मृग भी राम की प्यारी सीता को देखता हुआ, उस वन को अपनी सुन्दरता से प्रज्वलित सा करता हुआ वहीं विचरण करने लगा।

सैंतीसवाँ सर्ग

कपट मृग को देख कर लक्ष्मण का सन्देह, सीता का उस मृग को जीवित या मृत पकड़ने के लिये हठ, श्रीराम को लक्ष्मण का समझा कर और सीता की रक्षा का भार सौंप कर उस मृग को मारने के लिये जाना।

प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी।
भर्तारमपि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम्।। १।।
आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते।
आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज।। २।।
तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।
वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम्।। ३।।

शुद्ध सोने के समान रंगवाली, सुन्दर अंगों वाली सीता प्रसन्न हो कर अपने पति को और लक्ष्मण को भी आयुध

ले कर आने के लिये पुकारने लगी। वह बार-बार उन्हें पुकारती थी और मृग को अच्छी तरह देखने लग जाती थी। वह कहने लगी कि हे आर्यपुत्र! अपने छोटे भाई के साथ जल्दी जाओ। सीता के द्वारा बुलाये गये वे दोनों नरश्रेष्ठ राम लक्ष्मण वहाँ आये और उस स्थान को देखते हुए उन्होंने मृग को देखा।

शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव।। ४।।
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः।
एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता।। ५।।
उवाच सीता संहृष्टा, मृगो हरति मे मनः।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति।। ६।।

उसको देख कर लक्ष्मण ने शंका करते हुए कहा कि हे पृथ्वीनाथ! इस प्रकार रत्नों से जड़ाऊ सा लगने वाला मृग पृथ्वी पर कहीं नहीं है। इसलिये इसमें कोई शक नहीं है कि यह माया है। ककुत्स्थवंशी लक्ष्मण के ऐसा कहते हुए, पवित्र मुस्कराहट वाली और प्रसन्नता से भरी हुई सीता, उसे रोक कर बोली कि इस मृग ने मेरा मन हर लिया है, इसलिये हे महाबाहु! इसे लाओ। यह हमारे खेल के लिये होगा।

इहाश्रमपदेऽस्माकं बहवः पुण्यदर्शनाः।
मृगाश्चरन्ति सहिताश्चमराः सृमरास्तथा।। ७।।
न चान्यः सदृशो राजन् दृष्टः पूर्वं मृगो मया।
अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसम्पच्च शोभना।। ८।।
मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे।

यहाँ हमारे आश्रम में बहुत से दर्शनीय मृग, चमर और सृमर इकट्ठे आ कर विचरण करते हैं, पर इसके जैसा कोई भी मृग मैंने पहले नहीं देखा। इसका रूप बड़ा सुन्दर है, इसकी शोभा बहुत अच्छी है, इसकी आवाज भी बहुत प्यारी है। विचित्र अंगों वाला यह मृग बड़ा अनोखा है। यह मेरे हृदय को चुरा रहा है।

यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव।। ९।।
आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति।
समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः।। १०।।
अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति।
भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो।। ११।।
मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति।

यदि यह मृग जीते जी ही पकड़ में आ जाये तो आश्चर्य जनक होगा और सबको विस्मय में डालेगा। जब हमारा वनवास समाप्त हो जायेगा और जब हम पुनः राज्य में जायेंगे, तब यह अन्तःपुर में शोभा बढ़ाने के लिये रहेगा। हे प्रभो! यह मृग वहाँ भरत, आप, मेरी सासुओं और मेरा भी अपने रूप से विस्मयजनक होगा।

जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः।। १२।।
अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति।
निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि।। १३।।
शष्पवृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम्।
कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम्।। १४।।
वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम।

हे नरशार्दूल! यदि यह मृग जीवित पकड़ में न आ सके तब इसका चमड़ा तो सुन्दर होगा ही। इसके मारे जाने पर घासफूस की चटाई पर बिछाई हुई इसकी सुनहरी खाल पर मैं आपके साथ बैठना चाहती हूँ। यद्यपि पति को इस प्रकार अपनी इच्छा पूर्ति में लगाना, स्त्रियों के लिये उचित नहीं है और यह भयंकर स्वेच्छाचार है, पर इस प्राणी के सुन्दर शरीर ने मेरे हृदय में विस्मय उत्पन्न कर दिया है।

बभूव राघवस्यापि मनो विस्मयमागतम्।
इति सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम्।। १५।।
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः।
उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः।। १६।।
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लसितामिमाम्।
रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति।। १७।।

सीता के ये वचन सुन कर और अद्भुत मृग को देख कर उस के रूप से लोभित हुए और सीता के द्वारा प्रेरित किये हुए श्रीराम ने भाई लक्ष्मण से यह कहा कि देखो लक्ष्मण! अपने रूप की श्रेष्ठता के कारण इस मृग ने सीता की इच्छा को कितना जागृत कर दिया है। अपनी इसी सुन्दरता के कारण आज यह मृग जीवित नहीं रहेगा।

प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः।
शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकविन्दुभिः।। १८।।
मसारगल्वर्कमुखः शङ्खमुक्तानिभोदरः।
कस्य नामानिरूप्योऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः।। १९।।

इस मृग के शरीर पर सुनहरे बिन्दुओं से युक्त सीधी और टेढ़ी रोओं की सुन्दर रेखाएँ बड़ी शोभा पा रही है। इन्द्रनील मणि के बने हुए प्याले के समान इसका मुख है। शंख और मोतियों के समान इसका पेट सफेद है। यह अवर्णनीय मृग किसके मन को मोहित नहीं करेगा?

एतस्य मृगरत्नस्य परार्ध्ये काञ्चनत्वचि।
उपवेक्ष्यति वैदेही मया सह सुमध्यमा।। २०।।
न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी।
भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः।। २१।।

इस श्रेष्ठ मृग की बहूमूल्य सुनहरी खाल पर यह सुन्दर वैदेही मेरे साथ बैठेगी। कदली, प्रियक, प्रवेण और अविक इन जन्तुओं की भी त्वचा इस मृग की त्वचा के समान मुलायम नहीं होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

यदि वायं तथा यन्मां भवेद् वदसि लक्ष्मण।
मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया।। २२।।
इह त्वं भव संनद्धो, यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम्।
अस्यामायत्तमस्माकं यत् कृत्यं रघुनन्दन।। २३।।
अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम्।

हे लक्ष्मण! यदि वह वैसा ही हो, जैसा तुम कहते हो, अर्थात राक्षस हो, तो भी मुझे इस राक्षस का वध तो करना ही चाहिये। यहाँ तुम युद्ध के यन्त्रों से तैयार हो कर सावधान हो कर सीता की रक्षा करो। हमारे सारे कार्य सीता की रक्षा में निहित हैं। हे रघुनन्दन! मैं या तो इस मृग को पकड़ लूँगा या मार दूँगा।

यावद् गच्छामि सौमित्रे मृगमानयितुं द्रुतम्।। २४।।
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या मृगत्वचि गतां स्पृहाम्।
अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया।। २५।।
यावत् पृषतमेकेन सायकेन निहन्म्यहम्।
हत्वैतच्चर्म चादाय शीघ्रमेष्यामि लक्ष्मण।। २६।।

हे लक्ष्मण! देखो सीता मृग की त्वचा के लिये कितनी उत्कंठित हो रही है। इसलिये मैं मृग को लाने के लिये जल्दी जाता हूँ। तुम सीता के साथ सावधान हो कर तब तक रहना जब तक इस मृग को एक ही बाण से मार कर और इसका चमड़ा ले कर जल्दी आता हूँ।

प्रदक्षिणेनातिबलेन पक्षिणा
जटायुषा बुद्धिमता च लक्ष्मण।
भवाप्रमत्तः प्रतिगृह्य मैथिलीं
प्रतिक्षणं सर्वत एव शङ्कितः।। २७।।

हे लक्ष्मण! जटायु बड़े बुद्धिमान, बलवान, और सामर्थ्यशाली हैं, तुम उनके साथ सीता को अपने संरक्षण में ले सावधान रहना। हर समय और सब तरफ से चौकन्ने रहना।

अड़तीसवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा मारीच का वध और उसके द्वारा सीता और लक्ष्मण को पुकारने का शब्द सुन कर श्रीराम की चिन्ता।

तथा तु तं समादिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः।
बद्धासिर्धनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः।। १।।
अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिर्महावने।
अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानं कदाचन।। २।।
शङ्कितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम्।
दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित्।। ३।।
छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम्।
मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात् प्रकाशते।। ४।।

तब श्रीराम भाई को ऐसा आदेश दे कर तलवार बाँध और धनुष ले कर उसी तरफ दौड़े जिधर वह मृग था। वे धनुषपाणी उस मृग का पीछा कर रहे थे और वह मृग उन्हें देख-देख कर उस महा वन में दौड़ा चला जा रहा था। कभी वह छलांग मार कर दूर चला जाता था तो कभी समीप आ कर पकड़े जाने का लोभ उत्पन्न कर देता था। कभी वह डरा हुआ, घबराया हुआ, आकाश में उछलता था। कभी वह दिखाई देता था तो कभी वन के किन्हीं भागों में उसी प्रकार छिप जाता और निकल आता था जैसे शरद ऋतु का चन्द्रमा बादलों के टुकड़ों में कभी छिप जाता है और कभी बाहर निकल आता है। एक क्षण वह समीप दिखाई देता था तो दूसरे क्षण में दूर पर जा कर चमकने लगता था।

दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम्।
स दूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः।। ५।।
आसीत् क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः।
अथावतस्थे सुश्रान्तश्छायामाश्रित्य शाद्वले।। ६।।

इस प्रकार लुका छिपी करता हुआ वह मृगरूप में मारीच श्रीराम को आश्रम से दूर खींच कर ले गया। उसके द्वारा विवश किये हुए और मोहित श्रीराम को तब क्रोध आ गया और वे थक कर छाया का आश्रय ले कर घास में खड़े हो गये।

भयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः।
सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनम्।। ७।।
संधाय सुदृढे चापे विकृष्य बलवद्बली।
तमेव मृगमुद्दिश्य श्वसन्तमिव पन्नगम्।। ८।।
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम्।

तब क्रुद्ध हुए श्रीराम ने शत्रु को नष्ट करने वाले सूर्य की किरणों के समान जगमगाते हुए बाण को निकाला और उस ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित, प्रदीप्त प्रज्वलित और साँस लेते हुए सर्प के समान भयानक बाण को उन बलवान श्रीराम ने अपने सुदृढ़ धनुष पर रख कर उसे बल पूर्वक खींच कर छोड़ दिया।

शरीरं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः।। ९।।
मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसंनिभः।
तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत् स भृशातुरः।। १०।।
व्यनदद् भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः।
स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम्।। ११।।
सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च।

उस विद्युत के समान तेजस्वी बाण ने मृग बने हुए मारीच के शरीर को भेद कर उसके हृदय को भी चीर दिया। तब वह बहुत बेचैन हो कर ताड़ के बराबर ऊँचा उछला और गिर पड़ा। धरती पर पड़ा हुआ वह, जो अब मरने वाला था, भयानक रूप से गर्जना करने लगा। फिर वह यह जान कर कि उचित समय आ गया जोर से राम के समान ही हे सीते! हे लक्ष्मण! ऐसा कह कर चिल्लाया।

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम्।। १२।।
रामो रुधिरसिक्ताङ्गं चेष्टमानं महीतले।
जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन्।। १३।।
मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्तं लक्ष्मणेन तु।
तत् तथा ह्यभवच्चाद्य मारीचोऽयं मया हतः।। १४।।

उस भयानक दिखाई देने वाले राक्षस को भूमि पर गिरा हुआ और खून से लथपथ हो जमीन पर तड़पते हुए देख कर राम मन में लक्ष्मण की बात याद करते हुए सीता की चिन्ता करने लगे। वे सोचने लगे कि मुझे लक्ष्मण ने पहले जो कहा था, वह ठीक निकला। यह मारीच की माया थी। आज मारीच मेरे द्वारा मारा गया है।

हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम्।
ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत्।। १५।।
लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति।
इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः।। १६।।
तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम्।
राक्षसं मृगरूपं तं हत्वा श्रुत्वा च तत्स्वनम्।
त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा।। १७।।

पर यह राक्षस जो हा सीते! और हा लक्ष्मण! ऐसा जोर से चिल्ला कर मरा है। ऐसा सुनकर सीता की क्या अवस्था होगी? और महाबाहु लक्ष्मण भी किस अवस्था को प्राप्त हो गये होंगे, ऐसा सोच कर धर्मात्मा राम के रोंगटे खड़े हो गये। उस समय राम के हृदय में विषाद के कारण तीव्र भय समा गया। वे तब शीघ्रता करते हुए जन स्थान के निकट अपने आश्रम की तरफ चले।

उन्तालीसवाँ सर्ग

सीता के मार्मिक वचनों से प्रेरित होकर लक्ष्मण का श्रीराम के पास जाना।

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम्।। १।।
नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वावतिष्ठते।
क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम्।। २।।

पीड़ा से भरा हुआ और अपने पति की आवाज से मिलता हुआ पुकारने का स्वर सुन कर सीता लक्ष्मण से बोली कि जाओ राम के विषय में मालूम करो। मैंने उनकी वह आवाज सुनी है, उन्होंने बहुत पीड़ित हो कर जो चिल्ला कर बुलाया है, उसे सुन कर मेरे प्राण और हृदय अपने स्थान पर नहीं रहे हैं।

आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि।
तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम्।। ३।।
रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम्।
न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम्।। ४।।

तुम्हें वन में चिल्लाते हुए अपने भाई की रक्षा करनी चाहिये। तुम शरण के इच्छुक अपने भाई के पास जल्दी भाग कर जाओ। जैसे साँड सिंहों के बस में आ जाये वैसे ही तुम्हारे भाई शायद राक्षसों के वश में आ गये हैं। पर सीता के ऐसा कहने पर भी लक्ष्मण भाई की आज्ञा को समझ कर वहाँ से नहीं गये।

तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा।
सौमित्रि मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्।। ५।।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते।। ६।।

तब जनकपुत्री सीता क्षुब्ध हो कर वहाँ लक्ष्मण जी से बोली कि हे लक्ष्मण! तुम मित्र के रूप में भाई के शत्रु हो, जो तुम ऐसी अवस्था में भी भाई के पास नहीं जा रहे हो। हे लक्ष्मण! तुम मुझे प्राप्त करने के लिये राम को नष्ट हुआ देखना चाहते हो।

लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्।
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते।। ७।।
तेन तिष्ठसि विस्रब्धं तमपश्यन् महाद्युतिम्।
किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत्।। ८।।
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः।

निश्चय ही तुम्हारे मन में मेरे लिये लोभ हो गया है, इसीलिये तुम राम के पीछे नहीं जा रहे हो। मैं समझती हूँ कि इस समय तुम्हें भाई से प्रेम नहीं है, तुम्हें भाई पर आया संकट अधिक प्यारा है। इसी कारण तुम उन महा तेजस्वी को न देख कर भी यहाँ निश्चिंत हो कर खड़े हो। जिनकी सेवा को प्रधान कर्त्तव्य समझ कर तुम यहाँ आये हो, उनके ही संकट में पड़ने पर, मेरे साथ ही यहाँ खड़े रहने से क्या होगा?

एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम्।। ९।।
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव।
न त्वामस्मिन् वने हातुमुत्सहे राघवं विना।। १०।।
अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि।
हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु संतापस्त्यज्यतां तव।। ११।।

हरिणी के समान डरी हुई, शोकमग्न और आँसू बहाती हुई सीता से लक्ष्मण ने कहा बिना राम की आज्ञा के मैं आपको इस वन में नहीं छोड़ सकता। श्रीराम की शक्ति को बड़े बलवानों को सेनाओं से भी नहीं रोका जा सकता, इसलिये आपके हृदय में शान्ति होनी चाहिये। आप शोक को छोड़ दें

आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम्।
न स तस्य स्वरो व्यक्तं माया तस्य च रक्षसः।। १२।।
न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना।
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे।। १३।।
कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः।
खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति।। १४।।
राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने।
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि।। १५।।

तुम्हारे पति उस श्रेष्ठ हरिण को मार कर जल्दी ही आ जायेंगे। यह स्पष्ट है कि वह आवाज राम की नहीं थी। वह उस राक्षस की माया थी। हे विदेहपुत्री, सुन्दरी सीता, तुम्हें उस महात्मा राम ने मेरे पास धरोहर के रूप में छोड़ हुआ है; इसलिये मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। हे कल्याणी! खर के वध तथा दूसरे जनस्थान के राक्षसों के वध के बाद राक्षस हमारे शत्रु बने हुए हैं। हिंसा ही जिनका मनोरंजन है, ऐसे राक्षस इस महान वन में तरह तरह की बोलियाँ बोला करते हैं। इसलिये हे वैदेही! तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु क्रुद्धा संरक्तलोचना।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम्।। १६।।
अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।। १७।।
रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे।

लक्ष्मण के द्वारा यह कहे जाने पर सीता की आँखे क्रोध से लाल हो गयीं और वह उस सत्यवादी लक्ष्मण से कठोरता के साथ बोली कि हे अनार्य, क्रूरकर्म, हे निर्दय, हे कुलकलंक! मैं जानती हूँ कि तुझे राम की मुसीबत प्यारी है। इसीलिये राम को कष्ट में देख कर तू इस प्रकार बोलता है।

नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद् भवेत्।। १८।।
त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु।
समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम्।। १९।।
रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले।

तुम्हारे जैसे छिपे हुए सदा क्रूर शत्रुओं के ऐसे पापपूर्ण विचार होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारे सामने ही अपने प्राणों को छोड़ दूँगी। मैं राम के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रहूँगी।

इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम्।। २०।।
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः।
उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम।। २१।।
न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे।
श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसंनिभम्।। २२।।

सीता के द्वारा जब इस प्रकार रोंगटे खड़े कर देने वाली कठोर बातें नही गयीं, तब जितेन्द्रिय लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर सीता से कहा कि आप मेरे लिये देवता के समान है। मैं आपको उत्तर नहीं दे सकता।

उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः।
न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया।। २३।।
धिक् त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे।
स्त्रीत्वाद् दुष्टस्वभावेन, गुरुवाक्ये व्यवस्थितम्।। २४।।
गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने।

हे जनकपुत्री, वैदेही! पर मैं आपकी इस प्रकार की बातों को सहन नहीं कर सकता। आपकी बातें मेरे कानों को तपाये हुए लोहे के समान लगी हैं। हे वन में रहने वाले सारे प्राणियों! आप सब साक्षी हैं, आप सुनो! मैंने न्याय के अनुसार बात कही, पर आपने ऐसे कठोर वचन बोले। आपको धिक्कार है। मैं तो भाई की आज्ञा पालन में लगा हूँ, पर आप स्त्री और दुष्ट स्वभाव के कारण मुझ पर ऐसी शंका पर रही हैं। आपको धिक्कार है। आज आपका विनाश हो रहा है। हे सुन्दरी! तुम्हारा कल्याण हो। मैं वहीं जाता हूँ जहाँ वे काकुत्स्थ हैं।

अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः।। २५।।
लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रवाष्पपरिप्लुता।। २६।।

पता नहीं मैं राम के साथ यहाँ लौटने पर आपको यहाँ देख पाऊँगा कि नहीं। लक्ष्मण के ऐसा कहने पर तीव्र आँसुओं की धारा बहाती हुई, रोती हुई, जनक पुत्री ने उत्तर में यह बात कही।

गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः।। २७।।
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे।। २८।।
इति लक्ष्मणमाश्रुत्य सीता शोकसमन्विता।
पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह।। २९।।

हे लक्ष्मण! मैं राम के बिना, गोदावरी में डूब जाऊँगी, या गले में फाँसी लगा लूँगी, या आग में प्रवेश कर जाऊँगी, पर मैं राम के बिना किसी अन्य पुरुष का स्पर्श नहीं करूँगी, ऐसे लक्ष्मण से प्रतिज्ञा कर, शोक में भरी हुई सीता रोती हुई, दुःख के कारण अपने पेट को दोनों हाथों से पीटने लगी।

तामार्तरूपां विमना रुदन्तीं
सौमित्रिरालोक्य विशालनेत्राम्।
आश्वासयामास न चैव भर्तु—
स्तं भ्रातरं किंचिदुवाच सीता।। ३०।।

उस बड़े नेत्रों वाली, दुःखी सीता को, रोता हुआ देखकर उदास मन से लक्ष्मण ने आश्वासन दिया, पर वह पति के भाई से कुछ भी नहीं बोली।

ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः
कृताञ्जलिः किंचिदभिप्रणम्य।
अवेक्षमाणो बहुशः स मैथिलीं
जगाम रामस्य समीपमात्मवान्।। ३१।।

तब लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर और थोड़ा झुक कर सीता का अभिवादन किया और वे मनस्वी सीता की तरफ बार बार देखते हुए राम के समीप जाने के लिये चल दिये।

चालीसवाँ सर्ग

रावण का साधुवेश में सीता के पास जाकर उसका परिचय पूछना और सीता का आतिथ्य के लिये आमंत्रित करना। रावण द्वारा उसे अपनी पटरानी बनाने की इच्छा प्रकट करना और सीता द्वारा उसे फटकारना।

तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक्।। १।।
श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही।
वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू।। २।।

वन के बीच में खड़े हुए रावण को जब लक्ष्मण के चले जाने पर अवसर मिल गया, तो वह तुरन्त सन्यासी का वेश बना कर सीता के पास आया। उसने स्वच्छ गेरुआ वस्त्र पहन रखा था, उसके सिर पर चोटी थी, उसने छाता लिया हुआ और जूते पहने हुए थे, बायें कन्धे पर उसने डंडा और कमण्डलु रखे हुए थे।

सहसा भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः।
अतिष्ठत् प्रेक्ष्य वैदेहीं रामपत्नीं यशस्विनीम्।। ३।।
शुभां रुचिरदन्तोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।
आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम्।। ४।।
दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन्।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः।। ५।।

जैसे कूँआ तिनकों से ढका हुआ हो, वैसे ही उस भव्यरूप से अपनी अभव्यता को छिपा कर, वह वहाँ राम की पत्नी यशस्विनी सीता को देख कर खड़ा हो गया। उस समय सीता जी पर्णशाला में बैठी हुई शोकमग्न हो आँसू बहा रही थीं। उनके दाँत और ओठ बहुत सुन्दर थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान था। इस प्रकार की उन सुन्दरी को देख कर रावण काम के बाणों से विद्ध होकर वेदमन्त्र का उच्चारण करने लगा। वह राक्षसों का राजा तब उस एकान्त में विनयपूर्वक सीता जी से बोला।

इह शाखामृगाः सिंहा द्वीपिव्याघ्रमृगा वृकाः।
ऋक्षास्तरक्षवः कङ्काः कथं तेभ्यो न बिभ्यसे।। ६।।
मदान्वितानां घोराणां कुञ्जराणां तरस्विनाम्।
कथमेका महारण्ये न बिभेषि वरानने।। ७।।
कासि कस्य कुतश्च त्वं किं निमित्तं च दण्डकान्।
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान्।। ८।।

यहाँ वानर, सिंह चीते, व्याघ्र, भेड़िये, रीछ, लकड़बग्धे और कंक पक्षी रहते हैं। क्या तू उनसे डरती नहीं है? हे सुन्दरी! यहाँ मतवाले, भयानक, बलशाली हाथियों के जंगल में अकेली रहते हुए तुम्हें डर नहीं लगता। तुम कौन हो? कहाँ से आयी हो? और किस लिये भयानक राक्षसों वाले इस दण्डकारण्य में अकेली विचरण करती हो।

रावणेन तु वैदेही तदा पृष्टा जिहीर्षुणा।
परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना।। ९।।
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः।
सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया।। १०।।
मम भर्ता महातेजा, वयसा पंचविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि, मम जन्मनि गण्यते।। ११।।

अपहरण की इच्छा के लिये सन्यासी वेशधारी रावण के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर सीता ने अपना परिचय देना आरम्भ किया। वे कहने लगीं कि मैं मिथिला के राजा महात्मा जनक की पुत्री हूँ। हे भद्र! मेरा नाम सीता है। मैं राम की प्यारी रानी हूँ। विवाह के समय मेरे महा तेजस्वी पति की आयु पच्चीस वर्ष की थी और मेरी अट्ठारह वर्ष की थी।

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी।। १२।।
तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः।। १३।।
तस्मिन् सम्भ्रियमाणेतु राघवस्याभिषेचने।

मैंने विवाह के बाद बारह वर्ष तक इक्ष्वाकुओं के घर में रह कर सब कामनाएँ पूरी की हैं और पति के साथ सारे मानवोचित भोग भोगे हैं। तेरहवें वर्ष में सामर्थ्यशाली राजा दशरथ ने अपने मंत्रियों के साथ राम के अभिषेक के लिये विचार विमर्श किया। तब जब राम के अभिषेक की तैयारी होने लगी।

परिगृह्य तु कैकेयी श्वशुरं सुकृतेन मे।। १४।।
मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम्।
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसंधं नृपोत्तमम्।। १५।।
नाद्य भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न पास्ये न कदाचन।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यदभिषिच्यते।। १६।।
इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स पार्थिवः।
अयाचतार्थैरन्वर्थैर्न च याञ्चां चकार सा।। १७।।

उस समय कैकेयी ने मेरे ससुर को उनके पुण्य की शपथ दिलाकर, उन सत्यवादी श्रेष्ठ राजा से मेरे पति का वन में जाना और भरत का अभिषेक ये दो वर माँग लिये। उसने कहा कि यदि राम का अभिषेक किया जायेगा तो न तो मैं आज खाऊँगी, न सोऊँगी, न पीऊँगी और यही मेरे जीवन का अन्त होगा। कैकेयी के ऐसा कहने पर मेरे ससुर राजा ने उससे प्रार्थना की कि वह और दूसरी उत्तम वस्तुएँ माँग ले, पर उसने उनकी माँग पूरी नहीं की।

रामेति प्रथितो लोके सत्यवाञ्शीलवाञ्शुचिः।
विशालाक्षो महाबाहुः सर्वभूतहिते रतः।। १८।।
अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम्।
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच द्रुतं वचः।। १९।।

मेरे पति राम संसार में, सत्यवान, शीलवान, और पवित्र विचारों वाले के रूप में प्रसिद्ध हैं। वे बड़ी आँखों और लम्बी बाहों वाले, सदा सब लोगों के हित में लगे रहते हैं। जब राम अभिषेक के लिये पिता के समीप गये, तब कैकेयी ने मेरे पति से तुरन्त यह बात कही कि—

तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव।
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम्।। २०।।
त्वया तु खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च।
वने प्रव्रज काकुत्स्थ पितरं मोचयानृतात्।। २१।।

हे राम! तुम्हारे पिता जी ने जो आज्ञा दी है, उसे मेरे मुख से सुनो। यह निष्कंटक राज्य भरत को देना है। तुम्हें तो निश्चितरूप से चौदह वर्ष तक वन में रहना है। इसलिये हे काकुत्स्थ! तुम वन में जाओ और पिता को असत्य भाषण से छुड़ाओ।

तथेत्युवाच तां रामः कैकेयीमकुतोभयः।
चकार तद्वचः श्रुत्वा भर्ता मम दृढव्रतः॥ २२॥
दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
एतद् ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम्॥ २३॥

तब राम ने निर्भय होते हुए उससे कहा कि अच्छा ऐसा ही होगा। मेरे पति व्रत पर दृढ़ रहने वाले हैं, इसलिये उन्होंने वह बात स्वीकार कर ली। राम देते ही हैं, लेते नहीं हैं, सत्य बोलते हैं, झूठ नहीं, हे ब्राह्मण! यह उनका श्रेष्ठ व्रत है, जिसे उन्होंने धारण किया हुआ है।

तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्।
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा॥ २४॥
स भ्राता लक्ष्मणो नाम ब्रह्मचारी दृढव्रतः।
अन्वगच्छद् धनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह॥ २५॥
जटी तापसरूपेण मया सह सहानुजः।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं धर्मनित्यो दृढव्रतः॥ २६॥

राम के सौतेले भाई लक्ष्मण नाम के हैं, वे बड़े तेजस्वी हैं। वे पुरुष श्रेष्ठ समर में शत्रुओं को नष्ट करने वाले और राम के सहायक हैं। वे लक्ष्मण नाम के उनके भाई ब्रह्मचारी हैं और व्रत पर दृढ़ रहते हैं। वे राम को मेरे साथ वन में आते देख स्वयं भी धनुष हाथ में लेकर साथ साथ आ गये। इस प्रकार धर्म का नित्य पालन करने वाले राम जटा धारण कर तपस्वी के वेश में मेरे और छोटे भाई के साथ दण्डकारण्य में आये हुए हैं।

ते वयं प्रच्युता राज्यात् कैकेय्यास्तु कृते त्रयः।
विचराम द्विजश्रेष्ठ वनं गम्भीरमोजसा॥ २७॥
समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया।
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्॥ २८॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार हम कैकेयी के कारण तीनों राज्य से अलग होकर इस गहरे वन में अपने बल के सहारे ही विचरण करते हैं। यदि आप यहाँ ठहर सकते हैं तो थोड़ी देर ठहरिये। अभी मेरे पति पर्याप्त वन्य पदार्थ लेकर आने वाले हैं।

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः।
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज॥ २९॥
एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः।
प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः॥ ३०॥

हे ब्राह्मण! आप भी अपना नाम, कुल और गोत्र ठीक ठीक बताइये। आप दण्डकारण्य में अकेले क्यों घूम रहे हैं? राम की पत्नी सीता के इस प्रकार कहने पर वह महाबली राक्षसों का राजा कठोरता से बोला।

येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः॥ ३१॥
त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम्।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते॥ ३२॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव॥ ३३॥

हे सीता! जिसने देवताओं, असुरों और मनुष्यों सहित सारे लोकों को भयभीत कर रखा है, मैं वह रावण नाम का राक्षसों का राजा हूँ। हे अनिन्दिते! मैं सुवर्ण जैसे रंग वाली तुम्हे रेशमी वस्त्र पहने देख कर अपनी स्त्रियों में इच्छा नहीं रखता हूँ। मैं अब तक इधर उधर से जितनी भी स्त्रियों को हर कर लाया हूँ, तुम उन सबमें मेरी पटरानी बन जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।

लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि॥ ३४॥
तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि।
न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि॥ ३५॥
पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः।
सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि॥ ३६॥

मेरी राजधानी लंका नाम की महा पुरी समुद्र के बीच में है। वह समुद्र से घिरी हुई है और पहाड़ के शिखर पर बसी हुई है। हे सीता! वहाँ मेरे साथ तुम ऐसे अनेक वनों में विचरण करोगी कि हे भामिनी! फिर तुम्हें इस वनवास की इच्छा ही नहीं होगी। हे सीता! यदि तुम मेरी भार्या बन जाओगी तो सारे आभूषणों से अलंकृत पाँच हजार दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी।

रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा।
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम्॥ ३७॥
महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम्।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता॥ ३८॥

रावण के द्वारा ऐसा कहने पर जनकपुत्री सुन्दरी सीता ने क्रुद्ध हो कर उस राक्षस का अनादर कर उत्तर दिया। मेरे पति राम महान गिरि के समान अविचल, महेन्द्र के समान पराक्रमी और महान सागर के समान क्षोभ रहित हैं। मैं उन्हीं में अनुराग रखती हूँ।

सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम्।
सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता॥ ३९॥

महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम्।
नृसिंहं सिंहसंकाशमहं राममनुव्रता।।४०।।
पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम्।
पृथुकीर्तिं महाबाहुमहं राममनुव्रता।।४१।।

वे सर्वलक्षण सम्पन्न हैं, वह वृक्ष के समान सबको आश्रय देने वाले हैं, वे सत्यसंघ हैं और महाभाग हैं। मैं उन्हीं में अनुराग रखती हूँ। उनकी भुजाएँ विशाल हैं, छाती चौड़ी है, वे सिंह की चाल के समान चलते हैं। सिंह के समान पराक्रमी हैं और पुरुषों में सिंह हैं, मैं उन्हीं में अनुराग रखती हूँ। वे राजकुमार राम पूर्णचन्द्र के समान मुख वाले हैं, जितेन्द्रिय हैं, उनकी कीर्ति महान है, उनकी बाहें भी विशाल हैं, उन्हीं राम में मैं अनुराग रखती हूँ।

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसिदुर्लभां।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा।।४२।।
क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः।
आशीविषस्य वदनाद् दंष्ट्रामादातुमिच्छसि।।४३।।
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि।।४४।।
अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वयालेढि च क्षुरम्।
राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तुं त्वमिच्छसि।।४५।।

तू तो गीदड़ है, जो मुझ दुर्लभ सिंहनी को चाहता है। जैसे सूर्य की प्रभा को कोई हाथ भी नहीं लगा सकता, वैसे ही तू मुझे छू भी नहीं सकता। तू मृगों के शत्रु वेगवान भूखे शेर के और विषैले सर्प के दाँतों को उखाड़ना चाहता है। तू पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल को हाथों में उठाना चाहता है। तू कालकूट विष पीकर सकुशल लौट जाना चाहता है और तू सुई से आँखों को साफ कर रहा है और जबान से छुरे को चाट रहा है।

अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि।
सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि।।४६।।
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि।
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि।।४७।।
कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि।
अयोमुखानां शूलानामग्रे चरितुमिच्छति।
रामस्य सदृशीं भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि।।४८।।

तू राम की प्यारी पत्नी पर बलात्कार करना चाहता है, तो पत्थर को गले में बाँध कर सागर को पार करना चाहता है और सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों को हाथों से पकड़ कर ले जाना चाहता है। तू कल्याणमयी चरित्र वाली राम की पत्नी का अपहरण करना चाहता है तो तू जलती हुई आग को कपड़े में बाँध कर ले जाना चाहता है। तू राम की भार्या को, जो उन्हीं के योग्य है, हस्तगत करना चाहता है तो तू लोहे के शूलों पर चलना चाहता है।

यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने
यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं
तदन्तरं दशरथेस्तवैव च।।४९।।

वन में सिंह और गीदड़ में जो भेद है, जो छोटी नदी और समुद्र में भेद है। अमृत और काँजी में जो भेद है, वही भेद दशरथ पुत्र राम और तुझ में है।

यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयो-
र्यदन्तरं चन्दनवारिपङ्कयोः।
यदन्तरं हस्तिबिडालयोर्वने
तदन्तरं दशरथेस्तवैव च।।५०।।

सोने और सीसे में जो अन्तर है, चन्दन से मिश्रित जल और कीचड़ में जो अन्तर है, वन में हाथी और बिलाव में जो अन्तर है, वही अन्तर दशरथपुत्र राम और तुझ में है।

यदन्तरं वायसवैनतेययो-
र्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि।
यदन्तरं हंसकगृध्रयोर्वने
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च।।५१।।

गरुड़ और कौवे में जो अन्तर है, जो अन्तर मोर और जल काक में है, जो अन्तर वन में हंस और गृद्ध में है, वही अन्तर दशरथपुत्र राम और तुझ में है।

इकतालीसवाँ सर्ग

रावण द्वारा अपने पराक्रम का वर्णन, सीता का उसे फटकारना। रावण द्वारा सीता जी का अपहरण सीता जी का विलाप और जटायु से भेंट।

एवं ब्रुवत्यां सीतायां संरब्धः परुषं वचः।
ललाटे भ्रुकुटिं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह।। १।।
भ्राता वैश्रवणस्याहं सापत्नो वरवर्णिनि।
रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान्।। २।।

सीता के ऐसा कहने पर रावण क्रोध में भर कर, ललाट की भौंहे टेढ़ी कर कठोरवाणी में बोला कि सुन्दरी मैं कुबेर का सौतेला भाई हूँ। तुम्हारा भला हो। मैं प्रतापी दशग्रीव हूँ, मुझे रावण कहते हैं।

येन वैश्रवणो भ्राता वैमात्राः कारणान्तरे।
द्वन्द्वमासादितः क्रोधाद् रणे विक्रम्य निर्जितः।। ३।।
मद्भयार्तः परित्यज्य स्वमधिष्ठानमृद्धिमत्।
कैलासं पर्वतश्रेष्ठमध्यास्ते नरवाहनः।। ४।।
यस्य तत् पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम्।
वीर्यादावर्जितं भद्रे येन यामि विहायसम्।। ५।।

मैं वही रावण हूँ, जिसने किसी कारण से क्रोध में भर कर सौतेले भाई कुबेर से द्वन्द्व युद्ध किया और उसे जीत लिया। नरवाहन वह कुबेर मेरे ही भय से अपने समृद्धिशाली स्थान को छोड़ कर पर्वतश्रेष्ठ कैलास पर शरण लिये हुए है। मैंने अपने पराक्रम से उसके पुष्पक नामक सुन्दर विमान को, जो चाहे जहाँ ले जाया जा सकता है, जीत लिया, जिससे मैं आकाश में विचरण करता हूँ।

मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा।
सम्पूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती।। ६।।
प्राकरेण परिक्षिप्ता पाण्डुरेण विराजिता।
हेमकाक्ष्या पुरी रम्या वैदूर्यमयतोरणा।। ७।।
हस्त्यश्वरथसम्बाधा तूर्यनादविनादिता।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः संकुलोद्यानभूषिता।। ८।।

मेरी समुद्र के पार लंका नाम की सुन्दर नगरी है। वह इन्द्र की अमरावती के समान, भयानक राक्षसों से भरी हुई है। उसके चारों तरफ सफेद चारदिवारी उसकी शोभा बढ़ाती है। उस सुन्दर पुरी के मकानों के दालान सुवर्ण के और बाहरी द्वार वैदूर्य से युक्त हैं। उसमें हाथी, रथ और घोड़ों की भीड़ रहती है। उसमें वाद्यों की ध्वनियाँ गूँजती रहती हैं। वहाँ सब तरह की रुचि वाले फलदार वृक्ष हैं और वह उद्यानों के समूह से सुशोभित है।

तत्र त्वं वस हे सीते राजपुत्रि मया सह।
न स्मरिष्यसि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि।। ९।।
भुञ्जाना मानुषान् भोगान् दिव्यांश्च वरवर्णिनि।
न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः।। १०।।

हे राजकुमारी सीते! तुम वहाँ मेरे साथ रहो। तुम वहाँ रह कर हे मनस्विनी! मानवी स्त्रियों को भूल जाओगी। हे सुन्दरी! तुम वहाँ अलौकिक और मानवीय भोगों को भोगती हुई, मनुष्य राम को, जिसकी आयु अब समाप्त हो चली है, याद नहीं करोगी।

स्थापयित्वा प्रियं पुत्रं राज्ये दशरथो नृपः।
मन्दवीर्यस्ततो ज्येष्ठः सुतः प्रस्थापितो वनम्।। ११।।
तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा।
करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना।। १२।।

राजा दशरथ ने अपने प्यारे पुत्र को राज्य पर बैठा दिया और मन्दवीर्य बड़े पुत्र को वन में भेज दिया। हे विशाल नेत्रों वाली! तुम उस राज्य से भ्रष्ट, कम समझ और तपस्या में लगे हुए तपस्वी राम को ले कर क्या करोगी?

रक्ष राक्षसभर्तारं कामय स्वयमागतम्।
न मन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यतुं त्वमर्हसि।। १३।।
प्रत्याख्याय हि मां भीरु पश्चात्तापं गमिष्यसि।
चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुर्वशी।। १४।।
अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः।
तव भाग्येन सम्प्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि।। १५।।

यह कामदेव से पीड़ित, राक्षसों का राजा स्वयं तुम्हारे पास आया है। तुम इसे चाहो और रक्षा करो। तुम्हें इसे ठुकराना नहीं चाहिये। तुम मुझे ठुकरा कर ऐसे ही पश्चाताप करोगी जैसे उर्वशी पुरुरवा को लात मार कर पछतायी थी। हे सुन्दरी! वह मनुष्य राम युद्ध में मेरी अंगुलि के समान भी नहीं है। तुम्हारे भाग्य से मैं आ गया हूँ। मुझे स्वीकार करो।

त्रिषु लोकेषु विख्यातं यदि भर्तारमिच्छसि।
मामाश्रय वरारोहे तवाहं सदृशः पतिः।। १६।।

मां भजस्व चिराय त्वमहं श्लाघ्यः पतिस्तव।
नैव चाहं क्वचिद् भद्रे करिष्ये तव विप्रियम्।। १७।।

हे सुन्दरि! यदि तू यह चाहती है कि तेरा पति तीनों लोकों में विख्यात हो, तो तू मेरा सहारा ले। मैं तेरे योग्य पति हूँ। तू मेरी आराधना कर। मैं तेरा प्रशंसनीय पति हूँ। भे भद्रे! मैं तुम्हारे विपरीत कुछ भी काम नहीं करूँगा।

त्यज्यतां मानुषो भावो मयि भावः प्रणीयताम्।
राज्याच्च्युतमसिद्धार्थं रामं परिमितायुषम्।। १८।।
कैर्गुणैरनुरक्तासि मूढे पण्डितमानिनि।
यः स्त्रियो वचनाद् राज्यं विहाय ससुहृज्जनम्।। १९।।
अस्मिन् व्यालानुचरिते वने वसति दुर्मतिः।

तुम्हारे हृदय में मनुष्य के प्रति जो प्रेम हैं, उसे छोड़ दो, मेरे प्रति प्रेम प्रारम्भ करो। हे अपने आपको पंडित समझने वाली मूर्खे! जिसे राज्य से हटा दिया गया है, जिसका कोई कार्य पूरा नहीं हुआ, जिसकी आयु थोड़ी रह गयी है, उस राम में तू किन गुणों के कारण अनुरक्त है। जो एक स्त्री के कहने से सुहृदों सहित सारे राज्य का त्याग करके इस साँपों से युक्त वन में रहता है, उसकी बुद्धि कैसी खोटी है?

इत्युक्त्वा मैथिलीं वाक्यं प्रियार्हां प्रियवादिनीम्।। २०।।
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः।
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः।। २१।।
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना।
ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः।। २२।।
अंकेनादाय वैदेहीं रथमारोपयत् तदा।

उस प्रिय बोलने वाली और प्रिय व्यवहार के योग्य मैथिली से ऐसा कह कर काम मोहित और अत्यन्त दुरात्मा राक्षस ने उसके समीप जा कर, उस कमल नयिनी सीता के बायें हाथ से बाल और दाहिने हाथ से उसकी दोनों जाँघों के बीच में से उसे उठा लिया। उस जोर से गर्जना करने वाले रावण ने उसे कठोर वाक्यों से धमकाया और गोद में उठा कर, विमान में बैठा दिया।

सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी।। २३।।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने।
तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव।। २४।।
विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः।
ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा।। २५।।
भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा।

वह यशस्विनी सीता! रावण के द्वारा पकड़े जाने पर, दुःख से पीड़ित हो कर वन में दूर गये हुए राम को हे राम! हे राम! कह कर जोर से पुकारने लगी। वह काम से पीड़ित रावण उस कामना रहित सीता को जो साँपिनी के समान छटपटा रही थी, ले कर आकाश में उड़ चला। राक्षसराज द्वारा आकाश मार्ग से ले जाती हुई सीता का चित्त भ्रमित हो उठा और दुःख से पीड़ित और पागल सी बनी हुई, वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी।

हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक।। २६।।
ह्रियमाणां न जानीषे राक्षसा कामरूपिणा।
जीवितं सुखमर्थं च धर्महेतोः परित्यजन्।। २७।।
ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि।
ननु नामाविनीतानां विनेतासि परंतप।। २८।।
कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम्।

वह चिल्लाने लगीं कि हे महान भुजाओं वाले और गुरुओं के हृदय को प्रसन्न करने वाले लक्ष्मण! तुम नहीं जानते कि मुझे यह मायावी राक्षस हर कर लिये जा रहा है। हे राघव! आपने अपने जीवन, अपने सुख और अपने धन को धर्म के लिये छोड़ दिया पर अब मुझे अधर्म से ले जाती हुई को आप नहीं देख रहे हैं। हे परंतप! आप तो उद्दण्ड लोगों को विनय के मार्ग पर लगाने वाले हैं, पर अब इस प्रकार का पाप करते हुए रावण को आप दण्ड क्यों नहीं देते?

त्वं कर्म कृतवानेतत् कालोपहतचेतनः।। २९।।
जीवितान्तकरं घोरं रामाद् व्यसनमाप्नुहि।
हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह।। ३०।।
ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः।

अरे रावण! काल ने तेरी विचार शक्ति हर ली है। इसी से तूने यह काम किया है। तू राम के द्वारा अपने प्राणों को समाप्त करने वाली महान मुसीबत को प्राप्त करेगा। हाय आज कैकेयी की अपने बान्धवों के साथ कामनायें पूरी हो गयीं जो मैं एक यशस्वी, और धर्म की अभिलाषा रखने वाले की पत्नी हो कर भी हरण की जा रही हूँ।

आमन्त्रये जनस्थाने कर्णिकारांश्च पुष्पितान्।। ३१।।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः।
हंससारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम्।। ३२।।
क्षिप्रं रामाय शंस त्वं सीतां हरति रावणः।
यानि कानिचिदप्यत्र सत्त्वानि विविधानि च।। ३३।।

सर्वाणि शरणंयामि मृगपक्षिगणानि वै।
ह्रियमाणां प्रियां भर्तुः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।। ३४।।
विवशा ते हृता सीता रावणेनेति शंसत।

मैं जन स्थान में कनेर के फूलों वाले वृक्षों से प्रार्थना करती हूँ, तुम राम से जल्दी कहना कि सीता को रावण हर कर ले जा रहा है। हंस और सारसों से भरी हुई गोदावरी नदी को मैं प्रणाम करती हूँ, तुम राम से जल्दी कहना कि सीता को रावण हर कर ले जा रहा है। यहाँ जितने भी अनेक प्रकार के प्राणी हैं, मृग और पक्षियों के समूह हैं, मैं उन सबकी शरण लेती हूँ। तुम सब राम से कहना कि तुम्हारी प्राणों से भी प्यारी सीता हरी गयी। तुम्हारी बेबस सीता को रावण हर कर ले गया।

सा तदा करुणा वाचो विलपन्ती सुदुःखिता।। ३५।।
वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना।
सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता।। ३६।।
समाक्रन्दद् भयपरा दुःखोपहतया गिरा।

तब करुणाभरी वाणी में विलाप करती हुई अत्यन्त दुःखी विशाल नेत्रों वाली सीता ने वृक्ष के नीचे बैठे गृद्ध जटायु को देखा। उसे देख कर वह रावण के बस में पड़ी हुई, भयभीत सुन्दरी सीता ने दुःख से भरी वाणी में रोते हुए कहा।

जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्।। ३७।।
अनेन राक्षसेन्द्रेणाकरुणं पापकर्मणा।
नैष वारयितुं शक्यस्त्वया क्रूरो निशाचरः।
सत्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः।। ३८।।
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम।
लक्ष्मणाय च तत् सर्वमाख्यातव्यमशेषतः।। ३९।।

हे आर्य जटायु देखो! इस पापी राक्षसों के राजा के द्वारा मुझे अनाथों के समान निर्दयता के साथ हरण किया जा रहा है। पर तुम इसे रोक नहीं सकते। यह क्रूर और दुष्ट राक्षस, शक्तिशाली विजय की इच्छा वाला शस्त्रास्त्र सहित है। इसलिये हे जटायु! तुम राम से और लक्ष्मण से मेरे हरण की सारी वास्तविक बात पूरी तरह से कह देना।

बयालीसवाँ सर्ग

जटायु द्वारा रावण को सीता को छोड़ने के लिये समझाना और अन्त में युद्ध के लिये ललकारना।

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे।
निरैक्षद् रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः।। १।।
ततः पर्वत शृंगाभः व्याजहार शुभां गिरम्।
दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रयः।। २।।
भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि साम्प्रतम्।
जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः।। ३।।

सोते हुए जटायु ने सीता की वह पुकार सुनी और तुरन्त उन्होंने रावण और सीता को देखा। तब पर्वत की चोटी के समान विशाल शरीर वाले जटायु ने यह शुभ बात कही कि हे दशग्रीव! मैं पुरातन धर्म में स्थित हूँ और सत्यप्रतिज्ञ हूँ। मैं जटायु नाम का महा बली गृद्ध जाति का राजा हूँ। हे भाई तुम इस समय यह निन्दनीय कर्म नहीं कर सकते।

लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः।
तस्यैषालोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी।। ४।।
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि।

दशरथ के पुत्र राम, जो लोगों की भलाई में लगे हुए हैं, उन प्रजा के स्वामी की यह यशस्विनी, सीता नाम की सुन्दरी स्त्री है, जिसका तू हरण करना चाहता है।

सर्पमाशीविषं बद्ध्वा वस्त्रान्ते नावबुध्यसे।। ५।।
ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि।
स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत्।। ६।।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम्।

तुमने सीता का हरण करके विषैले साँप को कपड़े में बाँध लिया है। तुम समझते नहीं हो, तुमने गर्दन में मृत्यु का फन्दा डाल लिया है, पर तुम उसे देख नहीं रहे हो। हे सौम्य! उतना ही बोझ उठाना चाहिये जो थका न दे। वही अन्न खाना चाहिये, जो हजम हो जाये और रोग पैदा न करे।

वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी।। ७।।
न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि।

न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः।। ८।।
हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव।
युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण।। ९।।
शयिष्यसे हतो भूमौ यथा पूर्वं खरस्तथा।

मैं बूढ़ा हूँ और तू जवान है, तेरे पास विमान, कवच और धनुषबाण हैं, पर फिर भी तुम मेरी सीता को कुशलता पूर्वक ले कर नहीं जाओगे। मेरे देखते हुए तुम सीता को जबर्दस्ती हरण करके नहीं ले जा सकते, जैसे न्याययुक्त हेतुओं से सिद्ध हुई वेद की श्रुति को कोई निजी युक्तियों से पलट नहीं सकता। अरे रावण! यदि तू वीर है तो थोड़ी देर ठहर और युद्ध कर। जैसे पहले खर मारा गया, वैसे ही तूं मारा जा कर, भूमि पर शयन करेगा।

नहि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम्।। १०।।
सीतां कमलपत्राक्षींरामस्य महिषीं प्रियाम्।
अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः।। ११।।
जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च।
तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण।। १२।।
वृन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात्।
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर।। १३।।

तू मेरे जीते हुए राम की प्यारी रानी इस कमलनयनी सीता को नहीं ले जा सकता। मुझे प्राण दे कर भी उस महात्मा दशरथ और राम का प्रिय कार्य करना है। अरे दशग्रीव रावण! तू थोड़ी देर ठहर और देख मैं तुझे डाल से गिरते हुए फल की तरह से इस उत्तम विमान से गिराता हूँ। अरे निशाचर! मैं यथाशक्ति तुझे युद्ध का आतिथ्य प्रदान करूँगा।

तेतालीसवाँ सर्ग

जटायु और रावण का घोर युद्ध और रावण के द्वारा जटायु का वध।

ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः।
अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजं महाबलम्।। १।।
स तानि शरजालानि गृध्रः पत्ररथेश्वरः।
जटायुः प्रतिजग्राह रावणास्त्राणि संयुगे।। २।।

तब रावण ने महा भयानक नालीक, नाराचों और तीखी नोक वाले विकर्णी बाणों की उस गृद्धराज जटायु पर वर्षा की/गृध्र जाति के राजा गृध्र जटायु ने रावण के अस्त्रों, उन सारे बाणों के समूहों का युद्ध में सामना किया।

ततोऽस्य सशरं चापं मुक्तामणिविभूषितम्।
चरणाभ्यां महातेजा बभञ्ज पतगोत्तमः।। ३।।
ततोऽन्यद् धनुरादाय रावणः क्रोधमूर्च्छितः।
ववर्ष शरवर्षाणि शतशोऽथ सहस्रशः।। ४।।
शरैरावारितस्तस्य संयुगे पतगेश्वरः।
कुलायमभिसम्प्राप्तः पक्षिवच्च बभौ तदा।। ५।।

तब उस महा तेजस्वी गृध्रराज ने उसके मोती और मणियों से भूषित बाणों सहित धनुष को अपने दोनों पैरों की चोट से तोड़ दिया। तब क्रोध से मूर्च्छित रावण ने दूसरा धनुष ले कर उसके ऊपर सैकड़ों हजारों बाणों की वर्षा की। उस युद्ध में बाणों से ढके हुए गृध्रराज के चारों तरफ घोंसला सा बन गया और वे उसमें बैठे हुए पक्षी के समान प्रतीत होने लगे।

स तानि शरजालानि पक्षाभ्यां तु विधूय ह।
चरणाभ्यां महातेजा बभञ्जास्य महद् धनुः।। ६।।
तच्चाग्निसदृशं दीप्तं रावणस्य शरावरम्।
पक्षाभ्यां च महातेजा व्यधुनोत् पतगेश्वरः।। ७।।

जटायु ने उस बाणों के जाल को दोनों हाथों से तोड़ दिया और फिर उस महा तेजस्वी ने दोनों पैरों से उसके महान धनुष को भी तोड़ दिया। उस महा तेजस्वी गृध्रराज ने रावण के अग्नि के समान जगमगाते हुए कवच को भी हाथों ही से तोड़ दिया।

ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च।। ८।।
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः।
पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत्।। ९।।

तब एक मुहूर्त तक उन दोनों महा पराक्रमी राक्षसों के राजा रावण और विद्वानों में श्रेष्ठ जटायु का घोर संग्राम होता रहा। तब रावण ने तलवार निकाल कर राम के लिये पराक्रम करने वाले जटायु के दोनों हाथ, दोनों पैर और दोनों बगल के भाग काट दिये।

सच्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा।
निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः।। १०।।

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्।
अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता।। ११।।

वह महान गृध्र भयानक कर्म करने वाले राक्षस के द्वारा हाथ काट लिये जाने पर एकदम भूमि पर गिर पड़े। अब उनका जीवन थोड़ा ही शेष था। खून से अपने बन्धु के समान लथपथ जटायु को भूमि पर गिरा हुआ देख कर दुःखी सीता उनकी तरफ दौड़ी।

ततस्तु तं पत्ररथं महीतले
निपातितं रावणवेगमर्दितम्।
पुनश्च संगृह्य शशिप्रभानना
रुरोद सीता जनकात्मजा तदा।। १२।।

तब रावण के वेग से कुचले जाकर, भूमि पर गिरे हुए, उन विद्वान पुरुष जटायु को, चद्रमुखी, जनकपुत्री सीता पकड़ कर फिर रोने लगी।

चवालीसवाँ सर्ग

रावण द्वारा सीता का अपहरण।

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्य तम्।
गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता।। १।।
अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः।
शेते विनिहतो भूमौ ममाभाग्याद् विहंगमः।। २।।

गृध्रों के राजा जटायु को रावण के द्वारा मारा हुआ देख कर वह अत्यन्त दुःखी सीता विलाप करने लगी। वह कहने लगी कि हाय राम! ये गृध्रराज मेरे ऊपर कृपा करके मुझे बचाने के लिये आये थे, पर मेरे अभाग्य से अब मारे हुए पृथ्वी पर सो रहे हैं।

त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना।
सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके।। ३।।
तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत्।
अभ्यधावत वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः।। ४।।

हे राम! मेरी रक्षा करो। हे लक्ष्मण! मेरी रक्षा करो, कहती हुई वह डरी हुई सुन्दरी सीता चिल्लाकर रोने लगी, ताकि समीप के लोग सुन लें। तब राक्षसों का राजा रावण सीता की तरफ, जिसके पुष्पहार और आभूषण छिन्न-भिन्न हो गये थे और जो अनाथों के समान विलाप कर रही थी, दौड़ा।

तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान्।
मुञ्च मुञ्चेति बहुशः प्राप्य तां राक्षसाधिपः।। ५।।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसंनिभः।
स तु तां राम रामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च।। ६।।
जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः।

वह सीता बड़े वृक्षों से लता की तरह चिपट रही थी और उनका आलिंगन कर रही थी, बार-बार मुझे बचाओ, मुझे बचाओ कह कर चिल्ला रही थी, तभी राक्षसराज उनके समीप आ पहुँचा और मृत्यु के समान विकराल उस राक्षसेश्वर ने अपने अन्त के लिये उनके बालों को पकड़ लिया तथा हे राम, हे राम! हे लक्ष्मण! इस प्रकार कह कर रोती हुई सीता को रावण आकाश में ले गया।

उत्पातवाताभिरता नानाद्विजगणायुताः।। ७।।
मा भैरिति विधूताग्रा व्याजह्रुरिव पादपाः।
जलप्रपातास्रमुखाः शृङ्गैरुच्छ्रितबाहुभिः।। ८।।
सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः।

उस समय ऊपर उठते हुए विमान से आलोड़ित वायु के द्वारा हिलती हुई डालियों वाले, अनेक प्रकार के पक्षियों से युक्त वृक्ष मानो सीता से कह रहे थे कि डरो मत, डरो मत। सीता के हरे जाने पर पर्वत भी मानों झरनों के रूप में आँसू बहाते हुए अपने शिखर रूपी हाथों को ऊपर उठा कर जोर-जोर से चीत्कार कर रहे थे।

तां तु लक्ष्मण रामेति क्रोशन्तीं मधुरस्वराम्।। ९।।
अवेक्षमाणां बहुशो वैदेहीं धरणीतलम्।
स तामाकुलकेशान्तां विप्रमृष्टविशेषकाम्।। १०।।
जहारात्मविनाशाय दशग्रीवो मनस्विनीम्।

मनस्विनी सीता उस समय मधुर ध्वनि में, हे लक्ष्मण! हे राम! इस प्रकार चिल्लाती हुई, बार-बार भूमि की तरफ देख रही थी। उनके बाल बिखर गये थे और माथे की बिन्दी मिट गयी थी। ऐसी उस सीता को वह दशग्रीव अपने विनाश के लिये हर कर ले जा रहा था।

दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी।। ११।।
रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम्।
रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत्।। १२।।

महान भय में विद्यमान और परम दुःखी, क्रोध और रोने के कारण जिसकी आँखें लाल हो गयीं थी, वे करुण स्वर में रोती हुई और हरण की जा रही सीता उस भयानक नेत्रों वाले राक्षसों के राजा से बोली।

न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण।
ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे।। १३।।
त्वयैव नूनं दुष्टात्मन् भीरुणा हर्तुमिच्छता।
ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया।। १४।।
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः।
गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम।। १५।।

अरे नीच! तुझे अपने इस कार्य में शर्म नहीं आती, जो तू मुझे अकेला देख कर, चुराकर भाग रहा है। हे दुष्टात्मा! तूने ही अपनी कायरता के कारण, मुझे चुराने के लिये, मायामृग के द्वारा मेरे पति को दूर भिजवा दिया था। मेरे ससुर के मित्र बूढ़े गृध्रराज जो मुझे बचाने के लिये आये, उन्हें भी तू ने मार दिया।

परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम।
विश्राव्य नामधेयं हि युद्धे नास्मि जिता त्वया।। १६।।
ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे।
स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च।। १७।।

अरे नीच अधम राक्षस! दूसरे की स्त्री को एकान्त में चुराने के ऐसे गर्हित काम को करते हुए तुझे शर्म नहीं आती। तू ने अपना नाम सुना कर मुझे युद्ध में नहीं जीता है। वास्तव में तुझ में बड़ा पराक्रम दिखाई दे रहा है!

कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम्।
सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौटीर्यमानिनः।। १८।।
धिक् ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा।
कुलाक्रोशकरं लोके धिक् ते चारित्रमीदृशम्।। १९।।

वीरता के अभिमानी संसार के लोग तेरे इस कर्म को पापरूप, अत्यन्त निर्दयतापूर्ण और अधर्म वाला बताएँगे। तूने अपनी वीरता और शक्ति का जो बखान किया था उसे धिक्कार है, कुल को कलंक लगाने वाले तेरे इस चरित्र को लोक में सदा धिक्कारा जायेगा।

नहि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः।
ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम्।। २०।।
न त्वं तयोः शरस्पर्शं सोढुं शक्तः कथंचनः।
वने प्रज्वलितस्येव स्पर्शमग्नेर्विहंगमः।। २१।।

उन राजकुमारों की निगाह में आने पर तू सेना के साथ होने पर भी, एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकेगा। जैसे वन में प्रज्वलित दावानल को पक्षी स्पर्श नहीं कर सकते, वैसे ही तू भी उन दोनों राम और लक्ष्मण के बाणों का स्पर्श किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकता।

साधु कृत्वाऽऽत्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण।
मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्रात्रा सह पतिर्मम।। २२।।
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि।
येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि।। २३।।
व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः।
नह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम्।। २४।।
उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान् धारयितुं चिरम्।

अरे रावण! तू अच्छी तरह से अपनी भलाई के बारे में सोच ले और मुझे छोड़ दे, यह तेरे लिये उचित होगा। यदि तू मुझे नहीं छोड़ेगा तो मेरे अपहरण से क्रुद्ध मेरे पति अपने भाई के साथ तेरे विनाश के लिये प्रयत्न करेंगे। तू जिस उद्देश्य से मेरा बलपूर्वक अपहरण करना चाहता है, अरे नीच, तेरा वह उद्देश्य सफल नहीं होगा। अपने देवताओं के समान पति को न देखने पर शत्रु के वश में पड़ी मैं अधिक देर तक जीवित नहीं रहूँगी।

न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे।। २५।।
मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते।
पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम्।। २६।।
यथा चास्मिन् भयस्थाने न बिभेषि निशाचर।

वास्तव में तू अपनी भलाई और कल्याणकारी बातों को नहीं देख रहा है। जैसे मृत्यु का समय समीप आने पर लोग उलटे-उलटे काम करने लगते हैं। अरे रावण! मैं देख रही हूँ कि तेरे गले में काल का फन्दा पड़ चुका है। तो तू ऐसे डरने वाले कार्य में भी निडर बना हुआ है।

नहि त्वमीदृशं कृत्वा तस्यालीकं महात्मनः।। २७।।
धारितुं शक्ष्यसि चिरं विषं पीत्वेव निर्घृण।
बद्धस्त्वं कालपाशेन दुर्निवारेण रावण।। २८।।

अरे निर्दयी! तू महात्मा राम का ऐसा अपराध करके अधिक देर तक जीवित नहीं रहेगा। जैसे विषपान कर कोई बच नहीं सकता। अब तू अनिवार्य मृत्यु के फन्दे में बँध गया है।

क्व गतो लप्स्यसे शर्म मम भर्तुर्महात्मनः।
निमेषान्तरमात्रेण विना भ्रातरमाहवे।। २९।।

राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश।
कथं स राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली।। ३०।।
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम्।
एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह।। ३१।।

जिन्होंने बिना भाई की सहायता के ही युद्ध में पलक मारते मारते चौदह हजार राक्षस मार दिये, वे सारे अस्त्रों के संचालन में कुशल वीर और बलवान रघुनन्दन, अपनी प्रिय पत्नी के अपहरण करने वाले तुझे अपने बाणों से क्यों नहीं मारेंगे? तू कहाँ जा कर उनसे शान्ति पा सकेगा? इस प्रकार और दूसरे प्रकारों से रावण के चंगुल में फँसी हुई भय और शोक से युक्त सीता उसे कठोर बातें सुनाती हुई, करुणा भरे स्वर में विलाप कर रही थी।

पैंतालीसवाँ सर्ग

सीता का पाँच वानरों के बीच अपने भूषण और वस्त्र गिराना। रावण का लंका में पहुँच कर सीता को अन्तःपुर में रखना तथा जन स्थान में आठ राक्षसों को गुप्तचर के रूप में रहने के लिये भेजना।

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथपश्यती।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान् पंच वानरपुङ्गवान्।। १।।
तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम्।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च।। २।।
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी।
वस्त्रमुत्ससृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम्।। ३।।

अपहरण की जाती हुई और किसी को भी अपना सहायक न देखती हुई, सीता ने पर्वत की चोटी पर बैठे हुए पाँच श्रेष्ठ वानरों को देखा। तब उस विशाल नेत्रों वाली, भामिनी सुन्दरी सीता ने अपने सुनहरे रेशमी उत्तरीय को और सुन्दर आभूषणों को उन वानरों के बीच में यह सोच कर फैंक दिया कि शायद ये राम को मेरे विषय में कुछ कह सकें।

सम्भ्रमात् तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान्।
पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव।। ४।।
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः।
स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम्।। ५।।
जगाम मैथिलीं गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः।

रावण घबराहट के कारण सीता के उस कार्य को न जान पाया। तब वे भूरी आँखों वाले श्रेष्ठ वानर एक टक निगाहों से उस विशाल नेत्रों वाली, चिल्लाती हुई सीता को देखने लगे। वह राक्षसों का राजा रावण रोती हुई सीता को लेकर, पम्पा सरोवर को लाँघ कर लंका पुरी की तरफ चल दिया।

वनानि सरितः शैलान् सरांसि च विहायसा।। ६।।
स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः।
तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम्।। ७।।
सरितां शरणं गत्वा समतीयाय सागरम्।

धनुष से छूटे हुए बाण की तरह तेजी से आकाश मार्ग से, जाते हुए उसने वनों, नदियों, तालाबों और पर्वतों को पार कर लिया। उसने तिमि नाम के मत्स्यों और नाकों के निवास स्थान और कभी क्षय न होने वाले नदियों के आश्रय स्थान सागर को भी पार कर लिया।

सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम्।। ८।।
संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तः पुरमाविशत्।
अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः।। ९।।
यथा नैनां पुमान् स्त्री वा सीतां पश्यत्यसम्मतः।
मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च।। १०।।
यद् यदिच्छेत् तदैवास्यादेयं मच्छन्दतो यथा।
या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम्।। ११।।
अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम्।

उसके बाद वह लंका पुरी में, जो बड़े-बड़े विशाल भागों में बँटी हुई थी, जो मकानों से भरी हुई थी और जिसका विस्तार बड़ा था, प्रवेश कर, अपने अन्तः पुर में प्रविष्ट हुआ। फिर उसने भयानक रूपवाली पिशाचिनियों को बुला कर कहा, कि इसे ऐसे रखो, जिससे कोई भी स्त्री पुरुष बिना मेरी अनुमति के इसे देख न सके। मेरी आज्ञा के अनुसार मोती, मणि, स्वर्ण, वस्त्र, आभूषण आदि जो कुछ भी यह चाहे वही इसे दी जाये। जो कोई भी सीता से कोई कड़वी बात जाने या अनजाने में कहेगी, तो मैं समझूँगा कि उसे अपना जीवन प्यारा नहीं है।

तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।। १२।।
निष्क्रम्यान्तः पुरात् तस्मात् किं कृत्यमिति चिन्तयन्।
ददर्शाष्टौ महावीर्यान् राक्षसान् पिशिताशनान्।। १३।।
उवाच तानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः।

उन राक्षसियों से यह कह कर वह प्रतापी राक्षसों का राजा, अन्तःपुर से निकल कर अब क्या करना चाहिये यह सोचता हुआ आठ महापराक्रमी माँसाहारी राक्षसों से मिला और उनके पराक्रम और बल की प्रशंसा कर उनसे बोला।

नानाप्रहरणाः क्षिप्रमितो गच्छत सत्वराः।। १४।।
जनस्थानं हतस्थानं भूतं पूर्वं खरालयम्।
तत्रास्यतां जनस्थाने शून्ये निहतराक्षसे।। १५।।
पौरुषं बलमाश्रित्य त्रासमुत्सृज्य दूरतः।

तुम अनेक प्रकार के हथियार ले कर जल्दी यहाँ से उस जनस्थान में जाओ, जहाँ खर रहता था, और जो अब उजाड़ पड़ा है। तुम उस जनस्थान में जहाँ के सारे राक्षस मार दिये गये हैं, अपने बल और पौरुष का आश्रय ले कर और भय को दूर ही छोड़ कर रहो।

जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता।
प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः।। १६।।
अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरेव निशाचरैः।
कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति।। १७।।
युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि।
अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं निवेशिताः।। १८।।

जन स्थान में रहते हुए आप लोगों को राम की क्रियाओं, प्रवृत्तियों को, और वे क्या कर रहे हैं, इसकी ठीक-ठीक जानकारी मेरे पास भेजनी है। तुम सब सावधान हो कर रहना और सदा राम के वध के लिये यत्न करते रहना। मैंने युद्ध के मुहाने पर तुम्हारा बल अनेक बार देखा है इसीलिये यहाँ जनस्थान में मैंने तुम्हें ही लगाया है।

छियालीसवाँ सर्ग

रावण का सीता को अपने अन्तःपुर का दर्शन कराना और अपनी भार्या बन जाने के लिये समझाना।

संदिश्य राक्षसान् घोरान् रावणोऽष्टौ महाबलान्।
आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात् कृतकृत्यममन्यत।। १।।
स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणैः प्रपीडितः।
प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन्।। २।।

आठ महान बली भयानक राक्षसों को इस प्रकार आदेश दे कर विपरीत बुद्धि होने के कारण रावण ने अपने आपको कृतकृत्य माना। फिर वह सीता के विषय में सोचता हुआ, काम के बाणों से पीड़ित हो कर, सीता को देखने के लिये अपने रमणीय अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ।

स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः।
अपश्यद् राक्षसीमध्ये सीतां दुःखपरायणाम्।। ३।।
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां शोकभारावपीडिताम्।
वायुवेगैरिवाक्रान्तां मज्जन्तीं नावमर्णवे।। ४।।
मृगयूथपरिभ्रष्टां मृगीं श्वभिरिवावृताम्।

राक्षसों के राजा रावण ने उस घर में प्रवेश कर राक्षसियों के बीच में घिरी हुई, दुःखी आँसू बहाती हुई, दीन और शोक के भय से पीड़ित सीता को देखा। वह ऐसे प्रतीत हो रही थी, जैसे समुद्र में वायु के झोंके से हिलती हुई और डूबती हुई नाव हो या मृगों के झुंड से बिछुड़ी हुई और कुत्तों से घिरी हुई हरिणी हो।

अधोगतमुखीं सीतां तामभ्येत्य निशाचरः।। ५।।
तां तु शोकवशाद् दीनामवशां राक्षसाधिपः।
सबलाद् दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम्।। ६।।
हर्म्यप्रासादसम्बाधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम्।
नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमन्वितम्।। ७।।
दान्तकैस्तापनीयैश्च स्फाटिकै राजतैस्तथा।
वज्रवैदूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दृष्टिमनोरमैः।। ८।।

नीचा मुख किये हुए बैठी हुई, शोक के कारण दीन और विवश सीता के समीप जा कर वह राक्षसों का राजा उसे जबरदस्ती अपने देवगृह के समान महल का दर्शन कराने लगा। रावण का घर सुन्दर, भवनों और प्रासादों से भरा हुआ था। उसमें हजारों स्त्रियाँ रहती थीं, अनेक प्रकार के पक्षियों के झुंड वहाँ रहते थे। वह महल अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित था। वहाँ आँखों को मनोहर लगने वाले ऐसे स्तम्भ थे, जो हाथी दाँत, सुवर्ण, स्फटिक मणि, चाँदी, हीरा, वैदूर्यमणि आदि से चित्रित थे।

दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषं तप्तकाञ्चनभूषणम्।
सोपानं काञ्चनं चित्रमारुरोह तया सह।। ९।।
दान्तका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शनाः।
हेमजालावृताश्चासंस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः।। १०।।

उस घर में दुन्दुभियों का दिव्य घोष गूँज रहा था, उसे तपे हुए सोने से सजाया हुआ था, वह सीता को ले कर सोने की विचित्र सीढ़ी पर चढ़ा। वहाँ हाथी दाँत और चाँदी की सुन्दर खिड़कियाँ और सुनहरी जालियों से ढकी हुई भवनों की लाइनें थीं।

दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च नानापुष्पसमावृताः।
रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम्।। ११।।
दर्शयित्वा तु वैदेहीं कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम्।
उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया।। १२।।

शोक परायण सीता को रावण ने बहुत सी बावड़ियाँ और पुष्करिणियाँ, जो तरह-तरह के फूलों से भरी हुई थीं, दिखाईं। सीता को वह अपना सुन्दर भवन सारा दिखा कर वह पापात्मा सीता को लुभाने की इच्छा से बोला कि –

यदिदं राज्यतन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी।। १३।।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः।
तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये।। १४।।
साधु किं तेऽन्यथाबुद्ध्या रोचयस्व वचो मम।
भजस्व माभितप्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि।। १५।।

मेरा यह सारा राज्य और मेरा जीवन सब तुम्हारे ऊपर अवलम्बित है। हे विशाल नेत्रों वाली! तुम मुझे प्राणों से भी प्यारी हो। हे प्रिय सीता! मेरा अन्तःपुर जो बहुत सी स्त्रियों से भरा हुआ है, तुम मेरी भार्या बन कर सबकी स्वामिनी बन जाओ। तुम्हें विपरीत बुद्धि रखने से क्या लाभ होगा? तुम मेरी बात को पसन्द करो। मैं पीड़ित हूँ, मुझे स्वीकार करो, मेरे ऊपर कृपा करो।

राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन पदातिना।
किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा।। १६।।
भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव।
यौवनं त्वध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह।। १७।।
दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने।
कास्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः।। १८।।

राम तो मनुष्य और अल्प तेजस्वी हैं, वे राज्य से भ्रष्ट हैं, दीन हैं और पैदल चलते हैं, तुम उन्हें ले कर क्या करोगी? हे सीते! तुम मुझसे ही प्रेम करो। मैं तुम्हारे लायक तुम्हारा पति हूँ। हे भीरु! युवावस्था सदा नहीं रहती। इसलिये यहाँ मेरे साथ रमण करो। हे सुन्दरी! राम को देखने के लिये अब विचार मत करो। उसकी यहाँ आने के लिये मनोरथ करने की भी शक्ति नहीं है।

न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बद्धुं महाजवः।
दीप्यमानस्य वाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलाः शिखाः।। १९।।
त्रयाणामपि लोकानां न तं पश्यामि शोभने।
विक्रमेण नयेद् यस्त्वां मद्बाहुपरिपालिताम्।। २०।।

महा वेगशाली वायु को रस्सियों से नहीं बाँधा जा सकता, प्रज्वलित अग्नि की निर्मल ज्वालाओं को पकड़ा नहीं जा सकता। हे शोभने! मैं तीनों लोकों में भी किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता जो पराक्रम से मेरी भुजाओं से सुरक्षित तुम्हें यहाँ से ले जा सके।

अभिषेकजलक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व च।
दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम्।। २१।।
यश्च ते सुकृतं कर्म तस्येह फलमाप्नुहि।
इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि।। २२।।
भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह।
वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम्।
शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने।। २३।।

लंका की सम्राज्ञी के अभिषेक जल से अपने आपको भिगो कर और सन्तुष्ट हो कर तुम यहाँ आनन्द उठाओ। तुम्हारे जो पहले बुरे कर्म थे, उनका फल तुम्हें अब तक के वनवास में मिल गया। अब जो अच्छे कर्म शेष हैं, उनका फल यहाँ भोगो। हे सीता! यहाँ सब प्रकार की मालाएँ, अलौकिक सुगन्ध और आभूषण हैं। तुम उनका मेरे साथ सेवन करो। हे सुन्दर मुख वाली सुन्दरी! तुम्हारा कमल के समान सुन्दर और निर्मल मुख, शोक से पीड़ित हो कर अच्छा नहीं लग रहा है।

सैंतालीसवाँ सर्ग

सीता का राम के प्रति अपना अनन्य अनुराग दिखा कर रावण को फटकारना तथा रावण की आज्ञा से राक्षसियों का उन्हें अशोक वाटिका में ले जा कर डराना।

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत।। १।।
राजादशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः।
सत्यसंधः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः।। २।।
रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम।। ३।।

रावण के ऐसा कहने पर शोक मग्न सीता निर्भयता के साथ तिनके को बीच में रख कर रावण को उत्तर देने लगी। वे बोलीं कि राजा दशरथ साक्षात् धर्म के अचल सेतु थे। वे प्रसिद्ध सत्यवादी थे। उन्हीं के पुत्र वे राघव श्रीराम हैं। वे धर्मात्मा तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। विशाल भुजाओं और विशाल नेत्रों वाले वे ही मेरे आराध्य देवता पति हैं।

इक्ष्वाकूणां कुले जातः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा यस्ते प्राणान् वधिष्यति।। ४।।
प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात्।
शयिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथा खरः।। ५।।

वे राम इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न, महा तेजस्वी और सिंह के समान कन्धे वाले हैं। वे अपने भाई लक्ष्मण के साथ तेरे प्राणों को नष्ट कर देंगे। यदि तू उनके सामने बलपूर्वक मेरा अपहरण करता तो तू जनस्थान के युद्धस्थल में खर के ही समान मारा जा कर सो जाता।

गतासुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः।
लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति।। ६।।
न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति।
याहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात् त्वया बलात्।। ७।।

अब तेरे प्राण चले गये हैं, तेरी राज्य लक्ष्मी चली गयी है, तेरी शक्ति समाप्त हो गई है, तेरी इन्द्रियाँ भी तुझसे से वियुक्त हो गयी हैं। यह लंका तेरे ही कारण से विधवा हो जायेगी। जो तूने मुझे बिना किसी भावना के पति के पास से दूर किया है, तेरा यह पाप कर्म तुझे भविष्य में सुख नहीं देगा।

स हि देवरसंयुक्तो मम भर्ता महाद्युतिः।
निर्भयो वीर्यमाश्रित्य शून्ये वसति दण्डके।। ८।।
स ते वीर्यं बलं दर्पमुत्सेकं च तथाविधम्।
अपनेष्यति गात्रेभ्यः शरवर्षेण संयुगे।। ९।।

मेरे महा तेजस्वी पति मेरे देवर के साथ, अपने ही पराक्रम का सहारा ले कर सुनसान दण्डकारण्य में निर्भय हो कर रहते हैं। वह तेरे तेज, बल, अभिमान और इस प्रकार की उच्छृंखलता को युद्ध में अपनी बाण वर्षा से तेरे शरीर में से निकाल देंगे।

यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः।
तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवंश गताः।। १०।।
मां प्रधृष्य स ते कालःप्राप्तोऽयं राक्षसाधम।
आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च।। ११।।

जब प्राणियों का काल से प्रेरित विनाश का समय आता है, तो वे काल के वश में हो कर कार्यों में प्रमाद करने लगते हैं। हे अधर्मी राक्षस! मेरा अपहरण करने से तेरे लिये वही मृत्युकाल आ पहुँचा है। केवल तेरे लिये ही नहीं बल्कि राक्षसों तथा अन्तःपुर के लिये भी वही समय आ गया है।

क्रीडन्ती राजहंसेन पद्मखण्डेषु नित्यशः।
हंसी सा तृणमध्यस्थं कथं द्रक्ष्येत मद्गुकम्।। १२।।
इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस।। १३।।
न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः।
एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात् सुपरुषं वचः।। १४।।
रावणं जानकी तत्र पुनर्नोवाच किंचन।

नित्य कमलों के बीच में राजहंस के साथ क्रीड़ा करने वाली हंसी, तिनकों के मध्य में विद्यमान जल कौए को क्यों देखेगी? मेरे इस चेतनाशून्य बने हुए शरीर को चाहे तू बाँध या काट। हे राक्षस! मैं स्वयं इस शरीर को और प्राणों को रखना नहीं चाहती। मैं इस पृथ्वी पर कोई भी मुझे निन्दा दिलाने वाला कार्य नहीं कर सकती।

सीतायाा वचनं श्रुत्वा परुषं रोहर्षणम्।। १५।।
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः।
शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान् द्वादश भामिनि।। १६।।

कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि।
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः।। १७।।

सीता के रोंगटे खड़े कर देने वाले कठोर वचनों को सुन कर वह रावण भय दिखाने वाली बात कहने लगा। वह बोला कि हे मैथिली! सुन, हे सुन्दर मुस्कराहट वाली भामिनी! मैं तुझे बारह मास का समय देता हूँ। यदि तू इस समय में मेरे पास नहीं आयेगी, तो मेरे रसोइये, प्रातः काल के भोजन के लिये तुझे टुकड़ों-टुकड़ों में काट डालेंगे।

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः।
राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत्।। १८।।
शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः।
दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांसशोणितभोजनाः।। १९।।
वचनादेव तास्तस्य सुघोरा घोरदर्शनाः।
कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन्।। २०।।

इस प्रकार कठोर बात बोल कर शत्रुओं को रुलाने वाला रावण क्रोध में भर कर उन राक्षसियों से यह बोला – हे भयानक दिखाई देने वाली, रक्त तथा मांस का भोजन करने वाली राक्षसियों! तुम इस सीता के अभिमान को तुरन्त ही शीघ्रता से दूर कर दो। तब वे भयानक और भयानक दिखाई देने वाली राक्षसियाँ उसके कहने से ही हाथ जोड़ कर सीता को घेर कर खड़ी हो गयीं।

स ताः प्रोवाच राजासौ रावणो घोरदर्शनाः।
प्रचल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम्।। २१।।
अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति।
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता।। २२।।

अपने कदमों से पृथ्वी को कम्पित सा करता हुआ वह राजा रावण फिर उन भयानक दिखाई देने वाली राक्षसियों से बोला कि तुम सीता को अशोक वाटिका में ले जाओ। वहीं तुम्हें इसको चारों तरफ से घेर कर इसकी गुप्त रूप से रक्षा करनी है।

तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम्।
आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव।। २३।।
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः।
अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य तु।। २४।।

तुम वहाँ इस मैथिली को पहले भयानक रूप से धमका कर, और पुनः सान्त्वना दे कर, इस प्रकार वश में करो, जैसे जंगली हथिनी को किया जाता है। रावण के द्वारा ऐसा आदेश दिया जाने पर वे राक्षसियाँ, मैथिली को पकड़ कर अशोक वाटिका को चली गयीं।

सा तु शोकपरीताङ्गी मैथिली जनकात्मजा।
राक्षसीवशमापन्ना व्याघ्रीणां हरिणी यथा।। २५।।
शोकेन महता ग्रस्ता मैथिली जनकात्मजा।
न शर्म लभते भीरुः पाशबद्धा मृगी यथा।। २६।।

शोक से जिसके अंग भरे हुए थे, वह सुन्दरी जनक पुत्री मैथिली, उन राक्षसियों के बस में पड़ कर ऐसे ही लग रही थी, जैसे बाघिनियों ने हरिणी को घेर लिया हो। पाश में बँधी हुई, डरी हुई हरिणी के समान महान शोक में जकड़ी हुई जनकपुत्री मैथिली शान्ति को प्राप्त नहीं कर रही थी।

न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली
विरूपनेत्राभिरतीव तर्जिता।
पतिं स्मरन्ती दयितं च देवरं
विचेतनाभूद् भयशोकपीडिता।। २७।।

वह मैथिली भयानक नेत्रों वाली राक्षसियों द्वारा अत्यधिक धमकायी जाती हुई शान्ति को प्राप्त नहीं कर रही थी, इसलिये अपने पति और देवर को स्मरण करती हुई भय और शोक से पीड़ित वह वहाँ अचेतन सी रहने लगीं।

अड़तालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का चिन्तित होते हुए लौटना, मार्ग में लक्ष्मण से मिलने पर उन्हें उलाहना दे सीता पर संकट आने की आशंका करना।

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम्।
निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत।। १।।
मारीचेन तु विज्ञाय स्वरमालक्ष्य मामकम्।
विक्रुष्टं मृगरूपेण लक्ष्मणः शृणुयाद् यदि।। २।।
स सौमित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हित्वाथ मैथिलीम्।
तयैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति।। ३।।

इच्छानुसार रूप बना लेने वाले और मृग के रूप में विचरते हुए मारीच राक्षस को मार कर श्रीराम शीघ्रता से रास्ते पर वापिस लौटे। मृगरूपधारी मारीच ने जान बूझ कर मेरे स्वर का अनुकरण कर जो दुःखभरी पुकार की थी, वह इसलिये की, जिससे लक्ष्मण उसे सुन सकें। वह सुमित्रापुत्र, उस स्वर को सुनते ही मैथिली के द्वारा भेजने पर उसे छोड़ कर यहाँ मेरे पास आ जायेंगे।

राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया ईप्सितो वधः।
काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तु माम्।। ४।।
दूरं नीत्वाथ मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः।
हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार ह।। ५।।

राक्षस लोग मिल कर सीता का वध अवश्य कर देना चाहते हैं। इसलिये वह मारीच सुनहला मृग बन कर मुझे आश्रम से हटा कर, दूर ले जा कर बाण से मारा हुआ, हाय लक्ष्मण! मैं मारा गया, यह कह कर चिल्लाया था।

अपि स्वस्ति भवेद् द्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने।
जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः।। ६।।
इत्येवं चिन्तयन् रामः, जगामाश्रममात्मवान्।

क्या वह हम दोनों के बिना वहाँ कुशलता रह सकेगी? वन में जन स्थान की घटना के कारण राक्षसों ने मुझसे वैर बाँध रखा है। इस प्रकार चिन्ता करते हुए मनस्वी राम आश्रम की तरफ चले।

ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम्।। ७।।
ततोऽविदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः।
विषण्णः सन् विषण्णेन दुःखितो दुःखभागिना।। ८।।
स जगर्हेऽथ तं भ्राता दृष्ट्वा लक्ष्मणमागतम्।
विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते।। ९।।

तभी उन्होंने लक्ष्मण को, जिनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी, आते हुए देखा। फिर वे उदास और दुःखी होते हुए लक्ष्मण उदास और दुःखी होते हुए श्रीराम से समीप आ कर मिले। तब लक्ष्मण को राक्षसों से युक्त निर्जन वन में सीता को अकेला छोड़ कर आया हुआ देख कर उनके भाई ने उनकी निन्दा की।

गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः।
उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत्।। १०।।
अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यत् त्वं विहाय ताम्।
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित् स्वस्ति भवेदिति।। ११।।

श्री राम ने बेचैन हो कर लक्ष्मण का बायाँ हाथ पकड़ कर पहले कठोर और फिर अन्त में मधुर वाणी में इस प्रकार कहा कि अहो सौम्य लक्ष्मण! तुमने बहुत बुरा किया, जो सीता को छोड़ कर यहाँ आ गये। अब क्या वह सकुशल होगी?

तमुवाच किमर्थं त्वमागतोऽपास्य मैथिलीम्।
यदा सा तव विश्वासाद् वने विरहिता मया।। १२।।
दृष्ट्वैवाभ्यागतं त्वां मे मैथिलीं त्यज्य लक्ष्मण।
शङ्कमानं महत् पापं यत्सत्यं व्यथितं मनः।। १३।।
एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत्।। १४।।

उन्होंने कहा कि जब मैंने तुम्हारे विश्वास पर उसे वन में छोड़ा था, तब तुम सीता को छोड़ कर क्यों आ गये? हे लक्ष्मण! सीता को छोड़ कर तुम्हें यहाँ आया हुआ देखते ही जिस अनिष्ट की शंका से मेरा मन बेचैन हो रहा था, वह सत्य होता हुआ प्रतीत हो रहा है। राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर शुभ लक्षणों से युक्त सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण और अधिक दुःख से भर कर दुःखी राम से यह बोले।

न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः।। १५।।
आर्येणेव परिक्रुष्टं लक्ष्मणेति सुविस्वरम्।
परित्राहीति यद्वाक्यं मैथिल्यास्तच्छ्रुतिं गतम्।। १६।।

मैं स्वयं अपनी इच्छा से उनको छोड़ कर यहाँ नहीं आया। उनके कठोर शब्दों से प्रेरित किये जाने पर ही मुझे यहाँ आपके पास आना पड़ा है। आपकी आवाज के समान किसी के द्वारा बोली हुई पुकार की आवाज कि 'लक्ष्मण मुझे बचाओ' सीता जी के भी कानों में पड़ी।

सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली।
गच्छ गच्छेति मामाशु रुदती भयविक्लवा।। १७।।
प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया।
प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं तत् प्रत्ययान्वितम्।। १८।।

उस दुःख से भरी आवाज को सुन कर आपके स्नेह के कारण सीता भय से व्याकुल हो कर रोती हुई तुरन्त मुझसे कहने लगी कि जाओ, जाओ। बार-बार, जाओ जाओ, कहते हुए प्रेरित करने पर मैंने उन्हें विश्वास दिलाते हुए यह बात कही कि –

न तत् पश्याम्यहं रक्षोयदस्य भयमावहेत्।
निर्वृता भव नास्त्येतत् केनाप्येदुदाहृतम्।। १९।।
किंनिमित्तं तु केनारपि भ्रातुरालम्ब्य मे स्वरम्।
विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति।। २०।।

मैं किसी भी ऐसे राक्षस को नहीं देखता जो श्रीराम के लिये भय को उपस्थित कर सके। इसलिये आप निश्चिन्त हो जाइये। यह उनकी आवाज नहीं है, किसी दूसरे के द्वारा की हुई नकल है। किसी दूसरे ने किसी विशेष उद्देश्य से मेरे भाई की आवाज की नकल कर यह जोर से पुकारा है कि लक्ष्मण मुझे बचाओ।

राक्षसेनेरितं वाक्यं त्रासात् त्राहीति शोभने।
न भवत्या व्यथा कार्या कुनारीजनसेविता।। २१।।
अलं विक्लवतां गन्तु स्वस्था भव निरुत्सुका।
च चास्ति त्रिषु लोकेषु पुमान् यो राघवं रणे।। २२।।
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत्।
एवमुक्ता तु वैदेही परिमोहितचेतना।। २३।।
उवाचाश्रूणि मुञ्चन्ती दारुणं मामिदं वचः।

हे शोभने! उस राक्षस ने ही भय के कारण 'मुझे बचाओ' यह वाक्य मुख से कहा है! आपको छोटी स्त्रियों के समान दुःखी नहीं होना चाहिये। आप बेचैन मत होइये। स्वस्थ हो जाओ और चिन्ता छोड़ो। तीनों लोकों में कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है और न होने वाला है, जो युद्ध में श्री राम को पराजित कर दे। मेरी यह बात सुन कर वैदेही की चेतना मोह से आच्छादित हो गयी और आँसू बहाती हुई मुझसे कठोर वचनों में बोली।

भावो मयि तवात्यर्थपाप एव निवेशितः।। २४।।
विनष्टे भ्रातरि प्राप्तुं न च त्वं मामवाप्स्यसे।
क्रोशन्तं हि यथात्यर्थं नैनमभ्यवपद्यसे।। २५।।
रिपुः प्रच्छन्नचारी त्वं मदर्थमनुगच्छसि।
राघवस्यान्तरं प्रेप्सुस्तथैनं नाभिपद्यसे।। २६।।

तेरे अन्दर मेरे प्रति अत्यन्त पाप का भाव आ गया है। तू अपने भाई के नष्ट हो जाने पर मुझे प्राप्त करना चाहता है। पर तू मुझे प्राप्त नहीं कर सकेगा। तभी तो वे जोर-जोर से चिल्ला रहे हैं और तू उनके पास जाता भी नहीं है, तू उनका छिपा हुआ शत्रु है और मेरे लिये ही तू उनकी सेवा करता है। तू श्रीराम की कमजोर स्थिति को ढूँढ रहा है और इसलिये तु अब उनकी सहायता को जा नहीं रहा है।

एवमुक्तस्तु वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः।
क्रोधात् प्रस्फुरमाणोष्ठ आश्रमादभिनिर्गतः।। २७।।
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं रामः संतापमोहितः।
अब्रवीद् दुष्कृतं सौम्य तां विना त्वमिहागतः।। २८।।
जानन्नपि समर्थं मां रक्षसामपवारणे।
अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निर्गतो भवान्।। २९।।

सीता के ऐसा कहने पर आवेश के कारण मेरी आँखे लाल हो गयीं, क्रोध से भरे होठ फ़ड़कने लगे। मैं तुरन्त आश्रम से बाहर आ गया। लक्ष्मण के ऐसा कहने पर श्रीराम दुःख से मोहित हो कर बोले कि हे सौम्य! तुमने बड़ा बुरा किया कि उसके बिना यहाँ आ गये। यह जानते हुए भी कि मैं राक्षसों को रोकने में समर्थ हूँ तुम सीता के क्रोधयुक्त वचनों से उत्तेजित हो कर निकल पड़े।

नहि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यदसि मैथिलीम्।
क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रिया यत् त्वमिहागतः।। ३०।।
सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत् प्रचोदितः।
क्रोधस्य वशमागम्य नाकरोः शासनं मम।। ३१।।
असौ हि राक्षसः शेते शरेणाभिहतो मया।
मृगरूपेण येनाहमाश्रमादपवाहितः।। ३२।।

तुम एक क्रुद्ध स्त्री के वाक्यों को सुन कर सीता को छोड़ कर जो यहाँ आ गये, इससे मैं तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट नहीं हूँ। सीता से प्रेरित हो कर, क्रोध के बस में हो कर जो तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया, यह तुम्हारा सर्वथा अन्याय है। मेरे द्वारा बाण से मारा हुआ वह राक्षस उधर पड़ा हुआ है, जो मृग के रूप में मुझे आश्रम से दूर ले आया था।

शराहतेनैव तदार्तया गिरा
स्वरं ममालम्ब्य सुदूरसुश्रवम्।
उदाहृतं तद् वचनं सुदारुणं
त्वमागतो येन विहाय मैथिलीम्।। ३३।।

मेरे बाण से मारा जाने पर ही उसने दुःखभरी आवाज में मेरी आवाज की नकल कर दूर तक सुनाई देने वाली वह भयानक बात बोली थी। जिसके कारण तुम मैथिली को छोड़ कर यहाँ चले गये।

उनंचासवाँ सर्ग

श्रीराम का आश्रम में सीता को न पा कर विलाप करते हुए पशुओं और वृक्षों से पूछना और बार-बार उनकी खोज करना।

त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः।
शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः।। १।।
दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः।
रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च।। २।।
अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं संनिरीक्ष्य च सर्वशः।
उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रूचिरौ भुजौ।। ३।।

तब वे श्रीराम सीता को देखने की लालसा से दौड़ते हुए अपने आश्रम की तरफ आये। पर वहाँ आश्रम को सूना देख कर बेचैन हो उठे। दशरथ के पुत्र श्रीराम ने देखा कि आश्रम सूना है, पर्णशाला भी सुनसान है, आसन इधर उधर फैंके हुए हैं। वहाँ सब तरफ ध्यान से देखने पर भी सीता को नैं देख कर श्रीराम अपनी सुन्दर भुजाओं की दृढ़ता से पकड़ कर चिल्ला चिल्ला कर कहने लगे कि-

क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता।
केनाहता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया।। ४।।
वृक्षेणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि।
अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम्।। ५।।
यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः।
एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्राविलेक्षणाः।। ६।।

हाय लक्ष्मण सीता कहाँ है? वह यहाँ से कहाँ चली गई? हा सुमित्रापुत्र! किसने उसका हरण कर लिया? या किसने उस प्यारी को खा लिया? हे सीते! यदि तुम वृक्षों के पीछे छिप कर मुझ से हँसी करना चाहती हो तो यह हँसी बन्द करो, जल्दी जाओ मैं बहुत दुखी हूँ। हे सीते! तुम जिन विश्वस्त मृगशावकों के साथ खेला करती थीं, हे सौम्य! वे अब तुम्हारे बिना तुम्हारा ध्यान करते हुए आँसू बहा रहे हैं।

सीतया रहितोऽहं वै नहि जीवामि लक्ष्मण।
वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम्।। ७।।
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति से पिता।
कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः।। ८।।
अपूरयित्वा तं कालं मत्सकाशमिहागतः।
कामवृत्तमनार्यं वा मृषावादिनमेव च।। ९।।
धिक् त्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता।

हे लक्ष्मण सीता के बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा, पर मरने पर भी जब सीता हरण के महान शोक में डूबा हुआ मैं परलोक में जाऊँगा, तो वहाँ मेरे पिता मुझे अवश्य देखेंगे। तब वे मुझसे पूछेंगे कि जब मैंने तुम्हें चौदह वर्ष वन में रहने की आज्ञा दी थी और तुमने भी उसके पालन की प्रतिज्ञा की थी तो फिर उस समय को पूरा किये बिना ही मेरे पास क्यों आ गये? मेरे पिता तब परलोक में मुझसे अवश्य कहेंगे कि तुम स्वेच्छाचारी हो, अनार्य हो, झूठ बोलने वाले हो, तुम्हें धिक्कार है।

विवशं शोकसंतप्तं दीनं भग्नमनोरथम्।। १०।।
मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम्।
क्व गच्छसि वरारोहे मा मोत्सृज सुमध्यसे।। ११।।
त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः।
इतीव विलपन् रामः सीतादर्शनलालसः।। १२।।
न ददर्श सुदुःखार्तो राघवो जनकात्मजाम्।

मैं इस समय विवश, शोक से संतप्त, दीन, भग्नमनोरथ और करुणाजनक स्थिति में पड़ गया हूँ। जैसे कुटिल व्यक्ति को उसकी कीर्ति छोड़ कर चली जाती है, ऐसे ही सुमध्यमे, हे वरारोहे! तुम मुझे छोड़ कर कहाँ जा रही हो? तुम मुझे मत छोड़ो। तुम्हारे बिना मैं अपने प्राणों को छोड़ दूँगा। इस प्रकार विलाप करते हुए, सीता के दर्शन की लालसा लिये अत्यन्त दुःख से पीड़ित राम ने बहुत प्रयत्न किया, पर वे जनक पुत्री को नहीं देख सके।

अनासादयमानं तं सीतां शोकपरायणम्।। १३।।
पङ्कमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुञ्जरम्।
लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया।। १४।।

सीता को न प्राप्त कर अत्यन्त शोक में डूबे हुए श्रीराम की स्थिति भयानक दलदल में फँसे हुए दुःख पाते हुए हाथी के समान हो रही थी। तब उनकी भलाई की कामना से लक्ष्मण ने उनसे कहा कि –

मां विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह।
इदं गिरिवरं वीर बहुकन्दरशोभितम्।। १५।।
प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली।
सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम्।। १६।।

सरितं वापि सम्प्राप्ता मीनवञ्जुलसेविताम्।
वित्रासयितुकामा वा लीना स्यात् कानने क्वचित्।। १७।।
जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ।

हे महामति! आप विषाद मत कीजिये। मेरे साथ उन्हें ढूँढने का यत्न कीजिये। हे वीर! यह बहुत सी कन्दराओं से युक्त पर्वत है। मैथिली को वन में घूमना अच्छा लगता है। वन में वे घूमते हुए वे हर्ष से उन्मत्त हो जाती हैं। अत: वे वन में प्रवेश कर गयी हों या खिली हुई नलिनियों से युक्त सरोवर के किनारे या मछलियों और वेतलताओं से युक्त नदी के किनारे चली गयी हों। हे पुरुषश्रेष्ठ! कहीं वे हमें डराने की इच्छा से वन में कहीं छिप गई हों और यह जानना चाहती हों कि हम उन्हें ढूँढ पाते हैं या नहीं।

तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन् क्षिप्रमेव यतावहे।। १८।।
वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा।
मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनः कृथाः।। १९।।
एवमुक्तः स सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः।
सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे।। २०।।

हे श्रीमन्! हम उसके ढूँढने के लिये जल्दी ही प्रयत्न करते हैं और जहाँ वे प्राप्त हो सकती हैं, वन के उन सारे स्थानों पर ढूँढते हैं। हे काकुत्स्थ! यदि आपको मेरी बात ठीक लगती है तो आप मन को शोक में मत लगाइये। लक्ष्मण के द्वारा सौहार्दपूर्वक इस प्रकार कहे जाने पर राम कुछ सावधान हुए और उन्होंने सुमित्रापुत्र के साथ सीता को ढूँढना आरम्भ किया।

तौ वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च।
निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ।। २१।।
तस्य शैलस्य सानूनि शिलाश्च शिखराणि च।
निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः।। २२।।

दशरथ जी के उन दोनों पुत्रों ने सीता की खोज करते हुए वनों को, पर्वतों को, नदियों को, तालाबों को पूरी तरह से देखा। उस पर्वत की चोटियों को, शिलाओं को, शिखरों को पूरी तरह से देख, पर वे उसे नहीं प्राप्त कर सके।

विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
नेह पश्यामि सौमित्रे वैदेहीं पर्वते शुभाम्।। २३।।
वनं सुविचितं सर्वं पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः।
गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दरनिर्झरः।। २४।।
नहि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।

उस पर्वत में सब तरफ देख कर राम लक्ष्मण से कहने लगे कि हे लक्ष्मण! मैं यहाँ पर्वत पर उस सुन्दरी सीता को नहीं देख रहा हूँ। सारा वन देख लिया, खिले हुए कमलों से भरे सरोवर भी देख लिये, हे महाप्राज्ञ! यह बहुत कन्दराओं और झरनों से युक्त पर्वत भी देख लिया, पर अपनी प्राणों से भी प्यारी वैदेही को कहीं नहीं देखा।

एवं स विलपन् रामः सीताहरणकर्षितः।। २५।।
दीनः शोकसमाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत्।
स विह्वलितसर्वाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतनः।। २६।।
निषसादातुरो दीनो निःश्वस्याशीतमायतम्।
बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः।। २७।।
हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः।

सीता के हरण से दुःखी रात दीनता और शोक से भर कर एक मुहूर्त के लिये बड़े विह्वल हो गये। उनके सारे अंग शिथिल हो गए थे, बुद्धि काम नहीं कर रही थी, और चेतना लुप्त सी हो रही थी। वे दुःख से आतुर और दीन हो कर ठंडी और लम्बी साँसें खींचते हुए वहीं बैठ गये। बार-बार लम्बी साँस लेते हुए कमलनयन राम आँसुओं से लड़खड़ाती हुई वाणी में हा प्रिये! ऐसा कहते हुए अनेक प्रकार से उच्च स्वर में विलाप करने लगे।

तं सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवम्।। २८।।
बहुप्रकारं शोकार्तः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः।
अनादृत्य तु तद् वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम्।
अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत् स पुनः पुनः।। २९।।

तब शोक से पीड़ित, विनीत और हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण ने अपने प्रिय भाई को अनेक प्रकार से सान्त्वना दी। पर लक्ष्मण के होठों से निकली हुई उन बातों की तरफ ध्यान न दे कर, उस प्रिय सीता को देख न पाने के कारण वे उसे बार-बार पुकार-पुकार कर रोने लगे।

पचासवाँ सर्ग

श्रीराम का विलाप।

पश्यन्निव च तां सीतामपश्यन्मन्मथार्दितः।
उवाच राघवो वाक्यं विलापाश्रयदुर्वचम्।। १।।
त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतरा प्रिये।
आवृणोषि शरीरं ते मम शोकविवर्धनी।। २।।
कदलीकाण्डसदृशौ कदल्या संवृतावुभौ।
ऊरू पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम्।। ३।।

सीता के प्रति अत्यधिक प्रेम से पीड़ित श्रीराम सीता को न देखने पर भी रोते हुए लड़खड़ाती ध्वनि से सीता को सम्बोधित करते हुए बातें करने लगे जैसे कि वे उसे देख रहे हों। वे कहने लगे कि हे फूलों से बहुत अधिक प्यार करने वाली प्रिय सीते! तुम अशोकवृक्ष की फूलों वाली शाखाओं से अपने शरीर को छिपा रही हो और मेरे शोक को बढ़ा रही हो। पर हे देवी! मैं तुम्हारी उन जाँघों को जो केले के तने के समान हैं और केले के पत्तों से ही छिपायी हुई हैं, देख रहा हूँ। तुम उन्हें मुझ से नहीं छिपा सकतीं।

कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे।
अलं ते परिहासेन मम बाधावहेन वै।। ४।।
विशेषेणाश्रमस्थाने हासोऽयं न प्रशस्यते।
अवगच्छामि ते शीलं परिहासप्रियं प्रिये।। ५।।
आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव।

हे भद्रे! तुम हँसती हुई कनेर के फूलों की वाटिका का सेवन कर रही हो। पर हे देवी, अब इस परिहास को बन्द करो। मुझे इससे बहुत कष्ट हो रहा है। इस आश्रम के स्थान पर तो तुम्हारा यह परिहास विशेष रूप से अच्छा नहीं है। हे प्रिय! मैं जानता हूँ कि तुम्हारा स्वभाव बहुत परिहास प्रिय है! हे विशाल नेत्रों वाली तुम जल्दी आ जाओ। तुम्हारी वह कुटिया सूनी पड़ी है।

सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा।। ६।।
न हि सा विलपन्तं मामुपसम्प्रैति लक्ष्मण।
एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण।। ७।।
शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः।
हा ममार्ये क्व यातासि हा साध्वि वरवर्णिनि।। ८।।
हा सकामाद्य कैकेयी देवि मेऽद्य भविष्यति।

हे लक्ष्मण! मेरे विलाप करने पर भी सीता मेरे पास नहीं आ रही है, इसलिये यह स्पष्ट है कि वह राक्षसों द्वारा खायी गई या हरण की गयी। हे लक्ष्मण! ये आँखों में आँसू भरे हुए मृगों के झुंड भी मुझे ऐसा ही कहते हुए प्रतीत हो रहे हैं कि उस देवी को राक्षसों ने खा लिया। हाय मेरी आदरणीय, साध्वी और सुन्दरी तुम कहाँ चली गयीं? हाय देवी आज कैकेयी की कामना सफल हो जायेगी।

सीतया सह निर्यातो विना सीतामुपागतः।। ९।।
कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं मम।
निर्वीर्य इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति।। १०।।
कातरत्वं प्रकाशं हि सीतापनयनेन मे।
निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम्।। ११।।
कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ष्ये निरीक्षितुम्।
विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया।। १२।।
सुताविनाशसंतप्तो मोहस्य वशमेष्यति।

सीता के साथ अयोध्या से निकला, अब बिना सीता के वापिस जाऊँगा तो अपने सूने अन्तःपुर में कैसे प्रवेश करूँगा? सीता के अपहरण से संसार मुझे पराक्रम रहित और निर्दय कहेगा। इससे मेरी कायरता ही प्रकाशित होगी। वनवास के निवृत्त हो जाने पर मिथिला के राजा जब मेरी कुशलता पूछने आयेंगे, तब मैं उनकी तरफ कैसे देख सकूँगा। वे विदेहराज निश्चय ही मुझे उसके बिना देख कर पुत्री के विनाश से दुःखी हो कर मूर्च्छित हो जायेंगे।

अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम्।। १३।।
स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एव मतो मम।
तन्मामुत्सृज्य हि वने गच्छायोध्यापुरीं शुभाम्।। १४।।
न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन।
गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात् त्वया।। १५।।
अनुज्ञातोऽसि रामेण पालयेति वसुंधराम्।

अथवा मैं भरत के द्वारा पालिता अयोध्या में नहीं जाऊँगा। उसके बिना स्वर्ग भी मेरे लिये सूना है। इसलिये तुम मुझे वन में ही छोड़ कर उस पवित्र अयोध्या में चले जाओ। मैं तो सीता के बिना अब किसी तरह जीवित नहीं रह सकता। भरत का गाढ़ा आलिंगन करके मेरी तरफ से यह कह देना कि राम ने तुम्हें आज्ञा दे दी है, तुम पृथ्वी का पालन करो।

अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभो।। १६।।
कौसल्या च यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया।
रक्षणीया प्रयत्नेन भवता सूक्तचारिणा।। १७।।
सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्रसूदन।
विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत्।। १८।।

हे विभो! मेरी माता कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा इन सबका आदर के साथ अभिवादन करना, इनकी प्रयत्न से रक्षा करना और इनकी आज्ञा का पालन करना यह मेरी तुम्हारे लिये आज्ञा है– हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! सीता के विनाश का और मेरे विनाश का यह समाचार मेरी माता से विस्तार से निवेदन कर देना।

इति विलपति राघवे तु दीने
वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या।
भयविकलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि
व्यथितमना भृशमातुरो बभूव।। १९।।

इस प्रकार श्रीराम जब दीन हो कर वन के अन्दर जा कर उस सुन्दर केशों वाली सीता के बिना विलाप करने लगे तो लक्ष्मण के मुख पर भी भय और व्याकुलता दिखाई देने लगी। वे मन में दुःखी हो कर अत्यन्त घबरा गये।

स लक्ष्मणं शोकवशाभिपन्नं
शोके निमग्नो विपुले तु रामः।
उवाच वाक्यं व्यसनानुरूप-
मुष्णं विनिश्वस्य रुदन् सशोकम्।। २०।।

तब शोक के बस में हुए लक्ष्मण से और भी अधिक शोक में मग्न राम शोकावेग के कारण रोते हुए और गर्म साँसे लेते हुए अपने ऊपर आये हुए संकट के अनुरूप ही बोले कि–

न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी
मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुंधरायाम्।
शोकानुशोको हि परम्पराया
मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च।। २१।।

मैं समझता हूँ कि इस पृथ्वी पर मेरे जैसा बुरा कर्म करने वाला कोई नहीं है। इसलिये एक के बाद दूसरा शोक के क्रम से शोकों की परम्परा आ कर मेरे हृदय और मन को भेदती चली जा रही है।

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि
पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तत्रायमद्यापतितो विपाको
दुःखेन दुःखं यदहं विशामि।। २२।।

वास्तव में पूर्वजन्म में मैंने मनचाहे पापकर्म बहुत बार किये हैं। उन्हीं का परिणाम अब मुझे प्राप्त हो रहा है, जो एक दुःख के बाद दूसरा दुःख मेरे ऊपर आता जा रहा है।

राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः
पितुर्विनाशो जननीवियोगः।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेग-
मापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि।। २३।।

पहले राज्य से वंचित हुआ, फिर परिवार वालों और अपने लोगों से वियोग हुआ, फिर पिता जी का देहान्त हुआ और माता से भी अलग हुआ। हे लक्ष्मण! ये सारी बातें जब मेरे चिन्तन में आती हैं तो मेरे शोक के वेग को बढ़ा देती हैं।

सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं
शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम्।
सीतावियोगात् पुनरप्युदीर्णं
काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्तः।। २४।।

हे लक्ष्मण! ये सारे दुःख और वन में रहने का कष्ट सब मेरे शरीर में शान्त हो गया था, पर अब सीता का वियोग हो जाने पर, वे सारे दुःख फिर उमड़ आये हैं, जैसे काठ का संयोग होने पर अग्नि अचानक फिर उदीप्त हो जाती है।

सा नूनमार्या मम राक्षसेन
ह्यभ्याहृता खं समुपेत्य भीरुः।
अपस्वरं सुस्वरविप्रलापा
भयेन विक्रन्दितवत्यभीक्ष्णम्।। २५।।

वह मेरी भीरु आर्या सीता निश्चय ही राक्षस द्वारा आकाश मार्ग से हरण कर ली गयी है। उस समय वह मधुर स्वर में विलाप करने वाली सीता भय के कारण लगातार विकृत स्वर में क्रन्दन कर रही होगी।

तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य
सदोचितावुत्तावुत्तमचन्दनस्य
वृत्तौ स्तनौ शोणितपङ्कदिग्धौ
नूनं प्रियाया मम नाभिपातः।। २६।।

उस प्रिया के दोनों गोल स्तन जो सदा उत्तम कोटि के प्रिय दिखाई देने वाले लाल चन्दन से चर्चित होने योग्य थे, निश्चय ही खून की कीचड़ से सन गये होंगे। हाय फिर भी मेरे शरीर का पतन नहीं हो रहा है।

तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापं
तस्या मुखं कुञ्चितकेशभारम्।
रक्षोवशं नूनमुपागताया
न भ्राजते राहुमुखे यथेन्दुः।। २७।।

उसका वह मुख जो प्यार भरी, स्पष्ट और मधुर बातें किया करता था, और जो घुँघराले बालों के भार से सुशोभित था, राक्षस के पंजे में फँसने पर वह ऐसे ही हो रहा होगा जैसे ग्रहण के वश में चन्द्रमा होता है।

तां हारपाशस्य सदोचितान्तां
ग्रीवां प्रियाया मम सुव्रतायाः।
रक्षांसि नूनं परिपीतवन्ति
शून्ये हि भित्त्वा रुधिराशनानि।। २८।।

मेरे उस अच्छे व्रत का पालन करने वाली प्रिया का कण्ठ जो सदा हारों के बन्धन से सुशोभित होने के योग्य था, निश्चय ही खून पीने वाले राक्षसों ने सूने में उसे फाड़ कर उसका खून पिया होगा।

मया विहीना विजने वने सा
रक्षोभिराहृत्य विकृष्यमाणा।
नूनं विनादं कुररीव दीना
सा मुक्तवत्यायतकान्तनेत्रा।। २९।।

मुझ से बिछुड़ कर सूने जंगल में राक्षसों ने उसे पकड़ कर घसीटा होगा और वह विशाल तथा सुन्दर नेत्रों वाली दीनता के साथ कुररी के समान विलाप कर रही होगी।

अस्मिन् मया सार्धमुदारशीला
शिलातले पूर्वमुपोपविष्टा।
कान्तस्मिता लक्ष्मण जातहासा
त्वामाह सीता बहुवाक्यजातम्।। ३०।।

यह वही शिला है, जिस पर एक दिन पहले वह उदार चरित्र वाली मेरे साथ बैठी थी। सुन्दर मुस्कराहट के साथ उसने तुमसे भी हँस-हँस कर बहुत सी बात कहीं थीं।

गोदावरीयं सरितां वरिष्ठा
प्रिया प्रियाया मम नित्यकालम्।
अप्यत्र गच्छेदिति चिन्तयामि
नैकाकिनी याति हि सा कदाचित्।। ३१।।

नदियों में श्रेष्ठ यह गोदावरी, मेरी प्रिया को सदा ही प्यारी रही है। मैं सोचता हूँ कि वह उधर ही चली गयी हो, पर वह वहाँ अकेली कभी नहीं जाती थी।

पद्मानना पद्मपलाशनेत्रा
पद्मानि वानेतुमभिप्रयाता।
तदप्ययुक्तं नहि सा कदाचि-
न्मया विना गच्छति पङ्कजानि।। ३२।।

पद्म के समान नेत्रोंवाली और पद्म के ही समान मुख वाली शायद कमलों को लेने के लिये चली गयी हो, पर यह ठीक नहीं है। वह मेरे बिना कभी कमलों को लेने के लिये नहीं गयी।

कामं त्विदं पुष्पितवृक्षखण्डं
नानाविधैः पक्षिगणैरुपेतम्।
वनं प्रयाता नु तदप्ययुक्त-
मेकाकिनी सातिबिभेति भीरुः।। ३३।।

हो सकता है कि वह फूलों वाले वृक्षों से युक्त और तरह-तरह के पक्षियों से सुशोभित इस वन में घूमने के लिये चली गयी हो। पर यह भी ठीक नहीं है। वह भीरु अकेली तो जाने में बहुत डरती है।

आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ
लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्।
मम प्रिया सा क्व गता हृता वा
शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम्।। ३४।।

हे सूर्य! तुम संसार में किसने क्या किया है और क्या नहीं किया है, यह सब जानते हो, तुम लोगों के सत्य और असत्य कर्मों के सभी साक्षी हो। मैं शोक से मारा जा रहा हूँ। तुम मुझे बताओ कि मेरी प्यारी कहीं गयी है या हरण की गयी है?

लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किंचिद्
यत् ते न नित्यं विदितं भवेत् तत्।
शंसत्व वायो कुलपालिनीं तां
मृता हृता वा पथि वर्तते वा।। ३५।।

हे वायु! सारे लोकों में कुछ भी ऐसा नहीं है, जो तुझे नित्य मालूम न रहता हो। तुम मेरी उस कुल का पालन करने वाली सीता के विषय में बताओ कि वह मर चुकी है, हर कर ली गई है या अभी मार्ग में ही है।

इतीव तं शोकविधेयदेहं
रामं विसंज्ञं विलपन्तमेव।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो
न्याय्ये स्थितः कालयुतं च वाक्यम्।। ३६।।

इस प्रकार विलाप करते हुए श्रीराम से जिनका शरीर शोक के आधीन हो रहा था। जो चेतना रहित से हो रहे थे, न्याय के मार्ग में स्थित और दीनता रहित सुमित्रापुत्र लक्ष्मण ने समयानुरूप यह बात कही।

शोकं विसृज्याद्य धृतिं भजस्व
सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके
सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु।। ३७।।

हे आर्य! आप शोक को छोड़ कर धैर्य को धारण करें। उसकी खोज करने में हमें उत्साह रखना चाहिये। उत्साह वाले व्यक्ति ही इस संकार में कठिन कार्य आने पर भी दुःखी नहीं होते हैं।

इक्यावनवाँ सर्ग

मृगों द्वारा संकेत पा कर दोनों भाइयों का दक्षिण दिशा की तरफ जाना, सीता के बिखरे हुए फूल आदि युद्ध के चिह्न देखना।

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्।
शीघ्र लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरीं नदीम्।। १।।
अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता।
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः पुनरेव हि।। २।।
नदीं गोदावरीं रम्यां जगाम लघुविक्रमः।

इसके पश्चात् दीनावस्था को प्राप्त राम ने दीन वाणी में ही लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण! तुम शीघ्र ही गोदावरी नदी के किनारे जा कर मालुम करो कि कहीं सीता कमलों को लेने के लिये तो वहाँ नहीं गयी? राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर तुरन्त पराक्रम दिखाने वाले लक्ष्मण पुनः उस सुन्दर गोदावरी के किनारे गये।

तां लक्ष्मणस्तीर्थवतीं विचित्वा राममब्रवीत्।। ३।।
नैनां पश्यामि तीर्थेषु क्रोशतो न शृणोति मे।
कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी।। ४।।
नहि तं वेद्मि वै राम यत्र सा तनुमध्यमा।

वहाँ अनेक घाटों वाली गोदावरी नदी पर ढूँढ कर, वे वापिस आये और राम से बोले कि गोदावरी के घाटों पर मैंने उन्हें कहीं नहीं देखा और मेरे पुकारने पर भी उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। वे क्लेशों को नष्ट करने वाली वैदेही पता नहीं कहाँ चली गई। हे राम! वे पतले शरीर वाली किस जगह हैं, उसका पता ही नहीं लग रहा है।

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः संतापमोहितः।। ५।।
उवाच रामः सौमित्रिं सीतादर्शनकर्शितः।
किं नु लक्ष्मण वक्ष्यामि समेत्य जनकं वचः।। ६।।
मातरं चैव वैदेह्या विना तामहमप्रियम्।

लक्ष्मण की बात सुन कर दीनावस्था को प्राप्त और संताप से मोहित, सीता के न देखने से पीड़ित राम लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण! अब मैं जनक जी से मिलने पर उन्हें क्या उत्तर दूँगा और बिना सीता के उसकी माता से मिलने पर उन्हें यह अप्रिय समाचार कैसे सुनाऊँगा?

या मे राज्यविहीनस्य वने वन्येन जीवतः।। ७।।
सर्वं व्यपानयच्छोकं वैदेही क्व नु सा गता।
ज्ञातिवर्गविहीनस्य वैदेहीमप्यपश्यतः।। ८।।
मन्ये दीर्घा भविष्यन्ति रात्रयो मम जाग्रतः।
मन्दाकिनीं जनस्थानमिमं प्रस्रवणं गिरिम्।। ९।।
सर्वाण्यनुचरिष्यामि यदि सीता हि लभ्यते।

मेरे राज्य से विहीन होने पर, वन में वन्यपदार्थों से जीवन निर्वाह करने पर, जिसने मेरे साथ रह कर मेरे सारे शोक को दूर किया, वह सीता पता नहीं अब कहाँ चली गयी? मैं बन्धु-बान्धवों से तो पहले ही बिछुड़ गया था, अब वैदेही को भी नहीं देखूँगा, तो मेरी रात्रियाँ अब जागते हुए और भी बड़ी हो जाएँगी। मैं इस मन्दाकिनी नदी, प्रस्रवण पर्वत और जन स्थान में जब जगह घूमूँगा, शायद यहाँ कहीं सीता मुझे मिल जाये।

एते महामृगा वीर मामीक्षन्ते पुनः पुनः।। १०।।
वक्तुकामा इह हि मे इङ्गितान्युपलक्षये।
तांस्तु दृष्ट्वा नर व्याघ्रो राघवः प्रत्युवाचह।। ११।।
क्व सीतेति निरीक्षन् वै बाष्पसंरुद्धया गिरा।
एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगाः सहसोत्थिताः।। १२।।
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे दर्शयन्तो नभःस्थलम्।

हे वीर लक्ष्मण! ये महान मृग मेरी तरफ बार-बार देखते हैं और ऐसा लगता है कि मानो कुछ कहना चाहतें हैं मैं इनके संकेतों को देख रहा हूँ। फिर उन मृगों की तरफ देख कर उन नरश्रेष्ठ श्रीराम ने आँसुओं से गद्‌गद् वाणी से उनकी चेष्टाओं को देखते हुए पूछा कि सीता कहाँ है? राजा राम के ऐसा कहने पर वे मृग अचानक उठ खड़े हुए और आकाश की तरफ दिखाते हुए दक्षिण की तरफ चल दिये।

मैथिली ह्रियमाणा सा दिशं यामभ्यपद्यत।। १३।।
तेन मार्गेण गच्छन्तो निरीक्षन्ते नराधिपम्।
येन मार्गं च भूमिं च निरीक्षन्ते स्म ते मृगाः।। १४।।
पुनर्नदन्तो गच्छन्ति लक्ष्मणेनोपलक्षिताः।
तेषां वचनसर्वस्वं लक्षयामास चेङ्गितम्।। १५।।

अपहरण करके मैथिली को जिस तरफ ले जाया गया था, उसी रास्ते से वे जाते हुए बार-बार राजा की तरफ देखते थे। जिस मार्ग और भूमि की तरफ देखते हुए और फिर बोलते हुए वे मृग जा रहे थे, उसे लक्ष्मण ने ध्यान से देखा और वे उनकी बोली तथा चेष्टाओं का सार समझ गये।

उवाच लक्ष्मणो धीमाञ्ज्येष्ठं भ्रातरमार्तवत्।
क्व सीतेति त्वया पृष्टा यथेमे सहसोत्थिताः।। १६।।
दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः।
साधु गच्छावहे देव दिशमेतां च नैर्ऋतीम्।। १७।।
यदि तस्यागमः कश्चिदार्या वा साथ लक्ष्यते।

तब उन बुद्धिमान लक्ष्मण ने अपने बड़े भाई से दुःखी हो कर कहा कि तुम्हारे द्वारा सीता कहाँ है, यह पूछे जाने पर जैसे ये एकदम उठ कर खड़े हो गये और जिस प्रकार ये मृग पृथ्वी और दक्षिण दिशा को दिखा रहे हैं, इसलिये अच्छा यही है कि हम नैर्ऋती दिशा अर्थात् अर्थात दक्षिण पश्चिमी कोन की तरफ चलें। उस तरफ शायद उन आर्या का कुछ समाचार मिल जाये, या वे स्वयं ही दिखाई दे जायें।

बाढमित्येव काकुत्स्थः प्रस्थितो दक्षिणां दिशम्।। १८।।
लक्ष्मणानुगतः श्रीमानृ वीक्षमाणो वसुंधराम्।
एवं सम्भाषमाणौ तावन्योन्यं भ्रातरावुभौ।। १९।।
वसुंधरायां पतितपुष्पमार्गमपश्यताम्।

अच्छा ऐसा ही करते हैं, ऐसा कह कर श्रीमान ककुत्स्थवंशी श्रीराम पृथ्वी को देखते हुए दक्षिण दिशा की तरफ चल दिये। लक्ष्मण जी उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। इस प्रकार आपस में बात करते हुए जब वे दोनों भाई जा रहे थे, तब उन्होंने मार्ग में पृथ्वी पर फूलों को पड़े हुए देखा।

पुष्पवृष्टिं निपतितां दृष्ट्वा रामो महीतले।। २०।।
उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः।
अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण।। २१।।
अपिनद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने।

भूमि पर फूलों की उस वर्षा को गिरा हुआ देख कर, वीर और दुःखी राम दुःखी लक्ष्मण से बोले, कि हे लक्ष्मण! मैं इन फूलों को पहचानता हूँ, मैंने जब इन्हें वैदेही को दिया था, तब उसने इन्हें अपने केशों में लगाया था।

ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत्।। २२।।
त्रस्ताया रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः।
राक्षेसनानुसृप्ताया वैदेह्याश्च पदानि तु।। २३।।
स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च।
भग्नं धनुश्च तूणी च, रामः शशंस भ्रातरम्।। २४।।

तभी उन्होंने भूमि में उभरा हुआ राक्षस का एक बड़ा पैरों का चिह्न देखा और साथ ही राक्षस के द्वारा पीछा की जाती हुई, डरी हुई, इधर उधर भागती हुई, राम को चाहने वाली सीता के पैरों के निशान भी देखे। सीता के और राक्षस के पैरों के उन चिह्नों को तथा एक टूटे हुए धनुष और तरकस को भी देख कर राम ने भाई से कहा कि–

पश्य लक्ष्मण वैदेह्या कीर्णाः कनकबिन्दवः।
भूषणानां हि सौमित्रे माल्यानि विविधानि च।। २५।।
तप्तबिन्दुनिकाशैश्च चित्रैः क्षतजबिन्दुभिः।
आवृतं पश्य सौमित्रे सर्वतो धरणीतलम्।। २६।।
मन्ये लक्ष्मण वैदेही राक्षसैः कामरूपिभिः।
भित्त्वा भित्त्वा विभक्ता वा भक्षिता वा भविष्यति।। २७।।

देखो लक्ष्मण! सीता के आभूषणों से बिखरे हुए, स्वर्ण बिन्दुओं और उसके तरह-तरह के टूटे हुए हारों को देखो। विचित्र स्वर्ण बिन्दुओं के समूह के साथ यह भूमि सब तरफ से खून की बूदों से भी भरी हुई है। हे लक्ष्मण! मैं समझता हूँ कि मायावी राक्षसों ने यहाँ सीता के टुकड़े-टुकड़े करके उसे आपस में बाँटा और खाया होगा।

तस्या निमित्तं सीताया द्वयोर्विवदमानयोः।
बभूव युद्धं सौमित्रे घोरं राक्षसयोरिह।। २८।।
मुक्तायणिचितं चेदं रमणीयं विभूषितम्।
धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद् धनुः।। २९।।

तरुणादित्यसंकाशं वैदूर्यगुलिकाचितम्।
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम्।। ३०।।
शरावरौ शरैः पूर्णौ विध्वस्तौ पश्य लक्ष्मण।। ३१।।

हे लक्ष्मण! उस सीता के लिये परस्पर विवाद करते हुए यहाँ दो राक्षसों का घोर युद्ध भी हुआ है। हे सौम्य! मोतियों और मणियों के जटित सुन्दर रूप से सजाया हुआ, पृथ्वी पर पड़ा हुआ, यह महान और टूटा हुआ धनुष किसका है? यह टूटा हुआ और भूमि पर पड़ा हुआ किसका सुनहला कवच है? ये टूटे और बिखरे हुए भयानक बाण किसके हैं? हे लक्ष्मण ये दोनों बाणों से भरे हुए और टूटे हुए तरकस भी पड़े हैं।

पदवी पुरुषस्यैषा व्यक्तं कस्यापि रक्षसः।
वैरं शतगुणं पश्य मम तैर्जीवितान्तकम्।। ३२।।
सुघोरहृदयैः सौम्य राक्षसैः कामरूपिभिः।
हता मृता वा वैदेही भक्षिता वा तपस्विनी।। ३३।।

यह स्पष्ट है कि ये किसी राक्षस के ही पैरों के चिह्न हैं। हे सौम्य! अब मेरा उन भयानक हृदय वाले, मायावी राक्षसों के साथ बैर सौ गुणा बढ़ गया है। यह उनके प्राणों को ही समाप्त करके समाप्त होगा।

बावनवाँ सर्ग

श्रीराम का राक्षसों के प्रति क्रोध प्रकट करना और लक्ष्मण का श्रीराम को समझा कर शान्त करना।

मृदुं लोकहिते युक्तं दान्तं करुणवेदिनम्।
मां प्राप्य ही गुणो दोषः संवृत्तः पश्य लक्ष्मण।। १।।
अद्यैव सर्वभूतानां रक्षसामभवाय च।
संहृत्यैव शशिज्योत्स्नां महान् सूर्य इवोदितः।। २।।
संहृत्यैव गुणान् सर्वान् मम तेजः प्रकाशते।
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः।। ३।।
करिष्ये मैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम्।

श्री राम कहने लगे कि मैं मृदु स्वभाव से लोगों की भलाई में लगा रहता हूँ, जितेन्द्रिय तथा दया करने वाला हूँ। पर देखो लक्ष्मण। ये गुण मेरे पास आ कर मेरे लिये दोष बन गये। इसलिये अब आज से ही सारे प्राणियों और राक्षसों के विनाश के लिये, जैसे सूर्य चन्द्रमा की प्रभा को समेट कर महान तेज के साथ उदय होता है वैसे ही इन सारे गुणों को समेट कर मेरा तेज प्रकाशित होगा। कान तक खींच कर छोड़े हुए मेरे बाणों को रोकना जीवों के लिये बहुत कठिन होगा। मैं मैथिली के लिये सारे संसार को राक्षसों और पिशाचों से रहित कर दूँगा।

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षः स्फुरमाणोष्ठसम्पुटः।। ४।।
वल्कलाजिनमाबद्ध्य जटाभारमबन्धयत्।
लक्ष्मणादथ चादाय रामो निष्पीड्य कार्मुकम्।। ५।।
शरमादाय संदीप्तं घोरमाशीविषोपमम्।
संदधे धनुषि श्रीमान् रामः परपुरञ्जयः।। ६।।
तप्यमानं तदा रामं सीताहरणकर्शितम्।
वीक्षमाणं धनुः सज्यं निश्वसन्तं पुनः पुनः।। ७।।
अब्रवीत् प्राँजलिर्वाक्यं, दृष्ट्वा रामं स लक्ष्मणः।

ऐसा कह कर वे राम, जिनकी क्रोध से आँखें लाल हो गयीं थीं और होठ फड़क रहे थे, अपने वल्कल और मृगचर्म को अच्छी तरह से बाँध कर, अपनी जटाओं को भी बाँधने लगे। शत्रु के पुर को नष्ट करने वाले श्रीमान राम ने लक्ष्मण से अपने धनुष को ले कर दृढ़ता से उसे पकड़ लिया और भयानक विषैले सर्प के समान प्रज्वलित बाण को ले कर उसे अपने धनुष पर रख लिया। जब लक्ष्मण ने सीता हरण के शोक से पीड़ित ओर संतप्त राम को अपने तैयार किये हुए धनुष की तरफ बार-बार देखते और बार-बार लम्बी साँसें लेते हुए देखा तो हाथ जोड़ कर उन्होंने उनसे कहा कि-

येन राजन् हृता सीता तमन्वेषितुमर्हसि।। ८।।
मद्द्वितीयो धनुष्पाणिः सहायैः परमर्षिभिः।
समुद्रं वा विचेष्यामः पर्वतांश्च वनानि च।। ९।।
गुहाश्च विविधा घोराः पद्मिन्यो विविधास्तथा।
यावन्नाधिगमिष्यामस्तव भार्यापहारिणम्।। १०।।
कोसलेन्द्र ततः पश्चात्, प्राप्त कालं करिष्यसि।
तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्धर्तुमर्हसि।। ११।।

हे राजन्! जिसने सीता का हरण किया है, उसी को ढूँढ़ना चाहिये। आप मेरे साथ बड़े-बड़े ऋषियों की

सहायता से, धनुष को हाथ में ले कर ढूँढिये। हम जब तक आपकी पत्नी के हरण करने वाले का पता न लगा लें, समुद्रों, पहाड़ों, वनों, भयानक कन्दराओं और अनेक प्रकार के कमलों वाले सरोवरों में खोज करेंगे। हे कोसलेन्द्र! उसके पश्चात् जैसे समयोचित हो, वैसा आप करें। उसी दुष्ट शत्रु को जान कर उसे उखाड़ने का प्रयत्न करना चाहिये।

तिरेपनवाँ सर्ग

श्रीराम की जटायु से भेंट और उसकी दुर्दशा देख कर विलाप करना।

पूर्वजोऽप्युक्तमात्रस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम्।
सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः।। १।।
स निगृह्य महाबाहुः प्रवृद्धं रोषमात्मनः।
अवष्टभ्य धनुश्चित्रं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।। २।।
किं करिष्यावहे वत्स क्व वा गच्छाव लक्ष्मण।
केनोपायेन पश्यावः सीतामिह विचिन्तय।। ३।।

यद्यपि श्रीराम बड़े थे, पर फिर भी लक्ष्मण के द्वारा कही गयी सार गर्भित अच्छी बात को सुन कर सार को ग्रहण करने वाले उन्होंने उसे स्वीकार किया। तब उन महाबाहु राम ने अपने क्रोध को वश में कर अपने विचित्र धनुष को उतार कर लक्ष्मण से कहा कि हे वत्स लक्ष्मण! अब हम क्या करेंगे? और कहाँ जाएँगे? किस उपाय से सीता की खोज करें, इस पर विचार करो।

तं तथा परितापार्तं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि।। ४।।
राक्षसैर्बहुभिः कीर्णं नानाद्रुमलतायुतम्।
सन्तीह गिरिदुर्गाणि निर्दराः कन्दराणि च।। ५।।
गुहाश्च विविधा घोरा नानामृगगणाकुलाः।
आवासाः किंनराणां च गन्धर्वभवनानि च।। ६।।

तब उस संताप से पीड़ित राम से लक्ष्मण ने कहा कि आपको इस जन स्थान में ही खोज करनी चाहिये। यह जनस्थान बहुत से राक्षसों से भरा हुआ है, अनेक प्रकार के वृक्ष और लताओं से युक्त है। यहाँ बहुत से पहाड़ी दुर्गम स्थान हैं, खाइयाँ हैं और कन्दराएँ हैं। यहाँ अनेक वन्य पशुओं से युक्त किन्नर ओर गन्धर्व जाति के लोगों के रहने के स्थान भी हैं।

तानि युक्तो मया सार्धं समन्वेषितुमर्हसि।
त्वद्विधा बुद्धिसम्पन्ना महात्मानो नरर्षभाः।। ७।।
आपत्सु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः।
इत्युक्तस्तद् वनं सर्वं विचचार सलक्ष्मणः।। ८।।

आप मेरे साथ इन सारे स्थानों पर खोज कीजिये। आप जैसे बुद्धिमान नरश्रेष्ठ महात्मा लोग आपत्तियों में उसी प्रकार कम्पित नहीं होते जैसे वायु के वेग से पर्वत नहीं हिलते। इस प्रकार कहे जाने पर श्रीराम लक्ष्मण के साथ उस सारे वन में घूमने लगे।

ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम्।
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्।। ९।।
तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन्।
अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम्।। १०।।

तभी उन्होंने पर्वत के शिखर के समान प्रतीत होने वाले उत्तम विद्वान् महाभाग जटायु को देखा, जो खून से लिपटे हुए भूमि पर पड़े थे। तब उन बुद्धिमान जटायु ने झागों वाले खून की उलटी करते हुए अत्यन्त दीन वाणी में दशरथ पुत्र श्री राम से कहा कि—

यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हतम्।। ११।।
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा।। १२।।

हे आयुष्मान्! तुम जिसको ओषधि के समान इस महान वन में खोज रहे हो, उस देवी सीता और मेरे प्राणों इन दोनों का रावण ने अपहरण कर लिया। हे राघव! आपके और लक्ष्मण के न रहने पर मैंने बलवान रावण के द्वारा सीता को अपहरण कर ले जाते हुए देखा।

सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे प्रभो।
विध्वंसितरथच्छत्रः पतितो धरणीतले।। १३।।
एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा।
परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः।। १४।।
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम्।

हे प्रभो! तभी मैं सीता की तरफ दौड़ा। रावण से मेरा युद्ध हुआ और उसमें रावण घायल हो कर पृथ्वी

पर गिर पड़ा। उसके विमान पर लहराने वाला उसका छत्र मैंने नष्ट कर दिया। यह उसका टूटा हुआ धनुष है और ये उसके बाण हैं। किन्तु जब मैं थक गया, तब रावण ने तलवार से मेरे दोनों हाथ काट दिये और विदेहपुत्री सीता को ले कर वायुमार्ग से उड़ गया।

गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद् धनुः।। १५।।
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः।
द्विगुणीकृततापार्तो रामो धीरतरोऽपि सन्।। १६।।
एवमेकायने कृच्छ्रे निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः।
समीक्ष्य दुःखितो रामः सौमित्रिमिदमब्रवीत्।। १७।।

तब श्रीराम अपने विशाल धनुष को फेंक कर और गृध्रराज का आलिंगन कर भूमि पर गिर पड़े और शोक से बेबस हो कर लक्ष्मण के साथ रोने लगे। अत्यन्त धैर्यशाली होने पर भी राम उस समय द्विगुणित हुए सन्ताप से आर्त हो गये। वे उस जटायु को जो अकेले ही मृत्यु के उस एकान्त कष्टमय मार्ग पर जा रहे थे और बार-बार लम्बी साँस ले रहे थे, देख कर दुःखी हो कर लक्ष्मण से बोले कि--

राज्यं भ्रष्टं वने वासः, सीता नष्टा मृतो द्विजः।
नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन् स चराचरे।। १८।।
येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा।
अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः।। १९।।
शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात्।
इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः।
जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन्।। २०।।

मेरा राज्य मुझसे छिन गया, वन में मुझे रहना पड़ा, सीता भी नष्ट हो गयी और ये हमारे बुद्धिमान मित्र भी मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। इस संसार में मुझ से अधिक अभागा और कोई नहीं है। इसलिये मेरे ऊपर यह महान मुसीबत का फन्दा पड़ा हुआ है। मेरे ही अभाग्य के कारण ये मेरे पिता के मित्र महा बली गृध्रजाति के राजा मारे हुए भूमि पर पड़े हुए हैं। इस प्रकार बार-बार कहते हुए राम ने लक्ष्मण के साथ जटायु के प्रति पिता जैसा प्रेम दिखाते हुए उनके शरीर पर अपना हाथ फेरा।

चौवनवाँ सर्ग

जटायु का प्राणत्याग और श्रीराम के द्वारा अत्येष्टि।

रामः प्रेक्ष्य तु तं गृध्रं भुवि रौद्रेण पातितम्।
सौमित्रिं मित्रसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत्।। १।।
ममायं नूनमर्थेषु यतमानो विहंगमः।
राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यजति मत्कृते।। २।।
अतिखिन्नः शरीरेऽस्मिन् प्राणो लक्ष्मण विद्यते।
तथा स्वरविहीनोऽयं विक्लवं समुदीक्षते।। ३।।

भयानक राक्षस से द्वारा भूमि पर गिराये हुए उस गृध्रराज को देख कर राम ने मित्रता के गुणों से युक्त सुमित्रानन्दन से यह कहा कि ये आकाश विचरण की योग्यता वाले, गृध्र जाति के राजा वास्तव में मेरी भलाई के लिये ही प्रयत्न करते हुए युद्ध में राक्षस के द्वारा मारे जा कर मेरे लिये ही अपने प्राणों का त्याग कर रहे हैं। हे लक्ष्मण! इनके प्राण शरीर में बड़े कष्ट का अनुभव कर रहे हैं। इनकी बोली भी बन्द होती जा रही है और ये बड़ी व्याकुलता से देख रहे हैं।

जटायो यदि शक्नोषि वाक्यं व्याहरितुं पुनः।
सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहि चात्मनः।। ४।।
कथंवीर्यः कथंरूपः किंकर्मा स च राक्षसः।
क्व चास्य भवनं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः।। ५।।
तमुद्वीक्ष्य स धर्मात्मा विलपन्तमनाथवत्।
वाचा विक्लवया राममिदं वचनमब्रवीत्।। ६।।

इसके बाद वे जटायु से बोले कि हे जटायु यदि आप फिर बता सकते हैं तो सीता के विषय में और अपने वध के विषय में बताइये। आपका कल्याण हो। हे तात! मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप बताइये कि उस राक्षस का पराक्रम किस प्रकार का है? कैसी उसकी आकृति है? वह क्या करता है? और वह रहता कहाँ है? इस प्रकार अनाथ की तरह राम को विलाप करते हुए देख कर वह धर्मात्मा जटायु लड़खड़ाती हुई वाणी में बोले कि--

सा हता राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
परिक्लान्तस्य मे तात पक्षौ छित्त्वा निशाचरः।। ७।।
सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणामुखः।
उपरुध्यन्ति मे प्राणा दृष्टिर्भ्रमति राघव।। ८।।
पश्यामि वृक्षान् सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान्।

असम्मूढस्य गृध्रस्य रामं प्रत्यनुभाषतः।। ९।।
आस्यात् सुस्राव रुधिरं म्रियमाणस्य सामिषम्।

राक्षसों के राजा दुष्ट रावण ने सीता का अपहरण किया है। हे तात! युद्ध में मेरे थक जाने पर वह राक्षस मेरे दोनों हाथों को काट कर, विदेहपुत्री सीता को ले कर दक्षिण की तरफ चला गया। हे राम! अब मेरे प्राणों की गति मन्द हो रही है, मेरी निगाह घूम रही है, मुझे वृक्ष सुनहरे रंग के दिखाई दे रहे हैं, ऐसा लगता है मानो वृक्षों पर खस के केश लगे हुए हों। यद्यपि गृध्रराज उस समय मरने वाले थे, पर फिर भी उनमें मोह नहीं आया था। राम की बात का उत्तर देते हुए उनके मुख से माँस के साथ खून गिरने लगा।

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च।। १०।।
इत्युक्त्वा दुर्लभान् प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः।
ब्रूहि ब्रूहीति रामस्य ब्रुवाणस्य कृताञ्जलेः।। ११।।
त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य प्राणा जग्मुर्विहायसम्।
रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत्।। १२।।

वे बोले कि वह अर्थात रावण विश्रवा का पुत्र और वैश्रवण कुबेर का सगा भाई है। ऐसा कह कर उस गृध्रराज ने अपने दुर्लभ प्राणों को छोड़ दिया। श्रीराम हाथ जोड़े हुए कहिये, कहिये, ऐसा कहते ही रह गये कि उन गृध्रराज के प्राण उनका शरीर छोड़ कर आकाश में चले गये। तब बहुत सारे दुःखों से दीनावस्था को प्राप्त श्रीराम लक्ष्मण से बोले।

बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम्।
अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा।। १३।।
अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालसमुत्थितः।
सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः।। १४।।
पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे।
सीतामभ्यवपन्नो हि रावणेन बलीयसा।। १५।।
गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत्।
मम हेतोरयं प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः।। १६।।

इन बुद्धिमान पुरुष ने राक्षसों के निवास स्थान इस दण्डकारण्य में बहुत सारे वर्ष सुख से रहते हुए यहाँ अपने देह का त्याग किया है। इनकी आयु बहुत वर्षों की थी, उन्होंने लम्बे समय तक अपना अभ्युदय देखा है। आज ये ही मारे जा कर सो रहे हैं। मृत्यु का उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। हे लक्ष्मण देखो! ये गृधराज हमारे उपकारी थे पर आज सीता के लिये युद्ध करते हुए बलवान रावण के द्वारा मारे गये। इन गृध्रराज ने पिता और पितामह का विशाल गृध्रजाति का राज्य छोड़ कर मेरे कार्य के लिये प्राणों को छोड़ा है।

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम्।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप।। १७।।
राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः।। १८।।
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम्।
गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम्।। १९।।
एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम्।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः।। २०।।

हे परंतप! हे सौम्य! सीता के हरण का दुःख इस समय उतना व्यथित नहीं कर रहा जितना इन गृध्रराज के विनाश का दुःख व्यथित कर रहा है। श्रीमान महा यशस्वी राजा दशरथ मेरे लिये जैसे पूजनीय और मान्य थे वैसे ही यह गृध्रराज जटायु हैं। इसलिये हे सुमित्रापुत्र! तुम लकड़ियाँ लाओ, मैं मथ कर अग्नि निकालूँगा और गृध्रराज का जो मेरे लिये मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, दाह संस्कार करूँगा। ऐसा कह कर और उन गृध्रराज को चिता पर रख कर धर्मात्मा और दुःखी राम ने अपने बन्धु के समान जटायु का दाह संस्कार किया।

पचपनवाँ सर्ग

लक्ष्मण का अयोमुखी को दण्ड देना।

तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ।
अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः।। १।।
गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम्।
आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोरदर्शनम्।। २।।
व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम्।
सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ।। ३।।

इसके पश्चात् धनुषबाण और तलवार धारण किये हुए वे दोनों इक्ष्वावंशी वीर उस दक्षिण दिशा की तरफ

बढ़ते हुए एक ऐसे मार्ग पर जा पहुँचे जो बिल्कुल निर्जन था। वह मार्ग सब तरफ से वृक्षों, झाड़ियों और लताओं से घिरा हुआ था। वह दुर्गम, गहन और भयानक दिखाई देने वाला था। उस मार्ग को शीघ्रता से पार कर दक्षिण दिशा की तरफ चलते हुए वे दोनों महा बलवान राजकुमार उस भयानक महान वन से परे निकल गये।

ततः परं जनस्थानात् त्रिकोशं गम्य राघवौ।
क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ।। ४।।
नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः।
नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम्।। ५।।
दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद् वनं तौ विचिक्यतुः।
तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणदुःखितौ।। ६।।

उसके पश्चात जन स्थान से तीन कोस आगे जा कर वे दोनों महातेजस्वी राघव गहरे क्रौंचारण्य में प्रविष्ट हुए। वह वन अनेक रंगों के सुन्दर फूलों, मृगों और पक्षियों से युक्त था और अनेक प्रकार के बादलों के समूह के समान दिखाई देता हुआ हर्षोत्फुल्ल सा प्रतीत होता था। वे दोनों वहाँ उस वन को देखते हुए वहाँ वैदेही को ढूँढ़ने लगे। सीता हरण से दुःखी वे जहाँ-तहाँ थक कर बैठ भी जाते थे।

ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा।
क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे।। ७।।
दृष्ट्वा तु तद् वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम्।
नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम्।। ८।।
ददृशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ।
पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम्।। ९।।

उसके पश्चात वे दोनों भाई तीन कोस पूर्व की तरफ जा कर और क्रौंचारण्य को पार कर मतंगाश्रम के पास गये। उस भयानक वन को देख कर, जो अनेक प्रकार के पशु और पक्षियों से युक्त था और अनेक प्रकार के घने वृक्षों के समूहों से भरा हुआ था, उन दोनों दशरथ कुमारों ने वहाँ पर्वत में एक पाताल के समान गहरी गुफा देखी, जो सदा अँधेरे से ढकी रहती थी।

आसाद्य च नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः।
ददर्शतुर्महारूपां राक्षसीं विकृताननाम्।। १०।।
भयदामल्पसत्त्वानां बीभत्सां रौद्रदर्शनाम्।
लम्बोदरीं तीक्ष्णदंष्ट्रां करालीं परुषत्वचम्।। ११।।
भक्षयन्तीं मृगान् भीमान् विकटां मुक्तमूर्धजाम्।
अवैक्षतां तु तौ तत्र भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। १२।।

उन दोनों नरश्रेष्ठों ने उसके समीप जा कर एक विशाल रूप वाली बदसूरत राक्षसी देखी। वह निर्बल प्राणियों के हृदय में भय पैदा करने वाली, घृणायुक्त और भयानक रूप वाली थी। उस विकराल राक्षसी का पेट लम्बा, दाँत तीखे, और त्वचा कठोर थी, वह भयानक वन्य पशुओं को भी खा जाती थी, उसका आकार विकट और बाल खुले हुए थे। उन दोनों भाई राम लक्ष्मण ने उसे देखा।

सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः।
एहि रंस्यावहेत्युक्त्वा समालम्भत लक्ष्मणम्।। १३।।
उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगुह्य च।
अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः।। १४।।
नाथ पर्वतदुर्गेषु नदीनां पुलिनेषु च।
आयुश्चिरमिदं वीर त्वं मया सह रंस्यसे।। १५।।
एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः।
कर्णनासस्तनं तस्या निचकर्तारिसूदनः।। १६।।

वह राक्षसी उन दोनों वीरों के समीप आयी और भाई के आगे चलते हुए लक्ष्मण को पकड़ कर कहने लगी कि आओ हम रमण करेंगे। लक्ष्मण को आलिंगन कर कहने लगी कि मेरा नाम अयोमुखी है, मैं तुम्हें पत्नी रूप में मिल गयी यह तुम्हें लाभ हो गया। तुम मेरे प्रिय पति हो। हे नाथ! हे वीर! तुम पर्वत की दुर्गम कन्दराओं और नदियों के किनारों में लम्बी आयु तक मेरे साथ रमण करोगे। ऐसा राक्षसी के द्वारा कहे जाने पर शत्रुओं को नष्ट करने वाले लक्ष्मण ने तलवार निकाल कर कुपित हो उसके कान, नाक और स्तन काट दिये।

कर्णनासे निकृत्ते तु विस्वरं विननाद सा।
यथागतं प्रदुद्राव राक्षसी घोरदर्शना।। १७।।
तस्यां गतायां गहनं व्रजन्तौ वनमोजसा।
आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। १८।।
कृत्वा तु शैलपृष्ठे तु, तौ वासं रघुनन्दनौ।
पम्पायाः पश्चिमं तीरं, राघवावुपतस्थतुः।। १९।।

नाक कान कट जाने पर वह राक्षसी जोर-जोर से चिल्लाने लगी और वह भयंकर राक्षसी जिधर से आयी थी, उधर ही भाग गयी। उसके चले जाने पर शत्रुओं के नष्ट करने वाले वे दोनों भाई राम लक्ष्मण तेजी से चलते हुए एक गहरे वन में जा पहुँचे। इसके पश्चात वे दोनों रघुनन्दन रात में एक पर्वत के शिखर पर वास करके पम्पा सरोवर से पश्चिमी किनारे पर जा पहुँचे।

किष्किन्धाकाण्ड

पहला सर्ग

श्रीराम का पम्पा सरोवर पर पहुँचना। श्रीराम का पम्पा सरोवर की शोभा तथा उद्दीपन सामग्री का वर्णन करते हुए व्याकुल होना। लक्ष्मण का श्रीमान को समझाना। दोनों भाइयों को आते देख कर सुग्रीव का भयभीत होना।

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम्।
रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः।। १।।
स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत्।
सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका।। २।।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः।
सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम्।। ३।।
यत्र राजन्ति शैला वा द्रुमाः सशिखरा इव।

उस पम्पा नाम की पुष्करिणी के पास पहुँच कर, जो कि पद्म, उत्पल, और मछलियों से भरी हुई थी, लक्ष्मण के साथ श्रीराम की इन्द्रियाँ शोक से व्याकुल हो उठीं और वे विलाप करने लगे। काम के वश में हो कर वे सुमित्रा पुत्र से बोले कि हे लक्ष्मण! वैदूर्यमणि के समान निर्मल जल वाली तथा खिले हुए कमल और उत्पल वाली यह पम्पा अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित हो रही है। हे सुमित्रा नन्दन! देखो, पम्पा के चारों तरफ का वन कितना सुन्दर है। यहाँ के वृक्ष अपनी शाखाओं के कारण शिखरों वाले पर्वतों के समान प्रतीत हो रहे हैं।

शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना।। ४।।
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा।
नलिनैरपि संछन्ना ह्यत्यर्थशुभदर्शना।। ५।।
सर्पव्यालानुचरिता मृगद्विजसमाकुला।
अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम्।। ६।।
द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम्।

विचित्र वनों वाली, अनेक प्रकार के फूलों से भरी हुई, शीतल जल वाली, कल्याणमयी यह पम्पा मुझ शोक पीड़ित को भी बड़ी सुहावनी लग रही है। यह नलिनियों से व्याप्त होने के कारण अत्यधिक सुन्दर प्रतीत हो रही है। यहाँ सर्प और हिंसक जन्तु विचर रहे हैं और मृगों और पक्षियों से भी युक्त है। नीले और पीले रंग की घास के कारण यह और भी अधिक अच्छी लग रही है। भूमि पर बिखरे हुए वृक्षों के अनेक प्रकार के पुष्पों से ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे बहुत से गलीचे बिछा दिये गये हों।

पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः।। ७।।
लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः।
सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः।। ८।।
गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः।
पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्।। ९।।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव।
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः।। १०।।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम्।

वृक्ष फूलों के भार से लदी हुई चोटियों के कारण, समृद्धि शाली दिखाई दे रहे हैं। वे सब तरफ से फूलों वाली बेलों से लिपटे हुए हैं। हे लक्ष्मण! यह चैत्र का महीना है, सब तरफ सुखदायी और गन्धवान वायु चल रही है। वृक्षों में फूल और फल आ गये हैं। इस समय हृदय में कामनाएँ उद्दीप्त हो रही हैं। हे सौमित्र! फूलों से भरे हुए इन वनों के सौन्दर्य को तो देखो। यहाँ के वृक्ष जल की वर्षा करते हुए बादलों के समान फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वायु के वेग से हिलते हुए वन के विविध प्रकार के वृक्ष शिला खण्डों पर फूलों की वर्षा कर भूमि को फूलों से ढक रहे हैं।

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।। ११।।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः।
विक्षिपन् विविधाः शाखां नगानां कुसुमोत्कटाः।। १२।।
मारुतश्चलितस्थानैः षट्पदैरनुगीयते।
मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान्।। १३।।

शैलकंदर निष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः।
तेन विक्षिपतात्यर्थं पवनेन समन्ततः।। १४।।
अमी संसक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः।

हे लक्ष्मण! देखो! जो पुष्प वृक्षों पर विद्यमान हैं, जो वृक्षों से झड़ रहे हैं और जो झड़ कर गिर चुके हैं, उन सभी प्रकार के फूलों से वायु सब तरफ खेल सा कर रही है। वायु जब वृक्षों की फूलों से भरी हुई विविध प्रकार की शाखाओं को हिलाती हुई चलती है, तब अपने स्थान से विचलित गुनगुनाते हुए भ्रमर मानो उसका यशोगान करते हुए उसका अनुसरण करते हैं। पर्वतों की कन्दराओं से विशेष ध्वनि के साथ निकलती हुई वायु ऐसी प्रतीत होती है कि वह उच्च स्वर से गाना गा रही है और मतवाली कोकिलों की ध्वनि के द्वारा हिलते हुए वृक्षों को नृत्य की शिक्षा दे रही है। उस वायु के द्वारा सब तरफ से अत्यधिक हिल जाने के कारण इन वृक्षों की ऊँची शाखाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई और गुँथी हुई प्रतीत हो रही है।

स एव सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः।। १५।।
गन्धमभ्यवहन् पुण्यं श्रमापनयनोऽनिलः।
अमी पवनविक्षिप्ता विनदन्तीव पादपाः।। १६।।
षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु।
गिरिप्रस्थेषु रम्येषु पुष्पवद्भिर्मनोरमैः।। १७।।
संसक्तशिखराः शैला विराजन्ति महाद्रुमैः।
पुष्पसंछन्नशिखरा मारुतोत्क्षेपचञ्चलाः।। १८।।
अमी मधुकरोत्तंसाः प्रगीता इव पादपाः।

चन्दन का स्पर्श कर शीतल, और सुगन्ध को फैलाती हुई बहने वाली यह पवित्र वायु स्पर्श करने में कितनी सुखदायी है और थकावट को दूर करने वाली है। मधुर गन्ध से भरे हुए इन वनों में वायु के द्वारा हिलाये जाते हुए ये वृक्ष नृत्य के साथ-साथ मानो गुंजार करते हुए भ्रमरों की गुनगुनाहट के रूप में गान भी कर रहे हैं। पर्वत अपने पर्वतीय सुन्दर प्रदेशों में फूलों वाले सुन्दर विशाल वृक्षों से ढकी हुई चोटियों वाले बड़े सुन्दर लग रहे हैं। जिनकी चोटियाँ फूलों से भरी हुई और वायु के वेग से हिल रही हैं वे ये वृक्ष भ्रमर रूपी पगड़ियों को धारण किये हुए ऐसा प्रतीत हो रहे हैं मानो उन्होंने नृत्य के साथ भ्रमरों की गुंजार के रूप में गाना भी प्रारम्भ कर दिया है।

सुपुष्पितांस्तु पश्यैतान् कर्णिकारान् समन्ततः।। १९।।
हाटकप्रतिसंछन्नान् नरान् पीताम्बरानिव।
अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः।। २०।।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसंदीपनो मम।
मां हि शोकसमाक्रान्तं संतापयति मन्मथः।। २१।।
हृष्टं प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः।
एष दात्यूहको हृष्टो रम्ये मां वननिर्झरे।। २२।।
प्रणदन्मन्मथाविष्टं शोचयिष्यति लक्ष्मण।

देखो अच्छे खिले हुए और सब तरफ फैले हुए कनेर के वृक्षों को देखो, वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे पीताम्बर धारण किये हुए लोगों ने स्वर्ण के आभूषण पहन रखे हों। हे सुमित्रानन्दन! अनेक प्रकार के विहगों के कलरव से गूँजता हुआ यह वसन्त सीता से बिछुड़े हुए मेरे शोक को बढ़ा रहा है। मुझ शोक से संतप्त को यह कामदेव और सन्तप्त कर रहा है। यह हर्ष से कूजती हुई कोयल मानो मुझे ललकार रही हैं। हे लक्ष्मण! वन के सुन्दर झरने के समीप प्रसन्नता से भर कर बोलता हुआ जल कुक्कुट कामनाओं से युक्त मेरे शोक से अधिक बढ़ायेगा।

श्रुत्वैतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया।। २३।।
मामाहूय प्रमुदिताः परमं प्रत्यनन्दत।
एवं विचित्राः पतगा नानारावविराविणः।। २४।।
वृक्षगुल्मलताः पश्य सम्पतन्ति समन्ततः।
विमिश्रा विहगाः पुंभिरात्मव्यूहाभिनन्दिताः।। २५।।
भृङ्गराजप्रमुदिताः सौमित्रे मधुरस्वराः।
अस्याः कूले प्रमुदिताः सङ्घशः शकुनास्त्विह।। २६।।
दात्यूहरतिविक्रन्दैः पुंस्कोकिलरुतैरपि।
स्वनन्ति पादपाश्चेमे ममानङ्गप्रदीपकाः।। २७।।

जब मेरी प्रिया आश्रम में रहती थी, तब इसके शब्द को सुन कर प्रसन्न हो कर अपने पास बुला कर मुझे भी अत्यन्त आनन्दित कर देती थी। इस प्रकार तरह-तरह की बोली बोलने वाले विचित्र-विचित्र पक्षी देखो। ये सब तरफ पेड़ों, झाड़ियों, और लताओं के ऊपर उड़ रहे हैं। हे सौमित्र! देखो यह मादा पक्षी अपने-अपने नर पक्षियों के साथ अपने झुंड में आनन्द का अनुभव कर रही हैं।

अशोकस्तबकाङ्गारः षट्पदस्वननिःस्वनः।
मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति।। २८।।
नहि तां सूक्ष्मपक्ष्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम्।
अपश्यतो मे सौमित्रे जीवितेऽस्ति प्रयोजनम्।। २९।।
अयं हि रुचिरस्तस्याः कालो रुचिरकाननः।
कोकिलाकुलसीमान्तो दयिताया ममानघ।। ३०।।

मन्मथायाससम्भूतो वसन्तगुणवर्धितः।
अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्नचिरादिव।। ३१।।

यह वसन्त रूपी आग, जिसमें अशोक के फूलों के गुच्छे अंगारे हैं, भ्रमरों की गुंजार चट्-चट् ध्वनि है और नये लाल पत्ते ही इसकी लपटें है, मुझे जला कर भस्म कर देगी। हे लक्ष्मण! उन सूक्ष्म मोहों और सुन्दर बालों वाली मधुर भाषिणी सीता को नहीं देख पाने पर मेरा जीवन से कोई प्रयोजन नहीं है। हे निष्पाप लक्ष्मण! यह वसन्त ऋतु का समय जिसमें वन बड़े सुन्दर लगने लगते हैं तथा जिसमें कोकिल आकुल हो कर कूकने लगते है, मेरी उस प्रिया को बहुत ही अच्छा लगता था। कामनाओं के द्वारा उत्पन्न की हुई और वसन्त की विशेषताओं के द्वारा उद्दीप्त की हुई यह शोक रूपी अग्नि मुझे जल्दी ही जला कर नष्ट कर देगी।

अपश्यतस्तां वनितां पश्यतो रुचिरान् द्रुमान्।
ममायमात्मप्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति।। ३२।।
मां हि सा मृगशावाक्षी चिन्ताशोकबलात्कृतम्।
संतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिलः।। ३३।।
अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः।
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव।। ३४।।

मैं अपनी उस प्रिय पत्नी को तो देख नहीं रहा हूँ और इन सुन्दर वृक्षों को देख रहा हूँ। इससे मेरे अन्दर जागृत होने वाली कामनाएँ और बढ़ जायेंगी। उस मृगनयनी की चिन्ता और शोक तो पहले ही मुझे बलात् पीड़ित कर रहे हैं। हे सौमित्र! अब चैत्र मास में बहने वाली वायु मुझे और सन्तप्त कर रही है। स्फटिक मणि से बने हुए झरोखों के समान अपने फैले हुए और वायु से कम्पित होते हुए पंखों के द्वारा इधर-उधर नाचते हुए ये मोर कैसे सुन्दर लग रहे हैं।

पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्यति।
शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तारं गिरिसानुनि।। ३५।।
मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिय।
तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कान्तया।। ३७।।

देखो लक्ष्मण! पर्वत के शिखर पर यह कामदेव से पीड़ित मोरनी भी नाचते हुए अपने पति मोर के समीप नृत्य कर रही है। मोर भी अपने पंखों को फैला कर अपनी उस प्रिया मोरनी का ही मन ही मन अनुसरण कर रहा है और अपनी मधुर ध्वनि से मानो मेरी हँसी उड़ा रहा है। निश्चय ही राक्षस ने वन में इस मोर की प्रिया का हरण नहीं किया है, इसीलिये सुन्दर वनों में यह अपनी पत्नी के साथ नाच रहा है।

मम त्वयं विना वासः पुष्पमासे सुदुःसहः।
पश्य लक्ष्मण संरागस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि।। ३८।।
यदेषा शिखिनी कामाद् भर्तारमभिवर्तते।
ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसम्भ्रमा।। ३९।।
मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत्।
पश्य लक्ष्मण पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे।। ४०।।
पुष्पभारसमृद्धानां वनानां शिशिरात्यये।

हे लक्ष्मण! फूलों के इस मास में मेरा उसके बिना रहना बड़ा कठिन है। देखो इस समय तिर्यग योनियों के प्राणियों में भी कितना प्रेम उमड़ रहा है। इसी से यह मोरनी कामना प्रेरित हो कर अपने पति मोर के सम्मुख प्रस्तुत हुई है। विशाल नेत्रों वाली जानकी का यदि अपहरण नहीं होता तो वह भी कामनाओं से युक्त हो कर प्रेम पूर्वक मेरे पास आती। लक्ष्मण देखो! वसन्त ऋतु में फूलों के भार से समृद्ध इन वनों के ये पुष्प मेरे लिये व्यर्थ हो रहे हैं अर्थात सीता के न होने से इनका होना भी मेरे लिये बेकार है।

नदन्ति कामं शकुना मुदिताः सङ्घशः कलम्।। ४१।।
आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम।
वसन्तोयदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया।। ४२।।
नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा।
नूनं न तु वसन्तस्तं देशं स्पृशति यत्र सा।। ४३।।
कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत् सा मया विना।

ये पक्षियों के झुंड, मानो एक दूसरे को बुलाते हुए प्रसन्नता के साथ इच्छानुसार कलरव कर रहे हैं और मेरे कामनाओं के उन्माद को बढ़ा रहे हैं। जहाँ, मेरी प्यारी सीता रह रही है, वहाँ भी यदि वसन्त ऋतु इसी प्रकार हो तो वह पराये बस में पड़ी हुई सीता भी मेरे समान शोक कर रही होगी। निश्चय ही वह जहाँ रह रही होगी वहाँ वसन्त ऋतु का प्रवेश नहीं होगा पर फिर भी कमल के समान काले नेत्रों वाली मेरे बिना कैसे जीवित रहेगी?

अथवा वर्तते तत्र वसन्तो यत्र मे प्रिया।। ४४।।
किं करिष्यति सुश्रोणी सा तु निर्भर्त्सिता परैः।
श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया।। ४५।।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम्।
दृढं हि हृदये बुद्धिर्मम सम्परिवर्तते।। ४६।।
नालं वर्तयितुं सीता साध्वी मद्विरहं गता।

मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः।। ४७।।
ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः।

अथवा जहाँ मेरी प्रिया सीता है, वहाँ यदि वसन्त हो तो भी वह सुन्दरी शत्रुओं के द्वारा डरायी धमकाई जाती हुई क्या कर सकेगी? वह कमल और पलाश के पुष्पों के समान नेत्रों वाली मधुर भाषिणी मेरी सुन्दरी प्रिया, वसन्त को प्राप्त कर निश्चय ही अपने जीवन का त्याग कर देगी। मेरे हृदय में यह दृढ़ विचार होता जा रहा है कि मेरे विरह को प्राप्त हुई वह साध्वी सीता अब अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकेगी। सीता का हार्दिक प्रेम सम्पूर्ण रूप से मेरे प्रति ही था। मेरा भी हार्दिक प्रेम पूरी तरह से सीता में ही स्थिर है।

एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः।। ४८।।
तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम।।
सदा सुखमहं मन्ये यं पुरा सह सीतया।। ४९।।
मारुतः स विना सीतां शोकसंजननो मम।
पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम्।। ५०।।
पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामवकूजताम्।

यह फूलों को अपने साथ उड़ाने वाली शीतल और सुख स्पर्शी वायु, जब मैं अपनी प्रिया सीता को याद करता हूँ तो मुझे आग के समान लगने लगती है। सीता के साथ रहने पर मैं जिसे सदा सुखदायी माना करता था, वही वायु अब सीता के बिना शोक को बढ़ाने वाली हो रही है। देखो लक्ष्मण! जिनकी डालियों के ऊपरी भाग फूलों से भरे हुए हैं, उन वृक्षों पर बैठ कर कूजते हुए पक्षियों का कलरव वन विरही लोगों के उन्माद को बढ़ा रहा है।

विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमञ्जरीम्।। ५१।।
षट्पदः सहसाभ्येति महोद्धूतामिव प्रियाम्।
कामिनामयमत्यन्तमशोकः शोकवर्धनः।। ५२।।
स्तबकैः पवनोत्क्षिप्तैस्तर्जयन्निव मां स्थितः।
अमी लक्ष्मण दृश्यन्ते चूताः कुसुमशालिनः।। ५३।।
विभ्रमोत्सिक्तमनसः साङ्गरागा नरा इव।

वायु के वेग से हिलाये जाते हुए तिलक वृक्ष की मंजरी पर यह भौंरा अचानक ऐसे ही आ कर बैठ गया है जैसे कामनाओं से कम्पित होती हुई अपनी प्रेयसी के पास उसका प्रेमी आ जाये। यह अशोक वृक्ष कामियों के तो शोक को ही बढ़ाने वाला है। यह वायु के द्वारा हिलाये जाते हुए अपने पुष्प गुच्छों के द्वारा मानों मुझे धमकाता हुआ यहाँ खड़ा हुआ है। हे लक्ष्मण! ये मंजरियों से युक्त आम के वृक्ष शृंगार विलास से मस्त बने हुए और अंगराग लपेटे हुए मनुष्यों के समान प्रतीत होते हैं।

एषा प्रसऽसलिला पद्मनीलोत्पलायुता।। ५४।।
हंसकारण्डवाकीर्णा पम्पा सौगन्धिकायुता।
जले तरुणसूर्याभैः षट्पदाहतकेसरैः।। ५५।।
पङ्कजैः शोभते पम्पा समन्तादभिसंवृता।
चक्रवाकयुता नित्यं चित्रप्रस्थवनान्तरा।। ५६।।
मातङ्गमृगयूथैश्च शोभते सलिलार्थिभिः।

यह स्वच्छ जल वाली, पद्म और नीले उत्पलों के युक्त पम्पा सौगन्धिक कमलों से सुशोभित है। यह हंस और कारंडव पक्षियों से भरी हुई है। यह 'पम्पा' जल में प्रातः काल उदय होते हुए सूर्य के समान सुशोभित कमलों से, जिनके केसरों को भ्रमरों से चूस लिया हैं, सब तरफ से आवृत्त हो कर सुन्दर लग रही है। यहाँ सदा चक्रवाक निवास करते हैं, यहाँ के वनों में विचित्र-विचित्र सुन्दर स्थान हैं। हाथियों और मृगों के झुंड यहाँ पानी पीने के लिये आते हैं और यहाँ की सुन्दरता को और बढ़ाते हैं।

पद्मपत्रविशालाक्षीं सततं प्रियपङ्कजाम्।। ५७।।
अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभिरोचते।
अहो कामस्य वामत्वं यो गतामपि दुर्लभाम्।। ५८।।
स्मारयिष्यति कल्याणीं कल्याणतरवादिनीम्।
शक्यो धारयितुं कामो भवेदभ्यागतो मया।। ५९।।
यदि भूयो वसन्तो मां न हन्यात् पुष्पितद्रुमः।
पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते।। ६०।।
सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण।

वैदेही को कमल सदा प्यारे लगते थे। उस कमल के पत्तों के समान बड़े नेत्रों वाली सीता को न देखने के कारण अब मुझे यह जीवन अच्छा नहीं लगता। देखो कामदेव की कुटिलता को देखो। जो मेरे पास से चली गई और मेरे लिये अब दुर्लभ है, उस कल्याणयुक्त वाणी बोलने वाली, कल्याण स्वरूपा की मुझे याद दिलाये जा रहा है। यदि यह फूले हुए वृक्षों वाला वसन्त मेरे ऊपर पुनः प्रहार न करे तो इस प्राप्त हुई कामवेदना को मैं मन में रोक सकता हूँ। हे लक्ष्मण! ये कमलकोशों के दल सीता के नेत्र कोशों के समान हैं, अतः मेरी दृष्टि इन्हें ही देखना चाहती है।

पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः।। ६१।।
निश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः।
अधिकं शैलराजोऽयं धातुभिस्तु विभूषितः।। ६२।।

विचित्रं सृजते रेणुं वायुवेगविघट्टितम्।
गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रे सर्वतः सम्प्रपुष्पितैः।। ६३।।
निष्पत्रै सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः।
पाम्पातीररुहाश्चेमे संसिक्ता मधुगन्धिनः।। ६४।।
मालतीमल्लिकापद्मकरवीराश्च पुष्पिताः।

कमलों के केसर का स्पर्श करती हुई और वृक्षों के मध्य में से आने वाली यह वायु सीता के निश्वास के समान बड़ी मनोहर लग रही है। विभिन्न प्रकार की धातुओं के द्वारा अत्यधिक सुशोभित यह पर्वतराज वायु के वेग की रगड़ से विचित्र प्रकार की धूलि की सृष्टि कर रहा है। हे सौमित्र! सब तरफ फूलों से भरे हुए, पर पत्तों से रहित सुन्दर पलाश के वृक्षों से ये पर्वतीय प्रदेश आग से जलते हुए के समान प्रतीत होते हैं। पम्पा के किनारे उत्पन्न और उसी के जल से संसिक्त ये मकरन्द और गन्ध से युक्त मालती, मल्लिका, पद्म, और करवीर के वृक्ष पुष्पों से सुशोभित हो रहे हैं।

केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च सुपुष्पिताः।। ६५।।
माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च सर्वशः।
चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला बकुलास्तथा।। ६६।।
चम्पकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः।
पद्मकाश्चैव शोभन्ते नीलाशोकाश्च पुष्पिताः।। ६७।।
लोध्राश्च गिरिपृष्ठेषु सिंहकेसरपिञ्जराः।

केतकी, सिन्दुवार, और वासन्ती लताएँ फूलों से भरी हुई हैं। माधवी लताएँ गन्ध से भरी हुई हैं और कुन्द फूलों की झाड़ियाँ सब तरफ सुशोभित हो रही हैं। चिरिबिल्व, महुआ, बेंत और मौलसिरी, तथा चम्पा तिलक एवं नाग केसर के वृक्ष भी फूलों से सुशोभित हो रहे हैं। पर्वतीय पृष्ठभागों में फूलों से भरे हुए पद्मक, नीले अशोक, और सिंह के अयाल की तरह पिंगल वर्ण वाले लोध्र के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं।

अङ्कोलाश्च कुरण्टाश्च चूर्णकाः पारिभद्रकाः।। ६८।।
चूताः पाटलयश्चापि कोविदाराश्च पुष्पिताः।
मुचुकुन्दार्जुनाश्चैव दृश्यन्ते गिरिसानुषु।। ६९।।
केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपा धवाः।
शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरवकास्तथा।। ७०।।
तिनिशा नक्तमालाश्च चन्दनाः स्यन्दनास्तथा।
हिन्तालास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः।। ७१।।

अंकोल, कुरण्ट, चूर्णक, पारिभद्रक आम, पाटलि, कोविदार, मुचुकुन्द और अर्जुन के सारे वृक्ष पर्वतों के शिखरों पर फूलों से भरे हुए दिखाई दे रहे हैं। केतक, उद्दालक, शिरीष, शीशम, धव, सेमल, पलाश, लाल कुरबक, तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन, हिन्ताल, और नाग केसर के वृक्ष भी फूलों के भरे दिखाई दे रहे हैं।

पुष्पितान् पुष्पिताग्राभिर्लताभिः परिवेष्टितान्।
द्रुमान् पश्येह सौमित्रे पम्पाया रुचिरान् बहून्।। ७२।।
वातविक्षिप्तविटपान् यथासन्नान् द्रुमानिमान्।
लताः समनुवर्तन्ते मत्ता इव वरस्त्रियः।। ७३।।
पादपात् पादपं गच्छञ्शैलाच्छैलं वनाद् वनम्।
वाति नैकरसास्वादसम्मोदित इवानिलः।। ७४।।
इदं मृष्टमिदं स्वादु प्रफुल्लमिदमित्यपि।
रागरक्तो मधुकरः कुसुमेष्वेव लीयते।। ७५।।

हे लक्ष्मण। जिनके अग्रभाग फूलों से भरे हुए हैं, उन बेलों से लिपटे हुए पम्पा के इन बहुत सारे सुन्दर फूलों से सुशोभित वृक्षों को देखो। वायु से हिलायी जाती हुई डालों वाले ये वृक्ष झुक कर बिल्कुल हमारे निकट आ जाते हैं और मस्त सुन्दर स्त्रियों की भाँति लताएँ इनका अनुसरण करती हैं। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर और एक वन से दूसरे वन में जाती हुई यह वायु अनेक रसों के आस्वादन से पागल सी बनी हुई मस्ती के साथ बह रही है। प्रेम में भरा हुआ यह भ्रमर यह सोचता हुआ कि यह फूल मधुर है, यह फूल स्वादिष्ट है और यह फूल खिला हुआ है, फूलों में ही मस्त हो रहा है।

निलीय पुनरुत्पत्य सहसान्यत्र गच्छति।
मधुलुब्धो मधुकरः पम्पातीरद्रुमेष्वसौ।। ७६।।
इयं कुसुमसंघातैरुपस्तीर्णा सुखाकृता।
स्वयं निपतितैर्भूमिः शयनप्रस्तरैरिव।। ७७।।
विविधा विविधैः पुष्पैस्तैरेव नगसानुषु।
विस्तीर्णाः पीतरक्ताभाः सौमित्रे प्रस्तराः कृताः।। ७८।।
हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसम्भवम्।
पुष्पमासे हि तरवः संघर्षादिव पुष्पिताः।। ७९।।

मधु का लोभी यह भ्रमर पम्पा के तटवर्ती वृक्षों में विलीन हो जाता है, फिर ऊपर को उड़ने लगता है। फिर सहसा किसी दूसरी जगह चल देता है। अपने आप झड़ कर गिरे हुए, फूलों के ढेरों से भूमि ऐसी सुख दायिनी बना दी गयी है, मानों उस पर मुलायम बिछौने बिछा दिये गये हों। इसी प्रकार पर्वतों के शिखरों पर भी अनेक प्रकार की विस्तृत शिलाएँ बिखरे हुए विविध प्रकार के पुष्पों से पीले और लाल रंग की शय्याओं के समान बना दी गयी हैं। हे लक्ष्मण! वसन्त ऋतु के

इस पुष्प मास में वृक्षों की पुष्प संपत्ति को तो देखो। ऐसा प्रतीत होता है कि ये वृक्ष परस्पर होड़ लगा कर फूलों को धारण कर रहे हैं।

आह्वयन्त इवान्योन्यं नगाः षट्पदनादिताः।
कुसुमोत्तंसविटपाः शोभन्ते बहु लक्ष्मण।।८०।।
यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसेमहि।
स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम।।८१।।
न ह्येवं रमणीयेषु शाद्वलेषु तया सह।
रमतो मे भवेच्चिन्ता न स्पृहान्येषु वा भवेत्।।८२।।
अमी हि विविधैः पुष्पैस्तरवो विविधच्छदाः।
काननेऽस्मिन् विना कान्तां चिन्तामुत्पादयन्ति मे।।८३।।

हे लक्ष्मण! ये वृक्ष अपनी डालियों पर फूलों के मुकुट धारण कर, भ्रमरों के गुंजार से गुंजित होते हुए बड़े सुन्दर लग रहे हैं, ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो ये एक दूसरे को बुला रहे हों। हे रघुओं में श्रेष्ठ लक्ष्मण! यदि सीता दिखाई दे जाये और यदि हम उसके साथ यहाँ रहने लगें तो मुझे न तो इन्द्रलोक में और न अयोध्या में जाने की इच्छा होगी। इस प्रकार के सुन्दर हरियाले प्रदेशों में उसके साथ सानन्द विचरते हुए मुझे किसी अन्य प्रकार के सुख की चिन्ता या इच्छा नहीं होगी। पर ये अनेक प्रकार के पल्लवों से युक्त और अनेक प्रकार के पुष्पों से सुशोभित वृक्ष बिना उस प्रिया के मेरे मन में चिन्ता को जन्म दे देते हैं।

दीपयन्तीव मे कामं विविधा मुदिता द्विजाः।
श्यामां चन्द्रमुखीं स्मृत्वा प्रियां पद्मनिभेक्षणाम्।।८४।।
पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान् मृगान्।
मां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम्।।८५।।
व्यथयन्तीव मे चित्तं संचरन्तस्ततस्ततः।
अस्मिन् सानुनि रम्ये हि मत्तद्विजगणाकुले।।८६।।
पश्येयं यदि तां कान्तां ततः स्वस्ति भवेन्मम।
जीवेयं खलु सौमित्रे मया सह सुमध्यमा।।८७।।
सेवेत यदि वैदेही पम्पायाः पवनं शुभम्।

ये अनेक प्रकार के प्रसन्नता से भरे हुए पक्षी मेरी कामनाओं को बढ़ा रहे हैं, क्योंकि इनकी बोली सुन कर मैं उस कमलनयनी, चंद्रमुखी सुन्दरी प्रिया का स्मरण करने लगता हूँ। पर्वतों के सुन्दर शिखरों पर हरिणियों से युक्त मृगों को देखो। ये इधर उधर विचरण करते हुए, उस मृग शावकों के समान नेत्रों वाली सीता से बिछुड़े हुए मुझे व्यथित किये दे रहे हैं। मस्त पक्षियों से भरे हुए इस पर्वत के सुन्दर शिखर पर यदि मैं अपनी उस प्रिय सुन्दरी सीता को प्राप्त कर सकूँ, तभी मेरा कल्याण होगा। हे लक्ष्मण! यदि वह सुन्दरी सीता मेरे साथ इस पम्पा के पवित्र वायु का सेवन करे, तभी मैं जी सकता हूँ।

श्यामा पद्मपलाशाक्षी प्रिया विरहिता मया।।८८।।
कथं धारयति प्राणान् विवशा जनकात्मजा।
किं नु वक्ष्यामि धर्मज्ञं राजानं सत्यवादिनम्।।८९।।
जनकं पृष्टसीतं तं कुशलं जनसंसदि।
या मामनुगता मन्दं पित्रा प्रस्थापितं वनम्।।९०।।
सीता धर्मं समास्थाय क्व नु सा वर्तते प्रिया।
तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये।।९१।।
या मामनुगता राज्याद् भ्रष्टं विहतचेतसम्।

वह कमल और पलाश के फूलों के समान नेत्रों वाली मेरी प्रिया, सुन्दरी जनक पुत्री मुझसे अलग हो कर विवशावस्था में कैसे प्राणों को धारण कर रही होगी? मैं उन धर्मज्ञ और सत्यवादी राजा जनक को क्या उत्तर दूँगा, जब वे लोगों की सभा में बैठ कर मुझसे सीता की कुशलता के विषय में पूछेंगे? पिता के द्वारा वन में भेजे जाने पर जो सीता धर्म का सहारा ले कर मुझ मन्दभागी के पीछे-पीछे चली आयी, वह पता नहीं इस समय कहाँ है? हे लक्ष्मण! राज्य से भ्रष्ट और हताश हो जाने पर भी जिसने मेरा अनुकरण किया। उससे रहित हो कर अब दीनावस्था में कैसे अपने जीवन को धारण करूँगा?

तच्चार्वञ्चितपद्माक्षं सुगन्धि शुभमव्रणम्।।९२।।
अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मतिर्मम।
स्मितहास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम्।।९३।।
वैदेह्या वाक्यमतुलं कदा श्रोष्यामि लक्ष्मण।
प्राप्य दुःखं वने श्यामा मां मन्मथविकर्शितम्।।९४।।
नष्टदुःखेव हृष्टेव साध्वी साध्वभ्यभाषत।
किं नु वक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यां हि नृपात्मज।।९५।।
क्व सा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चापि मनस्विनीम्।

उसके उस सुन्दर प्रशंसनीय, कमल के समान नेत्र वाले, सुगन्धित, पवित्र, चेचक आदि के चिह्न से रहित मुख को न देखने के कारण मेरी बुद्धि क्षीण सी हो रही है। हे लक्ष्मण! वैदेही की वह तुलना के अयोग्य, हितकारी, गुणों से युक्त तथा मधुर बातें जो कभी मुस्करा कर और कभी हँस कर कही जाती थीं, अब मुझे कब सुनने को मिलेंगी? वह सुन्दरी वन में दुःख को प्राप्त होते हुए भी, जब मुझे कामनाओं से पीड़ित देखती थी,

तब अपने दुःख को भूल कर, जैसे वह नष्ट हो गया हो, वह साध्वी अपने आप को प्रसन्न सा दिखाती हुई मुझसे बड़ी अच्छी-अच्छी बातें करने लगती थी। अयोध्या में जब मेरी मनस्विनी माता कौसल्या मुझसे पूछेगी कि वह मेरी पुत्रवधु कहाँ है? तब हे राजकुमार! मैं उसे क्या उत्तर दूँगा?

गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम्।। ९६।।
नह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम्।
इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत्।। ९७।।
उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम्।
संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम।। ९८।।
नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम्।
स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने।। ९९।।
अतिस्नेहपरिषङ्गाद् वर्तिरार्द्रापि दह्यते।

हे लक्ष्मण! जाओ तुम उस भ्रातृ प्रेमी भरत से मिलो! मैं उस जनकपुत्री के बिना जीवित नहीं रह सकता। इस प्रकार अनाथों के समान विलाप करते हुए महात्मा राम से भाई लक्ष्मण ने यह युक्ति युक्त और निर्दोष बात कही कि हे पुरुषोत्तम राम आपका कल्याण हो। आप शोक मत करिये और अपने आपको सँभालिये। आप जैसे निर्मल आत्मा वाले पुरुषों की बुद्धि कभी मन्द नहीं होती है। आप वियोग से उत्पन्न होने वाले दुख पर विचार कर प्रिय व्यक्ति में अत्यधिक स्नेह को छोड़िये। क्योंकि अत्यधिक स्नेह अर्थात् तेल में डूबने पर तो जल से भीगी बत्ती भी जलने लगती है।

यदि गच्छति पातालं ततोऽभ्यधिकमेव वा।। १००।।
सर्वथा रावणस्तात न भविष्यति राघव।
प्रवृत्तिर्लभ्यतां तावत् तस्य पापस्य रक्षसः।। १०१।।
ततो हास्यति वा सीतां निधनं वा गमिष्यति।
स्वास्थ्यं भद्रं भजस्वार्य त्यज्यतां कृपणा मतिः।। १०२।।
अर्थो हि नष्टकार्यार्थैरयत्नेनाधिगम्यते।
उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात् परं बलम्।। १०३।।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्।

हे तात! रावण यदि पाताल में, या उससे भी कहीं अधिक दूर चला जाये, फिर भी हे राघव! वह जीवित नहीं रह सकेगा। आप उस पापी राक्षस का पता लगाइये, फिर वह या तो सीता को छोड़ेगा या मृत्यु को प्राप्त होगा। हे आर्य! आप स्वास्थ्य और कल्याण को प्राप्त कीजिये और दीनतायुक्त बुद्धि को छोड़िये। जिनके कार्य और सम्पत्ति नष्ट हो जाती हैं, उन्हें बिना प्रयत्न किये वे प्राप्त नहीं होते। हे आर्य! उत्साह ही बलशाली है, उत्साह से बढ़ कर कोई दूसरी शक्ति नहीं है। जो उत्साही पुरुष होते हैं, उन्हें संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु।। १०४।।
उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम्।
त्यजतां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः।। १०५।।
महात्मानं कृतात्मानमात्मानं नावबुध्यसे।
एवं सम्बोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः।। १०६।।
त्यज्य शोकं च मोहं च, रामो धैर्यमुपागमत्।
सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः ।
रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम्।। १०७।।

उत्साह वाले पुरुष अपने कार्यों में कभी परेशान नहीं होते। हम केवल उत्साह का ही सहारा ले कर जानकी को प्राप्त करेंगे। शोक को पीछे रख कर आप कामियों के से आचरण को छोड़िये। आप महात्मा हैं, आपने अपनी आत्मा को वश में किया हुआ है। आप अपने आपको क्यों नहीं पहचान रहे हैं? इस प्रकार लक्ष्मण के द्वारा समझाये जाने पर, जिनकी चेतना शोक के कारण नष्ट प्राय हो रही थी, उन राम ने शोक और मोह को त्याग कर धैर्य को धारण किया। तब वे अचिन्त्य पराक्रम श्रीराम उस अत्यधिक सुन्दर और रमणीय पम्पा को, जिसके चारों तरफ वृक्ष हिलते हुए झूम रहे थे, लाँघ कर आगे बढ़े।

तं मत्तमातंगविलासगामी
गच्छन्तमव्यग्रमना महात्मा।
स लक्ष्मणो राघवमिष्टचेष्टो
ररक्ष धर्मेण बलेन चैव।। १०८।।

इन जाते हुए श्रीराम की मतवाले हाथी के विलास की तरह चलने वाले, स्थिर मनवाले, महात्मा तथा भाई के अनुकूल क्रिया करने वाले लक्ष्मण अपनी धर्म तथा शक्ति से रक्षा करने लगे।

तावृष्यमूकस्य समीपचारी
चरन् ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ।
शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी
वितत्रसे नैव विचेष्ट चेष्टाम्।। १०९।।

तब अद्भुत रूप से दर्शनीय उन दोनों को ऋष्यमूक पर्वत के समीप घूमने वाले वानरों के अधिपति बलवान सुग्रीव ने घूमते हुए देखा और उन्हें देख कर वे भय के कारण चेष्टा रहित हो गये।

दूसरा सर्ग

सुग्रीव का आशंकित हो कर हनुमान जी को श्रीराम और लक्ष्मण के पास उनका भेद लेने के लिये भेजना।

ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः।
शशंस परमोद्विग्नः पश्यंस्तौ रामलक्ष्मणौ।। १।।
एतौ एनमिदं दुर्गं वालिप्रणिहितौ ध्रुवम्।
छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ।। २।।

तब राम लक्ष्मण को देख कर वानरों का राजा सुग्रीव परम उद्विग्न हो कर अपने मंत्रियों से बोला कि निश्चित रूप से इस दुर्गम वन में ये बाली द्वारा भेजे हुए हैं। ये दोनों धोखा देने के लिये चीरवस्त्र धारण कर घूमते हुए यहाँ आये हैं।

ततस्तु भयसंत्रस्तं वालिकिल्बिषशङ्कितम्।
उवाच हनुमान् वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः।। ३।।
यस्मात् तव भयं सौम्य पूर्वजात् पापकर्मणः।
स नेह वाली दुष्टात्मा न ते पश्याम्यहं भयम्।। ४।।
बुद्धिविज्ञानसम्पन्न इङ्गितैः सर्वमाचर।
नह्यबुद्धिं गतो राजा सर्वभूतानि शास्ति हि।। ५।।

तब बाली की तरफ से बुराई की शंका करने वाले और भय से डरे हुए सुग्रीव से वाक्य कहने में चतुर हुनमान जी ने कहा – कि हे सौम्य! अपने जिस पापी बड़े भाई से आपको भय है वह दुष्टात्मा बाली तो यहाँ कहीं नहीं है। इसलिये मैं तो आपके लिये कोई भय नहीं मानता। आप तो बुद्धि और विज्ञान से सम्पन्न हैं। इसलिये संकेतों से ही समझ कर सारे कार्य कीजिये। बुद्धि से परे रह कर राजा सारे प्राणियों पर शासन नहीं कर सकता।

सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः।
ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह।। ६।।
वालिप्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुऽषोत्तमौ।
राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः।। ७।।

हनुमान जी ने उन शुभ वाक्यों को सुन कर सुग्रीव ने हनुमान जी से और भी अधिक उत्तम बात कही कि ये दोनों श्रेष्ठ पुरुष बाली के द्वारा ही भेजे गए हैं ऐसी मुझे आशंका है। राजाओं के बहुत से मित्र होते हैं, इसलिये उन पर विश्वास करना ठीक नहीं है।

अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः।
विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि।। ८।।
कृत्येषु वाली मेधावी राजानो बहुदर्शिनः।
भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः।। ९।।

मनुष्य को कपट वेश में घूमने वाले अपने शत्रुओं को पहचानना चाहिये। क्योंकि वे दूसरों के तो विश्वास पात्र बन जाते हैं, पर स्वयं किसी पर विश्वास नहीं करते हैं और मौका पा कर उन विश्वास करने वालों पर प्रहार कर देते हैं। इन कार्यों में बाली चतुर है। शत्रुओं को नष्ट करने वाले राजा लोग वैसे भी धोखा देने के अनेक उपाय जानते हैं जिन्हें जानना सामान्य कोटि के लोगों के लिये अत्यावश्यक है।

तौ त्वया प्राकृतेनेव गत्वा ज्ञेयौ प्लवंगम।
इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च।। १०।।
लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्टमनसौ यदि।
विश्वासयन् प्रशंसाभिरिङ्गितैश्च पुनः पुनः।। ११।।

हे वानर! तुम सामान्य रूप में ही जा कर उन दोनों के विषय में सामान्य जानकारी प्राप्त करो। इसके लिये तुम उनकी चेष्टाओं का तरीका, उनके रूप, तथा वार्तालाप की रीति आदि को समझो। तुम उनके मनोभावों का अध्ययन करो। यदि प्रसन्नता से युक्त जान पड़ें तो बार-बार मेरी प्रशंसा कर तथा अन्य चेष्टाओं के द्वारा उनके मन में मेरे प्रति विश्वास उत्पन्न करो।

ममैवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुङ्गव।
प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्धरौ।। १२।।
शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवङ्गम।
व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेया दुष्टतानयोः।। १३।।

हे श्रेष्ठ वानर! तुम मेरी तरफ ही मुख करके खड़े होना और फिर उनसे पूछना। हे वानर! यदि वे शुद्ध आत्मा वाले भी जान पड़ें तो भी तुम वार्तालाप तथा उनकी आकृति के द्वारा उनके अन्दर विद्यमान दुर्भावना का पता लगाने का प्रयत्न करना।

तथेति सम्पूज्य वचस्तु तस्य
कपेः सुभीतस्य दुरासदस्य।

महाभावो हनुमान् ययौ तदा
स यत्र रामोऽतिबली सलक्ष्मणः।। १४।।

तब उस दुर्जय, पर उस समय अत्यन्त डरे हुए वानर सुग्रीव के वचनों का आदर कर वे महानुभाव हनुमान अच्छा ऐसा ही होगा, ऐसा कह कर वहाँ गये, जहाँ अत्यन्त बलवान श्रीराम लक्ष्मण के साथ विद्यमान थे।

तीसरा सर्ग

हनुमान जी का श्रीराम और लक्ष्मण के पास जाना। उन्हें अपना और सुग्रीव का परिचय देना। श्रीराम द्वारा हनुमान के चातुर्य की प्रशंसा।

ततश्च हनुमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया।
विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च।। १।।
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ।। २।।
राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ।

तब हनुमान जी विनय पूर्वक उन दोनों रघुवंशियों के पास गये और उन्हें प्रणाम कर मधुर तथा मनोहारी वाणी के द्वारा उन्होंने सत्य, पराक्रमी राजर्षि और देवों के समान लगने वाले, व्रत धारण किये हुए तपस्वियों उन दोनों वीरों की यथावत प्रशंसा की तथा मृदुवाणी में स्वच्छन्दता पूर्वक उनसे बोले कि–

देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ।। ३।।
त्रासयन्तौ मृगगणानन्यांश्च वनचारिणः।
पम्पातीररुहान् वृक्षान् वीक्षमाणौ समन्ततः।। ४।।
धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ को युवां चीरवाससौ।
निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः।। ५।।

आप दोनों सुन्दर रूप वाले, मृग समूहों तथा दूसरे वनचारियों को डराते हुए, पम्पा के किनारे के वृक्षों को सब तरफ से देखते हुए इस स्थान पर किस लिये आये हैं? चीरवस्त्र पहने हुए, सुवर्ण के समान प्रभावान, अच्छी भुजाओं वाले, लम्बी साँस ले रहे, पर धैर्यवान तथा यहाँ के प्राणियों को पीड़ित करते हुए आप दोनों कौन हैं?

श्रीमन्तौ रूपसम्पन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ।
हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ।। ६।।
सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः।। ७।।
सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः।
उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम्।। ८।।
ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरुविभूषिताम्।

आप कान्तिमान और रूपवान हैं। श्रेष्ठ साँड के समान बल शाली हैं, आपकी भुजायें हाथी की सूँड के समान हैं, आप पुरुषों में श्रेष्ठ और तेजस्वी हैं। आप के कन्धे सिंह के समान हैं, आप मस्त साँड के समान उत्साह से युक्त हैं। आपकी बाहें परिघ के समान अच्छी लम्बी और गोल हैं, आप सब प्रकार के आभूषणों को धारण करने योग्य हैं, पर पता नहीं क्यों नहीं उन्हें धारण कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि आप दोनों सागर और वनों सहित विंध्याचल हिमालय से विभूषित इस सारी पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ हैं।

इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने।। ९।।
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते।
सम्पूर्णाश्च शितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः।। १०।।
जीवितान्तकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः।
महाप्रमाणौ विपुलौ तप्तहाटकभूषणौ।। ११।।
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्तभुजगाविव।

आपके ये दोनों धनुष विचित्र, चिकने और विचित्र अनुलेप से युक्त हैं। स्वर्ण से विभूषित ये इन्द्र के वज्र के समान प्रकाशित हो रहे हैं। आपके सुन्दर तरकस प्राणों का अन्त कर देने वाले भयानक साँपों के समान, जलते हुए से प्रतीत होने वाले, तीखे बाणों से भरे हुए हैं। आपके ये दोनों खड्ग विशाल और विस्तृत, तपे हुए सोने से विभूषित, केंचुल छोड़ कर निकले हुए साँपों के समान सुशोभित हो रहे हैं।

एवं मां परिभाषन्तं कस्माद् वै नाभिभाषतः।। १२।।
सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद् वानरपुङ्गवः।
वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद्भ्रमति दुःखितः।। १३।।
प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान् नाम वानरः।। १४।।
युवाभ्यां स हि धर्मात्य, सुग्रीवः सख्यमिच्छति।

एवमुक्त्वा तु हनुमांस्तौ वीरौ रामलक्ष्मणौ।। १५।।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलः पुनर्नोवाच किंचन।

मेरे इस प्रकार कहने पर भी आप क्यों नहीं उत्तर दे रहे हैं? सुग्रीव नाम के एक धर्मात्मा और वीर श्रेष्ठ वानर हैं। वह भाई के द्वारा निकाले हुए दु:खी हो कर संसार में घूमते रहते हैं। उन्हीं वानर शिरोमणियों के राजा महात्मा सुग्रीव के द्वारा भेजा हुआ मैं यहाँ आया हूँ। मैं हनुमान नाम का वानर हूँ। वे धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनों के साथ मित्रता करना चाहते हैं। उन दोनों वीरों राम और लक्ष्मण से ऐसा कह कर वाक्य का अभिप्राय समझने वाले और वाक्य का प्रयोग करने में चतुर हनुमान चुप हो गये और फिर कुछ नहीं बोले।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।। १६।।
प्रहृष्टवदनः श्रीमान् भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम्।
सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।। १७।।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः।
तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम्।। १८।।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदमम्।

उनकी यह बात सुन कर श्रीराम, साथ में खड़े हुए भाई लक्ष्मण से प्रसन्न वदन हो कर बोले कि जिनके हित की ये इच्छा रखते हैं, उन्हीं वानरों के राजा महात्मा सुग्रीव के ये सचिव हैं और मेरे पास यहाँ आए हैं। हे सुमित्रा पुत्र! सुग्रीव के सचिव, इस वानर जाति के व्यक्ति से, जो कि वाक्य का प्रयोग करना जानते हैं और शत्रुओं का दमन करने वाले हैं, तुम स्नेह के साथ मधुर वाक्यों में बात करो।

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।। १९।।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।। २०।।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्।
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।। २१।।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्।

जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया, जो सामवेद का विद्वान नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दरता के साथ नहीं बोलता। निश्चय ही इन्होंने सारे व्याकरण को अनेक बार सुना है। इसलिये बहुत बोलने पर भी इन्होंने अशुद्ध उच्चारण नहीं किया। इनके मुख में, आँखों में, सिर पर भौहों में तथा शरीर के अन्य अंगों में भी कोई दोष दिखाई नहीं देता।

अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम् ।। २२।।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम्।
संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम् ।। २३।।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम्।
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।। २४।।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ।

इन्होंने संक्षेप में स्पष्टता के साथ सुगमता से तुरन्त समझ में आने वाली बात कही है। इनके वाक्य हृदय में उत्पन्न हो कर, कण्ठ में मध्यम ध्वनि में प्रकट हुए हैं। ये संस्कार सम्पन्न अर्थात व्याकरण के नियमों से युक्त, क्रम सम्पन्न अर्थात वर्णोच्चारण की परिपाटी से युक्त, अद्भुत और अविलम्बित अर्थात् रुकावट से रहित, कल्याण करने वाली और हृदय को हर्षित करने वाली वाणी को बोलते हैं। इनकी हृदय, कंठ और मूर्द्धा तीन स्थानों से अभिव्यक्त होने वाली विचित्र वाणी को सुन कर तलवार उठाये तैयार हुए किस शत्रु का भी हृदय प्रसन्न नहीं हो जायेगा?

एवंविधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु।। २५।।
सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ।
एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः।। २६।।
तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः।

हे निष्पाप लक्ष्मण! जिस राजा के पास इनके जैसा दूत न हो, उसके कार्य कैसे सिद्ध हो सकते हैं। जिन राजाओं के कार्य साधक दूत इस प्रकार गुण समूहों से युक्त हों उनके सारे अर्थ दूतों की बातों से ही सिद्ध हो जाते हैं।

एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम्।। २७।।
अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम्।
यथा ब्रवीषि हनुमन् सुग्रीववचनादिह।
तत् तथा हि करिष्यावो वचनात् तव सत्तम।। २८।।

ऐसा कहे जाने पर, बात को समझने वाले सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण, सुग्रीव के सचिव तथा वाक्य के अर्थ को समझने वाले पवन पुत्र वानर हनुमान से बोले कि हे सज्जनों में श्रेष्ठ हनुमान! सुग्रीव के वचनों से तुम यहाँ जो कुछ कह रहे हो, उसे हम आपके कहने से वैसा ही कर लेंगे।

चौथा सर्ग

लक्ष्मण का हनुमान जी को श्रीराम के वन में आने तथा सीता जी के हरे जाने का वृतान्त बताना, हनुमान जी का उन्हें आश्वासन दे कर अपने साथ ले जाना।

ततः परमसंहृष्टो हनूमान् प्लवगोत्तमः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदः।। १।।
किमर्थं त्वं वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम्।
आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम्।। २।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः।
आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम्।। ३।।

तब वाक्यविशारद और श्रेष्ठ वानर हनुमान अत्यन्त प्रसन्न हो कर राम से बोले कि पम्पा के तटवर्ती बगीचों से सुशोभित यह वन बड़ा भयानक और दुर्गम है। यहाँ अनेक प्रकार के हिंसक पशु और मृग रहते हैं। आप यहाँ अपने छोटे भाई के साथ क्यों आये हैं। उनके ये वचन सुन कर राम के द्वारा प्रेरित किये जाने पर लक्ष्मण ने दशरथ पुत्र महात्मा राम का परिचय देना आरम्भ किया।

राजा दशरथो नाम द्युतिमान् धर्मवत्सलः।
चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालयन्।। ४।।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ।
तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः।। ५।।
शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निर्देशपारगः।
ज्येष्ठो दशरथस्यायं पुत्राणां गुणवत्तरः।। ६।।

वे बोले दशरथ नाम के एक धर्म से प्रेम करने वाले और तेजस्वी राजा थे। वे सदा चारों वर्णों का अपने धर्म के अनुसार पालन किया करते थे। उन्होंने पर्याप्त दक्षिणाओं के साथ अग्निष्टोम आदि यज्ञों का अनुष्ठान किया था। उनके ये लोगों में राम के नाम से प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र हैं। दशरथ के ये ज्येष्ठ पुत्र उनके सारे पुत्रों में सबसे अधिक गुणवान हैं। ये सारे प्राणियों को शरण देने वाले और पिता की आज्ञा का पालन करने वाले हैं।

राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तो राज्यसम्पदा।
राज्याद् भ्रष्टो मया वस्तुं वने सार्धमिहागतः।। ७।।
भार्यया च महाभाग सीतयानुगतो वशी।
दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः।। ८।।
अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः।। ९।।

ये राजा के सभी लक्षणों से युक्त हैं। जब इन्हें राज्य सम्पत्ति से विभूषित किया जा रहा था, तभी किसी कारण से इन्हें राज्य से अलग होना पड़ा और ये मेरे साथ वन में रहने के लिये यहाँ आ गये। इनकी पत्नी सीता भी इन महाभाग और जितेन्द्रिय के साथ आयी थी, जैसे दिन के समाप्त होने पर महा तेजस्वी सूर्य अपनी प्रभा के साथ अस्ताचल को चले जाते हैं। मैं इन कृतज्ञ और बहुज्ञ भाई के गुणों से इनकी दासता को स्वीकार किये हुए इनका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है।

सुखार्हस्य महार्हस्य सर्वभूतहितात्मनः।
ऐश्वर्येण विहीनस्य वनवासे रतस्य च।। १०।।
रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा।
तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य वा हृता।। ११।।

ये सुखों को भोगने योग्य है, महापुरुषों के द्वारा पूजनीय हैं, सारे प्राणियों की भलाई में लगे रहते हैं। ये ऐश्वर्य से रहित हो गये हैं तथा वनवास में लगे हुए हैं। ऐसी अवस्था में एक मायावी राक्षस ने एक दिन एकान्त में इनकी पत्नी का अपहरण कर लिया। इनकी पत्नी का अपहरण करने वाले उस राक्षस का पता नहीं लग रहा है।

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुपातनम्।
हनूमान् प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः।। १२।।
ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः।। १३।।
स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना।
हृतदारो वने त्रस्तो भ्रात्रा विनिकृतो भृशम्।। १४।।
करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः।
सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे।। १५।।

आँसू गिराते हुए, करुणा भरे स्वर में जब लक्ष्मण ने ऐसा कहा तब बोलने में चतुर हनुमान ने यह उत्तर दिया कि वानरों के राजा आप जैसे बुद्धि सम्पन्न, जितक्रोध, और जितेन्द्रिय व्यक्तियों से ही मिलना चाहते हैं। सौभाग्य से आपके स्वयं दर्शन हो गये। वे भी राज्य से भ्रष्ट हैं, उनका बड़े भाई बाली से वैर हो गया है। उसने उनकी पत्नी का हरण कर लिया है और उन्हें

घर से निकाल दिया है। वे अब वन में अत्यन्त डरे हुए निवास करते हैं। वे सूर्य पुत्र सुग्रीव, हमारे साथ सीता की खोज करने में आपकी सहायता करेंगे।

इत्येवमुक्त्वा हनुमाञ्श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।
बभाषे साधु गच्छामः सुग्रीवमिति राघवम्॥ १६॥
एवं ब्रुवन्तं धर्मात्मा हनूमन्तं स लक्ष्मणः।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं प्रोवाच राघवम्॥ १७॥

ऐसा कह कर हनुमान जी स्निग्ध और मधुर ध्वनि में श्रीराम से बोले कि अच्छा अब हम सुग्रीव के पास चलते हैं। हनुमान जी के ऐसा कहने पर धर्मात्मा लक्ष्मण ने उनका यथोचित सम्मान कर राम से कहा कि—

कपिः कथयते हृष्टो यथायं मारुतात्मजः।
कृत्यवान् सोऽपि सम्प्राप्तः कृतकृत्योऽसि राघव॥ १८॥
प्रसन्नमुखवर्णश्च व्यक्तं हृष्टश्च भाषते।
नानृतं वक्ष्यते वीरो हनूमान् मारुतात्मजः॥ १९॥
ततः स सुमहाप्राज्ञो हनूमान् मारुतात्मजः।
जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ॥ २०॥

हे राघव! ये वायु पुत्र वानर जिस प्रकार प्रसन्न हो कर कह रहे हैं, उससे प्रतीत होता है कि सुग्रीव भी आपसे कार्य कराने का इच्छुक है। इसलिये अब आपका भी कार्य हो जायेगा। इनके मुख की कान्ति स्पष्टता से प्रसन्नतायुक्त दिखाई देती है। ये बात भी प्रसन्न हो कर ही कर रहे हैं। ये वायु पुत्र वीर हनुमान असत्य नहीं बोलेंगे। इसके बाद वे महाविद्वान, वायु पुत्र हनुमान उन दोनों रघुवंशी वीरों को ले कर वानरों के राजा के पास चल दिये।

पाँचवाँ सर्ग

श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री तथा श्रीराम द्वारा बाली वध की प्रतिज्ञा।

ऋष्यमूकात् तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम्।
आचचक्षे तदा वीरौ कपिराजाय राघवौ॥ १॥
अयं रामो महाप्राज्ञ सम्प्राप्तो दृढविक्रमः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः॥ २॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः।
धर्मे निगदितश्चैव पितुर्निर्देशकारकः॥ ३॥
तपसा सत्यवाक्येन वसुधा येन पालिता।
स्त्रीहेतोस्तस्य पुत्रोऽयं रामोऽरण्यं समागतः॥ ४॥

तब हनुमान जी उस ऋष्यमूक पर्वत से मलयाचल पर्वत पर गये और वहाँ वानर राज सुग्रीव से उन वीर रघुवंशियों के विषय में बताया। वे कहने लगे कि हे महाप्राज्ञ! ये दृढ़विक्रम और सत्य पराक्रमी राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ आये हैं। ये राम इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न राजा दशरथ के पुत्र हैं। ये धर्म पालन के लिये प्रसिद्ध हैं और पिता की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। जिन राजा ने तप और सत्य पालन के द्वारा पृथ्वी का पालन किया था, उनकी पत्नी के कारण से, उनके पुत्र ये राम वन में आये हैं।

तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः।
रावणेन हृता भार्या स त्वां शरणमागतः॥ ५॥
भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
प्रगृह्य चार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ॥ ६॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं सुग्रीवो वानराधिपः।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्योवाच च राघवम्॥ ७॥

इन जितेन्द्रिय महात्मा के वन में रहते हुए, रावण ने इनकी पत्नी का हरण कर लिया। ये अब आपकी शरण में आए हैं। आप इन दोनों सत्य को चाहने वाले भाइयों राम लक्ष्मण को ग्रहण कर इनका सम्मान करें। क्योंकि ये दोनों हमारे लिये सबसे अधिक पूजनीय हैं। वानरों के राजा सुग्रीव ने हनुमान की बात सुन कर, अपने आपको अधिक दर्शनीय बना कर अर्थात अच्छे वस्त्रादि पहन कर, प्रेम के साथ राम से कहा कि—

भवान् धर्मविनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः।
आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः॥ ८॥
तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो।
यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह॥ ९॥
रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा॥ १०॥

आप धर्म का पालन करने वाले, अच्छे तपस्वी और सबसे प्रेम करने वाले हैं। वायु पुत्र हनुमान ने मुझ से आपके इन यथार्थ गुणों का वर्णन किया है। हे प्रभो! आप जो मुझ वानर जाति के मनुष्य के साथ मैत्री करना

चाहते हैं, इसमें मेरा ही सम्मान है और मुझे ही उत्तम लाभ की प्राप्ति होगी। यदि आपको मेरी मित्रता प्रिय है तो मेरा यह हाथ आगे बढ़ा हुआ है, आप अपने हाथ से इसे पकड़िये और स्थिर मर्यादा को बाँधिये।

एतत् तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम्।
सम्प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना।। ११।।
हृष्टः सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम्।
ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम्।। १२।।
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ।
ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ।। १३।।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः।

सुग्रीव की यह सुन्दर रूप से कही हुई बात सुन कर अत्यन्त प्रसन्न श्रीराम ने उनके हाथ को अपने हाथ से दबाया और प्रसन्नता के साथ सौहार्द का आश्रय लेकर उस पीड़ित सुग्रीव को गले से लगा लिया। तब उसके पश्चात् उन दोनों ने प्रदीप्त अग्नि की प्रदक्षिणा की और इस प्रकार श्रीराम और सुग्रीव परस्पर मित्रता को प्राप्त हो गये। उस समय वे दोनों वानर और राघव मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए एक दूसरे की तरफ देखते हुए तृप्त नहीं हो रहे थे।

त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे ह्येकं दुःखं सुखं च नौ।। १४।।
सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत्।
ततः सुपर्णबहुलां भङ्क्त्वा शाखां सुपुष्पिताम्।। १५।।
सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद सराघवः।
लक्ष्मणायाथ संहृष्टो हनुमान् मारुतात्मजः।। १६।।
शाखां चन्दनवृक्षस्य ददौ परमपुष्पिताम्।
ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।। १७।।
प्रत्युवाच तदा रामं हर्षव्याकुललोचनः।

उस समय सुग्रीव ने प्रसन्नता के साथ राम से कहा कि आप मेरे हार्दिक मित्र हैं। हम दोनों के सुख और दुःख एक ही हैं। तब सुग्रीव ने अच्छे और बहुत सारे पत्तों वाली शालवृक्ष की एक टहनी को तोड़ कर उसे बिछाया और उस पर वे श्रीराम के साथ बैठे। तब प्रसन्न हुए हनुमान पवन पुत्र ने चन्दन के वृक्ष की अच्छे फूलों वाली डाली लक्ष्मण को बैठने के लिये दी। तब खुशी से खिली हुई आँखों वाले सुग्रीव ने प्रसन्नता के साथ स्निग्ध और मधुर वाणी में श्रीराम से कहा कि–

अहं विनिकृतोराम चरामीह भयार्दितः।। १८।।
हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमेतदुपाश्रितः।
सोऽहं त्रस्तो वने भीतो वासाम्युद्भ्रान्तचेतनः।। १९।।
वालिनो मे महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु।। २०।।
कतुमर्हसि काकुत्स्थ भयं मे न भवेद् यथा।
एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः।। २१।।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव।

हे राम! मैं घर से निकाल दिया गया हूँ, मेरी पत्नी छीन ली गयी है। मैं भय से पीड़ित हो कर इस दुर्गम वन में डरा हुआ रहता हूँ और यहीं घूमता रहता हूँ। हे राघव! मेरे बड़े भाई बाली ने मुझे घर से निकाल कर मुझ से बैर बाँध लिया है। मैं डरा हुआ और भय से उद्भ्रान्त चेतना वाला हो कर यहाँ वन में रहता हूँ। हे महाभाग! आप मुझ डरे हुए को बाली से भय रहित कर दीजिये। हे काकुत्स्थ! आप ऐसा कर सकते हैं, जिससे मुझे बाली से भय न रह जाये। ऐसा कहे जाने पर, धर्म को जानने वाले और धर्म से प्रेम करने वाले तेजस्वी ककुत्स्थवंशी राम ने मुस्कराते हुए सुग्रीव से कहा कि–

उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे।। २२।।
वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम्।
तमद्य वालिनं पश्य तीक्ष्णैराशीविषोपमैः।। २३।।
शरैर्विनिहतं भूमौ प्रकीर्णमिव पर्वतम्।
स तु तद् वचनं श्रुत्वा राघवस्यात्मनो हितम्।
सुग्रीवः परमप्रीतः परमं वाक्यमब्रवीत्।। २४।।

हे महावानर! मुझे मालूम है कि मित्रता उपकार रूपी फल को देने वाली होती है। अतः मैं आपकी पत्नी का अपहरण करने वाले बाली को मार दूँगा। तुम आज उस बाली को विषधर सर्प के समान तीखे बाणों से मारा हुआ और टूटे हुए पर्वत के समान पृथिवी पर पड़ा हुआ देखोगे। राम के इन अपनी भलाई के वाक्यों को सुन कर सुग्रीव को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और वह उत्तम वाणी में बोले कि–

तव प्रसादेन नृसिंह वीर
प्रियां च राज्यं च समाप्नुयामहम्।
तथा कुरु त्वं नरदेव वैरिणं
यथा न हिंस्यात् स पुनर्ममाग्रजम्।। २५।।

हे नरों में सिंहवीर! हे नरों में देव! आप ऐसा कीजिये कि आपकी कृपा से मैं अपनी प्रिय पत्नी और राज्य को प्राप्त कर लूँ और मेरा अग्रज मेरा बैरी मुझे फिर न मार सके।

छठा सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम को सीता जी के आभूषण दिखाना तथा श्रीराम का शोक व रोषपूर्ण वचन।

पुनरेवाब्रवीत् प्रीतो राघवं रघुनन्दनम्।
अयमाख्याति ते राम सचिवो मन्त्रिसत्तमः।। १।।
हनुमान् यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव।। २।।
रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा।
त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता।। ३।।
अन्तरं प्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम्।
भार्यावियोगजं दुःखं प्रापितस्तेन रक्षसा।। ४।।

सुग्रीव ने पुनः प्रसन्नता पूर्वक रघुनन्दन श्रीराम से कहा हे राम! मेरे मन्त्रियों में श्रेष्ठ सचिव हनुमान ने आपके विषय में बताया है जिसके कारण आपको निर्जन वन में आना पड़ा है। आपके भाई लक्ष्मण के साथ वन में रहते हुए आपकी पत्नी जनक पुत्री मैथिली को राक्षस ने अपहरण कर लिया। उस समय वे आपसे और धीमान लक्ष्मण से भी अलग थीं। घात लगाये हुए राक्षस ने गृध्रराज जटायु को मार कर उस रोती हुई को हर लिया और आपको पत्नी से वियोग का दुःख प्राप्त करा दिया।

भार्यावियोगजं दुःखं नचिरात् त्वं विमोक्ष्यसे।
अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतीमिव।। ५।।
रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभस्तले।
अहमानीय दास्यामि तव भार्यामरिंदम।। ६।।
इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव।
तव भार्या महाबाहो भक्ष्यं विषकृतं यथा।। ७।।
त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते।

आप पत्नी के वियोग के दुःख से जल्दी ही छूट जायेंगे। मैं विलुप्त हुई वेदवाणी के समान उन्हें वापिस ला दूँगा। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! आपकी पत्नी चाहे पाताल में हो, चाहे आकाश में, मैं उन्हें ढूँढ कर आपको ला कर दूँगा। हे राम! आप मेरी इस बात को सत्य समझें। हे महाबाहो! आपकी पत्नी विष मिले खाद्य पदार्थ के समान दूसरों के लिये अग्राह्य है। इसलिये आप शोक को छोड़िये। मैं आपकी प्रिय पत्नी को अवश्य लाऊँगा।

अनुमानात् तु जानामि मैथिली सा न संशयः।। ८।।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा।
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम्।। ९।।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा।
आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम्।। १०।।
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च।
तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव।। ११।।
आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि।

मैं अपने अनुमान से समझता हूँ कि वह निश्चित रूप से वैदेही ही थी, जिसको मैंने भयानक कर्म करने वाले राक्षस के द्वारा अपहरण कर ले जाते हुए देखा था। वे तेज आवाज में हे राम! हे लक्ष्मण! ऐसा चिल्ला रही थी और रावण की गोद में साँपिनी के समान छटपटा रही थी। अपने चार साथियों के साथ पाँचवे मुझे पर्वत पर बैठे हुए देख कर उन्होंने अपना दुपट्टा और सुन्दर आभूषण फेंके थे। हे राम! हमने उन्हें ग्रहण कर रख लिया है। मैं उन्हें लाऊँगा और आप उन्हें पहचान सकते हैं।

तमब्रवीत् ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम्।। १२।।
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे।
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम्।। १३।।
प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया।
उत्तरीयं गृहीत्वा तु स तान्याभरणानि च।। १४।।
इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः।

तब उस प्रिय बोलने वाले सुग्रीव से राम ने कहा कि हे सखे! फिर उन्हें जल्दी लाओ। देर क्यों करते हो? ऐसा कहे जाने पर सुग्रीव ने उस पर्वत की गहन गुफा में राम का प्रिय करने की इच्छा से प्रवेश किया और उस उत्तरीय तथा आभूषणों को, इन्हें देखिये, ऐसा कह कर राम को दिखाया।

ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च।। १५।।
अभवद् बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः।
सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु बाष्पेण दूषितः।। १६।।
हा प्रियेति रुदन् धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत् क्षितौ।
हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलंकारमुत्तमम्।। १७।।
निशश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः।
अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं प्रेक्ष्य पार्श्वतः।। १८।।
परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे।

तब उस वस्त्र और आभूषणों को ले कर श्रीराम कुहरे से घिरे सुन्दर हुए चन्द्रमा के समान आँसुओं से भर गये। सीता के स्नेह के कारण बहने वाले आँसुओं से भीगे हुए वे, 'हा प्रिया' ऐसा कह कर रोते हुए, धैर्य को छोड़ कर भूमि पर गिर पड़े। उन श्रेष्ठ आभूषणों को बार-बार हृदय से लगा कर वे क्रोध में भरे हुए बिल में बैठे हुए सर्प के समान जोर-जोर से साँसें लेने लगे। लगातार बहते हुए आँसुओं के साथ श्रीराम पास में खड़े हुए दीन बने हुए लक्ष्मण को देख कर उन्हें भी विलाप कराने के लिये उनसे बोले कि-

पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया।। १९।।
उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद् भूषणानि च।
शाद्वलिन्यां ध्रुवं भूम्यां सीतया ह्रियमाणया।। २०।।
उत्सृष्टं भूषणमिदं तथा रूपं हि दृश्यते।
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।। २१।।
नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।। २२।।

देखो लक्ष्मण! अपहरण करके ले जाई जाती हुई सीता के द्वारा भूमि पर फैंके हुए ये आभूषण और उत्तरीय हैं। इन्हें सीता ने अपने शरीर से उतार कर फेंका था। अपहरण की जाती हुई सीता के द्वारा फैंके हुए ये आभूषण निश्चित रूप से घास वाली भूमि पर गिरे होंगे। तभी इनका रूप वैसा ही है। ये टूटे फूटे नहीं हैं। राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने कहा कि मैं इन बाजूबन्दों और कुण्डलों को तो पहचानता नहीं, पर इन नपुरों को उन्हें नित्य प्रणाम करने के कारण पहचानता हूँ।

ततस्तु राघवो वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया।। २३।।
रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणप्रिया हृता।
क्व वा वसति तद् रक्षो महद् व्यसनदं मम।। २४।।
यन्निमित्तमहं सर्वान् नाशयिष्यामि राक्षसान्।
हरता मैथिलीं येन मां च रोषयता ध्रुवम्।
आत्मनो जीवितान्ताय मृत्युद्वारमपावृतम्।। २५।।

तब श्रीराम ने सुग्रीव से यह कहा कि हे सुग्रीव तुम यह बताओ कि मेरी प्राणों से भी प्यारी सीता को वह भयानक रूप वाला राक्षस ले कर किस दिशा की तरफ गया है? वह राक्षस कहाँ रहता है? जिसने मेरे ऊपर महान संकट डाला है और जिसके कारण मैं सारे राक्षसों का विनाश कर दूँगा। जिसने मैथिली का हरण करके और मेरे क्रोध को बढ़ा कर निश्चय ही अपने जीवन के अन्त के लिये मृत्यु द्वार खोल दिया है।

मम दयिततमा हृता वनाद्
रजनिचरेण विमथ्य येन सा।
कथय मम रिपुं तमद्य वै
प्लवगपते यमसंनिधिं नयामि।। २६।।

जिस निशाचर ने मुझे धोखा दे कर मेरी प्रियतमा को वन से हर लिया, हे वानर राज! तुम उस मेरे शत्रु के विषय में बताओ, जिससे मैं आज ही उसे मृत्यु के समीप पहुँचा दूँ।

सातवाँ सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम को समझाना तथा श्रीराम का सुग्रीव को उसकी कार्य सिद्धि का विश्वास दिलाना।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः।। १।।
न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः।
सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम्।। २।।
सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिंदम।
करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम्।। ३।।
रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम्।
तथास्मि कर्ता नचिराद् यथा प्रीतो भविष्यसि।। ४।।

शोक से पीड़ित राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वानर सुग्रीव आँसुओं से गद्गद् वाणी में हाथ जोड़ कर बोले कि मैं उस पापी राक्षस के निवास स्थान, विक्रम और नीच कुल में उत्पन्न हुए के कुल के विषय में कुछ नहीं जानता। पर मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे आप मैथिली को प्राप्त कर लेंगे। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! आप शोक को छोड़िये। मैं अपना पौरूष प्रकट कर, रावण को सैनिकों सहित मार कर और आपको सन्तुष्ट

कर ऐसा करूँगा, जिससे आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जायेंगे।

अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर।
त्वद् विधानां न सदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम्।। ५।।
मयापि व्यसनं प्राप्तं भार्याविरहजं महत्।
नाहमेवं हि शोचामि धैर्यं न च परित्यजे।। ६।।
बाष्पमापतितं धैर्यान्निग्रहीतुं त्वमर्हसि।
मर्यादां सत्त्वयुक्तानां धृतिं नोत्स्रष्टुमर्हसि।। ७।।
व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे।
विमृशंश्च स्वयाबुद्ध्या धृतिमान् नावसीदति।। ८।।

आप विकलता का सहारा छोड़िये। अपने अन्दर विद्यमान धैर्य को स्मरण कीजिये। आप जैसों के लिये इस प्रकार बुद्धि को छोटा बना देना ठीक नहीं है। मुझे भी पत्नी से अलग होने का महान कष्ट प्राप्त हुआ है, पर मैं इस प्रकार शोक नहीं करता और नहीं धैर्य को छोड़ता हूँ। आप धीरज से इन गिरते हुए आँसुओं को रोकिये। आप शक्ति सम्पन्न लोगों की मर्यादा और धैर्य का परित्याग न करें। धैर्यशाली पुरुष संकट में निर्धनता में, या प्राणान्तकारी भय उपस्थित होने पर अपनी ही बुद्धि से विचार करते हुए दुर्बलता को प्राप्त नहीं होते।

बालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते।
स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले।। ९।।
एषोऽञ्जलिर्मया बद्धः प्रणयात् त्वां प्रसादये।
पौरुषं श्रय शोकस्य नान्तरं दातुमर्हसि।। १०।।
ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम्।
तेजश्च क्षीयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि।। ११।।

जो मनुष्य बच्चों के समान सदा व्याकुल ही बना रहता है, वह बोझे से दबी हुई नाव के समान विवश हो कर शोक सागर में डूब जाता है। मैं अपने इन हाथों को जोड़ कर आपसे प्रेम पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप पौरुष का आश्रय लें और शोक को अपने ऊपर आने का अवसर न दें। जो शोक का अनुसरण करते हैं, उन्हें सुख नहीं मिलता, उनका तेज भी क्षीण हो जाता हे, इसलिये आप शोक का त्याग कीजिये।

शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः।
स शोकं त्यज राजेन्द्र धैर्यमाश्रय केवलम्।। १२।।
हितं वयस्यभावेन ब्रूहि नोपदिशामि ते।
वयस्यतां पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि।। १३।।
मधुरं सान्त्विस्तेन सुग्रीवेण स राघवः।
मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत्।। १४।।

शोक में पड़े हुए को तो अपने जीवन को बचाने में भी संशय हो जाता है। इसलिये हे राजेन्द्र आप इस शोक को छोड़िये और केवल धैर्य को धारण कीजिये। मैं मित्रता के भाव से ही आपके कल्याण की बात कह रहा हूँ, आपको उपदेश नहीं कर रहा। आप मेरी मित्रता का ध्यान रखते हुए शोक मत कीजिये। इस प्रकार सुग्रीव के द्वारा मधुरता के साथ सान्त्वना देने पर श्रीराम ने आँसुओं से भीगे अपने मुख को वस्त्र के किनारे से पोंछ लिया।

प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीववचनात् प्रभुः।
सम्परिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत्।। १५।।
कर्तव्यं यद् वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत् त्वया।। १६।।
एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे।
दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः।। १७।।

तब शक्तिशाली ककुत्स्थवंशी श्रीराम सुग्रीव के वचन से स्वस्थ चित्त हो गये और सुग्रीव को अपने हृदय से लगा कर यह बोले कि एक स्नेही और हितकारी मित्र को जो करना चाहिये, हे सुग्रीव तुमने उसी के अनुसार ठीक कार्य किया है। यह तुम्हारे योग्य है। हे सखे! तुम्हारे द्वारा समझाने पर मैं अब स्वस्थ हो गया हूँ। ऐसे संकट के समय में तुम्हारे जैसा बन्धु मिलना दुर्लभ है।

किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे।
राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः।। १८।।
मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम्।
वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं सम्पद्यते तव।। १९।।
मया च यदिदं वाक्यमभिमानात् समीरितम्।
तत्त्वया हरिशार्दूल तत्त्वमित्युपधार्यताम्।। २०।।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन।
एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव शपाम्यहम्।। २१।।

किन्तु सीता की खोज में तथा उस दुष्ट भयानक राक्षस रावण का पता लगाने के लिये आप प्रयत्न करना। मुझे आपके लिये जो कुछ करना चाहिये, वह निश्चिंत हो कर कहो। वर्षा ऋतु में अच्छे खेत में डाले हुए बीज के समान तुम्हारा सारा कार्य पूरा हो जायेगा। मैंने जो यह बात अभिमान पूर्वक कह दी है, हे वानरश्रेष्ठ इसे आप सत्य ही समझो। मैंने कभी पहले असत्य नहीं बोला और न कभी भविष्य में बोलूँगा। मैं तुम्हारे लिये प्रतिज्ञा करता हूँ और सत्य की ही शपथ खाता हूँ।

आठवाँ सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम से पुनः अपने दुःख का निवेदन। श्रीराम का आश्वासन देते हुए दोनों में वैर होने का कारण पूछना।

परितुष्टस्तु सुग्रीवस्तेन वाक्येन हर्षितः।
लक्ष्मणस्याग्रजं शूरमिदं वचनमब्रवीत्।। १।।
सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव।
यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम्।। २।।
अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः।
न तु वक्तुं समर्थोऽहं त्वयि आत्मगतान् गुणान्।। ३।।

इन वाक्यों से सुग्रीव को बड़ा सन्तोष हुआ और वे हर्षित हो कर लक्ष्मण के बड़े भाई राम से यह बोले कि हे राघव! मैं आज अपने बन्धुओं और मित्रों में बड़े सम्मान के योग्य हो गया हूँ, जो मैंने रघुवंशी मित्र को अग्नि की साक्षी द्वारा प्राप्त किया है। हे मित्र! मैं भी आपके अनुरूप मित्र हूँ, यह आप धीरे-धीरे जान जायेंगे। मैं अपने गुणों को स्वयं कहने में असमर्थ हूँ।

महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम्।
निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतां वर।। ४।।
रजतं वा सुवर्णं वा शुभान्याभरणानि च।
अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः।। ५।।
आढ्योवापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः।। ६।।
धनत्यागः सुखत्यागो देशत्यागोऽपि वानघ।
वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम्।। ७।।

हे आत्मवानों में श्रेष्ठ! आप जैसी आत्मा की समीपता को प्राप्त महात्माओं का प्रेम और धैर्य अधिकाधिक स्थिर हो जाता है। साधु स्वभाव वाले मित्र अपने साधु स्वभाव वाले मित्रों के सोना चाँदी और सुन्दर आभूषण इन सबको बिना बाँटा हुआ समझते हैं। चाहे मित्र धनी हो या निर्धन हो, दुखी हो या सुखी हो, निर्दोष हो या सदोष हो, पर वह अपने मित्र का बड़ा सहायक होता है। हे अनघ! मित्र अपने मित्र के स्नेह को देख कर उसके लिये धन सुख और देश का भी त्याग कर देते हैं।

ततः तथेत्यब्रवीद् रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम्।
लक्ष्मणस्याग्रतो लक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः।। ८।।
बाष्पवेगं तु सहसा नदीवेगमिवागतम्।
धारयामास धैर्येण सुग्रीवो रामसंनिधौ।। ९।।
स निगृह्य तु तं बाष्पं प्रमृज्य नयने शुभे।
विनिःश्वस्य च तेजस्वी राघवं पुनरूचिवान्।। १०।।

तब दिव्यकान्ति से युक्त राम ने धीमान् इन्द्र के समान तेजस्वी लक्ष्मण के आगे प्रिय वचन बोलने वाले सुग्रीव से कहा कि आपने जैसा कहा है, वैसा ही है। उसके पश्चात् सुग्रीव ने राम के समीप नदी के वेग के समान अचानक आए हुए अपने आँसुओं के वेग को बड़े धैर्य के साथ रोका। अपने आँसुओं को रोक कर, सुन्दर आँखों को पोंछ कर और लम्बी साँस ले कर वह तेजस्वी राम से फिर बोला कि—

पुराहं वालिना राम राज्यात् स्वादवरोपितः।
परुषाणि च संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा।। ११।।
हता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते।। १२।।
यत्नवांश्च स दुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव।
बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया।। १३।।
शङ्कया त्वेतयाहं च दृष्ट्वा त्वामपि राघव।
नोपसर्पाम्यहं भीतो भये सर्वे हि बिभ्यति।। १४।।

हे राम! पहले बाली ने मुझे राज्य से अर्थात् यौवराज्य पद से उतार दिया। उस बलवान ने कठोर वचन कह कर मुझे घर से निकाल दिया। मेरी प्राणों से भी प्यारी पत्नी भी उसने मुझ से छीन ली और मेरे मित्रों को उसने कारागार में डाल दिया। हे राघव! तब से वह दुष्टात्मा मेरे विनाश के लिये प्रयत्न करता रहता है। उसके द्वारा भेजे हुए बहुत से वानर मेरे द्वारा मारे गये हैं। हे राघव! इसी शंका से मैं आपको भी देख कर पहले डर गया था और आपके पास नहीं आया था क्योंकि भय के प्राप्त होने पर तो सभी डर जाते हैं।

केवलं हि सहाया मे हनुमत्प्रमुखास्त्विमे।
अतोऽहं धारयाम्यद्य प्राणान् कृच्छ्रगतोऽपि सन्।। १५।।
एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः।
सह गच्छन्ति गन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति चास्थिते।। १६।।
संक्षेपस्त्वेष मे राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते।
स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता वाली विश्रुतपौरुषः।। १७।।

हनुमान आदि केवल ये ही वानर मेरे सहायक हैं, इसलिये संकट में पड़ने पर भी मैं अब तक प्राणों को धारण किये हुए हूँ। ये वानर प्रेम पूर्वक सब तरफ से मेरी रक्षा करते हैं। मेरे जाने पर ये मेरे साथ जाते हैं और मेरे ठहरने पर ये भी वहीं टिक जाते हैं। हे राम! मैंने संक्षेप में अपनी अवस्था बतायी हैं, विस्तार से कहने से क्या लाभ? विख्यात पौरुष वाला मेरा बड़ा भाई बाली मेरा शत्रु हो गया है।

तद्विनाशेऽपि मे दुःखं प्रमृष्टं स्यादनन्तरम्।
सुखं मे जीवितं चैव तद्विनाशनिबन्धनम्।। १८।।
एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः।
दुःखितः सुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखा गतिः।। १९।।

उसके विनाश होने पर ही मेरा दुख मिट सकता है। मेरा सुख और मेरा जीवन दोनों उसके विनाश पर ही निर्भर हैं। हे राम! यह मेरे शोक के विनाश का उपाय है, जो मैंने शोक से पीड़ित होते हुए निवेदन किया है। दुख और सुख दोनों अवस्थाओं में मित्र ही मित्र का सहारा होता है।

श्रुत्वैतच्च वचो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
किं निमित्तमभूद् वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।। २०।।
सुखं हि कारणं श्रुत्वा वैरस्य तव वानर।
आनन्तर्याद् विधास्यामि सम्प्रधार्य बलाबलम्।। २१।।
ततः प्रहृष्टवदनः सुग्रीवो लक्ष्मणाग्रजे।
वैरस्य कारणं तत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे।। २२।।

यह बात सुन कर राम ने सुग्रीव से यह कहा कि तुम दोनों भइयों में किस कारण से वैर हुआ, यह वास्तविक रूप में मैं सुनना चाहता हूँ। हे वानर! तुम्हारे वैर का कारण सुन कर तथा बल और अबल का निर्धारण कर मैं जल्दी ही तुम्हें सुखी बनाने का उपाय करूँगा। तब सुग्रीव लक्ष्मण के बड़े भाई राम को प्रसन्न मुख से वैर के कारण को वास्तविक रूप में बताने लगा।

नवाँ सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम को बाली से अपने वैर का कारण वर्णन करना।

वाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदनः।
पितुर्बहुमतो नित्यं मम चापि तथा पुरा।। १।।
पितर्युपरते तस्मिञ्ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः।
कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसम्मतः।। २।।
राज्यं प्रशासतस्तस्य पितृपैतामहं महत्।
अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेष्यवत् स्थितः।। ३।।

शत्रुओं को नष्ट करने वाला बाली नाम का मेरा बड़ा भाई है। उसे मेरे पिता जी बहुत मानते थे और पहले मैं भी उनका बहुत सम्मान करता था। पिता जी के दिवंगत हो जाने पर मंत्रियों ने यह बड़ा है ऐसा सोच कर सबके द्वारा प्रतिष्ठित बाली को वानरों को राजा बना दिया। उसके द्वारा पिता और पितामह के विशाल राज्य पर शासन करते हुए मैं सदा सेवक के समान विनीत भाव से उसके सम्मुख रहा करता था।

मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः।
तेन तस्य महद्वैरं वालिनः स्त्रीकृतं पुरा।। ४।।
स तु सुप्ते जने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः।
नर्दति स्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद् रणे।। ५।।
प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दतो भैरवस्वनम्।
श्रुत्वा न ममृषे वाली निष्पपात जवात् तदा।। ६।।

मायावी नाम का एक तेजस्वी राक्षस पुत्र था। वह दुन्दुभि राक्षस का बड़ा भाई था। उसका स्त्री के कारण बाली से बड़ा वैर हो गया। वह एक दिन रात्रि में सबके सो जाने पर, किष्किंधा के द्वार पर आ कर क्रोध में भर कर गर्जने और बाली को युद्ध के लिये ललकारने लगा। सोए हुए मेरे भाई ने जब उसके गर्जन की भयानक आवाज सुनी तो वह उसे सहन न कर सका और तेजी से बाहर निकल आया।

स तु वै निःसृतः क्रोधात् तं हन्तुमसुरोत्तमम्।
वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मया च प्रणतात्मना।। ७।।
स तु निर्धूय सर्वान् नो निर्जगाम महाबलः।
ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो वालिना सह।। ८।।
स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम्।
असुरो जातसंत्रासः प्रदुद्राव तदा भृशम्।। ९।।

यद्यपि स्त्रियों ने और मैंने उसे पैरों में पड़ कर जाने से रोका, पर वह उस महान असुर को मारने के लिये क्रोध से बाहर निकल ही आये। वे महा बली हम सबको

हटा कर जब बाहर निकले, तब मैं भी स्नेह के साथ उनके साथ बाहर निकला। उस असुर ने जब मेरे भाई को देखा और कुछ दूर खड़े हुए मुझे भी देखा तो वह डर कर तेजी से दौड़ा।

तस्मिन् द्रवति संत्रस्ते ह्यावां द्रुततरं गतौ।
प्रकाशोऽपि कृतो मार्गश्चन्द्रेणोद्गच्छता तदा।। १०।।
स तृणैरावृतं दुर्गं धरण्या विवरं महत्।
प्रविवेशासुरो वेगादावामासाद्य विष्ठितौ।। ११।।
तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा बिलं रोषवशं गतः।
मामुवाच ततो वाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः।। १२।।

उसके डर कर भागते हुए के पीछे, हम दोनों भी तेजी से भागे। उदय होते हुए चन्द्रमा ने भी तब हमारे लिये मार्ग में प्रकाश कर दिया था। वहाँ भूमि के अन्दर एक दुर्गम और बड़ी गुफा थी, जिसका मुख झाड़ियों से ढका हुआ था। वह असुर उस गुफा में तेजी से घुस गया और हम दोनों उस गुफा के द्वार पर ठहर गये। उस शत्रु को गुफा में घुसा हुआ देख कर रोष के बस में हुए बाली की इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो गयीं और वह मुझ से बोला कि।

इह तिष्ठाद्य सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः।
यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि समरे रिपुम्।। १३।।
मया त्वेतद् वचः श्रुत्वा याचितः स परंतपः।
शापयित्वा च मां पद्भ्यां प्रविवेश बिलं ततः।। १४।।
अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात् तस्माद् विनिः सृतम्।
सफेनं रुधिरं दृष्ट्वा ततोऽहं भृशदुःखितः।। १५।।

हे सुग्रीव! तुम यहीं गुफा के द्वार पर सावधान हो कर ठहरो, जब तक मैं इस में प्रवेश कर युद्ध में शत्रु को मारता हूँ। मैंने यह सुन कर उस परंतप के साथ चलने की प्रार्थना की, पर उसने अपने चरणों की सौगन्ध दिला कर उस गुफा में अकेले ही प्रवेश किया। उसके पश्चात काफी लम्बे समय के बाद उस गुफा से फेन सहित रुधिर बहने लगा। उसे देख कर मैं अत्यन्त दुःखी हो गया।

नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः।
न रतस्य च संग्रामे क्रोशतोऽपि स्वनो गुरोः।। १६।।
अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम्।
पिधाय च बिलद्वारं किष्किंधामागतःसरवे।। १७।।
गूहमानस्य मे तत् त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम्।

तभी गर्जते हुए असुरों की ध्वनि सुनाई दी, पर संग्राम में लगे बड़े भाई की आवाज मैं नहीं सुन सका। मैंने उस समय अपनी बुद्धि से यही समझा कि मेरा भाई मारा गया। तब मैं गुफा के द्वार को बन्द करके हे सखे! किष्किंधा में आ गया। यद्यपि मैं इस यथार्थ बात को छिपा रहा था परन्तु मन्त्रियों ने प्रयत्न करके इसे जान लिया।

ततोऽहं तैः समागम्य समेतैरभिषेचितः।। १८।।
राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव।
आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः।। १९।।
अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा क्रोधात् संरक्तलोचनः।
मदीयान् मन्त्रिणो बद्ध्वा परुषं वाक्यमब्रवीत्।। २०।।
मानयस्तं महात्मानं यथावच्चाभिवादयम्।
उक्ताश्च नाशिषस्तेन प्रहृष्टेनान्तरात्मना।। २१।।

तब उन्होंने एकत्र हो कर मुझे राज्य पर बैठा दिया। मैं न्याय से राज्य का शासन चलाने लगा। तभी अपने शत्रु दानव को मार कर बाली घर पर लौटे और मुझे राज्य पर बैठा हुआ देख कर उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। उसने मेरे मंत्रियों को कैद कर लिया और उन्हें कठोर बातें सुनाई। मैंने उन महात्मा का सम्मान किया, यथायोग्य प्रणाम किया, पर उसने प्रसन्न चित्त से मुझे आशीर्वाद नहीं दिया।

दसवाँ सर्ग

सुग्रीव का बाली से अपने वैर का कारण ही कहना

ततः क्रोधसमाविष्टं संरब्धं तमुपागतम्।
अहं प्रसादयांचक्रे भ्रातरं हितकाम्यया।। १।।
दिष्ट्यासि कुशली प्राप्तो निहतश्च त्वया रिपुः।
अनाथस्य हि मे नाथस्त्वमेकोऽनाथनन्दन।। २।।
इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम्।
छत्रं सवालव्यजनं प्रतीच्छस्व मया धृतम्।। ३।।

फिर मैं क्रोध में भरे हुए और विक्षुब्ध हो कर आये हुए भाई को कल्याण की कामना से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा। मैंने कहा कि बड़े सौभाग्य की बात है कि आप सकुशल आ गये हैं और आपने शत्रु को मार दिया है। हे अनाथों पर कृपा करने वाले! मुझ अनाथ के तो आप ही स्वामी हैं। यह उदय होते हुए

पूर्ण चन्द्रमा के समान कान्तिमान बहुत सी तीलियों वाला और चँवर के सहित छत्र, जो मैंने धारण किया हुआ है, उसे आप वापिस लीजिये।

त्वमेव राजा मानार्हः सदा चाहं यथा पुरा।
राजभावे नियोगोऽयं मम त्वद्विरहात् कृतः।। ४।।
सामात्यपौरनगरं स्थितं निहतकण्टकम्।
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम्।। ५।।
मा च रोषं कृथाः सौम्य मम शत्रुनिषूदन।
याचे त्वां शिरसा राजन् मया बद्धोऽयमञ्जलिः।। ६।।
बलादस्मिन् समागम्य मन्त्रिभिः पुरवासिभिः।
राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया।। ७।।

हे मान के योग्य! आप ही राजा हैं और मैं पहले के ही समान आपका सेवक हूँ। आपके न होने के कारण मुझे राजा बनाया गया था। मन्त्रियों, पुरवासियों और नगर सहित यह अकण्टक राज्य मेरे पास आपकी धरोहर के रूप में था, मैं इसे आपको ही लौटा रहा हूँ। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले सौम्य! आप मुझ पर क्रोध न करें। मैं हाथ जोड़ कर सिर झुका कर आपसे प्रार्थना करता हूँ। राजा से रहित सूने राज्य पर कोई शत्रु आक्रमण न कर दे, इसलिये मंत्रियों और पुरवासियों ने आकर जबरदस्ती मुझे राजगद्दी पर बैठा दिया था।

स्निग्धमेवं ब्रुवाणं मां स विनिर्भर्त्स्य वानरः।
धिक्त्वामिति च मामुक्त्वा बहु तत्तदुवाच ह।। ८।।
प्रकृतीश्च समानीय मन्त्रिणश्चैव सम्मतान्।
मामाह सुहृदां मध्ये वाक्यं परमगर्हितम्।। ९।।

मैं बड़े प्यार से उससे बात कर रहा था, पर उस वानर ने मुझे धमका कर कहा, तुझे धिक्कार है और मुझे बहुत सी कठोर बातें सुनाईं। उसने प्रजा के सम्मानित लोगों को और मंत्रियों को बुला कर मित्रों के बीच में मुझे अत्यन्त निन्दित बातें कहीं।

विदितं वो मया रात्रौ मायावी स महासुरः।
मां समाह्वयत क्रुद्धो युद्धाकाङ्क्षी तदा पुरा।। १०।।
तस्य तद् भाषितं श्रुत्वा निःसृतोऽहं नृपालयात्।
अनुयातश्च मां तूर्णमयं भ्राता सुदारुणः।। ११।।
स तु दृष्ट्वैव मां रात्रौ सद्वितीयं महाबलः।
प्राद्रवद् भयसंत्रस्तो वीक्ष्यावां समुपागतौ।। १२।।
अभिद्रुतस्तु वेगेन विवेश स महाबिलम्।
तं प्रविष्टं विदित्वा तु सुघोरं सुमहद्बिलम्।। १३।।
अयमुक्तोऽथ मे भ्राता मया तु क्रूरदर्शनः।

उसने कहा कि आप लोगों को मालूम है कि पहले मायावी नाम का राक्षस क्रोध में भरा हुआ मेरे साथ युद्ध की इच्छा से रात्रि में आया था। उसने मुझे ललकारा था। उसकी उस ललकार को सुन कर मैं राजमहल से निकल पड़ा यह क्रूर भाई भी जल्दी ही मेरे पीछे-पीछे गया। वह महा बलवान राक्षस मुझे दूसरे सहायक के साथ देख कर भय से डरा हुआ रात्रि में ही भागा। हम दोनों को पीछे आता हुआ देख कर वह तेजी से दौड़ कर एक बड़ी गुफा में घुस गया। उसे उस भयानक और विशाल गुफा में प्रविष्ट हुआ देख कर मैंने अपने इस क्रूर दर्शी भाई से कहा कि–

अहत्वा नास्ति मे शक्तिः प्रतिगन्तुमितः पुरीम्।। १४।।
बिलद्वारि प्रतीक्ष त्वं यावदेनं निहन्म्यहम्।
स्थितोऽयमिति मत्वाहं प्रविष्टस्तु दुरासदम्।। १५।।
सूदयित्वा तु तं शत्रुं विक्रान्तं तमहं सुखम्।
निष्क्रामं नैव पश्यामि बिलस्य पिहितं मुखम्।। १६।।

मैं उस असुर को मारे बिना नगर में वापिस नहीं जा सकता। तुम गुफा के द्वार पर तब तक प्रतीक्षा करो, जब तक मैं उसे मार कर नहीं लौटता हूँ। यह तो यहाँ खड़ा ही है ऐसा मान कर मैं उस भयानक गुफा में प्रविष्ट हो गया। उस भयानक शत्रु को मैं वहाँ आसानी से मार कर जब निकला तो मैंने देखा कि गुफा का द्वार बन्द है।

विक्रोशमानस्य तु मे सुग्रीवेति पुनः पुनः।
यतः प्रतिवचो नास्ति ततोऽहं भृशदुःखितः।। १७।।
पादप्रहारैस्तु मया बहुभिः परिपातितम्।
ततोऽहं तेन निष्क्रम्य पथा पुरमुपागतः।। १८।।
तत्रानेनास्मि संरुद्धो राज्यं मृगयताऽऽत्मनः।
सुग्रीवेण नृशंसेन विस्मृत्य भ्रातृसौहृदम्।। १९।।

मेरे बार-बार सुग्रीव-सुग्रीव ऐसा चिल्लाने पर भी जब कोई उत्तर नहीं मिला, तब मैं बड़ा दुःखी हुआ। तब मैंने अनेक बार लातें मार-मार कर गुफा के अवरोध को गिरा दिया और वहाँ से निकल कर यहाँ नगर में आया हूँ। इस निर्दय सुग्रीव ने भाई के प्रेम को भुला कर अपने लिये राज्य पाने की इच्छा से मुझे वहाँ बन्द कर दिया था।

एवमुक्त्वा तु मां तत्र वस्त्रेणैकेन वानरः।
तदा निर्वासयामास वाली विगतसाध्वसः।। २०।।
तेनाहमपविद्धश्च हृतदारश्च राघव।
एतत्ते सर्वमाख्यातं वैरानुकथनं महत्।। २१।।

अनागसा मया प्राप्तं व्यसनं पश्य राघव।
एवमुक्तः स तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम्।। २२।।
वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव।

ऐसा कह कर उस बाली वानर ने निर्भयता के साथ मुझे एक वस्त्र में ही घर से निकाल दिया। उसने मुझे तो निकाल दिया मेरी पत्नी को भी मुझ से छीन लिया। हे राम! यह मैंने बाली से अपने बैर की सारी कहानी सुना दी है। देखिये बिना अपराध के ही मेरे ऊपर बड़ी मुसीबत आ गयी है। सुग्रीव के ऐसा कहने पर उन धर्म को जानने वाले तेजस्वी राम ने हँसते हुए से सुग्रीव से धर्म से युक्त वचन कहना आरम्भ किया।

अमोघाः सूर्यसंकाशां निशिता मे शरा इमे।। २३।।
तस्मिन् वालिनि दुर्वृत्ते पतिष्यन्ति रुषान्विताः।
यावत् तं नहि पश्येयं तव भार्यापहारिणम्।। २४।।
तावत् स जीवेत् पापात्मा वाली चारित्रदूषकः।
त्वामहं तारयिष्यामि बाढं प्राप्स्यसि पुष्कलम्।। २५।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम्।
सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत्।। २६।।

वे बोले कि ये मेरे बाण सूर्य के समान जगमगाते हुए, तीखे और अमोघ हैं। ये क्रोध में भर कर उस दुराचारी बाली पर पड़ेंगे। मैं तुम्हारी भार्या के अपहरणकर्ता उस बाली को जब तक नहीं देख लूँ, तब तक चरित्र को कलंकित करने वाला बाली जीवन धारण कर ले। मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा और तुम समृद्धि को प्राप्त करोगे। श्रीराम के उस हर्ष और पौरुष को बढ़ाने वाले वचनों को सुन कर परम प्रसन्न हो कर सुग्रीव ने यह महत्वपूर्ण बात कही कि-

ग्यारहवाँ सर्ग

सुग्रीव द्वारा बाली के पराक्रम का वर्णन तथा श्रीराम द्वारा साल वृक्षों का भेदन।

वालिनः पौरुषं यत्तद् यच्च वीर्यं धृतिश्च या।
तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम्।। १।।
अग्राण्यारुह्य शैलानां शिखराणि महान्त्यपि।
ऊर्ध्वमुत्पात्य तरसा प्रतिगृह्णाति वीर्यवान्।। २।।
बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः।
वालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयताऽऽत्मनः।। ३।।
इमे च विपुलाः सालाः सप्त शाखावलम्बिनः।
यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा।। ४।।

हे राम! बाली का जैसा पौरुष, पराक्रम और धैर्य है, उसे आप ध्यान से मुझ से सुन लीजिये, फिर उसके पश्चात् जो करना हो करिये। पराक्रमी बाली पर्वतों की चोटियों पर चढ़ कर बड़े शिखरों अर्थात् शिलाओं को ऊपर को बल पूर्वक उछाल कर उन्हें पकड़ लेता है। वन में बहुत से सुदृढ़ वृक्ष थे, उन्हें बाली ने अपने बल का प्रदर्शन करते हुए बल पूर्वक तोड़ दिया। ये सात मोटे साल के वृक्ष हैं, जो बहुत सी शाखाओं वाले हैं। बाली इनमें से किसी एक को अपने बल से हिला कर पत्रविहीन कर सकता है।

एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकाशितम्।
कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप।। ५।।
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसँल्लक्ष्मणोऽब्रवीत्।
कस्मिन् कर्मणि निवृत्ते श्रद्दध्या वालिनो वधम्।। ६।।
तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान् पुरा।
एवमेकैकशो वाली विव्याथाथ स चासकृत्।। ७।।
रामो निर्दारयेदेषां बाणेनैकेन च द्रुमम्।
वालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम्।। ८।।

हे राम! मैंने बाली के अद्वितीय पराक्रम के विषय में आपको बता दिया है। अब हे राजा! आप उसे युद्ध में कैसे मार सकेंगे? सुग्रीव के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने हँसते हुए कहा कि कौन सा कार्य कर देने पर तुम बाली के वध के विषय में विश्वास करोगे? तब सुग्रीव ने उनसे कहा कि इन सात साल के वृक्षों को पहले बाली ने एक-एक कर अनेक बार बाण से बींधा हैं। श्रीराम यदि इनमें से किसी एक वृक्ष को एक बाण से बींध दें, तो राम के पराक्रम को देख कर मैं बाली को उनके द्वारा मारा हुआ समझ लूँगा।

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवो रामं रक्तान्तलोचनम्।
ध्यात्वा मुहूर्तं काकुत्स्थं पुनरेव वचोऽब्रवीत्।। ९।।
शूरश्च शूरमानी च प्रख्यातबलपौरुषः।
बलवान् वानरो वाली संयुगेष्वपराजितः।। १०।।
उद्विग्नः शङ्कितश्चाहं विचरामि महावने।
अनुरक्तैः सहामात्यैर्हनुमत्प्रमुखैर्वरैः।। ११।।

जिनके आँखों के किनारे कुछ लाल थे, ऐसे श्रीराम से यह कह कर सुग्रीव थोड़ी देर तक कुछ सोच विचार

कर उन ककुत्स्थवंशी राम से फिर बोला कि बाली शूरवीर भी है और उसे अपनी शूरवीरता पर अभिमान भी है। उस बलवान का बल और पौरुष प्रसिद्ध है। वह कभी किसी युद्ध में पराजित नहीं हुआ है। मैं उसके डर से बेचैन और शंकित हो कर इस महान वन में हनुमान आदि अपने प्रमुख सचिवों के साथ घूमता रहता हूँ।

उपलब्धं च मे श्लाघ्यं सन्मित्रं मित्रवत्सल।
त्वामहं पुरुषव्याघ्र हिमवन्तमिवाश्रितः।। १२।।
किं तु तस्य बलज्ञोऽहं दुर्भ्रातुर्बलशालिनः।
अप्रत्यक्षं तु मे वीर्यं समरे तव राघव।। १३।।
न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये।
कर्मभिस्तस्य भीमैश्च कातर्यं जनितं मम।। १४।।
कामं राघव ते वाणी प्रमाणं धैर्यमाकृतिः।
सूचयन्ति परं तेजो भस्मच्छन्नमिवानलम्।। १५।।

हे मित्र वत्सल! आपके रूप में मुझे एक स्पृहणीय, अच्छा मित्र मिल गया है। हे पुरुषव्याघ्र! मैंने आपका हिमालय पर्वत के समान सहारा ले लिया है। किन्तु मैं अपने उस दुष्ट बलवान भाई के बल को जानता हूँ और आपकी शक्ति मैंने देखी नहीं है। मैं न तो वास्तव में आपकी बाली से तुलना करता हूँ और न आपका अपमान कर रहा हूँ और न डरा रहा हूँ। उसके भयानक कर्मों को देख कर ही मेरे हृदय में कातरता जन्म ले रही है। हे राम! निश्चय ही आपकी वाणी मेरे लिये प्रमाण है। आपका धैर्य और आपकी आकृति राख में छिपी हुई अग्नि के समान आपके तेज को प्रकट कर रही है।

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम्।
प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम्।। १६।।
स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः।
सालमुद्दिश्य चिक्षेप पूरयन् स रवैर्दिशः।। १७।।
सायकस्तु मुहूर्तेन सालान् भित्त्वा महाजवः।
निष्पत्य च पुनस्तूणं तमेव प्रविवेश ह।। १८।।
तान् दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान् सालान् वानरपुङ्गवः।
रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः।। १९।।

सुग्रीव के इन अच्छे ढंग से कहे हुए वचनों को सुन कर, उसके विश्वास के लिये महा तेजस्वी राम ने धनुष को हाथ में लिया। दूसरों को सम्मान देने वाले उन श्रीराम ने धनुष और एक भयानक बाण ले कर एक साल वृक्ष को उद्देश्य कर, धनुष की टंकार से दिशाओं को पूरित करते हुए उस बाण को छोड़ दिया। उस महान वेग वाले बाण ने क्षणभर में उन सात वृक्षों को भेद दिया और वहाँ से निकल कर पुनः तेजी से वह तरकस में प्रविष्ट हो गया। उन सातों सालवृक्षों को भेदा हुआ देख कर वह वानर श्रेष्ठ सुग्रीव राम के बाण की तीव्रता से अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ।

इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः।
रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठं शूरमवस्थितम्।। २०।।
अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम।
सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम्।। २१।।
तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम्।
वालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः।। २२।।

उनके इस कार्य से प्रसन्न होकर वह उन धर्मज्ञ, सारे अस्त्र विद्वानों में श्रेष्ठ, और शूरवीर राम से यह बोला कि हे महेन्द्र और वरुण के समान वीर मित्र! आपको प्राप्त कर आज मेरा शोक समाप्त हो गया, आज मुझे अत्यन्त हर्ष है। हे ककुत्स्थ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप मेरे हित के लिये आज ही उस भाई रूपी मेरे शत्रु को मार दीजिये।

ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम्।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुगतं वचः।। २३।।
अस्माद्गच्छाम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः।
गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम्।। २४।।

तब महाप्राज्ञ श्रीराम ने लक्ष्मण के ही समान प्रिय दिखाई देने वाले सुग्रीव को गले से लगा लिया, और उसे उत्तर दिया कि हम यहाँ से किष्किधा को चलते हैं। तुम जल्दी आगे जाओ और जाकर उस झूठे भाई बाली को ललकारो।

बारहवाँ सर्ग

श्रीराम आदि का किष्किंधापुरी पहुँचना और सुग्रीव का बाली को ललकारते हुए गर्जना करना।

ऋष्यमूकात् स धर्मात्मा किष्किंधां लक्ष्मणाग्रजः।
जगाम सह सुग्रीवो वालिविक्रमपालिताम्।। १।।
अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः।
सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणश्च महाबलः।। २।।
पृष्ठतो हनुमान् वीरो नलो नीलश्च वीर्यवान्।
तारश्चैव महातेजा हरियूथपयूथपः।। ३।।

तब वे धर्मात्मा लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीराम, सुग्रीव के साथ बाली के पराक्रम से सुरक्षित किष्किंधा की तरफ चले। उन महात्मा के आगे उस समय गठी हुई ग्रीवा वाले सुग्रीव और महाबली लक्ष्मण चल रहे थे। और उनके पीछे वीर हनुमान, पराक्रमी नल और नील और महा तेजस्वी वानरों के यूथपों के भी अधिपति तार नाम के वानर चल रहे थे।

ते वीक्षमाणा वृक्षांश्च पुष्पभारावलम्बिनः।
प्रसन्नाम्बुवहाश्चैव सरितः सागरंगमाः।। ४।।
कन्दराणि च शैलांश्च निर्दराणि गुहास्तथा।
शिखराणि च मुख्यानि दरीश्च प्रियदर्शनाः।। ५।।
वैदूर्यविमलैस्तोयैः पद्मैश्चाकोशकुड्मलैः।
शोभितान् सजलान् मार्गे तटाकांश्चावलोकयन्।। ६।।
कारण्डैः सारसैर्हंसैर्वञ्जुलैर्जलकुक्कुटैः।
चक्रवाकैस्तथा चान्यैः शकुनैः प्रतिनादितान्।। ७।।

वे लोग फूलों के भार से झुके हुए वृक्षों को, स्वच्छ जल वाली सागर गामिनी नदियों को, घाटियों को, पर्वतों को, निर्झरों को, गुफाओं को, प्रमुख शिखरों को, और प्रिय दिखाई देने वाले शिला विवरों को देखते हुए जा रहे थे। वैदूर्य मणि के समान निर्मल जल वाले कमलों तथा कमलकलियों से सुशोभित जलपूर्ण तालाबों को मार्ग में देखते हुए जा रहे थे, उन सरोवरों में कारण्ड, सारस, हंस, वंजुल, जल कुक्कुट, चक्रवाक, तथा दूसरे प्रकार के पक्षी चहचहा रहे थे। उनकी प्रतिध्वनि वहाँ गूँज रही थी।

मृदुशष्पाङ्कुराहारान्निर्भयान् वनगोचरान्।
चरतः सर्वतः पश्यन् स्थलीषु हरिणान् स्थितान्।। ८।।
तटाकवैरिणश्चापि शुक्लदन्तविभूषितान्।
घोरानेकचरान् वन्यान् द्विरदान् कूलघातिनः।। ९।।
मत्तान् गिरितटोत्कृष्टान् पर्वतानिव जङ्गमान्।
वने वनचरांश्चापि खेचरांश्च विहंगमान्।। १०।।
पश्यन्तस्त्वरिता जग्मुः सुग्रीववशवर्तिनः।

वहाँ वनस्थल में मुलायम हरी घास के अंकुरों का आहार करते हुए और निर्भयता के साथ दिखाई देने वाले तथा विचरण करने वाले हरिणों को देखते हुए वे जा रहे थे। वे सफेद-सफेद दाँतों से सुशोभित, किनारों को तोड़ने वाले और इसलिये तालाबों के शत्रु और अकेले घूमने वाले भयानक जँगली हाथियों को, जो पर्वत के किनारे खोदने वाले, मस्त और पहाड़ के समान ऊँचे थे तथा दूसरे जँगली जन्तुओं को तथा आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को देखते हुए तेजी से सुग्रीव के वश में हो कर जा रहे थे।

सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम्।। ११।।
वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन् गहने वने।
दृष्ट्वा रामं क्रियादक्षं सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत्।। १२।।
हरिवागुरया व्याप्तां तप्तकाञ्चनतोरणाम्।
प्राप्ताः स्म ध्वजयन्त्राढ्यां किष्किन्धां वालिनः पुरीम्।। १३।।
प्रतिज्ञा या कृता वीर त्वया वालिवधे पुरा।
सफलां कुरु तां क्षिप्रं लतां काल इवागतः।। १४।।

वे सारे बाली की पुरी किंष्किधा के समीप जा कर घने वन में वृक्षों से अपने को छिपा कर खड़े हो गये। तब कार्य करने में चतुर राम को देख कर सुग्रीव ने कहा कि यह बाली की नगरी किष्किंधा है। यह ध्वजों और यन्त्रों से भरी हुई है। इसका द्वार तपे हुए स्वर्ण से बना हुआ है और इसमें वानरों का जाल सा बिछा हुआ है। हे वीर! आपने बाली के वध के लिये जो पहले प्रतिज्ञा की थी उसे समय पर फल, फूल से सुशोभित होने वाली लता के समान सफल कीजिये।

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा सुग्रीवेण स राघवः।
तमेवोवाच वचनं सुग्रीवं शत्रुसूदनः।। १५।।
मम दर्शय सुग्रीव वैरिणं भ्रातृरूपिणम्।
वाली विनिहतो यावद्वने पांसुषु चेष्टते।। १६।।
यदि दृष्टिपथं प्राप्तो जीवन् स विनिवर्तते।
ततो दोषेण मागच्छेत् सद्यो गर्हेच्च मां भवान्।। १७।।

प्रत्यक्षं सप्त ते साला मया बाणेन दारिताः।
तेनावेहि बलेनाद्य वालिनं निहतं रणे।।१८।।

सुग्रीव के द्वारा ऐसा कहने पर वह धर्मात्मा और शत्रुओं को नष्ट करने वाले राम सुग्रीव से यह बोले कि हे सुग्रीव! तुम मुझे अपने उस भाई रूपी बैरी को दिखाओ। उसके पश्चात् बाली वन में धूल में लोटता हुआ दिखाई देगा। यदि मेरी निगाहों के रास्ते में आ कर वह जीवित लौट जाये तो तुम मुझे दोष देना और तुरन्त मेरी निन्दा करना। जिस बाण से मैंने तुम्हारे सामने ही सात साल के वृक्ष भेदे थे, उसी बलशाली बाण से आज युद्ध में बाली को मरा हुआ देखना।

अनृतं नोक्तपूर्वं मे चिरं कृच्छ्रेऽपि तिष्ठता।
धर्मलोभपरीतेन न च वक्ष्ये कथंचन।।१९।।
सफलां च करिष्यामि प्रतिज्ञां नहि संभ्रमम्।
तदाह्वाननिमित्तं च वालिनो हेममालिनः।।२०।।
सुग्रीव कुरु तं शब्दं निष्पतेद् येन वानरः।
जितकाशी जयश्लाघी त्वया चाधर्षितः पुरात्।।२१।।
निष्पतिष्यत्यसङ्गेन वाली स प्रियसंयुगः।
रिपूणां धर्षितं श्रुत्वा मर्षयन्ति न संयुगे।।२२।।
जानन्तस्तु स्वकं वीर्यं स्त्रीसमक्षं विशेषतः।

बहुत समय तक संकट में रहने पर भी, मैंने पहले कभी झूठ नहीं बोला और धर्म के लोभ के कारण आगे भी किसी प्रकार नहीं बोलूँगा। इसलिये मैं अपनी प्रतिज्ञा को सफल करूँगा। तुम घबराहट को छोड़ दो। इसलिये उस सुवर्ण की माला धारण करने वाले बाली को बुलाने के लिये तुम ऐसी गर्जना करो, जिससे वह वानर बाहर आ जाये। बाली विजयी के समान आचरण करने वाला है, वह विजय का इच्छुक है, पहले कभी तुमसे पराजित नहीं हुआ, वह युद्ध से प्रेम करता है, इसलिये वह तुम्हारी गर्जन सुन कर बिना किसी आसक्ति के बाहर निकल आयेगा। अपने पराक्रम को जानने वाले, युद्ध के लिये शत्रु की ललकार सुन कर विशेषतः स्त्रियों के सामने कभी उसे सहन नहीं करते।

ततः स जीमूतकृतप्रणादो
नादं ह्यमुञ्चत् त्वरया प्रतीतः।
सूर्यात्मजः शौर्यविवृद्धतेजाः
सरित्पतिर्वानिलचञ्चलोर्मिः ।।२३।।

तब शौर्य से जिसका तेज उस समय बढ़ गया था, वह सूर्य पुत्र सुग्रीव, मेघ की गर्जना के समान जल्दी-जल्दी बार-बार ऐसे गर्जना करने लगे जैसे वायु से चंचल बनी लहरों वाला सागर कोलाहल कर रहा हो।

तेरहवाँ सर्ग

सुग्रीव की गर्जना सुन कर बाली का युद्ध के लिये निकलना। तारा का उसे रोक कर सुग्रीव और राम के साथ मैत्री कर लेने के लिये समझाना।

अथ तस्य निनादं तं सुग्रीवस्य महात्मनः।
सुश्रावान्तःपुरगतो वाली भ्रातुरमर्षणः।।१।।
श्रुत्वा तु तस्य निनदं सर्वभूतप्रकम्पनम्।
मदश्चैकपदे नष्टः क्रोधश्चापादितो महान्।।२।।
शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः।
वेगेन च पदन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम्।।३।।
तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद् दर्शितसौहृदा।
उवाच त्रस्तसम्भ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः।।४।।

महात्मा सुग्रीव की उस गर्जना को अमर्षशील बाली ने अपने अन्तःपुर में सुना। सारे प्राणियों को कम्पित कर देने वाले उसके गर्जन को सुन कर उसका सुखोपभोग का मद एक दम उतर गया और वह महान क्रोध से भर गया। उस दुःसह शब्द को सुन कर वह वानर एक दम अपने पैरों की धमक से पृथ्वी को कँपाता सा हुआ तेजी से बाहर निकल आया। तब उसकी पत्नी तारा ने डरते हुए और घबराते हुए, प्रेम से अच्छे सौहार्द का परिचय देते हुए उसे अपनी छाती से लगा कर परिणाम में हित वाली यह बात कही कि –

साधुः क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम्।
शयनादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तामिव स्रजम्।।५।।
काल्यमेतेन संग्रामं करिष्यसि च वानर।
वीर ते शत्रुबाहुल्यं फल्गुता वा न विद्यते।।६।।
सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते।
श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यते।।७।।

हे वीर! नदी के वेग के समान आये हुए इस क्रोध को त्याग दीजिये, जैसे प्रातः सो कर उठने पर रात में

भोगी हुई माला को त्याग दिया जाता है। हे वानर वीर! आप कल इसके साथ युद्ध करिये। यद्यपि आपके शत्रु आपसे बढ़ कर नहीं है और आपमें उनके मुकाबले कोई कमी नहीं है, पर फिर भी आपका एकदम युद्ध के लिये जाना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। आप सुनिये इसलिये मैं आपको रोक रही हूँ।

दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः।
निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम्॥ ८॥
नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम्।
अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति॥ ९॥
प्रकृत्या निपुणश्चैव बुद्धिमांश्चैव वानरः।
नापरीक्षितवीर्येण सुग्रीवः सख्यमेष्यति॥ १०॥
पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः।
अङ्गदस्य कुमारस्य वक्ष्याम्यद्य हितं वचः॥ ११॥

गर्जना करते हुए उस सुग्रीव का जो उद्योग और अभिमान प्रकट हो रहा है और उसकी गर्जना में जो उत्तेजना प्रतीत हो रही है, इसका कोई छोटा कारण नहीं हो सकता। यहाँ आये हुए सुग्रीव को मैं बिना किसी सहायक के नहीं समझती। इसने किसी सहायक का सहारा लिया हुआ है, जिसके सहारे पर यह गर्जना कर रहा है। सुग्रीव स्वभाव से निपुण और बुद्धिमान है। वह किसी ऐसे व्यक्ति से मित्रता नहीं करेगा, जिसके पराक्रम की उसने परीक्षा न कर ली हो। हे वीर! मैंने पहले कुमार अंगद के मुख से जो बात सुनी थी, उसे आपके हित के लिये आज बतलाती हूँ।

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः।
प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैरासीन्निवेदिता॥ १२॥
अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ।
इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रथितौ रामलक्ष्मणौ॥ १३॥
सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ।
स ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि॥ १४॥
रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।

यह अंगद कुमार वन के अन्दर गये थे, इसे गुप्तचरों ने जो समाचार दिया था, वह इसने मुझे बताया था। इसने बताया था कि अयोध्या के राजा के दो वीर पुत्र जो युद्ध में जीते नहीं जा सकते, जो इक्ष्वाकुवंशी हैं और राम तथा लक्ष्मण के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे दोनों दुर्जय वीर सुग्रीव का प्रिय करने के लिये यहाँ आ गये हैं। वे ही तुम्हारे भाई के युद्ध में प्रसिद्ध सहायक हैं। राम शत्रु के बल को नष्ट करने वाले और प्रलयकाल में प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी हैं।

तत् क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मना॥ १५॥
दुर्जयेनाप्रमेयेण रामेण रणकर्मसु।
शूर वक्ष्यामि ते किंचिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम्॥ १६॥
श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम्।
यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय॥ १७॥
विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन् यवीयसा।
अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम्॥ १८॥
सुग्रीवेण च सम्प्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः।

इसलिये आपका उन महात्मा राम के साथ जो दुर्जय हैं और रणकर्म में असीम हैं, विरोध ठीक नहीं है। हे शूर! मैं न तो आपकी निन्दा करती हूँ और न आपकी वीरता के विषय में कुछ कहती हूँ, पर आप मेरी बात सुनिये और जो भलाई की बात कहती हूँ, उसे करिये। यह अच्छी बात होगी कि आप सुग्रीव को जल्दी यौवराज्य से युक्त कर दीजिये। हे राजन! आप छोटे भाई से युद्ध मत कीजिये। मैं आपके लिये यही ठीक समझती हूँ कि आप राम से मित्रता कीजिये और सुग्रीव से वैर दूर भगा कर प्रेम कीजिये।

लालनीयो हि ते भ्राता यवीयानेष वानरः॥ १९॥
तत्र वा सन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते।
नहि तेन समं बन्धुं भुवि पश्यामि कंचन॥ २०॥
दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम्।
वैरमेतत् समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु॥ २१॥
सुग्रीवो विपुलग्रीवो महाबन्धुर्मतस्तव।
भ्रातृसौहृदमालम्ब्य नान्या गतिरिहास्ति ते॥ २२॥
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हिताम्।
याच्यमानः प्रियत्वेन साधु वाक्यं कुरुष्व मे॥ २३ ॥

ये आपके छोटे भाई सुग्रीव आपके द्वारा लाड़ प्यार के योग्य हैं, वे यहाँ रहें या ऋष्यमूक पर्वत पर रहें, पर आपके भाई ही हैं। संसार में उन जैसा आपका दूसरा बन्धु और कोई नहीं है। उसे दान मान आदि सत्कार से अपना मित्र बनाइये, जिससे वे वैर को छोड़ कर आपके पास रह सकें। मेरे विचार से सुन्दर गर्दन वाले आपके भाई सुग्रीव आपके महान बन्धु हैं, इसलिये आप भाई के प्रति प्रेम का सहारा लीजिये। और कोई आपके लिये सहारा नहीं है। यदि आप मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हैं, यदि आप मुझे अपना हितैषी समझते हैं, तो मैं आपकी भलाई के लिये जो आपसे प्रार्थना कर रही हूँ उसके अनुसार कार्य कीजिये।

चौदहवाँ सर्ग

बाली का तारा को डाँट कर लौटाना और सुग्रीव से जूझना। तथा श्रीराम के बाण से घायल हो कर गिरना।

तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम्।
वाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत्।। १।।
गर्जतोऽस्य सुसंरब्धं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः।
मर्षयिष्यामि केनापि कारणेन वरानने।। २।।
अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम्।
धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते।। ३।।
सोढुं न च समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे।
सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जितम्।। ४।।

चन्द्रमा के समान मुखवाली उस तारा को ऐसा कहते हुए देख कर बाली ने धमकाया और बोला कि हे सुन्दरी! क्रोध में भर कर गर्जते हुए अपने भाई को जो विशेष रूप से मेरा शत्रु है, मैं किस कारण से सहन करूँगा। जो कभी युद्ध में पराजित नहीं हुए, जो कभी युद्ध में पीठ दिखा कर वापिस नहीं लौटे, हे भीरु! उनके लिये शत्रु की ललकार को सहना मृत्यु से भी बढ़ कर होता है। मैं इस छोटी गर्दन वाले सुग्रीव की जो मुझ से युद्ध करना चाहता है, क्रोध से भरी ललकार को सहन नहीं कर सकता।

निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि।
सौहृदं दर्शितं तावन्मयि भक्तिस्त्वया कृता।। ५।।
प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि सम्भ्रमम्।
दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते।। ६।।
अहं ह्याजिस्थितस्यास्य करिष्यामि यदीप्सितम्।
वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्च पीडितः प्रतियास्यति।। ७।।
न मे गर्वितमायस्तं सहिष्यति दुरात्मवान्।

तुम स्त्रियों के साथ वापिस लौट जाओ, क्यों बार-बार मेरे पीछे आ रही हो। तुमने मेरे प्रति अपना सौहार्द और भक्ति दिखा दी है। तुम अपनी घबराहट छोड़ो। मैं सुग्रीव का सामना करूँगा। मैं केवल इसका अभिमान दूर करूँगा, इसे जान से नहीं मारूँगा। यह जो मेरे साथ युद्ध के लिये खड़ा है, मैं इसकी इच्छा पूरी करूँगा। यह वृक्षों की शाखाओं और घूँसों के प्रहार से पीड़ित हो कर वापिस चला जायेगा। यह दुष्ट मेरे युद्ध विषयक गर्व तथा अभ्यास को सहन नहीं कर सकेगा।

शापितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जनेन च।। ८।।
अलं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे।
तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी।। ९।।
चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम्।
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी।। १०।।
अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता।
प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम्।। ११।।
नगर्या निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन्।

मैं तुझे अपने प्राणों की सौगन्ध दिला कर कहता हूँ तुम इन लोगों के साथ लौट जाओ। मैं इस भाई को युद्ध में जीत कर लौट आऊँगा। तब उस प्रिय वादिनी तथा उदार हृदय तारा ने उसे अपने हृदय से लगा कर, धीमे-धीमे रोते हुए उसकी प्रदक्षिणा की और फिर वेद मंत्रों को जानने वाली उसने उसका स्वस्तिवाचन किया और शोक से मोहित सी हो कर स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में चली गयी। स्त्रियों के साथ तारा के अपने घर में चले जाने पर, वह क्रोध में भरा हुआ, और महान् सर्प के समान साँस लेता हुआ नगर से बाहर निकला।

स निःश्वस्य महारोषो वाली परमवेगवान्।। १२।।
सर्वतश्चारयन् दृष्टिं शत्रुदर्शनकाङ्क्षया।
स ददर्श ततः श्रीमान् सुग्रीवं हेमपिङ्गलम्।। १३।।
सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम्।
तं स दृष्ट्वा महाबाहुः सुग्रीवं पर्यवस्थितम्।। १४।।
गाढं परिदधे वासो वाली परमकोपनः।
स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान्।। १५।।
सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः।

अत्यन्त क्रोध से युक्त और अत्यन्त वेगवान् बाली शत्रु को देखने की इच्छा से सब तरफ अपनी निगाह दौड़ाने लगा। तब उस श्रीमान बाली ने सुवर्ण के समान रंग वाले सुग्रीव को, अच्छी तरह से लँगोट बाँधे हुए और अग्नि के समान जगमगाते हुए देखा। महान भुजाओं वाले बाली ने सुग्रीव को खड़ा हुआ देख कर अत्यन्त क्रोध में भर कर अपने वस्त्रों को कस कर बाँधा। लँगोट को कसे हुए, मुट्ठी को बाँध कर वह तेजस्वी युद्ध के लिये तैयार हो कर सुग्रीव की तरफ ही गया।

वस्त्रों

श्लिष्टं मुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः॥ १६॥
सुग्रीवोऽपि समुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम्।
तं वाली क्रोधताम्राक्षः सुग्रीवं रणकोविदम्॥ १७॥
आपतन्तं महावेगमिदं वचनमब्रवीत्।
एष मुष्टिर्महान् बद्धो गाढः सुनियताङ्गुलिः॥ १८॥
मया वेगविमुक्तस्ते प्राणानादाय यास्यति।
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः क्रुद्धो वालिनमब्रवीत्॥ १९॥
तव चैष हरन् प्राणान् मुष्टिः पततु मूर्धनि।

अपनी बँधी हुई मुट्ठी को तान कर सुग्रीव भी क्रोध में भरे हुए, सुवर्ण की माला पहने हुए बाली की तरफ आया। तब क्रोध से लाल आँखें किये बाली युद्ध विद्या में कुशल और बड़े वेग से आक्रमण करते हुए सुग्रीव से यह बोला कि यह मेरा मुक्का बहुत दृढ़ता से बाँधा हुआ है। इसमें सारी उंगलियाँ निश्चित स्थान पर सटी हुई हैं। यह मेरे द्वारा तेजी से मारे जाने पर तेरे प्राणों को ले कर जायेगा। ऐसा कहे जाने पर सुग्रीव क्रोध में भर कर बाली से बोला कि मेरा भी यह मुक्का तेरे सिर पर गिर कर तेरे प्राणों को हर ले।

ताडितस्तेन तं क्रुद्धः समभिक्रम्य वेगतः॥ २०॥
अभवच्छोणितोद्गारी सापीड इव पर्वतः।
सुग्रीवेण तु निःशङ्कं सालमुत्पाट्य तेजसा॥ २१॥
गात्रेष्वभिहतो वाली वज्रेणेव महागिरिः।
स तु वृक्षेण निर्भग्नः सालताडनविह्वलः॥ २२॥
गुरुभारभराक्रान्ता नौः ससार्थेव सागरे।
तौ भीमबलविक्रान्तौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे॥ २३॥

तब बाली ने वेगपूर्वक आक्रमण करके उस पर प्रहार किया, उससे वह क्रोध में भरा हुआ सुग्रीव झरनों से युक्त पर्वत की तरह खून की उलटी करने लगा। तब सुग्रीव ने निश्शंक हो कर बल पूर्वक एक साल वृक्ष को उखाड़ कर बाली के शरीर पर ऐसे प्रहार किया जैसे किसी महान पर्वत पर विद्युत् का प्रहार हुआ हो। उस वृक्ष की चोट से बाली घायल हो गया। वह साल के आघात से ऐसे काँपने लगा जैसे सागर में व्यापारियों से भरी हुई नाव अधिक भार के कारण डगमगाने लगती है। वे दोनों भयानक पराक्रम वाले थे और लड़ते हुए आकाश में सूर्य चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहे थे।

परस्परममित्रघ्नौ छिद्रान्वेषणतत्परौ।
मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः॥ २४॥
तौ शोणितात्क्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ।
मेघाविव महाशब्दैस्तर्जमानौ परस्परम्॥ २५॥
हीयमानमथापश्यत् सुग्रीवं वानरेश्वरम्।
प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः॥ २६॥

शत्रु को नष्ट करने वाले वे दोनों परस्पर एक दूसरे की कमजोरी को देखने में लगे हुए थे और बार-बार घूँसों, घुटनों, पैरों तथा हाथों से युद्ध कर रहे थे। वे दोनों वनचारी वानर युद्ध करते हुए खून से लथपथ हो गये थे। दो बादलों के समान वे महान गर्जना के साथ एक दूसरे को डाँट रहे थे। तब राम ने वानरराज सुग्रीव को कमजोर पड़ते हुए देखा, वह बराबर चारों तरफ देख रहे थे।

ततो धनुषि संधाय शरमाशीविषोपमम्।
पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः॥ २७॥
तस्य ज्यातलघोषेण त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः।
प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैव युगान्त इव मोहिताः॥ २८॥
मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसंनिभः।
राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः॥ २९॥

तब राम ने जहरीले साँप के समान बाण को धनुष पर रख कर उस धनुष को ऐसे खींचा, जैसे मृत्यु ने कालचक्र को उठा लिया हो। उसकी प्रत्यंचा की टंकार से पक्षी और मृग प्रलयकाल के समान मोहित और भयभीत हो कर भागने लगे। वह विद्युत् के समान गड़गड़ाता हुआ प्रज्वलित उल्का के समान प्रकाशित होता हुआ राम के द्वारा छोड़ा हुआ महान बाण बाली की छाती पर गिरा।

पन्द्रहवाँ सर्ग

बाली का श्रीरामचन्द्र जी को फटकारना

ततः शरेणाभिहतो रामेण रणकर्कशः
पपात सहसा वाली निकृत्त इव पादपः॥ १॥
तं तथा पतितं संख्ये गतार्चिषमिवानलम्।
व्यूढोरस्कं महाबाहुं दीप्तास्यं हरिलोचनम्॥ २॥
बहुमान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव।
उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ ३॥

तं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम्।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम्।। ४।।

तब युद्ध में कठोर, वह बाली, राम के बाण से मारा जा कर कटे हुए वृक्ष की भाँति अचानक भूमि पर गिर पड़ा। भूमि पर गिरा हुआ वह चौड़ी छाती, विशाल भुजा, प्रज्वलित मुख और भूरी आँखों वाला युद्धस्थल में पड़ा हुआ बाली ज्वाला रहित अग्नि के समान प्रतीत हो रहा था। वे महातेजस्वी भाई राम लक्ष्मण, उस वीर का बहुत सम्मान करते हुए तब उसके पास गये। वह उस समय धीरे-धीरे उनकी तरफ देख रहा था। उन महाबली राम और लक्ष्मण को देख कर बाली धैर्य और विनय से युक्त कठोर वाणी में बोला कि –

स भूमावल्पतेजोऽसुर्हितो नष्टचेतनः।
अर्थसंहितया वाचा गर्वितं रणगर्वितम्।। ५।।
त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रथितः प्रियदर्शनः।
पराङ्मुख वधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः।। ६।।
यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः।

भूमि पर पड़े हुए उसका तेज अब थोड़ा ही रह गया था। उसकी चेतना नष्ट होती जा रही थी और प्राण निकलने वाले थे। वह युद्ध में गर्व को प्रकट करने वाले गर्वित राम से अर्थ भरी वाणी में बोला कि तुम एक राजा के प्रसिद्ध पुत्र हो और प्रिय दर्शन हो, पर अपने प्रति युद्ध से पराङ्मुख का वध करके आपने कौन सा अच्छा कार्य किया है। मैं दूसरे से युद्ध में लगा हुआ था, पर तुम्हारे कारण मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ।

न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि।। ७।।
इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव।
स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्।। ८।।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम्।
सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम्।। ९।।
नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम्।

आपको देखने से पहले मेरा यह विचार था कि आप दूसरे के साथ युद्ध करने में लगे हुए मुझ असावधान पर बाण नहीं चलायेंगे, पर आपने अपनी आत्मा की हत्या कर दी है, आप धर्म की ध्वजा उठाये हुए अधार्मिक हैं, आप तिनकों से ढके हुए कूएँ के समान छिप कर पाप करने वाले हैं। छिपी हुई आग के समान आप सज्जनों का वेष धारण किये हुए पापी हैं। मैं आपको नहीं जानता था कि आपने लोगों को धोखा देने के लिये धर्म का सहारा लिया हुआ है।

त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रतीतः प्रियदर्शनः।। १०।।
लिङ्गमप्यस्ति ते राजन् दृश्यते धर्मसंहितम्।
कः क्षत्रियकुले जातः श्रुतवान् नष्टसंशयः।। ११।।
धर्मलिङ्गप्रतिच्छन्नः क्रूरं कर्म समाचरेत्।
त्वं राघवकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः।। १२।।
अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसे।

आप राजा के पुत्र और देखने में प्रिय दर्शन हैं। आपके ऊपरी चिह्न भी धर्म से युक्त दिखाई देते हैं। पर क्षत्रिय कुल में जन्म लेने वाला, शास्त्रों का ज्ञाता, संशय से रहित, धर्म के चिह्न से ढका हुआ कौन व्यक्ति ऐसा क्रूरतापूर्ण कर्म कर सकता है? आप रघुवंश में उत्पन्न हुए हैं तथा धर्म का पालन करने वाले ऐसे प्रसिद्ध हैं। पर आप वास्तव में अभव्य होते हुए भव्यरूप धारण कर क्यों दौड़ते फिरते हैं।

तारया वाक्यमुक्तोऽहं सत्यं सर्वज्ञया हितम्।
तदतिक्रम्य मोहेन कालस्य वशमागतः।। १३।।
त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुंधरा।। १४।।
प्रमदा शीलसम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा।
शठो नैकृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः।। १५।।
कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना।
छिन्नचारित्र्यकक्ष्येण सतां धर्मातिवर्तिना।। १६।।
त्यक्तधर्माङ्कुशेनाहं निहतो रामहस्तिना।

उस सर्वज्ञ तारा ने मुझे भलाई की बात कही थी, पर मैं मोह के कारण उसको न मान कर मृत्यु के वश में आ गया। हे काकुत्स्थ! तुम्हारे राजा होने पर यह पृथ्वी वैसे ही सुरक्षित नहीं रहेगी जैसे पति के पापात्मा होने पर उसकी शील सम्पन्न स्त्री सुरक्षित नहीं रह पाती है। आप शठ, अपकारी, क्षुद्र और झूठे ही विनीत मन वाले हैं। महात्मा दशरथ ने आप जैसे पापी को कैसे उत्पन्न कर दिया, जिसने अपना चरित्र रूपी रस्सा तोड़ दिया, सत्पुरुषों के धर्म का उल्लंघन कर दिया, धर्म रूपी अंकुश का भी त्याग कर दिया उस आप राम रूपी हाथी ने मुझे मार दिया।

अशुभं चाप्ययुक्तं च सतां चैव विगर्हितम्।। १७।।
वक्ष्यसे चेदृशं कृत्वा सद्भिः सह समागतः।
त्वयादृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः।। १८।।

प्रसुप्तः पन्नगेनैव नरः पापवशं गतः।
युक्तं यत्प्राप्नुयाद् राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि।। १९।।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे।
काममेवंविधो लोकः कालेन विनियुज्यते।
क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम्।। २०।।

इस प्रकार का अशुभ तथा अयुक्त और सज्जनों द्वारा निन्दित कार्य करके आप श्रेष्ठ पुरुषों के सम्मुख क्या कहेंगे? जैसे किसी सोये हुए को साँप डँस ले, उसी प्रकार मुझ दुर्जय वीर को आपने युद्ध भूमि में छिप कर मारा है और पाप किया है। मेरे दिवंगत हो जाने पर सुग्रीव को राज्य मिलेगा, यह ठीक है। पर गलत यही है कि आपने मुझे रणभूमि में अधर्म पूर्वक मारा है। संसार में सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं, इसलिये मैं भी मर रहा हूँ पर मेरी इस प्रकार की मृत्यु का कोई उत्तर तो आप बताओ।

इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः
शराभिघाताद् व्यथितो महात्मा।
समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशं
तूष्णीं बभौ वानरराजसूनुः।। २१।।

ऐसा कह कर बाण के आघात के पीड़ित, सूखते हुए मुख वाला, वानरों के राजा का पुत्र, महात्मा बाली, सूर्य के समान तेजस्वी राम की तरफ देखता हुआ चुप हो गया।

सोलहवाँ सर्ग

श्रीराम का बाली को दण्ड का औचित्य बताना, बाली का निरुत्तर हो कर अपने अपराध के लिये क्षमा माँगते हुए अंगद की रक्षा के लिये प्रार्थना करना। श्रीराम का उसे आश्वासन देना।

इत्युक्तः प्रश्रितं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम्।
परुषं वालिना रामो निहतेन विचेतसा।। १।।
तं निष्प्रभमिवादित्यं मुक्ततोयमिवाम्बुदम्।
उक्तवाक्यं हरिश्रेष्ठमुपशान्तमिवानलम्।। २।।
धर्मार्थगुणसम्पन्नं हरीश्वरमनुत्तमम्।
अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद् वालिनमब्रवीत्।। ३।।

जिसकी चेतना विनष्ट हो रही थी, उस बाली के द्वारा इस प्रकार विनय युक्त, धर्मार्थ सहित हितकारी और कठोर वाक्य कहे जाने पर उसके द्वारा तिरस्कृत राम ने बात कह कर अग्नि के समान शान्त हुए, प्रभा रहित सूर्य के समान, जल की वर्षा कर बादल के समान धर्मार्थादि गुणों से युक्त वानरों में श्रेष्ठ और उत्तम वानरों के राजा बाली से इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम्।
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे।। ४।।
इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि।। ५।।
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः।
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः।। ६।।

तुम धर्म, अर्थ, काम तथा लौकिक व्यवहार को न जान कर क्यों बच्चों की तरह मेरी यहाँ निन्दा करते हो। यह पर्वत, वन और बागों सहित भूमि इक्ष्वाकुओं की है। वे पशु पक्षि तथा मनुष्यों को भी दण्ड देने तथा अनुग्रह करने के अधिकारी हैं। वे धर्मात्मा भरत जो सत्यवादी और कोमल स्वभाव के, धर्म, अर्थ तथा काम के तत्व को जानने वाले हैं वे ही दुष्टों को दण्ड देने और सज्जनों पर अनुग्रह करने में लगे रहते हैं।

तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसंतानमिच्छवः।। ७।।
तस्मिन् नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले।
पालयत्यखिलां पृथ्वीं कश्चरेद् धर्मविप्रियम्।। ८।।
ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः।
भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृह्णीमो यथाविधि।। ९।।

धर्म पालन के लिये उसने हमें तथा दूसरे राजाओं को आदेश दे रखा है। इसलिये हम धर्म के विस्तार के लिये पृथिवी पर विचरण करते रहते हैं। राजाओं में श्रेष्ठ और धर्म प्रेमी भरत के इस समग्र पृथिवी का पालन करते हुए धर्म के विपरीत आचरण कौन कर सकता है? हम भरत की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने परम धर्म के पालन में स्थित हो कर अपने धर्म मार्ग से भटके हुए व्यक्ति को विधि के अनुसार दण्ड देते हैं।

त्वं तु संक्लिष्टधर्मश्च कर्मणा च विगर्हितः।
कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि।। १०।।
ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः।। ११।।
यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः।
पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम्।। १२।।

तुमने धर्म का उल्लंघन किया है, तुम्हारे कर्म निन्दित रहे हैं, तुमने जीवन में काम को ही प्रधानता दी है और तुम राजाओं के मार्ग पर नहीं चले। बड़ा भाई, पिता और जो विद्या को देता है, धर्म के मार्ग पर चलने वालों को इन तीनों को अपने पिता के समान समझना चाहिये। इसी प्रकार छोटा भाई, पुत्र और गुणवान शिष्य इन्हें धर्म के अनुसार पुत्र ही समझना चाहिये।

तदेतत् कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।। १३।।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्।
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।। १४।।
रुमायां वर्तसे कामात् स्नुषायां पापकर्मकृत्।
तद् व्यतीतस्य ते धर्मात् कामवृत्तस्य वानर।। १५।।
भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन् दण्डोऽयं प्रतिपादितः।

तुम्हें केवल क्रोध के कारण मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। मैंने तुम्हें क्यों मारा उस कारण को समझो। तुम सदा से चले अपने धर्म का त्याग कर भाई की पत्नी से सहवास करते हो। तुम इस महात्मा सुग्रीव के जीवित रहते हुए ही उसकी पत्नी रुमा का जो तुम्हारी पुत्रवधु के समान है, कामना पूर्वक उपभोग करते हो, और इस प्रकार पाप कर्म करते हो। हे वानर! इसलिये तुम्हें धर्म के भ्रष्ट होने, कामाचरण में आसक्त होने और भाई की पत्नी का उपभोग करने के लिये यह दण्ड दिया गया है।

नहि लोकविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः।। १६।।
दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप।
न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः।। १७।।
औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः।
प्रचरेत नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः।। १८।।

हे वानर राज! जो लोक मर्यादा के विरुद्ध आचरण करे और लोकाचार का उल्लंघन करे उसे रोकने के लिये दण्ड देने के अतिरिक्त मैं कोई और उपाय नहीं देखता। मैं क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हो कर तुम्हारे इस पाप को सहन नहीं कर सकता। जो पुरुष अपनी सगी बहिन, या भाई की पत्नी के साथ कामयुक्त आचरण करता है, उसका दण्ड वध ही है।

भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः।
त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम्।। १९।।
गुरुधर्मव्यतिक्रान्तं प्राज्ञो धर्मेण पालयन्।
भरतः कामयुक्तानां निग्रहे पर्यवस्थितः।। २०।।
वयं तु भरतादेशावधिं कृत्वा हरीश्वर।
त्वद्विधान् भिन्नमर्यादान् निग्रहीतुं व्यवस्थिताः।। २१।।

भरत हमारा राजा है। हम तो उनके आदेश का पालन करने वाले हैं। तुमने धर्म का उल्लंघन किया है, इसलिये तुम्हारी उपेक्षा कैसे की जा सकती थी। विद्वान भरत महान धर्म से भ्रष्ट लोगों को धर्म के अनुसार नियमित करने और कामी लोगों के निग्रह करने में तत्पर हैं। हे वानरों के राजा! हम तो भरत के आदेश को प्रमाण मान कर तुम जैसे धर्म का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देने के लिये उद्यत रहते हैं।

सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा।
दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयस्करः स मे।। २२।।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसंनिधौ।
प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम्।। २३।।
तदेभिः कारणैः सर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः।
शासनं तव यद् युक्तं तद् भवाननुमन्यताम्।। २४।।
सर्वथा धर्म इत्येव द्रष्टव्यस्तव निग्रहः।
वयस्यस्योपकर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता।। २५।।

सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता है, वह मेरे लिये लक्ष्मण के समान है। वह अपनी स्त्री और राज्य की प्राप्ति के लिये तथा मेरी भलाई के लिये कटिबद्ध है। मैंने इसके लिये दूसरे वानरों के सामने प्रतिज्ञा भी की हुई है। मेरे जैसा व्यक्ति की हुई प्रतिज्ञा की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसलिये इन सब धर्म पर आधारित महान कारणों के कारण, तुम्हें जो उचित दण्ड देना पड़ा, तुम उसका अनुमोदन करो। तुम्हें दिया गया दण्ड पूरी तरह से धर्म के अनुसार ही है। क्योंकि धर्म का आश्रय लेने वाले के लिये मित्र का उपकार करना आवश्यक है।

शक्यं त्वयापि तत्कार्यं धर्ममेवानुवर्तता।
श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।। २६।।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया।
राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।। २७।।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।
शासनाद् वापि मोक्षाद् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।। २८।।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्।

यदि तुम धर्म का अनुसरण करते और तुम्हारे सामने इस प्रकार का कार्य उपस्थित होता तो तुम भी यही कार्य करते जो मैंने किया है। मनु ने चरित्र के विषय में दो श्लोक कहे हैं, जिनका धर्म कुशल व्यक्ति पालन करते हैं और मैंने भी उन्हीं का अनुकरण किया हैं ये श्लोक ये हैं कि – जो लोग पाप करते हैं वे जब राजा से दण्ड को प्राप्त कर लेते हैं तब वे भी दूसरे पुण्य कर्ताओं के समान उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। राजा चाहे अपराधी को दण्ड दे या छोड़ दे, वह अपराधी उसके पश्चात् उस पाप से मुक्त हो जाता है। जो राजा पापी को उचित दण्ड नहीं देता, वह उसके पाप का फल भोगता है।

आर्येण मम मान्धात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम्।। २९।।
श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया।
तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः।। ३०।।
वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः।
एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम्।। ३१।।
न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः।
प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः।। ३२।।
यत् त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत् तथैव न संशयः।

मेरे पूर्वज मान्धाता ने जैसा पाप तुमने किया वैसा ही पाप एक श्रमण के द्वारा करने पर उसे घोर दण्ड दिया था। राम के द्वारा ऐसा कहने पर बाली को तत्व का निश्चय हो गया। उसने राम के प्रति दोष भावना को छोड़ दिया और अपने प्रति उसे मन में बड़ी व्यथा हुई। तब वह वानरों का राजा हाथ जोड़ कर राम से बोला कि हे नरश्रेष्ठ! जैसा आपने कहा है, वैसा ही है, इसमें कोई संशय नहीं है।

बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तुवाली सार्तरवः शनैः।। ३३।।
उवाच रामं सम्प्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः।
न चात्मानमहं शोचे न तारां नापि बान्धवान्।। ३४।।
यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम्।
स ममादर्शनाद् दीनो बाल्यात् प्रभृति लालितः।। ३५।।
तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति।
बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः।। ३६।।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः।

कीचड़ में फँसे हुए हाथी के समान पीड़ित ध्वनि से, और आँसुओं से भरे हुए गले से बाली राम की तरफ देखता हुआ धीरे-धीरे बोला कि मैं अपने लिये, तारा के लिये तथा अन्य बन्धुओं के लिये भी उतना शोक नहीं करता जितना गुणों में श्रेष्ठ और सोने का अंगद धारण करने वाले पुत्र अंगद के लिये शोक करता हूँ। मैंने उसे बचपन से बड़े लाड़ प्यार से पाला है, वह मुझे न देखने के कारण जिसका जल पी लिया गया हो उस तालाब की तरह सूख जायेगा। हे राम! वह अभी बालक है, उसकी बुद्धि परिपक्व नहीं है और मेरा प्यारा इकलौता पुत्र है। आप उस महाबली तारा के पुत्र की रक्षा करें।

सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम्।। ३७।।
त्वं हि गोप्ता च शास्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः।
या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या।। ३८।।
सुग्रीवे चाङ्गदे राजंस्तां चिन्तयितुमर्हसि।
मद्दोषकृतदोषां तां यथा तारां तपस्विनीम्।। ३९।।
सुग्रीवो नावमन्येत तथावस्थातुमर्हसि।

आप सुग्रीव और अंगद के प्रति सद्भाव रखें। आप ही इनके संरक्षक और कर्तव्य तथा अकर्तव्य के विषय में इन पर शासन करने वाले हैं। हे राजन्! आपका जो भाव भरत और लक्ष्मण में है वही भाव सुग्रीव और अंगद में होना चाहिये। मेरे किये दोष के कारण जिस प्रकार सुग्रीव उस तपस्विनी तारा का तिरस्कार न करे, आप वैसी व्यवस्था करें।

इत्युक्त्वा वानरो रामं विरराम हरीश्वरः।। ४०।।
स तमाश्वासयद् रामो वालिनं व्यक्तदर्शनम्।
साधुसम्मतया वाचा धर्मतत्त्वार्थयुक्तया।। ४१।।
न संतापस्त्वया कार्य एतदर्थं प्लवङ्गम।
न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम।। ४२।।
वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः।
यथा त्वय्यङ्गदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर।
तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः।। ४३।।

वह वानरों का राजा बाली राम से यह कह कर चुप हो गया। तब राम ने उस बाली को जिसे ज्ञान का दर्शन हो गया था, धर्म के तत्वार्थ से युक्त सज्जनों द्वारा समर्थित वाणी में उसे आश्वासन देते हुए कहा कि हे वानर! तुम्हें इसके लिये सन्ताप नहीं करना चाहिये। हे वानर श्रेष्ठ! तुम हमारे लिये या अपने लिये कोई चिन्ता मत करो। हम आपकी अपेक्षा विशेष रूप से धर्म के पालन के लिये निश्चय किये हुए हैं। हे वानरों के राजा! अंगद जैसा तुम्हारे जीवित रहने पर रहता था, वैसे ही वह सुग्रीव और मेरे पास रहेगा, इसमें कोई संशय नहीं है।

सत्रहवाँ सर्ग

अंगद सहित तारा का भागे हुए वानरों से बात करके बाली के समीप आना और उनकी दुर्दशा देख कर रोना।

स वानरमहाराजः शयानः शरपीडितः।
अश्मभिः परिभिन्नाङ्गः पादपैराहतो भृशम्।। १।।
रामबाणेन चाक्रान्तो जीवितान्ते मुमोह सः।
तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे।। २।।
हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव वालिनम्।
सा सपुत्राप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम्।। ३।।
निष्पपात भृशं तस्मादुद्विग्ना गिरिकन्दरात्।

वानरों का वह राजा बाली बाण की चोट से भूमि पर पड़ा था। पत्थरों की मार से उसके अंग टूट गये थे। वृक्षों के आघात से वह अत्यधिक घायल हो गया था। राम के बाण से पीड़ित जीवन के अन्तकाल में पहुँचा हुआ वह मूर्च्छित हो गया। उसकी पत्नी तारा ने जब सुना कि राम के द्वारा चलाये हुए बाण से वानर श्रेष्ठ बाली मारा गया, तब इस अप्रिय और अत्यन्त दुखदायी समाचार को सुन कर वह बहुत उद्विग्न हो कर उस पर्वत की घाटी किष्किंधा से बाहर निकली।

ये त्वङ्गदपरीवारा वानरा हि महाबलाः।। ४।।
ते सकार्मुकमालोक्य रामं त्रस्ताः प्रदुद्रुवुः।
सा ददर्श ततस्त्रस्तान् हरीनापततो द्रुतम्।। ५।।
यूथादेव परिभ्रष्टान् मृगान् निहतयूथपान्।
तानुवाच समासाद्य दुःखितान् दुःखिता सती।। ६।।
वानरा राजसिंहस्य यस्य यूयं पुरःसराः।
तं विहाय सुवित्रस्ताः कस्माद् द्रवत दुर्गताः।। ७।।

उस समय अंगद के चारों तरफ चलने वाले महाबली वानर थे। वे धनुष बाण सहित राम को देख कर डर कर भागने लगे। उस तारा ने जब उन डरे हुए वानरों तेजी से ऐसे भागते हुए देखा जैसे यूथपति के मारे जाने पर अपने यूथ से अलग हो कर मृग भागते हैं, तब उन दुखी वानरों के पास पहुँच कर वह दुखी तारा उनसे बोली हे वानरो! जिस राजसिंह बाली के तुम आगे-आगे चलते थे, अब तुम उसे छोड़ कर डरे हुए और दुर्गति में पड़े हुए क्यों भागे जा रहे हो?

राज्यहेतोः स चेद् भ्राता भ्रात्रा क्रूरेण पातितः।
रामेण प्रहितैर्दूरान्मार्गणैर्दूरपातिभिः।। ८।।
कपिपत्न्या वचः श्रुत्वा कपयः कामरूपिणः।
प्राप्तकालमविश्लिष्टमूचुर्वचनमङ्गनाम् ।। ९।।
जीवपुत्रे निवर्तस्व पुत्रं रक्षस्व चाङ्गदम्।
अन्तको रामरूपेण हत्वा नयति वालिनम्।। १०।।
क्षिप्तान् वृक्षान् समाविध्य विपुलाश्च तथा शिलाः।
वाली वज्रसमैर्बाणैर्वज्रेणेव निपातितः।। ११।।

यदि राज्य के लिये उस निर्दय भाई के द्वारा दूर तक जाने वाले और दूर से राम के द्वारा चलाये हुए बाणों की सहायता से वह भाई गिरा दिया गया है, तो तुम लोग क्यों भागे जा रहे हो? वानर पत्नी के वचनों को सुन कर, वे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानर लोग एक स्वर में उस तारा को यह वचन बोले कि हे देवी तुम्हारा पुत्र जीवित है, वापिस लौट चलो और पुत्र अंगद की रक्षा करो। मृत्यु राम के रूप में बाली का हरण करके ले जा रही है। बाली ने बहुत से वृक्षों को फैंका, बहुत सी शिलाएँ फैंकी, पर वज्र के समान कठोर बाणों से उन सबका भेदन कर दिया गया। उन्हीं के द्वारा उसे ऐसे गिरा दिया गया जैसे विद्युत के प्रहार से गिराया गया हो।

नोटः- इस विषय में विशेष विचार भूमिका – 'रामकथा का वास्तविक स्वरूप' में देखिये।

अभिभूतमिदं सर्वं विद्रुतं वानरं बलम्।
अस्मिन् प्लवगशार्दूले हते शक्रसमप्रभे।। १२।।
रक्ष्यतां नगरी शूरैरङ्गदश्चाभिषिच्यताम्।
पदस्थं वालिनः पुत्रं भजिष्यन्ति प्लवंगमाः।। १३।।
अथवारुचितं स्थानमिह ते रुचिरानने।
आविशन्ति च दुर्गाणि क्षिप्रमद्यैव वानराः।। १४।।
लुब्धेभ्यो विप्रलब्धेभ्यस्तेभ्यो नः सुमहद्भयम्।
अल्पान्तरगतानां तु श्रुत्वा वचनमङ्गना।
आत्मनः प्रतिरूपं सा बभाषे चारुहासिनी।। १५।।

उस इन्द्र के समान वानर श्रेष्ठ के मारे जाने पर यह सारी वानर सेना पराजित हो गयी है और भाग रही है। आप नगरी की रक्षा शूरवीरों के द्वारा करो और अंगद का अभिषेक कर दो। राजगद्दी पर बैठे हुए बाली के पुत्र का सारे वानर अनुसरण करेंगे अथवा हे सुमुखि! तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं है, क्योंकि सुग्रीव के

सहायक वानर लोग यहाँ के दुर्ग अर्थात किलों या सुरक्षित स्थानों में आज ही प्रवेश कर लेंगे। तब उन थोड़ी दूर तक ही आये हुए वानरों के उन वचनों को सुन कर सुन्दर हँसी वाली उस तारा ने अपने अनूकूल ही उन्हें उत्तर दिया।

पुत्रेण मम किं कार्यं राज्येनापि किमात्मना।
कपिसिंहे महाभागे तस्मिन् भर्तरि नश्यति।। १६।।
पादमूलं गमिष्यामि तस्यैवाहं महात्मनः।
योऽसौ रामप्रयुक्तेन शरेण विनिपातितः।। १७।।
एवमुक्त्वा प्रदुद्राव रुदती शोकमूर्च्छिता।
शिरश्चोरश्च बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती।। १८।।

वह बोली कि मुझे पुत्र से क्या और अपने लिये राज्य से भी क्या, जब मेरे वानरों में सिंह महाभाग पति ही चले गये। मैं तो उसी महात्मा के, जिसे राम के छोड़े हुए बाण ने गिरा दिया है, चरणों के समीप जाऊँगी। वह ऐसा कह कर शोक से बेसुध, रोती हुई और दुख से अपने सिर और छाती को पीटती हुई तेजी से दौड़ी।

सा व्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि।
हन्तारं दानवेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम्।। १९।।
महावातसमाविष्टं महामेघौघनिःस्वनम्।
शक्रतुल्यपराक्रान्तं वृष्ट्वेवोपरतं घनम्।। २०।।
नर्दन्तं नर्दतां भीमं शूरं शूरेण पातितम्।
शार्दूलेनामिषस्यार्थे मृगराजमिवाहतम्।। २१।।
अवष्टभ्यावतिष्ठन्तं ददर्श धनुरूर्जितम्।
रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैव तथानुजम्।। २२।।

उसने आगे बढ़ते हुए अपने उस पति को भूमि पर पड़े हुए देखा, जो कि युद्ध में पीठ न दिखाने वाले दानवों को भी मार गिराते थे। वे महान वायु के वेग के समान वेगशाली थे, महान बादलों के समूह के समान गर्जना करते थे, इन्द्र के समान शत्रुओं पर आक्रमण करते थे, पर अब वे वर्षा करके शान्त हुए बादल के समान हो गये थे। वे गर्जना करने वालों में भी भयानक रूप से गर्जना करते थे, ऐसे शूरवीर बाली को दूसरे शूरवीर ने गिरा दिया था। जैसे एक सिंह ने दूसरे सिंह को माँस के लिये मार दिया हो। उसने तेजस्वी धनुष को भूमि पर टेक कर खड़े हुए राम को, उनके छोटे भाई को तथा पति के छोटे भाई को भी देखा।

तानतीत्य समासाद्य भर्तारं निहतं रणे।
समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्रान्ता निपपात ह।। २३।।
सुप्तेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति वादिनी।
रुरोद सा पतिं दृष्ट्वा संवीतं मृत्युदामभिः।। २४।।
तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव।
विषादमगमत् कष्टं दृष्ट्वा चाङ्गदमागतम्।। २५।।

उनको पार कर वह युद्ध भूमि में पड़े हुए अपने पति के पास पहुँची। पति को देख कर वह दुखी तथा व्याकुल हो कर भूमि पर गिर पड़ी। फिर जैसे सोकर उठी हो, वैसे उठ कर हे आर्य पुत्र! ऐसा कहती हुई मृत्यु के बन्धन में बँधे हुए अपने पति देख कर रोने लगी। उसे कुररी के समान करुण क्रन्दन करते हुए देख कर तथा साथ में आए अंगद को देख कर सुग्रीव विषाद में डूब गये। उन्हें बड़ा कष्ट हुआ।

अठारहवाँ सर्ग

तारा का विलाप

रामचापविसृष्टेन शरेणान्तकरेण तम्।
दृष्ट्वा विनिहतं भूमौ तारा ताराधिपानना।। १।।
सा समासाद्य भर्तारं पर्यष्वजत भामिनी।
इषुणाभिहतं दृष्ट्वा वालिनं कुञ्जरोपमम्।। २।।
वानरं पर्वतेन्द्राभं शोकसंतप्तमानसा।
तारा तरुमिवोन्मूलं पर्यदेवयतातुरा।। ३।।

चन्द्रमुखी तारा ने अपने पति को राम के धनुष से छूटे हुए प्राणान्तकारी बाण के द्वारा मारा हुआ और भूमि पर पड़ा हुआ देखा तब वह भामिनी अपने पति के पास पहुँच कर उससे लिपट गयी। पर्वतराज तथा हाथी के समान विशाल बाली को बाण से मारा हुआ और उखड़े हुए वृक्ष के समान पड़ा हुआ देख कर उसका मन शोक से सन्तप्त हो गया और वह अत्यन्त आर्त हो कर विलाप करने लगी।

रणे दारुणविक्रान्त प्रवीर प्लवतां वर।
किमिदानीं पुरोभागामद्य त्वं नाभिभाषसे।। ४।।
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल भजस्व शयनोत्तमम्।
नैवंविधाः शेरते हि भूमौ नृपतिसत्तमाः।। ५।।

अतीव खलु ते कान्ता वसुधा वसुधाधिप।
गतासुरपि तां गात्रैर्मां विहाय विषेवसे।। ६।।

हे युद्ध में भयानक पराक्रम प्रकट करने वाले, महान वीर, हे वानरों में श्रेष्ठ! अब मुझे अपने सामने पा कर भी मुझसे बोलते क्यों नहीं हैं? हे वानर श्रेष्ठ! उठिये, और उत्तम शैया पर लेटिये। श्रेष्ठ राजा लोग इस प्रकार भूमि पर नहीं सोया करते हैं। पृथ्वी के स्वामी! आपको वास्तव में यह भूमि बहुत प्यारी है जो आज निष्प्राण होने पर भी आप मुझे छोड़ कर इसका आलिंगन कर रहे हैं।

यान्यस्माभिस्त्वया सार्धं वनेषु मधुगन्धिषु।
विहृतानि त्वया काले तेषामुपरमः कृतः।। ७।।
निरानन्दा निराशाहं निमग्ना शोकसागरे।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने महायूथपयूथपे।। ८।।
हृदयं सुस्थितं मह्यं दृष्ट्वा निपतितं भुवि।
यन्न शोकाभिसंतप्तं स्फुटतेऽद्य सहस्रधा।। ९।।

हमने आपके साथ जो सुन्दर गन्ध वाले वनों में विहार आदि किये थे, उन सबको आपने इस समय विराम दे दिया है। हे महान यूथपतियों के भी यूथपति! आपके दिवंगत हो जाने पर अब मैं आनन्द से रहित, निराश और शोक सागर में डूब गयी हूँ। वास्तव में मेरा हृदय बड़ा कठोर है, जो आपको भूमि पर गिरा हुआ देख कर, शोक से सन्तप्त हो कर हजारों हिस्सों में टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता।

सुग्रीवस्य त्वया भार्या हृता स च विवासितः।
यत् तत् तस्य त्वया व्युष्टिः प्राप्तेयं प्लवगाधिप।। १०।।
निःश्रेयसपरा मोहात् त्वया चाहं विगर्हिता।
यैषाब्रुवं हितं वाक्यं वानरेन्द्र हितैषिणी।। ११।।
कालो निःसंशयो नूनं जीवितान्तकरस्तव।
बलाद् येनावपन्नोऽसि सुग्रीवस्यावशो वशम्।। १२।।

आपने सुग्रीव की पत्नी का हरण किया और उसे घर से निकाल दिया। हे वानरों के राजा! उसी का यह फल आज प्राप्त हुआ है। मैं आपके कल्याण में लगी रहती थी। आपको भलाई की बातें कहती थी, आपका हित चाहती थी, पर आपने मोह से उसे नहीं माना और मेरी निन्दा की। वास्तव में मृत्यु ने ही आपके प्राणों को हरा है, जो किसी के भी वश में न होने वाले आपको बल पूर्वक सुग्रीव के वश में कर दिया।

अस्थाने वालिनं हत्वा युध्यमानं परेण च।
न संतप्यति काकुत्स्थः कृत्वा कर्मसुगर्हितम्।। १३।।
वैधव्यं शोकसंतापं कृपणाकृपणा सती।
अदुःखोपचिता पूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत्।। १४।।
लालितश्चाङ्गदो वीरः सुकुमारः सुखोचितः।
वत्स्यते कामवस्थां मे पितृव्ये क्रोधमूर्च्छिते।। १५।।

ये ककुत्स्थ वंश में उत्पन्न हुए राम दूसरे के साथ युद्ध करते हुए, बाली को अनुचित प्रकार से मार कर और ऐसे अत्यन्त निन्दित कर्म को करके भी दुखी नहीं हो रहे हैं। मैंने पहले कभी दुख को प्राप्त नहीं किया, न कभी दीनता को अनुभव किया, पर अब शोक के सन्ताप से भरे हुए इस विधवापन को मैं दीनता के साथ और अनाथों की तरह व्यतीत करूँगी। आपने इस सुकुमार अंगद को बड़े लाड़ से पाला था। यह प्यार में ही पला हुआ है। पर अब क्रोध से मूर्च्छित अपने चाचा के राज्य में यह कैसे निर्वाह करेगा।

कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम्।
दुर्लभं दर्शनं तस्य तव वत्स भविष्यति।। १६।।
समाश्वासय पुत्रं त्वं संदेशं संदिशस्व मे।
मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि।। १७।।
सकामो भव सुग्रीव रुमां त्वं प्रतिपत्स्यसे।
भुङ्क्ष्व राज्यमनुद्विग्नः शस्तो भ्राता रिपुस्तव।। १८।।

हे पुत्र! तुम अपने धर्मप्रेमी पिता को अच्छी तरह से देख लो। हे बेटा! फिर तुम्हें इनका दर्शन दुर्लभ हो जायेगा। हे नाथ! आप अपने पुत्र को धीरज बँधाइये। मुझे अपना अन्तिम संदेश दीजिये। इसके सिर को सूँघिये। आप दूसरे देश को जा रहे हैं। हे सुग्रीव! तेरी इच्छा पूरी हुई, अब तू रुमा को प्राप्त कर लेगा। अब तू सुख पूर्वक राज्य का भोग कर। तुम्हारे शत्रु तुम्हारे भाई मारे गये।

किं मामेवं प्रलपतीं प्रियां त्वं नाभिभाषसे।
इमाः पश्य वरा बह्वीर्भार्यास्ते वानरेश्वर।। १९।।
तस्या विलपितं श्रुत्वा वानर्यः सर्वतश्च ताः।
परिगृह्याङ्गदं दीना दुःखार्ताः प्रतिचुक्रुशुः।। २०।।

हे वानरों के राजा! मैं इस प्रकार विलाप कर रही हूँ, फिर भी आप मुझ से क्यों नहीं बोलते। ये देखो आपकी दूसरी बहुत प्यारी सुन्दरी पत्नियाँ उपस्थित हैं। तारा के उस विलाप को सुन कर वे सारी वानर पत्नियाँ दीन और दुख से व्याकुल हो कर, अंगद को पकड़ कर जोर-जोर से विलाप करने लगीं।

किमङ्गदं साङ्गदवीरबाहो
विहाय यातोऽसि चिरं प्रवासम्।

न युक्तमेवं गुणसंनिकृष्टं
विहाय पुत्रं प्रियचारुवेषम्।। २१।।

हे बाजूबन्द से विभूषित वीर भुजाओं वाले! आप अपने पुत्र अंगद को छोड़ कर चिर प्रवास को क्यों जा रहे हैं? इस प्रकार गुणों में समान, प्रिय और सुन्दर वेष वाले पुत्र को छोड़ कर आपका जाना उचित नहीं है।

यद्यप्रियं किंचिदसम्प्रधार्य
कृतं मया स्यात् तव दीर्घबाहो।
क्षमस्व मे तद्धरिवंशनाथ
व्रजामि मूर्ध्ना तव वीर पादौ।। २२।।

हे लम्बी भुजाओं वाले! जो मैंने कभी असावधानी से आपका कुछ अप्रिय किया हो, उसे हे वानरों के कुल के स्वामी, क्षमा कर देना। हे वीर मैं आपके पैरों में सिर रख प्रार्थना करती हूँ।

तथ तु तारा करुणं रुदन्ती
भर्तुः समीपे सह वानरीभिः।
व्यवस्यत प्रायमनिन्द्यवर्णा
उपोपवेष्टुं भुवि यत्र वाली।। २३।।

इस प्रकार से उस अनिन्द्य सुन्दरी तारा ने वानर पत्नियों के साथ करुणा पूर्वक रोते हुए जहाँ भूमि पर बाली पड़ा था, वहीं बैठ कर, आमरण अनशन करने का विचार किया।

उन्नीसवाँ सर्ग

हनुमान जी का तारा को समझाना।

ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात्।
शनैराश्वासयामास हनुमान् हरियूथपः।। १।।
गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्म फलहेतुकम्।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम्।। २।।
शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे।
कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुद्बुदोपमे।। ३।।

तब आकाश से टूटी हुई तारिका के समान तारा को भूमि पर पड़ा हुआ देख कर वानरों के यूथपति हनुमान ने उन्हें धीरे-धीरे आश्वासन देना आरम्भ किया। उन्होंने कहा कि हे देवी! गुण बुद्धि से या दोष बुद्धि से जो भी जीव के अपने किये हुए कार्य होते हैं वे सब फलों को प्राप्त कराते हैं। उन सभी शुभ तथा अशुभ फलों को जीवात्मा परलोक में जा कर शान्त भाव से भोगता है। तुम स्वयं शोच्य तथा दीन अवस्था में हो कर किस शोचनीय के लिये शोक कर रही हो और किस दीन पर अनुकम्पा कर रही हो। यह शरीर तो बुलबुले के समान क्षणभंगुर है, इसमें कौन किसके लिये शोक करने योग्य है?

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया।
आयत्यां च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय।। ४।।
जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम्।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डिते नेह लौकिकम्।। ५।।
यस्मिन् हरिसहस्राणि शतानि नियुतानि च।
वर्तयन्ति कृताशानि सोऽयं दिष्टान्तमागतः।। ६।।
यदयं न्यायदृष्टार्थः सामदानक्षमापरः।
गतो धर्मजितां भूमिं नैनं शोचितुमर्हसि।। ७।।

तुम्हारा पुत्र यह कुमार अंगद जीवित है। तुम्हें इसी की तरफ देखना चाहिये। भविष्य में इसके लिये जो योग्य कर्म हैं, तुम उनके लिये विचार करो। आप जानती ही हैं कि प्राणियों के जन्म और मृत्यु का समय निश्चित नहीं है। इसलिये विद्वान पुरुष को यहाँ अच्छे लौकिक कर्म ही करने चाहिये, बुरे नहीं। जिसके सहारे सैकड़ों, हजारों, और लाखों वानर आशा लगाए बैठे रहते थे, वे बाली अब जीवन के अन्त पर पहुँच गये हैं। इन्होंने न्याय के अनुसार अर्थ साधन किया, साम, दाम और क्षमा का प्रयोग किया, ये धर्म के आचरण के अनुसार प्राप्त परलोक को गये हैं, तुम्हें इनके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

सर्वे च हरिशार्दूलाः पुत्रश्चायं तवाङ्गदः।
हर्यृक्षपतिराज्यं च त्वत्सनाथमनिन्दिते।। ८।।
ताविमौ शोकसंतप्तौ शनैः प्रेरय भामिनि।
त्वया परिगृहीतोऽयमङ्गदः शासतु मेदिनीम्।। ९।।
संततिश्च यथा दृष्टा कृत्यं यच्चापि साम्प्रतम्।
राज्ञस्तत् क्रियतां सर्वमेष कालस्य निश्चयः।। १०।।
संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम्।
सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि।। ११।।

हे अनिन्दिते! ये सारे वानर श्रेष्ठ और तुम्हारा यह पुत्र अंगद, वानर और ऋक्ष जाति के लोगों का यह राज्य यह सब तुम्हारे द्वारा ही सनाथ हैं। अर्थात तुम्ही इसकी स्वामिनी हो। हे भामिनी! ये दोनों सुग्रीव और अंगद शोक से संतप्त हैं। तुम इन्हें भावी कार्य के लिये प्रेरणा दो। तुम्हारे आधीन यह अंगद पृथ्वी पर राज्य करे। सन्तान का इस समय क्या कर्त्तव्य है? और राजा के लिये क्या करना चाहिये, यह सब जो समय के अनुसार उचित हो उसे कराओ यही समय की माँग है। वानरराज का अन्तिम संस्कार होना चाहिये और अंगद का अभिषेक कराओ। अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठा हुआ देख कर तुम्हें शान्ति प्राप्त हो जायेगी।

सा तस्य वचनं श्रुत्वा भर्तृव्यसनपीडिता।
अब्रवीदुत्तरं तारा हनूमन्तमवस्थितम्।। १२।।

न चाहं हरिराज्यस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा।
पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः।। १३।।
नह्येषा बुद्धिरास्थेया हनूमन्नङ्गदं प्रति।
पिता हि बन्धुः पुत्रस्य न माता हरिसत्तम।। १४।।

हनुमान जी के वचन सुन कर पति के शोक से पीड़ित तारा ने सामने खड़े हुए हनुमान जी को यह उत्तर दिया कि वानरों के राज्य के लिये तथा अंगद के लिये कुछ करने की मेरी कोई सामर्थ्य नहीं है। उसका चाचा सुग्रीव उसके लिये सारे कार्य करने में उसके अधिक समीप है। हे वानर श्रेष्ठ हनुमान! अंगद के लिये आपका यह विचार मेरे लिये धारण करने योग्य नहीं है। पुत्र का असली बन्धु उसका पिता अर्थात् चाचा ही होते हैं, माता नहीं।

बीसवाँ सर्ग

बाली का सुग्रीव और अंगद को अन्तिम सन्देश दे कर प्राणोत्सर्ग।

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन्।
आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः।। १।।
तं प्राप्तविजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरम्।
आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत्।। २।।

तभी जिसके प्राण शिथिल हो गए थे, वह बाली धीरे-धीरे साँस लेता हुआ, चारों तरफ देखने लगा। उसने आरम्भ में ही सबसे आगे खड़े हुए छोटे भाई सुग्रीव को देखा। जिसे युद्ध में विजय प्राप्त हो गई थी, उस वानरों के राजा सुग्रीव से बाली ने तब स्नेह के साथ स्पष्ट वाणी में कहा कि–

सुग्रीव दोषेण न मां गन्तुमर्हसि किल्बिषात्।
कृष्यमाणं भविष्येण बुद्धिमोहेन मां बलात्।। ३।।
युगपद् विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः।
सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा।। ४।।
प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम्।
जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलां तथा।। ५।।
प्रजहाम्येष वै तूर्णमहं चागर्हितं यशः।
अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद् वचः।। ६।।
यद्यप्यसुकरं राजन् कर्तुमेव त्वमर्हसि।

हे सुग्रीव! पाप कर्म के कारण जो मुझे अवश्यम्भावी बुद्धि मोह हो गया था उसने मुझे तुमसे अलग कर दिया। तुम मेरे कार्यों के लिये मुझे दोष मत देना। मैं समझता हूँ कि हमारे जीवन में एक साथ रह कर सुख भोगने का अवसर नहीं था। इसीलिये भ्रातृभाव से युक्त जो प्रेम भाव तुम्हारे और हमारे बीच में था, वह उलट कर विपरीत हो गया। अब वानरों के राज्य को तुम्हीं आज प्राप्त कर लो। मैं अपने जीवन, राज्य, विपुल ऐश्वर्य और अनिन्दित यश को जल्दी ही त्याग रहा हूँ। हे वीर! अपनी इस अवस्था में मैं तुम्हें जो बात कह रहा हूँ, वह यद्यपि कठिन है, पर तुम्हें उसे करना चाहिये।

सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम्।। ७।।
बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम्।
मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम्।। ८।।
मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय।
त्वमप्यस्य पिता दाता परित्राता च सर्वशः।। ९।।
भयेष्वभयदश्चैव यथाहं प्लवगेश्वर।
एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः।। १०।।
रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति।

देखों यह अंगद भूमि पर पड़ा हुआ है, यह अभी सुख भोगने योग्य है। मैंने इसे सुखों में पाला है। यह अभी बालक है, पर समझदार है। इसका मुख आँसुओं से भरा

हुआ है। मेरा यह प्राणों से भी प्यारा पुत्र है। इसे तुम सगे पुत्र की तरह समझना। मेरे छोड़े जाने पर, इसे किसी पदार्थ की कभी न होने देना और इसका सब तरफ से पालन करना। हे वानर राज! मेरी तरह तुम भी इसके पिता, दाता और सब तरफ से इसकी रक्षा करने वाले हो तथा भय के स्थान पर अभय देने वाले हो। तारा का यह सुन्दर पुत्र तुम्हारे समान ही पराक्रमी है। यह उन राक्षसों के वध के समय सदा तुम्हारे आगे रहेगा।

अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान् रणे।। ११।।
करिष्यत्येष तारेयस्तेजस्वी तरुणोऽङ्गदः।
सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये।। १२।।
औत्पात्तिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता।
यदेषा साध्विति ब्रूयात् कार्यं तन्मुक्तसंशयम्।। १३।।
नहि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते।
राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया।। १४।।
स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः।

तारा का यह तरुण और तेजस्वी पुत्र बलवान अंगद रण में शौर्य का प्रदर्शन कर अपने अनुरूप ही कार्य करेगा। सुषेण की पुत्री यह तारा गूढ़ अर्थ का निश्चय करने तथा आपत्ति के समय सलाह देने में सब तरफ से चतुर है। जिस कार्य को यह अच्छा कहे, उसे तुम संशय रहित हो कर करना। तारा की सलाह कभी उलटी नहीं पड़ती। तुम्हें श्रीराम का कार्य भी बिना शंका के करना चाहिये। नहीं तो यह अधर्म भी होगा और अपमानित राम तुम्हारा भी वध कर सकते हैं।

इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिना भ्रातृसौहृदात्।। १५।।
हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट्।
संसिद्धः प्रेत्यभावाय स्नेहादङ्गदमब्रवीत्।। १६।।

बाली के द्वारा ऐसा कहे जाने पर भाई के प्रति प्रेम के कारण सुग्रीव अपने हर्ष को छोड़ कर ऐसे ही दुखी हो गया जैसे ग्रहण के समय चन्द्रमा की अवस्था होती है। फिर मृत्यु के लिये तैयार होता हुआ बाली स्नेह से अंगद से बोला कि–

देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये।
सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव।। १७।।
यथा हि त्वं महाबाहो लालितः सततं मया।
न तथा वर्तमानं त्वां सुग्रीवो बहु मन्यते।। १८।।
नास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिररिंदम।
भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव।। १९।।
न चातिप्रणयः कार्यः कर्तव्योऽप्रणयश्च ते।
उभयं हि महादोषं तस्मादन्तरदृग् भव।। २०।।

हे पुत्र तुम प्रिय और अप्रिय को समझते हुए अब देश काल के अनुसार बर्ताव करना। सुग्रीव की आज्ञा के आधीन रहो और जो समय पर सुख दुख आये उसे सहन करो। हे महाबाहु! जैसे मैंने बड़े लाड़ प्यार से तुम्हें सदा रखा, वैसे ही तुम अब रहना चाहोगे तो सुग्रीव तुम्हारा बहुत आदर नहीं करेंगे। हे शत्रुओं का दमन करने वाले! सुग्रीव के शत्रुओं का साथ मत देना, जो इसके मित्र न हो, उनके पास भी मत जाना, सुग्रीव की ही आज्ञा का पालन करना। अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए अपने स्वामी सुग्रीव के ही अर्थ की सिद्धि करना। तुम न तो किसी से बहुत प्रेम करना और किसी के प्रति प्रेम रहित भी न होना। ये दोनों ही महान दोष को उत्पन्न करते हैं।

इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसम्पीडितो भृशम्।
विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः।। २१।।
ततो विचुक्रुशुस्तत्र वानरा हतयूथपाः।
परिदेवयमानास्ते सर्वे प्लवगसत्तमाः।। २२।।
उद्यानानि च शून्यानि पर्वताः काननानि च।
हते प्लवगशार्दूले निष्प्रभा वानराः कृताः।। २३।।

ऐसा कह कर बाण के आघात से अत्यन्त पीड़ित होते हुए बाली के प्राण उसके शरीर से निकल गये। उसकी आँखे तब खुली रह गयीं और दाँत भी खुले हुए थे। अपने यूथपति की मृत्यु हो जाने पर वे श्रेष्ठ वानर जोर-जोर से विलाप करने लगे। वे कहने लगे कि वानरों के स्वामी के स्वर्ग को चले जाने पर किष्किंधा, बाग, पर्वत, और वन सारे सूने हो गये। वानरश्रेष्ठ बाली के मारे जाने से हम सब वानर अब तेज रहित हो गये हैं।

हते तु वीरे प्लवगाधिपे तदा
प्लवङ्गमास्तत्र न शर्म लेभिरे।
वनेचराः सिंहयुते महावने
यथा हि गावो निहते गवां पतौ।। २४।।

वानरों के वीर स्वामी बाली के मारे जाने पर वानर जाति के सभी मनुष्य उस समय दुखी थे। कोई सुख नहीं पा रहा था। जैसे वन में विचरण करने वाली गायें सिंह वाले महान वन में साँड के मारे जाने पर दुखी हो जाती हैं।

ततस्तु तारा व्यसनार्णवप्लुता
मृतस्य भर्तुर्वदनं समीक्ष्य सा।

जगाम भूमिं परिरभ्य वालिनं
महाद्रुमं छिन्नमिवाश्रिता लता।। २५।।

तब शोक के सागर में डूबी हुई तारा ने जब अपने दिवंगत पति के मुख की तरफ देखा, तब वह बाली का आलिंगन करके उखड़े हुए विशाल वृक्ष का आश्रय लेने वाली लता के समान भूमि पर गिर पड़ी।

इक्कीसवाँ सर्ग

तारा का विलाप।

ततः समुपजिघ्रन्ती कपिराजस्य तन्मुखम्।
पतिं लोकश्रुता तारा मृतं वचनमब्रवीत्।। १।।
शेषे त्वं विषमे दुःखमकृत्वा वचनं मम।
उपलोपचिते वीर सुदुःखे वसुधातले।। २।।
मत्तः प्रियतरा नूनं वानरेन्द्र मही तव।
शेषे हि तां परिष्वज्य मां च न प्रभिभाषसे।। ३।।

तब वानरों के राजा बाली के मुख को सूँघती हुई लोक विख्यात तारा अपने मृत पति से बोली कि हे वीर! आप मेरी बात न मान कर अब इस अत्यन्त दुखदायक ऊँचे नीचे पत्थरों से भरे हुए पृथ्वी तल पर सो रहे हैं, यह कितने दुख की बात है। हे वानरेन्द्र! वास्तव में आपको यह भूमि मुझसे अधिक प्यारी है, तभी आप मुझसे बात नहीं कर रहे हैं और इस भूमि का आलिंगन किये सो रहे हैं।

ऋक्षवानरमुख्यास्त्वां बलिनं पर्युपासते।
तेषां विलपितं कृच्छ्रमङ्गदस्य च शोचतः।। ४।।
मम चेमा गिरः श्रुत्वा किं त्वं न प्रतिबुध्यसे।
इदं तद् वीरशयनं तत्र शेषे हतो युधि।। ५।।
शायिता निहता यत्र त्वयैव रिपवः पुरा।
विशुद्धसत्त्वाभिजन प्रिययुद्ध मम प्रिय।। ६।।
मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद।

ऋक्षों और वानरों के प्रमुख लोग, जो आप जैसे बलशाली की सेवा किया करते थे, उनके तथा शोक करते हुए अंगद के दुख भरे विलाप को तथा मेरी इस आवाज को भी सुन कर आप क्यों नहीं जाग रहे हैं। हे वीर! यह वही वीर शय्या है जिस पर पहले आपने बहुत से शत्रुओं को सुलाया था, उसी पर आप आज स्वयं मारे जा कर शयन कर रहे हैं। हे युद्ध से प्रेम करने वाले, विशुद्ध शक्ति कुल में उत्पन्न, मेरे प्रिय तथा दूसरों को मान देने वाले, अब आप मुझ अनाथ को अकेली छोड़ कर कहाँ चले गये?

शूराय न प्रदातव्या कन्या खलु विपश्चिता।। ७।।
शूरभार्यां हतां पश्य सद्यो मां विधवां कृताम्।
अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वती गतिः।। ८।।
अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे।
अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम्।। ९।।
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधा कृतम्।

बुद्धिमान व्यक्ति को निश्चित रूप से अपनी कन्या शूरवीर व्यक्ति को नहीं देनी चाहिये। देखो मैं शूर की पत्नी थी, इसीलिये मुझे विधवा बना दिया गया और मैं पूरी तरह से मारी गयी। मेरा सम्मान समाप्त हो गया। मेरी सर्वदा विकास को ग्रहण करने वाली शक्ति भी रुक गयी। अब तो मैं अगाध शोक सागर में डूब गयी हूँ। वास्तव में मेरा यह हृदय बड़ा कठोर और लोहे का बना हुआ है जो अपने पति को मारा हुआ देख कर इसके सौ टुकड़े नहीं हो जाते हैं।

सुहृच्चैव च भर्ता च प्रकृत्या च मम प्रियः।। १०।।
प्रहारे च पराक्रान्तः शूरः पञ्चत्वमागतः।
पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी।। ११।।
धनधान्यसमृद्धापि विधवेत्युच्यते जनैः।
स्वगात्रप्रभवे वीर शेषे रुधिरमण्डले।। १२।।
कृमिरागपरिस्तोमे स्वकीये शयने यथा।

जो मेरे मित्र और पति थे, जो स्वभाव से ही मुझे प्यारे थे, जो संग्राम में महान पराक्रम प्रकट करने वाले थे, शूरवीर थे, वे ही आज हाय चल बसे। पति से रहित स्त्री के चाहे कितने भी योग्य पुत्र हों, वह कितनी भी धनधान्य से समृद्ध हो, फिर भी लोग उसे विधवा कहते हैं। हे वीर! आज आप अपने शरीर से निकले हुए रक्त के बीच में उसी तरह से सो रहे हो, जैसे पहले वीर वधूटी के रंग वाले लाल बिस्तरे पर अपने शयन स्थान में सोया करते थे।

रेणुशोणितसंवीतं गात्रं तव समन्ततः।। १३।।
परिरब्धुं न शक्नोमि भुजाभ्यां प्लवगर्षभ।
शरेण हृदि लग्नेन गात्रसंस्पर्शने तव।। १४।।
वार्यामि त्वां निरीक्षन्ती त्वयि पञ्चत्वमागते।
उद्बबर्ह शरं नीलस्तस्य गात्रगतं तदा।। १५।।
गिरिगह्वरसंलीनं दीप्तमाशीविषं यथा।

हे वानरश्रेष्ठ! आपका शरीर सब तरफ से रक्त और धूल में भरा हुआ है। इसलिये मैं हाथों से आलिंगन नहीं कर पा रही हूँ। आपके हृदय में धँसा हुआ यह बाण मुझे आपके शरीर से चिपटने से रोक रहा है। इसीलिये आपके मृत्यु को प्राप्त होने पर भी मैं केवल आपको देख रही हूँ। हृदय से नहीं लगा सकती। तब नील ने जगमगाते हुए उस बाण को जो पर्वत के गड्ढे में घुसे हुए साँप के समान, बाली के शरीर में धँसा हुआ था, बाहर निकाल लिया।

पेतुः क्षतजधारास्तु व्रणेभ्यस्तस्य सर्वशः।। १६।।
ताम्रगैरिकसम्पृक्ता धारा इव धराधरात्।
अवकीर्णं विमार्जन्ती भर्तारं रणरेणुना।। १७।।
अस्रैर्नयनजैः शूरं सिषेचास्त्रसमाहतम्।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम्।। १८।।
उवाच तारा पिङ्गाक्षं पुत्रमङ्गदमङ्गना।

बाण के निकाले जाने पर बाली के शरीर के घावों से सब तरफ से रक्त की धाराएँ बहने लगीं, जैसे किसी पर्वत से ताँबे के रंगवाली गेरू से मिली हुई पानी की धाराएँ बह रही हों। तब तारा अपने पति के युद्ध भूमि की धूल से भरे हुए तथा बाण से आहत उस शरीर को पोंछती हुई, अपनी आँखों के आँसुओं से सींचने लगी। अपने दिवंगत पति के रक्त से भरे हुए सारे अंगों को देख कर वह बाली पत्नी तारा भूरी आँखों वाले अपने पुत्र अंगद से बोली कि—

अवस्थां पश्चिमां पश्य पितुः पुत्र सुदारुणाम्।।१९।।
सम्प्रसक्तस्य वैरस्य गतोऽन्तः पापकर्मणा।
बालसूर्योज्ज्वलतनुं प्रयातं यमसादनम्।। २०।।
अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम्।
एवमुक्तः समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः।। २१।।
भुजाभ्यां पीनवृत्ताभ्यामङ्गदोऽहमिति ब्रुवन्।

हे पुत्र! पिता की इस अन्तिम भयानक अवस्था को देख। किसी पूर्व पाप के कारण इन्हें जो वैर की प्राप्ति हुई थी, उससे अब ये पार हो चुके हैं। हे पुत्र! तुम्हें आदर देने वाले, प्रातः कालीन सूर्य के समान उज्ज्वल शरीर वाले, तथा मृत्यु लोक में पहुँचे हुए अपने पिता राजा बाली को तुम प्रणाम करो। तारा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर अंगद ने उठ कर अपनी गोल और मोटी भुजाओं के द्वारा पिता के चरणों को पकड़ लिया और कहा कि पिता जी मैं अंगद हूँ।

अभिवादयमानं त्वामङ्गदं त्वं यथा पुरा।। २२।।
दीर्घायुर्भव पुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे।
अहं पुत्रसहाया त्वामुपासे गतचेतनम्।
सिंहेन पातितं सद्यो गौः सवत्सेव गोवृषम्।। २३।।
इष्ट्वा संग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा।
तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया विना।। २४।।

तब तारा फिर कहने लगी कि अंगद आपको प्रणाम कर रहा है, आप पहले की तरह दीर्घायु हो ऐसा आशीर्वाद क्यों नहीं देते। मैं पुत्र के साथ चेतना रहित आप के पास ऐसे ही बैठी हूँ, जैसे सिंह के द्वारा साँड के मारे जाने के तत्काल बाद गाय अपने बछड़े के साथ उसके पास खड़ी हो। आपने संग्राम रूपी यज्ञ का प्रारम्भ किया, पर मुझ पत्नी के बिना अकेले ही राम के बाण रूपी जल में यज्ञ स्नान कैसे कर लिया?

न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं
न चास्मि शक्ता हि निवारणे तव।
हता सपुत्रास्मि हतेन संयुगे
सह त्वया श्रीर्विजहाति मामपि।। २५।।

मैंने जो आपको हितकारी वचन कहे थे, वह आपने नहीं माने, मैं आपको रोक पाने में समर्थ नहीं हो सकी। अब युद्ध में आपके मारे जाने पर मैं भी पुत्र के साथ मारी गयी। आपके साथ समृद्धि अब मुझे भी छोड़ रही है।

बाईसवाँ सर्ग

सुग्रीव का शोकाकुल हो कर श्रीराम से प्राण त्याग करने की आज्ञा माँगना। तारा का श्रीराम से अपने वध के लिये प्रार्थना करना और श्रीराम का उसे समझाना।

तामाशु वेगेन दुरासदेन
त्वभिप्लुतां शोकमहार्णवेन।
पश्यंस्तदा वाल्यनुजस्तरस्वी
भ्रातुर्वधेनाप्रतिमेन सेपे।। १।।

तारा को अत्यन्त वेग वाले दुस्सह शोक सागर में डूबा हुआ देख कर बाली के शक्तिशाली छोटे भाई सुग्रीव भाई के वध के अप्रतिम संताप से तपने लगे।

स बाष्पपूर्णेन मुखेन पश्यन्
क्षणेन निर्विण्णमना मनस्वी।
जगाम रामस्य शनैः समीपं
भृत्यैर्वृतः सम्परिदूयमानः।। २।।

वह मनस्वी उदास मन से अपने आँसू भरे मुख से थोड़ी देर तक देखते रहे और फिर दुखी होते हुए धीरे-धीरे, सेवकों से घिरे हुए राम के पास गये।

स तं समासाद्य गृहीतचाप-
मुदात्तमाशीविषतुल्यबाणम्।
यशस्विनं लक्षणलक्षिताङ्ग-
मवस्थितं राघवमित्युवाच।। ३।।

विषधर सर्प के समान बाण और धनुष को धारण किये हुए, यशस्वी, उत्तम लक्षणों से चिह्नित अंग वाले, खड़े हुए राम के पास पहुँच कर वे उनसे बोले कि—

यथा प्रतिज्ञातमिदं नरेन्द्र
कृतं त्वया दृष्टफलं च कर्म।
ममाद्य भोगेषु नरेन्द्रसूनो
मनो निवृत्तं हतजीवितेन।। ४।।

हे राजा! आपने जैसी प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरा कर दिया, उसका प्रत्यक्ष फल भी अब सामने दिखाई दे रहा है। पर हे राजकुमार! इससे मेरा जीवन भी अब मरे हुए के समान हो गया है। मेरी अब भोगों में कोई रुचि नहीं रही है।

अस्यां महिष्यां तु भृशं रुदत्यां
पुरेऽतिविक्रोशति दुःखतप्ते।
हते नृपे संशयितेऽङ्गदे च
न राम राज्ये रमते मनो मे।। ५।।

ये महारानी इतनी अधिक रो रही हैं। सारा नगर दुख से संतप्त हो कर जोर-जोर से विलाप कर रहा है। राजा बाली के मारे जाने पर, अंगद का जीवन भी संशय में है। हे राम! अब इस राज्य में मेरा मन नहीं लग सकता।

क्रोधादमर्षादतिविप्रधर्षाद्
भ्रातुर्वधो मेऽनुमतः पुरस्तात्।
हते त्विदानीं हरियूथपेऽस्मिन्
सुतीक्ष्णमिक्ष्वाकुवर प्रतप्स्ये।। ६।।

क्रोध के कारण, अमर्ष के कारण, अत्यधिक तिरस्कार के कारण पहले मैंने भाई के वध की अनुमति दे दी थी, पर अब इस वानरों के स्वामी के मारे जाने पर हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! मैं बहुत अधिक संताप में तपता रहूँगा।

श्रेयोऽद्य मन्ये मम शैलमुख्ये
तस्मिन् हि वासश्चिरमृष्यमूके।
यथा तथा वर्तयतः स्ववृत्त्या
नेमं निहत्य त्रिदिवस्य लाभः।। ७।।

आज मैं ऋष्यमूक पर्वत श्रेष्ठ पर, जैसे तैसे अपने जीवन का निर्वाह करते हुए सर्वदा निवास करना अधिक अच्छा समझता हूँ, पर इस भाई को मारकर स्वर्ग की भी प्राप्ति मुझे सुखदायक नहीं है।

न त्वा जिघांसामि चरेति यन्मा-
मयं महात्मा मतिमानुवाच।
तस्यैव तद् राम वचोऽनुरूप-
मिदं वचः कर्म च मेऽनुरूपम्।। ८।।

मैं तुम्हें आज मारना नहीं चाहता, तुम चले जाओ, ऐसा इन महात्मा और बुद्धिमान ने मुझको कहा था। हे राम! इनका यह वचन इनके ही अनुरूप था। पर मेरा वह क्रूर वचन और इनकी हत्या रूपी क्रूर कार्य मेरे ही अनुरूप है।

भ्राता कथं नाम महागुणस्य
भ्रातुर्वधं राम विरोचयेत।
राज्यस्य दुःखस्य च वीर सारं
विचिन्तयन् कामपुरस्कृतोऽपि।। ९।।

हे राम कामनाओं से युक्त होने पर भी, राज्य की प्राप्ति के सुख और भाई की हत्या के दुख की प्रबलता पर विचार करते हुए, कोई भाई अपने महान अगुणी भाई की भी हत्या को कैसे अच्छा मान सकता है?

नार्हामि सम्मानमिमं प्रजानां
न यौवराज्यं कुत एव राज्यम्।
अधर्मयुक्तं कुलनाशयुक्त-
मेवंविधं राघव कर्म कृत्वा।। १०।।

हे राघव! अधर्म से युक्त और कुल के नाश को करवाने वाले इस प्रकार के कार्य को करके, मैं अब प्रजाओं से प्राप्त होने वाले सम्मान तथा यौवराज्य को प्राप्त करने के योग्य नहीं हूँ। राज्य लेने की तो बात ही क्या हो सकती है।

पापस्य कर्तास्मि विगर्हितस्य
क्षुद्रस्य लोकापकृतस्य लोके।
शोको महान् मामभिवर्ततेऽयं
वृष्टेर्यथा निम्नमिवाम्बुवेगः।। ११।।

मैंने जो पाप किया है वह बड़ा तुच्छ कोटि का है और निन्दनीय है तथा लोगों को हानि पहुँचाने वाला है, इसलिये जैसे वर्षा का जल निचली भूमि की तरफ ही बहता है, वैसे ही महान शोक का वेग मुझ पर आक्रमण कर रहा है।

अंहो बतेदं नृवराविषह्यं
निवर्तते मे हृदि साधुवृत्तम्।
अग्नौ विवर्णं परितप्यमानं
किट्टं यथा राघव जातरूपम्।। १२।।

हे नरश्रेष्ठ राघव! जैसे अग्नि में डाला हुआ मैला सोना अपने अन्दर से मैल को जला देता है, उसी प्रकार मेरे द्वारा किये गये इस असहनीय पाप ने भी मेरे हृदय में विद्यमान सदाचार को नष्ट कर दिया है।

महाबलानां हरियूथपाना-
मिदं कुलं राघव मन्निमित्तम्।
अस्याङ्गदस्यापि च शोकतापाः
दर्धस्थितप्राणमितीव मन्ये।। १३।।

हे राघव! मैं मानता हूँ कि मेरे कारण से बाली का वध हो जाने से, महाबली वानर यूथपतियों का यह समुदाय और शोक से तपते हुए अंगद के प्राण अब अधमरे से हो गये हैं।

सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः
कुतस्तु पुत्रः सदृशोऽङ्गदेन।
न चापि विद्येत स वीर देशो
यस्मिन् भवेत् सोदरसंनिकर्षः।। १४।।

हे वीर! सज्जन और वश में रहने वाला तो पुत्र मिल सकता है, पर अंगद जैसा पुत्र नहीं मिल सकता। अब संसार में कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ मुझे मेरा सगा भाई मिल जाये।

अद्याङ्गदो वीरवरो न जीवे-
ज्जीवेत माता परिपालनार्थम्।
विना तु पुत्रं परितापदीना
सा नैव जीवेदिति निश्चितं मे।। १५।।

अब वीरवर अंगद का जीवित रहना कठिन है। यदि वह जीता रहे तो उसकी माता भी उसके पालन के लिये जीवित रहेगी। बिना पुत्र के तो संताप से दीन बनी हुई वह भी जीवित नहीं रह सकेगी। यह मेरा निश्चय है।

सोऽहं प्रवेक्ष्याम्यतिदीप्तमग्निं
भ्रात्रा च पुत्रेण च सख्यमिच्छन्।
इमे विचेष्यन्ति हरिप्रवीराः
सीतां निदेशे परिवर्तमानाः।। १६।।

इसलिये अब मैं भाई और पुत्र के साथ जाने के लिये प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करूँगा। ये वानर प्रमुख! आपके आदेश से घूमते हुए सीता की खोज करेंगे।

कृत्स्नं तु ते सेत्स्यति कार्यमेत-
न्मय्यप्यतीते मनुजेन्द्रपुत्र।
कुलस्य हन्तारमजीवनार्हं
रामानुजानीहि कृतागसं माम्।। १७।।

हे राजकुमार! मेरे चले जाने पर भी आपका सारा कार्य पूरा हो जायेगा। इसलिये हे राम! अब आप मुझ कुल के हन्ता और पापी को, जो अब जीवित रहने के योग्य नहीं है, जाने की आज्ञा दीजिये।

इत्येवमार्तस्य रघुप्रवीरः
श्रुत्वा वचो वालिजघन्यजस्य।
संजातबाष्पः परवीरहन्ता
रामो मुहूर्तं विमना बभूव।। १८।।

इस प्रकार बाली के दुखी छोटे भाई के वचनों को सुन कर शत्रु वीरों को नष्ट करने वाले रघुनन्दन राम आँसुओं को बहाते हुए थोड़ी देर तक उदास हो कर खड़े रहे।

तस्मिन् क्षणेऽभीक्षणमवेक्षमाणः
क्षितिक्षमावान् भुवनस्य गोप्ता।
रामो रुदन्तीं व्यसने निमग्नां
समुत्सुकः सोऽथ ददर्श ताराम्।। १९।।

तब बार-बार चारों तरफ देखते हुए भूमि के समान क्षमावान और संसार की रक्षा करने वाले राम ने उत्सुकता के साथ रोती हुई और संकट में डूबी हुई तारा की तरफ देखा।

तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथां
पतिं समाश्लिष्य तदा शयानाम्।
उत्थापयामासुरदीनसत्त्वां
मन्त्रिप्रधानाः कपिराजपत्नीम्।। २०।।

वानरों में सिंह के समान बाली जिसका पति था, उस सुन्दर नेत्र वाली तारा को, जो पति से लिपट कर पड़ी हुई थी, उस उदार हृदय वाली वानर राज की पत्नी को तब प्रमुख मंत्रियों ने उठाया।

सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा
भर्तुः समीपादपनीयमाना।
ददर्श रामं शरचापपाणिं
स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम्।। २१।।

जब वह पति के समीप से हटायी जा रही थी, तब आलिंगन करने के लिये छटपटाती हुई उसने धनुष बाण हाथ में लिये हुए राम को देखा, जो सूर्य के समान अपने तेज से प्रज्वलित हो रहे थे।

सुसंवृतं पार्थिवलक्षणैश्च
तं चारुनेत्रं मृगशावनेत्रा।
अदृष्टपूर्वं पुरुषप्रधान-
मयं स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे।। २२।।

जो राजकीय लक्षणों से अच्छी तरह से युक्त थे, उन सुन्दर नेत्र वाले पुरुष प्रवर राम को, जिन्हें पहले उसने नहीं देखा था, वह मृगशावकनयनी तारा देख कर यह समझ गयी कि ये ककुत्स्थवंशी श्रीराम हैं।

तस्येन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य
महानुभावस्य समीपमार्या।
आर्तातितूर्णं व्यसनं प्रपन्ना
जगाम तारा परिविह्वलन्ती।। २३।।

तब उन इन्द्र के समान दुर्जय वीर, महानुभाव, श्रीराम के समीप अत्यन्त शोक पीड़ित, संकट में पड़ी हुई, भार्या तारा अत्यन्त विह्वल होती हुई, तेजी के साथ पहुँची।

तं सा समासाद्य विशुद्धसत्त्वं
शोकेन सम्भ्रान्तशरीरभावा।
मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा
रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम्।। २४।।

उन विशुद्ध अन्तःकरण वाले राम से, जिन्होंने युद्ध में उत्कृष्टता के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया था, उनके समीप जा कर मनस्विनी तथा शोक के कारण शरीर की सुध-बुध से रहित हुई तारा यह बोली।

येनैव बाणेन हतः प्रियो मे
तेनैव बाणेन हि मां जहीहि।
हता गमिष्यामि समीपमस्य
न मां विना वीर रमेत वाली।। २५।।

जिस बाण से मेरे पति को मारा है उसी बाण से आप मुझे भी मार दीजिये। जिससे मैं मर कर उसके समीप पहुँच जाऊँ। मेरे बिना वीर बाली सुखी नहीं रहेंगे।

त्वं वेत्थ तावद् वनिताविहीनः
प्राप्नोति दुःखं पुरुषः कुमारः।
तत् त्वं प्रजानञ्जहि मां न वाली
दुःखं ममादर्शनजं भजेत।। २६।।

आप जानते ही हैं कि पत्नी के बिना युवा पुरुष को कितना दुख होता है। अतः इस बात को जानते हुए आप मुझे मार दीजिये, जिससे बाली मेरे विरह के दुख को प्राप्त न हो।

यच्चापि मन्येत भवान् महात्मा
स्त्रीघातदोषस्तु भवेन्न मह्यम्।
आत्मेयमस्येति हि मां जहि त्वं
न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्रपुत्र।। २७।।

हे महात्मा! यदि आप यह मानते हैं कि इसके मरने से कहीं मुझे स्त्री हत्या का दोष न लग जाये तो आप यह समझ कर मुझे मार दीजिये कि यह भी बाली की आत्मा है। हे राजपुत्र! इससे आपको स्त्री हत्या का दोष नहीं लगेगा।

आर्तामनाथामपनीयमाना-
मेवंगतां नार्हसि मामहन्तुम्।
अहं हि मातङ्गविलासगामिना
प्लवंगमानामृषभेण धीमता।
विना वरार्होत्तमहेममालिना
चिरं न शक्ष्यामि नरेन्द्र जीवितुम्।। २८।।

मैं दुख में पड़ गयी हूँ, अनाथ हो गयी हूँ, ऐसी अवस्था में विद्यमान मुझे आपको जीवित नहीं छोड़ना चाहिये। हे राजा! मैं उन धीमान बाली के बिना जो मस्त हाथी के समान चलते थे, जो वानर जाति में श्रेष्ठ थे, जो बहुमूल्य स्वर्ण की माला को धारण करते थे, अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकूँगी।

इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा
तारां समाश्वास्य हितं बभाषे।
मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व
लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा।। २९।।

ऐसा कहे जाने पर उन शक्तिशाली महात्मा राम ने तारा को धीरज बँधा कर उसके कल्याण की बातें उससे कहीं और कहा कि हे वीर पत्नी! तुम विपरीत विचार को मत करो। इस सारे संसार को भगवान ने बनाया है।

तं चैव सर्वं सुखदुःखयोगं
लोकोऽब्रवीत् तेन कृतं विधात्रा।
त्रयोऽपि लोका विहितं विधानं
नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य।। ३०।।

सामान्य लोग भी यह कहते हैं कि भगवान ने ही इस सारे संसार को दुख सुख से युक्त किया है। तीनों लोक उसी परमात्मा के वश में हैं। वे परमात्मा द्वारा निर्मित उसकी व्यवस्था का उल्लंघन नहीं कर सकते।

प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव
पुत्रश्च ते प्राप्स्यति यौवराज्यम्।
धात्रा विधानं विहितं तथैव
न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति।। ३१।।

तुम पहले के समान ही सम्मान को प्राप्त करोगी। तुम्हारा पुत्र युवराज बनेगा। परमात्मा की यही व्यवस्था है। वीर पत्नियाँ इस प्रकार विलाप नहीं करतीं।

आश्वासिता तेन महात्मना तु
प्रभावयुक्तेन परंतपेन।
सा वीरपत्नी ध्वनता मुखेन
सुवेषरूपा विरराम तारा।। ३२।।

प्रभावशाली महात्मा और शत्रुओं को सन्ताप देने वाले राम के द्वारा आश्वासन देने पर वह सुन्दर वेश और रूपवाली तारा, जिसके मुख से अब तक विलाप की ही ध्वनि निकल रही थी, अब चुप हो गयी अर्थात उसने विलाप करना छोड़ दिया।

तेईसवाँ सर्ग

लक्ष्मण और श्रीराम का सुग्रीव आदि को समझाना और बाली के अन्त्येष्टि कर्म का कराया जाना।

स सुग्रीवे च तारां च साङ्गदां सहलक्ष्मणः।
समानशोकः काकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत्।। १।।
न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः।
यदत्रानन्तरं कार्यं तत् समाधातुमर्हथ।। २।।
लोकवृत्तमनुष्ठेयं कृते वो वाष्पमोक्षणम्।
न कालादुत्तरं किंचित् कर्मशक्यमुपासितुम्।। ३।।

लक्ष्मण के साथ श्रीराम वानरों के शोक में उनके समान ही दुखी थे। उन्होंने तब सुग्रीव तथा अंगद सहित तारा से धीरज बँधाते हुए यह कहा कि शोक में तपने से मृत व्यक्ति की कोई भलाई नहीं होती। इसलिये अब जो आगे करना है, उसी कार्य को तुम्हें करना चाहिये। आपनें अब बहुत आँसू बहा लिये हैं। अब लौकिक कार्यों को भी करना चाहिये। समय बिता कर कोई काम करना ठीक नहीं।

इतः स्वां प्रकृतिं वाली गतः प्राप्तः क्रियाफलम्।
सामदानार्थसंयोगैः पवित्रं प्लवगेश्वरः।। ४।।
स्वधर्मास्य च संयोगाज्जितस्तेन महात्मना।
स्वर्गः परिगृहीतश्च प्राणानपरिरक्षता।। ५।।
एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः।
तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम्।। ६।।

वानरों के राजा बाली यहाँ से जा कर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो गए हैं। उन्होंने साम, दाम और धर्म के संयोग से किये हुए अपने पवित्र कार्यों के फल को प्राप्त किया है। अपने धर्म का पालन करते हुए बाली ने जिस स्वर्ग को जीता था, अब अपने प्राणों की रक्षा न करते हुए उन्होंने उसे प्राप्त कर लिया है। वानरों के यूथपति ने जिस गति को प्राप्त किया है, वह श्रेष्ठगति

है। इसलिये अब सन्ताप करना छोड़ो और समय के अनुसार कार्य करो।

वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा।
अवदत् प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम्।। ७।।
कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम्।
ताराङ्गदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति।। ८।।
समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च।
चन्दनानि च दिव्यानि वालिसंस्कारकारणात्।। ९।।
समाश्वासय दीनं त्वमङ्गदं दीनचेतसम्।
मा भूर्बालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदं पुरम्।। १०।।

राम की बात समाप्त हो जाने पर शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले लक्ष्मण चेतना रहित से बने हुए सुग्रीव से नम्रतापूर्वक बोले कि सुग्रीव! तुम इन बाली के प्रेत कार्यों को कराओ। बाली के दाह संस्कार में तुम तारा और अंगद के साथ रह कर काम करो। बाली के संस्कारों को कराने के लिये बहुत सारी सूखी लकड़ियाँ और दिव्यचन्दन आदि लाने के लिये आज्ञा दो। जिसका हृदय बहुत दुखी है, उस दीनता को प्राप्त हुए अंगद को धीरज बँधाओ। अब बच्चों जैसी बुद्धि मत बनाओ। सारा नगर अब तुम्हारे ही सहारे है।

अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च।
घृतं तैलमथो गन्धान् यच्चात्र समनन्तरम्।। ११।।
त्वं तार शिबिकां शीघ्रमादायागच्छसम्भ्रमात्।
त्वरा गुणवती युक्ता ह्यस्मिन् काले विशेषतः।। १२।।
सज्जीभवन्तु प्लवगाः शिबिकावाहनोचिताः।
समर्था बलिनश्चैव निर्हरिष्यन्ति वालिनम्।। १३।।

अंगद मालाएँ, तरह-तरह के वस्त्र, घी, तेल, सुगन्धित पदार्थ तथा जिनकी इस समय आवश्यकता है, सारे पदार्थ ले आवें। हे तार! तुम जल्दी से एक पालकी ले कर आओ, ऐसे समय शीघ्रता करना लाभदायक होता है। पालकी को उठाने वाले वानर तैयार हो जायें। जो इस कार्य में समर्थ हैं वे ही बाली को ले चलेंगे।

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सुमित्रानन्दवर्धनः।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थो लक्ष्मणः परवीरहा।। १४।।
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा तारः सम्भ्रान्तमानसः।
प्रविवेश गुहां शीघ्रं शिबिकासक्तमानसः।। १५।।
आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतत् पुनः।
वानरैरुह्यमानां तां शूरैरुद्वहनोचितैः।। १६।।

सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले, शत्रु के वीरों को समाप्त करने वाले लक्ष्मण सुग्रीव से ऐसा कह कर भाई के समीप जा कर खड़े हो गये। लक्ष्मण की बात सुन कर मन में हड़बड़ी के साथ तार पालकी को लाने के लिये शीघ्र ही किष्किंधा में गया। वहाँ से पालकी को ले कर वह पुनः वापिस आया। वह पालकी वहन करने में समर्थ वीर वानरों के द्वारा उठाई जा रही थी।

दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम्।
पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम्।। १७।।
आचितां चित्रपत्तीभिः सुनिविष्टां समन्ततः।
विमानमिव सिद्धानां जालवातायनायुताम्।। १८।।
सुनियुक्तां विशालां च सुकृतां शिल्पिभिः कृताम्।
दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम्।। १९।।
पुष्पौघैः समभिच्छन्नां पद्ममालाभिरेव च।
तरुणादित्यवर्णाभिर्भ्राजमानाभिरावृताम् ।। २०।।

वह पालकी रथ के समान बनी हुई थी। उसमें एक उत्तम आसन बना हुआ था। उसमें पक्षियों के तथा वृक्षों के चित्र बनाये हुए थे। वह चित्रित किये हुए पैदल सैनिकों से सब तरफ भरी हुई थी। उसमें जालियों वाली खिड़कियाँ बनी हुई थीं। वह पालकी आकृति में विशाल, सुघड़ और शिल्पियों की कारीगरी द्वारा सुन्दर रूप से बनाई हुई थी। उसमें लकड़ी के क्रीड़ा पर्वत बने हुए थे और उत्तम शिल्प कर्म से विभूषित थी। वह फूलों से सब तरफ सजायी हुई थी। उदय होते हुए सूर्य के समान वर्ण वाले कमलों की सुन्दर मालाओं के द्वारा वह सब तरफ से लपेटी हुई थी।

ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
क्षिप्रं विनीयतां वाली प्रेतकार्यं विधीयताम्।। २१।।
ततो वालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा।
आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेन सहैव तु।। २२।।
आरोप्य शिबिकां चैव वालिनं गतजीवितम्।
अलंकारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम्।। २३।।
आज्ञापयत् तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः।
और्ध्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलतः।। २४।।

इस प्रकार की उस शिबिका को देख कर राम ने लक्ष्मण से कहा कि अब बाली को जल्दी ले चलो और अन्त्येष्टि कर्म को कराओ। तब सुग्रीव ने अंगद के साथ विलाप करते हुए बाली के शरीर को उठा कर उस शिबिका में रखा। मृत बाली के शरीर को शिविका में रख कर उसे विविध प्रकार के वस्त्रों, मालाओं, और अलंकारों से विभूषित किया गया। तब वानरों के राजा

सुग्रीव ने आज्ञा दी कि श्रीमान बाली का अन्त्येष्टि संस्कार पूरे विधि विधान के साथ किया जाये।

विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च।
अग्रतः प्लवगा यान्तु शिबिका तदनन्तरम्।। २५।।
राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः।
तादृशैरिह कुर्वन्तु वानर भर्तृसत्क्रियाम्।। २६।।
तादृशं वालिनः क्षिप्रं प्राकुर्वन्नौर्ध्वदेहिकम्।
अङ्गदं परिरभ्याशु तारप्रभृतयस्तथा।। २७।।
क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः।
ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतबान्धवाः।। २८।।
अनुजग्मुश्च भर्तारं क्रोशन्त्यः करुणस्वनाः।

सुग्रीव ने कहा कि आगे-आगे अनेक प्रकार के और बहुत से रत्नों को बिखेरते हुए वानर लोग चलें और उनके पीछे शिबिका चले। हे वानरों! राजाओं के अन्त्येष्टि कर्म संसार में जैसे समृद्धि के साथ किये जाते हैं वैसे ही मेरे भाई का आप लोग अन्त्येष्टि संस्कार करें। तब तार आदि वानरों ने उसी प्रकार का बाली की अन्त्येष्टि क्रिया का प्रबन्ध किया। सारे वानर जिनके बन्धु बाली मारे गये थे, अंगद को हृदय से लगा कर और रोते हुए, शीघ्रता के साथ शव के साथ चले। तारा आदि सारी वानर स्त्रियाँ, जिनके पति बाली मारे गये थे, करुण स्वर में विलाप करती हुईं उनके पीछे-पीछे गयीं।

तासां रुदितशब्देन वानरीणां वनान्तरे।। २९।।
वनानि गिरयश्चैव विक्रोशन्तीव सर्वतः।
पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते।। ३०।।
चितां चक्रुः सुबहवो वानरा वनचारिणः।
अवरोप्य ततः स्कन्धाच्छिबिकां वानरोत्तमाः।। ३१।।
तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोकपरायणाः।
ततस्तारा पतिं दृष्ट्वा शिबिकातलशायिनम्।। ३२।।
आरोप्याङ्के शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता।

उन वानर स्त्रियों के उस वन में रोते हुए, उस रुदन ध्वनि के गूँजने से वन और पर्वत भी सब तरफ से विलाप करते हुए से प्रतीत हो रहे थे। पहाड़ी नदी के एकान्त और जल से घिरे किनारे पर, वनचारी बहुत से वानरों ने मिल कर चिता बनाई। तब उन श्रेष्ठ वानरों ने अपने कन्धों से शिबिका को उतारा और वे शोक मग्न सारे एकान्त में जा कर बैठे। तब अत्यधिक दुखी तारा ने शिबिका में सुलाये अपने पति को देख कर उसके सिर को अपनी गोद में रखा और वह विलाप करने लगी।

हा वानरमहाराज हा नाथ मम वत्सल।। ३३।।
हा महार्ह महाबाहो हा मम प्रिय पश्य माम्।
जनं न पश्यसीमं त्वं कस्माच्छोकाभिपीडितम्।। ३४।।
प्रहृष्टमिह ते वक्त्रं गतासोरपि मानद।
अस्तार्कसमवर्णं च दृश्यते जीवतो यथा।। ३५।।

हाय वानरों के राजा, हे मुझसे प्रेम करने वाले मेरे स्वामी, हे परमपूजनीय, हे महाबाहु, हे मेरे प्रिय, आप मुझे देखिये। इस शोक से पीड़ित दासी को आप क्यों नहीं देख रहे हैं। हे दूसरों को सम्मान देने वाले! अस्त होते हुए सूर्य के समान कान्ति वाला आपका मुख मृत्यु के पश्चात् भी हँसता हुआ दिखाई दे रहा हे, जैसे जीवित अवस्था में दिखाई देता था।

तवेष्टा ननु चैवेमा भार्याश्चन्द्रनिभाननाः।
इदानीं नेक्षसे कस्मात् सुग्रीवं प्लवगेश्वर।। ३६।।
एते हि सचिवा राजंस्तारप्रभृतयस्तव।
पुरवासिजनश्चायं परिवार्य विषीदति।। ३७।।
विसर्जयैनान् सचिवान् यथापुरमरिंदम।
ततः क्रीडामहे सर्वा वनुषु मदनोत्कटाः।। ३८।।
एवं विलपतीं तारां पतिशोकपरीवृताम्।
उत्थापयन्ति स्म तदा वानर्यः शोककर्शिताः।। ३९।।

चन्द्रमा के समान मुखवाली ये तुम्हारी प्रिय पत्नियाँ यहाँ उपस्थित हैं। हे वानराधीश! अब आप इनको तथा सुग्रीव को नहीं देख रहे हैं। हे राजन! ये तुम्हारे तार आदि सचिव और नगरवासी तुम्हें घेर कर दुखी हो रहे हैं। हे शत्रुओं का दमन करने वाले! आप पहले की तरह से इन सचिवों को विदा कीजिये। फिर हम प्रेम में भर कर आपके साथ वनों में क्रीड़ा करेंगी। इस प्रकार पति के शोक में डूबी हुई और विलाप करती हुई तारा को शोक में दुर्बल दूसरी वानर स्त्रियों ने उठाया।

सुग्रीवेण ततः सार्धं सोऽङ्गदः पितरं रुदन्।
चितामारोपयामास शोकेनाभिप्लुतेन्द्रियः।। ४०।।
ततोऽग्निं विधिवद् दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः।। ४१।।
सुग्रीवेणेव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः।
समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत्।। ४२।।

सुग्रीव के साथ तब रोते हुए अंगद ने पिता को चिता पर लिटाया। उस समय उसकी सारी इन्द्रियाँ शोक से भर रहीं थी। फिर चिता को विधि पूर्वक अग्नि देकर उसने अपने यज्ञोपवीत को दायें कन्धे पर कर लिया।

पिता को लम्बी यात्रा पर गया हुआ देख कर उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रहीं थीं। महाबली श्रीराम ने भी, जिन्हें वानरों के समान ही शोक हो रहा था, दीनता के साथ दीन बने हुए सुग्रीव के साथ बाली के अन्त्येष्टि कर्म की क्रियाएँ करायीं।

ततोऽथ तं वालिनमग्र्यपौरुषं
प्रकाशमिक्ष्वाकुवरेषुणा हतम्।
प्रदीप्य दीप्ताग्निसमौजसं तदा
सलक्ष्मणं राममुपेयिवान् हरिः।। ४३।।

तब श्रेष्ठ पराक्रमी, प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, प्रकाश से युक्त तथा इक्ष्वाकुवर राम के बाण से मारे हुए बाली के अन्त्येष्टि कर्म को कर सुग्रीव लक्ष्मण के साथ राभ के पास आये।

चौबीसवाँ सर्ग

श्रीराम की आज्ञा से सुग्रीव और अंगद का अभिषेक तथा स्वयं वर्षा के चार मास प्रस्रवण गिरि पर बिताने का निश्चय।

ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः।। १।।
भवत्प्रसादात् काकुत्स्थ पितृपैतामहं महत्।
वानराणाम् सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो।। २।।
भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम्।
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृद्गणः।। ३।।
स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि।
अर्चयिष्यति माल्यैश्च रत्नैश्च त्वां विशेषतः।। ४।।
इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुं त्वमर्हसि।

तब सुनहले पर्वत के समान कान्तिवाले और उदय होते हुए बाल सूर्य के समान मुख वाले वायु पुत्र हनुमान ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे काकुत्स्थ नन्दन! आपकी कृपा से पिता और पितामह का यह विशाल वानरों का राज्य जो कि दुष्प्राप्य था, सुग्रीव को मिल गया है। हे प्रभो! अब आपकी आज्ञा से ये अब इस पवित्र नगर में प्रविष्ट हो कर मित्रों के साथ सारे राजकीय कार्यों का विधान करेंगे। ये विधि के अनुसार अनेक प्रकार की गन्धों और ओषधियों से युक्त जल से अभिषेक संबंधी स्नान करेंगे और आपकी विशेष रूप से मालाओं और रत्नों से पूजा करेंगे। इस लिये आप इस पर्वतीय गुफा के मार्ग से सुन्दर नगरी में आइये।

एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा।। ५।।
प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान् वाक्यकोविदः।
चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम्।। ६।।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निर्देशपालकः।
सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभः।। ७।।
प्रविष्टो विधिवद् वीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम्।
एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत्।। ८।।
वृत्तज्ञो वृत्तसम्पन्नमुदारबलविक्रमम्।
इममप्यङ्गदं वीरं यौवराज्येऽभिषेचय।। ९।।

हनुमान के यह कहने पर शत्रुवीरों का संहार करने वाले बुद्धिमान और बात करने में चतुर श्रीराम ने हनुमान को उत्तर दिया कि हे सौम्य! मैं पिता के निर्देश का पालन करते हुए चौदह वर्ष तक किसी ग्राम या नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। वानरश्रेष्ठ सुग्रीव सुसमृद्ध नगरी किष्किंधा में गुहाद्वार से प्रवेश करें और विधि के अनुसार शीघ्र ही इनका राज्य पर अभिषेक कराया जाये। हनुमान जी से ऐसा कह कर राम ने सुग्रीव से कहा कि आप लौकिक आचारों को जानने वाले हैं, इसलिये इस वीर अंगद का भी, जो सदाचार से युक्त और महान बल विक्रमशाली है, यौवराज्य पर अभिषेक कराओ।

ज्येष्ठस्य हि सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण च।
अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम्।। १०।।
पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः।
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिक संज्ञिताः।। ११।।

यह अंगद तुम्हारे बड़े भाई का ज्येष्ठ पुत्र है, पराक्रम में यह उन्हीं के समान है और उदार हृदय है, अतः यह यौवराज्य पद का अधिकारी है। हे सौम्य! वर्षा ऋतु से सम्बन्ध रखने वाले ये चार मास आरम्भ हो गये हैं। अर्थात इन चारों में पहला मास आषाढ़ आरम्भ हो चुका है और वर्षाऋतु का सावन का महीना, जो कि जल का भण्डार है, आरम्भ होने के लिये विद्यमान है।

नोटः – भारतवर्ष में ऋतुओं की गणना जब स्थूल रूप से की जाती है तब चार-चार मास के हिसाब से वर्ष में केवल

तीन ऋतुएँ गर्मी, वर्षा और शीत ऋतु मानी जाती हैं। तब वर्षा के चार मास, जिन्हें चौमासा भी कहते हैं, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन माने जाते हैं। पर जब सूक्ष्म रूप से ऋतुओं की गणना की जाती है, तब वर्ष में छः ऋतुएँ मानी जाती हैं। प्रत्येक ऋतु के दो मास के हिसाब से वर्षा ऋतु के दो मास श्रावण और भाद्रपद माने जाते हैं।

वास्तव में श्रावण और भाद्रपद वर्षा के प्रमुख मास हैं। आषाढ़ और आश्विन में किसी वर्ष वर्षा होती है और किसी वर्ष नहीं। अतः पहले यात्राओं का विराम कम से कम दो मास के लिये होता था।

नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम्।
अस्मिन् वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः।। १२।।
इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता।
प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला।। १३।।
कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत।
एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम्।। १४।।
अभिषिञ्चस्व राज्ये च सुहृदः सम्प्रहर्षय।

यह उद्योग करने का समय नहीं है। तुम सुन्दर नगरी में प्रवेश करो। हे सौम्य! मैं लक्ष्मण के साथ इस पर्वत पर निवास करूँगा। यह पहाड़ी गुफा, सुन्दर, विशाल, और वायु के आवागमन से युक्त है। यहाँ जल भी पर्याप्त है और कमल तथा उत्पल भी बहुत हैं। कार्तिक के आने पर तुम रावण के वध के लिये यत्न करना। यह हमारा निश्चय है। हे सौम्य! अब तुम अपने घर जाओ। राज्य पर अपना अभिषेक कराओ और मित्रों का हर्ष बढ़ाओ।

इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानरर्षभः।। १५ ।।
प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धां वालिपालिताम्।
तं वानरसहस्राणि प्रविष्टं वानरेश्वरम्।। १६।।
अभिवार्य प्रविष्टानि सर्वतः प्लवगेश्वरम्।
ततः प्रकृतयः सर्वा दृष्ट्वा हरिगणेश्वरम्।। १७।।
प्रणम्य मूर्ध्ना पतिता वसुधायां समाहिताः।

राम के द्वारा इस प्रकार आदेश देने पर वानर श्रेष्ठ सुग्रीव ने बाली के द्वारा पहले पालन की हुई उस सुन्दर नगरी किष्किधा में प्रवेश किया। नगर में प्रवेश किये हुए उस वानरों के राजा को चारों तरफ से घेर कर हजारों वानर भी उसके साथ नगर में प्रविष्ट हुए। तब सारी प्रजा ने उस वानरों के राजा को देख कर सावधानी के साथ भूमि पर माथा टिका कर उसे प्रणाम किया।

ततस्ते वानरश्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधि।। १८।।
रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान्।
ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम्।। १९।।
मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः।
ततो हेमप्रतिष्ठाने वरास्तरणसंवृते।। २०।।
प्रासादशिखरे रम्ये चित्रमाल्योपशोभिते।
प्राङ्मुखं विधिवन्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने।। २१।।

तब उन्होंने उस वानर श्रेष्ठ सुग्रीव का अभिषेक करने के लिये रत्नों, खाद्य पदार्थ तथा वस्त्रों से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके विधि के अनुसार कार्य आरम्भ किया। मन्त्रवेत्ता पुरुषों ने कुशाओं को बिछा कर समिधाओं से अग्नि की साधना की और मंत्रों से पवित्र सामग्री के द्वारा आहुतियाँ दीं। फिर महल की सुन्दर छत पर सुन्दर मालाओं से सुशोभित, रमणीय और सोने के बने तथा उत्तम आसन बिछाये हुए सिंहासन पर सुग्रीव को मन्त्रोच्चारण के साथ विधिपूर्वक, पूर्व दिशा की तरफ मुख करके बिठाया गया।

शुभैर्ऋषभशृङ्गैश्च कलशैश्चैव काञ्चनैः।
शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च।। २२।।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा।। २३।।
अभ्यषिञ्चत सुग्रीवं प्रसन्नेन सुगन्धिना।

पुनः शास्त्रोक्त तथा ऋषियों के द्वारा समर्थित विधि के अनुसार गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान और जाम्बवान ने पवित्र साँड के सीगों से, सुवर्ण कलशों से स्वच्छ और सुगन्धित जल से सुग्रीव का अभिषेक किया।

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे सर्वे वानरपुङ्गवाः।। २४।।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानो हृष्टाः शतसहस्रशः।
रामस्य तु वचः कुर्वन् सुग्रीवो वानरेश्वरः।। २५।।
अङ्गदं सम्परिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत्।
अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवंगमाः।
साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानो ह्यपूजयन्।। २६।।

सुग्रीव का अभिषेक होने पर सारे महात्मा वानर सेनापति, जो वहाँ सैकड़ों और हजारों की संख्या में उपस्थित थे, प्रसन्नता के साथ जय जयकार करने लगे। राम की आज्ञा का पालन करते हुए वानरेश्वर सुग्रीव के अंगद को हृदय से लगा कर उसका यौवराज्य पद पर अभिषेक किया। अंगद का अभिषेक हो जाने पर दयालु और महात्मा वानर लोग साधु-साधु ऐसा कह कर सुग्रीव की प्रशंसा करने लगे।

पच्चीसवाँ सर्ग

प्रस्रवण गिरि पर श्रीराम और लक्ष्मण का वार्तालाप।

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्।
आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम्।। १।।
शार्दूलमृगसंघुष्टं सिंहैर्भीमरवैर्वृतम्।
नानागुल्मलतागूढं बहुपादपसंकुलम्।। २।।
ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्च निषेवितम्।
मेघराशिनिभं शैलं नित्यं शुचिकरं शिवम्।। ३।।
तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम्।
प्रत्यगृह्णीत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह।। ४।।

सुग्रीव का अभिषेक हो जाने पर तथा उसके किष्किंधा नगरी में चले जाने पर श्रीराम अपने भाई के साथ प्रस्रवण पर्वत पर चले गये। वह पर्वत व्याघ्र और मृगों से भरा हुआ था। वहाँ सिंहों की भयानक आवाज गूँजती रहती थी। अनेक प्रकार की झाड़ियों और लताओं ने उसे आच्छादित किया हुआ था। और तरह-तरह के वृक्षों से वह व्याप्त था। वहाँ रीछ, बन्दर, लंगूर और बिलाव रहते थे। बादलों के समूह जैसा दिखाई देने वाला वह पवित्र पर्वत सदा कल्याण से युक्त था। राम ने लक्ष्मण के साथ उस पर्वत पर एक बड़ी और लम्बी गुफा का रहने के लिए आश्रय लिया।

कृत्वा च समयं रामः सुग्रीवेण सहानघः।
कालयुक्तं महद्वाक्यमुवाच रघुनन्दनः।। ५।।
विनीतं भ्रातरं भ्राता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम्।
इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता।। ६।।
अस्यां वत्स्याम सौमित्रे वर्षरात्रमरिंदम।

उस निष्पाप श्रीराम ने सुग्रीव के साथ काल सम्बन्धी वर्षा व्यतीत होने का समझौता किया था। उन्होंने लक्ष्मी की वृद्धि करने वाले अपने विनीत भाई लक्ष्मण से यह बात कही कि हे शत्रुओं का दमन करने वाले सुमित्रा पुत्र! यह पर्वतीय गुफा बड़ी और वायु के आवागमन से युक्त है। हम वर्षा की रातों में यहीं रहेंगे।

गिरिशृङ्गमिदं रम्यमुत्तमं पार्थिवात्मज।। ७।।
श्वेताभिः कृष्णताम्राभिः शिलाभिरुपशोभितम्।
नानाधातुसमाकीर्णं नदीदर्दुरसंयुतम्।। ८।।
विविधैर्वृक्षखण्डैश्च चारुचित्रलतायुतम्।
नानाविहगसंघुष्टं मयूरवरनादितम्।। ९।।

हे राजकुमार! पर्वत का यह शिखर रमणीय और उत्तम है। यह सफेद, काली ओर ताम्रवर्ण की शिलाओं से सुशोभित है। यह अनेक प्रकार की धातुओं से व्याप्त है। यहाँ नदी में रहने वाले मेंढक भी हैं। यह अनेक प्रकार के वृक्ष समूहों तथा विचित्र और सुन्दर लताओं से भरा हुआ है। अनेक प्रकार के पक्षियों का यह निवास स्थान है तथा मोरों की सुन्दर ध्वनि यहाँ गूँजती रहती है।

मालतीकुन्दगुल्मैश्च सिन्दुवारैः शिरीषकैः।
कदम्बार्जुनसर्जैश्च पुष्पितैरुपशोभितम्।। १०।।
इयं च नलिनी रम्या फुल्लपङ्कजमण्डिता।
नातिदूरे गुहाया नौ भविष्यति नृपात्मज।। ११।।

खिले हुए फूलों वाली मालती, कुन्द की झाड़ियों, सिन्दुवार, शिरीष, कदम्ब, अर्जुन तथा सर्ज के खिले हुए वृक्षों से यह प्रदेश सुशोभित हो रहा है। हे राजकुमार! यह सुन्दर पुष्करिणी, जो कि, खिले हुए कमलों से भरी हुई है, हमारी इस गुफा से अधिक दूर नहीं होगी।

प्रागुदक्प्रवणे देशे गुहा साधु भविष्यति।
पश्चाच्चैवोन्नता सौम्य निवातेयं भविष्यति।। १२।।
गुहाद्वारे च सौमित्रे शिला समतला शिवा।
कृष्णा चैवायता चैव भिन्नाञ्जनचयोपमा।। १३।।
गिरिशृङ्गमिदं तात पश्य चोत्तरतः शुभम्।
भिन्नाञ्जनचयाकारमम्भोधरमिवोदितम् ।। १४।।
दक्षिणस्यामपि दिशि स्थितं श्वेतमिवाम्बरम्।
कैलासशिखरप्रख्यं नानाधातुविराजितम्।। १५।।

हे सौम्य! पूर्वोत्तर दिशा के ढालू स्थान पर बनी हुई यह गुफा जो कि पीछे से ऊँची और आगे से नीची है, हमें वायु से बचाने वाली तथा आरामदायक होगी। हे सौमित्रे! गुफा के द्वार पर एक समतल शिला है। यह खान से निकाले हुए कोयले के ढेर के समान काली, आयताकार तथा आरामदायक है। हे तात! देखो यह पर्वत शिखर उत्तर की तरफ से खान से काटे हुए कोयले के ढेर के तथा बादलों के समान सुन्दर दिखाई दे रहा है, पर दक्षिण दिशा में यह अनेक धातुओं से युक्त, श्वेत बादलों तथा कैलाश पर्वत के समान प्रतीत हो रहा है।

प्राचीनवाहिनीं चैव नदीं भृशमकर्दमाम्।
गुहायाः परतः पश्य त्रिकूटे जाह्नवीमिव।। १६।।
चन्दनैस्तिलकैः सालैस्तमालैरतिमुक्तकैः।
पद्मकैः सरलैश्चैव अशोकैश्चैव शोभिताम्।। १७।।
वानीरैस्तिमिदैश्चैव बकुलैः केतकैरपि।
हिन्तालैस्तिनिशैर्नीपैर्वेतसैः कृतमालकैः।। १८।।
तीरजैः शोभिता भाति नानारूपैस्ततस्ततः।
वसनाभरणोपेता प्रमदेवाभ्यलंकृता।। १९।।

गुफा के दूसरी तरफ पूर्व की तरफ बहने वाली इस नदी को देखो। यह चित्रकूट पर्वत के समीप बहने वाली गंगा के समान लग रही है। इसमें कीचड़ नाम मात्र को भी नहीं है। यह नदी चन्दन तिलक, साल, तमाल, अतिमुक्तक, पद्मक, सरल और अशोक के वृक्षों से सुशोभित हो रही है। अपने किनारे पर विद्यमान वानीर, तिमिद, बकुल, केतक हिन्ताल, तिनिश, नीप, वेतस, कृतमाल, आदि नाना रूप वृक्षों से जहाँ तहाँ शोभित होती हुई यह नदी वस्त्राभूषणों से सुशोभित स्त्री के समान प्रतीत हो रही है।

शतशः पक्षिसङ्घैश्च नानानादविनादिता।
एकैकमनुरक्तैश्च चक्रवाकैरलंकृता।। २०।।
पुलिनैरतिरम्यैश्च हंससारससेविता।
प्रहसन्त्येव भात्येषा नानारत्नसमन्विता।। २१।।
क्वचिन्नीलोत्पलैश्छन्ना भातिरक्तोत्पलैः क्वचित्।
क्वचिदाभाति शुक्लैश्च दिव्यैः कुमुदकुड्मलैः।। २२।।

यहाँ सैकड़ों प्रकार के पक्षियों के समूहों का तरह-तरह का कलरव गूँज रहा है। परस्पर अनुरक्त हुए चकवा और चकवी इस स्थान की शोभा बढ़ा रहे हैं। इस नदी के किनारे बड़े सुन्दर है। यहाँ हंस और सारस विद्यमान हैं। जगमगाते हुए छोटे-छोटे चमकीले पत्थरों के कारण यह नदी हँसती हुई सी जान पड़ रही है। कहीं यह नीले उत्पलों से व्याप्त है तो कहीं लाल कमलों से और कहीं यह श्वेत ओर दिव्य कुमुद की कलियों से सुशोभित हो रही है।,

पारिप्लवशतैर्जुष्टा बर्हिक्रौञ्चविनादिता।
रमणीया नदी सौम्य मुनिसङ्घनिषेविता।। २३।।
पश्य चन्दनवृक्षाणां पङ्क्तीः सुरुचिरा इव।
ककुभानां च दृश्यन्ते मनसैवोदिताः समम्।। २४।।

मुनियों के समूह इस नदी का सेवन कर रहे हैं। सैकड़ों तैरते हुए पक्षी यहाँ विद्यमान हैं। मोर तथा क्रौञ्च पक्षी चहचहा रहे हैं, यह नदी वास्तव में बड़ी रमणीय है। देखो! मन के सुन्दर संकल्पों के समान चन्दन तथा कुटज के वृक्षों की ये पंक्तियाँ कितनी सुन्दर लग रही हैं।

अहो सुरमणीयोऽयं देशः शत्रुनिषूदन।
दृढं रंस्याव सौमित्रे साध्वत्र निवसावहे।। २५।।
इतश्च नातिदूरे सा किष्किन्धा चित्रकानना।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या भविष्यति नृपात्मज।। २६।।
गीतवादित्रनिर्घोषः श्रूयते जयतां वर।
नदतां वानराणां च मृदङ्गाडम्बरैः सह।। २७।।
लब्ध्वा भार्यां कपिवरः प्राप्य राज्यं सुहृद्वृतः।
ध्रुवं नन्दति सुग्रीवः सम्प्राप्य महतीं श्रियम्।। २८।।

हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले सौमित्र। यह देश बड़ा सुन्दर है। हमारा मन यहाँ खूब लगेगा, हम यहाँ अच्छी तरह से रहेंगे। सुन्दर बगीचों वाली सुग्रीव की नगरी, सुन्दर किकिंधा, हे राजकुमार! यहाँ से दूर नहीं है। हे विजयी वीरों में श्रेष्ठ! गर्जते हुए वानरों का मृदंग की आवाज के साथ गीत और वाद्ययन्त्रों का घोष यहाँ सुनाई दे रहा है। वानरश्रेष्ठ सुग्रीव! अपनी पत्नी को लेकर, विशाल राज्य को प्राप्त कर और महान ऐश्वर्य पर अधिकार कर निश्चित रूप से आनन्द माना रहे हैं।

इत्युक्त्वा न्यवसत् तत्र राघवः सहलक्ष्मणः।
बहुदृश्यदरीकुञ्जे तस्मिन् प्रस्रवणे गिरौ।। २९।।
सुसुखे हि बहुद्रव्ये तस्मिन् हि धरणीधरे।
वसतस्तस्य रामस्य रतिरल्पापि नाभवत्।। ३०।।
हृतां हि भार्यां स्मरतः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।
उदयाभ्युदितं दृष्ट्वा शशाङ्कं च विशेषतः।। ३१।।
आविवेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम्।

ऐसा कह कर श्रीराम लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण, पर्वत पर, जहाँ बहुत सी कन्दराएँ और कुंज दिखाई देते थे, रहने लगे। पर उस सुखों से युक्त और बहुत से पदार्थों वाले पर्वत पर रहते हुए भी अपनी प्राणों से प्यारी अपहृत भार्या को याद करते हुए श्रीराम को थोड़ा भी सुख नहीं मिलता था। विशेष कर उदय हो कर ऊपर उठते हुए चन्द्रमा को देख कर तो सोने के लिये शय्या पर लेट जाने पर भी उन्हें नींद नहीं आती थी।

तत्समुत्थेन शोकेन बाष्पोपहतचेतनम्।। ३२।।
तं शोचमानं काकुत्स्थं नित्यं शोकपरायणम्।
तुल्यदुःखोऽब्रवीद्भ्राता लक्ष्मणोऽनुनयं वचः।। ३३।।

उस उमड़ते हुए शोक से, बहते हुए आँसुओं के कारण, चेतना रहित से हुए, शोक से मग्न तथा सदा दुःख में ही लगे हुए उन काकुत्स्थ से उनके ही समान दुखी, उनके भ्राता लक्ष्मण विनय के साथ यह बोले कि–

अलं वीर व्यथां गत्वा न त्वं शोचितुमर्हसि।
शोचतो ह्यवसीदन्ति सर्वार्था विदितं हि ते।। ३४।।
भवान् क्रियापरो लोके भवान् देवपरायणः।
आस्तिको धर्मशीलश्च व्यवसायी च राघव।। ३५।।
न ह्यव्यवसितः शत्रुं राक्षसं तं विशेषतः।
समर्थस्त्वं रणे हन्तुं विक्रमे जिह्मकारिणम्।। ३६।।
समुन्मूलय शोकं त्वं व्यवसायं स्थिरीकुरु।
ततः सपरिवारं तं राक्षसं हन्तुमर्हसि।। ३७।।

हे वीर! अब व्यथित होना बन्द करो। आपको शोक नहीं करना चाहिये। शोक करने वालों के मनोरथ सिद्ध नहीं होते। यह सारी बात आपको पता ही है। आप संसार में कर्मठ वीर हैं। आप विद्वानों का सत्कार करते हैं। हे राम! आप परमात्मा पर विश्वास करते हैं। धर्म का पालन करते हैं और उद्यमी हैं। यदि आप शोक वश उद्यम को छोड़ देंगे तो आप पराक्रम से पूर्ण उस युद्ध में अपने शत्रु उस राक्षस को, जो विशेष रूप से कुटिल कर्म करने वाला है, नहीं मार सकेंगे। इसलिये आप शोक को उखाड़ फैंको और अपने आपको उद्योग में स्थिर करो। तभी आप उस राक्षस को परिवार सहित नष्ट कर सकेंगे।

शरत्कालं प्रतीक्षस्व प्रावृट्कालोऽयमागतः।
ततः सराष्ट्रं सगणं रावणं तं वधिष्यसि।। ३८।।
अहं तु खलु ते वीर्यं प्रसुप्तं प्रतिबोधये।
दीप्तैराहुतिभिः काले भस्मच्छन्नमिवानलम्।। ३९।।
लक्ष्मणस्य हि तद् वाक्यं प्रतिपूज्य हितं शुभम्।
राघवः सुहृदं स्निग्धमिदं वचनमब्रवीत्।। ४०।।

यह वर्षा का समय आ गया है, आप शरद ऋतु की प्रतीक्षा कीजिये। उसके पश्चात् आप देश तथा सेना सहित रावण का वध करेंगे। मैं तो आपके सोये हुए पराक्रम को जागृत कर रहा हूँ, जैसे राख में छिपी अग्नि को हवन के समय आहुतियों के द्वारा प्रज्वलित किया जाता है। तब लक्ष्मण के उन कल्याणकारी सुन्दर वाक्यों का समादर कर श्रीराम अपने मित्र लक्ष्मण से प्रेम पूर्वक यह बोले।

वाच्यं यदनुरक्तेन स्निग्धेन च हितेन च।
सत्यविक्रमयुक्तेन तदुक्तं लक्ष्मण त्वया।। ४१।।
एष शोकः परित्यक्तः सर्वकार्यावसादकः।
विक्रमेष्वप्रतिहतं तेजः प्रोत्साहयाम्यहम्।। ४२।।
शरत्कालं प्रतीक्षिष्ये स्थितोऽस्मि वचने तव।
सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादमनुपालयन्।। ४३।।
उपकारेण वीरस्तु प्रतिकारेण युज्यते।
अकृतज्ञोऽप्रतिकृतो हन्ति सत्त्ववतां मनः।। ४४।।

जैसी बात एक सत्य, पराक्रमी, अनुरागी, स्नेही तथा हितैषी व्यक्ति को करनी चाहिये हे लक्ष्मण! तुमने वैसी ही बात मुझसे कही है। अब मैंने सारे कार्यों को नष्ट करने वाले इस शोक को छोड़ दिया है। अब मैं पराक्रम में न रोके जा सकने वाले अपने तेज को बढ़ा रहा हूँ। अब मैं तुम्हारी बात मानता हूँ। मैं सुग्रीव की प्रसन्नता और नदियों की स्वच्छता की राह देखता हुआ शरद् ऋतु की प्रतीक्षा करूँगा। जो वीर होता है वह उपकार का बदला अवश्य चुकाता है। पर जो कृतघ्न बन कर बदला नहीं चुकाता, वह शक्तिशाली व्यक्तियों के मन को ठेस पहुँचाता है।

तदेव युक्तं प्रणिधाय लक्ष्मणः
कृताञ्जलिस्तत् प्रतिपूज्य भाषितम्।
उवाच रामं स्वभिरामदर्शनं
प्रदर्शयन् दर्शनमात्मनः शुभम्।। ४५।।

लक्ष्मण ने श्रीराम के उस कथन को उचित मान कर उसकी प्रशंसा की और हाथ जोड़ कर अपने सुन्दर व्यक्तित्व का प्रदर्शन करते हुए रमणीय रूप वाले राम से बोले कि –

यथोक्तमेतत् तव सर्वमीप्सितं
नरेन्द्र कर्ता नचिरात् तु वानरः।
शरत्प्रतीक्षः क्षमतामिमं भवान्
जलप्रपातं रिपुनिग्रहे धृतः।। ४६।।

आपने जैसा कहा है, आपकी सारी मनचाही बात को हे राजन्! वह वानरराज जल्दी ही पूरा करेंगे। आप शत्रु को वश में करने का संकल्प लिये हुए इस वर्षा के समय को सहन कीजिये और शरद् ऋतु की प्रतीक्षा कीजिये।

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा वर्षा ऋतु का वर्णन।

वसन् माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
अयं स कालः सम्प्राप्तः समयोऽद्य जलागमः।। १।।
सम्पश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसंनिभैः।
नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।। २।।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्।
संध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वपि च पाण्डुभिः।। ३।।
स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ।

उसके पश्चात् माल्यवान पर्वत के पृष्ठ भाग में रहते हुए श्रीराम लक्ष्मण से कहने लगे कि देखो यह जल की प्राप्ति करने का समय आ गया है। इस समय आकाश पर्वताकार मेघों से आवृत्त हो गया है। आकाशरूपी तरुणी ने नौ मास तक सूर्य की किरणों के द्वारा समुद्रों का रस पीते हुए गर्भ को धारण किया था, अब वह जलरूपी अमृत को जन्म दे रही है। जो बादलों के टुकड़े सन्ध्या समय की लाली के उमड़ने से ताम्रवर्ण के तथा किनारों पर पौण्डु रंग के हैं, उनसे भरा हुआ आकाश ऐसे प्रतीत होता है, जैसे उसने अपने रक्त बहाते हुए घाव पर कपड़े की पट्टी बाँध रखी हो।

मन्दमारुतनिःश्वासं संध्याचन्दनरञ्जितम्।। ४।।
आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम्।
एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता।। ५।।
सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति।
मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदलशीतलाः।। ६।।
शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः।
एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः।। ७।।
सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते।

यह गर्मी से तपती हुई, पर अब नये जल से भीगी हुई भूमि शोक सन्तप्त सीता के समान गर्म साँसों अर्थात् गर्म वायु का त्याग कर रही है। मेघों के बीच में से निकली, कपूर की डली के समान ठंडी और केवड़े की सुगन्ध से भरी हुई वायु को मानों अञ्जलि में भर भर कर पिया जा सकता है। खिले हुए फूलों वाले अर्जुन के वृक्षों से भरा हुआ और केवड़े की गन्ध से सुवासित इस पर्वत का उस सुग्रीव के समान, जिसके शत्रु शान्त हो गये हैं, वर्षा की धाराओं से अभिषेक किया जा रहा है।

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः।। ८।।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः।
कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम्।। ९।।
अन्तःस्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम्।
नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।। १०।।
स्फुरन्ती रावणास्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी।

बादल रूपी काले मृगचर्म को धारण करने वाले, वर्षा की धाराओं रूपी यज्ञोपवीत को धारण करने वाले, वायु से भरी हुई गुफाओं के समान हृदय में जिन्होंने साँस को भर रखा है, ऐसे वेदाध्यापन करने वाले ब्रह्मचारियों के समान ये पर्वत प्रतीत हो रहे हैं। चमकती हुई बिजलियाँ ऐसे प्रतीत हो रही हैं, जैसे सोने के बने हुए कोड़े हों। बिजली के चमकने से आकाश में जो ध्वनि होती है, वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे सुनहरे कोड़ों की मार से आकाश आर्त नाद कर रहा हो। नीले मेघों के बीच में प्रकाशित होती हुई विद्युत् मुझे ऐसी प्रतीत होती है जैसे बेचारी तपस्विनी सीता इस समय रावण के अंक में छटपटा रही हो।

इमास्ता मन्मथवतां हिताः प्रतिहता दिशः।। ११।।
अनुलिप्ता इव घनैर्नष्टग्रहनिशाकराः।
क्वचिद् बाष्पाभिसंरुद्धान् वर्षागमसमुत्सुकान्।। १२।।
कुजान् पश्य सौमित्रे पुष्पितान् गिरिसानुषु।
मम शोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान् स्थितान्।। १३।।

बादलों से भरी हुई ये दिशाएँ, जिनमें नक्षत्र और चन्द्रमा आदि नष्ट अर्थात् अदृश्य हो गये हैं तथा जिनमें पूर्व पश्चिम आदि का भेद भी प्रतीत नहीं हो रहा है, कामी लोगों के लिये हितकारी हो गयी हैं। हे सौमित्र! पर्वतों की चोटियों पर इन खिले हुए कुटज के वृक्षों को देखो, कहीं से भाप से घिरे हुए हैं तो कहीं ये वर्षा के आने पर अत्यन्त उत्सुक से दिखाई दे रहे हैं। ये वृक्ष शोक से घिरे हुए मेरी कामाग्नि को बढ़ा रहे हैं।

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायु-
निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्।। १४।।

इस समय धूल उड़नी बन्द हो गयी है। वायु शीतल हो गयी है। ग्रीष्म ऋतु के दोष शान्त हो गये हैं। राजाओं

ने अपनी यात्राएँ रोक दी हैं। परदेश में रहने वाले अपने-अपने देश को लौट रहे हैं।

सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः
प्रियान्विताः सम्प्रति चक्रवाकाः।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु
यानानि मार्गेषु न सम्पतन्ति।। १५।।

मानसरोवर पर रहने के इच्छुक हंस प्रस्थान कर रहे हैं। चकवे अपनी प्रियाओं से मिल रहे हैं। लगातार गिरते हुए पानी से रास्तों के टूट-फूट जाने के कारण अब उन पर रथ आदि यान नहीं चल रहे हैं।

क्वचित् प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति।
क्वचित्क्वचित् पर्वतसंनिरुद्धं
रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य।। १६।।

बादलों से भरा हुआ आकाश कहीं तो उनके थोड़ा छितराये हुए होने के कारण दिखाई दे जाता है और कहीं बादलों के घने हो जाने के कारण नहीं दिखाई देता। जैसे तरंग मालाओं के शान्त होने पर सागर का रूप कहीं तो पर्वतों की ओट में छिपा हुआ होता है और कहीं स्पष्ट रूप से दूर-दूर तक दिखाई देता हैं।

व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पै-
र्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम्।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं
शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति।। १७।।

नये वर्षा के जल को पहाड़ी नदियाँ तेजी से बहा रही हैं। वह जल सर्ज और कदम्ब के फूलों से मिला हुआ है और पर्वतीय धातुओं के मेल से ताम्रवर्ण का हो गया है। उस बहते हुए पानी की ध्वनि का बोलते हुए मोरों की ध्वनि अनुसरण कर रही है।

रसाकुलं षट्पदसंनिकाशं
प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम्।
अनेकवर्णं पवनावधूतं
भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम्।। १८।।

आजकल भौरों की आकृति वाले और रसीले जामुन के फल खूब खाये जाते हैं। वायु के झोकों से गिराये हुए रंग बिरंगे, पके हुए आम के फल भूमि पर गिरते रहते हैं।

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः
शैलेन्द्रकूटाकृतिसंनिकाशाः ।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा
मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः।। १९।।

जैसे युद्धस्थल में मतवाले हाथी चिंघाड़ते हैं, वैसे ही पर्वतीय शिखरों के समान आकृति वाले बादल भी, जिन्होंने विद्युत् रूपी पताकाएँ धारण की हुई हैं और बगुलों की पंक्तियाँ जिनकी मालाएँ हैं जोर-जोर से गर्जना कर रहे हैं।

वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि
प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि
पश्यापराह्णेष्वधिकं विभान्ति।। २०।।

घास वर्षा के जल से भरी हुई है। मोरों ने अपना नृत्य का उत्सव आरम्भ कर दिया है। बादलों ने जिन पर खूब जल बरसाया है, उन वनों की शोभा अपराह्न काल में अधिक दिखाई देती है।

समुद्वहन्तः सलिलातिभारं
बलाकिनो वारिधरा नदन्तः।
महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां
विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति।। २१।।

अत्यधिक पानी के बोझों को ढोते हुए, बगुलों की पंक्तियों से सुशोभित बादलों के झुण्ड गर्जना करते हुए और पर्वतों की चोटियों पर बीच-बीच में विश्राम करते हुए पुनः आगे की यात्रा आरम्भ करते हैं।

मेघाभिकामा परिसम्पतन्ती
सम्मोदिता भाति बलाकपंक्तिः।
वातावधूता वरपौण्डरीकी
लम्बेव माला रुचिराम्बरस्य।। २२।।

बगुलों की पंक्ति, जो बादलों को स्पर्श करने की इच्छा से आनन्द में मग्न हो कर आकाश में उड़ रही है, वह ऐसी प्रतीत हो रही है, जैसे आकाश के गले में सुन्दर श्वेत कमलों की माला वायु से लहराती हुई लटक रही हो।

बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन
विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण
नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन।। २३।।

नई उगी हरी घास और उनके बीच-बीच में वीर बधूटी नाम के लाल कीड़ों से सुशोभित भूमि उस स्त्री के समान प्रतीत हो रही है, जिसने तोते के रंग का ऐसा

शाल जिसमें लाख से चित्रकारी की हुई है, अपने शरीर पर लपेट रखा हो।

जाता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता
जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः।
जाता वृषा गोषु समानकामा
जाता मही सस्यवनाभिरामा।। २४।।

वन प्रान्तों में मोर उन्मत हो कर सुन्दर रीति से नृत्य कर रहे हैं। कदम्ब के वृक्ष फूलों और डालियों से युक्त हो गये हैं। साँड और गाय परस्पर कामना से भर गये हैं और भूमि हरियाली तथा वनों से सुन्दर लगने लगी है।

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगमाः।। २५।।

इस समय नदियाँ बह रही हैं, मेघ जल वर्षा कर रहे हैं, मस्त हाथी चिंघाड़ रहे हैं, वन प्रदेश सुशोभित हो रहे हैं, वियोगी लोग प्रियतमाओं का ध्यान कर रहे हैं और बन्दर सुख चैन से रह रहे हैं।

प्रहर्षिताः केतकिपुष्पगन्ध-
माघ्राय मत्ता वननिर्झरेषु।
प्रपातशब्दाकुलिता गजेन्द्राः
सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति।। २६।।

केवड़े के फूलों की सुगन्ध को सूँघ कर प्रसन्नता से भरे हुए, वन के झरनों में क्रीड़ा करके मस्त बने हुए और झरनों के जल के गिरने की ध्वनि से व्याकुलता को प्राप्त ये गजराज मोरों की ध्वनि के साथ-साथ ही मस्ती में चिंघाड़ रहे हैं।

धारानिपातैरभिहन्यमानाः
कदम्बशाखासु विलम्बमानाः।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं
शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति।। २७।।

कदम्ब की शाखाओं पर जो लटके हुए हैं वे भ्रमर पानी की धाराओं से पीड़ित होते ही, क्षण भर पहले एकत्र किये हुए फूलों के रस के कारण, व्याप्त हुए मद को धीरे-धीरे छोड़ रहे हैं।

अङ्गारचूर्णोत्करसंनिकाशैः
फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा
निपीयमाना इव षट्पदौघैः।। २८।।

जामुन के वृक्षों की वे शाखाएँ, जो कोयले के ढेर के समान काले और रसीले फलों से लदी हुई हैं, ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानों भ्रमरों के द्वारा उनके रस का पान किया जा रहा है।

तडित्पताकाभिरलंकृताना-
मुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम् ।
विभान्ति रूपाणि बलाहकानां
रणोत्सुकानामिव वारणानाम्।। २९।।

जो बिजली रूपी पताकाओं से अलंकृत हैं और गम्भीर ध्वनि को प्रकट कर रहे हैं, वे बादलों के समूह रण के लिये उत्सुक हाथियों के समान सुशोभित हो रहे हैं।

मार्गानुगः शैलवनानुसारी
सम्प्रस्थितो मेघरवं निशम्य।
युद्धाभिकामः प्रतिनादशङ्की
मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसंनिवृत्तः।। ३०।।

पर्वतीय वनों में विचरण करने वाला मस्त हाथी, जो अपने मार्ग का अनुसरण कर आगे बढ़ा जा रहा था, बादलों की ध्वनि को सुन कर और यह समझ कर कि यह मेरे प्रतिद्वन्द्वी हाथी की आवाज है, उससे युद्ध की कामना से वापिस पीछे लौट गया है।

क्वचित् प्रगीता इव षट्पदौघैः
क्वचित् प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः।
क्वचित् प्रमत्ता इव वारणेन्द्रै-
र्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः।। ३१।।

वनों में कहीं भ्रमरों के झुण्ड गुंजार कर रहे हैं, कहीं मोर नृत्य कर रहे हैं, कहीं मस्त हाथी विचर रहे हैं। इस प्रकार यह वन प्रदेश अनेक प्रकार के दृश्यों के आश्रय बने हुए हैं।

कदम्बसर्जार्जुनकन्दलाढ्या
वनान्तभूमिर्मधुवारिपूर्णा ।
मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तै-
रापानभूमिप्रतिमा विभाति।। ३२।।

वन के अन्दर की भूमि इस समय कदम्ब, सर्ज और स्थल कमलों से भरी हुई, तथा मधुर वर्षा जल से सिक्त हुई और मोरों की मस्ती से भरी हुई ध्वनियों तथा नृत्यों से सुशोभित हो कर मधुशाला के समान प्रतीत हो रही है।

षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं
प्लवंगमोदीरितकण्ठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदङ्गनादै-
र्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम्।। ३३।।

यहाँ भ्रमरों की गुंजार के रूप में वीणा की मधुर ध्वनि प्रकट हो रही है, मेढ़कों की ध्वनि कण्ठताल सी जान पड़ती है। मेघों की आवाज मृदंग की ध्वनि के समान प्रतीत हो रही है। इस प्रकार ऐसा लग रहा है, जैसे वन में संगीत का उत्सव हो रहा हो।

क्वचित् प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः
क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः।
व्यालम्बबर्हाभरणैर्मयूरै-
र्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम्।। ३४।।

कहीं मोर अपने विशाल पंख रूपी आभूषणों से विभूषित हो कर नाच रहे हैं। कहीं वे ऊँची आवाज में बोल रहे हैं। कहीं वे वृक्षों की डालियों के अगले भाग पर अपने शरीर का सारा बोझा डाल कर बैठे हुए हैं। इससे उन्होंने वन में संगीत का सा वातावरण उपस्थित कर दिया है।

स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा
विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम्।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा
नवाम्बुधाराभिहता नदन्ति।। ३५।।

बादलों की ध्वनि से मेंढक अपनी बहुत समय से ग्रहण की हुई निद्रा को त्याग कर जाग उठे हैं। वे अब अनेक प्रकार के रूप, आकृति, रंगों और ध्वनियों वाले नये वर्षा जल की धाराओं से भीगते हुए जोर-जोर से बोल रहे हैं।

नद्यः समुद्वाहितचक्रवाका-
स्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा।
दृप्ता नवप्रावृतपूर्णभोगा-
द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति।। ३६।।

दर्पभरी नदियाँ चक्रवाकों को बहाती हुई तथा जीर्ण-शीर्ण किनारों को तोड़ कर बहाती हुई, नये उपहारों से युक्त हो कर पूर्ण भोग के लिये स्वीकृत अपने पति समुद्र के पास तेजी से चली जा रही हैं।

नीलेषुनीला नववारिपूर्णा
मेघेषु मेघाः प्रतिभान्ति सक्ताः।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः
शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः।। ३७।।

नवीन जल से भरे हुए नीले रंग के मेघ, दूसरे नीले रंग के मेघों से सट कर ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे दावाग्नि से जलाये हुए पर्वत दूसरे दावाग्नि से जलाये हुए पर्वतों से बद्धमूल हो गये हों।

प्रमत्तसंनादितबर्हिणानि
सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ।
चरन्ति नीपार्जुनवासितानि
गजाः सुरम्याणि वनान्तराणि।। ३८।।

जहाँ मतवाले मोर अपनी बोली बोल रहे हैं, जहाँ घास पर वीर वधूटियों के समुदाय विद्यमान हैं, जो नीप और अर्जुन की सुगन्धि से सुगन्धित हैं, ऐसे सुन्दर वन भागों में हाथी विचर रहे हैं।

नवाम्बुधाराहतकेसराणि
द्रुतं परित्यज्य सरोरुहाणि।
कदम्बपुष्पाणि सकेसराणि
नवानि हृष्टा भ्रमराः पिबन्ति।। ३९।।

नये वर्षा जल से जिनके केसर नष्ट हो गये हैं, ऐसे कमलों को तुरन्त छोड़ कर भ्रमर कदम्ब के केसर वाले नये फूलों का रस प्रसन्नता के साथ पी रहे हैं।

मेघाः समुद्भूतसमुद्रनादा
महाजलौघैर्गगनावलम्बाः ।
नदीस्तटाकानि सरांसि वापी-
र्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति।। ४०।।

आकाश में लटके हुए बादल अपनी गर्जना से समुद्र के नाद को तिरस्कृत करके महान जल के भण्डार से नदियों, तालाबों, बावलियों और सारी भूमि को आप्लावित कर रहे हैं।

वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति
प्रवान्ति वाताः समुदीर्णवेगाः।
प्रणष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं
नद्यो जलं विप्रतिपन्नमार्गाः।। ४१।।

वर्षा बड़े जोर से हो रही है। वायु बड़ी तेजी से बह रही है। नदियाँ अपने किनारों को काट कर, मार्गों को नष्ट कर तेजी से पानी को बहा रही है।

घनोपगूढं गगनं न तारा
न भास्करो दर्शनमभ्युपैति।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता
तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः।। ४२।।

आकाश बादलों से भरा हुआ है, इसलिये न तो रात में तारे दिखाई देते है और न दिन में सूर्य दिखाई देता है। नये वर्षा जल के भण्डार से भूमि तृप्त हो गयी है। सब तरफ अँधेरा फैला होने के कारण दिशाएँ प्रतीत ही नहीं होती हैं।

महान्ति कूटानि महीधराणां
धाराविधौतान्यधिकं विभान्ति।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातै–
र्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः।। ४३।।

पर्वतों के बड़े-बड़े शिखर धाराओं से धुल कर बहुत अधिक सुन्दर लग रहे हैं। उनसे बहते हुए बहु संख्यक विशाल झरने ऐसे प्रतीत हो रहे है, जैसे उन शिखरों ने मोतियों की मालाओं को धारण किया हुआ हो।

शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः
शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः।
गुहासु संनादितबर्हिणासु
हारा विकीर्यन्त इवावभान्ति।। ४४।।

श्रेष्ठ पर्वतों के बहुत से प्रपात जिनका वेग पर्वतीय चट्टानों पर गिरने से खण्डित हो गया है, मोरों की ध्वनि से गूँजती हुई गुफाओं में टूट कर बिखरे हुए मोतियों के हारों के समान सुशोभित हो रहे हैं।

शीघ्रप्रवेगा विपुलाः प्रपाता
निर्धौतशृङ्गोपतला गिरीणाम्।
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो
महागुहोत्सङ्गतलैर्ध्रियन्ते ।। ४५।।

तेज बहाव वाले बहुत से प्रपात, जिन्होंने पर्वतों के शिखरों के समीप के तल को धोकर स्वच्छ बना दिया है, तथा जो मोतियों की मालाओं के समान प्रतीत होते हैं, ऊपर से गिरते हुए विशाल गुफाओं द्वारा अपनी गोद में धारण किये जा रहे हैं।

विलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्च पङ्कजैः।
विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः।। ४६।।
वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणा सेना पथ्येव वर्तते।
वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः।। ४७।।
मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम्।
अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः।। ४८।।

सूर्य क्योंकि दिखाई नहीं देता, अतः पक्षियों के घोंसलों में छिपने, कमलों के संकुचित होने और मालती के खिलने से ही पता लगता है कि वह अस्त हो गया है। राजाओं की यात्राएँ रुक गयीं हैं। उनकी सेनाएँ मार्ग में ही विद्यमान हैं। वर्षा जल ने मार्गों तथा परस्पर वैर भावना को समान रूप से नष्ट कर दिया है। यह भाद्रपद का मास आ गया है। अब वेद का अध्ययन करने वाले तथा साम वेद का गान करने वाले ब्राह्मणों के स्वाध्याय का समय उपस्थित हो गया है।

निवृत्तकर्मायतनो नूनं संचितसंचयः।
आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोसलाधिपः।। ४९।।
नूनमापूर्यमाणायाः सरय्वा वर्धते रयः।
मां समीक्ष्य समायान्तमयोध्याया इव स्वनः।। ५०।।

कोसल देश के राजा भरत ने आवश्यक पदार्थों का संचय करके आषाढ़ की पूर्णिमा को अवश्य ही किसी उत्तम व्रत की दीक्षा ली होगी। जैसे मुझे वन की तरफ जाते हुए देख कर अयोध्या वासियों का कोलाहल बढ़ गया था, उसी प्रकार इस समय जल से भरी हुई सरयू का वेग भी बढ़ गया होगा।

इमाः स्फीतगुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमश्नुते।
विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः।। ५१।।
अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युतः।
नदीकूलमिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण।। ५२।।
शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः।
रावणश्च महाञ्छत्रुरपारः प्रतिभाति मे।। ५३।।

इस समय गुणों से सम्पन्न वर्षा ऋतु को सुग्रीव सुख पूर्वक भोग रहे हैं, उनके शत्रु जीत लिये गये हैं। वे विशाल राज्य पर प्रतिष्ठित हैं और उनकी स्त्री उनके पास है। किन्तु हे लक्ष्मण! मेरी पत्नी अपहृत हो गई है, महान राज्य से भी भ्रष्ट हो गया हूँ। पानी से गले हुए नदी के किनारों की तरह मैं दुख को भोग रहा हूँ। मेरा शोक बढ़ता जा रहा है, यह वर्षा ऋतु मेरे लिये बहुत कठिन हो गयी है। मेरा महान शत्रु रावण मुझे अजेय सा प्रतीत हो रहा है।

अयात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गांश्च भृशदुर्गमान्।
प्रणते चैव सुग्रीवे न मया किंचिदीरितम्।। ५४।।
अपि चापि परिक्लिष्टं चिराद् दारैः समागतम्।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद् वक्तुं नेच्छामि वानरम्।। ५५।।
स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम्।
उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः।। ५६।।

यद्यपि सुग्रीव मेरे सामने नतमस्तक था। पर यह देख कर कि यह यात्रा का समय नहीं है और मार्ग बहुत दुर्गम हैं, मैंने उसे कुछ नहीं कहा। वह बहुत दिनों से कष्ट भोग रहे थे, उनकी पत्नी का उनसे मेल हुआ है, मेरा कार्य भी बड़ा भारी है, इसलिये मैं अभी उस वानर को कुछ कहना नहीं चाहता। इसमें कोई संशय नहीं है कि विश्राम करके और उचित समय को आया हुआ देख कर वे स्वयं ही मेरे किये उपकार को समझेंगे।

सत्ताईसवाँ सर्ग

हनुमान जी के समझाने से सुग्रीव का नील को वानर सैनिकों को एकत्र करने का आदेश देना।

समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम्।
सारसाकुलसंघुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम्।। १।।
समृद्धार्थं च सुग्रीवं मन्दधर्मार्थसंग्रहम्।
अत्यर्थं चासतां मार्गमेकान्तगतमानसम्।। २।।
निवृत्तकार्यं सिद्धार्थं प्रमदाभिरतं सदा:
प्राप्तवन्तमभिप्रेतान् सर्वानेव मनोरथान्।। ३।।
विहरन्तमहोरात्रं कृतार्थं विगतज्वरम्।
मन्त्रिषु न्यस्तकार्यं च मन्त्रिणामनवेक्षकम्।। ४।।
उच्छिन्नराज्यसंदेहं कामवृत्तमिव स्थितम्।
निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञः कालधर्मविशेषवित्।। ५।।
प्रसाद्य वाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः।
वाक्यविद् वाक्यतत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मजः।। ६।।
हितं तथ्यं च पथ्यं च सामधर्मार्थनीतिमत्।
प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृतनिश्चयम्।। ७।।
हरीश्वरमुपागम्य हनूमान् वाक्यमब्रवीत्।

जो साम, धर्म, और अर्थ नीति को जानते थे, जो अपने उद्देश्य को निश्चित कर उसकी पूर्ति के रहस्य को जान लिया करते थे, जो समयोचित कर्म करने के विशेष जानकार थे तथा जो प्रयुक्त किये गये वाक्यार्थ के वेत्ता थे, ऐसे पवनपुत्र हनुमान ने जब देखा कि आकाश निर्मल हो गया है, उसमें से विद्युत् और बादल चले गये हैं, सारसों के समूह आकाश में उड़ रहे हैं? रात्रि में सुन्दर चाँदनी का लेप होने लगा है, किन्तु सुग्रीव अपने उद्देश्य की पूर्ति हो जाने के बाद धर्म और अर्थ के पालन में शिथिल हो गये हैं। वे असज्जन लोगों के मार्ग का सेवन करते हुए एकान्त में अपना मन अत्यधिक लगाये रखते हैं। वे यह समझ कर कि मेरा कार्य सिद्ध हो गया है, अब मित्र के कार्य से भी निवृत्त से प्रतीत हो रहे हैं। वे सदा स्त्रियों के साथ ही लगे रहते हैं? क्योंकि उन्होंने अपने अभीष्ट सारे मनोरथों को प्राप्त कर लिया हैं, उनकी चिन्ताएँ समाप्त हो गयी हैं और वे कृतार्थ हो गये हैं, इसलिये रात दिन विहार ही करते रहते हैं। उन्होंने राज्य का सारा कार्य मन्त्रियों पर ही डाल दिया है और मन्त्रियों के कार्यों का भी वे निरीक्षण नहीं करते हैं। उन्होंने राज्य के प्रति चिन्ता करना भी छोड़ दिया है और स्वेच्छाचारी से होते जा रहे हैं, तब वानरों के राजा के पास जा कर, वाक्य के रहस्य को जानने वाले तथा विश्वास की भावना से दृढ़ निश्चय वाले उन वानरेश सुग्रीव को विविध प्रकार के उद्देश्ययुक्त सुन्दर वाक्यों से प्रसन्न कर हितकारी तथ्यात्मक, गुणकारी, प्यार और स्नेह से युक्त वाणी में उन्होंने कहा कि –

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्धिता।। ८।।
मित्राणां संग्रहः शेषस्तद् भवान् कर्तुमर्हति।
यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते।। ९।।
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते।
तद् भवान् वृत्तसम्पन्नः स्थितःपथि निरत्यये।। १०।।
मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत् कर्तुमर्हति।

हे राजन्! आपने राज्य और यश दोनों प्राप्त कर लिये, अपने कुल के ऐश्वर्य को बढ़ा लिया, किन्तु अभी मित्रों की प्रसन्नता का कार्य शेष है। उसे भी आपको करना चाहिये। जो राजा मित्रों के साथ व्यवहार करने के समय को जानता है, उसका राज्य, कीर्ति और प्रताप तीनों वृद्धि को प्राप्त होते हैं। आप सदाचार सम्पन्न हैं, मर्यादा के मार्ग पर विद्यमान है इसलिये मित्र के लिये की हुई प्रतिज्ञा को पूरा कीजिये।

संत्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते।। ११।।
सम्भ्रमाद् विकृतोत्साहः सोऽर्थेनावरुध्यते।
यो हि कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते।। १२।।
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते।
तदिदं मित्रकार्यं नः कालातीतमरिंदम।। १३।।
क्रियतां राघवस्यैतद् वैदेह्याः परिमार्गणम्।

जो मित्र के लिये अपने सारे कार्यों को छोड़ कर शीघ्रता और विशेष उत्साह के साथ प्रवृत्त नहीं होता है, उसका अपना उद्देश्य सिद्ध नहीं होता है। जो व्यक्ति समय बीत जाने के पश्चात् मित्र के कार्य में प्रवृत्त होता है, वह मित्र के लिये महान कार्य करने पर भी मित्र का उपकारी नहीं समझा जाता। इसलिये हे शत्रुओं का दमन करने वाले! श्रीराम का जो सीता की खोज करने का कार्य हमारे लिये मित्र कार्य होने के कारण करणीय है, उसका समय निकला जा रहा है, उसे आप आरम्भ कराइये।

न च कालमतीतं ते निवेदयति कालवित्।। १४।।
त्वरमाणोऽपि स प्राज्ञस्तव राजन् वशानुगः।
कुलस्य हेतुः स्फीतस्य दीर्घबन्धुश्च राघवः।। १५।।
अप्रमेयप्रभावश्च स्वयं चाप्रतिमो गुणैः।
तस्य त्वं कुरु वै कार्यं पूर्वं तेन कृतं तव।। १६।।
हरीश्वर कपिश्रेष्ठानाज्ञापयितुमर्हसि।

हे राजन्! वे बुद्धिमान् राम, समय विलम्ब के, बारे में जानते हुए भी तथा स्वयं शीघ्रता में होने पर भी, आपके स्नेह बंधन में होने के कारण आपसे कुछ कह नहीं रहे हैं। श्रीराम अमित प्रभावशाली तथा गुणों में अद्वितीय हैं। वे आपके कुल के अभ्युदय के हेतु हैं और दीर्घ काल तक अपने बन्धु भाव का निर्वाह करने वाले हैं। उन्होंने पहले आपका कार्य कर दिया, अब आप उनका कार्य पूरा कीजिये। हे वानरेश! आप श्रेष्ठ वानरों को इस कार्य के लिये आज्ञा दीजिये।

नहि तावद् भवेत् कालो व्यतीतश्चोदनादृते।। १७।।
चोदितस्य हि कार्यस्य भवेत् कालव्यतिक्रमः।
अकर्तुरपि कार्यस्य भवान् कर्ता हरीश्वर।। १८।।
किं पुनः प्रतिकर्तुस्ते राज्येन च वधेन च।
शक्तिमानतिविक्रान्तो वानरर्क्षगणेश्वर।। १९।।
कर्तुं दाशरथेः प्रीतिमाज्ञायां किं नु सज्जसे।
प्राणत्यागाविशङ्केन कृतं तेन महत् प्रियम्।। २०।।
तस्य मार्गाम वैदेहीं पृथिव्यामपि चाम्बरे।
तदेवं शक्तियुक्तस्य पूर्वं प्रतिकृतस्तथा।। २१।।
रामस्यार्हसि पिङ्गेश कर्तुं सर्वात्मना प्रियम्।

श्रीराम के प्रेरणा देने से पहले यदि कार्य आरम्भ हो जाता है, तो समय का विलम्ब नहीं माना जायेगा, पर यदि उनके प्रेरणा देने पर कार्य का आरम्भ हुआ तो विलम्ब किया हुआ माना जाएगा। हे वानरराज! आप तो जिसने आपका कार्य नहीं किया, उसका भी कार्य कर देते हैं, फिर जिन्होंने बाली वध और राज्य प्रदान रूपी ये दोनों आपके कार्य पहले ही कर दिये, उनके विषय में तो कहने की कोई बात ही नहीं है। हे वानर और ऋक्षसमूहों के स्वामी! आप शक्तिमान और अत्यन्त पराक्रमी हैं, फिर श्रीराम के स्नेह को बढ़ाने में आप आज्ञा देने में क्यों बिलम्ब कर रहे हैं। उन्होंने बाली का वध करने में कोई शंका नहीं की और आपका महान प्रिय किया। अब हम उनकी सीता का पृथ्वी और आकाश में अन्वेषण करते हैं। इस प्रकार जो शक्तिशाली हैं, जिन्होंने पहले ही आपका उपकार किया हुआ है। ऐसे राम का कार्य हे वानरों के ईश! आपको अपनी पूरी आत्मा के साथ करना चाहिये।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा काले साधु निरूपितम्।। २२।।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नश्चकार मतिमुत्तमाम्।
संदिदेशातिमतिमान् नीलं नित्यकृतोद्यमम्।। २३।।
दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसंग्रहे।
यथा सेना समग्रा मे यूथपालश्च सर्वशः।। २४।।
समागच्छन्त्यसङ्गेन सेनाग्र्येण तथा कुरु।

हनुमान जी के अच्छे तरीके से और समय पर कहे हुए वाक्यों को सुन कर सत्वगुणों से सम्पन्न सुग्रीव ने अपने मन में उत्तम निश्चय किया। अत्यन्त बुद्धिमान सुग्रीव ने नील को जो सदा उद्यमशील थे, आदेश दिया कि वे सारी दिशाओं से सेनाओं को एकत्र करें। उन्होंने कहा कि ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मेरी सारी सेना एकत्र हो जाये और सारे यूथपति भी अपनी सेना तथा सेनापतियों के साथ शीघ्र आ जायें।

ये त्वन्तपालाः प्लवगाः शीघ्रगा व्यवसायिनः।। २५।।
समानयन्तु ते शीघ्रं त्वरिताः शासनान्मम।
स्वयं चानन्तरं कार्यं भवानेवानुपश्यतु।। २६।।
त्रिपञ्चरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयादिह वानरः।
तस्य प्राणान्तिको दण्डो नात्र कार्याविचारणा।। २७।।

जो सीमाओं की रक्षा करने वाले फुर्तीले और उद्यमी वानर हैं, वे सब मेरे आदेश से यहाँ आ जायें। उसके पश्चात् जो करणीय कार्य हो, उसका आप स्वयं ही निरीक्षण करें। पन्द्रह दिन के पश्चात् जो वानर यहाँ आवेगा, उसे प्राणदंड दिया जायेगा, इसमें कोई सोच विचार नहीं किया जायेगा।

हरींश्च वृद्धानुपयातु साङ्गदो
भवान् ममाज्ञामधिकृत्य निश्चितम्।
इति व्यवस्था हरिपुंगवेश्वरो
विधाय वेश्म प्रविवेश वीर्यवान्।। २८।।

आप अंगद के साथ मेरी इस निश्चित आज्ञा को लेकर वृद्ध वानरों के पास स्वयं जायें। ऐसी व्यवस्था करके वह तेजस्वी महान वानरों के स्वामी अपने महल में प्रविष्ट हो गये।

अट्ठाईसवाँ सर्ग

शरद् ऋतु का वर्णन तथा श्रीराम का लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजना।

गृहं प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः।
वर्षरात्रे स्थितो रामः कामशोकाभिपीडितः।। १।।
दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्वलाहकम्।
सारसारावसंघुष्टं विललापार्यतया गिरा।। २।।

सुग्रीव के अपने महल में चले जाने पर, उधर आकाश के बादलों से रहित हो जाने पर, वर्षा की रात्रियों को व्यतीत करने पर राम सीता से मिलने की कामना और शोक से दुखी होने लगे। यह देख कर कि विद्युत् और बादलों से रहित आकाश अब निर्मल हो गया है तथा वहाँ सारसों की बोलियाँ सुनाई दे रही हैं, वे आर्त वाणी में विलाप करने लगे।

सारसारावसंनादैः सारसारावनादिनी।
याऽऽश्रमे रमते बाला साद्य मे रमते कथम्।। ३।।
पुष्पितांश्चासनान् दृष्ट्वा काञ्चनानिव निर्मलान्।
कथं सा रमते बाला पश्यन्ती मामपश्यती।। ४।।
या पुरा कलहंसानां कलेन कलभाषिणी।
बुध्यते चारुसर्वाङ्गी साद्य मे रमते कथम्।। ५।।
निःस्वनं चक्रवाकानां निशम्य सहचारिणाम्।
पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति।। ६।।
सरांसि सरितो वापीः काननानि वनानि च।
तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे।। ७।।

वे कहने लगे कि जिसकी बोली सरसों के समान थी, तथा जो सारसों की ध्वनि से ही अपना मन बहलाती थी, वह भोली-भाली अब अपना जी कैसे बहलाती होगी। सुवर्ण के समान निर्मल, फूले हुए असन के वृक्षों को देख कर उन्हें बार-बार निहारती हुई, पर मुझे अपने पास न देख कर कैसे अपने मन को लगाती होगी। वह मेरी सर्वांगसुन्दरी और मधुरभाषिणी सीता, जो पहले कलहंसों की मधुर ध्वनि से जागा करती थी, वह आजकल कैसे प्रसन्न रहती होगी। कमल के समान विशाल नेत्रों वाली वह, जब अपने साथ विचरने वाले चक्रवाकों की ध्वनि को सुनती होगी, तब उसकी दशा कैसी हो जाती होगी। मैं तालाबों नदियों, बावलियों, बगीचों और वनों में घूमता हूँ, पर उस मृगशावक नयनी के बिना मुझे कहीं भी घूमते हुए सुख नहीं मिलता।

अथ पद्मपलाशाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन्।
उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता।। ८।।
दीर्घगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः।
विसृज्य सलिलं मेघाः परिशान्ता नृपात्मज।। ९।।
नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश।
विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः।। १०।।

इस प्रकार पद्म और पलाश के फूलों के समान नेत्रों वाली मैथिली का ध्यान करते हुए श्रीराम सूखे हुए मुख से लक्ष्मण से बोले कि हे राजकुमार। वे बादल जो पहले लम्बी और गहरी गर्जना करते हुए पर्वतों और वृक्षों के ऊपर से निकला करते थे, वे अब जल की वर्षा कर शान्त हो गये हैं। नीले कमलों के समूह के समान काले बादल, जिन्होंने पहले सारी दिशाओं को काला बना दिया था, वे अब मस्ती उतरे हुए हाथी के समान शान्त वेग वाले हो गये हैं।

जलगर्भा महावेगाः कुटजार्जुनगन्धिनः।
चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः।। ११।।
घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण।
नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसानघ।। १२।।
अभिवृष्टा महामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः।
अनुलिप्ता इवाभान्ति गिरयश्चन्द्ररश्मिभिः।। १३।।

हे सौम्य। वर्षा की तेज हवाएँ जो पानी से भरी हुई तथा कुटज और अर्जुन की गन्ध से सुवासित होती थीं, वे महान वेग से उमड़-उमड़ कर अब शान्त हो गयी हैं। हे निष्पाप लक्ष्मण। अब बादलों का, हाथियों का, मोरों का, और झरनों का नाद सहसा शान्त हो गया है। सुन्दर शिखरों वाले पर्वत जो महान मेघों के द्वारा वर्षा से धो दिये गये हैं, अब चन्द्रमा की किरणों के द्वारा सफेदी किये हुए से प्रतीत हो रहे हैं।

शाखासु सप्तच्छदपादपानां
प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम्।
लीलासु चैवोत्तमवारणानां
श्रियंविभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता।। १४।।

आज शरद् ऋतु अपनी सुन्दरता को, सप्तच्छद के वृक्षों की शाखाओं में, चन्द्र सूर्य और तारों की प्रभा

में और उत्तम हाथियों की लीलाओं में बिखेर कर आ गई है।

**सम्प्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभा
लक्ष्मीः शरत्कालगुणोपपन्ना।
सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषु
पद्माकरेष्वभ्यधिकं विभाति।। १५।।**

यद्यपि शरद् ऋतु के गुणों से युक्त शरद् ऋतु की सुन्दरता अनेक प्रकार के आश्रयों में चित्रित, विचित्र प्रकार की शोभा को प्रकट कर रही है, पर वह सूर्य की प्रथम किरणों के द्वारा जागृत किये हुए कमलों में अधिक अच्छी लग रही है।

**सप्तच्छदानां कुसुमोपगन्धी
षट्पादवृन्दैरनुगीयमानः ।
मत्तद्विपानां पवनानुसारी
दर्पं विनेष्यन्नधिकं विभाति।। १६।।**

यह शरद् ऋतु सप्तच्छद के फूलों की गन्ध से युक्त है और भ्रमर इसका गुणगान कर रहे हैं। पवन का अनुसरण करती हुई यह, मतवाले हाथियों के दर्प को और अधिक बढ़ाती हुई अच्छी लग रही है।

**अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः
स्मरप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः।
महानदीनां पुलिनोपयातैः
क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः।। १७।।**

जो आ कर बड़ी नदियों के किनारों पर उतरे हैं, जिनके पंख विशाल हैं, जिन्हें काम क्रीड़ा प्रिय है, जिनके ऊपर कमलों का पराग बिखरा हुआ है, उन चक्रवाकों के साथ इस समय हंस क्रीड़ा कर रहे हैं।

**मदप्रगल्भेषु च वारणेषु
गवां समूहेषु च दर्पितेषु।
प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु
विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता।। १८।।**

मदमस्त हाथियों में, दर्पभरे वृषभों के समूहों में, स्वच्छ जल वाली नदियों में, बंटी हुई शरद् ऋतु की सुन्दरता अनेक प्रकार से सुशोभित हो रही है।

**नभः समीक्ष्याम्बुधरैर्विमुक्तं
विमुक्तबर्हाभरणा वनेषु।
प्रियास्वरक्ता विनिवृत्तशोभा
गतोत्सवा ध्यानपरा मयूराः।। १९।।**

आकाश को बादलों से मुक्त हुआ देख कर, वनों में मोरों ने अपने पंख रूपी आभूषण छोड़ दिये हैं, अब वे अपनी प्रियाओं से विरक्त हो गये हैं, उनकी सुन्दरता नष्ट हो गयी है, अब उन्होंने उत्सव मनाना छोड़ दिया है और अब वे चुपचाप ध्यान में मग्न हो गये हैं।

**मनोज्ञगन्धैः प्रियकैरनल्पैः
पुष्पातिभारावनताग्रशाखैः ।
सुवर्णगौरैर्नयनाभिरामै
रुद्योतितानीव वनान्तराणि।। २०।।**

वन के प्रदेश सुवर्ण के समान गौर वर्ण और नयनाभिराम असंख्य असन नाम के वृक्षों से, जो बड़ी मनोहर गन्ध वाले हैं, तथा जिनकी शाखाओं के अग्रभाग फूलों के भार से झुके हुए हैं, जगमगा से रहे हैं।

**प्रियान्वितानां नलिनीप्रियाणां
वने प्रियाणां कुसुमोद्गतानाम्।
मदोत्कटानां मदलालसानां
गजोत्तमानां गतयोऽद्य मन्दाः।। २१।।**

जो अपनी प्रियाओं के साथ विचरण कर रहे हैं, जिन्हें कमल पुष्प तथा वन अच्छे लगते हैं, जो फूलों से निकलने वाली गन्ध से अत्यधिक मद से युक्त हो रहे हैं, तथा इसी कारण जिनमें कामभोग की लालसा बनी हुई है, वे उत्तम गजराज अब धीमी गति वाले हो गये हैं।

**व्यक्तं नभः शस्त्रविधौतवर्णं
कृशप्रवाहानि नदीजलानि।
कह्लारशीताः पवनाः प्रवान्ति
तमो विमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः।। २२।।**

आकाश का रंग सान पर चढ़ा कर चमकाये हुए शस्त्र जैसा हो रहा है, नदियों के जलप्रवाह मन्द हो गये हैं। श्वेत कमलों की गन्ध से युक्त शीतल वायु चल रही है और दिशाएँ अन्धकार से मुक्त तथा प्रकाश से युक्त हो गयी हैं।

**सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का
भूमिश्चिरोद्घाटितसान्द्ररेणुः ।
अन्योन्यवैरेण समायुताना-
मुद्योगकालोऽद्य नराधिपानाम्।। २३।।**

सूर्य की धूप के आक्रमण से कीचड़ नष्ट हो गयी है। भूमि पर बहुत दिनों के बाद घनी धूल प्रकट हो गयी है। परस्पर वैर रखने वाले राजाओं का अब यह युद्ध रूपी उद्योग करने का समय आ गया है।

शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाः
प्रहर्षिताः पांसुसमुत्थिताङ्गाः।
मदोत्कटाः सम्प्रति युद्धलुब्धा
वृषा गवां मध्यगता नदन्ति॥ २४॥

शरद ऋतु के गुणों ने जिनके रूप और सौन्दर्य को बढ़ा दिया है, प्रसन्नता के कारण जिन्होंने धूल को उड़ा-उड़ा कर उससे अपने अंगों को भर लिया है, ऐसे मद में भरे हुए और युद्ध के लोभी साँड गायों के बीच में खड़े हुए हँकड़ रहे हैं।

समन्मथा तीव्रतरानुरागा
कुलान्विता मन्दगतिः करेणुः।
मदान्वितं सम्परिवार्य यान्तं
वनेषु भर्तारमनुप्रयाति॥ २५॥

जो अत्यन्त तीव्र अनुराग तथा कामभाव से युक्त है, जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुई है, वह धीमी गति से चलने वाली हथिनी वनों में अपने मद से युक्त पति हाथी को घेर कर उसके पीछे-पीछे जा रही है।

त्यक्त्वा वराण्यात्मविभूषितानि
बर्हाणि तीरोपगता नदीनाम्।
निर्भर्त्स्यमाना इव सारसौघैः
प्रयान्ति दीना विमना मयूराः॥ २६॥

अपने सुन्दर आभूषण रूप पंखों का त्याग कर मोर जब नदियों के तट पर आते हैं, तब वहाँ मानो सारस समूहों की फटकार सुन कर दीन और उदास हो कर चले जाते हैं।

वित्रास्य कारण्डवचक्रवाकान्
महारवैर्भिन्नकटा गजेन्द्राः।
सरस्सुबद्धाम्बुजभूषणेषु
विक्षोभ्य विक्षोभ्य जलं पिबन्ति॥ २७॥

मद बहाने वाले हाथी अपनी महान ध्वनि से कारण्डवों तथा चक्रवाकों को डरा कर कमलों से भूषित तालाबों में जल को हिला-हिला कर पानी पी रहे हैं।

व्यपेतपङ्कासु सवालुकासु
प्रसन्नतोयासु सगोकुलासु।
ससारसारावविनादितासु
नदीषु हंसा निपतन्ति हृष्टाः॥ २८॥

जिन नदियों का कीचड़ दूर हो गया है, जो बालू से सुशोभित हैं। जिनका जल स्वच्छ है और गायें जिनके जल को पीती हैं, जो सारसों की ध्वनि से गूँज रही हैं, उन नदियों में हंस प्रसन्न हो कर प्रवेश कर रहे हैं।

नदीघनप्रस्रवणोदकाना–
मतिप्रवृद्धानिलबर्हिणानाम् ।
प्लवंगमानां च गतोत्सवानां
ध्रुवं रवाः सम्प्रति सम्प्रणष्टाः॥ २९॥

इस समय निश्चित रूप से नदियों, बादलों, झरनों के जल, प्रचण्ड वायु, मोर और प्रसन्नता रहित मेंढकों के स्वर शान्त हो गये हैं।

अनेकवर्णाः सविनष्टकाया
नवोदितेष्वम्बुधरेषु नष्टाः।
क्षुधार्दिता घोरविषा बिलेभ्य–
श्चिरोषिता विप्रसरन्ति सर्पाः॥ ३०॥

अति विषैले अनेक वर्ण वाले साँप जो नये बादलों के आने पर छिप गये थे, भूख से पीड़ित होने के कारण जिनके शरीर बड़े कमजोर हो गये हैं, वे अब बहुत समय के पश्चात अपने बिलों से बाहर निकल रहे हैं।

रात्रिः शशाङ्कोदितसौम्यवक्त्रा
तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति
नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी॥ ३१॥

उदय होता हुआ चन्द्रमा ही जिनका सुन्दर मुख है, टिमटिमाते हुए तारे ही जिसकी सुन्दर आँखें हैं, चाँदनी ही जिसकी ओढ़ी हुई चादर है, वह रात्रि इस समय श्वेत चादर से लिपटी हुई नारी के समान सुशोभित हो रही है।

विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा
प्रहर्षिता सारसचारुपङ्क्तिः।
नभः समाक्रामति शीघ्रवेगा
वातावधूता ग्रथितेव माला॥ ३२॥

पके हुए धान की बालों को खा कर प्रसन्नता से भरी हुई और तेजी से उड़ने वाली, फूलों की गुँथी हुई और वायु में लहराती हुई माला के समान प्रतीत होने वाली सारसों की सुन्दर पंक्तियाँ आकाश की तरफ आक्रमण कर रही हैं।

सुप्तैकहंसं कुमुदैरुपेतं
महाह्रदस्थं सलिलं विभाति।
घनैर्विमुक्तं निशि पूर्णचन्द्रं
तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम् ॥ ३३॥

विशाल जलाशय का जल, जो कि कुमुदों से भरा हुआ है तथा जिसमें एक हंस सोया हुआ है, ऐसे सुशोभित हो रहा है, जैसे रात्रि में बादलों से रहित तारों से भरा हुआ और पूर्ण चन्द्रमा से युक्त आकाश सुशोभित होता है।

प्रकीर्णहंसाकुलमेखलानां
प्रबुद्धपद्मोत्पलमालिनीनाम् ।
वाप्युत्तमानामधिकाद्य लक्ष्मी-
र्वराङ्गनानामिव भूषितानाम्।। ३४।।

सब तरफ बिखरे हुए हंसों के समूह ही जिसकी मेखला हैं, खिले हुए कमल तथा उत्पल जिसकी मालाएँ हैं, उन उत्तम बावलियों की शोभा आजकल अलंकृत सुन्दरी स्त्रियों जैसी प्रतीत हो रही है।

नवैर्नदीनां कुसुमप्रहासै
र्व्याधूयमानैर्मृदुमारुतेन ।
धौतामलक्षौमपटप्रकाशैः
कूलानि काशैरूपशोभितानि।। ३५।।

नदियों के किनारे नवीन कासों के द्वारा, जो अपने पुष्पों के द्वारा हँसते हुए से प्रतीत हो रहे हैं, जो धीमी-धीमी वायु से कम्पित हो रहे हैं, जो श्वेत और स्वच्छ रेशमी वस्त्रों जैसे चमक रहे हैं, सुशोभित हो रहे हैं।

वनप्रचण्डा मधुपानशौण्डाः
प्रियान्विताः षट्चरणाः प्रहृष्टाः।
वनेषु मत्ताः पवनानुयात्रां
कुर्वन्ति पद्मासनरेणुगौराः।। ३६।।

अपनी प्रियाओं के साथ वन में ढिठाई के साथ घूमने वाले, फूलों के रस का पान करने में जो चतुर हैं, जो कमल तथा असन के पुष्पों के पराग में लिपट कर गौर वर्ण के दिखाई दे रहे हैं, ऐसे मतवाले भ्रमर वायु के साथ-साथ यात्रा कर रहे हैं।

जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं
क्रौञ्चस्वनं शालवनं विपक्वम्।
मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः
शंसन्ति वर्षव्यपनीतकालम्।। ३७।।

पानी स्वच्छ है, फूल खिल रहे हैं, क्रौञ्च पक्षी बोल रहे हैं, शालि चावल पक गये हैं। वायु धीमी गति से बह रही है, चन्द्रमा निर्मल है, ये सारी बातें वर्षा ऋतु के व्यतीत होने के समय को सूचित कर रही हैं।

लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा
नदीस्तटाकानि च पूरयित्वा।
निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा
त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रणष्टाः।। ३८।।

संसार को अच्छी वर्षा से सन्तुष्ट करके, नदियों, तालाबों को जल से पूरित करके, भूमि को पके हुए धान की खेती से समृद्ध करके तथा आकाश को छोड़ कर बादल अब अदृश्य हो गये हैं।

असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः।
दृश्यन्ते बन्धुजीवाश्च श्यामाश्च गिरिमानुषु।। ३९।।
हंससारमचक्राह्वै, कुररैश्च समन्ततः।
पुलिनान्यवकीर्णानि नदीनां पश्य लक्ष्मण।। ४०।।
प्रसन्नसलिलाः सौम्य कुररामिविनादिताः।
चक्रवाकगणाकीर्णा विभान्ति सलिलाशयाः।। ४१।।

पर्वतों की चोटियों पर, असन, सप्तवर्ण, कोविदार, बन्धुजीव और काले तमाल खिले हुए दिखाई दे रहे हैं। हे लक्ष्मण! देखो नदियों के किनारे पंक्षियों के कलरव तथा चक्रवालों के समूहों से भर कर बड़े सुन्दर लग रहे हैं।

इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम्।। ४२।।
चत्वरो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः।
मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः।। ४३।।
चक्रवाकीव भर्तारं पृष्ठतोऽनुगता वनम्।
विषमं दण्डकारण्यमुद्यानमिव चाङ्गना।। ४४।।

हे राजकुमार! राजाओं की पहली विजययात्रा का समय प्रारम्भ हो गया है, पर मैं न तो यहाँ सुग्रीव को देख रहा हूँ और न उसका कोई प्रयत्न ही दिखाई दे रहा है। ये चार वार्षिक मास मेरे लिये सौ वर्ष के समान व्यतीत हुए हैं। सीता को न देखने के कारण मैं अत्यधिक शोक से सन्तप्त हूँ। वह कल्याणी सीता, जैसे चकवी अपने स्वामी के पीछे चलती है, वैसे ही दण्डकारण्य को उद्यान के समान समझ मेरे पीछे-पीछे चली आई थी।

अनाथो हतराज्योऽहं रावणेन च धर्षितः।
दीनो दूरगृहः कामी मां चैव शरणं गतः।। ४५।।
इत्येतैः कारणैः सौम्य सुग्रीवस्य दुरात्मनः।
अहं वानरराजस्य परिभूतः परंतपः।। ४६।।
स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे।

कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुध्यते।। ४७।।
स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुङ्गवम्।
मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम।। ४८।।

हे सौम्य! मैं अनाथ हूँ, मेरे राज्य का हरण हो गया है, रावण ने मेरा अपमान किया है, मैं दीनावस्था को प्राप्त हूँ घर से दूर है तथा कामना से युक्त हूँ और इस कारण दुष्ट वानर सुग्रीव की शरण में गया हूँ पर उसके द्वारा मुझे नीचा दिखाया जा रहा है। पर उसे यह पता नहीं है कि मैं शत्रुओं को सन्तप्त करने वाला भी हूँ। सीता की खोज के लिये समय की सीमा का समझौता करके भी अपना कार्य पूरा हो जाने को कारण वह दुष्ट बुद्धि उसका ध्यान ही नहीं कर रहा है। इसलिये, हे लक्ष्मण! तुम किष्किंधा में प्रवेश कर उस वानरराज, ग्राम्यसुख में लगे हुए मूर्ख सुग्रीव से मेरी आज्ञा से यह कहो कि–।

अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः।। ४९।।
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः।। ५०।।
उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वीर महाबल।
मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनमिदंवचः।। ५१।।

जो व्यक्ति पहले उपकार करने वाले और फिर अपने कार्य की पूर्ति के लिये समीप आये हुए व्यक्तियों को प्रतिज्ञा के द्वारा धीरज दिला कर फिर उसे तोड़ देता है, वह संसार में अधम पुरुष है, किन्तु जो व्यक्ति प्रतिज्ञा के रूप में कहे वाक्य को, चाहे वह शुभ हो या अशुभ, सत्य करके दिखाता है, वह पुरुषों में उत्तम वीर कहलाया जाता है। हे महाबली वीर तुम जा कर सुग्रीव से बात करो। उसे मेरे क्रोध का जो रूप है वह बताओ और मेरा यह सन्देश दो कि–

न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः।। ५२।।
एक एव रणे वाली शरेण निहतो मया।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम्।। ५३।।
यदेवं विहिते कार्ये यद्धितं पुरुषर्षभ।
तत् तद् ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वर कालव्यतिक्रमः।। ५४।।

बाली जिस रास्ते से गया है, वह बन्द नहीं हुआ है। हे सुग्रीव! अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहो। बाली के मार्ग का अनुसरण मत करो। युद्ध में मैंने बाली को तो अकेले ही बाण से मारा था, पर सत्य से भ्रष्ट तुम्हें तो बन्धु बान्धवों सहित मार दूँगा। हे पुरुषश्रेष्ठ और नरश्रेष्ठ! इस प्रकार कार्य के बिगड़ने की जब स्थिति आ जाये, तब जो-जो उचित हो वही-वही करना। अब तुम जल्दी करो, क्योंकि समय बीता जा रहा है।

कुरुष्व सत्यं मम वानरेश्वर
प्रतिश्रुतं धर्ममवेक्ष्य शाश्वतम्।
मा वालिनं प्रेतगतो यमक्षये
त्वमद्य पश्येर्मम चोदितः शरैः।। ५५।।

सुग्रीव से कहो कि हे वानरराज! जो तुमने मुझसे प्रतिज्ञा की थी, उसे शाश्वत धर्म पर दृष्टि रखते हुए पूरा करो अन्यथा मेरे बाणों से प्रेरित हो कर भेदभाव को प्राप्त हुए तुम्हें कहीं आज ही मृत्युलोक में बाली के दर्शन करने न पड़ जायें।

उनत्तीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का किष्किंधा के द्वार पर जा कर अंगद को सुग्रीव के पास भेजना तथा वानरों का भयभीत होना।

स कामिनं दीनमदीनसत्त्वं
शोकाभिपन्नं समुदीर्णकोपम्।
नरेन्द्रसूनुर्नरदेवपुत्रं
रामानुजः पूर्वजमित्युवाच।। १।।

तब राम के छोटे भाई, राजकुमार लक्ष्मण ने, कामना से युक्त दीनता को प्राप्त, उदार हृदय, शोक मग्न, बढ़े हुए क्रोध वाले अपने बड़े भाई महाराज पुत्र राम से इस प्रकार कहा कि–

न वानरः स्थास्यति साधुवृत्ते
न मन्यते कर्मफलानुषङ्गान्।
न भोक्ष्यते वानरराज्यलक्ष्मीं
तथा हि नातिक्रमतेऽस्य बुद्धिः।। २।।

वह वानर जाति का मनुष्य सुग्रीव सज्जनों के आचरण में स्थिर नहीं रहेगा। वह कर्म करने से प्राप्त हुए फल के साथ विद्यमान कार्यों को नहीं मानता है, इसलिये वह वानरों की राज्य लक्ष्मी को नहीं भोग सकेगा। उसकी बुद्धि अपने कर्त्तव्य के पालन में आगे नहीं बढ़ रही है।

मतिक्षयाद् ग्राम्यसुखेषु सक्त-
स्तव प्रसादात् प्रतिकारबुद्धिः।
हतोऽग्रजं पश्यतु वीरवालिनं
न राज्यमेवं विगुणस्य देयम्।। ३।।

सुग्रीव की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, इसलिये वह अब ग्राम्य सुखों में तल्लीन है। जबकि भाई से प्रतिशोध लेने की उसकी बुद्धि को सफलता आपकी कृपा से ही मिली, अतः अब वह भी मारा जा कर अपने बड़े भाई वीर बाली के दर्शन करेगा। अयोग्य व्यक्ति को कभी राज्य नहीं देना चाहिये।

न धारये कोपमुदीपर्णवेगं
निहन्मि सुग्रीवमसत्यमद्य।
हरिप्रवीरैः सह वालिपुत्रो
नरेन्द्रपुत्र्या विचयं करोतु।। ४।।

मेरे क्रोध का वेग प्रबल हो गया है। मैं इसे धारण नहीं कर सकता, इसलिये आज मैं असत्यवादी सुग्रीव को मार देता हूँ। इसके बाद वानर वीरों के साथ अंगद ही राजपुत्री सीता की खोज का काम करायेगा।

तमात्तबाणासनमुत्पतन्तं
निवेदितार्थं रणचण्डकोपम्।
उवाच रामः परवीरहन्ता
स्ववीक्षितं सानुनयं च वाक्यम्।। ५।।

लक्ष्मण का क्रोध युद्ध के लिये प्रचण्ड हो रहा था। उन्होंने धनुषबाण हाथ में ले लिया था। अपने जाने का प्रयोजन राम से निवेदन कर वे मानों उड़ कर जाने के लिये तैयार खड़े थे। पर उन्होंने उसके परिणाम पर अच्छी तरह से विचार नहीं किया था। तब शूरवीरों को नष्ट करने वाले श्रीराम ने अनुनयपूर्वक उनसे कहा कि –

नहि वै त्वद्विधो लोके पापमेवं समाचरेत्।
कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः।। ६।।
नेदमत्र त्वया ग्राह्यं साधुवृत्तेन लक्ष्मण।
तां प्रीतिमनुवर्तस्व पूर्ववृत्तं च संगतम्।। ७।।
सामोपहितया वाचा रूक्षाणि परिवर्जयन्।
वक्तुमर्हसि सुग्रीवं व्यतीतं कालपर्यये।। ८।।

हे लक्ष्मण! तुम्हारे जैसा वीर संसार में ऐसा मित्र वध रूप पाप नहीं कर सकता। जो व्यक्ति आर्योचित आचरण के द्वारा अपने क्रोध को समाप्त कर देता है, वह वीर और पुरुषों में श्रेष्ठ है। तुम साधु आचरण वाले हो, तुम्हें इस समय सुग्रीव के वध का यह विचार नहीं ग्रहण करना चाहिये। तुम्हारे मन में उसके प्रति पहले जैसा प्रेम था, तुम उसी प्रेम का निर्वाह करो। तुम्हें रूखेपन को छोड़ कर सान्त्वनापूर्ण वाणी से सुग्रीव से नियत किये हुए समय के व्यतीत होने के विषय में कहना चाहिये।

ततः शुभमतिः प्राज्ञो भ्रातुः प्रियहिते रतः।
लक्ष्मणः प्रतिसंरब्धो जगाम भवनं कपेः।। ९।।
शक्रबाणासनप्रख्यं धनुः कालान्तकोपमम्।
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभं मन्दरः सानुमानिव।। १०।।
यथोक्तकारी वचनमुत्तरं चैव सोत्तरम्।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या मत्वा रामानुजस्तदा।। ११।।
कामक्रोधसमुत्थेन भ्रातुः क्रोधाग्निना वृतः।
प्रभञ्जन इवाप्रीतः प्रययौ लक्ष्मणस्ततः।। १२।।

तब भाई के प्रिय हित में रत, सुन्दरमति वाले बुद्धिमान तथा क्रोध में भरे हुए लक्ष्मण सुग्रीव के भवन की तरफ चले। उन्होंने उस समय इन्द्रधनुष के समान तेजस्वी, मृत्यु के समय और मृत्यु के समान भयानक तथा पर्वत के शिखर के समान विशाल धनुष को लिया हुआ था। जिसे धारण कर वे स्वयं शिखर सहित मन्दराचल के समान प्रतीत हो रहे थे। राम के छोटे भाई बृहस्पति के समान बुद्धिमान थे। उन्होंने जैसा उनसे कहा गया था, उसी के अनुसार कही जाने वाली वाणी, सुग्रीव के द्वारा उसका दिया जाने वाला उत्तर तथा उसका भी उनके द्वारा दिया जाने वाला प्रत्युत्तर आदि सभी बातों को समझ लिया था। श्रीराम उस समय सीता खोज की कामना से युक्त थे, पर उसमें रुकावट होने पर क्रोध से भी युक्त हो गये थे। इसी कारण लक्ष्मण भी उस समय क्रोधाग्नि से घिर गये थे। अतः असन्तुष्ट भाव से वे उस समय आँधी के समान जा रहे थे।

तामपश्यद् बलाकीर्णां हरिराजमहापुरीम्।
दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलः किष्किन्धां गिरिसंकटे।। १३।।
रोषात् प्रस्फुरमाणोष्ठः सुग्रीवं प्रति लक्ष्मणः।
ददर्श वानरान् भीमान् किष्किन्धायां बहिश्चरान्।। १४।।
तं दीप्तमिव कालाग्निं नागेन्द्रमिव कोपितम्।
समासाद्याङ्गदस्त्रासाद् विषादमगमत् परम्।। १५।।

इक्ष्वाकुकुल के सिंह लक्ष्मण ने वानरराज की उस विशाल पुरी किष्किंधा को देखा, जो पर्वतों के बीच में बसी हुई थी। जहाँ जाना दुर्गम था तथा जो सेना से व्याप्त थी। सुग्रीव के प्रति रोष से फड़कते हुए होठों के साथ लक्ष्मण ने भयानक वानरों को किष्किंधा के बाहर घूमते हुए देखा। तब मृत्यु को प्राप्त कराने वाली प्रज्वलित अग्नि के समान तथा सर्पराज के समान क्रोध से युक्त लक्ष्मण को प्राप्त कर अंगद भय के कारण अत्यन्त विषाद से युक्त हो गये।

सोऽङ्गदं रोषताम्राक्षः संदिदेश महायशाः।
सुग्रीवः कथ्यतां वत्स ममागमनमित्युत॥ १६॥
एष रामानुजः प्राप्तस्त्वत्सकाशमरिंदम।
भ्रातुर्व्यसनसंतप्तो द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणः॥ १७॥
तस्य वाक्यं यदि रुचिः क्रियतां साधु वानरः।
इत्युक्त्वा शीघ्रमागच्छ वत्स वाक्यमरिंदम॥ १८॥

क्रोध से लाल आँखों वाले महायशस्वी लक्ष्मण ने तब अंगद को यह सन्देश दिया कि हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले वत्स! सुग्रीव को मेरे आने की सूचना दो और कहो कि शत्रुओं को नष्ट करने वाले ये राम के छोटे भाई लक्ष्मण, अपने भाई के दुख से सन्तप्त हो कर आपके समीप आए हैं और आपके द्वार पर विद्यमान हैं। हे वानर जाति के मनुष्य! उनकी बात को यदि आपकी रुचि हो तो पूरा करो। इस बात को कह कर शीघ्र वापिस आओ।

~~संपृज्य पादौ पितुरग्र्यतेजा~~
जग्राह मातुः पुनरेव पादौ।
~~पादौ रुमायाश्च निपीडयित्वा~~
निवेदयामास ततस्तदर्थम्॥ १९॥

~~लक्ष्मण के इन कठोर वचनों से घबराये हुए और दीनतायुक्त मुख के साथ~~ अंगद ने तेजी से वहाँ से निकल कर और सुग्रीव के पास जा कर पहले उस वानर राज के और फिर रुमा के चरणों की वन्दना की। उसके पश्चात् उसने माता-~~तारा~~ के चरणों को स्पर्श किया और फिर वह सारी बात उनसे निवेदित की।

अथाङ्गदवचः श्रुत्वा तेनैव च समागतौ।
मन्त्रिणौ वानरेन्द्रस्य सम्मतोदारदर्शनौ॥ २०॥
प्लक्षश्चैव प्रभावश्च मन्त्रिणावर्थधर्मयोः।
वक्तुमुच्चावचं प्राप्तं लक्ष्मणं तौ शशंसतुः॥ २१॥

अंगद की बात सुन कर उसी के साथ आये हुए प्लक्ष और प्रभाव नाम के दो मंत्रियों ने भी, जो वानरराज के सम्मान पात्र तथा उदार दृष्टि वाले थे, राजा को धर्म तथा अर्थ में ऊँच नीच समझाने वाले थे लक्ष्मण के आने की सूचना दी।

स एष राघवभ्राता लक्ष्मणो वाक्यसारथिः।
व्यवसायरथः प्राप्तस्तस्य रामस्य शासनात्॥ २२॥
अयं च तनयो राजंस्ताराया दयितोऽङ्गदः।
लक्ष्मणेन सकाशं ते प्रेषितस्त्वरयानघ॥ २३॥
सोऽयं रोषपरीताक्षो द्वारि तिष्ठति वीर्यवान्।
वानरान् वानरपते चक्षुषा निर्दहन्निव॥ २४॥
तस्य मूर्ध्ना प्रणामं त्वं सपुत्रः सहबान्धवः।
गच्छ शीघ्रं महाराज रोषो ह्यद्योपशाम्यताम्॥ २५॥

उन्होंने कहा कि ये राम के भाई लक्ष्मण जिनके लिये भाई के वचन ही सारथी तथा प्रयत्न ही रथ है, राम के आदेश से यहाँ आए हैं। हे निष्पाप! इस तारा के प्रिय पुत्र अंगद को लक्ष्मण ने शीघ्रता के साथ आपके पास भेजा है। हे वानर पति! क्रोध से आँखे लाल किये हुए वे तेजस्वी लक्ष्मण द्वार पर खड़े हैं और अपने नेत्रों से वानरों को मानो जला सा रहे हैं। हे महाराज! आप पुत्र और बन्धु बान्धवों के साथ जल्दी उनके पास जा कर सिर झुका कर उन्हें प्रणाम कीजिये तथा उनके क्रोध को आज शान्त कीजिये।

तीसवाँ सर्ग

हनुमान जी का चिन्तित हुए सुग्रीव को समझाना।

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवः सचिवैः सह।
लक्ष्मणं कुपितं श्रुत्वा मुमोचासनमात्मवान्॥ १॥
स च तानब्रवीद् वाक्यं निश्चित्य गुरुलाघवम्।

मंत्रियों के साथ अंगद की बात सुन कर और लक्ष्मण के क्रुद्ध होने के समाचार को प्राप्त कर मनस्वी सुग्रीव आसन छोड़ कर खड़े हो गये। उन्होंने महानता और लघुता का विचार कर उनसे कहा कि—

न मे दुर्व्याहृतं किंचिन्नापि मे दुरनुष्ठितम्।। २।।
लक्ष्मणो राघवभ्राता क्रुद्धः किमिति चिन्तये।
असुहृद्भिर्ममामित्रैर्नित्यमन्तरदर्शिभिः ।। ३।।
मम दोषानसम्भूतान्श्रावितो राघवानुजः।
अत्र तावद् यथाबुद्धिः सर्वैरेव यथाविधि।। ४।।
भावस्य निश्चयस्तावद् विज्ञेयो निपुणं शनैः।

न तो मैंने कोई बुरी बात कही है और न मैंने कोई बुरा काम किया है, पर राम के भाई लक्ष्मण क्यों क्रुद्ध हैं यही मुझे चिन्ता है। निश्चय ही जो मेरे मित्र नहीं तथा शत्रु हैं और मेरे दोषों को सदा देखा करते हैं, उन्होंने मेरे न उत्पन्न दोषों को उन्हें बताया है। आप सबके द्वारा अपनी बुद्धि अनुसार निपुणता के साथ धीरे-धीरे विधि पूर्वक उनके मनोभाव को जानना चाहिये।

न खल्वस्ति मम त्रासोलक्ष्मणान्नापि राघवात्।। ५।।
मित्रं स्वस्थानकुपितं जनयत्येव सम्भ्रमम्।
सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम्।। ६।।
अनित्यत्वात् तु चित्तानां प्रीतिरल्पेऽभिद्यते।
अतोनिमित्तं त्रस्तोऽहं रामेण तु महात्मना।। ७।।
यन्ममोपकृतं शक्यं प्रतिकर्तुं न तन्मया।

मुझे अवश्य ही लक्ष्मण से और राम से कोई डर नहीं है, पर असमय क्रुद्ध हुआ मित्र घबराहट उत्पन्न कर ही देता है। मित्र बनाना तो आसान है पर मित्रता का पालन करना कठिन है। मनोभावों के सदा एक समान न रहने के कारण थोड़े से भी कारण से प्रेमभाव छिन्न हो जाता है। इस कारण से ही मैं डरा हुआ हूँ कि महात्मा राम ने जो मेरा उपकार किया है, उसका प्रतिकार करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।

सुग्रीवेणैवमुक्ते तु हनूमान् हरिपुंगवः।। ८।।
उवाच स्वेन तर्केण मध्ये वानरमन्त्रिणाम्।
सर्वथा नैतदाश्चर्यं यत् त्वं हरिगणेश्वर।। ९।।
न विस्मरसि सुस्निग्धमुपकारं कृतं शुभम्।
राघवेण तु वीरेण भयमुत्सृज्य दूरतः।। १०।।
त्वत्प्रियार्थं हतो वाली शक्रतुल्यपराक्रमः।
सर्वथा प्रणयात् क्रुद्धो राघवो नात्र संशयः।। ११।।
भ्रातरं सम्प्रहितवाँल्लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम्।

सुग्रीव के ऐसा कहने पर वानरों में श्रेष्ठ हनुमान, मन्त्रियों के बीच में अपनी युक्ति से बोले कि हे वानरराज! इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आप स्नेह पूर्वक किये गये उत्तम उपकार को भूल नहीं रहे हैं। वीर राम ने भय को दूर ही छोड़ कर आपके प्रिय के लिये इन्द्र के समान बाली को मार दिया। अब वे प्रेम के कारण ही आपसे क्रुद्ध हैं इसमें कोई संशय नहीं है और अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले भाई लक्ष्मण को भी उन्होंने इसी कारण आपके पास भेजा है।

त्वं प्रमत्तो न जानीषे कालं कालविदां वर।। १२।।
फुल्लसप्तच्छदश्यामा प्रवृत्ता तु शरच्छुभा।
निर्मलग्रहनक्षत्रा द्यौः प्रणष्टबलाहका।। १३।।
प्रसन्नाश्च दिशः सर्वाः सरितश्च सरांसि च।
प्राप्तमुद्योगकालं तु नावैषि हरिपुंगव।। १४।।
त्वं प्रमत्त इति व्यक्तं लक्ष्मणोऽयमिहागतः।

हे समय का ज्ञान रखने वालों में श्रेष्ठ! आपने प्रमाद के कारण समय को नहीं जाना। अब सप्तच्छद और तमाल के वृक्षों में फूल आ गये हैं और सुन्दर शरद् ऋतु आरम्भ हो गयी है। आकाश में बादल समाप्त हो गये हैं, ग्रह और नक्षत्र निर्मल दिखाई देते हैं। सारी दिशाएँ, नदियाँ और सरोवर स्वच्छ तथा प्रकाश युक्त हो गये हैं। हे वानर श्रेष्ठ! कार्य करने का यह समय आ गया पर आप इसे जान नहीं रहे है, इससे स्पष्ट है कि आप असावधान हैं, इसीलिये लक्ष्मण यहाँ आए हैं।

आर्तस्य हृतदारस्य परुषं पुरुषान्तरात्।। १५।।
वचनं मर्षणीयं ते राघवस्य महात्मनः।
कृतापराधस्य हि ते नान्यत् पश्याम्यहं क्षमम्।। १६।।
अन्तरेणाञ्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात्।
नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवो हितम्।। १७।।
इत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः।

जिसकी पत्नी का हरण हुआ है, तथा जो दुखी हैं, उन महात्मा राम के सन्देश वाहक लक्ष्मण से आपको कठोर वचन भी सुनना पड़े, तो उसे आपको सुन लेना चाहिये। आपके द्वारा उनका अपराध हुआ है, अतः हाथ जोड़ कर लक्ष्मण को प्रसन्न करने के अतिरिक्त मैं कोई दूसरा उचित मार्ग आपके लिये नहीं देखता। भलाई के लिये नियुक्त किये गये मंत्रियों को राजा की भलाई की बात अवश्य कहनी चाहिये। इसलिये मैं भय छोड़ कर अपना निश्चित विचार आपसे कह रहा हूँ।

न स क्षमः कोपयितुं यः प्रसाद्यः पुनर्भवेत्।। १८।।
पूर्वोपकारं स्मरता कृतज्ञेन विशेषतः।
तस्य मूर्ध्ना प्रणम्य त्वं सपुत्रः ससुहृज्जनः।
राजंस्तिष्ठ स्वसमये भर्तुर्भार्येव तद्वशे।। १९।।

जिसे बाद में प्रयत्न करके प्रसन्न करना पड़े, उसे पहले ही क्रुद्ध करना उचित नहीं है तथा पहले किये गये उपकार को स्मरण रखने वाले पुरुष को तो यह कार्य विशेष रूप से नहीं करना चाहिये। हे राजन्! आप पुत्र और मित्रों के साथ उनको सिर भुका कर प्रणाम कर अपने किये गये समभौते पर स्थिर रहिये और राम के कथनानुसार ऐसे ही कार्य कीजिये जैसे पत्नी पति के वश में रह कर करती है।

इकत्तीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का किष्किंधा पुरी की शोभा देखते हुए सुग्रीव के महल में प्रवेश करके क्रोध पूर्वक धनुष को टंकारना। भयभीत सुग्रीव का तारा को उन्हें शान्त करने के लिये भेजना। तारा का समभा बुभा कर उन्हें अन्तःपुर में ले जाना।

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा।
प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात्।। १।।
द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः।
बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः।। २।।

राम के आदेश को प्राप्त किये हुए, शत्रुवीरों का नाश करने वाले लक्ष्मण ने राम के आदेश से तब सुन्दर किष्किंधा गुहा में प्रवेश किया। वहाँ द्वार पर खड़े विशाल और महाबली वानर लक्ष्मण को देख कर सारे हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

स तां रत्नमयीं दिव्यां श्रीमान् पुष्पितकाननाम्।
हर्म्य प्रासादसम्बाधां ददर्श महतीं गुहाम्।। ३।।
चन्दनागुरुपद्मानां गन्धैः सुरभिगन्धिताम्।
मैरेयाणां मधूनां च सम्मोदितमहापथाम्।। ४।।
विन्ध्यमेरुगिरिप्रख्यैः प्रासादैर्नैकभूमिभिः।

उन श्रीमान लक्ष्मण ने तब अन्दर से अलौकिक रूप तथा रत्नों से परिपूर्ण उस महान किष्किंधा नगरी को देखा। उन्होंने देखा कि बगीचों में फूल खिले हुए हैं, वह अनेक अट्टालिकाओं और महलों से परिपूर्ण है। वह नगरी चन्दन, अगर और पद्मों की गन्ध से अत्यन्त सुन्दरता के साथ सुगन्धित थी, उसके विशाल मार्ग भैरेय और मधु के आमोद से महक रहे थे। वहाँ विन्ध्याचल और मेरु पर्वत जैसे विशाल अनेक मंजिलों वाले प्रासाद विद्यमान थे।

अङ्गदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च।। ५।।
गवयस्य गवाक्षस्य गजस्य शरभस्य च।
विद्युन्मालेश्च सम्पातेः सूर्याक्षस्य हनूमतः।। ६।।
वीरबाहोः सुबाहोश्च नलस्य च महात्मनः।
कुमुदस्य सुषेणस्य तारजाम्बवतोस्तथा।। ७।।
दधिवक्त्रस्य नीलस्य सुपाटलसुनेत्रयोः।
एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम्।। ८।।
ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः।

उन्होंने अंगद के सुन्दर घर को देखा। उन्होंने मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, विद्युन्माली, सम्पाती, सूर्याक्ष, हनुमान, वीरबाहु, सुबाहु, महात्मा नल, कुमुद, सुषेण तार, और जाम्बवान, दधिमुख, नील, सुपाटल, तथा सुनेत्र, इन सभी महात्मा वानर प्रमुखों के विशाल और सुदृढ़ घरों को राजमार्ग पर स्थित देखा।

पाण्डुराभ्रप्रकाशानि गन्धमाल्ययुतानि च।। ९।।
प्रभूतधनधान्यानि स्त्रीरत्नैः शोभितानि च।
पाण्डुरेण तु शैलेन परिक्षिप्तं दुरासदम्।। १०।।
वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम्।
महेन्द्रदत्तैः श्रीमद्भिर्नीलजीमूतसंनिभैः।। ११।।
दिव्यपुष्पफलैर्वृक्षैः शीतच्छायैर्मनोरमैः।
हरिभिः संवृतद्वारं बलिभिः शस्त्रपाणिभिः।। १२।।
दिव्यमाल्यावृतं शुभ्रं तप्तकाञ्चनतोरणम्।

वे सभी भवन श्वेत बादलों के समान प्रकाशित हो रहे थे और सुन्दर मालाओं से सुसज्जित थे, वे पर्याप्त धनधान्य तथा श्रेष्ठ स्त्रियों से सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने देखा कि वानरराज सुग्रीव का घर श्वेत पर्वत के समान ऊँची चार दिवारी से घिरा हुआ था। वह इन्द्र के भवन के समान सुन्दर था। उसमें हर एक का प्रवेश करना कठिन था। वह प्रासाद इन्द्र के द्वारा दिये हुए, नीले बादलों के समान काले, सुन्दर, मनोरम, शीतल छाया वाले, अलौकिक पुष्प तथा फलों वाले वृक्षों से सुसज्जित था। बलवान तथा शस्त्रधारी वानर उसके द्वार पर पहरा दे रहे थे। तमतमाते हुए सुनहले द्वार वाला वह श्वेत प्रासाद अलौकिक मालाओं से सजाया हुआ था।

सुग्रीवस्य गृहं रम्यं प्रविवेश महाबलः।। १३।।
अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः।
स सप्त कक्ष्या धर्मात्मा यानासनसमावृताः।। १४।।
ददर्श सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत्।
हैमराजतपर्यङ्कैर्बहुभिश्च वरासनैः।। १५।।
महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्र समावृतम्।
प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम्।। १६।।
तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम्।

बिना किसी रोक टोक के महा बलवान सुमित्रा नन्दन ने सुग्रीव के उस सुन्दर भवन में उसी प्रकार प्रवेश किया जैसे सूर्य विशाल बादलों में प्रवेश करता है। उन्होंने वहाँ सवारियों और आसनों से युक्त सात ड्यौढ़ियाँ देखी, और फिर उस धर्मात्मा ने अत्यन्त सुरक्षित महान अन्तःपुर को देखा। वह अन्तःपुर बहुमूल्य बिछौनों से आवृत्त, सोने और चाँदी के पलंगों तथा उत्तम आसनों से सुसज्जित था। वहाँ प्रवेश करते ही उन्होंने अनवरत गुंजित होने वाली संगीत की मधुर ध्वनि सुनी, जिसमें वीणा के साथ गीत गाया जा रहा था, उसमें पद और अक्षर का उच्चारण सम तालों पर हो रहा था।

बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः।। १७।।
स्त्रियः सुग्रीवभवने दद स महाबलः।
दृष्ट्वाभिजनसम्पन्नास्तत्र माल्यकृतस्रजः।। १८।।
वरमाल्यकृतव्यग्रा भूषणोत्तमभूषिताः।
नातृप्तान् नाति चाव्यग्रान् नानुदात्तपरिच्छदान्।। १९।।
सुग्रीवानुचरांश्चापि लक्षयामास लक्ष्मणः।
कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निःस्वनं तथा।। २०।।
स निशम्य ततः श्रीमान् सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत्।

उस महान बलशाली ने वहाँ बहुत सी अनेक आकार वाली रूप और यौवन से गर्वित स्त्रियों को सुग्रीव के भवन में देखा। वे उत्तमकुल में उत्पन्न तथा पुष्प मालाओं से सुसज्जित थीं। उत्तम भूषणों को धारण किये हुए वे सुन्दर मालाओं के निर्माण में लगी हुईं थीं। उन्हें देख कर लक्ष्मण ने सुग्रीव के सेवकों को भी देखा। वे सब तृप्त और व्यग्रता से रहित थे। उनके वस्त्र निम्न श्रेणी के नहीं थे। वहाँ नूपुरों की झनकार तथा मेखलाओं की खनखनाहट सुन कर श्रीमान लक्ष्मण ने लज्जा को अनुभव किया।

रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम्।। २१।।
चकार ज्यास्वनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन्।
चारित्रेण महाबाहुरपकृष्टः स लक्ष्मणः।। २२।।
तस्थावेकान्तमाश्रित्य रामकोपसमन्वितः।
तेन चापस्वनेनाथ सुग्रीवः प्लवगाधिपः।। २३।।
विज्ञायागमनं त्रस्तः स चचाल वरासनात्।

पर तुरन्त आभूषणों की उस झनकार को सुन कर, वे वीर क्रोध के वेग से आक्रान्त हो गये और उन्होंने अपनी धनुष की प्रत्यंचा को टंकारा और उसकी ध्वनि से सारी दिशाओं को भर दिया। वह महाबाहु लक्ष्मण अपने चरित्र का ध्यान कर वहाँ से हट गये और राम के लिये क्रोध से युक्त हो कर एकान्त में जा कर खड़े हो गये। लक्ष्मण के धनुष की टंकार को सुन कर वानर राज सुग्रीव यह जान कर कि लक्ष्मण यहाँ मेरे महल में आ गये हैं, भयभीत हो कर अपने आसन से उठ कर खड़े हो गये।

अङ्गदेन समाख्यातो ज्यास्वनेन च वानरः।। २४।।
बुबुधे लक्ष्मणं प्राप्तं मुखं चास्य व्यशुष्यत।
ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम्।। २५।।
उवाच हितमव्यग्रस्त्रासससम्भ्रान्तमानसः।

पहले अंगद ने उनसे कहा था, अब उन्हें धनुष की टंकार भी सुनाई देने लगी, अतः यह जान कर कि लक्ष्मण यहाँ महल में आ गये हैं, वानरश्रेष्ठ सुग्रीव का मुख सूख गया। वे भय से मन ही मन घबरा गये, पर किसी तरह शान्त हो कर उन्होंने सुन्दरी तारा से यह अपने हित की बात कही।

किं नु रुट्कारणं सुभ्रु प्रकृत्या मृदुमानसः।। २६।।
सरोष इव सम्प्राप्तो येनायं राघवानुजः।
अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि।। २७।।
वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि।
त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा न स्म कोपं करिष्यति।। २८।।
नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित् कुर्वन्ति दारुणम्।
त्वया सान्त्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम्।
ततः कमलपत्राक्षं द्रक्ष्याम्यहमरिंदमम्।। २९।।

वे बोले कि हे सुन्दरी! प्रकृति से कोमल मन वाले ये राम के छोटे भाई क्रोध में भरे हुए आये हैं। इनके क्रोध का क्या कारण हो सकता है? हे भामिनी! अथवा तुम ही पहले उनसे मिलो। तुम सान्त्वनायुक्त वाणी से उन्हें प्रसन्न कर सकती हो। उनका हृदय शुद्ध है, इसलिये तुम्हें देख कर वे तुम्हारे ऊपर क्रोध नहीं करेंगे। महात्मा लोग कभी स्त्रियों के साथ कठोर बर्ताव नहीं करते। तुम्हारे सान्त्वनायुक्त वचनों से जब वे अनुगृहीत हो जायेंगे, उनका मन तथा इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जायेंगी,

तब उन शत्रुओं को नष्ट करने वाले और कमलनयन लक्ष्मण से मैं मिलूँगा।

स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं
तस्थावुदासीनतया महात्मा।। ३०।।
अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्रपुत्रः
स्त्रीसंनिकर्षाद् विनिवृत्तकोपः।
उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं
वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम्।। ३१।।
किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र
कस्ते न संतिष्ठति वाङ्निदेशे।
कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं
दावाग्निमासीदति निर्विशङ्कः।। ३२।।

झुके हुए शरीर तथा उत्तम लक्षण वाली तारा तब लक्ष्मण के समीप गयी। उस वानरेश पत्नी को देखते ही वह महात्मा राजकुमार उदासीन भाव से नीचा मुख किये खड़े हो गये। स्त्री के समीप होने से उनका क्रोध भी शान्त हो गया। तब तारा ने स्नेह और चतुराई से युक्त महान अर्थवाली तथा सान्त्वना युक्त वाणी में कहा कि हे राजकुमार! आपके क्रोध का क्या कारण है? कौन आपकी आज्ञा के आधीन नहीं है? कौन निडर हो कर सूखे वृक्षों वाले वन में फैली हुई दावाग्नि में प्रवेश कर रहा है?

स तस्या वचनं श्रुत्वा सान्त्वपूर्वमशङ्कितः।
भूयः प्रणयदृष्टार्थं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।। ३३।।
स मासांश्चतुरः कृत्वा प्रमाणं प्लवगेश्वरः।
व्यतीतांस्तान् मदोदग्रो विहरन् नावबुध्यते।। ३४।।
नहि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते।
पानादर्थश्च कामश्च धर्मश्च परिहीयते।। ३५।।

उसकी इस बात को जो सान्त्वना से भरी हुई थी और अत्यधिक स्नेह से युक्त अर्थ वाली थी, सुन कर लक्ष्मण के हृदय की आशंका समाप्त हो गयी और वे कहने लगे कि यह वानरेश चार मासों की समय सीमा निश्चित कर, मद में मस्त हो कर विहार करता हुआ यह नहीं समझ रहा है कि वे चार मास व्यतीत हो गये हैं। धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिये इस प्रकार का मद्यपान प्रशंसनीय नहीं है। मद्यपान करने से धर्म, अर्थ और काम नष्ट हो जाते है।

धर्मलोपो महांस्तावत् कृते ह्यप्रतिकुर्वतः।
अर्थलोपश्च मित्रस्य नाशे गुणवतो महान्।। ३६।।
मित्रं ह्यर्थगुणश्रेष्ठं सत्यधर्मपरायणम्।
तद्द्वयं तु परित्यक्तं न तु धर्मे व्यवस्थितम्।। ३७।।
तदेवं प्रस्तुते कार्ये कार्यमस्माभिरुत्तरम्।
तत् कार्यं कार्यतत्त्वज्ञे त्वमुदाहर्तुमर्हसि।। ३८।।

मित्र का प्रत्युपकार न करने से धर्म का नाश तो हो ही जाता है, गुणवान मित्र की मित्रता का नाश होने से अर्थ का भी लोप हो जाता है। मित्र भी दो प्रकार के होते हैं, अर्थ प्राप्ति के गुणों में श्रेष्ठ और सत्य और धर्म का पालन करने वाले। पर सुग्रीव ने दोनों तरह के मित्र के कार्य छोड़ दिये। न तो वह मित्र का कार्य सिद्ध कर रहा है और न धर्म का पालन कर रहा है। तुम कार्य के तत्व को जानती हो, अतः ऐसी स्थिति आने पर हमें आगे क्या करना चाहिये, उस कार्य के विषय में तुम ही बताओ।

सा तस्य धर्मार्थसमाधियुक्तं
निशम्य वाक्यं मधुरस्वभावम्।
तारा गतार्थे मनुजेन्द्रकार्ये
विश्वासयुक्तं तमुवाच भूयः।। ३९।।

मधुर स्वभाव का परिचय देने वाले और धर्म तथा अर्थ के मेल से संयुक्त लक्ष्मण के उस वाक्य को सुन कर तारा श्रीराम के उस कार्य के विषय में, जिसका प्रयोजन वह जानती थी, लक्ष्मण से पुनः विश्वास पूर्वक बोली कि –

न कोपकालः क्षितिपालपुत्र
न चापि कोपः स्वजने विधेयः।
त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य
प्रमादमप्यर्हसि वीर सोढुम्।। ४०।।

हे राजपुत्र! यह क्रोध करने का समय नहीं है, फिर अपने लोगों पर तो क्रोध करना भी नहीं चाहिये। सुग्रीव के हृदय में आपका कार्य करने की कामना रहती हैं। हे वीर! ऐसे व्यक्ति से यदि कुछ प्रमाद हो भी जाये, तो उसे आपको सहन करना चाहिये।

कोपं कथं नाम गुणप्रकृष्टः
कुमार कुर्यादपकृष्टसत्त्वे।
कस्त्वद्विधः कोपवशं हि गच्छेत्
सत्त्वावरुद्धस्तपसः प्रसूतिः।। ४१।।

हे कुमार! जो गुणों में श्रेष्ठ हैं वह हीन गुणों वाले पर क्रोध कैसे कर सकता है। जो तपस्या से उत्पन्न सत्वगुणों से युक्त है, वह तुम्हारे जैसा कौन व्यक्ति क्रोध के वश में हो सकता है?

जानामि कोपं हरिवीरबन्धो–
र्जानामि कार्यस्य च कालसङ्गम्।
जानामि कार्यं त्वयि यत्कृतं न–
स्तच्चापि जानामि यदत्र कार्यम्।। ४२।।

वानरवीर सुग्रीव के मित्र श्रीराम के क्रोध के कारण को मैं जानती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि उनके कार्य में विलम्ब हुआ है। आपके द्वारा जो कार्य करणीय था, जिसे आपने पूरा किया मैं उसे भी जानती हूँ और मैं यह भी जानती हूँ कि अब हमें आपके लिये क्या करना है?

उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम।
कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने।। ४३।।
तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया।
अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम्।। ४४।।
तारया चाभ्यनुज्ञातस्त्वरया वापि चोदितः।
प्रविवेश महाबाहुरभ्यन्तरमरिंदमः।। ४५।।

हे नरश्रेष्ठ! सुग्रीव ने आपके कार्य के सिद्ध करने के लिये प्रयत्न आरम्भ करने को तो बहुत पहले ही आज्ञा दी हुई है। यद्यपि वे इस समय कुछ कामनाओं के वश में हो रहे हैं। हे महाबाहु! आप अन्दर आइये। आपने तो चरित्र की रक्षा की है। सज्जन लोगों के लिये स्त्रियों को मित्र भाव से देखना अधर्म नहीं है। तब वे शत्रु का दमन करने वाले महाबाहु, तारा के आग्रह और कार्य की शीघ्रता से प्रेरित हो कर महल के अन्तरतम प्रकोष्ठ में गये।

ततः सुग्रीवमासीनं काञ्चने परमासने।
महार्हास्तरणोपेते ददर्शादित्यसंनिभम्।। ४६।।
दिव्याभरणचित्राङ्गं दिव्यरूपं यशस्विनम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं महेन्द्रमिव दुर्जयम्।। ४७।।
दिव्याभरणमाल्याभिः प्रमदाभिः समावृतम्।
संरब्धतररक्ताक्षो बभूवान्तकसंनिभः।। ४८।।

वहाँ उन्होंने स्वर्ण के उत्तम सिंहासन, जिस पर बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था, सूर्य के समान बैठे हुए सुग्रीव को देखा। वे यशस्वी और दुर्जय सुग्रीव दीव्य रूपधारी, दिव्य आभूषणों से अलंकृत शरीर वाले तथा दिव्य मालाओं और वस्त्रों को धारण किये इन्द्र के समान प्रतीत हो रहे थे। वे दिव्य आभूषणों और मालाओं से सुशोभित स्त्रियों से घिरे हुए थे। उन्हें इस अवस्था में देख कर लक्ष्मण क्रोध से और अधिक लाल आँखों वाले हो कर मृत्यु के समान दिखाई देने लगे।

बत्तीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का लक्ष्मण के पास आना, लक्ष्मण जी का उन्हें फटकारना, और तारा का लक्ष्मण जी को समझाना।

तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम्।
सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः।। १।।
क्रुद्धं निश्वसमानं तं प्रदीप्तमिव तेजसा।
भ्रातुर्व्यसनसंतप्तं दृष्ट्वा दशरथात्मजम्।। २।।
उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमासनम्।
उत्पतन्तमनूत्पेतू रुमाप्रभृतयः स्त्रियः।। ३।।
सुग्रीवं गगने पूर्णं चन्द्रं तारागणा इव।

उन नरश्रेष्ठ लक्ष्मण को क्रोध में भरा हुआ और बिना रोक टोक के अन्दर आया हुआ देख कर सुग्रीव कीं इन्द्रियाँ व्याकुल हो गईं। क्रोध में भर कर लम्बी साँस लेते हुए, अपने तेज से प्रज्वलित से हो रहे, भाई के दुख से दुखी, उन दशरथ पुत्र को देख कर, वानरश्रेष्ठ सुग्रीव अपने स्वर्ण आसन को छोड़ कर नीचे कूद पड़े। सुग्रीव के कूदते ही रूमा आदि उनकी स्त्रियाँ भी उनके पीछे उसी प्रकार कूद पड़ीं जैसे आकाश में पूर्ण चन्द्रमा के उदय होने पर उसके पीछे अन्य तारों के समुदाय भी उदित हे जाते हैं।

संरक्तनयनः श्रीमान् संचचार कृताञ्जलिः।। ४।।
बभूवावस्थितस्तत्र कल्पवृक्षो महानिव।
रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम्।। ५।।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः सतारं शशिनं यथा।
सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।। ६।।
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते।

उस समय श्रीमान सुग्रीव की आँखें मद से लाल हो रहीं थीं। वे चल कर लक्ष्मण के समीप जो महान कल्पवृक्ष के समान स्थिर थे, आये और हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़े हो गये। सुग्रीव के साथ उनकी पत्नी रुमा भी थी। वे स्त्रियों के बीच में खड़े हुए तारों के बीच में चन्द्रमा से लग रहे थे। तब क्रुद्ध लक्ष्मण ने उनसे कहा कि धैर्यवान, उत्तम कुल में उत्पन्न, दयालु,

जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और सत्यवादी राजा ही लोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है।

यस्तुराजा स्थितोऽधर्मे मित्राणामुपकारिणाम्।। ७।।
मिथ्या प्रतिज्ञां कुरुते को नृशंसतरस्ततः।
पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः।। ८।।
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर।
गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।। ९।।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।

जो राजा अधर्म में स्थित हो कर अपने उपकारी मित्रों के सामने की हुई प्रतिज्ञा को असत्य करता है, उससे अधिक निर्दय कौन हो सकता है। हे वानरेश! जो पहले मित्रों से कृतार्थ हो कर पुनः उनका प्रत्युपकार नहीं करता है, वह कृतघ्न व्यक्ति सारे प्राणियों के लिये मारने योग्य है। सत्पुरुषों ने गो हत्यारे, शराबी, चोर, व्रतभंग करने वाले, इन सबके लिये प्रायश्चित का विधान किया है, पर कृतघ्न के लिये कोई प्रायश्चित नहीं है।

अनार्यस्त्वं कृतघ्नश्च मिथ्यावादी च वानर।। १०।।
पूर्वं कृतार्थो रामस्य न तत्प्रतिकरोषि यत्।
ननु नाम कृतार्थेन त्वया रामस्य वानर।। ११।।
सीताया मार्गणे यत्नः कर्तव्यः कृतमिच्छता।
स त्वं ग्राम्येषु भोगेषु सक्तो मिथ्याप्रतिश्रवः।। १२।।
न त्वां राम विजानीते सर्पं मण्डूकराविणम्।

हे वानर जाति के मनुष्य! तुम अनार्य, कृतघ्न और मिथ्याचारी हो। तुमने पहले राम से अपना काम करा लिया। पर अब उनका कार्य करते नहीं हो। हे वानर जाति के मनुष्य! राम के द्वारा तुम्हारा कार्य कर दिया गया, अब तुम्हे प्रत्युपकार की इच्छा से सीता की खोज के लिये प्रयत्न करना चाहिये। पर तुम प्रतिज्ञा को असत्य करके ग्राम्यभोगों में लगे हुए हो, राम तुम्हारे बारे में यह नहीं जानते कि तुम मेंढक की आवाज बोलने वाले सर्प हो।

महाभागेन रामेण पापः करुणवेदिना।। १३।।
हरीणां प्रापितो राज्यं त्वं दुरात्मा महात्मना।
कृतं चेन्नातिजानीषे राघवस्य महात्मनः।। १४।।
सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि वालिनम्।
न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः।। १५।।

महाभाग, महात्मा और दयालु राम ने तुम जैसे दुष्ट और पापी को राज्य दिला दिया। यदि तुम महात्मा श्रीराम के उपकार को नहीं जानोगे तो तीक्ष्ण बाणों से मारे जा कर जल्दी ही बाली के दर्शन कर लोगे। क्योंकि जिस मार्ग से बाली गया है, वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ है। इसलिये हे सुग्रीव! अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहो। बाली के पथ का अनुसरण मत करो।

न नूनमिक्ष्वाकुवरस्य कार्मुका–
च्छरांश्च तान् पश्यसि वज्रसंनिभान्।
ततः सुखं नाम विषेवसे सुखी
न रामकार्यं मनसाप्यवेक्षसे।। १६।।

निश्चय ही तुम उन इक्ष्वाकु शिरोमणि राम के धनुष से छूटे हुए वज्र के समान बाणों को नहीं देख रहे हो। इसलिये तुम ग्राम्य सुखों का सेवन कर रहे हो और राम के कार्य को मन में विचार भी नहीं रहे हो।

तथा ब्रुवाणं सौमित्रिं प्रदीप्तमिव तेजसा।
अब्रवील्लक्ष्मणं तारा ताराधिपनिभानना।। १७।।
नैवं लक्ष्मण वक्तव्यो नायं परुषमर्हति।
हरीणामीश्वरः श्रोतुं तव वक्त्राद् विशेषतः।। १८।।
नैवाकृतज्ञः सुग्रीवो न शठो नापि दारुणः।
नैवानृतकथो वीर न जिह्मश्च कपीश्वरः।। १९।।
उपकारं कृतं वीरो नाप्ययं विस्मृतः कपिः।
रामेण वीर सुग्रीवो यदन्यैर्दुष्करं रणे।। २०।।

अपने तेज से प्रज्वलित से होते हुए सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर चन्द्रमुखी तारा ने उनसे कहा कि हे लक्ष्मण! आपको इस प्रकार नहीं कहना चाहिये। ये वानरों के स्वामी इस प्रकार कठोर वाक्यों को सुनने के योग्य नहीं हैं। विशेष कर आप जैसे मित्र के मुख से तो इन्हें ऐसी बातें सुननी ही नहीं चाहिये। सुग्रीव न ही अकृतज्ञ हैं, न ही दुष्ट हैं, और न ही निर्दय हैं। ये कपीश्वर हे वीर! न तो असत्यवादी हैं और न कुटिल हैं। हे वीर! राम के द्वारा युद्ध में किया गया वह उपकार, जो दूसरों के लिये अत्यन्त कठिन था, इन वीर वानर सुग्रीव ने भुलाया नहीं है।

देहधर्मगतस्यास्य परिश्रान्तस्य लक्ष्मण।
अवितृप्तस्य कामेषु रामः क्षन्तुमिहार्हति।। २१।।
न च रोषवशं तात गन्तुमर्हसि लक्ष्मण।
निश्चयार्थमविज्ञाय सहसा प्राकृतो यथा।। २२।।
सावयुक्ता हि पुरुषास्त्वद्विधाः पुरुषर्षभ।
अविमृश्य न रोषस्य सहसा यान्ति वश्यताम्।। २३।।

प्रसादये त्वां धर्मज्ञ सुग्रीवार्थं समाहिता।
महान् रोषसमुत्पन्नः संरम्भस्त्यज्यतामयम्॥ २४॥

हे लक्ष्मण! पहले ये थके हुए और कामनाओं की तृप्ति से रहित थे, इसलिये ये शरीर के स्वाभाविक धर्मों के वश में हो गये। राम को इन्हें क्षमा कर देना चाहिये। हे तात लक्ष्मण! तुम्हें क्रोध के वश में नहीं होना चाहिये। ऐसा तो यथार्थ बात को न जान कर साधारण लोग हुआ करते हैं। हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! आप जैसे सत्त्वगुणों से युक्त पुरुष, बिना विचारे अचानक क्रोध के वश में नहीं होते। मैं सुग्रीव की भलाई के लिये अपने पूरे मन से आपको प्रसन्न होने के लिये प्रार्थना करती हूँ। आप महान क्रोध से उत्पन्न हुए इस हृदय के विक्षेभ का त्याग कीजिये।

त्वत्सहायनिमित्तं हि प्रेषिता हरिपुङ्गवाः।
आनेतुं वानरान् युद्धे सुबहून् हरिपुङ्गवान्॥ २५॥
तांश्च प्रतीक्षमाणोऽयं विक्रान्तान् सुमहाबलान्।
राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थं न निर्याति हरीश्वरः॥ २६॥
कृता सुसंस्था सौमित्रे सुग्रीवेण पुरा यथा।
अद्य तैर्वानरैः सर्वैरागन्तव्यं महाबलैः॥ २७॥

आपकी सहायता के लिये बहुत से श्रेष्ठ वानरों को युद्ध के लिये बुलाने हेतु भेजा जा चुका है। ये वानरेश उन्हीं महाबली और पराक्रमी वानरों की प्रतीक्षा करते हुए राम के कार्य की सिद्धि के लिये नगर से बाहर नहीं जा रहे हैं। हे सुमित्रा=नन्दन! सुग्रीव ने उन वानरों के लिये जो समय का आदेश किया हुआ है, उसके अनुसार आज उन सभी महाबलियों को आ जाना चाहिये।

तव हि मुखमिदं निरीक्ष्य कोपात्
क्षतजसमे नयने निरीक्षमाणाः।
हरिवरवनिता न यान्ति शान्तिं
प्रथमभयस्य हि शङ्किताः स्म सर्वाः॥ २८॥

क्रोध से युक्त आपके मुख को देख कर तथा रक्त के समान लाल इन दोनों आँखों को देखती हुई इन वानरेश की पत्नियों को शान्ति नहीं मिल रही है। हम सब पहले प्राप्त हुए भय के ही पुनः प्राप्त होने की आशंका से आशंकित हैं।

तेतीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का लक्ष्मण जी से क्षमा माँगना। लक्ष्मण का उनकी प्रशंसा करके उन्हें अपने साथ चलने के लिये कहना।

इत्युक्तस्तारया वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम्।
मृदुस्वभावः सौमित्रिः प्रतिजग्राह तद्वचः॥ १॥
तस्मिन् प्रतिगृहीते तु वाक्ये हरिगणेश्वरः।
लक्ष्मणात् सुमहत्त्रासं वस्त्रं क्लिन्नमिवात्यजत्॥ २॥
ततः कण्ठगतं माल्यं चित्रं बहुगुणं महत्।
चिच्छेद विमदश्चासीत् सुग्रीवो वानरेश्वरः॥ ३॥
स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवः सम्प्रहर्षयन्॥ ४॥

तारा के द्वारा इस प्रकार विनय पूर्ण तथा धर्म से युक्त बात कहे जाने पर कोमल स्वभाव वाले सुमित्रा नन्दन ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया। लक्ष्मण के द्वारा तारा की बात मान लिये जाने पर वानरों के राजा सुग्रीव ने लक्ष्मण से प्राप्त हुए महान भय को गीले वस्त्र की तरह से त्याग दिया। फिर उन्होंने अपने गले में पड़ी हुई बहुत गुणवाली, विचित्र और बड़ी माला को तोड़ दिया और वे पूरी तरह से मद से रहित हो गये। तब उन समस्त वानर शिरोमणि सुग्रीव ने भयानक बल वाले लक्ष्मण को हर्षित करते हुए यह विनय से युक्त बात कही कि–

प्रणष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
रामप्रसादात् सौमित्रे पुनश्चाप्तमिदं मया॥ ५॥
कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज॥ ६॥
सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम्।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा॥ ७॥
अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ।
गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरस्सरम्॥ ८॥

मेरी श्री, कीर्ति और पैतृकराज्य ये सब मुझसे छिन गये थे। हे सुमित्रानन्दन! श्रीराम की कृपा से ही मैंने इन्हें पुनः प्राप्त किया है। हे राजकुमार! अपने कार्यों से विख्यात उन देवता का प्रत्युपकार अंशमात्र से भी कौन चुका सकता है। श्री धर्मात्मा राम अपने ही तेज से सीता

को प्राप्त करेंगे और रावण का भी वध करेंगे। मैं तो केवल एक तुच्छ सहायक ही होऊँगा। हे नरश्रेष्ठ! शत्रु रावण को मारने के लिये सेना के साथ जाते हुए उन राजा राम के मैं तो केवल पीछे-पीछे ही चलूँगा।

यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात् प्रणयेन वा।
प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति॥ ९॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चेदमुवाच ह॥ १०॥

यदि विश्वास और प्रेम के कारण मुझसे कोई अपराध हो गया है तो इस सेवक के उस अपराध को क्षमा कर देना चाहिये। ऐसा कोई सेवक नहीं है, जिससे कोई अपराध न हो। महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहने पर लक्ष्मण प्रसन्न हो गये और प्रीतिपूर्वक यह बोले कि–

सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर।
त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः॥ ११॥
यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमीदृशम्।
अर्हस्त्वं कपिराज्यस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम्॥ १२॥
सहायेन च सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान्।
वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः॥ १३॥

हे वानरेश्वर सुग्रीव! मेरा भाई तुम जैसे विशेष विनयशील सहायक को प्राप्त कर पूर्ण रूप से सहायकों वाले हैं। हे सुग्रीव! तुम्हारा जो प्रभाव है और जो तुम्हारे हृदय में ऐसी पवित्रता है, इसके कारण आप वानरों के राज्य की इस परम उत्तम श्री को भोगने के योग्य हैं। हे सुग्रीव! प्रतापी श्रीराम तुम्हारी सहायता से युद्ध में शत्रुओं को जल्दी ही नष्ट कर देंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम्॥ १४॥
दोषज्ञः सति सामर्थ्ये कोऽन्यो भाषितुमर्हति।
वर्जयित्वा मम ज्येष्ठं त्वां च वानरसत्तम॥ १५॥
किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्रम त्वं मया सह।
सान्त्वयस्व वयस्यं च भार्याहरणदुःखितम्॥ १६॥
यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम्।
मया त्वं परुषाण्युक्तस्तत् क्षमस्व सखे मम॥ १७॥

हे सुग्रीव! तुम धर्मज्ञ हो, कृतज्ञ हो, और युद्ध में पीछे हटने वाले नहीं हो। इसलिये आपका यह वचन पूरी तरह से उचित और युक्तियुक्त है। हे वानरश्रेष्ठ! आपको और मेरे बड़े भाई को छोड़ कर कौन ऐसा है जो सामर्थ्य होने पर अपने दोष को जान कर इस प्रकार का नम्रतापूर्ण वचन कह सके। किन्तु हे वीर! अब तुम जल्दी ही मेरे साथ यहाँ से निकलो और अपने मित्र को जो अपनी पत्नी के हरण से दुखी है, सान्त्वना दो। हे मित्र! शोक मग्न राम की बात सुन कर, मैंने तुम्हें जो कठोर वचन कहे, उन्हें तुम क्षमा कर दो।

चौंतीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का हनुमान जी से वानर सेना के संग्रह के लिये दुबारा दूत भेजने की आज्ञा देना।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।
हनूमन्तं स्थितं पार्श्वे वचनं चेदमब्रवीत्॥ १॥
वनेषु च सुरम्येषु सुगन्धिषु महत्सु च।
तापसाश्रमरम्येषु वनान्तेषु समन्ततः॥ २॥
तांस्तांस्त्वमानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान्।
सामदानादिभिः कल्पैर्वानरैर्वेगवत्तरैः॥ ३॥

महात्मा लक्ष्मण के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सुग्रीव ने पास में खड़े हुए हनुमान से यह कहा कि तुम पृथ्वी पर सुन्दर, सुगन्धित और महान वनों में, सुन्दर आश्रमों में, सब तरफ वन प्रान्तों में जो-जो वानर रहते हैं, उन सबको तेजी से जाने वाले वानरों के द्वारा साम, दाम आदि उपायों से शीघ्रता से बुलवाओ।

प्रेषिताः प्रथमं ये च मयाऽऽज्ञाता महाजवाः।
त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं सम्प्रेषय हरीश्वरान्॥ ४॥
ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः।
इहानयस्व ताञ्शीघ्रं सर्वानेव कपीश्वरान्॥ ५॥
अहोभिर्दशभिर्ये च नागच्छन्ति ममाज्ञया।
हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः॥ ६॥
ते गतिज्ञा गतिं गत्वा पृथिव्यां सर्ववानराः।
आनयन्तु हरीन् सर्वांस्त्वरिताः शासनान्मम॥ ७॥

जो मैंने आज्ञा देकर पहले महान वेग वाले वानर भेजे थे, उन्हें जल्दी करने के लिये तुम पुनः वानर प्रमुखों को भेजो। तुम सारे ही वानर प्रमुखों को चाहे वे काम, भोग में फँसे हुए हों, चाहे विलम्ब से कार्य करने वाले

हों, यहाँ बुलवाओ। मेरी आज्ञा से जो वानर दस दिन के अन्दर यहाँ नहीं आते हैं, वे राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाले दुष्ट मार देने योग्य हैं। वे सारे वानर जो वानरों के निवास स्थानों को जानते हैं, मेरे आदेशों से भू-मण्डल पर जा कर सारे वानरों को शीघ्र बुला कर लायें।

तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः।
दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान् प्रेषयामास वानरान्।। ८।।
ते समुद्रेषु गिरिषु वनेषु च सरस्सु च।
वानरा वानरान् सर्वान् रामहेतोरचोदयन्।। ९।।
मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः।
सुग्रीवस्यायुः श्रुत्वा सुग्रीवभयशङ्किताः।। १०।।

उस वानरराज का वचन सुन कर वायुपुत्र हनुमान ने सारी दिशाओं में पराक्रमी वानरों को भेजा। उन वानरों ने समुद्री किनारे, पर्वतों पर, वनों में और तालाबों के किनारे रहने वाले सारे वानरों को राम के कार्य के लिये चलने की प्रेरणा दी। मृत्यु और काल के समान भयानक अपने सम्राट सुग्रीव की आज्ञा से, सुग्रीव के भय से शंकित हो कर सारे वानर आने के लिये चल दिये।

पैंतीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण सहित सुग्रीव का श्रीराम से आ कर मिलना और क्षमा माँगना, श्रीराम का उन्हें समझाना। सुग्रीव का अपने सैन्य संग्रह विषयक उद्योग के विषय में बताना।

स लक्ष्मणो भीमबलं सर्ववानरसत्तमम्।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं सम्प्रहर्षयन्।। १।।
किष्किन्धाया विनिष्क्राम यदि ते सौम्य रोचते।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य सुभाषितम्।। २।।
सुग्रीवः परमप्रीतो वाक्यमेतदुवाच ह।
एवं भवतु गच्छाम स्थेयं त्वच्छासने मया।। ३।।

उसके बाद लक्ष्मण ने भयानक बलवाले, सारे वानरों में श्रेष्ठ, सुग्रीव को हर्षित करते हुए विनम्र वाणी में कहा कि हे सौम्य। यदि तुम्हें रुचिकर हो तो अब किष्किंधा से बाहर निकलो। लक्ष्मण की उस अच्छी तरह से कही हुई बात को सुन कर सुग्रीव ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर यह कहा कि ऐसा ही हो चलते हैं। मुझे तो आपकी आज्ञा का पालन ही करना है।

इत्युक्त्वा काञ्चनं यानं सुग्रीवः सूर्यसंनिभम्।
बहुभिर्हरिभिर्युक्तमारुरोह सलक्ष्मणः।। ४।।
स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः।
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः।। ५।।
स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम्।
अवातरन्महातेजाः शिबिकायाः सलक्ष्मणः।। ६।।
आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत्।

ऐसा कह कर सुनहली पालकी पर, जो सूर्य के समान जगमगा रही थी, तथा जिसे उठाने के लिये बहुत से वानर नियुक्त थे, सुग्रीव लक्ष्मण के साथ बैठ गये। सैकड़ों तेज तर्रार और हथियारबन्द वानरों से घिरे हुए वे दोनों वहाँ गये, जहाँ श्रीराम विद्यमान थे। श्री राम के द्वारा सेवित उस श्रेष्ठ स्थान पर पहुँच कर वह महा तेजस्वी सुग्रीव लक्ष्मण के साथ पालकी से उतर गये और राम के समीप जा कर दोनों हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम्।। ७।।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे।
परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत्।। ८।।
निषण्णं तं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीत् ततः।

पैरों में सिर को रख कर पड़े हुए उस वानरेश को उठा कर राम ने प्रेम और बहुत सम्मान के साथ अपनी छाती से लगा लिया। उसे हृदय से लगा कर उन्होंने उससे कहा कि बैठो। और फिर उसे भूमि पर बैठा हुआ देख कर राम ने उससे कहा कि–

धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते।। ९।।
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम।
हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते।। १०।।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते।
अमित्राणां वधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः।। ११।।
त्रिवर्गफलभोक्ता च राजा धर्मेण युज्यते।
उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुनिषूदन।। १२।।
संचिन्त्यतां हि पिङ्गेश हरिभिः सह मन्त्रिभिः।

हे वीर वानर श्रेष्ठ! जो धर्म, अर्थ और काम तीनों का समय के अनुसार विभाजन कर उनका सेवन करता है। वही राजा श्रेष्ठ होता है। जो धर्म और अर्थ को छोड़ कर केवल काम का ही सेवन करता है, वह मानो वृक्ष

की शाखा के अगले भाग पर सोता है, जहाँ से गिरने पर ही उसकी आँख खुलती है। जो राजा शत्रुओं के वध में तथा मित्रों के संग्रह करने में लगा रहता है, तथा धर्म, अर्थ काम का उचित भोग करता है, वह धर्म के फल को प्राप्त करता है। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले वानरेश! यह अब प्रयत्न करने का समय आ गया है। इसलिये आप वानरों तथा मंत्रियों के साथ इस विषय में विचार करो।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामं वचनमब्रवीत्।। १३।।
प्रणष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो पुनः प्राप्तमिदं मया।। १४।।
तव देव प्रसादाच्च भ्रातुश्च जयतां वर।
कृतं न प्रतिकुर्याद् यः पुरुषाणां हि दूषकः।। १५।।

ऐसा कहे जाने पर सुग्रीव ने राम से कहा कि मेरी श्री, कीर्ति और पैतृक वानरों का राज्य मुझ से छिन्न गया था। हे महाबाहु! आपकी कृपा से ही मैंने यह पुनः प्राप्त किया है। हे विजयी वीरों में श्रेष्ठ देव! आपके और आपके भाई के प्रसाद से ही यह सब हुआ है। जो व्यक्ति किये हुए उपकार का प्रत्युपकार नहीं करता वह पुरुषों को कलंकित करने वाला है।

एते वानरमुख्याश्च शतशः शत्रुसूदन।
प्राप्ताश्चादाय बलिनः पृथिव्यां सर्ववानरान्।। १६।।
आगमिष्यन्ति ते राजन् महेन्द्रसमविक्रमाः।
मेघपर्वतसंकाशा मेरुविन्ध्यकृतालयाः।। १७।।
ते त्वामभिगमिष्यन्ति राक्षसं योद्धुमाहवे।
निहत्य रावणं युद्धे ह्यानयिष्यन्ति मैथिलीम्।। १८।।

हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! ये सैकड़ों बलवान वानर प्रमुख, पृथ्वी के सारे वानरों को लेकर आये हुए हैं। हे राजन! वे वानर जो हिमालय और विंध्याचल में निवास करते हैं, जो इन्द्र के समान पराक्रमी और पर्वतों के समान विशालकाय हैं, वे आने वाले हैं। युद्ध में लड़ने के लिये वे आपके पास आयेंगे और अवश्य राक्षस रावण को युद्ध में मार कर मैथिली को लायेंगे।

छत्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम और सुग्रीव का वार्तालाप। वानर यूथपतियों का अपनी-अपनी सेना के साथ आगमन।

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो धर्मभृतां वरः।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिम्।। १।।
आदित्योऽसो सहस्रांशुः कुर्याद् वितिमिरं नभः।
चन्द्रमा रजनीं कुर्यात् प्रभया सौम्य निर्मलाम्।। २।।
एवं त्वयि न तच्चित्रं भवेद् यत् सौम्य शोभनम्।
जानाम्यहं त्वां सुग्रीव सततं प्रियवादिनम्।। ३।।
त्वत्सनाथः सखे संख्ये जेतास्मि सकलानरीन्।
त्वमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुमर्हसि।। ४।।

हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहते हुए सुग्रीव को तब धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम ने दोनों हाथों से गले से लगा लिया और उन्हें इस प्रकार प्रत्युत्तर दिया कि जैसे सहस्र किरणों वाला सूर्य आकाश को अन्धकार से रहित कर देता है और चन्द्रमा अपनी प्रभा से रात्रि को निर्मल और सुन्दर बना देता है, उसी प्रकार हे सौम्य सुग्रीव! तुम्हारे अन्दर जो सुन्दर गुण हैं, उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मैं जानता हूँ कि तुम सदा प्रिय बोलने वाले हो। हे सखे! तुम्हारी सहायता से अनुगृहीत हो कर मैं युद्ध में सारे शत्रुओं को जीत सकता हूँ। तुम्ही मेरे अच्छे हृदय वाले मित्र हो और तुम्ही मेरी सहायता कर सकते हो।

एतस्मिन्नन्तरे चैव रजः समभिवर्तत।
उष्णतीव्रां सहस्रांशोश्छादयद् गगने प्रभाम्।। ५।।
ततो नगेन्द्रसंकाशैर्=रसंख्येयैः प्लवंगमैः।
नादेयैः पार्वतेयैश्च सामुद्रैश्च महाबलैः।। ६।।
हरिभिर्मेघनिर्ह्रादैरन्यैश्च वनवासिभिः।
वीरः शतबलिर्नाम वानरः प्रत्यदृश्यत।। ७।।
ततः काञ्चनशैलाभस्ताराया वीर्यवान् पिता।
पिता रुमायाः सम्प्राप्तः सुग्रीवश्वशुरो विभुः।। ८।।

इसी समय बड़े जोर से धूल उड़ी और उसने आकाश में सूर्य की प्रचण्ड प्रभा को ढक दिया। इसके बाद पर्वतों के समान विशाल असंख्य वानरों के साथ जो नदियों के किनारों, पर्वतों, समुद्रों के तटों तथा वनों में रहते थे और महान बलशाली थे तथा दूसरे अन्य जो बादलों के समान गर्जना करने वाले थे, वीर शतबलि

नाम का वानर दिखायी दिया। उसके पश्चात सुनहले पर्वत के समान कान्ति वाला तारा का तेजस्वी पिता और रुमा का पिता, सुग्रीव का ससुर जो विशेष सामर्थ्यशाली था, वहाँ आया।

पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः ।
बुद्धिमान् वानरश्रेष्ठः सर्ववानरसत्तमः।।९।।
अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः।
पिता हनुमतः श्रीमान् केसरी प्रत्यदृश्यत।।१०।।
गोलाङ्गूलमहाराजो गवाक्षो भीमविक्रमः।
ऋक्षाणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिबर्हणः।।११।।
आजगाम महावीर्यः पनसोनाम यूथपः।
अदृश्यत महाकायः, नीलो नामैष यूथपः।।१२।।

इसके पश्चात हनुमान जी के पिता वानरश्रेष्ठ श्रीमान केसरी, जो कि कमल के केसर के समान रंग वाले तथा बाल सूर्य के समान मुख वाले थे, जो बुद्धिमान तथा सारे वानरों में श्रेष्ठ थे, वे अनेकों हजार वानरों के साथ दिखाई दिये। फिर गोलांगूल नाम की वानरों की एक विशेष जाति का राजा भयानक पराक्रम वाला गवाक्ष वहाँ उपस्थित हुआ। पुनः भयानक वेग वाले ऋक्ष जाति के लोगों का नायक शत्रुओं को नष्ट करने वाला धूम्र और पनस नाम का नायक महापराक्रमी यूथपति वहाँ आया। इसके बाद विशालकाय नील नाम का यूथपति दिखाई दिया।

ततः काञ्चनशैलाभो गवयो नाम यूथपः।
दरीमुखश्च बलवान् यूथपोऽभ्याययौ तदा।।१३।।
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ वानराणामदृश्यताम्।
गजश्च बलवान् वीरः सुग्रीवस्य समीपतः।।१४।।
ऋक्षराजो महातेजा जाम्बवान्नाम नामतः।
रुमणो नाम तेजस्वी विक्रान्तैर्वानरैर्वृतः।।१५।।
पृष्ठतोऽनुगतः प्राप्तो हरिभिर्गन्धमादनः।

तब सुनहले पर्वत के समान प्रभा वाला गवय नाम का यूथपति और दरीमुख नाम का बलवान यूथपति वहाँ आये। मैन्द और द्विविद वानरों की सेना के साथ आए और बलवान वीर गज सुग्रीव के समीप आया। ऋक्ष जाति के राजा महातेजस्वी जाम्बवान तथा पराक्रमी वानरों से घिरा रुमण नामक का महातेजस्वी वानर वहाँ आया। तत्पश्चात वानरों की सेना को अपने पीछे लिये गन्धमादन नाम का वानर वहाँ उपस्थित हुआ।

ततस्ताराद्युतिस्तारो हरिभिर्भीमविक्रमैः।।१६।।
इन्द्रजानुः कविर्वीरो यूथपः प्रत्यदृश्यत।।१७।।
ततो रम्भस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसंनिभः।
ततो यूथपतिर्वीरो दुर्मुखो नाम वानरः।।१८।।
वानरैः भीमविक्रमैः हनुमान् प्रत्यदृश्यत।
नलश्चापि महावीर्यः सहस्रेण शतेन च।।१९।।

इसके बाद तारों के समान कान्तिमान तार नाम का वानर, भयानक पराक्रम वाले वानरों के साथ वहाँ आया। पुनः इन्द्रजानु नाम का यूथपति जो बड़ा बुद्धिमान और वीर था, वहाँ दिखाई दिया। फिर प्रातः कालीन सूर्य के समान प्रभा वाला रम्भ नाम का वानर उपस्थित हुआ। उसके पश्चात वीर दुर्मुख नाम का यूथपति वानर वहाँ आया। उसके पश्चात् महा तेजस्वी नल एक हजार एक सौ वानरों के साथ वहाँ आये।

ततो दधिमुखः श्रीमान् सुग्रीवस्य महात्मनः।
शरभः कुमुदो वह्निर्वानरो रंह एव च।।२०।।
यूथपाः समनुप्राप्ता येषां संख्या न विद्यते।
आगताश्च निविष्टाश्च पृथिव्यां सर्ववानराः।।२१।।
अभ्यवर्तन्त सुग्रीवं सूर्यमभ्रगणा इव।

पुनः श्री दधिमुख महात्मा सुग्रीव के पास आये। इसके बाद शरभ, कुमुद, वह्नि और रंह नाम के वानर तथा और बहुत से दूसरे वानर यूथपति जो इच्छानुसार रूप बदल लिया करते थे, उस सारी भूमि पर्वत और वनों को आवृत्त करके वहाँ आ गये, जिनकी कोई गणना नहीं थी। वे सारे वानर आ कर सुग्रीव के चारों ओर पृथिवी पर बैठ गये जैसे बादल सूर्य को घेर लेते हैं।

कुर्वाणा बहुशब्दांश्च प्रकृष्टा बाहुशालिनः।।२२।।
शिरोभिर्वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयन्।
अपरे वानरश्रेष्ठाः संगम्य च यथोचितम्।।२३।।
सुग्रीवेण समागम्य स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा।
सुग्रीवस्त्वरितो रामे सर्वांस्तान् वानरर्षभान्।
निवेदयित्वा धर्मज्ञः स्थितः प्रांजलिरब्रवीत्।।२४।।

उन बहुत से श्रेष्ठ भुजाओं वाले वानरों ने, जो भीड़ के कारण सुग्रीव तक नहीं पहुँच सके, अनेक प्रकार के शब्द संकेतों द्वारा तथा मस्तक झुका कर सुग्रीव को अपने आगमन के विषय में सूचित किया। बहुत से श्रेष्ठ वानर सुग्रीव से यथोचित प्रकार से मिले और मिल कर हाथ जोड़ कर बैठ गये। सुग्रीव ने राम से शीघ्रतापूर्वक सारे वानरश्रेष्ठों के बारे में निवेदन किया और फिर हाथ जोड़ कर उस धर्मज्ञ ने कहा कि–

सैंतीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का सीता की खोज में पूर्व दिशा में वानरों को भेजना।

आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामरूपिणः।
वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः।। १।।
ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः।
पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु चोत्तमाः।। २।।
निदेशवर्तिनः सर्वे सर्वे गुरुहिते स्थिताः।
अभिप्रेतमनुष्ठातुं तव शक्ष्यन्त्यरिंदम।। ३।।
त इमे बहुसाहस्रैरनीकैर्भीमविक्रमैः।
आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसंनिभाः।। ४।।

ये मेरे राज्य में रहने वाले इन्द्र के समान तेजस्वी, बलवान, और इच्छा के अनुसार रूप बनाने वाले वानर यूथपति आ गये हैं, और यहाँ बैठे हुए हैं। ये बड़े बलवान हैं, इन्होंने थकावट को जीत लिया है, ये अपने पराक्रम में विख्यात और परिश्रम करने में श्रेष्ठ हैं। युद्ध कर्मों में इन्होंने प्रसिद्धि पाई हुई है और ये आपत्ति का सामना करने वाले हैं। ये अपने स्वामी का हित साधने में स्थिर हैं तथा आज्ञा का पालन करने वाले हैं। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! ये आपके इष्ट कार्य को पूरा कर सकेंगे। ये भयानक विक्रम करने वाली हजारों सेनाओं के साथ आए हैं। ये दैत्य और दानवों के समान भयानक रूप से युद्ध करने वाले हैं।

यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम्।
त्वत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि।। ५।।
काममेषामिदं कार्यं विदितं मम तत्त्वतः।
तथापि तु यथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि।। ६।।
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत्।। ७।।
ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा।
स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन् वसति रावणः।। ८।।

हे नरव्याघ्र! अब आप इस समय जो कार्य उचित समझते हैं, वह बताइये। यह आपकी सेना आपके वश में है। आप इसे जो उचित हो वह आज्ञा दे सकते हैं। यद्यपि यह ठीक है कि सीता जी के अन्वेषण का कार्य इन्हें तथा मुझे भी अच्छी तरह से पता है, फिर भी जैसा उचित हो आप आज्ञा कीजिये। इस प्रकार कहते हुए उस सुग्रीव को दशरथ पुत्र श्रीराम ने दोनों हाथों से गले लगाते हुए यह कहा कि हे सौम्य और महाबुद्धिमान! उस देश का पता लगाओ जहाँ रावण रहता है तथा यह पता लगाओ कि वैदेही जीवित है या नहीं।

अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च।
प्राप्तकालं विधास्यामि तस्मिन् काले सह त्वया।। ९।।
नाहमस्मिन् प्रभुः कार्ये वानरेन्द्र न लक्ष्मणः।
त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर।। १०।।
त्वमेवाज्ञापय विभो मम कार्यविनिश्चयम्।
त्वं हि जानासि मे कार्यं मम वीर न संशयः।। ११।।
सुहृद्द्वितीयो विक्रान्तः प्राज्ञः कालविशेषवित्।
भवानस्मद्धिते युक्तः सुहृदाप्तोऽर्थवित्तमः।। १२।।

वैदेही से बात होने तथा रावण के निवास का ज्ञान होने पर जैसा उचित होगा वैसा तुम्हारे साथ करूँगा। हे वानरेश! इस कार्य को करने में न तो मैं समर्थ हूँ और न लक्ष्मण, हे वानरराज तुम्हीं इस कार्य को पूरा करने में समर्थ हो। हे प्रभो! तुम्हीं मेरे कार्य के विषय में निश्चय कर इन्हें आज्ञा दो। हे वीर! तुम मेरे कार्य को पूरी तरह से जानते हो, इसमें कोई संशय नहीं है। तुम मेरे लक्ष्मण के बाद दूसरे सुहृद हो। तुम पराक्रमी, बुद्धिमान, विशेष काल को समझने वाले हमारी भलाई में लगे हुए, उदार हृदय, सज्जन और मेरे प्रयोजन को अच्छी तरह समझने वाले हो।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो विनतं नाम यूथपम्।
अब्रवीद् रामसांनिध्ये लक्ष्मणस्य च धीमतः।। १३।।
शैलाभं मेघनिर्घोषमूर्जितं प्लवगेश्वरम्।
सोमसूर्यनिभैः सार्धं वानरैर्वानरोत्तम।। १४।।
देशकालनयैर्युक्तो विज्ञः कार्यविनिश्चये।
वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम्।। १५।।
अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम्।
तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च।। १६।।
मार्गध्वं गिरिदुर्गेषु वनेषु च नदीषु च।

ऐसा कहे जाने पर सुग्रीव ने विनत नाम के यूथपति को, जो वानरों का शासक था, जो पर्वत के समान विशाल, बादल के समान गर्जना करने वाला और वेगवान था, राम तथा धीमान लक्ष्मण के सामने यह कहा कि हे वानरश्रेष्ठ! तुम देशकाल के अनुसार नीति प्रयोग को समझते हो। कार्य का निश्चय करने में चतुर हो। तुम

हजारों वेगवान वानरों से घिरे हुए हो। तुम इन सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी वानरों के साथ, पर्वतों, वनों और बागों से युक्त पूर्व दिशा को जाओ और वैदेही सीता तथा रावण के निवास स्थान की दुर्गम पर्वतों, वनों, औद नदियों में खोज करो।

गिरिभिर्ये च गम्यन्ते प्लवनेन प्लवेन च।। १७।।
यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराजोपशोभितम्।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्।। १८।।
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः।
एतेषां गिरिदुर्गेषु प्रपातेषु वनेषु च।। १९।।
मार्गध्वं सहिताः सर्वे रामपत्नीं यशस्विनीम्।

उन पर्वतों पर जहाँ आकाश मार्ग से उड़ कर, या जल मार्ग से नौका से जाया जाता है, वहाँ भी तुम्हें ढूँढना चाहिये। तुम लोग प्रयत्नशील हो कर सात राज्यों से सुशोभित यवद्वीप अर्थात जावा में, और सुवर्ण रूप्यक द्वीप अर्थात सुमात्रा में भी जहाँ सोने की खाने हैं, खोज करनी चाहिये। यव द्वीप के आगे शिशिर नाम का एक पर्वत है। इन सबके दुर्गम पर्वतों, प्रपातों तथा वनों में तुम सब मिल कर यशस्विनी राम पत्नी की खोज करो।

पर्वतप्रभवा नद्यः सुभीमबहुनिष्कुटाः।। २०।।
मार्गितव्या दरीमन्तः पर्वताश्च वनानि च।
शैलेषु तेषु सर्वेषु कन्दरेषु नदीषु च।। २१।।
ये च नोक्ता मयोद्देशा विचेया तेषु जानकी।
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम।
सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम्।। २२।।

पहाड़ों से निकलने वाली नदियों के किनारे बहुत भयानक अनेक वन होंगे, तुम्हें उन सभी वनों में तथा कन्दराओं वाले पर्वतों में खोज करनी चाहिये। जिनका नाम मैंने नहीं लिया है, उन सभी पर्वतों, कन्दराओं और नदियों में भी तुम्हें जानकी की खोज करनी चाहिये। तुम अपने कार्य में सफल हो कर, मैथिली के विषय में जान कर, वापिस लौटो। पर एक मास से अधिक समय तक वहाँ मत रहना। जो एक मास से अधिक समय तक बाहर रहेगा, वह मेरा वध्य होगा।

अड़तीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का सीता की खोज में दक्षिण दिशा में वानरों को भेजना।

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तन्महद्वानरं बलम्।
दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान्।। १।।
नीलमग्निसुतं चैव हनूमन्तं च वानरम्।
पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महौजसम्।। २।।
सुहोत्रं च शरारिं च शरगुल्मं तथैव।
गजं गवाक्षं गवयं सुषेणं वृषभं तथा।। ३।।
मैन्दं च द्विविदं चैव सुषेणं गन्धमादनम्।
उल्कामुखमनङ्गं च हुताशनसुतावुभौ।। ४।।
अङ्गदप्रमुखान् वीरान् वीरः कपिगणेश्वरः।
वेगविक्रमसम्पन्नान् संदिदेश विशेषवित्।। ५।।

उस महान वानरों की सेना को भेज कर सुग्रीव ने परखे हुए वानरों को दक्षिण दिशा की तरफ भेजा। अग्निपुत्र नील, वानर हनुमान, महातेजस्वी अपने बाबा के द्वारा पुत्रवत् पाले हुए जाम्बवान, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मैन्द द्विविद, उत्तम सेना वाले गन्धमादन, हुताशन के दो पुत्र, उल्कामुख और अनङ्ग और अंगद आदि वीरों को, जो वेग और विक्रम से सम्पन्न थे, विशेषज्ञ वानरयूथों के स्वामी सुग्रीव ने दक्षिण दिशा में जाने की आज्ञा दी।

तेषामग्रेसरं चैव बृहद्बलमथाङ्गदम्।
विधाय हरिवीराणामादिशद् दक्षिणां दिशम्।। ६।।
ये केचन समुद्देशास्तस्यां दिशि सुदुर्गमाः।
कपीशः कपिमुख्यानां स तेषां समुदाहरत्।। ७।।

उसने उन वानर वीरों का नेता महा बलशाली अंगद को बना कर उन्हें दक्षिण दिशा के लिये आज्ञा दी। उस दिशा में जो कोई अत्यन्त दुर्गम स्थान थे, उनके विषय में वानरेश ने उन वानर प्रमुखों को समझा दिया।

सर्वमेतत् समालोक्य यच्चान्यदपि दृश्यते।
गतिं विदित्वा वैदेह्याः संनिवर्तितुमर्हथ।। ८।।
यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति।
मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति।। ९।।
ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद् विशेषतः।
कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति।। १०।।

और उनसे कहा कि इन सब स्थानों को देख कर और दूसरे भी जो तुम्हें दिखाई दें, उन सब जगह वैदेही के विषय में खोज करके तुम्हें वापिस आना है। जो एक मास में वापिस आ कर सबसे पहले यह कहेगा

कि सीता को देख लिया, वह मेरे समान ऐश्वर्यशाली हो कर भोगों को भोगता हुआ सुख पूर्वक विहार करेगा। उस से बढ़ कर मेरा प्राणों से भी प्यारा दूसरा कोई नहीं होगा। अनेक बार मेरा अपराध किया हुआ होने पर भी वह मेरा बन्धु होगा।

अमितबलपराक्रमा भवन्तो
विपुलगुणेषु कुलेषु च प्रसूताः।
मनुजपतिसुतां यथा लभध्वं
तदधिगुणं पुरुषार्थमारभध्वम्।। ११।।

आप लोग अत्यन्त बलवान और पराक्रमी हैं, आप महान गुणों वाले कुलों में उत्पन्न हुए हैं। आप राजकुमारी सीता को जैसे प्राप्त कर सकें, उसके अनुरूप पुरुषार्थ को आरम्भ कीजिये।

उन्तालीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का पश्चिम दिशा में वानरों को भेजना।

अथ प्रस्थाप्य स हरीन् सुग्रीवो दक्षिणां दिशम्।
अब्रवीन्मेघसंकाशं सुषेणं नाम वानरम्।। १।।
ताराया: पितरं राजा श्वशुरं भीमविक्रमम्।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमभिगम्य प्रणम्य च।। २।।
महर्षिपुत्रं मारीचमर्चिष्मन्तं महाकपिम्।
वृतं कपिवरैः शूरैर्महेन्द्रसदृशद्युतिम्।। ३।।
बुद्धिविक्रमसम्पन्नं वैनतेयसमद्युतिम्।
मरीचिपुत्रान् मारीचानर्चिर्माल्यान् महाबलान्।। ४।।
ऋषिपुत्रांश्च तान् सर्वान् प्रतीचीमादिशद् दिशम्।
सुषेणप्रमुखा यूयं वैदेहीं परिमार्गथ।। ५।।

सुग्रीव ने दक्षिण दिशा की तरफ वानरों को भेजने के पश्चात, भयानक विक्रम वाले, मेघ के समान काले, तारा के पिता, अपने ससुर सुषेण नाम के वानर के पास जा कर, उन्हें प्रणाम कर, हाथ जोड़ कर उनसे कहा। उन्होंने महर्षि मरीचि के पुत्र अर्चिष्मान नाम के महान वानर से, जो इन्दु के समान कान्ति वाले थे, बुद्धि और विक्रम में सम्पन्न थे तथा गरुड़ के समान रूप वाले थे। वे बहुत सारे श्रेष्ठ वानरों से घिरे हुए थे तथा और दूसरे मरीचि के पुत्रों जो महा बलशाली तथा अर्चिमाल्य नाम से प्रसिद्ध थे, उन सारे ऋषि पुत्रों से पश्चिम दिशा के लिये कहा तथा आदेश दिया कि तुम सुषेण के नेतृत्व में सीता की खोज करो।

सौराष्ट्रान् सहबाह्लीकांश्चन्द्रचित्रांस्तथैव च।
स्फीताञ्जनपदान् रम्यान् विपुलानि पुराणि च।। ६।।
पुंनागगहनं कुक्षिं बकुलोद्दालकाकुलम्।
तथा केतकखण्डांश्च मार्गध्वं हरिपुङ्गवाः।। ७।।
प्रत्यक्स्रोतोवहाश्चैव नद्यः शीतजलाः शिवाः।
तापसानामरण्यानि कान्तारगिरयश्च ये।। ८।।

हे श्रेष्ठ वानरों! तुम लोग सौराष्ट्र, बाह्लीक, चन्द्रचित्त आदि देशों समृद्धिशाली और सुन्दर जनपदों, बड़े-बड़े नगरों, पुन्नाग, बकुल, और उद्दालक नाम के वृक्षों से भरे हुए कुक्षि प्रदेश और केवड़े के वनों में सीता की खोज करो। शीतल जलवाली पश्चिम की तरफ बहने वाली कलयाणमयी नदियों, तपस्वियों के वनों और दुर्गम पर्वतों में सीता जी की खोज करो।

तत्र स्थलीर्मरुप्राया अत्युच्चशिशिराः शिलाः।
गिरिजालावृतां दुर्गां मार्गित्वा पश्चिमां दिशम्।। ९।।
ततः पश्चिममागम्य समुद्रं द्रष्टुमर्हथ।
तिमिनक्राकुलजलं गत्वा द्रक्ष्यथ वानराः।। १०।।
ततः केतकखण्डेषु तमालगहनेषु च।
कपयो विहरिष्यन्ति नारिकेलवनेषु च।। ११।।
तत्र सीतां च मार्गध्वं निलयं रावणस्य च।

वहाँ प्रायः मरुस्थल है, बहुत ऊँची और ठंडी शिलाएँ हैं। पर्वत मालाओं से घिरी हुई दुर्गम पश्चिम दिशा में खोज कर और आगे बढ़ कर आप पश्चिम समुद्र को देखोगे। उस तिमि और नक्रों से भरे हुए सागर के आस-पास भी देखना। वहाँ केवड़े के बागों में, तमाल के काननों में, और नारियल के वनों में तुम्हारे वानर भ्रमण करेंगे। वहाँ भी रावण के घर और सीता की खोज करना।

वेलातलनिविष्टेषु पर्वतेषु वनेषु च।। १२।।
मुरवीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम्।
अवन्तीमङ्गलेपां च तथा चालक्षितं वनम्।। १३।।
राष्ट्राणि च विशालानि पत्तनानि ततस्ततः।

समुद्र के किनारे पर जो विद्यमान है, उन पर्वतों और वनों में, मुरवीपत्तन नाम के नगर में, तथा सुन्दर जटापुर

में, अवन्ती तथा अंगलेपापुरी में, अलक्षित वन में और उन बड़े-बड़े देशों तथा नगरों में जहाँ-तहाँ घूम कर पता लगाओ।

सिन्धुसागरयोश्चैव संगमे तत्र पर्वतः।। १४।।
महान् सोमगिरिर्नाम शतशृङ्गो महाद्रुमः।
तस्य शृङ्गं दिवस्पर्शं काञ्चनं चित्रपादपम्।। १५।।
सर्वमाशु विचेतव्यं कपिभिः कामरूपिभिः।
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम।। १६।।
सहैव शूरो युष्माभिः श्वशुरो मे गमिष्यति।

सिन्धु नदी और सागर के संगम पर वहाँ सोमगिरि नाम का सौ शिखरों वाला पर्वत है जो बड़े-बड़े वृक्षों से भरा हुआ है। उसके गगनचुम्बी शिखर स्वर्ण के समान जगमगाते हैं और विचित्र वृक्षों से युक्त हैं। आप इच्छा के अनुसार रूप बदलने वाले हो। आपने उन सारे स्थानों को जल्दी देखना है, पर एक मास से अधिक समय तक वहाँ मत रहना। जो रहेगा वह मेरा वध्य होगा। तुम्हारे साथ मेरे शूरवीर श्वसुर भी जाएँगे।

श्रोतव्यं सर्वमेतस्य भवद्भिर्दिष्टकारिभिः।। १७।।
गुरुरेष महाबाहुः श्वशुरो मे महाबलः।
भवन्तश्चापि विक्रान्ताः प्रमाणं सर्व एव हि।। १८।।
प्रमाणमेनं संस्थाप्य पश्यध्वं पश्चिमां दिशम्।
दृष्टायां तु नरेन्द्रस्य पत्न्याममिततेजसः।। १९।।
कृतकृत्या भविष्यामः कृतस्य प्रतिकर्मणा।
अतोऽन्यदपि यत्कार्यं कार्यस्यास्य प्रियं भवेत्।
सम्प्रधार्य भवद्भिश्च देशकालार्थसंहितम्।। २०।।

आप लोग इनकी आज्ञा के आधीन रहेंगे और इनकी सारी बातें ध्यान से सुनेंगे। ये महाबली महाबाहु मेरे श्वसुर और गुरु हैं। आप सब लोग भी पराक्रमी और अपने कार्य में प्रमाण रूप हैं, पर इन्हें अपना प्रधान बना कर आप पश्चिम दिशा को देखिये। इन अमित तेजस्वी राजा राम की पत्नी का पता लगा कर हम कृतकृत्य हो जायेंगे। इनके किये हुए उपकार का बदला ऐसे ही चुकेगा। इसलिये इस कार्य से सम्बन्ध रखने वाला अन्य कार्य भी जो देश, काल और प्रयोजन के अनुसार हो, उसका विचार कर उसे भी आप लोग करें।

चालीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का उत्तर दिशा में वानरों को भेजना।

ततः संदिश्य सुग्रीवः श्वशुरं पश्चिमां दिशम्।
वीरं शतबलिं नाम वानरं वानरेश्वरः।। १।।
उवाच राजा सर्वज्ञः सर्ववानरसत्तमः।
वाक्यमात्महितं चैव रामस्य च हितं तदा।। २।।
वृतः शतसहस्रेण त्वद्विधानां वनौकसाम्।
दिशं ह्युदीचीं विक्रान्त हिमशैलावतंसिकाम्।। ३।।
सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीं यशस्विनीम्।
अस्मिन् कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये।। ४।।
ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वराः।

अपने श्वसुर को पश्चिम दिशा के लिये सन्देश देकर सर्वज्ञ और सारे वानरों के शिरोमणि राजा सुग्रीव ने वीर शतबलि नाम के अपने हितकारी वानर से श्रीराम के हित की यह बात कही कि हे पराक्रमी वीर! तुम अपने ही समान पराक्रमी हजारों वानरों के साथ हिमालय पर्वत जिसका आभूषण है, उस उत्तर दिशा में सब तरफ श्रीराम की यशस्विनी पत्नी की खोज करो। दशरथ के पुत्र के प्रिय इस कार्य के सम्पन्न होने पर हम उनके ऋण से मुक्त और कृतार्थों में श्रेष्ठ बन जायेंगे।

इमानि बहुदुर्गाणि नद्यः शैलान्तराणि च।। ५।।
भवन्तः परिमार्गन्तु बुद्धिविक्रमसम्पदा।
लोध्रपद्मकखण्डेषु देवदारुवनेषु च।। ६।।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः।
कालं नाम महासानुं पर्वतं तं गमिष्यथ।। ७।।
महत्सु तस्य शैलेषु पर्वतेषु गुहासु च।
विचिन्वत महाभागां रामपत्नीमनिन्दिताम्।। ८।।

बुद्धि और पराक्रम से आप लोग बहुत सी दुर्गम नदियों और पर्वतीय प्रदेशों में जा जाकर ढूँढो। वहाँ तुम्हें लोध्र और पद्मक की झाड़ियों में और देवदारु के वनों में जगह-जगह वैदेही की खोज करनी चाहिये। तुम वहाँ काल नाम के बड़े शिखर वाले पर्वत पर जाओगे। वहाँ उस पर्वत की दूसरी बड़ी चोटियों और कन्दराओं में उन अनिन्दिता, महाभागा, राम पत्नी की खोज करो।

तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं हेमगर्भं महागिरिम्।
ततः सुदर्शनं नाम पर्वतं गन्तुमर्हथा।। ९।।
ततो देवसखो नाम पर्वतः पतगालयः।

नानापक्षिसमकीर्णो विविधद्रुमभूषितः।। १०।।
तस्य काननखण्डेषु निर्झरेषु गुहासु च।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः।। ११।।

उस काल नाम के महान पर्वत को, जिसमें सोने की खान है, लाँघ कर तुम सुदर्शन नाम के पर्वत पर पहुँचोगे। उससे आगे पक्षियों का निवास स्थान देवसरवा नाम का पर्वत है। वह अनेक प्रकार के पक्षियों से भरा हुआ और अनेक प्रकार के वृक्षों से विभूषित है। उसके वन प्रान्तों में, झरनों में, तथा कन्दराओं में जगह-जगह रावण की सीता के साथ तुम्हें खोज करनी है।

तमतिक्रम्य चाकाशं सर्वतः शतयोजनम्।
अपर्वतनदीवृक्षं सर्वसत्त्वविवर्जितम्।। १२।।
तत्तु शीघ्रमतिक्रम्य कान्तारं रोमहर्षणम्।
कैलासं पाण्डुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ।। १३।।
विशाला नलिनी यत्र प्रभूतकमलोत्पला।
तस्य चन्द्रनिकाशेषु पर्वतेषु गुहासु च।। १४।।
रावणः सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्ततः।

उसे पार कर एक खाली स्थान मिलेगा जो सब तरफ़ से सौ योजन है। उसमें न कोई पर्वत है, न नदी है, न वृक्ष है और वहाँ कोई जन्तु भी नहीं है। रोंगटे खड़े कर देने वाले उस निर्जन स्थान को शीघ्र पार कर श्वेतवर्ण के कैलाश पर्वत को प्राप्त कर तुम प्रसन्न हो जाओगे। उसके पास एक विशाल सरोवर है, जिसमें बहुत कमल और उत्पल हैं। उस कैलाश पर्वत के दूसरे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल शाखा पर्वतों तथा कन्दराओं में जगह-जगह तुम्हें रावण और सीता की खोज करनी चाहिये।

क्रौञ्चं तु गिरिमासाद्य बिलं तस्य सुदुर्गमम्।। १५।।
अप्रमत्तैः प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं हि तत् स्मृतम्।
क्रौञ्चस्य तु गुहाश्चान्याः सानूनि शिखराणि च।। १६।।
निर्दराश्च नितम्बाश्च विचेतव्यास्ततस्ततः।
सर्वमेतद् विचेतव्यं यन्मया परिकीर्तितम्।
यदन्यदपि नोक्तं च तत्रापि क्रियतां मतिः।। १७।।

पुनः क्रौंच पर्वत पर जा कर उसकी बिल जैसी दुर्गम कन्दरा में तुम्हें सावधानी से प्रवेश करना होगा, क्योंकि उसे दुष्प्रवेश्य माना गया है। क्रौंच पर्वत की दूसरी कन्दराओं, शिखरों, तथा चोटियों, गड्ढों और ढालू प्रदेशों पर भी तुम्हें जगह-जगह खोज करनी है। जो कुछ मैंने वर्णन किया, वहाँ सब जगह खोज करनी है और दूसरे जिन स्थानों के विषय में मैंने नहीं बताया है, वहाँ भी ढूँढना।

ततः कृतं दाशरथेर्महत्प्रियं
महत्प्रियं चापि ततो मम प्रियम्।
कृतं भविष्यत्यनिलानलोपमा
विदेहजादर्शनजेन कर्मणा।। १८।।

हे वायु और अग्नि के समान तेजस्वी वानरों! तुम वैदेही के दर्शन के लिये जो-जो कार्य करोगे, उससे दशरथ पुत्र श्रीराम का महान प्रिय कार्य पूरा होगा और उससे मेरा भी बड़ा प्यारा कार्य होगा।

ततः कृतार्थाः सहिताः सबान्धवा
मयार्चिताः सर्वगुणैर्मनोरमैः।
चरिष्यथोर्वीं प्रति शान्तशत्रवः
सहप्रिया भूतधराः प्लवंगमाः।। १९।।

हे वानरों! तब तुम मेरे द्वारा सब गुणों से युक्त मनोरम पदार्थों के द्वारा सम्मानित हो कर, बिना किसी शत्रु के सब प्राणियों के आश्रयदाता बन कर अपनी प्रियाओं के साथ भूमि पर विचरण करोगे।

इकतालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का हनुमान जी को अंगूठी दे कर भेजना।

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान्।
स हि तस्मिन् हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने।। १।।
अब्रवीच्च हनूमन्तं विक्रान्तमनिलात्मजम्।
सुग्रीवः परमप्रीतः प्रभुः सर्ववनौकसाम्।। २।।

सुग्रीव ने दूसरे वानरों की अपेक्षा हनुमान जी से सीता जी की खोज के लिये विशेष रूप से कहा क्योंकि उन वानरश्रेष्ठ में प्रयोजन को सिद्ध करने में उनको अधिक विश्वास था। सारे वानरों के स्वामी सुग्रीव ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर पराक्रमी वायुपुत्र हनुमान जी से कहा कि-

गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः।। ३।।
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते।
तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय।। ४।।

त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित।। ५।।

हे वीर महावानर! तुम्हारे अन्दर अपने महा पराक्रमी पिता वायु के समान ही गति, वेग, तेज और फुर्ती है। तुम्हारे समान तेजस्वी कोई भी प्राणी संसार में नहीं है, इसलिये जैसे सीता जी की प्राप्ति हो, वैसे तुम विचार करो। हे हनुमान! तुम्हारे अन्दर ही बल, बुद्धि, पराक्रम, देश, काल के अनुसार व्यवहार और नीति का प्रयोग विद्यमान है। तुम नीति के पण्डित हो।

ततः कार्यसमासङ्गमवगम्य हनूमति।
विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः।। ६।।
सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः।
निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान् कार्यसाधने।। ७।।
तदेवं प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः।
भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः।। ८।।
तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम्।
कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः।। ९।।

तब हनुमान जी पर कार्य की पूर्ति का मुख्य दायित्व है, यह जान कर श्रीराम हनुमान जी के विषय में सोचने लगे कि इन वानरेश को हनुमान जी पर कार्य सिद्धि का पूरा भरोसा है और हनुमान जी भी कार्य सिद्धि के विषय में विश्वास से युक्त प्रतीत होते हैं। इस प्रकार जिनकी पहले के कार्यों के द्वारा परीक्षा की हुई है, जिनको उनके स्वामी ने श्रेष्ठ समझा है, वे ये जब सीता जी की खोज के कार्य के लिये भेजे जा रहे हैं, तो कार्य फल की प्राप्ति निश्चित समझनी चाहिये। वे महा तेजस्वी श्रीराम अपने परिश्रम में श्रेष्ठ वानर उन हनुमान जी के बारे में यह सोच कर अपने आपको कृतार्थ समझने लगे और उनका मन तथा इन्द्रियाँ प्रसन्न हो गईं।

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः।। १०।।
अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति।। ११।।
व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः।
सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे।। १२।।
स तद् गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः।
वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगर्षभः।। १३।।

तब उस परंतप राम ने प्रसन्न हो कर हनुमान जी को अपने नाम के अक्षरों से सुशोभित अंगूठी पहचान के रूप में राजपुत्री सीता जी को देने के लिये दी और कहा कि हे वानरश्रेष्ठ! इस चिह्न के कारण वह जनक पुत्री तुम्हें मेरे ही पास से आया हुआ समझ कर बिना उद्विग्नता के बात करेगी। हे वीर! सुग्रीव का तुम्हारे प्रति सन्देश, तुम्हारा उद्योग, धैर्य तथा पराक्रम मुझे कार्य की सिद्धि के विषय में मानो सूचित कर रहे हैं। तब उस वानर श्रेष्ठ हनुमान ने उस अंगूठी को ले कर और सिर पर रख कर, हाथ जोड़ कर उनके चरणों में प्रणाम किया और वहाँ से वे चल दिये।

स तत् प्रकर्षन् हरिणां महद् बलं
बभूव वीरः पवनात्मजः कपिः।
गताम्बुदे व्योम्नि विशुद्धमण्डलः
शशीव नक्षत्रगणोपशोभितः।। १४।।

वानरों की उस महान सेना को अपने साथ ले जाते हुए वे वायु पुत्र वीर वानर ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे मेघ रहित आकाश में निर्मल मण्डल वाला चन्द्रमा नक्षत्रों के साथ सुशोभित हो रहा हो।

बयालीसवाँ सर्ग

दक्षिण के अतिरिक्त सभी दिशाओं में गये हुए वानरों का निराश हो कर लौट आना।

दर्शनार्थं तु वैदेह्याः सर्वतः कपिकुञ्जराः।
व्यादिष्टाः कपिराजेन यथोक्तं जग्मुरञ्जसा।। १।।
ते सरांसि सरित्कक्षानाकाशं नगराणि च।
नदीदुर्गांस्तथा देशान् विचिन्वन्ति समन्ततः।। २।।
सुग्रीवेण समाख्याताः सर्वे वानरयूथपाः।
तत्र देशान् विचिन्वन्ति सशैलवनकाननान्।। ३।।

वानरराज के द्वारा इस प्रकार आदेश दिये जाने पर वे वानर श्रेष्ठ वैदेही को देखने के लिये उत्साह पूर्वक सब तरफ चल दिये। उन्होंने तालाबों नदियों, कुंजों, नगरों, नदियों के कारण दुर्गम स्थानों में सब तरफ ढूँढना आरम्भ कर दिया। वे सारे वानर यूथपति सुग्रीव के बताने के अनुसार पर्वतों, वनों और काननों से युक्त प्रदेशों में खोज करने लगे।

विचित्य दिवसं सर्वे सीताधिगमने धृताः।
समायान्ति स्म मेदिन्यां निशाकालेषु वानराः।। ४।।
सर्वर्तुकांश्च देशेषु वानराः सफलद्रुमान्।
आसाद्य रजनीं शय्यां चक्रुः सर्वेष्वहःसु ते।। ५।।
तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः।
कपिराजेन संगम्य निराशाः कपिकुञ्जराः।। ६।।

सीता को प्राप्त करने की धारणा के साथ वे सारे वानर, दिन में सब तरफ खोज कर रात के समय निश्चित स्थान पर एकत्र हो जाया करते थे। सारे दिन वे अलग-अलग प्रदेशों में घूमते थे और रात्रि में सब ऋतुओं में फल देने वाले वृक्षों के पास एकत्र हो कर वहीं सो जाते। किन्तु जाने के दिन को पहला दिन मान कर एक मास समाप्त होने तक वे वानर श्रेष्ठ निराश हो कर वापिस आ गये और वानरेश से मिल कर प्रस्रवण पर्वत पर ठहर गये।

विचित्य तु दिशं पूर्वां यथोक्तां सचिवैः सह।
अदृष्ट्वा विनतः सीतामाजगाम महाबलः।।७।।
दिशमप्युत्तरां सर्वां विविच्य स महाकपिः।
आगतः सह सैन्येन भीतः शतबलिस्तदा।। ८।।
सुषेणः पश्चिमामाशां विविच्य सह वानरैः।
समेत्य मासे पूर्णे तु सुग्रीवमुपचक्रमे।। ९।।
तं प्रस्रवणपृष्ठस्थं समासाद्याभिवाद्य च।
आसीनं सह रामेण सुग्रीवमिदमब्रुवन्।। १०।।

जैसा उनसे कहा गया था, अपने मन्त्रियों के साथ पूर्व दिशा में खोज कर, पर वहाँ सीता को न पाकर, महाबली विनत वापिस आ गये। महान वानर शतबलि भी सारी उत्तर दिशा में खोज कर भयभीत हो कर सेना के साथ वापिस आ गये। सुषेण भी वानरों के साथ पश्चिम दिशा में खोज कर एक मास पूरा होने पर सुग्रीव के समीप आ गये। वे सब प्रस्रवण पर्वत की पीठ पर राम के साथ बैठे हुए सुग्रीव के पास आ कर और अभिवादन कर यह बोले कि–

विचिताः पर्वताः सर्वे वनानि गहनानि च।
निम्नगाः सागरान्ताश्च सर्वे जनपदाश्च ये।। ११।।
गुहाश्च विचिताः सर्वा याश्च ते परिकीर्तिताः।
विचिताश्च महागुल्मा लताविततसंतताः।। १२।।
गहनेषु च देशेषु दुर्गेषु विषमेषु च।
ये चैव गहना देशा विचितास्ते पुनः पुनः।। १३।।

हे राजन्! हमने सारे पर्वत, और घने जंगल, समुद्र पर्यन्त नदियाँ, सारे जनपदों में खोज की, जो आपने बतायीं थीं, वे सारी गुफाएँ देख लीं। लताओं के विस्तार से मुक्त बड़ी झाड़ियाँ भी देख लीं। दुर्गम ऊँचे नीचे स्थानों में, घने देशों में जो घने प्रदेश हैं वे सारे बार-बार निरीक्षण कर लिये हैं (पर सीता जी का पता न लगा।)

तेतालीसवाँ सर्ग

दक्षिण दिशा में गये हुए वानरों द्वारा सीता की खोज प्रारम्भ करना।

सह ताराङ्गदाभ्यां तु सहसा हनुमान् कपिः।
सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं गन्तुं देशं प्रचक्रमे।। १।।
स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः।
ततो विचित्य विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च।। २।।
पर्वताग्रनदीदुर्गान् सरांसि विपुलद्रुमान्।
वृक्षखण्डांश्च विविधान् पर्वतान् वनपादपान्।। ३।।
अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतोदिशम्।
न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम्।। ४।।

सुग्रीव ने जैसा बताया था उसी के अनुसार वानर हनुमान ने तार और अंगद के साथ दक्षिण दिशा की तरफ पूरी शक्ति के साथ चलने का अभियान किया। वे उन सभी श्रेष्ठ वानरों के साथ बहुत दूर जा कर वहाँ विन्ध्य पर्वत की गहन गुफाओं, पर्वत शिखरों, दुर्गम नदियों, तालाबों, विशाल वृक्षों, झाड़ियों, विविध प्रकार की पहाड़ियों, वन्य वनस्पतियों में सब तरफ से ढूँढते रहे, पर उन वीरों ने जनकपुत्री मैथिली सीता को नहीं देखा।

नोटः– यहाँ विन्ध्य से मतलब पूर्वी घाट और पश्चिमी घाट की पर्वतमालाओं से है, क्योंकि उस समय इनको भी विन्ध्याचल पर्वत की शाखा माना जाता था।

ते भक्षयन्तो मूलानि फलानि विविधान्यपि।
अन्वेषमाणा दुर्धर्षा न्यवसंस्तत्र तत्र ह।। ५।।
स तु देशो दुरन्वेषो गुहागहनवान् महान्।
निर्जलं निर्जनं शून्यं गहनं घोरदर्शनम्।। ६।।
तादृशान्यप्यरण्यानि विचित्य भृशपीडिताः।

त्वयक्त्वा तु तं ततो देशं सर्वे वै हरियूथपाः।। ७।।
देशमन्यं दुराधर्षं विविशुश्चाकुतोभयाः।

वे दुर्धर्ष वीर तरह-तरह के फल मूल खाते हुए जगह-जगह ठहर जाया करते थे। उस प्रदेश में अन्वेषण करने में बड़ी कठिनाई होती थी, उसमें बड़ी-बड़ी गहरी गुफाएँ थीं। वहाँ न पानी था और न कोई व्यक्ति था। गहन, शून्य और भयानक दिखाई देने वाला वह प्रदेश था। अत्यन्त कष्ट सहन करते हुए उन्होंने उस प्रकार के वनों में भी खोज की। किसी से न डरने वाले वे वानर यूथपति फिर उस प्रदेश को छोड़ कर दूसरे दुर्गम प्रदेश में प्रविष्ट हुए।

निस्तोयाः सरितो यत्र मूलं यत्र सुदुर्लभम्।। ८।।
न सन्ति महिषा यत्र न मृगा न च हस्तिनः।
शार्दूलाः पक्षिणो वापि ये चान्ये वनगोचराः।। ९।।
न चात्र वृक्षा नौषधयो न वल्ल्यो नापि वीरुधः।
स्निग्धपत्राः स्थले यत्र पद्मिन्यः फुल्लपङ्कजाः।। १०।।
प्रेक्षणीयाः सुगन्धाश्च भ्रमरैश्च विवर्जिताः।

वहाँ की नदियाँ जल रहित थीं, कन्दमूल तो वहाँ पूरी तरह से दुर्लभ थे, वहाँ भैंसे, मृग, हाथी, सिंह, पक्षी तथा दूसरे वन्य जन्तु भी नहीं थे। वहाँ वृक्ष औषधियाँ, लताएँ, वनस्पतियाँ नहीं थीं। उस स्थल की पोखरियों में चिकने पत्ते वाले फूले हुए कमल नहीं थे। इसलिये न उनमें सुगन्ध थी, और न भौंरे गुंजार कर रहे थे, वे देखने योग्य भी नहीं थीं।

तस्य ते काननान्तांस्तु गिरीणां कन्दराणि च।। ११।।
प्रभवाणि नदीनां न विचिन्वन्ति समाहिताः।
तत्र चापि महात्मानो नापश्यञ्जनकात्मजाम्।। १२।।
हर्तारं रावणं वापि सुग्रीवप्रियकारिणः।

सुग्रीव का प्रिय करने वाले उन महात्माओं ने उस प्रदेश की पर्वतीय गुफाओं तथा नदियों के उद्‌गम स्थानों पर एकाग्रचित्त से खोज की, पर वहाँ भी उन्होंने सीता और हरण करने वाले रावण को नहीं देखा।

ते प्रविश्य तु तं भीमं लतागुल्मसमावृतम्।। १३।।
ददृशुर्भीमकर्माणं स्थितं शैलमिवासुरम्।
गाढं परिहिताः सर्वे दृष्ट्वा तं पर्वतोपमम्।। १४।।
सोऽपि तान् वानरान् सर्वान् नष्टाः स्थेत्यब्रवीद् बली।
अभ्यधावत संक्रुद्धो मुष्टिमुद्यम्य संगतम्।। १५।।
तमापतन्तं सहसा वालिपुत्रोऽङ्गदस्तदा।
रावणोऽयमिति ज्ञात्वा तलेनाभिजघान ह।। १६।।

उसके बाद वे दूसरे भयानक लताओं और झाड़ियों से घिरे हुए स्थान में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने एक पर्वत के समान विशाल और भयानक कर्म वाले राक्षस को सामने खड़े देखा। उस पर्वताकार दैत्य को देख कर, उन सबने अपने वस्त्र उससे लड़ने के लिये कस कर बाँध लिये। वह बलवान राक्षस भी उन्हें देख कर अब तुम मारे गये हो, ऐसा बोला, और क्रोध में भर कर अपनी बँधी हुई मुट्ठी को तान कर उनकी तरफ दौड़ा। तब अंगद ने यह समझ कर कि यह रावण है, उस आक्रमण करते हुए राक्षस पर अचानक थप्पड़ से प्रहार किया।

स वालिपुत्राभिहतो वक्त्राच्छोणितमुद्वमन्।
असुरो न्यपतद् भूमौ पर्यस्त इव पर्वतः।। १७।।
ते तु तस्मिन् निरुच्छ्वासे वानरा जितकाशिनः।
व्यचिन्वन् प्रायशस्तत्र सर्वं ते गिरिगह्वरम्।। १८।।
विचितं तु ततः सर्वं सर्वे ते काननौकसः।
अन्यदेवापरं घोरं विविशुर्गिरिगह्वरम्।। १९।।
ते विचित्य पुनः खिन्ना विनिष्पत्य समागताः।
एकान्ते वृक्षमूले ते निषेदुर्दीनमानसाः।। २०।।

बालिपुत्र के द्वारा प्रहार किया हुआ वह मुख से खून की उलटी करता हुआ फट कर गिरे हुए पर्वत की तरह भूमि पर गिर पड़ा। उसके निष्प्राण होने पर विजय से उल्लासित हो कर वे सारे वानर लोग वहाँ एक पर्वतीय गुफा में प्रविष्ट हुए। पर वहाँ भी वे ढूँढ कर और उदास हो कर निकल आये और एक एकान्त में एक वृक्ष के नीचे दीन मन वाले हो कर बैठ गये।

चवालीसवाँ सर्ग

अंगद और गन्धमादन के आश्वासन देने पर वानरों का पुनः अन्वेषण कार्य में उत्साहपूर्वक प्रवृत्त होना।

अथाङ्गदस्तदा सर्वान् वानरानिदमब्रवीत्।
परिश्रान्तो महाप्राज्ञः समाश्वास्य शनैर्वचः॥ १॥
वनानि गिरयो नद्यो दुर्गाणि गहनानि च।
दरी गिरिगुहाश्चैव विचिताः सर्वमन्ततः॥ २॥
तत्र तत्र सहास्माभिर्जानकी न च दृश्यते।
तथा रक्षोऽपहर्ता च सीतायाश्चैव दुष्कृती॥ ३॥
कालश्च नो महान् यातः सुग्रीवश्चोग्रशासनः।
तस्माद् भवन्तः सहिता विचिन्वन्तु समन्ततः॥ ४॥

इसके पश्चात थके हुए महा बुद्धिमान अंगद ने सारे वानरों को धैर्य बँधा कर धीरे-धीरे यह कहा कि हमने दुर्गम और गहन वन, पर्वत, नदियाँ, कन्दराएँ और गुफाएँ अच्छी तरह से अन्त तक देख डालीं, पर वहाँ न तो हमें जानकी सीता और न उसका अपहरण करने वाला पापी राक्षस ही दिखाई दिया। हमारा समय भी बहुत व्यतीत हो गया, और सुग्रीव भयंकर शासन करने वाला है, इसलिये आप लोग मिल कर फिर सीता की खोज करें।

विहाय तन्द्रां शोकं च निद्रां चैव समुत्थिताम्।
विचिनुध्वं तथा सीतां पश्यामो जनकात्मजाम्॥ ५॥
अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम्।
कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ६॥
अद्यापीदं वनं दुर्गं विचिन्वन्तु वनौकसः।
खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वं वनमेव विचिन्वताम्॥ ७॥
अवश्यं कुर्वतां तस्य दृश्यते कर्मणः फलम्।
परं निर्वेदमागम्य नहि नोन्मीलनं क्षमम्॥ ८॥

आप लोग आलस्य, शोक और आती हुई निद्रा को छोड़ कर इस प्रकार खोज करें, जिससे हम जनक पुत्री सीता को देख लें। उत्साह कौशल तथा मन में हिम्मत न हारना ये गुण कार्य की सिद्धि को कराते हैं, इसलिये मैं आपसे ऐसा कह रहा हूँ। सारे वानर खेद को छोड़ कर आज भी इस दुर्गम वन में खोज करें और सारे वन को छान मारें। कर्मशील व्यक्तियों को उसका फल अवश्य मिलता है। पर उदासीन हो कर आँखें बन्द कर लेना ठीक नहीं है।

सुग्रीवः क्रोधनो राजा तीक्ष्णदण्डश्च वानराः।
भेतव्यं तस्य सततं रामस्य च महात्मनः॥ ९॥
हितार्थमेतदुक्तं वः क्रियतां यदि रोचते।
उच्यतां हि क्षमं यत् तत् सर्वेषामेव वानराः॥ १०॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा वचनं गन्धमादनः।
उवाच व्यक्तया वाचा पिपासाश्रमखिन्नया॥ ११॥
सदृशं खलु वो वाक्यमङ्गदो यदुवाच ह।
हितं चैवानुकूलं च क्रियतामस्य भाषितम्॥ १२॥

हे वानरों! सुग्रीव क्रोधी राजा है। उसका दण्ड कठोर है, उससे तथा महात्मा राम से सदा डरते रहना चाहिये। मैंने आपकी भलाई के लिये कहा है, यदि अच्छा लगे तो करिये, या आप सबके लिये जो उचित हो उसे हे वानरों! आप ही बताएँ। अंगद की बात सुन कर गन्धमादन ने प्यास और परिश्रम से खिन्न वाणी में स्पष्ट रूप से कहा कि अंगद ने जो कहा है, वह आपके अनुरूप, हितकारी और अनुकूल है। आप इनके कहने के अनुसार कार्य करें।

पुनर्मार्गामहे शैलान् कन्दरांश्च शिलांस्तथा।
काननानि च शून्यानि गिरिप्रस्रवणानि च॥ १३॥
यथोद्दिष्टानि सर्वाणि सुग्रीवेण महात्मना।
विचिन्वन्तु वनं सर्वे गिरिदुर्गाणि संगताः॥ १४॥
ततः समुत्थाय पुनर्वानरास्ते महाबलाः।
विन्ध्यकाननसंकीर्णां विचेरुर्दक्षिणां दिशम्॥ १५॥

हम पर्वतों, गुफाओं, चट्टानों, सुनसान वनों, और पहाड़ी झरनों में पुनः-पुनः खोज करेंगे। महात्मा सुग्रीव ने जैसा कहा है, उन सब स्थानों पर, वनों और दुर्गम पर्वतों पर सब मिल कर खोज करो। तब उठ कर वे महाबली वानर फिर विन्ध्याचल पर्वत के वनों से भरी हुई दक्षिण दिशा में विचरण करने लगे।

ते शारदाभ्रप्रतिमं श्रीमद्रजतपर्वतम्।
शृङ्गवन्तं दरीवन्तमधिरुह्य च वानराः॥ १६॥
तत्र लोध्रवनं रम्यं सप्तपर्णवनानि च।
विचिन्वन्तो हरिवराः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः॥ १७॥
तस्याग्रमधिरूढास्ते श्रान्ता विपुलविक्रमाः।
न पश्यन्ति स्म वैदेहीं रामस्य महिषीं प्रियाम्॥ १८॥
ते तु दृष्टिगतं दृष्ट्वा तं शैलं बहुकन्दरम्।
अध्यारोहन्त हरयो वीक्षमाणाः समन्ततः॥ १९॥

उसके बाद शरद ऋतु के बादलों के समान शोभा वाले, श्वेत चाँदी के से पर्वत पर, जिसमें अनेक शिखर तथा कन्दराएँ थीं, चढ़ कर वहाँ वे श्रेष्ठ वानर सीता के दर्शन की इच्छा से रमणीय लोध्रवन में और सप्तपर्ण के वनों में खोज करने लगे। वे महान विक्रम वाले वानर उस पर्वत पर शिखर पर चढ़ कर ढूँढते हुए थक गये, पर राम की प्यारी रानी वैदेही सीता को उन्होंने नहीं देखा। वे अनेक कन्दराओं वाले उस पर्वत पर अच्छी तरह से दृष्टिपात कर और सब तरफ देख कर उससे नीचे उतर आये।

अवरुह्य ततो भूमिं श्रान्ता विगतचेतसः।
स्थिता मुहूर्तं तत्राथ वृक्षमूलमुपाश्रिताः।। २०।।
ते मुहूर्तं समाश्वस्ताः किंचिद्भग्नपरिश्रमाः।
पुनरेवोद्यताः कृत्स्नां मार्गितुं दक्षिणां दिशम्।। २१।।
सह ताराङ्गदाभ्यां तु संगम्य हनुमान् कपिः।
विचिनोति च विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च।। २२।।
सिंहशार्दूलजुष्टाश्च गुहाश्च परितस्तदा।
विषमेषु नगेन्द्रस्य महाप्रस्रवणेषु च।। २३।।

नीचे उतर कर थके हुए और अचेत से हुए वे वृक्ष के नीचे एक मुहूर्त तक बैठे रहे। एक मुहूर्त आराम कर लेने पर जब उनकी थकावट कुछ कम हुई, तब सारी दक्षिण दिशा में ढूँढ़ने के लिये वे फिर तैयार हो गये। वानर हनुमान, तार और अंगद के साथ विन्ध्याचल पर्वत की गहन गुफाओं में खोज करने लगे। उन्होंने सिंहों और बाघों से युक्त गुफाओं को उनकी चारों तरफ की भूमि को पर्वतराज के दुर्गम स्थानों में तथा बड़े-बड़े झरनों में अन्वेषण किया।

आसेदुस्तस्य शैलस्य कोटिं दक्षिणपश्चिमाम्।
स हि देशो दुरन्वेष्यो गुहागहनवान् महान्।। २४।।
तत्र वायुसुतः सर्वं विचिनोति स्म पर्वतम्।
परस्परेण रहिता अन्योन्यस्याविदूरतः।। २५।।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमान् जाम्बवानपि।। २६।
अङ्गदो युवराजश्च तारश्च वनगोचरः।
गिरिजालावृतान् देशान् मार्गित्वा दक्षिणां दिशम्।। २७।।

इसके पश्चात वे उस पर्वत के दक्षिणी पश्चिमी किनारे पर पहुँचे। वह प्रदेश घने वनों और गुफाओं वाला था, वहाँ अन्वेषण का कार्य बड़ा कठिन था, वहाँ भी वायु पुत्र हनुमान ने सारे पर्वत पर छानबीन की। वहाँ एक दूसरे के समीप रहते हुए, पर अलग-अलग गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान, जाम्बबान, युवराज अंगद ओर वनवासी तार इन्होंने पर्वत समूहों से घिरे हुए प्रदेशों वाली दक्षिण दिशा में सीता जी की खोज की।

पैंतालीसवाँ सर्ग

लौटने की अवधि बीत जाने पर भी कार्य सिद्ध न होने पर सुग्रीव के कठोर दंड से डरने वाले अंगद आदि वानरों का उपवास करके प्राण त्याग देने का निश्चय।

ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम्।
अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम्।। १।।
तेषां मासो व्यतिक्रान्तो यो राज्ञा समयः कृतः।
विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे सम्प्रपुष्पितपादपे।। २।।
उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा।
ततस्तान् कपिवृद्धांश्च शिष्टांश्चैव वनौकसः।। ३।।
वाचा मधुरयाऽऽभाष्य यथावदनुमान्य च।
स तु सिंहवृषस्कन्धः पीनायतभुजः कपिः।। ४।।
युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत्।

उसके पश्चात् उन्होंने आकाश के निवास स्थान भयानक सागर को देखा, जो अपार था और भयानक लहरों से व्याप्त हो कर गर्जना कर रहा था। उस समय तक उनका वह एक मास का समय जो उनके राजा ने निश्चित किया था, समाप्त हो गया। तब विन्ध्याचल पर्वत की उस चरण भूमि पर जहाँ के वृक्ष फूलों से युक्त थे, वे महात्मा, वीर वानर वहाँ बैठ कर चिन्ता करने लगे। तब उन वानरश्रेष्ठों को तथा दूसरे वनवासी सज्जन वानरों को अपनी मधुर वाणी से सम्बोधित कर तथा उनका यथोचित सम्मान कर महा बुद्धिमान, सिंह तथा साँड के समान कंधे वाला, मोटी, बड़ी भुजाओं वाला युवराज वानर अंगद यह बोला कि–

वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः।। ५।।
प्रस्थिताः सोऽपिचातीतः किमतः कार्यमुत्तरम्।
भवन्तः प्रत्ययं प्राप्ता नीतिमार्गविशारदाः।। ६।।

हितेषभिरता भर्तुर्निसृष्टाः सर्वकर्मसु।
कर्मस्वप्रतिमाः सर्वे दिक्षु विश्रुतपौरुषाः।। ७।।
मां पुरस्कृत्य निर्याताः पिङ्गाक्षप्रतिचोदिताः।
इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः।। ८।।
हरिराजस्य संदेशमकृत्वा कः सुखी भवेत्।

हमने एक मास की अवधि में व्यवस्थित हो कर आश्विन के मास में प्रस्थान किया था, वह समय बीत गया इसीलिये अब आगे क्या करना चाहिये। आप नीति के मार्ग के विशारद हैं, आपको स्वामी का विश्वास प्राप्त है, आप स्वामी के कल्याण में लगे रहते हैं और स्वामी के सब कार्यों में नियुक्त किये जाते हैं। आप सब अपने कार्यों में अद्वितीय हैं। आपका पौरुष सभी दिशाओं में विख्यात है। वानरराज की आज्ञा से आप मुझे आगे कर बाहर निकले थे पर अब अपने कार्य में असफल होने पर हमें मरना पड़ेगा, इसमें कोई संशय नहीं है क्योंकि वानरराज की आज्ञा का पालन न कर कौन सुखी रह सकता है?

अस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम्।। ९।।
प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां च वनौकसाम्।
तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः स्वामिभावे व्यवस्थितः।। १०।।
न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान्।
अप्रवृत्तौ च सीतायाः पापमेव करिष्यति।। ११।।
तस्मात् क्षममिहाद्यैव गन्तुं प्रायोपवेशनम्।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च धनानि च गृहाणि च।। १२।।

सुग्रीव के द्वारा निश्चित किये काल के समाप्त हो जाने पर, सब वनवासी वानरों के लिये यही उचित है कि वे स्वयं उपवास कर बैठ कर प्राण त्याग कर दें। सुग्रीव का स्वभाव तेज है, अब तो वे हमारे स्वामी हैं। हम उनका अपराध करके जायेंगे तो वे हमें क्षमा नहीं करेंगे। सीता का समाचार न मिलने पर वह हमारा वध अवश्य कर डालेगा। इसलिये उचित यही है कि हम पुत्रों, स्त्री, धन और घर का मोह छोड़ कर मरणान्त उपवास पर बैठ जायें।

ध्रुवं नो हिंसते राजा सर्वान् प्रतिगतानितः।
वधेनाप्रतिरूपेण श्रेयान् मृत्युरिहैव नः।। १३।।
न चाहं यौवराज्येन सुग्रीवेणाभिषेचितः।
नरेन्द्रेणाभिषिक्तोऽस्मि रामेणाक्लिष्टकर्मणा।। १४।।
स पूर्वं बद्धवैरो मां राजा दृष्ट्वा व्यतिक्रमम्।
घातयिष्यति दण्डेन तीक्ष्णेन कृतनिश्चयः।। १५।।
किं मे सुहृद्भिर्व्यसनं पश्यद्भिर्जीवितान्तरे।
इहैव प्रायमासिष्ये पुण्ये सागररोधसि।। १६।।

हमारे यहाँ से वापिस लौटने पर निश्चित रूप से राजा हमें मार देगा। अनुचित वध की जगह यहीं मर जाना हमारे लिये अच्छा है। मुझे यौवराज्य पर सुग्रीव ने अभिषिक्त नहीं किया, स्वाभाविक रूप से अच्छे कार्य करने वाले राजा राम ने मेरा अभिषेक किया है। वह राजा मेरे प्रति पहले से ही बैर रखता है, अब अपराध किये हुए देख कर तीखे दण्ड से मुझे निश्चय ही मरवा देगा। अपने जीवन काल में मेरी मृत्यु को देखने वाले अपने मित्रों से मुझे क्या लाभ है? इसलिये सागर के इस पवित्र तट पर ही मैं मरणान्त उपवास करूँगा।

एतच्छ्रुत्वा कुमारेण युवराजेन भाषितम्।
सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः करुणं वाक्यमब्रुवन्।। १७।।
तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः प्रियारक्तश्च राघवः।
समीक्ष्याकृतकार्यांस्तु तस्मिंश्च समये गते।। १८।।
अदृष्टायां च वैदेह्यां दृष्ट्वाचैव समागतान्।
राघवप्रियकामाय घातयिष्यत्यसंशयम्।। १९।।
न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः।
प्रधानभूताश्च वयं सुग्रीवस्य समागताः।। २०।।
इहैव सीतामन्वीक्ष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा।
नो चेद् गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम्।। २१।।

युवराज कुमार अंगद की कही हुई उस बात को सुन कर वे सारे श्रेष्ठ वानर करुण स्वर में बोले कि सुग्रीव का स्वभाव तीखा है और श्रीराम अपनी पत्नी के प्रेम में रक्त हैं, इसलिये यह देख कर कि हमने कार्य पूरा नहीं किया, एक मास का समय भी व्यतीत हो गया, बिना वैदेही को देखे हम वापिस आ गये तब राम का प्रिय करने के लिये वह हमें अवश्य ही मरवा देगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिये अपराधी लोगों का स्वामी के समीप जाना उचित नहीं है। हम सुग्रीव के प्रधान सहयोगी होने के कारण यहाँ आये थे। पर यदि यहीं सीता को न देख कर या उसका पता न पा कर उस वीर के पास जायेंगे तो हमें यम लोक में जाना पड़ेगा।

बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम्।
चतुर्दशगुणं मेने हनूमान् वालिनः सुतम्।। २२।।
आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोबलपराक्रमैः।
शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिव श्रिया।। २३।।

तब हनुमान जी ने समझ लिया कि बाली के पुत्र अंगद आठ अंगों वाली बुद्धि, चार प्रकार की शक्तियों,

और चौदह गुणों से युक्त हैं, जैसे चन्द्रमा शुक्ल पक्ष के आरम्भ में दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही ये उत्तरोत्तर तेज, बल और पराक्रम से पूर्ण होते जा रहे हैं।

भर्तुरर्थे परिश्रान्तं सर्वशास्त्रविशारदः।
अभिसंधातुमारेभे हनूमानङ्गदं ततः।। २४।।
स चतुर्णामुपायानां तृतीयमुपवर्णयन्।
भेदयामास तान् सर्वान् वानरान् वाक्यसम्पदा।। २५।।
तेषु सर्वेषु भिन्नेषु ततोऽभीषयदङ्गदम्।
भीषणैर्विविधैर्वाक्यैः कोपोपायसमन्वितैः।। २६।।

यह समझ कर कि अंगद स्वामी के कार्य के लिये थकावट अनुभव कर रहे हैं, सारे शास्त्रों में निपुण हनुमान ने अंगद पक्ष के लोगों को फोड़ने का काम आरम्भ किया। उन्होंने चारों उपायों में तीसरे भेद नाम के उपाय का सहारा ले कर अपने वाक्य चातुर्य से उन सारे वानरों को फोड़ लिया और उनके फूट जाने पर उन्होंने चौथे कोप अर्थात दण्ड उपाय से युक्त भय प्रदान करने वाले वाक्यों से अंगद को डराना आरम्भ किया।

त्वं समर्थतरः पित्रा युद्धे तारेय वै ध्रुवम्।
दृढं धारयितुं शक्तः कपिराज्यं यथा पिता।। २७।।
नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुंगव।
नाज्ञाप्यं विषहिष्यन्ति पुत्रदारं विना त्वया।। २८।।
त्वां नैते ह्यनुरज्ञेयुः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते।
यथायं जाम्बवान् नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः।। २९।।
नह्यहं ते इमे सर्वे सामदानादिभिर्गुणैः।
दण्डेन न त्वया शक्याः सुग्रीवादपकर्षितुम्।। ३०।।

वे कहने लगे कि हे तारा पुत्र! निश्चय ही तुम युद्ध में अपने पिता के समान सामर्थ्य वाले हो, और वानरों के राज्य को अपने पिता के समान ही दृढ़ता से धारण कर सकते हो। पर हे वानरश्रेष्ठ! ये वानर लोग सदा अस्थिर चित्त वाले रहे हैं। बिना अपने पुत्रों और पत्नियों के तुम्हारी आज्ञा का पालन करना इनके लिये सह्य नहीं होगा। मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से कहता हूँ, कि ये तुम्हारा साथ नहीं देंगे। जैसे ये जाम्बवान, नील, और महा वानर सुहोत्र हैं और न मैं, इनको साम, दान आदि उपायों से तथा दण्ड से भी तुम सुग्रीव से अलग नहीं कर सकते।

विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेन बलीयसा।
आत्मरक्षाकरस्तस्मान्न विगृह्णीत दुर्बलः।। ३१।।
अवस्थानं यदैव त्वमासिष्यसि परंतप।
तदैव हरयः सर्वे त्यक्ष्यन्ति कृतनिश्चयाः।। ३२।।
स्मरन्तः पुत्रदाराणां नित्योद्विग्ना बुभुक्षिताः।
खेदिता दुःखशय्याभिस्त्वां करिष्यन्ति पृष्ठतः।। ३३।।
स त्वं हीनः सुहृद्भिश्च हितकामैश्च बन्धुभिः।
तृणादपि भृशोद्विग्नः स्पन्दमानाद् भविष्यसि।। ३४।।

यह कहा गया है कि दुर्बल के सथ विरोध करके रहा जा सकता है, पर बलवान के साथ विरोध कर आत्मरक्षा के लिये प्रयत्न करना पड़ेगा, इसलिये बलवान के साथ विरोध नहीं करना चाहिये। हे परंतप! इन वानरों ने यह निश्चय किया हुआ है कि जब तुम यहाँ रहना आरम्भ कर दोगे तभी ये सारे तुम्हें छोड़ देंगे। ये सदा अपने पुत्र और पत्नियों की याद करते हुए उद्विग्न रहेंगे। जब भूखे रह कर इन्हें दुख के साथ सोना पड़ेगा, तो ये तुम्हें पीछे छोड़ कर चल देंगे। तब तुम अपने हितकारी बन्धुओं और मित्रों से रहित हो कर हिलते हुए तिनके से भी अत्यधिक उद्विग्न हो जाने वाले बन जाओगे।

न च जातु न हिंस्युस्त्वां घोरा लक्ष्मणसायकाः।
अपवृत्तं जिघांसन्तो महावेगा दुरासदाः।। ३५।।
अस्माभिस्तु गतं सार्धं विनीतवदुपस्थितम्।
आनुपूर्व्यात्तु सुग्रीवो राज्ये त्वां स्थापयिष्यति।। ३६।।
धर्मराजः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः।
शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च स त्वां जातु न नाशयेत्।। ३७।।
प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम्।
तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत् तस्मादङ्गद गम्यताम्।। ३८।।

तब लक्ष्मण के महान वेग वाले, दुर्धर्ष, भयानक, तथा मारने के लिये तैयार रहने वाले बाण राम के कार्य से विमुख होने वाले तुम्हें न मारें यह नहीं हो सकता। पर यदि तुम हमारे साथ विनय पूर्वक वहाँ उपस्थित होओगे तो सुग्रीव अपने बाद तुम्हीं को राज्य पर बैठाएँगे। तुम्हारे चाचा धर्म का पालन करने वाले, प्रेम करने वाले, दृढ़व्रत, पवित्र और सत्य प्रतिज्ञा वाले हैं। वे कभी तुम्हारा नाश नहीं करेंगे। वे तुम्हारी माता का प्रिय करना चाहते हैं, उनके लिये ही उनका जीवन है, उनका कोई दूसरा पुत्र भी नहीं है। इसलिये हे अंगद! उनके पास चलो।

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम्।
स्वामिसत्कारसंयुक्तमङ्गदो वाक्यमब्रवीत्।। ३९।।
स्थैर्यमात्ममनःशौचमानृशंस्यमथार्जवम् ।
विक्रमश्चैव धैर्यं च सुग्रीवे नोपपद्यते।। ४०।।
सत्यात् पाणिगृहीतश्च कृतकर्मा महायशाः।
विस्मृतो राघवो येन स कस्य सुकृतं स्मरेत्।। ४१।।

लक्ष्मणस्य भयेनेह नाधर्मभयभीरुणा।
आदिष्टा मार्गितुं सीता धर्मस्तस्मिन् कथं भवेत्।। ४२।।

हनुमान जी की विनय तथा धर्म से युक्त और स्वामी के प्रति सत्कार वाली बात सुन कर अंगद ने कहा कि सुग्रीव में स्थिरता, आत्मा की पवित्रता, क्रूरता का अभाव, कोमलता, विक्रम और धैर्य नहीं हैं। जिन महा यशस्वी राम ने सत्य को साक्षी कर उसका हाथ पकड़ा, उसका कार्य पूरा किया, उनको भी उसने भुला दिया। वह किसके उपकार को याद रख सकता है? उसने हम लोगों को जो सीता की खोज के लिये आदेश दिया है, वह अधर्म से डर कर नहीं, अपितु लक्ष्मण के भय से दिया है, इसलिये उसमें धर्म कैसे हो सकता है?

तस्मिन् पापे कृतघ्ने तु स्मृतिभिन्ने चलात्मनि।
आर्यः को विश्वसेज्जातु तत्कुलीनो विशेषतः।। ४३।।
भिन्नमन्त्रोऽपराद्धश्च भिन्नशक्तिः कथं ह्यहम्।
किष्किन्धां प्राप्य जीवेयमनाथ इव दुर्बलः।। ४४।।
उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपपादयेत्।
शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात्।। ४५।।
बन्धनाच्चावसादान्मे श्रेयः प्रायोपवेशनम्।
अनुजानन्तु मां सर्वे गृहं गच्छन्तु वानराः।। ४६।।

उस पापी, कृतघ्न, स्मरण शक्ति से हीन और चंचल मन वाले सुग्रीव पर कौन उत्तम व्यक्ति विशेष रूप से वह जो उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ है, विश्वास कर सकता है? मेरे विचार सुग्रीव से भिन्न हैं। मैंने सुग्रीव का अपराध किया है, मेरी शक्ति समाप्त हो गयी है, मैं अनाथ के समान दुर्बल हूँ, ऐसी अवस्था में किष्किंधा में जा कर मैं जीवित कैसे रह सकता हूँ? सुग्रीव राज्य के कारण मुझे गुप्त रूप से दण्ड देगा या कारागार में डाल देगा। वह शठ, क्रूर और निर्दय है। इसलिये कारागार में पड़ कर समाप्त होने की अपेक्षा उपवास करके प्राण देना अच्छा है, अतः वानर लोग मुझे आज्ञा दें और अपने घर चले जायें।

अहं वः प्रतिजानामि न गमिष्याम्यहं पुरीम्।
इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे।। ४७।।
अभिवादनपूर्वं तु राजा कुशलमेव च।
अभिवादनपूर्वं तु राघवौ बलशालिनौ।। ४८।।
मातरं चैव मे तारामाश्वासयितुमर्हथ।
प्रकृत्या प्रियपुत्रा सा सानुक्रोशा तपस्विनी।। ४९।।
विनष्टमिह मां श्रुत्वा व्यक्तं हास्यति जीवितम्।
एतावदुक्त्वा वचनं वृद्धांस्तानभिवाद्य च।। ५०।।
विवेश चाङ्गदो भूमौ रुदन् दर्भेषु दुर्मनाः।

मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं किष्किंधा पुरी को नहीं जाऊँगा, यहीं मरणान्त उपवास करूँगा। मेरा मर जाना ही अच्छा है। आप राजा से मेरी कुशलता और अभिवादन कहना, बलशाली दोनों रघुवंशियों से भी मेरा अभिवादन कहना। आप मेरी माता तारा को भी आश्वासन देना। वह तपस्विनी स्वभाव से ही दयालु और पुत्र से प्रेम करने वाली है। वह मुझे यहाँ नष्ट हुआ सुन कर निश्चित ही अपने प्राण त्याग कर देगी। ऐसा कह कर अंगद ने वृद्ध वानरों को प्रणाम किया और उपवास के लिये कुशा बिछा कर उस पर उदास मन से रोते हुए बैठ गया।

तस्य संविशतस्तत्र रुदन्तो वानरर्षभाः।। ५१।।
नयनेभ्यः प्रमुमुचुरुष्णं वै वारि दुःखिताः।
सुग्रीवं चैव निन्दन्तः प्रशंसन्तश्च वालिनम्।। ५२।।
परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवसन् प्रायमासितुम्।
तद् वाक्यं वालिपुत्रस्य विज्ञाय प्लवगर्षभाः।। ५३।।
उपस्पृश्योदं सर्वे प्राङ्मुखाः समुपाविशन्।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः।
मुमूर्षवो हरिश्रेष्ठा एतत् क्षममिति स्म ह।। ५४।।

उसके वहाँ बैठ जाने पर सारे वानर श्रेष्ठ दुखी हो कर आँखों से गर्म आँसू बहाने लगे। वे सुग्रीव की निन्दा और बाली की प्रशंसा करने लगे। अंगद को घेर कर वे सारे भी उपवास करने का निश्चय करने लगे। उन वानर श्रेष्ठों ने बाली के पुत्र की बात पर विचार किया और वे भी यह सोच कर कि यही हमारे लिये भी उचित है, मरने की इच्छा से दायीं तरफ नोक वाली कुशाओं पर पूर्व की तरफ मुख कर जल के किनारे आचमन कर बैठ गये।

छियालीसवाँ सर्ग

गृद्धराज सम्पाती का आना और वानरों को अपना परिचय देना। सम्पाती द्वारा वानरों को रावण और सीता का पता बताना।

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन् प्रायं गिरिस्थले।
हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे।। १।।
सम्पातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहंगमः।
भ्राता जटायुषः श्रीमान् विख्यातबलपौरुषः।। २।।

वे वानर पर्वत के जिस स्थान पर बैठे हुए थे, वहीं तभी गृध्र जाति के राजा, जिनका सम्पाती नाम था, जिन्होंने पक्षीत्व अर्थात् विद्वत्ता को प्राप्त किया था, जो लम्बी आयु के थे, तथा जो श्रीमान जटायु के भाई और बल पौरुष में विख्यात थे, वहाँ आ पहुँचे।

अङ्गदः परमायस्तो हनूमन्तमथाब्रवीत्।
वैदेह्याः प्रियकामेन कृतं कर्म जटायुषा।। ३।।
गृध्रराजेन यत् तत्र श्रुतं वस्तदशेषतः।

तभी अत्यन्त दुखी अंगद ने हनुमान से कहा कि सीता का प्रिय करने की इच्छा से गृध्रराज जटायु ने वहाँ जो कार्य किया, वह तुमने सारा सुन लिया है।

प्रियं कृतं हि रामस्य धर्मज्ञेन जटायुषा।। ४।।
राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः।
कान्ताराणि प्रपन्नाः स्म न च पश्याम मैथिलीम्।। ५।।
स सुखी गृध्रराजस्तु रावणेन हतो रणे।
मुक्तश्च सुग्रीवभयाद् गतश्च परमां गतिम्।। ६।।
जटायुषो विनाशेन राज्ञो दशरथस्य च।
हरणेन च वैदेह्याः संशयं हरयो गताः।। ७।।

धर्मज्ञ जटायु ने तो राम का प्रिय कार्य कर दिया, पर हम राम के लिये जीवन का मोह छोड़ कर वनों में भटकते रहे और थक गये, पर सीता को नहीं देख पाये। वह गृध्रराज रावण के द्वारा युद्ध में मारा हुआ सुखी हो गया, उसे सुग्रीव का भी भय नहीं है और वह उत्तम गति को प्राप्त हो गया। जटायु के विनाश, राजा दशरथ की मृत्यु और सीता जी के हरण से वानर लोग विपत्ति को प्राप्त हो गये।

तत् तु श्रुत्वा तथा वाक्यमङ्गदस्य मुखोद्गतम्।
अब्रवीद् वचनं गृध्रस्तीक्ष्णतुण्डो महास्वनः।। ८।।
कोऽयं गिरा घोषयति प्राणैः प्रियतरस्य मे।
जटायुषो वधं भ्रातुः कम्पयन्निव मे मनः।। ९।।
कथमासीज्जनस्थाने युद्धं राक्षसगृध्रयोः।
नामधेयमिदं भ्रातुश्चिरस्याद्य मया श्रुतम्।। १०।।

अंगद के मुख से निकले हुए उन वाक्यों को सुन कर भयानक मुख वाले उन गृध्रराज ने ऊँची आवाज में कहा कि यह कौन अपनी वाणी से मेरे प्राणों से भी प्यारे भाई जटायु के वध के विषय में बोल रहा है और मेरे हृदय को कम्पित कर रहा है। जन स्थान में राक्षस और उस गृध्र के बीच कैसा युद्ध हुआ था? मैंने आज बहुत दिनों के बाद अपने भाई का नाम सुना है।

इच्छेयं गिरिदुर्गाच्च भवद्भिरवतारितुम्।
यवीयसो गुणज्ञस्य श्लाघनीयस्य विक्रमैः।। ११।।
अतिदीर्घस्य कालस्य परितुष्टोऽस्मि कीर्तनात्।
तदिच्छेयमहं श्रोतुं विनाशं वानरर्षभाः।। १२।।
भ्रातुर्जटायुषस्तस्य जनस्थाननिवासिनः।
तस्यैव च मम भ्रातुः सखा दशरथः कथम्।। १३।।
यस्य रामः प्रियः पुत्रो ज्येष्ठो गुरुजनप्रियः।
अवतार्य गिरेः शृङ्गाद् गृध्रमाहाङ्गदस्तदा।। १४।।

मैं चाहता हूँ कि पर्वत के इस दुर्गम स्थान से आप मुझे नीचे उतार दें। अपने गुणवान छोटे भाई के, जो पराक्रम में श्लाघनीय था, लम्बे समय के पश्चात नाम को सुनने से मुझे खुशी हुई है। हे वानरश्रेष्ठों! मैं उसके विनाश का वृतान्त सुनना चाहता हूँ। मेरे भाई जटायु की, जो कि जनस्थान में रहता था, उन दशरथ से मित्रता कैसे हुई? गुरुजनों के प्रेमी श्रीराम, जिनके ज्येष्ठ और प्रिय पुत्र हैं। तब उन गृध्रराज को पर्वत की चोटी से उतार कर अंगद ने उनसे कहा कि–

बभूवर्क्षरजोनाम वानरेन्द्रः प्रतापवान्।
ममार्यः पार्थिवः पक्षिन् धार्मिकौ तस्य चात्मजौ।। १५।।
सुग्रीवश्चैव वाली च पुत्रौ घनबलावुभौ।
लोके विश्रुतकर्माभूद् राजा वाली पिता मम।। १६।।
राजा कृत्स्नस्य जगत इक्ष्वाकूणां महारथः।
रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम्।। १७।।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या सह भार्यया।
पितुर्निदेशनिरतो धर्मं पन्थानमाश्रितः।। १८।।

ऋक्षरजा नाम के एक वानरों के प्रतापी राजा हुए हैं। हे विद्वन्! वे राजा मेरे पितामह थे। उनके दो धार्मिक और महान बल वाले बाली और सुग्रीव नाम के पुत्र थे। वे बाली, जो अपने पराक्रम से संसार में प्रसिद्ध थे, मेरे पिता थे। उधर सारे संसार के राजा, महारथी वीर, इक्ष्वाकुवंशी दशरथ के पुत्र श्रीमान राम, पिता के आदेश पालन में लगे हुए, धर्म के मार्ग पर चलते हुए, भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ दण्डकारण्य में प्रविष्ट हुए।

तस्य भार्या जनस्थानाद् रावणेन हृता बलात्।
रामस्य तु पितुर्मित्रं जटायुर्नाम गृध्रराट्।। १९।।
ददर्श सीतां वैदेहीं ह्रियमाणां विहायसा।
रावणं विरथं कृत्वा स्थापयित्वा च मैथिलीम्।। २०।।
परिश्रान्तश्च वृद्धश्च रावणेन हतो रणे।
एवं गृध्रो हतस्तेन रावणेन बलीयसा।। २१।।
संस्कृतश्चापि रामेण जगाम गतिमुत्तमाम्।

उनकी पत्नी को रावण ने बल पूर्वक चुरा लिया। तब राम के पिता के मित्र गृध्रराज जटायु ने वैदेही सीता को आकाश मार्ग से हरण करके ले जाते हुए देखा। तब उन्होंने रावण को विमान से उतरने के लिए विवश कर दिया और मैथिली को भूमि पर खड़ा कर रावण के साथ युद्ध किया। पर वे बूढ़े होने के कारण थक गये और रावण के द्वारा मारे गये। इस प्रकार बलवान रावण के द्वारा गृधराज की मृत्यु हुई। राम ने उनका दाह संस्कार किया। वे उत्तम गमि को प्राप्त हुए।

ततो मम पितृव्येण सुग्रीवेण महात्मना।। २२।।
चकार राघवः सख्यं सोऽवधीत् पितरं मम।
मम पित्रा निरुद्धो हि सुग्रीवः सचिवैः सह।। २३।।
निहत्य वालिनं रामस्ततस्तमभिषेचयत्।
स राज्ये स्थापितस्तेन सुग्रीवो वानरेश्वरः।। २४।।
राजा वानरमुख्यानां तेन प्रस्थापिता वयम्।

तब मेरे महात्मा चाचा सुग्रीव के साथ श्रीराम ने मित्रता की, और उन्होंने मेरे पिता का वध कर दिया। मेरे पिता ने सुग्रीव को मंत्रियों सहित राज्य सुख से अलग कर दिया था। इसलिये राम ने बाली को मार कर सुग्रीव को राजा बनवाया। राम के द्वारा राज्य पर स्थापित वानर प्रमुखों के राजा वानराधिपति सुग्रीव ने हमें सीता की खोज के लिये भेजा है।

एवं रामप्रयुक्तास्तु मार्गमाणास्ततस्ततः।। २५।।
वैदेहीं नाधिगच्छामो रात्रौ सूर्यप्रभामिव।
ते वयं कपिराजस्य सर्वे वचनकारिणः।। २६।।
कृतां संस्थामतिक्रान्ता भयात् प्रायमुपासिताः।
क्रुद्धे तस्मिंस्तु काकुत्स्थे सुग्रीवे च सलक्ष्मणे।। २७।।
गतानामपि सर्वेषां तत्र नो नास्ति जीवितम्।

इस प्रकार राम के द्वारा प्रेरित हो कर सब जगह ढूँढते हुए भी रात में सूर्य की प्रभा के समान वैदेही को अब तक प्राप्त नहीं कर पाये हैं। हम लोग वानरेश के आज्ञाकारी हैं, पर उनके द्वारा समय सीमा का उल्लंघन हो जाने के कारण उनके भय से हम मरणान्त उपवास कर रहे हैं। ककुत्स्थवंशी श्रीराम और लक्ष्मण और सुग्रीव के क्रुद्ध होने पर वापिस लौटने पर भी हमारे प्राण नहीं बच सकेंगे।

इत्युक्तः करुणं वाक्यं वानरैस्त्यक्तजीवितैः।। २८।।
सबाष्पो वानरान् गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः।
यवीयान् स मम भ्राता जटायुर्नाम वानराः।। २९।।
यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा।

जीवन की आशा छोड़ कर बैठे हुए उन वानरों के द्वारा कहे गये इन करुण वचनों को सुन कर उस गृध्रराज ने आँसुओं सहित ऊँची आवाज में उन वानरों को उत्तर दिया कि हे वानरो! जिनके बारे में तुम कह रह हो, कि वह युद्ध में बलवान रावण के द्वारा मारा गया, वह जटायु नाम का मेरा छोटा भाई था।

जटायुषस्त्वेवमुक्तो भ्रात्रा सम्पातिना तदा।। ३०।।
युवराजो महाप्राज्ञः प्रत्युवाचाङ्गदस्तदा।
जटायुषो यदि भ्राता श्रुतं ते गदितं मया।। ३१।।
आख्याहि यदि जानासि निलयं तस्य रक्षसः।
अदीर्घदर्शिनं तं वै रावणं राक्षसाधमम्।। ३२।।
अन्तिके यदि वा दूरे यदि जानासि शंस नः।
तोऽब्रवीन्महातेजा भ्राता ज्येष्ठो जटायुषः।। ३३।।
आत्मानुरूपं वचनं वानरान् सम्प्रहर्षयन्।

जटायु के भाई सम्पति के यह कहने पर महा बुद्धिमान युवराज अंगद ने यह उत्तर दिया कि यदि आप जटायु के भाई हैं और आपने मेरी कही हुई बातें सुनी हैं तो यदि आप उस राक्षस के स्थान को जानते हो तो बताओ। वह अदूरदर्शी दुष्ट राक्षस यहाँ से समीप हो या दूर, आप यदि उसके विषय में जानते हैं तो उसका पता बतायें। तब वह जटायु का महा तेजस्वी बड़ा भाई वानरों के हर्ष को बढ़ाता हुआ अपने अनुरूप ही वाक्य बोला कि–

तरुणी रूपपसम्पन्ना रावणेन दुरात्मना।। ३४।।
ह्रियमाणा मया दृष्टा गात्राणि च विधुन्वती।
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च भामिनी।। ३५।।
असिते राक्षसे भाति यथा वा तडिदम्बुदे।

मैंने एक दिन दुष्ट रावण के द्वारा हरण करके ले जाती हुई एक रूप यौवन सम्पन्न स्त्री को देखा था, जो अपने गात्रों को हिलाती हुई छटपटा रही थी। वह स्त्री हे राम, हे राम, और हे लक्ष्मण कहती हुई पुकार रही थी। उस काले राक्षस के समीप वह बादल में विद्युत् के समान प्रतीत हो रही थी।

तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात्।। ३६।।
श्रूयतां मे कथयतो निलयं तस्य रक्षसः।
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च।। ३७।।
अध्यास्ते नगरीं लङ्कां रावणो नाम राक्षसः।
इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।। ३८।।
तस्मिँल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा।

उसके राम को पुकारने से मैं समझता हूँ कि वह सीता ही होगी। अब मैं उस राक्षस का स्थान बताता हूँ सुनो! वह रावण नाम का राक्षस विश्रवा का पुत्र और कुबेर का साक्षात् (अर्थात् एक पिता वाला) भाई है। वह लंका नाम की नगरी में रहता है। यहाँ से पूरे सौ योजन दूर समुद्र के द्वीप में विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित सुन्दर नगरी लंका है।

लङ्कायामथ गुप्तायां सागरेण समन्ततः।। ३९।।
सम्प्राप्य सागरस्यान्तं सम्पूर्णं शतयोजनम्।
आसाद्य दक्षिणं तीरं ततो द्रक्ष्यथ रावणम्।। ४०।।
तत्रैव त्वरिताः क्षिप्रं विक्रमध्वं प्लवङ्गमाः।
ज्ञानेन खलु पश्यामि दृष्ट्वा प्रत्यागमिष्यथ।। ४१।।
उपायो दृश्यतां कश्चिल्लङ्घने लवणाम्भसः।
अभिगम्य तु वैदेहीं समृद्धार्था गमिष्यथ।। ४२।।

पूरे सौ योजन परे समुद्र के दक्षिणी किनारे पर पहुँच कर, समुद्र से चारों तरफ से सुरक्षित लंका में तुम रावण को देखोगे। हे वानरों! वहीं जाने के लिये तुम तुरन्त शीघ्रता पूर्वक पराक्रम करो। मैं अपनी ज्ञान दृष्टि से देख रहा हूँ कि तुम सीता को देख कर वापिस आ जाओगे। इस नमकीन सागर को पार करने का कोई उपाय सोचो। वहाँ तुम सीता को देख कर सफल मनोरथ हो कर जाओगे।

सैंतालीसवाँ सर्ग

समुद्र की विशालता देख कर अंगद का वानरों से पृथक-पृथक समुद्र लंघन के विषय में उनकी शक्ति पूछना।

आख्याता गृध्रराजेन समुत्प्लुत्य प्लवङ्गमाः।
संगताः प्रीतिसंयुक्ता विनेदुः सिंहविक्रमाः।। १।।
हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः।
अभिगम्य तु तं देशं ददृशुर्भीमविक्रमाः।। २।।
कृत्स्नं लोकस्य महतः प्रतिबिम्बमवस्थितम्।
प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः।। ३।।
क्वचित् पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम्।

गृध्रराज सम्पति के यह कहने पर वे सिंह के समान पराक्रमी वानर प्रसन्नता से एक दूसरे के गले लग कर उछल-उछल कर गर्जने लगे। वे सीता के दर्शन के अभिलाषी हर्षित हो कर समुद्र के किनारे आये। उस जगह आ कर उन भयानक पराक्रमी वानरों ने समस्त संसार के एक विशाल प्रतिबिम्ब के समान अवस्थित उस सागर को देखा। वह सागर कहीं बिल्कुल शान्त सोये हुए के समान था, तो कहीं खिलवाड़ सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था, तो कहीं पर्वत के समान ऊँची-ऊँची जल राशियों अर्थात लहरों से भरा हुआ दिखाई दे रहा है।

आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः।। ४।।
विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन्।
विषण्णां वाहिनीं दृष्ट्वा सागरस्य निरीक्षणात्।। ५।।
आश्वासयामास हरीन् भयार्तान् हरिसत्तमः।

उस सागर को जो आकाश के समान दुर्लंघ्य था, देख कर वे सारे वानर अब कैसे करना चाहिये, यह कहते हुए एक साथ विषाद को प्राप्त हो गये। सागर के अवलोकन से उदास हुई उस वानर सेना को देख कर वानरश्रेष्ठ अंगद ने उन भय से पीड़ित वानरों को आश्वासन दिया और कहा कि –

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः।। ६।।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः।
यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते।। ७।।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्ध्यति।

विषाद नहीं करना चाहिये। विषाद करने में बड़ा दोष है। विषाद पुरुष को ऐसे ही नष्ट कर देता है, जैसे क्रुद्ध साँप बच्चे को काट लेता है। जो व्यक्ति पराक्रम दिखाने

के समय के आने पर विषाद से युक्त हो जाता है, वह अपने तेज से रहित हो जाता है और उसका पुरुषार्थ सफल नहीं होता।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामङ्गदो वानरैः सह।। ८।।
हरिवृद्धैः समागम्य पुनर्मन्त्रममन्त्रयत्।
ततस्तान् हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिंदमः।। ९।।
अनुमान्याङ्गदः श्रीमान् वाक्यमर्थवदब्रवीत्।

तब उस रात्रि के व्यतीत होने पर अंगद ने बड़े वानरों के साथ मिल कर फिर विचार करना आरम्भ कर दिया। तब शत्रुओं का दमन करने वाले श्रीमान अंगद ने उन बड़े वानरों का सम्मान करके उस वानर सेना से यह बात कही कि–

क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम्।। १०।।
कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसंधमरिंदमम्।
को वीरो योजनशतं लङ्घयेत प्लवङ्गमः।। ११।।
इमांश्च यूथपान् सर्वान् मोचयेत् को महाभयात्।
कस्य प्रसादाद् दारांश्च पुत्रांश्चैव गृहाणि च।। १२।।
इतो निवृत्ताः पश्येम सिद्धार्थाः सुखिनो वयम्।
कस्य प्रसादाद् रामं च लक्ष्मणं च महाबलम्।। १३।।
अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवं च वनौकसम्।

कौन इस समय ऐसा महा तेजस्वी है, जो सागर को पार करेगा और शत्रुओं का दमन करने वाले सुग्रीव को सत्य प्रतिज्ञ बनायेगा? कौन वीर वानर इस सौ योजन विस्तृत समुद्र को पार करेगा और इन सारे यूथपतियों को महान भय से मुक्त करेगा? किसकी कृपा से हम सफल कार्य और सुखी हो कर यहाँ से लौटेंगे तथा अपने पुत्रों और पत्नियों तथा घरों को देखेंगे। किसकी कृपा से प्रसन्नता से भर कर हम लोग महाबली राम, लक्ष्मण और वानर सुग्रीव के पास जा सकेंगे?

यदि कश्चित् समर्थो वः सागरप्लवने हरिः।। १४।।
स ददात्विह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम्।
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित् किंचिदब्रवीत्।। १५।।
स्तिमितेवाभवत् सर्वा सा तत्र हरिवाहिनी।

यदि तुममें से कोई वानर सागर पार करने में समर्थ है, तो वह यहाँ हमें शीघ्र ही पुण्यात्मक अभय की दक्षिणा दे। पर अंगद की बात सुन कर कोई कुछ भी नहीं बोला। वह सारी वानर सेना वहाँ जड़ के समान बैठी रही।

पुनरेवाङ्गदः प्राह तान् हरीन् हरिसत्तमः।। १६।।
सर्वे बलवतां श्रेष्ठा भवन्तो दृढविक्रमाः।
व्यपदेशकुले जाताः पूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः।। १७।।
नहि वो गमने सङ्गः कदाचित् कस्यचिद् भवेत्।
ब्रुवध्वं यस्य या शक्तिः प्लवने प्लवगर्षभाः।। १८।।

तब उस वानरश्रेष्ठ अंगद ने उन वानरों से पुनः कहा कि आप सब बलवानों में श्रेष्ठ हैं, दृढ़ पराक्रमी हैं, प्रख्याति से युक्त कुल में उत्पन्न हुए हैं और इसलिये आप बार-बार प्रशंसित भी होते रहे हैं। आप लोगों में कभी भी, किसी को कहीं भी जाने में रुकावट नहीं होती, इसलिये हे वानर श्रेष्ठों! उड़ कर जाने में जिसकी जितनी शक्ति है, उसे आप लोग बतायें।

अड़तालीसवाँ सर्ग

वानरों द्वारा अपनी-अपनी गमन शक्ति के विषय में बताना, जाम्बवान का हनुमान जी को प्रेरित करना तथा हनुमान जी द्वारा लंका में जाने के लिये समुद्र पार करने की तैयारी करना।

अथाङ्गदवचः श्रुत्वा ते सर्वे वानरर्षभाः।
स्वं स्वं गतौ समुत्साहमूचुस्तत्र यथाक्रमम्।। १।।
आबभाषे गजस्तत्र प्लवेयं दशयोजनम्।
गवाक्षो योजनान्याह गमिष्यामीति विंशतिम्।। २।।
शरभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह।
त्रिंशतं तु गमिष्यामि योजनानां प्लवङ्गमाः।। ३।।
ऋषभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह।
चत्वारिंशद् गमिष्यामि योजनानां न संशयः।। ४।।

तब अंगद के वचनों को सुन कर वे सारे वानर श्रेष्ठ आकाश में उड़ने की अपनी-अपनी शक्ति के विषय में बारी-बारी से बताने लगे। वहाँ गज ने कहा कि मैं दस योजन तक उड़ सकता हूँ। गवाक्ष ने कहा कि मैं बीस योजना तक उड़ सकता हूँ। तब शरभ नाम के वानर ने कहा कि हे वानरों मैं तीस योजन तक चला जाऊँगा। तत्पश्चात ऋषभ नाम का वानर बोला कि मैं निस्सन्देह चालीस योजन तक चला जाऊँगा।

वानरांस्तु महातेजा अब्रवीद् गन्धमादनः।
योजनानां गमिष्यामि पञ्चाशत्तु न संशयः।। ५।।
मैन्दस्तु वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह।
योजनानां परं षष्टिमहं प्लवितुमुत्सहे।। ६।।

ततस्तत्र महातेजा द्विविदः प्रत्यभाषत।
गमिष्यामि न संदेहः सप्ततिं योजनान्यहम्।। ७।।
सुषेणस्तु महातेजाः सत्त्ववान् कपिसत्तमः।
अशीतिं प्रतिजानेऽहं योजनानां पराक्रमे।। ८।।

तब महातेजस्वी गन्धमादन ने वानरों से कहा कि इसमें कोई संशय नहीं है कि मैं पचास योजन तक चला जाऊँगा। तब मैन्द नाम के वानर ने वानरों से कहा कि मेरे अन्दर साठ योजन तक उड़ कर जाने की हिम्मत है। तब वहाँ महा तेजस्वी द्विविद ने कहा कि मैं निस्सन्देह सत्तर योजन तक चला जाऊँगा। तब धैर्यशाली महा तेजस्वी वानर श्रेष्ठ सुषेण बोले कि मैं अपने पराक्रम से अस्सी योजन तक जाने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

तेषां कथयतां तत्र सर्वांस्ताननुमान्यच।
ततो वृद्धतमस्तेषां जाम्बवान् प्रत्यभाषत।। ९।।
पूर्वमस्माकमप्यासीत् कश्चिद् गतिपराक्रमः।
ते वयं वयसः पारमनुप्राप्ताः स्म साम्प्रतम्।। १०।।
किं तु नैवं गते शक्यमिदं कार्यमुपेक्षितुम्।
यदर्थं कपिराजश्च रामश्च कृतनिश्चयौ।। ११।।
साम्प्रतं कालमस्माकं या गतिस्तां निबोधत।
नवतिं योजनानां तु गमिष्यामि न संशयः।। १२।।

उन वानरों के ऐसा कहने पर उन सबका सम्मान करके उन सब में बूढ़े जाम्बवान ने तब कहा कि पहले हमारे अन्दर भी दूर तक जाने का कुछ पराक्रम था, पर अब तो हमने उस अवस्था को पार कर लिया है। किन्तु ऐसा होने पर भी जिस कार्य के लिये राम और सुग्रीव ने निश्चय किया हुआ है, उस कार्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसलिये इस समय मेरी जो जाने की शक्ति है, उसे सुनिये। मैं निस्सन्देह नव्वे योजन तक चला जाऊँगा।

अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदङ्गदस्तदा ।
अनुमान्य तदा प्राज्ञो जाम्बवन्तं महाकपिः।। १३।।
अहमेतद् गमिष्यामि योजनानां शतं महत्।
निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम्।। १४।।
तमुवाच हरिश्रेष्ठं जाम्बवान् वाक्यकोविदः।
ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यृक्षसत्तम।। १५।।
नहि प्रेषयिता तात स्वामी प्रेष्यः कथंचन।
भवतायं जनः सर्वः प्रेष्यः प्लवगसत्तम।। १६।।

इसके बाद विद्वान महान वानर अंगद ने जाम्बवान का आदर करके उदार अर्थवाली यह बात कही कि मैं इन सौ योजनों तक चला जाऊँगा। पर वापिस लौटने की शक्ति मुझमें शेष रहेगी या नहीं, यह निश्चित नहीं है। तब उस वानरश्रेष्ठ अंगद से वाक्य चतुर जाम्बवान ने कहा कि हे वानरों और ऋक्षों में श्रेष्ठ! हमें तुम्हारी जाने की शक्ति का पता है, पर दूसरों को भेजने वाला स्वामी कभी भी नहीं भेजा जाता है। हे वानर श्रेष्ठ! इसलिये इन्हीं में से किसी को भेजो।

भवान् कलत्रमस्माकं स्वामिभावे व्यवस्थितः।
स्वामी कलत्रं सैन्यस्य गतिरेषा परंतप।। १७।।
उक्तवाक्यं महाप्राज्ञं जाम्बवन्तं महाकपिः।
प्रत्युवाचोत्तरं वाक्यं वालिसुनुरथाङ्गदः।। १८।।
यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानरपुङ्गवः।
पुनः खल्विदमस्माभिः कार्यं प्रायोपवेशनम्।। १९।।

हे परंतप! आप हमारे इस समय स्वामी है, इसलिये हमारे लिये स्त्री के समान रक्षणीय हो। सेना का स्वामी स्त्री के समान रक्षणीय होता है। तब महा बुद्धिमान जाम्बवान के यह कहने पर बाली पुत्र महान् वानर अंगद ने उत्तर दिया कि यदि मैं नहीं जाऊँगा और नाहीं कोई दूसरा श्रेष्ठ वानर जाएगा तो हमें फिर मरणान्त उपवास पर बैठना चाहिये।

सोऽङ्गदेन तदा वीरः प्रत्युक्तः प्लवगर्षभः।
जाम्बवानुत्तमं वाक्यं प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम्।। २०।।
तस्य ते वीर कार्यस्य न किंचित् परिहास्यते।
एष संचोदयाम्येनं यः कार्यं साधयिष्यति।। २१।।

अंगद के द्वारा यह उत्तर दिये जाने पर वानरश्रेष्ठ जाम्बवान ने अंगद से यह उत्तम वाक्य कहा कि हे वीर! तुम्हारे इस कार्य में कुछ भी कमी नहीं होगी। जो इस कार्य को करेगा, मैं उस वीर को प्रेरित करता हूँ।

ततः प्रतीतं प्लवतां वरिष्ठ–
मेकान्तमाश्रित्य सुखोपविष्टम्।
संचोदयामास हरिप्रवीरो
हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव।। २२।।

तब वानरश्रेष्ठ जाम्बवान ने वानर श्रेष्ठ हनुमान को जो वानरों में सबसे उच्च कोटि के थे, जो दृढ़ विश्वास युक्त हो एकान्त में जा कर सुख से बैठे हुए थे, प्रेरित किया।

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि।। २३।।
हनूमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि।
रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च।। २४।।
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे।। २५।।

तद् विजृम्भस्व विक्रान्त प्लवतामुत्तमो ह्यसि।
त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी।। २६।।
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव।। २७।।

जाम्बवान ने उनसे कहा कि हे वानर जगत के वीर, सारे शास्त्रों को जानने वालों में श्रेष्ठ हनुमान! तुम एकान्त में आ कर चुप क्यों बैठे हो? बोलते क्यों नहीं हो? हे हनुमान! तुम तेज और बल में सुग्रीव के और राम लक्ष्मण के भी समान हो। हे वानरश्रेष्ठ! बल बुद्धि तेज और धैर्य तुम्हारे अन्दर सारे प्राणियों से अधिक है, फिर अपने आपको समुद्र को लाँघने के लिये तैयार क्यों नहीं करते? हे पराक्रमी! तुम आकाश में उड़ने वालों में श्रेष्ठ हो, इसलिये अपने बल को दिखाओ। सारी वानर सेना तुम्हारी शक्ति को देखना चाहती है। हे वानरश्रेष्ठ हनुमान! उठो और इस महान सागर को पार करो। सारे प्राणियों में तुम्हारी गति सबसे अधिक है।

हरीणामुत्थितो मध्यात् सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
अभिवाद्य हरीन् वृद्धान् हनूमानिदमब्रवीत्।। २८।।
निमेषान्तरमात्रेण निरालम्बनमम्बरम्।
सहसा निपतिष्यामि घनाद् विद्युदिवोत्थिता।। २९।।
बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा।
अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवङ्गमाः।। ३०।।
तच्चास्य वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम्।
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान् प्लवगेश्वरः।। ३१।।

जाम्बवान की बातें सुन कर हनुमान जी प्रसन्नता से रोमाञ्चित हो गये। वे वानरों के बीच में से उठ कर खड़े हो गये और वृद्ध वानरों को प्रणाम कर इस प्रकार बोले कि जैसे बादलों में से विद्युत निकलती है, वैसे ही पलक मारते ही, एकदम मैं इस निराधार आकाश में उड़ जाऊँगा। मैं बुद्धि से जैसा विचार करता हूँ, मेरे मन की चेष्टा भी वैसी ही हो जाती है। अतः मुझे इन दोनों के अनुसार विश्वास है कि मैं वैदेही को देख लूँगा। हे वानरो! इसलिये आप लोग हर्ष मनाओ। अपने जाति भाइयों के शोक को नष्ट करने वाली उनकी इस बात को सुन कर वानर सेनापति जाम्बवान अत्यन्त प्रसन्न हो कर बोले। कि–

वीर केसरिणः पुत्र वेगवन् मारुतात्मज।
ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः।। ३२।।
तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः।
मङ्गलान्यर्थसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः।। ३३।।
ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च।
गुरूणां च प्रसादेन सम्प्लव त्वं महार्णवम्।। ३४।।
स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव।
त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम्।। ३५।।

हे वीर केसरी पुत्र! वेगवान, पवनसुत! हे तात! तुमने अपने जाति भाइयों के महान शोक को नष्ट कर दिया। यहाँ विद्यमान सारे वानर यूथपति तुम्हारे कल्याण की कामना करते हैं। तुम्हारे उद्देश्य की सिद्धि के लिये ये एकाग्रचित से मंगलकार्य करेंगे। ऋषियों की कृपा से, वृद्ध वानरों की अनुमति से तथा गुरुओं के आशीर्वाद से इस महान समुद्र को उड़ कर पार करो। सारे वानरों का जीवन तुम्हारे ही आश्रित है, इसलिये जब तक तुम्हारा आना नहीं होगा तब तक हम यहीं एक पैर से खड़े रहेंगे अर्थात् यहीं रहेंगे कहीं अन्यत्र नहीं जायेंगे।

ततश्च हरिशार्दूलस्तानुवाच वनौकसः।
एतानीह नगस्यास्य शिलासंकटशालिनः।। ३६।।
शिखराणि महेन्द्रस्य स्थिराणि च महान्ति च।
येषु वेगं गमिष्यामि महेन्द्रशिखरेष्वहम्।। ३७।।
नानाद्रुमविकीर्णेषु धातुनिष्पन्दशोभिषु।
ततस्तु मारुतप्रख्यः स हरिर्मारुतात्मजः।। ३८।।
आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः।
महद्भिरुच्छ्रितं शृङ्गैर्महेन्द्रं स महाबलः।
विचचार हरिश्रेष्ठो महेन्द्र समविक्रमः।। ३९।।

तब उस वानरश्रेष्ठ हनुमान ने उन वानरों से कहा कि इस महेन्द्र पर्वत के ये जो दृढ़ और महान तथा शिलाओं के समूह वाले शिखर हैं जो धातुओं के समूह के सुशोभित हो रहे हैं तथा अनेक प्रकार के वृक्षों से भरे हुए हैं, इन महेन्द्र पर्वत के शिखरों पर अब मैं तेजी से जाऊँगा। ऐसा कह कर वायु के समान पराक्रमी वायु पुत्र शत्रुमर्दन हनुमान उस पर्वत श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर चढ़ गये। इन्द्र के समान पराक्रम वाले वे वानर श्रेष्ठ, महाबली, अपने महान शिखरों से ऊँचे दिखाई देने वाले उस पहेन्द्र पर्वत पर इधर-उधर टहलने लगे।

स वेगवान् वेगसमाहितात्मा
हरिप्रवीरः परवीरहन्ता।
मनः समाधाय महानुभावो
जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी।। ४०।।

वे महानुभाव वानरश्रेष्ठ, जो कि शत्रुवीरों का संहार करने वाले थे और अत्यधिक वेगवान तथा महा मनस्वी थे, अपनी आत्मा में अपने सम्पूर्ण वेग को एकत्र कर और मन को एकाग्र करके मन से लंका का ध्यान करने लगे अर्थात उसके विषय में विचार करने लगे।

सुन्दरकाण्ड

पहला सर्ग

हनुमान जी के द्वारा समुद्र का लंघन।

दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन् कर्म वानरः।
समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ।। १।।
नीललोहितमाञ्जिष्ठपद्मवर्णैः सितासितैः।
स्वभावसिद्धैर्विमलैर्धातुभिः समलंकृतम्।। २।।
स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते।
तिष्ठन् कपिवरस्तत्र ह्रदे नाग इवाबभौ।। ३।।
बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ।
आससाद कपिः कट्यां चरणौ संचुकोच च।। ४।।

हनुमान जी ने अपने मस्तक और ग्रीवा को ऊपर उठाया। उस समय वे एक साँड के समान प्रतीत हो रहे थे। वे एक ऐसा दुष्कर कार्य करना चाहते थे, जिसे कोई और नहीं कर सकता था। उस पर्वत का तल प्रदेश, नीली, लाल, मजीठी और कमल के समान वर्ण वाली सफेद तथा काली, स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाली निर्मल धातुओं से सुशोभित था। उस तल प्रदेश में जो कि उत्तम हाथियों से भरा हुआ था, खड़े हनुमान जी सरोवर में खड़े हुए हाथी के समान लग रहे थे। उन्होंने तब अपनी परिघ के समान विशाल भुजाओं को पर्वत के सहारे जमाया और सारे शरीर को सिकोड़ कर कमर के नीचे कर लिया। दोनों पैरों को भी सिकोड़ लिया।

संहृत्य च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम्।
तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान्।। ५।।
मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वप्रणिहितेक्षणः।
रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन्।। ६।।
पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः।
वानरान् वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत्।। ७।।
यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः।
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम्।। ८।।

तेजस्वी श्रीमान हनुमान ने अपनी गर्दन और दोनों भुजाओं को भी सुकेड़ लिया। उस समय उन्होंने अपने अन्दर तेज, बल और पराक्रम का अनुभव किया। उन्होंने अपने दूरगामी रास्ते की तरफ देखते हुए ऊपर की तरफ अपनी आँखे उठाईं और आकाश की तरफ देखते हुए ही प्राणों को हृदय में रोका। तब उन वानर श्रेष्ठ ने पैरों को अच्छी तरह से जमा कर वानरों से यह कहा कि जैसे श्रीराम का छोड़ा हुआ बाण वायु के समान वेग से जाता है वैसे ही मैं रावण के द्वारा पालित लंका पुरी में जाऊँगा।

एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तमः।
उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन्।। ९।।
तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।
पर्वताग्राद् विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ।। १०।।
उपरिष्टाच्छरीरेण च्छायया चावगाढया।
सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत् तदा कपिः।। ११।।
श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी।
तस्य सा शुशुभे छाया पतिता लवणाम्भसि।। १२।।

ऐसा कह कर वानरों में श्रेष्ठ, वेगवान हनुमान, बिना किसी प्रकार की चिन्ता किये तेजी से उड़ कर चल दिये। उस समय आकाश में फैलायी उनकी दोनों भुजाएँ ऐसी प्रतीत हो रहीं थीं जैसे पर्वतों से निकले हुए पाँच-पाँच फनों वाले दो साँप हों। आकाश मार्ग से जाते हुए वे जब नीचे पानी के समीप आते थे, तब उनकी छाया पानी को स्पर्श करती हुई चलती थी। उस समय वे ऐसी नाव के समान प्रतीत होते थे, जिनका पाल हवा से भरा हुआ हो और जो वायु के द्वारा ले जायी जा रही हो। उन वायु पुत्र के पीछे-पीछे चलने वाली, खारे सागर में पड़ी हुई उनकी छाया सफेद बादलों की पंक्ति के समान प्रतीत हो रही थी।

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः।
प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पतन् प्रविशंस्तदा।। १३।।
प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन्।

योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः।। १४।।
सागरं सागरानूपान् सागरानूपजान् द्रुमान्।
सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत्।। १५।।

जब वे ऊपर दूर आकाश में उड़ते थे, तो वे कभी बादलों के समूह के अन्दर प्रवेश कर जाते थे, तो कभी उनमें से बाहर निकल आते थे। ऐसा बार-बार करते हुए वे वर्षा ऋतु में बादलों में छिपते और प्रकट होते हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे। सौ योजन के अन्त में उस बहुत अधिक विस्तृत सागर के पार पहुँच कर तब उन्होंने वहाँ सागर को, सागर के तटवर्ती जलप्राय किनारों को, उन किनारों पर उगे हुए वृक्षों को, समुद्री पत्नी नदियों के मुहानों को भी देखा।

ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे
विचित्रकूटे निपपात कूटे।
सकेतकोद्दालकनारिकेले
महाभ्रकूटप्रतिमो महात्मा।। १६।।

तब विशाल बादलों के समूह के समान वह महात्मा हनुमान, उस लम्बे पर्वत के विचित्र किनारों वाले एक शिखर पर जो केवड़ा, लिसौड़ा, और नारियल के वृक्षों की समृद्धि से युक्त था, उतर पड़े।

दूसरा सर्ग

लंकापुरी का वर्णन, उसमें प्रवेश करने के विषय में हनुमान जी का विचार।

योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः।
अनिश्श्वसन् कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति।। १।।
शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि।
किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम्।। २।।
शैलांश्च तरुसंछन्नान् वनराजीश्च पुष्पिताः।
अभिचक्राम तेजस्वी हनूमान् प्लवगर्षभः।। ३।।
स तस्मिन्नचले तिष्ठन् वनान्युपवनानि च।
स नगाग्रे स्थितां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः।। ४।।

वे उत्तम पराक्रम वाले श्रीमान वानर सौ योजन तक उड़ कर भी न तो थकावट को प्राप्त हुए थे और न लम्बी साँसें ले रहे थे, बल्कि वे यह समझ रहे थे कि मैं अनेक सौ योजनों तक जा सकता हूँ। फिर इस गिने हुए सौ योजन के समुद्र की तो क्या बात है? वानरों में श्रेष्ठ हनुमान जी तब वहाँ वृक्षों से भरे हुए पर्वतों पर तथा फूलों से भरे हुए वनों में विचरण करने लगे। पवन पुत्र हनुमान ने तब उस पर्वत पर खड़े हो कर वनों, उपवनों, और पर्वत के शिखर पर विद्यमान लंका को देखा।

सरलान् कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान्।
प्रियालान् मुचुलिन्दांश्च कुटजान् केतकानपि।। ५।।
प्रियङ्गून् गन्धपूर्णांश्च नीपान् सप्तच्छदांस्तथा।
असनान् कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान्।। ६।।
पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि।
पादपान् विहगाकीर्णान् पवनाधूतमस्तकान्।। ७।।

उन्होंने वहाँ सरल, कनेर, खिले हुए खजूर, प्रियाल, मुचुलिन्द, कुटज, केतक, गन्धपूर्ण प्रियंगु, नीप, सप्तच्छद, असन्, कोविदार, और खिले हुए करवीर के वृक्ष देखे। वे सारे वृक्ष खिले और अधखिले फूलों के भार से लदे हुए थे। वायु के द्वारा उनकी शाखाएँ हिलाई जा रही थीं।

हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलावृताः।
आक्रीडान् विविधान् रम्यान् विविधांश्च जलाशयान्।। ८।।
संततान् विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः।
उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः।। ९।।

वहाँ उन्होंने हंसों और कारण्डवों से व्याप्त अनेक बावलियाँ, जो पद्मों और उत्पलों से व्याप्त थीं, देखीं। उन्होंने तरह-तरह के सुन्दर और क्रीडा स्थानों से युक्त, जलाशयों को भी देखा। उन्होंने वहाँ सारी ऋतुओं में फूल और फल देने वाले अनेक प्रकार के वृक्षों से व्याप्त सुन्दर बगीचे भी देखे।

समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावणपालिताम्।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम्।। १०।।
काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम्।। ११।।
गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः।
तोरणैः काञ्चनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविराजितैः।। १२।।
पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा।
प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान् कपिः।। १३।।

उन कान्तिमान हनुमान ने इसके बाद रावण के द्वारा पालित उस लंका के समीप पहुँच कर उसे देखा। वह खाइयों से जिनमें पद्म और उत्पल खिले हुए थे, घिरी हुई थी। उसके चारों तरफ भयंकर धनुषों को लेकर राक्षस

लोग घूम रहे थे उस महान पुरी के चारों तरफ सुनहले रंग की चार दिवारी थी। उसके अन्दर सफेद बादलों तथा पर्वतों के समान श्वेत और विशाल भवन थे। दीवार के मुख्य द्वार भी सुनहरे रंग के और लताओं आदि के चित्रों से सुसज्जित थे। विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित और रावण के द्वारा पालित वह लंका वानर हनुमान्‌ को आकाश में तैरती हुई सी प्रतीत हुई।

वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम्।
शतघ्नीशूलकेशान्तामट्टालकावतंसकाम् ।।१४।।
मनसेव कृतां लङ्कां निर्मितां विश्वकर्मणा।
द्वारमुत्तरमासाद्य लिखन्तमिवाम्बरम्।।१५।।
ध्रियमाणामिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ।
तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः।।१६।।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः।

वह लंका विश्वकर्मा के द्वारा मन से विचार कर मानो एक ऐसी सुन्दरी स्त्री के रूप में बनाई हुई थी, जिसकी चार दिवारी और फाटक उसके कमर का निचला हिस्सा था, विशाल सागर और वन उसके वस्त्र थे, शतघ्नी और शूल उसके केश थे, अट्टालिकाएँ उसके कर्णभूषण थे। उस लंकापुरी ने अपने ऊँचें श्रेष्ठ भवनों से मानो आकाश को ऊँचा उठा कर धारण किया हुआ था। उसके उत्तरी द्वार पर पहुँच कर जो कि अपनी ऊँचाई से आकाश में रेखा सी खींच रहा था, उस लंका की महान सुरक्षा, समुद्र और रावण जैसे भयानक शत्रु को देख कर वे वानर हनुमान विचार करने लगे कि–

इमां त्वविषमां लङ्कां दुर्गां रावणपालिताम्।।१७।।
प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः।
अवकाशो न साम्नस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते।।१८।।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते।
चतुर्णामेव हि गतिर्वानरणां तरस्विनाम्।।१९।।
वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः।
यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा।।२०।।
तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम्।
ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः।।२१।।

जिसके समान विषम स्थान और कोई नहीं है, जो बड़ी दुर्गम और रावण के द्वारा पालित है, ऐसी इस लंका में आ कर भी महान भुजाओं वाले श्रीराम क्या कर सकेंगे? राक्षसों पर साम नीति तो चल ही नहीं सकती। दान, भेद और युद्ध नीति भी सफल होती हुई दिखाई नहीं देती। चार ही वेग वाले वानर यहाँ आ सकते हैं। बलिपुत्र अंगद, नील मैं और बुद्धिमान राजा सुग्रीव। अच्छा पहले वैदेही जनकपुत्री के विषय में मालूम करता हूँ कि वह जीवित है या नहीं। उनको देख कर ही आगे सोचूँगा। तब वे वानर श्रेष्ठ सीता जी के बारे में जानने के लिये एक मुहूर्त तक सोचते रहे।

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः।।२२।।
महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता।।२३।।
लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत्।।२४।।
केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम्।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।।२५।।

उन्होंने सोचा कि मैं अपने इस रूप से राक्षसों के नगर में जो क्रूर और बलवान राक्षसों से सुरक्षित है, प्रवेश नहीं कर सकता। जानकी की खोज करते हुए मुझे इन महा तेजस्वी, महा पराक्रमी, और बलवान राक्षसों को धोखा देना होगा। इस समय दिखाई देने वाले अपने रूप को न दिखाई देने वाला बना कर महान कार्य की सिद्धि के लिये, रात्रि में उचित समय पर प्रवेश करना चाहिये। मैं किस उपाय से काम लूँ, जिससे जनकपुत्री मैथिली को देख लूँ और दुष्ट राक्षसों के राजा रावण से भी छिपा रहूँ।

न विनश्येत् कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम्।।२६।।
भूताश्चार्था विनश्यति देशकालविरोधिताः।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा।।२७।।
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते।
घातयन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः।।२८।।

किस रीति से प्रसिद्ध आत्मा वाले राम का कार्य भी नष्ट न हो और मैं अकेली जनक पुत्री को एकान्त में देख भी लूँ। कई बार अविवेक और व्याकुलता से युक्त दूत को पा कर देश और काल के विपरीत व्यवहार के कारण बने बनाये कार्य भी सूर्योदय के समय अन्धकार की तरह नष्ट हो जाते हैं। अर्थ और अनर्थ दोनों के विषय में विचार करके निश्चित की हुई बुद्धि भी सफलता को प्राप्त नहीं होती, क्योंकि अपने आपको बुद्धिमान समझने वाले दूत कार्य को नष्ट कर देते हैं।

न विनश्येत् कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत्।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद् वृथा।।२९।।

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः।
भवेद् व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः।। ३०।।
इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः।
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हास्यति।। ३१।।

किस प्रकार से कार्य नष्ट न हो, मुझे घबराहट न हो, और समुद्र को पार करना व्यर्थ न जाए। राक्षसों के द्वारा मुझे देख लिये जाने पर प्रसिद्ध आत्मा वाले श्रीराम का रावण के अनर्थ को चाहने का यह कार्य व्यर्थ हो जायेगा। यदि मैं अपने इसी रूप में रह कर यहाँ छिपा हुआ बैठा रहूँ तो भी मारा जाऊँगा और स्वामी के कार्य को भी हानि होगी।

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः।
लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये।। ३२।।
रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम्।
प्रविश्य भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम्।। ३३।।
इति निश्चित्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमयं कपिः।
आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः।। ३४।।

इसलिये मैं श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिये रात में अपने रूप से पहचाने जा सकने की विशेषता को कम करके अर्थात् जिससे वर्तमान रूप कम से कम लक्षित हो ऐसे रूप में लंका में प्रवेश करूँगा। जिसमें जाना बहुत कठिन है, रावण की इस पुरी में प्रवेश कर, सारे भवनों में घुस कर, जनकपुत्री की खोज करूँगा। ऐसा निश्चय करके सीता के दर्शन के उत्सुक वीर वानर हनुमान सूर्यास्त की आकांक्षा करने लगे।

नोट: – इस विषय में विशेष विवरण भूमिका में दिया हुआ है।

तीसरा सर्ग

हनुमान जी का चन्द्र सौन्दर्य को देखना तथा लंका में प्रवेश करके वहाँ के विभिन्न दृश्यों का दर्शन करना।

ततः स मध्यंगतमंशुमन्तं
ज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमन्तम्।
ददर्श श्रीमान भुवि भानुमन्तं
गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम्।। १।।

उसके पश्चात् श्रीमान हनुमान जी ने गोशाला में घूमते हुए मस्त साँड के समान आकाश में तारिकाओं के बीच में घूमते हुए, किरणों वाले, सौन्दर्यशाली तथा संसार में चाँदनी के विस्तार को बार-बार फैलाते हुए चन्द्रमा को देखा।

लोकस्य पापानि विनाशयन्तं
महोदधिं चापि समेधयन्तम्।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं
ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम्।। २।।

उन्होंने देखा कि संसार के तापरूपी पाप को नष्ट करने वाले, सागर के जल में वृद्धि करने वाले चन्द्रदेव, सारे प्राणियों को अपने प्रकाश से जगमगाते हुए ऊपर की ओर उठ रहे हैं।

या भाति लक्ष्मीर्भुविमन्दरस्था
यथा प्रदोषेषु च सागरस्था।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था
रराज सा चारु निशाकरस्था।। ३।।

जो सुन्दरता पृथ्वी पर हिमालय पर्वत की है, साँयकाल के समय समुद्र की होती है, जो सुन्दरता जल के बीच में खिले हुए कमल की होती है, वही सुन्दरता इस समय मनोहर चन्द्रमा में दिखाई दे रही थी।

हंसो यथा राजत पंजरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वित कुंजरस्थः
चन्द्रोऽपि बभ्रज तथाम्बरस्थः।। ४।।

आकाश में चन्द्रमा ऐसे ही सुशोभित हो रहा था, जैसे चाँदी के पिंजरे में कोई हंस हो, या सिंह मंदराचल की कन्दरा में विद्यमान हो, या कोई वीर मस्त हाथी की पीठ पर बैठा हुआ हो।

स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृंगो
महाचलः श्वेत इवोर्ध्वशृंगः।
हस्तीव जाम्बूनदबद्ध शृंगो
विभाति चन्द्रः परिपूर्ण शृंगः।। ५।।

जैसे तीखे सींग और ऊँचे कन्धे वाला कोई बैल खड़ा हो, या ऊँची चोटी वाला कोई सफेद महान पर्वत सुशोभित हो रहा हो, या स्वर्ण जटित दाँतों से कोई गजराज सुशोभित हो रहा हो, उसी प्रकार चन्द्रमा भी अपने पूरे चिह्न के साथ सुशोभित हो रहा था।

विनष्टशीताम्बुतुषारपंको
महाग्रहग्राह विनष्टपंकः।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलांको
रराज चन्द्रो भगवाञ्शशांकः॥ ६॥

जिन्होंने अब शरद ऋतु में शीतलता को प्राप्त जल और ओस की बूँदों के कीचड़ को नष्ट कर दिया था तथा सूर्य की किरणों को ग्रहण कर स्वयं अपने अन्दर विद्यमान अन्धकार रूपी कीचड़ को भी समाप्त कर लिया था, जो प्रकाश रूपी ऐश्वर्य को धारण कर निर्मल आकृति हो गये थे, वे भगवान शश चिह्न से अंकित चन्द्रमा तब आकाश में सुशोभित हो रहे थे।

शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो
महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्रः
तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः॥ ७॥

जैसे शिला के ऊपर कोई सिंह बैठा हो, या विशाल युद्ध स्थल में कोई गजराज खड़ा हो, या राज्य शक्ति को प्राप्त कर कोई राजा शोभायमान हो रहा हो उसी प्रकार चन्द्रमा आकाश में सुशोभित हो रहा था।

प्रकाश चन्द्रोदयनष्टदोषः
प्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः ।
रामाभिरामेरितचित्त दोषः
स्वर्गप्रकाशो भगवान् प्रदोषः॥ ८॥

जिसमें प्रकाशमय चन्द्रमा के उदय होने से अन्धकार रूपी दोष समाप्त हो गया था, जिसमें राक्षसों के माँस भक्षण आदि दोषों में वृद्धि हो गयी थी, जिसमें सुन्दर स्त्रियों के हृदय से वैमनस्य आदि दोष समाप्त हो गये थे, वह प्रशंसनीय रात्रि का प्रथम प्रहर उस समय चन्द्रमा के स्वर्गीय प्रकाश से भरपूर हो गया था।

अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे।
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः॥ ९॥
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः।
चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि॥ १०॥
प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्नो निशायां मारुतात्मजः।
स महापथमास्थाय मुक्तपुष्पविराजितम्॥ ११॥
ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः।

तब महा तेजस्वी महा बली वानरश्रेष्ठ हनुमान रात्रि में बिना द्वार के ही लंका की चार दिवारी को लाँघ कर लंका में प्रविष्ट हो गये। उस समय लंका में प्रवेश कर वानरराज सुग्रीव का हित करने वाले हनुमान जी ने मानो शत्रु के सिर पर अपना बाँया पैर रख दिया। महा शक्तिशाली पवनपुत्र हनुमान लंका में प्रवेश कर बिखेरे हुए फूलों से सुशोभित राजमार्ग का सहारा ले कर उस सुन्दर लंकापुरी में चल दिये।

हसितोत्कृष्टनिनदैः तूर्यघोषपुरस्कृतैः॥ १२॥
वज्रांकुशनिकाशैश्च वज्रज्नलविभूषितैः।
गृहयेघैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः॥ १३॥
तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितंकरः।
राघवार्थे चरञ्श्रीमान् ददर्श च ननन्द च॥ १४॥

जिनमें अट्टहास तथा वाद्य यन्त्रों की ध्वनियाँ गूँज रही थीं, जिसमें वज्र, अंकुश के चित्र अंकित थे, जिनमें वज्र के समान कठोर धातु की जालियाँ लगी हुई थीं, ऐसे बादलों के समान घरों से वह लंका ऐसे ही सुशोभित हो रही थी जैसे आकाश मेघों के द्वारा होता है। श्रीराम के लिये वानरराज का हित करने वाले श्रीमान हनुमान ने उस विचित्र मालाओं रूपी आभूषणों को धारण करने वाली लंका को देखा और प्रसन्न हुए।

ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून्।
दीक्षिताञ्जटिलान् मुण्डान् गोजिनाम्बरवाससः॥ १५॥
धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान्॥ १६॥
परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान्।
विरूपान् बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः॥ १७॥

उन्होंने नगर के मध्य भाग में रावण के बहुत से राजकीय दूतों और गुप्तचरों को देखा, जो विभिन्न वेष भूषा में थे, उनमें से किसी ने योग की दीक्षा ली हुई थी, किसी ने जटाएँ बढ़ा रखी थीं, किसी ने गाय का चमड़ा धारण किया हुआ था, किसी ने हथौड़ा या मुग्दर को हाथ में लिया हुआ था, किसी ने डण्डे को शस्त्र के रूप में धारण किया हुआ थ, कोई धनुर्धर थे, तो कोई खड्गधारी थे, किसी ने शतघ्नी और मूसल को आयुध के रूप में लिया हुआ था तो किसी ने उत्तम परिघ हाथ में उठाया हुआ था, किसी ने जगमगाता हुआ कवच धारण किया हुआ था। उनमें कोई बड़ा बदसूरत था तो कोई अनेक तरह के रूप बना सकता था। कोई बड़े सुन्दर और तेजस्वी थे।

शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः।
क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः॥ १८॥
स्रग्विणस्त्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान्।
नानावेषसमायुक्तान् यथास्वैरचरान् बहून्॥ १९॥

तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान्।
शतसाहस्रमव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः।। २०।।

किसी ने शक्ति तथा वृक्षों की शाखाओं को हथियार के रूप में लिया हुआ था, कोई पट्टिश और वज्र को धारण किये हुए थे, किसी के हाथ में गुलेल और पाश थे। किसी ने माला धारण की हुई थी और चन्दन लगा रखा था, किसी ने उत्तम आभूषण धारण किये हुए थे। उन्होंने तरह-तरह के वेश बनाये हुए थे और उनमें से बहुत से स्वेच्छा से ही इधर-उधर विचर रहे थे। उन सबको उन महान वानर ने देखा। उन्होंने देखा कि लंका के मध्य भाग की हजारों महाबली, तीक्ष्ण शूलों को धारण करने वाले तथा वज्र लिये हुए रक्षक सावधानी से रक्षा कर रहे हैं।

चौथा सर्ग

हनुमान जी का घर-घर में सीता जी को ढूँढना और उन्हें न देख कर दुखी होना।

भवनाद् भवनं गच्छन् ददर्श कपिकुंजरः।
विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः।। १।।
शुश्राव रुचिरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम्।
शुश्राव कांचीनिनदं नूपुराणां च निस्वनम्।। २।।
सोपाननिनदांश्चापि भवनेषु महात्मनाम्।
आस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेणितांश्च ततस्ततः।। ३।।
शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान् ददर्श सः।। ४।।

इसके पश्चात् उन वानर श्रेष्ठ हनुमान ने एक मकान से दूसरे मकान में जाते हुए यहाँ वहाँ अनेक प्रकार के आकार प्रकार वाले भवन देखे। उन भवनों में उन्होंने तीन स्थानों हृदय, कण्ठ और मूर्धा से निकले हुए स्वरों से युक्त मधुर गीत सुने। उन्होंने स्त्रियों को जीने से उतरने चढ़ते हुए उनकी बजने वाली मेखलाओं और नूपुरों की ध्वनियाँ तथा यहाँ वहाँ भवनों में महात्मा राक्षसों के ताल ठोकने तथा गर्जने की आवाजें भी सुनी। उन्होंने राक्षसों के घरों में जाप करते हुए राक्षसों के मन्त्र सुने और स्वाध्याय में लगे हुए राक्षसों को भी देखा।

तन्त्रीस्वराः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः
स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुवृत्ताः।
नक्तंचराश्चापि तथा प्रवृत्ता
विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ।। ५।।

वहाँ कानों को सुख देने वाली वीणा की ध्वनियाँ गूँज रहीं थीं। अच्छे आचार वाली स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ सो रहीं थीं। अत्यन्त अद्भुत और भयंकर आचार वाले निशाचर विहार करने में लगे हुए थे।

मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि
रथाश्वभद्रासनसंकुलानि ।
वीरश्रिया चापि समाकुलानि
ददर्श धीमान् स कपिः कुलानि।। ६।।

बुद्धिमान वानर ने वहाँ घरों में ऐश्वर्य मद से मत्त और मदिरा पान से प्रमत्त राक्षस देखे। कितने ही राक्षस रथ, अश्व और उत्तम आसनों से भरपूर थे। कितने ही परिवार वीरता की लक्ष्मी से भरपूर थे।

परस्परं चाधिकमाक्षिपन्ति
भुजांश्च पीनानधिविक्षिपन्ति।
मत्तप्रलापानधिविक्षिपन्ति
मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति।। ७।।

उनमें से बहुत से राक्षस आपस में एक दूसरे पर आक्षेप करते थे और अपनी मोटी भुजाओं को इधर-उधर हिलाते थे। अनेक मद्यपान से मस्त हो कर नशे में बहकी-बहकी बातें कर रहे थे और एक दूसरे के प्रति कटु वचन बोल रहे थे।

रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति
गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति।
ददर्श कान्ताश्च समालभन्त्य-
स्तथापरास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः।। ८।।
सुरूपवक्त्राश्च तथा हसन्त्यः
क्रुद्धाः पराश्चापिविनिःश्वसन्त्यः।

वे नशे में मस्त राक्षस अपनी छातियों को पीटते थे और अपने शरीर के अंगों को अपनी पत्नियों के ऊपर रख देते थे। उन्होंने देखा कि कुछ स्त्रियाँ अपने शरीर पर चन्दनादि का लेप कर रहीं हैं, तो कुछ वहाँ सो रहीं हैं। कुछ सुन्दर मुख वाली स्त्रियाँ हँस रही हैं तो दूसरी क्रोध में भरी हुई लम्बी-लम्बी साँसें ले रही हैं।

महागजैश्चापि तथा नदद्भिः
सुपूजितैश्चापि तथा सुसद्भिः।। ९।।
रराज वीरैश्च विनिःश्वसद्भि-
र्ह्रदा भुजंगैरिव निःश्वसद्भिः।

वह लंकापुरी चिंघाड़ते हुए गजराजों, अत्यन्त सम्मानित श्रेष्ठ सभासदों और लम्बी साँसें छोड़ते हुए वीरों के द्वारा फुंकारते हुए साँपों से भरे हुए सरोवरों के समान सुशोभित हो रही थी।

ततो वरार्हाः सुविशुद्धभावा-
स्तेषां स्त्रियस्तत्र महानुभावाः।। १०।।
प्रियेषु पानेषु च सक्तभावा
ददर्श तारा इव सुस्वभावाः।
स्त्रियो ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढा
निशीथकाले रमणोपगूढाः।। ११।।
ददर्श काश्चित् प्रमदोपगूढा
यथा विहंगा विहगोपगूढाः।

इसके बाद उन्होंने उन राक्षसों की उन स्त्रियों को भी देखा जो अच्छी भावनाओं और शुद्ध विचारों वाली थीं। तारिकाओं के समान कान्तिवाली तथा वे अच्छे स्वभाव वाली योग्य सुन्दरियाँ अपने प्रिय तथा मधुपान में आसक्त थीं। उन्होंने कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी देखीं जो अपने सौन्दर्य से प्रज्वलित सी हो रहीं थीं, पर बड़ी लज्जाशील थीं और रमण क्रिया में मस्त थीं। कुछ स्त्रियाँ पति के आलिंगन में ऐसे बँधी हुई थीं जैसे पक्षिणी पक्षी के द्वारा आलिंगित हो।

अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टा-
स्तत्र प्रियाङ्केषु सुखोपविष्टाः।। १२।।
भर्तुः परा धर्मपरा निविष्टा
ददर्श धीमान् मदनोपविष्टाः।
अप्रावृताः काञ्चनराजिवर्णाः
काश्चित्परार्ध्यास्तपनीयवर्णाः ।। १३।।
पुनश्च काश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः
कान्तप्रहीणा रुचिराङ्गवर्णाः।

कई दूसरी स्त्रियाँ प्रासादों की छत पर बैठी हुई काम भाव से युक्त हो कर अपने प्रिय की गोद में सुख पूर्वक बैठीं हुई थीं। वे विवाहिता धर्म परायणा और पति की सेवा में लगी हुई थीं। उन सबको उन बुद्धिमान हनुमान जी ने देखा जो मन को हरने वालीं अत्यन्त सुन्दरी थीं। कुछ स्वर्ण रेखा के समान कान्ति वाली स्त्रियों ने अपनी ओढ़नी उतार दी थी। कुछ सुन्दरी स्त्रियाँ सोने के समान कुछ मनोहर कान्तिवाली चन्द्रमा के समान थीं पर पति वियोगिनी थीं।

ततः प्रियान् प्राप्य मनोऽभिरामान्
सुप्रीतियुक्ताः सुमनोऽभिरामाः।। १४।।
गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामा
हरिप्रवीरः स ददर्श रामाः।

उन वानरश्रेष्ठ ने उसके पश्चात् घरों में ऐसी स्त्रियों को भी देखा जो मनोहारी और अत्यन्त सुन्दरी थीं। वे अपने मनोभिराम पतियों को पा कर अत्यन्त प्रेम से युक्त और प्रसन्न हो रहीं थीं।

न त्वेव सीतां परमाभिजातां
पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम्।। १५।।
सनातने वर्त्मनि संनिविष्टां
रामेक्षणीं तां मदनाभिविष्टाम्।
भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां
स्त्रीभ्यः पराभ्यश्च सदा विशिष्टाम्।। १६।।
सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्य
रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य।
बभूव दुःखोपहतश्चिरस्य
प्लवंगमो मन्द इवाचिरस्य।। १७।।

किन्तु देर तक ढूँढने पर भी जब अत्यन्त उत्तम गुणों से युक्त, उचित मार्ग में विद्यमान, राजवंश में जन्मी, सनातन मार्ग में चलने वालीं, राम की तरफ ही अपनी दृष्टि रखने वाली, राम के प्रेम से युक्त, अपने श्रीमान पति के मन में बसी हुई, दूसरी स्त्रियों से सदा श्रेष्ठ, बोलने वालों में श्रेष्ठ, मानवेश राम की पत्नी, सीता को उन्होंने नहीं देखा, तो वे वानरश्रेष्ठ दुख से पीड़ित हो कर तुरन्त शिथिल हो गये।

पाँचवाँ सर्ग

हनुमान जी का रावण तथा सेनापतियों के घरों में सीता जी की खोज करना।

स निकामं विमानेषु विचरन् कामरूपधृक्।
आससाद च लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।। १।।
प्राकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभिसंवृतम्।
रक्षितं राक्षसैर्भीमैः सिंहैवि महद् वनम्।। २।।
समीक्षमाणोभवनं चकाशे कपिकुञ्जरः।
रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हेमभूषणैः ।। ३।।
विचित्राभिश्च कक्ष्याभिद्वारैश्च रुचिरैर्वृतम्।

इसके पश्चात् जिन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण किया हुआ था, अभिलाषी, सौभाग्यशाली हनुमान लंका के सतमहले मकानों में घूमते हुए, सूर्य के समान जगमगाते हुए, पर कोटे से घिरे हुए राक्षसों के राजा रावण के महल के समीप पहुँचे। जैसे सिंहों के द्वारा महान वन की रक्षा की जाती है, वैसे ही भयानक राक्षसों के द्वारा रक्षित उस भवन को देखते हुए वानरश्रेष्ठ हनुमान प्रसन्नता का अनुभव करने लगे। वह भवन स्वर्ण से जटित था तथा चाँदी से मँढे हुए विचित्र मेहराबदार द्वारों अद्भुत ड्यौढियों और सुन्दर द्वारों से युक्त था।

गजास्थितैर्महामात्रैः शूरैश्च विगतश्रमैः।। ४।।
उपस्थितमसंहार्यैर्हयैः स्यन्दनयायिभिः।
बहुरत्नसमाकीर्णं परार्ध्यासनभूषितम्।। ५।।
महारथसमावापं महारथमहासनम्।
मुदितप्रमदारत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।। ६।।
वराभरणसंह्रादैः समुद्रस्वननिःस्वनम्।
महाजनसमाकीर्णं सिंहैरिव महद् वनम्।। ७।।
भेरीमृदङ्गाभिरुतं शङ्खघोषविनादितम्।
महात्मनो महद् वेश्म महारत्नपरिच्छदम्।। ८।।

वह भवन हाथी पर आरूढ़ महावतों, थकावट रहित शूरवीरों और जिनके वेग को कोई रोक नहीं सकता था, ऐसे रथों को ले जाने वाले घोड़ों से सुशोभित था। वह भवन अनेक प्रकार के रत्नों से भरा हुआ था, बहुमूल्य आसन उसकी सुन्दरता को बढ़ाते थे, वहाँ रथों को ठहराने के साथ महारथियों के रहने के बड़े-बड़े स्थान बने हुए थे। राक्षसों के राजा के उस घर में अनेक स्त्री रूपी रत्न प्रसन्नता से युक्त विद्यमान थे, जिनके सुन्दर आभूषणों की झनकार से वह भवन सागर के समान मुखरित हो रहा था। सिंहों से भरे हुए महान वन के समान वह भवन भी प्रधान पुरुषों से व्याप्त था। वहाँ भेरी, मृदंग और शंख की ध्वनि सब तरफ फैल रही थी। महात्मा रावण का वह महान घर महान रत्नजटित सामानों से परिपूर्ण था।

लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः।
चचार हनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः।। ९।।
गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः।
वीक्षमाणोऽप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः।। १०।।
अथ मेघप्रतीकाशं कुम्भकर्णनिवेशम्।
महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि।। ११।।
विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तथेव च।
तथा चेन्द्रजितो वेश्म जगाम हरियूथपः।। १२।।
जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम हरिसत्तमः।

महान वानर हनुमान ने रावण के उस घर को लंका का आभूषण ही माना। इसके बाद वह रावण के उस घर के समीपवर्ती घरों में विचरण करने लगे। वे राक्षसों के एक घर से दूसरे घर में जा कर बिना भयभीत हुए बगीचों में सब जगह और प्रासादों में घूमने लगे। वे बादलों के समान कुम्भकर्ण के घर में, महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व के, और विद्युन्माली के घर में गये। वानरश्रेष्ठ, वानरयूथपति हनुमान इन्द्रजित के जम्बूमाली के और सुमाली के भी घर में गये।

धूम्राक्षस्याथ सम्पातेर्भवनं मारुतात्मजः।। १३।।
विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च।
शुकनाभस्य चक्रस्य शठस्य कपटस्य च।। १४।।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य लोमशस्य च रक्षसः।
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य सादिनः।। १५।।
विद्युज्जिह्वद्विजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च।
करालस्य पिशाचस्य शोणिताक्षस्य चैव हि।। १६।।
तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः।
तेषामृद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः।। १७।।

महायशस्वी, महावानर, पवनकुमार, हनुमान धूम्राक्ष के, सम्पाति के, विद्युद्रूप के, भीम के घन के, विघन के, शुकनाभ के, चक्र के, शठ के, कपट के, ह्रस्व कर्ण के, दंष्ट्र के, लोभश राक्षस के, युद्धोन्मत्त के, मत्त के, हस्तिमुख के, सादिन के, विद्युज्जिह्व के, द्विजिह्व

के, हस्तिमुख के, कराल के, पिशाच के और शोणिताक्ष के बहुमूल्य भवनों में गये और वहाँ उन्होंने उन ऐश्वर्यशाली राक्षसों के ऐश्वर्य को देखा।

सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि समन्ततः।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।। १८।।
शूलमुद्गरहस्तांश्च शक्तितोमरधारिणः।
ददर्श विविधान्गुल्मांस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे।। १९।।
राक्षसांश्च महाकायान् नानाप्रहरणोद्यतान्।
रक्ताञ्श्वेतान् सितांश्चापि हरींश्चापि महाजवान्।। २०।।

वे सौभाग्यशाली हनुमान उन सबके घरों को सब तरफ से देख कर फिर रावण के निवास स्थान पर आ पहुँचे। राक्षस राज के घर में उन्होंने अनेक सैनिकों के समुदायों को देखा, जिन्होंने शूल, मुद्गर, शक्ति, तोमर आदि शस्त्र लिये हुए थे। वे अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से युक्त थे। वहाँ उन्होंने अनेक प्रकार के आयुधों से सुज्जित विशालकाय राक्षसों को तथा महा वेगशाली लाल और सफेद तथा चमकीले घोड़ों को भी देखा।

कुलीनान् रूपसम्पन्नान् गजान् परगजारुजान्।
शिक्षितान् गजशिक्षायामैरावतसमान् युधि।। २१।।
निहन्तॄन् परसैन्यानां गृहे तस्मिन् ददर्श सः।
क्षरतश्च यथा मेघान् स्रवतश्च यथा गिरीन्।। २२।।
मेघस्तनितनिर्घोषान् दुर्धर्षान् समरे परैः।

उन्होंने शत्रु के हाथियों को परेशान करने वाले, अच्छे कुल में उत्पन्न और रूपवान हाथी भी वहाँ देखे, जो गज शिक्षा में सिखाये हुए और युद्ध में ऐरावत के समान पराक्रमी तथा शत्रु की सेनाओं को नष्ट करने वाले थे। वे हाथी वर्षा करते हुए बादलों और झरनों से युक्त पर्वतों के समान मद को बहा रहे थे। वे मेघों की गर्जना के समान चिंघाड़ते तथा युद्ध में शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष थे।

शिबिका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः।। २३।।
लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च।
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानि च।। २४।।
कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च।
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने।। २५।।
स मन्दरसमप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम्।
ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम्।। २६।।

पवनपुत्र हनुमान ने राक्षसेन्द्र रावण के घर में अनेक प्रकार की पालकियाँ, विचित्र लतागृह, चित्रशालागृह, क्रीडागृह तथा दूसरे लकड़ी के बनावटी पर्वत, सुन्दर विलासघर तथा दिन में आराम करने के स्थान देखे। उन्होंने मन्दाचल के समान ऊँचे, मोरों के रहने के स्थानों से युक्त, पताकाओं से व्याप्त उस उत्तम भवन को देखा।

अर्चिर्भिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च।
विरराज च तद् वेश्म रश्मिवानिव रश्मिभिः।। २७।।
जाम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च।
भाजनानि च शुभ्राणि ददर्श हरियूथपः।। २८।।
मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसंकुलम्।
मनोरमसम्बाधं कुबेरभवनं यथा।। २९।।
नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निःस्वनेन च।
मृदङ्गतलनिर्घोषैर्घोषवद्भिर्विनादितम् ।। ३०।।

रत्नों की चमक तथा रावण के तेज से वह भवन किरणों से युक्त सूर्य के समान जगमगा रहा था। वानर यूथपति हनुमान ने वहाँ सुवर्ण निर्मित पलंग, आसन और उज्ज्वल पात्र देखे। वहाँ मद्य और आसव से भीगे मणिमय पात्र भरे हुए थे। वह भवन कुबेर के भवन के समान मनोरम और विशाल था। वह नूपुरों की झन्कार, मेखलाओं की खनखनाहट, मृदंगों और तालियों की मधुर ध्वनि तथा दूसरे सुन्दर घोष वाले वाद्यों से निनादित हो रहा था।

छठा सर्ग

रावण के भवन का वर्णन।

स वेश्मजालं बलवान् ददर्श
व्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालम् ।
यथा महत्प्रावृषि मेघजालं
विद्युत्पिनद्धं सविहङ्गजालम्।। १।।

उन बलवान हनुमान ने रावण के महल परिसर में वैदूर्य मणि से जटित सुवर्ण की जालियों वाले गृह समूह को देखा जो ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वर्षाऋतु में विद्युत् और पक्षि समूहों से युक्त मेघमाला हो।

निवेशनानां विविधाश्च शालाः
प्रधानशङ्खायुधचापशालाः ।
मनोहराश्चापि पुनर्विशाला
ददर्श वेश्माद्रिषु चन्द्रशालाः।। २।।

उन्होंने पर्वतों के समान उन ऊँचे घरों में आराम करने के लिये अनेक प्रकार की बैठकें, शंख, आयुध और अनेक प्रकार के शस्त्र और धनुष रखने के प्रधान घर और मनोहर तथा विशाल चन्द्रशालाएँ देखीं।
(चन्द्रमा के दर्शन के लिये छत के ऊपर बनाए गए कमरे)

गृहाणि नानावसुराजितानि
देवासुरैश्चापि सुपूजितानि।
सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि
कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि।। ३।।

वानर हनुमान ने देखा कि वे घर अनेक प्रकार के रत्नों से जगमगा रहे थे। देव और असुरों के द्वारा भी उनकी निर्माण कला प्रशंसनीय थी। वे सारे दोषों से रहित थे और रावण ने उन्हें अपने पुरुषार्थ से निर्मित कराया था।

तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि
मयेन साक्षादिव निर्मितानि।
महीतले सर्वगुणोत्तराणि
ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि।। ४।।

लंकाधिपति के वे घर बड़े प्रयत्न से बनाये गये थे, और ऐसा प्रतीत होता था कि साक्षात् भय दानव ने उनका निर्माण किया हो। इस भूमि पर विद्यमान दूसरे घरों से वे सारे गुणों में बढ़कर थे।

ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपं
मनोहरं काञ्चनचारुरूपम्।
रक्षोऽधिपस्यात्मबलानुरूपं
गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम्।। ५।।

फिर उन्होंने राक्षसाधिपति रावण के उस श्रेष्ठ घर को देखा, जो उसकी अपनी शक्ति के अनुरूप था, जो बादलों के समान ऊँचा, सुवर्ण के समन उत्तम रूपवाला, मनोहर और अद्वितीय सौन्दर्य वाला था।

महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णं
श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम्।
नानातरूणां कुसुमावकीर्णं
गिरेरिवाग्रं रजसावकीर्णम्।। ६।।

अनेक प्रकार के रत्नों से जटित, अपनी चमक से जगमगाता हुआ, वह भवन ऐसे प्रतीत हो रहा था, मानो भूमि पर ही स्वर्ग का विस्तार कर दिया गया हो। वह अनेक प्रकार के वृक्षों के फूलों से आच्छादित और उनके पराग से भरे हुए पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था।

नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानं
तडिद्भिरम्भोधरमर्च्यमानम्।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानं
श्रिया युतं खे सुकृतं विमानम्।। ७।।

सुन्दर रीति से निर्मित और अपने सौन्दर्य से युक्त वह महल अपने अन्दर विद्यमान श्रेष्ठ स्त्री रूपी रत्नों से जगमगाता हुआ, विद्युन्माला से सुशोभित मेघमाला के समान सुशोभित हो रहा था और श्रेष्ठ हंसों के द्वारा आकाश में ढोये जाते हुए विमान के समान प्रतीत हो रहा था।

यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रं
यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम्
ददर्श युक्तीकृतचारुमेघ-
चित्रं विमानं बहुरत्नचित्रम्।। ८।।

जिस प्रकार अनेक प्रकार की धातुओं से पर्वत का शिखर चित्र विचित्र दिखाई देता है, जैसे तारों और चन्द्रमा के द्वारा आकाश सौन्दर्यशाली बना दिया जाता है, जैसे एकत्र होकर बादल अनेक प्रकार के सुन्दर रूप दिखाते हैं, वैसे ही अनेक प्रकार के रत्नों से जटित वह सात मंजिल वाला भवन विचित्र शोभा से युक्त दिखाई दे रहा था।

मही कृता पर्वतराजिपूर्णा
शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः।
वृक्षाः कृताः पुष्पवितानपुर्णाः
पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम्।। ९।।

उस भवन के भूमितल अर्थात् फर्श पर पर्वतों के समूह चित्रित किये गये थे। उन पर्वत समूहों को वृक्षों के समूहों से भरा हुआ दिखाया गया था। उन वृक्षों में खिले हुए फूल भरे हुए थे और उन खिले हुए फूलों में भी केसर से पूर्ण पंखुड़ियाँ दिखाई गई थीं।

कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि
तथा सुपुष्पाण्यपि पुष्कराणि।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि
वनानि चित्राणि सरोवराणि।। १०।।

उस महल परिसर में निर्मित सारे भवन श्वेत रंग के थे। वहाँ अच्छे फूलों से भरी हुईं पुष्करिणियाँ थीं, जिनमें केसरयुक्त कमल विद्यमान थे। वहाँ सुन्दर बगीचों और सरोवरों का निर्माण भी किया हुआ था।

प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः
सलीलमावर्जितजिह्मपक्षाः ।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः
कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः।। ११।।

उस भवन पर सुन्दर पंख वाले ऐसे मनोरम पक्षी बनाए हुए थे, जो अपनी सुन्दरता से साक्षात् कामदेव के सहायक प्रतीत होते थे। उन्होंने प्रवाल और सुवर्ण से बने हुए पुष्पों की पंखुड़ियों के समान अपने बाँके पंखों को लीलापूर्वक समेट रखा था।

इतीव तद्गृहमभिगम्य शोभनं
सविस्मयो नगमिव चारुकन्दरम्।
पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दरं
हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम्।। १२।।

इस प्रकार उस सुन्दर कन्दराओं वाले पर्वत के समान और वसन्त ऋतु में परम सुगन्धित सुन्दर कोटरों वाले वृक्ष के समान सुन्दर महल के सामने पहुँच कर हनुमान जी बड़े विस्मित हुए।

सातवाँ सर्ग

हनुमान जी का रावण के भवन के अन्दर सोयी हुई सुन्दर स्त्रियों का अवलोकन करना।

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम्।
सर्वतः परिचक्राम हनूमानरिसूदनः।। १।।
उत्तमं राक्षसावासं हनुमानवलोकयन्।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।। २।।
चतुर्विषाणैर्द्विरदैस्त्रिविषाणैस्तथैव च।
परिक्षिप्तमसम्बाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः।। ३।।
राक्षसीभिश्च पत्नीभी रावणस्य निवेशनम्।
आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्याभिरावृतम्।। ४।।

विशाल नेत्रों वाली सीता की खोज करते हुए शत्रुओं का दमन करने वाले हनुमान जी वहाँ रावण के भवन में सब तरफ घूमे। राक्षसों के उस उत्तम आवास में देखते हुए वे सौभाग्यशाली हनुमान रावण के अपने घर में पहुँचे। उस विस्तृत भवन को चार दाँतों वाले, तीन दाँतों वाले और दो दाँतों वाले हाथियों ने घेरा हुआ था। हथियार उठाए सैनिकों द्वारा उसकी रक्षा की जा रही थी। रावण का वह घर उसकी राक्षस जातीय पत्नियों से तथा पराक्रम से हर कर लायी हुई राजकन्याओं से भरा हुआ था।

तन्नक्रमकराकीर्णं तिमिंगिलझषाकुलम्।
वायुवेगसमाधूतं पन्नगैरिव सागरम्।। ५।।
तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थवेश्म चान्यत् सुनिर्मितम्।
बहुनिर्यूहसंयुक्त ददर्श पवनात्मजः।। ६।।
ईहामृगसमायुक्तैः कार्तस्वरहिरण्मयैः।
सुकृतैराचितं स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया।। ७।।
मेरुमन्दरसंकाशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम् ।
कूटागारैः शुभागारैः सर्वतः समलंकृतम्।। ८।।

रावण का वह महल नाकों और मगरमच्छों से व्याप्त, तिमिंगलों और मछलियों से पूर्ण, वायुवेग से आलोडित और साँपों से भरे हुए समुद्र के समान प्रतीत हो रहा था। उस प्रासाद के बीच में एक दूसरा घर सुन्दर रीति से बना हुआ तथा बहुत से हाथियों से युक्त पवनपुत्र हनुमान ने देखा। वह घर सुन्दर रूप से बनायी गयी भेड़ियों की आकृतियों से खचित सोने के सुनहले खम्बों से युक्त अपनी कान्ति से जगमगा सा रहा था। वह भवन सुमेरु और मन्दराचल के समान ऊँचे, आकाश, में रेखा सी खींचते हुए गुप्त गृहों और मंगलगृहों से सब तरफ अलंकृत था।

जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फाटिकैरपि।
इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रवरवेदिकम् ।। ९।।
विद्रुमेण विचित्रेण मणिभिश्च महाधनैः।
निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिस्तलेनाभिविराजितम्।। १०।।
मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम्।
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम्।। ११।।
मुक्तावज्रप्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि।

वह भवन सुनहरे और स्फटिक पत्थर की जालियों और झरोखों वाला था। उसमें इन्द्रनील और महानील मणियों की श्रेष्ठ वेदियाँ बनी हुई थीं। उसका फर्श विचित्र मूँगे बहुमूल्य मणियों और अनुपम मोतियों से सुशोभित था। उसमें मणियों की सीढ़ियाँ थीं, और उसमें सोने की जालियाँ लगी हुई थीं। उसमें फर्श स्फटिक पत्थर से बने हुए थे, जिनमें हाथीदाँत, मोती, हीरे, प्रवाल, सोने और चाँदी के द्वारा अनेक तरह की आकृतियाँ बनाई गयी थीं।

विभूषितां मणिस्तम्भैः समन्तात् सुविभूषितैः।। १२।।
स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं सम्प्रस्थितामिव।
महत्या कुथयाऽऽस्तीर्णां पृथिवीलक्षणाङ्कया।। १३।।
परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोऽधिपनिषेविताम्।
धूम्रामगुरुधूपेन विमलां हंसपाण्डुराम्।। १४।।
प्रध्यायत इवापश्यत् प्रदीपांस्तत्र काञ्चनान्।
धूर्तानिव महाधूर्तैर्देवनेन पराजितान्।। १५।।
दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च।
अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत।। १६।।

वह शाला सब तरफ से सुसज्जित मणियों के खम्बों से सुशोभित थी। अपने उन ऊँचे खम्बों से वह मानो आकाश को उड़ती हुई सी प्रतीत होती थी। उसमें पृथिवी को लक्षित करने वाले वन पर्वत आदि चिह्नों से अंकित एक विशाल कालीन बिछा हुआ था। राक्षसराज उसमें निवास करता था, उसमें बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे, हंस के समान सफेद और विमल वह शाला अगर और धूप के धूँए से धूमिल सी दिखाई देती थी। उन्होंने वहाँ सुनहे दीपकों को एक टक जलते हुए देखा। वे ऐसे लग रहे थे जैसे जूए में बड़े खिलाड़ी से हारे हुए छोटे खिलाड़ी चिन्ता मग्न हो ध्यान लगाए बैठे हों। उन्होंने दीपों के प्रकाश, रावण के तेज और आभूषणों की चमक के द्वारा उस शाला को जलता हुआ सा अनुभव किया।

ततोऽपश्यत् कुथासीनं नानावर्णाम्बरस्रजम्।
सहस्रं वरनारीणां नानावेषविभूषितम्।। १७।।
परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशंगतम्।
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ प्रसुप्तं बलवत् तदा।। १८।।
तत् प्रसुप्तं तिरुरुचे निःशब्दान्तरभूषितम्।
निःशब्दहंसभ्रमरं यथा पद्मवनं महत्।। १९।।
तासां संवृतदान्तानि मीलिताक्षीणि मारुतिः।
अपश्यत् पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम्।। २०।।

इसके बाद उन्होंने कालीन पर विद्यमान बहुत सारी अनेक रंगों के वस्त्र तथा मालाओं को धारण करने वाली उत्तम स्त्रियों को देखा, जो तरह-तरह वे वेशों से विभूषित थीं। वे क्रीड़ा से निबट कर मद्यपान के मद और निद्रा के वशीभूत हो कर आधी रात बीत जाने के कारण गाढ़ी नींद में सो गयीं थीं। वह सोया हुआ स्त्रियों का समूह, जो अब आभूषणों की खनखनाहट के बिना था, कमलों के उस महान वन के समान सुशोभित हो रहा था, जहाँ हँस और भ्रमरों ने बोलना बन्द कर दिया हो। पवनपुत्र हनुमान ने उन स्त्रियों के कमलों की सी गन्ध वाले मुखों को देखा, जिनके दाँत ढके हुए थे और नेत्र मुँदें हुए थे।

प्रबुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये।
पुनः संवृतपत्राणि रात्राविव बभुस्तदा।। २१।।
सा तस्य शुशुभे शाला ताभिः स्त्रीभिर्विराजिता।
शरदीव प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिशोभिता।। २२।।
स च ताभिः परिवृतः शुशुभे राक्षसाधिपः।
यथा ह्युडुपतिः श्रीमांस्ताराभिरिव संवृतः।। २३।।
व्यावृत्तकचपीनस्रक्प्रकीर्णवरभूषणाः ।
पानव्यायामकालेषु निद्रोपहतचेतसः।। २४।।

उनके वे मुख जो पिछली रात्रि के बीतने पर दिन में खिले हुए कमल के समान हो रहे थे। अब वे रात्रि में फिर बन्द कमलों के समान शोभित हो रहे थे। रावण की वह शाला उन स्त्रियों के कारण जगमगाती हुई सी ऐसी सुशोभित हो रही थी, जैसे शरद ऋतु में निर्मल आकाश तारों से सुशोभित होता है। वह राक्षसराज रावण भी उन स्त्रियों से घिरा हुआ वैसे ही सुशोभित हो रहा था जैसे कान्तिमान चन्द्रमा तारिकाओं से घिरकर शोभा पाता है। मद्यपान के पश्चात् नृत्यक्रीडा आदि व्यायाम के समय जिनके बाल बिखर गये थे, मालाएँ छिन्न भिन्न हो गयीं थीं और उत्तम आभूषण खिसक गये थे, अब निद्रा में अचेत हो कर पड़ी हुईं थीं।

व्यावृत्ततिलकाः काश्चित् काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुराः।
पार्श्वे गलितहाराश्च काश्चित् परमयोषितः।। २५।।
मुक्ताहारवृताश्चान्याः काश्चित् प्रस्रस्तवाससः।
व्याविद्धरशनादामाः किशोर्य इव वाहिताः।। २६।।
अकुण्डलधराश्चान्या विच्छिन्नमृदितस्रजः।
गजेन्द्रमृदिताः फुल्ला लता इव महावने।। २७।।
चन्द्रांशुकिरणाभाश्च हाराः कासांचिदुद्गताः।
हंसा इव बभुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम्।। २८।।

उनमें से किसी के तिलक पुँछ गये थे, किन्ही के नूपुर पैरों से निकल कर दूर पड़े थे और किन्हीं के हार टूट कर उनकी बगल में पड़े हुए थे। किन्हीं के मोतियों के हार टूट जाने के कारण उनके मोती उनके चारों तरफ बिखरे हुए थे। किन्हीं के वस्त्र खिसक गये थे, किन्हीं की मेखलाओं की लड़ें टूट गयीं थीं, वे बोझा ढोकर थकी हुई नई बछेड़ियों के समान लग रहीं थीं। किन्हीं के कुण्डल गिर गये थे, किन्हीं की पुष्पमालाएँ टूटी और मसली हुई थीं। वे महानवन में गजराज के द्वारा कुचली गयीं फूली हुई लताओं के समान

जान पड़ती थीं। किन्ही स्त्रियों के चन्द्रमा की किरणों के समान चमकदार और उनके स्तनों के बीच में उभरे हुए हार सोये हुए हंस के समान प्रतीत हो रहे थे।

अपरासां च वैदूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः।
हेमसूत्राणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन्।।२९।।
हंसकारण्डवोपेताश्चक्रवाकोपशोभिताः।
आपगा इव ता रेजुर्जघनैः पुलिनैरिव।।३०।।
मृदुष्वङ्गेषु कासांचित् कुचाग्रेषु च संस्थिताः।
बभूवुर्भूषणानीव शुभा भूषणराजयः।।३१।।
अंशुकान्ताश्च कासांचिन्मुखमारुतकम्पिताः।
उपर्युपरि वक्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः।।३२।।

दूसरी स्त्रियों के स्तन पर पड़े वैदूर्य मणि के हार जलकाक नाम के पक्षी के समान और अन्य तीसरी स्त्रियों के स्तनों पर पड़े हुए सोने के हार चक्रवाक के समान लग रहे थे। इस प्रकार अपने उन हारों से वे स्त्रियाँ नदियों के समान सुशोभित हो रहीं थीं जिनके जघन प्रदेश ही उनके किनारे थे। किन्हीं स्त्रियों के कुचाग्रों और कोमल अंगों पर उभरे हुए आभूषणों के चिह्न ही भूषणों के समान लग रहे थे। किन्हीं स्त्रियों के मुख पर पड़े हुए उनके वस्त्रों के छोर उनके मुख की वायु से कम्पित हो कर मुख के ऊपर बार-बार हिल रहे थे।

ताः पताका इवोद्धूताः पत्नीनां रुचिप्रभाः।
नानावर्णसुवर्णानां वक्त्रमूलेषु रेजिरे।।३३।।
ववल्गुश्चात्र कासांचित् कुण्डलानि शुभार्चिषाम्।
मुखमारुतसंकम्पैर्मन्दं मन्दं च योषिताम्।।३४।।
रावणाननशङ्काश्च काश्चिद् रावणयोषितः।
मुखानि च सपत्नीनामुपाजिघ्रन् पुनः पुनः।।३५।।
बाहूनुपनिधायान्याः पारिहार्यविभूषितान्।
अंशुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र शिश्यिरे।।३६।।

उन अनेक प्रकार के रंगरूप वाली सुन्दरी रावण पत्नियों के मुखों पर हिलते हुए वे साड़ियों के किनारे सुन्दर पताकाओं के समान सुशोभित हो रहे थे। किन्हीं सुन्दर कान्ति वाली स्त्रियों के कुण्डल भी उनके मुख की वायु से कंपित हो कर धीरे-धीरे हिल रहे थे। कुछ रावण की पत्नियाँ अपनी बगल में सोई हुई अपनी सौतों के ही मुख को रावण का मुख समझ कर बार-बार सूँघ रहीं थीं। कुछ स्त्रियाँ अपने आभूषणों से भूषित हाथों का तकिया बना कर तथा दूसरी अपने सुन्दर वस्त्रों का तकिया बना कर वहाँ सो रहीं थीं।

अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्याः काचित् पुनर्भुजम्।
अपरा त्वङ्कमन्यस्यास्तस्याश्चाप्यपरा कुचौ।।३७।।
ऊरुपार्श्वकटीपृष्ठमन्योन्यस्य समाश्रिताः।
परस्परनिविष्टाङ्ग्यो मदस्नेहवशानुगाः।।३८।।
अन्योन्यस्याङ्गसंस्पर्शात् प्रीयमाणाः सुमध्यमाः।
एकीकृतभुजाः सर्वाः सुषुपुस्तत्र योषितः।।३९।।
अन्योन्यभुजसूत्रेण स्त्रीमाला ग्रथिता हि सा।
मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तषट्पदा।।४०।।

एक स्त्री दूसरी की छाती पर सिर रख कर तथा दूसरी उसकी एक बाँह को तकिया बना कर सोई हुई थी। एक स्त्री दूसरी की गोद में सिर रख कर तथा दूसरी उसके कुचों का तकिया बना कर सो रही थी। मद्य के नशे में मस्त हुई उन स्त्रियों ने एक दूसरी के जाँघ, बगल, कमर, पीठ आदि का सहारा लिया हुआ था और वे एक दूसरी से लिपटी पड़ी हुई थीं। वे सुन्दर कमर वाली स्त्रियाँ एक दूसरी के अंग स्पर्श से आनन्द का अनुभव करती हुईं, एक दूसरी से बाँह मिलाये वहाँ सो रही थीं। एक दूसरे के हाथ रूपी सूत्र में गुँथी हुई वह स्त्रियों की माला धागे में पिरोई मस्त भ्रमरों वाली माला के समान सुशोभित हो रही थी।

लतानां माधवे मासि फुल्लानां वायुसेवनात्।
अन्योन्यमालाग्रथितं संसक्तकुसुमोच्चयम्।।४१।।
प्रतिवेष्टितसुस्कन्धमन्योन्यभ्रमराकुलम्।
आसीद् वनमिवोद्धूतं स्त्रीवनं रावणस्य तत्।।४२।।
उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा।
विवेकः शक्य आधातुं भूषणाङ्गाम्बरस्रजाम्।।४३।।
रावणे सुखसंविष्टे ताः स्त्रियो विविधप्रभाः।
ज्वलन्तः काञ्चना दीपाः प्रेक्षन्तो निमिषा इव।।४४।।

जैसे वसन्तऋतु में वायु के कारण खिली हुई लताएँ एक दूसरी से माला के समान गुँथ जाती हैं, उनके फूलों के समूह तथा भ्रमरों से परिपूर्ण शाखाएँ भी एक दूसरी से मिल एक हो जाती है, वन में एकाकार हुई और कम्पित होती हुई उन लताओं के समान रावण का वह स्त्री रूपी वन भी उसी प्रकार का हो रहा था। यद्यपि उन स्त्रियों के भूषण, अंग, वस्त्र और मालाएँ उनके उचित स्थानो पर ही थे, फिर भी उनके परस्पर मिल जाने के कारण यह स्पष्ट था कि उनके वस्त्रादि की पहचान करना असम्भव हो गया था। रावण के सुख पूर्वक सोये हुए होने के कारण उनकी उन अनेक प्रकार के सौंदर्यवाली स्त्रियों को वे जलते हुए स्वर्णदीपक मानो एक टक देख रहे थे।

आठवाँ सर्ग

वहाँ हनुमान जी का अन्तःपुर में सोये हुए रावण तथा उसकी रानियों को देखना और मन्दोदरी को सीता समझकर प्रसन्न होना।

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम्।
अवेक्षमाणो हनुमान् ददर्श शयनासनम्।। १।।
तस्य चैकतमे देशे दिव्यमालोपशोभितम्।
ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसंनिभम्।। २।।
जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रभानोः समप्रभम्।
अशोकमालाविततं ददर्श परमासनम्।। ३।।
गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम्।
परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिनसंवृतम् ।। ४।।
दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम्।

वहाँ निरीक्षण करते हुए हनुमान जी ने एक स्फटिक से निर्मित, रत्नों से भूषित, अलौकिक रूप से सुन्दर पलंग को देखा। उस पलंग के एक भाग पर उन्होंने दिव्य मालाओं से सुशोभित, चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण के छत्र को देखा वह, वह उत्तम पलंग सुवर्ण जटित, अग्नि के समान प्रकाशित और अशोक के फूलों की मालाओं से सजाया हुआ था, उस पर उत्तम कोटि का बिछौना बिछा हुआ था, उस पर भेड़ का चमड़ा मँढ़ा हुआ था और सुन्दर मालाओं की लड़ों से सब तरफ से सजाया हुआ था।

तस्मिञ्जीमूतसंकाशं प्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलम्।। ५।।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम्।
लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना।
संध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम्।। ६।।
सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम्।
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम्।। ७।।
प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम्।
पीत्वाप्युपरतं चापिददर्श स महाकपिः।। ८।।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम्।

उस कान्तिमान पलंग पर महान वानर हनुमान ने, मेघ के समान श्यामवर्ण, जगमगाते हुए कुण्डलों को धारण किये हुए, सुगन्धित लाल चन्दन का लेप अपने शरीर के अंगों पर किये हुए, साँयकाल के समय अरुणिमा से युक्त आकाश की तरह तथा विद्युत् से युक्त बादल की तरह शोभा शाली, राक्षसों के राजा वीर रावण को सोये हुए देखा। वह दिव्य आभूषणों से अलंकृत था। सोते हुए वह वृक्षों, वनों के समूहों के समृद्ध मन्दराचल के समान प्रतीत हो रहा था। राक्षसों को सुख देने वाला और राक्षस कन्याओं का प्रिय वह रावण मद्यपान कर उस समय आराम कर रहा था।

शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनं शुभम्।। ९।।
गन्धहस्तिनि संविष्टे यथा प्रस्रवणं महत्।
काञ्चनाङ्गदसंनद्धौ ददर्श स महात्मनः।। १०।।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ।
पीनौ समसुजातांसौ सङ्गतौ बलसंयुतौ।। ११।।
सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीयकलक्षितौ।
संहतौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ।। १२।।
विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशीर्षाविवोरगौ।

राक्षसेन्द्र रावण के उस पलंग पर सोये हुए होने से ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे विशाल प्रस्रवण पर्वत पर कोई मस्त हाथी सो रहा हो। उन्होंने महात्मा राक्षस राज की इन्द्रध्वज के समान फैलायी हुई और स्वर्ण के बाजूबन्दों से सुशोभित दो भुजाओं को भी देखा। वे भुजाएँ मोटी, समान तथा सुन्दर कन्धों वाली, सुदृढ़ और बल सम्पन्न थीं। उनमें उत्तम लक्षण वाले अंगूठे और नाखून थे। अंगुलियों में सुन्दर अँगूठियाँ जगमगा रहीं थीं। वे भुजाएँ सुगठित, परिघ के आकार की गोल और हाथी की सूँड के समान थीं। उस श्वेत पलंग पर फैलायी हुई वे पाँच फनों वाले साँपों के समान प्रतीत हो रहीं थीं।

शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना।। १३।।
चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलंकृतौ।
यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ ।। १४।।
ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रुषिताविव।। १५।।
ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यामुभाभ्यां राक्षसेश्वरः।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः।। १६।।

वे दोनों भुजाएँ खरगोश के रक्त के समान लाल शीतल, सुगन्धित, और बहुमूल्य चन्दन के लेप से अलंकृत की हुई थीं और वे यक्ष, नाग, गन्धर्व, देवता और दानवों को युद्ध में रुलाने वालीं थीं। पलंग पर फैलायी हुई उन दोनों भुजाओं को वानर हनुमान ने

मन्दराचल पर्वत की गुफा में सोये हुए दो क्रुद्ध अजगरों के समान समझा। उन दोनों पूरे आकार की भुजाओं के कारण राक्षसेश्वर रावण दो शिखरों वाले मन्दराचल के समान लग रहा था।

मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजिता।
मुकुटेनापवृत्तेन कुण्डलोज्ज्वलिताननम्।। १७।।
रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना।
पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजिता।। १८।।
महार्हेण सुसंवीतं पीतेनोत्तरवाससा।
माषराशिप्रतीकाशं निश्वसन्तं भुजङ्गवत्।। १९।।
गाङ्गे महति तोयान्ते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम्।
चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमानं चतुर्दिशम्।। २०।।
प्रकाशीकृतकसर्वाङ्गं मेघं विद्युद्गणैरिव।

मुक्तामणियों से जटित स्वर्ण मुकुट से, जो इस समय अपने स्थान से हटा हुआ था, सुशोभित उसका मुख कुण्डलों के द्वारा जगमगा रहा था। लाल चन्दन का लेप किये हुए, उसकी मोटी, चौड़ी और विशाल छाती हार के द्वारा सुशोभित हो रही थी, उसने पीले रंग की बहुमूल्य चादर ओढ़ रही थी। साँप के समान साँस लेता हुआ वह उड़द के ढेर के समान और गंगा के जल में सोये हुए हाथी के समान प्रतीत हो रहा था। उसके चारों तरफ चार सोने के दीपक जल रहे थे जिनसे प्रकाशित किये गये सारे शरीर से वह बिजलियों से प्रकाशित बादल के समान लग रहा था।

पदमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः।। २१।।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे।
शशिप्रकाशवदना वरकुण्डलभूषणाः।। २२।।
वराभरणधारिण्यो निषण्णा ददृशे कपिः।
मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः।। २३।।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः।

उन्होंने उस पत्नियों के प्रिय महात्मा राक्षसराज के घर में उसके पैरों के आसपास सोई हुई उसकी पत्नियों को भी देखा। वे स्त्रियाँ चन्द्रमा के समान प्रकाशित मुखवाली और सुन्दर कुण्डलों से सुशोभित थीं। उन सोती हुई स्त्रियों ने सुन्दर आभूषण धारण किये हुए थे। राक्षसराज की वे पतली कमरवालीं स्त्रियाँ मद और क्रीडा से थक कर जहाँ-जहाँ जगह मिली वहीं वहीं सो गयीं थीं।

काचिद् वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता सम्प्रकाशते।। २४।।
महानदीप्रकीर्णेव नलिनी पोतमाश्रिता।
अन्या कक्षगतेनैव मड्डुकेनासितेक्षणा।। २५।।
प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला।
पटहं चारुसर्वाङ्गी न्यस्य शेते शुभस्तनी।। २६।।
चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव कामिनी।
विपञ्चीं परिगृह्यान्या नियता नृत्यशालिनी।। २७।।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी।

उनमें से कोई स्त्री अपनी वीणा का आलिंगन कर सोती हुई ऐसी प्रतीत हो रही थी, जैसे किसी महान नदी में पड़ी हुई नलिनी ने किसी नाव का सहारा लिया हुआ हो। एक दूसरी काली आँखों वाली स्त्री बगल में दबाये हुए मड्डुक (एक वाद्य विशेष) के साथ सोती हुई ऐसी लग रही थी जैसे अपने छोटे बच्चे को गोद में लिये हुए पुत्रवत्सला जननी सो रही हो। कोई अच्छे स्तन वाली पत्नी पटह नाम के वाद्य यन्त्र को अपने साथ रख कर सोती हुई ऐसी प्रतीत हो रही थी, जैसे मानो चिरकाल के पश्चात अपने प्रिय को पा कर उसे अपनी छाती से लगा कर सो रही हो। कोई सदा नृत्य में लगी रहने वाली स्त्री अपनी विपञ्ची नाम की वीणा को अपने अंक में भर कर सो रही थी और ऐसी लग रही थी जैसे अपने पति के पास लेटी हुई हो निद्रा के वश में हो गयी हो।

अन्या कनकसंकाशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः।। २८।।
मृदङ्गं परिविद्ध्याङ्गैः प्रसुप्ता मत्तलोचना।
भुजपाशान्तरस्थेन कक्षगेन कृशोदरी।। २९।।
पणवेन सहानिन्द्या सुप्ता मदकृतश्रमा।
डिण्डिमं परिगृह्यान्या तथैवासक्तडिण्डिमा।। ३०।।
प्रसुप्ता तरुणं वत्समुपगुह्येव भामिनी।
काचिदाडम्बरं नारी भुजसम्भोगपीडितम्।। ३१।।
कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता।

एक दूसरी मतवाले लोचनों वाली अपने सुवर्ण के समान अपने मनोरम, मुलायम और मोटे अंगों से अपने मृदंग को दबा कर सो रही थी। एक पतले पेट वाली अनिन्द्य सुन्दरी जो कि नशे से थक गयी थी अपनी भुजाओं के बीच में स्थित और बगल में दबे हुए अपने पणव नाम को वाद्ययन्त्र के साथ सो रही थी। एक दूसरी स्त्री अपने डिण्डिम नाम के वाद्य यन्त्र को ले कर उससे सट कर सोई हुई ऐसे प्रतीत हो रही थी जैसे अपने बालकपुत्र को छाती से लगा कर सोई हुई हो। अपने आडम्बर नाम के वाद्ययन्त्र को अपनी भुजाओं के आलिंगन से दबाकर कोई कमल नयनी मद से मस्त हो कर सो रही थी।

कलशीमपविद्ध्यान्या प्रसुप्ता भाति भामिनी।। ३२।।
वसन्ते पुष्पशबलामालेव परिमार्जिता।
पाणिभ्यां च कुचौ काचित् सुवर्णकलशोपमौ।। ३३।।
उपगुह्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता।
अन्या कमलपत्राक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना।। ३४।।
अन्यामालिङ्ग्य सुश्रोणीं प्रसुप्ता मदविह्वला।
आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्य वरस्त्रियः।। ३५।।
निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव।

एक दूसरी स्त्री जल के घड़े को लुढ़का कर उसके जल से भीगी अवस्था में सो रही थी और ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे वसन्त ऋतु में विभिन्न प्रकार के फूलों से बनी और पानी से धुली हुई माला हो। कोई नींद के बस में हो कर अबला अपने सुनहरे कलशों के समान स्तनों को ही हाथों से दबा कर सो रही थी, एक दूसरी कमल नयनी, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली नशे में मस्त हो कर एक दूसरी सुन्दरी का आलिंगन कर सोई हुई थी। इस प्रकार वे सुन्दर स्त्रियाँ जैसे कामिनियाँ अपने प्रिय कामुकों को आलिंगन करके सोती हैं वैसे-वैसे अपने विभिन्न वाद्य यन्त्रों को छाती से और स्तनों से दबा कर सोई हुई थीं।

तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे।। ३६।।
ददर्श रूपसम्पन्नामथ तां स कपिःस्त्रियम्।
मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम्।। ३७।।
विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम्।
गौरीं कनकवर्णाभामिष्टामन्तःपुरेश्वरीम्।। ३८।।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्।
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः।। ३९।।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः।। ४०।।

उसके पश्चात् उन वानर हनुमान ने उन सबसे अलग एकान्त स्थल पर बिछी हुई सुन्दर शैया पर सोई हुई एक रूप सम्पन्न स्त्री को देखा। वह स्त्री मुक्तामणियों से जटित भूषणों से विभूषित थी और अपने सौन्दर्य से उस भवन को अलंकृत सा कर रही थी। वह उस अन्तःपुर की स्वामिनी, रावण की प्रिया गोरे और सुनहरे रंग वाली और सुन्दर सौन्दर्य वाली मंदोदरी थी। उस अलंकृत स्त्री को देख कर विशाल भुजाओं वाले पवनपुत्र हनुमान ने समझा कि यह रूप यौवन से सम्पन्न सीता है और यह समझ कर वे वानर यूथपति महान हर्ष से युक्त हो गये।

नवाँ सर्ग

यह सीता नहीं है ऐसा निश्चय होने पर पुनः हनुमान जी का पानभूमि में ढूँढना।

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः।। १।।
न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम्।। २।।
अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः।
पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः।। ३।।
सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः।
ददर्श कपिशार्दूलस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे।। ४।।

फिर उस प्रसन्नता विषयक बुद्धि को छोड़ कर वे महान वानर जब अपनी स्वाभाविक अवस्था में आये, तब वे सीता जी के विषय में दूसरे प्रकार से सोचने लगे। वे सोचने लगे कि राम से अलग हो कर वह भामिनी सीता न तो सो सकती है, न खा सकती है, न आभूषण धारण कर सकती है और न मदिरापान कर सकती है। अतः यह सीता नहीं कोई और है। ऐसा सोच कर वह वानरश्रेष्ठ सीता के दर्शन की इच्छा से फिर रावण की पानभूमि में घूमने लगे। महात्मा राक्षस पति के घर में उस पानभूमि को वानरश्रेष्ठ हनुमान ने सारी कामनाओं की पूर्ति के साधनों से युक्त देखा।

रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।
ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा।। ५।।
वराहवाध्रीणसकान् दधिसौवर्चलायुतान्।
शल्यान् मृगमयूरांश्च हनुमानन्ववैक्षत।। ६।।
कृकलान् विविधांश्छागाञ्छशकानर्धभक्षितान्।
महिषानेकशल्यांश्च मेषांश्च कृतनिष्ठितान्।। ७।।
लेह्यानुच्चावचान् पेयान् भोज्यान्युच्चावचानि च।
तथाम्ललवणोत्तंसैर्विविधै रागखाण्डवैः।। ८।।

वानर श्रेष्ठ हनुमान ने वहाँ सोने के बड़े-बड़े बर्तनों में मोर, मुर्गे, सूअर, गैंडा, साही के अभी न खाये हुए माँस देखे, जिन्हें दही और नमक मिला कर रखा गया

था। उन्होंने हरिण और मोरों के शूल पर भूने हुए माँस भी देखे। कृकल नाम के पक्षी, अनेक प्रकार के बकरे, खरगोश इनके माँस आधे खाये हुये थे। भैंसे, एक शल्य नाम की मछली और भेड़ के माँस को पका कर रखा गया था। तरह-तरह की चटनियाँ और तरह-तरह के पेय ओर खाद्य पदार्थ, उत्तम नमकीन और खट्टे पदार्थों तथा अनेक प्रकार के राग और खाण्डव नाम के भोज्य पदार्थों से युक्त उस पान भूमि को उन्होंने देखा।

महानूपुरकेयूरैरपविद्धैर्महाधनैः ।
पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि।। ९।।
कृतपुष्पोपहारा भूरधिकां पुष्यति श्रियम्।
तत्र तत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टशयनासनैः।। १०।।
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते।
शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलासवाः।। ११।।
वासचूर्णैश्च विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक् पृथक्।

वहाँ बड़े-बड़े बहुमूल्य नूपुर तथा बाजूबन्द छिटके हुए पड़े थे। पीने के पात्र लुढ़काये हुए थे और फल बिखेरे हुए थे। फूलों से सजा हुआ वह स्थान अधिक शोभा को धारण कर रहा था। जहाँ-तहाँ बिछे हुए सुदृढ़ पलंगों से वह पान भूमि बिना अग्नि के ही जलती हुई सी प्रतीत होती थी। वहाँ शर्करा से तैयार की हुई शराब, मधु से तैयार की हुई शराब, फूलों से तैयार की हुई शराब और फलों से तैयार की हुई शराबें, अलग-अलग अनेक प्रकार के सुगन्धित चूर्णों से युक्त कर रखीं हुई थीं।

संतता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः।। १२।।
हिरण्मयैश्च कलशैर्भाजनैः स्फाटिकैरपि।
जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता।। १३।।
सोऽपश्यच्छातकुम्भानि सीधोर्मणिमयानि च।
तानि तानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः।। १४।।
क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित् पीतान्यशेषतः।
क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह।। १५।।
एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः।
ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम्।। १६।।

वह स्थान अनेक प्रकार के पात्रों, सोने के कलशों, स्फटिक के पात्रों और स्वर्ण के दूसरे-दूसरे कटोरों से भरा हुआ सुशोभित हो रहा था। उन महावानर ने वहाँ सुवर्ण के और मणियों के शराब से भरे हुए भिन्न-भिन्न पात्र देखे। किसी पात्र में से आधी शराब पी ली गई थी, किसी में से सारी पी ली गयी थी और किसी में से अभी बिल्कुल भी नहीं पी गई थी। इस प्रकार महातेजस्वी वानर हनुमान ने रावण के अन्तःपुर को सारा देख लिया, पर कहीं भी सीता जी को नहीं देखा।

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः।
जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः।। १७।।
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।। १८।।
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः।। १९।।
तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चय दर्शिनी।। २०।।

फिर वहाँ उन सोती हुई स्त्रियों को देखते हुए वे महान वानर अत्यन्त भयभीत हो गये। उन्हें धर्म के उल्लंघन का भय उपस्थित हो गया। वे सोचने लगे कि सोई हुई परायी स्त्रियों के समूह को देखना मेरे धर्म का अत्यधिक लोप कर देगा। पहले कभी मैंने दूसरों की स्त्रियों पर निगाह नहीं डाली थी। दूसरे की स्त्री का हरण करने वाले इस राक्षस को भी मैंने यहीं देखा है। इसके पश्चात् उस मनस्वी के हृदय में एक दूसरी भावना उत्पन्न हुई। यह दूसरी भावना उन्हें अपने कर्तव्य का निश्चय कराने वाली थी, क्योंकि उनका हृदय अपने लक्ष्य की प्राप्ति में स्थिर था।

कामं दृष्टा मयासर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते।। २१।।
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्।। २२।।
नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम्।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे।। २३।।

उन्होंने सोचा कि यह ठीक है कि मैंने रावण की स्त्रियों को निश्शंक हो कर सोते हुए देखा है, पर उससे मेरे मन में कोई विकार नहीं आया। मन ही इन्द्रियों को अच्छे और बुरे कार्यों में लगाने वाला है। वह मेरा मन स्थिर है। इसके अतिरिक्त सीता को दूसरी जगह खोजा भी नहीं जा सकता स्त्री की खोज स्त्रियों में ही की जा सकती है।

यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत् परिमार्गते।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम्।। २४।।
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया।
रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी।। २५।।

स भूयः सर्वतः श्रीमान् मारुतिर्यत्नमाश्रितः।
आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे।। २६।।

जिस प्राणी की जो जाति होती है, उसे उसी जाति के प्राणियों में ढूँढा जाएगा। खोई हुई स्त्री को हरिणियों के बीच में नहीं ढूँढा जा सकता। इसलिये मैंने रावण के इस अन्तःपुर में शुद्ध हृदय से खोज की है। किन्तु यहाँ सीता जी नहीं दिखाई दीं। इसके पश्चात् वे श्रीमान् पवनपुत्र फिर प्रयत्नशील हो कर उस पानभूमि को छोड़ कर दूसरे स्थानों पर खोज करने लगे।

दसवाँ सर्ग

सीता जी के मरण की आशंका से हनुमान जी का चिन्तित होना, फिर उत्साह का आश्रय लेकर अन्य स्थानों में उनकी खोज करना और कहीं भी पता न लगने पर पुनः चिन्तित होना।

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो
लतागृहांश्चित्रगृहान् निशागृहान्।
जगाम सीतां प्रतिदर्शनोत्सुको
न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम्।। १।।

रावण के महल के अन्दर विद्यमान हनुमान जी सीता को देखने के लिये उत्सुक होकर, वहाँ के लतागृहों, चित्र शालाओं और रात्रि विश्राम गृहों में गये, पर उन्होंने उस सुन्दरी सीता को कहीं नहीं देखा।

स चिन्तयामास ततो महाकपिः
प्रियामपश्यन् रघुनन्दनस्य ताम्।
ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा न मे
विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली।। २।।

तब वे महा वानर श्रीराम की उस प्रिया सीता को न पा कर सोचने लगे कि इतना ढूँढने पर भी जो सीता नहीं मिल पा रही है, तो निश्चय ही वह अब जीवित नहीं है।

सा राक्षसानां प्रवरेण जानकी
स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती।
अनेन नूनं प्रति दुष्टकर्मणा
हता भवेदार्यपथे परे स्थिता।। ३।।

आर्यों के मार्ग में विद्यमान, अपने शील की रक्षा में तत्पर उस जानकी को उसके प्रति दुष्ट कर्म में तत्पर इस राक्षसों के राजा ने अवश्य ही मार दिया होगा।

सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्यपौरुषं
विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम्।
न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगा गतिः
सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः।। ४।।

सीता को न देख कर और अपने पौरुष के फल को न पा कर तथा वानरों के साथ देर तक घूम फिर लेने पर मेरा अब सुग्रीव के पास जाने का मार्ग बन्द हो हो गया है। क्योंकि वह वानर बलवान और भयानक दण्ड देने वाला है।

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः।। ५।।
किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद् वदस्व नः।। ६।।
अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम्।
ध्रुवं प्रायमुपासिष्ये कालस्य व्यतिवर्तने।। ७।।
अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम्।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः।। ८।।

रावण की सारी स्त्रियों को देख लिया, उसका सारा अन्तःपुर देख लिया, पर वह साध्वी सीता दिखाई नहीं दी। मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया। जब मैं जाऊँगा तो वे सारे वानर मिल कर मुझसे क्या कहेंगे? वे पूछेंगे कि हे वीर! तुमने वहाँ जा कर क्या किया? यह हमें बताओ। उस जनकपुत्री को न देख कर मैं उनसे क्या कहूँगा? निश्चित समय के व्यतीत होने पर अब निश्चय ही मैं मरणान्त उपवास करूँगा। पर यह भी ठीक नहीं है क्योंकि हताश न होना ही समृद्धि का कारण है। उत्साह ही परम सुख की प्राप्ति करता है, इसलिये हताश न हो कर पुनः वहाँ खोज करूँगा जहाँ अभी तक खोज नहीं की है।

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषुप्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः।। ९।।
तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम्।
अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान् रावणपालितान्।। १०।।

इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे।
भूमीगृहांश्चैत्यगृहान् गृहातिगृहकानपि॥ ११॥
उत्पतन् निपतंश्चापि तिष्ठन् गच्छन् पुनः क्वचित्।
अपवृण्वंश्च द्वाराणि कपाटान्यवघट्टयन्।
प्रविशन् निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्निव॥ १२॥

उत्साह ही मनुष्य को सदा सारे कार्यों में लगाता है और प्राणी जो कुछ कार्य करते हैं, उनमें उन्हें उत्साह के कारण ही सफलता मिलती है, इसलिये अब मैं और अधिक उत्साह के साथ प्रयत्न करूँगा और अभी नहीं देखे गये और रावण के द्वारा सुरक्षित स्थानों पर खोज करूँगा। ऐसा सोच कर उन्होंने पुनः खोजना आरम्भ कर दिया। वे तहखानों, मन्दिरों, घरों के अन्दर बने हुए विलास घरों में भी खोज करने लगे। वे किवाड़ों को खोलते और बन्द कर देते थे। घरों में प्रवेश करते और फिर वहाँ से निकल जाते थे। सीढ़ियों में चढ़ जाते और फिर वहाँ से उतर जाते थे।

सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः।
प्राकारान्तरवीथ्यश्च वेदिकाश्चैत्यसंश्रयाः॥ १३॥
श्वभ्राश्च पुष्करिण्यश्च सर्वं तेनावलोकितम्।
राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तथा॥ १४॥
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा।
रूपेणाप्रतिमा लोके परा विद्याधरस्त्रियः॥ १५॥
दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी।
नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः॥ १६॥
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा।

उन महान वानर ने सभी स्थानों में भ्रमण किया। उन्होंने पर कोटे के भीतर की गलियाँ, वृक्षों के नीचे बने हुए चबूतरे, गड्ढे और पुष्करिणी सारे स्थान उन्होंने देख लिये। उन्होंने अनेक प्रकार की आकृतियों वाली विरूप और भयानक आकृतिवाली राक्षसियाँ भी देखीं पर उन्होंने जनकपुत्री को नहीं देखा। हनुमान जी ने सौन्दर्य में अप्रतिम विद्याधरों की स्त्रियाँ भी देखीं, पर वहाँ उन्होंने श्रीराम की प्रिया सीता को नहीं देखा। पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली सुन्दर नागकन्याएँ भी हनुमान जी ने देखीं, पर उन्होंने वहाँ जनकपुत्री सीता को नहीं देखा।

सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः॥ १७॥
विषसाद महाबाहुर्हनूमान् मारुतात्मजः।
उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च॥ १८॥
व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागतः।

उन महाबाहु पवनपुत्र हनुमान ने जब दूसरी अन्य सुन्दर स्त्रियों को भी देखा, पर सीता को नहीं देखा, तब वे उदास हो गये। वानर वीरों के उद्योग और अपने द्वारा किये गये सागर लंघन के कार्य को व्यर्थ देख कर वे पवनपुत्र पुनः चिन्ता में पड़ गये।

ग्यारहवाँ सर्ग

सीता जी के नाश की आशंका से हनुमान जी की चिन्ता, पुनः खोजने का विचार करना और अशोक वाटिका में ढूँढने के विषय में तरह-तरह की बातें सोचना।

भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम्॥ १॥
न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम्।
पल्वलानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा॥ २॥
लोलिता वसुधा सर्वा न च पश्यामि जानकीम्।

जानकी को न देख पाने पर हनुमान जी मन ही मन कहने लगे कि मैंने श्रीराम का प्रिय करने के लिये लंका को खूब अच्छी तरह से देख लिया, पर सर्वांग सुन्दरी वैदेही को नहीं देख पाया। मैंने यहाँ के छोटे बड़े तालाब, सरोवर और नदियाँ और यहाँ की सारी भूमि देख ली, पर सीता जी नहीं दिखाई दीं।

उपर्युपरि सा नूनं सागरं क्रमतस्तदा॥ ३॥
विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा।
आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः॥ ४॥
अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी।
अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा॥ ५॥
अदुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भविष्यति।

निश्चय ही रावण जब उन्हें ले कर आकाश मार्ग से सागर को पार कर रहा होगा तब छटपटाती हुई वह जनकपुत्री समुद्र में गिर पड़ी होगी अथवा उस दुष्ट से अपने शील की रक्षा में लगी हुई वह सहायक रहित तपस्विनी सीता रावण के द्वारा खा ली गयी है या उस साध्वी काली आँखों वाली को दुष्ट स्वभाव वाली राक्षस राज की पत्नियों ने ही खा लिया होगा।

सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमं पद्मपत्रनिभेक्षणम्।। ६।।
रामस्य ध्यायती वक्त्रं पञ्चत्वं कृपणा गता।
हा राम लक्ष्मणेत्येवं हायोध्ये चेति मैथिली।। ७।।
विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति।
अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने।। ८।।
भृशं लालप्यते बाला पञ्जरस्थेव सारिका।

हाय वह दयनीया सीता पूर्ण चन्द्रमा के समान राम के कमलनयन मुख का ध्यान करती हुई मृत्यु को प्राप्त हो गयी। वैदेही ने हा राम, हा लक्ष्मण, हा अयोध्या, ऐसा कहते हुए बहुत प्रकार से विलाप करते हुए अपने शरीर को छोड़ा होगा अथवा मैं समझता हूँ कि वह रावण के किसी गुप्त गृह में रखी हुई, पिंजरे में बन्द मैना के समान अत्यधिक आर्तनाद करती होगी।

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा।। ९।।
रामस्य प्रियभार्यस्य च निवेदयितुं क्षमम्।
निवेद्यमाने दोषः स्याद् दोषः स्यादनिवेदने।। १०।।
कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे।
अस्मिन्नेवंगते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम्।। ११।।
भवेदिति मतिं भूयो हनुमान् प्रविचारयन्।

जनकपुत्री चाहे छिपा कर रखी गयी हो, चाहे मार दी गयी हो, या स्वयं मर गयी हो, पत्नी से प्रेम करने वाले श्रीराम को यह समाचार देना उचित नहीं होगा। इस समाचार को कहना भी दोषपूर्ण है और न कहना भी दोषयुक्त है, ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिये, यह निश्चय करना बड़ा कठिन प्रतीत हो रहा है। इस समय ऐसी स्थिति में क्या कार्य करना उचित होगा, इस बारे में हनुमान जी बार-बार विचार करने लगे।

यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः।। १२।।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति।
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति।। १३।।
प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम्।
किं वा वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो वापि संगताः।। १४।।
किष्किन्धाममनुसम्प्राप्तं तौ वा दशरथात्मजौ।

यदि मैं सीता को बिना देखे ही यहाँ से किष्किंधा को चला जाऊँगा तो मेरा क्या पुरुषार्थ होगा? मेरा समुद्र का लंघन, लंका में प्रवेश करना, और राक्षसों को देखना सब व्यर्थ हो जायेगा। वे वानर मिल कर मुझसे क्या कहेंगे? किष्किंधा जाने पर वे दशरथ के दोनों पुत्र और सुग्रीव भी मुझसे क्या कहेंगे।

गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः।। १५।।
न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम्।
परुषं दारुणं तीक्ष्णं क्रूरमिन्द्रियतापनम्।। १६।।
सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति।
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम्।। १७।।
भृशानुरक्तमेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः।

यदि मैं उन ककुत्स्थवंशी राम से जा कर यह कठोर वचन कहूँगा कि सीता नहीं मिली, तो वे अपने जीवन का त्याग कर देंगे। इस भीषण रूप से कठोर तीखे, क्रूर और इन्द्रियों को तपाने वाले सीता विषयक दुर्वचन को सुन कर वे जीवित नहीं रहेंगे। तब इन श्रीराम को संकट में पड़ा हुआ और मृत्यु के लिये संकल्प करते देख उनमें अत्यधिक अनुरक्त और मेधावी लक्ष्मण भी जीवित नहीं रहेंगे।

सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः।। १८।।
नहि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना।
मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ।। १९।।
आशया तौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः।
हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः।। २०।।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम्।
उपविष्टस्य वा सम्यग् लिङ्गिनं साधयिष्यतः।। २१।।
शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च।

इसलिये मैं यहाँ से किष्किंधा को नहीं जाऊँगा। बिना मैथिली के मैं सुग्रीव को देखने में समर्थ नहीं हूँ। मेरे वहाँ न जाने पर यहीं ठहर जाने पर वे दोनों धर्मात्मा महारथी तथा वेगवान वानर आशा के कारण अपने प्राणों को धारण किये रहेंगे। जनकपुत्री का दर्शन न होने पर वृक्ष के नीचे रहने वाला वानप्रस्थी बन जाऊँगा। जो हाथ में अपने आप खाद्य पदार्थ आ जायेगा या दूसरे की इच्छा से मेरे मुख में पहुँच जायेगा, उसी पर निर्भर करूँगा, या लिंगशरीरधारी आत्मा की सिद्धि के लिये बैठ जाऊँगा, और उसी अवस्था में मेरे शरीर को कौवे और जन्तु खा लेंगे।

तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः।। २२।।
नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वासितेक्षणाम्।
यदि तु प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम्।। २३।।
अङ्गदः सहितः सर्वैर्वानरैर्न भविष्यति।
विनाशे बहवो दोषा जीवन् प्राप्नोति भद्रकम्।। २४।।
तस्मात् प्राणान् धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः।

अब मैं नियम पूर्वक वृक्ष के नीचे निवास करने वाला तपस्वी बन जाऊँगा, पर उस काली आँखों वाली सीता को देखे बिना यहाँ से नहीं जाऊँगा। पर इस जीवन का नाश करने में बहुत दोष हैं। जीवित रहते हुए मनुष्य कभी कल्याण को अवश्य प्राप्त करता है। इसलिये मैं अपने प्राणों को धारण किये रहूँगा। जीवित रहने पर अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति कभी न कभी अवश्य होती है।

ततो विक्रममाससाद्य धैर्यवान् कपिकुञ्जरः।। २५।।
रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम्।
काममस्तु हता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति।। २६।।
इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्य ताम्।
ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः।। २७।।
यावत् सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम्।
तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः।। २८।।
अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा।
इमामधिगमिष्यामि नहीयं विचिता मया।। २९।।

इसके पश्चात् उस धैर्यवान् वानर श्रेष्ठ ने पराक्रम का सहारा ले कर सोचा कि– या मैं इस महाबली रावण को मार देता हूँ, भले ही सीता के प्राणों का हरण हो गया हो, पर वैर का बदला तो चुक ही जायेगा। इस प्रकार सीता को न पाकर चिन्ता में डूबे हुए हनुमान जी जिनकी आत्मा सीता जी के ध्यान और शोक में डूबी हुई थी, पुनः इस प्रकार सोचने लगे कि जब तक मैं राम की यशस्विनी पत्नी सीता को न प्राप्त कर लूँ, तब तक इस लंका नगरी में बार-बार खोज करूँगा। यह बड़े-बड़े वृक्षों वाली विशाल अशोक वाटिका है, इसको मैंने अभी तक नहीं देखा है, अतः अब इसमें जा कर खोज करूँगा।

बारहवाँ सर्ग

हनुमान जी का अशोक वाटिका में प्रवेश करके उसकी शोभा देखना और एक शीशम के वृक्ष पर छिप कर वहीं से सीता का अनुसन्धान करना।

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम्।
ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम्।। १।।
विहगैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम्।
उदितादित्यसंकाशां ददर्श हनुमान् बली।। २।।
वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम्।। ३।।
प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम्।
मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम्।। ४।।

तत्पश्चात् थोड़ी देर तक सोच विचार कर तथा मन में सीता जी का चिन्तन कर हनुमान जी धनुष से छूटे हुए बाण की तरह तेजी से उछले और उस वृक्षों वाली वाटिका में जा पहुँचे। वह वाटिका अनेक प्रकार के पक्षियों और मृग समूहों से सुशोभित तथा अनेक बगीचों से चित्रित सी हो रही थी। बलवान हनुमान जी ने देखा कि वह उदय होते हुए सूर्य के समान जगमगा रही थी। वहाँ फूलों और फलों से लदे हुए अनेक प्रकार के वृक्ष थे। मस्त कोकिल और भ्रमर सदा उसकी सेवा किया करते थे। वह वाटिका मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली थी। वहाँ विचरण करते हुए मृग और पक्षी भी मस्ती में भरे हुए थे। मतवाले मोरों के कलरव तथा अनेक प्रकार के पक्षियों की चहचाहट से वह वाटिका व्याप्त थी।

लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम्।
काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः।। ५।।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः।
सोऽपश्यद् भूमिभागांश्च नगप्रस्रवणानि च।। ६।।
सुवर्णवृक्षानपरान् ददर्श शिखिसंनिभान्।
तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः।। ७।।
अमन्यत तदावीरः काञ्चनोऽस्मीति सर्वतः।

उस महान वानर ने वहाँ बहुत सी लताओं से घिरा हुआ और पत्तों वाला एक शीशम का वृक्ष देखा, जिसका रंग सूर्य के प्रकाश में सुनहरा हो रहा था। उस वृक्ष के नीचे सुनहरे रंग की वेदियाँ सब तरफ बनी हुई थीं। उन्होंने वहाँ और भी भूमि के भागों को, पहाड़ी झरनों को, और दूसरे सुनहरे वृक्षों को देखा। ये सब अग्नि के समान दीप्तिमान थे, (उदय होते हुए सूर्य की चमक के कारण) उन वृक्षों की सुमेरु के समान प्रभा से उन महान वानर ने अपने आपको भी यही समझा कि मैं सब तरफ से सुवर्ण निर्मित हो गया हूँ।

तान् काञ्चनान् वृक्षगणान् मारुतेन प्रकम्पितान्।। ८।।
किङ्किणीशतनिर्घोषान् दृष्ट्वा विस्मयमागमत्।
सुपुष्पिताग्रान् रुचिरांस्तरुणाङ्कुरपल्लवान्।। ९।।
तामरुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम्।
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम्।। १०।।
इतश्चेतश्च दुःखार्तां सम्पतन्तीं यदृच्छया।

उन सुनहले दिखाई दे रहे वृक्षों को, जिनमें शाखाओं के अग्रभाग फूलों से भरे हुए थे और सुन्दर गुलाबी नये पत्ते आए हुए थे, हवा से हिलाये जाने पर सैकड़ों नूपुरों की सी ध्वनि करते हुए देख कर हनुमान जी विस्मित हो गये। वे महावेगशाली उस पत्तों से भरे हुए शीशम के वृक्ष पर चढ़ कर यह सोच कर बैठ गये कि राम के दर्शन की इच्छुक, दुख से पीड़ित वैदेही स्वेच्छा से इधर-उधर आती जाती होंगी, तो वे यहाँ से दिख जायेंगी।

अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः।। ११।।
चन्दनैश्चम्पकैश्चापि बकुलैश्च विभुषिता।
इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता।। १२।।
इमां सा राजमहिषी नूनमेष्यति जानकी।
सा रामा राजमहिषी राघवस्य प्रिया सती।। १३।।
वनसंचारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी।

उस दुष्ट राक्षस की यह अशोक वाटिका बड़ी सुन्दर है। यह चन्दन, चम्पक, और बकुल के वृक्षों से विभूषित है। इधर पक्षियों के समूह से युक्त कमलों से भरा हुआ सरोवर भी है। वह राजरानी जनकपुत्री यहाँ अवश्य आया करती होगी। वह राम की प्यारी राजरानी सती जानकी वन में भ्रमण करने की शौकीन है, वह यहाँ अवश्य आयेगी।

अथवा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा।। १४।।
वनमेष्यति साद्येह रामचिन्तासुकर्शिता।
रामशोकाभिसंतप्ता सा देवी वामलोचना।। १५।।
वनवासरता नित्यमेष्यते वनचारिणी।
वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा।। १६।।
रामस्य दयिता चार्या जनकस्य सुता सती।

या वह मृगशावक नयनी सीता राम की चिन्ता में कमजोर होगी, इसलिये इस वन की विशेषताओं को जानने वाली अपना दिल बहलाने के लिये यहाँ अवश्य आती रहती होगी। राम के शोक से संतप्त वह सुन्दर नेत्रों वाली देवी, वनवास में अनुरक्त होने के कारण इस वन में विचरती हुई यहाँ अवश्य आयेगी। वह राम की प्रिय पत्नी जनकपुत्री, श्रेष्ठ आचरण वाली सती सीता पहले वन के जन्तुओं से प्यार करती थी, इसलिये भी उसका यहाँ आना हो सकता है।

संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।। १७।।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी।
तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा।। १८।।
शुभाया: पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य सम्मता।
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम्।। १९।।

यह प्रातः काल की सन्ध्या का समय है। वह सुन्दर रंग वाली सुन्दरी जानकी सन्ध्या करने की इच्छा से इस स्वच्छ जल वाली नदी के किनारे अवश्य आयेगी। यह सुन्दर अशोक वाटिका राजाधिराज राम की पवित्र पत्नी के लिये बिल्कुल अनुकूल है। इसलिये यदि वह चन्द्रमुखी देवी जीवित है तो वह इस शीतल जल वाली नदी के किनारे अवश्य आएगी।

एवं तु मत्वा हनुमान् महात्मा
प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम्।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं
सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः।। २०।।

इस प्रकार विचार कर वे महात्मा हनुमान नरेन्द्र पत्नी सीता की प्रतीक्षा करते हुए, और उस अशोक वाटिका के स्थानों का निरीक्षण करते हुए उस फूलों वाले वृक्ष के घने पत्तों में छिप कर बैठ गये।

तेरहवाँ सर्ग

हनुमान जी का एक चैत्य प्रासाद (मन्दिर) के पास सीता को दयनीय अवस्था में देखना, पहचानना और प्रसन्न होगा।

संतानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम्।
दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलंकृताम्।। १।।
काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् ।
विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः।। २।।
समूलपुष्परचितैरशोकैः शोकनाशनैः।
पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम्।। ३।।
कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः।
स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः।। ४।।

वह अशोक वाटिका कल्पवृक्ष की लताओं और वृक्षों से शोभित थी। उनके अलौकिक रस और गन्ध से परिपूर्ण वह सब तरफ से सजाई हुई थी। वह सुनहरे कमलों और उत्पलों से युक्त बावलियों से सुशोभित थी। नीचे गिरते हुए अपने असंख्य सुन्दर फूलों के गुच्छों से जो ऊपर से लेकर नीचे तक फूलों से बने हुए से प्रतीत हो रहे थे, उन शोकनाशक अशोक के वृक्षों से, जो पुष्पों के अत्यधिक भार से मानो भूमि को स्पर्श कर रहे थे, ऐसे फूलों वाले कनेर के वृक्षों से, और अच्छी तरह से खिले हुए पलाश के वृक्षों से वह प्रदेश अपनी कान्ति से सब तरफ से प्रज्वलित सा लग रहा था।

पुंनागाः सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा।
विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः।। ५।।
शातकुम्भनिभाः केचित् केचिदग्निशिखप्रभाः।
नीलाञ्जननिभाः केचित् तत्राशोकाः सहस्रशः।। ६।।
सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः।। ७।।
नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणद्विजैः।
अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोहरम्।। ८।।
शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम्।

वहाँ पुंनाग, सप्तपर्ण, चम्पा, उद्दालक आदि बहुत से सुन्दर फूलों वाले और मोटी जडों वाले वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। वहाँ हजारों अशोक के वृक्ष थे। उनमें से कुछ स्वर्ण के समान, कुछ आग की ज्वाला के समान और कुछ काले काजल के समान थे। फूलों की अधिकता के कारण वह अशोक वन नक्षत्रों से जगमगाते हुए दूसरे आकाश के समान प्रतीत हो रहा था। सब ऋतुओं में फूलों से खिलने वाले, मधुर गन्ध वाले वृक्षों से भरा हुआ वह मनोहर अशोक वन अनेक प्रकार की गन्धों को वहन करता हुआ पवित्र गन्ध वाला, सुगन्धों से समृद्ध दूसरे गन्धमादन नाम के पर्वतराज के समान जान पड़ता था।

अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः।। ९।।
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम्।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम्।। १०।।
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम्।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया।। ११।।
निर्मलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम्।

उस वानरश्रेष्ठ हनुमान ने तभी उस अशोक वाटिका में समीप ही एक उत्कृष्ट कोटि के मन्दिर को देखा, जिसके बीच में बहुत सारे खम्बे लगे हुए थे और जो कैलाश पर्वत के समान श्वेत वर्ण का था। उसमें मूँगे की सी सीढ़ियाँ बनी हुई थी और तमतमाते सोने के रंग के समान सुनहरी वेदियाँ बनी हुई थीं। वह अपनी प्रभा से जगमगाता हुआ आँखों को चुंधिया सा रहा था। वह निर्मल प्रासाद अपनी ऊँचाई के कारण आकाश में रेखा सी खींचता हुआ प्रतीत हो रहा था।

ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम्।। १२।।
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम्।। १३।।
मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम्।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः।। १४।।
पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा।
सपङ्कामनलंकारां विपद्मामिव पद्मिनीम्।। १५।।

इसके पश्चात् उन्होंने मैले वस्त्र पहने हुए, राक्षसियों से घिरी हुई, उपवास करने से दुर्बल, बार-बार लम्बी सांसें लेती हुई एक दीन स्त्री को देखा, जो शुक्लपक्ष के प्रारम्भ में निर्मल चन्द्रमा की रेखा के समान थी। वह धुँधली याद के द्वारा पहचाने जाने वाले अपने रूप से अपनी सुन्दर प्रभा को बिखेर रही थी, मानो अग्नि की ज्वाला धूएँ के समूह से ढकी हुई हो। उसका शरीर एक पुराने, पर उत्तम पीले रंग के वस्त्र से ढका हुआ

था। वह कमलों से रहित, शोभा रहित कीचड़ से युक्त पुष्करिणी के समान लग रही थी।

पीडितां दुःखसंतप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम्।
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च।। १६।।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम्।
प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम्।। १७।।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव।
नीलनागाभयावेण्या जघनं गतयैकया।। १८।।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव।

शोक से पीड़ित, दुख से संतप्त वह तपस्विनी क्षीणकाय हो रही थी। उपवास से दुर्बल हुई उस दुर्बल और दीन स्त्री के मुख पर आँसुओं की धारा बह रही थी। शोक और चिन्ता में लगी हुई वह सदा दुख में ही डूबी रहती थी। अपने प्रिय व्यक्ति को तो वह देख नहीं पाती थी, और राक्षसियाँ ही उसे दिखाई देती थीं। ऐसा लग रहा जैसे अपने झुण्ड से बिछुड़ी हुई कोई हरिणी कुत्तों के समूह से घिरी हुई हो। काले नाग के समान ज़ाँघ तक लटकी हुई एक वेणी से वह स्त्री बादलों के हट जाने पर वन पंक्तियों से युक्त पृथ्वी के समान जान पड़ती थी।

सुखार्हां दुःखसंतप्तां व्यसनानामकोविदाम्।। १९।।
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम्।
निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव।। २०।।
तां स्मृतीमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव।। २१।।
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव।
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव।। २२।।
अभूतेनापवादेन, कीर्तिं निपतितामिव।

वे सुख पाने योग्य थीं पर दुःख से संतप्त हो रहीं थीं, उन्हें दुःख सहने का अभ्यास नहीं था। वह सुन्दर शरीर वाली स्त्री एक नियमों का पालन करने वाली तपस्विनी के समान भूमि पर बैठी हुई थी और भयभीत सर्पिणी के समान लम्बी साँसें ले रही थी, क्योंकि उसके चारों ओर महान शोक का जाल फैला हुआ था, अतः वह सुशोभित नहीं हो रही थी। वह सन्देह से युक्त स्मृति के समान, साधना से भ्रष्ट ऋषि के समान, टूटी हुई आशा के समान, विघ्नों से युक्त सिद्धि के समान, बुरे विचारों से कलुषित हुई बुद्धि के समान और मिथ्या कलंक से भ्रष्ट कीर्ति के समान दिखाई देती थी।

बाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा।। २३।।
वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः।
मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम्।। २४।।
प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम्।
रामोपरोधव्यथितां रक्षोगणनिपीडिताम्।। २५।।
अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां ततस्ततः।
तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च।। २६।।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव।

उसका काली और टेढ़ी आँखों की पलकों वाला मुख प्रसन्न नहीं था। वह आँसुओं से भरा हुआ था। वह बार-बार लम्बी साँस खींच रही थी। शरीर पर मैल की कीचड़ धारण करने वाली उस दीन स्त्री का शरीर यद्यपि सजाने योग्य था पर वह उस समय सजावट से बिल्कुल रहित था। राम की सेवा में व्यवधान पड़ने से जो व्यथित हो रही थी, राक्षसों के द्वारा जो पीड़ित थी, वह मृगशावक के समान आँखों वाली अबला असहाय हो कर इधर-उधर देख रही थी। इस अवस्था में विद्यमान सीता को, जो अभ्यास न करने से शिथिल हुई बुद्धि के समान थी, देख कर हनुमान जी की बुद्धि को सन्देह हो गया।

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम्।। २७।।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्।
तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्।। २८।।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन्।
ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा।। २९।।
यथारूपा हि दृष्टा सा तथा रूपेय मंगना।

सीता जी अलंकारों आदि शरीर की सजावट से रहित होने के कारण व्याकरण आदि के संस्कार से रहित दूसरे अर्थ का भ्रम कराने वाली वाणी के समान पहचानी नहीं जा रही थी। हनुमान जी ने उन्हें बड़े कष्ट से पहचाना। उस अनिन्दिता विशाल आँखों वाली राजकुमारी को देख कर उन्होंने युक्तियों से समीक्षा करते हुए यह निश्चय किया कि यह सीता है। उन्होंने सोचा कि इच्छा के अनुसार रूप बदले हुए उस राक्षस के द्वारा हरण करके ले जायी जाती हुई वह स्त्री जिस रूप में देखी थी, उसी रूप में यह भी दिखायी देती है।

पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम्।। ३०।।
उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवङ्गमैः।
भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणीतले।। ३१।।
अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च।
इदं चिरगृहीतत्वाद् वसनं क्लिष्टवत्तरम्।। ३२।।

तथाप्यनूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत्।
इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया।। ३३।।
प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति।

पर्वत पर बैठे हुए वानरों ने उस समय उस स्त्री का जो सुनहरे वस्त्र के समान चमकीला, पीला उत्तरीय वस्त्र तथा बहुत बजने वाले आभूषण पृथिवी पर पड़े देखे थे, वे इन्हीं के द्वारा गिराये गये थे। यद्यपि इनका यह वस्त्र बहुत दिनों से लगातार पहिने जाने के कारण पुराना हो गया है, तथापि यह उसी रंग का है, जैसा वह दूसरा वस्त्र था और वैसी ही कान्तिवाला है। सुनहरे रंग वाली यह वही राम की प्यारी रानी सीता है, जो उनसे अलग होने पर भी उनके मन से अलग नहीं हुई है।

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते।। ३४।।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च।
स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः।। ३५।।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च।
अस्या देव्या यथारूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम्।। ३६।।
रामस्य च यथारूपं तस्येयमसितेक्षणा।
एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम्।। ३७।।

यह वही है जिसके लिए श्रीराम चार कारणों से संतप्त रहते हैं। वे कारण हैं– करुणा, दया, शोक और प्रेम। एक स्त्री को बल पूर्वक हरण कर लिया गया, यह सोच कर उन्हें करुणा होती है, वह स्त्री मेरे आश्रित थी, यह सोच कर उन्हें उसके प्रति दया होती है। मेरी पत्नी मुझ से अलग हो गयी, इस भावना से उन्हें शोक होता है और मैं अपनी प्रिया से नहीं मिल सकता, यह सोच कर उन्हें विरह वेदना होती है। इस देवी का जैसा सौन्दर्य है, इसके अंग प्रत्यंगों का जो सौष्ठव है और श्रीराम का जैसा रूप है, उसके अनुसार यह काली आँखों वाली उन्हीं की पत्नी होनी चाहिये। इस प्रकार पवन पुत्र हनुमान सीता को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। वे मन में श्रीराम का ध्यान करके तथा सीता जैसी पत्नी के कारण उनके सौभाग्य की प्रशंसा करने लगे।

चौदहवाँ सर्ग

हनुमान जी का मन ही मन सीता के शील और सौंदर्य की सराहना करते हुए उन्हें कष्ट में पड़ी हुई देख कर शोक करना।

प्रशस्य तु प्रशस्तव्यां सीतां तां हरिपुङ्गवः।
गुणाभिरामं रामं च पुनश्चिन्तापरोऽभवत्।। १।।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनूमान् विललाप ह।। २।।
कान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया।
यदि सीता हि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः।। ३।।

वे वानरश्रेष्ठ हनुमान तब प्रशंसा करने योग्य सीता की तथा गुणों के भंडार श्रीराम की प्रशंसा कर पुनः चिन्ता में पड़ गये। थोड़ी देर तक विचार करने के बाद उनकी आँखों में आँसू भर आए और वे तेजस्वी हनुमान सीता के प्रति विलाप करने लगे। गुरुओं के प्रति विनीत लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीराम की जो प्रिया है और सम्मान के योग्य है, वह सीता भी यदि दुख से पीड़ित है तो यही कहना होगा कि समय बड़ा बलवान है। इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः।
विराधश्च हतः संख्ये राक्षसो भीमविक्रमः।। ४।।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः।। ५।।
खरश्च निहतः संख्ये त्रिशिरश्च निपातितः।
दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना।। ६।।
ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम्।
अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवाँल्लोकविश्रुतः।। ७।।
सागरश्च मयाऽऽक्रान्तः श्रीमान् नदनदीपतिः।
अस्यो हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता।। ८।।

राम ने इन्हीं विशाल आँखों वाली के लिये महा बलवान बाली को मारा और भयानक विक्रम वाले विराध राक्षस का युद्ध में वध किया। इसी के लिये राम ने जन स्थान में भयानक कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षस अपने अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी बाणों से मार गिराये। आत्मज्ञानी, महातेजस्वी राम ने युद्ध में खर-दूषण और त्रिशिरा को मार गिराया था। इन्हीं सीता के कारण संसार में प्रसिद्ध सुग्रीव को बाली के द्वारा सुरक्षित वानरों

का दुर्लभ ऐश्वर्य मिला। इसी विशाल आँखों वाली के लिये मैंने नदियों के स्वामी श्रीमान सागर को पार किया और पुरी का निरीक्षण किया।

राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात् कलाम्।। ९।।
इयं सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः।
सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता।। १०।।
विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः।
स्नुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी।। ११।।
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता।। १२।।

तीनों लोकों में राज्य और जनकपुत्री सीता इन दोनों में तुलना की जाये तो तीनों लोकों का राज्य सीता की एक कला अर्थात् सोलहवें भाग को भी नहीं प्राप्त कर सकता। ये धर्मशील, मिथिला नरेश, महात्मा जनक की पुत्री अपने पति के लिये दृढ़ व्रत वाली हैं। ये अच्छे आचरण वाले, पराक्रमी, युद्ध में पीछे न हटने वाले राजा दशरथ की यशस्विनी सबसे बड़ी पुत्रवधु हैं। धर्मज्ञ, कृतज्ञ और आत्मज्ञ श्रीराम की ये प्यारी पत्नी इस समय राक्षसियों के वश में पड़ी हुई हैं।

सर्वान् भोगान् परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात् कृता।
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम्।। १३।।
संतुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा।। १४।।
सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी।। १५।।
इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः।। १६।।

जो पति के प्रति स्नेह की शक्ति से सारे भोगों को छोड़ कर, कष्टों की चिन्ता न कर, निर्जन वन में चली आयी, पति की सेवा में लगी हुई फल मूल खा कर ही सन्तुष्ट रही, इसीलिये वन में रहते हुए भी उसी प्रसन्नता का अनुभव किया करती है जो भवन में रहते हुए होती है, वही यह सुवर्ण के समान वर्ण वाली, सदा मुस्करा कर बात करने वाली सीता जो अनर्थों को सहने के योग्य नहीं है, इस यातना को सहन कर रही है। इसलिये रावण के द्वारा सतायी हुई इस सदाचार से सम्पन्न सीता जी को देखने के लिये श्रीराम ऐसे ही उत्सुक हैं, जैसे प्यासा प्याऊ के लिये उत्सुक होता है।

अस्या नूनं पुनर्लाभाद् राघवः प्रीतिमेष्यति।
राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम्।। १७।।
कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च।
धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी।। १८।।
नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान्।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति।। १९।।

इनकी पुनः प्राप्ति होने पर श्रीराम वास्तव में ऐसे ही प्रसन्न होंगे, जैसे राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा पुनः राज्य को प्राप्त कर होता है। ये सीता भी कामना से युक्त भोगों से छूट जाने और बन्धुओं से रहित होने पर भी केवल राम के मिलने की आशा से ही अपने शरीर को धारण किये हुए हैं। न तो ये राक्षसियों की ओर देखती हैं और न इन पुष्प और फल वाले वृक्षों की तरफ ही देखती हैं, निश्चय ही ये एकाग्र चित्त से मन में राम का ही चिन्तन कर रही हैं।

भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते।। २०।।
दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति।। २१।।
इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम्।
सुखार्हां दुःखितां ज्ञात्वा ममापि व्यथितं मनः।। २२।।

नारी के लिये भर्ता नाम की वस्तु आभूषणों से भी अधिक उसकी शोभा को बढ़ाने वाली होती है। ये सीता उससे रहित होने के कारण शोभा के योग्य होने पर सुशोभित नहीं हो रही हैं। शक्तिशाली राम इनसे रहित हो कर जो अपने जीवन को धारण कर रहे हैं और दुख से शिथिल नहीं हो रहे हैं यह वह बड़ा दुष्कर्म कर रहे हैं। इस काली आँखों वाली, कमल नयनी, सुख के योग्य सीता को दुखी देख कर मेरा भी मन बड़ा व्यथित हो रहा है।

क्षितिक्षमा पुष्करसंनिभेक्षणा
या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम्।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः
संरक्ष्यते सम्प्रति वृक्षमूले।। २३।।

हाय जो पृथिवी के समान कष्टों को सहने वाली और कमलनयनी है। जिसकी राम और लक्ष्मण रक्षा किया करते थे, वही सीता अब भयानक नेत्रों वाली राक्षसियों की चौकीदारी में पेड़ के नीचे बैठी हुई है।

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा
व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना।

सहचररहितेव चक्रवाकी
जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना।। २४।।

पाले से पीड़ित कमलिनी के समान जिसकी शोभा नष्ट हो गई है, जो दु:खों की शृंखला के द्वारा पीड़ित हो रही है, जो अपने साथी से रहित चकवी के समान लग रही है वह जनकपुत्री सीता इस समय बड़ी दयनीय अवस्था को प्राप्त हो रही है।

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य
सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः।
संश्रित्य तस्मिन् निषसाद वृक्षे
बली हरीणामृषभस्तरस्वी।। २५।।

वे वेगवान बलवान वानर, श्रेष्ठ हनुमान, इस प्रकार विचार करते हुए और यह बुद्धि से निश्चित करके कि यह सीता ही है, उस वृक्ष का आश्रय ले कर डाल पर बैठे रहे।

पन्द्रहवाँ सर्ग

सीता की रक्षा करने वाली राक्षसियों का वर्णन।

दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनूमान् मारुतात्मजः।
स ददर्शाविदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः।। १।।
ह्रस्वां दीर्घां च कुब्जां च विकटां वामनां तथा।
करालां भुग्नवक्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम्।। २।।
विकृताः पिङ्गलाः कालीः क्रोधनाः कलहप्रियाः।
कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः।। ३।।

सीता को देखने के इच्छुक पवन पुत्र हनुमान को तब उनके समीप बैठी हुई भयानक रूपवाली राक्षसियाँ भी दिखाई दीं। उनमें से कोई नाटी, कोई लम्बी, कोई कुबरी, कोई देखने में भयानक, कोई बौनी, कोई अत्यन्त भयानक, कोई टेढ़े मुखवाली, कोई पीली आँखों वाली और कोई विकट मुख वाली थी। किन्हीं का शरीर बड़ी बिगड़ी अवस्था में था। किसी के शरीर का रंग पीला था, तो किसी का काला, कोई क्रोध में भरी हुई थी, कोई कलह कर रही थी। उन्होंने काले लोहे के बड़े शूल, हथौड़े और मुगदर लिये लिये हुए थे।

कराला धूम्रकेशिन्या राक्षसीर्विकृताननाः।
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः।। ४।।
स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम्।
तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्।। ५।।
लक्षयामास लक्ष्मीवान् हनूमाञ्जनकात्मजाम्।
निष्प्रभां शोकसंतप्तां मलसंकुलमूर्धजाम्।। ६।।

वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने उन धूएँ के समान बालों वाली विकृत मुख और भयानक रूप वाली राक्षसियों को देखा। उन्हें देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। वे राक्षसियाँ उस मोटे तने वाले वृक्ष को और उसके नीचे बैठी उस अनिन्दित राजपुत्री को घेर कर बैठी हुई थीं। उस समय उन शोभाशाली हनुमान ने उस जनक पुत्री को विशेष ध्यान से देखा। उनके सिर के बाल मैल मिट्टी से भरे हुए थे। वे शोक में मग्न और बिल्कुल कान्ति से रहित थीं।

सोलहवाँ सर्ग

अपनी स्त्रियों से घिरे हुए रावण का अशोक वाटिका में आना, रावण को देख कर सीता की होने वाली अवस्था का वर्णन।

ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम्।
शुश्राव परमस्त्रीणां कपिर्मारुतनन्दनः।। १।।
तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम्।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान् कपिः।। २।।
कामदर्पमदैर्युक्तं, जिह्मताम्रायतेक्षणम्।
मथितामृतफेनाभमरजोवस्त्रमुत्तमम् ।। ३।।
सपुष्पमवकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे।

तभी पवन पुत्र हनुमान ने सुन्दर स्त्रियों की मेखलाओं की खनखनाहट और नूपुरों की झंकार सुनी और साथ ही उन्होंने देखा कि वह अनुपम कर्म करने वाला और

अचिन्त्य बल पौरुष वाला रावण अशोक वाटिका के द्वार पर आ पहुँचा है। वह कामनाओं, दर्प और मद से युक्त था। उसकी आँखें टेढ़ी, लाल और बड़ी थीं। वह मथे हुए दूध के फेन के समान स्वच्छ और उत्तम वस्त्र को जिसमें मोतियों के फूल टँगे हुए थे, पहने हुए था। वह वस्त्र उसके बाजूबन्द में उलझ गया था, जिसे खींच कर वह उसे उससे छुड़ा रहा था।

तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः।। ४।।
समीपमुपसंक्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे।
अवेक्षमाणस्तु तदा ददर्श कपिकुञ्जरः।। ५।।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः।
ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः।। ६।।
क्षीबो विचित्राभरणः शङ्कुकर्णो महाबलः।
तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः।। ७।।

उस पत्तों वाले वृक्ष में छिपे हुए तथा उसके पत्तों और फूलों से ढके हुए हनुमान जी ने तब समीप आये हुए उस रावण को पहचानने का प्रयत्न किया। उस रावण की तरफ देखते हुए उस वानर श्रेष्ठ ने रावण की उन रूप यौवन से सम्पन्न उत्तम स्त्रियों को देखा। उन्होंने देखा कि उन सुन्दरियों से घिरा हुआ वह महा यशस्वी, महा बलवान, विश्रवा मुनि का पुत्र, राक्षसेश, राजा रावण मस्ती से भरा हुआ था, उसके कान खूँटियों जैसे थे और उनमें विचित्र प्रकार के आभूषण धारण किये हुए थे।

वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः।
तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः।। ८।।
रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः।
सोऽयमेव पुरा शेते पुरमध्ये गृहोत्तमे।। ९।।
अवप्लुतो महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः।
स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम्।। १०।।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः।

महा तेजस्वी हनुमान जी ने देखा कि वह तेजस्वी तारिकाओं से घिरे हुए चन्द्रमा के समान परम सुन्दरी स्त्रियों से घिरा हुआ था। यह निश्चित करके कि यह विशाल बाहों वाला रावण ही है और यही पहले नगर में अपने सुन्दर प्रासाद में सोया हुआ था, वह पवन पुत्र महा तेजस्वी वानर हनुमान, निचली डाल पर आ गए। रावण उस काले बालों वाली सुन्दरी, सटे हुए स्तनों वाली, और काली आँखों वाली सीता को देखने के लिये उनके समीप आ गया।

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता।। ११।।
रूपयौवनसम्पन्नं भूषणोत्तमभूषितम्।
ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम्।। १२।।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा।
ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ।। १३।।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी।

उसी समय रूप यौवन सम्पन्न और उत्तम भूषणों से विभूषित राक्षसराज रावण को जब अनिन्दित, राजपुत्री वैदेही ने देखा, तब ऐसे देखते ही वह सुन्दरी आँधी में हिलने वाले केले के वृक्ष की तरह थर-थर काँपने लगी। वह सुन्दर रंग और विशाल आँखों वाली उस समय रोती हुई उदर को जाँघों से और स्तनों को बाहों से ढक कर बैठ गयी।

दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः।। १४।।
ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे।
असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम्।। १५।।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः।
मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम्।। १६।।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च।

रावण ने वैदेही सीता को जो राक्षसियों के पहरे में थी, दीन और सागर में डूबी हुई नाव के समान शोक सागर में डूबी हुई थी, कठोर व्रत को धारण कर बिना बिछौने वाली भूमि पर बैठी हुई थी, और वृक्ष की कट कर भूमि पर गिरी हुई शाखा के समान प्रतीत हो रही थी, देखा। उनके सारे अंग मैल मिट्टी से भरे हुए थे, वे सजावट के योग्य होते हुए भी सजावट से रहित थे। कीचड़ में लिपटी कमलिनी के समान प्रतीत होने वाली वह उस समय सुशोभित नहीं हो रही थी।

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः।। १७।।
संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः।
शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम्।। १८।।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम्।
वृत्तशीले कुले जातामाचारवति धार्मिके।। १९।।
पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले।

वे सीता जी राजसिंह मनस्वी राम के समीप संकल्परूपी घोड़े से जुते हुए मनोरथ रूपी रथ के द्वारा जाती हुई सी प्रतीत हो रही थीं। वे अकेली रोती रहती थीं और सूखती जा रही थीं। वे श्रीराम के अनुराग से युक्त हो कर उन्हीं के शोक और ध्यान में लगी रहती

थीं। वे राम की पत्नी अपने दुःख के अन्त को नहीं देख पा रही थीं। यद्यपि वे सदाचार और शील से युक्त कुल में उत्पन्न हुई और आचारवान धार्मिक कुल को विवाह के द्वारा प्राप्त हुई थीं, पर उस समय दूषित कुल में उत्पन्न नारी के समान प्रतीत होती थीं।

सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम्।। २०।।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव।
आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव।। २१।।
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम्।
पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव।। २२।।
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम्।
वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव।। २३।।

वे सीता जी उस समय क्षीण हुई महान कीर्ति, तिरस्कृत हुई श्रद्धा, ह्रास को प्राप्त हुई बुद्धि, टूटी हुई आशा, चन्द्रग्रहण से मलिन हुई पूर्णिमा की रात्रि, जीर्णशीर्ण हुई कमलिनी, जिसके शूरवीर मारे गये हैं ऐसी सेना, अँधेरे से नष्ट हुई प्रभा, सूखी हुई नदी, अपवित्र की हुई वेदी और बुझी हुई अग्नि शिखा, इन सबके समान प्रतीत हो रही थी।

उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम्।
हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलामिव पद्मिनीम्।। २४।।
पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव।। २५।।
सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम्।
तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम्।। २६।।

सीता जी उस पुष्करिणी के समान दिखाई दे रहीं थीं जिसे हाथी ने रौंद दिया हो, जिसके कमल और उनके पत्ते उखड़ गये हो, जिसके पक्षी भयभीत हो रहे हों। वे ऐसी सूखी नदी के समान थीं जिसका पानी नहरों के द्वारा इधर उधर बहा दिया गया हो। पति शोक से व्याकुल और अंगराग आदि से रहित होने के कारण वे कृष्णपक्ष की रात्रि के समान प्रतीत हो रही थीं। वे सुकुमारी और सुन्दर अंगों वाली तथा रत्नजटित महल में रहने के योग्य थीं, पर गर्मी से तपायी हुई और अभी उखाड़ कर फैंकी हुई कमलिनी के समान लग रही थीं।

गृहीतामालितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम्।
निश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव।। २७।।
एकयादीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः।
नीलया नीरदापाये वनरराज्या महीमिव।। २८।।
उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम्।। २९।।
आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव।
भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम्।। ३०।।

उस हथिनी के समान, जिसे यूथपति से अलग कर खम्बे से बाँध दिया गया हो, तपस्विनी सीता जी दुःख से बेचैन हो कर लम्बी साँसे ले रही थीं। वे अनायास ही अपनी कमर पर पड़ी लम्बी वेणी से, वर्षा ऋतु के हट जाने पर वृक्षों की पंक्तियों से युक्त भूमि जैसे लग रहीं थीं। उपवास से, शोक से, चिन्ता से, भय से और कम खाने से वे दीन बनी हुईं थीं, उनका शरीर कमजोर हो गया था। वे दुख से पीड़ित हो कर मानो भगवान से हाथ जोड़ कर मन में श्रीराम के द्वारा रावण की पराजय की प्रार्थना कर रही थी।

समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां
सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् ।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं
प्रलोभयामास वधाय रावणः।। ३१।।

उन अनिन्दित सीता जी को, जो सुन्दर भौंहों तथा लाल और सफेद विशाल आँखों वाली थीं, जो राम में ही अत्यधिक अनुरक्त थीं और रो रही थीं, इस अवस्था में देख कर रावण अपने वध के लिए उन्हें लुभाने की चेष्टा करने लगा।

सत्रहवाँ सर्ग

रावण का सीता को प्रलोभन।

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम्।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः।। १।।
मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम्।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि।। २।।
कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये।
सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे।। ३।।

उसके बाद उस आनद से रहित दीन बनी हुई, राक्षसियों से घिरी हुई तपस्विनी सीता से रावण

सार्थक मधुर वाक्यों में अपने मन का भाव प्रकट करने लगा। वह कहने लगा कि हे हाथी की सूँड के समान जाँघों वाली सीता तुम मुझे देख कर, अपने स्तन और उदर को छिपाती हुई भय से मानो अपने आपको अदृश्य कर लेना चाहती हो। हे विशाल नेत्रों वाली सर्वांग सुन्दरी, सारे संसार के मन को हरने वाली प्रिये! मैं तुम्हें चाहता हूँ। तुम मुझे विशेष आदर दो।

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा।। ४।।
एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम्।। ५।।
देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा।। ६।।

हे भीरु ! इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राक्षसों का सदा अपना यह धर्म रहा है कि वे सदा परायी स्त्रियों का हरण करें और उनके साथ बलात्कार करें। पर फिर भी मैं हे मैथिली! जब तक तुम मुझे नहीं चाहोगी मैं, तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा। भले ही कामदेव मेरे शरीर को कितना ही पीड़ित करे। हे देवी! हे प्रिये! यहाँ डरो मत। मुझ पर विश्वास करो, इस प्रकार शोक मत करो। यथार्थ में मुझ से प्रेम करो।

एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम्।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते।। ७।।
विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगुरूणि च।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च।। ८।।
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि।। ९।।
स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम्।
मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे।। १०।।

एक वेणी रखना, नीचे भूमि पर सोना, चिन्ता मग्न रहना, मैले कपड़े पहनना, बिना अवसर के उपवास करना, ये कार्य तुम्हारे योग्य नहीं हैं। हे मैथिली! तुम मुझे प्राप्त कर विचित्र मालाओं को, चन्दन और अगरु का लेप, अनेक प्रकार के वस्त्र, अलौकिक रूप से सुन्दर आभूषण, बहुमूल्य पेय पदार्थ, शय्याएँ आसन, गीत, नृत्य और वाद्य इन सबका उपयोग करो। तुम स्त्रियों में रत्न हो। इस प्रकार मत रहो। अपने शरीर को सजाओ, हे सुन्दरी! तुम मुझे पा कर इस अवस्था में कैसे रहोगी?

इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते।
यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव।। ११।।
त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत्।
नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने।। १२।।
यद् यत् पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने।
तस्मिंस्तस्मिन् पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते।। १३।।
भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव।। १४।।

तुम्हारी यह विद्यमान सुन्दर युवावस्था व्यतीत होती जा रही है। जो बीत जाता है, वह नदियों के प्रवाह की तरह वापिस नहीं आता। मैं समझता हूँ कि सौन्दर्य की रचना करने वाला वह भगवान, तुम्हारा निर्माण कर और सुन्दर वस्तुओं के निर्माण से रुक गया है। इसलिये हे शुभदर्शने! तुम्हारे समान और सौन्दर्यशाली कोई नहीं है। हे चन्द्रमुखी! मैं तुम्हारे जिस-जिस अंग को देखता हूँ। हे चौड़ी कमरवाली! मेरे नेत्र उसी में उलझ जाते हैं। हे मैथिली! तुम इस मोह को छोड़ो और मेरी पत्नी बन जाओ और मेरी बहुत सी उत्तम जो स्त्रियाँ हैं, तुम उनकी पटरानी बन जाओ।

लोकेभ्यो यानि रत्नानि सम्प्रमथ्याहृतानि मे।
तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते।। १५।।
विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम्।
जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि।। १६।।
नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत्।
पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे।। १७।।
इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम्।
सुप्रभाण्यवसज्जन्तां तवाङ्गे भूषणानि हि।। १८।।

मैंने अनेक देशों को मथ कर जो-जो रत्न यहाँ लाये हुए हैं, हे भीरु! उनको सबको और अपने राज्य को भी मैं तुम्हें दे दूँगा। अनेक नगर रूपी मालाओं से सुशोभित सारी भूमि को जीत कर हे विलासिनी! मैं तुम्हारे लिये उसे जनक को दे दूँगा। मैं इस संसार में किसी को भी ऐसा नहीं देखता जो मेरे जैसा बलवान हो। तुम युद्ध में मेरा वह तेज देखना, जिसका कोई सामना नहीं कर सकता। तुम मेरी इच्छा करो। आज ही तुम्हारा शृंगार कराया जाये, सुन्दर जगमगाते हुए आभूषण तुम्हारे शरीर को सज्जित करें।

भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च।। १९।।
ललस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च।

मत्प्रासादाल्ललन्त्यश्च ललतां बान्धवस्तव।। २०।।
ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशस्विनि।
किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवासिना।। २१।।
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः।
व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा।। २२।।

हे भीरु! यथेच्छ भोगों का भोग करो। पान करो और रमण करो और यथेच्छ पृथिवी का और धन का दान करो। मेरे पर विश्वास करके मुझ साहसी को अपनी सेवा के लिये आज्ञा दो और भोगों का भोग करो। मेरी कृपा से भोगों को भोगते हुए तुम्हारे बान्धव भी भोगों को भोगेंगे। हे यशस्विनी! हे भद्रे! तुम मेरी समृद्धि और सम्पत्ति को देखो। तुम चीरवस्त्र पहनने वाले राम से क्या करोगी? राम को अब विजय की आशा नहीं है! वह शोभा रहित हो कर वन में भटक रहा है! वह व्रत का पालन करता है और भूमि पर सोता है। मुझे शक है कि वह अब जीवित भी है या नहीं।

नहि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते।
पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ।। २३।।
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि।
मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा।। २४।।
क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलंकृताम्।
त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम्।। २५।।

हे वैदेही! राम तुम्हें अब न तो देख सकते हैं और न पा सकते हैं। जैसे आगे चलने वाले सारसों से युक्त काले मेघों से ढकी हुई चंद्रिका नहीं देखी जाती है। हे सुन्दर मुस्कराहट वाली! सुन्दर दाँतों वाली, सुन्दर नेत्रों वाली, विलासिनी, भीरु! तुम मेरे मन को वैसे ही चुरा रही हो जैसे गरुड़ नाम का पक्षी साँप का हरण कर लेता है। तुम्हारा रेशमी वस्त्र मैला हो गया है, तुम दुबली हो गयी हो, तुमने कोई सजावट भी नहीं की हुई, पर फिर भी तुम्हें देख कर मैं अपनी दूसरी स्त्रियों से प्रेम नहीं कर पाता हूँ।

अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः।
यावत्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि।। २६।।
यानि वैश्रवणे सुभ्रु रत्नानि च धनानि च।
तानि लोकांश्च सुश्रोणि मया भुङ्क्ष्व यथासुखम्।। २७।।
न रामस्तपसा देवि न बलेन च विक्रमैः।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा।। २८।।

सारे गुणों से युक्त मेरे अन्तःपुर की जितनी रानियाँ हैं, हे जानकी! तुम उन सबकी स्वामिनी बन जाओ। हे सुन्दर भौंहों वाली! हे चौड़ी कमर वाली! रावण के घर में जितने रत्न और धन हैं उनका और सारे लोकों का मेरे साथ सुख के साथ भोग करो। हे देवी! राम न तो तप से, न बल से, न पराक्रम से, न धन से, न तेज से, और न यश से मेरी बराबरी कर सकता है।

कुसुमिततरुजालसंततानि
भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि।
कनकविमलहारभूषिताङ्गी
विहर मया सह भीरु काननानि।। २९।।

हे भीरु! सोने के निर्मल हारों से अपने शरीर को सजा कर, भ्रमरों से युक्त, फूलों वाले वृक्षों के समूहों से व्याप्त समुद्र तट वर्ती बागों में मेरे साथ विहार करो।

अठारहवाँ सर्ग

सीता का रावण को समझाना और श्रीराम के सामने उसे नगण्य बताना।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच ततः शनैः।। १।।
दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता।। २।।
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः।। ३।।
न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत्।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम्।। ४।।

दीनता से युक्त स्वरवाली, दुख से पीड़ित, सीता उस भयानक राक्षस के ये वचन सुन कर धीरे-धीरे बोली। उस समय वह सुन्दरी तपस्विनी सीता दुख से व्याकुल हो कर रो रही थी और काँप रही थी। उस पतिव्रता के मन में उस समय अपने पति का ही ध्यान था। पवित्र मुस्कान वाली वह सीता तिनके को बीच में रख कर बोली कि मेरी तरफ से अपने मन को हटा लो और अपने ही लोगों से प्रेम करो। जैसे पापी मनुष्य को सिद्धि की प्राप्ति के लिये इच्छुक नहीं होना चाहिये,

वैसे ही तुम्हें मेरी इच्छा नहीं करनी चाहिये। अपने पति की अकेली पत्नी के लिये जो निन्दित कार्य हैं उसे मैं नहीं कर सकती।

कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया।
एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी।। ५।।
रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत्।
नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव।। ६।।
साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर।
यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर।। ७।।
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम्।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम्।। ८।।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्।

मैंने महान कुल में जन्म लिया है और महान कुल में विवाह करके आयी हूँ। ऐसा कह कर वह सशस्विनीं वैदेही रावण की तरफ पीठ कर पुनः यह बोली कि क्योंकि मैं दूसरे की पत्नी हूँ और सती हूँ अतः तुम्हारी किसी उपाय से पत्नी नहीं हो सकती। हे राक्षस! तुम अच्छे धर्म का पालन करो। सज्जनों के द्वारा पालन किये जाने वाले अच्छे धर्म पर दृष्टि रखो। जैसे तुम अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हो, वैसे ही दूसरों की स्त्रियों की भी रक्षा करो। तुम अपने को आदर्श पुरुष बना कर अपनी ही स्त्रियों में आनन्द लो। जिसकी इन्द्रियाँ चंचल होती हैं और जो अपनी स्त्रियों से असन्तुष्ट होता है, ऐसे दुष्ट बुद्धि वाले को परायी स्त्रियाँ पराभव की तरफ ले जाती हैं।

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।। ९।।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता।
वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः।। १०।।
राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे।
अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्।। ११।।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च।
तथैव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसंकुला।। १२।।
अपराधात् तवैकस्य नचिराद् विनशिष्यति।

तुम्हारी बुद्धि जो ऐसी सदाचार से शून्य हो रही है, क्या यहाँ सत्पुरुष नहीं रहते हैं? या रहते हैं पर तुम उनकी बात नहीं मानते हो। या तुमने अपनी आत्मा को असत्य से निर्मित कर लिया है, इसीलिये बुद्धिमानों के द्वारा तुम्हारी भलाई के लिये कही गयी बात को भी तुम राक्षसों के विनाश के लिये ग्रहण नहीं करते हैं। जिसने अपनी आत्मा को दूषित किया हुआ है और अन्याय के रास्ते पर चलता है, ऐसे राजा को पा कर समृद्धि से भरे हुए देश और नगर भी नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार तुम्हें प्राप्त कर यह रत्नों से भरी हुई लंका तुम्हारे अकेले के अपराध से नष्ट हो जायेगी।

स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः।। १३।।
अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः।
एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः।। १४।।
दिष्ट्यैतद् व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः।

हे रावण! जब कोई अदूरदर्शी अपने बुरे कर्मों के कारण मारा जाता है, तब उस पापी के नष्ट होने पर सारे प्राणी प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार जिनके साथ तुमने पाप कर्म किये हैं, वे पीड़ित लोग तुम्हारे नष्ट होने पर प्रसन्न होंगे और कहेंगे कि अच्छा हुआ इस पापी को कष्ट हुआ।

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।। १५।।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा।
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।। १६।।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित्।
अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः।। १७।।
व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः।
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम्।। १८।।
वने वासितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम्।

मुझे ऐश्वर्य या धन का लोभ नहीं दिया जा सकता। जैसे सूर्य को उसकी प्रभा से अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही मुझे भी राम से अलग नहीं किया जा सकता। उस लोगों के स्वामी श्री राम की सम्मानित भुजा का तकिया लगा कर मैं किसी दूसरे की बाँह का तकिया कैसे लगा सकती हूँ? जैसे व्रत के पालन के लिये स्नान किये हुए आत्मज्ञानी ब्राह्मण को ही विद्या प्राप्त होती है, उसी तरह मैं उसी पृथ्वी पति राम की विधि सम्मत भार्या हूँ। हे रावण! तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि तुम मुझ दुखिता को राम से मिला दो। जैसे कोई वन में निवास करने वाली हथिनी के साथ हाथी को मिला दे।

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता।। १९।।
बन्धं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः।
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।। २०।।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि।
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम्।। २१।।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि।

एवं हि ते भवेत् स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे।। २२।।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम्।

यदि तुम अपने स्थान को बचाना चाहते हो और भयानक बंधन की इच्छा नहीं करते तो तुम्हें उन पुरुष श्रेष्ठ राम को अपना विधि सम्मत मित्र बना लेना चाहिये। वे सारे धर्मों को जानते हैं। प्रसिद्ध शरणागत से प्रेम करने वाले हैं, यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो तुम्हारी उनसे मित्रता हो जानी चाहिये। तुम उन शरणागत राम को प्रसन्न करो और इस कार्य के लिये प्रयत्नशील हो कर मुझे उनके पास भिजवा दो। मेरे श्रीराम को सौंप देने के इस कार्य से तुम्हारा कल्याण होगा, इसके विपरीत करोगे तो तुम बड़ी भारी मुसीबत को प्राप्त करोगे।

जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले।। २३।।
अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै।
आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः।। ४।।
गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम।
नहि गन्धमुपाध्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया।। २५।।
शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव।
क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः।। २६।।

जन स्थान में राक्षसों की सेना के मारे जाने पर जब तुम्हारा आश्रय स्थान नष्ट हो गया और तुम अशक्त हो गये, तब तुमने यह चोरी का नीच कार्य किया है। हे अधर्म राक्षस! उस आश्रम के उन दोनों पुरुष सिंहों से शून्य हो जाने पर, उनके शिकार के लिये चले जाने पर तूने वहाँ प्रवेश कर मेरा अपहरण किया है युद्ध के द्वारा नहीं। जैसे कुत्ता दो सिंहों के सामने नहीं ठहर सकता वैसे ही उन दोनों पुरुष सिंहों की तो तुम गन्ध पा कर भी उनके सामने नहीं ठहर सकते। वे मेरे स्वामी राम लक्ष्मण के साथ जल्दी ही तुम्हारे प्राणों को अपने बाणों से ऐसे ही हर लेंगे, जैसे सूर्य थोड़े जल को शीघ्र सुखा देता है।

उन्नीसवाँ सर्ग

रावण का सीता को दो मास की अवधि देना, सीता का उसे फटकारना, रावण का उन्हें धमका कर लौट जाना।

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम्।। १।।
यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा।। २।।
संनियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः।। ३।।
वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन् किल निबध्यते।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते।। ४।।

सीता के ये कठोर वचन सुन कर राक्षसों के राजा रावण ने प्रिय दर्शना सीता को यह अप्रिय उत्तर दिया कि पुरुष जैसे-जैसे स्त्रियों की अनुनय विनय करता है, स्त्रियाँ उसके बस में होती चली जाती हैं, पर मैं तुमसे जितना-जितना प्रिय बोलता हूँ, तुम उतना ही मेरा तिरस्कार करती हो। तुम्हारे लिये मेरे मन में जो प्रेम भाव उत्पन्न हो गया है, वह मेरे क्रोध को उसी प्रकार रोक रहा है, जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को गलत रास्ते की तरफ जाने से रोकता है। मनुष्यों में यह प्रेम की भावना बड़ी टेढ़ी है। यह जिसके प्रति हो जाती है, उसके प्रति दया और स्नेह को पैदा कर देती है।

एतस्मात् कारणान्न त्वां घातयामि वरानने।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम्।। ५।।
परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम्।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः।। ६।।
एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः।
क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत्।। ७।।
द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि।। ८।।

हे सुन्दरी! इसलिये मैं तुम्हें नहीं मार रहा हूँ। यद्यपि तुम झूठे वैराग्य में लगी हुई हो, तिरस्कार किये और वध किये जाने के योग्य हो। हे मैथिली! तुम मुझसे जो-जो कठोर बातें कहती हो, उनके कारण तुम्हें कठोर प्राण दण्ड दे देना चाहिये। राक्षसराज रावण ने ऐसा कह कर अत्यन्त क्रोध में भर कर सीता से फिर कहना आरम्भ किया। वह बोला कि तुम्हारे लिये जो समय सीमा मैंने

निश्चित की है, उसके अनुसार मुझे दो मास तक और प्रतीक्षा करनी है। उसके बाद हे सुन्दरी! तुम्हें मेरी शय्या पर आना होगा।

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वांप्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः।। ९।।
तां भर्त्स्यमानां सम्प्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः।। १०।।
ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वक्त्रैस्तथापराः।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा।। ११।।
ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम्।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम्।। १२।।

दो मास के पश्चात् यदि तुम मुझे पति के रूप में नहीं चाहोगी, तो मेरे रसोइये मेरे कलेवे के लिये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। राक्षसराज के द्वारा जानकी को इस प्रकार धमकाया जाता हुआ देख कर रावण के साथ आयीं वे देवों और गन्धर्वों की कन्याएँ विषाद करने लगीं, उनकी आँखें विषाद के कारण विकृत रूप वाली हो गयीं। उनमें से किसी ने ओठों के संकेत से, किसी ने आँखों के संकेत से, तो किसी ने मुख के इशारे से राक्षस के द्वारा धमकायी जाती हुई सीता को आश्वासन दिया। उनके द्वारा आश्वासित होने पर राक्षसाधिपति रावण को सीता ने सदाचार और शौर्य के स्वाभिमान से युक्त यह प्रत्युत्तर दिया कि–

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद् विगर्हितात्।। १३।।
राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः।
उक्तवानसि यत् पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे।। १४।।
यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितौ वने।
तथा द्विरदवद् रामस्त्वं नीच शशवत् स्मृतः।। १५।।
स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे।
चक्षुषो विषये तस्य न यावदुपगच्छसि।। १६।।

वास्तव में कोई भी मनुष्य तेरी भलाई नहीं चाहता, जो तुझे इस निन्दनीय कर्म से रोकता नहीं है। हे दुष्ट राक्षस! अमित तेजस्वी राम की पत्नी से तूने जो पाप युक्त बात कही है, उससे तेरा छुटकारा कहाँ जा कर होगा। जैसे वन में मस्त हाथी और खरगोश एक दूसरे से युद्ध करना चाहें, उसी तरह से खरगोश के समान तू हाथी के समान श्रीराम के साथ युद्ध करना चाहता है। तू इक्ष्वाकुवंश के स्वामी राम के लिये अपशब्द कहते हुए लज्जित नहीं होता, जब तक तू उनकी आँखों के सामने नहीं आ जाता है, तभी तक कुछ भी कह ले।

इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः।। १७।।
तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति।। १८।।
नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः।। १९।।
शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद् दारचौर्यं त्वया कृतम्।। २०।।

हे अनार्य! मुझे बुरी निगाह से देखते हुए तेरी ये दोनों काली और पीली आँखें, भूमि पर क्यों नहीं गिर जातीं। मैं उस धर्मात्मा की पत्नी हूँ और राजा दशरथ की पुत्रवधु हूँ। हे पापी! मुझसे बुरी बातें कहते हुए तेरी जिह्वा क्यों नहीं गल जाती। मैं उस धीमान श्रीराम की भार्या अपहरण नहीं की जा सकती थी, इसमें संशय नहीं है कि भगवान ने तेरे वध के लिये यह कार्य होने दिया है। तू शूर है, कुबेर का भाई है, तेरे पास सेना भी बहुत है, फिर तूने राम को दूर हटा कर उनकी पत्नी को क्यों चुराया?

सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत।। २१।।
अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन्।। २२।।
अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यमद्य त्वां सूर्यः संध्यामिवौजसा।। २३।।
इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः।
संददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः।। २४।।

सीता की बातें सुन कर राक्षसों का राजा रावण अपनी क्रूर आँखें टेढ़ी करके जानकी की तरफ देखने लगा। क्रोध से लाल आँखों वाला वह, सीता की तरफ देखता हुआ और साँप के समान साँस लेता हुआ बोला कि अन्याय से युक्त और धन से हीन पुरुष से प्रेम करने वाली! आज मैं तुझे उसी प्रकार नष्ट कर देता हूँ जैसे सूर्य अपने प्रकाश से प्रातः कालीन सन्ध्या को नष्ट कर देता है। सीता से ऐसा कह कर शत्रुओं को रुलाने वाला राजा रावण उन भयानक दिखाई देने वाली राक्षसियों की तरफ देखने लगा।

यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी।
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा।। २५।।

प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः।
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च।। २६।।
इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः।
काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत।। २७।।

वह उनसे बोला कि तुम सारी मिल कर ऐसा प्रयत्न करो, जिससे कि यह जनकपुत्री सीता मेरे बस में जल्दी हो जाये। तुम सभी तरह के प्रतिकूल, अनुकूल, साम, दाम, भेद और दण्ड का भी भय दिखा कर यह कार्य करो। काम और क्रोध से युक्त आत्मा वाला वह राक्षसेन्द्र इस प्रकार आज्ञा दे कर जानकी को बार-बार देखता हुआ गर्जने लगा।

उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी।
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत्।। २८।।
मया क्रीडा महाराज सीतया किं तवानया।
विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर।। २९।।
अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते।
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना।। ३०।।
एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली।
प्रहसन् मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत।। ३१।।

तब धान्यमालिनी नाम की राक्षसी शीघ्र ही रावण के पास आयी और उसका आलिंगन करके बोली कि हे महाराज राक्षसेश्वर! इस कान्तिहीन और दीन, सामान्य मानव की कन्या सीता से आप क्या करेंगे? आप मेरे साथ आनन्द लीजिये। जो स्त्री कामना नहीं रखती, उसकी कामना करने वाले का शरीर सन्तप्त ही होता है, पर कामना रखने वाली की कामना करने से सुन्दर सुख की प्राप्ति होती है। उस राक्षसी के द्वारा ऐसा कहे जाने और उसे वहाँ से हटाये जाने पर वह बादलों के समान काला, बलवान राक्षस हँसता हुआ वहाँ से लौट गया।

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां
प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः
स्वमेव वेश्म प्रविवेश रावणः।। ३२।।

इस प्रकार अपने धर्म में लगी हुई, स्थिर चित्त और काँपती हुई, मिथिलेश कुमारी सीता को धमका कर वह काम से मोहित रावण अपने महल में प्रविष्ट हो गया।

बीसवाँ सर्ग

राक्षसियों द्वारा सीता को समझाना, और धमकाना, तथा सीता द्वारा मना करना।

निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः।। १।।
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।
परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन्।। २।।
पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः।
दशग्रीवस्य भार्या त्वं सीते न बहु मन्यसे।। ३।।

राक्षसराज के वहाँ से निकल कर अपने अन्तःपुर में चले जाने पर, वे भयानक रूप वाली राक्षसियाँ चारों तरफ से दौड़ कर सीता जी के पास आयीं। क्रोध में मूर्च्छित सी हो रहीं वे राक्षसियाँ सीता जी के पास आ कर कठोर वचनों से यह कहने लगीं कि हे सीते! तुम पुलस्त्यवंशी सर्वश्रेष्ठ महात्मा दशग्रीव रावण की पत्नी बनना बड़ी बात नहीं समझतीं।

ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा।। ४।।
वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्या त्वं किं न लिप्ससे।। ५।।
प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः।
सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः।। ६।।
समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम्।
अन्तःपुरं तदुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः।। ७।।

तब हरिजटा नाम की राक्षसी, जिसकी आँखें बिल्ली के समान थीं, गुस्से से अपनी आँखें फाड़ कर बोली, जो पराक्रम से भरपूर हैं, युद्ध में पीछे न हटने वाले और तेजस्वी हैं, शूरवीर हैं, ऐसे पुरुष की भार्या बनना तुम क्यों नहीं चाहती? महा बलशाली रावण अपने नाना प्रकार के रत्नों से और हजारों स्त्रियों से समृद्ध अन्तःपुर को तथा सारी स्त्रियों से बहुमान्य और प्रिय पत्नी को छोड़ कर तुम्हारे पास आयेंगे।

अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
असकृद् भीमवीर्येण नागा गन्धर्वदानवाः।। ८।।
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः।

तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः।। ९।।
किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे।
ततस्तां दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।। १०।।
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि।। ११।।
साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि।
गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा न भविष्यसि।। १२।।

एक दूसरी विकटा नाम की राक्षसी कहने लगी कि जिन्होंने अपने भयानक विक्रम से नाग, गन्धर्व, दानवों को अनेक बार युद्ध में जीता है, वे तुम्हारे पास आये थे। अरी अधम! उस सर्वसमृद्ध राक्षसेन्द्र महात्मा रावण की भार्या बनना तुम क्यों नही चाहती? उसके पश्चात दुर्मुखी नाम की राक्षसी बोली कि हे भामिनी! तुम इन राजाओं के राजा राक्षस राज रावण की पत्नी बनने की बुद्धि क्यों नहीं बनाती हो? जो तुम्हारे लिये यथार्थ में अच्छी बात है, उसे तुमसे अच्छी तरह से कह दिया गया है। हे सुन्दर मुस्कराहटवाली देवी! हमारे इन वाक्यों को ग्रहण कर लो, नहीं तो तुम जीवित नहीं बचोगी।

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः।
परुषं परुषानर्हामूचुस्तद्वाक्यमप्रियम्।। १३।।
किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे।। १४।।
प्रत्याहर मनो रामान्नैवं जातु भविष्यति।
त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम्।। १५।।
भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम्।

उसके बाद कठोर वचन न सुनने योग्य उस सीता से वे सारी भयानक मुखवाली राक्षसियाँ कठोर और अप्रिय वचन कहने लगीं कि हे सीते! तुम सारे प्राणियों के लिये मनोरम, बहुमूल्य शय्याओं से युक्त अन्तःपुर में रहने के लिये स्वीकार क्यों नहीं करतीं? तुम राम से अपना मन हटा लो, नहीं तो तुम कभी भी जीवित नहीं रह सकतीं। तुम तीनों लोकों की सम्पत्ति का भोग करने वाले राक्षसों के राजा रावण को पति रूप में पा कर सुख के साथ विहार करो।

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा।। १६।।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत्।
यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरत संगताः।। १७।।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति।
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।। १८।।
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा।। १९।।
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता।। २०।।
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता।

राक्षसियों की बातें सुन कर कमलनयनी सीता आँखों में आँसू भर कर कहने लगी कि तुम सब मिल कर मुझसे जो यह लोक विरुद्ध बात कर रही हो, यह पाप पूर्ण बात मेरे मन में नहीं ठहरती है। मेरे पति चाहे दीन हैं, या राज्यहीन हैं, वे ही मेरे स्वामी हैं। जैसे लोपामुद्रा ने अगस्त्य में, सुकन्या ने च्यवन में, सावित्री ने सत्यवान में, श्रीमती ने कपिल में, मदयन्ती ने सौदास में, केशिनी ने सगर में, भीमकुमारी दमयन्ती ने अपने पति निषध नरेश नल में अनुराग रखा वैसे ही मैं अपने पति इक्ष्वाकुश्रेष्ठ राम में अनुरक्त हूँ।

सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः।। २१।।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः।
अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्शिंशपाद्रुमे।। २२।।
सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत् कपिः।
ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान्।। २३।।
नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम्।

सीता की बातों को सुन कर रावण से प्रेरित वे राक्षसियाँ क्रोध से मूर्च्छित सी हो कर कठोर वाक्यों द्वारा उसे धमकाने लगीं। उस समय वानर हनुमान शीशम के वृक्ष में छिप कर और मौन रह कर सीता को धमकाती हुई उन राक्षसियों की बातें सुन रहे थे। वे राक्षसियाँ बहुत क्रोध में थीं, वे तुरन्त अपने फरसों को हाथ में ले कर बोलीं कि यह राक्षसों के राजा रावण जैसे पति के योग्य नहीं है।

सा भर्त्स्यमाना भीमाभिः राक्षसीभिर्वराङ्गना।। २४।।
सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत्।
ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता।। २५।।
अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता।
तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरवासिनीम्।। २६।।
भर्त्सयाञ्चक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समन्ततः।
ततस्तु विनता नामराक्षसी भीमदर्शना।। २७।।
अब्रवीत् कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी।

तब वह सुन्दरी उन भयानक राक्षसियों द्वारा धमकायी जाती हुई, अपने आँसुओं को पोंछती हुई उसी शीशम के वृक्ष के नीचे आ गई, जिसमें हनुमान जी छिपे हुए थे। राक्षसियों से घिरी हुई, शोक मग्न, विशाल नेत्रों वाली

सीता, उस शीशम के वृक्ष के नीचे आ कर बैठ गयी। मैले वस्त्र धारण करने वाली दुर्बल और दीन मुख वाली उस सीता को वे भयानक राक्षसियाँ चारों तरफ से घेर कर धमकाने लगीं। तब विनता नाम की एक भयंकर दिखाई देने वाली, क्रोध की साक्षात आकृति, भीतर की ओर धँसे पेट वाली भयानक राक्षसी बोली कि—

सीते पर्याप्तमेतावद् भर्तुः स्नेहः प्रदर्शितः।। २८।।
सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते।
परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः।। २९।।
ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि।
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम्।। ३०।।
विक्रान्तमापतन्तंच सुरेशमिव वासवम्।
दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम्।। ३१।।
मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय।

हे सीते! तू ने अपने पति के लिये अपना प्रेम बहुत दिखा दिया, पर हे कल्याणी! अधिकता हर जगह संकट को पैदा करती है। तुम्हारा कल्याण हो। तुमने मानवोचित विधान का बहुत पालन कर लिया। मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ हे मैथिली! मेरी भी हितकारी बात कहने वाली की बात मानो। तुम सारे राक्षसों के प्रति पराक्रमी, आक्रमण कर्ता, इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली रावण को पति के रूप में स्वीकार करो। दीन हीन राम को छोड़ कर उदार, त्यागी, और सबसे प्रिय बोलने वाले रावण का आश्रय लो।

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता।। ३२।।
अद्यप्रभृति लोकानां सर्वेषामीश्वरी भव।
किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा।। ३३।।
एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि।
अस्मिन् मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम्।। ३४।।
अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा।
अब्रवीत् कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तर्जती।। ३५।।
बह्वन्यप्रतिरूपाणि वचनानि सुदुर्मते।
अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि।। ३६।।

हे वैदेही! आज से तुम अलौकिक अंगराग और आभूषणों से विभूषित हो कर सारे लोकों की स्वामिनी बन जाओ। हे वैदेही! अब तुम्हें उस दीन हीन राम से, जिसकी आयु अब समाप्त हो चली है, क्या मिलेगा। मेरे कहे इस वाक्य को यदि तू नहीं मानेगी तो हम सब इसी समय तुम्हें खा जायेंगी। तब एक दूसरी विकटा नाम की राक्षसी, जिसके स्तन लम्बे थे। क्रोध में भर कर और मुक्का तान कर धमकाती हुई बोली कि हे दुष्ट बुद्धि वाली मैथिली! हमने दया और कोमलता के कारण तुम्हारी बहुत सी उलटी बातें सहन कर ली हैं।

न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरस्कृतम्।
आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम्।। ३७।।
रावणान्तःपुरे घोरे प्रविष्टा चासि मैथिलि।
रावणस्य गृहे रुद्धा अस्माभिस्त्वभिरक्षिता।। ३८।।
अलमश्रुनिपातेन त्यज शोकमनर्थकम्।
भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजन्ती नित्यदैयताम्।। ३९।।
सीते राक्षसराजेन परिक्रीड यथासुखम्।
जानीमहे यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम्।। ४०।।

हमने तुम्हें समयोचित और तुम्हारी भलाई की बातें कहीं हैं। तुम समुद्र के पार यहाँ, जहाँ दूसरा कोई आ नहीं सकता, लायी गयी हो। हे मैथिली! तुम रावण के घोर अन्तःपुर में रखी गयी हो। तुम रावण के घर में कैद हो, और हमारे द्वारा तुम्हारी चौकसी की जा रही है। इसलिये आँसू बहाना बन्द करो। अनर्थकारी शोक को छोड़ दो, और हमेशा की इस दीनता को छोड़ कर प्यार और प्रसन्नता को धारण करो। हे सीते! तुम राक्षसराज के साथ सुखपूर्वक विहार करो। हे सुन्दरी देवी! हे भीरु! हम जानती हैं कि स्त्रियों का यौवन स्थायी नहीं होता।

यावन्न ते व्यतिक्रामेत् तावत् सुखमवाप्नुहि।
उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च।। ४१।।
सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे।
स्त्रीसहस्राणि ते देवि वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि।। ४२।।
उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि।
यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत् करिष्यसि।। ४३।।

जब तक तुम्हारा यह यौवन ढल न जाये तब तक हे मतवाली आँखों वाली! तुम सुख को भोग लो। राक्षसराज के साथ सुन्दर बागों पर्वतों और उद्यानों में विहार करो। हे सुन्दरी देवी! हजारों स्त्रियाँ तुम्हारे आधीन रहेंगी। हे मैथिली! यदि तुम मेरी बात का पूरा पालन नहीं करोगी तो मैं तुम्हारे हृदय को निकाल कर खा जाऊँगी।

ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रूरदर्शना।
भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत्।। ४४।।
इमां हरिणशावाक्षीं त्रासोत्कम्पपयोधराम्।
रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौर्हृदो मे महानयम्।। ४५।।
यकृत्प्लीहं महत् क्रोडं हृदयं च सबन्धनम्।
गात्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः।। ४६।।

तब चण्डोदरी नाम की क्रूरता पूर्वक देखने वाली राक्षसी अपने बड़े शूल को घुमाती हुई यह बोली कि इस हरिण शावक के समान आँखों वाली को जब रावण के द्वारा हर कर लाया गया था और डर के कारण इसके स्तन हिल रहे थे, तब इसे देख कर मेरी बड़ी अभिलाषा हुई थी कि मैं इसके जिगर, तिल्ली, विशाल वक्षस्थल, मांसपेशियों के बन्धन, सहित हृदय को, दूसरे शरीर के अंगों को और सिर को खा लूँ। मेरी इस समय भी यही इच्छा है।

ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
कण्ठमस्या नृशंसायाः पीडयामः किमास्यते।। ४७।।
निवेद्यतां ततो राज्ञे मानुषी सा मृतेति ह।
नात्र कश्चन संदेहः खादतेति स वक्ष्यति।। ४८।।

ततस्त्वजामुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
विशस्येमां ततः सर्वान् समान् कुरुत पिण्डकान्।। ४९।।
विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते।
पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधं बहु।। ५०।।

तब प्रघसा नाम की राक्षसी बोली कि इस क्रूर हृदय के गले को हम घोट दें, बैठी क्यों हैं? उसके बाद राजा से निवेदन कर देना कि वह मानुषी मर गयी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे यही कहेंगे कि तुम उसे खा जाओ। तब अजामुखी नाम की राक्षसी कहने लगी कि मुझे यह विवाद अच्छा नहीं लगता। हम इसे काट कर बराबर टुकड़े कर लेती हैं और आपस में बाँट लेंगी। जल्दी से अनेक प्रकार के पेय पदार्थ और मालाएँ मँगवा लो।

इक्कीसवाँ सर्ग

शोक सन्तप्त सीता का विलाप करना और प्राण त्याग करने के लिये उद्यत होना।

अथ तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु।
राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा।। १।।
सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा।
न शर्म लेभे शोकार्ता रावणेनेव भर्त्सिता।। २।।
सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति।। ३।।
सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च।। ४।।

जब वे दुष्ट राक्षसियाँ इस प्रकार बहुत कठोर और दुखदायी बातें कर रहीं थी, तब जनक पुत्री सीता रो रही थी। राक्षसियों के बीच में बैठी वह शोक पीड़ित देव पुत्री के समान सुन्दरी सीता रावण के द्वारा धमकायी जाने की तरह अब भी शान्ति को प्राप्त नहीं कर रही थी। वह अपने आँसुओं के जल से अपने स्थूल स्तनों को स्नान कराती हुई, और चिन्ता करती हुई भी अपने शोक का पार नहीं पा रही थी। शोक से पीड़ित लम्बी साँसें लेती हुई, क्रोध से मूर्च्छित सी हुई वह दुखी सीता उस समय आँसू बहाती हुई विलाप करने लगी कि–

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च।
हा श्वश्रूर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी।। ५।।
लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा।। ६।।
यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता।। ७।।
भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता।
सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा।। ८।।

हा राम, हा लक्ष्मण, हा मेरी सास कौशल्या, हा सुमित्रा, ऐसे कहते हुए, शोक से आर्त वह भामिनी सीता रोने लगी। संसार में पंडितों के द्वारा कही हुई यह बात सत्य है कि जब तक समय प्राप्त न हो किसी स्त्री या पुरुष की मृत्यु नहीं होती। इसीलिये मैं यहाँ इन क्रूर राक्षसियों के द्वारा सतायी जाने और राम से रहित हो जाने पर भी जी रही हूँ, जबकि मुझे एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रहना चाहिये था। पति के दर्शनों से वंचित और राक्षसियों के बस में पड़ी हुई मैं पानी की टक्कर से नदी के कटते हुए किनारों की तरह क्षीण होती जा रही हूँ।

तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम्।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम्।। ९।।
सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम्।। १०।।
कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम्।
तेनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं सुदारुणम्।। ११।।
जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता।
राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नासाद्यते मया।। १२।।

वे लोग धन्य हैं, जो कमलनयन सिंह के समान गति और पराक्रम वाले, कृतज्ञ, और प्रियवादी मेरे स्वामी को इस समय देख रहे हैं। उन आत्मज्ञानी राम से रहित हो कर मेरा जीवित रहना उसी तरह दुर्लभ है जैसे तीव्र विष को पी कर किसी का जीवित रहना कठिन होता है। पता नहीं मैंने पिछले जन्म में कौन सा महा पाप किया था जिससे मुझे यह बड़ा भयानक घोर दुख प्राप्त हो रहा है। राक्षसियों के रक्षा करते हुए मुझे राम की प्राप्ति नहीं हो सकती और मैं महान शोक से घिर गयी हूँ, इसलिये अब मैं अपने जीवन को छोड़ना चाहती हूँ।

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम्।
न शक्यं यत् परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम्।। १३।।
प्रसक्ताश्रुमुखी त्वेवं ब्रुवती जनकात्मजा।
अधोगतमुखी बाला विलप्तुमुपचक्रमे।। १४।।
उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती।
उपावृत्ता किशोरीव विचेष्टन्ती महीतले।। १५।।
राघवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामरूपिणा।
रावणेन प्रमथ्याहमानीता क्रोशती बलात्।। १६।।

इस मनुष्य जीवन को धिक्कार है, इस परवशता को भी धिक्कार है, जहाँ अपनी इच्छा से जीवन का त्याग नहीं किया जा सकता। वह बाला जनकपुत्री आँसुओं से अत्यन्त भरे हुए मुख से इस प्रकार कहती हुई नीचे मुख करके विलाप करने लगी। वह उस समय जैसे उन्मत्त हो गयी हो, जैसे पागलपन से युक्त हो गयी हो, जैसे चित्त में भ्रम पैदा हो गया हो, वैसे शोक करती हुई चक्कर खा कर गिरी हुई बछेड़ी के समान भूमि पर पड़ी हुई छटपटा रही थी। वह कहने लगी कि हाय उस इच्छानुसार रूप बनाने वाले राक्षस ने राम को मेरी तरफ से असावधान कर दिया तो रावण मुझ रोती चिल्लाती हुई को जबर्दस्ती अपने काबू में कर मुझे वहाँ से उठा कर यहाँ ले आया।

राक्षसीवशमापन्ना भर्त्स्यमाना च दारुणम्।
चिन्तयन्ती सुदुःखार्ता नाहं जीवितुमुत्सहे।। १७।।
नहि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न न भूषणैः।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम्।। १८।।
अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम्।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते।। १९।।
धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका।। २०।।

अब मैं राक्षसियों की कैद में हूँ। वे मुझे भयानक रूप से धमकाती हैं। अब मैं दुख पीड़ित तथा चिन्ता से युक्त हो कर जीवित नहीं रहना चाहती। बिना महारथी राम के राक्षसियों के बीच में रहते हुए मुझे न तो जीने की इच्छा है, न धन की और न अलंकारों की। मेरा हृदय वास्तव में लोहे का बना हुआ तथा अजर और अमर है जो इतने दुखी होने पर भी फटता नहीं है। मुझ अनार्या और असती को धिक्कार हे, जो राम के बिना होने पर भी मुहूर्त के लिये भी जीवित हूँ। मेरा यह जीवन अब पाप पूर्ण जीवन ही है।

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।। २१।।
प्रत्याख्यानं न जानाति नात्मानं नात्मनः कुलम्।
यो नृशंसस्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति।। २२।।
छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम्।। २३।।
ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात्।। २४।।

उस निन्दित राक्षस रावण को तो मैं बायें पैर से भी स्पर्श नहीं कर सकती, फिर क्या मैं कभी उसे चाह सकती हूँ? पर यह राक्षस अपने निर्दय स्वभाव के कारण न तो मेरे मना करने पर ध्यान देता है और न अपने विषय में सोचता है और न अपने कुल के बारे में विचार करता है, बस मुझसे प्रार्थना ही करना चाहता है। अब अधिक देर तक प्रलाप करने से क्या लाभ है? चाहे मुझे छिन्न भिन्न कर दिया जाये या टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाये, या आग में सेक दिया जाये या जला दिया जाये, पर मैं रावण के पास नहीं जाऊँगी। वे प्रसिद्ध विद्वान्, कृतज्ञ और दयालु और सदाचारी श्रीराम शायद अब मेरे भाग्य के नष्ट हो जाने पर मेरे प्रति निर्दय हो गये हैं।

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश।
एकेनैव निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते।। २५।।
निरुद्धा रावणेनाहमल्पवीर्येण रक्षसा।
समर्थः खलु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे।। २६।।
विराधो दण्डकारण्ये येन राक्षसपुङ्गवः।
रणे रामेण निहतः स मां किं नाभिपद्यते।। २७।।
कामं मध्ये समुद्रस्य लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा।
न तु राघवबाणानां गतिरोधो भविष्यति।। २८।।

जिन्होंने जनस्थान में चौदह हजार राक्षस अकेले ही समाप्त कर दिये, वे अब मेरे पास क्यों नहीं आ रहे हैं। इस कम पराक्रमी राक्षस रावण ने मुझे कैद कर रखा है, मेरे स्वामी निश्चित रूप से युद्ध में राक्षस रावण को मार सकते हैं। जिस राम ने राक्षस श्रेष्ठ विराध को दण्डकारण्य में मारा था। वह अब यहाँ क्यों नहीं आ रहे हैं? यह ठीक है कि यह लंका समुद्र के बीच में है और आक्रमण करने के लिये बहुत कठिन है, पर फिर भी मुझे विश्वास है कि राम के बाणों की गति यहाँ कुण्ठित नहीं होगी।

किं नु तत् कारणं येन रामो दृढपराक्रमः।
रक्षसापहृतां भार्यामिष्टां यो नाभिपद्यते।। २९।।
इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः।
जानन्नपि स तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति।। ३०।।
हृतेति मां योऽधिगत्य राघवाय निवेदयेत्।
गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः।। ३१।।
कृतं कर्म महत् तेन मां तथाभ्यवपद्यता।
तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा।। ३२।।
यदि मामिह जानीयाद् वर्तमानां हि राघवः।
अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम्।। ३३।।

वह कौन सा कारण है, जिसके कारण दृढ़ पराक्रमी राम राक्षस के द्वारा अपहृत अपनी प्यारी पत्नी को छुड़ाने के लिये नहीं आ रहे हैं। मुझे शक है कि लक्ष्मण के बड़े भाई शायद यह नहीं जानते कि मैं यहाँ हूँ। वे तेजस्वी जानते हुए भी अपना तिरस्कार कैसे सह सकते हैं? मेरे हरण के विषय में जो श्रीराम को बता सकते थे, उन जटायु को भी रावण ने युद्ध में मार दिया। उन बूढ़े जटायु ने मुझ पर दया कर रावण के वध के लिये ठहर कर महान कार्य किया। यदि राम मेरे यहाँ होने के बारे में जान जायें तो क्रुद्ध हो कर अपने बाणों से आज ही संसार को राक्षसों से रहित बना दें।

नाजानाज्जीवतीं रामः स मां भरतपूर्वजः।
जानन्तौ तु न कुर्यातां नोर्व्यां हि परिमार्गणम्।। ३४।।
नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः।
देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले।। ३५।।
किं वा मय्यगुणाः केचित् किं वा भाग्यक्षयो हि मे।
या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी।। ३६।।
श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीनाया महात्मना।
रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात्।। ३७।।

भरत के बड़े भाई राम शायद यह नहीं जानते कि मैं जीवित हूँ। यदि जानते होते तो वे अवश्य ही भूमि पर मेरी खोज कराते। निश्चय ही मेरे ही शोक में वे लक्ष्मण के बड़े भाई वीर राम इस भूमि पर शरीर को छोड़ कर परलोक में चले गये हैं, या तो मेरे अन्दर कोई अवगुण है या मेरा भाग्य नष्ट हो गया है जो मैं भामिनी सीता पूजा के योग्य राम से अलग हो गयी हूँ, शत्रु को नष्ट करने वाले, शूर और सरल, सदाचारी महात्मा राम के बिना जीवित रहने से तो मर जाना ही अच्छा है।

अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशनौ।
भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ चरन्तौ वनगोचरौ।। ३८।।
अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।
छद्मना घातितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। ३९।।
साहमेवंविधे काले मर्तुमिच्छामि सर्वतः।
न च मे विहितो मृत्युरस्मिन् दुःखेऽतिवर्तति।। ४०।।
साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम्।। ४१।।

अथवा उस दोनों भाइयों ने शस्त्रों का त्याग कर दिया है अथवा अहिंसा का व्रत लेकर वे फल फूल, मूल खाते हुए वन में विचरण कर रहे हैं अथवा इस दुष्ट राक्षस राज रावण ने छल कपट से उन दोनों शूरवीर भाई राम लक्ष्मण को मरवा दिया है। अब इस प्रकार की परिस्थिति में मैं सब तरफ से मरने की ही इच्छा रखती हूँ, पर इतने भारी दुख के होने पर भी भगवान मेरी मृत्यु नहीं चाहता। फिर भी अपने प्रिय मनस्वी राम से अलग की हुई और इस पापी रावण के बन्धन में पड़ी हुई मैं अपने जीवन को समाप्त कर दूँगी।

नैवास्ति नूनं मम दोषमत्र
वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य ।
भावं न चास्याहमनुप्रदातु–
मलं द्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय।। ४२।।

जैसे द्विज अर्थात् शिक्षित किसी अद्विज अर्थात् अशिक्षित को वेद मन्त्र का उपदेश नहीं दे सकता उसी प्रकार मैं इस अप्रिय दर्शन राक्षस को अपना प्रेम नहीं दे सकती। इसलिये मैं अब इसके द्वारा मारी जाने वाली हूँ, अतः आत्महत्या करने में मुझे कोई दोष नहीं है।

तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे
गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः।

नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः
शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः।।४३।।

जैसे विशेष परिस्थिति में शल्य चिकित्सक गर्भ में विद्यमान शिशु के जन्म लेने से पहले ही टुकड़े कर देता है वैसे ही उन प्रजानाथ राम के आने से पहले ही यह अनार्य राक्षस राज तीक्ष्ण शस्त्रों से मेरे अंगों का शीघ्र ही छेदन कर देगा।

दुःखं बतेदं ननु दुःखिताया
मासौ चिरायाभिगमिष्यतो द्वौ।
बद्धस्य वध्यस्य यथा निशान्ते
राजोपरोधादिव तस्करस्य।।४४।।

यह बड़े दुख की बात है कि मुझ दुखिया के दो मास जल्दी ही समाप्त हो जायेंगे। राजा की कैद में पड़े हुए और प्रातः होते ही फाँसी हो जाने वाले कैदी की जो अवस्था होती है, वही अब मेरी भी हो रही है।

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे
हा राममातः सह मे जनन्यः।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या
महार्णवे नौरिव मूढवाता।।४५।।

हा राम, हा लक्ष्मण, हा सुमित्रे, हा राममाता कौशल्या, हा मेरी माताओं! मैं यह मन्दभागिनी महान समुद्र में तूफान में फँसी हुई नाव के समान विपत्ति में पड़ी हुई हूँ।

तरस्विनौ धारयता मृगस्य
सत्त्वेन रूपं मनुजेन्द्रपुत्रौ।
नूनं विशस्तौ मम कारणात् तौ
सिंहर्षभौ द्वाविव वैद्युतेन।।४६।।

उस मृग का रूप धारण करने वाले प्राणी ने मेरे कारण से उन वेगशाली दोनों आर्यपुत्रों को ऐसे ही मार दिया होगा जैसे विद्युत् के द्वारा श्रेष्ठ सिंह मार दिये जायें।

नूनं स कालो मृगरूपधारी
मामल्पभाग्यां लुलुभे तदानीम्।
यत्रार्यपुत्रौ विससर्ज मूढा
रामानुजं लक्ष्मणपूर्वजं च।।४७।।

वास्तव में मृग का रूप धारण किये हुए काल ने ही मुझ खोटे भाग्य वाली को उस समय ललचाया था, जब मुझ मूढ़ नारी ने दोनों आर्यपुत्रों राम के छोटे भाई और लक्ष्मण के बड़े भाई को उसके पीछे भेज दिया।

हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो
हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च
वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम्।।४८।।

हा सत्यव्रत, लम्बी भुजाओं वाले राम, हा पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाले, हा संसार के हितकारी और प्रिय! आप नहीं जानते कि मैं राक्षसों के द्वारा मारी जाने वाली हूँ।

अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च
भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे।
पतिव्रतात्वं विफलं ममेदं
कृतं कृतघ्नेष्विव मानुषाणाम्।।४९।।

मेरी यह एक ही देवता की उपासना, क्षमा, भूमि पर शयन, धर्म के नियमों का पालन करना, पतिव्रत का पालन करना, ये सब ऐसे ही निष्फल हो गये, जैसे कृतघ्न व्यक्तियों के प्रति किये हुए उपकार निष्फल हो जाते हैं।

मोघो हि धर्मश्चरितो ममायं
तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थकम्।
या त्वां न पश्यामि कृशा विवर्णा
हीना त्वया सङ्गमने निराशा।।५०।।

मेरा धर्म पालन व्यर्थ हो गया। मेरा एक पत्नीत्व भी निरर्थक हो गया, जो आपको नहीं देख पा रही हूँ। मैं कमजोर, कान्तिहीन, और दीन हो गयी हूँ। मुझे अब आपसे मिलने की आशा नहीं रही।

पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा
वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च ।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिः
संरंस्यसे वीतभयः कृतार्थः।।५१।।

जब आप पिता की आज्ञा नियम पूर्वक पूरी कर वन से लौटेंगे और आपका व्रत पूरा हो जाएगा, तब मैं समझती हूँ कि आप निर्भय और कृतार्थ हो कर दूसरी विशाल आँखों वाली स्त्रियों के साथ रमण करेंगे।

अहं तु राम त्वयि जातकामा
चिरं विनाशाय निबद्धभावा।
मोघं चरित्वाथ तपो व्रतं च
त्यक्ष्यामि धिग्जीवितमल्पभाग्याम्।।५२।।

मैं तो हे राम! तुममें ही अनुरागिणी हूँ। मैंने अपने विनाश के लिये ही आपसे इतने लम्बे समय से प्रेम

किया है। मैंने जो भी तप और व्रतों का पालन किया था, वे सब व्यर्थ हो गये। मुझ अल्प भाग्यवाली को धिक्कार है। मैं अब इस जीवन का त्याग कर दूँगी।

संजीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं
विषेण शस्त्रेण शितेन वापि।
विषस्य दाता न तु मेऽस्ति कश्चि–
च्छस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य।।५३।।

मुझे अब अपने जीवन को विषपान के द्वारा या तीखे बाण के द्वारा शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये। पर यहाँ राक्षस के घर में मुझे कोई विष को देने वाला या शस्त्र को देने वाला भी नहीं है।

शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य
सीताथ वेणीग्रथनं गृहीत्वा।
उद्बद्ध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्र–
महं गमिष्यामि यमस्य मूलम्।।५४।।

शोक से अभितप्त सीता ने तब अपनी वेणी को पकड़ कर और अनेक प्रकार से सोच कर यह निश्चय किया कि इस वेणी में मजबूत गाँठ बाँध कर मैं इसके द्वारा शीघ्र ही मृत्युलोक में पहुँच जाऊँगी।

बाईसवाँ सर्ग

सीता जी से वार्तालाप प्रारम्भ करने के विषय में हनुमान जी का विचार करना।

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं सुश्राव तत्त्वतः।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः।। १।।
यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया।। २।।
चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षता।
गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया।। ३।।
राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयं निरीक्षिता।
राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च।। ४।।

पराक्रमी हनुमान जी ने भी सीता जी के साथ घटने वाली सारी बातें यथार्थ रूप से सुनी और इसके बाद वे वानर जाति के मनुष्य अनेक प्रकार की चिन्ताएँ अर्थात् सोच विचार करने लगे। वे सोचने लगे कि जिस सीता को हजारों और दसियों हजार वानर लोग सारी दिशाओं में ढूँढ रहे हैं, उसे मैंने पा लिया है। स्वामी के द्वारा गुप्तचर के रूप में नियुक्त मैंने गुप्त रूप से शत्रु की शक्ति का पता लगाने के लिये विचरण करते हुए मैंने राक्षसों की शक्ति को भी देख लिया है और इस नगरी लंका का भी विशेष रूप से निरीक्षण कर लिया है। राक्षसाधिपति रावण के प्रभाव को भी समझ लिया है।

यथा तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः।
समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम्।। ५।।
अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।
अदृष्टदुःखां दुःखस्य न ह्यन्तमधिगच्छतीम्।। ६।।
यदि ह्यहं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम्।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद् गमनं भवेत्।। ७।।
गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी।
परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत्।। ८।।

उन अमित प्रभाव वाले, सब प्राणियों पर दया करने वाले श्रीराम की इन भार्या को, जो पति के दर्शन की आकाँक्षिणी हैं, जैसे आश्वासन दे सकूँ, वैसे ही अब मुझे करना चाहिये। मैं पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली इनको इसलिये आश्वासन दूँगा क्योंकि इन्होंने पहले कभी दुख देखा नहीं है और इस समय अपने दुख के अन्त को नहीं देख पा रही हैं। यदि मैं इन सती साध्वीं को, जो शोक के कारण अचेत सी हो रही है बिना आश्वासन दिये चला जाऊँगा तो मेरा वह जाना दोष वाला होगा। मेरे चले जाने पर यह यशस्विनी राजकुमारी जानकी अपने बचाव को न देखती हुई अपने प्राणों का त्याग कर सकती है।

यथा च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः।
समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः।। ९।।
निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षमं चाभिभाषितम्।
कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम्।। १०।।
रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद् वचः।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम्।। ११।।
यदि वोद्योजयिषमि भर्तारं रामकारणात्।
व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति।। १२।।

जैसे पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले, महान भुजाओं वाले राम को, जो सीता के दर्शन के अभिलाषी हैं, सान्त्वना देना उचित है, वैसे ही इन्हें सान्त्वना देनी

चाहिये। राक्षसियों के सामने तो सीता जी से बात करना ठीक नहीं होगा, इसलिये यह कार्य कैसे किया जाये? यही कठिनाई मेरे सामने है। राम यदि मुझ से पूछेंगे कि सीता ने क्या कहा, तो इस सुन्दरी से बात किये बिना मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा? यदि मैं सीता जी को धीरज बँधाये बिना लौट जाऊँ और अपने स्वामी सुग्रीव को श्रीराम के कार्य के लिये उत्तेजित करूँ तो उनका भी सेना सहित यहाँ आना व्यर्थ हो जाएगा, क्योंकि सीता जी उससे पहले ही अपने प्राणों का त्याग कर देंगी।

अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थितः।
शनैराश्वासयाम्यद्य संतापबहुलामिमाम्।। १३।।
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।। १४।।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता।। १५।।
सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा।
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासमुपैष्यति।। १६।।

इसलिये राक्षसियों के बीच में रहते हुए भी, मैं अवसर पा कर आज बहुत सन्ताप वाली इनको (सीता जी) धीरे-धीरे सान्त्वना देता हूँ। यदि शिक्षितों के समान मैं शुद्ध संस्कृत भाषा का प्रयोग करता हूँ तो यह सीता मुझे रावण समझ कर भयभीत हो जायेंगी। इसलिये मुझे अवश्य ही सामान्य मनुष्यों वाली अर्थात व्याकरण शुद्धि की अपेक्षा केवल अर्थ प्रकट करने वाली भाषा का प्रयोग करना चाहिये। अन्यथा मैं इस अनिन्दिता को सान्त्वना नहीं दे सकता। यदि मैं अचानक इनके सामने जाऊँ तो यह जानकी मेरे रूप को देख कर तथा मेरी बात सुन कर जो पहले ही राक्षसों से डराई हुई है, पुनः भयभीत हो जायेगी।

ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी।
जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम्।। १७।।
सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः।
नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः।। १८।।
ततः कुर्युः समाह्वानं राक्षस्यो रक्षसामपि।
राक्षसेन्द्रनियुक्तानां राक्षसेन्द्रनिवेशने।। १९।।
संरुद्धस्तैस्तु परितो विधमे राक्षसं बलम्।
शक्नुयां न तु सम्प्राप्तुं परं पारं महोदधेः।। २०।।

फिर भय उत्पन्न होने पर ये विशालाक्षी, मनस्विनी सीता मुझे इच्छानुसार रूप बनाने वाला रावण समझ कर चिल्लाने लगेंगी। सीता के चिल्लाने पर मृत्यु के समान भयानक राक्षसियों का समूह तरह-तरह के हथियार ले कर यहाँ आ जायेगा। फिर वे राक्षसियाँ राक्षस राज के महल में राक्षस राज के द्वारा नियुक्त राक्षसों को भी बुला लेंगी। उनके द्वारा चारों तरफ से घिर जाने पर मैं राक्षसों की उस सेना का संहार भी कर दूँ, पर फिर समुद्र के उस पार नहीं पहुँच सकता।

मां वा गृह्णीयुरावृत्य बहवः शीघ्रकारिणः।
स्यादियं चागृहीतार्था मम च ग्रहणं भवेत्।। २१।।
हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमां वा जनकात्मजाम्।
विपन्नं स्यात् ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम्।। २२।।
उद्देशे नष्टमार्गेऽस्मिन् राक्षसैः परिवारिते।
सागरेण परिक्षिप्ते गुप्ते वसति जानकी।। २३।।
विशस्तेवा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि संयुगे।
नाशं पशमि रामस्य सहायं कार्यसाधने।। २४।।

यदि बहुत से फुर्तीले राक्षस मुझे घेर कर पकड़ लें तो मैं कैद कर लिया जाऊँगा और इन सीता जी का मनोरथ भी पूरा नहीं होगा। यदि हिंसा में अभिरुचि रखने वाले राक्षस इस जनक पुत्री को मार दें तो राम और सुग्रीव का इन्हें प्राप्त करने का कार्य नष्ट हो जायेगा। राक्षसों से घिरे हुए इस स्थान का मार्ग दूसरों के लिये अज्ञात है। समुद्र से घिरे हुए इस सुरक्षित स्थान में जानकी रहती है। युद्ध में राक्षसों के द्वारा मुझे मार देने या पकड़ लेने पर राम का कार्य पूरा करने वाले दूसरे सहायक को भी मैं नहीं देख रहा हूँ।

विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः।
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम्।। २५।।
कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम्।
न तु शक्ष्याम्यहं प्राप्तुं परं पारं महोदधेः।। २६।।
असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते।
कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात् प्राज्ञः ससंशयम्।। २७।।
एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे।। २८।।

मैं सोच विचार कर भी किसी दूसरे वानर को नहीं देख रहा हूँ, जो सौ योजन विस्तृत इस सागर को पार कर ले। भले ही मैं हजारों राक्षसों को मार सकता हूँ, पर फिर मैं समुद्र के उस पार नहीं जा सकूँगा। युद्ध निश्चित परिणाम वाले नहीं होते और संशय वाला कार्य मुझे अच्छा नहीं लगता। कौन बुद्धिमान अपने संशय रहित कार्य को संशय वाला बनायेगा? सीता के साथ बात करने में यही महान दोष है, पर बात न करने पर सीता का प्राण त्याग हो जायेगा।

भूताश्चार्था विरुध्यन्ति देशकालविरोधिताः।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा।। २९।।
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः।। ३०।।
न विनश्येत् कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं मम।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत्।। ३१।।
कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च।
इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान् मतिम्।। ३२।।

बने बनाये काम भी अविवेकी दूत को पा कर देश काल के विरुद्ध हो कर नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय के होने पर अँधेरा नष्ट हो जाता है। कर्तव्य और अकर्तव्य के बीच में निश्चित की हुई बुद्धि भी सफल नहीं हो पाती, क्योंकि अपने आपको पंडित समझने वाले दूत कार्य को बिगाड़ देते हैं। किस तरह से मुझ से कोई गलती न हो और कार्य न बिगड़े और समुद्र का पार करना व्यर्थ न हो जाये, किस प्रकार से ये मेरी बात सुन लें और घबरायें नहीं। ऐसा विचार कर बुद्धिमान हनुमान ने एक निश्चित बुद्धि तय की।

राममक्लिष्टकर्माणं सुबन्धुमनुकीर्तयन्।
नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतचेतनाम्।। ३३।।
इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः।
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन्।। ३४।।
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन् गिरम्।
श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे।। ३५।।

उन्होंने निश्चय किया कि जिनकी चेतना अपने बन्धु राम में ही लगी हुई है, उन्हें मैं उनके अच्छे बन्धु और अनायास ही महान कर्म करने वाले राम के गुणों को सुनाऊँगा और उन्हें उद्विग्न नहीं होने दूँगा। मैं विदितात्मा, इक्ष्वाकुओं में श्रेष्ठ राम के विषय में धर्म से युक्त सुन्दर वचनों को सुनाता हुआ, मीठी वाणी बोलता हुआ उनके सारे सन्देश को सुनाऊँगा। सीता जी का जैसे शंका समाधान हो, वैसे ही मैं करूँगा।

इति स बहुविधं महाप्रभावो
जगतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः।
मधुरमवितथं जगाद वाक्यं
द्रुमविटपान्तरमास्थितो हनूमान्।। ३६।।

इस प्रकार बहुत तरह से विचार करके वृक्ष की शाखाओं में छिपे बैठे हुए महा प्रभावशाली हनुमान जी, ने पृथिवी के स्वामी राम की पत्नी को देखते हुए मधुर वाक्यों में यथार्थ बात को कहना आरम्भ कर दिया।

तेईसवाँ सर्ग

हनुमान जी का सीता को सुनाने के लिये राम कथा का वर्णन करना।

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान्।
पुण्यशीलो महाकीर्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः।। १।।
राजर्षीणां गुणश्रेष्ठस्तपसा चर्षिभिः समः।
चक्रवर्तिकुले जातः पुरंदरसमो बले।। २।।
अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः।
मुख्यस्येक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः।। ३।।
पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः।
पृथिव्यां चतुरन्तायां विश्रुतः सुखदः सुखी।। ४।।

इक्ष्वाकु वंश में राजा दशरथ नाम के एक हाथी, रथ और घोड़ों वाले महायशस्वी राजा हुए हैं। वे बड़े पुण्यशील थे और उनकी कीर्ति महान थी। वे गुणों में श्रेष्ठ राजर्षि थे और तपस्या में ऋषियों के समान थे। वे बल में इन्द्र के समान थे। उनका जन्म चक्रवर्ती राजाओं के कुल में हुआ था। वे अहिंसा में प्रेम रखते थे और क्षुद्रता से रहित थे। वे दयालु और सत्य पराक्रमी थे। वे ऐश्वर्यवान और श्रेष्ठ इक्ष्वाकु वंश की शोभा को बढ़ाने वाले थे। वे चारों तरफ समुद्र पर्यन्त विस्तृत पृथिवी में प्रसिद्ध थे। वे स्वयं तो सुखी थे ही, दूसरों को भी सुख देते थे।

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्।। ५।।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परंतपः।। ६।।
तस्य सत्याभिसंधस्य वृद्धस्य वचनात् पितुः।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्रजितो वनम्।। ७।।
तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः।। ८।।

उनका सबसे बड़ा पुत्र, जो उनका प्रिय तथा चन्द्रमा के समान मुख वाला है, वह राम नाम से प्रसिद्ध है और सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ है। वह अपने आचार की रक्षा

तथा अपने स्वजनों की भी रक्षा करने वाले हैं। शत्रुओं को संतप्त करने वाले वे धर्म के भी रक्षक हैं और प्राणियों के भी रक्षक हैं। वे वीर अपने सत्यप्रिय बूढ़े पिता के वचनों से अपनी पत्नी और भाई के साथ वन में वास करने लगे। वहाँ विशाल वन में उन्होंने शिकार करते हुए इच्छानुसार रूप बनाने वाले बहुत से शूरवीर राक्षसों का वध कर दिया।

जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु।। ९।।
वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया।
स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम्।। १०।।
आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम्।
ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरंजयः।। ११।।
आयच्छत् कपिराज्यं तु सुग्रीवाय महात्मने।
सुग्रीवेणाभिसंदिष्टा हरयः कामरूपिणः।। १२।।
दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः।

जन स्थान में राक्षसों के वध तथा खरदूषण के मारे जाने का समाचार सुन कर रावण ने अमर्ष से उनकी पत्नी जानकी का वन में राम को माया मृग के रूप में धोखा दे कर अपहरण कर लिया। तब उस अनिन्दिता देवी सीता को ढूँढते हुए राम ने वन में सुग्रीव नाम के वानर को मित्र रूप में प्राप्त किया। उसके बाद शत्रु के नगर को जीतने वाले राम ने बाली को मार कर वानरों का राज्य महात्मा सुग्रीव को दे दिया। सुग्रीव के आदेश से हजारों इच्छानुसार रूप बनाने वाले वानर लोग सारी दिशाओं में उस देवी को ढूँढते हुए घूम रहे हैं।

अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम्।। १३।।
तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान् प्लुतः।
यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम्।। १४।।
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया।
विररामैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः।। १५।।
जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता।
ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम्।। १६।।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपामन्ववैक्षत।

तब मैंने सम्पाति के कहने से उस विशाल नेत्रों वाली के लिये सौ योजन लम्बे समुद्र को वेगपूर्वक पार कर लिया। अब राम की सीता का जिस प्रकार का रूप, जिस प्रकार का रंग, और जिस प्रकार की कान्ति मैंने सुनी है वैसी ही बातें इनकी हैं, जिन्हें मैंने दिखा है। वे वानर श्रेष्ठ हनुमान ऐसा कह कर चुप हो गये। सीता को भी हनुमान जी की ये बातें सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ। तब वह घुँघराले और सुन्दर केशों वाली भीरु बालों से ढके अपने मुख को ऊँचा उठा कर शीशम के वृक्ष की तरफ देखने लगी।

निशाम्य सीता वचनं कपेश्च
दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती।। १७।।

हनुमान जी के वचन सुन कर सीता को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सम्पूर्ण आत्मा से राम का स्मरण करती हुई सारी दिशाओं में देखने लगीं।

सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्ता–
न्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम्।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं
वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम्।। १८।।

तब उन्होंने ऊपर नीचे दायें बायें सब तरफ देखते हुए उस वानरराज के मन्त्री, अचिन्त्य बुद्धि, पवनपुत्र हनुमान को उदय होते हुए सूर्य के समान देखा।

चौबीसवाँ सर्ग

सीता का तर्क वितर्क तथा हनुमान जी को अपना परिचय देना।

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम्।। १।।
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम्।
फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम्।। २।।
साथ दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदवस्थितम्।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी।। ३।।

तब श्वेत वस्त्र धारी, विद्युत् के रंग के समान पिंगल वर्ण, अशोक के फूलों के गुच्छे के समान कान्ति वाले, तप्त सुवर्ण के समान नेत्रों वाले, प्रिय बोलने वाले और विनय युक्त वानर हनुमान को उन्होंने शाखाओं में छिप कर बैठे हुए देखा। फिर तो उनका चित्त चंचल हो उठा। उन वानरश्रेष्ठ को विनय से युक्त विद्यमान देख

कर भामिनी सीता सोचने लगी कि यह स्वप्न तो नहीं है।

स्वप्नो हि नायं नहि मेऽस्ति निद्रा
शोकेन दुःखेन च पीडितायाः।
सुखं हि मे नास्ति यतो विहीना
तेनेन्दुपूर्णप्रतिमाननेन ।।४।।

पर यह स्वप्न तो नहीं हो सकता क्योंकि दुख और शोक से पीड़ित होने के कारण मुझे नींद तो आती ही नहीं है। नींद सुख में आती हैं, पर उस पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले राम से रहित हो कर मुझे सुख कहाँ है।

रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या
विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्था-
मेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि।।५।।

मैं सदा बुद्धि से भी राम के बारे में सोचती रहती हूँ, और उन्हीं के बारे में कहती रहती हूँ। इसलिये उन्हीं के अनुरूप उन्हीं का अर्थ बताने वाली इस कथा को देख सुन रही हूँ।

अहं हि तस्याद्य मनोभवेन
सम्पीडिता तद्गतसर्वभावा।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव
तथैव पश्यामि तथा शृणोमि।।६।।

मैं अपने मन के विचारों से उन्हीं राम की हूँ। मेरी सारी प्रेम भावनाएँ भी उन्हीं के प्रति हैं। उन्हीं के वियोग से मैं पीड़ित हूँ। सदा मैं उन्हीं के विषय में सोचती रहती हूँ। इसलिये उसी के अनुसार मैं यह सब देख सुन रही हूँ।

मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि
तथापि बुद्ध्यापि वितर्कयामि।
किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपं
सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम्।। ७।।

मैं सोचती हूँ कि यह मेरे मनोरथों की छाया है, फिर भी बुद्धि से तर्क करती हूँ कि मन की भावनाओं का तो कोई रूप नहीं होता, फिर क्या कारण है? इसका तो रूप भी स्पष्ट है और यह मुझसे बात भी कर रहा है।

सोऽवतीर्य द्रुमात् तस्माद् विद्रुमप्रतिमाननः।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च।। ८।।
तामब्रवीन्महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा।। ९।।
का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते।।१०।।
किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम्।
पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम्।।११।।

तब वे मूँगे के समान मुख वाले महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान वृक्ष से उतर कर विनय और दीनता युक्त भाव से उनके समीप आ कर उन्हें प्रणाम कर, हाथों को जोड़ कर मधुर वाणी में सीता जी से बोले कि कमल के समान आँखों वाली, मैले रेशमी वस्त्र को धारण करने वाली, वृक्ष की शाखा का सहारा ले कर खड़ी हुई हे अनिन्दिते। आप कौन हैं? कमल के पत्तों से झरती हुई जलधारा के समान आपकी आँखों से शोक भरे आँसू क्यों बह रहे हैं?

को नु पुत्रः पिता भ्राता भर्ता वा ते सुमध्यमे।
अस्माल्लोकादमुं लोकं गतं त्वमनुशोचसि।।१२।।
व्यञ्जनानि हि ते यानि लक्षणानि च लक्षये।
महिषी भूमिपालस्य राजकन्या च मे मता।।१३।।
रावणेन जनस्थानाद् बलात् प्रमथिता यदि।
सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः।।१४।।

हे सुमध्यमे। आपके पुत्र, पिता, भाई या पति कौन इस लोक से परलोक को चले गये हैं, जिनके लिये आप शोक कर रही हैं। आपके जो भी लक्षण मुझे दिखाई दे रहे हैं, उनसे आप किसी राजा की रानी या राजकुमारी लगती हैं। रावण के द्वारा जनस्थान से बल पूर्वक अपहरण की हुई यदि आप सीता हैं तो आपका कल्याण हो। आप मेरे पूछने पर ठीक बताइये।

यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्यतिमानुषम्।
तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम्।।१५।।
सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता।
उवाच वाक्यं वैदेही हनूमन्तं द्रुमाश्रितम्।।१६।।
पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः।
स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रणाशिनः।।१७।।
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः।
सीतेति नाम्ना चोक्ताहं भार्या रामस्य धीमतः।।१८।।

जैसी आपमें दीनता है, जैसा आपका अलौकिक रूप है, और जैसा आपका तपस्या से युक्त वेश है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि आप निश्चय ही राम की पत्नी हैं। तब राम के गुणगान से प्रसन्न सीता ने हनुमान जी के ये वचन सुन कर, वृक्ष का सहारा

ले कर खड़े हुए उनसे यह कहा कि जो पृथिवी पर राजसिंहों के प्रमुख थे और आत्मज्ञानी थे, उन शत्रु की सेना को नष्ट करने वाले दशरथ की मैं पुत्रवधु और विदेहराज महात्मा जनक की मैं पुत्री हूँ। मुझे सीता नाम से कहा जाता है। मैं धीमान राम की पत्नी हूँ।

वसतो दण्डकारण्ये तस्याहमतितौजसः।
रक्षसापहृता भार्या रावणेन दुरात्मना।। १९।।

द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम्।। २०।।

उस अमित तेजस्वी की भार्या मुझे दण्डकारण्य में रहते हुए दुष्ट रावण ने अपहृत कर लिया। उसने दो मास मेरे जीवन के लिए निर्धारित किये हुए हैं। दो मासों के पश्चात मैं अपने जीवन का त्याग कर दूँगी।

पच्चीसवाँ सर्ग

सीता जी का हनुमान के प्रति सन्देह और उसका समाधान तथा हनुमान जी का श्रीराम के गुणों का गान।

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनूमान् हरिपुङ्गवः।
दुःखाद् दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत्।। १।।
अहं रामस्य संदेशाद् देवि दूतस्तवागतः।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत्।। २।।
लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः।
कृतवाञ्छोकसंतप्तः शिरसा तेऽभिवादनम्।। ३।।
सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः।
प्रतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत्।। ४।।

जो सीता जी लगातार दुखों के द्वारा पीड़ित हो रही थी, उनके इस वचन को सुन कर वानर श्रेष्ठ हनुमान ने सान्त्वना पूर्वक उन्हें यह उत्तर दिया कि हे देवी! मैं राम का दूत उनके सन्देश के साथ आपके पास आया हूँ। हे वैदेही! श्रीराम सकुशल हैं, और आपकी कुशलता उन्होंने पूछी है। आपके पति के प्रिय सेवक महातेजस्वी लक्ष्मण ने भी शोक से सन्तप्त हो कर, सिर झुका कर आपको प्रणाम कहलाया है। तब वह देवी सीता उन दोनों नर सिंहों की कुशलता के विषय में सुन कर, शरीर के सारे अंगों में प्रसन्नता से भर कर हनुमान जी से बोलीं कि–

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि।। ५।।
तयोः समागमे तस्मिन् प्रीतिरुत्पादिताद्भुता।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः।। ६।।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः।
सीतायाः शोकतप्तायाः समीपमुपचक्रमे।। ७।।
यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते।। ८।।

सचमुच संसार में प्रचलित यह बात बड़ी कल्याणकारी है और मुझे बड़ी अच्छी लग रही है कि यदि मनुष्य जीवित रहे तो उसे सौ वर्ष के पश्चात् भी आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार उन दोनों के परस्पर मेल से दोनों के हृदयों में अद्भुत प्रीति का संचार हुआ और दोनों विश्वस्त हो कर एक दूसरे से वार्तालाप करने लगे। सीता जी की बातें सुन कर वायुपुत्र हनुमान जी शोक संतप्त सीता जी के कुछ समीप चले गये। पर हनुमान जी जैसे-जैसे सीता जी के समीप आने लगे वैसे वैसे ही सीता जी यह शंका लगीं कि कहीं यह रावण तो नहीं है।

अहो धिग् धिक्कृतमिदं कथितं हि यदस्य मे।
रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः।। ९।।
तामशोकस्य शाखां तु विमुक्त्वा शोककर्शिता।
तस्यामेवानवद्याङ्गी धरण्यां समुपाविशत्।। १०।।
अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम्।
सा चैनं भयसंत्रस्ता भूयो नैनमुदैक्षत।। ११।।
तं दृष्ट्वा वन्दमानं च सीता शशिनिभानना।
अब्रवीद् दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा।। १२।।

वे मन में कहने लगीं कि अरे धिक्कार है, जो मैंने इससे अपने मन की बातें कह दीं। यह रूप बदल कर आया हुआ रावण ही है। तब वह शोक से पीड़ित और निर्दोष अंगों वाली सीता उस अशोक वृक्ष की शाखा का आश्रय छोड़ कर भूमि पर बैठ गयी। तब उन महाबाहु हनुमान ने उन जनकपुत्री को प्रणाम किया, पर भयभीत होने के कारण उन्होंने दुबारा उनकी तरफ नहीं देखा।

उन वानर हनुमान जी को प्रणाम करते हुए देख कर चन्द्रमा के समान मुखवाली सीता लम्बी साँस ले कर मधुर स्वर में बोली कि–

मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम्।
उत्पादयसि मे भूयः संतापं तन्न शोभनम्।। १३।।
स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपवान्।
जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः।। १४।।
उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर।
संतापयसि मां भूयः संतापं तन्न शोभनम्।। १५।।
अथवा नैतदेवं हि यन्मया परिशङ्कितम्।
मनसो हि मम प्रीतिरुत्पन्ना तव दर्शनात्।। १६।।

यदि तुम माया का आश्रय लिये हुए मायावी रावण हो और मुझे पुनः कष्ट दे रहे हो तो यह ठीक नहीं है। जिसने अपने रूप को छोड़ कर सन्यासी का रूप बनाया और जनस्थान में मेरे पास आया, तुम वही रावण हो। हे निशाचर! इच्छा के अनुसार रूप बनाने वाले, मैं उपवासों से दुर्बल और दीन हो रही हूँ। तू मुझे फिर संतप्त कर रहा है और दुख पहुँचा रहा है, यह अच्छा नहीं है। अथवा यह भी हो सकता है कि मैंने जो शंका की है, वह ठीक न हो, क्योंकि तुम्हें देखने से मेरे मन ने प्रसन्नता को अनुभव किया है।

यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते।
पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे।। १७।।
गुणान् रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर।
चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः।। १८।।
सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान् मारुतात्मजः।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन्।। १९।।

हे वानरश्रेष्ठ! यदि तुम राम के दूत हो तो तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें उनकी बातें पूछती हूँ, क्योंकि राम की चर्चा मुझे बहुत अच्छी लगती है। हे वानर! तुम मेरे प्रिय श्रीराम के गुणों का वर्णन करो। हे सौम्य! उनका वर्णन मेरे चित्त का वैसे ही हरण कर रहा है जैसे पानी का वेग नदी के किनारे को हर लेता है। तब सीता जी के निश्चित विचार को जान कर पवनपुत्र हनुमान कानों को सुख पहुँचाने वाले वचनों से उनको हर्षित करते हुए बोले कि–

आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा।
स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः।। २०।।
अपक्रम्याश्रमपदान्मृगरूपेण राघवम्।
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम्।। २१।।
अचिराद् रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान्।
क्रोधप्रयुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः।। २२।।
तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः।
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत्।। २३।।

श्रीराम सूर्य के समान तेजस्वी हैं और चन्द्रमा के समान लोगों को आनन्द देने वाले हैं। वे क्रोध के पात्र पर ही प्रहार करते हैं और संसार में सबसे श्रेष्ठ महारथी हैं। जिसने राम को मृग के रूप से आश्रम से दूर हटा कर सूने में आपका हरण किया, उसका उसे जो फल मिलेगा, उसे आप देखेंगी। वे तेजस्वी श्रीराम अपने क्रोध सहित छोड़े हुए, अग्नि के समान प्रज्वलित बाणों से युद्ध में जल्दी ही रावण का वध कर देंगे। उन्हीं के द्वारा भेजा हुआ दूत मैं आपके पास यहाँ आया हूँ। वे आपके वियोग के दुख से बेचैन हैं और आपकी कुशलता के विषय में जानना चाहते हैं।

लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः।
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत्।। २४।।
रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः।
राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत्।। २५।।
नित्यं स्मरति ते रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः।
दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता।। २६।।
नचिराद् द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महारथम्।

सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले महातेजस्वी, महाबाहु लक्ष्मण ने भी आपको प्रणाम कर आपकी कुशलता पूछी है। हे देवी! राम के मित्र सुग्रीव नाम के वानर हैं। वे वानर यूथपतियों के राजा हैं। उन्होंने भी आपकी कुशलता पूछी है। श्रीराम सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ नित्य आपको याद करते हैं। बड़े सौभाग्य की बात है कि राक्षसियों के बस में हो कर भी आप जीवित हैं। हे वैदेही! आप जल्दी ही महारथी राम और लक्ष्मण का दर्शन करेंगी।

अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान् नाम वानरः।। २७।।
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम्।
कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः।। २८।।
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम्।
नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम।। २९।।

मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान नाम का वानर हूँ। मैं सागर को लाँघ कर और दुष्ट रावण के सिर पर पैर रख कर लंका में प्रविष्ट हुआ हूँ। मैं अपने पराक्रम का सहारा ले कर आपको देखने के लिये आया हूँ। हे देवी! आप जैसा मुझे समझ रही हैं, मैं वह नहीं हूँ। आप शंका को छोड़िये और मेरे वचनों पर विश्वास कीजिये।

छब्बीसवाँ सर्ग

सीता जी के पूछने पर हनुमान जी का श्रीराम के शारीरिक चिह्नों और गुणों का वर्णन करना तथा सुग्रीव के साथ उनकी मित्रता का प्रसंग सुना कर सीता जी के मन में विश्वास उत्पन्न करो।

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात्।
उवाच वचनं सान्त्वमिदं मधुरया गिरा।। १।।
क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम्।
एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनूमान् मारुतात्मजः।। २।।
ततो रामं यथातत्वमाख्यातुमुपचक्रमे।
यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च यानि वै।। ३।।
लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे।
रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः।। ४।।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे।

उस वानरश्रेष्ठ हनुमान जी से राम के विषय में वर्णन को सुन कर वैदेही सीता को कुछ सान्त्वना हुई और वह मधुर वाणी में बोलीं कि तुम्हारा राम से मिलन कब हुआ? तुम लक्ष्मण को कैसे जानते हो? वैदेही के द्वारा ऐसा पूछे जाने पर पवन पुत्र हनुमान जी ने राम के विषय में यथार्थ बातें कहनी आरम्भ की। उन्होंने कहा कि हे विशाल नेत्रों वाली! मैंने राम और लक्ष्मण को जिन विशेषताओं को लक्ष्य किया है, आप उन्हें सुनिये। श्रीराम की आँखे कमल के समान और मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान है। हे जनकपुत्री! वे जन्म से ही सौन्दर्य और उदारता से सम्पन्न हैं।

भ्राता चास्य च वैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः।। ५।।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाविधः।
स सुवर्णच्छविः श्रीमान् रामः श्यामो महायशाः।। ६।।
तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनकृतोत्सवौ।
त्वामेव मार्गमाणो तौ विचरन्तो वसुन्धराम्।। ७।।
ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम्।

उनके सौतेले भाई सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण भी अमित प्रभा वाले तथा अनुराग, रूप और गुणों में वैसे ही हैं। दोनों में केवल अन्तर यह है कि वे लक्ष्मण सुवर्ण के समान रंग वाले हैं और महायशस्वी राम साँवले रंग के हैं। वे दोनों नरसिंह आपके दर्शन के लिये उत्कंठित हो कर आपकी ही खोज करते हुए, पृथ्वी पर घूमते हुए वानरों के राजा सुग्रीव से मिले, जिन्हें, उनके बड़े भाई ने राज्य से उतार दिया था।

ऋष्यमूकस्य मूले तु बहुपादपसंकुले।। ८।।
भ्रातुर्भयार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम्।
वयं च हरिराजं तं सुग्रीवं सत्यसङ्गरम्।। ९।।
परिचर्यामहे राज्यात् पूर्वजेनावरोपितम्।
ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ।। १०।।
ऋष्यमूकस्य शैलस्य रम्यं देशमुपागतौ।
स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः।। ११।।
अभिप्लुतो गिरेस्तस्य शिखरं भयमोहितः।

प्रिय दर्शन सुग्रीव अपने भाई के भय से पीड़ित हो कर ऋष्यमूक पर्वत के मूल भाग में, जो बहुत वृक्षों से युक्त है, रहा करते थे। बड़े भाई के द्वारा राज्य से उतारे गये उन वानरों के राजा सत्यवादी सुग्रीव की हम लोग सेवा किया करते थे। तब जब चीरवस्त्र धारण किये हुए और धनुष हाथ में लिये हुए वे दोनों नर व्याघ्र ऋष्यमूक पर्वत के उस रम्य प्रदेश में आये, तब उन धनुर्धरियों को देख कर वह वानर श्रेष्ठ भय से मोहित हो कर तेजी से उस पर्वत के शिखर पर जा चढ़ा।

ततः स शिखरे तस्मिन् वानरेन्द्रो व्यवस्थितः।। १२।।
तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरम्।
तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात् प्रभू।। १३।।
रूपलक्षणसम्पन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः।
तौ परिज्ञाततत्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ।। १४।।
पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौ।
निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने।। १५।।
तयोरन्योन्यसम्भाषाद् भृशं प्रीतिरजायत।

तब उस शिखर पर बैठ कर वानरेन्द्र ने जल्दी से उन दोनों के पास मुझे ही भेजा। सुग्रीव की आज्ञा से उन दोनों सौन्दर्य के लक्षणों से सम्पन्न पुरुष व्याघ्रों के पास मैं ही हाथ जोड़ कर उपस्थित हुआ। मुझ से सारी बातें जान कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं उन दोनों पुरुष श्रेष्ठों को पीठ पर चढ़ा कर सुग्रीव के स्थान पर ले गया। मैंने महात्मा सुग्रीव से उनके बारे में सारी बातें बताईं। तब उन दोनों में परस्पर वार्तालाप से अत्यन्त प्रेम हो गया।

तत्र तौ कीर्तिसम्पन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ।। १६।।
परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया।
ततस्त्वद्गात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया।। १७।।
यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले।
तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपाः।। १८।।
संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव।

वहाँ दोनों यशस्वी वानरेश और नरेश ने एक दूसरे को अपना पहला वृत्तान्त सुनाया और दोनों ने एक दूसरे को आश्वासन दिया। उसके पश्चात आपने राक्षस के द्वारा अपने अपहरण किये जाते समय अपने गात्रों को सुशोभित करने वाले जो आभूषण भूमि पर फैंके थे, वे सारे वानर यूथपतियों ने प्रसन्नता से राम को ला कर दिखाये; पर वे आपकी गति अर्थात आपको किसके द्वारा वहाँ ले जाया गया यह नहीं जानते थे।

तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च।। १९।।
स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन् विहतचेतसि।
तान्यङ्के दर्शनीयानि कृत्वा बहुविधं तदा।। २०।।
पश्यतस्तानि रुदतस्ताम्यतश्च पुनः पुनः।
प्रादीपयद् दाशरथैस्तदा शोकहुताशनम्।। २१।।
शायितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना।
मयापि विविधैर्वाक्यैः कृच्छ्रादुत्थापितः पुनः।। २२।।

मैं ही उन आभूषणों को, जब वे झनकार के साथ भूमि पर गिर कर इधर-उधर बिखर गये थे, बटोर कर लाया था। वे जब राम को दिये गये तब उन्हें देख कर उनकी चेतना लुप्त हो गयी थी। वे उन दर्शनीय आभूषणों को तब बहुत प्रकार से अपनी गोद में रख कर अपनी छाती से लगा कर उनको बार-बार देखते हुए, बार-बार रोते हुए तिलमिला उठते थे। उन दशरथ पुत्र की शोकाग्नि उस समय बहुत प्रदीप्त हो गई थी। वे महात्मा दुःख से पीड़ित हो कर बहुत देर तक मूर्च्छित पड़े रहे। मैंने भी उस समय उन्हें अनेक प्रकार की बातें कह कर बड़ी कठिनता से उठाया था।

तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः।
राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे संन्यवेशयत्।। २३।।
स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः।। २४।।
त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम्।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यगारमिवाग्नयः।। २५।।
तवादर्शनशोकेन राघवः परिचाल्यते।
महता भूमिकम्पेन महानिव शिलोच्चयः।। २६।।

उन बहुमूल्य आभूषणों को लक्ष्मण के साथ श्रीराम ने बार-बार देख कर और दिखा कर फिर उन्हें सुग्रीव के पास रख दिया। हे आर्य! जैसे जवालामुखी पर्वत अग्नि से तपता रहता है, वैसे ही आपको न देखने से श्रीराम शोक से तपते रहते हैं। आपके लिये महात्मा श्रीराम को अनिद्रा, शोक, और चिन्ता इसी प्रकार तपाती रहती हैं जैसे तीन प्रकार की अग्नियाँ अग्निशाला को तपाती रहती हैं। आपके दर्शन न हो पाने के शोक से श्रीराम ऐसे ही विचलित हो रहे हैं जैसे भारी भूचाल आने से बड़े पर्वत भी हिलने लगते हैं।

काननानि सुरम्याणि नदीप्रस्रवणानि च।
चरन् न रतिमाप्नोति त्वामपश्यन् नृपात्मजे।। २७।।
स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे।। २८।।
सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा।
समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं प्रति।। २९।।
ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे।
सर्वर्क्षहरिसङ्घानां सुग्रीवमकरोत् पतिम्।। ३०।।

हे राजपुत्री! तुम्हें न देखने पर वे रमणीय काननों, नदियों और झरनों के पास घूमते हुए भी सुख को प्राप्त नहीं करते हैं। वे मानवसिंह श्रीराम, मित्रों और बान्धवों के साथ रावण को मार कर हे जनक पुत्री! आपको शीघ्र ही प्राप्त करेंगे। तब राम और सुग्रीव दोनों ने यह समझौता किया कि राम बाली का वध करेंगे और सुग्रीव आपकी खोज करायेंगे। तब राम ने बाली को युद्ध में वेग पूर्वक मार कर सुग्रीव को सारे वानर और ऋक्ष जाति के समूहों का राजा बना दिया।

रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत।
हनूमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमुपागतम्।। ३१।।

स्वं राज्य प्राप्य सुग्रीवः स्वानानीय महाकपीन्।
त्वदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान्।। ३२।।
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महौजसः।
अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम्।। ३३।।
अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान् वालिसूनुर्महाबलः।
प्रस्थितः कपिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः।। ३४।।

हे देवी! इस प्रकार राम और सुग्रीव में मैत्री हुई। आप अपने समीप आये हुए मुझे हनुमान नाम का उनका दूत समझें। अपने राज्य को प्राप्त कर सुग्रीव ने अपने आधीन महा बलवान महान वानरों को बुलाया और उन्हें आपके लिये सारी दिशाओं में भेजा। महा तेजस्वी वानरराज सुग्रीव के आदेश से गिरिराज के समान विशालकाय वानर पृथ्वी पर सब तरफ चल दिये। शोभाशाली अंगद नाम के बाली के पुत्र जो महा बलवान और वानरसिंह हैं, उन्होंने तिहाई सेना के साथ प्रस्थान किया, उनमें मैं भी था।

तेषां नो विप्रणष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे।
भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गताः।। ३५।।
ते वयं कार्यनैराश्यात् कालस्यातिक्रमेण च।
भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुमुपस्थिताः।। ३६।।
ततस्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि वयं प्रायमुपास्महे।
दृष्ट्वा प्रायोपविष्टांश्च सर्वान् वानरपुङ्गवान्।। ३७।।
भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः।

हम लोग पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्याचल में भटक गये और अत्यन्त शोक से व्यथित हमारे बहुत से दिन रात व्यतीत हो गये। अन्त में जब दिया हुआ निश्चित समय समाप्त हो गया और कार्य में निराशा ही मिली तथा हमें वानरराज का भय लगने लगा तब हम वहीं अपने प्राणों को छोड़ने के लिये उद्यत हो गये। तब उस पर्वत के शिखर पर हम प्राणान्त उपवास के लिये बैठ गये। तब सारे वानर श्रेष्ठों को प्राणान्त उपवास पर बैठा देख कर अंगद ने शोक सागर में मग्न हो कर बहुत विलाप किया।

तेषां नः स्वामिसंदेशान्निराशानां मुमूर्षताम्।। ३८।।
कार्यहेतोरिहायातः शकुनिर्वीर्यवान् महान्।
गृध्रराजस्य सोदर्यः सम्पातिर्नाम गृध्रराट्।। ३९।।
श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत्।
यवीयान् केन मे भ्राता हतः क्व च निपातितः।। ४०।।
एतदाख्यातुमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः।
अङ्गदोऽकथयत् तस्य जनस्थाने महद्वधम्।। ४१।।
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथार्थतः।
जटायोस्तु वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः।। ४२।।
त्वामाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये।

स्वामी के आदेश की पूर्ति में असमर्थ, हम जब इस प्रकार अपने प्राणान्त की इच्छा कर रहे थे, तभी मानो हमारा कार्य सिद्ध करने के लिये महान तेजस्वी गृद्धराज जटायु के सगे बड़े भाई सम्पाती नाम के गृद्धजाति के राजा वहाँ पहुँच गये। वे अपने भाई जटायु के वध के बारे में सुन कर क्रोध से बोले कि मेरा छोटा भाई जटायु किसने मारा और कहाँ उसे गिराया। हे वानर श्रेष्ठो! मैं यह सुनना चाहता हूँ। तब अंगद ने उनसे उनके जनस्थान में हुए महान वध के विषय में यथार्थ रूप से बताया कि किस प्रकार उस भयानक राक्षस ने तुम्हारे कारण से उनका वध किया। तब जटायु के वध के विषय में सुन कर उस अरुण के पुत्र सम्पाती ने दुखी हो कर हे सुन्दरी! तुम्हारे बारे में बताया कि तुम रावण के घर में निवास कर रही हो।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सम्पातेः प्रीतिवर्धनम्।। ४३।।
त्वद्दर्शने कृतोत्साहा हृष्टाः पुष्टाः प्लवङ्गमाः।
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे वेलोपान्तमुपागताः।। ४४।।
चिन्तां जग्मुः पुनर्भीमां त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः।
अथाहं हरिसैन्यस्य सागरं दृश्य सीदतः।। ४५।।
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः।
लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला।। ४६।।
रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकनिपीडिता।

सम्पाती के उस हर्ष को बढ़ाने वाले वचनों को सुन कर तुम्हारे दर्शन के लिये उत्साहित तथा हर्षित और पुष्ट मन वाले हो कर अंगद के नेतृत्व में सारे वानर सागर तट के समीप आ गये। पर आपके दर्शन के लिये उत्साहित होने पर भी वे पुनः भयानक चिन्ता में पड़ गये। तब मैं सागर को देख कर दुखी होती हुई उस वानर सेना के भय को दूर कर तेजी से सौ योजन सागर को लाँघ कर यहाँ आ गया। राक्षसों से भरी हुई इस लंका में भी मैंने रात्रि में प्रवेश किया। मैंने रावण को भी देख लिया और शोक से पीड़ित आपको भी देखा है।

एतत् ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते।। ४७।।
अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम्।
तन्मां रामकृतोद्योगं त्वन्निमित्तमिहागतम्।। ४८।।
सुग्रीवसचिवं देवि बुद्ध्यस्व पवनात्मजम्।
कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः।। ४९।।

गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः।।५०।।

हे अनिन्दिते! यह मैंने आपको सारा वृतान्त कह सुनाया। हे देवी! मैं श्री राम का दूत हूँ। अब आप मुझसे बात कीजिये। हे देवी! आप मुझे राम के लिये प्रयत्न करने वाले, आपके लिये यहाँ आये हुए सुग्रीव के सचिव, पवनपुत्र हनुमान समझिए। सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आपके ककुत्स्थ वंशी श्रीराम सकुशल हैं। शुभ लक्षण लक्ष्मण अपने बड़े भाई और आपके तेजस्वी पति की सेवा में लगे हुए हैं।

अहमेकस्तु सम्प्राप्तः सुग्रीववचनादिह।
दिष्ट्याहं हरिसैन्यानां त्वन्नाशमनुशोचताम्।।५१।।
अपनेष्यामि संतापं तवाधिगमशासनात्।
दिष्ट्या हि न मम व्यर्थं सागरस्येह लङ्घनम्।।५२।।
प्राप्स्याम्यहमिदं देवि त्वद्दर्शनकृतं यशः।
राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते।।५३।।
सपुत्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम्।

सुग्रीव के आदेश से मैं अकेला ही यहाँ आया हूँ, इसलिये मेरे लिये सौभाग्य की बात है कि आपके विनाश की आशंका से शोक करते हुए वानर सैनिकों के सन्ताप को मैं आपसे मिलने की सूचना दे कर दूर करूँगा। यह भी मेरे सौभाग्य की बात है कि मेरा समुद्र को लाँघना व्यर्थ नहीं गया और हे देवी! मैं ही आपके दर्शन के श्रेय को प्राप्त करूँगा। राक्षसों के राजा रावण को पुत्रों और बान्धवों के साथ मार कर शीघ्र ही महापराक्रमी राम आपको प्राप्त होंगे।

विश्वासार्थं तु वैदेहि भर्तुरुक्ता मया गुणाः।।५४।।
अचिरात् त्वामितो देवि राघवो नयिता ध्रुवम्।
अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण तु जानकी।।५५।।
नेत्राभ्यां वक्रपक्ष्माभ्यां मुमोचानन्दजं जलम्।
हनूमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा।।५६।।
अथोवाच हनूमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम्।

हे वैदेही! आपको विश्वास दिलाने के लिये मैंने आपके पति के गुणों का वर्णन किया। यह निश्चित बात है कि श्रीराम आपको जल्दी ही यहाँ से ले जायेंगे। उस समय सीता जी को अतुलनीय हर्ष प्राप्त हुआ और वे हर्ष के कारण टेढ़ी भौंहों वाले अपने नेत्रों से आनन्द के आँसू बहाने लगीं। वे स्पष्ट रूप से यह मान गयीं कि हनुमान जी कोई अन्य व्यक्ति नहीं हैं। उसके पश्चात् उन प्रिय दर्शना सीता से हनुमान जी ने कहा कि–

सत्ताइसवाँ सर्ग

हनुमान जी का सीता जी को मुद्रिका देना तथा श्रीराम के सीता विषयक प्रेम का वर्णन करके उन्हें सान्त्वना देना।

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्।। १।।
प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि।। २।।
गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम्।
भर्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदिताभवत्।। ३।।
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः संदेशहर्षिता।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम्।। ४।।

हे महाभागे! मैं धीमान श्रीराम का दूत हूँ। हे देवी! देखो यह राम के नाम से अंकित उनकी अंगूठी है। यह मुझे उन महात्मा ने दी थी और मैं इसे आपके विश्वास के लिये लाया हूँ। आपका कल्याण हो। अब आप धैर्य धारण कीजिये, अब आपके दुख रूपी फल क्षीण होने लगे हैं। तब वह जानकी पति के हाथ में विभूषित होने वाली उस अंगूठी को ले कर उसे देखती हुई, और यह समझती हुई कि मानों मुझे मेरे पति ही मिल गये हैं, प्रसन्नता से भर गयी। तब वह लज्जाशील बाला अपने पति के सन्देश से अत्यन्त हर्षित और सन्तुष्ट हो उन महान वानर का सम्मान कर के उनकी प्रशंसा करते हुए बोली कि–

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम्।। ५।।
शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः।। ६।।
नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि सम्भ्रमः।। ७।।
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्।
यद्यसि प्रेषितस्तेनरामेण विदितात्मना।। ८।।

हे वानरश्रेष्ठ! तुम बड़े पराक्रमी हो, सामर्थ्यवान हो और बुद्धिमान हो, जिसके कारण तुमने अकेले ही इस राक्षसपुरी को पददलित कर दिया। सौ योजन विस्तृत इस मगर आदि जन्तुओं से भरे हुए सागर को गाय के खुर के समान समझ कर अपने इस श्लाघनीय पराक्रम से पार कर लिया। हे वानरशिरोमणे! तुम्हारे मन में रावण जैसे राक्षस से भी न तो भय है और न घबराहट, अतः मैं तुम्हें साधारण वानर नहीं समझती। हे वानरश्रेष्ठ! यदि तुम्हें आत्म ज्ञानी राम ने भेजा है, तो तुम अवश्य ही इस योग्य हो कि मैं तुमसे बात करूँ।

प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो नह्यपरीक्षितम्।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः।। ९।।
दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः।। १०।।
कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः।। ११।।
कच्चिन्न दीनः सम्भ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति।
कच्चित् पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः।। १२।।

दुर्धर्ष, श्रीराम विशेष रूप से मेरे पास किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं भेजेंगे, जिसकी उन्होंने परीक्षा नहीं की हो और जिसके पराक्रम के विषय में वे जानते न हों। यह सौभाग्य की बात है कि सत्यप्रतिज्ञ धर्मात्मा राम और सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले महातेजस्वी लक्ष्मण सकुशल हैं। अच्छा यह बताओ कि श्रीराम बहुत संतप्त और परेशान तो नहीं हो जाते हैं? वे पुरुषोत्तम अपने समक्ष विद्यमान कार्यों को करते हैं। कहीं वे दीनता और घबराहट से अपने कार्यों को करते हुए मोह के वश में तो नहीं हो जाते। क्या वे राजपुत्र अपने पुरुषोचित कार्यों को करते रहते हैं?

सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनूचितः।
दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद् रामो न सीदति।। १३।।
कौशल्यायास्तथा कच्चित् सुमित्रायास्तथैव च।
अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित् कुशलं भरतस्य च।। १४।।
कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः।
ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते।। १५।।
रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम्।। १६।।

वे राम जो सुख भोगने योग्य हैं और दुखों को प्राप्त करने योग्य नहीं हैं, अब लगातार प्राप्त होने वाले दुखों से कहीं शिथिल तो नहीं हो गये हैं? क्या कौशल्या का, सुमित्रा का, और भरत का कुशल समाचार बराबर मिलता रहता है? क्या भाई से प्रेम करने वाले भरत मेरे लिये मन्त्रियों द्वारा सुरक्षित भयानक अक्षौहिणी सेना को भेजेंगे? क्या मैं जल्दी ही युद्ध में राम के द्वारा भयानक अस्त्रों से रावण को मित्रों सहित मारा हुआ देखूँगी।

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं
तस्याननं पद्मसमानगन्धि।
मया विना शुष्यति शोकदीनं
जलक्षये पद्ममिवातपेन।। १७।।

कहीं श्रीराम का स्वर्ण के समान वर्ण वाला और कमल के समान सुगन्ध वाला उनका मुख, मेरे बिना शोक से दीनता को प्राप्त हो कर, पानी के सूख जाने पर धूप से कुम्हलाये हुए कमल के समान सूख तो नहीं गया है?

धर्मापदेशात् त्यजतः स्वराज्यं
मां चाप्यरण्यं नयतः पदातेः।
नासीद् यथा यस्य न भीर्न शोकः
कच्चित् स धैर्यं हृदये करोति।। १८।।

जिन्होंने धर्म के पालन के लिये अपने राज्य को छोड़ दिया और मुझे भी वन में पैदल ही ले आये, उस समय जब उनको कोई भय और शोक नहीं हुआ, तो क्या अब भी वे अपने हृदय में धैर्य को धारण कर रहे हैं?

न चास्य माता न पिता न चान्यः
स्नेहाद् विशिष्टोऽस्ति मया समो वा।
तावद्ध्यहं दूत जिजीविषेयं
यावत् प्रवृत्तिं शृणुयां प्रियस्य।। १९।।

हे दूत उनके माता, पिता और कोई दूसरे सम्बन्धी भी ऐसे नहीं हैं, जिन्हें उनका प्रेम मुझसे अधिक या मेरे बराबर मिला हो। मैं तब तक ही जीने की इच्छा रखूँगी, जब तक उन अपने प्रिय की यहाँ आने की प्रवृत्ति के विषय में सुनती रहूँगी।

इतीव देवी वचनं महार्थं
तं वानरेन्द्रं मधुरार्थमुक्त्वा।
श्रोतुं पुनस्तस्य वचोऽभिरामं
रामार्थयुक्तं विरराम रामा।। २०।।

इस प्रकार वह देवी सीता मीठी वाणी से युक्त महान अर्थों वाली उस बात को उन वानरेन्द्र हनुमान जी से

कह कर पुनः उनसे राम के विषय में सुन्दर बातें सुनने के लिये चुप हो गयीं।

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत्।। २१।।
न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचनः।
श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।। २२।।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसंयुताम्।

सीता की बात सुन कर भयानक पराक्रम वाले पवन पुत्र हनुमान जी ने दोनों हाथ जोड़ कर यह उत्तर दिया कि कमल नयन श्रीराम यह नहीं जानते कि आप यहाँ हैं। मेरे द्वारा आपके विषय में सुन कर ही वे वानर और ऋक्ष जाति के लोगों की महान सेना को ले कर तुरन्त चल देंगे।

नैव दंशान् न मशकान् न कीटान् न सरीसृपान्।। २३।।
राघवोऽपनयेद् गात्रात् त्वद्गतेनान्तरात्मना।
नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः।। २४।।
नान्यच्चिन्तयते किंचित् स तु कामवशं गतः।
अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः।। २५।।
सीतेति मधुरां वाणीं व्यारन् प्रतिबुध्यते।
दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत् स्त्रीमनोहरम्।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते।। २६।।

श्रीराम अपनी अन्तरात्मा से आपके ही ध्यान में लगे रहते हैं, वे उस समय अपने शरीर पर चढ़े हुए, मच्छर, खटमल, कीड़े या किसी रेंगने वाले जन्तु को भी नहीं हटाते हैं। वे आपकी कामना के वश में हो कर आपके ही ध्यान में रहते हैं और किसी के विषय में नहीं सोचते हैं और शोक मग्न रहते हैं। राम को प्रायः नींद नहीं आती। वे नरश्रेष्ठ कभी सो भी जाते हैं तो मधुर वाणी में सीता-सीता कहते हुए जाग जाते हैं। स्त्रियों को अच्छे लगने वाले फल या फूल किसी दूसरी चीज़ को देख कर वे प्रायः तुम्हारा स्मरण करते हुए, लम्बी साँस ले कर हा प्रिया ऐसा कहने लगते हैं।

स देवि नित्यं परितप्यमान–
स्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः।। २७।।

हे देवी! वे व्रत को धारण करने वाले महात्मा राजपुत्र सदा संतप्त होते हुए तुम्हारा ही ध्यान करते हुए सीता-सीता ऐसा कहते रहते हैं और आपकी प्राप्ति के लिये ही प्रयत्न कर रहे हैं।

सा रामसंकीर्तनवीतशोका
रामस्य शोकेन समानशोका।
शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा
निशेव वैदेहसुता बभूव।। २८।।

उस समय राम के गुणों की चर्चा से सीता का अपना पुराना शोक तो दूर हो गया, पर राम के शोक के विषय में सुन कर वे पुनः उन्हीं के समान शोक मग्न हो गयीं। उनकी स्थिति शरद ऋतु के आरम्भ में उस रात्रि के समान थीं, जिसमें कुछ मेघों की घटा भी होती है और चन्द्रमा भी होता है।

अट्ठाईसवाँ सर्ग

सीता का हनुमान जी से श्रीराम को शीघ्र बुलाने का आग्रह।

सा सीता वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना।
हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः।। १।।
अमृतं विषसम्पृक्तं त्वया वानर भाषितम्।
यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः।। २।।
ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति।। ३।।
विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान्।। ४।।

हनुमान जी के वचनों को सुन कर पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली सीता जी ने हनुमान जी से धर्म और अर्थ से युक्त यह बात कही कि हे वानर तुमने मुझसे यह अमृत और विष दोनों से युक्त बात कही है। अमृत से युक्त यह कि राम का कहीं और जी नहीं लगता और विष से युक्त यह कि वे शोक से दुखी रहते हैं। वास्तव में मनुष्य चाहे किसी भी परिस्थिति में, विस्तृत ऐश्वर्य में या भयानक संकट में हो, पर समय उसे मानों रस्सी से बाँध कर खींच लेता है। हे श्रेष्ठवानर! परमात्मा की इच्छा को कोई नहीं बदल सकता। तुम लक्ष्मण को, मुझे और श्रीराम को देखो। हम तीनों वियोग के दुख से मूढ़ हो रहे हैं।

शोकस्यास्य कथं पारं राघवोऽधिगमिष्यति।
प्लवमानः परिक्रान्तो हतनौः सागरे यथा।। ५।।
राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम्।
लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः।। ६।।
स वाच्यः सत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम्।। ७।।
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम।। ८।।

नाव के नष्ट हो जाने पर समुद्र में तैरने वाले पराक्रमी पुरुष के समान श्रीराम इस शोक से कैसे पार पायेंगे? मेरे पति राक्षसों का वध कर, रावण को मार कर और लंका का विध्वंस कर कब मुझ से मिलेंगे। उनसे कहना कि वे जल्दी करें क्योंकि जब यह एक वर्ष का समय पूरा नहीं हो जाता, तब तक ही मेरा जीवन है! हे वानर! इस निर्दय रावण ने जो समय मेरे लिये निश्चित किया है, उसमें दसवाँ मास चल रहा है और दो मास बचे हैं।

विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत् कुरुते मतिम्।। ९।।
मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते।
रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशंगतम्।। १०।।
ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम्।। ११।।

इसके भाई विभीषण ने मेरे लौटाने के लिये, बड़े प्रयत्न पूर्वक इससे अनुनय की, पर यह उसकी बात नहीं मानता है। रावण को मेरा लौटाना अच्छा नहीं लगता। वह काल के वश में हो रहा है। मृत्यु उसे युद्ध में ढूँढ रही है। हे वानर! विभीषण की सबसे बड़ी लड़की का नाम कला है। उसे उसकी माता ने स्वयं मेरे पास भेजा था। उसने मुझसे यह बात कही थी।

अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान् राक्षसपुङ्गवः।
धृतिमाञ्छीलवान् वृद्धो रावणस्य सुसम्मतः।। १२।।
रामात् क्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत्।
न च तस्य च दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम्।। १३।।
आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः।। १४।।
उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे।। १५।।

रावण का एक अच्छा सम्मानित, वृद्ध, धृतिमान, शीलवान, मेधावी और विद्वान अविन्ध्य नाम का श्रेष्ठ राक्षस है। उसने राम के द्वारा राक्षसों के विनाश का समय आ गया है, यह कह कर मुझे लौटा देने के लिये रावण को प्रेरित किया, पर यह दुष्टात्मा उसके हितकारी वचनों को नहीं सुनता है। हे वानरश्रेष्ठ! मुझे आशा हो रही है कि मेरे पति मुझे जल्दी प्राप्त करेंगे, क्योंकि मेरी आत्मा शुद्ध है और राम बहुत गुणवान हैं। उनमें उत्साह, पौरुष, बल, दया, कृतज्ञता, विक्रम और प्रभावशीलता ये सारे गुण हैं।

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः।
जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत्।। १६।।
शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति।। १७।।

जिसने बिना भाई की सहायता लिये अकेले ही चौदह हजार राक्षसों को जनस्थान में मार गिराया, उसका कौन शत्रु उद्विग्न नहीं होगा? हे वानर! शूरवीर श्रीराम जब सूर्य के समान अपने बाण समूह रूपी किरणों से सुशोभित होंगे तब वे अपने शत्रु राक्षस रूपी जल को सुखा देंगे।

श्रुताश्च दृष्टा हि मया पराक्रमा
महात्मनस्तस्य रणावमर्दिनः।
सलक्ष्मणं को विषहेत राघवं
हुताशनं दीप्तमिवानिलेरितम्।। १८।।

युद्ध भूमि में संहार कर देने वाले उन महात्मा राम के पराक्रम मैंने अनेक बार सुने और देखे भी हैं। लक्ष्मण के साथ रहते हुए श्रीराम को जो उस समय वायु से प्रेरित अग्नि के समान प्रचण्ड होते हैं, कौन शत्रु सहन कर सकता है?

स मे कपिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं प्रियं
सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय।
चिराय रामं प्रति शोककर्शितां
कुरुष्व मां वानरवीर हर्षिताम्।। १९।।

इसलिये हे वानरश्रेष्ठ! तुम लक्ष्मण और यूथपति सुग्रीव के साथ मेरे प्रिय राम को जल्दी यहाँ बुला कर लाओ और चिरकाल से राम के शोक से कुचली जाती हुई मुझे हर्षित करो।

उन्नत्तीसवाँ सर्ग

सीता जी का हनुमान जी को पहचान के रूप में अपनी चूड़ामणि देना।

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन तोषितः।
सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः।। १।।
श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः।
चेष्टितं यत् त्वया देवि भाषितं च ममाग्रतः।। २।।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयात् राघवो हि यत्।
एवमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा।। ३।।
उवाच वचनं मन्दं बाष्पप्रग्रथिताक्षरम्।

तब सीता जी के उन वाक्यों को सुन कर प्रसन्न हुए वे वानर सिंह और वाक्य प्रयोग में कुशल हनुमान जी उनसे बोले कि हे देवी! आपने मेरे समक्ष जो कुछ भी कहा है, और जैसी-जैसी चेष्टाएँ की हैं, उन सबको पूरी तरह से काकुत्स्थ श्रीराम मुझसे सुनेंगे। अब मुझे अपनी कोई निशानी दे दीजिये, जिससे श्रीराम यह जान जायें कि मैं आपसे मिला हूँ। हनुमान जी के यह कहने पर देवपुत्री के समान सीता जी आँसुओं से गद्‌गद् अक्षरों से युक्त मन्द वाणी में कहने लगीं कि-

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः।। ४।।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते।। ५।।
ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ।। ६।।
मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च।
हृदयेन गतो रामं लक्ष्मणं च सलक्षणम्।। ७।।

तुम मेरे शूरवीर स्वामी राम के बार-बार यह कहना कि हे दशरथ पुत्र! मेरे जीवित रहने के लिये जितने मास शेष हैं, तभी तक मैं जीवन धारण करूँगी। उनसे ऊपर मैं जीवित नहीं रह सकती, यह मैं सत्य की शपथ खा कर कह रही हूँ। उसके बाद सीता ने अपने वस्त्र में बाँधी हुई अपनी अलौकिक रूप से सुन्दर चूड़ामणि को खोल कर इसे श्रीराम को देना, यह कह कर उसे हनुमान जी को दे दिया। हनुमान जी उस श्रेष्ठ मणि को ग्रहण कर और सीता जी को प्रणाम कर हृदय से राम का और शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मण का ध्यान करने लगे।

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत्।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद् रामस्य तत्त्वतः।। ८।।
मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च।। ९।।

उस चूड़ामणि को दे कर सीता जी ने हनुमान जी से कहा कि श्रीराम मेरी इस निशानी को अच्छी तरह से पहचानते हैं। वे वीर राम इस मणि को देख कर मेरी माता का, मेरा और राजा दशरथ का स्मरण करेंगे।

स भूयस्त्वं समुत्साहचोदितो हरिसत्तम।
अस्मिन् कार्यसमुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम्।। १०।।
त्वमस्मिन् कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम।
तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत्।। ११।।
स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः।
शिरसाऽऽवन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे।। १२।।

हे वानरश्रेष्ठ! तुम पुनः विशेष उत्साह से प्रेरित हो कर इस कार्य को उत्साह पूर्वक करने में जो कुछ आगे करना हो उसके विषय में विचार करना। हे वानरश्रेष्ठ! इस कार्य के निर्वाह में तुम्हीं आधार हो। इसलिये जो प्रयत्न मेरे दुख को नष्ट करने वाला हो, उसके विषय में सोचना। तब वह भयानक पराक्रम वाले पवन पुत्र हनुमान ऐसा ही करूँगा, यह प्रतिज्ञा करके सीता जी को प्रणाम कर चलने के लिये तैयार हुए।

तीसवाँ सर्ग

जाते हुए हनुमान जी को सीता जी का श्रीराम आदि को उत्साहित करने के लिये कहना तथा हनुमान जी का समुद्र तरण के विषय में वानरों के पराक्रम को बता कर उन्हें आश्वासन देना।

ज्ञात्वा सम्प्रस्थितं देवी वानरं पवनात्मजम्।
बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत्।। १।।
हनूमन् कुशलं ब्रूयाः सहितौ रामलक्ष्मणौ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् वृद्धांश्च वानरान्।। २।।
ब्रूयास्त्वं वानरश्रेष्ठ कुशलं धर्मसंहितम्।
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः।। ३।।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि।
जीवन्तीं मां यथा रामः सम्भावयति कीर्तिमान्।। ४।।
तत् त्वया हनुमन् वाच्यं वाचा धर्ममवाप्नुहि।

यह जान कर कि पवनपुत्र अब प्रस्थान करने वाले हैं, देवी सीता आँसुओं से गद्गद् वाणी से पवन पुत्र हनुमान जी से बोलीं कि हे वानरश्रेष्ठ हनुमान! तुम राम और लक्ष्मण दोनों को एक साथ मेरा कुशल समाचार देना। पुनः मन्त्रियों सहित सुग्रीव को और सारे वृद्ध वानरों को धर्मयुक्त मेरा कुशल मंगल कहना। जिस प्रकार वे महाबाहु श्रीराम मेरा इस दुख के सागर से उद्धार कर सकें, तुम वैसा ही उपाय करना। हे हनुमान! वे यशस्वी राम जिस प्रकार मुझे जीते जी मिल सकें, वैसी ही बातें तुम उनसे कहना और वाणी के द्वारा धर्म की प्राप्ति करना।

नित्यमुत्साहयुक्तस्य वाचः श्रुत्वा मयेरिताः।। ५।।
वर्धिष्यते दाशरथेः पौरुषं मदवाप्तये।
मत्संदेशयुता वाचस्त्वत्तः श्रुत्वैव राघवः।। ६।।
पराक्रमे मतिं वीरो विधिवत् संविधास्यति।
सीतायास्तद् वचः श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः।। ७।।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत्।
क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः।। ८।।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति।

जो सदा उत्साह से युक्त रहते हैं, वे दशरथपुत्र राम जब मेरे द्वारा कही हुई बातें सुनेंगे तो मेरी प्राप्ति के लिये उनका पौरुष और बढ़ जायेगा। मेरे संदेश की बातें तुमसे सुन कर ही वे वीर श्रीराम पराक्रम करने में विधि पूर्वक अपनी बुद्धि को नियोजित करेंगे। सीता के इन वचनों को सुन कर पवनपुत्र हनुमान ने दोनों हाथ जोड़ कर और सिर झुका कर उत्तर दिया कि जो ककुत्स्थवंशी श्रीराम युद्ध में शत्रुओं को जीत कर आपके शोक को दूर करेंगे। वे जल्दी ही श्रेष्ठ वानरों और ऋक्षों से घिरे हुए यहाँ आयेंगे।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सम्यक् सत्यं सुभाषितम्।। ९।।
जानकी बहु मेने तं वचनं चेदमब्रवीत्।
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः।। १०।।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर।
कथं तु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम्।। ११।।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ।
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम्।। १२।।
निशम्य हनुमाञ्शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवीत्।

उनके उस सही, सत्य और सुन्दर उत्तर को सुन कर जानकी सीता ने उनका बहुत सम्मान किया। वह बोलीं कि हे वानरश्रेष्ठ! मेरे समक्ष तुम्हारे सहायक वानर और ऋक्षों के विषय में एक बड़ा सन्देह है कि वे वानरों और ऋक्षों की सेनाएँ तथा वे दोनों राज पुत्र इस दुष्पार समुद्र को कैसे पार करेंगे? तब सीता जी की उस सार्थक स्नेह युक्त और कारण युक्त अवशिष्ट बात को सुन कर हनुमान जी ने यह उत्तर दिया कि—

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः।। १३।।
सुग्रीवः सत्यसम्पन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः।
तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः।। १४।।
मनः संकल्पसम्पाता निदेशे हरयः स्थिताः।
येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक् सज्जते गतिः।। १५।।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः।
मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः।। १६।।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ।

हे देवी! वानरों और ऋक्षों के स्वामी वानरश्रेष्ठ सुग्रीव सत्यवादी हैं और उन्होंने आपके उद्धार हेतु दृढ़ निश्चय किया हुआ है। उनकी आधीनता में विक्रम सम्पन्न, धैर्य युक्त और महाबलशाली वानर हैं जो मन के संकल्प के समान तीव्रगति वाले हैं, जिनकी गति ऊपर नीचे कहीं भी नहीं रुकती है। वे अमित तेजस्वी बड़े-बड़े

कार्यों में भी कभी थकते नहीं हैं। सुग्रीव के समीप रहने वाले वे वानर मुझ से भी बढ़ कर हैं, या मेरे समान हैं। मुझ से कम तो कोई है ही नहीं।

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः।। १७।।
नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः।
तदलं परितापेन देवि शोको व्यपैतु ते।। १८।।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः।
मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ।। १९।।
त्वत्सकाशं महासत्त्वौ नृसिंहावागमिष्यतः।
तौ हि वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ।। २०।।
आगम्य नगरीं लङ्का सायकैर्विधमिष्यतः।

जब मैं यहाँ आ गया तो उन महाबलशालियों की तो बात ही क्या है। सन्देश भेजने के लिये उच्चकोटि के लोगों को नहीं भेजा जाता है, दूसरे लोग ही भेजे जाते हैं। इसलिये हे देवी! सन्ताप मत करो, आपका शोक दूर हो जाना चाहिये। वे वानर यूथपति एक ही उड़ान में लंका में आ जायेंगे। विशाल वानर समुदाय के साथ रहने वाले वे दोनों नरसिंह मेरी पीठ पर उदय होते हुए सूर्य और चन्द्रमा के समान आपके समीप आ जायेंगे। वे दोनों नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण एक साथ ही यहाँ आ कर अपने बाणों से लंका नगरी का विध्वंस कर देंगे।

सगणं रावणं हत्वा राघवो रघुनन्दनः।। २१।।
त्वामादाय वरारोहे स्वपुरीं प्रति यास्यति।
तदाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी।। २२।।
नचिराद् द्रक्ष्यसे रामं प्रज्वलन्तमिवानलम्।
एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान् मारुतात्मजः।। २३।।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीं पुनरब्रवीत्।

हे सुन्दरी! रघुनन्दन श्रीराम रावण को परिवार सहित मार कर और तुम्हें ले कर अपनी पुरी को लौटेंगे। इसलिये आप धैर्य धारण करें। आपका कल्याण हो। आप समय की प्रतीक्षा करें। आप शीघ्र ही प्रज्वलित होती हुई अग्नि के समान राम का दर्शन करेंगी। पवन पुत्र हनुमान वैदेही सीता को इस प्रकार आश्वासन दे कर प्रस्थान करने का विचार कर उनसे फिर बोले कि—

नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे
रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे ।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य
क्षमस्व मत्संगमकालमात्रम्।। २४।।

हे देवी! आप इस राक्षसों के भयानक प्रदेश में अब देर तक नहीं रहेंगी। आप के प्रिय के आगमन में अब देर नहीं है। आप केवल उनके मुझसे मिलने के समय तक के विलम्ब के लिये क्षमा करें।

इकत्तीसवाँ सर्ग

सीता का राम के लिये पुनः सन्देश देना, तथा हनुमान जी का उन्हें आश्वासन दे कर उनसे विदा होना।

श्रुत्वा तु वचनं तस्य वायुसूनोर्महात्मनः।
उवाचात्महितं वाक्यं सीता सुरसुतोपमा।। १।।
त्वां दृष्ट्वा प्रियवक्तारं सम्प्रहृष्यामि वानर।
अर्धसंजातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुंधरा।। २।।
यथा तं पुरुषव्याघ्रं गात्रैः शोकाभिकर्शितैः।
संस्पृशेयं सकामाहं तथा कुरु दयां मयि।। ३।।
मनः शिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः।
त्वया प्रणष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि।। ४।।

उन महात्मा पवन पुत्र की बात सुन कर देव पुत्री के समान सीता ने अपने हित की यह बात कही कि हे वानर! प्रिय समाचार देने वाले तुमसे मिल कर मैं उसी प्रकार हर्षित हूँ जैसे आधी जमी हुई खेती वाली भूमि वर्षा को प्राप्त कर हरी भरी हो जाती है। तुम मेरे ऊपर ऐसी दया करना जिससे मैं शोक से कुचले हुए अपने शरीर के अंगों से उन पुरुष व्याघ्र श्री राम को स्पर्श कर कृतार्थ हो जाऊँ। उनसे कहना कि एक बार मेरा तिलक मिट जाने पर आपने अपने हाथ से मेरे माथे पर मैनसिल का टीका लगाया था, इस बात को वे याद करें।

एष चूडामणिर्दिव्यो मया सुपरिरक्षितः।
एतं दृष्ट्वा प्रहृष्यामि व्यसने त्वामिवानघ।। ५।।
एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसम्भवः।
अतः परं न शक्ष्यामि जीवितुं शोकलालसा।। ६।।
असह्यानि च दुःखानि वाचश्च हृदयच्छिदः।
राक्षसैः सह संवासं त्वत्कृते मर्षयाम्यहम्।। ७।।
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रुभाषितम्।
अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः।। ८।।

इस अलौकिक रूप से सुन्दर चूडामणि को मैंने बड़े यत्न से सँभाल कर रखा है। हे निष्पाप! अपने मुसीबत के समय में मैं इसी को देख कर यह समझती थी कि जैसे आपको देख लिया और हर्ष का अनुभव करती थी। अब इस शोभा सम्पन्न, जल में उत्पन्न मणि को मैं आपको लौटा रही हूँ। इसलिये अब मैं शोकमग्न हो कर अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकूँगी। असह्य दुखों को, हृदय को छेदने वाली बातों को और राक्षसियों के साथ निवास को यह सब मैं आपके लिये सहन कर रही हूँ। आँसुओं के साथ कहे गये, करुणा से भरे हुए सीता के ये वचन सुन कर महातेजस्वी पवन पुत्र हनुमान बोले कि--

यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते।
प्रीतिसंजननं भूयस्तस्य त्वं दातुमर्हसि।। ९।।
साब्रवीद् दत्तमेवाहो मयाभिज्ञानमुत्तमम्।
एतदेव हि रामस्य दृष्ट्वा यत्नेन भूषणम्।। १०।।
श्रद्धेयं हनुमन् वाक्यं तव वीर भविष्यति।
स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान् प्लवगसत्तमः।। ११।।
प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे।

हे अनिन्दिते! जिससे राम और अधिक जान सकें तथा जो उनके हृदये में अधिक प्रेम उत्पन्न करने वाली है, ऐसी कोई और निशानी आप देना चाहें तो दे सकती हैं। तब सीता जी ने कहा कि हे वीर हनुमान! मैंने तुम्हें सर्वश्रेष्ठ पहचान दे ही दी है। इसी आभूषण को यत्नपूर्वक देख लेने पर राम के लिये तुम्हारी बातें विश्वसनीय हो जायेंगी। तब उस चूड़ामणि को लेकर वे वानर श्रेष्ठ श्री हनुमान उस देवी को प्रणाम कर वहाँ से जाने के लिये चल दिये।

ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसंदर्शनोत्सुकः।। १२।।
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः।
अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः।। १३।।
ददर्श सागरं भीमं भीमोरगनिषेवितम्।
स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम्।
कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः।। १४।।

उसके पश्चात स्वामी के दर्शन के लिये उत्सुक, वे शत्रुओं का मर्दन करने वाले वानरसिंह उस पर्वत श्रेष्ठ अरिष्ट नाम के पर्वत पर चढ़ गये। उस पर्वत पर चढ़ कर वीर पवनपुत्र हनुमान ने भयानक सर्पों से युक्त उस भयानक सागर को देखा जो अपनी ऊँची-ऊँची लहरों से किनारों को टक्कर मार रहा था। उस भयानक खारे पानी के समुद्र को लाँघने की इच्छा से वे वानर लीलापूर्वक आकाश में उड़ चले।

बत्तीसवाँ सर्ग

हनुमान जी का वापिस आ कर वानरों से मिलना।

पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च।
हरितारुणवर्णानि महाभ्राणि चकाशिरे।। १।।
विविधाभ्रघनापन्नगोचरो धवलाम्बरः।
दृश्यादृश्यतनुर्वीरस्तथा चन्द्रायतेऽम्बरे।। २।।
स किंचिदारात् सम्प्राप्तः समालोक्य महागिरिम्।
महेन्द्रं मेघसंकाशं ननाद स महाकपिः।। ३।।

उस समय आकाश में सफेद, लाल, नीले, मजीठिया, हरे और अरुण रंग के बड़े-बड़े बादल सुशोभित हो रहे थे। उन अनेक प्रकार की बादलों की घटाओं के बीच में से जाते हुए श्वेत वस्त्रधारी वे वीर हनुमान, उस समय मेघों के मध्य कभी छिपते और कभी प्रकट होते हुए चन्द्रमा के समान लग रहे थे। महान पर्वत महेन्द्र पर्वत के कुछ समीप पहुँच कर और उसे देख कर उन महान वानर ने बादलों के समान जोर से गर्जना की।

ये तु तत्रोत्तरे कूले समुद्रस्य महाबलाः।
पूर्वं संविष्ठिताः शूरा वायुपुत्रदिदृक्षवः।। ४।।
महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्येव निःस्वनम्।
शुश्रुवुस्ते तदा घोषमूरुवेगं हनूमतः।। ५।।
निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः।
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः।। ६।।
तमभ्रघनसंकाशमापतन्तं महाकपिम्।
दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा।। ७।।

उस समय समुद्र के उत्तरी किनारे पर जो महाबली शूरवीर वानर उन वायु पुत्र को देखने की इच्छा से पहले ही बैठे हुए थे, उन्होंने वायु से टकराते हुए महान मेघ की गर्जना के समान हनुमान जी के उस जोर से किये हुए सिंहनाद को सुना। सब तरफ बैठे हुए वानरों ने जब गर्जते हुए हनुमान जी के सिंहनाद को सुना तो अपने

सुहृद के दर्शनों के अभिलाषी वे उत्सुकता से भर गये। वे सारे वानर उन घने बादलों के समान महान वानर को नीचे आते हुए देख कर तब हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

निपपात गिरेस्तस्य शिखरे पादपाकुले।
हर्षेणापूर्यमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिर्झरे।। ८।।
ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः।
हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे।। ९।।
परिवार्य च ते सर्वे परांप्रीतिमुपागताः।
प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमागतमुपागमन्।। १०।।
उपायनानिचादाय मूलानि च फलानि च।
प्रत्यर्चयन् हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम्।। ११।।

तब प्रसन्नता से भरे हुए हनुमान उस पर्वत के वृक्षों से भरे हुए शिखर पर सुन्दर झरने के समीप आ कर उतरे। उस समय प्रसन्नता से भरे हुए वे सारे वानर श्रेष्ठ महात्मा हनुमान को घेर कर खड़े हो गये। उन आए हुए हनुमान जी को घेर कर, अत्यधिक प्रेम से भरे हुए प्रसन्न मुख वाले वे सभी उनके समीप आ गए। उन वानरों ने पवन पुत्र श्रेष्ठ हनुमान जी को विभिन्न प्रकार के फल मूलों के उपहार भेंट कर उनका स्वागत सम्मान किया।

विनेदुर्मुदिताः केचित् केचित् किलकिलां तथा।
हृष्टाः पादपशाखाश्च आनिन्युर्वानरर्षभाः।। १२।।
हनूमांस्तु गुरून् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः।। १३।।
स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः।
दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत्।। १४।।

कुछ आनन्दित हो कर गर्जने लगे और कुछ किलकारियाँ भरने लगे और कोई वानर श्रेष्ठ उनके बैठने के लिये वृक्षों की शाखायें तोड़ लाये। महा वानर हनुमान ने अपने से बड़े बूढ़े जाम्बवान आदि तथा कुमार अंगद की वन्दना की। उन दोनों के द्वारा सम्मानित तथा दूसरे वानरों के द्वारा प्रशंसित हो कर उन पराक्रमी वानर ने संक्षेप में निवेदन किया कि मैंने देवी सीता को देख लिया है।

निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम्।
रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा।। १५।।
हनूमानब्रवीत् पृष्टस्तदा तान् वानरर्षभान्।
अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा।। १६।।
रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता।
एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा।। १७।।
उपवासपरिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा।

उसके बाद हनुमान जी बाली पुत्र अंगद का हाथ अपने हाथ में ले कर महेन्द्र पर्वत के रमणीय प्रदेश में बैठे और सबके पूछने पर उन वानरश्रेष्ठों से बोले कि मैंने वहाँ जनकपुत्री सीता को अशोक वाटिका में रहते हुए देखा है। उस अनिन्दिता की अत्यन्त भयानक राक्षसियाँ रखवाली करती हैं। उन भोली भाली को केवल राम के दर्शन की लालसा है। उन्होंने एक वेणी धारण की हुई है। वे उपवास के कारण थकी हुई और कमजोर हो गयी हैं, वे मलिनावस्था में हैं। उनके बाल भी जटा के रूप में हो गये हैं।

ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम्।। १८।।
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन्।
उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तु तदाब्रवीत्।। १९।।
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये वाचमनुत्तमाम्।
सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित् समोवानर विद्यते।। २०।।
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः।
जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम।। २१।।
त्वत्प्रसादात् समेष्यामः सिद्धार्था राघवेण ह।

तब हनुमान जी के उस अमृत के समान महान प्रयोजन की सिद्धि से युक्त वचन को सुन कर सारे वानर बड़े प्रसन्न हुए। उनकी इस बात को सुन कर अंगद ने सारे वानर वीरों के बीच में यह उत्तम बात कही कि हे वानरश्रेष्ठ! बल और पराक्रम में तुम्हारे समान कोई नहीं है क्योंकि तुम इस विस्तृत सागर को लांघ कर पुनः वापिस आ गये हो। तुम अकेले ने ही हमें जीवनदान दिया है। तुम्हारी कृपा से भी हम सफल मनोरथ हो कर राम के समीप जायेंगे।

अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः।। २२।।
दिष्ट्या दृष्टा त्वया देवी रामपत्नी यशस्विनी।
दिष्ट्या त्यक्ष्यति काकुत्स्थः शोकं सीतावियोगजम्।। २३।।

अपने स्वामी के प्रति तुम्हारी भक्ति अद्‌भुत है। तुम्हारा पराक्रम और धैर्य प्रशंसनीय है। यह सौभाग्य की बात है कि तुमने राम की पत्नी यशस्विनी सीता के दर्शन कर लिये। यह भी बड़ी अच्छी बात है कि अब श्रीराम सीता के वियोग के दुख का त्याग कर सकेंगे।

ततोऽङ्गदं हनूमन्तं जाम्बवन्तं च वानराः।
परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुलाः शिलाः।। २४।।
श्रोतुकामाः समुद्रस्य लंघनं वानरोत्तमः।
दर्शनं चापि लङ्कायाः सीताया रावणस्य च।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे हनूमद्वदनोन्मुखाः।। २५।।

उसके पश्चात् वे समुद्र को लांघने, लंका, रावण और सीता को देखने के समाचार को विस्तार से सुनने की इच्छा वाले वे श्रेष्ठ वानर लोग प्रसन्नता के साथ अंगद, हनुमान और जाम्बवान को घेर कर शिलाओं पर बैठ गये। उन सबने उस समय हाथ जोड़े हुए थे और वे हनुमान जी के मुख की तरफ देख रहे थे।

तेतीसवाँ सर्ग

हनुमान जी द्वारा अपनी लंका यात्रा का वृत्तान्त वर्णन करना।

प्रीतिमत्सूपविष्टेषु वानरेषु महात्मसु।
तं ततः प्रतिसंहृष्टः प्रीतियुक्तं महाकपिम्।। १।।
जाम्बवान् कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम्।
कथं दृष्टा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते।। २।।
तस्यां चापि कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः।
तत्त्वतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे।। ३।।

तब उन महात्मा वानरों के स्नेह से युक्त हो कर बैठ जाने पर प्रेम भावना से युक्त उन महा वानर पवनपुत्र के प्रति प्रसन्नता से भरे हुए जाम्बवान ने उनके द्वारा किये गये कार्य का विस्तृत वृतान्त पूछा और कहा कि तुमने उस देवी को कैसे देखा? वे वहाँ किस अवस्था में हैं? क्रूर कर्म करने वाला दशानन उनके साथ किस तरह का बर्ताव करता है? हे महा वानर! ये सब बातें तुम हमें ठीक-ठीक बताओ।

सम्मार्गिता कथं देवी किं च सा प्रत्यभाषत।
श्रुतार्थाश्चिन्तयिष्यामो भूयः कार्यविनिश्चयम्।। ४।।
यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान्।
रक्षितव्यं च यत्तत्र तद् भवान् व्याकरोतु नः।। ५।।
स नियुक्तस्ततस्तेन सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
नमस्यञ्छिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत।। ६।।
प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात् खमाप्लुतः।
उदधेर्दक्षिणं पारं काङ्क्षमाणः समाहितः।। ७।।

तुमने उस देवी को कैसे खोजा! उसने तुम्हें क्या कहा? इन सब बातों को सुन कर हम फिर आगे के कार्य का निश्चय करेंगे। हमें वहाँ जा कर उन आत्मज्ञानी श्रीराम से क्या बात कहनी है, और क्या नहीं कहनी है, यह आप समझाइये। जाम्बवान के इस प्रकार कहने पर हनुमान जी प्रसन्नता से रोमांचित हो गये। उन्होंने सिर झुका कर देवी सीता को नमस्कार किया और फिर उनसे बोले कि आप सबके सामने ही मैं समुद्र के दक्षिणी किनारे पर जाने की इच्छा से सावधान हो कर महेन्द्र पर्वत के शिखर से आकाश में उड़ा था।

गत्वा च महदध्वानं पश्यामि नगमण्डितम्।
दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र गता पुरी।। ८।।
अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरीम्।
प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः।। ९।।
तत्राहं सर्वरात्रं तु विचरञ्जनकात्मजाम्।
रावणान्तःपुरगतो न चापश्यं सुमध्यमाम्।। १०।।
ततः सीतामपश्यंस्तु रावणस्य निवेशने।
शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्षये।। ११।।

उस लम्बे मार्ग पर जा कर मैंने पर्वत से सुशोभित समुद्र के दक्षिणी किनारे को देखा, जहाँ लंका पुरी है। सूर्य के अस्त होने पर मैंने भयानक विक्रम वाले उन राक्षसों के आवास लंका में छिप कर प्रवेश किया। वहाँ मैं सारी रात घूमता रहा। मैं रावण के अन्तःपुर में भी गया, पर मैंने उस सुन्दरी जनकपुत्री को नहीं देखा। तब रावण के घर में सीता को न पा कर मैं महान शोक सागर में डूबने लगा, जिसका पार मुझे दिखाई नहीं दे रहा था।

शोचता च मया दृष्टं प्राकारेणाभिसंवृतम्।
काञ्चनेन विकृष्टेन गृहोपवनमुत्तमम्।। १२।।
सप्राकारमवप्लुत्य पश्यामि बहुपादपम्।
अशोकवनिकामध्ये शिंशपापादपो महान्।। १३।।
तमारुह्य च पश्यामि काञ्चनं कदलीवनम्।
अदूराच्छिंशपावृक्षात् पश्यामि वरवर्णिनीम्।। १४।।
श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम्।
तदेकवासःसंवीतां रजोध्वस्तशिरोरुहाम्।। १५।।

सोच विचार करते हुए मुझे वहाँ एक उत्तम गृहोद्यान दिखाई दिया जो सुन्दर और सुनहरे परकोटे से घिरा हुआ

था। उस परकोटे को लाँघ कर मैंने बहुत वृक्षों वाली उस अशोक वाटिका के बीच में एक बड़े शीशम के पेड़ को देखा। उस वृक्ष पर चढ़ कर मैंने एक सुनहरे रंग के कदलीवन को देखा और उस शीशम के वृक्ष के समीप ही उस सुन्दर रंग वाली सीता को भी देखा। उस सुन्दरी कमल-नयनी का मुख उपवास के कारण कमजोर हो गया था। उन्होंने एक ही वस्त्र पहना हुआ था और उनके सिर के बाल धूल से भरे हुए थे।

शोकसंतापदीनाङ्गीं सीतां भर्तृहिते स्थिताम्।
राक्षसीभिर्विरूपाभिः क्रूराभिरभिसंवृताम्।। १६।।
मांसशोणितभक्ष्याभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीं यथा।
सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः।। १७।।
एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा।
भूमिशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे।। १८।।
ततो हलहलाशब्दं काञ्चीनूपुरमिश्रितम्।
शृणोम्यधिकगम्भीरं रावणस्य निवेशने।। १९।।

शोक और सन्ताप के कारण सीता जी के शरीर में दीनता भरी हुई है। वे पति के ही ध्यान में स्थित हैं। उन्हें भयानक रूप रूपवाली क्रूर राक्षसियों ने इस प्रकार घेर रखा है जैसे खून और माँस खाने वाली बाघिनों ने हिरणी को घेर लिया हो। मैंने देखा कि राक्षसियों के बीच में वे बारबार राक्षसियों के द्वारा धमकायी जा रहीं थीं। एक वेणी धारण किये पति की चिन्ता में मग्न, भूमि पर सोने वाली उस दीन सीता के अंग उसी प्रकार कान्तिहीन हो गये हैं जैसे हेमन्त ऋतु के आने पर कमलिनी हो जाती है। तभी मैंने रावण के महल में कोलाहल की अधिक गम्भीर ध्वनि सुनी, जिसमें मेखला और नूपुरों की झंकार भी मिली हुई थी।

ततो रावणदाराश्च रावणश्च महाबलः।
तं देशमनुसम्प्राप्तो यत्र सीताभवत् स्थिता।। २०।।
तं दृष्ट्वाथ वरारोहा सीता रक्षोगणेश्वरम्।
संकुच्योरू स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरभ्य च।। २१।।
वित्रस्तां परमोद्विग्नां वीक्ष्यमाणामितस्ततः।
त्राणं कंचिदपश्यन्तीं वेपमानां तपस्विनीम्।। २२।।
तामुवाच दशग्रीवः बहुमन्यस्व मामिति।
यदि चेत्त्वं तु मां दर्पान्नाभिनन्दसि गर्विते।। २३।।
द्विमासानन्तरं सीते पास्यामि रुधिरं तव।

तभी महा बलशाली रावण और रावण की पत्नियाँ वहाँ आये, जहाँ सीता विद्यमान थी। उस राक्षसों के स्वामी को देख कर वह सुन्दरी सीता अपनी जाँघों को हाथों से ढक कर बैठ गयी। वे उस समय डरी हुई थीं और बहुत उद्विग्न थीं। वह तपस्विनी अपने बचाव के लिये इधर उधर देख रहीं थीं। उनकी उसी अवस्था में रावण उनसे बोला कि तुम मुझे बहुत आदर दो। हे गर्विणी! यदि तुम अपने अभिमान से मुझे सम्मान नहीं दोगी तो दो मास के पश्चात मैं तुम्हारा खून पी जाऊँगा।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः।। २४।।
उवाच परमक्रुद्धा सीता वचनमुत्तमम्।
राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः।। २५।।
इक्ष्वाकुवंशनाथस्य स्नुषां दशरथस्य च।
अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव।। २६।।
किंस्विद्वीर्यं तवानार्य यो मां भर्तुरसंनिधौ।
अपहृत्यागतः पाप तेनादृष्टो महात्मना।। २७।।
न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्य न युज्यसे।
अजेयः सत्यवाक् शूरो रणश्लाघी च राघवः।। २८।।

उस दुष्ट रावण के ये वचन सुन कर अत्यन्त क्रुद्ध हो कर सीता ने ये वचन कहे कि हे अधम राक्षस! मैं अमित तेजस्वी तथा इक्ष्वाकुंश के स्वामी श्रीराम की पत्नी हूँ और दशरथ की पुत्रवधु हूँ। यह न बोलने योग्य बातें कहते हुए तेरी जिह्वा क्यों नही गल जाती। अरे अनार्य, पापी! तेरा क्या पराक्रम है, जो तू मुझे मेरे पति के न होने पर, उन महात्मा राम से छिप कर मेरा अपहरण करके ले आया। तू तो श्रीराम के दास के भी बराबर नहीं है। श्रीराम तो युद्ध की अभिलाषा वाले, युद्ध के प्रशंसक, शूरवीर, सत्यवादी और अजेय हैं।

जानक्या परुषं वाक्यमेवमुक्तो दशाननः।
जज्वाल सहसा कोपाच्चितास्थ इव पावकः।। २९।।
विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम्।
मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा।। ३०।।
स्त्रीणां मध्यात् समुत्पत्य तस्य भार्या दुरात्मनः।
वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिषेधितः।। ३१।।
उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनार्दितः।

जानकी के इन कठोर वाक्यों को सुन क़र रावण चिता में विद्यमान अग्नि के समान क्रोध से जलने लगा अपनी क्रूर आँखों को फाड़ कर तथा दायें हाथ के मुक्के को तान कर वह सीता को मारने के लिये तैयार हो गया। यह देख कर वे सारी स्त्रियाँ हा हा कार करने लगीं। तभी उन स्त्रियों के बीच से उस दुष्ट की सुन्दरी भार्या मन्दोदरी नाम की वहाँ झपट कर आयी

और उसने रोका तथा उस कामपीडित से मधुर वाणी में कहा कि–

सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम।। ३२।।
मया सह रमस्वाद्य मद्विशिष्टा न जानकी।
देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च।। ३३।।
सार्धं प्रभो रमस्वेति सीतया किं करिष्यसि।
ततस्ताभिः समेताभिर्नारीभिः स महाबलः।। ३४।।
उत्थाय सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः।
याते तस्मिन् दशग्रीवे राक्षस्यो विकृताननाः।। ३५।।
सीतां निर्भर्त्सयामासुर्वाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः।

हे इन्द्र के समान पराक्रमी! सीता से तुम्हें क्या काम? तुम मेरे साथ आनन्द लो। सीता मुझ से बढ़ कर नहीं है। हे प्रभो! आप इन देवताओं गन्धर्वों और यक्षों की कन्याओं के साथ आनन्द लीजिये, सीता से क्या करेंगे? तब उन सारी स्त्रियों के द्वारा उस महाबली राक्षस को एक दम वहाँ से खींच कर अपने महल में ले जाया गया। उस रावण के वहाँ ले जाने पर वे भयानक मुख वाली राक्षसियाँ सीता को क्रूर और अत्यन्त कठोर वाक्यों से धमकाने लगीं।

तृणवद् भाषितं तासां गणयामास जानकी।। ३६।।
गर्जितं च तथा तासां सीतां प्राप्य निरर्थकम्।
ततस्ताः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः।। ३७।।
परिक्लिश्य समस्तास्ता निद्रावशमुपागताः।
तासु चैव प्रसुप्तासु सीता भर्तृहिते रता।। ३८।।
विलप्य करुणं दीना प्रशुशोच सुदुःखिता।
तां चाहं तादृशीं दृष्ट्वा सीताया दारुणां दशाम्।। ३९।।
सम्भाषणार्थे च मया जानक्याश्चिन्तितो विधिः।

किंतु सीता जी ने उनकी बातों को तिनके के समान समझा और उनका गर्जन तर्जन भी सीता के सामने बेकार हो गया। तब वे सारी निराश हो कर, और प्रयत्न करना छोड़ कर थकावट से वहीं सो गयीं। उनके सो जाने पर, पति के ध्यान में लगी हुई दीन और दुखी सीता ने बहुत प्रकार से करुणा पूर्वक विलाप किया। सीता जी को इस प्रकार की दारुण दशा में देख कर मैंने उनसे बात करने के लिये एक उपाय सोचा।

इक्ष्वाकुकुलवंशस्तु स्तुतो मम पुरस्कृतः।। ४०।।
श्रुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणभूषिताम्।
प्रत्यभाषत मां देवी बाष्पैः पिहितलोचना।। ४१।।
कस्त्वं केन कथं चेह प्राप्तो वानरपुङ्गव।
का च रामेण ते प्रीतिस्तन्मे शंसितुमर्हसि।। ४२।।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा अहमप्यब्रुवं वचः।
देवि रामस्य भर्तुस्ते सहायो भीमविक्रमः।। ४३।।
सुग्रीवो नाम विक्रान्तो वानरेन्द्रो महाबलः।
तस्य मां विद्धि भृत्यं त्वं हनूमन्तमिहागतम्।
भर्त्रा सम्प्रहितस्तुभ्यं रामेणाक्लिष्टकर्मणा।। ४४।।

मैंने पहले इक्ष्वाकु वंश की प्रशंसा करनी आरम्भ की। उस वंश के राजर्षियों की प्रशंसा से विभूषित मेरी वाणी सुन कर सीता जी की आँखों में आँसू भर आए और वे मुझ से बोलीं कि हे वानर श्रेष्ठ! तुम कौन हो? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है? तुम यहाँ किस प्रकार पहुँचे? मुझे बताओ कि तुम्हारा राम से प्रेम कैसे है? उसकी इन बातों को सुन कर मैंने भी तब कहा कि हे देवी! आपके पति का सहायक भयानक विक्रम वाला महाबली सुग्रीव नाम का वानरों का राजा है, तुम मुझे उसका सेवक हनुमान नाम का समझो। अनायास ही महान कर्म करने वाले तुम्हारे पति श्री राम ने मुझे तुम्हारे लिये भेजा है।

इदं तु पुरुषव्याघ्रः श्रीमान् दाशरथिः स्वयम्।। ४५।।
अङ्गुलीयमभिज्ञानमदात् तुभ्यं यशस्विनि।
प्रणम्य शिरसा देवीमहमार्यामनिंदिताम्।। ४६।।
राघवस्य मनोह्लादमभिज्ञानमयाचिषम्।
अथ मामब्रवीत् सीता गृह्यतामयमुत्तमः।। ४७।।
मणिर्येन महाबाहू रामस्त्वां बहू मन्यते।
इत्युक्त्वा तु वरारोहा मणिप्रवरमुत्तमम्।। ४८।।
प्रायच्छत् परमोद्विग्ना वाचा मां संदिदेश ह।

हे यशस्विनी! उन पुरुषव्याघ्र दशरथ पुत्र श्रीमान राम ने स्वयं अपनी यह अंगूठी आपको पहचान के लिये भिजवायी है। उसके बाद मैंने उन अनिन्दिता, आर्या, देवी को सिर झुका कर प्रणाम किया और उनसे श्रीराम के मन को प्रसन्न करने वाली कोई पहचान माँगी। तब सीता जी ने मुझ से कहा कि यह उत्तम चूड़ामणि है, इसे ग्रहण करो। इसे देख कर महाबाहु राम तुम्हारा बहुत आदर करेंगे। ऐसा कह कर उन सुन्दरी ने अपनी अत्यन्त श्रेष्ठ चूड़ामणि मुझे दी और अत्यन्त उद्विग्न हो कर उन सुन्दरी ने मुझे वाणी के द्वारा संदेश दिया कि–

उत्तरं पुनरेवाह निश्चित्य मनसा तदा।। ४९।।
हनूमन् मम वृत्तान्तं वक्तुमर्हसि राघवे।
यथा श्रुत्वैव नचिरात् तावुभौ रामलक्ष्मणौ।। ५०।।
सुग्रीवसहितौ वीरावुपेयातां तथा कुरु।

यदन्यथा भवेदेतद् द्वौ मासौ जीवितं मम।
न मां द्रक्ष्यति काकुत्स्थो म्रिये साहमनाथवत्।।५१।।
ततः पर्वतमासाद्य तत्रारिष्टमहं पुनः।
प्रतिप्लवनमारेभे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया।।५२।।

अपना सन्देश दे कर तथा मन में कुछ सोच कर उन्होंने उसके बाद पुनः यह कहा कि हे हनुमान! तुम मेरा सारा हाल राम को बताना। तुम ऐसा करना जिससे तुम्हारी बात सुनते ही दोनों राम लक्ष्मण वीर सुग्रीव के साथ यहाँ जल्दी आ जाएँ। यदि ऐसा नहीं हुआ तो श्रीराम मुझे देख नहीं पायेंगे और मैं अनाथ की तरह मारी जाऊँगी। क्योंकि मेरे जीवित रहने की सीमा अवधि दो मास की है। तब मैं वहाँ से अरिष्ट पर्वत पर आ गया और यहाँ आप लोगों से मिलने की इच्छा से पुनः वापिसी की उड़ान भरनी आरम्भ कर दी।

चौंतीसवाँ सर्ग

वानरों का लौटते हुए मधुवन में जा कर बिना रक्षकों की आज्ञा के मधु और फलों का उपभोग करना और रक्षकों का सुग्रीव के पास शिकायत के लिये जाना।

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः।
महेन्द्राग्रात् समुत्पत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः।।१।।
छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः।
राघवे चार्थनिर्वृत्तिं कर्तुं च परमं यशः।।२।।
समाधाय समृद्धार्थाः कर्मसिद्धिभिरुन्नताः।
प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः।।३।।
सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः।

तब वे सारे वानरश्रेष्ठ प्रसन्नता से भरे हुए हनुमान जी को आगे करके महेन्द्र पर्वत के शिखर से उछल कर उड़ते हुए चल दिये। विशालकाय महाबलशाली वानर आकाश को आच्छादित सा करते हुए जा रहे थे। राम के कार्य की सिद्धि को लिये निकले हुए वे वानर उस सिद्धि के महान यश को प्राप्त कर सफल मनोरथ हो गये थे। कार्य की सफलता से उनका उत्साह बढ़ा हुआ था। वे प्रिय संवाद को सुनाने के लिये उत्सुक थे। वे सब के सब युद्ध से प्रेम करने वाले, मनस्वी और राम की विपत्ति के प्रतिकार के लिये दृढ़ निश्चय किये हुए थे।

प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौकसः।। ४।।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम्।
यत् तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम्।। ५।।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम्।
यद् रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः।। ६।।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
ते तद् वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः।। ७।।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्तं महावनम्।

आकाश में उछलते उड़ते हुए वे सारे वानर तब एक नन्दनवन के समान सुन्दर और सैकड़ों हजारों वृक्षों से युक्त बाग में पहुँचे। उस बाग का नाम मधुबन था। वह सुग्रीव के द्वारा सुरक्षित था। वह सारे प्राणियों को लुभाने वाला था, पर कोई भी उसको हानि नहीं पहुँचा सकता था। उस मधुबन की रक्षा महान वीर दधिमुख नाम के वानर जो महात्मा सुग्रीव के मामा थे, करते थे। वे वानर लोग उस समय वानरेन्द्र के मन को आकर्षित करने वाले उस महान वन के समीप पहुँच कर बहुत उत्कंठित हो गये।

ततस्तेवानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत्।।८।।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः।
ततः कुमारस्तान् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान् कपीन्।।९।।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे।
ते निसृष्टाः कुमारेण धीमता वालिसूनुना।।१०।।
हरयः समपद्यन्त द्रुमान् मधुकराकुलान्।
भक्षयन्तः सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च।।११।।
जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः।
मुदिताश्च ततस्ते च प्रनृत्यन्ति ततस्ततः।।१२।।

तब प्रसन्नता से भरे हुए, मधु के समान पिंगल वर्ण वाले वे वानर उस महान मधुवन को देख कर मधु खाने की आज्ञा माँगने लगे। तब कुमार अंगद ने जाम्बवान आदि वृद्ध वानरों से सलाह कर उन्हें मधु खाने की आज्ञा दे दी। धीमान कुमार बालिपुत्र के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर वे वानर भौरों के भरे हुए वृक्षों पर चढ़ गये। वहाँ सुगन्धित फल मूल खाते हुए उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और अत्यधिक प्रसन्नता के कारण वे आपे

से बाहर हो गये और आनन्द में मग्न हो कर वे इधर उधर नाचने लगे।

गायन्ति केचित् प्रहसन्ति केचि-
न्नृत्यन्ति केचित् प्रणमन्ति केचित्।
पतन्ति केचित् प्रचरन्ति केचित्।
प्लवन्ति केचित् प्रलपन्ति केचित्।। १३।।

उनमें से कुछ गाने लगे, कुछ अट्टहास करने लगे, कुछ नाचने लगे, कुछ प्रणाम करने लगे, कुछ गिर पड़ रहे थे, कुछ जोर-जोर से चल रहे थे, कुछ आकाश में उड़ रहे थे और कुछ प्रलाप कर रहे थे।

परस्परं केचिदुपाश्रयन्ति
परस्परं केचिदतिब्रुवन्ति।
द्रुमाद् द्रुमं केचिदभिद्रवन्ति
क्षितौ नगाग्रान्निपतन्ति केचित्।। १४।।

उनमें से कुछ परस्पर एक दूसरे के समीप जा कर मिलते थे, कुछ आपस में वादविवाद करते थे, कुछ एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की तरफ दौड़ कर जाते थे और कुछ वृक्ष की शाखा से भूमि पर कूद पड़ते थे।

महीतलात् केचिदुदीर्णवेगा
महाद्रुमाग्राण्यभिसम्पतन्ति ।
गायन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति।
हसन्तमन्यः प्ररुदन्नुपैति।। १५।।

कुछ प्रचण्ड वेग वाले वानर भूमितल से बड़े-बड़े वृक्षों के शिखरों तक पहुँच जाते थे। गाते हुए किसी वानर के पास दूसरा अट्टहास करता हुआ पहुँच जाता था तो कोई हँसते हुए के पास जोर-जोर से रोता हुआ पहुँच जाता था।

तुदन्तमन्यः प्रणदन्नुपैति
समाकुलं तत् कपिसैन्यमासीत्।
न चात्र कश्चिन्न बभूव मत्तो
न चात्र कश्चिन्न बभूव दृप्तः।। १६।।

कोई किसी को पीड़ा देता तो दूसरा वानर उसके पास गर्जता हुआ पहुँच जाता था। इस प्रकार सारी ही वह वानर सेना पूरी तरह से उछल कूद कर रही थी। वहाँ कोई ऐसा नहीं था जो मस्ती में न हो और कोई ऐसा नहीं था जो दर्प से युक्त न हो गया हो।

ततो वनं तत् परिभक्ष्यमाणं
द्रुमांश्च विध्वंसितपत्रपुष्पान्।
समीक्ष्य कोपाद् दधिवक्त्रनामा
निवारयामास कपिः कपींस्तान्।। १७।।

तब उस मधुवन के मधु और फलों को खाया हुआ तथा वृक्षों के पतों और पुष्पों को नष्ट किया हुआ देख कर दधिवक्त्र नाम का वानर क्रोध से उनको रोकने लगा।

स तैः प्रवृद्धैः परिभर्त्स्यमानो
वनस्य गोप्ता हरिवृद्धवीरः।
चकार भूयो मतिमुग्रतेजा
वनस्य रक्षां प्रति वानरेभ्यः।। १८।।

पर वन का रखवाला वह बूढ़ा वानर वीर उन वानरों द्वारा जो अधिक प्रसन्नता से पागल से हो गये थे, धमकाया और डाँटा जाने लगा। पर फिर भी उस उग्र तेजस्वी दधिमुख ने उस वन की रक्षा का निश्चय किया।

उवाच कांश्चित् परुषाण्यभीत-
मसक्तमन्यांश्च तलैर्जघान।
समेत्य कैश्चित् कलहं चकार
तथैव साम्नोपजगाम कांश्चित्।। १९।।

उसने निर्भय हो कर किन्हीं वानरों को कठोर वचन कहे। किन्हीं को बिना भेद भाव के थप्पड़ों से मारा। किन्हीं के साथ उसने भिड़ कर झगड़ा किया और कइयों को उसने समझा कर शान्त किया।

स तैर्मदादप्रतिवार्यवेगै-
र्बलाच्च तेन प्रतिवार्यमाणैः।
प्रधर्षणे त्यक्तभयैः समेत्य
प्रकृष्यते चाप्यनवेक्ष्य दोषम्।। २०।।

जिन वानरों के होश हवास अत्यधिक मस्ती के कारण अपने काबू में नहीं थे, उन्हें दधिमुख ने जब बल प्रयोग द्वारा रोकना चाहा तो उन्होंने राज अपराध की तरफ न देखते हुए, निर्भय हो कर उसे बल पूर्वक इधर-उधर घसीटना आरम्भ कर दिया।

स कथंचिद् विमुक्तस्तैर्वानरैर्वानरर्षभः।
उवाचैकान्तमागत्य स्वान् भृत्यान् समुपागतान्।। २१।।
एतागच्छत गच्छामो भर्ता नो यत्र वानरः।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सह रामेण तिष्ठति।। २२।।
सर्वं चैवाङ्गदे दोषं श्रावयिष्याम पार्थिवे।
अमर्षी वचनं श्रुत्वा घातयिष्यति वानरान्।। २३।।

तब वह वानरश्रेष्ठ किसी प्रकार उन वानरों से अपने को छुड़ा कर, एकान्त स्थान पर आ कर, अपने सेवकों को समीप बुला कर उनसे यह बोला कि आओ हम वहीं चलते हैं, जहाँ हमारे स्वामी मोटी ग्रीवा वाले सुग्रीव वानर श्रीराम के पास बैठे हैं। हम राजा के समीप सारा

दोष अंगद का ही बतायेंगे। वे बड़े अमर्षी हैं। वे हमारी बात सुन कर इन वानरों को मरवा देंगे।

एवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान् महाबलः।
जगाम सहसोत्पत्य वनपालैः समन्वितः।। २४।।
निमेषान्तरमात्रेण स हि प्राप्तो वनालयं।
सहस्रांशुसुतो धीमान् सुग्रीवो यत्र वानरः।। २५।।
स निपत्य महावीरः सर्वैस्तैः परिवारितः।
हरिर्दधिमुखः पालैः पालानां परमेश्वरः।। २६।।
स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्।
सुग्रीवस्याशु तौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत्।। २७।।

उन वन रक्षकों से ऐसा कह कर वह महाबली दधिमुख वनपालों के साथ तुरन्त उड़ कर वहाँ से चल दिया। थोड़े ही समय में वे वन के उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ धीमान वानर सूर्य पुत्र सुग्रीव विद्यमान थे। तब वन रक्षकों का स्वामी और वन रक्षकों से घिरा हुआ वह महान वीर दधिमुख नीचे उतर कर उदास मुख से, सिर पर दोनों हाथ बाँध कर सुग्रीव के समीप गया और उसने जल्दी से सिर झुका कर उसके चरणों में प्रणाम किया।

पैंतीसवाँ सर्ग

रक्षकों से मधुवन के विध्वंस का समाचार सुन कर सुग्रीव का हनुमान आदि की सफलता के विषय में अनुमान।

ततो मूर्ध्ना निपतितं वानरं वानरर्षभः।
दृष्ट्वेवोद्विग्नहृदयो वाक्यमेतदुवाच ह।। १।।
किं सम्भ्रमाद्धितं कृत्स्नं ब्रूहि यद् वक्तुमर्हसि।
कच्चिन्मधुवने स्वस्ति श्रोतुमिच्छामि वानर।। २।।
स समाश्वासितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना।
उत्थाय स महाप्राज्ञो वाक्यं दधिमुखोऽब्रुवीत्।। ३।।
नैवर्क्षरजसा राजन् न त्वया न च वालिना।
वनं निसृष्टपूर्वं ते नाशितं तत्तु वानरैः।। ४।।

तब वानर शिरोमणि सुग्रीव ने उसे सिर झुका कर प्रणाम करते हुए देख कर, हृदय में उद्विग्न हो कर उससे पूछा कि क्यों भयभीत हो कर यहाँ आये हो? जो हित की बात है उसे पूरी तरह से बताओ, क्योंकि तुम सब कुछ कह सकते हो। क्या मधुवन में कुशलता है? मैं इसके विषय में तुमसे कुछ सुनना चाहता हूँ। महात्मा सुग्रीव के द्वारा इस प्रकार धैर्य बँधाने पर वह महाप्राज्ञ दधिमुख उठ कर उनसे बोला कि हे राजन्! जिस वन के मनमाना उपभोग करने की पहले न तो ऋक्षराज ने, न बाली ने और न आपने आज्ञा दी थी, उसी का वानरों ने नाश कर दिया है।

न्यवारयमहं सर्वान् सहैभिर्वनचारिभिः।
अचिन्तयित्वा मां हृष्टा भक्षयन्ति पिबन्ति च।। ५।।
शिष्टमत्रापविध्यन्ति भक्षयन्ति तथापरे।
निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रूकुटिं दर्शयन्ति हि।। ६।।
ततस्तैर्बहुभिर्वीरैर्वानरैर्वानरर्षभाः।
संरक्तनयनैः क्रोधाद्धरयः सम्प्रधर्षिताः।। ७।।
पाणिभिर्निहताः केचित् केचिज्जानुभिराहताः।
प्रकृष्टाश्च तदा कामं देवमार्गं च दर्शिताः।। ८।।

मैंने इन वानरों के साथ उन्हें रोका, पर वे मेरी परवाह न कर प्रसन्नता से भरे हुए फलों को खा रहे हैं और मधु को पी रहे हैं। दूसरे वानर खा तो रहे ही हैं, जो बच जाता है उसे फेंक भी देते हैं। जब उनको रोका जाता है तो वे टेढ़ी भौहें करके दिखाते हैं। पुनः उन बहुत से वानर वीरों ने क्रोध से लाल आँखें करके इन श्रेष्ठ वानरों को पकड़ कर धर दबाया। इनमें से कुछ को उन्होंने थप्पड़ों से मारा, कुछ को घुटनों से रगड़ दिया, किन्ही को इच्छा के अनुसार घसीटा और किन्हीं को पीठ के बल पटक कर उन्हें आसमान दिखा दिया।

एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि।
कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैश्च भक्ष्यते।। ९।।
एवं विज्ञाप्यमानं तं सुग्रीवं वानरर्षभम्।
अपृच्छत् तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा।। १०।।
किमयं वानरो राजन् वनपः प्रत्युपस्थितः।
किं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत्।। ११।।
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना।
लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः।। १२।।

इस प्रकार आप जैसे स्वामी के रहते हुए ये शूरवीर इस प्रकार मारे पीटे गये। सारे मधुवन का उनके द्वारा इच्छा के अनुसार उपभोग किया जा रहा है। जब वानर

श्रेष्ठ सुग्रीव से यह बात कही जा रही थी तब शत्रु के वीरों को नष्ट करने वाले महाप्राज्ञ लक्ष्मण ने उनसे पूछा कि हे राजन्! यह वनरक्षक वानर किस लिये यहाँ आया है और किस बात के विषय में दुखी हो कर कह रहा है? महात्मा लक्ष्मण के द्वारा ऐसा पूछे जाने पर वाक्य चतुर सुग्रीव ने यह उत्तर दिया कि–

आर्य लक्ष्मण सम्प्राह वीरो दधिमुखः कपिः।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः।। १३।।
नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्याद् व्यतिक्रमः।
वनं यदभिपन्नास्ते साधितं कर्म तद् ध्रुवम्।। १४।।
जाम्बवान् यत्र नेता स्यादङ्गदश्च महाबलः।
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा।। १५।।

हे आर्य लक्ष्मण! वीर दधिमुख वानर ने यह कहा है कि अंगद आदि वानर वीरों ने मधुवन का मधु खा लिया है। यदि उन्होंने कार्य को पूरा नहीं किया होता तो वे ऐसा अपराध नहीं कर सकते थे। उन्होंने जो वन पर आक्रमण किया, इससे यह निश्चित है कि उन्होंने अपना कार्य पूरा कर लिया है। जिस दल के नेता जाम्बवान और महाबली अंगद हों और हनुमान जिसके अधिष्ठाता हों, वहाँ असफलता नहीं मिल सकती।

विचित्य दक्षिणामाशामागतैर्हरिपुङ्गवैः।
आगतैश्चाप्रधृष्यं तद्धतं मधुवनं हि तैः।। १६।।
धर्षितं च वनं कृत्स्नमुपयुक्तं तु वानरैः।
पातिता वनपालास्ते तदा जानुभिराहताः।। १७।।
एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह।
नाम दधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः।। १८।।
दृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तत्त्वतः।
अभिगम्य यथा सर्वे पिबन्ति मधु वानराः।। १९।।

दक्षिण दिशा की खोज कर आये हुए वानर श्रेष्ठों ने आ कर उस मधुवन को जो सबके लिये निषिद्ध था, नष्ट कर दिया। उन्होंने मनमाने तरीके से वहाँ खाया पीया भी और विनाश भी किया। उन्होंने वन रक्षकों को गिरा कर घुटनों से रगड़ा। इसीलिये यह विख्यात पराक्रमी दधिमुख नाम के मधुर भाषी वानर मुझ से कहने के लिये यहाँ आए हैं। हे महाबाहु! आप इस बात को ठीक समझें कि सीता जी को देख लिया गया है। इसीलिये वे सारे वानर वहाँ से आ कर मधु को पी रहे हैं।

श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम्।
प्राहृष्यत भृशं रामो लक्ष्मणश्च महायशाः।। २०।।
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत।
प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः।। २१।।
धर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम्।
गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान् हनूमत्प्रमुखान् कपीन्।। २२।।

सुग्रीव के मुख से निकली हुई उस कानों को सुख देने वाली वाणी को सुन कर श्रीराम और महायशस्वी लक्ष्मण अत्यधिक प्रसन्न हुए। फिर सुग्रीव ने वनरक्षक को यह उत्तर दिया कि कार्य को पूरा करके लौटे हुए उन वानरों ने उस मधुवन का जो उपभोग किया है, उससे मैं प्रसन्न हूँ। उन्होंने अपने कार्य को पूरा किया है इसलिये उन्होंने जो तुम्हें मारा पीटा तथा जो दूसरी चेष्टाएँ कीं, उन्हें तुम्हें क्षमा कर देना चाहिये। तुम शीघ्र मधुवन जाओ और तुम्हीं उसकी रक्षा करो। तुम उन हनुमान आदि वानरों को जल्दी यहाँ भेजो।

छत्तीसवाँ सर्ग

रक्षकों से सुग्रीव का सन्देश सुन कर वानरों का किष्किंधा में पहुँचना और हनुमान का श्रीराम को सीता के दर्शन का समाचार बताना।

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं चाभ्यवादयत्।। १।।
स प्रणम्य च सुग्रीवं राघवौ च महाबलौ।
वानरैः सहितः शूरैर्दिवमेवोत्पपात ह।। २।।
स यथैवागतः पूर्वं तथैव त्वरितं गतः।
निपत्य गगनाद् भूमौ तद् वनं प्रविवेश ह।। ३।।
स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान्।
स तानुपागमद् वीरो बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम्।। ४।।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम्।

सुग्रीव के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर प्रसन्न हुए दधिमुख वानर ने राम लक्ष्मण और सुग्रीव को प्रणाम किया। उन दोनों महाबली रघुवंशियों को प्रणाम कर वह उन शूरवीर

वानरों के साथ आकाश में उड़ चला। वे लोग जैसे शीघ्रता से आये थे, वैसे ही शीघ्रता से उस मधुवन के समीप पहुँच गये। उन्होंने भूमि पर उतर कर मधुवन में प्रवेश किया और प्रवेश कर उन वानरों को देखा। तब वह दधिमुख वीर हाथ जोड़ कर वानरों के पास गया और प्रसन्नता के साथ मधुर वाणी में अंगद से बोला।

सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिः परिवारणम्।। ५।।
अज्ञानाद् रक्षिभिः क्रोधाद् भवन्तः प्रतिषेधिताः।
श्रान्तो दूरादनुप्राप्तो भक्षयस्व स्वकं मधु।। ६।।
युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबलः।
मौर्ख्यात् पूर्वं कृतो रोषस्तद् भवान् क्षन्तुमर्हति।। ७।।
यथैव हि पिता तेऽभूत् पूर्वं हरिगणेश्वरः।
तथा त्वमपि सुग्रीवो नान्यस्तु हरिसत्तम।। ८।।

हे सौम्य! इन रक्षकों ने जो अज्ञान से आपको रोका और क्रोध पूर्वक मना किया उसके लिये आप क्रोध न करें। आप थके हुए हैं, दूर से आये हैं, इसलिये खाइये। यह आपका ही मधु है। हे महाबली! आप हमारे युवराज हैं और इस मधुवन के स्वामी हैं। हमने पहले मूर्खता से जो आपसे क्रोध किया था, उसे आप क्षमा करें। वानरों के यूथपतियों के स्वामी आपके पिता जैसे थे, वैसे ही सुग्रीव और आप हमारे स्वामी हैं। हे वानरश्रेष्ठ! हमारा कोई और नहीं है।

आख्यातं हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ।
इहोपयानं सर्वेषामेतेषां वनचारिणाम्।। ९।।
भवदागमनं श्रुत्वा सहैभिर्वनचारिभिः।
प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम्।। १०।।
प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः।। ११।।
श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद् वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः।
अब्रवीत् तान् हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः।। १२।।

हे निष्पाप! मैंने जा कर तुम्हारे चाचा जी से इन सब वानरों के यहाँ आने के विषय में कहा था। आपका सब वानरों के साथ यहाँ आना सुन कर भी वे प्रसन्न हुए, रुष्ट नहीं हुए। तुम्हारे चाचा सारे वानरों के स्वामी राजा सुग्रीव प्रसन्न हो कर मुझसे बोले कि उन सबको शीघ्र यहाँ भेजो। दधिमुख के ये मधुर वाक्य सुन कर वानर श्रेष्ठ और वाक्य विशारद अंगद ने उन वानरों से कहा कि—

शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः।
अयं च हर्षादाख्याति तेन जानामि हेतुना।। १३।।
तत् क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परंतपाः।
पीत्वा मधुयथाकामं विक्रान्ता वनचारिणः।। १४।।
किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र वानरः।
साधु गच्छाम इत्युक्त्वा खमुत्पेतुर्महाबलाः।। १५।।

हे वानरयूथपतियों! प्रतीत होता है कि श्रीराम ने यह समाचार सुन लिया है, क्योंकि यह वनरक्षक प्रसन्नता से बातें कर रहा है, इसलिये हे शत्रुओं को संतप्त करने वालों! कार्य पूरा करने पर अब हमें यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये। पराक्रमी वानरों ने यथेच्छ मधु पी लिया है, इसलिये अब यहाँ क्या करना शेष है? हमें वहीं जाना चाहिये जहाँ वानर सुग्रीव हैं। तब वे महा बलशाली वानर 'अच्छा' वहीं चलते हैं, यह कह कर आकाश में उड़ कर चल दिये।

उत्पतन्तमनूत्पेतुः सर्वे ते हरियूथपाः।
कृत्वाऽऽकाशं निराकाशं यन्त्रोत्क्षिप्ता इवोपलाः।। १६।।
अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम्।
विनदन्तो महानादं घना वातेरिता यथा।। १७।।
तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मुदान्विताः।
निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च।। १८।।

आकाश में उड़ते हुए अंगद के पीछे वे सारे वानर यूथपति आकाश को आच्छदित करके यन्त्र से फैंके हुए पत्थर की तरह तेजी से चले जा रहे थे। उन्होंने आगे अंगद और हनुमान को किया हुआ था और वे वायु से ताड़ित बादलों के समान जोर-जोर से गर्जना कर रहे थे। उसके पश्चात वे अंगद आदि वीर आनन्दित और उत्साहित हो कर वानरेश्वर सुग्रीव और श्रीराम के समीप नीचे उतरे।

हनूमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः।
नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत्।। १९।।
दृष्टा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम्।
आकर्ण्य वचनं रामो हर्षमाप सलक्ष्मणः।। २०।।
प्रीत्या च परयोपेतो राघवः परवीरहा।
बहुमानेन महता हनूमन्तमवैक्षत।। २१।।

तब महाबाहु हनुमान ने सिर झुका कर प्रणाम किया और श्रीराम से यह निवेदन किया कि देवी सीता नियमों का पालन करती हुई सकुशल हैं। हनुमान जी के मुख से निकले हुए अमृत के समान वचनों को कि सीता जी को देख लिया है, सुन कर श्रीराम लक्ष्मण के साथ अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तब शत्रुओं को नष्ट करने वाले श्रीराम ने अत्यन्त प्रेम से भर कर बहुत प्रेम तथा सम्मान के साथ हनुमान जी की तरफ देखा।

सैंतीसवाँ सर्ग

हनुमान जी के मुख से श्रीराम का सीता जी का विस्तृत समाचार सुनना और विलाप करना।

वैदेहीमक्षतां श्रुत्वा रामस्तूत्तरमब्रवीत्।
क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते।। १।।
एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः।
रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसंनिधौ।। २।।
चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम्।

यह सुन कर कि सीता जी सकुशल हैं, श्रीराम ने आगे का वृत्तान्त जानने के लिये कहा कि हे वानरों! वह देवी सीता इस समय कहाँ है? उसका मेरे प्रति क्या भाव है? वैदेही के विषय में यह सारा वृत्तान्त मुझसे कहो। राम के वचनों को सुन कर उनके समीप बैठे हुए वानर सीता के वृत्तान्त को विस्तार से जानने वाले हनुमान जी को विस्तार से कहने के लिये प्रेरित करने लगे।

श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनूमान् मारुतात्मजः।। ३।।
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति।
तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा।। ४।।
दत्त्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम्।। ५।।
अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया।
तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः।। ६।।
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे।

उन वानरों के उस वचन को सुन कर पवनपुत्र हनुमान जी ने देवी सीता के लिये दक्षिण दिशा की तरफ सिर झुका कर प्रणाम किया और अपने तेज से जगमगाती हुई उस अलौकिक सुनहरी चूड़ामणि को श्रीराम को देकर वे हाथ जोड़ कर बोले कि जानकी सीता जी को देखने की इच्छा से मैं उन्हें ढूढ़ँता हुआ सौ योजन विस्तृत सागर को लांघ कर गया। वहाँ दक्षिण की तरफ समुद्र के दक्षिणी किनारे पर उस दुष्ट रावण की लंका नाम की नगरी है।

तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती।। ७।।
त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम्।
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः।। ८।।
राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने।
दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता।। ९।।
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता।
एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा।। १०।।

वहाँ रावण के अन्तःपुर में मैंने सीता को देखा। वह रावण के प्रमदावन अर्थात् स्त्रियों के अन्तरंग उद्यान में राक्षसियों के बीच में रखी हुई है। वे भयानक रूप वाली राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं। हे राम! वे अपने सारे मनोरथों को आपमें ही केन्द्रित कर किसी तरह जीवन धारण कर रहीं हैं। हे वीर! वे आपके साथ सुख भोगने योग्य हैं। पर वे इस समय दुख में पड़ी हुई हैं। रावण के अन्तःपुर में उनको रोका हुआ है, वे राक्षसियों के पहरे में रहती हैं। उन्होंने एक वेणी धारण की हुई है और आपकी चिन्ता में लगी हुई दीन अवस्था को पहुँच गयीं हैं।

अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे।
रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया।। ११।।
देवी कथंचित् काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया।
इक्ष्वाकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयतानघ।। १२।।
सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा।
ततः सम्भाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता।। १३।।
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागता।
नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याः सदा त्वयि।। १४।।

वे भूमि पर सोती हैं। शीत ऋतु में मुर्झायी हुई कमलिनी के समान उनके शरीर की कान्ति फीकी पड़ गयी है। रावण से उनका कोई प्रयोजन नहीं है और उन्होंने मरने का निश्चय किया हुआ है। हे काकुत्स्थ! सदा आपका ही ध्यान करती हुईं उस देवी को मैंने बड़े प्रयत्न से किसी प्रकार ढूँढा। तब मैंने धीरे-धीरे इक्ष्वाकुवंश की ख्याति का वर्णन करते हुए हे अनघ! हे नरसिंह! धीरे-धीरे उसे विश्वास में लिया। फिर उनसे बात कर मैंने उन्हें यहाँ की सारी बातें बतायीं। आपकी सुग्रीव के साथ मित्रता को सुन कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका आचार-विचार उच्च कोटि का और नियमों से बँधा हुआ है। उनकी सदा आप में ही भक्ति रहती है।

एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी।
उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ।। १५।।
विज्ञाप्यः पुनरप्येष रामो वायुसुत त्वया।
अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी।। १६।।
अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात् सुपरिरक्षितः।

हे महाभाग! मैंने उस जनक पुत्री को ऐसी अवस्था में देखा। हे पुरुषश्रेष्ठ! वे आपकी भक्ति से प्रेरित हो कर उग्र तपस्या में लीन हैं। मुझसे जानकी जी ने कहा कि हे पवन पुत्र! तुमने यहाँ जो कुछ भी देखा है उसको तुम श्रीराम को पूरी तरह से और अच्छी तरह से दुबारा भी बताना और यह उन्हें दे देना। इसे मैंने बड़े यत्न से सुरक्षित करके रखा है।

ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः।। १७।।
एष चूडामणिः श्रीमान् मया ते यत्नरक्षितः।
मनःशिलायास्तिलकं तत् स्मरस्वेति चाब्रवीत्।। १८।।
एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसम्भवः।
एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ।। १९।।
इति मामब्रवीत् सीता कृशाङ्गी धर्मचारिणी।
रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना।। २०।।

इस यत्न से सुरक्षित कान्तिमान चूड़ामणि को जो कि जल से उत्पन्न हुई है, मैं दुख के समय देख कर जैसे तुम्हारे दर्शन हो गये, यह सोच कर खुश होती हूँ, हे अनघ! अब इसे तुम्हारी सेवा में भेज रही हूँ। उन्होंने कहा कि आप उस घटना को याद कीजिये जब आपने मेरे माथे में मैनसिल का तिलक लगाया था। उन्होंने यह भी कहा कि तुम ये सारी बातें ऐसे समय में बताना जब सुग्रीव भी सुन रहे हों। जो रावण के अन्तःपुर में कैद हैं, जो भय के कारण हरिणी के समान आँखें फाड़-फाड़ कर इधर-उधर देखतीं रहती हैं। उन धर्म का आचरण करने वालीं दुर्बल गात्रों वाली सीता ने इस प्रकार मुझसे कहा।

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः।
तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः।। २१।।
तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत्।। २२।।
यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद् वत्सस्य वत्सला।
तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात्।। २३।।
मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे।
वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते।। २४।।

हनुमान जी के यह कहने पर दशरथ पुत्र श्रीराम उस मणि को हृदय से लगा कर लक्ष्मण के सथ रोने लगे। शोक से व्याकुल श्रीराम उस श्रेष्ठ चूड़ामणि को देख कर आँसू भरे नेत्रों से सुग्रीव से बोले कि जैसे अपने बछड़े के प्रति प्यार रखने वाली गाय उसे देख कर प्यार से थनों से दूध गिराने लगती है, वैसे ही इस श्रेष्ठ मणि को देख कर मेरा हृदय भी द्रवीभूत हो रहा है। इस मणिरत्न को मेरे श्वसुर ने वैदेही को विवाह के समय दिया था। यह उसके मस्तक पर बँध कर बड़ी शोभा पाती थी।

इमं दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं तथा तातस्य दर्शनम्।
अद्यास्म्यवगतः सौम्य वैदेहस्य तथा विभोः।। २५।।
अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्ध्नि मे मणिः।
अद्यास्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये।। २६।।
किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः।
परासुमिव तोयेन सिञ्चन्ती वाक्यवारिणा।। २७।।
इतस्तु किं दुःखतरं यदिमं वारिसम्भवम्।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतां विना।। २८।।

हे सौम्य! इस श्रेष्ठ मणि को देख कर मैं समझ रहा हूँ, जैसे मुझे मेरे पिता जी के और वैदेही के पिता जी के दर्शन हो गये। यह मणि मेरी उस प्रिया के सिर पर शोभा पाती थी। आज इसे देख कर मैं समझ रहा हूँ मानों वही मुझे मिल गयी है। हे सौम्य! मूर्च्छित होते हुए मुझे अपने वाक्य रूपी जल से सींचते हुए विदेहपुत्री सीता ने क्या कहा यह मुझे बार-बार बताओ। हे लक्ष्मण! इससे अधिक दुख की बात और क्या हो सकती है कि जल में उत्पन्न वैदेही की इस मणि को मैं वैदेही के आये बिना ही देख रहा हूँ।

कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती सदा।
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम्।। २९।।
शारदस्तिमिरोन्मुक्तो नूनं चन्द्र इवाम्बुदैः।
आवृतो वदनं तस्या न विराजति साम्प्रतम्।। ३०।।
किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयस्व मे।
एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा।। ३१।।
मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे।
दुःखाद् दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी।। ३२।।

हाय वह मेरी सुन्दरी सीता तो बड़ी भीरु है। वह भयानक राक्षसों के बीच में कैसे रह रही होगी? निश्चय ही उसका मुख शरद ऋतु के अंधकार से मुक्त पर बादलों से युक्त चन्द्रमा के समान सुशोभित नहीं हो रहा होगा। हे हनुमान! सीता ने मेरे लिये क्या कहा? यह तुम ठीक-ठीक बताओं। जैसे बीमार दवाई के सहारे जीवित रहता है, वैसे ही मैं भी सीता के संदेश वाक्यों को सुन-सुन कर जीवन को धारण करूँगा। हे हनुमान! मधुर स्वभाव वाली, मधुर बोलने वाली मेरी पत्नी सुन्दरी जनकपुत्री ने मेरे लिये क्या कहा? यह मुझे बताओ। दुख पर दुख प्राप्त करती हुई वह मेरे बिना कैसे जी रही है?

अड़तीसवाँ सर्ग

हनुमान जी का श्रीराम को सीता जी का सन्देश सुनाना।

एवमुक्तस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना।
सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे।। १।।
तव वीर्यवतः कश्चिन्मयि यद्यस्ति सम्भ्रमः।। २।।
क्षिप्रं सुनिशितैर्बाणैर्हन्यतां युधि रावणः।
भ्रातुरादेशमाज्ञाय लक्ष्मणो वा परंतपः।। ३।।
स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः।
शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ।। ४।।

महात्मा श्रीराम के ऐसा कहने पर हनुमान जी ने उनसे सीता जी की कही हुई सारी बातें निवेदन कर दीं। इसके बाद वे बोले कि हे नरश्रेष्ठ! जानकी ने यह भी कहा है कि आप जैसे पराक्रमी को यदि मेरे प्रति कुछ भी आदर है तो रावण को जल्दी ही युद्ध में तीखे बाणों से मारिये। शत्रुओं के तपाने वाले नरश्रेष्ठ राघव लक्ष्मण भाई के आदेश को प्राप्त कर मेरी रक्षा क्यों नहीं करते हैं? वे दोनों पुरुष व्याघ्र वायु और अग्नि के समान तेजस्वी और शक्तिशाली हैं।

ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः।
समर्थौ सहितौ यन्मां न रक्षेते परंतपौ।। ५।।
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साधुभाषितम्।
पुनरप्यहमार्यां तामिदं वचनमब्रुवम्।। ६।।
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे।
रामे दुःखाभिभूते च लक्ष्मणः परितप्यते।। ७।।

इसमें सन्देह नहीं है कि मेरा ही कोई महान दुष्कर्म है, जिसके कारण वे दोनों परंतप समर्थ होते हुए भी, एक साथ रह कर भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं। वैदेही के ये उत्तम रूप से कहे हुए करुणायुक्त वचन सुन कर मैंने उन आर्या से पुनः यह कहा कि हे देवी! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके शोक में मग्न राम सारे कार्यों से विमुख हो रहे हैं और उन्हें दुख से भरा हुआ देख कर लक्ष्मण भी परितप्त हो रहे हैं।

कथंचिद् भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम्।
तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रौ परंतपौ।। ८।।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः।
हत्वा च समरे रौद्रं रावणं सहबान्धवम्।। ९।।
राघवस्त्वां वरारोहे स्वपुरीं नयिता ध्रुवम्।
यत् तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते।। १०।।
प्रीतिसंजननं तस्य प्रदातुं तत् त्वमर्हसि।
साभिवीक्ष्य दिशः सर्वा वेण्युद्ग्रथनमुत्तमम्।। ११।।
मुक्त्वा वस्त्राद् ददौ मह्यं मणिमेतं महाबल।

किसी प्रकार आपके दर्शन हो गये। अब यह समय शोक करने का नहीं है। वे दोनों परंतप नरसिंह राज पुत्र आपके दर्शनों के लिये उत्साह में भर कर लंका को भस्म कर देंगे। हे सुन्दरी! राघव राम इस भयानक रावण को बान्धवों सहित युद्ध में निश्चय ही मार कर तुम्हें ले कर अपने नगर में जायेंगे। हे अनिन्दिते! अब जिससे श्रीराम जान जायें और जो उनके प्रेम को बढ़ाने वाली हो ऐसी अपनी उस पहचान को आप मुझे दे दीजिये। तब हे महाबली! उन्होंने चारों तरफ देख कर वस्त्र में से खोल कर वेणी में बाँधने वाली इस उत्तम मणि को मुझे दिया।

प्रतिगृह्य मणिं दोर्भ्यां तव हेतो रघुप्रिय।। १२।।
शिरसा सम्प्रणम्यैनामहमागमने त्वरे।
गमने च कृतोत्साहमवेक्ष्य वरवर्णिनी।। १३।।
अश्रुपूर्णमुखीदीना बाष्पगद्गदभाषिणी।
मामुवाच ततः सीता सभाग्योऽसि महाकपे।। १४।।
यद् द्रक्ष्यसि महाबाहुं रामं कमललोचनम्।
लक्ष्मणं च महाबाहुं देवरं मे यशस्विनम्।। १५।।

हे रघुवंशियों के प्रिय! आपके लिये दी हुई उस मणि को दोनों हाथों से ग्रहण कर और उन्हें सिर झुका कर प्रणाम कर मैं यहाँ आने के लिये उतावला हो गया। तब यह सुन्दर वर्ण वाली सीता मुझे जाने के लिये उत्सुक देख कर आँखों में आँसू भर कर दीनावस्था में गद्गद् वाणी से कहने लगी कि हे महावानर! तुम बड़े भाग्य वाले हो जो कमलनयन महाबाहु राम को तथा मेरे देवर महाबाहु यशस्वी लक्ष्मण को देखोगे।

इत्येवं सा समाभाष्य भूयः संदेष्टुमास्थिता।
हनूमन् सिंहसंकाशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ।। १६।।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान् ब्रूया अनामयम्।
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात् तत् त्वमाख्यातुमर्हसि।। १७।।

हे रघुवंशियों के प्रिय! ऐसा कह कर वे पुनः मुझे संदेश देने लगी कि हे हनुमान! सिंह के समान उन दोनों

राम लक्ष्मण से और मंत्रियों सहित सुग्रीव से सबसे मेरी कुशलता के बारे में कहना। तुम उन महाबाहु राघव से उसी प्रकार कहना, जिससे वे मेरा इस दुख के सागर से उद्धार करें।

इदं च तीव्रं मम शोकवेगं
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं
शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर।। १८।।

हे वानरश्रेष्ठ! तुम राम के समीप जा कर मेरे इस तीव्र शोक के वेग तथा इन राक्षसियों के द्वारा मुझे धमकाया डराया जाना, ये सारी बातें कह देना। तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो।

एतत् तवार्या नृप संयता सा
सीता वचः प्राह विषादपूर्वम्।
एतच्च बुद्ध्वा गदितं यथा त्वं
श्रद्धत्स्व सीतां कुशलां समग्राम्।। १९।।

हे राजन्! आपकी उन आर्या, संयमशीला सीता ने विषाद के साथ ये बातें कहीं। मेरे द्वारा कहीं हुई इन बातों पर विचार कर यह विश्वास करें कि सीता जी सकुशल हैं।

उन्तालीसवाँ सर्ग

हनुमान जी द्वारा सीता जी के सन्देह और अपने द्वारा उनके निवारण का वृत्तान्त बताना।

अथाहमुत्तरं देव्या पुनरुक्तः ससम्भ्रमम्।
तव स्नेहान्नरव्याघ्र सौहार्दादनुमान्य च।। १।।
एवं बहुविधं वाच्यो रामो दशरथिस्त्वया।
यथा मां प्राप्नुयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे।। २।।
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर।। ३।।
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम्।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ।। ४।।

इसके पश्चात् हे नरव्याघ्र! आपके प्रति स्नेह और सौहार्द के कारण मेरा सत्कार कर उस देवी ने मुझसे पुनः शीघ्रता से यह कहा कि दशरथ पुत्र राम से तुम इस प्रकार अनेक तरह से कहना जिससे वे शीघ्र ही रावण को युद्ध में मार कर मुझ से मिलें। हे वीर! इनके साथ ही एक सन्देह मेरे सामने उपस्थित है कि हे वानरश्रेष्ठ! जिनके तुम सहायक हो, उन महान वानर और ऋक्षों के होते हुए भी वे वानर और ऋक्षों की सेनाएँ तथा दोनों राजकुमार कैसे इस दुष्पार सागर के पार पहुचेंगे?

तदस्मिन् कार्यनियोगे वीरैवं दुरतिक्रमे।
किं पश्यसि समाधानं ब्रूहि कार्यविदां वर।। ५।।
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः।। ६।।
बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे।
विजयी स्वपुरीं रामो नयेत् तत् स्याद् यशस्करम्।। ७।।
यथाहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हृता।
रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः।। ८।।

इसलिये हे कार्य की पूर्ति को जानने वालों में श्रेष्ठ वीर! इस कार्य की सिद्धि में यह जो रुकावट है, इसका तुम क्या समाधान देखते हो, वह बताओ। हे शत्रु के वीरों को मारने वाले, भले ही तुम अकेले ही इस कार्य को सिद्ध करने में पर्याप्त हो, पर यह तुम्हारी शक्ति के द्वारा किया गया कार्य तुम्हारी ही प्रशंसा कराने वाला होगा। यदि राम सारी सेना के साथ रावण को युद्ध में मार कर, विजयी हो कर मुझे अपने नगर में ले जायें तो यह उनके लिये प्रसिद्धि दायक होगा जैसे इस राक्षस ने उस वीर के भय से ही मुझे छल पूर्वक हरा, वैसा कार्य श्रीराम नहीं कर सकते।

बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः।
मां नयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सदृशं भवेत्।। ९।।
तद् यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय।। १०।।
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम्।
निशम्याहं ततः शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवम्।। ११।।
देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नस्त्वदर्थे कृतनिश्चयः।। १२।।

शत्रुओं के बल को कुचलने वाले काकुत्स्थ राम सेनाओं के द्वारा लंका को पददलित कर यदि मुझे ले जायें, तो यह उनके योग्य कार्य होगा। इसलिये संग्राम में शूरवीरता दिखाने वाले उन महात्मा राम के अनुरूप

जो पराक्रम का कार्य हो, उसके लिये तुम प्रयत्न करो। उनके उस अभिप्राय से युक्त, विनयपूर्ण, तथा कारणयुक्त वचन को सुन कर मैनें अन्त में उन्हें यह उत्तर दिया कि हे देवी! वानरों और ऋक्षों की सेनाओं के स्वामी, श्रेष्ठवानर, शक्तिसम्पन्न सुग्रीव ने आपके लिये दृढ़ निश्चय किया हुआ है।

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः।
मनःसंकल्पसदृशा निदेशे हरयः स्थिताः।। १३।।
येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक् सज्जते गतिः।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः।। १४।।
असकृत् तैर्महाभागैर्वानरैर्बलसंयुतैः।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः।। १५।।

उनके विक्रम से युक्त शक्तिशाली और महाबली वानर जो मन के संकल्प के समान तीव्र गति से चलते हैं, उनके आधीन रहते हैं। उनकी ऊपर नीचे चारों तरफ कहीं भी गति रुकती नहीं है। वे अतिम तेजस्वी महान कार्यों में भी थकते नहीं हैं। उन बलवान महाभाग वानरों ने पृथ्वी की अनेक बार वायु मार्ग से परिक्रमा की है।

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ।। १६।।
अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः।
नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः।। १७।।
तदलं परितापेन देवि मन्युरपैतु ते।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः।। १८।।

मुझसे बढ़ कर और मेरे बराबर वहाँ अनेक वानर हैं। सुग्रीव के पास मुझसे नीचा वानर कोई नहीं है। जब मैं यहाँ आ गया तो उन वानरों की तो बात क्या है? दूत कार्य के लिये उच्चकोटि के लोग नहीं भेजे जाते, दूसरे ही लोग भेजे जाते हैं। इसलिये हे देवी! आप सन्ताप मत कीजिये। आपका शोक दूर हो जाना चाहिये। वे वानरयूथपति एक ही उड़ान में लंका पर आ जायेंगे।

मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ।
त्वत्सकाशं महाभागे नृसिंहावागमिष्यतः।। १९।।
अरिघ्नं सिंहसंकाशं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम्।
लक्ष्मणं च धनुष्मन्तं लङ्काद्वारमुपागतम्।। २०।।
निवृत्तवनवासं च त्वया सार्धमरिंदमम्।
अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम्।। २१।।

हे महाभागे! वे दोनों नरसिंह मेरी पीठ पर बैठ कर उदय होते हुए चन्द्र और सूर्य के समान आपके पास आ जाएँगे। आप शत्रुओं को नष्ट करने वाले सिंह के समान पराक्रमी राम को और धनुर्धर लक्ष्मण को जल्दी ही लंका के द्वार पर आया हुआ देखेंगी। आप जल्दी ही गर्जते हुए वानर प्रमुखों की आवाज को सुनेंगी। आप जल्दी ही देखेंगी कि बनवास की अवधि पूरी हो गयी है, और शत्रुदमन श्रीराम के साथ आपका अभिषेक हो रहा है।

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणी
शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता।
उवाह शान्तिं मम मैथिलात्मजा
तवातिशोकेन तथातिपीडिता।। २२।।

फिर मैंने जो आपके शोक से अत्यन्त पीड़ित हैं, पर फिर भी जिनकी वाणी में दीनता नहीं है, उन मिथिलेश नन्दिनी सीता को प्रिय और मंगल वाक्यों से आश्वासित किया और उन्होंने मेरे द्वारा दी गयी शान्ति को वहन किया।

युद्धकाण्ड

पहला सर्ग

हनुमान जी की प्रशंसा करके श्रीराम का उन्हें हृदय से लगाना और समुद्र को पार करने के विषय में चिन्तित होना तथा सुग्रीव का उन्हें उत्साह प्रदान करना।

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम्।
रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत्।। १।।
कृतं हनूमता कार्यं समुहद् भुवि दुर्लभम्।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले।। २।।
को विशेत् सुदुराधर्षां राक्षसैश्च सुरक्षिताम्।
यो वीर्यबलसम्पन्नो न समः स्याद्धनूमतः।। ३।।
भृत्यकार्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत्।
एवं विधाय स्वबलं सदृशं विक्रमस्य च।। ४।।

हनुमान जी के यथावत् स्थिति का वर्णन करने वाले वाक्य सुन कर श्रीराम ने प्रेम से भर कर यह कहा कि हनुमान के द्वारा वह कार्य किया गया, जो बड़ा महान और संसार में अन्यत्र कहीं न प्राप्त हो सकने वाला दुर्लभ कार्द है। उसको करने के लिये इस पृथिवी पर दूसरा व्यक्ति मन से भी नहीं सोच सकता। कौन ऐसा व्यक्ति है जो हनुमान के समान बलवान और पराक्रमी हो, पर सुदूर वर्ती, दुर्जय और राक्षसों के द्वारा सुरक्षित लंका में प्रवेश कर जाये? हनुमान ने अपनी शक्ति और पराक्रम का प्रयोग कर एक सच्चे सेवक के समान सुग्रीव का महान कार्य किया है।

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे।
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम्।। ५।।
यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम्।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम्।। ६।।
नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद् यः समाहितः।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम्।। ७।।
तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः।। ८।।

जो सेवक स्वामी के द्वारा बहुत कठिन कार्य में लगाये जाने पर भी उसे बड़े प्रेम पूर्वक करता है, उसे उत्तम पुरुष कहते हैं। जो कार्य में लगाया जाने पर राजा के दूसरे प्रिय कार्य को योग्य और समर्थ होने पर भी नहीं करता अर्थात जिसमें नियुक्त किया गया है, उसे ही करता है, उसे मध्यम कोटि का व्यक्ति कहते हैं। जो राजा के कार्य में लगाया जाने पर योग्यता और सामर्थ्य के होते हुए भी उस कार्य को सावधानी से पूरा नहीं करता, वह अधम कोटि का मनुष्य है। हनुमान ने कार्य में नियुक्त किये जाने पर उस कार्य को बड़ी अच्छी तरह से पूरा किया। इन्होंने कार्य की पूर्ति के द्वारा सुग्रीव को भी सन्तुष्ट कर दिया और अपनी महानता में भी कमी नहीं आने दी।

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः।। ९।।
इदं तु मम दीनस्य मनोभूयः प्रकर्षति।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम्।। १०।।
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः।। ११।।
इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे।
हनूमन्तं कृतात्मानं कृतकार्यमुपागतम्।। १२।।

वैदेही के दर्शन करके इन्होंने आज मेरी, रघुवंश की और महाबली लक्ष्मण की तीनों की धर्म के अनुसार रक्षा कर ली। आज मैं दीनावस्था में हूँ, यह बात मेरे मन में चुभ रही है कि इन प्रिय समाचार सुनाने वाले हनुमान का मैं कोई वैसा ही प्रिय कार्य नहीं कर सकता। इस समय तो मेरा सर्वस्व यही है कि मैं इन्हें अपनी छाती से लगा लूँ, इसलिये अब इन महात्मा को मैं यही दे रहा हूँ। ऐसा कह कर प्रेम से हर्षित गात्रों वाले श्रीराम ने कार्य को पूरा करके आये हुए कृतार्थ हनुमान जी को अपनी छाती से लगा लिया।

ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः।
हरीणामीश्वरस्यापि सुग्रीवस्योपशृण्वतः।। १३।।

सर्वथा सुकृतं तावत् सीतायाः परिमार्गणम्।
सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम।। १४।।
कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समागताः।। १५।।
यद्यप्येषु तु वृत्तान्तो वैदेह्या गदितो मम।
समुद्रपारगमने हरीणां किमिवोत्तरम्।। १६।।

फिर कुछ देर तक सोच कर रघुकुल श्रेष्ठ श्रीराम समीप बैठे हुए वानरेश सुग्रीव के भी सुनते हुए यह बोले कि सीता की खोज का कार्य तो बहुत अच्छी तरह से हो गया, पर सागर को सामने पा कर मेरा मन फिर चिन्तित हो गया है। ये यहाँ एकत्र हुए वानर उस दुष्कर महासागर के दक्षिणी किनारे तक कैसे पहुँच पायेंगे? वैदेही ने भी यही बात उठाई है, जैसा कि मुझे सुनाए गये उसके वृतान्त से पता लग रहा है। अब समुद्र के पार जाने के विषय में वानर लोग क्या कहते हैं?

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हणः।
हनूमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपागमत्।। १७।।
तं तु शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम्।
उवाच वचनं श्रीमान् सुग्रीवः शोकनाशनम्।। १८।।
किं त्वया तप्यते वीर यथान्यः प्राकृतस्तथा।
मैवं भूस्त्यज संतापं कृतघ्न इव सौहृदम्।। १९।।
संतापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघव।
प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः।। २०।।

ऐसा हनुमान जी से कह कर शत्रुओं को नष्ट करने वाले, महाबाहु राम शोक में मग्न हो कर पुनः चिन्ता करने लगे। तब दशरथ पुत्र श्रीराम को शोक से संतप्त होते हुए देख कर श्रीमान सुग्रीव उनके शोक को नष्ट करने वाली बात कहने लगे। वे बोले कि हे वीर! दूसरे सामान्य लोगों की तरह आप शोक से क्यों सन्तप्त हो रहे हैं? आप ऐसा मत कीजिये और संताप को ऐसे ही त्याग दीजिये जैसे कृतघ्न व्यक्ति सौहार्द को छोड़ देता है। अब जब सीता का समाचार मिल गया और शत्रु के घर का पता पड़ गया है। हे राम! तब मैं आपके दुखी होने का कोई कारण नहीं देखता।

मतिमाञ्शास्त्रवित् प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघव।
त्यजेमां प्राकृतां बुद्धिं कृतात्मेवार्थदूषिणीम्।। २१।।
समुद्रं लङ्घयित्वा तु महानक्रसमाकुलम्।
समुद्रं लङ्कामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम्।। २२।।
निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति।। २३।।
इमे शूराः समर्थाश्च सर्वतो हरियूथपाः।
त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम्।। २४।।
एषां हर्षेण जानामि तर्कश्चापि दृढो मम।

हे राम! आप मतिमान हैं, शास्त्रों को जानते हैं, बुद्धिमान हैं और विद्वान हैं। मनस्वी व्यक्तियों के समान इस सामान्य बुद्धि को, जो सफलता को दूषित करने वाली है, छोड़ दीजिये। हम महान जल जन्तुओं से भरे हुए समुद्र को लाँघ कर लंका पर चढ़ जायेंगे और अपने शत्रुओं को मार देंगे। जो व्यक्ति निरुत्साही और दीन भाव को प्राप्त होता है, तो शोक से भरी हुई आत्मा वाले उसके सारे कार्य नष्ट हो जाते हैं और वह संकट को प्राप्त हो जाता है। ये वानरयूथपति सब प्रकार से समर्थ हैं और शूरवीर हैं और आपका प्रिय करने के लिये आग में भी प्रवेश करने का उत्साह रखते हैं। यह मैं इनके हर्ष को देख कर समझ रहा हूँ और इस विषय में मेरा अपना विचार भी दृढ़ है।

विक्रमेण समानेष्ये सीतां हत्वा यथा रिपुम्।। २५।।
रावणं पापकर्माणं तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
सेतुरत्र तथा बद्ध्येद् यथा पश्येम तां पुरीम्।। २६।।
तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव।
दृष्ट्वा तां हि पुरीं लङ्कां त्रिकूटशिखरे स्थिताम्।। २७।।
हतं च रावणं युद्धे दर्शनादवधारय।

अब ऐसा कीजिये, जिससे हम अपने शत्रु पापी रावण को मार कर पराक्रम से सीता को ले आएँ। हे राम! आप ऐसा कीजिये, जिससे समुद्र पर बाँध बनाया जा सके और उसके द्वारा हम राक्षसराज की उस पुरी देख सकें। त्रिकूट पर्वत के शिखर पर विद्यमान लंका पुरी को देखते ही आप समझ लें कि रावण युद्ध में मारा गया।

सेतुबन्धः समुद्रे च यावल्लङ्कासमीपतः।। २८।।
सर्वं तीर्णं च मे सैन्यं जितमित्युपधारय।
तदलं विक्लवां बुद्धिं राजन् सर्वार्थनाशिनीम्।। २९।।
पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिञ्शोकः शौर्यापकर्षणः।
यत् तु कार्यं मनुष्येण शौटीर्यमवलाम्ब्यताम्।। ३०।।
तदलंकरणायैव कर्तुर्भवति सत्वरम्।
अस्मिन् काले महाप्राज्ञ सत्त्वमातिष्ठ तेजसा।। ३१।।
शूराणा हि मनुष्याणां त्वद्विधानां महात्मनाम्।
विनष्टे वा प्रणष्टे वा शोकः सर्वार्थनाशनः।। ३२।।

लंका के समीप तक समुद्र में बाँध बन जाये, सारी वानर सेना पार चली जाये, तब आप निश्चय कर लें कि वानर सेना जीत गयी। इसलिये हे राजन्! सारी

सफलता को नष्ट करने वाली इस व्याकुल बुद्धि को छोड़िये। शोक इस लोक में पुरुष के शौर्य को नष्ट कर देता है। मनुष्य को जिसे ग्रहण करना चाहिये उस चातुर्य का आप आश्रय लीजिये। चातुर्य अपने आश्रयदाता पुरुष की शोभा को बढ़ाता है। हे महाप्राज्ञ! इस समय आप अपने तेज से धैर्य का आश्रय लें। आप जैसे वीर पुरुषों और महात्माओं के लिये किसी नष्ट हुई या खोई हुई वस्तु के लिये शोक करना ठीक नहीं है। शोक सारे कार्य को बिगाड़ देता है।

तत्त्वं बुद्धिमतां श्रेष्ठः सर्वशास्त्रार्थकोविदः।
मद्विधैः सचिवैः सार्धमरिं जेतुं समर्हसि।। ३३।।
नहि पश्याम्यहं कंचित् त्रिषु लोकेषु राघव।
गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे।। ३४।।
वानरेषु समासक्तं न ते कार्यं विपत्स्यते।
अचिराद् द्रक्ष्यसे सीतां तीर्त्वा सागरमक्षयम्।। ३५।।

आप बुद्धिमानों में श्रेष्ठ और सारे शास्त्रों में विद्वान हैं। आप मुझ जैसे मंत्रियों के साथ शत्रुओं को जीत सकते हैं। हे राम! मैं तीनों लोकों में ऐसे किसी मनुष्य को नहीं देखता जो धनुष ले कर खड़े हुए आपका युद्ध में सामना कर सके। जिसका भार वानरों पर रखा गया है, वह आपका कार्य संकट में नहीं पड़ेगा। आप अक्षय सागर को पार कर शीघ्र ही सीता को देखेंगे।

तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब भूपते।
निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति।। ३६।।
लङ्घनार्थं च घोरस्य समुद्रस्य नदीपतेः।
सहास्माभिरिहोपेतः सूक्ष्मबुद्धिर्विचारय।। ३७।।
कथंचित् परिपश्यामि लङ्घितं वरुणालयम्।
हतमित्येव तं मन्ये युद्धे शत्रुनिबर्हण।। ३८।।

हे राजन्! इसलिये शोक को अब समाप्त करो। क्रोध का आश्रय लो। क्रोधशून्य क्षत्रियों से कोई चेष्टा नहीं हो पाती। सब क्रोध वाले प्रचण्ड क्षत्रिय से डरते हैं। नदियों के स्वामी इस भयानक सागर को लांघने के लिये आप हमारे साथ यहाँ बैठ कर सूक्ष्म बुद्धि से विचार कीजिये। यदि किसी प्रकार से मैं सागर को पार किया हुआ देख लूँ, तो हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! मैं रावण को युद्ध में मारा हुआ ही समझता हूँ।

दूसरा सर्ग

हनुमान द्वारा लंका में दुर्ग, फाटक, सेना आदि का वर्णन करके श्रीराम से सेना को कूच करने की आज्ञा देने की प्रार्थना करना।

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत् परमार्थवत्।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत्।। १।।
कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायास्तद् ब्रवीष्व मे।
ज्ञातुमिच्छामि तत् सर्वं दर्शनादिव वानर।। २।।
गुप्तिकर्म च लङ्काया रक्षसां सदनानि च।
यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान्।। ३।।
सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वथा कुशलो ह्यसि।

तब सुग्रीव के अत्यन्त सार्थक और युक्तियुक्त वचनों को सुन कर ककुत्स्थवंशी श्रीराम ने उनको ग्रहण किया और हनुमान जी से बोले कि लंका में कितने दुर्ग हैं? हे वानर! यह मुझे बताओ, ऐसे बताओ, जैसे मैं उन्हें देख रहा हूँ, यह मैं जानना चाहता हूँ। लंका की सुरक्षा के लिये किये गये कार्य, राक्षसों के घर, आदि ये सब जैसे यथावत् रूप से आराम से तुमने लंका में देखे हैं उन्हें ठीक बताओ। तुम इस कार्य में कुशल हो।

श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान् मारुतात्मजः।। ४।।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत्।
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये दुर्गकर्म विधानतः।। ५।।
गुप्ता पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा बलैः।
राक्षसाश्च यथा स्निग्धा रावणस्य च तेजसा।। ६।।
परां समृद्धिं लङ्कायाः सागरस्य च भीमताम्।
हृष्टप्रमुदिता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला।। ७।।
महती रथसम्पूर्णा रक्षोगणनिषेविता।

राम के वचनों को सुन कर पवन पुत्र हनुमान जो वाक्यार्थों को जानने वालों में श्रेष्ठ थे, पुनः श्रीराम से बोले कि आप सुनिये, मैं सब बताऊँगा कि वहाँ दुर्ग किस विधि से बने हैं? लंका किस प्रकार से सुरक्षित है? और सेना के द्वारा उसकी कैसे रक्षा की जा रही है? राक्षस रावण के तेज से प्रभावित हो कर कैसे उससे स्नेह करते हैं? लंका की समृद्धि कैसी और सागर कितना भयानक है? लंका प्रसन्नता और आमोद प्रमोद से सम्पन्न

है। वह विशाल पुरी मतवाले हाथियों और रथों से व्याप्त है। राक्षसों के समुदाय वहाँ निवास करते हैं।

दृढबद्धकपाटानि महापरिघवन्ति च॥ ८॥
चत्वारि विपुलान्यस्या द्वाराणि सुमहान्ति च।
तत्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च॥ ९॥
आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते।
द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः॥ १०॥
शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः।
सर्वतश्च महाभीमाः शीततोया महाशुभाः॥ ११॥
अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसेविताः।

उसके चार बड़े और अच्छे लम्बे चौड़े द्वार हैं? उनमें विशाल अर्गलाओं से युक्त मजबूत किवाड़ लगे हुए हैं। उन दरवाजों पर पत्थर फैंकने के यन्त्र लगे हुए हैं, जो बड़े शक्तिशाली और महान हैं। उनके द्वारा आने वाली शत्रु की सेना को रोका जाता है। वीर राक्षस समूहों के द्वारा बनाई हुई, काले लोहे की बनी हुई, संस्कार की हुई विशाल और तीखी सैकड़ों शतघ्नियाँ वहाँ रखी हुई हैं। उसके सब तरफ ठंडे पानी से भरी हुई विशाल खाइयाँ हैं, जो शत्रुओं के लिये बड़ी अशुभ, बहुत भयानक, गहरी तथा मछलियों और मगरमच्छों से भरी हुई हैं।

द्वारेषु तासां चत्वारः संक्रमाः परमायताः॥ १२॥
यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपङ्क्तिभिः।
त्रायन्ते संक्रमास्तत्र परसैन्यागते सति॥ १३॥
यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः।
शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्देवपुरोपमा॥ १४॥
वाजिवारणसम्पूर्णा लङ्का परमदुर्जया।
येन केन तु मार्गेण तराम वरुणालयम्॥ १५॥
हतेति नगरी लङ्का वानरैरुपधार्यताम्।

उनके दरवाजों पर चार पुल है, जो बड़े विस्तृत हैं, उनमें यन्त्र लगे हुए हैं तथा उनके समीप बहुत से बड़े-बड़े घरों की लाइनें हैं। शत्रु की सेना के आने पर उन पुलों की रक्षा की जाती है। उन्हें यन्त्रों से खाई में गिरा दिया जाता है। देवताओं की पुरी के समान वह नगरी पर्वत के शिखर पर बसी हुई दुर्गम है। हाथी और घोड़ों से भरी हुई लंका परम दुर्जय है, पर हम जिस किसी प्रकार यदि आकाश के निवास स्थल सागर को पार कर लेते हैं, तो लंका को वानरों के द्वारा नष्ट किया हुआ समझिये।

अङ्गदो द्विविदो मैन्दो जाम्बवान् पनसो नलः॥ १६॥
नीलः सेनापतिश्चैव बलशेषेण किं तव।
प्लवमाना हि गत्वा त्वां रावणस्य महापुरीम्॥ १७॥
सपर्वतवनां भित्त्वा सखातां च सतोरणाम्।
सप्राकारां सभवनामानयिष्यन्ति राघव॥ १८॥
एवमाज्ञापय क्षिप्रं बलानां सर्वसंग्रहम्।
मुहूर्तेन तु युक्तेन प्रस्थानमभिरोचय॥ १९॥

अंगद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान, पनस, नल और सेनापति नील, ये ही पर्याप्त हैं, बाकी सेना से आपको क्या काम है? हे राम! ये आकाश में उड़ते हुए रावण की उस महान पुरी में जा कर पर्वत, वनों, खाई, तोरण, परकोटे और मकानों सहित लंका को नष्ट कर सीता जी को ले आयेंगे। ऐसा समझ कर आप सेनाओं के लिये सारे पदार्थों के संग्रह के लिये आज्ञा दीजिये और उचित समझ कर प्रस्थान के लिये निश्चित कीजिये।

तीसरा सर्ग

वानर सेना का प्रस्थान और समुद्र तट पर पड़ाव।

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदनुपूर्वशः।
ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः॥ १॥
यन्निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः।
क्षिप्रमेनां वधिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ २॥
अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः॥ ३॥
सीतां हत्वा तु तद् यातु क्वासौ यास्यति जीवितः।
सीता श्रुत्वाभियानं मे आशामेष्यति जीविते॥ ४॥
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वामृतमिवातुरः।

आरम्भ से लेकर अन्त तक हनुमान जी की सारी बातों को सुन कर महातेजस्वी, सत्य पराक्रमी श्रीराम ने कहा कि तुम उस भयानक राक्षस की नगरी लंका के विषय में जो कह रहे हो, मैं सत्य कहता हूँ कि मैं जल्दी ही उसे नष्ट कर दूँगा। हे सुग्रीव! इस समय

सूर्य आकाश के मध्य में जा पहुँचे हैं, यह विजय नाम का मुहूर्त बिल्कुल ठीक है। तुम इसी समय चलने की तैयारी करो। वह सीता का हरण करके तो चला गया पर अब जीवित बच कर कहाँ जायेगा। सीता भी मेरे इस अभियान के बारे में सुन कर जीवन के लिये आशावान हो जायेगी जैसे मरणासन्न रोगी अमृत को स्पर्श कर के और अमृत स्वरूप औषधि को पी कर सुख प्राप्त करता है।

उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते।। ५।।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः।
ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन सुपूजितः।। ६।।
उवाच रामो धर्मात्मा पुनरप्यर्थकोविदः।
अग्रे यातु बलस्यास्य नीलो मार्गमवेक्षितुम्।। ७।।
फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय।। ८।।
दूषयेयुर्दुरात्मानः पथि मूलफलोदकम्।
राक्षसाः पथि रक्षेथास्तेभ्यस्त्वं नित्यमुद्यतः।। ९।।

आज उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है। कल इसका हस्त नक्षत्र से योग होगा। इसलिये हे सुग्रीव! हम सारी सेनाओं से घिरे हुए आज ही यात्रा आरम्भ करते हैं। तब वानर राज सुग्रीव और लक्ष्मण ने उनका बड़ा आदर किया। प्रयोजन सिद्धि में निपुण धर्मात्मा राम ने फिर कहा कि इस सेना के आगे सेनापति नील रास्ता देखने के लिये आगे चलें। हे सेनापति नील! तुम सेना को ऐसे मार्ग से शीघ्रता के साथ ले चलो, जिसमें फल और मूल की अधिकता हो। ठंडी पेड़ों की छाया और जल हो और मधु भी प्राप्त हो सके। हो सकता है कि दुष्ट राक्षस मार्ग के फल मूल और जलों को दूषित कर दें, इसलिये सदा सावधान रह कर उनसे इन पदार्थों की रक्षा करते रहना।

निम्नेषु वनदुर्गेषु वनेषु च वनौकसः।
अभिप्लुत्याभिपश्येयुः परेषां निहितं बलम्।। १०।।
यत्तु फल्गु बलं किंचित् तदत्रैवोपपद्यताम्।
एतद्धि कृत्यं घोरं नो विक्रमेण प्रयुज्यताम्।। ११।।
सागरौघनिभं भीममग्रानीकं महाबलाः।
कपिसिंहाः प्रकर्षन्तु शतशोऽथ सहस्रशः।। १२।।
गजश्च गिरिसंकाशो गवयश्च महाबलः।
गवाक्षश्चाग्रतो यातु गवां दृप्त इवर्षभः।। १३।।

वानरों को चाहिये कि निचले भागों में विद्यमान वन के दुर्गम स्थानों में और सामान्य वनों में भी उड़ कर देखते रहें कि कहीं वहाँ शत्रु सेना तो छिपी हुई नहीं है? जो शक्ति में कुछ कमजोर हैं, वे यहीं रुक जायें, क्योंकि हमारा कार्य भयानक है। पराक्रमशील ही चलें। सैकड़ों हजारों जो महावीर वानरसिंह हैं, वे सागर की जल राशि के समान विशाल इस सेना के अग्रभाग को अपने साथ आगे बढ़ाये चलें। पर्वत के समान विशाल गज और महाबली गवय और गवाक्ष गायों के आगे चलने वाले मस्त साँड की तरह सेना के आगे चलें।

यातु वानरवाहिन्या वानरः प्लवतां पतिः।
पालयन् दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः।। १४।।
गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः।
यातुवानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वमधिष्ठितः।। १५।।
यास्यामि बलमध्येऽहं बलौघमभिहर्षयन्।
अधिरुह्य हनूमन्तमैरावतमिवेश्वरः।। १६।।
अङ्गदेनैष संयातु लक्ष्मणश्चान्तकोपमः।

आकाश में उड़ कर चलने वालों के जो स्वामी हैं, वे वानर शिरोमणि वानर ऋषभ इस वानर सेना के दाहिने भाग की रक्षा करते हुए चलें। जो मस्त हाथी के समान दुर्धर्ष और वेगवान हैं, वह गन्धमादन इस वानर सेना के बायें भाग में रह कर इसकी रक्षा करते हुए चलें। जैसे सेना का स्वामी ऐरावत जाति के श्रेष्ठ हाथी पर चढ़ कर चलता है, वैसे ही मैं हनुमान जी के कन्धे पर चढ़ कर सेना के बीच में सेना समूह को हर्षित करता हुआ चलूँगा। मृत्यु के समान ये लक्ष्मण अंगद के कंधे पर चढ़कर चलेंगे।

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः।। १७।।
ऋक्षराजो महाबाहुः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः।
राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः।। १८।।
व्यादिदेश महावीर्यो वानरान् वानरर्षभः।
ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः।। १९।।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम्।
तं यान्तमनुयान्ती सा महती हरिवाहिनी।। २०।।
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणापि पालिताः।

ऋक्ष जाति के राजा महाबाहु जाम्बवान, सुषेण और वेगदर्शी वानर ये तीनों सेना के पिछले भाग की रक्षा करें। श्रीराम की बात सुन कर सेना के स्वामी, महा तेजस्वी वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने वानरों को उसी प्रकार आज्ञा दी। उसके बाद वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मण के द्वारा सम्मानित हो कर धर्मात्मा श्रीराम सेना के साथ दक्षिण

की तरफ चल दिये। उनके चलने पर वह विशाल वानर सेना भी उनके पीछे चलने लगी। सुग्रीव के द्वारा पालित वे सारे वानर प्रसन्न और हर्षित हो रहे थे।

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः।। २१।।
क्ष्वेलन्तो निनदन्तश्च जग्मुर्वै दक्षिणां दिशम्।
भक्षयन्तः सुगन्धीनि मधूनि च फलानि च।। २२।।
उद्वहन्तो महावृक्षान् मञ्जरीपुञ्जधारिणः।
अन्योन्यं सहसा दृप्ता निर्वहन्ति क्षिपन्ति च।। २३।।
पतन्तश्चोत्पतन्त्यन्ये पातयन्त्यपरे परान्।
रावणो नो निहन्तव्यः सर्वे च रजनीचराः।। २४।।
इति गर्जन्ति हरयो राघवस्य समीपतः।

वे वानर उछलते हुए आकाश में तैरते हुए, गर्जते हुए, खेल करते हुए, और निनाद करते हुए, दक्षिण दिशा की तरफ जा रहे थे। वे सुगन्धित मधु को और फलों को खाते हुए और मंजरी तथा फूलों वाले बड़े पेड़ों को उखाड़ कर कन्धों पर उठा कर चल रहे थे। अभिमान में भरे हुए वे अचानक एक दूसरे के कन्धे पर चढ़ जाते थे और ऊपर चढ़े हुए को नीचे गिरा देते थे। कोई चलते हुए गिर पड़ते थे, कोई उछल पड़ते थे ओर कोई दूसरे को गिरा देते थे। वे वानर श्रीराम के समीप यह कहते हुए गर्ज रहे थे कि हमें सारे राक्षसों और रावण को मार देना है।

पुरस्तादृषभो नीलो वीरः कुमुद एव च।। २५।।
पन्थानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिः सह।
मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च।। २६।।
बलिभिर्बहुभिर्भीमैर्वृतः शत्रुनिबर्हणः।
सुषेणो जाम्बवांश्चैव ऋक्षैर्बहुभिरावृतौ।। २७।।
सुग्रीवं पुरतः कृत्वा जघनं संररक्षतुः।
दरीमुखः प्रजङ्घश्च जम्भोऽथ रभसः कपिः।। २८।।
सर्वतश्च ययुर्वीरास्त्वरयन्तः प्लवंगमान्।

आगे-आगे ऋषभ, वीर नील और कुमुद, बहुत सारे वानरों के साथ रास्ते को ठीक करते हुए चल रहे थे। बीच में राजा सुग्रीव, शत्रुओं को नष्ट करने वाले राम और लक्ष्मण बहुत सारे बलवान और भयानक वानरों से घिरे हुए चल रहे थे। सुषेण और जाम्बवान बहुत सारे ऋक्षों से घिरे हुए सुग्रीव को आगे करके सेना के पिछले भाग की रक्षा कर रहे थे। दरीमुख प्रजंघ, जम्भ और रभस नाम के वानर वीर सब तरफ जा कर वानरों को तेजी से चलने की प्रेरणा दे रहे थे।

सरांसि च सुफुल्लानि तटाकानि वराणि च।। २९।।
रामस्य शासनं ज्ञात्वा भीमकोपस्य भीतवत्।
वर्जयन् नागराभ्याशांस्तथा जनपदानपि।। ३०।।
सागरौघनिभं भीमं तद् वानरबलं महत्।
निःससर्प महाघोरं भीमघोषमिवार्णवम्।। ३१।।
भीममन्तर्दधे लोकं निवार्य सवितुः प्रभाम्।
सपर्वतवनाकाशं दक्षिणां हरिवाहिनी।। ३२।।
छादयन्ती ययौ भीमा द्यामिवाम्बुदसंततिः।

सागर के जल समूह के समान विशाल और भयानक वह वानरसेना समुद्र के ही समान भयानक घोष करती हुई, भयानक क्रोध वाले राम के आदेश को जान कर उनसे डरी हुई, राह में पड़ने वाले फूलों से युक्त तालाबों और उत्तम सरोवरों को, नगरों के समीपवर्ती स्थानों को और जनपदों को छोड़ती हुई जा रही थी। जैसे बादलों की घटा आकाश को ढक लेती हैं वैसे ही उस भयानक वानर सेना ने उड़ायी गयी विशाल धूल के द्वारा सूर्य की प्रभा को हटा कर पर्वत वन और आकाश सहित सारे जगत को आच्छादित कर दिया था। इस प्रकार वह दक्षिण दिशा की तरफ जा रही थी।

ते हृष्टवदनाः सर्वे जग्मुर्मारुतरंहसः।। ३३।।
हरयो राघवस्यार्थे समारोपितविक्रमाः।
हर्षं वीर्यं बलोद्रेकान् दर्शयन्तः परस्परम्।। ३४।।
यौवनोत्सेकजाद् दर्पाद् विविधांश्चक्रुरध्वनि।
तत्र केचिद् द्रुतं जग्मुरुत्पेतुश्च तथापरे।। ३५।।
केचित् किलकिलां चक्रुर्वानरा वनगोचराः।
भुजान् विक्षिप्य शैलांश्च द्रुमानन्ये बभञ्जिरे।। ३६।।
आरोहन्तश्चशृङ्गाणि गिरीणां गिरिगोचराः।

उस सेना के सारे वानर वायु के समान वेग वाले और प्रसन्नता से युक्त थे। श्री राम के कार्य के लिये वे पराक्रम से युक्त हो कर जा रहे थे। मार्ग में वे परस्पर एक दूसरे को जवानी के जोश और दर्प के कारण अनेक प्रकार से अपनी प्रसन्नता, उत्साह और पराक्रम को दिखाते हुए चल रहे थे। उनमें से कुछ भूमि पर तेजी के साथ चलते थे और कुछ आकाश में उड़ने लग जाते थे और कितने ही वानर अपने मुख से अनेक तरह की ध्वनियाँ निकालते थे। कुछ अपनी बाहों को फैला कर शिलाओं को उखाड़ लेते थे और कुछ वृक्षों को तोड़ डालते थे और कुछ पर्वतों पर विचरने वाले पर्वतों पर चढ़ जाते थे।

महानादान् प्रमुञ्चन्ति क्ष्वेडामन्ये प्रचक्रिरे।। ३७।।
ऊरुवेगैश्च ममृदुर्लताजालान्यनेकशः।
ततः पादपसम्बाधं नानावनसमायुतम्।। ३८।।
सह्यपर्वतमासाद्य वानरास्ते समारुहन्।
काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च।। ३९।।
पश्यन्नपि ययौ रामः सह्यस्य मलयस्य च।
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः।। ४०।।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति तान्।

कुछ बड़े जोर से गर्जना करते थे और कुछ सिंह नाद करते थे और कुछ अपनी जांघों के वेग से लताओं के समूहों को मसल डालते थे। इसके बाद वे वानर लोग वृक्षों के समूहों से तथा अनेक वनों से युक्त सह्य पर्वत को प्राप्त कर उस पर चढ़ गये। श्रीराम भी मलय और सह्य पर्वत के विचित्र-विचित्र प्रकार के वनों, नदियों और झरनों को देखते हुए यात्रा कर रहे थे। सुन्दर पत्थरों पर उगे हुए अनेक प्रकार के वन के वृक्ष, वायु के वेग से हिलते हुए उन वानरों पर फूलों की वर्षा कर रहे थे।

मारुतः सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः।। ४१।।
षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु।
अधिकं शैलराजस्तु धातुभिस्तु विभूषितः।। ४२।।
धातुभ्यः प्रसृतो रेणुर्वायुवेगेन घट्टितः।
सुमहद्वानरानीकं छादयामास सर्वतः।। ४३।।
गिरिप्रस्थेषु रम्येषु सर्वतः सम्प्रपुष्पिताः।
केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च मनोरमाः।। ४४।।
माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च पुष्पिताः।

चन्दन से शीतल और सुखद स्पर्श वाली वायु उस समय चल रही थी, साथ ही मधु की गन्ध से सुगन्धित वनों में भ्रमर भी गुंजार कर रहे थे। वह पर्वतराज तरह-तरह की धातुओं से विभूषित था। वायु की रगड़ से फैली हुई उन धातुओं की धूल ने उस विशाल वानर सेना को सब तरफ से ढक लिया था। पर्वतीय स्थलों पर सब तरफ फूलों से भरी हुई केतकी, सिन्धुवार, सुन्दर, वासन्ती तथा गन्ध से पूर्ण माधवी लताएँ फैली हुई थीं। कुंद की झाड़ियाँ भी फूलों से भरी हुईं थीं।

चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला बकुलास्तथा।। ४५।।
रञ्जकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः।
मुचुलिन्दार्जुनाश्चैव शिंशपाः कुटजास्तथा।। ४६।।
हिन्तालास्तिनिशाश्चैव चूर्णका नीपकास्तथा।
नीलाशोकाश्च सरला अङ्कोलाः पद्मकास्तथा।। ४७।।

वहाँ चिरिबिल्व, मधूक, बंजुल, बकुल, रंजक, तिलक और नागकेसर के वृक्ष खिले हुए थे। मुचुलिन्द, अर्जुन, शीशम, कुटज, हिंताल, तिनिश, चूर्णक, नीपक, नीलाशोक, सरल, अंकोल, और पद्मारव के वृक्ष विद्यमान थे।

प्रीयमाणैः प्लवंगैस्तु सर्वे पर्याकुलीकृताः।
चक्रवाकानुचरिताः कारण्डवनिषेविताः।। ४८।।
प्लवैः क्रौञ्चैश्च संकीर्णा वराहमृगसेविताः।
ऋक्षैस्तरक्षुभिः सिंहैः शार्दूलैश्च भयावहैः।। ४९।।
व्यालैश्च बहुभिर्भीमैः सेव्यमानाः समन्ततः।
पद्मैः सौगन्धिकैः फुल्लैः कुमुदैश्चोत्पलैस्तथा।। ५०।।
वारिजैर्विविधैः पुष्पै रम्यास्तत्र जलाशयाः।

उन सारे वृक्षों को प्रसन्न हुए वानरों ने घेर लिया था। वहाँ चक्रवाकों द्वारा विचरण किये जाते हुए, कारण्डवों द्वारा सेवित, जल काक और क्रौंच पक्षियों से भरे हुए सुन्दर जलाशय थे, जिनमें वराह, मृग, रीछ, लकड़ बग्घे, सिंह, भयानक बाघ और बहुत तरह के भयानक साँप पानी पीते थे। वे जलाशय खिले हुए सुगन्धित कमलों, कुमुदों और उत्पलों से तथा अन्य पानी में होने वाले तरह-तरह के फूलों से भरे हुए थे।

तस्य सानुषु कूजन्ति नानाद्विजगणास्तथा।। ५१।।
स्नात्वा पीत्वोदकान्यत्र जले क्रीडन्ति वानराः।
अन्योन्यं प्लावयन्ति स्म शैलमारुह्य वानराः।। ५२।।
फलान्यमृतगन्धीनि मूलानि कुसुमानि च।
बभञ्जुर्वानरास्तत्र पादपानां मदोत्कटाः।। ५३।।
द्रोणमात्रप्रमाणानि लम्बमानानि वानराः।
पादपानवभञ्जन्तो विकर्षन्तस्तथा लताः।। ५४।।
विधमन्तो गिरिवरान् प्रययुः प्लवगर्षभाः।

उस पर्वत की चोटियों पर अनेक प्रकार के पक्षी चहचहा रहे थे। वानर लोग वहाँ स्नान कर और पानी पी कर जल में खेल करते थे। वे एक दूसरे को पानी से भिगोते थे। पर्वत पर चढ़ कर अमृत के समान गन्ध वाले फल मूलों को, फूलों को तोड़ते थे। कुछ मस्ती में भरे वानर वृक्षों को तथा एक-एक द्रोण शहद से भरे हुए छतों को तोड़ लेते थे। पेड़ों को तोड़ते, लताओं को खींचते, शिलाओं को उखाड़ते हुए वे वानर श्रेष्ठ चले जा रहे थे।

महेन्द्रमथ सम्प्राप्य रामो राजीवलोचनः।। ५५।।
आरुरोह महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम्।

ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः॥ ५६॥
कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत् सलिलाशयम्।
ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम्॥ ५७॥
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम्।
अवरुह्य जगामाशु वेलावनमनुत्तमम्॥ ५८॥
रामो रमयतां श्रेष्ठः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः।

इसके पश्चात् महेन्द्र पर्वत पर पहुँच कर कमल नयन महाबाहु श्रीराम उसके वृक्षों से विभूषित शिखर पर चढ़ गये। उसके शिखर पर चढ़ कर दशरथ पुत्र श्रीराम ने कछुओं और मत्स्यों से भरे हुए सागर को देखा। इस प्रकार वे सह्य और मलय पर्वत को लाँघ कर क्रमशः भयानक ध्वनि को करने वाले समुद्र के तट पर पहुँचे थे। मन को रमाने वालों में श्रेष्ठ श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ उस पर्वत से उतर कर शीघ्र ही सागरतटवर्ती उत्तम वन में जा पहुँचे।

अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः॥ ५९॥
वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत्।
एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम्॥ ६०॥
इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वमुपस्थिता।
अतः परमतीरोऽयं सागरः सरितां पतिः॥ ६१॥
स चायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः।
तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह॥ ६२॥
यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात्।

समुद्र की उस विस्तृत वेला पर, जहाँ शिलातलों को सहसा ऊपर को उठी हुई जल तरंगों के द्वारा धो दिया गया था, पहुँच कर श्रीराम ने कहा कि हे सुग्रीव! ये हम इस आकाश के निवास स्थान सागर के समीप पहुँच गये हैं, अब यहाँ फिर वही चिन्ता जो पहले हमारे सामने थी, उपस्थित हो गयी है। इससे आगे तो बिना किनारे वाला, नदियों का स्वामी समुद्र विद्यमान है। इस समुद्र को बिना किसी उचित उपाय के पार किया नहीं जा सकता। इसलिये यहीं पड़ाव डाल दिया जाये और हम बैठ कर यहाँ विचार करें कि किस तरह से यह वानरसेना परले पार जा सके।

इतीव स महाबाहुः सीताहरणकर्शितः॥ ६३॥
रामः सागरमासाद्य वासमाज्ञापयत् तदा।
सर्वाः सेना निवेश्यन्तां वेलायां हरिपुङ्गव॥ ६४॥
सम्प्राप्तो मन्त्रकालो नः सागरस्येह लङ्घने।
स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित् कुतो व्रजेत्॥ ६५॥
गच्छन्तु वानराः शूरा ज्ञेयं छन्नं भयं च नः।
रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः॥ ६६॥
सेनां निवेशयत् तीरे सागरस्य द्रुमायुते।

इस प्रकार सीता के हरण से दुर्बल हुए महाबाहु राम ने समुद्र के किनारे पर पहुँच कर वहाँ सेना के वास करने की आज्ञा दी। उन्होंने कहा कि हे वानरश्रेष्ठ! सारी सेना को तट पर ठहरा दो। अब हमारे लिये सागर के लांघने के विषय में विचार करने का समय आया है। कोई भी अपनी सेना को छोड़ कर कहीं न जाये। शूरवीर वानर यथा स्थान पर चले जायें। हमें यह जानना चाहिये कि यहाँ हमारे ऊपर छिपा हुआ भय आ सकता है। श्रीराम के वचनों को सुन कर सुग्रीव ने लक्ष्मण की सहायता से समुद्र के वृक्षों से भरे हुए किनारे पर सेना को ठहरा दिया।

वेलावनमुपागम्य ततस्ते हरिपुङ्गवाः॥ ६७॥
निविष्टाश्च परं पारं काङ्क्षमाणा महोदधेः।
तेषां निविशमानानां सैन्यसंनाहनिःस्वनः॥ ६८॥
अन्तर्धाय महानादमर्णवस्य प्रशुश्रुवे।
सा वानराणां ध्वजिनी सुग्रीवेणाभिपालिता॥ ६९॥
त्रिधा निविष्टा महती रामस्यार्थपराभवत्।
सा महार्णवमासाद्य हृष्टा वानरवाहिनी॥ ७०॥
वायुवेगसमाधूतं पश्यमाना महार्णवम्।

तटवर्ती वन में पहुँच कर वे वानर श्रेष्ठ, समुद्र के परले पार जाने की इच्छा रखते हुए वहीं ठहर गये। वहाँ पड़ाव डालती हुई सेना के समूह के द्वारा इतना कोलाहल हुआ कि वह समुद्र के महान गर्जन की ध्वनि को भी दबा कर सुना जा रहा था। सुग्रीव के द्वारा पालित वह विशाल वानरों की सेना जो राम के कार्य की सिद्धि के लिये तत्पर थी, तीन भागों में बाँटकर ठहराई गयी। उस महान सागर पर पहुँच कर वह वानर सेना वायु के वेग से उद्वेलित होते हुए उस सागर को देख कर बड़ी हर्षित हो रही थी।

चण्डनक्रग्राहघोरं क्षपादौ दिवसक्षये॥ ७१॥
हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्तमिव चोर्मिभिः।
चन्द्रोदये समुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम्॥ ७२॥
चण्डानिलमहाग्राहैः कीर्णं तिमितिमिंगिलैः।
अग्निचूर्णमिवाविद्धं भास्वराम्बुमहोरगम्।
सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम्॥ ७३॥
सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत।
सम्पृक्तं नभसाप्यम्भः सम्पृक्तं च नभोऽम्भसा॥ ७४॥

वह समुद्र प्रचण्ड नक्र ग्राह आदि जल जन्तुओं से बड़ा भयानक लग रहा था। दिन की समाप्ति पर

रात्रि के आने पर वह अपने फेनों के समूहों से हँसता हुआ सा और तरंगों से नाचता हुआ सा प्रतीत हो रहा था। चन्द्रमा के उदय होने पर उसमें ज्वार आ गया था, वह उसके प्रतिबिम्बों से भरा हुआ मालूम होता था। वह प्रचण्ड वायु के समान वेगशाली ग्राह, तिमि और तिमिंगल आदि जल जन्तुओं से भरा हुआ था। वहाँ समुद्र आकाश से मिला हुआ था और आकाश समुद्र से मिला हुआ था। इसलिये समुद्र आकाश के समान और आकाश समुद्र के समान जान पड़ता था। दोनों ही सागर और आकाश एक जैसे दिखाई दे रहे थे।

अन्योन्यैरहताः सक्ताः सस्वनुर्भीमनिःस्वनाः।
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य महाभेर्य इवाम्बरे।। ७५।।
ददृशुस्ते महात्मानो वाताहतजलाशयम्।
अनिलोद्धूतमाकाशे प्रवलान्तमिवोर्मिभिः।। ७६।।
ततो विस्मयमापन्ना हरयो ददृशुः स्थिताः।
भ्रान्तोर्मिजालसंनादं प्रलोलमिव सागरम्।। ७७।।

एक दूसरे से टकराती हुई और सटती हुई सिन्धु राज की लहरें ऐसी भयानक ध्वनि उत्पन्न कर रहीं थीं मानो आकाश में बड़ी-बड़ी भेरियाँ बज रही हों। उन महात्मा वानरों ने देखा कि वायु के थपेड़े खा कर जिसका जल आकाश में उठ गया है, वह समुद्र अपनी लहरों की सहायता से मानो नृत्य कर रहा है। तत्पश्चात उन वानरों ने वहाँ खड़े हुए यह भी देखा कि भँवर बनाती हुई लहरों के समूह के द्वारा किये जा रहे कल-कल नाद से ऐसा लग रहा है, जैसे समुद्र कुछ उद्विग्न हो रहा है। समुद्र के इस प्रकार के दृश्यों को देख कर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ।

चौथा सर्ग

श्रीराम का सीता के लिये शोक और विलाप।

निविष्टायां तु सेनायां तीरे नदनदीपतेः।
पार्श्वस्थं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत्।। १।।
शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते।। २।।
न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति च।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते।। ३।।
वाहि वात यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश।
त्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः।। ४।।

समुद्र के किनारे सेना का पड़ाव पड़ जाने पर राम अपने साथ बैठे हुए लक्ष्मण से बोले कि— कहते हैं कि जाते हुए समय के साथ शोक भी चला जाता है, पर मेरा शोक तो अपनी प्रिया को न देखने के कारण दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। मुझे इस बात का इतना दुख नहीं है कि मेरी प्रिया को हर लिया गया, न ही मुझे इस बात का इतना दुख है कि वह मुझे से दूर है, मुझे तो यही चिन्ता हो रही है कि उसके जीवन की जो समय सीमा निश्चित कर दी गयी है, वह बीती जा रही है। हे वायु! तुम वहाँ बह कर आओ, जहाँ मेरी प्रिया है, तुम उसे स्पर्श करके फिर मुझे भी स्पर्श करो। उस समय तुम्हारे मेरे शरीर को स्पर्श करने पर मुझे ऐसा ही लगेगा, जैसे मैंने चन्द्रमा को देख लिया।

तन्मे दहति गात्राणि विषं पीतमिवाशये।
हा नाथेति प्रिया सा मां ह्रियमाणा यदब्रवीत्।। ५।।
तद्वियोगेन्धनवता तच्चिन्ताविमलार्चिषा।
रात्रिं दिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना।। ६।।
बह्वेतत् कामयानस्य शक्यमेतेन जीवितुम्।
यदहं सा च वामोरुरेकां धरणिमाश्रितौ।। ७।।
केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः।
अपस्नेहेन जीवामि जीवन्तीं यच्छृणोमि ताम्।। ८।।

जैसे पीया हुआ विष पेट में जा कर सारे अंगों को जलाने लगता है, वैसे ही अपहरण होते समय मेरी प्रिया ने जो हा नाथ कह कर मुझे पुकारा था, उसकी स्मृति मुझे जलाये दे रही है। उसका वियोग ही जिसका ईंधन है, उसकी चिन्ता ही जिसकी चमकती हुईं लपटें हैं, वह प्रेमाग्नि मुझे रात दिन जलाये देती है। वह सुन्दरी और मैं दोनों एक ही भूमि पर सोते हैं, यह आश्वासन ही इस समय उससे मिलने की इच्छा रखने वाले मुझे जीवित रखने के लिये पर्याप्त हैं। जैसे धान की बिना जलवाली क्यारी जल न होने पर भी दूसरी जल वाली क्यारी का स्पर्श होने से सूखती नहीं है, वैसे ही मैं इस समय केवल यही सुन कर जी रहा हूँ कि वह भी अभी जीवित है।

कदा नु खलु सुश्रोणीं शतपत्रायतेक्षणाम्।
विजित्य शत्रून् द्रक्ष्यामि सीतां स्फीतामिव श्रियम्।। ९।।
सा नूनमसितापाङ्गी रक्षोमध्यगता सती।
मन्नाथा नाथहीनेव त्रातारं नाधिगच्छति।। १०।।
कथं जनकराजस्य दुहिता मम च प्रिया।
राक्षसीमध्यगा शेते स्नुषा दशरथस्य च।। ११।।
अविक्षोभ्याणि रक्षांसि सा विधूयोत्पतिष्यति।
विधूय जलदान् नीलाञ्शशिलेखा शरत्स्विव।। १२।।

वह समय कब आयेगा कि जब मैं शत्रुओं को जीत कर उस कमल के समान सुन्दर आँखों वाली सुन्दरी सीता को समृद्धिशाली राजलक्ष्मी के समान देखूँगा? वह काले नेत्रों के किनारों वाली सती साध्वी सीता, मुझ जैसे स्वामी के होते भी राक्षसों के बीच में पड़ कर अनाथा के समान अपने किसी भी रक्षक को नहीं पा रही होगी। राजा जनक की पुत्री, मेरी प्रिया और दशरथ की पुत्रवधु राक्षसियों के बीच में कैसे सोती होगी? कब वह समय आयेगा जब शरद् ऋतु में नीले बादलों को हटा कर प्रकाशित होने वाली चन्द्रलेखा के समान उन दुर्धर्ष राक्षसों का मेरे माध्यम से विनाश करके वह अपना उद्धार करेगी।

स्वभावतनुका नूनं शोकेनानशनेन च।
भूयस्तनुतरा सीता देशकालविपर्ययात्।। १३।।
कदा नु राक्षसेन्द्रस्य निधायोरसि सायकान्।
शोकं प्रत्याहरिष्यामि शोकमुत्सृज्य मानसम्।। १४।।
कदा नु खलु मे साध्वी सीतामरसुतोपमा।
सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दजं जलम्।। १५।।

वह बेचारी सीता पहले ही अपने स्वभाव से दुबले पतले शरीर वाली थी पर अब विपरीत देश और काल के वश में हो जाने पर शोक और उपवास के कारण और भी दुर्बल हो गयी होगी। मैं कब उस राक्षसराज रावण की छाती में बाणों को धँसा कर अपने मन से शोक को दूर कर उसके शोक को भी दूर करूँगा? वह देवपुत्री के समान साध्वी सीता उत्कण्ठा सहित मेरे गले से लग कर आनन्द के आँसू बहायेगी?

कदा शोकमिमं घोरं मैथिलीविप्रयोगजम्।
सहसा विप्रमोक्ष्यामि वासः शुक्लेतरं यथा।। १६।।
आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः संध्यामुपासत।
स्मरन् कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः।। १७।।

मैं मैथिली से अलग होने के इस भयानक शोक को मैले वस्त्र के समान कब एकदम छोडूँगा? तब लक्ष्मण के द्वारा दिलासा दिये जाने पर शोक से आकुल राम ने उस कमलपत्र के समान आँखों वाली सीता को याद करते हुए सन्ध्योपासना की।

पाँचवाँ सर्ग

रावण और उसके समासदों का सभा में एकत्र होना।

स हेमजालविततं मणिविद्रुमभूषितम्।
उपगम्य विनीताश्वमारुरोह महारथम्।। १।।
तमास्थाय रथश्रेष्ठं महामेघसमस्वनम्।
प्रययौ रक्षसां श्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति।। २।।
असिचर्मधरा योधाः सर्वायुधधरास्ततः।
राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरस्तात् सम्प्रतस्थिरे।। ३।।
नानाविकृतवेषाश्च नानाभूषणभूषिताः।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैनं परिवार्य ययुस्तदा।। ४।।

उधर वह राक्षस शिरोमणि दशग्रीव जिसके ऊपर स्वर्ण की जाली का आच्छादन था तथा जिसे मणि और मूंगों से सजाया हुआ था और जिसमें अनुशासित घोड़े जुते हुए थे, उस महान मेघों के समान ध्वनि करने वाले विशाल रथ के समीप जा कर उसमें सवार हुआ और उस रथ श्रेष्ठ पर बैठ कर वह अपनी सभा की तरफ चला। तब ढाल तलवार सभी तरह के आयुधों को धारण करने वाले राक्षस उस राक्षसराज के आगे-आगे जा रहे थे। अनेक प्रकार के आभूषणों से भूषित तथा भयानक वेश वाले राक्षस लोग अलग बगल और पीछे से घेर कर उसके साथ चले।

रथैश्चातिरथाः शीघ्रं मत्तैश्च वरवारणैः।
अनूत्पेतुर्दशग्रीवमाक्रीडद्भिश्च वाजिभिः।। ५।।
गदापरिघहस्ताश्च शक्तितोमरपाणयः।
परश्वधधराश्चान्ये तथान्ये शूलपाणयः।। ६।।
ततस्तूर्यसहस्राणां संजज्ञे निःस्वनो महान्।
तुमुलः शङ्खशब्दश्च सभां गच्छति रावणे।। ७।।
स नेमिघोषेण महान् सहसाभिनिनादयन्।
राजमार्गं श्रिया जुष्टं प्रतिपेदे महारथः।। ८।।

तब बहुत से अतिरथी वीर रथों के द्वारा मस्त और श्रेष्ठ हाथियों के द्वारा और तरह-तरह की क्रीड़ाएँ दिखाने वाले घोड़ों के द्वारा उस रावण के पीछे-पीछे शीघ्रता से चल दिये। उनमें से किसी के हाथ में गदाएँ और परिघ थे, किन्हीं के हाथ में शक्ति और तोमर थे, किन्ही के हाथ में फरसे थे, तो किन्ही के हाथ में शूल थे। फिर वहाँ हजारों वाद्ययन्त्रों की महान ध्वनि होने लगी। रावण के सभा की तरफ जाते हुए तुमुल शंख ध्वनि होने लगी। उसका शोभा से युक्त वह महान रथ तब अपने पहियों की ध्वनि से आसपास के वातावरण को प्रतिध्वनित करता हुआ सहसा राजमार्ग पर आ गया।

विमलं चातपत्रं च प्रगृहीतमशोभत।
पाण्डुरं राक्षसेन्द्रस्य पूर्णस्ताराधिपो यथा।। ९।।
हेममञ्जरिगर्भे च शुद्धस्फटिकविग्रहे।
चामरव्यजने तस्य रेजतुः सव्यदक्षिणे।। १०।।
ते कृताञ्जलयः सर्वे रथस्थं पृथिवीस्थिताः।
राक्षसा राक्षसश्रेष्ठं शिरोभिस्तं ववन्दिरे।। ११।।
राक्षसैः स्तूयमानः सञ्जयाशीर्भिररिंदमः।
आससाद महातेजाः सभां विरचितां तदा।। १२।।

उस समय राक्षसराज के ऊपर फैलाया हुआ श्वेत निर्मल छत्र पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहा था। उसके दायीं और बायीं तरफ डुलाये जाते हुए शुद्ध स्फटिक के डंडों वाले चँवर और व्यजन, जिनमें सोने की मंजरियाँ बनी हुई थीं, शोभा पा रहे थे। पृथ्वी पर खड़े हुए सारे राक्षस लोग, रथ में बैठे हुए उस राक्षस श्रेष्ठ को हाथ जोड़ कर और सिर झुका कर प्रणाम कर रहे थे। इस प्रकार वह शत्रुओं का दमन करने वाला महातेजस्वी रावण राक्षसों के द्वारा जय जयकार और आशीर्वाद के वचनों के द्वारा स्तुति किया जाता हुआ अपने निर्माण किये हुए सभा भवन में पहुँचा।

सुवर्णरजतास्तीर्णां विशुद्धस्फटिकान्तराम्।
विराजमानो वपुषा रुक्मपट्टोत्तरच्छदाम्।। १३।।
तां पिशाचशतैः षड्भिरभिगुप्तां सदाप्रभाम्।
प्रविवेश महातेजाः सुकृतां विश्वकर्मणा।। १४।।
तस्यां तु वैदूर्यमयं प्रियकाजिनसंवृतम्।
महत्सोपाश्रयं भेजेरावणः परमासनम्।। १५।।
ततः शशासेश्वरवद्दूतांल्लघुपराक्रमान्।
समानयत मे क्षिप्रमिहैतान् राक्षसानिति।। १६।।
कृत्यमस्ति महज्जाने कर्तव्यमिति शत्रुभिः।

उसे विश्वकर्मा ने बहुत अच्छे प्रकार से बनाया था। सोने और चाँदी के काम से उसका फर्श बना हुआ था, जिसमें बीच-बीच में शुद्ध स्फटिक भी जड़ा हुआ था। वह सोने के काम वाली बिछी हुई रेशमी चादरों से सुशोभित हो रहा था। वह अपनी प्रभा से सदा जगमगाता रहता था। उस सभा भवन में उस महातेजस्वी रावण ने प्रवेश किया। छः सौ पिशाच जाति के राक्षस उसकी रक्षा किया करते थे। उसमें एक अत्यन्त सुन्दर आसन था, जो वैदूर्य मणि का बना हुआ था। उस पर प्रियक नाम के मृग का बड़ा मुलायम चर्म बिछा हुआ था, उसमें एक मसनद भी रखा हुआ था। रावण उस पर जा कर बैठ गया। फिर उसने स्वामी के समान शीघ्रगामी दूतों को आज्ञा दी कि तुम जल्दी ही यहाँ बैठने वाले सभासद राक्षसों को मेरे पास बुलाओ। मैं समझता हूँ कि शत्रुओं के साथ किया जाने वाला एक महान कार्य उपस्थित हो गया है।

राक्षसास्तद्वचः श्रुत्वा लङ्कायां परिचक्रमुः।। १७।।
अनुगेहमवस्थाय विहारशयनेषु च।
उद्यानेषु च रक्षांसि चोदयन्तो ह्यभीतवत्।। १८।।
ते रथान्तचरा एके दृप्तानेके दृढान् हयान्।
नागानेकेऽधिरुरुहुर्जग्मुश्चैके पदातयः।। १९।।
सा पुरी परमाकीर्णा रथकुञ्जरवाजिभिः।
सम्पतद्भिर्विरुरुचे गरुत्मद्भिरिवाम्बरम्।। २०।।

वे राक्षस लोग उसके वचनों को सुन कर लंका में सब तरफ घूमने लगे। वे निर्भय हो कर एक-एक घर, विहार स्थान, उद्यानों, शयनागारों में जा जाकर राक्षसों को राजसभा में पहुँचने के लिये कहने लगे। वे राक्षस लोग कुछ तो रथों के द्वारा, कुछ मस्त हाथियों पर चढ़ कर, कुछ मजबूत घोड़ों पर सवार हो कर तथा कुछ पैदल ही राजसभा की तरफ चल दिये। वह नगरी उन सभाभवन की तरफ दौड़ते हुए रथों, हाथियों और घोड़ों से भरी हुई ऐसे सुशोभित होने लगी, जैसे गरुड़ पक्षियों से भरा हुआ आकाश होता है।

ते वाहनान्यवस्थाय यानानि विविधानि च।
सभां पद्भिः प्रविविशुः सिंहा गिरिगुहामिव।। २१।।
राज्ञः पादौ गृहीत्वा तु राज्ञा ते प्रतिपूजिताः।
पीठेष्वन्ये बृसीष्वन्ये भूमौ केचिदुपाविशन्।। २२।।
ते समेत्य सभायां वै राक्षसा राजशासनात्।
यथार्हमुपतस्थुस्ते रावणं राक्षसाधिपम्।। २३।।

वे सभा सद लोग अपने-अपने तरह के वाहनों को बाहर खड़ा कर पैदल ही सभा में इस प्रकार प्रवेश करने लगे, जैसे बहुत सारे सिंह कन्दरा में प्रवेश कर रहे हों। वे राजा के चरणों को स्पर्श करते हुए और राजा के द्वारा सत्कृत होते हुए कुछ सिंहासनों पर, कुछ चटाइयों पर तथा कुछ भूमि पर बैठ गये। इस प्रकार वे सभासद राक्षस राजा के आदेश से सभा में एकत्र हो कर राक्षस रावण के आसपास यथायोग्य आसनों पर बैठ गये।

मन्त्रिणश्च यथामुख्या निश्चितार्थेषु पण्डिताः।
अमात्यश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धिदर्शनाः।। २४।।
समीयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तथा।
सभायां हेमवर्णायां सर्वार्थस्य सुखाय वै।। २५।।

उन सभासदों में अपने अपने निश्चित अर्थों में पण्डित, प्रमुख मंत्री, बुद्धिमान, सर्वज्ञ, गुणों से युक्त आमात्य और बहुत से शूरवीर वहाँ सैकड़ों की संख्या में आये थे। उस सुनहरी सभा में वे सब प्रकार के अर्थों और सुखों की पूर्ति के उपायों पर विचार करने वाले थे।

सुवर्णनानामणिभूषणानां
सुवाससां संसदि राक्षसानाम्।
तेषां पराार्घ्यागुरुचन्दनानां
स्रजां व गन्धाः प्रववुः समन्तात्।। २६।।

अनेक प्रकार के सुवर्ण के तथा मणियों के आभूषणों वाले और अच्छे वस्त्र पहने हुए उन राक्षसों की सभा में सब तरफ बहूमूल्य अगर चन्दन और मालाएँ सुगन्धियाँ फैला रहीं थीं।

न चुक्रुशुर्नानृतमाह कश्चित्
सभासदो नापि जजल्पुरुच्चैः।
संसिद्धार्थाः सर्व एवोग्रवीर्या
भर्तुः सर्वे ददृशुश्चाननं ते।। २७।।

उन राक्षसों में उस समय न तो कोई असत्य बोलता था, न कोई जोर-जोर से बातें करता था। वे सभी अपने-अपने कार्यों को पूरा करने वाले उग्र तेजस्वी थे। वे सब अपने स्वामी के मुख की तरफ देख रहे थे।

छठा सर्ग

नगर की रक्षा के लिये सैनिकों की नियुक्ति, रावण का सभासदों को सीता हरण की बात बता कर भावी कर्त्तव्य के लिये सम्मति माँगना। कुम्भकर्ण का पहले तो उसे फटककारना फिर उसकी सहायता करने का वचन देना।

स तां परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिंजयः।
प्रचोदयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम्।। १।।
सेनापते यथा ते स्युः कृतविद्याश्चतुर्विधाः।
योधा नगररक्षायां तथा व्यादेष्टुमर्हसि।। २।।
स प्रहस्तः प्रणीतात्मा चिकीर्षन् राजशासनम्।
विनिक्षिपद् बलं सर्वं बहिरन्तश्च मन्दिरे।। ३।।
ततो विनिक्षिप्य बलं सर्वं नगरगुप्तये।
प्रहस्तः प्रमुखे राज्ञो निषसाद जगाद च।। ४।।

तब उन सारी सभा की तरफ देख कर शत्रु विजयी रावण ने सेनापति प्रहस्त को यह आदेश दिया कि हे सेनापति! तुम सेना के चारों अंगों के अस्त्र विद्या में पारंगत सैनिकों को यह आदेश दो कि वे नगर की रक्षा में तत्पर रहें। तब उस मन को वश में किये हुए प्रहस्त ने राजा के आदेश को पूरा करने की इच्छा से सारे सैनिकों को लंका के अन्दर तथा बाहर तथा योग्य स्थानों पर नियुक्त करने के आदेश दे दिये। नगर की रक्षा के लिये सैनिकों को आदेश देकर प्रहस्त राजा के सामने आया और बोला कि-

विहितं बहिरन्तश्च बलं बलवतस्तव।
कुरुष्वाविमनाः षिप्रं यदभिप्रेतमस्ति ते।। ५।।
प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा राजा राज्यहितैषिणः।
सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः।। ६।।
प्रियाप्रिये सुखे दुःखे लाभालाभे हिताहिते।
धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम्।। ७।।
सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा।
मन्त्रकर्मनियुक्तानि न जातु विफलानि मे।। ८।।

हे राजन्! आप जैसे बलवान की सारी सेना को मैंने लंका के अंदर और बाहर भी उचित स्थानों की रक्षा करने के आदेश दे दिये हैं। अब आप शीघ्र ही अनुद्विग्नता के साथ अपने अभीष्ट कार्य को कीजिये। राज्य के हितैषी प्रहस्त की बात सुन कर सुख की इच्छा रखने वाले रावण ने अपने मित्रों के मध्य में यह कहा कि हे

सभासदों! आप लोग धर्म और काम का संकट उपस्थित होने पर प्रिय और अप्रिय, सुख और दुख, लाभ और हानि, तथा हितकारी और अहित कारी कार्य का विवेचन कने में समर्थ हैं। आप लोगों ने पहले मन्त्रणा का कार्य करके जो भी कार्य मेरे लिये आरम्भ किये हैं, वे कभी विफल नहीं हुए।

इयं च दण्डकारण्याद् रामस्य महिषी प्रिया।
रक्षोभिश्चरितोद्देशादानीता जनकात्मजा।। ९।।
तदा देवासुरे युद्धे युष्माभिः सहितोऽजयम्।
ते मे भवन्तश्च तथा सुग्रीवप्रमुखान् हरीन्।। १०।।
परे पारे समुद्रस्य पुरस्कृत्य नृपात्मजौ।
सीतायाः पदवीं प्राप्य सम्प्राप्तौ वरुणालयम्।। ११।।
अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ।
भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम्।। १२।।

जो राक्षसों के विचरने का स्थान है, उस दण्डकारण्य से मेरे द्वारा राम की प्यारी रानी जनकपुत्री सीता हरण करके लायी गयी है। पहले जब देवताओं और असुरों (अर्थात आर्यों और अनार्यों) का युद्ध हुआ था तो तुम्हारे साथ मैंने विजय प्राप्त की थी। वे आप लोग सब आज भी मेरे साथ हैं। वे दोनों राजकुमार सीता का पता पाकर सुग्रीव की अध्यक्षता में वानरों को साथ लेकर समुद्र के परले पार पहुँच गये हैं। सीता मेरे लिये अदेय है और दशरथ के दोनों पुत्र मारने योग्य हैं, आप इस विषय में विचार कीजिये और सुन्दर नीति को बताइये।

नहि शक्तिं प्रपश्यामि जगत्यन्यस्य कस्यचित्।
सागरं वानरैस्तीर्त्वा निश्चयेन जयो मम।। १३।।
कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत्।
सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव।। १४।।
विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः।
न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन।। १५।।
न स संतप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः।
अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च।। १६।।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव।

मैं संसार में किसी दूसरे की ऐसी शक्ति नहीं समझता कि वह सागर को वानरों के साथ पार करके यहाँ पहुँचे, अतः निश्चित रूप से जीत मेरी ही होगी। रावण की यह बात सुन कर कुम्भकर्ण को क्रोध आ गया और वह रावण से बोला कि हे महाराज! आपने यह सारा कार्य बहुत ही अनुचित किया है। आपको इस कार्य के आरम्भ में ही मन्त्रणा करनी चाहिये थी। हे रावण! जो राजा अपने राज्य कार्यों को न्यायपूर्वक करता है, वह निश्चित बुद्धि होने के कारण पीछे पछताता नहीं है। जो कार्य बिना किसी उचित उपाय का आश्रय लिये उलटे तरीके से किये जाते हैं, वे उसी प्रकार दोष को उत्पन्न करते हैं जैसे अपवित्र यज्ञ में होम किया हुआ हविष्य।

यः पश्चात् पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति।। १७।।
पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ।
तस्मात् त्वया समारब्धं कर्म ह्यप्रतिमं परैः।। १८।।
अहं समीकरिष्वामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ।
पुनर्मां स द्वितीयेन शरेण निहनिष्यति।
ततोऽहं तस्य पास्यामि रुधिरं काममाश्वस।। १९।।

जो पहले किये जाने वाले कार्य को पीछे करता है और पीछे किये जाने वाले कार्य को पहले करता है वह नीति और अनीति को नहीं जानता। हे निष्पाप! तुमने शत्रुओं के साथ अनुचित कार्य आरम्भ किया है। परन्तु फिर भी मैं तुम्हारे शत्रुओं को मार कर सब ठीक कर दूँगा। वे मुझे जब एक बाण मार कर दूसरा बाण मारने लगेंगे तो मैं उनका खून पी जाऊँगा। इसलिये तुम यथेच्छ धैर्य को धारण करो।

नोट— यहाँ मुहावरे का प्रयोग किया गया है वास्तव में खून पीने का मतलब खून पीना नहीं है। आज भी हम क्रोध में अपने शत्रु से कह देते हैं कि मैं तेरा खून पी जाऊँगा।

रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीं
कुरुष्व कार्याणि हितानि विज्वरः।
मया तु रामे गमिते यमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति।। २०।।

मैं दशरथ के पुत्र का वध करके तुम्हारे लिये सुखदायी जय प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करूँगा। तुम आराम से विहार करो, उत्तम मद्य का पान करो और निश्चिन्त होकर अपने लिये हितकारी कार्य करो। मेरे द्वारा राम को मृत्यु लोक भेज देने पर सीता सदा के लिये तुम्हारी हो जायेगी।

सातवाँ सर्ग

रावण के द्वारा अपने पराक्रम के गीत गाना, विभीषण द्वारा सीता का लौटाने की सम्मति देना, इन्द्रजित द्वारा विभीषण का उपहास और विभीषण द्वारा उसे फटकारना।

रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः।
मुहूर्तमनुसंचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।। १।।
उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदं वा कुशलैः कृतम्।
समतिक्रम्य दण्डेन सिद्धिमर्थेषु रोचये।। २।।
इह प्राप्तान् वयं सर्वाञ्छत्रूंस्तव महाबल।
वशे शस्त्रप्रतापेन करिष्यामो न संशयः।। ३।।

तब रावण को क्रोधावस्था में देखकर महाबली महापार्श्व थोड़ी देर सोच कर हाथ जोड़ कर बोला कि मैं तो चतुर लोगों ने जो साम, दाम और भेद नाम के उपाय अर्थ की सिद्धि के लिये बताये हैं, उनको छोड़ कर केवल दंड के द्वारा ही अर्थ सिद्धि को अच्छा समझता हूँ। हे महाबली! यहाँ आये हुए आपके सारे शत्रुओं को हम अपने शस्त्रों के प्रताप से वश में कर लेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।

एवमुक्तस्तदा राजा महापार्श्वेन रावणः।
तस्य सम्पूजयन् वाक्यमिदं वचनमब्रवीत्।। ४।।
सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे गतिः।
नैतद् दाशरथिर्वेद ह्यासादयति तेन माम्।।
५ । ।
को हि सिंहमिवासीनं सुप्तं गिरिगुहाशये।
क्रुद्धं मृत्युमिवासीनं प्रबोधयितुमिच्छति।। ६।।
न मत्तो निर्गतान् बाणान् द्विजिह्वान् पन्नगानिव।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मामभिगच्छति।। ७।।
क्षिप्रं वज्रसमैर्बाणैः शतधा कार्मुकच्युतैः।
राममादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम्।। ८।।
तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः।
उदितः सविता काले नक्षत्राणां प्रभामिव।। ९।।

महापार्श्व के यह कहने पर उसकी बात का आदर कर रावण यह बोला कि मेरा वेग समुद्र के समान और गति वायु के समान है। यह बात दशरथ के पुत्र राम को पता नहीं है। तभी वह मेरे ऊपर चढ़ाई कर रहा है, नहीं तो कौन ऐसा है जो पर्वत की गुफा में सोये सिंह के समान और क्रुद्ध मृत्यु के समान बैठे हुए मुझे जगाना चाहेगा। राम ने मेरे द्वारा छोड़े हुए दो जीभों वाले साँपों के समान बाणों को देखा नहीं है। इसीलिये वह युद्ध के लिये मुझ पर आक्रमण करना चाह रहे हैं। मैं अपने धनुष से छोड़े हुए सैकड़ों वज्र के समान बाणों से राम को उसी प्रकार जला दूँगा, जैसे हाथी को भागने के लिये उसे मशालों से जलाया जाता है। मैं उसकी सेना को अपनी महासेना से घिरा हुआ वैसे ही विलीन कर दूँगा, जैसे सूर्य अपने उदय काल में नक्षत्रों की चमक को विलीन कर देता है।

निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं
स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि।
विभीषणो राक्षसराजमुख्य-
मुवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम्।। १०।।

राक्षसराज रावण के वाक्य तथा कुम्भकर्ण की गर्जना सुन कर विभीषण ने राक्षसों के उस प्रमुख राजा से यह कल्याणकारी और अर्थयुक्त बात कही कि–

यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा
रामेरिता राक्षसपुंगवानाम्।
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली।। ११।।

हे राजन्! जब तक राम के द्वारा चलाये हुए वज्र के समान कठोर और वायु के समान तीव्र गति वाले बाण राक्षस शिरोमणियों के सिरों को काटना आरम्भ नहीं करते हैं, उससे पहले ही राम को मैथिली को लौटा दीजिये।

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजं-
स्तथा महापार्श्वमहोदरौ वा।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः
स्थातुं समर्था युधि राघवस्य।। १२।।

हे राजन्! न तो कुम्भकर्ण और इन्द्रजित न महापार्श्व और महोदर, न विकुम्भ, कुम्भ तथा अतिकाय, युद्ध में, राम के सामने खड़े होने में समर्थ हैं।

निशम्य वाक्यं तु विभीषणस्य
ततः प्रहस्तो वचनं बभाषे।
कथं नु रामाद् भविता भयं नो
नरेन्द्रपुत्रात् समरे कदाचित्।। १३।।

विभीषण की बात सुन कर प्रहस्त ने कहा कि एक सामान्य राजपुत्र राम से हमें युद्ध में कभी भी कैसे भय हो सकता है?

प्रहस्तवाक्यं त्वहितं निशम्य
विभीषणो राजहितानुकाङ्क्षी।
ततो महार्थं वचनं बभाषे
धर्मार्थकामेषु निविष्टबुद्धिः॥ १४॥

प्रहस्त के अहितकारी वचन सुन कर धर्म, अर्थ और काम में अच्छी तरह से लगी हुई बुद्धि वाले और राजा के हित की आकांक्षा रखने वाले विभीषण ने महान अर्थ से युक्त यह बात कही कि–

प्रहस्त राजा च महोदरश्च
त्वं कुम्भकर्णश्च यथार्थजातम्।
ब्रवीत रामं प्रति तन्न शक्यं
यथा गतिः स्वर्गमधर्मबुद्धेः॥ १५॥

हे प्रहस्त! राजा रावण, महोदर, तुम और कुम्भकर्ण जो कुछ राम के लिये कह रहे हैं, वह होना ऐसे ही सम्भव नहीं है जैसे अधर्म में लगी बुद्धि वाले की गति स्वर्ग अर्थात् परलोक में उत्तम गति की प्राप्ति में नहीं हो सकती।

बधस्तु रामस्य मया त्वया च
प्रहस्त सर्वैरपि राक्षसैर्वा।
कथं भवेदर्थविशारदस्य
महार्णवं तर्तुमिवाप्लवस्य॥ १६॥

हे प्रहस्त! प्रयोजन की सिद्धि में जो चतुर हैं उन श्रीराम का वध मेरे द्वारा या तुम्हारे द्वारा या सारे राक्षसों के द्वारा महासागर को बिना नाव के पार करने के प्रयत्न के समान कैसे सम्भव हो सकता है?

तीक्ष्णा न तावत् तव कङ्कपत्रा
दुरासदा राघवविप्रमुक्ताः।
भित्त्वा शरीरं प्रविशन्ति बाणाः
प्रहस्त तेनैव विकत्थसे त्वम्॥ १७॥

हे प्रहस्त! राम के द्वारा छोड़े हुए कंकपत्र युक्त तीखे और दुर्धर्ष बाण जब तुम्हारे शरीर को भेद कर प्रवेश नहीं करते तभी तक तुम आत्मप्रशंसा कर रहे हो।

न रावणो नातिबलस्त्रिशीर्षो
न कुम्भकर्णस्य सुतो निकुम्भः।
न चेन्द्रजिद् दाशरथिं प्रवोढुं
त्वं वा रणे शक्रसमं समर्थः॥ १८॥

इन्द्र के समान तेजस्वी दशरथ पुत्र राम को न तो रावण, न महाबली त्रिशिरा, न कुम्भकर्ण का पुत्र निकुम्भ और न इन्द्रजित युद्ध में सहन कर सकते हैं।

देवान्तको वापि नरान्तको वा
तथातिकायोऽतिरथो महात्मा।
अकम्पनश्चाद्रिसमानसारः
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥ १९॥

देवान्तक, अतिकाय, नरान्तक महात्मा अतिरथ, पर्वत के समान बलशाली अकम्पन इनमें से कोई युद्ध में राम के सामने नहीं ठहर सकते।

अयं च राजा व्यसनाभिभूतो
मित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्भिः।
अन्वास्यते राक्षसनाशनार्थे
तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्षकारी॥ २०॥

ये राजा रावण तो व्यसनों के वश में हो रहे हैं। ये स्वभाव से कठोर हैं और सोच विचार कर काम नहीं करते हैं। आप लोग भी राक्षसों के विनाश के लिये मित्र होते हुए भी अमित्रों के समान इनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं।

सुवारिणा राघवसागरेण
प्रच्छाद्यमानस्तरसा भवद्भिः।
युक्तस्त्वयं तारयितुं समेत्य
काकुत्स्थपातालमुखे पतन् सः॥ २१॥

महान् जल वाले रामरूपी सागर के द्वारा इन राजा रावण को डुबोया जाने वाला है अथवा वे रामरूपी गहरे गर्त में गिरने वाले हैं। आप लोगों को चाहिये कि आप लोग मिलकर जल्दी ही इनके उद्धार के लिये प्रयत्न करें।

इदं पुरस्यास्य सराक्षसस्य
राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य।
सम्यग्धि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि
नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथिलीम्॥ २२॥

मैं तो राक्षसों सहित इस नगर के और मित्रों सहित राजा रावण के हित के लिये यही अपने मत के अनुसार कहता हूँ कि उस राजपुत्र को सीता को लौटा दो।

परस्यवीर्यं स्व बलं च बुद्ध्वा
स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम्।
तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्ध्या
वदेत् क्षमं स्वामिहितं स मन्त्री॥ २३॥

जो अपने और शत्रु के बल को समझ कर, दोनों पक्षों की स्थिति, हानि और वृद्धि को बुद्धि से विचार कर स्वामी की भलाई की उचित बात कहे वही सच्चा मंत्री है।

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्त-
निशम्य यत्नेन विभीषणस्य।
ततो महात्मा वचनं बभाषे
तत्रेन्द्रजिन्नैर्ऋतयूथमुख्यः ।।२४।।

बृहस्पति के समान बुद्धि वाले विभीषण की बात को यत्न पूर्वक सुन कर राक्षस गणों का स्वामी महान प्रतिष्ठा वाला इन्द्रजित बोला कि—

किं नाम ते तात कनिष्ठ वाक्य-
मनर्थकं वै बहुभीतवच्च।
अस्मिन् कुले योऽपि भवेन्न जातः
सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात्।।२५।।

हे छोटे चाचा! तुम क्या बहुत डरे हुए जैसी अनर्थक बातें कर रहे हो। इस कुल में जो भी हुआ है, वह कभी भी ऐसी बातें न तो कह सकता है और न ऐसे कार्य कर सकता है।

सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण
धैर्येण शौर्येण च तेजसा च।
एकः कुलेऽस्मिन् पुरुषो विमुक्तो
विभीषणस्तात कनिष्ठ एषः।।२६।।

इस कुल में एक ये छोटे चाचा विभीषण ही ऐसे हैं, जो बल, तेज़, पराक्रम, धैर्य, शौर्य, और वीर्य से रहित हैं।

किं नाम तौ मानुषराजपुत्रा-
वस्माकमेकेन हि राक्षसेन।
सुप्राकृतेनापि निहन्तुमेतौ
शक्यौ कुतो भीषयसे स्म भीरो।।२७।।

वे दोनों मनुष्य राजकुमार हमारे सामने क्या हैं? हमारा एक साधारण राक्षस भी उन्हें मार सकता है। फिर आप स्वयं डरपोक होकर हमें क्यों डरा रहे हैं।

अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य
महौजसस्तद् वचनं निशम्य।
ततो महार्थं वचनं बभाषे
विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः।।२८।।

तब इन्द्र के समान महान तेजस्वी, दुर्धर्ष उस इन्द्रजित की वह बात सुन कर शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ विभीषण ने यह महान अर्थ से युक्त बात कही कि।

न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति
बालस्त्वमद्याप्यविपक्वबुद्धिः ।
तस्मात् त्वयाप्यात्मविनाशनाय
वचोऽर्थहीनं बहु विप्रलप्तम्।।२९।।

हे तात! मन्त्रणा करने में तुम अभी दृढ़ नहीं हो, तुम अभी बच्चे हो। तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। इसलिये तुमने भी अपने विनाश के लिये बहुत सारी बेकार की बातों का प्रलाप कर दिया है।

पुत्रप्रवादेन तु रावणस्य
त्वमिन्द्रजिन्मित्रमुखोऽसि शत्रुः।
यस्येदृशं राघवतो विनाशं
निशम्य मोहादनुमन्यसे त्वम्।।३०।।

तुम वैसे तो रावण के पुत्र हो पर हे इन्द्रजित! तुम मित्र के रूप में उसके शत्रु हो, जो तुम राम के द्वारा होने वाले विनाश की बात सुनकर भी मोह वश उसकी हाँ में हाँ मिला रहे हो।

को ब्रह्मदण्डप्रतिमप्रकाशा-
नर्चिष्मतः कालनिकाशरूपान्।
सहेत बाणान् यमदण्डकल्पान्
समक्षमुक्तान् युधि राघवेण।।३१।।

युद्ध के मुहाने पर राम के द्वारा छोड़े गये, ब्रह्मदण्ड के समान प्रकाशित होने वाले, काल के समान रूप वाले और मृत्यु के समान भयंकर बाणों को कौन सह सकता है?

धनानि रत्नानि सुभूषणानि
वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान्।
सीतां च रामाय निवेद्य देवीं
वसेम राजन्निह वीतशोकाः।।३२।।

इसलिये हे राजन्! हम लोग धन, रत्न, सुन्दर आभूषण, अलौकिक वस्त्र, विचित्र मणियों को तथा देवी सीता को राम को अर्पित करके शोक रहित होकर रह सकते हैं।

आठवाँ सर्ग

रावण द्वारा विभीषण का तिरस्कार और विभीषण द्वारा उसे त्याग कर चल देना।

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम्।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः।। १।।
वसेत् सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना।। २।।
जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा।। ३।।
प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस।
ज्ञातयोऽप्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च।। ४।।

तब अच्छी तरह से सोच कर हितकारी बात करने वाले विभीषण से काल से प्रेरित हुआ वह रावण कठोरता के साथ बोला कि मनुष्य को चाहिये कि वह शत्रु के साथ या क्रुद्ध विषधर के साथ रह ले, पर मित्र कहलाने वाले किन्तु शत्रु की सेवा करने वाले के पास कभी न रहे। हे राक्षस! मैं सारे लोकों में जाति भाइयों के चरित्र को जानता हूँ। ये जाति वाले अपने जाति भाइयों के संकट में प्रसन्न होते हैं। जो ज्येष्ठ हो, सबका प्रधान हो, विद्वान हो, धर्मशील हो, राज्य को अच्छी तरह से चलाने वाला हो, शूरवीर हो, ऐसे व्यक्ति को भी जाति भाई नीचा दिखाने और पराभव प्राप्त कराने का प्रयत्न करते हैं।

नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः।। ५।।
ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः।
ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः।। ६।।
यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम्।। ७।।
यथा शरदि मेघानां सिञ्चतामपि गर्जताम्।
न भवत्यम्बुसंक्लेदस्तथानार्येषु सौहृदम्।। ८।।

ये आततायी लोग संकट में एक दूसरे को देखकर हर्ष का अनुभव करते हैं। ये जाति वाले दिल की बातें छिपाये रखते हैं। भयंकर और भय पैदा करने वाले होते है। आज जो सारा संसार मेरा सम्मान करता है, मैं ऐश्वर्यवान हूँ, शत्रुओं के सिर पर विद्यमान हूँ। ये सारी बातें इसलिये हे सौम्य! तुम्हें पसन्द नहीं हैं। जैसे कमल के पत्तों पर गिरी हुई पानी की बूदें ठहरती नहीं हैं, उसी तरह अनार्यों के हृदय में सौहार्द की भावना नहीं टिकती है। जैसे शरद ऋतु में गर्जते हुए बादल कितना भी भूमि को सींचने का प्रयत्न करें, पर फिर भी भूमि जल से गीली नहीं होती, उसी तरह अनार्य व्यक्ति को कितना भी प्रेम भावना का पाठ पढ़ाओ, उसका हृदय प्रेम भावना से गीला नहीं होता।

यथा मधुकरस्तर्षाद् रसं विन्दन्न तिष्ठति।
तथा त्वमपि तत्रैव तथानार्येषु सौहृदम्।। ९।।
यथा मधुकरस्तर्षात् काशपुष्पं पिबन्नपि।
रसमत्र न विन्देत तथानार्येषु सौहृदम्।। १०।।
यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः।
दूषयत्यात्मनो देहं तथानार्येषु सौहृदम्।। ११।।
योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद् वाक्यमेतन्निशाचर।
अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत् त्वां तु धिक् कुलपांसन।। १२।।

जैसे भौंरा बड़ी इच्छा से फूलों का रस तो पीता है, पर वहाँ ठहरता नहीं है, उसी प्रकार तुम अनार्य हो, तुम्हारे हृदय में प्रेम की भावना नहीं ठहर सकती। जैसे भौंरा इच्छापूर्वक काश के फूल का पान करे, तो भी उसे वहाँ रस नहीं मिल सकता, उसी प्रकार अनार्य व्यक्ति के हृदय में प्रेम भाव नहीं मिल सकता। जैसे हाथी पहले स्नान करता है और उसके बाद सूँड से धूल उछाल कर शरीर को धूल से भर देता है, वैसे ही अनार्य व्यक्ति में प्रेमभाव दूषित होता है। हे राक्षस! यदि कोई दूसरा व्यक्ति इस प्रकार बातें करता तो उसे उसी समय समाप्त कर दिया जाता। हे कुलकलंक! तुझे धिक्कार है।

इत्युक्तः परुष वाक्यं न्यायवादी विभीषणः।
अब्रवीच्च तदावाक्यं जातक्रोधो विभीषणः।। १३।।
स त्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन् ब्रूहि मां यद् यदिच्छसि।
ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः।। १४।।
इदं हि परुषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते।
सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन।। १५।।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः।
सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।। १६।।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।

न्याय के अनुसार कहने वाले विभीषण से जब इस प्रकार कठोर बातें कही गईं, तब वे क्रोध में भर कर बोले कि हे राजन्! आप मेरे बड़े भाई हैं, इसलिये पिता

के समान मान्य हैं, पर आप धर्म के मार्ग पर स्थित नहीं हैं। आप भ्रम में पड़े हुए हैं। आप जो कुछ कहना हो मुझे कहिये पर मैं, आपके बड़े भाई होने पर भी इन कठोर वाक्यों को सहन नहीं कर सकता। हे दशानन! मैंने आपकी भलाई के लिये नीति के अनुसार बात कही थी पर जो अजितेन्द्रिय हैं, वे ऐसी बातों को ग्रहण नहीं करते। हे राजन्! संसार में सदा मीठी बाते करने वाले तो बहुत आसानी से मिल जाते हैं, पर भलाई की अप्रिय बात को कहने वाले और सुनने वाले बहुत कठिनता से मिलते हैं।

बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणः।। १७।।
न नश्यन्तमुपेक्षे त्वां प्रदीप्तं शरणं यथा।
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च नरा रणे।। १८।।
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः।
तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता।। १९।।
आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम्।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना।। २०।।

तुम उस काल के बन्धन में बँध रहे हो, जो सारे प्राणियों का अपहरण करता है। जैसे घर में आग लगने पर भी उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती उसी प्रकार विनाश की तरफ जाते हुए तुम्हारी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता इसीलिये मैंने तुम्हारे हित की बातें कहीं। यदि कोई कितना भी शूरवीर हो, बलवान हो, शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण हो, जब ये लोग काल के वश में हो जाते हैं, तो युद्ध में बालू की दीवार की तरह नष्ट हे जाते हैं। इसलिये तुम्हारी भलाई चाहते हुए मैंने जो कुछ भी कहा उसे बड़े होने के कारण क्षमा कर दो। अब आप राक्षसों सहित इस पुरी की तथा अपनी पूरी तरह से रक्षा करो। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं तुम्हारे पास से चला जाऊँगा। तुम मेरे बिना सुखी रहो।

नवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीराम की शरण में जाना और श्रीराम का अपने मंत्रियों से उन्हें आश्रय देने के विषय में विचार करना।

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः।। १।।
तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः।
वानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान्।। २।।
तेषां सम्भाषमाणानामयोन्यं स विभीषणः।
उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत।। ३।।
स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान्।
सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य खस्थ एव विभीषणः।। ४।।

रावण का वह छोटा भाई विभीषण इस प्रकार रावण से कठोर वचन कह कर एक मुहूर्त में ही वहाँ आ पहुँचा जहाँ राम लक्ष्मण के साथ विद्यमान थे। उसको अपने चार साथियों के साथ आता हुआ देख कर वानराधिपति, बुद्धिमान और दुर्धर्ष सुग्रीव ने वानरों के साथ उसके विषय में विचार करना शुरू किया। अभी वे आपस में बात कर ही रहे थे कि विभीषण आकाश मार्ग से सागर के उस उत्तरी किनारे पर आ पहुँचे और आकाश में स्थिर हो गये। वहाँ खड़े हुए ही उस महाप्राज्ञ विभीषण ने ऊँची आवाज से सुग्रीव और उन वानरों को देखते हुए कहा कि—

रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः।। ५।।
तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम्।
रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता।। ६।।
तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम्।
साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः।। ७।।
स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः।
उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम्।। ८।।

रावण नाम का बुरे आचरण वाला राक्षसों का राजा है। मैं उसका छोटा भाई विभीषण नाम का हूँ। उसने जटायु को मार कर जनस्थान से सीता का अपहरण किया था। वह इस समय असहाय और दीनावस्था में राक्षसियों की सुरक्षा में है। मैंने उसे युक्तियुक्त वाक्यों से बार-बार समझाया कि सीता को राम को वापिस लौटा दो, यही अच्छी बात है, पर काल के वश में पड़ा होने के कारण भलाई की बात कहने पर भी रावण ने उस परामर्श को स्वीकार नहीं किया, जैसे मरणान्त व्यक्ति औषधि को नहीं लेता।

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः।। ९।।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः।। १०।।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत्।
प्रविष्टः शत्रुसैन्यं हि प्राप्तः शत्रुरतर्कितः।। ११।।
निहन्यादन्तरं लब्ध्वा उलूको वायसानिव।
मन्त्रे व्यूहे नये चारे युक्तो भवितुमर्हसि।। १२।।
वानराणां च भद्रं ते परेषां च परंतप।

उसने जब मुझ से कठोर वचन कहे और दास के समान मेरा अपमान किया तो मैं अपने स्त्री पुत्रों को वहीं छोड़ कर राम की शरण में आया हूँ। आप लोग महात्मा राम को मेरी बात जल्दी निवेदन कीजियें। वह वचन सुन कर शीघ्रता से काम करने वाले सुग्रीव ने लक्ष्मण के सामने श्रीराम से आवेश सहित जा कर कहा कि कोई शत्रु राक्षस जो पहले शत्रु की सेना में प्रविष्ट था, बिना किसी तर्क अर्थात कारण के हमारे पास आया है। वह अवसर देख कर हमें वैसे मार देगा जैसे उल्लू कौवों को मार देता है। हे शत्रुओं को तपाने वाले राम। आपको वानरों का कल्याण तथा शत्रुओं का अकल्याण करने के लिये मन्त्रणा करने, व्यूह रचना करने, नीति का प्रयोग करने और गुप्तचक्र की स्थापना करने में युक्तियुक्त होना चाहिये।

प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवेदयम्।। १३।।
अनुप्रविश्य सोऽस्मासु भेदं कुर्यान्न संशयः।
अथ वा स्वयमेवैष च्छिद्रमासाद्य बुद्धिमान्।। १४।।
अनुप्रविश्य विश्वस्ते कदाचित् प्रहरेदपि।
मित्राटविबलं चैव मौलभृत्यबलं तथा।। १५।।
सर्वमेतद् बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम्।
प्रकृत्या राक्षसो ह्येष भ्रातामित्रस्य वै प्रभो।। १६।।
आगतश्च रिपुः साक्षात् कथमस्मिंश्च विश्वसेत्।

यह राक्षसराज रावण का गुप्तचर हो सकता है और हमारे बीच में आ कर निस्सन्देह फूट पैदा कर सकता है। अथवा यह बुद्धिमान राक्षस हमारे बीच में आ कर हमारी कमजोरी जान कर हमारे उसके प्रति विश्वस्त हो जाने पर कभी स्वयं ही हमारे ऊपर आक्रमण कर दे। मित्र जंगली जातियों की सेना और परम्परागत भृत्यों की सेना का संग्रह किया जा सकता है, पर शत्रु की सेना के लोगों को साथ में नहीं रखना चाहिये। हे प्रभो! एक तो यह स्वभाव से राक्षस है, दूसरे हमारे शत्रु का भाई है। इसलिये यह आने वाला हमारा साक्षात् शत्रु है। इस पर विश्वास कैसे किया जा सकता है?

रावणेन प्रणीतं हि तमवेहि विभीषणम्।। १७।।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर।
राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः।। १८।।
प्रहर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ।
वध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह।। १९।।
एवमुक्त्वा तु तं रामं संरब्धो वाहिनीपतिः।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत्।। २०।।

हे उचित कार्यों को करने वालों में श्रेष्ठ राम! इस विभीषण को रावण के ही द्वारा भेजा हुआ समझिये। इसलिये मैं इसको कैद कर लेना उचित समझता हूँ। हे निष्पाप! यह राक्षस बुद्धि से कुटिल है। रावण के आदेश से यहाँ आया है। यह माया से यहाँ छिपा रहेगा और आपके विश्वास कर निश्चिन्त हो जाने पर हमला कर बैठेगा। इसलिये इसे कठोर दंड देकर मंत्रियों के साथ इसका वध कर दीजिये। इस प्रकार यह सेनाध्यक्ष, वाक्य विशारद सुग्रीव आवेश में अपनी बात-बात करने में कुशल श्रीराम से कह कर चुप हो गये।

सुग्रीवस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा रामो महाबलः।
समीपस्थानुवाचेदं हनुमत्प्रमुखान् कपीन्।। २१।।
यदुक्तं कपिराजेन रावणावरजं प्रति।
वाक्यं हेतुमदत्यर्थं भवद्भिरपि च श्रुतम्।। २२।।
सुहृदामर्थकृच्छ्रेषु युक्तं बुद्धिमता सदा।
समर्थेनोपसंदेष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता।। २३।।
इत्युक्ते राघवायाथ मतिमानङ्गदोऽग्रतः।
विभीषणपरीक्षार्थमुवाच वचनं हरिः।। २४।।

सुग्रीव की बात सुन कर महाबली राम ने अपने समीप विद्यमान हनुमान आदि वानरों से कहा कि रावण के छोटे भाई के लिये वानरराज ने जो अत्यन्त कारण युक्त बात कही है, उसे आपने भी सुना है। करणीय और अकरणीय के विषय में संकट के प्राप्त होने पर मित्रों के स्थायी ऐश्वर्य को चाहने वाले बुद्धिमान और समर्थ व्यक्ति को सदा अपना विचार प्रकट करना चाहिये। ऐसा कहे जाने पर सबसे पहले मतिमान वानर अंगद ने विभीषण की परीक्षा के लिये सलाह देते हुए श्री राम से कहा कि-

शत्रोः सकाशात् सम्प्राप्तः सर्वथा तर्क्य एव हि।
विश्वासनीयः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः।। २५।।
छादयित्वाऽऽत्मभावं हि चरन्ति शठबुद्धयः।

प्रहरन्ति च रन्ध्रेषु सोऽनर्थः सुमहान् भवेत्।। २६।।
अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत ह।
गुणतः संग्रहं कुर्याद् दोषतस्तु विसर्जयेत्।। २७।।

विभीषण क्योंकि शत्रु के पास से आया है, इसलिये उस पर शंका तो पूरी तरह से की ही जानी चाहिये। जो दुष्ट बुद्धि होते हैं, वे अपने मनोभावों को छिपा कर रहते हैं और छिद्र देख कर प्रहार कर बैठते हैं। तब बड़ा अनर्थ हो जाता है। इसलिये अर्थ और अनर्थ का निश्चय करके कार्य करना चाहिये। गुणवान व्यक्ति को स्वीकार करना चाहिये और दोषवान का परित्याग करना चाहिये।

शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्थं वचनमब्रवीत्।
क्षिप्रमस्मिन् नरव्याघ्र चारः प्रतिविधीयताम्।। २८।।
प्रणिधाय हि चारेण यथावत् सूक्ष्मबुद्धिना।
परीक्ष्य च ततः कार्यो यथान्यायं परिग्रहः।। २९।।
जाम्बवांस्त्वथ सम्प्रेक्ष्य शास्त्रबुद्ध्याविचक्षणः।
वाक्यं विज्ञापयामास गुणवद् दोषवर्जितम्।। ३०।।
बद्धवैराच्च पापाच्च राक्षसेन्द्राद् विभीषणः।
अदेशकाले सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्यतामयम्।। ३१।।

तब शरभ ने सोच कर यह सार्थक बात कही कि हे नर व्याघ्र! इस पर शीघ्र ही गुप्तचर नियुक्त कर देना चाहिये। सूक्ष्म बुद्धि वाले गुप्तचर से इसको जान कर इसकी परीक्षा कर फिर जैसी स्थिति हो, वैसे ही इसको अपनाना चाहिये। विचक्षण जाम्बवान ने तब शास्त्रों की बुद्धि से विचार कर दोषों से रहित और गुण युक्त यह बात कही कि विभीषण उस राक्षसों के राजा के पास से आया है, जो पापी है और जो हमारा शत्रु है और न तो यह इसके आने का समय है और न स्थान है, इसलिये यह पूरी तरह से शंका के योग्य है।

ततो मैन्दस्तु सम्प्रेक्ष्य नयापनयकोविदः।
वाक्यं वचनसम्पन्नो बभाषे हेतुमत्तरम्।। ३२।।
अनुजो नाम तस्यैष रावणस्य विभीषणः।
पृच्छ्यतां मधुरेणायं शनैर्नरपतीश्वर।। ३३।।
भावमस्य तु विज्ञाय तत्त्वतस्तं करिष्यसि।
यदि दुष्टो न दुष्टो वा बुद्धिपूर्वं नरर्षभ।। ३४।।
अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान् सचिवोत्तमः।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु।। ३५।।

तब नीति और अनीति के विद्वान और वाक्य विशारद मैन्द ने विचार कर अत्यधिक युक्ति से युक्त यह वचन कहा कि यह विभीषण उस रावण का छोटा भाई है, इसलिये हे राजाओं के स्वामी! इससे मधुर व्यवहार कर धीरे-धीरे सारी बातें पूछनी चाहिये। हे नरश्रेष्ठ! तब इसकी भावना को यथार्थ में समझ कर कि यह दुष्ट है या दुष्ट नहीं है, आप बुद्धिपूर्वक निश्चय करें। तब सब मंत्रियों में श्रेष्ठ और ज्ञान के संस्कार से सम्पन्न, हनुमान ने सुन्दर अर्थवान, मधुर और संक्षिप्त वचन कहे कि—

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम्।
अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।। ३६।।
न वादान्नापि संघर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः।
वक्ष्यामि वचनं राजन् यथार्थं राम गौरवात्।। ३७।।
अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सचिवैस्तव।
तत्र दोषं प्रपश्यामि क्रिया नह्युपपद्यते।। ३८।।
ऋते नियोगात् सामर्थ्यमवबोद्धुं न शक्यते।
सहसा विनियोगोऽपि दोषवान् प्रतिभाति मे।। ३९।।

हे प्रभो! यदि बृहस्पति भी बात कहे तो वह भी आप जैसे श्रेष्ठ मति वाले, समर्थ, बोलने वालों में उत्तम से श्रेष्ठ नहीं हो सकते। हे राजा राम! मैं कार्य के गौरव पर ध्यान रखते हुए जो यथार्थ है वही कहूँगा। वाद, विवाद के कारण, स्पर्धा के कारण, अपने को अधिक बताने की इच्छा के कारण या किसी अन्य कामना के कारण नहीं कहूँगा। अर्थ और अनर्थ के निर्णय के लिये आपके मंत्रियों ने जो कार्य बताये हैं, मुझे उनमें दोष दिखाई देता है, क्योंकि इस समय वे कार्य नहीं किये जा सकते। बिना किसी कार्य में लगाये विभीषण की सामर्थ्य को अर्थात उसकी वास्तविकता को जाना नहीं जा सकता। किन्तु उसे अचानक किसी कार्य में लगा देना भी मुझे दोष युक्त प्रतीत होता है।

चारप्रणिहितं युक्तं यदुक्तं सचिवैस्तव।
अर्थस्यासम्भवात् तत्र कारणं नोपपद्यते।। ४०।।
अदेशकाले सम्प्राप्त इत्ययं यद् विभीषणः।
विवक्षा तत्र मेऽस्तीयं तां निबोध यथामति।। ४१।।
एष देशश्च कालश्च भवतीह यथा तथा।
पुरुषात् पुरुषं प्राप्य तथा दोषगुणावपि।। ४२।।
दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमं च तथा त्वयि।
युक्तमागमनं ह्यत्र सदृशं तस्य बुद्धितः।। ४३।।

आपके मंत्रियों ने जो गुप्तचरों की नियुक्ति की बात कही है, पर उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये उसकी आवश्यकता नहीं है। जो यह कहा गया

है कि विभीषण के आने का यह समय और स्थान नहीं है, इसके विषय में मैं जो अपनी बुद्धि के अनुसार कहना चाहता हूँ, उसे आप समझिये। उसके यहाँ आने का यही उचित देश और काल है। यह इसलिये है कि वह एक पुरुष के पास से दूसरे पुरुष के पास आया है और आते हुए उसने दोनों के गुण दोषों की विवेचना कर ली है। रावण में दुष्टता देख कर तथा आपमें पराक्रम को देख कर उसका यहाँ आना उसकी बुद्धिमत्ता के अनुसार है।

अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन् पृच्छ्यतामिति।
यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति समीक्षिता।। ४४।।
पृच्छ्यमानो विशङ्केत सहसा बुद्धिमान् वचः।
तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्या पृष्टं सुखागतम्।। ४५।।
अशक्यं सहसा राजन् भावो बोद्धुं परस्य वै।
अन्तरेण स्वरैर्भिन्नैर्नैपुण्यं पश्यतां भृशम्।। ४६।।
अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति।
न चास्यदुष्टवागस्ति तस्मान्मे नास्ति संशयः।। ४७।।

हे राजन्! जो यह कहा गया है कि अनजान लोगों के द्वारा उससे पूछताछ की जाये, इसके विषय में मेरा अपना सोचा समझा विचार है, यदि किसी से तरह-तरह की बातें पूछीं जायेंगी, तो वह यदि बुद्धिमान होगा तो वह आशंकित हो जायेगा और जब उसे पता लगेगा कि मुझसे झूठे ही पूछा जा रहा है तो सुख प्राप्त करने के लिये और मित्र बनने के लिये आये हुए उसका हृदय कलुषित हो जायेगा। हे राजन्! दूसरे के हृदय के भाव को एक दम जान लेना असम्भव है। उससे वार्तालाप करते हुए बीच-बीच में उसके बोलने के तरीके से निश्चय किया जा सकता है। दुष्ट व्यक्ति, जिसके मन में शंका हो, कभी भी बिल्कुल शंका से रहित हो कर स्वस्थ अवस्था में सामने नहीं आ सकता है। इसकी वाणी में किसी प्रकार का दोष (आशंका का भाव, हिचकिचाहट) प्रकट नहीं हो रहा है, इसलिये मुझे इसके विषय में संशय नहीं है।

आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम्।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम्।। ४८।।
देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदां वर।
सफलं कुरुते क्षिप्रं प्रयोगेणाभिसंहितम्।। ४९।।
उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम्।
वालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम्।। ५०।।
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः।
एतावत् तु पुरस्कृत्य युज्यते तस्य संग्रहः।। ५१।।

अपनी मुखाकृति को कोई चाहे कितना ही छिपाये, पर उसके भीतर की भावना छिपती नहीं है। बाहर की आकृति लोगों के अन्दर के भाव को प्रकट कर ही देती है। हे कार्य को जानने वालों में श्रेष्ठ! देश काल के अनुसार किया गया कार्य प्रयोग के लिये निश्चित किये हुए मुख्य कार्य को शीघ्र ही सफल कर देता है। आपके पुरुषार्थ को तथा रावण के असत्य आचरण को देख कर, बाली को मारा हुआ तथा सुग्रीव को राज्य पर अभिषिक्त सुन कर यह राज्य की इच्छा से बुद्धि पूर्वक यह यहाँ आया है। इन सब बातों को सामने रख कर उसको अपनाना उचित है।

दसवाँ सर्ग

श्रीराम का शरणागत की रक्षा का महत्व और अपना महत्व बताकर विभीषण से मिलने की अनुमति देना।

अथ रामः प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः श्रुतवानात्मनि स्थितम्।। १।।
ममापि च विवक्षास्ति काचित् प्रति विभीषणम्।
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः।। २।।
मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्।। ३।।
सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः।। ४।।

अब दुर्धर्ष श्री राम ने पवनपुत्र हनुमान की अपने मन में बैठी जैसी बात सुनी तो उसे सुन कर प्रसन्न होकर उन्होंने उत्तर दिया कि मेरी भी विभीषण के विषय में कुछ कहने की इच्छा है। मैं चाहता हूँ कि आप सब मेरे कल्याण में विद्यमान हैं, उसे सुनें। मैं मित्रता की भावना से आये हुए व्यक्ति को कभी भी छोड़ना नहीं चाहता, यद्यपि इसमें कुछ दोष भी हो सकता है, पर इस दोष की सज्जनों ने निन्दा नहीं कि है। तब वानरश्रेष्ठ

सुग्रीव ने श्रीराम के इस वाक्य को दुहराया फिर विचार करके और अधिक सुन्दर बात कही कि–

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः।
ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत्॥ ५॥
को नाम स भवेत् तस्य यमेष न परित्यजेत्।
वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य तु॥ ६॥
ईषदुत्स्मयमानस्तु लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम्।
इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः॥ ७॥
अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः॥ ८॥

यह विभीषण दुष्ट हो या अदुष्ट इससे क्या? है तो यह राक्षस। जो अपने भाई को ऐसे संकट में पड़ा हुआ देख कर छोड़ सकता है तो उसका दूसरा कौन ऐसा हो सकता है, जिसे वह न छोड़ दे। वानरेश के इस वाक्य को सुन कर और सबकी तरफ देख कर कुछ मुस्कराते हुए सत्य पराक्रमी काकुत्स्थ राम पुण्य लक्षण लक्ष्मण से यह बोले कि बिना शास्त्रों के पढ़े और बिना बड़ों की सेवा किये ऐसी बात नहीं कहीं जा सकती जैसी इन वानरेश ने कही है।

अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद् यथात्र प्रतिभाति मा।
प्रत्यक्षं लौकिकं चापि वर्तते सर्वराजसु॥ ९।
अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेशयाश्च कीर्तिताः।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः॥ १०॥
यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च।
तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु॥ ११॥
न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः।
पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः॥ १२॥

पर यहाँ एक और अधिक सूक्ष्म बात की मुझे प्रतीति हो रही है, वह राजाओं में प्रत्यक्ष दिखाई भी देती है और लोगों में भी प्रसिद्ध है। वह यह कि राजा लोगों के दो शत्रु होते हैं, एक अपने जाति भाई और दूसरे पड़ौसी राजा। संकट आने पर ये प्रहार कर बैठते हैं। इसलिये यह उन्हें छोड़ कर यहाँ आया है। शत्रु के सैनिक को स्वीकार करने में जो तुमने दोष बताया है, इस विषय में जैसा शास्त्रों में लिखा हुआ है उसे सुनो, हम उसके जाति भाई नहीं हैं अतः हमसे उसे हानि की आशंका नहीं है। वह राक्षस राज्य का इच्छुक है। इन राक्षसों में बहुत से लोग विद्वान भी होते हैं, इसलिये विभीषण को अपना लेना चाहिये।

अव्यग्राश्च प्रहृष्टाश्च ते भविष्यन्ति संगताः।
प्रणादश्च महानेषोऽन्योन्यस्य भयमागतम्॥ १३॥
इति भेदं गमिष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः।
न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः॥ १४॥
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः।
एवमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवः सहलक्ष्मणः॥ १५॥
उत्थायेदं महाप्राज्ञः प्रणतो वाक्यमब्रवीत्।
रावणेन प्रणिहितं तमवेहि निशाचरम्॥ १६॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर।

यदि ये विभीषण आदि हमसे मिल जायें तो ये चिन्ता रहित और प्रसन्न हो जायेंगे। इनकी शरण में आने के लिये जो महती पुकार है, इससे पता लगता है कि राक्षसों को एक दूसरे से भय होने लगा है। हमारे पास विभीषण के आने से उनमें फूट पड़ जायेगी अर्थात् और भी राक्षस वहाँ से टूटकर आ सकते हैं। इसलिये विभीषण को ग्रहण कर लेना चाहिये। हे तात! सारे भाई भरत जैसे नहीं होते और सारे मेरे जैसे अपने पिता के पुत्र नहीं होते और सारे आप जैसे मित्र नहीं होते। राम के द्वारा ऐसा कहने पर महाप्राज्ञ सुग्रीव ने लक्ष्मण के साथ उठ कर राम को प्रणाम कर यह कहा कि हे उचित कार्यों को करने वालो में श्रेष्ठ राम! आप उस राक्षस को रावण के द्वारा भेजा हुआ समझिये, इसलिये मैं तो उसको कैद करना ठीक समझता हूँ।

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः॥ १७॥
प्रहर्तुं त्वयि विश्वस्ते विश्वस्ते मयि वानघ।
लक्ष्मणे वा महाबाहो स वध्यः सचिवैः सह॥ १८॥
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः।
एवमुक्त्वा रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो वाहिनीपतिः॥ १९॥
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत्।
स सुग्रीवस्य तद् वाक्यं रामः श्रुत्वा विमृश्य च॥ २०॥
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवम्।

हे महाबाहु! हे निष्पाप! यह क्रूर रावण का भाई कुटिल बुद्धि वाला और उसके द्वारा भेजा हुआ यहाँ आया है। इसका उद्देश्य हमारे इसकी तरफ से विश्वस्त हो जाने पर आपके ऊपर, मेरे ऊपर या लक्ष्मण के ऊपर प्रहार करना है। इसलिये यह विभीषण अपने मंत्रियों के साथ मार देने योग्य है। रघुकुल श्रेष्ठ, वाक्य विशारद श्रीराम से ऐसा कह कर सेनाध्यक्ष वाक्यवेत्ता सुग्रीव चुप हो गये। तब राम ने सुग्रीव के उन वचनों को सुन कर

और विचार कर उन्होंने उन वानर श्रेष्ठ से उससे भी सुन्दर बात कही कि–

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः।। २१।।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन।
ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा।। २२।।
शृणु गाथा पुरा गीता धर्मिष्ठा सत्यवादिना।
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।। २३।।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप।
स चेद् भयाद् वा मोहाद् वा कामाद् वापि न रक्षति।। २४।।
स्वया शक्त्या यथान्यायं तत् पापं लोकगर्हितम्।

चाहे यह राक्षस दुष्ट हो या अदुष्ट, क्या यह मेरा थोड़ा सा भी अहित कर सकता है? कण्व ऋषि के पुत्र परम ऋषि सत्यवादी कण्डु ने एक धर्म से युक्त बात कही है। उसे सुनो कि हे परंतप! हाथ जोड़, दीनता से भर कर यदि शत्रु भी शरण में आकर दया की याचना करे तो उसे नहीं मारना चाहिये। वह यदि भय के कारण, या मोह के कारण या कामना के कारण न्याय के अनुसार उस की अपनी शक्ति से रक्षा नहीं करता है तो उसके उस पाप कर्म की लोक में निन्दा होती हैं।

एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे।। २५।।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम्।
करिष्यामि यथार्थं तु कण्डोर्वचनमुत्तमम्।। २६।।
धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यं स्यात् तु फलोदये।
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।। २७।।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्।
रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः।। २८।।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देनाभिपूरितः।

इस प्रकार शरणागत की रक्षा न करने में महान दोष है। यह परलोक में उत्तम गति को न प्राप्त कराने वाला, अपयशकारी और बल तथा वीर्य का विनाशक है। इसलिये मैं तो कण्डुमुनि के धर्म से युक्त, यशकारी, और परिणाम में उत्तम गति को प्राप्त कराने वाले उत्तम वचन का पालन करूँगा। इसलिये हे वानर श्रेष्ठ सुग्रीव! चाहे यह विभीषण है, चाहे स्वयं रावण, मैंने इसे अभय दे दिया। तुम इसे ले आओ। श्रीराम के वचन सुन कर वानरेश सुग्रीव ने मित्रभाव से भर कर काकुत्स्थ राम से कहा कि–

किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे।। २९।।
यत् त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्त्ववान् सत्पथे स्थितः।
मम चाप्यन्तरात्मायं शुद्धं वेत्ति विभीषणम्।। ३०।।
अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः।
तस्मात् क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः।। ३१।।

हे संसार के राजाओं में श्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! आपने जो धर्म से युक्त बात कही है, उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आप शक्तिशाली हैं और सत्य के मार्ग पर स्थित हैं। मेरी अन्तरात्मा भी विभीषण को शुद्ध ही समझती है, क्योंकि अनुमान और भाव से उसकी सब तरफ से परीक्षा कर ली गयी है। इसलिये हे श्रीराम! अब शीघ्र ही महाप्राज्ञ विभीषण भी हमारे समान बन कर यहाँ रहें और हमारी मित्रता को प्राप्त करें।

ग्यारहवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीराम से मिलना। श्रीराम का रावण के वध की प्रतिज्ञा करके, विभीषण को लंका के राज्य पर अधिषिक्त करके, उनकी सम्मति से समुद्र तट पर अनुसन्धान के कार्य का निरीक्षण करने के लिये बैठना।

राघवेणाभये दत्ते संनतो रावणानुजः।
विभीषणो महाप्राज्ञो भूमिं समवलोकयत्।। १।।
खात् पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह।
स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः।। २।।
पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः।
अब्रवीच्च तदा वाक्यं रामं प्रति विभीषणः।। ३।।
धर्मयुक्तं च युक्तं च साम्प्रतं सम्प्रहर्षणम्।
अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः।। ४।।
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।

श्रीराम के द्वारा अभय दान देने पर रावण के छोटे भाई, महाप्राज्ञ और विनीत विभीषण ने भूमि की तरफ नीचे देखा और वह धर्मात्मा अपने चारों भक्त सेवक राक्षसों के साथ प्रसन्न हो कर भूमि पर उतर आया तथा श्रीराम के चरणों में गिर पड़ा। उस समय विभीषण ने

राम से यह धर्मयुक्त, युक्तियुक्त, समयोचित और हर्षित करने वाली बात कही कि मैं रावण का छोटा भाई हूँ। उसने मेरा अपमान किया है, इसलिये मैं आपकी जो सारे प्राणियों को शरण देते हैं, शरण में आया हूँ।

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च।। ५।।
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत्।। ६।।
वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव।
अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम्।। ७।।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे।
अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रजनबान्धवम्।। ८।।
अयोध्यां च प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे।

मैंने लंका को, मित्रों को और धन को छोड़ दिया है। अब मेरा राज्य, जीवन और सुख आपके ही हाथ में है। उसके इन वचनों को सुन कर श्रीराम ने अपनी वाणी से उन्हें सान्त्वना देकर तथा आँखों से मानो उसे पीते हुए यह कहा कि मैं रावण को प्रहस्त और पुत्रों सहित मार कर तुम्हें लंका का राजा बना दूँगा। यह मैं सच कहता हूँ तुम सुन लो। मैं अपने तीनों भाइयों की सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि युद्ध में रावण को पुत्र और बन्धुओं सहित मार कर ही मैं अयोध्या में प्रवेश करूँगा।

श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।। ९।।
शिरसाऽऽवन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेवं प्रचक्रमे।
राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे।। १०।।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रेक्ष्यामि च वाहिनीम्।
इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम्।। ११।।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय।
तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम्।। १२।।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद।

अनायास ही महान कर्म करने वाले उन श्रीराम का यह वचन सुन कर उन धर्मात्मा विभीषण ने उन्हें सिर झुका कर प्रणाम करके यह कहना आरम्भ किया कि मैं राक्षसों के वध में तथा लंका को जीतने में आपकी सहायता करूँगा और प्राणों का मोह छोड़ कर उनकी सेना में भी प्रवेश करूँगा। ऐसा कहते हुए विभीषण को अपने गले से लगा कर राम ने प्रसन्न हो कर लक्ष्मण से कहा कि समुद्र से पानी लाओ और उससे इन महाप्राज्ञ विभीषण का राक्षसों के राजा के पद पर अभिषेक करो। हे दूसरों को सम्मान देने वाले। मेरे प्रसन्न होने पर ऐसा अवश्य करो।

एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम्।। १३।।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात्।
तं प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः प्लवङ्गमाः।। १४।।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानं साधुसाध्विति चाब्रुवन्।
अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम्।। १५।।
कथंसागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम्।
सैन्यैः परिवृताः सर्वे वानराणां महौजसाम्।। १६।।

ऐसा कहे जाने पर राजा श्रीराम के आदेश से सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण ने वानर यूथपतियों के बीच में विभीषण को राक्षसों के राजा के पद पर अभिषिक्त कर दिया। राम के द्वारा यह तुरन्त किये गये अनुग्रह को देख कर वानर लोग हर्ष ध्वनि करने और महात्मा श्रीराम को साधुवाद देने लगे। इसके पश्चात हनुमान और सुग्रीव ने विभीषण को पूछा कि आकाश के निवास स्थान इस अपार सागर को हम सारे महातेजस्वी वानरों के साथ कैसे पार करें।

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच विभीषणः।
समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति।। १७।।
एवं विभीषणेनोक्तो राक्षसेन विपश्चिता।
आजगामाथ सुग्रीवो यत्र रामः सलक्ष्मणः।। १८।।
ततश्चाख्यातुमारेभे विभीषणवचः शुभम्।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सागरस्योपवेशनम्।। १९।।
प्रकृत्या धर्मशीलस्य रामस्यास्याप्यरोचत।
सलक्ष्मणं महातेजाः सुग्रीवं च हरीश्वरम्।। २०।।
सत्क्रियार्थं क्रियादक्षं स्मितपूर्वमभाषत।

ऐसा पूछे जाने पर धर्मात्मा विभीषण ने उत्तर दिया कि श्रीराम को इसके लिये समुद्र की शरण लेनी चाहिये अर्थात् समुद्र में वह स्थान ढूँढना चाहिये, जहाँ रास्ता बनाया जा सके। इसके लिये समुद्र स्वयं अपने विशेष लक्षणों से सूचित कर देगा। तब बुद्धिमान राक्षस विभीषण के ऐसा कहने पर सुग्रीव वहाँ आये जहाँ श्रीराम लक्ष्मण के साथ विद्यमान थे। तब बड़ी ग्रीवा वाले सुग्रीव ने उन्हें विभीषण की समुद्र के समीप रह कर खोज करने की उस सुन्दर बात को बताना आरम्भ किया। विभीषण की बात स्वभाव से धर्मशील श्रीराम को भी अच्छी लगी और उन महातेजस्वी ने लक्ष्मण सहित कार्य में दक्ष वानर सुग्रीव का सत्कार कर मुस्कारहट पूर्वक उनसे कहा कि—

विभीषणस्य मन्त्रोऽयं मम लक्ष्मण रोचते।। २१।।
सुग्रीवः पण्डितो नित्यं भवान् मन्त्रविचक्षणः।
उभाभ्यां सम्प्रधार्यार्थं रोचते यत् तदुच्यताम्।। २२।।

एवमुक्तौ ततो वीरावुभौ सुग्रीवलक्ष्मणौ।
समुदाचारसंयुक्तमिदं वचनमूचतुः।। २३।।
किमर्थं नौ नरव्याघ्र न रोचिष्यति राघव।
विभीषणेन यत् तूक्तमस्मिन् काले सुखावहम्।। २४।।

हे लक्ष्मण! विभीषण की यह सलाह मुझे अच्छी लगी है, किन्तु सुग्रीव राजनीति के पंडित हैं और तुम भी सलाह देने में चतुर हो। तुम दोनों उचित बात का निश्चय करके जो तुम्हें अच्छा लगता है, मुझे बताओ। ऐसा कहे जाने पर वह दोनों वीर सुग्रीव और लक्ष्मण आदर पूर्वक उनसे यह बोले कि हे नरश्रेष्ठ श्रीराम! इस समय विभीषण ने जो सुख को प्राप्त करने वाली बात कही है, वह हमें क्यों नहीं अच्छी लगेगी?

अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरेऽस्मिन् वरुणालये।
लङ्का नासादितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः।। २५।।
विभीषणस्य शूरस्य यथार्थं क्रियतां वचः।
अलं कालात्ययं कृत्वा सागरोऽयं नियुज्यताम्।
यथा सैन्येन गच्छाम पुरीं रावणपालिताम्।। २६।।
एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः।
संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः।। २७।।

इस भयानक आकाश के निवास स्थान सागर में बाँध बनाये बिना इन्द्र सहित देवताओं और दानवों के द्वारा भी लंका को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिये शूरवीर विभीषण ने जो कहा है, आप उसके अनुसार ही काम कीजिये। समय को न बिताया जाये और समुद्र मे मार्ग बनाने के लिये अनुसन्धान आरम्भ किया जाये जिससे हम सेना के साथ रावण के द्वारा पालित लंकापुरी में पहुँच सकें। इस प्रकार कहे जाने पर नदियों के स्वामी समुद्र के किनारे कुशा बिछा कर कार्य कराने के लिये श्रीराम ऐसे ही बैठ गये जैसे वेदी पर अग्नि प्रतिष्ठित होती है।

बारहवाँ सर्ग

शार्दूल के कहने से रावण का शुक को दूत बना कर सुग्रीव के पास सन्देश भेजना। वहाँ वानरों द्वारा उसकी दुर्दशा। श्रीराम द्वारा उसे छुड़वाना और सुग्रीव का रावण के लिये उतर देना।

ततो विनिष्टां ध्वजिनीं सुग्रीवेणाभिपालिताम्।
ददर्श राक्षसोऽभ्येत्य शार्दूलो नाम वीर्यवान्।। १।।
चारो राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः।
तां दृष्ट्वा सर्वतोऽव्यग्रां प्रतिगम्य स राक्षसः।। २।।
आविश्य लङ्कां वेगेन राजानमिदमब्रवीत्।
एष वै वानरर्क्षौघो लङ्कां समभिवर्तते।। ३।।
अगाधश्चाप्रमेयश्च द्वितीय इव सागरः।

तब सुग्रीव के द्वारा सुरक्षित उस सेना को जो शान्तभाव से ठहरी हुई थी, दुष्ट राक्षस रावण के गुप्तचर शार्दूल नाम के राक्षस ने सब तरफ से देख कर और फिर वापिस लौट कर लंका में जा कर राजा रावण से शीघ्रता से यह कहा कि यह वानरों और ऋक्षों का प्रवाह जो दूसरे समुद्र के समान अगाध और असीम है, लंका की तरफ बढ़ता चला आ रहा है।

पुत्रौ दशरथस्येमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। ४।।
एतौ सागरमासाद्य संनिविष्टौ महाद्युते।
बलं चाकाशमावृत्य सर्वतो दशयोजनम्।। ५।।
तत्त्वभूतं महाराज क्षिप्रं वेदितुमर्हसि।
तव दूता महाराज क्षिप्रमर्हन्ति वेदितुम्।। ६।।
उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदो वात्र प्रयुज्यताम्।

दशरथ के ये दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण भाई हे महाकान्ति वाले! सागर के किनारे आ कर विद्यमान हैं। उन्होंने अपनी सेना से सब तरफ से दस योजन खाली स्थान को घेरा हुआ हैं। हे महाराज! आप इस विषय में जल्दी ही वास्तविकता का पता लगाइये। इसके बाद साम, दाम, और भेद का जैसे उचित हो वैसे प्रयोग कीजिये।

शार्दूलस्य वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।। ७।।
उवाच सहसा व्यग्रः सम्प्रधार्यार्थमात्मनः।
शुकं साधु तदा रक्षो वाक्यमर्थविदां वरम्।। ८।।
सुग्रीवं ब्रूहि गत्वाऽऽशु राजानं वचनान्मम।
यथासंदेशमक्लीबं श्लक्ष्णया परया गिरा।। ९।।

शार्दूल की बात सुन कर राक्षसराज रावण सहसा व्यग्र हो कर और अपने कर्तव्य का निश्चय कर अर्थ को

जानने वालों में श्रेष्ठ शुक नाम के राक्षस से यह सुन्दर वाक्य बोला कि तुम राजा सुग्रीव के पास जल्दी जा कर उसे मेरी तरफ से निर्भयता के साथ मधुर और उत्तम वाणी में यह संदेश कहो कि–

त्वं वै महाराजकुलप्रसूतो
महाबलश्चर्क्षरजःसुतश्च ।
न कश्चनार्थस्तव नास्त्यनर्थ–
स्तथापि मे भ्रातृसमो हरीश।।१०।।

हे वानरेश! तुमने महाराजाओं के कुल में जन्म लिया है। तुम महाबलवान हो और ऋक्षराजा के पुत्र हो। मैंने तुम्हारी कोई भलाई नहीं की है तो कोई बुराई भी नहीं की है। फिर तुम मेरे भाई के समान हो।

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम्।।११।।
स तदा राक्षसेन्द्रेण संदिष्टो रजनीचरः।
स गत्वा दूरमध्वानमुपर्युपरि सागरम्।।१२।।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत्।
सर्वमुक्तं यथाऽऽदिष्टं रावणेन दुरात्मना।।१३।।

यदि मैंने धीमान राजपुत्र राम की पत्नी का हरण कर लिया तो हे सुग्रीव! तुम्हें इससे क्या? इसलिये आप किष्किन्धा को लौट जाओ। राक्षसराज के द्वारा इस प्रकार सन्देश देने पर वह राक्षस लम्बे मार्ग पर समुद्र के ऊपर–ऊपर जाकर वहाँ आकाश में ही ठहर गया और सुग्रीव को उसने दुरात्मा रावण के द्वारा आदेश दिया हुआ सारा सन्देश सुना दिया।

स एवमुक्तः प्लवगाधिपस्तदा
प्लवंगमानामृषभो महाबलः।
उवाच वाक्यं रजनीचरस्य
चारं शुकं शुद्धमदीनसत्त्वः।।१४।।

इस प्रकार रावण के द्वारा सन्देश देने पर उस महाबली, वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने बिना किसी दीनता के उस राक्षस के दूत शुक को यह निश्च्छल बात कही कि–

न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो
न चोपकर्तासि न मे प्रियोऽसि।
अरिश्च रामस्य सहानुबन्ध–
स्ततोऽसि वालीव वधार्ह वध्यः।।१५।।

हे वध के योग्य रावण! न तो तुम मेरे मित्र हो, न मेरे लिये दया के पात्र हो, तुमने मेरा कोई उपकार भी नहीं किया है, न तुम मेरे प्रिय हो, इसलिये क्योंकि तुम राम के शत्रु हो, इसलिये तुम मेरे लिये बाली के समान परिवार सहित वध करने योग्य हो।

निहन्म्यहं त्वां ससुतं सबन्धुं
सज्ञातिवर्गं रजनीचरेश।
लङ्कां च सर्वां महता बलेन
सर्वैः करिष्यामि समेत्य भस्म।।१६।।

मैं तुम्हें हे राक्षसों के राजा! पुत्रों, बान्धवों, जाति भाइयों सहित मार दूँगा और सारी लंका को अपनी विशाल सेना के साथ आकर भस्म कर दूँगा।

तस्य ते त्रिषु लोकेषु न पिशाचं न राक्षसम्।
त्रातारं नानुपश्यामि न गन्धर्वं न चासुरम्।।१७।।
अवधीस्त्वं जरावृद्धं गृध्रराजं जटायुषम्।
किं नु ते रामसांनिध्ये सकाशे लक्ष्मणस्य च।।१८।।
हृता सीता विशालाक्षी यां त्वं गृह्य न बुध्यसे।
न बुध्यसे रघुश्रेष्ठं यस्ते प्राणान् हरिष्यति।।१९।।

मैं तीनों लोकों में किसी पिशाच, राक्षस, गन्धर्व और असुर को नहीं देखता जो तुझे बचा सके। तुमने अत्यन्त बूढ़े गृध्रराज जटायु को मारा। तुमने राम के सामने या लक्ष्मण के सामने विशाल नेत्रों वाली सीता का अपहरण क्यों नहीं किया? उसका अपहरण कर तुम अपने ऊपर आई मुसीबत को क्यों नहीं समझते हो? तुम यह नहीं समझ रहे कि रघुकुल श्रेष्ठ राम तुम्हारे प्राणों का हरण करेंगे।

ततोऽब्रवीद् वालिसुतोऽप्यङ्गदो हरिसत्तमः।
नायं दूतो महाराज चारकः प्रतिभाति मे।।२०।।
तुलितं हि बलं सर्वमनेन तव तिष्ठता।
गृह्यतां मागमल्लङ्कामेतद्धि मम रोचते।।२१।।
ततो राज्ञा समादिष्टाः समुत्पत्य वलीमुखाः।
जगृहुश्च बबन्धुश्च विलपन्तमनाथवत्।।२२।।
नाघातयत् तदा रामः श्रुत्वा तत्परिदेवितम्।
वानरानब्रवीद् रामो मुच्यतां दूत आगतः।।२३।।

तब वानरश्रेष्ठ बालीसुत अंगद ने भी कहा कि हे महाराज! मुझे यह दूत नहीं, बल्कि गुप्तचर प्रतीत होता है। इसने यहाँ खड़े–खड़े आपकी सारी सेना की नाप–तोल कर ली है। इसलिये इसे पकड़ लो। यह लंका में न जाने पाये। मुझे यही अच्छा लगता है। तब राजा सुग्रीव के आदेश से वानरों ने उड़ कर उसे पकड़ लिया और बाँध लिया। उस समय वह अनाथ की तरह विलाप कर रहा था। तब राम ने उसके विलाप को सुन कर उसे मरवाया नहीं और वानारों से कहा कि इसे छोड़ दो, यह दूत ही बन कर आया था।

तेरहवाँ सर्ग

नल के द्वारा सागर पर बाँध का निर्माण और वानर सेना द्वारा सागर के उस पार पहुँच कर पड़ाव डालना।

स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्म वत्सलः।
उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम्।। १।।
अब्रवीत् वानर श्रेष्ठो समुत्थाय नलस्ततः।
अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे मकरालये।। २।।
औरसस्तस्य पुत्रोऽहं सदृशो विश्वकर्मणा।
समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये।। ३।।
तस्माददैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः।

नीति को जानने वाले और धर्म प्रेमी राम वहाँ समुद्र के किनारे तीन रात रुक लगातार बैठे रहे और समुद्र की सेवा करते रहे अर्थात् समुद्र में बाँध बनाने योग्य स्थानों की खोज कराते रहे। उसके पश्चात् अर्थात् जब वह कार्य पूरा हो गया तब वानरश्रेष्ठ नल ने उठ कर कहा कि अब इस विस्तृत सागर पर मैं बाँध बनवा दूँगा। मैं विश्वकर्मा का औरस पुत्र हूँ और निर्माण विद्या में उसके ही समान हूँ। मैं सागर पर बाँध बनवाने में समर्थ हूँ। इसलिये श्रेष्ठ वानर लोग आज ही बाँध बनाना आरम्भ कर दें।

ततो विसृष्टा रामेण सर्वतो हरिपुङ्गवाः।। ४।।
उत्पेततुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः।
हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः।। ५।।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च।
प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धतम्।। ६।।
समुत्ससर्प चाकाशमवासर्पत् ततः पुनः।
समुद्रं क्षोभयामासुर्निपतन्तः समन्ततः।। ७।।
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम्।

तब राम के भेजे हुए लाखों श्रेष्ठ वानर उत्साह के साथ उछलते हुए सब तरफ बड़े-बड़े वनों में घुस गये। वे महा बलशाली और विशाल शरीर वाले वानर हाथी के बराबर बड़ी-बड़ी शिलाओं को यन्त्रों के द्वारा उखाड़ कर ले जाते थे। उन शिलाओं को फेंकने से समुद्र का उथल-पुथल होता हुआ जल सहसा आकाश की तरफ उछलता था और फिर नीचे गिर जाता था। उन वानरों ने सब तरफ से पत्थर ला कर और फेंक कर समुद्र में हलचल मचा दी थी। दूसरे वानरों ने सौ योजन लम्बे सूत को पकड़ा हुआ था।

नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः।। ८।।
स तदा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः।
दण्डानन्ये प्रगृह्णन्ति विचिन्वन्ति तथापरे।। ९।।
वानरैः शतशस्तत्र रामस्याज्ञापुरःसरैः।
पाषाणांश्च गिरिप्रख्यान् गिरीणां शिखराणि च।। १०।।
दृश्यन्ते परिधावन्तो गृह्य दानवसंनिभाः।
शिलानां क्षिप्यमाणानां शैलानां तत्र पात्यताम्।। ११।।
बभूव तुमुलः शब्दस्तदा तस्मिन् महोदधौ।

नल सागर के बीच में विशाल बाँध का निर्माण करा रहे थे। भयानक कर्म करने वाले वानरों की सहायता से वह बाँध बनाया जा रहा था। राम की आज्ञा का पालन करने वाले सैकड़ों वानर नापने वाले डण्डों को पकड़े हुए थे और दूसरे सैकड़ों दूसरे सामान जुटा रहे थे। पर्वत के समान विशाल पाषाणों को और पर्वतों के शिखरों को उखाड़ कर वे दानवों के समान वानर सब तरफ दौड़ते हुए दिखाई दे रहे थे। शिलाओं के और शैलों के फेंके जाते हुए और गिराये जाते हुए वहाँ समुद्र में जोर की आवाज हो रही थी।

कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश।। १२।।
प्रहृष्टैर्गजसंकाशैस्त्वरमाणैः प्लवङ्गमैः।
द्वितीयेन तथैवाह्ना याजनानि तु विंशतिः।। १३।।
कृतानि प्लवगैस्तूर्णं भीमकायैर्महाबलैः।
अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि तु सागरे।। १४।।
त्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेव च।
चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरथापि वा।। १५।।
योजनानि महावेगैः कृतानि त्वरितैस्ततः।

हाथी के समान विशाल उत्साहित वानरों ने शीघ्रता करते हुए पहले ही दिन चौदह योजन लम्बा बाँध बना दिया। उन भीमाकार महा बलशाली वानरों ने दूसरे दिन और अधिक शीघ्रता कर बीस योजन लम्बा बाँध बना दिया। उन विशाल वानरों ने तीसरे दिन और अधिक शीघ्रता कर इक्कीस योजन लम्बा बाँध बना दिया। चौथे दिन उन महावेगशाली वानरों ने शीघ्रता के साथ बाईस योजन लम्बा बाँध बना दिया।

पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः।। १६।।
योजनानि त्रयोविंशत् सुवेलमधिकृत्य वै।
स वानरवरः श्रीमान् विश्वकर्मात्मजो बली।। १७।।
बबन्ध सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा।

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः।। १८।।
बमचिन्त्यमसह्यं च ह्यद्भुतं लोमहर्षणम्।
विशालः सुकृतः श्रीमान् सुभूमिः सुसमाहितः।। १९।।
अशोभत महान् सेतुः सीमन्त इव सागरे।

पाँचवें दिन उन तेजी से काम करने वाले वानरों ने तेईस योजन लम्बा बाँध लंका के सुवेल पर्वत तक बाँध दिया। इस प्रकार अपने पिता के समान निपुण विश्वकर्मापुत्र, वानरश्रेष्ठ, बलवान श्रीमान नल ने सागर में बाँध का निर्माण कर दिया। वानर लोग उछलते हुए, गर्जते हुए और उड़ते हुए उस अचिन्त्य, असह्य, अद्भुत और रोमांचकारी बाँध को देख रहे थे। वह विशाल बाँध अच्छी तरह से निर्मित, शोभा वाला, समतल और सुसम्बद्ध था। वह महान बाँध समुद्र के बीच में ऐसे सुशोभित हो रहा था जैसे बालों के बीच में माँग की लकीर।

ततः पारे समुद्रस्य गदापाणिर्विभीषणः।। २०।।
परेषामभिघातार्थमतिष्ठत् सचिवैः सह।
सुग्रीवस्तु ततः प्राह रामं सत्यपराक्रमम्।। २१।।
हनूमन्तं त्वमारोह अङ्गदं त्वथ लक्ष्मणः।
अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान् रामः सलक्ष्मणः।। २२।।
जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः।

तब विभीषण गदा हाथ में ले कर अपने मंत्रियों के साथ शत्रुओं को रोकने के लिये समुद्र के परली पार खड़े हो गये। तब सुग्रीव ने सत्य पराक्रमी राम से कहा कि आप हनुमान जी के और लक्ष्मण अंगद के कंधे पर आरूढ़ हो जायें। तब सेना के आगे वे श्रीमान धनुर्धर राम और लक्ष्मण सुग्रीव के साथ चले।

अन्ये मध्येन गच्छन्ति पार्श्वतोऽन्ये प्लवंगमाः।। २३।।
सलिलं प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये प्रपेदिरे।
केचिद् वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः।। २४।।
घोषेण महता घोषं सागरस्य समुच्छ्रितम्।
भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी।। २५।।
वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना।
तीरे निविविशे राज्ञो बहुमूलफलोदके।। २६।।

दूसरे वानर सेना के बीच में तथा और दूसरे दायें बायें हो कर चलने लगे। कोई पानी में कूद पड़ते तो कोई बाँध के रास्ते से चल रहे थे। कुछ आकाश मार्ग से पक्षियों के समान उड़ रहे थे। उस सागर के पार जाती हुई भयानक वानर सेना ने अपनी ऊँची ध्वनि से समुद्र की उठती हुई ध्वनि को भी दबा दिया था। उस नल सेतु के द्वारा समुद्र के पार पहुँची हुई वानरों की सेना को राजा सुग्रीव ने जहाँ फल मूल और पानी की बहुतायत थी, वहाँ सागर के किनारे ही ठहरा दिया।

चौदहवाँ सर्ग

रावण का शुक और सारण को गुप्त रूप से वानर सेना में भेजना, विभीषण द्वारा उन्हें पकड़वाना पर राम द्वारा छुड़वाना। उनका राम का सन्देश लेकर वापिस लौटना और रावण को समझाना।

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे।
अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ।। १।।
समग्रं सागरे तीर्णं दुस्तरंवानरं बलम्।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम्।। २।।
सागरे सेतुबन्धं तं न श्रद्दध्यां कथंचन।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम्।। ३।।

जब दशरथ पुत्र श्रीराम सेना के साथ समुद्र के पार पहुँच गये, तब श्रीमान रावण ने अपने दो मंत्रियों शुक और सारण से कहा कि जिसे पार करना बहुत कठिन था, उस समुद्र को भी वानर सेना ने पार कर लिया। राम के द्वारा समुद्र पर बाँध बनवाया जाना एक अभूतपूर्व कार्य है। मुझे विश्वास नहीं होता कि समुद्र पर भी बाँध बन गया होगा। अब हमें वानर सेना की संख्या का अवश्य ही पता लगाना चाहिये।

भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ।
परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवंगमाः।। ४।।
मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च सम्मताः।
ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवंगमाः।। ५।।
निवेशं च यथा तेषां वानराणां महत्मनाम्।
रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च।। ६।।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः।
कश्च सेनापतिस्तेषां वानराणां महात्मनाम।। ७।।
तच्च ज्ञात्वा यथातत्त्वं शीघ्रमागन्तुमर्हथः।

आप दोनों छिप कर वानर सेना में प्रवेश कर उसका कितना परिमाण है, कितनी शक्ति है? मुख्य-मुख्य वानर कौन हैं? कौन मंत्री राम के और कौन सुग्रीव के समर्थक हैं? सेना के आगे कौन-कौन से शूरवीर वानर चलने वाले हैं? उन महान् संख्या वाले वानरों छावनी किस प्रकार की है? राम क्या करना चाहते हैं। उनका बल और उनके शस्त्रास्त्र तथा लक्ष्मण के भी इसी प्रकार, यह सब जानकारी ठीक-ठीक लो। उन विशाल संख्या वाले वानरों का सेनापति कौन है? यह भी यथार्थ में जान कर शीघ्र ही वापिस जाओ।

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।। ८।।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम्।
तत् स्थितं पर्वताग्रेषु निर्झरेषु गुहासु च।। ९।।
समुद्रस्य च तीरेषु वनेषूपवनेषु च।
निविष्टं निविशच्चैव भीमनादं महाबलम्।। १०।।
तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ।
तौ ददर्श महातेजाः प्रतिच्छन्नौ विभीषणः।। ११।।
आचचक्षे स रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ।

ऐसा आदेश मिलने पर वे दोनों राक्षस वानरों का रूप धारण कर वानर सेना में प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने देखा कि वानर सेना पर्वत के शिखरों, झरनों, गुफाओं, समुद्र के किनारों, वनों और बगीचों में सब जगह फैली हुई है। भयानक गर्जना करने वाली उस वानर सेना का कुछ भाग अपना पड़ाव डाल चुका था और कुछ डाल रहा था। उन राक्षसों ने उस सेना रूपी विशाल अक्षोभ्य सागर को देखा। तब महा तेजस्वी विभीषण ने छिपे हुए राक्षसों को देखा और उन्हें पकड़ कर श्रीराम से कहा कि-

तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ।। १२।।
लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरंजय।
तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तथा।। १३।।
कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः।
आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ।। १४।।
परिज्ञातुं बलं सर्वं तदिदं रघुनन्दन।
तयोस्तद् वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः।। १५।।
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सर्वभूतहिते रतः।

हे शत्रुओं के नगर को जीतने वाले! ये उस राक्षसराज के शुक और सारण नाम के मन्त्री हैं, जो गुप्तचर के वेष में लंका से आये हैं। तब वे दोनों राम को देखकर जीवन के विषय में निराश तथा दुखी हो कर हाथ जोड़ कर डरते हुए यह बोले कि हे सौम्य! हम दोनों यहाँ, रावण के भेजे हुए आये हैं। हे रघुनन्दन! हम आपकी सेना के बारे में जानकारी लेना चाहते थे। उनके ये वचन सुन कर सारे प्राणियों की भलाई में लगे हुए दशरथ पुत्र राम हँसते हुए यह बोले कि-

यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः।। १६।।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम्।
अथ किंचिददृष्टं वा भूयस्तद् द्रष्टुमर्हथः।। १७।।
विभीषणो वा कार्त्स्न्येन पुनः संदर्शयिष्यति।
न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति।। १८।।
न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हथः।
प्रच्छन्नौ च विमुञ्चेमौ चारौ रात्रिंचरावुभौ।। १९।।
शत्रुपक्षस्य सततं विभीषण विकर्षिणौ।

यदि तुमने अपनी इच्छा के अनुसार हमारी सेना का और हमारा ध्यानपूर्वक निरीक्षण कर लिया है और जैसा करने का तुम्हें आदेश प्राप्त हुआ है, वैसा कर लिया है तो तुम वापिस चले जाओ। यदि कुछ और देखना है तो फिर देख लो। विभीषण तुम्हें पूरी तरह से दिखा देंगे। तुम पकड़े जाने पर अपने जीवन के प्रति भय मत करो। तुम शस्त्र रहित हो और दूत हो इसलिये वध के योग्य नहीं हो। हे विभीषण! ये दोनों राक्षस शत्रुपक्ष के गुप्तचर हैं, ये फूट डालना चाहते थे। इन्हें छोड़ दो।

प्रविश्य महतीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः।। २०।।
वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम।
यद् बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि।। २१।।
तद् दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः।
श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम्।। २२।।
रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया।

तुम इस विशाल लंका में प्रवेश कर कुबेर के छोटे भाई राक्षसों के राजा से मेरा सन्देश कह देना कि तुमने जिस शक्ति के सहारे मेरी सीता का अपहरण किया था, उस शक्ति को अब तुम अपनी सेना और बान्धवों के साथ यथेच्छ दिखाओ। तुम कल सवेरे अपनी परकोटे और दरवाजों सहित लंका नगरी को और राक्षसों की सेना को मेरे बाणों से ध्वस्त हुआ देखना।

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।। २३।।
आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम्।
विभीषणगृहीतौ तु वधार्थं राक्षसेश्वर।
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा।। २४।।

इस प्रकार सन्देश दिये हुए वे दोनों राक्षस शुक और सारण वापस लंका में आये और राक्षसों के राजा रावण से बोले कि हे राक्षसेश्वर! हमें वध के लिये विभीषण ने पकड़ लिया था, किन्तु अमित तेजस्वी धर्मात्मा राम ने देख कर हमें छुड़वा दिया।

प्रहृष्टयोधा ध्वजिनी महात्मनां
वनौकसां सम्प्रति योद्धुमिच्छताम्।
अलं विरोधेन शमो विधीयतां
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली।। २५।।

उन महात्मा वानरों की, जो इस समय युद्ध के लिये इच्छुक हैं, सेना में सारे योद्धा प्रसन्न चित्त हैं। इसलिये विरोध मत कीजिये, सन्धि कर लीजिये और राम को सीता लौटा दीजिये।

पन्द्रहवाँ सर्ग

सारण का रावण को वानर यूथपतियों का परिचय देना।

तद्वचः सत्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम्।
निशम्य रावणो राजा प्रत्यभाषत सारणम्।। १।।
त्वं तु सौम्य परित्रस्तो हरिभिः पीडितो भृशम्।
प्रतिप्रदानमद्यैव सीतायाः साधु मन्यसे।। २।।
को हि नाम सपत्नो मां समरे जेतुमर्हति।
इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः।। ३।।
आरुरोह ततः श्रीमान् प्रासादं हिमपाण्डुरम्।
बहुतालसमुत्सेधं रावणोऽथ दिदृक्षया।। ४।।

सारण के द्वारा कहे गये और निर्भीक वचनों को सुन कर रावण ने उसे उत्तर दिया कि हे सौम्य! ऐसा लगता है कि तुम्हें वानरों ने बहुत तंग किया है इसलिये तुम आज ही सीता को वापिस लौटा देना अच्छा समझने लगे हो। भला मेरा कौन शत्रु मुझे युद्ध में जीत सकता है। ऐसे कठोर वचन कह कर वह राक्षसों का राजा श्रीमान रावण देखने की इच्छा से अपने अनेक मंजिलों वाले और बर्फ के समान सफेद महल की छत पर चढ़ गया।

ताभ्यां चारभ्यां सहितो रावणः क्रोधमूर्च्छितः।
ददर्श पृथिवीदेशं सुसम्पूर्णं प्लवंगमैः।। ५।।
तदपारमसह्यं च वानराणां महाबलम्।
आलोक्य रावणो राजा परिपप्रच्छ सारणम्।। ६।।
एषां के वानरा मुख्याः के शूराः के महाबलाः।
के पूर्वमभिवर्तन्ते महोत्साहाः समन्ततः।। ७।।
कषां शृणोति सुग्रीवः के वा यूथपयूथपाः।
सारणाचक्ष्व मे सर्वं किंप्रभावाः प्लवंगमाः।। ८।।

क्रोध से मूर्च्छित हुए रावण ने उन दोनों सेवकों के साथ देखा कि सारी भूमि वानरों से भरी हुई है। वानरों की उस अपार और असह्य महान सेना को देख कर रावण ने सारण से पूछा कि इनमें कौन से वानर प्रमुख हैं? कौन शूरवीर हैं? कौन महाबलशाली हैं? कौन सब तरफ से महान उत्साह से भरे हुए सेना के आगे रहते हैं? सुग्रीव इनमें से किसकी बात अधिक सुनता है? कौन यूथपतियों के भी यूथपति हैं? हे सारण इन वानरों का प्रभाव कैसा है? ये सारी बातें मुझे कहो।

नोटः– अपने महल की छत से रावण के द्वारा जो वानर सेना का निरीक्षण किया जा रहा है, वह अवश्य ही किसी दुरबीन या उस जैसे ही किसी यन्त्र के द्वारा किया जा रहा होगा।

सारणो राक्षसेन्द्रस्य वचनं परिपृच्छतः।
आबभाषेऽथ मुख्यज्ञो मुख्यांस्तत्र वनौकसः।। ९।।
एष योऽभिमुखो लङ्कां नर्दस्तिष्ठति वानरः।
यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः।। १०।।
सर्वशाखामृगेन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
बलाग्रे तिष्ठते वीरो नीलो नामैष यूथपः।। ११।।

तब राक्षसराज के ऐसा पूछने पर प्रमुख वानरों का जानकार सारण उसे प्रमुख वानरों का परिचय देने लगा। उसने कहा कि देखो जो हजारों यूथपों से घिरा हुआ, लंका की तरफ मुख कर गर्जता हुआ वानर खड़ा है, वह सारे वानरों का राजा महात्मा सुग्रीव की सेना के आगे खड़ा होता है। इसका नाम नील है।

बाहू प्रगृह्य यः पद्भ्यां महीं गच्छति वीर्यवान्।
लङ्कामभिमुखः कोपादभीक्ष्णं च विजृम्भते।। १२।।
गिरिशृङ्गप्रतीकाशः पद्मकिंजल्कसंनिभः।
एष वानरराजेन सुग्रीवेणाभिषेचितः।
युवराजोऽङ्गदो नाम त्वामाह्वयति संयुगे।
वालिनः सदृशः पुत्रः सुग्रीवस्य सदा प्रियः।। १४।।
एतस्य सा मतिः सर्वा यद् दृष्टा जनकात्मजा।
हनूमता वेगवता राघवस्य हितैषिणा।। १५।।

जो तेजस्वी वानर अपनी दोनों भुजाओं को पकड़ कर पैदल पृथ्वी पर चल रहा है, जो लंका की तरफ मुख करके क्रोध से बार-बार जँभाई ले रहा है, जो पर्वत के शिखर के समान ऊँचा और कमल केसर के समान रंग वाला है, यह वानरराज सुग्रीव के द्वारा युवराज के पद पर अभिषिक्त किया हुआ, अंगद नाम का आपको युद्ध के लिये ललकार रहा है। यह बाली का पुत्र पराक्रम में उसी के समान है और सुग्रीव को सदा ही प्यारा है। श्रीराम के हितैषी वेगवान हनुमान ने जो सीता का पता लगाया, उसमे सारी इसकी बुद्धि ही काम कर रही थी।

अनुवालिसुतस्यापि बलेन महता वृतः।
वीरस्तिष्ठति संग्रामे सेतुहेतुरयं नलः।। १६।।
ये तु विष्टम्य गात्राणि क्ष्वेडयन्ति नदन्ति च।
उत्थाय च विजृम्भन्ते क्रोधेन हरिपुङ्गवाः।। १७।।
एते दुष्प्रसहा घोराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः।
य एनमनुगच्छन्ति वीराश्चन्दनवासिनः।। १८।।

बाली के पुत्र के पीछे जो महान बल से युक्त वीर संग्राम भूमि में खड़ा है, यह सेतु के निर्माण का कारण नल है। ये जो वानर श्रेष्ठ अपने शरीर के अंगों को स्थिर करके सिंह नाद कर रहे और गर्ज रहे हैं, जो उठ-उठ कर क्रोध से अंगड़ाई ले रहे हैं, अत्यन्त असह्य, प्रचण्ड भयानक तथा घोर पराक्रम वाले और चन्दन वन में निवास करने वाले वानर इस नल का अनुसरण करते हैं।

श्वेतो रजतसंकाशश्चपलो भीमविक्रमः।
बुद्धिमान् वानरः शूरस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।। १९।।
तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानरः।
विभजन् वानरीं सेनामनीकानि प्रहर्षयन्।। २०।।
यः पुरा गोमतीतीरे रम्यं पर्येति पर्वतम्।
नाम्ना संरोचनो नाम नानानगयुतो गिरिः।। २१।।
तत्र राज्यं प्रशास्त्येष कुमुदो नाम यूथपः।

यह चाँदी के समान चमकने वाला, चंचल, भयानक विक्रम वाला, तीनों लोकों में प्रसिद्ध, बुद्धिमान, शूरश्वेत नाम का वानर है यह सेना को विभिन्न भागों में बांटता हुआ और हर्षित करता हुआ तेजी से सुग्रीव के पास आता है और जाता है। गोमती नदी के किनारे अनेक वृक्षों से युक्त संरोचना नाम का जो पर्वत है, जो पहले इसी रमणीय पर्वत के चारों ओर घूमा करता था और वहीं वानरों के राज्य का संचालन करता था, वह यह कुमुद नाम का यूथपति है।

योऽसौ शतसहस्राणि सहर्षं परिकर्षति।। २२।।
अदीनो वानरश्चण्डः संग्राममभिकाङ्क्षति।
एषोऽप्याशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम्।। २३।।
यस्त्वेषः प्रेक्षते लङ्कां दिधक्षन्निव चक्षुषा।
विन्ध्यं कृष्णगिरिं सह्यं पर्वतं च सुदर्शनम्।। २४।।
राजन् सततमध्यास्ते स रम्भो नाम यूथपः।
यं यान्तं वानरा घोराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः।। २५।।
परिवार्यानुगच्छन्ति लङ्कां मर्दितुमोजसा।

जो यह हर्ष के साथ एक लाख सैनिकों को अपने साथ खींचे चला आ रहा है, यह दीनता से रहित और संग्राम को चाहने वाला चण्ड नाम का वानर है। यह भी अपनी सेना के द्वारा लंका का मर्दन करने की आशा करता है। हे राजन्! जो यह लंका की तरफ ऐसे देख रहा है, जैसे उसे जलाकर भस्म कर देगा, यह रम्भ नाम का यूथपति, सदा विन्ध्य, कृष्णागिरि, सह्य और सुदर्शन पर्वत पर रहा करता है। जब यह युद्ध के लिये चलता है, तो इसके पीछे प्रचण्ड, भयानक और अत्यन्त पराक्रमी वानर इसे घेर कर चलते हैं वे सभी अपने पराक्रम से लंका को मसलने के लिये आये हैं।

न तु संविजते मृत्योर्न च सेनां प्रधावति।। २६।।
प्रकम्पते च रोषेण तिर्यक् च पुनरीक्षते।
महाजवो वीतभयो रम्यं साल्वेयपर्वतम्।। २७।।
राजन् सततमध्यास्ते शरभो नाम यूथपः।
एतस्य बलिनः सर्वे विहारा नाम यूथपाः।। २८।।

जो मृत्यु से नहीं डरता और न सेना की परवाह करता है, जो क्रोध के कारण काँप रहा है और टेढ़ा देखता है, जो बहुत वेगशाली और भय से रहित है, हे राजन! यह शरभ नाम है। इसके पास जो यूथपति हैं, वे सब बड़े बलवान हैं और उन्हें विहार नाम से पुकारा जाता है।

भेरीणामिव संनादो यस्यैष श्रूयते महान्।
घोषः शाखामृगेन्द्राणां संग्राममभिकाङ्क्षताम्।। २९।।
एष पर्वतमध्यास्ते पारियात्रमनुत्तमम्।
युद्धे दुष्प्रसहो नित्यं पनसो नाम यूथपः।। ३०।।
यस्तु भीमांप्रवल्गन्तीं चमूं तिष्ठति शोभयन्।
स्थितां तीरे समुद्रस्य द्वितीय इव सागरः।। ३१।।
एष दर्दुरसंकाशो विनतो नाम यूथपः।
पिबंश्चरति यो वेणां नदीनामुत्तमां नदीम्।। ३२।।

जिसकी गर्जना युद्ध को चाहने वाले वानरों के बीच में ऐसी गूँज रही है, जैसे बहुत सी भेरियों का नाद हो रहा हो, यह पनस नाम का यूथपति पारियात्र नाम के श्रेष्ठ पर्वत पर रहता है। इसका तेज सदा युद्ध में अत्यन्त दुस्सह होता है। जो समुद्र के किनारे स्थित इस भयानक

और उछलती कूदती हुई सेना को सुशोभित करता हुआ दूसरे समुद्र के समान विद्यमान है। यह दर्दुर पर्वत के समान विनत नाम का यूथपति है जो नदियों में उत्तम नदी 'वेणानदी' का पानी पीता हुआ विचरता है।

त्वामाह्वयति युद्धाय क्रोधनो नाम वानरः।
विक्रान्ता बलवन्तश्च यथा यूथानि भागशः।। ३३।।
यस्तु गैरिकवर्णाभं वपुः पुष्यति वानरः।
अवमत्य सदा सर्वान् वानरान् बलदर्पितः।
गवयो नाम तेजस्वी त्वां क्रोधादभिवर्तते।। ३४।।

यह क्रोधन नाम का वानर आपको युद्ध के लिये ललकार रहा है, जिसके पास बल और विक्रम वाले अनेक यूथ विद्यमान हैं। यह वानर जो गेरुए रंग के शरीर को धारण कर रहा है, जो अपने बल के दर्प से सारे वानरों को कुछ भी नहीं समझता, वह गवय नाम का वानर आपको क्रोध से तिरस्कृत कर रहा है।

सोलहवाँ सर्ग

सारण का रावण को वानर यूथपतियों का परिचय देना।

यं पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति शतशोऽथ सहस्रशः।
यूथपा हरिराजस्य हरो नामैष वानरः।। १।।
नीलानिव महामेघांस्तिष्ठतो यांस्तु पश्यसि।
असिताञ्जनसंकाशान् युद्धे सत्यपराक्रमान्।। २।।
असंख्येयाननिर्देशान् परं पारमिवोदधेः।
पर्वतेषु च ये केचिद् विषयेषु नदीषु च।। ३।।
एते त्वामभिवर्तन्ते राजनृक्षाः सुदारुणाः।
एषां मध्ये स्थितो राजन् भीमाक्षो भीमदर्शनः।। ४।।
ऋक्षवन्तं गिरिश्रेष्ठमध्यास्ते नर्मदां पिबन्।
सर्वर्क्षाणामधिपतिर्धूम्रो नामैष यूथपः।। ५।।

यह हर नाम का वानर है, जिसके पीछे वानरराज के सैकड़ों हजारों यूथपति चलते हैं। उधर काले विशाल बादलों की घटा के समान जिनकी भीड़ आप देख रहे हैं, जो अंजन के समान काले हैं और युद्ध में सत्य पराक्रमी हैं, जो असंख्य होने के कारण संख्या में बताये नहीं जा सकते और समुद्र के दूसरे किनारे के समान विस्तृत हैं, ये ऋक्ष जाति के अत्यन्त भयानक व्यक्ति तुम्हारे लिये विद्यमान हैं। इनके बीच में खड़ा हुआ भयानक आँखों और भयानक रूप वाला यह सारी ऋक्ष जाति का स्वामी धूम्र नाम का यूथपति है जो पर्वत श्रेष्ठ ऋक्षवान पर नर्मदा का पानी पीता हुआ रहता है।

यवीयानस्य तु भ्राता पश्यैनं पर्वतोपमम्।
भ्रात्रा समानो रूपेण विशिष्टस्तु पराक्रमे।। ६।।
स एष जाम्बवान् नाम महायूथपयूथपः।
प्रशान्तो गुरुवर्ती च सम्प्रहारेष्वमर्षणः।। ७।।
य एनमभिसंरब्धं प्लवमानमवस्थितम्।
प्रेक्षन्ते वानराः सर्वे स्थिता यूथपयूथपम्।। ८।।
बलेन बल संयुक्तो दम्भो नामैष यूथपः।

इनके छोटे भाई इस जाम्बवान नाम के यूथपतियों के भी महान यूथपति को देखो। यह रूप में अपने भाई के समान है, पर पराक्रम में उससे भी बढ़कर हैं। यह वैसे शान्त स्वभाव और बड़ों का आज्ञापालक है, पर युद्ध के समय यह असह्य हो जाता है। उधर क्रोध में भरा हुआ तो कभी उछलता है और कभी खड़ा हो जाता है, जिस यूथपतियों के यूथपति को सारे वानर देख रहे हैं, जो सेना और शक्तियों से युक्त है, वह दम्भ नाम का यूथपति है।

महापर्वतसंकाशा महाजीमूतनिःस्वनाः।। ९।।
वृत्तपिङ्गलनेत्रा हि महाभीमगतिस्वनाः।
मर्दयन्तीव ते सर्वे तस्थुर्लङ्कां समीक्ष्य ते।। १०।।
एष चैषामधिपतिर्मध्ये तिष्ठति वीर्यवान्।
नाम्ना पृथिव्यां विख्यातो राजञ्शतबलीति यः।। ११।।
एषैवाशंसते लङ्कां सेनानीकेन मर्दितुम्।
विक्रान्तो बलवाञ्छूरः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः।
रामप्रियार्थं प्राणानां दयां न कुरुते हरिः।। १२।।

जो विशाल पर्वत के समान ऊँचे और विशाल मेघ के समान गर्जते हैं, जिनकी आँखें गोल और पिंगल रंग भी हैं, जिनके चलते हुए भयानक आवाज होती है, जो खड़े हुए लंका की तरफ ऐसे देख रहे हैं, जैसे उसे कुचल डालेंगे। उनके बीच में उनका तेजस्वी अधिपति शतबली खड़ा है, जो अपने नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध है। यह अपनी सेना से ही लंका को कुचलने की इच्छा रखता है। यह पराक्रमी, बलवान, वीर और अपने पुरुषार्थ पर भरोसा करने वाला है। यह वानर श्रीराम का प्रिय करने के लिये अपने प्राणों पर दया नहीं करता है।

सत्रहवाँ सर्ग

शुक के द्वारा सुग्रीव के मंत्रियों, मैन्द द्विविद, हनुमान, श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव का परिचय देना।

सारणस्य वचः श्रुत्वा रावणं राक्षसाधिपम्।
वलमादिश्य तत् सर्वं शुको वाक्यमथाब्रवीत्।। १।।
स्थितान् पश्यसि यानेतान् मत्तानिव महाद्विपान्।
न्यग्रोधानिव गाङ्गेयान् सालान् हैमवतानिव।। २।।
एते दुष्प्रसहा राजन् बलिनः काम रूपिणः।
एते सुग्रीवसचिवाः किष्किन्धानिलयाः सदा।। ३।।

जब सारण ने सारी वानर सेना का परिचय दे दिया तब उसकी बात सुन कर शुक राक्षसों के राजा रावण से बोला कि जिन्हें आप मतवाले विशाल हाथियों के समान खड़ा हुआ देख रहे हैं, जो गंगा के किनारे के वट वृक्षों और हिमालय के समान हैं, हे राजन! यह अत्यन्त सुस्सह, बलशाली, इच्छानुसार रूप परिवर्तन करने वाले और किष्किंधा में रहने वाले सुग्रीव के सचिव हैं।

यौ तौ पश्यसि तिष्ठन्तौ कुमारौ देवरूपिणौ।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव ताभ्यां नास्ति समो युधि।। ४।।
आशंसेते यथा लङ्कामेतौ मर्दितुमोजसा।
यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम्।। ५।।
यो बलात् क्षोभयेत् क्रुद्धः समुद्रमपि वानरः।
ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति श्रुतः।। ६।।
हनूमानिति विख्यातो लङ्घितो येन सागरः।
कामरूपो हरिश्रेष्ठो बलरूपसमन्वितः।। ७।।
अनिवार्यगतिश्चैव यथा सततगः प्रभुः।

आप जो इन देवता के समान सुन्दर रूप वाले वानर कुमारों को देख रहे हैं, ये मैन्द और द्विविद हैं। इनके समान युद्ध करने वाला कोई नहीं है। ये दोनों अपने तेज से ही लंका को कुचलने की इच्छा रखते हैं। मतवाले हाथी के समान जिसको आप खड़ा हुआ देख रहे हैं, जो वानर क्रोध में आने पर अपने बल से समुद्र को भी क्षुब्ध कर सकता है, यह केसरी का सबसे बड़ा पुत्र पवन पुत्र के नाम से प्रसिद्ध है, इसका नाम हनुमान है। इसी ने सबसे पहले सागर को लाँघा था। यह वानर श्रेष्ठ मनचाहा रूप बना लेने वाला, बल और रूप से युक्त है, जैसे वायु हर जगह जा सकती है, वैसे ही इसकी गति रुकती नहीं है।

यश्चैषोऽनन्तरः शूरः श्यामः पद्मनिभेक्षणः।। ८।।
इक्ष्वाकूणामतिरथो लोके विश्रुतपौरुषः।
यस्य भार्या जनस्थानात् सीता चापि हृता त्वया।। ९।।
स एष रामस्त्वां राजन् योद्धुं समभिवर्तते।

हनुमान जी के समीप जो वीर, साँवले रंग के और कमल के समान नेत्र वाले हैं, ये संसार में अपने पौरुष के लिये प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंश के अतिरथी राम हैं। हे राजन्! इनकी पत्नी सीता का आपने जनस्थान से अपहरण किया है। ये आपसे युद्ध करने के लिये तैयार हैं।

यस्यैष दक्षिणे पार्श्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभः।। १०।।
विशालवक्षास्ताम्राक्षो नीलकुञ्चितमूर्धजः।
एषो हि लक्ष्मणो नाम भ्रातुः प्रियहिते रतः।। ११।।
नये युद्धे च कुशलः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तश्च जयी बली।। १२।।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः।
नह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति।। १३।।
एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान्।

इनकी दायीं तरफ जो शुद्ध सोने के समान कान्तिवाले, विशाल वक्षस्थल, ताम्रवर्ण आँखों और काले घुँघराले बालों वाले हैं, ये नाम से लक्ष्मण हैं, जो भाई का प्रिय करने में लगे रहते हैं। सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ये युद्ध और नीति शास्त्र में कुशल हैं। ये असहनशील, दुर्जय, विजयी, पराक्रमी, जीतने वाले, बलवान और राम के दाहिने हाथ तथा बाहर विचरने वाले मानो उन्हीं के प्राण हैं। राम के लिये ये अपने जीवन की परवाह नहीं करते। ये ही युद्ध में सारे राक्षसों को मारने की इच्छा रखते हैं।

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं मध्ये गिरिमिवाचलम्।। १४।।
सर्वशाखामृगेन्द्राणां भर्तारममितौजसम्।
तेजसा यशसा बुद्ध्या बलेनाभिजनेन च।। १५।।
यः कपीनतिबभ्राज हिमवानिव पर्वतः।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्त्वां युद्धार्थमनुवर्तते।
महाबलवृतो नित्यं महाबलपराक्रमः।। १६।।

जिन्हें आप वानरों के बीच में पर्वत के समान अविचल खड़ा हुआ देख रहे हैं, ये अमित तेजस्वी सारे वानरों के स्वामी हैं, ये तेज से, यश से, बुद्धि से, बल से, और कुल से सारे वानरों से ऐसे ही बढ़कर हैं जैसे हिमालय पर्वतों से। ये वानरों के राजा सुग्रीव सदा महान

बल और पराक्रम से युक्त, विशाल सेना से घिरे हुए आपके साथ युद्ध के लिये तत्पर हैं।

इमां महाराज समीक्ष्य वाहिनी-
मुपस्थितां प्रज्वलितग्रहोपमाम्।
ततः प्रयत्नः परमो विधीयतां
यथ जयः स्यान्न परैः पराभवः।। १७।।

हे महाराज! आप प्रज्वलित ग्रह के समान इस उपस्थित सेना को देख कर ऐसा उत्तम प्रयत्न करें, जिससे हमें विजय प्राप्त हो और शत्रुओं से हम पराजित न हों।

अठारहवाँ सर्ग

रावण के द्वारा पुनः दूसरे गुप्तचरों को भेजना, उनका भी पकड़ा जाना और राम की दया से छूट कर लंका में आ कर समाचार बताना।

शुकेन तु समादिष्टान् दृष्ट्वा स हरियूथपान्।
अब्रवीच्च दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम्।। १।।
उपस्थापय मे शीघ्रं चारानिति निशाचरः।
महोदरस्तथोक्तस्तु शीघ्रमाज्ञापयच्चरान्।। २।।
ततश्चाराः संत्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात्।
उपस्थिताः प्राञ्जलयो वर्धयित्वा जयाशिषः।। ३।।
तानब्रवीत् ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः।
चारान् प्रत्यायिकाञ्शूरान् धीरान् विगतसाध्वसान्।। ४।।

शुक के द्वारा बताये गये उन वानर यूथपतियों को देख कर रावण ने अपने समीप विद्यमान महोदर से कहा कि तुम मेरे सामने शीघ्र ही और गुप्तचरों को हाजिर करो। तब उस राक्षस महोदर ने शीघ्र ही गुप्तचरों को आदेश दिया। राजा के आदेश से गुप्तचर तुरन्त वहाँ आये और जय जय कार करते हुए हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। तब उन विश्वासपात्र, शूरवीर, धीर और निर्भय गुप्तचरों से राक्षसों का राजा रावण बोला कि-

इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षितुम्।
मन्त्रेष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः।। ५।।
कथं स्वपिति जागर्ति किमद्य च करिष्यति।
विज्ञाय निपुणं सर्वमागन्तव्यमशेषतः।। ६।।
चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः।
युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य निरस्यते।। ७।।

तुम यहाँ से राम के कार्य को जानने के लिये जाओ। कौन उसके सलाह कार अन्तरंग मन्त्री हैं? कौन उससे प्रेम के कारण आये हुए हैं? कैसे वे सोते हैं? कैसे वे जागते हैं? और आज क्या करेंगे? सारी बातें पूरी तरह से चतुराई से जान कर आओ। बुद्धिमान राजा गुप्तचरों के द्वारा शत्रु की गतिविधि का पता लगा कर थोड़े प्रयत्न से ही उसे युद्ध में समाप्त कर देते हैं।

चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम्।
शार्दूलमग्रतः कृत्वा ततश्चक्रुः प्रदक्षिणम्।। ८।।
ततस्तं तु महात्मानं चारा राक्षससत्तमम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणः।। ९।।
ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ।
प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ।। १०।।

तब उन गुप्तचरों ने प्रसन्न होकर अच्छा ऐसा कहा और शार्दूल को आगे करके उन्होंने राक्षसराज की प्रदक्षिणा की। फिर उस राक्षसश्रेष्ठ महात्मा रावण की प्रदक्षिणा करके वे गुप्तचर वहाँ गये, जहाँ राम और लक्ष्मण थे। उन्होंने सुवेल पर्वत के समीप जाकर, छिप कर सुग्रीव और विभीषण सहित राम और लक्ष्मण को देखा।

प्रेक्षमाणाश्चमूं तां च बभूवुर्भयविह्वलाः।
ते तु धर्मात्मना दृष्टा राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः।। ११।।
विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता यदृच्छया।
शार्दूलो ग्राहितस्त्वेकः पापोऽयमिति राक्षसः।
मोचितः सोऽपि रामेण वध्यमानः प्लवंगमैः।। १२।।

उस सेना को देख कर वे भय से व्याकुल हो गये और उन्हें तभी धर्मात्मा राक्षसराज विभीषण ने देख लिया। विभीषण ने वहाँ आए हुए उन्हें फटकारा और अपनी इच्छा से केवल एक शार्दूल को यह सोच कर पकड़वा दिया कि यह पापी राक्षस है। किन्तु वानरों के द्वारा पीटे जाते हुए भी राम ने छुड़वा दिया।

ततो दशग्रीवमुपस्थितास्ते
चारा बहिर्नित्यचरा निशाचराः।
गिरेः सुवेलस्य समीपवासिनं
न्यवेदयन् रामबलं महाबलाः।। १३।।

तब सदा बाहर घूमने वाले वे महाबली गुप्तचर राक्षस रावण के सामने उपस्थित हुए और उन्होंने सुवेल पर्वत के समीप विद्यमान राम की सेना के विषय में उसे बताया।

उन्नीसवाँ सर्ग

माया रचित कटा मस्तक दिखा कर रावण द्वारा सीता को मोह में डालने का प्रयत्न।

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम्।
जातोद्वेगोऽभवत् किंचित् सचिवानिदमब्रवीत्।। १।।
मन्त्रिणः शीघ्रमायान्तु सर्वे वै सुसमाहिताः।
अयं नो मन्त्रकालो हि सम्प्राप्त इति राक्षसाः।। २।।
तस्य तच्छासनं श्रुत्वा मन्त्रिणोऽभ्यागमन् द्रुतम्।
ततः स मन्त्रयामास राक्षसैः सचिवैः सह।। ३।।
मन्त्रयित्वा तु दुर्धर्षः क्षमं यत् तदनन्तरम्।
विसर्जयित्वा सचिवान् प्रविवेश स्वमालयम्।। ४।।

गुप्तचरों के मुख से आई हुई श्रीराम की महान सेना के विषय में सुन कर कुछ उद्विग्न हो कर रावण अपने सचिवों से बोला कि हे राक्षसों! मेरे सारे मंत्री सावधान होकर यहाँ आयें। यह हमारे लिये विचार करने का समय आया है। तब उसकी आज्ञा को सुन कर मंत्री लोग शीघ्रता से वहाँ एकत्र हो गये। तब उसने अपने राक्षस सचिवों से विचार विमर्श किया। उस दुर्धर्ष राक्षस ने उचित कार्यों पर विचार कर सचिवों को विदा किया और वह अपने महल में प्रविष्ट हुआ।

विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद् राक्षसाधिपः।
शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर।। ५।।
मां त्वं समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः।
एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः।। ६।।
दर्शयामास तां मायां सुप्रयुक्तां स रावणे।
तस्य तुष्टोऽभवद् राजा प्रददौ च विभूषणम्।। ७।।
अशोकवनिकायां च सीतादर्शनलालसः।
नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः।। ८।।

उस राक्षसों के राजा ने फिर माया के विशेषज्ञ विद्युज्जिह्व राक्षस से कहा कि हे राक्षस! तुम राम का माया के द्वारा नकली सिर बना कर और एक बाण सहित धनुष बना कर मेरे समीप आओ। तब बहुत अच्छा कह कर उस राक्षस ने रावण को अपनी माया का कौशल दिखाया। तब प्रसन्न हो कर उस राजा ने उसे आभूषण में पुरस्कार दिया और फिर वह राक्षसों का महाबली राजा सीता के दर्शन की इच्छा से अशोक वाटिका में गया।

ततो दीनामदैन्यार्हां ददर्श धनदानुजः।
अधोमुखीं शोकपरामुपविष्टां महीतले।। ९।।
भर्तारं समनुध्यान्तीमशोकवनिकां गताम्।
उपास्यमानां घोराभी राक्षसीभिरदूरतः।। १०।।
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम्।
सान्त्व्यमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे।। ११।।
खरहन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः।

वहाँ उस कुबेर के छोटे भाई ने, जो दीनता के योग्य नहीं थी, उस दीनता को प्राप्त, अशोक वाटिका में भी रहते हुए शोक में मग्न, नीचे मुख करके भूमि पर बैठी हुई और अपने पति का ध्यान करती हुई सीता को देखा। उसके समीप भयानक राक्षसियाँ बैठी हुईं थीं। वह जनकपुत्री से धृष्टता पूर्वक यह बोला कि हे भद्रे! मेरे बार-बार समझाने पर भी तुम जिसका सहारा लेकर मेरी बात नहीं मानती थीं, खर को मारने वाला वह तुम्हारा पति राम युद्ध में मारा गया।

छिन्नं ते सर्वथा मूलं दर्पश्च निहतो मया।। १२।।
व्यसनेनात्मनः सीते मम भार्या भविष्यसि।
विसृजैतां मतिं मूढे किं मृतेन करिष्यसि।। १३।।
भवस्व भद्रे भार्याणां सर्वासामीश्वरी मम।
अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढे पण्डितमानिनि।। १४।।
समायातः समुद्रान्तं हन्तुं मां किल राघवः।
वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः।। १५।।
संनिविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम्।
बलेन महता रामो व्रजत्यस्तं दिवाकरे।। १६।।

अब तुम्हारी जड़ पूरी तरह से कट गयी। तुम्हारे अभिमान को मैंने नष्ट कर दिया। हे सीता! तुम्हारे ऊपर जो यह मुसीबत आई है, उससे तुम अब मेरी पत्नी बन जाओगी। हे मूर्खे! अब तुम राम के विषय में सोचना छोड़ दो। उस मरे हुए का क्या करोगी? हे कम पुण्यों वाली! राम की प्राप्ति का जो तुम्हारा प्रयोजन था, वह समाप्त हो गया। हे भद्रे! हे अपने आपको पण्डित मानने वाली मूर्खे! अब तुम मेरी सारी पत्नियों की स्वामिनी बन जाओ। राम वानरराज सुग्रीव के द्वारा लायी हुई बड़ी सेना के साथ समुद्र के किनारे तक आये थे। वे समुद्र के उत्तरी किनारे को घेर कर अपनी विशाल सेना के साथ वहाँ टिके हुए थे। उस समय सूर्य छिप गया।

अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम्।
सुखसुप्तं समासाद्य चरितं प्रथमं चरैः।। १७।।
तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः।। १८।।
पट्टिशान् परिघांश्चक्रानृष्टीन् दण्डान् महायुधान्।
बाणजालानि शूलानि भास्वरान् कूटमुद्गरान्।। १९।।
यष्टीश्च तोमरान् प्रासांश्चक्राणि मुसलानि च।
उद्यम्योद्यम्य रक्षोभिर्वानरेषु निपातिताः।। २०।।

तब रास्ते की थकावट से सुखपूर्वक सोई हुई उस सेना का आधी रात के समय पहले हमारे गुप्तचरों ने निरीक्षण किया, फिर प्रहस्त के द्वारा ले जाई गई मेरी सेना ने उस सेना को जहाँ राम और लक्ष्मण थे नष्ट कर दिया। राक्षसों ने पट्टिशों को, परिघों को, ऋष्टियों को, डण्डों को और बड़े-बड़े आयुधों को, बाणों के समूह, जगमगाते हुए शूल, कूट और मुद्गर, यष्टि तोमर, प्रास, चक्र और मूसल उठा-उठा कर वानरों पर प्रहार किये।

अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना।
असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना।। २१।।
विभीषणः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया।
दिशः प्रव्राजितः सैन्यैर्लक्ष्मणः प्लवगैः सह।। २२।।
सुग्रीवो ग्रीवया सीते भग्नया प्लवगाधिपः।
निरस्तहनुकः सीते हनूमान् राक्षसैर्हतः।। २३।।
जाम्बवानथ जानुभ्यामुत्पतन् निहतो युधि।
पट्टिशैर्बहुभिश्छिन्नो निकृत्तः पादपो यथा।। २४।।

फिर शत्रुओं को मथ डालने वाले प्रहस्त ने जिसके हाथ बहुत सधे हुए हैं, सोये हुए राम का सिर एक लम्बी तलवार से बिना किसी रुकावट के काट दिया। फिर उसने एकदम उछल कर विभीषण को पकड़ लिया। लक्ष्मण को वानर सैनिकों के साथ अलग-अलग दिशाओं में भगा दिया। हे सीता! सुग्रीव की भी गर्दन काट दी गई। राक्षसों ने हनुमान की ठोड़ी तोड़ कर उसे मार दिया, जाम्बवान उछल रहा था उसके घुटनों पर बहुत सारे पट्टिशों से प्रहार किया गया। वह कटे हुए पेड़ की तरह छिन्न-भिन्न हो कर युद्ध क्षेत्र में गिर गया।

मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तौ वानरवरर्षभौ।
निःश्वसन्तौ रुदन्तौ च रुधिरेण परिप्लुतौ।। २५।।
असिना व्यायतौ छिन्नौ मध्ये ह्यरिनिषूदनौ।
अनुश्वसिति मेदिनयां पनसः पनसो यथा।। २६।।
नाराचैर्बहुभिश्छिन्नः शेते दर्यां दरीमुखः।
कुमुदस्तु महातेजा निष्कूजन् सायकैर्हतः।। २७।।
अङ्गदो बहुभिश्छिन्नः शरैरासाद्य राक्षसैः।
पतितो रुधिरोद्गारी क्षितौ निपतितोऽङ्गदः।। २८।।

मैन्द और द्विविद दोनों श्रेष्ठ वानर खून से भरे हुए, लम्बी साँसें लेते हुए रो रहे थे, उन दोनों विशालकाय शत्रु सूदनों को तलवार के द्वारा बीच में से काट दिया गया। पनस नाम का वानर पके हुए पनस (कटहल) की तरह भूमि पर पड़ा हुआ अन्तिम साँस ले रहा है। दरी मुख अनेक नाराचों से बींधा जा कर किसी गुफा में सो रहा है। महातेजस्वी कुमुद चिल्लाता हुआ बाणों से मार दिया गया। राक्षसों ने अंगद पर हमला कर बहुत सारे बाणों से उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। वह अपने अंगों से सब तरफ खून बहाता हुआ भूमि पर पड़ा हुआ है।

प्रसृताश्च परे त्रस्ता हन्यमाना जघन्यतः।
अनुद्रुतास्तु रक्षोभिः सिंहैरिव महाद्विपाः।। २९।।
सागरे पतिताः केचित् केचिद् गगनमाश्रिताः।
ऋक्षा वृक्षानुपारूढा वानरीं वृत्तिमाश्रिताः।। ३०।।
एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः।। ३१।।
ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसेश्वरः।
सीतायामुपशृण्वत्यां राक्षसीमिदमब्रवीत्।। ३२।।

जैसे सिंहों द्वारा हाथियों को भगा दिया जाता है, वैसे ही राक्षसों के द्वारा पीछा किये जाने पर बहुत से वानर डरे हुए पीठ पर चोट खाते हुए भाग गये। कुछ समुद्र में कूद गये। कुछ आकाश में उड़ गये और कुछ ऋक्ष जाति के लोग बन्दरों की तरह पेड़ों पर चढ़ गये। इस प्रकार मेरी सेना ने तेरे पति को सेना सहित मार दिया है। उसका खून से भीगा और धूल से सना हुआ सिर लाया गया है। तब अत्यन्त दुर्धर्ष राक्षसों के राजा रावण ने सीता को सुनाते हुए एक राक्षसी से कहा कि-

राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं समानय।
येन तद्राघवशिरः संग्रामात् स्वयमाहृतम्।। ३३।।
विद्युज्जिह्वस्तदा गृह्य शिरस्तत्सशरासनम्।
प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः।। ३४।।
तमब्रवीत् ततो राजारावणो राक्षसं स्थितम्।

तुम उस क्रूर कर्म करने वाले विद्युज्जिह्व राक्षस को बुला कर लाओ, जो संग्राम भूमि से राम के सिर को स्वयं लाया है। तब विद्युज्जिह्व धनुष बाण के साथ उस सिर को लेकर आया और रावण को सिर से प्रणाम

कर उसके सामने खड़ा हो गया। तब उस खड़े हुए राक्षस से रावण ने कहा कि–

अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः।। ३५।।
अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणा साधु पश्यतु।
एवमुक्तं तु तद् रक्षः शिरस्तत् प्रियदर्शनम्।। ३६।।
उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत।
रावणश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत्।। ३७।।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं रामस्यैतदिति ब्रुवन्।

तुम उस दशरथ पुत्र राम का सिर सीता के सामने जल्दी रख दो। जिससे यह बेचारी अपने पति की अन्तिम दशा को अच्छी तरह से देख ले। ऐसा कहने पर उस राक्षस ने उस सुन्दर सिर को सीता के समीप रख दिया और वह तुरन्त वहाँ से चला गया। रावण ने भी उस विशाल जगमगाते हुए धनुष को सीता के आगे यह कहते हुए डाल दिया कि यही तीनों लोकों में विख्यात राम का धनुष है।

बीसवाँ सर्ग

सीता का विलाप और रावण का सलाह के लिये सभा में जना।

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम्।
नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम्।। १।।
एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता।
विगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्ती कुररी यथा।। २।।
सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः।
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया।। ३।।
आर्येण किं नु कैकेय्याः कृतं रामेण विप्रियम्।
यन्मया चरिवसनं दत्त्वा प्रव्राजितो वनम्।। ४।।

तब सीता उस सिर को तथा उत्तम धनुष को देख कर तथा दोनों आँखें, मुख का रंग और मुख की आकृति पति के मुख की आकृति के समान देख कर और यह समझ कर कि यह पति का ही सिर है, अत्यन्त दुखी हो कर कुररी के समान विलाप करती हुई कैकेयी को दोष देने लगी। वह कहने लगी कि हे कैकेयी तेरी कामना सफल हुई। ये कुल को आनन्दित करने वाले मारे गये। तुझ कहलप्रिय ने सारे कुल का नाश कर दिया। आर्य राम ने कैकेयी का कौन सा बुरा किया था जो उन्हें मेरे साथ चीरवस्त्र पहना कर वन में निकलवा दिया।

एवमुक्त्वा तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी।
जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा।। ५।।
सा मुहूर्तात् समाश्वस्य परिलभ्याथ चेतनाम्।
तच्छिरः समुपास्थाय विललापायतेक्षणा।। ६।।
हा हतासि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत।
इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता।। ७।।
प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते।
सुवृत्तः साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः।। ८।।

ऐसा कह कर वह वैदेही तपस्विनी सीता काँपती हुई, कटी हुई कदली के समान भूमि पर गिर पड़ी। एक मुहूर्त के पश्चात होश मे आ कर कुछ धीरज धर कर वह विशाल नेत्रों वाली उस सिर को अपने समीप रख कर विलाप करने लगी। हे महाबाहु! मैं मारी गयी। आपने तो वीरव्रत का पालन कर लिया, पर आपकी इस अन्तिम अवस्था को मैं विधवा बनी हुई देख रही हूँ। पति का पहले मरना स्त्री के लिये बड़ा अनर्थकारी होता है आप अच्छे आचरण वाले थे, पर मुझ अच्छे आचरण वाली के सामने ही आप मृत्यु को प्राप्त हो गये।

महद् दुःखं प्रपन्नाया मग्नायाः शोकसागरे।
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः।। ९।।
सा श्वश्रूर्मम कौसल्या त्वया पुत्रेण राघव।
वत्सेनेव यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता।। १०।।
अथवा नश्यति प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतस्तव।
पचत्येनं तथा कालो भूतानां प्रभवो ह्ययम्।। ११।।
अदृष्टं मृत्युमापन्नः कस्मात् त्वं नयशास्त्रवित्।
व्यसनानामुपायज्ञः कुशलो ह्यसि वर्जने।। १२।।

महान दुख को प्राप्त हुई और शोक सागर में मग्न हुई मेरा उद्धार करने के लिये जो प्रयत्न कर रहे थे, उन आपको भी शत्रुओं ने गिरा दिया। हे राम! तुम जैसे पुत्र के बिना मेरी वह सास कौशल्या अपने बछड़े से प्यार करने वाली पर उससे अलग कर दी गयी गाय के समान हो गयी है। आप जैसे बुद्धिमान की भी बुद्धि नष्ट हो गयी, जो आप शत्रुओं के बस में हो गये। या यह कहो कि काल सब प्राणियों को पैदा करता है,

काल ही सब प्राणियों को पकाता है अर्थात उसका अन्त करता है। आप तो नीति शास्त्र के विद्वान थे, उपायों को जानते थे, संकट को हटाने में कुशल थे, फिर कैसे अदृश्य मृत्यु को प्राप्त हो गये?

तथा त्वं सम्परिष्वज्य रौद्रयातिनृशंसया।
कालरात्र्या ममाच्छिद्य हतः कमललोचन।। १३।।
इह शेषे महाबाहो मां विहाय तपस्विनीम्।
प्रियामिव यथा नारीं पृथिवीं पुरुषर्षभ।। १४।।
पित्रा दशरथेन त्वं श्वशुरेण ममानघ।
सर्वैश्च पितृभिः सार्धं नूनं स्वर्गे समागतः।। १५।।
संश्रुतं गृह्णता पाणिं चरिष्यामीति यत् त्वया।। १६।।
स्मर तन्नाम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम्।

हे कमलनयन! वह बड़ी भयानक और क्रूर काल रात्रि आपको अपने हृदय से लगा कर मुझसे छीन कर ले गयी। हे महाबाहु! हे नरश्रेष्ठ! आप मुझ तपस्विनी को छोड़ कर प्रियतमा स्त्री की तरह उस पृथिवी का आलिंगन किये हुए सो रहे हैं। हे निष्पाप! आप वहाँ परलोक में मेरे ससुर दशरथ तथा दूसरे पितरों से भी अवश्य ही मिलेंगे। हे राजन्! आप मेरी तरफ क्यों नहीं देखते। आप मुझसे क्यों नहीं बोलते। आपने मेरा पाणिग्रहण करते हुए यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं तेरे ही साथ रहूँगा। हे काकुत्स्थ! अपनी उस प्रतिज्ञा को याद कीजिये और मुझ दुखिता को भी अपने साथ ले जाइये।

कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतां वर।। १७।।
अस्माल्लोकादमुं लोकं त्यक्त्वा मामपि दुःखिताम्।
कल्याणै रुचिरं गात्रं परिष्वक्तं मयैव तु।। १८।।
क्रव्यादैस्तच्छरीरं ते नूनं विपरिकृष्यते।
प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम्।। १९।।
परिप्रेक्ष्यति कौसल्या लक्ष्मणं शोकलालसा।
स तस्याः परिपृच्छन्त्या वधं मित्रबलस्य ते।। २०।।
तव चाख्यास्यते नूनं निशायां राक्षसैर्वधम्।

हे गतिमानों में श्रेष्ठ! आप इस लोक को और मुझ दुखिया को भी छोड़ कर इस लोक से परलोक को मेरे बिना क्यों चले गये। आपका अनेक प्रकार के कल्याणकारी साधनों से सुन्दर बनाया हुआ शरीर, जो मेरे द्वारा आलिंगन किया जाता था, वह अब निश्चय ही माँस भक्षी जन्तुओं के द्वारा घसीटा जा रहा होगा। हम तीन वनवास के लिये निकले थे, पर शोक से व्याकुल कौशल्या वापिस लौटे हुए केवल एक लक्ष्मण को ही देखेंगी। उनसे पूछने पर वे उन्हें अवश्य ही आपके मित्र की सेना के तथा आपके रात्रि में राक्षसों के द्वारा किये हुए वध के विषय में बतायेंगे।

सा त्वां सुप्तं हतं ज्ञात्वा मां च रक्षोगृहं गताम्।। २१।।
हृदयेनावदीर्णेन न भविष्यति राघव।
अहं दाशरथेनोढा मोहात् स्वकुलपांसनी।। २२।।
आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत।
नूनमन्यां मया जातिं वारितं दानमुत्तमम्।। २३।।
याहमद्यैव शोचामि भार्यासर्वातिथेरिह।

हे राम! तुम्हें सोये हुए मारा गया जान कर तथा मुझे राक्षसों के घर में गया हुआ जान कर उनका हृदय विदीर्ण हो जाएगा और वे जीवित नहीं रहेंगी। दशरथ पुत्र के द्वारा मुझ कुल को कलंकित करने वाली को मोह के कारण विवाह करके लाया गया। हाय! आर्यपुत्र राम के लिये उनकी पत्नी ही उनकी मृत्यु बन गयी। जो सारे अतिथियों से प्रेम करते थे उनकी पत्नी हो कर जो आज मैं उन्हीं के लिये शोक कर रही हूँ, इससे स्पष्ट है कि मैंने पहले जन्म में अवश्य ही उत्तम दान कर्म में रुकावट डाली थी।

साधु घातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण।। २४।।
समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम्।
शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय।। २५।।
रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः।
इतीव दुःखसंतप्ता विललापायतेक्षणा।। २६।।
भर्तुः शिरो धनुश्चैव ददर्श जनकात्मजा।
एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः।। २७।।
अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः।

हे रावण! तुम मुझे राम के शव के ऊपर रख कर शीघ्र ही मार डालो। यह अच्छा कार्य है। पति से पत्नी को मिला दो। यह उत्तम कार्य अवश्य करो। तुम मेरे सिर को पति के सिर से और मेरे शरीर को पति के शरीर से मिला दो। हे रावण! इससे मैं अपने उन महात्मा पति की गति का ही अनुकरण करूँगी। इस प्रकार वह विशाल नेत्रों वाली जनकपुत्री दुख से संतप्त हो कर पति के सिर और धनुष को देखती हुई विलाप करने लगी। सीता के इस प्रकार बिलखते हुए सेना का एक राक्षस आया और अपने स्वामी के समक्ष हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च।। २८।।
न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम्।।
अमात्यैः सहितः सर्वैः प्रहस्तस्त्वामुपस्थितः।। २९।।

**तेन दर्शनकामेन अहं प्रस्थापितः प्रभो।
नूनमस्ति महाराज राजभावात् क्षमान्वित।। ३०।।
किंचिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु।
एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम्।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ।। ३१।।**

उसने आर्यपुत्र महाराज की जय हो, ऐसा कह कर रावण को प्रणाम किया और उसे प्रसन्न करते हुए यह निवेदन किया कि सेनापति प्रहस्त आये हैं। हे प्रभो! प्रहस्त सारे मन्त्रियों के साथ आपकी सेवा में उपस्थित हैं। उन्होंने आपके दर्शन की इच्छा से मुझे भेजा है। हे क्षमाशील महाराज! अवश्य ही कोई अत्यन्त आवश्यक राजकीय कार्य है। इसलिये आप उन्हें दर्शन दीजिये। राक्षस के द्वारा निवेदन की हुई इस बात को सुन कर राजा अशोक वाटिका को छोड़ कर मंत्रियों से मिलने के लिये चला गया।

इक्कीसवाँ सर्ग

सरमा का रावण की माया का भेद खोलते हुए सीता को सान्त्वना देना, राम के आगमन का समाचार सुनाना और उनके विजयी होने का विश्वास दिलाना।

**सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी।
आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखीम्।। १।।
मोहितां राक्षसेन्द्रेण सीतां परमदुःखिताम्।
आश्वासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी।। २।।
सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया।
रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता।। ३।।
सा ददर्श सखी सीतां सरमा नष्टचेतनाम्।
उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां वडवामिव पांसुषु।। ४।।**

सीता को मोह में पड़ा हुआ देख कर सरमा नाम की राक्षसी जो उसकी प्यारी प्रेम करने वाली सखी थी, उस विदेहराज पुत्री के पास आयी। रावण के द्वारा मोह में डाली हुई उस अत्यन्त दुखी सीता को मधुर भाषिणी सरमा ने धैर्य बँधाया। वह सरमा रावण की आज्ञा से सीता की रखवाली करती थी, पर वह दयालु और दृढ़ संकल्प थी। उसने सीता से मित्रता कर ली थी। उसने देखा कि सीता अपने होश हवास में नहीं थी। धूल में लेट कर उठी हुई घोड़ी के समान उसकी अवस्था धूल धूसरित हो रही थी।

**तां समाश्वासयामास सखीस्नेहेन सुव्रताम्।
समाश्वसिहि वैदेहि सा भूत् ते मनसो व्यथा।। ५।।
उक्ता यद् रावणेन त्वं प्रयुक्तश्च स्वयं त्वया।
सखीस्नेहेन तद् भीरु मया सर्वं प्रतिश्रुतम्।। ६।।
लीनया गहने शून्ये भयमुत्सृज्य रावणात्।
तव हेतोर्विशालाक्षि नहि मे रावणाद् भयम्।। ७।।
स सम्भ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसेश्वरः।
तत्र मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि।। ८।।**

अच्छे व्रत वाली सीता को उसने सखी के प्रेम से आश्वासन दिया और कहा कि हे सीता। धीरज रखो, मन में दुख मत करो। रावण ने तुमसे जो कहा और तुमने उसे जो उत्तर दिया, हे भीरु! सखी के स्नेह से वह मैंने सब सुन लिया है। मैं रावण के भय को छोड़ कर गहन एकान्त में छिपी हुई थी। हे विशाल आँखों वाली। तेरे लिये मैं रावण से भी नहीं डरती। हे मैथिली! मैंने यहाँ से जाकर यह भी मालूम कर लिया है कि वह राक्षसराज हड़बड़ी में क्यों यहाँ से चला गया था?

**अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना।
एवं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि।। ९।।
शोकस्ते विगतः सर्वकल्याणं त्वामुपस्थितम्।
उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया।। १०।।
संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम्।
इति ब्रुवाणा सरमा राक्षसी सीतया सह।। ११।।
सर्वोद्योगेन सैन्यानां शब्दं शुश्राव भैरवम्।
दण्डनिर्घातवादिन्याः श्रुत्वा भेर्या महास्वनम्।। १२।।
उवाच सरमा सीताममिदं मधुरभाषिणी।**

सब प्राणियों का विरोध करने वाले, भयंकर, मायावी रावण ने, जिसकी बुद्धि और कार्य दोनों ही अनुचित हैं, तुम्हारे साथ माया का प्रयोग किया था। अब तुम्हारा शोक समाप्त हो रहा है और सब प्रकार का कल्याण तुम्हारे सामने उपस्थित हो रहा है। श्रीराम वानर सेना के साथ सागर को पार कर समुद्र के दक्षिणी किनारे पर पड़ाव डाले हुए हैं। सीता से सरमा जब ऐसा कह रही थी, तभी उन्होंने सब तरह से उद्योग करने वाले

सैनिकों का भैरव नाद सुना। डंडे की चोट से बजने वाले धौंसे की भयानक ध्वनि को सुन कर मधुर भाषिणी सरमा ने सीता से कहा कि–

संनाहजननी ह्येषा भैरवा भीरु भेरिका।। १३।।
भेरीनादं च गम्भीरं शृणु तोयदनिःस्वन्।
घण्टानां शृणु निर्घोषं रथानां शृणु निःस्वनम्।। १४।।
हयानां हेषमाणानां शृणु तूर्यध्वनिं तथा।
उद्यतायुधहस्तानां राक्षसेन्द्रानुयायिनाम्।। १५।।
सम्भ्रमो रक्षसामेष तुमुलो लोमहर्षणम्।
अवजित्य जितक्रोधस्तमचिन्त्यपराक्रमः।। १६।।
रावणं समरे हत्वा भर्ता त्वाधिगमिष्यति।

हे भीरु! यह भयानक धौंसे की आवाज युद्ध को प्रारम्भ कराने वाली है। तुम बादलों की गर्जना के समान इस गम्भीर भेरी की आवाज को भी सुनो। हाथियों के घंटों की आवाज को भी सुनो। रथों की घरघराहट को भी सुनो, घोड़ों के हिनहिनाने की ध्वनि को सुनो और युद्ध के बाजों की आवाज सुनो। राक्षसेन्द्र के अनुयायी सशस्त्र तैयार खड़े हुए राक्षसों में इस समय रोंगटे खड़े कर देने वाली भयानक घबराहट है। जिन्होंने पहले ही क्रोध को जीता हुआ है, वे अचिन्त्य पराक्रमी तुम्हारे पति युद्ध में रावण को हराकर और उसका वध करके तुम्हें प्राप्त करेंगे।

विक्रमिष्यति रक्षःसु भर्ता ते सहलक्ष्मणः।। १७।।
आगतस्य हि रामस्य क्षिप्रमङ्कागतां सतीम्।
अहं द्रक्ष्यामि सिद्धार्थां त्वां शत्रौ विनिपातिते।। १८।।
अस्राण्यानन्दजानि त्वं वर्तयिष्यसि जानकि।
समागम्य परिष्वक्ता तस्योरसि महोरसः।। १९।।

तुम्हारे पति लक्ष्मण के साथ राक्षसों पर अपने पराक्रम का प्रयोग करेंगे। शत्रु का संहार हो जाने पर मैं जल्दी ही तुम्हें लंका में आये हुए श्रीराम की गोद में बैठी हुई और तुम्हारे मनोरथों को सफल हुआ देखूँगी। हे जानकी! तब तुम अपने विशाल वक्षस्थल वाले पति के पास जाकर उसकी छाती से लग कर आनन्द के आँसू बहाओगी।

अचिरान्मोक्ष्यते सीते देवि ते जघनं गताम्।
धृतामेकां बहून् मासान् वेणीं रामो महाबलः।। २०।।
तस्य दृष्ट्वा मुखं देवि पूर्णचन्द्रमिवोदितम्।
मोक्ष्यसे शोकजं वारि निर्मोकमिव पन्नगी।। २१।।
रावणं समरे हत्वा नचिरादेव मैथिलि।
त्वया समग्रः प्रियया सुखार्हो लप्स्यते सुखम्।। २२।।
सभाजिता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना।
सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी।। २३।।

हे सीते! महाबली राम जल्दी ही तुम्हारी बहुत मासों से धारण की हुई एक ही वेणी को, जिसने जटा का रूप ग्रहण कर लिया है, अपने हाथों से खोलेंगे। हे देवी! तुम उनके उदय होते हुए पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख को देख कर अपने शोक के आँसुओं को ऐसे ही छोड़ दोगी, जैसे सर्पिणी अपनी केंचुल को छोड़ देती हैं हे मैथिली! रावण को युद्ध में मार कर, वे सुख के योग्य राम जल्दी ही तुम्हारे साथ सारे सुखों को प्राप्त करेंगे। तुम महात्मा राम से सम्मानित होकर ऐसे ही प्रसन्नता को प्राप्त करोगी, जैसे अच्छी वर्षा से युक्त होकर भूमि हरियाली को प्राप्त होती है।

बाईसवाँ सर्ग

सीता के अनुरोध से सरमा का उन्हें मंत्रियों सहित रावण का निश्चित विचार बताना।

एवं ब्रुवाणां तां सीता सरमामिदमब्रवीत्।
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा पूर्वशोकाभिपन्नया।। १।।
मत्प्रियं यदि कर्तव्यं यदि बुद्धिः स्थिरा तव।
ज्ञातुमिच्छामि तं गत्वा किं करोतीति रावणः।। २।।
स हि मायाबलः क्रूरो रावणः शत्रुरावणः।
मां मोहयति दुष्टात्मा पीतमात्रेव वारुणी।। ३।।
यदि नाम कथा तस्य निश्चितं वापि यद् भवेत्।
निवेदयेथाः सर्वं तद् वरो मे स्यादनुग्रहः।। ४।।

तब इस प्रकार कहती हुई सरमा से सीता ने अपनी स्नेह से युक्त और मधुर वाणी से, जो पहले शोक से व्याप्त थी, कहा कि यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहती हो और इस विषय में तुम्हारी बुद्धि स्थिर है, तो मैं यह जानना चाहती हूँ कि रावण यहाँ से जा कर क्या कर रहा है? वह मायावी, निर्दय, दुष्टात्मा, शत्रु को रुलाने वाला रावण मुझे उसी प्रकार मोहित कर रहा है जैसे शराब अधिक मात्रा में पी लेने पर करती है। वहाँ क्या

कार्य हो रहा है, क्या निश्चय किया जा रहा है? यदि यह सब तुम मुझे बताती रहो तो तुम्हारा मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह होगा।

साप्येवं ब्रुवतीं सीतां सरमा मृदुभाषिणी।
उवाच वदनं तस्याः स्पृशन्ती बाष्पविक्लवम्।। ५।।
एष ते यद्यभिप्रायस्तस्माद् गच्छामि जानकि।
गृह्य शत्रोरभिप्रायमुपावर्तामि मैथिलि।। ६।।
एवमुक्त्वा ततो गत्वा समीपं तस्य रक्षसः।
सुश्राव कथितं तस्य रावणस्य समन्त्रिणः।। ७।।
सा श्रुत्वा निश्चयं तस्य निश्चयज्ञा दुरात्मनः।
पुनरेवागमत् क्षिप्रमशोकवनिकां शुभाम्।। ८।।

ऐसा कहती हुई सीता से वह मधुरभाषिणी सरमा भी उसके आसुँओं से भीगे मुख को पोंछते हुए बोली कि यदि तुम्हारी यह इच्छा है तो हे जनकपुत्री, हे मिथिलेशपुत्री! मैं जाती हूँ और शत्रु के अभिप्राय को जान कर आती हूँ। ऐसा कह कर और वहाँ से उस राक्षस के समीप जाकर उसने रावण और मंत्रियों के वार्तालाप को सुना। उसने उस दुरात्मा के निश्चय को सुन कर उसे समझा और जल्दी उस सुन्दर अशोक वाटिका में लौट आयी।

तां तु सीता पुनः प्राप्तां सरमां प्रियभाषिणीम्।
परिष्वज्य च सुस्निग्धं ददौ च स्वयमासनम्।। ९।।
इहासीना सुखं सर्वमाख्याहि मम तत्त्वतः।
क्रूरस्य निश्चयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः।। १०।।
एवमुक्ता तु सरमा सीतया वेपमानया।
कथितं सर्वमाचष्ट रावणस्य समन्त्रिणः।। ११।।

सीता ने उस प्रियभाषी सरमा को लौट कर आया हुआ देख कर उसे प्यार से छाती से लगाया और स्नेह से उसे स्वयं बैठने को आसन दिया और कहा कि यहाँ आराम से बैठ कर तुम मुझे सारी बातें ठीक-ठीक बताओ कि उस दुष्ट और क्रूर रावण का क्या निश्चय है? काँपती हुई सीता के यह कहने पर सरमा ने उसे मंत्रियों सहित रावण की कही हुई सारी बातें बताईं।

जनन्या राक्षसेन्द्रो वै त्वन्मोक्षार्थं बृहद्वचः।
अतिस्निग्धेन वैदेहि मन्त्रिवृद्धेन चोदितः।। १२।।
दीयतामभिसत्कृत्य मनुजेन्द्राय मैथिली।
निदर्शनं ते पर्याप्तं जनस्थाने यदद्भुतम्।। १३।।

हे वैदेही! उसकी माता ने और उससे बहुत प्रेम करने वाले एक बूढ़े मंत्री ने तुम्हें छोड़ देने के लिये उसे बहुत बातें कहीं और प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि उस मानवेन्द्र राम का सत्कार कर सीता को उसे दे दो। जनस्थान में जो अद्‌भुद घटना हुई, वही तुम्हारे लिये राम का पराक्रम जानने के लिये पर्याप्त उदाहरण है।

एवं स मन्त्रिवृद्धैश्च मात्रा च बहुबोधितः।
न त्वामुत्सहते मोक्तुमर्थमर्थपरो यथा।। १४।।
नोत्सहत्यमृतो मोक्तुं युद्धे त्वामिति मैथिलि।
सामात्यस्य नृशंसस्य निश्चयो ह्येष वर्तते।। १५।।
तदेषा सुस्थिरा बुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता।
भयान्न शक्तस्त्वां मोक्तुमनिरस्तः स संयुगे।। १६।।
राक्षसानां च सर्वेषामात्मनश्च वधेन हि।
निहत्य रावणं संख्ये सर्वथा निशितैः शरैः।
प्रतिनेष्यति रामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे।। १७।।

इस प्रकार से उसे बूढ़े मंत्रियों ने और उसकी माता ने बहुत समझाया, पर वह तुम्हें वैसे ही नहीं छोड़ना चाहता जैसे लोभी धन को। हे मैथिली! वह बिना युद्ध में मरे तुम्हें नहीं छोड़ेगा। मंत्रियों सहित उस क्रूर का यही निश्चय है। वह सारे राक्षसों के और अपने वध के भय से तुम्हें नहीं छोड़ेगा, जब तक वह युद्ध में मारा न जाये। उसके मन में मृत्यु के लिये लोभ हो गया है, इसलिये उसने इस प्रकार की निश्चित बुद्धि की हुई है। इसलिये हे काले नेत्रों वाली! राम अपने तीखे बाणों से युद्ध में रावण को पूरी तरह से मार कर तुम्हें अयोध्या को वापिस ले जायेंगे।

तेईसवाँ सर्ग

माल्यवान का रावण को संधि के लिये समझाना और रावण द्वारा नगर की रक्षा का प्रबन्ध।

तेन शङ्खविमिश्रेण भेरीशब्देन नादिना।
उपयाति महाबाहू रामः परपुरंजयः।। १।।
तं निनादं निशम्याथ रावणो राक्षसेश्वरः।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय सचिवानभ्युदैक्षत।। २।।

अथ तान् सचिवांस्तत्र सर्वानाभाष्य रावणः।
सभां संनादयन् सर्वामित्युवाच महाबलः।। ३।।
जगत्संतापनः क्रूरोऽगर्हयन् राक्षसेश्वरः।

तब अर्थात् सेना का पड़ाव डालने के पश्चात् शत्रु के नगर पर विजय पाने वाले, लम्बी भुजाओं वाले श्रीराम उस समय केवल शंखध्वनि से युक्त तुमुल नाद करने वाले नगाड़े की ध्वनि से ही लंका पर आक्रमण कर रहे थे। अर्थात् वानर सेना के द्वारा बजाये जाने वाले शंखों और नगाड़ों की ध्वनि लंका में जाकर गूँज रही थी। उस गम्भीर ध्वनि को सुन कर राक्षसों के स्वामी रावण ने एक मुहूर्त तक सोचा और अपने मंत्रियों की तरफ देखा। फिर संसार को संतप्त करने वाला क्रूर और महाबली राक्षसेश्वर रावण, किसी की भी निन्दा न करते हुए उस सारी सभा को प्रति ध्वनित करता हुआ उन सचिवों को सम्बोधित करके बोला कि—

तरणं सागरस्यास्य विक्रमं बलपौरुषम्।। ४।।
यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तन्मया श्रुतम्।
भवतश्चाप्यहं वेद्मि युद्धे सत्यपराक्रमान्।। ५।।
तूष्णीकानीक्षतोऽन्योन्यं विदित्वा रामविक्रमम्।
ततस्तु सुमहाप्राज्ञो माल्यवान् नाम राक्षसः।। ६।।
रावणस्य वचः श्रुत्वा इति मातामहोऽब्रवीत्।
विद्यास्वभिविनीतो यो राजा राजन् नयानुगः।। ७।।
स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे।

आप लोगों ने समुद्र का पार करना आदि राम का जो बल, पराक्रम और पौरुष वर्णन किया है, उसे मैंने सुन लिया है। किन्तु आप लोगों को भी, जो राम के पराक्रम को जान कर एक दूसरे की तरफ देखते हुए खामोश हैं, मैं युद्ध में सत्य पराक्रमी जानता हूँ। तब रावण की बात सुन कर महान विद्वान माल्यवान नाम का राक्षस, जो रावण का मामा था, बोला कि हे राजन्, जो राजा विद्याओं में निष्णात होता है और नीति के अनुसार आचरण करता है, वह लम्बे समय तक ऐश्वर्य पर शासन करता है और अपने शत्रुओं को वश में कर लेता है।

संदधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह।। ८।।
स्वपक्षे वर्धनं कुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते।
हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा संधिः समेन च।। ९।।
न शत्रुमवमन्येत ज्यायान् कुर्वीत विग्रहम्।
तन्मह्यं रोचते संधिः सह रामेण रावण।। १०।।
यदर्थमभियुक्तोऽसि सीता तस्मै प्रदीयताम्।

जो समय को देख कर शत्रुओं के साथ सन्धि भी कर लेता है और युद्ध भी करता है, वह अपने पक्ष को बढ़ाता हुआ महान ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। कमजोर राजा को संधि कर लेनी चाहिये और बराबर वाले के साथ भी संधि कर लेनी चाहिये। जब शक्ति में स्वयं अधिक हो तब युद्ध करना चाहिये। शत्रु की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसलिये हे रावण! मुझे तो यही अच्छा लगता है कि तुम राम के साथ संधि कर लो और जिसके कारण से तुम्हारे ऊपर आक्रमण किया जा रहा है, उस सीता को दे दो।

नहि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः।। ११।।
येन बद्धः समुद्रे च सेतुः स परमाद्भुतः।
कुरुष्व नरराजेन संधिं रामेण रावण।। १२।।
तत् तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः।। १३।।
स बद्ध्वा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः।
अमर्षात् परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत्।। १४।।

दृढ़ पराक्रम वाले ये राम सामान्य मनुष्य नहीं हैं, जिन्होंने समुद्र पर इतना अद्भुत बाँध बना दिया। हे रावण! इसलिये उस नरराज राम के साथ संधि कर लो। माल्यवान की इन हितकारी बातों को काल के वश में आये हुए दुष्टात्मा दशानन ने सहन नहीं किया। क्रोध के बस में होकर उसकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं। असहनशीलता से उनके नेत्र घूमने लगे। वह माल्यवान से बोला कि—

हितबुद्ध्या यदहितं वचः परुषमुच्यते।
परपक्षं प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रगतं मम।। १५।।
समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनाश्रयम्।
हीनं मां मन्यसे केन अहीनं सर्वविक्रमैः।। १६।।
वीरद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः।
त्वयाहं परुषाण्युक्तो परप्रोत्साहनेन वा।। १७।।
प्रभवन्तं पदस्थं हि परुषं कोऽभिभाषते।
पण्डितः शास्त्रतत्त्वज्ञो विना प्रोत्साहनेन वा।। १८।।

तुमने मेरे हित की बुद्धि से जो मेरे अहित की कठोर बात शत्रुपक्ष का आश्रय लेकर ही कही है, वह मेरे कानों में अभी तक पहुँची नहीं है। जिसे पिता ने छोड़ दिया, जो वन में रहता है, उस राम को तुम किस लिये शक्तिशाली मानते हो? मैं जो सारे पराक्रमों से युक्त हूँ, उस मुझे तुम किसकी अपेक्षा हीन समझते हो। तुमने मुझे जो कठोर वचन कहे हैं, वे मैं समझता

हूँ कि इसलिये कहे हैं, क्योंकि या तो तुम्हें मुझ जैसे वीर से द्वेष है, या तुम्हारा शत्रु के प्रति पक्षपात है, या शत्रु ने तुम्हें ऐसा कहने के लिये प्रोत्साहित किया है। जो राजा के पद पर बैठा हुआ है, जो प्रभावशाली है, जो पण्डित और शास्त्रों को जानने वाला है उसे बिना किसी के प्रोत्साहन के कौन ऐसे कठोर वचन सुना सकता है?

आनीय च वनात् सीताम् राघवस्य भयादहम्।
किमर्थं प्रतिदास्यामि ससुग्रीवं सलक्ष्मणम्।। १९।।
पश्य कैश्चिदहोभिश्च राघवं निहतं मया।
द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित्।। २०।।
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः।
यदि तावत् समुद्रे तु सेतुर्बद्धो यदृच्छया।। २१।।
रामेण विस्मयः कोऽत्र येन ते भयमागतम्।
स तु तीर्त्वार्णवं रामः सह वानरसेनया।। २२।।
प्रतिजानामि ते सत्यं न जीवन् प्रतियास्यति।

वन से सीता को लाकर अब राम के भय से मैं उसे क्यों वापिस करूँ? तुम कुछ दिनों में ही सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ सबको मेरे द्वारा मरा हुआ देखना। यह मुझमें स्वाभविक दोष है कि मैं दो भागों में काटा जाने पर भी किसी के आगे नहीं झुकूँगा। स्वभाव का बदलना बहुत कठिन है। यदि राम ने समुद्र पर अचानक बाँध बाँध दिया तो इसमें कौन से आश्चर्य की बात है, जो तुम्हें भय प्राप्त हो गया? मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि वानर सेना के साथ समुद्र को पार कर आये हुए राम जीवित वापिस नहीं लौटेंगे।

एवं ब्रुवाणं संरब्धे रुष्टं विज्ञाय रावणम्।। २३।।
व्रीडितो माल्यवान् वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत।
जयाशिषा तु राजानं वर्धयित्वा यथोचितम्।। २४।।
माल्यवानभ्यनुज्ञातो जगाम स्वं निवेशनम्।
रावणस्तु सहामात्यो मन्त्रयित्वा विमृश्य च।। २५।।
लङ्कायास्तु तदा गुप्तिं कारयामास राक्षसः।

ऐसा कहते हुए रावण को परेशान और क्रोध में भरा हुआ जान कर माल्यवान लज्जित हो कर कुछ नहीं बोला। उसने यथायोग्य राजा का जय जयकार किया और फिर वह माल्यवान रावण की आज्ञा लेकर अपने घर चला गया। तब रावण ने मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा और विचार कर लंका की सुरक्षा का प्रबन्ध किया।

व्यादिदेश च पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारि राक्षसम्।। २६।।
दक्षिणस्यां महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ।
पश्चिमायामथ द्वारि पुत्रमिन्द्रजितं तदा।। २७।।
व्यादिदेश महामायं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम्।
उत्तरस्यां पुरद्वारि व्यादिदश शुकसारणौ।। २८।।
स्वयं चात्र गमिष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ह।
राक्षसं तु विरूपाक्षं महावीर्यपराक्रमम्।। २९।।
मध्यमेऽस्थापयद् गुल्मे बहुभिः सह राक्षसैः।
एवं विधानं लङ्कायां कृत्वा राक्षसपुंगवः।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः।। ३०।।

उसने पूर्व के द्वार पर प्रहस्त राक्षस को खड़ा किया, दक्षिण के द्वार पर महातेजस्वी महापार्श्व और महोदर को लगाया, पश्चिम के द्वार पर अपने पुत्र इंद्रजित को नियुक्त किया जो अनेक प्रकार की माया से युक्त और बहुत सारे राक्षसों से घिरा हुआ था। उत्तर के द्वार के लिये शुक और सारण को आदेश देकर अपने उन मंत्रियों से बोला कि मैं भी उत्तर के द्वार पर जाऊँगा। उसने महान वीर्य और पराक्रमी विरूपाक्ष को मध्य स्थान पर बहुत सारे राक्षसों के समूहों के साथ स्थापित किया। लंका की रक्षा का इस प्रकार प्रबन्ध कर काल से प्रेरित रावण अपने आप को कृतकृत्य मानने लगा।

चौबीसवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीराम से रावण द्वारा किये गये लंका की रक्षा के प्रबन्ध का वर्णन तथा श्रीराम द्वारा लंका के विभिन्न द्वारों पर आक्रमण के लिये अपने सेनापतियों की नियुक्ति।

नरवानरराजानौ स तु वायुसुतः कपिः।
जाम्बवानृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषणः।। १।।
अङ्गदो वालिपुत्रश्च सौमित्रिः शरभः कपिः।
सुषेणः सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च।। २।।
गजो गवाक्षः कुमुदो नलोऽथ पनसस्तथा।
अमित्रविषयं प्राप्ताः समवेताः समर्थयन्।। ३।।

कार्यसिद्धिं पुरस्कृत्य मन्त्रयध्वं विनिर्णये।
अथ तेषु ब्रुवाणेषु रावणावरजोऽब्रवीत्।। ४।।
वाक्यमग्राम्यपदवत् पुष्कलार्थं विभीषणः।

शत्रु के स्थान में पहुँचे हुए नरराजा राम, वानरराज सुग्रीव पवनपुत्र हनुमान, जाम्बवान ऋक्षों का राजा, राक्षस विभीषण, बालिपुत्र अंगद, सुमित्रापुत्र लक्ष्मण, वानर शरभ, बान्धवों के साथ सुषेण, मैन्द और द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस ये सारे एकत्र होकर विचार करने लगे और कहने लगे कि अब कार्य सिद्धि को सामने रख कर उपाय के लिये मन्त्रणा करो। उनके परस्पर ऐसा कहते हुए रावण का छोटा भाई विभीषण सुसंस्कृत और अर्थगर्भित वाक्य बोला कि–

अनलः पनसश्चैव सम्पातिः प्रमतिस्तथा।। ५।।
गत्वा लङ्कां ममामात्याः पुरीं पुनरिहागताः।
विधानं विहितं यच्च तद् दृष्ट्वा समुपस्थिताः।। ६।।
संविधानं यथाहुस्ते रावणस्य दुरात्मनः।
राम तद् ब्रुवतः सर्वं याथातथ्येन मे शृणु।। ७।।
पूर्वं प्रहस्तः सबलो द्वारमासाद्य तिष्ठति।
दक्षिणं च महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ।। ८।।

अनल, पनस, सम्पाती और प्रमति नाम के मेरे मंत्री लंका में जाकर फिर वहाँ से लौट कर आये हैं। वे वहाँ सुरक्षा की जो व्यवस्था की गयी है, उसे देखकर उपस्थित हुए हैं। हे राम! उस दुष्ट रावण की जो व्यवस्था उन्होंने बताई है, उसे वैसा ही मेरे द्वारा बताये जाने पर आप सुनिये। लंका के पूर्वी द्वार पर बलवान प्रहस्त विद्यमान है। दक्षिणी द्वार पर महा तेजस्वी महापार्श्व और महोदर विद्यमान हैं।

इन्द्रजित् पश्चिमं द्वारं राक्षसैर्बहुभिर्वृतः।
नानाप्रहरणैः शूरैरावृतो रावणात्मजः।। ९।।
राक्षसानां सहस्रैस्तु बहुभिः शस्त्रपाणिभिः।
उत्तरं नगरद्वारं रावणः स्वयमास्थितः।। १०।।
विरूपाक्षस्तु महता शूलखड्गधनुष्मता।
बलेन राक्षसैः सार्धं मध्यमं गुल्ममाश्रितः।। ११।।
एतानेवं विधान् गुल्माँल्लङ्कायां समुदीक्ष्य ते।
मामका मन्त्रिणः सर्वे शीघ्रं पुनरिहागताः।। १२।।

रावण का पुत्र इन्द्रजित बहुत से सशस्त्र वीर राक्षसों से घिरा हुआ पश्चिमी द्वार पर खड़ा हुआ है। अनेक हजार शस्त्रधारी राक्षसों के साथ नगर के उत्तरी द्वार पर रावण स्वयं खड़ा हुआ है। विरूपाक्ष बहुत से शूल, खड्ग और धनुर्धारी राक्षसों के साथ नगर के बीच में विद्यमान है। मेरे सारे मंत्री इन और इस प्रकार की सैनिक क्रियाओं को देखकर शीघ्रता से पुनः यहाँ आये हैं।

एतां प्रवृत्तिं लङ्कायां मन्त्रिप्रोक्तां विभीषणः।
एवमुक्त्वा महाबाहू राक्षसांस्तानदर्शयत्।। १३।।
लङ्कायां सचिवैः सर्वं रामाय प्रत्यवेदयत्।
रामं कमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत्।। १४।।
रावणावरजः श्रीमान् रामप्रियचिकीर्षया।
तद्भवांश्चतुरङ्गेण बलेन महता वृतम्।। १५।।
व्यूह्येदं वानरानीकं निर्मथिष्यसि रावणम्।
रावणावरजे वाक्यमेवं ब्रुवति राघवः।। १६।।
शत्रूणां प्रतिघातार्थमिदं वचनमब्रवीत्।

महाबाहु विभीषण ने मंत्रियों के द्वारा कही हुई लंका की इस अवस्था को बता कर उन राक्षसों को उन्हें दिखाया और उनके द्वारा लंका का समाचार पुनः राम के सामने कहलाया। उसके बाद राम का प्रिय करने की इच्छा से श्रीमान रावण के छोटे भाई ने उन कमल नयन से यह कहा कि आप महान चतुरंगिणी सेना से घिरे हुए रावण को वानर सेना का व्यूह बनाकर ही नष्ट कर सकेंगे। तब रावण के अनुज के द्वारा यह कहे जाने पर, शत्रु को परास्त करने के लिये श्रीराम ने यह कहा कि–

पूर्वद्वारं तु लङ्काया नीलो वानरपुङ्गवः।। १७।।
प्रहस्तं प्रतियोद्धा स्याद् वानरैर्बहुभिर्वृतः।
अङ्गदो वालिपुत्रस्तु बलेन महता वृतः।। १८।।
दक्षिणे बाधतां द्वारे महापार्श्वमहोदरौ।
हनूमान् पश्चिमद्वारं निष्पीड्य पवनात्मजः।। १९।।
प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिः कपिभिर्वृतः।

लंका के पूर्व द्वार पर वानरश्रेष्ठ नील बहुत सारे वानरों के साथ प्रहस्त का सामना करेंगे। बहुत सारी सेना से घिरा हुआ बालिपुत्र अंगद दक्षिणी द्वारा पर महापार्श्व और महोदर को रोके। अमित आत्मबल से युक्त वायुपुत्र हनुमान बहुत सारे वानरों के साथ पश्चिमी द्वार को तोड़ कर उसमें प्रवेश करें।

परिक्रमति यः सर्वाल्लोँकान् संतापनयन् प्रजाः।। २०।।
तस्याहं राक्षसेन्द्रस्य स्वयमेव वधे धृतः।
उत्तरं नगरद्वारमहं सौमित्रिणा सह।। २१।।
निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामि सबलो यत्र रावणः।
वानरेन्द्रश्च बलवानृक्षराजश्च वीर्यवान्।। २२।।
राक्षसेन्द्रानुजश्चैव गुल्मे भवतु मध्यमे।
स रामः कृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वा विभीषणम्।
सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान् प्रभुः।। २३।।

जो प्रजा को संताप देता हुआ सारे लोकों में घूमता रहता है, उस राक्षसराज के वध के लिये मैं स्वयं निश्चय करके उत्तरी द्वार पर सुमित्रापुत्र लक्ष्मण के साथ उस द्वार को तोड़ कर वहीं प्रवेश करूँगा, जहाँ वह रावण सेना के साथ विद्यमान है। वानरों के राजा बलवान सुग्रीव, ऋक्षों के राजा वीर्यवान जाम्बवान, और राक्षसेन्द्र के अनुज विभीषण सेना के बीच में रहें। कार्य की सिद्धि के लिये विभीषण से यह कह कर बुद्धिमान और समर्थ श्रीराम ने सुवेल पर्वत पर चढ़ने पर विचार किया।

पच्चीसवाँ सर्ग

श्रीराम का प्रमुख वानरों के साथ सुवेल पर्वत पर चढ़कर वहाँ रात में निवास करना।

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति।
लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत्।। १।।
विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम्।
मन्त्रज्ञं च विधिज्ञं च श्लक्ष्णया परया गिरा।। २।।

सुवेल पर्वत पर चढ़ने पर विचार कर, पीछे जाते हुए लक्ष्मण के साथ श्रीराम सुग्रीव से और अपने प्रेमी धर्मज्ञ विभीषण से जो मन्त्रवेत्ता और नियमों के जानकार थे, उत्तम और मधुर वाणी में यह बोले कि–

सुवेलं साधु शैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम्।
अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम्।। ३।।
लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः।
येन मे मरणान्ताय हृता भार्या दुरात्मना।। ४।।
येन धर्मो न विज्ञातो न वृत्तं न कुलं तथा।
राक्षस्या नीचया बुद्ध्या येन तद् गर्हितं कृतम्।। ५।।

सैकड़ों धातुओं से युक्त यह सुवेल पर्वत अच्छा है। हम सब आज इस पर चढ़ते हैं। यह रात्रि वहीं बितायेंगे। जिस दुष्ट राक्षस ने अपनी मृत्यु के लिये मेरी पत्नी का हरण किया है उसके घर लंका को भी देख लेंगे। उस राक्षस ने न तो धर्म का विचार किया न चरित्र का और न अपने कुल का। उसने नीच राक्षसी बुद्धि से यह निन्दनीय कार्य किया है।

तस्मिन् मे वर्तते रोषः कीर्तिते राक्षसाधमे।
यस्यापराधान्नीचय वधं द्रक्ष्यामि रक्षसाम्।। ६।।
एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति।। ७।।
एवं सम्मन्त्रयन्नेव सक्रोधो रावणं प्रति।
रामः सुवेलं वासाय चित्रसानुमुपारुहत्।। ८।।

उस दुष्ट का नाम लेते ही मेरा क्रोध बढ़ जाता है, जिस नीच के अपराध से मुझे सारे राक्षसों का वध देखना पड़ेगा। मृत्यु के वश में होकर एक व्यक्ति पाप कर्म करता है, पर उस नीच के अपने किये हुए पाप से उसका सारा कुल नष्ट हो जाता है। इस प्रकार रावण के प्रति क्रोध के साथ मन्त्रणा करते हुए राम निवास करने के लिये खुवेल पर्वत के सुन्दर शिखर पर चढ़ गये।

तमन्वारोहत् सुग्रीवः सामात्यः सविभीषणः।
हनुमानङ्गदो नीलो मैन्दो द्विविद एव च।। ९।।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः।
पनसः कुमुदश्चैव हरो रम्भश्च यूथपः।। १०।।
जाम्बवांश्च सुषेणश्च ऋषभश्च महामतिः।
दुर्मुखश्च महातेजास्तथा शतवलिः कपिः।। ११।।
एते चान्ये च बहवो वानराः शीघ्रगामिनः।
ते वायुवेगप्रवणास्तं गिरिं गिरिचारिणः।। १२।।

उनके पीछे सुग्रीव मंत्रियों सहित, विभीषण, हनुमान, अंगद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, हर, यूथपति, रम्भ, जाम्बवान्, सुषेण, महामति ऋषभ, महा तेजस्वी दुर्मुख और वानर शतबलि तथा दूसरे पर्वतों पर चलने वाले, वायु वेग के समान शीघ्रगामी वानर पर्वत पर चढ़ गये।

ददृशुः शिखरे तस्य विषक्तामिव खे पुरीम्।
तां शुभां प्रवरद्वारां प्राकारवरशोभिताम्।। १३।।
लङ्कां राक्षससम्पूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः।
प्राकारवरसंस्थैश्च तथा नीलैश्च राक्षसैः।। १४।।
ददृशुस्ते हरिश्रेष्ठाः प्राकारमपरं कृतम्।
ते दृष्ट्वा वानराः सर्वे राक्षसान् युद्धकाङ्क्षिणः।। १५।।
मुमुचुर्विविधान् नादांस्तस्य रामस्य पश्यतः।
ततोऽस्तमगमत् सूर्यः संध्यया प्रतिरञ्जितः।
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समतिवर्तत।। १६।।

उन वानर यूथपतियों ने उस शिखर पर से, राक्षसों से भरी हुई, उस लंका पुरी को देखा जो मानो आकाश

से चिपटी हुई थी। उसके द्वार उत्तम और सुन्दर थे और वह उत्तम परकोटे से घिरी हुई थी। उस उत्तम परकोटे पर खड़े हुए काले रंग के राक्षसों से, वानरों ने देखा कि मानो उस परकोटे पर एक दूसरा परकोटा बना हुआ था। उन राक्षसों को युद्ध का इच्छुक देखकर वे सारे वानर राम के सामने ही तरह-तरह के सिंह नाद करने लगे। तभी संध्या की लाली से रँगा हुआ सूर्य अस्ताचल को चला गया और पूर्ण चन्द्रमा से जगमगाने वाली रात्रि आ गयी।

ततः स रामो हरिवाहिनीपति-
विभीषणेन प्रतिनन्द्य सत्कृतः।
सलक्ष्मणो यूथपयूथसंवृतः
सुवेलपृष्ठे न्यवसद् यथासुखम्।। १७।।

तब वानरसेना के स्वामी राम ने विभिषण से सादर सम्मानित हो, लक्ष्मण के साथ और यूथपतियों के समुदाय के साथ वहाँ सुवेल पर्वत की पीठ पर सुख पूर्वक निवास किया।

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीराम का सुवेल पर्वत से लंकापुरी का निरीक्षण करना।

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरियूथपाः।
लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च।। १।।
समसौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च।
दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभुवुर्जातविस्मयाः।। २।।
विचित्रकुसुमोपेतै रक्तकोमलपल्लवैः।
शाद्वलैश्च तथा नीलैश्चित्राभिर्वनराजिभिः।। ३।।

उन वीर वानर यूथपतियों ने, जिन्होंने सुवेल पर्वत पर अपनी रात्रि को व्यतीत किया, वहाँ से लंका के वनों और उपवनों को देखा। उन्हें देख कर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ, क्योंकि वे चौरस, शान्त, सुन्दर, विशाल और आयताकार थे। वे विचित्र पुष्पों से युक्त, लाल और कोमल पत्तों वाले, सुन्दर वृक्ष समूहों और हरी भरी घासों से सुशोभित थे।

प्रासादैश्च विमानैश्च लंका परमभूषिता।
घनैरिवातपापाये मध्यमं वैष्णवं पदम्।। ४।।
यस्यां स्तम्भसहस्रेण प्रासादः समलंकृतः।
कैलासशिखराकारो दृश्यते खमिवोल्लिखन्।। ५।।
चैत्यः स राक्षसेन्द्रस्य बभूव पुरभूषणम्।
शतेन रक्षसां नित्यं यः समग्रेण रक्ष्यते।। ६।।

लंका नगर प्रासादों और सात मंजिले भवनों से उसी प्रकार सुशोभित हो रही थी, जैसे ग्रीष्म ऋतु के अन्त के समय भूमि के समीप का आकाश बादलों की छटा से सुशोभित होता है। उस लंका में हजार खम्बों पर बना हुआ एक विशाल प्रासाद दिखाई दे रहा था, जो आकाश को स्पर्श करता हुआ कैलास पर्वत के समान प्रतीत होता था। राक्षसराज रावण का वह भवन उस नगरी का भूषण था। उसकी सौ राक्षस सब प्रकार से रक्षा करते थे।

नानाधातुविचित्रैश्च उद्यानैरुपशोभिताम्।
नानाकुसुमसम्पन्नां नानाराक्षसमसेविताम्।। ७।।
तां समृद्धां समृद्धार्थां लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः।
रावणस्यपुरीं रामो ददर्श सह वानरैः।। ८।।
तां महागृहसम्बाधां दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः।
नगरीं त्रिदिवप्रख्यां विस्मयं प्राप वीर्यवान्।। ९।।

वह लंका नगरी अनेक प्रकार की सुन्दर धातुओं से और अनेक प्रकार के उद्यानों से सुशोभित थी। वह अनेक प्रकार के फूलों से सम्पन्न थी। राक्षस लोग बड़ी संख्या में वहाँ रहकर उसकी सेवा करते थे। धन धान्य से भरपूर और ऐश्वर्य से सम्पन्न उस रावण की नगरी को लक्ष्मण के बड़े भाई सौन्दर्यशाली राम ने वानरों के साथ देखा। विशाल भवनों से भरी हुई, स्वर्ग के समान सुन्दर उस नगरी को देख कर वे तेजस्वी लक्ष्मण के अग्रज आश्चर्य को प्राप्त हो गये।

सत्ताईसवाँ सर्ग

सुग्रीव और रावण का मल्लयुद्ध।

तस्य गोपुरशृङ्गस्थं राक्षसेन्द्रं दुरासदम्।
श्वेतचामरपर्यन्तं विजयच्छत्रशोभितम् ।। १।।
रक्तचन्दनसंलिप्तं रत्नाभरणभूषितम्।
नीलजीमूतसंकाशं हेमसंछादिताम्बरम्।। २।।
शशलोहितरागेण संवीतं रक्तवाससा।। ३।।
संध्यातपेन संछन्नं मेघराशिमिवाम्बरे।

उस लंका के नगर द्वार की छत पर उन्होंने उस दुष्ट राक्षस राज को विद्यमान देखा। उसके ऊपर सफेद चँवर डुलाये जा रहे थे, और सिर पर विजय नाम का राजच्छत्र सुशोभित हो रहा था। उसने शरीर पर लाल चन्दन का लेप किया हुआ था और रत्नयुक्त आभूषण धारण किये हुए थे। वह काले बादलों के समान दिखाई दे रहा था। उसके वस्त्रों पर सुनहला काम किया हुआ था। खरगोश के खून के समान लाल वस्त्र धारण कर वह संध्या की लाली से युक्त आकाश में बादलों के समूह जैसा जान पड़ रहा था।

पश्यतां वानरेन्द्राणां राघवस्यापि पश्यतः।। ४।।
दर्शनाद् राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीवः सहसोत्थितः।
क्रोधवेगेन संयुक्तः सत्त्वेन च बलेन च।। ५।।
अचलाग्रादथोत्थाय पुप्लुवे गोपुरस्थले।
स्थित्वा मुहूर्तं सम्प्रेक्ष्य निर्भयेनान्तरात्मना।। ६।।
तृणीकृत्य च तद् रक्षः सोऽब्रवीत् परुषं वचः।

राक्षसराज को देख कर सुग्रीव अचानक उठ कर खड़े हो गये और वानर प्रमुखों के देखतें हुए तथा श्रीराम के भी देखते हुए क्रोधावेश से युक्त होकर तथा शारीरिक और मानसिक बल से प्रेरित होकर वे उस पर्वत के शिखर से उड़ कर नगर द्वार की उस छत पर पहुँच गये। वहाँ कुछ क्षण ठहर कर, निर्भय चित्त से उसे देख कर फिर उस राक्षस को तिनके के समान समझते हुए वे कठोर वाणी में बोले कि–

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस।। ७।।
न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा।
इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पुप्लुवे तस्य चोपरि।। ८।।
आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयामास तद् भुवि।
समीक्ष्य तूर्णमायान्तं बभाषे तं निशाचरः।। ९।।
सुग्रीवस्त्वं परोक्षं मे हीनग्रीवो भविष्यसि।
इत्युक्त्वोत्थाय तं क्षिप्रं बाहुभ्यामाक्षिपत् तले।। १०।।
कन्दुवत् स समुत्थाय बाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः।

हे राक्षस! मैं संसार के स्वामी राम का मित्र और सेवक हूँ। उन महाराज के तेज की शक्ति से आज तू मेरे हाथों से छूट नहीं सकेगा। ऐसा कह कर एकदम उछल कर उन्होंने उस पर आक्रमण कर दिया और उसके विचित्र मुकुट को खींच कर भूमि पर फेंक दिया। तेजी से अपने ऊपर आक्रमण करते हुए उसे देख कर वह राक्षस बोला कि तू मेरी आँखों से दूर था, इसीलिये अच्छी गर्दन वाला था, पर अब तू मेरे सामने आकर बिना गर्दन वाला हो जाएगा। ऐसा कह कर उसने शीघ्रता से अपनी दोनों भुजाओं से उसे उठा कर भूमि पर फेंक दिया। तब सुग्रीव ने भी गेंद की तरह से उछल कर खड़े होकर उसे दोनों हाथों से उठा कर दे मारा।

परस्परं स्वेदविदिग्धगात्रौ
परस्परं शोणितरक्तदेहौ।
परस्परं श्लिष्टनिरुद्धचेष्टौ
परस्परं शाल्मलिकिंशुकाविव।। ११।।

इस प्रकार आपस में मल्लयुद्ध करते हुए उन दोनों के शरीर पसीने से नहाये हुए और खून से लथपथ हो रहे थे। दोनों ने ही एक दूसरे को जकड़ कर उसकी चेष्टाओं को रोक दिया था। वे परस्पर गुँथे हुए सेमल और पलाश के वृक्षों के समान प्रतीत हो रहे थे।

मुष्टिप्रहारैश्च तलप्रहारै–
रत्निघातैश्च कराग्रघातैः।
तौ चक्रतुर्युद्धमसह्यरूपं
महाबलौ राक्षसवानरेन्द्रौ।। १२।।

दोनों ही महा बलवान राक्षसराज और वानरराज घूँसों के प्रहार से, हथेलियों के आघात से, कोहनी की चोट से और पंजो की मार से उस असह्य युद्ध को कर रहे थे।

कृत्वा नियुद्धं भृशमुग्रवेगौ
कालं चिरं गोपुरवेदिमध्ये।
उत्क्षिप्य चोत्क्षिप्य विनम्य देहौ
पादक्रमाद् गोपुरवेदिलग्नौ।। १३।।

अत्यन्त उग्रवेग वाले वे दोनों बहुत देर तक मल्लयुद्ध करके, नगर द्वार की उस छत पर बनी हुई वेदी पर

एक दूसरे को उछालते हुए, एक दूसरे के शरीर को झुकाते हुए, तरह-तरह से पैरों को चलाते हुए, उस वेदी की भूमि से जा लगे।

आलिङ्ग्य चालिङ्ग्य च बाहुयोक्तैः
संयोजयामासतुराहवे तौ।
संरम्भशिक्षाबलसम्प्रयुक्तौ
सुचेरतुः सम्प्रति युद्धमार्गैः।। १४।।

फिर वे युद्ध में एक दूसरे को छाती से दबाकर हाथों की जकड़ में जकड़ने लगे। वे दोनों ही फुर्ती, शिक्षा, और बल से सम्पन्न थे। दोनों ही तरह-तरह के दाँव पेचों का प्रयोग कर रहे थे।

शार्दूलसिंहाविव जातदंष्ट्रौ
गजेन्द्रपोताविव सम्प्रयुक्तौ।
संहत्य संवेद्य च तौ कराभ्यां
तौ पेततुर्वै युगपद् धरायाम्।। १५।।

जिनके अभी-अभी दाँत निकले हैं, ऐसे बाघ और सिंह के या हाथी के छोटे बच्चे के समान परस्पर लड़ते हुए, हाथों से एक दूसरे को दबाते हुए और प्रहार करते हुए वे दोनों एक साथ ही भूमि पर गिर पड़े।

उद्यम्य चान्योन्यमधिक्षिपन्तौ
संचक्रमाते बहु युद्धमार्गे।
व्यायामशिक्षाबलसम्प्रयुक्तौ
क्लमं न तौ जग्मतुराशु वीरौ।। १६।।

वे दोनों ही व्यायाम करने वाले तथा युद्ध की शिक्षा और शक्ति से सम्पन्न थे। वे दोनों वीर जल्दी ही थकने वाले नहीं थे। वे दोनों विजय के लिये प्रयत्न करते हुए, एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए, युद्ध के बहुत सारे तरीकों का प्रयोग कर रहे थे।

बाहूत्तमैर्वारणवारणाभै-
र्निवारयन्तौ परवारणाभौ।
चिरेण कालेन भृशं प्रयुद्धौ
संचेरतुर्मण्डलमार्गमाशु ।। १७।।

मस्त हाथी के समान वे दोनों, हाथी की सूँड के समान अपने उत्तम हाथों से एक दूसरे का निवारण करते हुए, पैतरों को जल्दी-जल्दी बदलते हुए, देर तक उस महान युद्ध में लगे रहे।

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यसूदने।
मार्जाराविव भक्षार्थे अवस्थाते मुहुर्मुहुः।। १८।।
मण्डलानि विचित्राणि स्थानानि विविधानि च।
गोमूत्रकाणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च।। १९।।
एतस्मिन्नन्तरे रक्षो मायाबलमथात्मनः।
आरब्धुमुपसम्पेदे ज्ञात्वा तं वानराधिपः।। २०।।
उत्पपात तदाऽऽकाशं जितकाशी जितक्लमः।
रावणः स्थित एवात्र हरिराजेन वञ्चितः।। २१।।

खाने के लिये लड़ते हुए दो विलावों के समान वे बार-बार एक दूसरे पर गुर्राते हुए खड़े हो जाते थे और एक दूसरे पर आक्रमण कर उसे मार डालने का प्रयत्न करते थे। वे विचित्र तरह के मण्डलों और अनेक तरह के स्थानों का प्रयोग करते हुए गोमूत्र की रेखा के समान टेढ़ी चाल से कभी आगे बढ़ते ओर कभी पीछे हटते थे। इसी बीच में वह राक्षस माया के अर्थात छल कपट के तरीकों का प्रयोग करने लगा। तब विजयाभिमानी तथा थकावट से रहित वे वानरों के राजा सुग्रीव यह जान कर एक दम आकाश में उड़ कर चल दिये और उनसे बिछुड़ा हुआ वह रावण अकेला ही खड़ा रह गया।

अथ हरिवरनाथः प्राप्तसंग्रामकीर्ति-
र्निशिचरपतिमाजौ योजयित्वा श्रमेण।
गगनमतिविशालं लङ्घयित्वार्कसूनु-
र्हरिगणबलमध्ये रामपार्श्वं जगाम।। २२।।

इस प्रकार वह वानर राज और सूर्यपुत्र सुग्रीव, संग्राम में कीर्ति को प्राप्त कर और राक्षसों के स्वामी रावण को युद्ध में थका कर, विशाल आकाश को लाँघकर वानरों की सेना के बीच में राम के समीप पहुँच गये।

अट्ठाईसवाँ सर्ग

श्रीराम का सुग्रीव को दुस्साहस से रोकना। लंका के चारों द्वारों पर वानर सैनिकों की नियुक्ति। राजदूत अंगद का रावण के महल में पराक्रम।

अथ तस्मिन् निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः।
सुग्रीवं सम्परिष्वज्य रामो वचनमब्रवीत्।। १।।
असम्मन्त्र्य मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम्।
एवं साहसयुक्तानि न कुर्वन्ति जनेश्वराः।। २।।
संशये स्थाप्य मां चेदं बलं चेमं विभीषणम्।
कष्टं कृतमिदं वीर साहसं साहसप्रिय।। ३।।

तब लक्ष्मण के अग्रज राम ने सुग्रीव के शरीर में युद्ध के निशान देखे तो उसे अपनी छाती से लगाकर बोले कि तुमने मुझसे सलाह लिये बिना जो यह साहस का काम कर दिया, इस प्रकार के संकट के कार्य राजा लोग नहीं करते हैं। तुमने मुझे इस विभीषण को और इस सारी सेना को संशय में डाल कर जो यह साहस का काम किया, हे साहस प्रिय वीर इससे हमें बड़ा कष्ट हुआ।

इदानीं मा कृथा वीर एवंविधमरिंदम।
त्वयि किंचित्समापन्ने किं कार्यं सीतया मम।। ४।।
भरतेन महाबाहो लक्ष्मणेन यवीयसा।
शत्रुघ्नेन च शत्रुघ्न स्वशरीरेण वा पुनः।। ५।।
त्वयि चानागते पूर्वमिति मे निश्चिता मतिः।
हत्वाहं रावणं युद्धे सपुत्रबलवाहनम्।। ६।।
अभिषिच्य च लङ्कायां विभीषणमथापि च।
भरते राज्यमारोप्य त्यक्ष्ये देहं महाबल।। ७।।

हे महाबाहु! हे शत्रुओं का दमन करने वाले वीर! अब तुम आगे ऐसा दुस्साहसा मत करना, यदि तुम्हें कुछ हो गया तो मैं सीता को, भरत को, लक्ष्मण को और भाई शत्रुघ्न को और अपने शरीर को ही लेकर क्या करूँगा? हे महाबली! तुम्हारे लौटने से पहले मैंने यह निश्चय कर लिया था कि रावण को युद्ध में पुत्रों, सेना और वाहनों सहित मार कर और लंका पर विभीषण का अभिषेक करके और भरत को राजगद्दी पर बैठा कर अपने शरीर का त्याग कर दूँगा।

तमेवं वादिनं रामं सुग्रीवः प्रत्यभाषत।
तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम्।। ८।।
मर्षयामि कथं वीर जानन् विक्रममात्मनः।
इत्येवं वादिनं वीरमभिनन्द्य च राघवः।। ९।।
लक्ष्मणं लक्ष्मिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत्।
परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च।। १०।।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठाम लक्ष्मण।
क्षिप्रमद्य दुराधर्षां पुरीं रावणपालिताम्।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः।। ११।।

उससे ऐसा कहते हुए श्रीराम को सुग्रीव ने तब प्रत्युत्तर दिया कि हे राम! आपकी पत्नी के अपहर्त्ता रावण को देख कर अपने पराक्रम को जानते हुए मैं कैसे सहन कर सकता था। ऐसा कहते हुए उस वीर सुग्रीव का सत्कार कर श्रीराम ने कांति से युक्त लक्ष्मण से यह कहा कि शीतल जल और फलों से भरे हुए वनों का आश्रय लेकर हम अपनी इस विशाल सेना का विभाजन कर व्यूह बना लेते हैं। रावण के द्वारा पालित इस दुर्धर्ष पुरी को सब तरफ से वानरों से घेर कर, इस पर आज ही शीघ्रता से और वेग से आक्रमण करते हैं।

इत्येवं तु वदन् वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः।
तस्मादवातरच्छीघ्रं पर्वताग्रान्महाबलः।। १२।।
अवतीर्य तु धर्मात्मा तस्माच्छैलात् स राघवः।
परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः।। १३।।
ततः काले महाबाहुर्बलेन महता वृतः।। १४।।
प्रस्थितः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम्।
तं विभीषणसुग्रीवौ हनूमाञ्जाम्बवान् नलः।। १५।।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा।

लक्ष्मण के महाबली अग्रज वीर राम इस प्रकार लक्ष्मण से कहते हुए सुवेल पर्वत के शिखर से शीघ्र ही नीचे उतर आये। उस पर्वत से नीचे उतर कर धर्मात्मा श्रीराम ने शत्रुओं के लिये परम दुर्धर्ष अपनी सेना का निरीक्षण किया। उसके पश्चात वे महाबाहु धनुर्धर राम विशाल सेना के साथ आगे-आगे चलते हुए, लंकापुरी की तरफ चल दिये। उनके पीछे विभीषण सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, नल, नील, ऋक्षों के राजा और लक्ष्मण जा रहे थे।

ततः पश्चात् सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम्।। १६।।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स्म राघवम्।

तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। १७।।
रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिंदमौ।
लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम्।। १८।।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च।
पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः।। १९।।
अतिष्ठत् सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान्।

उनके पीछे वानरों और ऋक्षों की महान सेना, विशाल भूमि को आच्छादित करती हुई जा रही थी। थोड़ी ही देर में शत्रुओं का दमन करने वाले दोनों भाई राम और लक्ष्मण रावण की उस पुरी लंका के समीप पहुँच गए। लंका का वह उत्तरी द्वार पर्वत शिखर के समान ऊँचा था। धनुर्धर राम ने अपने अनुज के साथ उस द्वार का रास्ता रोक दिया और वहीं ठहर कर अपनी सेना की रक्षा करने लगे। वानर सेनापति तेजस्वी नील पूर्व के द्वार पर पहुँच कर वहाँ मैन्द और द्विविद के साथ जाकर डंट गये।

अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः।। २०।।
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च।
हनूमान् पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान् कपिः।। २१।।
प्रमाथिप्रघसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च संगतः।
मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत।। २२।।
सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुपर्णपवनोपमैः।
पश्चिमेन तु रामस्य सुषेणः सहजाम्बवान्।। २३।।
अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः।

महा बली अंगद ने ऋषभ, गवाक्ष, गज, और गवय के साथ दक्षिण के द्वार को घेर लिया। बलवान वानर हनुमान ने प्रमाथी और प्रघस के साथ और दूसरे वीरों के साथ पश्चिमी द्वार की रक्षा करनी आरम्भ कर दी। सेना के मध्य में सुग्रीव ने गरुड़ और पवन के समान वेगशाली सारे श्रेष्ठ वानरों के साथ मोर्चा बनाया। सुषेण जाम्बवान के साथ और बहुत सारी सेना सहित राम के पश्चिम में मध्यवर्ती मोर्चे के समीप विद्यमान हो गये।

महाञ्छब्दोऽभवत् तत्र बलौघस्याभिवर्ततः।। २४।।
सागरस्येव भिन्नस्य यथा स्यात् सलिलस्वनः।
तेन शब्देन महता सप्राकारा सतोरणा।। २५।।
लङ्का प्रचलिता सर्वा सशैलवनकानना।

जब सागर अपने किनारों को तोड़ देता है, उस समय उसके जल की जैसी ध्वनि होती है, उसी प्रकार आक्रमण के लिये चलती हुई उस विशाल सेना का भी महान कोलाहल हो रहा था। उस महान कोलाहल से पर्वत, वन, कानन, प्राकार और तोरण सहित सारी लंका में हड़बड़ी मच गयी।

राघवः संनिवेश्यैव स्वसैन्यं रक्षसां वधे।। २६।।
सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनः पुनः।
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः क्रमयोगार्थतत्त्ववित्।। २७।।
विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन्।
अंगदे वालितनयं समाहूयेदमब्रवीत्।। २८।।
गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात् कपे।
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्का भयं त्यक्त्वा गतव्यथः।। २९।।
भ्रष्टश्रीकं गतैश्वर्यं मुमूर्षानष्टचेतनम्।

राक्षसों के वध के लिये अपनी सेना को इस प्रकार स्थापित कर, इसके पश्चात् किये जाने वाले कर्तव्य को जानने की इच्छा से, साम दाम आदि के क्रमपूर्व प्रयोग से होने वाले अर्थ लाभ के तत्व को जानने वाले श्रीराम ने मन्त्रियों से बराबर मन्त्रणा कर और स्वयं भी निश्चय कर, विभीषण की अनुमति से राजधर्म को स्मरण करते हुए, बाली पुत्र अंगद को बुलाकर उससे यह कहा कि हे सौम्य! लंकापुरी के पर कोटे को लाँघकर, व्यथा से रहित और निर्भय होकर जाकर मेरी तरफ से रावण को जो अपनी विजय से भ्रष्ट होने वाला है, जिसका ऐश्वर्य समाप्त होने वाला है, और मरने की इच्छा से जिसकी समझ समाप्त हो गयी है यह कहना कि—

यस्य दण्डधरस्तेऽहं दाराहरणकर्शितः।। ३०।।
दण्डं धारयमाणस्तु लङ्काद्वारे व्यवस्थितः।
बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम।। ३१।।
मामतिक्रमयित्वा त्वं हृतवांस्तन्निदर्शय।
धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः।। ३२।।
लङ्कैश्वर्यमिदं श्रीमान् ध्रुवं प्राप्नोत्यकण्टकम्।
नहि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया।। ३३।।
शक्यं मूर्खसहायेन पापेनाविदितात्मना।

अपराधियों को दण्ड देने वाला मैं अपनी पत्नी के हरण में दुखी होकर, तेरे लिये दण्ड को धारण कर, लंका के द्वार पर खड़ा हूँ। हे दुष्ट राक्षस! तुमने जिस बल के भरोसे माया के द्वारा मुझे धोखा देकर सीता का हरण किया था, उस बल को अब दिखाओ। ये श्रेष्ठ राक्षस धर्मात्मा और श्रीमान विभीषण यहाँ आ गये हैं, इन्हें लंका का यह निष्कंटक राज्य निश्चित ही प्राप्त होगा। अपने स्वरूप को न जानने वाले पापी! तुम अपने मूर्ख मित्रों की सहायता से तथा अधर्म के द्वारा इस राज्य को अब एक क्षण भी नहीं भोग सकते।

युध्यस्व मां धृतिं कृत्वा शौर्यमालम्ब्य राक्षस।। ३४।।
यद्याविशसि लोकांस्त्रीन् पक्षीभूतो निशाचर।
मम चक्षुःपथं प्राप्य न जीवन् प्रतियास्यसि।। ३५।।
ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम्।
सुदृष्टा क्रियतां लंका जीवितं ते मयि स्थितम्।। ३६।।
इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाद्।। ३७।।

हे राक्षस! अब तुम धैर्य धारण कर और वीरता का सहारा लेकर मेरे साथ युद्ध करो। हे निशाचर! यदि तू पक्षी बनकर भी तीनों लोकों में छिपता फिरेगा, फिर भी मेरी निगाह के सामने आकर जीवित नहीं बच सकता। मैं तुम्हें हित की बात कहता हूँ कि अपनी मृत्यु के पश्चात् किये जाने वाले कार्य पहले ही कर लो। इस लंका को अच्छी तरह से देख लो। तुम्हारा जीवन अब मेरे आधीन है। अनायास ही महान कर्म करने वाले राम के द्वारा ऐसा कहने पर वह तारापुत्र अंगद मूर्तिमान अग्नि के समान आकाश मार्ग से चल दिये।

सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान् रावणमन्दिरम्।
ददर्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह।। ३८।।
ततस्तस्याविदूरेण निपत्य हरिपुंगवः।
दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावङ्गदः कनकाङ्गदः।। ३९।।
तद् रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम्।
सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना।। ४०।।
दूतोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः।। ४१।।

तब वह श्रीमान अंगद परकोटे को लाँघ कर थोड़ी देर में ही रावण के राजभवन में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने रावण को अपने मंत्रियों के साथ शान्त भाव से बैठे हुए देखा। तब सोने का बाजूबन्ध बाँधे हुए और प्रदीप्त अग्नि के समान प्रतीत होने वाले वानर श्रेष्ठ अंगद उसके निकट ही उतर कर खड़े हो गये। फिर उन्होंने पहले अपना परिचय देकर उस आमात्यों सहित रावण को राम के द्वारा कहे गये वे सारे वचन जैसे के तैसे सुना दिये। उन्होंने कहा कि मैं अनायास ही महान कार्य करने वाले कोसलेन्द्र राम का दूत, बाली का पुत्र अंगद नाम का हूँ। शायद मेरा नाम कभी तुम्हें कानों में पड़ा हो।

आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्धनः।
निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंस पुरुषो भव।। ४२।।
हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम्।
निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि।। ४३।।
विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि।
इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुङ्गवे।। ४४।।
अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः।
गृह्यतामितिदुर्मेधाः शशास सचिवांस्तदा।। ४५।।

कौशल्या का आनन्द बढ़ाने वाले रघुवंशी राम ने तुमसे यह कहा है कि हे नृशंस रावण! मर्द बन और बाहर निकल कर युद्ध कर। मैं तुझे पुत्र, परिवार, बन्धुओं तथा मंत्रियों के साथ नष्ट कर दूँगा। तेरे मारे जाने पर तीनों लोक सुखी हो जायेंगे। तेरे मारे जाने पर तेरा ऐश्वर्य विभीषण का हो जाएगा। उस वानर श्रेष्ठ अंगद के इस प्रकार कठोर वचनों को कहते हुए, राक्षसों का राजा रावण क्रोध के वश में हो गया। तब क्रोध में आकर उसने अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि इस दुष्ट बुद्धि को पकड़ लो।

रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निमिव तेजसा।
जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः।। ४६।।
ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मवान्।
बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा।। ४७।।
स तान् बाहुद्वयसक्तानादाय पतगानिव।
प्रासादं शैलसंकाशमुत्पपाताङ्गदस्तदा।। ४८।।
तस्योत्पतनवेगेन निर्धूतास्तत्र राक्षसाः।
भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः।। ४९।।

रावण के आदेश को सुनकर चार भयानक राक्षसों ने उस अपने तेज से अग्नि के समान प्रज्वलित अंगद को पकड़ लिया। तब राक्षसों के समूह में अपने बल को दिखाने के लिये, अपनी शक्ति को जानने वाले वीर तारा पुत्र ने स्वयं अपने आपको पकड़वा दिया। फिर वे अंगद अपनी दोनों भुजाओं से चिपटे हुए उन राक्षसों को साथ लिये हुए पक्षियों की तरह उछले और पर्वत के समान ऊँचे भवन की छत पर पहुँच गये। उसके उछलने के वेग से झटका खा कर वे सारे राक्षस राक्षसेन्द्र रावण के देखते हुए ही भूमि पर गिर पड़े।

ततः प्रासादशिखरं शैलशृङ्गमिवोन्नतम्।
चक्राम राक्षसेन्द्रस्य वालिपुत्रः प्रतापवान्।। ५०।।
पफाल च तदाक्रान्तं दशग्रीवस्य पश्यतः।
भङ्क्त्वा प्रासादशिखरं नाम विश्राव्य चात्मनः।। ५१।।
विनद्य सुमहानादमुत्पपात विहायसा।
व्यथयन् राक्षसान् सर्वान् हर्षयंश्चापि वानरान्।। ५२।।
स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः।

फिर राक्षसेन्द्र के उस भवन की चोटी पर जो पर्वत की चोटी के समान ऊँची थी, प्रतापी बालिपुत्र ने आक्रमण कर दिया। उस आक्रमण से वह चोटी रावण के देखते हुए ही टूट गयी। इस प्रकार उस प्रासाद के शिखर को तोड़कर अपना नाम सुनाते हुए उन्होंने बड़े ज़ोर से सिंहनाद किया और आकाश मार्ग से उड़ चले। सारे राक्षसों को दुखी करते हुए और वानरों को हर्षित करते हुए, वे वानरों के बीच में राम के समीप आ गये।

सुषेणस्तु महावीर्यो गिरिकूटोपमो हरिः।।५३।।
बहुभिः संवृतस्तत्र वानरैः कामरूपिभिः।
स तु द्वाराणि संयम्य सुग्रीववचनात् कपिः।
पर्यक्रामत दुर्धर्षो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः।।५४।।

पर्वतशिखर के समान विशालकाय, महातेजस्वी, दुर्धर्ष, सुषेण वानर उस समय बहुत से इच्छानुसार रूप बनाने वाले वानरों के साथ, सुग्रीव के आदेश से लंका के सभी दरवाजों को काबू में करके, सारे द्वारों पर ऐसे चक्कर लगाने लगे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्रों के पास जाता है।

उनत्तीसवाँ सर्ग

लंका पर वानरों की चढ़ाई और राक्षसों से घोर युद्ध।

ततस्ते राक्षसास्तत्र गत्वा रावणमन्दिरम्।
न्यवेदयन् पुरीं रुद्धां रामेण सह वानरैः।।१।।
रुद्धां तु नगरीं श्रुत्वा जातक्रोधो निशाचरः।
विधानं द्विगुणं कृत्वा प्रासादं चाप्यरोहत।।२।।

तब उन रक्षक राक्षसों ने रावण के महल में जाकर उससे यह निवेदन किया कि नगरी को राम ने वानरों के साथ चारों तरफ से घेर लिया है। नगरी को घिरा हुआ सुन कर उस राक्षस ने क्रोध में भर कर नगर की रक्षा का दुगुना प्रबन्ध किया और स्वयं देखने के लिये अपने महल के ऊपर चढ़ गया।

राघवः सह सैन्येव मुदितो नाम पुप्लुवे।
लङ्कां ददर्श गुप्तां वै सर्वतो राक्षसैर्वृताम्।।३।।
दृष्ट्वा दाशरथिर्लंकां चित्रध्वजपताकिनीम्।
जगाम सहसा सीतां दूयमानेन चेतसा।।४।।
अत्र सा मृगशावाक्षी मत्कृते जनकात्मजा।
पीड्यते शोकसंतप्ता कृशा स्थण्डिलशायिनी।।५।।
निपीड्यमानां धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन्।
क्षिप्रमाज्ञापयद् रामो वानरान् द्विषतां वधे।।६।।

उधर श्रीराम अपने सैनिकों के साथ प्रसन्नता के साथ आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि लंका सब तरफ से राक्षसों से घिरी हुई और सुरक्षित है। विचित्र ध्वजाओं और पताकाओं से युक्त लंका को देख कर दशरथ पुत्र राम अचानक दुखी हृदय से सीता का चिन्तन करने लगे। वे सोचने लगे कि हरिण शावक के समान नेत्रों वाली, वह जनकपुत्री सीता मेरे कारण से यहीं शोक में मग्न और पीड़ित हो रही हैं वह भूमि पर सोती है और बहुत दुर्बल हो गयी है। तब पीड़ित होती हुई सीता की चिन्ता करते हुए धर्मात्मा राम ने तुरन्त शत्रुओं के वध के लिये वानरों को आज्ञा दी।

एवमुक्ते तु वचसि रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
संघर्षमाणाः प्लवगाः सिंहनादैरनादयन्।।७।।
प्रेक्षतो राक्षसेन्द्रस्य तान्यनीकानि भागशः।
राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा।।८।।
ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवंगमाः।
प्राकाराग्राण्यसंख्यानि ममन्थुस्तोरणानि च।।९।।
परिखान् पूरयन्तश्च प्रसन्नसलिलाशयान्।
पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः।।१०।।

अनायास ही महान कर्म करने वाले राम के इस प्रकार आज्ञा देने पर संघर्ष करते हुए वानरों ने अपने सिंह नादों से आकाश को गुँजा दिया। राक्षस राज के देखते-देखते, अलग-अलग विभागों में बँटी हुई उस वानर सेना ने राम का प्रिय करने की इच्छा से लंका पर आक्रमण कर दिया। पेड़ों, पत्थरों और घूँसों से उन वानरों ने परकोटे को तथा असंख्य किनारों को और द्वारों को तोड़ना आरम्भ कर दिया। स्वच्छ जल से भरी हुई जो खाइयाँ थीं, उन्हें उन्होंने धूल मिट्टी, पत्थरों, घासों और लकड़ियों से भर दिया।

जयत्युरुबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।।११।।
इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः।
अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः।।१२।।
संनद्धस्तु महावीर्यो गदापाणिर्विभीषणः।

वृतो यत्तैस्तु सचिवैस्तस्थौ यत्र महाबलः।। १३।।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः।
समन्तात् परिधावन्तो ररक्षुर्हरिवाहिनीम्।। १४।।

विभिन्न प्रकार के इच्छानुसार वेश धारण किये हुए, और अत्यन्त बलशाली वे वानर राम की जय हो, महा बलशाली लक्ष्मण की जय हो, राम से सुरक्षित राजा सुग्रीव की जय हो, इस प्रकार जयघोष करते हुए और गर्जते हुए लंका के परकोटे पर टूट पड़े। महातेजस्वी विभीषण कवच धारण कर और गदा हाथ में लेकर अपने सावधान मंत्रियों के साथ वहीं खड़े हो गये, जहाँ महाबली राम थे। गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, सब तरफ दौड़ते हुए वानरों की सेना की रक्षा करने लगे।

ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः।
निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत् तदा।। १५।।
एतच्छ्रुत्वा तदा वाक्यं रावणस्य मुखेरितम्।
सहसा भीमनिर्घोषमुद्घुष्टं रजनीचरैः।। १६।।
ततः प्रबोधिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः।
हेमकोणैरभिहता राक्षसानां समन्ततः।। १७।।
विनेदुश्च महाघोषाः शङ्खाः शतसहस्रशः।
राक्षसानां सुघोराणां मुखमारुतपूरिताः।। १८।।

तब राक्षसेश्वर रावण ने क्रोध में भर कर तुरन्त सारी सेना के बाहर निकलने की आज्ञा दी। रावण के मुख से निकले उस आदेश को सुन कर राक्षसों ने अचानक भयानक रूप से गर्जना की। तब जिनका चमड़ा चन्द्रमा के समान श्वेत था, तथा जो सोने के डंडों से पीटे जाते थे, ऐसे धौंसे राक्षसों के यहाँ सब तरफ बजाये जाने लगे। भयानक राक्षसों की फूँक से महान घोष वाले सैकड़ों और हजारों शंख उच्च ध्वनि करने लगे।

निष्पतन्ति ततः सैन्या हृष्टा रावणचोदिताः।
समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः।। १९।।
ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः।
मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः।। २०।।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम्।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत्।। २१।।
गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां हेषितैरपि।
रथानां नेमिनिर्घोषै रक्षसां वदनस्वनैः।। २२।।

तब रावण का आदेश पाकर सैनिक लोग प्रसन्नता के साथ उसी तरह से बाहर निकलने लगे, जैसे प्रलय काल में जल से भरे हुए समुद्र का प्रवाह आगे बढ़ता है। उधर वानर सेना के द्वारा किया हुआ सिंहनाद सब तरफ फैल कर शिखर और कन्दराओं के साथ मलय अर्थात् सुवेल पर्वत को गुँजाने लगा।

इस प्रकार वेगवान वानरों के सिंहनाद तथा उनके शंख और नगाड़ों के निर्घोष से और राक्षसों के मुख से निकली हुई आवाजों से, उनके हाथियों की चिंघाड़ों से, घोड़ों की हिनहिनाहटों से और रथों की घर्घराहटों से पृथिवी आकाश और समुद्र सब गूँजने लगे।

नोट– सुवेल पर्वत को ही उस समय मलय और अरिष्ट पर्वत भी कहते थे। मलय इसलिये कहते होंगे, क्योंकि वहाँ चदन के वृक्ष होते होंगे।

ते गदाभिः प्रदीप्ताभिः शक्तिशूलपरश्वधैः।
निजघ्नुर्वानरान् सर्वान् कथयन्तः स्वविक्रमान्।। २३।।
तथा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः।
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिनः।। २४।।
राजा जयति सुग्रीव इति शब्दो महानभूत्।
राजञ्जयजयेत्युक्त्वा स्वस्वनामकथां ततः।। २५।।

वे राक्षस चमकती हुई गदाओं, शक्ति, शूल और फरसों से अपने पराक्रमों की घोषणा करते हुए वानरों को मारने लगे। उधर वे विशालकाय, वेगवान वानर वृक्षों से पत्थरों से, बघ नरवों से और दन्तनाम के शस्त्रों से राक्षसों को मारने लगे। वानर सेना में महाराज सुग्रीव की जय हो, ऐसा महान शब्द होने लगा। राक्षस महाराज रावण की जय हो ऐसा कहते हुए अपने नाम का भी उल्लेख करने लगे।

राक्षसास्त्वपरे भीमाः प्राकारस्था महीं गतान्।
वानरान् भिन्दिपालैश्च शूलैश्चैव व्यदारयन्।। २६।।
वानराश्चापि संक्रुद्धाः प्राकारस्थान् महीं गताः।
राक्षसान् पातयामासुः खमाप्लुत्य स्वबाहुभिः।। २७।।
स सम्प्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः।। २८।।

बहुत से परकोटे पर चढ़े हुए भयानक राक्षस भूमि पर खड़े हुए वानरों को भिन्दिपालों और शूलों से मारने लगे। वानर भी क्रोध में आकर आकाश में उड़ कर परकोटे पर चढ़े हुए राक्षसों को अपनी भुजाओं से पकड़ कर नीचे गिराने लगे। इस प्रकार उस समय राक्षसों और वानरों में भयानक आक्रमण के साथ रक्त और माँस की कीचड़ फैला देने वाला अद्भुत और घमासान युद्ध हो रहा था।

तीसवाँ सर्ग

द्वन्द्व युद्ध में वानरों के द्वारा राक्षसों की पराजय।

युध्यतां तु ततस्तेषां वानराणां महात्मनाम्।
रक्षसां सम्बभूवाथ बलरोषः सुदारुणः।। १।।
एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम्।
रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत।। २।।

उस समय युद्ध करते हुए मनस्वी वानरों और राक्षसों में एक दूसरे के प्रति भयंकर क्रोध उमड़ रहा था। तभी एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए उनमें परस्पर द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हो गया।

अङ्गदेनेन्द्रजित्सार्धं वालिपुत्रेण राक्षसः।
जम्बुमालिनमारब्धो हनूमानपि वानरः।। ३।।
संगतस्तु महाक्रोधो राक्षसो रावणानुजः।
समरे तीक्ष्णवेगेन शत्रुघ्नेन विभीषणः।। ४।।
तपनेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः।
निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समयुध्यत।। ५।।
वानरेन्द्रस्तु सुग्रीवः प्रघसेन सुसंगतः।

बाली पुत्र अंगद के साथ इन्द्रजित राक्षस भिड़ गया। वानर हनुमान ने जम्बूमाली के साथ युद्ध आरम्भ किया। रावण के अनुज राक्षस विभीषण ने महान क्रोध में भर कर युद्ध में तीखे वेग वाले शत्रुघ्न के साथ युद्ध आरम्भ किया। तपन नाम के राक्षस के साथ महाबली गज ने तथा निकुम्भ के साथ महा तेजस्वी नील ने युद्ध किया। वानराज सुग्रीव प्रघस के साथ भिड़ गये।

अग्निकेतुः सुदुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः।। ६।।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामेण सह संगताः।
वज्रमुष्टिश्च मैन्देन द्विविदेनाशनिप्रभः।। ७।।
राक्षसाभ्यां सुघोराभ्यां कपिमुख्यौ समागतौ।
वीरः प्रतपनो घोरो राक्षसो रणदुर्धरः।। ८।।
समरे तीक्ष्णवेगेन नलेन समयुध्यत।
धर्मस्य पुत्रो बलवान् सुषेण इति विश्रुतः।। ९।।
स विद्युन्मालिना सार्धमयुध्यत महाकपिः।

अत्यन्त दुर्धर्ष अग्निकेतु, रश्मि केतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप राक्षस राम के साथ युद्ध करने लगे। वज्रमुष्टि मैन्द के साथ और अशनि प्रभ द्विविद के साथ, इस प्रकार उन दोनों भयानक राक्षसों के साथ वे दोनों वानर शिरोमणि युद्ध कर रहे थे। रण में दुर्धर, भयानक, वीर प्रतपन राक्षस तीक्ष्ण वेग वाले नील के साथ युद्ध करने लगा। जो धर्मपुत्र के रूप में प्रसिद्ध थे, वे बलवान और महान वानर सुषेण विद्युन्माली के साथ युद्ध करने लगे।

वानराश्चापरे घोरा राक्षसैरपरैः सह।। १०।।
द्वन्द्वं समीयुः सहसा युद्ध्वा च बहुभिः सह।
आजघानेन्द्रजित् क्रुद्धो शत्रुसैन्यविदारणम्।। ११।।
अङ्गदं गदया वीरं अंगदो वेगवान् हरिः।
जघान गदया श्रीमान रथं साश्वं ससारथिम्।। १२।।

इसी प्रकार दूसरे भयानक वानर बहुतों के साथ युद्ध करने के बाद दूसरे अन्य राक्षसों के साथ सहसा द्वन्द्व युद्ध करने लगे। इन्द्रजित ने क्रोध में भर कर, शत्रु की सेना को विदीर्ण करने वाले वीर अंगद पर गदा से प्रहार किया। तब वेगवान वानर श्रीमान अंगद ने गदा से इन्द्रजित के सारथी और घोड़ों के साथ रथ को तोड़ दिया।

जम्बुमाली रथस्थस्तु रथशक्त्या महाबलः।
बिभेद समरे क्रुद्धो हनूमन्तं स्तनान्तरे।। १३।।
तस्य तं रथमास्थाय हनूमान् मारुतात्मजः।
प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा।। १४।।
नदन् प्रतपनो घोरो नलं सोऽभ्यनुधावत।
नलःप्रतपनस्याशु पातयामास चक्षुषी।। १५।।
ग्रसन्तमिव सैन्यानि प्रघसं वानराधिपः।। १६।।
सुग्रीवः सप्तपर्णेन निजघान जवेन च।

रथ में बैठे हुए महाबली जम्बुमाली ने क्रोध में भर कर युद्ध में रथशक्ति के द्वारा हनुमान जी की छाती के बीच में प्रहार किया। तब पवन पुत्र हनुमान ने उसके रथ पर चढ़ कर शीघ्र ही थप्पड़ों की मार से उसे तथा उसके रथ को भी नष्ट कर दिया। भयानक राक्षस प्रतपन, जोर से नाद करता हुआ नल की तरफ दौड़ा। उसने हाथों की फुर्ती से तीक्ष्ण बाणों द्वारा नल के शरीर को बींध दिया। तब नल ने शीघ्रता से उसकी आँखें निकाल लीं। जो सेना को मानो खाये जा रहा था, उस प्रघस को सुग्रीव ने सप्तपर्ण वृक्ष की चोट से शीघ्रता पूर्वक मार दिया।

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः।। १७।।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामं निर्बिभिदुः शरैः।
तेषां चतुर्णां रामस्तु शिरांसि समरे शरैः।। १८।।

क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेद घोरैरग्निशिखोपमैः।
वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन मुष्टिना निहतो रणे।। १९।।

दुर्धर्ष राक्षस अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप ने राम को अपने बाणों से बींध दिया। तब राम ने क्रोध में भर कर युद्ध क्षेत्र में उन चारों के सिर अपने अग्नि शिखा के समान भयानक बाणों से काट लिये। मैन्द ने युद्ध में वज्र मुष्टि को घूँसों से मार गिराया।

निकुम्भस्तु रणे नीलं नीलाञ्जनचयप्रभम्।
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मेघमिवांशुमान्।। २०।।
शिराश्चिच्छेद समरे निकुम्भस्य च सारथेः।
वज्राशनिसमस्पर्शो द्विविदोऽप्यशनिप्रभम्।। २१।।
जघान गिरिशृङ्गेण मिषतां सर्वरक्षसाम्।
द्विविदं वानरेन्द्रं तु द्रुमयोधिनमाहवे।। २२।।
शरैरशनिसंकाशैः स विव्याधाशनिप्रभः।

निकुम्भ ने काले अंजन के समान रंग वाले नील को युद्ध में अपने तीक्ष्ण बाणों से ऐसे बींध दिया, जैसे सूर्य अपनी किरणों से बादलों को बींध देता है। तब नील ने उसका और उसके सारथी का दोनों के सिर काट लिये। जिसका स्पर्श वज्र और अशनि के समान कठोर था, उस द्विविद ने अशनिप्रभ राक्षस पर सब राक्षसों के देखते हुए पर्वत शिखर अर्थात् विशाल पत्थर की शिला से प्रहार किया। तब अशनि प्रभ राक्षस ने वृक्ष के द्वारा युद्ध करने वाले उस वानर राज द्विविद को युद्ध में अपने विद्युत के समान बाणों से बींध दिया।

स शरैरभिविद्धाङ्गो द्विविदः क्रोधमूर्च्छितः।। २३।।
सालेन सरथं साश्वं निजघानाशनिप्रभम्।
विद्युन्माली रथस्थस्तु शरैः काञ्चनभूषणैः।। २४।।
सुषेणं ताडयामास ननाद च मुहुर्मुहुः।
तं रथस्थमथो दृष्ट्वा सुषेणो वानरोत्तमः।। २५।।
गिरिशृङ्गेण महता रथमाशु न्यपातयत्।
लाघवेन तु संयुक्तो विद्युन्माली निशाचरः।। २६।।
अपक्रम्य रथात् तूर्णं गदापाणिः क्षितौ स्थितः।

बाणों से विद्ध होने पर द्विविद ने क्रोध में पागल हो कर एक साल वृक्ष के द्वारा रथ और घोड़ों सहित अशनि प्रभ को मार गिराया। रथ में बैठे हुए विद्युन्माली ने अपने सुनहले बाणों से सुषेण पर आघात किया और जोर-जोर से बार-बार गर्जना की। तब उसे रथ पर बैठे हुए देख कर वानर श्रेष्ठ सुषेण ने एक बड़ी पत्थर की शिला से उसके रथ को तुरन्त नष्ट कर दिया। तब विद्युन्माली राक्षस फुर्ती से रथ से कूद कर, गदा हाथ में लेकर, तुरन्त भूमि पर खड़ा हो गया।

ततः क्रोधसमाविष्टः सुषेणो हरिपुङ्गवः।। २७।।
शिलां सुमहतीं गृह्य निशाचरमभिद्रवत्।
तमापतन्तं गदया विद्युन्माली निशाचरः।। २८।।
वक्षस्यभिजघानाशु सुषेणं हरिपुङ्गवम्।
गदाप्रहारं तं घोरमचिन्त्य प्लवगोत्तमः।। २९।।
तां तूर्ष्णीं पातयामास तस्योरसि महामृधे।
शिलाप्रहाराभिहतो विद्युन्माली निशाचरः।। ३०।।
निष्पिष्टहृदयो भूमौ गतासुर्निपपात ह।

तब क्रोध में भर कर वानर श्रेष्ठ सुषेण एक बहुत बड़ी शिला को लेकर उस राक्षस की तरफ दौड़े। उन को आक्रमण के लिये आता हुआ देख कर निशाचर विद्युन्माली ने उनकी छाती पर जल्दी से अपनी गदा का प्रहार किया। किन्तु उस महा समर में उस भयानक गदा प्रहार की कुछ भी चिन्ता न कर उस वानर श्रेष्ठ ने चुपचाप उस शिला को उस की छाती पर गिरा दिया। शिला की चोट से मारे हुए विधुन्माली राक्षस का हृदय तब चूर-चूर हो गया और वह प्राण शून्य हो कर भूमि पर गिर पड़ा।

इकत्तीसवाँ सर्ग

रात में वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध। अंगद के द्वारा इन्द्रजित की पराजय। माया से अदृश्य हुए इन्द्रजित का सर्प विष वाले बाणों से श्रीराम और लक्ष्मण को बाँधना।

युध्यतामेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम्।
रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी।। १।।
अन्योन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम्।
सम्प्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम्।। २।।
हत दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च।
एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन् सैन्ये तु शुश्रुवे।। ३।।

उन वानर और राक्षसों के युद्ध करते हुए, सूर्य छिप गया और प्राणों का हरण करने वाली रात्रि आरम्भ हो

गयी। तब परस्पर बैर बाँधे हुए, विजय को चाहने वाले, भयानक वानरों और राक्षसों का वह रात्रि युद्ध चलने लगा। उस समय सेनाओं में मारो, काटो, आओ, क्यों भागे जाते हो? इस प्रकार के भयानक शब्द सुनाई दे रहे थे।

लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीविषोपमैः।
दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतुः।। ४।।
ततो भेरीमृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः।
शङ्खनेमिस्वनोन्मिश्रः सम्बभूवाद्भुतोपमः।। ५।।
हतानां स्तनमानानां राक्षसानां च निःस्वनः।
शस्तानां वानराणां च सम्बभूवात्र दारुणः।। ६।।

राम और लक्ष्मण दोनों ही अपने विषधर सर्पों के समान बाणों से सामने आये हुए और छिपे हुए दोनों ही तरह के राक्षस वीरों को मार रहे थे। तब भेरी, मृदंग, पणव, शंख, और रथों के पहियों की ध्वनियाँ परस्पर मिल कर बड़ी अद्‌भुत प्रतीत हो रहीं थीं। उस समय वहाँ घायल हो कर कराहते हुए राक्षसों और क्षत विक्षत होकर पड़े हुए वानरों का आर्तनाद बड़ा भयानक दृश्य प्रस्तुत कर रहा था।

हतैर्वानरमुख्यैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः।
निहतैः पर्वताकारै राक्षसैः कामरूपिभिः।। ७।।
शस्त्रपुष्पोपहारा च तत्रासीद् युद्धमेदिनी।
दुर्ज्ञेया दुर्निवेशा च शोणितास्रावकर्दमा।। ८।।
सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी।
कालरात्रीव भूतानां सर्वेषां दुरतिक्रमा।। ९।।

उस समय वह युद्ध भूमि शक्ति, शूल और फरसों की मार से मारे गये बड़े वानरों और पर्वत के समान विशाल काय तथा इच्छानुसार रूप बनाने वाले, मारे गये राक्षसों से ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानों शस्त्र रूपी पुष्पों की भेंट चढ़ा कर उसकी पूजा की गयी हो। लाल खून की कीचड़ से भरी हुई वह अपने पुराने रूप में कठिनाई से पहचानी जाती थी और वहाँ प्रवेश करके कार्य करना कठिन हो रहा था। सभी प्राणियों के लिये दुर्लंघ्य, काल रात्रि के समान, वानरों और राक्षसों का संहार करने वाली वह रात्रि बड़ी भयानक प्रतीत हो रही थी।

तेषामापततां शब्दः क्रुद्धानामपि गर्जताम्।
उद्वर्त इव सप्तानां समुद्राणामभूत् स्वनः।। १०।।
तेषां रामः शरैः षड्भिः षड् जघान निशाचरान्।
निमेषान्तरमात्रेण शैरग्निशिखोपमैः।। ११।।
यज्ञशत्रुश्च दुर्धर्षो महापार्श्वमहोदरौ।
वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ।। १२।।
ते तु रामेण बाणौघैः सर्वमर्मसु ताडिताः।
युद्धादपसृतास्तत्र सावशेषायुषोऽभवन्।। १३।।

क्रोध में मर कर आक्रमण करते हुए और गर्जते हुए उन राक्षसों का कोलाहल प्रलय में उमड़ते हुए सातों सागरों की ध्वनि के समान हो रहा था। तब राम ने पलक मारते हुए अग्नि ज्वाला के समान छै तीखे बाणों से छै राक्षसों को घायल कर दिया। उन छै राक्षसों के नाम थे– दुर्धर्ष यज्ञ शत्रु, महापार्श्व, महोदर, महान शरीर वाला वज्रदंष्ट्र, शुक तथा सारण। वे सारे राक्षस राम के बाण समूहों से अपने मर्म स्थानों में चोट खा कर, युद्ध में से भाग गये और इस प्रकार उन्होंने अपनी जान बचा ली।

ये त्वन्ये राक्षसा वीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः।
तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम्।। १४।।
राक्षसानां च निनदैर्भेरीणां चैव निःस्वनैः।
सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतराभवत्।। १५।।
तेन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्ततः।
त्रिकूटः कंदराकीर्णः प्रव्याहरदिवाचलः।। १६।।

दूसरे जो भी वीर राक्षस, राम के सामने गये, वे सभी ऐसे ही मारे गये, जैसे पतंगे आग के सामने जा कर नष्ट हो जाते हैं। राक्षसों के सिंहनादों और नगाड़ों की आवाजों से वह भयानक बनी हुई रात्रि और भी भयानक लगने लगी। सब तरफ से बढ़ते हुए उस महान कोलाहल से गूँजता हुआ, वह त्रिकूट पर्वत मानों किसी बात का उत्तर देता हुआ प्रतीत हो रहा था।

अङ्गदस्तु रणे शत्रून् निहन्तुं समुपस्थितः।
रावणिं निजघानाशु सारथिं च हयानपि।। १७।।
इन्द्रजित् तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः।
अङ्गदेन महात्यस्तस्तत्रैवान्तरधीयत।। १८।।
ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवविभीषणाः।
साधुसाध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम्।। १९।।

तब शत्रुओं को मारने के लिये उपस्थित अंगद ने शीघ्रता से युद्ध में रावण पुत्र इन्द्रजित को घायल कर दिया और उसके घोड़ों तथा सारथी को मार दिया। तब सारथी और घोड़ों के अंगद के द्वारा मारे जाने पर महान कष्ट में पड़ा हुआ इन्द्रजित वहीं अन्तर्हित हो गया। उस समय शत्रु को पराजित देख कर विभीषण और सुग्रीव

सहित वानर लोग प्रसन्न होकर साधु-साधु ऐसा कह कर जय जयकार करने लगे।

इन्द्रजित् तु तदानेन निर्जितो भीमकर्मणा।
संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम्।। २०।।
सोऽन्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्शितः।
अदृश्यो निशितान् बाणान् मुमोचाशनिवर्चसः।। २१।।
रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः।
बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राक्षसः।। २२।।

युद्ध में भयानक कर्म करने वाले बाली पुत्र अंगद से पराजित हो कर तब इन्द्रजित ने भयानक क्रोध को किया। युद्ध में चोट खाये हुए उस पापी रावण पुत्र ने न दिखाई देने वाली उस अन्तर्हित अवस्था में ही वज्र के समान कठोर और तीखे बाणों को छोड़ना आरम्भ कर दिया। उस राक्षस ने तब को भयानक सर्प विष से युक्त बाणों से राम और लक्ष्मण के सारे अंगों को छेद दिया।

बत्तीसवाँ सर्ग

इन्द्रजित के बाणों से राम और लक्ष्मण का अचेत होना।

स तस्य गतिमन्विच्छन् राजपुत्रः प्रतापवान्।
दिदेशातिबलो रामो दश वानरयूथपान्।। १।।
द्वौ सुषेणस्य दायादौ नीलं च प्लवगाधिपम्।
अङ्गदं वालिपुत्रं च शरभं च तरस्विनम्।। २।।
द्विविदं च हनूमन्तं सानुप्रस्थं महाबलम्।
ऋषभं चर्षभस्कन्धमादिदेश परंतपः।। ३।।
ते सम्प्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान्।
आकाशं विविशुः सर्वे मार्गमाणा दिशो दश।। ४।।

इन्द्रजित का पता लगाने के लिये तब उन अत्यन्त बलशाली, प्रतापी राजकुमार राम ने दस वानर यूथपतियों को आज्ञा दी। वे दस यूथपति थे- दो सुषेण के पुत्र, वानरों का नेता नील, बालीपुत्र अंगद, वेगशाली शरभ, द्विविद, हनुमान, महाबली सानुप्रस्थ, ऋषभ और ऋषभस्कन्ध। इन दसों को उन परंतप ने आदेश दिया। ये वानर प्रसन्न होकर बड़े पादपों का उठा कर दसों दिशाओं में खोजते हुए आकाश में प्रविष्ट हुए।

तेषां वेगवतां वेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः।
अस्त्रवित् परमास्त्रस्तु वारयामास रावणिः।। ५।।
रामलक्ष्मणयोरेव सर्वदेहभिदः शरान्।
भृशमावेशयामास रावणिः समितिंजयः।। ६।।
ततः पर्यन्तरक्ताक्षो भिन्नाञ्जनचयोपमः।
रावणिर्भ्रातरौ वाक्यमन्तर्धानगतोऽब्रवीत्।। ७।।

किन्तु उन वेगशाली वानरों का वेग अधिक वेगवान बाणों और उत्तम अस्त्रों के ज्ञाता रावण पुत्र ने रोक दिया। इसके बाद युद्ध विजयी रावणपुत्र राम और लक्ष्मण के ऊपर ही सारे शरीर को बेधने वाले बाणों की भयानक वर्षा करने लगा। फिर वह लाल कोने वाली आँखें वाला और खान से काट कर निकाले गये कोयले जैसा काला रावण पुत्र अन्तर्हित अवस्था में ही उन भाइयों के लिये बोला कि-

प्रापिताविषुजालेन राघवौ कङ्कपत्रिणा।
एष रोषपरीतात्मा नयामि यमसादनम्।। ८।।
एवमुक्त्वा तु धर्मज्ञौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
निर्बिभेद शितैर्बाणैः प्रजहर्ष ननाद च।। ९।।
बद्धौ तु शरबन्धेन तावुभौ रणमूर्धनि।
निमेषान्तरमात्रेण न शेकतुरवेक्षितुम्।। १०।।
तौ सम्प्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्शितौ।
निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगतीपती।। १२।।
तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ।
शरवेष्टितसर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ।। १३।।

मैंने तुम दोनों रघुवंशियों को कंक पत्र वाले बाणों के जाल में फँस दिया है। अब मैं रोष में भर कर तुम्हें अभी मृत्युलोक में भेज देता हूँ। ऐसा कह कर उसने उन दोनों धर्मज्ञ भाइयों राम और लक्ष्मण को तीखे बाणों से बींधा और प्रसन्न हो कर गर्जना करने लगा। उस युद्ध के मुहाने पर वे दोनों बाणों के बन्धन में बँधे होने के कारण पलक उठा कर देखने योग्य भी न रहे। वे दोनों वीर पृथिवी पति तब मर्मस्थानों के भेदन के कारण विचलित और कमजोर होकर भूमि पर गिर पड़े। वीर शय्या पर लेटे हुए वे दोनों वीर उस समय खून से लथपथ हो रहे थे। उनके सारे अंगों में बाण लगे हुए थे। वे बहुत दुखी और पीड़ित थे।

तेतीसवाँ सर्ग

वानरों का शोक। इन्द्रजित का हर्षोद्वार। विभीषण का सुग्रीव को समझाना। इन्द्रजित का लंका मे जाकर शत्रुवध का वृत्तान्त बताना और प्रसन्न हुए रावण से सत्कृत होना।

ततो द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः।
ददृशुः संततौ बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। १।।
नीलश्च द्विविदो मैन्दः सुषेणः कुमुदोऽङ्गदः।
तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ।। २।।
अचेष्टौ मन्दनिःश्वासौ शोणितेन परिप्लुतौ।
शरजालाचितौ स्तब्धौ शयानौ शरतल्पगौ।। ३।।

वे दस वानर लोग जब आकाश और पृथिवी पर इन्द्रजित को ढूँढते हुए वापिस लौटे, तो उन्होंने दोनों भाइयों राम और लक्ष्मण को बाणों में बिंधा हुआ देखा। तब उन दोनों रघुवंशियों के लिये नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद और अंगद हनुमान जी के साथ शोक मनाने लगे। वे दोनों उस समय रक्त से भरे हुए, चेष्टा रहित, तथा मन्द श्वास वाले, बाणों के जाल से भरे हुए बाणों की शय्या पर निश्चल पड़े हुए थे।

यूथपैः स्वैः परिवृत्तौ वाष्पव्याकुल लोचनैः।
राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमन्वितौ।। ४।।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः।
अन्तरिक्षं निरीक्षन्तो दिशः सर्वाश्च वानराः।। ५।।
न चैनं मायया छन्नं ददृशू रावणिं रणे।
इन्द्रजित् त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च।। ६।।
यूथपानपि तान् सर्वांस्ताडयत् स च रावणिः।

आँखों में आँसू भरे, अपने यूथपतियों से घिरे हुए, बाणों के समूह से युक्त उन दोनों राघवों को देख कर विभीषण सहित सारे वानर व्यथित हो गये। वे वानर आकाश की तरफ सब तरफ देख रहे थे, पर उन्हें माया अर्थात् कपट युक्त इन्द्रजित कहीं भी युद्ध क्षेत्र में दिखाई नहीं दे रहा था। उस समय अपने कर्म तथा दोनों को पड़ा हुआ देख कर उस रावण पुत्र इन्द्रजित ने उन सारे यूथपति वानरों को भी मारना आरम्भ कर दिया।

नीलं नवभिराहत्य मैन्दं सद्विविदं तथा।। ७।।
त्रिभिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्तताप परमेषुभिः।
जाम्बवन्तं महेष्वासो विद्ध्वा बाणेन वक्षसि।। ८।।
हनूमतो वेगवतो विससर्ज शरान् दश।
गवाक्षं शरभं चैव तावप्यमितविक्रमौ।। ९।।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महावेगो विव्याध युधि रावणिः।
गोलाङ्गूलेश्वरं चैव वालिपुत्रमथाङ्गदम्।। १०।।
विव्याध बहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोऽथ रावणिः।

शत्रु को नष्ट करने वाले उसने नील को नौ बाणों में घायल कर के मैन्द और द्विविद को तीन-तीन उत्तम-उत्तम बाण मारे। उस महाधनुर्धर इन्द्रजित ने जाम्बवान की छाती को एक बाण से बींध कर, वेगवान हनुमान जी के दस बाण मारे। उस युद्ध क्षेत्र में महा वेग=शाली रावण पुत्र ने अमित पराक्रमी गवाक्ष और शरभ को दो बाण मारे, फिर शीघ्रता के साथ उसने बहुत सारे बाणों से बाली पुत्र अंगद को और लांगूल जाति के राजा को घायल कर दिया।

तान् वानरवरान् भित्त्वा शरैरग्निशिखोपमैः।। ११।।
ननाद बलवांस्तत्र महासत्त्वः स रावणिः।
तानर्दयित्वा बाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान्।। १२।।
प्रजहास महाबाहुर्वचनं चेदमब्रवीत्।
शरबन्धेन घोरेण मया बद्धौ चमूमुखे।। १३।।
सहितौ भ्रातरावेतौ निशामयत राक्षसाः।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे राक्षसाः कूटयोधिनः।। १४।।
परं विस्मयमापन्नाः कर्मणा तेन हर्षिताः।

अग्नि की ज्वाला के समान बाणों से उन वानरों को भेद कर वह बलवान और महा धैर्यशाली रावण पुत्र गर्जना करने लगा। उन वानरों को बाण समूह से पीड़ित और भयभीत करके वह महाबाहु जोर से हंसा और बोला कि मैंने सेना के मुख पर इन दोनों भाइयों को एक भयानक बाणों के जाल में बाँध दिया है। हे राक्षसों देखो! ऐसा कहे जाने पर वे सारे छल से युद्ध करने वाले राक्षस बड़े आश्चर्य चकित और हर्षित हुए।

विनेदुश्च महानादान् सर्वे ते जलदोपमाः।। १५।।
हतो राम इति ज्ञात्वा रावणिं समपूजयन्।
निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। १६।।
वसुधायां निरुच्छ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत।
हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित् समितिञ्जयः।। १७।।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन् सर्वनैर्ऋतान्।
रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते।। १८।।
सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत्।

वे सारे तब बादलों के समान महान जय घोष करने लगे और राम मारे गये, यह जान कर उन्होंने इन्द्रजित का सम्मान किया। इन्द्रजित ने तब दोनों भाई राम और लक्ष्मण को चेष्टा रहित तथा बिना साँस के भूमि पर पड़ा देख कर यह समझा कि ये मारे गये। तब वह युद्ध विजयी इन्द्रजित सारे राक्षसों को हर्षित करता हुआ, हर्षित हो कर लंकापुरी में प्रविष्ट हो गया। उस समय राम और लक्ष्मण के शरीर में उनके सारे अंग और उपांगों को बाणों से बिंधा हुआ देख कर सुग्रीव को भय हो गया।

तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः।। १९।।
सबाष्पवदनं दीनं शोकव्याकुललोचनम्।
अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम्।। २०।।
एवंप्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः।
सभाग्यशेषतास्माकं यदि वीर भविष्यति।। २१।।
मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ।
पर्यवस्थापयात्मानमनाथं मां च वानर।। २२।।
सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम्।

तब उस भयभीत वानर राज से, जिसके मुख पर आँसू बह रहे थे, जिसकी आँखें शोक से व्याकुल थीं और जो दीन बना हुआ था, विभीषण ने कहा कि हे सुग्रीव। भय मत करो। इस आँसुओं के वेग को रोको युद्धों में प्रायः ऐसा होता है। विजय निश्चित नहीं होती है। यदि हमारा सौभाग्य शेष होगा, तो हे वीर। ये दोनों महाबली महात्मा मूर्च्छा को त्याग देंगे। हे वानर। तुम अपने को और मुझ अनाथ को सँभालो। जो सत्य और धर्म मार्ग में लगे हुए होते हैं, उन्हें मृत्यु से नहीं डरना चहिये।

एवमुक्त्वा ततस्तस्य जलक्लिन्नेन पाणिना।। २३।।
सुग्रीवस्य शुभे नेत्रे प्रममार्ज विभीषणः।
विमृज्य वदनं तस्य कपिराजस्य धीमतः।। २४।।
अब्रवीत् कालसम्प्राप्तमसम्भ्रान्तमिदं वचः।
न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमवलम्बितुम्।। २५।।
अतिस्नेहोऽपि कालेऽस्मिन् मरणायोपकल्पते।
तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम्।। २६।।
हितं रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्तय।
अथ वा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञाविपर्ययः।। २७।।
लब्धसंज्ञौ हि काकुत्स्थौ भयं नौ व्यपनेष्यतः।

ऐसा कह कर विभीषण ने पानी से भीगे हाथों से सुग्रीव के सुन्दर नेत्रों को धोया और उन श्रीमान वानर नरेश के मुख को पौंछ कर, उन्होंने बिना घबराहट के समय के अनुसार यह कहा कि– हे वानरेश। यह समय व्याकुलता का नहीं है। ऐसे समय अत्यधिक स्नेह भी मृत्यु का कारण बन जाता है, इसलिये सारे कार्यों का विनाश करने वाली व्याकुलता को छोड़ कर, राम जिसके अगुआ हैं, उस सेना के कल्याण की बात सोचो। अथवा जब तक ये होश में न आयें, तब तक इन की रक्षा करो। जब ये ककुत्स्थ वंशी होश में आ जायेंगे, तो हमारा भय दूर कर देंगे।

नैतत् किंचन रामस्य न च रामो मुमूर्षति।। २८।।
नह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम्।
तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम्।। २९।।
यावत् सैन्यानि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम्।
एते हि फुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः।। ३०।।
कर्णे कर्णे प्रकथिता हरयो हरिसत्तम।
मां तु दृष्ट्वा प्रधावन्तमनीकं सम्प्रहर्षितम्।। ३१।।
त्यजन्तु हरयस्त्रासं भुक्तपूर्वामिव स्रजम्।

श्रीराम की यह अवस्था खतरनाक नहीं है, इन्हें मृत्यु का भय नहीं है, क्योंकि वह कान्ति जो मृत्यु को प्राप्त होने वाले व्यक्तियों के मुख पर नहीं होती, इनके मुख पर विद्यमान है। इसलिये धैर्य रखो और अपनी सेना को भी धीरज बँधाओ। मैं तब तक सारी सेना को फिर स्थिर करता हूँ। हे वानर श्रेष्ठ। इन वानरों में भय आ गया है, ये आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहे हैं और आपस में कानाफूँसी कर रहे हैं। मुझे हर्षित होकर, सेना की तरफ दौड़ता हुआ देख कर ये वानर भय को पहले उपयोग की हुई माला के समान त्याग देंगे।

समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो विभीषण।। ३२।।
विद्रुतं वानरानीकं तत् समाश्वासयत् पुनः।
इन्द्रिजित् तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः।। ३३।।
विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत्।
तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः।। ३४।।
आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ।

सुग्रीव को आश्वासन देकर फिर राक्षस राज विभीषण ने भागती हुई वानर सेना को भी फिर से सान्त्वना दी। उधर महान मायावी इन्द्रजित सारी सेना से घिरा हुआ लंका में प्रविष्ट हुआ और अपने पिता के पास गया। वहाँ रावण के समीप जाकर और उसे प्रणाम कर, हाथ जोड़ कर, उसने अपने पिता को यह प्रिय समचार सुनाया कि राम लक्ष्मण मारे गये।

उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे।। ३५।।
रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ।
उपाघ्राय च तं मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानसः।। ३६।।
पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे तस्मै न्यवेदयत्।
यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ।। ३७।।

यह सुनते ही कि दोनों शत्रुओं को गिरा दिया गया, रावण राक्षसों के बीच में हर्ष से उछल पड़ा और उसने अपने पुत्र को छाती से लगा लिया। उसने उसके सिर को सूँघा और हर्षित हृदय से सारा वृत्तान्त पूछा। इन्द्रजित ने उसे सारा हाल निवेदित कर दिया, कि किस प्रकार उन दोनों को बाणों के जाल में विद्ध कर निश्चेष्ट और प्रभाहीन कर दिया गया है।

स हर्षवेगानुगतान्तरात्मा
श्रुत्वा गिरं तस्य महारथस्य।
जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थं
प्रहृष्टवाचाभिननन्द पुत्रम्।। ३८।।

उस महारथी के वचनों को सुन कर हर्ष के वेग से उसकी अन्तरात्मा खिल गयी। उसने दशरथ पुत्र के कारण हुए चिन्ता रूपी ज्वर को त्याग दिया और प्रसन्न वाणी से अपने पुत्र का सत्कार किया।

चौंतीसवाँ सर्ग

वानरों के द्वारा श्रीराम और लक्ष्मण की रक्षा। रावण की आज्ञा से रक्षासियों का सीता को विमान के द्वारा रणभूमि में ले जाकर श्रीराम और लक्ष्मण को दिखाना। सीता का विलाप और त्रिजटा द्वारा उन्हें समझाना।

तस्मिन् प्रविष्टे लङ्कायां कृतार्थे रावणात्मजे।
राघवं परिवार्याथ ररक्षुर्वानरर्षभाः।। १।।
हनुमानङ्गदो नीलः सुषेणः कुमुदो नलः।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः।। २।।
जाम्बवानृषभः स्कन्धो रम्भः शतबलिः पृथुः।
व्यूढानीकाश्च यत्ताश्च द्रुमानादाय सर्वतः।। ३।।
वीक्षमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगुर्ध्वं च वानराः।
तृणेष्वपि च चेष्टत्सु राक्षसा इति मेनिरे।। ४।।

रावण पुत्र इन्द्रजित के कृतार्थ हो कर लंका में चले जाने पर, वानर श्रेष्ठों ने राम को घेर कर उनकी रक्षा करनी आरम्भ कर दी। हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, शरभ, गन्धभादन, जाम्बवान ऋषभ, रम्भ, शतबलि, और पृथु, ये सब व्यूह बना कर सावधानी से वृक्षों (वृक्षों की शाखाओं) को हाथ में लिये सब तरफ खड़े हो गये। वे ऊपर नीचे सब तरफ देखते हुए, तिनका भी हिलने पर उसे राक्षस समझते थे।

रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम्।
आजुहाव ततः सीतारक्षणी राक्षसीस्तदा।। ५।।
राक्षस्यस्त्रिजटा चापि शासनात् तमुपस्थिताः।
ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः।। ६।।
हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।
पुष्पकं तत्समारोप्य दर्शयध्वं रणे हतौ।। ७।।
यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठते।
सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निहतो रणमूर्धनि।। ८।।

उधर रावण ने भी प्रसन्नता से इन्द्रजित को विदा कर सीता की रक्षा करने वाली राक्षसियों को बुलवाया। उसके आदेश से त्रिजटा और दूसरी राक्षसियाँ भी उसके सामने उपस्थित हुई। तब राक्षसों के उस स्वामी ने प्रसन्नता के साथ उनसे कहा कि राम और लक्ष्मण इन्द्रजित के द्वारा मारे गये, यह बात सीता से कह दो और उसे पुष्पक विमान पर बैठा कर युद्ध भूमि में दोनों को मरा हुआ दिखा दो। जिसके सहारे चिपटी हुई यह मेरे पास नहीं आती है, वह इसका पति अपने भाई के साथ युद्ध के मुहाने पर मारा गया।

निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली।
मामुपस्थास्यतेसीता सर्वाभरणभूषिता।। ९।।
अद्य कालवशं प्राप्तं रणे रामं सलक्ष्मणम्।
अवेक्ष्य विनिवृत्ता सा चान्यां गतिमपश्यती।। १०।।
अनपेखा विशालाक्षी मामुपस्थास्यते स्वयम्।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः।। ११।।
राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्वै यत्र पुष्पकम्।
ततः पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया।। १२।।
अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन्।

अब मिथिलेशपुत्री सीता, बिना किसी शंका, उद्विग्नता और अपेक्षा के सारे आभूषणों से सुसज्जित हो कर मेरे

समीप आयेगी। आज लक्ष्मण के साथ राम को युद्धक्षेत्र में मृत्यु के वश में गया हुआ देख कर, वह उनकी तरफ से अपना मन हटा लेगी और कोई दूसरा सहारा न देख कर, निराश हो कर वह विशाल आँखों वाली स्वयं मेरे पास आ जायेगी। उस दुष्ट राक्षस के ये वचन सुन कर, वे राक्षसियाँ बहुत अच्छा ऐसा कह कर वहाँ गयीं जहाँ पुष्पक विमान था। वहाँ से पुष्पक विमान को लेकर वे राक्षसियाँ उसे रावण की आज्ञा से अशोक वाटिका में सीता के पास लायीं।

तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपराजिताम्।। १३।।
सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा।
ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह।। १४।।
जग्मुर्दर्शयितुं तस्यै राक्षस्यो रामलक्ष्मणौ।
रावणश्चारयामास पताकाध्वजमालिनीम्।। १५।।
प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः।
राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे।। १६।।

तब उन राक्षसियों ने पति के शोक से व्याकुल उस सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाया। विमान पर चढ़ा कर वे राक्षसियाँ, त्रिजटा के साथ सीता को राम और लक्ष्मण को दिखाने के लिये वहाँ से चलीं। रावण ने विमान ध्वज और पताकाओं वाली लंका के ऊपर घुमवाया। उधर प्रसन्न हुए राक्षसों के स्वामी ने लंका में यह घोषणा करा दी कि राम और लक्ष्मण युद्ध में इन्द्रजित के द्वारा मारे गये।

विमानेनापि गत्वा तु सीता त्रिजटया सह।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम्।। १७।।
ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पगौ।
लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ।। १८।।
विध्वस्तकवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ।
सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ शरस्तम्बमयौ क्षितौ।। १९।।
तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र प्रवीरौ पुरुषर्षभौ।
शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ।। २०।।
दुःखार्ता करुणं सीता सुभृशं विललाप ह।

विमान के द्वारा त्रिजटा के साथ जा कर सीता ने वानरों की जो सेना मारी गयी थी, उसे देखा। उसके बाद राम और लक्ष्मण दोनों को, बाणों से पीड़ित, संज्ञा से रहित और बाणों के बिस्तरे पर सोये हुए देखा। उन दोनों वीरों के कवच टूट गये थे, धनुष अलग पड़े हुए थे, उनके सारे अंग बाणों से छिदे हुए थे और बाणों से गट्ठर से प्रतीत होने वाले वे दोनों भूमि पर पड़े हुए थे। उन दोनों महान वीर भाइयों तथा नर श्रेष्ठों को उस अवस्था में बाणों के बिस्तरों पर सोया हुआ देख कर सीता जोर से विलाप करने लगी।

सबाष्पशोकाभिहता समीक्ष्य
तौ भ्रातरौ देवसुतप्रभावौ।
वितर्कयन्ती निधनं तयोः सा
दुःखान्विता वाक्यमिदं जगाद।। २१।।

शोक से मारी हुई, आँसू बहाती हुई, देव पुत्रों के समान उन दोनों भाइयों को देख कर उनकी मृत्यु के बारे में विचार करती हुई दुख से पूरित हो कर वह बोली कि–

शोधयित्वा जनस्थानं प्रवृत्तिमुपलभ्य च।
तीर्त्वा सागरमक्षोभ्यं भ्रातरौ गोष्पदे हतौ।। २२।।
ननु वारुणमाग्नेयमैन्द्रं वायव्यमेव च।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव राघवौ प्रत्यपद्यत।। २३।।
अदृश्यमानेन रणे मायया वासवोपमौ।
मम नाथावनाथाया निहतौ रामलक्ष्मणौ।। २४।।
नहि दृष्टिपथं प्राप्य राघवस्य रणे रिपुः।
जीवन् प्रतिनिवर्तेत यद्यपि स्यान्मनोजवः।। २५।।

हाय सारे जनस्थान में ढूँढ कर, फिर मेरा पता पा कर, अक्षोभ्य सागर को पार कर, ये दोनों भाई मानों गाय के खुर के समान थोड़े जल में डूब गये अर्थात् थोड़ी सी राक्षस सेना के द्वारा मारे गये। श्रीराम के पास तो वारुणास्त्र, आग्नेशास्त्र, इन्द्रास्त्र, वाय व्यास्त्र, और ब्रह्मशिर जैसे भयानक अस्त्र थे, उन्होंने उनका प्रयोग क्यों नहीं किया? हाय युद्ध में माया के द्वारा अदृश्य हो गये इन्द्रजित ने इन्द्र के समान पराक्रमी, मुझ अनाथा के नाथ, राम और लक्ष्मण को मार दिया। युद्ध में राम की आँखों के सामने आने पर तो कोई भी शत्रु चाहे वह मन के समान वेग वाल क्यों न हो, जीवित वापिस नहीं लौट सकता था।

न कालस्यातिभारोऽस्ति कृतान्तश्च सुदुर्जयः।
यत्र रामः सह भ्रात्रा शेते युधि निपातितः।। २६।।
न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महारथम्।
नात्मानं जननीं चापि यथा श्वश्रूं तपस्विनीम्।। २७।।
सा तु चिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम्।
कदा द्रक्ष्यामि सीतां च लक्ष्मणं च सराघवम्।। २८।।
परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत्।
मा विषादं कृथा देवि भर्तायं तव जीवति।। २९।।

परन्तु काल के लिये कुछ भी कठिन नहीं है। मृत्यु को जीतना कठिन है, इसीलिये राम अपने भाई के साथ

युद्ध में गिराये हुए सो रहे हैं। मैं महारथी राम और लक्ष्मण, अपने तथा अपनी माता के लिये भी उतना शोक नहीं करती, जितना उस तपस्विनी सास के लिये करती हूँ, जो सदा यह सोचती रहती है कि अपना व्रत समाप्त कर आये हुए राम, सीता और लक्ष्मण को कब देखूँगी? उसको इस प्रकार विलाप करते हुए देख कर राक्षसी त्रिजटा ने कहा कि हे देवी! तुम शोक मत करो। तुम्हारा यह पति जीवित है।

कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च।
यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। ३०।।
नहि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च।
भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ।। ३१।।
हतवीरप्रधाना हि गतोत्साहा निरुद्यमा।
सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले।। ३२।।
इयं पुनरसम्भ्रान्ता निरुद्विग्ना तपस्विनि।
सेना रक्षति काकुत्स्थौ मया प्रीत्या निवेदितौ।। ३३।।

मैं ऐसे बड़े और समान कारणों को गिनाऊँगी, जिनसे पता लगता है कि ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण जीवित हैं। युद्ध में अपने स्वामी के मारे जाने पर योद्धाओं के मुख क्रोध और हर्ष से युक्त नहीं होते। अपने प्रधान वीर के मारे जाने पर सेना का उत्साह समाप्त हो जाता है और वह उद्यम रहित हो जाती है। जल में कर्णधार के नष्ट हो जाने पर विचलित होने वाली नाव के समान वह भी डावांडोल हो जाती है। पर यह सेना बिना घबराये हुए, बिना उद्वेग के इन काकुत्स्थों की रक्षा कर रही है। इसलिये हे तपस्विनी! मैं तुमसे प्रेम पूर्वक यह कहती हूँ कि दोनों अभी जीवित हैं।

सा त्वं भव सुविस्रब्धा अनुमानैः सुखोदयैः।
अहतौ पश्य काकुत्स्थौ स्नेहादेतद् ब्रवीमि ते।। ३४।।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्यामि मैथिलि।
चारित्रसुखशीलत्वात् प्रविष्टासि मनो मम।। ३५।।
इदं तु सुमहच्चित्रं शरैः पश्यस्व मैथिलि।
विसंज्ञौ पतितावेतौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति।। ३६।।
प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम्।
दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम्।। ३७।।

इसलिये सुख की सूचना देने वाले इन अनुमानों से तुम अच्छी तरह से निश्चिन्त हो जाओ। मैं तुमसे प्रेम पूर्वक कहती हूँ कि इन्हें जीवित के रूप में देखो। हे मैथिली! मैंने तुमसे न तो पहले कभी झूठ बोला है और न बोलूँगी। तुम अपने सुखदायी स्वभाव और चरित्र के कारण मेरे मन में समा गयी हो। हे मैथिली देखो! यह महान आश्चर्य की बात है कि बाणों के द्वारा मूर्च्छित किये हुए और गिरे हुए इन दोनों का इनकी कान्ति ने त्याग नहीं किया है। जिन पुरुषों की आयु समाप्त हो जाती है, जिनके प्राण निकल जाते हैं, उनके मुखों को देखने पर उन पर प्रायः अत्यधिक विकार दिखाई देने लगता है। पर यहाँ ऐसा नहीं है।

त्यज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे।
रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम्।। ३८।।
श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा।
कृताञ्जलिरुवाचेमामेवमस्त्विति मैथिली।। ३९।।
विमानं पुष्पकं तत्तु संनिवर्त्य मनोजवम्।
दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता।। ४०।।

इसलिये हे जनक पुत्री! तुम राम और लक्ष्मण के लिये अपने शोक, दुख और मोह को छोड़ दो। ये अभी नहीं मर सकते। उसके ये वचन सुन कर देव पुत्री के समान मिथिलेश कुमारी सीता हाथ जोड़ कर बोली कि ऐसा ही हो। फिर मन के समान तेज वेग वाले पुष्पक विमान को लौटा कर त्रिजटा के साथ दीना सीता को पुनः लंका में प्रवेश करा दिया गया।

पैंतीसवाँ सर्ग

गरुड़ जी का आना और श्रीराम तथा लक्ष्मण को सर्प विष से मुक्त करना।

घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ।
निश्वसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ।। १।।
सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवमहाबलाः।
परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः।। २।।

भयानक बाणों के जाल में बँधे हुए वे दोनों दशरथ जी के पुत्र, खून से लथपथ हुए, सुप्तावस्था में साँपों के समान साँस ले रहे थे। उन महात्माओं को वे सारे सुग्रीव आदि महाबली वानरश्रेष्ठ, घेर कर शोक में डूबे हुए खड़े थे।

ततो मुहूर्ताद् गरुडं वैनतेयं महाबलम्।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम्।। ३।।
ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च।

उभौ च सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह।। ७।।
भवत्प्रसादाद् व्यसनं रावणिप्रभवं महत्।
उपायेन व्यतिक्रान्तौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ।। ८।।
यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम्।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति।। ९।।
को भवान् रूपसम्पन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः।। १०।।

तब महा तेजस्वी गरुड़ ने उन दोनों को, जो इन्द्र के समान थे, उठा कर छाती से लगा लिया। फिर राम ने प्रसन्न हो कर उनसे कहा कि रावण पुत्र के कारण आया हुआ हमारा संकट, आपकी कृपा और प्रयत्न से दूर हो गया और आपने हमें शीघ्र ही बलवान भी बना दिया। मुझे जो प्रसन्नता अपने पिता दशरथ तथा अपने बाबा अज से मिल कर होती, वही प्रसन्नता मेरे हृदय को आपसे मिल कर हो रही है। दिव्य आभूषणों से भूषित, सौन्दर्य से युक्त, अलौकिक रूप से सुन्दर अंगराग और माला धारण किये हुए आप कौन हैं?

तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः।
पतत्रिराजः प्रीतात्मा हर्षपर्याकुलेक्षणम्।। ११।।
अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः।
गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयोः साह्यकारणात्।। १२।।
सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना।। १३।।
इमं श्रुत्वा तु वृत्तान्तं त्वरमाणोऽहमागतः।
सहसैवावयोः स्नेहात् सखित्वमनुपालयन्।। १४।।

तब महा तेजस्वी, महाबली, श्रेष्ठ विद्वान और प्रसन्न हृदय, वैनतेय गरुड़ ने हर्ष पूरित नेत्रों वाले श्रीराम से कहा कि हे काकुत्स्थ! मैं तुम्हारा मित्र, बाहर विचरने वाला मानो तुम्हारा प्राण, अर्थात तुम्हें प्राणों से प्यार करने वाला गरुड़ हूँ। मैं तुम दोनों की सहायता के लिये यहाँ आया हूँ। हे सत्य पराक्रमी, धर्मज्ञ, राम! तुम युद्ध में शत्रु को नष्ट करने वाले अपने भाई लक्ष्मण के साथ बड़े सौभाग्य शाली हो। आपके विषय में इस वृत्तान्त को सुन कर, हम दोनों में जो स्नेह है, उसके मित्र धर्म का पालन करने के लिये मैं तुरन्त शीघ्रता के साथ यहाँ आया हूँ।

मोक्षितौ च महाघोरादस्मात् सायकबन्धनात्।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि।। १५।।
प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः।
शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम्।। १६।।
तन्न विश्वसनीयं वो राक्षसानां रणाजिरे।
एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः।। १७।।
एवमुक्त्वा तदा रामं सुपर्णः स महाबलः।
परिष्वज्य च सुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे।। १८।।

मैंने तुम दोनों को इन महा भयानक बाणों के बन्धन से छुड़ा दिया है। अब आगे आप दोनों को सदा सावधान रहना चाहिये। राक्षस लोग स्वभाव से ही कपट युद्ध करने वाले होते हैं। पर आप लोग वीर हैं, शुद्ध भावना वाले हैं और कोमलता को ही अपनी शक्ति समझते हैं। इसलिये इस घटना के आधार पर आप को युद्धक्षेत्र में राक्षसों पर विश्वास नहीं करना चाहिये। राक्षस सदा कुटिल स्वभाव के होते हैं। राम से ऐसा कह कर वे महाबली गरुड़ उन्हें प्रेम सहित अपने हृदय से लगा कर जाने के लिये उनसे अनुमति लेने का प्रयत्न करने लगे।

सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथासुखम्।। १९।।
इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः।
रामं च नीरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम्।। २०।।
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान्।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा।। २१।।

वे बोले कि शत्रुओं पर भी दया दिखाने वाले धर्मज्ञ राम! अब मैं सुखपूर्वक जाऊँगा। इसके लिये आपकी अनुमति चाहता हूँ। ऐसा कह कर उन तेजस्वी और शीघ्र पराक्रमी गरुड़ ने राम को स्वस्थ कर, उन वानरों के बीच में राम की प्रदक्षिणा कर, उन्हें अपने हृदय से लगाया और फिर आकाश में प्रवेश कर अर्थात् उड़ कर अर्थात् अपने वायुयान से उड़ कर वे वायु के समान वेग से चले गये।

ततो भेरीः समाजघ्नुर्मृदङ्गांश्चाप्यवादयन्।
दध्मुः शङ्खान् सम्प्रहृष्टाः क्ष्वेलन्त्यपि यथापुरम्।। २२।।
अपरे स्फोट्य विक्रान्ता वानरा नगयोधिनः।
द्रुमानुत्पाट्य विविधांस्तस्थुः शतसहस्रशः।। २३।।
विसृजन्तो महानादांस्त्रासयन्तो निशाचरान्।
लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुर्योद्धुकामाः प्लवंगमाः।। २४।।

तब वानरों ने नगाड़ों को पीटना और मृदंगों को बजाना आरम्भ कर दिया। वे प्रसन्न हो कर शंख बजाने और पहले की तरह गर्जने तथा शत्रुओं को ललकारने लगे। दूसरे वृक्षों और पत्थरों से युद्ध करने वाले वानर अनेक प्रकार के सैकड़ों हजारों पत्थरों और वृक्षों को उखाड़ कर युद्ध के लिये खड़े हो गये। युद्ध की कामना वाले वे वानर महान जय घोष करते हुए और राक्षसों को भयभीत करते हुए लंका के द्वारों पर आकर खड़े हो गये।

विमम्रशुश्च पाणिभ्यां, मुखे चन्द्रप्रभे शुभे ॥४
वैनतेयेन संस्पृष्टा:, तयो: संरुरुहुर्व्रणा: ।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे, तयो: आशु बभूवतु: ॥५
तयो: वीर्यं बलं चौज, उत्साहश्च महागुणा: ।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च, स्मृतिश्च द्विगुणा: तयो: ॥६
तावुत्थाप्य महातेजा, गरुडो वासवोपमौ ।

तदनन्तर दो ही घड़ी में समस्त वानरों ने प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी महाबली विनतानन्दन गरुड़ को वहाँ उपस्थित देखा। तत्पश्चात् गरुड़ ने उन दोनों रघुवंशी बन्धुओं को स्पर्श करके अभिनन्दन किया और अपने हाथों से उनके चन्द्रमा के समान कान्तिमान् मुखों को पोंछा।

गरुड़ जी का स्पर्श प्राप्त होते ही श्रीराम और लक्ष्मण के सारे घाव भर गये और उनके शरीर तत्काल ही सुन्दर, कान्ति से युक्त एवं स्निग्ध हो गये। उनमें तेज, वीर्य, बल, ओज, उत्साह, दृष्टि शक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति आदि महान गुण पहले से भी दुगने हो गये।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

छत्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम के स्वस्थ होने का समाचार पा कर चिन्तित रावण का धूम्राक्ष को युद्ध के लिये भेजना।

तेषां तु तुमुलं शब्दं वानराणां महौजसाम्।
नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः।। १।।
सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत्।
तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। २।।
अयं च सुमहान् नादः शङ्कां जनयतीव मे।
एवं च वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः।। ३।।
उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः।

उन महा तेजस्वी, गर्जना करते हुए वानरों की उस महान ध्वनि को रावण ने राक्षसों के साथ सुना। तब वह अपने मन्त्रियों के बीच में बैठा हुआ यह बोला कि वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण तो तीखे बाणों से बाँध दिये गये थे, पर यह महान गर्जने की ध्वनि मेरे मन में शंका को उत्पन्न कर रही है। मन्त्रियों से ऐसा कह कर राक्षस राज ने समीप के राक्षसों से कहा कि—

ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां च वनौकसाम्।। ४।।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम्।
तथोक्तास्ते सुसम्भ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य च।। ५।।
ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना।
तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ।। ६।।
समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः सर्वराक्षसाः।
विवर्णा राक्षसा घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः।। ७।।
तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य च राक्षसाः।
कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद् वाक्यकोविदाः।। ८।।

यह जल्दी मालूम करो कि इन वानरों के लिये शोक करने का समय होने पर भी, हर्ष का कौन सा कारण उपस्थित हो गया है? ऐसा आदेश देने पर, घबराये हुए वे राक्षस परकोटे पर चढ़े और उन्होंने वहाँ सुग्रीव द्वारा पालित वानर सेना को देखा। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि उस भयानक बाणों के बन्धन से छूट कर वे महाभाग रघुवंशी खड़े हो गये हैं, तब वे सारे उदास हो गये। उदास मुख से वे भयानक राक्षस तब राक्षेन्द्र के सम्मुख उपस्थित हुए और वाक्य कहने में चतुर, दीन मुख वाले उन राक्षसों ने रावण को सारा समाचार जैसे का तैसा निवेदन कर दिया।

यौ ताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकम्पभुजौ कृतौ।। ९।।
विमुक्तौ शरबन्धेन दृश्येते तौ रणाजिरे।
पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ।। १०।।
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः।
चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विवर्णवदनोऽभवत्।। ११।।
निष्फलाः खलु संवृत्ताः शराः पावकतेजसः।
आदत्तं यैस्तु संग्रामे रिपूणां जीवितं मम।। १२।।

वे बोले कि इन्द्रजित ने युद्ध में जिन दो भाई राम और लक्ष्मण को बाणों के बन्धन से बाँध कर, हाथ हिलाने में भी असमर्थ कर दिया था, वे दोनों बाणों के बन्धन से छूट कर, हाथी के समान बन्धन को तोड़ कर, गजराज के समान विक्रम वाले युद्ध क्षेत्र में दिखाई दे रहे हैं। उनके उस वचन को सुन कर वह महाबली राक्षसराज चिन्ता और शोक से भर कर उदास मुख वाला हो गया। वह सोचने लगा कि जिस अग्नि के समान तेजस्वी बाणों ने पहले मेरे शत्रुओं के प्राण लिये थे, वे भी आज युद्ध क्षेत्र में निष्फल हो गये।

एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निःश्वसन्नुरगो यथा।
अब्रवीद् रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम्।। १३।।
बलेन महता युक्तो रक्षसां भीमविक्रम।
त्वं वधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः।। १४।।
एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता।
परिक्रम्य ततः शीघ्रं निर्जगाम नृपालयात्।। १५।।
अभिनिष्क्रम्य तद् द्वारं बलाध्यक्षमुवाच ह।
त्वरयस्व बलं शीघ्रं किं चिरेण युयुत्सतः।। १६।।

ऐसा कहकर क्रोध में भर कर, साँप के समान साँस लेते हुए, उसने राक्षसों के बीच में धूम्राक्ष नाम के राक्षस से कहा कि हे भयानक विक्रम वाले! तुम राक्षसों में महान बल से युक्त हो। तुम वानरों सहित राम के वध के लिये जल्दी जाओ। धीमान राक्षसराज के ऐसा कहने पर धूम्राक्ष उनकी परिक्रमा करके, शीघ्र ही राजभवन से बाहर आ गया। बाहर दरवाजे पर आकर उसने सेनापति से कहा कि जल्दी सेना को

तैयार करो। युद्ध की इच्छा करने वाले को देर नहीं करनी चाहिये।

धूम्राक्षवचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः।
बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञया भृशम्॥ १७॥
विविधायुधहस्ताश्च शूलमुद्गरपाणयः।
गदाभिः पट्टिशैर्दण्डैरायसैर्मुसलैरपि॥ १८॥
परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः पाशैः परश्वधैः।
निर्ययू राक्षसा घोरा नर्दन्तो जलदा यथा॥ १९॥

जिसके पीछे बड़ी सेना थी, उस सेनापति ने धूम्राक्ष के वचनों को सुन कर, रावण की आज्ञा से भारी संख्या में सेना को तैयार कर दिया। तब वे भयानक राक्षस विविध प्रकार के आयुधों को हाथ में लेकर शूल, मुद्गर उठाकर, गदाओं, पट्टिशों, डण्डों, लोहे के मूसलों, परिघों भिन्दीपालों, भल्लों, पाशों, और फरसों के साथ बादलों के समान गर्जते हुए परकोटे से बाहर निकले।

रथैः कवचिनस्त्वन्ये ध्वजैश्च समलंकृतैः।
हयैः परमशीघ्रैश्च गजैश्चैव मदोत्कटैः॥ २०॥
निर्ययुर्नैर्ऋतव्याघ्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः।
स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः।
हसन् वै पश्चिमद्वाराद्धनूमान् यत्र तिष्ठति॥ २१॥

दूसरे व्याघ्र के समान दुर्धर्ष राक्षस व्याध्र कवच बाँध कर ध्वजाओं से अलंकृत रथों के द्वारा, बहुत तेजगति वाले घोड़ों के द्वारा और मदोन्मत्त हाथियों के द्वारा बाहर आये। इस प्रकार वह महातेजस्वी धूम्राक्ष, राक्षसाओं से घिरा हुआ और हँसता हुआ पश्चिमी द्वार से बाहर आया, जहाँ हनुमान जी डटे हुए थे।

सैंतीसवाँ सर्ग

धूम्राक्ष का युद्ध और हनुमान जी के द्वारा उसका वध।

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम्।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः॥ १॥
तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे कपिरक्षसाम्।
अन्योन्यं पादपैर्घोरैर्निघ्नतां शूलमुद्गरैः॥ २॥
राक्षसैर्वानरा घोरा विनिकृत्ताः समन्ततः।
वानरै राक्षसाश्चापि द्रुमैर्भूमिसमीकृताः॥ ३॥
राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धा वानरान् निशितैः शरैः।
बिव्यधुर्घोरसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः॥ ४॥

भयानक विक्रम वाले धूम्राक्ष को बाहर निकलता हुआ देख कर युद्ध की कामना वाले सारे वानर हर्ष से सिंहनाद करने लगे। तब उन वानरों और राक्षसों का परस्पर महान युद्ध होने लगा। वे एक दूसरे को बड़े-बड़े वृक्षों और शूल तथा मुद्गरों के द्वारा मार रहे थे। राक्षसों ने सब तरफ भयानक वानरों को काटना आरम्भ कर दिया और वानरों ने भी वृक्षों की मार से राक्षसों को धराशायी कर दिया। राक्षसों ने क्रोध में भर कर अपने तीखे, सीधे जाने वाले, कंक पत्र युक्त भयानक बाणों से वानरों को बींध दिया।

ते गदाभिश्च भीमाभिः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः।
घोरैश्च परिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापि संश्रितैः॥ ५॥
विदार्यमाणा रक्षोभिर्वानरास्ते महाबलाः।
अमर्षजनितोद्धर्षाश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत्॥ ६॥
शरनिर्भिन्नगात्रास्ते शूलनिर्भिन्नदेहिनः।
जगृहुस्ते द्रुमांस्तत्र शिलाश्च हरियूथपाः॥ ७॥
ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः।
ममन्थू राक्षसान् वीरान् नामानि च बभाषिरे॥ ८॥

राक्षसों के द्वारा भयानक गदाओं, पट्टिशों, कूट, मुद्गरों, भयानक परिघों और हाथ में लिये हुए विचित्र शूलों से विदीर्ण किये जाते हुए सभी वे महाबली वानर अमर्ष के कारण उत्पन्न हुए उत्साह से निर्भय के समान कार्य करने लगे। बाणों और शूलों से शरीरों के छिद जाने पर भी उन वानर– यूथपतियों ने वृक्षों और शिलाओं को उठाया और उन भयानक वेग वाले वानरों ने जहाँ-तहाँ अपने नाम की घोषणा करते हुए राक्षस वीरों को मथना आरम्भ कर दिया।

राक्षसा मथिताः केचिद् वानरैर्जितकाशिभिः।
प्रवेमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः॥ ९॥
पार्श्वेषु दारिताः केचित् केचिद् राशीकृता द्रुमैः।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचित् केचिद् दन्तैर्विदारिताः॥ १०॥
ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैः खड्गैश्च विनिपातितैः।
रथैर्विध्वंसितैः केचिद् व्यथिता रजनीचराः॥ ११॥
गजेन्द्रैः पर्वताकारैः पर्वताग्रैर्वनौकसाम्।
मथितैर्वाजिभिः कीर्णं सारोहैर्वसुधातलम्॥ १२॥

जीत की आकांक्षा वाले वानरों के द्वारा कितने ही राक्षस मसल डाले गये। रक्त भोजी कितने ही राक्षस

मुख से खून की उलटी करने लगे, कितनों की पसलियाँ फाड़ डाली गयीं, कितने ही वृक्षों से मार कर ढेर कर दिये गये। कितने ही शिलाओं के द्वारा चूरा बना दिये गये और कितनों को दन्त नाम के शस्त्रों के द्वारा फाड़ दिया गया। अनेक राक्षस टूटे हुए ध्वजों अर्थात् झंडों के डंडों के द्वारा, दुर्दशा को प्राप्त करा दिये गये। वानरों की बड़ी-बड़ी शिलाओं की चोट से गिराये हुए पर्वताकार हाथियों, घुड़सवारों सहित घोड़ों से वह युद्ध भूमि भर गयी।

वानरैर्भीमविक्रान्तैराप्लुत्योत्प्लुत्य वेगितैः।
राक्षसाः करजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषु विनिदारिताः।। १३।।
अन्ये तु परमक्रुद्धा राक्षसा भीमविक्रमाः।
तलैरेवाभिधावन्ति वज्रस्पर्शसमैर्हरीन्।। १४।।
वानरैः पातयन्तस्ते वेगिता वेगवत्तरैः।
मुष्टिभिश्चरणैर्दन्तैः पादपैश्चावपोथिताः।। १५।।
सैन्यं तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः।
रोषेण कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम्।। १६।।

भयानक पराक्रम करने वाले वानरों ने उछल-उछल कर तेजी के साथ अपने तीखे बघनखों से राक्षसों के मुख फाड़ दिये। उधर बहुत से भयानक विक्रम वाले और अत्यन्त क्रुद्ध राक्षस भी अपने वज्र के समान कठोर थप्पड़ों से ही मारते हुए वानरों पर हमला कर रहे थे। शत्रुओं को वेगपूर्वक गिराने वाले उन राक्षसों को और भी अधिक वेगवान वानरों ने, घूँसों, लातों, बघनखों, दन्त नाम के शस्त्रों और वृक्षों की शाखाओं से मार कर भूमि पर ढेर कर दिया। अपनी सेना को भागता हुआ देख कर राक्षस श्रेष्ठ धूम्राक्ष ने तब क्रोध के साथ, युद्ध करने के इच्छुक वानरों का संहार करना आरम्भ कर दिया।

प्रासैः प्रमथिताः केचिद् वानराः शोणितस्रवाः।
मुद्गरैराहताः केचित् पतिता धरणीतले।। १७।।
परिघैर्मथिताः केचिद् भिन्दिपालैश्च दारिताः।
पट्टिशैर्मथिताः केचिद् विह्वलन्तो गतासवः।। १८।।
केचिद् विनिहता भूमौ रुधिरार्द्रा वनौकसः।
केचिद् विद्राविता नष्टाः संक्रुद्धै राक्षसैर्युधि।। १९।।
विभिन्नहृदयाः केचिदेकपार्श्वेन शायिताः।
विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः।। २०।।

उसने कुछ वानरों को प्रासों के द्वारा छेद दिया, जिससे वे खून की धारा बहाने लगे, कुछ मुद्गरों की चोट मार कर भूमि पर गिरा दिये, कुछ को परिघों से कुचल दिया, कुछ को भिन्दिपालों से काट दिया, कुछ पट्टिशों की मार खा कर, व्याकुल हो कर मर गये। कुछ वानर खून से लथपथ हो कर भूमि पर सो गये और कुछ राक्षसों से भाग कर कहीं छिप गये। किन्हीं के हृदय फाड़ दिये और वे एक करवट ही गिर पड़े और किन्हीं की उसने त्रिशूल के द्वारा आँतें फाड़ दीं।

धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान् रणमूर्धनि।
हसन् विद्रावयामास दिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः।। २१।।
धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम्।। २२।।
क्रोधाद् द्विगुणताम्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः।
शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति।। २३।।
आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य सम्भ्रमात्।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत।। २४।।
सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि।
सचक्रकूबरं साश्वं सध्वजं सशरासनम्।। २५।।

इस प्रकार धूम्राक्ष ने उस युद्ध के मुहाने पर धनुष हाथ में लेकर हँसते-हँसते अपनी बाण वर्षा से वानरों को सारी दिशाओं में भगा दिया। धूम्राक्ष के द्वारा अपनी सेना को परेशान देख कर पवनपुत्र हनुमान ने एक बड़ी शिला को उठा कर, क्रोध में भर कर उसके ऊपर आक्रमण किया। अपने पिता के समान पराक्रमी हनुमान जी के उस समय क्रोध से नेत्र दुगने लाल हो रहे थे। उन्होंने उस शिला को धूम्राक्ष के रथ के ऊपर गिरा दिया। अपने ऊपर आती हुई उस शिला को देख कर धूम्राक्ष गदा को उठा कर, जल्दी से रथ से कूद कर भूमि पर खड़ा हो गया। वह शिला उसके रथ को पहिये, कूबर, घोड़े ध्वज और धनुष सहित तोड़ती हुई भूमि पर गिर पड़ी।

स भुङ्क्त्वा तु रथं तस्य हनूमान् मारुतात्मजः।
रक्षसां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः।। २६।।
विभिन्नशिरसो भूत्वा राक्षसा रुधिरोक्षिताः।
द्रुमैः प्रमथिताश्चान्ये निपेतुर्धरणीतले।। २७।।
विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनूमान् मारुतात्मजः।
गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे।। २८।।
तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान्।
विनर्दमानः सहसा हनूमन्तमभिद्रवत्।। २९।।

उसके रथ को तोड़ कर पवन पुत्र हनुमान जी ने डालों और तने वाले वृक्षों से राक्षसों का संहार करना आरम्भ कर दिया। बहुत से राक्षसों के सिर फट गये और खून से लथपथ हो गये। बहुत से पेड़ों की मार

से कुचले जा कर भूमि पर गिर पड़े। इस तरह राक्षसों की सेना को भगा कर, वायुपुत्र हनुमान जी एक पर्वत के शिखर को अर्थात् एक बड़ी शिला को उठा कर धूम्राक्ष की तरफ दौड़े। उन्हें आते हुए देख कर वीर्यवान धूम्राक्ष भी गदा उठाकर गर्जना करता हुआ एक दम हनुमान जी की तरफ दौड़ा।

तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम्।
पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः।। ३०।।
ताडितः स तया तत्र गदया भीमवेगया।
स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन्।। ३१।।
धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत्।
स विस्फारितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः।। ३२।।
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः।
धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवंगमैः।। ३३।।

धूम्राक्ष ने क्रोध के साथ, क्रोध में भरे हुए हनुमान जी के मस्तक पर अपनी उस बहुत से काँटों वाली गदा को दे मारा। उस भयानक वेग वाली गदा के द्वारा मारा जाने पर भी वायु के समान बलशाली वानर हनुमान जी ने उस प्रहार की परवाह न करते हुए धूम्राक्ष के सिर पर उस शिला को गिरा दिया। शिला की चोट खा कर उसके सारे अंग टूट गये और वह बिखरे हुए पर्वत के समान तुरन्त भूमि पर गिर पड़ा। धूम्राक्ष को मारा हुआ देख कर, मरने से बचे हुए राक्षस वानरों से मारे जाते हुए भयभीत होकर लंका में प्रविष्ट हो गये।

अड़तीसवाँ सर्ग

वज्रदंष्ट्र का युद्ध के लिये प्रस्थान। वानरों और राक्षसों का युद्ध। वज्रदंष्ट्र के द्वारा वानरों तथा अंगद के द्वारा राक्षसों का संहार।

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा।। १।।
अब्रवीद राक्षसं क्रूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम्।
गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः।। २।।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह।
तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः।। ३।।
निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः।

धूम्राक्ष को मारा हुआ सुन कर राक्षसेश रावण महान क्रोध से भर गया और साँप के समान साँस लेने लगा। वह फिर महाबली और क्रूर राक्षस वज्रदंष्ट्र से बोला कि हे वीर! तुम राक्षसों के साथ जाओ। युद्ध के लिये निकलो और दशरथ पुत्र राम और सुग्रीव को वानरों के साथ मार दो। तब वह मायावी राक्षस सेनापति बहुत अच्छा यह कह कर, बहुत सारी सेना के साथ घिरा हुआ तेजी से बाहर निकला।

ऋष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैः श्लक्ष्णैश्च मुसलैरपि।। ४।।
भिन्दिपालैश्च चापैश्च शक्तिभिः पट्टिशैरपि।
खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्च निशितैश्च परश्वधैः।। ५।।
पदातयश्च निर्यान्ति विविधाः शस्त्रपाणयः।
विचित्रवाससः सर्वे दीप्ता राक्षसपुङ्गवाः।। ६।।
गजा महोत्कटाः शूराश्चलन्त इव पर्वताः।
ते युद्धकुशला रूढास्तोमराङ्कुशपाणिभिः।। ७।।
अन्ये लक्षणसंयुक्ताः शूरारूढा महाबलाः।

उसके साथ बहुत सारे पैदल सैनिक भी चले, जो ऋष्टि विचित्र तोमर, चिकने मूसल, भिन्दिपाल, धनुष, शक्ति, पट्टिश, खड्ग, चक्र, गदा और तीखे फरसे आदि अनेक प्रकार के शस्त्र हाथों में लिये हुए थे। वे सारे राक्षस श्रेष्ठ विचित्र प्रकार के वस्त्रों को धारण किये जगमगा रहे थे। उनके साथ मतवाले वीर हाथी भी थे, जो चलते हुए पर्वत के समान प्रतीत होते थे। तोमर और अंकुश धारण करने वाले, युद्ध में कुशल, महावत जिनकी गर्दन पर विद्यमान थे तथा जो दूसरे अच्छे लक्षणों से युक्त थे, ऐसे महाबली और शूरवीर उनकी कमर पर सवार थे।

तद् राक्षसबलं सर्वं विप्रस्थितमशोभत।। ८।।
प्रावृट्काले यथा मेघा नर्दमानाः सविद्युतः।
निःसृता दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः।। ९।।
तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः।
प्रणेदुः सुमहानादान् दिशः शब्देन पूरयन्।। १०।।
ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह।
घोराणां भीमरूपाणामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम्।। ११।।

प्रस्थान करती हुई वह राक्षसों की सेना ऐसे सुशोभित हो रही थी, जैसे वर्षा ऋतु में बिजली के साथ गर्जते हुए बादल हों। वह सेना लंका के दक्षिणी द्वार से बाहर निकली, जहाँ अंगद यूथपति डटे हुए थे। जब जीत की आकांक्षा वाले वानरों ने उन्हें आक्रमण के लिये आते हुए देखा, तो वे दसों दिशाओं को गुँजाते हुए, बड़ी ऊँची आवाज में गर्जना करने लगे। तत्पश्चात् भयानक दिखाई देने वाले भयंकर वानरों का राक्षसों के साथ घमासान युद्ध होने लगा। वे दोनों एक दूसरे का वध कर देना चाहते थे।

निष्पतन्तो महोत्साहा भिन्नदेहशिरोधराः।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतन् धरणीतले।। १२।।
केचिदन्योन्यमासाद्य शूराः परिघबाहवः।
चिक्षिपुर्विविधाञ्शस्त्रान् समरेष्वनिवर्तिनः।। १३।।
द्रुमाणां च शिलानां च शस्त्राणां चापि निःस्वनः।
श्रूयते सुमहांस्तत्र घोरो हृदयभेदनः।। १४।।
रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि घोरवत्।
शङ्खभेरीमृदङ्गानां बभूव तुमुलः स्वनः।। १५।।

वे बड़े उत्साह से युद्ध के लिये निकलते, पर गर्दन और शरीर के कट जाने पर, खून से लथपथ हो कर भूमि पर गिर पड़ते थे। कई परिघ जैसी बाहों वाले शूरवीर, जो युद्ध में पीछे नहीं हटते थे, एक दूसरे को सामने पाकर, अनेक प्रकार के शस्त्रों का प्रहार करते थे। वृक्षों का, शिलाओं का और शस्त्रों का, वहाँ हृदय को विदीर्ण करने वाला महान भयंकर शब्द सुनाई दे रहा था। वहाँ रथ के पहियों की घर्घराहट, धनुषों की घोर टंकार, शंख भेरी और मृदंगों के बजने की आवाज, ये सब मिलकर बहुत ऊँचा शोर हो रहा था।

केचिदस्त्राणि संत्यज्य बाहुयुद्धमकुर्वत।
तलैश्च चरणैश्चापि मुष्टिभिश्च द्रुमैरपि।। १६।।
जानुभिश्च हताः केचिद् भग्नदेहाश्च राक्षसाः।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचिद् वानरैर्युद्धदुर्मदैः।। १७।।
वज्रदंष्ट्रो भृशं बाणै रणे वित्रासयन् हरीन्।
चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः।। १८।।

कुछ वहाँ अपने शस्त्रों को छोड़ कर हाथों से ही युद्ध कर रहे थे। बहुत से राक्षसों से शरीर थप्पड़ों, लातों से, घूँसों से, वृक्षों से और घुटनों से मार कर तोड़ दिये गये। बहुत से राक्षसों का युद्ध में दुर्धर्ष वानरों के द्वारा शिला की मार से चूरा कर दिया गया। उस समय वज्रदंष्ट्र बाणों से वानरों को अत्यधिक पीड़ित करता हुआ, संसार के संहार के लिये, पाश लिये हुए मृत्यु के समान युद्ध क्षेत्र में विचरने लगा।

बलवन्तोऽस्त्रविदुषो नानाप्रहरणा रणे।
जघ्नुर्वानरसैन्यानि राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः।। १९।।
जघ्ने तान् राक्षसान् सर्वान् धृष्टो वालिसुतो रणे।
क्रोधेन द्विगुणाविष्टः संवर्तक इवानलः।। २०।।
तान् राक्षसगणान् सर्वान् वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान्।
अङ्गदः क्रोधताम्राक्षः सिंहः क्षुद्रमृगानिव।। २१।।
चकार कदनं घोरं शक्रतुल्यपराक्रमः।

दूसरे राक्षस भी, जो बलवान और अस्त्रवेत्ता थे, क्रोध से मूर्च्छित होकर अनेक प्रकार के शस्त्रों से वानर सेना का विनाश करने लगे। किन्तु निर्भय बाली पुत्र अंगद भी दुगने क्रोध के साथ उन सारे राक्षसों का वैसे ही संहार करने लगे, जैसे संवर्तक अग्नि प्रलयकाल में संसार का संहार करती है। इन्द्र के समान पराक्रमी, तेजस्वी और क्रोध से लाल आँखों वाला अंगद, वृक्ष उठा कर जैसे सिंह छोटे मृगों का संहार करता है, वैसे ही उन सारे राक्षस समूहों का भयानक विनाश करने लगा।

अङ्गदाभिहतास्तत्र राक्षसा भीमविक्रमाः।। २२।।
विभिन्नशिरसः पेतुर्निकृत्ता इव पादपाः।
रथैश्चित्रैर्ध्वजैरश्वैः शरीरैर्हरिरक्षसाम्।। २३।।
रुधिरौघेण संछन्ना भूमिर्भयकरी तदा।
अङ्गदस्य च वेगेन तद् राक्षसबलं महत्।
प्राकम्पत तदा तत्र पवनेनाम्बुदो यथा।। २४।।

अंगद के द्वारा मारे गये, वे भयानक विक्रम वाले राक्षस सिर फट जाने के कारण कटे हुए पेड़ों के समान गिरने लगे। उस समय रथों से, विभिन्न ध्वजाओं से, घोड़ों से, और वानरों तथा राक्षसों के शरीरों से, एवं रुधिर की धाराओं से भरी हुई वह युद्ध भूमि बड़ी भयानक लग रही थी। अंगद के पराक्रम से वह महान राक्षस सेना ऐसे ही काँपने लगी, जैसे वायु के वेग से बादल हिलते हैं।

उन्तालीसवाँ सर्ग

वज्रदंष्ट्र और अंगद का युद्ध। अंगद के द्वारा उसका वध।

स्वबलस्य च घातेन अङ्गदस्य बलेन च।
राक्षसः क्रोधमाविष्टो वज्रदंष्ट्रो महाबलः।। १।।
राक्षसाश्चापि मुख्यास्ते रथेषु समवस्थिताः।
नानाप्रहरणाः शूराः प्रायुध्यन्त तदा रणे।। २।।
वानराणां च शूरास्तु ते सर्वे प्लवगर्षभाः।
अयुध्यन्त शिलाहस्ताः समवेताः समन्ततः।। ३।।
तत्रायुधसहस्राणि तस्मिन्नायोधने भृशम्।
राक्षसाः कपिमुख्येषु पातयांचक्रिरे तदा।। ४।।

अपनी सेना का विनाश और अंगद की शक्ति को देख कर महाबली राक्षस वज्रदंष्ट्र क्रोध में भर गया। तब उसके साथ दूसरे प्रमुख राक्षस भी, जो शूरवीर थे, अनेक प्रकार के आयुधों से युक्त थे और रथों में बैठे हुए थे, युद्धक्षेत्र में युद्ध करने लगे। तब वानरों में भी जो शूरवीर वानर श्रेष्ठ थे, वे सारे सब तरफ से एकत्र हो कर, हाथों में शिलाएँ ले कर युद्ध करने लगे। उस समय वहाँ युद्ध में राक्षसों ने उन प्रमुख वानरों पर हजारों आयुधों की महान वर्षा की।

वानराश्चैव रक्षःसु गिरिवृक्षान् महाशिलाः।
प्रवीराः पातयामासुर्मत्तवारणसंनिभाः।। ५।।
शूराणां युध्यमानानां समरेष्वनिवर्तिनाम्।
तद् राक्षसगणानां च सुयुद्धं समवर्तत।। ६।।
प्रभिन्नशिरसः केचिच्छिन्नैः पादैश्च बाहुभिः।
शस्त्रैरर्दितदेहास्तु रुधिरेण समुक्षिताः।। ७।।
वानरा राक्षसाश्चापि निपेतुस्तत्र भूतले।
ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम्।। ८।।
प्राभज्यत बलंसर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः।

मस्त हाथियों के समान उन महान वीर वानरों ने भी राक्षसों पर पत्थर, वृक्ष और बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिरायीं। इस प्रकार युद्ध करते हुए शूरवीर वानरों का और युद्ध से न लौटने वाले राक्षसों का वह भयानक युद्ध चल रहा था। वहाँ किन्हीं के सिर फट गये, किन्हीं के हाथ और पैर कट गये, किन्हीं के शस्त्रों से काटे गये शरीर खून में नहा गये। वहाँ वानर और राक्षस दोनों ही पक्षों के लोग भूमि पर गिर रहे थे। उसके बाद वानर सेना के द्वारा मारी जाती हुई राक्षस सेना, वज्रदंष्ट्र के देखते हुए ही भागने लगी।

राक्षसान् भयवित्रस्तान् हन्यमानान् प्लवंगमैः।। ९।।
दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान्।
प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन् हरिवाहिनीम्।। १०।।
शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः।
बिभेद वानरांस्तत्र सप्ताष्टौ नव पञ्च च।। ११।।
विव्याध परमक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान्।
त्रस्ताः सर्वे हरिगणाः शरैः संकृत्तदेहिनः।। १२।।
अङ्गदं सम्प्रधावन्ति प्रजापतिमिव प्रजाः।

राक्षसों को भयभीत तथा वानरों के द्वारा मारा जाता हुआ देख कर प्रतापी वज्रदंष्ट्र की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। वह धनुष हाथ में लेकर भयभीत करता हुआ वानरों की सेना में घुस गया और अपने सीधे जाने वाले कंक पत्र युक्त बाणों से वानरों को विदीर्ण करने लगा। अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ वह एक ही बार में पाँच सात, आठ और नौ वानरों को भेद देता था। इस प्रकार उस प्रतापी वज्रदंष्ट्र ने वानरों को बहुत अधिक चोट पहुँचायी। तब वे सारे वानर लोग, जो घायल थे और डरे हुए थे, अंगद के पास ऐसे दौड़ कर गये, जैसे प्रजा-प्रजा का पालन करने वाले राजा के पास जाती है।

ततो हरिगणान् भग्नान् दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा।। १३।।
क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत।
वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ योयुध्येते परस्परम्।। १४।।
चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव।
जघान मर्मदेशेषु शरैरग्निशिखोपमैः।। १५।।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो वालिसूनुर्महाबलः।
चिक्षेप वज्रदंष्ट्राय वृक्षं भीमपराक्रमः।। १६।।
दृष्ट्वा पतन्तं तं वृक्षमसम्भ्रान्तश्च राक्षसः।
चिच्छेद बहुधा सोऽपि मथितः प्रापतद् भुवि।। १७।।

तब वानरों को घायल देख कर बाली पुत्र अंगद ने क्रोध के साथ वज्रदंष्ट्र की तरफ देखा, जो उसकी तरफ ही देख रहा था। फिर वज्रदंष्ट्र और अंगद आपस में युद्ध करते हुए ऐसे ही विचरने लगे, जैसे अत्यन्त क्रोध में भर कर सिंह और मस्त हाथी युद्ध के लिये विचर रहे हों। वज्रदंष्ट्र ने अपने अग्नि ज्वाला के समान बाणों से अंगद के मर्म स्थानों में आघात किया। तब महाबली,

भयानक पराक्रमी, बालीपुत्र अंगद ने, जिसके सारे अंग लहुलुहान हो रहे थे, वज्रदंष्ट्र पर एक वृक्ष को फैंका। उस वृक्ष को अपने ऊपर आते हुए देख कर, उस राक्षस ने बिना घबराहट से उसे बाणों से छेद दिया और वह वृक्ष टुकड़े हो कर भूमि पर गिर पड़ा।

तं दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रस्य विक्रमं प्लवगर्षभः।
प्रगृह्य विपुलं शैलं चिक्षेप च ननाद च।। १८।।
तमापतन्तं दृष्ट्वा स रथादाप्लुत्य वीर्यवान्।
गदापाणिरसम्भ्रान्तः पृथिव्यां समतिष्ठत।। १९।।
अङ्गदेन शिला क्षिप्ता गत्वा तु रणमूर्धनि।
सचक्रकूबरं साश्वं प्रममाथ रथं तदा।। २०।।

वज्रदंष्ट्र के उस विक्रम को देख कर, उस वानर श्रेष्ठ ने एक विशाल शिला को उठा कर उसके ऊपर फैंका और जोर से गर्जना की। उस शिला को अपने ऊपर आती हुई देख कर, वह तेजस्वी, बिना घबराहट के गदा हाथ में लेकर, रथ से उछल कर, भूमि पर खड़ा हो गया। उस युद्ध के मुहाने पर अंगद के द्वारा फैंकी हुई उस शिला ने पहियों, कूबर तथा घोड़ों सहित उसके रथ को नष्ट कर दिया।

ततोऽन्यच्छिखरं गृह्य पातयामास वानरः।
अभवच्छोणितोद्गारी वज्रदंष्ट्रः सुमूर्च्छितः।। २१।।
मुहूर्तमभवन्मूढो गदामालिङ्ग्य निश्वसन्।
स लब्धसंज्ञो गदया वालिपुत्रमवस्थितम्।। २२।।
जघान परमक्रुद्धो वक्षोदेशे निशाचरः।
गदां त्यक्त्वा ततस्तत्र मुष्टियुद्धमकुर्वत।। २३।।
अन्योन्यं जघ्नतुस्तत्र तावुभौ हरिराक्षसौ।
रुधिरोद्गारिणौ तौ तु प्रहारैर्जनितश्रमौ।। २४।।

तब अंगद ने एक दूसरी शिला उठा कर उसके ऊपर मारी, जिससे वज्रदंष्ट्र खून की उलटी करता हुआ मूर्च्छित हो गया। वह गदा को अपनी छाती से लगाये एक मुहूर्त तक साँस लेता हुआ बेहोश पड़ा रहा। इसके बाद होश में आकर उस राक्षस ने वहाँ सामने खड़े हुए बाली पुत्र की छाती में, बड़े क्रोध में आकर गदा से प्रहार किया। फिर गदा को छोड़ कर वे वहाँ घूँसों से युद्ध करने लगे और दोनों वानर तथा राक्षस एक दूसरे को मारने लगे। प्रहारों के कारण उस समय वे दोनों ही थक रहे थे और दोनों के मुख से खून बह रहा था।

चित्रांश्च रुचिरान् मार्गांश्चेरतुः कपिराक्षसौ।
जघ्नतुश्च तदान्योन्यं नर्दन्तौ जयकाङ्क्षिणौ।। २५।।
व्रणैः सास्त्रैरशोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ।
युध्यमानौ परिश्रान्तौ जानुभ्यामवनीं गतौ।। २६।।

वे दोनों वानर और राक्षस, जो विजय के अभिलाषी थे, गर्जना करते हुए तरह-तरह के विचित्र पैंतरों को चल रहे थे और एक दूसरे पर चोट कर रहे थे। खून बहाते हुए घावों के कारण वे खिले हुए पलाश के वृक्षों के समान प्रतीत हो रहे थे। लड़ते हुए वे दोनों ही थक गये और उन्होंने भूमि पर घुटने टेक दिये।

निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः।
उदतिष्ठत दीप्ताक्षो दण्डाहत इवोरगः।। २७।।
निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः।
जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः।। २८।।
वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः।
त्रस्ता ह्यभ्यद्रवँल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः।। २९।।

पर लाल आँखों वाले वानर श्रेष्ठ अंगद क्षण भर में डण्डे की चोट खाये सर्प के समान उठ कर खड़े हो गये और उन महा बली बाली पुत्र ने निर्मल और तीखी धार वाले खड्ग मे वज्रदंष्ट्र के विशाल सिर को काट दिया। वज्रदंष्ट्र को मारा हुआ देख कर भयभीत, मोहित और वानरों के द्वारा मारे जाते हुए राक्षस लंका में भाग गये।

चालीसवाँ सर्ग

रावण की आज्ञा से अकम्पन आदि राक्षसों का युद्ध के लिये आना। वानरों के साथ उनका घोर युद्ध।

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावणः।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम्।। १।।
शीघ्रं निर्यान्तुदुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम्।। २।।
एष शास्ता च गोप्ता च नेता च युधि सत्तमः।
भूतिकामश्च मे नित्यं नित्यं च समरप्रियः।। ३।।
एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवं च महाबलम्।
वानरांश्चापरान् घोरान् हनिष्यति न संशयः।। ४।।

बाली पुत्र के द्वारा वज्रदंष्ट्र को मारा हुआ सुन कर, रावण अपने सामने हाथ जोड़ कर खड़े हुए सेनापति से बोला कि सारे शस्त्रास्त्रों में चतुर अकम्पन को आगे करके, भयानक पराक्रम वाले दुर्धर्ष राक्षस शीघ्र ही मुकाबले के लिये बाहर जायें। यह अकम्पन सेना पर शासन करने, सेना की सुरक्षा करने और सेना का संचालन करने में समर्थ है। युद्ध से प्रेम करने वाला यह युद्ध में श्रेष्ठ योद्धा माना गया है। यह मेरी उन्नति को चाहता है। इसमें सन्देह नहीं कि यह दोनों ककुत्स्थ वंशियों को, महाबली सुग्रीव को और दूसरे भयानक वानरों को जीत लेगा।

परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः।
बलं सम्प्रेरयामास तदा लघुपराक्रमः।। ५।।
ततो नानाप्रहरणा भीमाक्षा भीमदर्शनाः।
निष्पेतू राक्षसा मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः।। ६।।
मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः।
राक्षसैः संवृतो घोरैस्तदा निर्यात्यकम्पनः।। ७।।

उस शीघ्र पराक्रमी और महाबली सेनाध्यक्ष ने तब रावण की आज्ञा का पालन करते हुए, सेना को युद्ध के लिये आदेश दिया। तत्पश्चात् सेनापति से आदिष्ट, भयानक दिखाई देने वाले, भयानक आँखों वाले, अनेक प्रकार के आयुधों से युक्त, प्रमुख राक्षस बाहर निकले। उन भयानक राक्षसों से घिरा हुआ, बादलों के समान रंग वाला, बादलों जैसा दिखाई देने वाला, बादलों की गर्जना के समान गम्भीर गर्जना करता हुआ अकम्पन भी बाहर आया।

द्रुमशैलप्रहाराणां योद्धुं समुपतिष्ठताम्।
तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे कपिरक्षसाम्।। ८।।
रामरावणयोरर्थे सममित्यक्तदेहिनः।
सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसंनिभाः।। ९।।
हरयो राक्षसाश्चैव परस्परजिघांसया।
तेषां विनर्दतां शब्दः संयुगेऽतितरस्विनाम्।। १०।।
शुश्रुवे सुमहान् कोपादन्योन्यमभिगर्जताम्।
रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद् भृशम्।। ११।।
उद्धृतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश।

फिर पत्थरों और वृक्षों से युद्ध करने वाले वानरों और राक्षसों में, जो युद्ध के लिये वहाँ उपस्थित थे, परस्पर भयानक युद्ध होने लगा। उन्होंने राम और रावण के लिये अपने शरीरों का मोह छोड़ा हुआ था। वे सारे ही पर्वत के समान महाकाय, शूरवीर और बड़े बलवान थे। वे वानर और राक्षस एक दूसरे के वध की इच्छा से वहाँ आये थे। वे युद्ध में बड़े वेगवान थे। क्रोध से एक दूसरे के प्रति गर्जते हुए और कोलाहल करते हुए उनकी वह महान ध्वनि दूर-दूर तक सुनायी दे रही थी। वानरों और राक्षसों के द्वारा उड़ायी हुई लाल रंग की धूल उस समय बड़ी भयानक दिखाई दे रही थी। उस धूल ने सारी दिशाओं को भर दिया था।

संवृतानि च भूतानि ददृशुर्न रणाजिरे।। १२।।
हरीनेव सुसंरुष्टा हरयो जघ्नुराहवे।
राक्षसा राक्षसांश्चापि निजघ्नुस्तिमिरे तदा।। १३।।
ते परांश्च विनिघ्नन्तः स्वांश्च वानरराक्षसाः।
रुधिरार्द्रां तदा चक्रुर्महीं पङ्कानुलेपनाम्।। १४।।
ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं ह्यपगतं रजः।
शरीरशवसंकीर्णा बभूव च वसुंधरा।। १५।।

उस धूलि से युद्ध भूमि में सारे प्राणी ढक गये थे, इसलिये वे एक दूसरे को देख नहीं पाते थे। धूल के उस अन्धकार से ढके हुए वानर लोग युद्ध में वानरों को ही मार बैठते थे और राक्षस राक्षसों को ही मारने लग जाते थे। उन वानरों और राक्षसों ने परायों और अपनों को मारते हुए युद्धक्षेत्र में भूमि को रक्त से भिगो कर कीचड़ बना दी। तब उस रुधिर के भंडार से सींची हुई धूल नीचे बैठ गयी और सारी भूमि शवों से भर गयी।

द्रुमशक्तिगदाप्रासैः शिलापरिघतोमरैः।
राक्षसा हरयस्तूर्णं जघ्नुरन्योन्यमोजसा।। १६।।
बाहुभिः परिघाकारैर्युध्यन्तः पर्वतोपमान्।
हरयो भीमकर्माणो राक्षसाञ्जघ्नुराहवे।। १७।।
राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धाः प्रासतोमरपाणयः।
कपीन् निजघ्निरे तत्र शस्त्रैः परमदारुणैः।। १८।।
अकम्पनः सुसंक्रुद्धो राक्षसानां चमूपतिः।
संहर्षयति तान् सर्वान् राक्षसान् भीमविक्रमान्।। १९।।

उस समय वानर और राक्षस शीघ्रता के साथ और बलपूर्वक एक दूसरे को वृक्षों, शक्ति, गदा, प्रास, शिला, परिघ, और तोमरों के द्वारा मार रहे थे। अपनी परिघ के समान मोटी भुजाओं से लड़ते हुए, भयानक कर्म करने वाले वानर, पर्वताकार राक्षसों को युद्ध में मार रहे थे। राक्षस भी अत्यन्त क्रोध में भर कर प्रास और तोमर हाथ में लिये हुए, अत्यन्त भयानक शस्त्रों से वहाँ वानरों को मार रहे थे। अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ, राक्षसों का सेनापति अकम्पन, उन भयानक विक्रम वाले राक्षसों का हर्ष बढ़ा रहा था।

हरयस्त्वपि रक्षांसि महाद्रुममहाश्मभिः।
विदारयन्त्यभिक्रम्य शस्त्राण्याच्छिद्य वीर्यतः।। २०।।
एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः।
मैन्दश्च द्विविदः क्रुद्धाश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम्।। २१।।
ते तु वृक्षैर्महावीरा राक्षसानां चमूमुखे।
कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरिपुंगवाः।
ममन्थू राक्षसान् सर्वे नानाप्रहरणैर्भृशम्।। २२।।

वानर भी उनके शस्त्रों को बलपूर्वक छीन कर, बड़े वृक्षों और बड़ी शिलाओं के द्वारा आक्रमण कर राक्षसों को विदीर्ण कर रहे थे। उसी बीच वानर वीर कुमुद, नल, मैन्द और द्विविद ने क्रोध में भर कर अपने उत्तम वेग को प्रकट किया। उन वानर श्रेष्ठों और महान वीरों ने वृक्षों और दूसरे तरह-तरह के आयुधों के द्वारा, राक्षसों की सेना में खेल-खेल में राक्षसों का महान विनाश किया और उन्हें अत्यधिक कुचल दिया।

इकतालीसवाँ सर्ग

हनुमान जी के द्वारा अकम्पन का वध।

तद् दृष्ट्वा सुमहत् कर्म कृतं वानरसत्तमैः।
क्रोधमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः।। १।।
क्रोधमूर्च्छितरूपस्तु धुन्वन् परमकार्मुकम्।
दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत्।। २।।
तत्रैव तावत् त्वरितो रथं प्रापय सारथे।
एते च बलिनो घ्नन्ति सुबहून् राक्षसान् रने।। ३।।
एतान् निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम्।
एतैः प्रमथितं सर्वं रक्षसां दृश्यते बलम्।। ४।।

उन वानर श्रेष्ठों के द्वारा युद्ध में किये गये उस महान कर्म को देख कर अकम्पन ने अत्यन्त तीव्र क्रोध को धारण किया। क्रोध से मूर्च्छित होकर, अपने धनुष को हिलाते हुए और शत्रुओं के द्वारा किये जा रहे कर्म को देखते हुए वह सारथी से बोला कि हे सारथी! तुम रथ को वहीं जल्दी से ले चलो, जहाँ ये बलवान वानर बहुत सारे राक्षसों को युद्ध में मार रहे हैं। युद्ध की इच्छा रखने वाले इनको मैं मारना चाहता हूँ, क्योंकि यह दिखाई दे रहा है कि इन्होंने राक्षसों की सारी सेना को मथ दिया है।

ततः प्रचलिताश्वेन रथेन रथिनां वरः।
हरीनभ्यपतद् दूराच्छरजालैरकम्पनः।। ५।।
न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे।
अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः।। ६।।
तान् मृत्युवशमापन्नानकम्पनशरानुगान्।
समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः।। ७।।
स प्रहस्य महातेजा हनूमान् मारुतात्मतः।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम्।। ८।।

उसके बाद जिसमें तेज चलने वाले घोड़े जुते हुए थे, उस रथ के द्वारा, रथियों में श्रेष्ठ अकम्पन, दूर से ही बाणों की वर्षा करता हुआ उन वानरों पर टूट पड़ा। अकम्पन के बाणों से घायल होते हुए वे वानर, अकम्पन के सामने ठहर भी न सके, युद्ध करने की तो बात ही क्या है? और वे सारे भागने लगे। अपने उन जाति भाइयों को पीछा करते हुए अकम्पन के बाणों के द्वारा मारा जाता हुआ देख कर, महाबली हनुमान उसके समीप चले। वे महा तेजस्वी, पवन पुत्र हनुमान अट्टहास करके, भूमि को कँपाते हुए से, उस राक्षस की ओर दौड़े।

तस्याथ नर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा।
बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः।। ९।।
आत्मानं त्वप्रहरणं ज्ञात्वा क्रोधसमन्वितः।
शैलमुत्पाटयामास वेगेन हरिपुङ्गवः।। १०।।
गृहीत्वा सुमहाशैलं पाणिनैकेन मारुतिः।
स विनद्य महानादं भ्रामयामास वीर्यवान्।। ११।।
ततस्तमभिदुद्राव राक्षसेन्द्रमकम्पनम्।
अकम्पनस्तु तद् दृष्ट्वा गिरिशृङ्गं समुद्यतम्।। १२।।
दूरादेव महाबाणैरर्धचन्द्रैर्व्यदारयत्।

उस समय अपने तेज से चमकते हुए और गर्जते हुए, उन हनुमान जी का रूप प्रज्वलित अग्नि के समान दुर्धर्ष हो गया था। क्रोध से भरे हुए उन वानर श्रेष्ठ ने, अपने को शस्त्र हीन जान कर, वेग पूर्वक एक पर्वत की शिला को उखाड़ लिया। उन तेजस्वी वायु पुत्र ने उस बड़ी शिला को एक ही हाथ में उठा कर जोर से गर्जना करते हुए घुमाया। फिर उन्होंने राक्षसेन्द्र अकम्पन पर आक्रमण किया। अकम्पन ने तब उस पर्वत की शिला को ऊपर उठे हुए देख कर, दूर से ही अर्धचन्द्राकार विशाल बाणों से उसे विदीर्ण कर दिया।

तं पर्वताग्रमाकाशे रक्षोबाणविदारितम्।। १३।।
विकीर्णं पतितं दृष्ट्वा हनूमान् क्रोधमूर्च्छितः।
सोऽश्वकर्णंसमासाद्य रोषदर्पान्वितो हरिः।। १४।।
तूर्णमुत्पाटयामास महागिरिमिवोच्छ्रितम्।
तं गृहीत्वा महास्कन्धं सोऽश्वकर्णं महाद्युतिः।। १५।।
प्रगृह्य परया प्रीत्या भ्रामयामास संयुगे।
गजांश्च सगजारोहान् सरथान् रथिनस्तथा।। १६।।
जघान हनुमान् धीमान् राक्षसांश्च पदातिगान्।

उस पर्वत की शिला को आकाश में ही राक्षस के बाणों से विदीर्ण और बिखर कर भूमि पर गिरा हुआ देख कर, हनुमान जी क्रोध से मूर्च्छित से हो गये। क्रोध और अभिमान से भरे हुए उन्होंने एक बड़े पर्वत के समान ऊँचे अश्वकर्ण के वृक्ष के पास जाकर उसे जल्दी से उखाड़ लिया। महा तेजस्वी हनुमान जी ने उस विशाल तने वाले अश्वकर्ण को पकड़ कर उसे बड़ी प्रसन्नता से युद्ध में घुमाना आरम्भ कर दिया। उसके द्वारा उन्होंने सवारों सहित हाथियों, रथियों सहित रथों और पैदल राक्षसों को मारना आरम्भ कर दिया।

तमन्तकमिव क्रुद्धं सद्रुमं प्राणहारिणम्।। १७।।
हनूमन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसा विप्रदुद्रुवुः।
तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम्।। १८।।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्षोभ च ननाद च।
स चतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारणैः।। १९।।
निर्बिभेद महावीर्यं हनूमन्तकम्पनः।
विरराज महावीर्यो महाकायो महाबलः।। २०।।
पुष्पिताशोकसंकाशो विधूम इव पावकः।

क्रोध में भरे हुए उन हनुमान जी को, जो वृक्ष को लिये हुए, मृत्यु के समान प्राणों का हरण कर रहे थे, देख कर राक्षस लोग भागने लगे। राक्षसों के लिये भयावह और क्रोध से भरे हुए उनको देख कर वीर अकम्पन क्षुब्ध होकर गर्जना करने लगा। उसने शरीर को छेदने वाले चौदह तीखे बाणों में महा तेजस्वी हनुमान जी को बींध दिया। उस समय खून बहने के कारण वे महा तेजस्वी, महा बलवान, महाकाय हनुमान फूले हुए अशोक के समान और धूआँ रहित अग्नि के समान लग रहे थे।

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम्।। २१।।
शिरस्याभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम्।
स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना।। २२।।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च।
तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम्।। २३।।
व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः।

तब उन्होंने बड़ी तेजी से एक दूसरा वृक्ष उखाड़ कर, तुरन्त उसे उस राक्षस श्रेष्ठ अकम्पन के सिर पर दे मारा। उस क्रोधित वानरेन्द्र के द्वारा वृक्ष से मारा हुआ वह राक्षस, तब भूमि पर गिर कर मर गया। उस राक्षस सरदार अकम्पन को भूमि पर मरा हुआ देख कर, राक्षस भूचाल के आने पर वृक्षों के समान विचलित हो गये।

त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः।। २४।।
लङ्कामभिययुस्त्रासाद् वानरैस्तैरभिद्रुताः।
ते मुक्तकेशाः सम्भ्रान्ता भग्नमानाः पराजिताः।। २५।।
भयाच्छ्रमजलैरङ्गैः प्रस्रवद्भिर्विदुद्रुवुः।
अयोन्यं ये प्रमथ्नन्तो विविशुर्नगरं भयात्।
पृष्ठतस्ते तु सम्मूढाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः।। २६।।

वे पराजित हुए राक्षस, अपने हथियारों को छोड़ कर, वानरों के द्वारा पीछा किये जाते हुए, भयभीत हो कर, लंका की तरफ भागने लगे। उनके बाल खुल गये थे। वे घबरा रहे थे। उनका अभिमान टूट गया था। वे पराजित हो गये। भय से उनके शरीरों से पसीना छूट रहा था। इसी अवस्था में वे एक दूसरे को कुचलते हुए, मोहित हो कर बार-बार पीछे देखते हुए, भय के कारण नगर में घुस गये।

बयालीसवाँ सर्ग

प्रहस्त का रावण की आज्ञा से विशाल सेना सहित, युद्ध के लिये प्रस्थान।

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः।
किंचिद् दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत।। १।।
स तु ध्यात्वा मुहूर्तं तु मन्त्रिभिःसंविचार्य च।
ततस्तु रावणः पूर्वदिवसे राक्षसाधिपः।। २।।
पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान् गुल्मानवेक्षितुम्।
रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः।। ३।।

उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम्।
पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य ह।। ४।।
नान्ययुद्धात् प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद।

अकम्पन के वध के बारे में सुन कर राक्षस राज रावण क्रोधित होकर तथा कुछ दीन मुख के साथ अपने साथियों की तरफ देखने लगा। दो घड़ी तक कुछ सोच कर और मन्त्रियों के साथ विचार कर, दिन के पूर्वान्ह में, रावण स्वयं सारे सैनिक मोर्चों को देखने के लिये लंका की तरफ अर्थात् लंका के किले की तरफ गया। लंका को सब तरफ से घेरा हुआ देख कर राक्षसेश्वर रावण ने उस समय अपने हितैषी और युद्ध विद्या में चतुर प्रहस्त से यह बात कही कि हे युद्ध विशारद! समीप में विद्यमान शत्रु के द्वारा सहसा पीड़ित होते हुए इस नगर की मुक्ति मैं किसी दूसरे के द्वारा युद्ध करने से नहीं देख रहा हूँ।

अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम।। ५।।
इन्द्रजिद् वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम्।
स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च।। ६।।
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः।
आपत्संशयिता श्रेयो नात्र निःसंशयीकृता।। ७।।
प्रतिलोमानुलोमं वा यत् तु नो मन्यसे हितम्।
राक्षसेन्द्रमुवाचेदं प्रहस्तो वाहिनीपतिः।। ८।।

मैं, या कुम्भ कर्ण, या मेरे सेनापति तुम, या इन्द्रजित, या निकुम्भ ही इस प्रकार के भार को उठा सकते हैं। इसलिये तुम सेना को लेकर शीघ्र ही विजय के लिये प्रस्थान करो और वहाँ जाओ, जहाँ ये सारे वानर जुटे हुए हैं। जीवन को संकट में डाल कर जो मृत्यु आती है, वही उत्तम होती है, आराम से प्राप्त होने वाली मृत्यु उत्तम नहीं होती। तुम इसके अनुकूल या प्रतिकूल, जो हमारे लिये हितकर समझते हो, वह बताओ। तब सेनापति प्रहस्त ने राक्षसेन्द्र से यह कहा कि–

राजन् मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः।
विवादश्चापि नो वृत्तः समवेक्ष्य परस्परम्।। ९।।
प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया।
अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेव तथैव नः।। १०।।
सोऽहं दानैश्च मानैश्च सततं पूजितस्त्वया।
सान्त्वैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां हितं तव।। ११।।
नहि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि च।
त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि।। १२।।

हे राजन्! हमने पहले इस विषय में कुशल मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा की थी और विचार करे हुए हम लोगों में परस्पर विवाद भी उत्पन्न हो गया था। मेरा विचार सीता को लौटाने में ही कल्याण को समझने का था। नहीं लौटाने से अब हम युद्ध को देख ही रहे हैं। परन्तु आपने सदा दान और मान से मेरा सत्कार किया है और अलग-अलग समयों पर मेरी भलाई की है, फिर मैं आपका हित क्यों नहीं करूँगा? मुझे अपने प्राणों, पुत्र, पत्नी, और धन की रक्षा नहीं करनी है। आप मुझे अपने प्राणों को आपके लिये युद्ध में होम करता हुआ देखें।

एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः।
उवाचेदं बलाध्यक्षान् प्रहस्तः पुरतः स्थितान्।। १३।।
समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महाबलम्।
मद्बाणानां तु वेगेन हतानां च रणाजिरे।। १४।।
अद्य तृप्यन्तु मांसादाः पक्षिणः काननौकसाम्।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षा महाबलाः।। १५।।
बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन् राक्षसमन्दिरे।
अथामन्त्र्य तु राजानं भेरीमाहत्य भैरवाम्।। १६।।
आरुरोह रथं युक्तः प्रहस्तः सज्जकल्पितम्।

इस प्रकार अपने स्वामी रावण से कह कर सेनापति प्रहस्त अपने सामने खड़े हुए सेनाध्यक्षों से बोला कि मेरे लिये शीघ्र ही राक्षसों की विशाल सेना को तैयार करके लाओ। युद्धक्षेत्र में आज मेरे बाणों के वेग से मारे गये वानरों के माँस को खाने वाले पक्षी तृप्त हो जायेंगे। उसके उन वचनों को सुन कर उन महाबली सेनाध्यक्षों ने, रावण के महल के पास सेना को युद्ध के लिये तैयार कर दिया। तब राजा की आज्ञा लेकर, भयानक नगाड़ों को पिटवाता हुआ, प्रहस्त स्वयं तैयार हो कर सुसज्जित रथ पर सवार हो गया।

ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः।। १७।।
वादित्राणां च निनदः पूरयन्निव मेदिनीम्।
शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ।। १८।।
निनदन्तः स्वरान् घोरान् राक्षसा जग्मुरग्रतः।
भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसराः।। १९।।

सेनापति के उस प्रस्थान समय में बादलों की गर्जना के समान दुन्दुभि का निर्घोष, रण वाद्यों का निनाद तथा शंखों की आवाज सुनाई देने लगी और भयानक रूपधारी विशाल काय राक्षस भयंकर रूप से गर्जना करते हुए प्रहस्त के आगे चलने लगे।

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः।
प्रहस्तसचिवा ह्येते निर्ययुः परिवार्य तम्।। २०।।

व्यूढेनैव सुघोरेण पूर्वद्वारात् स निर्ययौ।
गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृतः।। २१।।
सागरप्रतिमौघेन वृतस्तेन बलेन सः।
प्रहस्तो निर्ययौ क्रुद्धः कालान्तकयमोपमः।। २२।।

नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत, ये चारों प्रहस्त के सचिव उसे घेर कर बाहर निकले। हाथियों के झुण्ड के समान प्रतीत होने वाली, व्यूह बद्ध भयानक विशाल सेना से घिरा हुआ वह पूर्व के द्वार से बाहर निकला। सागर के समान उस विशाल सेना समुदाय से घिरा हुआ और क्रोध में भरा हुआ प्रहस्त जब बाहर निकला तो वह समय आने पर, प्राणों का अन्त कर देने वाली मृत्यु के समान लग रहा था।

तेतालीसवाँ सर्ग

नील के द्वारा प्रहस्त का वध।

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा रणकृतोद्यमम्।
उवाच सस्मितं रामो विभीषणमरिंदमः।। १।।
क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः।
आगच्छति महावेगः किंरूपबलपौरुषः।। २।।
आचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम्।
राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः।। ३।।
एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः।
लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः।। ४।।
वीर्यवानस्त्रविच्छूरः सुप्रख्यातपराक्रमः।

तब युद्ध के लिये तैयार हो कर बाहर आते हुए प्रहस्त को देख कर, शत्रुओं का दमन करने वाले राम ने मुस्करा कर विभीषण से पूछा कि यह अच्छे बड़े शरीर वाला और विशाल सेना से घिरा हुआ, महान वेग वाला कौन आ रहा है? इसका रूप, बल और पौरुष कैसा है? हे महाबाहु! तुम इस तेजस्वी राक्षस के बारे में मुझे बताओ। श्रीराम के वचन सुन कर विभीषण ने उत्तर दिया कि यह सेनापति है। इसका नाम प्रहस्त है। यह राक्षसेन्द्र रावण की लंका में विद्यमान तिहाई सेना से घिरा हुआ है। यह तेजस्वी, शस्त्रास्थों का ज्ञाता, शूरवीर और विख्यात पराक्रमी है।

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम्।। ५।।
गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंवृतम्।
ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम्।। ६।।
अभिसंजातघोषाणां प्रहस्तमभिगर्जताम्।
खड्गशक्त्यृष्टिशूलाश्च बाणानि मुसलानि च।। ७।।
गदाश्च परिघाः प्रासा विविधाश्च परश्वधाः।
धनूंषि च विचित्राणि राक्षसानां जयैषिणाम्।। ८।।
प्रगृहीतान्यराजन्त वानरानभिधावताम्।

तब भीम पराक्रम वाले प्रहस्त को, जो विशाल शरीर वाला था, राक्षसों से घिरा हुआ था, बलवान वानरों की सेना ने बाहर निकलते हुए देखा। उनकी महान सेना में तब जय घोष की ध्वनि उठने लगी और वे वानर लोग प्रहस्त को देख कर गर्जना करने लगे। उस समय वानरों की तरफ दौड़ते हुए, विजयाभिलाषी राक्षसों के द्वारा धारण किये हुए शस्त्रास्त्र, खड्ग, शक्ति, शूल, बाण, मूसल, गदा, परिघ, प्रास, विविध प्रकार के फरसे और विचित्र प्रकार के धनुष उनके हाथों में जगमगा रहे थे।

जगृहुः पादपांश्चापि पुष्पितांस्तु गिरींस्तथा।। ९।।
शिलाश्च विपुला दीर्घा योद्धुकामाः प्लवंगमाः।
तेषामयोन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत्।। १०।।
बहूनामश्मवृष्टिं च शरवर्षं च वर्षताम्।
बहवो राक्षसा युद्धे बहून् वानरपुङ्गवान्।। ११।।
वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून्।
शूलैः प्रमथिताः केचित् केचित् तु परमायुधैः।। १२।।
परिघैराहताः केचित् केचिच्छिन्नाः परश्वधैः।
निरुच्छ्वासाः पुनः केचित् पतिता जगतीतले।। १३।।
विभिन्नहृदयाः केचिदिषुसंधानसाधिताः।

तब युद्ध के इच्छुक वानरों ने भी फूलों वाली वृक्षों की शाखाओं को, पर्वतों के पत्थरों को और बड़ी-बड़ी शिलाओं को उठा लिया। उस समय दोनों पक्षों के पत्थरों और बाणों की वर्षा करते हुए, बहुसंख्यक वीरों का एक दूसरे को आमने सामने पा कर, महान संग्राम हुआ। बहुत सारे राक्षसों ने बहुत सारे वानर श्रेष्ठों को और बहुत सारे वानरों ने भी बहुत सारे राक्षसों को मार दिया। कुछ को शूलों से और कुछ को दूसरे श्रेष्ठ आयुधों से मथ डाला गया। कुछ परिघों से मारे गये और कुछ को फरसों से काट डाला गया। कुछ साँस रहित होकर भूमि पर गिर

पड़े और कुछ के हृदय उनके बाणों का लक्ष्य बन जाने के कारण फट गये।

केचिद् द्विधा कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि।। १४।।
वानरा राक्षसैः शूरैः पार्श्वतश्च विदारिताः।
वानरैश्चापि संक्रुद्धै राक्षसौघाः समन्ततः।। १५।।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च सम्पिष्टा वसुधातले।
वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हता भृशम्।। १६।।
वमञ्शोणितमास्येभ्यो विशीर्णदशनेक्षणाः।
आर्तस्वनं च स्वनतां सिंहनादं च नर्दताम्।। १७।।
बभूव तुमुलः शब्दो हरीणां रक्षसामपि।

कुछ तलवारों से ही टूक कर दिये गये और तड़फड़ाते हुए भूमि पर गिर गये। कुछ वानरों को राक्षसों ने बगल से फाड़ दिया। वानरों ने भी क्रोधित होकर, सब तरफ राक्षसों के समूहों को वृक्षों और पर्वत शिलाओं के द्वारा भूमि पर पीस डाला। वज्र के समान कठोर थप्पड़ों और घूँसों के द्वारा अत्यधिक मारे गये वे राक्षस लोग मुख से खून की उलटी करने लगे। उनके दाँत और नेत्र छिन्न-भिन्न कर दिये गये। वहाँ वानर और राक्षस दोनों में से ही कराहते हुओं का आर्तनाद और गर्जते हुओं का सिंह नाद, महान कोलाहल को जन्म दे रहा था।

वानरा राक्षसः क्रुद्धा वीरमार्गमनुव्रताः।। १८।।
विवृत्तवदनाः क्रूराश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत्।
नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः।। १९।।
एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः।
तेषां निपततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान्।। २०।।
द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम्।
दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः सविपुलद्रुमम्।। २१।।
राक्षसं क्षिप्रहस्तं तु समुन्नतमपोथयत्।

वहाँ क्रोध में भरे हुए और मुख फाड़े हुए, क्रूर वानर और राक्षस, वीरों के मार्ग का अनुसरण करते हुए, अपने कार्यों को निर्भयता के साथ कर रहे थे। नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत इन प्रहस्त के मन्त्रियों ने वानरों का वध करना आरम्भ कर दिया। उनके शीघ्रता पूर्वक आक्रमण करने और वानरों को मारने पर द्विविद ने एक पर्वत की शिला से नरान्तक को मार दिया। फिर दुर्मुख ने एक विशाल वृक्ष को उठा कर, शीघ्रता पूर्वक हाथ चलाने वाले समुन्नत को गिरा दिया।

जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम्।। २२।।
पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि।
अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान्।। २३।।
वृक्षेण महता सद्यः प्राणान् संत्याजयद् रणे।
अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमास्थितः।। २४।।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम्।
आवर्त इव संजज्ञे सेनयोरुभयोस्तदा।। २५।।
क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव निःस्वनः।

तेजस्वी जाम्बवान ने अत्यधिक क्रोध में भर कर, एक बड़ी शिला को उठा कर उसे महानाद की छाती में दे मारा। तेजस्वी कुम्भहनु ने तार के साथ युद्ध करते हुए, उसके विशाल वृक्ष की चोट खा कर अपने प्राणों को छोड़ दिया। रथ में बैठे हुए प्रहस्त ने वानरों के इस कार्य को न सहन करते हुए, धनुष हाथ में लेकर, वानरों का महान विनाश करना आरम्भ कर दिया। उस समय दोनों सेनाओं में भँवर सा पड़ा हुआ था और क्षुब्ध हुए असीम सागर की गर्जना के समान गर्जना सुनाई दे रही थी।

महता हि शरौघेण राक्षसो रणदुर्मदः।। २६।।
अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान् परमाहवे।
ततः सृजन्तं बाणौघान् प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम्।। २७।।
ददर्श तरसा नीलो विधमन्तं प्लवंगमान्।
उद्धूत इव वायुः खे महदभ्रबलं बलात्।। २८।।
समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे प्रहस्तो वाहिनीपतिः।
रथेनादित्यवर्णेन नीलमेवाभिदुद्रुवे।। २९।।

अत्यन्त क्रोध में भरे हुए उस रणदुर्मद राक्षस प्रहस्त ने, उस महा समर में बाणों की महान वर्षा के द्वारा वानरों को पीड़ित कर दिया। तब रथ में बैठे हुए उस प्रहस्त को, जो तेजी के साथ बाणों के समूह को छोड़ता हुआ, वानरों का संहार कर रहा था, नील ने देखा। तब जैसे वायु आकाश में विशाल बादलों को उड़ा देती हैं, उसी तरह से राक्षसों की सेना को तित्तर बित्तर करते हुए नील को देख कर, सेनापति प्रहस्त अपने सूर्य के समान रथ के द्वारा उसकी तरफ ही दौड़ा।

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे।
नीलाय व्यसृजद् बाणान् प्रहस्तो वाहिनीपतिः।। ३०।।
नीलः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः।
स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं महाकपिः।। ३१।।
प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान्।
स तेनाभिहतः क्रुद्धो नर्दन् राक्षसपुंगवः।। ३२।।
ववर्ष शरवर्षाणि प्लवंगानां चमूपतौ।

तब उस सेनापति प्रहस्त ने, जो धनुर्धरों में श्रेष्ठ था, उस महासागर में अपने धनुष को खींच कर नील के ऊपर अपने बाणों को छोड़ा। तेजस्वी महा वानर नील ने उसके अग्नि के समान तीखे बाणों से घायल होकर, अपने ऊपर आक्रमण करते हुए उस परम दुर्धर्ष प्रहस्त को वृक्ष उखाड़ कर, उससे मारा। उसके द्वारा चोट खाया हुआ, क्रोध में आकर गर्जता हुआ वह राक्षस श्रेष्ठ वानरों के उस सेनापति पर अपने बाणों की वर्षा करने लगा।

रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान्।। ३३।।
प्रजघन हयान् नीलः प्रहस्तस्य महाबलः।
ततो रोषपरीतात्मा धनुस्तस्य दुरात्मनः।। ३४।।
बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः।
विधनुः स कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः।। ३५।।
प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लवे।
तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ।। ३६।।
स्थितौ क्षतजसिक्ताङ्गौ प्रभिन्नाविव कुञ्जरौ।

तब उसकी बाण वर्षा से क्रुद्ध हो कर, महाबली नील ने एक बड़े साल वृक्ष के द्वारा प्रहस्त के घोड़ों को मार दिया। पुनः क्रोधाविष्ट नील ने शीघ्रता से उस दुरात्मा राक्षस के धनुष को भी तोड़ दिया और बार-बार गर्जना की। उसके द्वारा धनुष रहित किया जाने पर, सेनापति प्रहस्त एक भयानक मूसल को लेकर रथ से कूद पड़ा। उस समय वे दोनों अपनी-अपनी सेनाओं वेगवान मुखिया, जो एक दूसरे के शत्रु थे, खून से भरे हुए अपने अंगों के साथ खड़े हुए, मद बहाते हुए हाथियों के समान लग रहे थे।

आजधान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः।। ३७।।
प्रहस्तः परमायत्तस्ततः सुस्राव शोणितम्।
ततः शोणितदग्धाङ्गः प्रगृह्य च महातरुम्।। ३८।।
प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः।
तमचिन्त्यप्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत्।। ३९।।
अभिदुद्राव बलिनं बलान्नीलं प्लवंगमम्।
तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्तं महाकपिः।। ४०।।
ततः सम्प्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम्।

तब परम उद्योगी प्रहस्त ने नील के माथे पर मूसल से प्रहार किया, जिससे उसके माथे से खून बहने लगा। तब क्रोध में भर कर, खून से सने हुए अंगों वाले उस महावानर ने एक विशाल वृक्ष को उठा कर, प्रहस्त की छाती पर प्रहार किया, पर उसके उस प्रहार की परवाह न कर, वह अपने महान मूसल को उठा कर वानर नील की तरफ बल पूर्वक दौड़ा। तब प्रचण्ड वेग वाले प्रहस्त को क्रोध में भर कर, आक्रमण करते हुए देख कर, उस महान वेग वाले महा वानर ने एक विशाल शिला को उठा लिया।

तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः।। ४१।।
प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत्।
नीलेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला।। ४२।।
बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा।
स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः।। ४३।।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः।
हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महाबलम्।
राक्षसानामहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह।। ४४।।

उस युद्ध स्थल में युद्ध के इच्छुक, तथा मूसल से युद्ध करने वाले प्रहस्त के सिर पर नील ने तेजी से उस शिला को पटक दिया। वानर प्रमुख नील के द्वारा फेंकी हुई उस भयानक और विशाल शिला ने प्रहस्त के सिर के कई टुकड़े कर दिये। तब प्रहस्त शोभा रहित, प्राण रहित, और इन्द्रियों से रहित हो कर, तुरन्त जड़ कटे हुए वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ा। नील के द्वारा प्रहस्त के मारे जाने पर, उदास राक्षसों की वह अकम्पनीय, विशाल सेना लंका में लौट गयी।

चवालीसवाँ सर्ग

प्रहस्त की मृत्यु से दुखी रावण का स्वयं ही युद्ध के लिये आना। रावण की मार से सुग्रीव का अचेत होना। लक्ष्मण का युद्ध में आना। हनुमान और रावण का युद्ध। रावण द्वारा नील का मूर्च्छित होना। लक्ष्मण का शक्ति के आघात से अचेत होना तथा श्रीराम से परास्त होकर रावण का लंका में घुस जाना।

रक्षोधिपः क्रोधवशं जगाम
संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य।
उवाच तान् राक्षसयूथमुख्या-
निन्द्रो यथा निर्जरयूथमुख्यान्।। १।।

युद्ध में प्रहस्त मारा गया, यह सुन कर वह राक्षसपति क्रोध में भर गया और जैसे इन्द्र देवताओं के नेताओं से बात करते हैं, वैसे ही वह अपने राक्षस यूथपतियों से बोला कि-

सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः।
सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन्।। २।।
स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम्।
अद्य तद् वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम्।। ३।।
निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः।
अद्य संतर्पयिष्यामि पृथिवीं कपिशोणितैः।। ४।।

मेरे सेनापति को अपने सेवकों और हाथियों के साथ मार गिराया गया है। अब मैं शत्रु के नाश के लिये, विजय को प्राप्त करने के लिये, बिना सोच विचार किये इस युद्ध के मुहाने पर स्वयं ही जाऊँगा। आज मैं अपने अग्नि के समान प्रज्वलित बाणों से वन के समान राम और लक्ष्मण सहित उस वानर सेना को भस्म कर दूँगा। आज मैं भूमि को वानरों के रक्त से तृप्त करूँगा।

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाशं
रथं तुरंगोत्तमराजियुक्तम्।
प्रकाशमानं वपुषा ज्वलन्तं
समारुरोहामरराजशत्रुः ।। ५।।
स शङ्खभेरीपणवप्रणादै-
रास्फोटितक्ष्वेडितसिंहनादैः ।
पुण्यैः स्तवैश्चापि सुपूज्यमान-
स्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः।। ६।।

ऐसा कह कर वह इन्द्र शत्रु अपने प्रकाशित शरीर के द्वारा, उत्तम घोड़ों के समूह से जुते हुए, जगमगाते हुए रथ पर आरूढ हो गया। राक्षसों के उस मुखिया ने शंख, भेरी और पणव की ध्वनियों, योद्धाओं के द्वारा ताल ठोकने, ललकारने और सिंहनाद करने तथा बन्दियों के द्वारा की जाने वाली आराधनाओं के साथ अपनी युद्ध यात्रा की।

ततो नगर्याः सहसा महौजा
निष्क्रम्य तद् वानरसैन्यमुग्रम्।
महार्णवाभ्रस्तनितं ददर्श
समुद्यतं पादपशैलहस्तम्।। ७।।

तब लंका नगरी से सहसा बाहर निकल कर उस महातेजस्वी रावण ने महान सागर तथा बादलों के समान फैली हुई उस उग्र वानर सेना को देखा, जो पत्थरों और वृक्ष शाखाओं को लेकर युद्ध के लिये तैयार खड़ी थी।

तद् राक्षसानीकमतिप्रचण्ड-
मालोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः।
विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठ-
मुवाच सेनानुगतः पृथुश्रीः।। ८।।

उस अति प्रचण्ड राक्षसों की सेना को देख कर, नागराज के समान विशाल बाहों वाले, महान कान्ति से युक्त, सेनाओं से घिरे हुए राम ने शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण से पूछा कि-

नानापताकाध्वजछत्रजुष्टं
प्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ।
कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टं
सैन्यं महेन्द्रोपमनागजुष्टम्।। ९।।

जो अनेक प्रकार की पताकाओं, ध्वजों, और छत्रों से सुशोभित है, जो प्रास, तलवार, शूल आदि आयुधों से युक्त है, जिसमें महेन्द्र पर्वत जैसे विशाल काय हाथी विद्यमान हैं, वह निडर सैनिकों वाली और विचलित न होने वाली सेना किसकी है?

ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं
विभीषणः शक्रसमानवीर्यः।

शशंस रामस्य बलप्रवेकं
महात्मनां राक्षसपुंगवानाम्।। १०।।

तब राम के वचन सुन कर, इन्द्र के समान तेजस्वी विभीषण, महान राक्षस श्रेष्ठों की उत्तम शक्ति के विषय में बताने लगा कि–

यश्चैष विन्ध्यास्तमहेन्द्रकल्पो
धन्वी रथस्थोऽतिरथोऽतिवीरः।
विस्फारयंश्चापमतुल्यमानं
नाम्नातिकायोऽतिविवृद्धकायः ।। ११।।

यह जो विन्ध्याचल, अस्ताचल और महेन्द्र पर्वत के समान विशाल, धनुष हाथ में लिये हुए, रथ में विद्यमान, अतिरथी, अतिशय वीर है, जो अपने अनुपम धनुष को बार-बार खींच रहा है, यह विशाल शरीर वाला नाम से अतिकाय है।

योऽसौ नवार्कोदिततामुचक्षु-
रारुह्य घण्टानिनदप्रणादम्।
गजं खरं गर्जति वै महात्मा
महोदरो नाम स एष वीरः।। १२।।

जो यह उदय होते हुए सूर्य के समान लाल आँखों वाला है, जो घण्टे की ध्वनि से निनादित हो रहे हाथी पर बैठ कर जोर से गर्जना कर रहा है, यह महान महोदर नाम का वीर है।

योऽसौ हयं काञ्चनचित्रभाण्ड-
मारुह्य संध्याभ्रगिरिप्रकाशम्।
प्रासं समुद्यम्य मरीचिनद्धं
पिशाच एषोऽशनितुल्यवेगः।। १३।।

जो यह सुनहले साज से सुसज्जित घोड़े पर, जो सन्ध्याकालीन मेघों से युक्त पर्व के समान प्रतीत हो रहा है, चढ़ कर हाथ में जगमगाते हुए प्रास को उठाये हुए है, यह विद्युत के समान वेग वाला पिशाच नाम का राक्षस है।

यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य
विद्युत्प्रभं किंकरवज्रवेगम्।
वृषेन्द्रमास्थाय शशिप्रकाश-
मायाति योऽसौ त्रिशिरा यशस्वी।। १४।।

जो तीखे, विद्युत् के समान जगमगाते हुए वज्र से भी उत्कृष्ट वेग वाले शूल को लेकर चन्द्रमा के समान श्वेत साँड पर चढ़ कर आ रहा है, यह त्रिशिरा नाम का यशस्वी वीर है।

असौ च जीमूतनिकाशरूपः
कुम्भः पृथुव्यूढसुजातवक्षाः।
समाहितः पन्नगराजकेतु-
र्विस्फारयन् याति धनुर्विधुन्वन्।। १५।।

जो बादलों के समूह के समान काले रूप वाला है जिसका वक्ष स्थल उभरा हुआ, चौड़ा और सुन्दर है, जिसकी ध्वजा नागराज से चिन्हित है, जो धनुष को हिलाता हुआ और खींचता हुआ आ रहा है, वह कुम्भ नाम का राक्षस है।

यश्चैष जाम्बूनदवज्रजुष्टं
दीप्तं सधूमं परिघं प्रगृह्य।
आयाति रक्षोबलकेतुभूतो
योऽसौ निकुम्भोऽद्भुतघोरकर्मा।। १६।।

जो यह सोने और हीरों से जड़े, जगमगाते हुए और धूएँ के रंग के परिघ को लेकर, राक्षसों की सेना के झंडे के समान प्रतीत हो रहा है, वह अद्भुत और भयानक कर्म करने वाला निकुम्भ है।

यश्चैष चापासिशरौघजुष्टं
पताकिनं पावकदीप्तरूपम्।
रथं समास्थाय विभात्युदग्रो
नरान्तकोऽसौ नगशृङ्गयोधी।। १७।।

और जो यह धनुष, तलवार बाणों के समूह से युक्त, पताकाओं वाले और अग्नि के समान जगमगाते हुए रथ पर चढ़ कर अत्यधिक सुशोभित हो रहा है, वह पर्वतों के शिखरों पर से युद्ध करने वाला नरान्तक है।

यत्रैतदिन्दुप्रतिमं विभाति
च्छत्रं सितं सूक्ष्मशलाकमग्र्यम्।
असौ किरीट चलकुण्डलास्यो
रक्षोधिपः सूर्य इवावभाति।। १८।।

जिसके ऊपर बारीक तीलियों वाला, चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र सुशोभित हो रहा है, जिसने मुकुट धारण किया हुआ है, जिसके कानों में हिलते हुए कुण्डल हैं, यह सूर्य के समान तेजस्वी राक्षस राज रावण है।

प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिंदमः।
दिष्ट्यायमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः।। १९।।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसम्भवम्।
एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान्।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम्।। २०।।

तब शत्रु का दमन करने वाले राम ने विभीषण से कहा कि यह पापी आज सौभाग्य से मेरी आँखों के सामने आ गया है। आज मैं सीता हरण के कारण हुए अपने क्रोध को इसके ऊपर छोड़ूँगा। ऐसा कह कर तेजस्वी राम लक्ष्मण के साथ धनुष को लेकर और उत्तम बाण को निकाल युद्ध के लिये तैयार हो गये।

ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा
रक्षांसि तान्याह महाबलानि।
द्वारेषु चर्यागृहगोपुरेषु
सुनिर्वृतास्तिष्ठत निर्विशङ्काः।। २१।।

फिर महान राक्षसों के स्वामी ने अपने साथ आये उन महाबली राक्षसों से कहा कि तुम लोग वापिस जाओ और लंका के रक्षा गृहों के द्वारों पर तथा नगर द्वारों पर निर्भय हो कर खड़े हो जाओ।

इहागतं मां सहितं भवद्धि-
र्वनौकसश्छिद्रमिदं विदित्वा।
शून्यां पुरीं दुष्प्रसहां प्रमथ्य
प्रधर्षयेयुः सहसा समेताः।। २२।।

यहाँ मुझे आप लोगों के साथ आया हुआ देख कर, हमारी इस कमजोरी को जान कर, वानर लोग, इस दुर्धर्ष, पर इस समय सूनी लंका नगरी में घुस जायेंगे, और इसे मथ कर तहस नहस कर देंगे।

विसर्जयित्वा सचिवांस्ततस्तान्
गतेषु रक्षःसु यथानियोगम्।
व्यादारयद् वानरसागरौघं
महाझषः पूर्णमिवार्णवौघम्।। २३।।

तब उन सचिवों को विदा कर, तथा उनके यथा निर्दिष्ट स्थानों पर चले जाने पर, उसने वानरों के उस विशाल सागर को ऐसे ही विदीर्ण करना आरम्भ कर दिया, जैसे एक विशाल मत्स्य पूरी तरह से भरे हुए महासागर को क्षुब्ध कर देता है।

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
दीप्तेषुचापं युधि राक्षसेन्द्रम्।
महत् समुत्पाट्य महीधराग्रं
दुद्राव रक्षोधिपतिं हरीशः।। २४।।

तब युद्ध क्षेत्र में जगमगाते हुए धनुष को लेकर सहसा आक्रमण करते हुए रावण को देख कर, वानरेश सुग्रीव ने एक बड़ी पर्वत की शिला को उखाड़ कर, उस राक्षसों के स्वामी पर आक्रमण किया।

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः।
महाहिकल्पं शरमन्तकाभं
समादधे राक्षसलोकनाथः।। २५।।

उस शिला को अपने ऊपर सहसा आते हुए देख कर उसने तब सुनहले पंखों वाले बाणों से उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया। पुनः राक्षसों के स्वामी रावण ने एक बड़े सर्प और मृत्यु के समान भयानक बाण का संधान किया।

स तं गृहीत्वानिलतुल्यवेगं
चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः।
स सायको रावणबाहुमुक्तः
सुग्रीवमासाद्य बिभेद वेगाद्।। २६।।

उसने उस अग्नि के समान वेग वाले बाण को लेकर, उसे क्रुद्ध होकर सुग्रीव वध के लिये फैंका। रावण के हाथ से छूटे हुए उस बाण ने सुग्रीव के पास जा कर, उसे तेजी से बींध दिया।

स सायकार्तो विपरीतचेताः
कूजन् पृथिव्यां निपपात वीरः।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः।। २७।।

उस बाण से पीड़ित हो कर वीर सुग्रीव अचेत हो गये और आर्तनाद करते हुए भूमि पर गिर पड़े। उन्हें भूमि पर मूर्च्छित हो कर गिरा हुआ देख कर, युद्धस्थल में राक्षस प्रसन्न हो कर सिंहनाद करने लगे।

ततो गवाक्षो गवयः सुषेण-
स्त्वथर्षभो ज्योतिमुखो नलश्च।
शैलान् समुत्पाट्य विवृद्धकायाः
प्रदुद्रुवस्तं प्रति राक्षसेन्द्रम्।। २८।।

तब गवाक्ष, गवय, सुषेण, ऋषभ, ज्योतिर्मुख और नल ये विशालकाय वानर पर्वत शिलाओं को उखाड़ कर रावण पर आक्रमण करने लगे।

तेषां प्रहारान् स चकार मोघान्
रक्षोधिपो बाणशतैः शिताग्रैः।
तान् वानरेन्द्रानपि बाणजालै-
र्बिभेद जाम्बूनदचित्रपुङ्खैः।। २९।।

ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणै-
र्भिन्ना निपेतुर्भुवि भीमकायाः।

तब राक्षस राज रावण ने उनके प्रहारों को अपने सैकड़ों तीखे बाणों के द्वारा व्यर्थ कर दिया। उसने उन

वानरेन्द्रों को भी अपने सुनहले पंखों वाले बाणों के जाल से बींध दिया। वे विशाल काय वानरेन्द्र उस देवशत्रु के बाणों से घायल हो कर भूमि पर गिर पड़े।

ततस्तु तद् वानरसैन्यमुग्रं
प्रच्छादयामास स बाणजालैः।। ३०।।
ते वध्यमानाः पतिताश्च वीरा
नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः।

इसके पश्चात् रावण ने उस भयंकर वानर सेना को अपने बाणों के जाल से आच्छादित करना आरम्भ कर दिया। वे वानर वीर उसके बाणों की चोट खाकर और भयभीत हो कर, चीत्कार करने लगे और मारे जाने लगे।

शाखामृगा रावणसायकार्ता
जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम्।। ३१।।
ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मा-
नादाय रामः सहसा जगाम।
तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य
उवाच रामं परमार्थयुक्तम्।। ३२।।

तत्पश्चात् रावण के बाणों से पीड़ित वानर, शरण देने वाले राम की शरण में गये। तब वे महात्मा धनुर्धर राम धनुष उठा कर तुरन्त युद्ध के लिये चल दिये। उस समय लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर और उनके समीप जाकर, राम से अत्यन्त अर्थयुक्त यह बात कही कि—

काममार्य सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः।
विधमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो।। ३३।।
तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः।
गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे।। ३४।।

हे आर्य, हे प्रभो! आप मुझे आज्ञा दीजिये। इस दुरात्मा के वध के लिये मैं पूरी तरह से और अच्छी तरह से पर्याप्त हूँ। मैं इसका नाश कर दूँगा। तब सत्य पराक्रमी और महातेजस्वी राम ने उनसे कहा कि हे लक्ष्मण। तुम युद्ध के लिये जाओ, पर प्रयत्नशील रहना।

रावणो हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः।
तस्यच्छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय।। ३५।।
चक्षुषा धनुषाऽऽत्मानं गोपायस्व समाहितः।
राघवस्य वचः श्रुत्वा सम्परिष्वज्य पूज्य च।। ३६।।
अभिवाद्य च रामाय ययौ सौमित्रिराहवे।

रावण महातेजस्वी है और युद्ध में अद्भुत पराक्रम दिखाने वाला है। तुम उसकी कमियों को ढूँढना और अपनी कमियों पर ध्यान रखना। एकाग्रचित्त हो कर अपनी दृष्टि और अपने धनुष के द्वारा अपनी रक्षा करना। राम की बात सुन कर, उनके गले लग कर, उनका सम्मान कर और उन्हें अभिवादन कर लक्ष्मण युद्ध के लिये गये।

तमालोक्य महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः।
निवार्य शरजालानि विदुद्राव स रावणम्।। ३७।।
रथं तस्य समासाद्य बाहुमुद्यम्य दक्षिणम्।
त्रासयन् रावणं धीमान् हनूमान् वाक्यमब्रवीत्।। ३८।।
एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः।
विधमिष्यति ते देहे भूतात्मानं चिरोषितम्।। ३९।।
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रावणो भीमविक्रमः।
आजघानानिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान्।। ४०।।

उधर महा तेजस्वी, वायुपुत्र हनुमान उस रावण को देख कर, वे उसके बाण समूहों का निवारण करते हुए उसकी तरफ दौड़े। धीमान हनुमान उसके रथ के समीप पहुँच कर, अपना दायाँ हाथ उठा कर उसे धमकाते हुए बोले कि यह मेरा पाँच अँगुलियों वाला दायाँ हाथ जो उठा हुआ है, तेरी आत्मा को, जो तेरे शरीर में बहुत दिनों से रह रही है, उससे अलग कर देगा। हनुमान जी की बात सुन कर, भयानक पराक्रम वाले, तेजस्वी रावण ने वायुपुत्र की छाती में थप्पड़ से प्रहार किया।

स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः।
स्थितो मुहूर्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः।। ४१।।
आजघान च संक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम्।
ततः स तेनाभिहतो वानरेण महात्मना।। ४२।।
दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमितलेऽचलः।
अथाश्वस्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत्।। ४३।।
साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः।
रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत्।। ४४।।
धिगस्तु मम वीर्यस्य यत् त्वं जीवसि रावण।

रावण के द्वारा थप्पड़ मारे जाने पर, हनुमान जी को चक्कर आने लगे, पर वह तेजस्वी महामति थोड़ी देर में ही स्थिर हो कर खड़े हो गये और उन्होंने क्रोध में भर कर उस देव शत्रु रावण को थप्पड़ से ही मारा। उस मनस्वी वानर के द्वारा चोट खाया हुआ रावण उसी तरह से काँपने लगा जैसे भूचाल आने पर पर्वत हिलने लग जाते हैं। फिर थोड़ी देर में अपने आपको सँभाल कर, उस महातेजस्वी रावण ने कहा कि शाबास वानर शाबास। तुम तेज से मेरे प्रशंसनीय शत्रु हो। रावण के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वायुपुत्र हनुमान जी ने कहा कि हे रावण! मेरे तेज को धिक्कार है, जो तुम अभी तक जीवित हो।

सकृत् तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे।।४५।।
ततस्त्वां मामको मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम्।
ततो मारुतिवाक्येन कोपस्तस्य प्रजज्वले।।४६।।
संरक्तनयनो यत्नान्मुष्टिमावृत्य दक्षिणम्।
पातयामास वेगेन वानरोरसि वीर्यवान्।।४७।।
हनूमान् वक्षसि व्यूढे संचचाल पुनः पुनः।
विह्वलं तु तदा दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम्।।४८।।
रथेनातिरथः शीघ्रं नीलं प्रति समभ्यगात्।

हे दुर्बुद्धि! तुम अपनी प्रशंसा क्या करते हो? एक बार फिर मेरे ऊपर प्रहार करो। उसके बाद मेरा घूँसा तुम्हें मृत्यु के पास पहुँचा देगा। तब वायु पुत्र की बात से रावण का क्रोध प्रज्वलित हो गया। उस तेजस्वी ने आँखें लाल करके, अपने दायें हाथ की मुट्ठी को यत्न से कस कर बाँध, हनुमान जी की छाती पर जोर से प्रहार किया। छाती में चोट लगने पर हनुमान जी पुनः विचलित हो उठे। तब उन महाबली हनुमान जी को बेचैन देख कर उस अतिरथी रावण ने शीघ्र ही अपने रथ से नील पर आक्रमण कर दिया।

राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवः प्रतापवान्।।४९।।
पन्नगप्रतिमैर्भीमैः परमर्माभिभेदनैः।
शरैरादीपयामास नीलं हरिचमूपतिम्।।५०।।
स शरौघसमायस्तो नीलो हरिचमूपतिः।
करेणैकेन शैलाग्रं रक्षोधिपतयेऽसृजत्।।५१।।
हनूमानपि तेजस्वी समाश्वस्तो महामनाः।
विप्रेक्षमाणो युद्धेप्सुः सरोषमिदमब्रवीत्।।५२।।
नीलेन सह संयुक्तं रावणं राक्षसेश्वरम्।
अन्येन युध्यमानस्य न युक्तमभिधावनम्।।५३।।

उस समय राक्षसों का अधिपति प्रतापी रावण शत्रु के मर्म स्थानों को छेदने वाले, साँप के समान भयानक, अपने बाणों से, वानर सेनापति नील को संताप देने लगा। बाणों के समूह से पीड़ित वानर सेनापति नील ने तब एक हाथ से एक पर्वतीय शिला को रावण के ऊपर फेंका। इतने में तेजस्वी और महामना हनुमान जी भी ठीक हो कर, क्रोध के साथ, युद्ध की इच्छा से रावण की तरफ देखते हुए बोले कि नील के साथ युद्ध करते हुए इस राक्षसेश्वर रावण पर, जो दूसरे के साथ युद्ध कर रहा है, आक्रमण करना ठीक नहीं है।

रावणोऽथ महातेजास्तं शृङ्गं सप्तभिः शरैः।
आजघान सुतीक्ष्णाग्रैस्तद् विकीर्णं पपात ह।।५४।।
तद् विकीर्णं गिरेः शृङ्गं दृष्ट्वा हरिचमूपतिः।
कालाग्निरिव जज्वाल कोपेन परवीरहा।।५५।।
अन्यांश्च विविधान् वृक्षान् नीलश्चिक्षेप संयुगे।
स तान् वृक्षान् समासाद्य प्रतिचिच्छेद रावणः।।५६।।
अभ्यवर्षच्च घोरेण शरवर्षेण पावकिम्।

उधर महा तेजस्वी रावण ने नील के द्वारा फेंकी हुई पर्वत शिला को अपने तीखे बाणों से काट कर गिरा दिया। वानर सेनापति नील ने जब उस शिला को बिखर कर गिरा हुआ देखा, तो वह शत्रु के वीरों को मारने वाला कालाग्नि के समान क्रोध से जलने लगा। तब उसने युद्ध में अनेक प्रकार के दूसरे वृक्षों को उसके ऊपर फेंका, पर रावण ने अपने ऊपर आते हुए उन सारे वृक्षों को काट गिराया और उस अग्नि पुत्र नील पर भयानक बाणों की वर्षा की।

ततोऽब्रवीन्महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः।।५७।।
जीवितं खलु रक्षस्व यदि शक्तोऽसि वानर।
तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकशः।।५८।।
तथापि त्वां मया मुक्तः सायकोऽस्त्रप्रयोजितः।
जीवितं परिरक्षन्तं जीविताद् भ्रंशयिष्यति।।५९।।
एवमुक्त्वा महाबाहू रावणो राक्षसेश्वरः।
संधाय बाणमस्त्रेण चमूपतिमताडयत्।।६०।।

उसके बाद उस राक्षसों के स्वामी महा तेजस्वी रावण ने कहा कि हे वानर! यदि तुम समर्थ हो तो अब अपने जीवन को बचाओ। तुम अपने अनुसार अनेक प्रकार के पराक्रम के कार्य कर रहे हो, पर फिर भी मेरे द्वारा दिव्यास्त्र से युक्त छोड़ा हुआ यह बाण, अपने को बचाने की चेष्टा करते हुए तुम्हारे जीवन को नष्ट कर देगा। ऐसा कह कर राक्षसेश्वर, महाबाहु रावण ने दिव्यास्त्र से युक्त उस बाण से सेनापति नील पर प्रहार किया।

सोऽस्त्रमुक्तेन बाणेन नीलो वक्षसि ताडितः।
निर्दह्यमानः सहसा स पपात महीतले।।६१।।
विसंज्ञं वानरं दृष्ट्वा दशग्रीवो रणोत्सुकः।
रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे।।६२।।

उस दिव्यास्त्र से युक्त बाण ने नील की छाती में चोट की, जिससे पीड़ित होकर वे तुरन्त भूमि पर गिर पड़े। तब उस वानर को संज्ञा रहित देख कर युद्ध के लिये उत्सुक रावण ने अपने मेघ के समान शब्द करते हुए रथ के द्वारा सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण पर आक्रमण किया।

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो
विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम्।

अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र
न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि।। ६३।।

उस समय दीनता से रहित शक्ति वाले लक्ष्मण जी अपने अद्वितीय धनुष को टंकराते हुए उससे बोले कि हे राक्षसेन्द्र! तुम मुझे आया हुआ समझो। अब तुम्हें वानरों से युद्ध नहीं करना चाहिये।

स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज
रक्षोधिपः सप्त शरान् सुपुङ्खान्।
ताँल्लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खै-
श्छिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः।। ६४।।

ऐसा कहे जाने पर उस राक्षस राज ने क्रोध में भर कर सात सुन्दर पंख वाले बाणों को छोड़ा, किन्तु लक्ष्मण ने अपने सुनहले और सुन्दर पंख वाले तीखे बाणों से उन्हें काट दिया।

तान् प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्
निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान्।
लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम
ससर्ज चान्यान् निशितान् पृषत्कान्।। ६५।।

अपने उन बाणों को अचानक जैसे बड़े साँपों के शरीरों के टुकड़े कर दिये जायें, वैसे ही कटा हुआ देख कर लंका के राजा ने क्रुद्ध हो कर दूसरे तीक्ष्ण बाणों को छोड़ा।

स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं
रामानुजः कार्मुकसम्प्रयुक्तम्।
क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णिभल्लैः
शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च।। ६६।।

किन्तु राम के अनुज लक्ष्मण उनसे विचलित नहीं हुए और उन्होंने अपने धनुष से बाणों की तेज वर्षा की। उन्होंने क्षुर, अर्ध चन्द्र, उत्तम कर्णी और भल्ल नाम के बाणों से रावण के बाणों को काट दिया।

स बाणजालान्यपि तानि तानि
मोघानि पश्यंस्त्रिदशारिराजः।
विसिस्मिये लक्ष्मणलाघवेन
पुनश्च बाणान् निशितान् मुमोच।। ६७।।

जो-जो बाण समूह उसने छोड़े, उन सब को व्यर्थ किया देख कर, राक्षस राज रावण लक्ष्मण की फुर्ती से विस्मित हो गया और उसने पुनः तीक्ष्ण बाणों को छोड़ना आरम्भ किया।

स लक्ष्मणो रावणसायकार्त-
श्चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य।
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्रा-
च्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः।। ६८।।

रावण के उन बाणों से पीड़ित हो कर लक्ष्मण जी विचलित हो गये। उनकी धनुष पर पकड़ ढीली पड़ गयी, पर फिर प्रयत्न पूर्वक होश में आकर उन्होंने उस इन्द्र के शत्रु रावण के धनुष को काट दिया।

निकृत्तचापं त्रिभिराजघान
बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः।
स सायकार्तो विचचाल राजा
कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद।। ६९।।

उस धनुष को काट कर दशरथ पुत्र लक्ष्मण ने तीन बाणों से उस पर प्रहार किया, जिनसे पीड़ित हो कर वह राजा विचलित हो गया और बड़ी कठिनाई से सचेत हुआ।

स कृत्तचापः शरताडितश्च
मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः।
जग्राह शक्तिं स्वयमुग्रशक्तिः
चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीम्।। ७०।।

जब रावण का धनुष कट गया, बाणों से वह घायल हो गया, चर्बी और रक्त से लथपथ हो गया, तो उसने जो स्वयं ही उग्रशक्ति वाला था, एक शक्ति को उठाया और उस जलती हुई शक्ति को तेजी से फेंका।

तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रै-
र्जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः।
तथापि सा तस्य विवेश शक्ति-
र्भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम् ।।७१।।

उस अपने ऊपर आती हुई शक्ति पर भरत के छोटे भाई ने यद्यपि अनेक अग्नि के समान प्रज्वलित बाणों से प्रहार किया, पर फिर भी वह उन दशरथ पुत्र की विशाल छाती में प्रविष्ट हो गयी।

स शक्तिमाञ्शक्तिसमाहतः सन्
जज्वाल भूमौ स रघुप्रवीरः।
तं विह्वलन्तं सहसाभ्युपेत्य
जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम्।। ७२।।

वे शक्तिशाली रघुकुल के प्रधान उस शक्ति से पीड़ित हो कर भूमि पर गिर पड़े। तब उन्हें व्याकुल देख कर वह राक्षसराज सहसा उनके पास जा कर तेजी से उन्हें हाथों से उठाने लगा।

ततः क्रुद्धो वायुसुतो रावणं समभिद्रवत्।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।।७३।।
तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः।
जानुभ्यामगमद् भूमौ चचाल च पपात च।।७४।।
हनूमानथ तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम्।
आनयद् राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम्।।७५।।
रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे।
आददे निशितान् बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः।।७६।।

तब क्रोध में भरे हुए वायु पुत्र रावण की तरफ दौड़े और उन्होंने अपने वज्र के समान घूँसे से रावण की छाती पर प्रहार किया। उस घूँसे की मार से वह राक्षसेश्वर रावण पहले घुटनों के सहारे बैठ कर काँपने लगा और फिर विचलित हो कर भूमि पर गिर पड़ा। तब तेजस्वी हनुमान रावण के द्वारा पीड़ित लक्ष्मण को अपने दोनों हाथों में उठा कर, उन्हें श्रीराम के पास ले आये। उसके पश्चात् महा तेजस्वी रावण ने होश में आ कर एक अन्य विशाल धनुष और तीक्ष्ण बाणों को ग्रहण किया।

आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः।
निपातितमहावीरां वानराणां महाचमूम्।।७७।।
राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत्।
अथैनमनुसंक्रम्य हनूमान् वाक्यमब्रवीत्।।७८।।
मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि।
तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं वायुपुत्रेण भाषितम्।।७९।।
अथारुरोह सहसा हनूमन्तं महाकपिम्।

तभी शत्रुओं को नष्ट करने वाले लक्ष्मण भी होश में आ गये और स्वस्थ हो गये। तब वानरों की विशाल सेना के महान वीरों को गिराया हुआ देख कर श्रीराम ने युद्ध भूमि में रावण पर आक्रमण किया। उस समय उनके समीप जा कर हनुमान जी बोले कि आप मेरे कन्धे पर बैठ कर इस राक्षस को दण्ड दीजिये। वायु पुत्र के द्वारा कही गयी उस बात को सुन कर श्रीराम तुरन्त उन महान वानर के कन्धे पर बैठ गये।

रथस्थं रावणं संख्ये ददर्श मनुजाधिपः।।८०।।
तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स रावणम्।
ज्याशब्दमकरोत् तीव्रं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम्।।८१।।
गिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह।
तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम।
क्व नु राक्षसशार्दूल गत्वा मोक्षमवाप्स्यसि।।८२।।

युद्ध क्षेत्र में मानवपति राम ने रावण को रथ में बैठा हुआ देखा। तब वे महा तेजस्वी उसे देख कर उस की तरफ दौड़े। उन्होंने वज्र की गड़गड़ाहट से भी अधिक कठोर अपनी प्रत्यंचा की तीव्र टंकार की और गम्भीर वाणी में राक्षस राज से बोले कि अरे राक्षसों में शेर बने हुए रावण! ठहर जा, ठहर जा। मेरा इतना अप्रिय कार्य करके अब तू कहाँ जा कर बचेगा?

यश्चैष शक्त्या निहतस्त्वयाद्य
गच्छन् विषादं सहसाभ्युपेत्य।
स एष रक्षोगणराज मृत्युः
सपुत्रपौत्रस्य तवाद्य युद्धे।।८३।।

तूने आज अचानक आक्रमण कर के जिस पर शक्ति का प्रहार किया, जिससे वह विषाद को प्राप्त हो गया, उसी के बदले में हे राक्षसों के राजा! मैं तुम्हारे पुत्र और पौत्रों सहित तुम्हारी मृत्यु बन कर तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ हूँ।

एतेन चात्यद्भुतदर्शनानि
शरैर्जनस्थानकृतालयानि।
चतुर्दशान्यात्तवरायुधानि
रक्षःसहस्राणि निषूदितानि।।८४।।

हे रावण। यह वही राम है। इसी ने जनस्थान में रहने वाले उत्तम आयुधों से युक्त, दर्शनीय और अद्भुत चौदह हजार राक्षसों को मारा था।

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबलः।
वायुपुत्रं महावेगं वहन्तं राघवं रणे।।८५।।
रोषेण महताऽऽविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन्।
आजघान शरैर्दीप्तैः कालानलशिखोपमैः।।८६।।
ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम्।
दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं क्रोधस्य वशमेयिवान्।।८७।।

राम की बात को सुन कर महाबली राक्षसेन्द्र पहले बैर को याद कर महान क्रोध से भर गया। उसने युद्ध भूमि में राम को उठाये हुए महा वेगशाली वायुपुत्र को अपने मृत्यु और अग्नि शिक्षा के समान प्रदीप्त बाणों से घायल कर दिया। महा तेजस्वी राम रावण के द्वारा वानर श्रेष्ठ हनुमान को घायल किया हुआ देख कर क्रोध के वश में हो गये।

तस्याभिसंक्रम्य रथं सचक्रं
साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम्।
ससारथिं साशनिशूलखड्गं
रामः प्रचिच्छेद शितैः शराग्रैः।।८८।।

तब राम ने आक्रमण कर के उसके पहियों, घोड़ों, ध्वज, छत्र, बड़ी पताका, सारथी, अशनि, शूल और खड्ग सहित रथ को अपने तीखे बाणों से काट दिया।

यो वज्रपाताशनिसंनिपाता–
न्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा।
स रामबाणाभिहतो भृशार्त–
श्चचाल चापं च मुमोच वीरः।। ८९।।

पहले वज्र और अशनि के गिरने से भी जो राक्षस राज कभी न तो विचलित हुआ और न क्षुब्ध हुआ था, वही वीर इस समय राम के बाणों की चोट से अत्यन्त विचलित हो गया और उसके हाथ से धनुष छूट कर गिर गया।

तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः
समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम्।
तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं
चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा।। ९०।।

तब महात्मा राम ने उसे व्याकुल देख कर, एक जगमगाते हुए अर्धचन्द्राकार बाण को निकाला और उसके द्वारा उसने उस राक्षस राज के सूर्य के समान देदीप्यमान मुकुट को एक दम काट डाला।

तं निर्विषाशीविषसंनिकाशं
शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम्।
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूट–
मुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम्।। ९१।।

तब उस राक्षस राज रावण से, जो विष रहित विषधर सर्प के समान, जिसकी किरणें शान्त हो गयीं हो, ऐसे प्रकाश रहित सूर्य के समान तथा सुदृढ़ किरीट के कट जाने से जो कान्ति रहित हो गया था, युद्ध क्षेत्र में राम ने कहा कि–

कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य
न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि।। ९२।।

तूने आज बड़ा भयानक काम किया है, जो मेरी सेना के प्रमुख वीरों को मारा है, फिर भी तुझे थका हुआ समझ कर मैं अपने बाणों से मृत्यु के वश में नहीं कर रहा हूँ।

प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं
प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम्।
आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी
तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः।। ९३।।

मुझे पता है कि तू युद्ध के कारण पीड़ित हो रहा है। इसलिये हे राक्षस राज! अब जा, लंका में प्रवेश कर। आराम करके, रथ और धनुष को लेकर आना, तब रथ में बैठ कर मेरी शक्ति को देखना।

स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो
निकृत्तचापः स हताश्वसूतः।
शरार्दितो भग्नमहाकिरीटो
विवेश लङ्कां सहसा स्म राजा।। ९४।।

इस प्रकार जिसके दर्प और हर्ष नष्ट हो गये थे, धनुष कट गया था, घोड़े और सारथी मारे गये थे, जिसका महान मुकुट टूट गया था और जो बाणों से घायल हो गया था, वह राक्षसों का राजा रावण तुरन्त लंका में घुस गया।

पैंतालीसवाँ सर्ग

अपनी पराजय से दुखी रावण के द्वारा सोये हुए कुम्भकर्ण को जगाया जाना।

स प्रविश्य पुरीं लंकां रामबाणभयार्दितः।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव व्यथितेन्द्रियः।। १।।
मातंग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः।
अभिभूतोऽभवद् राजा राघवेण महात्मना।। २।।
ब्रह्मदण्डप्रतीकानां विद्युच्चलितवर्चसाम्।
स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः।। ३।।
स काञ्चनमयं दिव्यमाश्रित्य परमासनम्।
विप्रेक्षमाणो रक्षांसि रावणो वाक्यमब्रवीत्।। ४।।

राम के बाणों के भय से पीड़ित राक्षस राज रावण जब लंका में प्रविष्ट हुआ, तब उसका अभिमान टूट चुका था और उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रहीं थीं। जैसे सिंह ने हाथी को और गरुड़ पक्षी ने विशाल नाग को पराजित कर दिया हो, इसी प्रकार की उसकी अवस्था राम के द्वारा हो गयी थी। राम के बाण ब्रह्म दण्ड के समान भयानक और विद्युत के समान चंचल चमक वाले थे। उन्हें याद कर वह बड़ा दुखी हो रहा था। तब रावण

अपने सोने के अलौकिक, सुन्दर और उत्तम आसन पर बैठ कर राक्षसों की तरफ देखता हुआ बोला कि—

द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम्।
तं तु बोधयत क्षिप्रं कुम्भकर्णं महाबलम्॥ ५॥
स हि संख्ये महाबाहुः ककुदं सर्वरक्षसाम्।
वानरान् राजपुत्रौ च क्षिप्रमेव हनिष्यति॥ ६॥
एष केतुः परं संख्ये मुख्यो वै सर्वरक्षसाम्।
कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः॥ ७॥
रामेणाभिनिरस्तस्य संग्रामेऽस्मिन् सुदारुणे।
भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते॥ ८॥

तुम लोग पर=कोटे पर चढ़ कर नगर द्वारों और परकोटे की रक्षा करो और उस महाबली कुम्भकर्ण को जल्दी जा कर जगाओ। वह विशाल भुजाओं वाला ही सारे राक्षसों में श्रेष्ठ है। वह युद्ध में वानरों को और दोनों राजपुत्रों को जल्दी ही मार देगा। वह कुम्भकर्ण, जो सारे राक्षसों की पताका के समान युद्ध में होता है, और सबसे श्रेष्ठ है, मूर्खता के साथ घटिया तरह के सुखों में लगा हुआ सदा सोता रहता है अर्थात् अपने ही सुखों में मस्त रहता है। उसे मेरे दुखों की परवाह नहीं है। यदि कुम्भकर्ण को जागृत कर दिया जाये, अर्थात् युद्ध के लिये तैयार कर दिया जये, तो इस अत्यन्त भयानक युद्ध में, राम से पराजित होने का मुझे शोक नहीं रहेगा।

किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि।
ईदृशे व्यसने घोरे यो न साह्याय कल्पते॥ ९॥
ते तु तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः।
जग्मुः परमसम्भ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम्॥ १०॥
ते तु तं विकृतं सुप्तं विकीर्णमिव पर्वतम्।
कुम्भकर्णं महानिद्रं समेताः प्रत्यबोधयन्॥ ११॥
स जृम्भमाणोऽतिबलः प्रबुद्धस्तु निशाचरः।
निःश्वासश्चास्य संजज्ञे पर्वतादिव मारुतः॥ १२॥

मेरे ऊपर आये इस भयानक संकट में भी यदि वह मेरी सहायता नहीं करता है, तो उसके इन्द्र के समान बलशाली होने पर भी मैं उससे क्या करूँगा? राक्षसेन्द्र के उस वचन को सुन कर वे राक्षस लोग बड़ी शीघ्रता से कुम्भकर्ण के घर गये। वहाँ उन्होंने बिखरे हुए पर्वत के समान विकृत अवस्था में अर्थात् ऊट-पटांग तरीके से गहरी नींद में सोते हुए कुम्भकर्ण को मिल कर जगाया। अत्यन्त बलशाली वह राक्षस जागने पर जम्हाई ले रहा था। उसकी लम्बी ऐसे साँसें प्रतीत हो रही थीं, जैसे पर्वत पर हवा चल रही हो।

रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद् बभौ।
युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः॥ १३॥
तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी।
ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ॥ १४॥
ततस्त्वदर्शयन् सर्वान् भक्ष्यांश्च विविधान बहून्।
आदद् बुभुक्षितो मांसं शोणितं तृषितोऽपिबत्॥ १५॥
ततस्तृप्त इति ज्ञात्वा समुत्पेतुर्निशाचराः।
शिरोभिश्च प्रणम्यैनं सर्वतः पर्यवारयन्॥ १६॥

नींद से उठते हुए उसका रूप ऐसा भयानक लग रहा था, जैसे प्रलय के समय सारे प्राणियों को जलाने वाली मृत्यु हो। उसकी अग्नि के और विद्युत् के समान चमकती हुई बड़ी आँखें, जगमगाते हुए दो बड़े तारों के समान लग रहीं थीं। तब राक्षसों ने अनेक प्रकार की खाने की चीजें उसके सामने रखीं। वह उस समय भूखा और प्यासा था, इसलिये उसने माँस खा कर अपनी भूख और खून पी कर अपनी प्यास बुझायी। राक्षसों ने उसे जब तृप्त हुआ देखा। तब वे प्रसन्नता से शीघ्रता पूर्वक उसे प्रणाम करके, उसके चारों तरफ खड़े हो गये।

निद्राविशदनेत्रस्तु कलुषीकृतलोचनः।
चारयन् सर्वतो दृष्टिं तान् ददर्श निशाचरान्॥ १७॥
स सर्वान् सान्त्वयामास नैर्ऋतान् नैर्ऋतर्षभः।
बोधनाद् विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत्॥ १८॥
किमर्थमहमादृत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः।
कच्चित् सुकुशलं राज्ञो भयं वा नेह किंचन॥ १९॥
अथवा ध्रुवमन्येभ्यो भयं परमुपस्थितम्।
यदर्थमेव त्वरितैर्भवद्भिः प्रतिबोधितः॥ २०॥

उस समय नींद से भरे हुए उसके नेत्र कुछ मैले दिखाई दे रहे थे। उसने सब तरफ निगाह डाल कर, उन राक्षसों को देखा। उस राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्ण ने तब उन सारे राक्षसों को सान्त्वना दी और अपने जगाये जाने के कारण विस्मय से उसने पूछा कि तुम लोगों ने मुझे सम्मान के साथ क्यों जगाया है? राजा सकुशल है? उन्हें किसी से भय तो प्राप्त नहीं हुआ है? अथवा यह निश्चित है कि उन्हें दूसरों से भय प्राप्त हुआ है, जिसके लिये तुम लोगों ने मुझे शीघ्रता से जगाया है।

न ह्यल्पकारणे सुप्तं बोधयिष्यति मादृशम्।
तदाख्यातार्थतत्त्वेन मत्प्रबोधनकारणम्॥ २१॥
एवं ब्रुवाणं संरब्धं कुम्भकर्णमरिंदमम्।
यूपाक्षः सचिवो राज्ञः कृताञ्जलिरभाषत॥ २२॥
वानरैः पर्वताकारैर्लङ्केयं परिवारिता।

सीताहरणसंतप्ताद् रामान्नस्तुमुलं भयम्।। २३।।
स्वयं रक्षोधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्टकः।
व्रजेति संयुगे मुक्तो रामेणादित्यवर्चसा।। २४।।

छोटे कारण से वह मुझ जैसे सोये हुए व्यक्ति को नहीं जगायेगा। इसलिये मुझे जगाने का ठीक-ठीक कारण बताओ। शत्रु का दमन करने वाला कुम्भकर्ण जब क्रोध में भर कर इस प्रकार पूंछने लगा, तब राक्षस राज का सचिव यूपाक्ष हाथ जोड़ कर बोला कि सीता के हरण से संतप्त राम से हमें महान भय उपस्थित हो गया है। पर्वत के समान विशालकाय वानरों ने इस लंका को घेर लिया है। देवशत्रु पुलस्त्य पुत्र राक्षसराज को भी सूर्य के समान तेजवी राम ने हरा कर और यह कह कर कि चले जाओ, स्वयं छोड़ दिया है।

स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराभवम्।
कुम्भकर्णो विवृत्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत्।। २५।।
सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम्।
राघवं च रणे जित्वा ततो द्रक्ष्यामि रावणम्।। २६।।
सुप्तमुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम्।
राक्षसास्त्वरिता जग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम्।। २७।।
तेऽभिगम्य दशग्रीवमासीनं परमासने।
ऊचुर्बद्धाञ्जलिपुटाः सर्व एव निशाचराः।। २८।।
कुम्भकर्णः प्रबुद्धोऽसौ भ्राता ते राक्षसेश्वर।
कथं तत्रैव निर्यातु द्रक्ष्यसे तमिहागतम्।। २९।।

यूपाक्ष की वाणी से अपने भाई की युद्ध में पराजय की सुन कर कुम्भकर्ण आँखें फाड़ कर यूपाक्ष से बोला कि हे यूपाक्ष! मैं आज ही लक्ष्मण सहित वानरों की सेना को और राम को युद्ध में जीत कर, फिर रावण से मिलूँगा। इस प्रकार भयानक रूप, भयानक आँखें और भयानक पराक्रम वाले कुम्भकर्ण को उठा कर वे राक्षस जल्दी से रावण के महल में पहुँचे। वे उत्तम आसन पर बैठे हुए रावण के सामने जा कर, हाथ जोड़ कर उससे बोले कि हे राक्षसेश्वर! आपके भाई कुम्भकर्ण जागृत हो गये हैं। अब वे सीधे ही युद्धक्षेत्र में जायें, या आप उन्हें यहाँ आया हुआ देखना चाहते हैं?

रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टो राक्षसांस्तानुपस्थितान्।
द्रष्टुमेनमिहेच्छामि यथान्यायं च पूज्यताम्।। ३०।।
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसाः।
कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः।। ३१।।
द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः।
गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं सम्प्रहर्षय।। ३२।।
कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम्।
तथेत्युक्त्वा महावीर्यः शयनादुत्पपात ह।। ३३।।

तब रावण प्रसन्न हो कर उन उपस्थित राक्षसों से बोला कि मैं कुम्भकर्ण को यहीं देखना चाहता हूँ। उसका यथोचित सत्कार किया जाये। बहुत अच्छा ऐसा कह कर वे रावण से प्रेरित राक्षस, पुनः वापिस आकर कुम्भकर्ण से बोले कि सारे राक्षसों में श्रेष्ठ राजा आपसे मिलना चाहते हैं, इसलिये आप उनके पास जाने का विचार करें। तब दुर्धर्ष महा तेजस्वी कुम्भकर्ण, भाई की आज्ञा को स्वीकार कर, बहुत अच्छा ऐसा कह कर बिस्तरे से उठ खड़ा हुआ।

प्रक्षाल्य वदनं हृष्टः स्नातः परमहर्षितः।
कुम्भकर्णो बभौ रुष्टः कालान्तकयमोपमः।
भ्रातुः स भवनं गच्छन् रक्षोबलसमन्वितः।। ३४।।

उसके बाद अत्यन्त हर्षित हो कर उसने मुख धोया और स्नान करके तैयार हो गया। भाई के घर की तरफ जाता हुआ, राक्षसों की सेना से युक्त और क्रोध में भरा हुआ वह कुम्भकर्ण, उस समय प्रलय काल में अन्त कर देने वाली मृत्यु के समान प्रतीत हो रहा था।

छियालीसवाँ सर्ग

कुम्भकर्ण का रावण से मिलना। रावण का राम से भय बता कर उसे शत्रुसेना के विनाश के लिये कहना।

सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च।
ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम्।। १।।
अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः।
भ्रातुर्ववन्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत्।। २।।
उत्पत्य चैनं मुदितो रावणः परिषस्वजे।
स भ्रात्रा सम्परिषक्तो यथावच्चाभिनन्दितः।। ३।।

कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम्।
स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः।। ४।।
संरक्तनयनः क्रोधाद् रावणं वाक्यमब्रवीत्।

भाई के घर में जाकर और अन्दर की उयौढी को पार कर, जब कुम्भकर्ण रावण के समीप पहुँचा, तो उसने अपने बड़े भाई को पुष्पक विमान में आसन पर विराजमान देखा। बड़े भाई को पलंग पर बैठा हुआ देख कर, महाबली कुम्भकर्ण ने उसके चरणों में प्रणाम किया और पूछा कि क्या कार्य है? तब रावण ने प्रसन्न हो कर उछल कर उसे गले से लगा लिया और उसका यथा योग्य सम्मान किया। कुम्भकर्ण तब दिव्य और उत्तम आसन पर बैठा। आसन पर बैठ कर उस महा बलशाली ने क्रोध से आँखों को लाल करके रावण से कहा कि—

किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन् प्रबोधितः।। ५।।
शंस कस्माद् भयं तेऽत्र को वा प्रेतो भविष्यति।
भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम्।। ६।।
रोषेण परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत्।
एष दाशरथिः श्रीमान् सुग्रीवसहितो बली।। ७।।
समुद्रं लङ्घयित्वा तु मूलं नः परिकृन्तति।
हन्त पश्यस्व लङ्कायां वनान्युपवनानि च।। ८।।
सेतुना सुखमागत्य वानरैकार्णवं कृतम्।

हे राजन्! आपने मुझे सम्मान सहित किसलिये जागृत किया है? मुझे बताओ कि तुम्हें किस से भय प्राप्त हुआ है? कौन अब मरने वाला है? अपने भाई कुम्भकर्ण को क्रोध में भरा हुआ देख कर, रावण क्रोध से भरी हुई अपनी आँखें घुमाता हुआ बोला कि यह श्रीमान, बलवान, दशरथ पुत्र राम, सुग्रीव के साथ समुद्र को पार करके हमारी जड़ काट रहा है। हाय देखो! उन्होंने बाँध के द्वारा आराम से यहाँ आकर लंका के बाहर सारे वनों और उपवनों को वानर रूपी सागर में बदल दिया है।

ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि।। ९।।
वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कथंचन।
न चापि वानरा युद्धे जितपूर्वाः कदाचन।। १०।।
तदेतद् भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल।
नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान्।। ११।।

जो मुख्य-मुख्य राक्षस थे, उन्हें वानरों ने युद्ध में मार दिया है। मैं युद्ध में वानरों का विनाश, किसी प्रकार भी नहीं देख रहा हूँ। वानर पहले कभी किसी युद्ध में जीते नहीं गये हैं। इस प्रकार यह भय उपस्थित हुआ है। हे महाबली! तुम इनको आज ही नष्ट करो। इसीलिये तुम्हें जगाया है।

भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम्।
मयैवं नोक्तपूर्वो हि भ्राता कश्चित् परंतप।। १२।।
त्वय्यस्ति मम च स्नेहः परा सम्भावना च मे।
तदेतत् सर्वमातिष्ठ वीर्यं भीमपराक्रम।
नहि ते सर्वभूतेषु दृश्यते सदृशो बली।। १३।।

हे परतंप, महाबाहु! तुम भाई के लिये इस दुष्कर कार्य को करो। मैंने पहले कभी किसी भाई से इस प्रकार नहीं कहा था। मेरा तुम्हारे ऊपर अपार स्नेह है और मुझे तुमसे बड़ी आशा भी है। इसलिये हे भयानक पराक्रम वाले! यह कार्य पूरा करो। सारे प्राणियों में तुम्हारे समान कोई भी प्राणी बलवान नहीं दिखाई देता है।

कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमं
यथाप्रियं प्रियरण बान्धवप्रिय।
स्वतेजसा व्यथय सपत्नवाहिनीं
शरद्घनं पवन इवोद्यतो महान्।। १४।।

हे युद्ध से प्रेम करने वाले, बन्धुओं से प्यार करने वाले! तुम मेरे प्रिय, मेरे हितकारी इस उत्तम कार्य को सम्पन्न करो। अपने तेज से शत्रु की सेना को ऐसे ही मथ दो, जैसे प्रचण्ड वायु के द्वारा शरद ऋतु के बादल उड़ा दिये जाते हैं।

सैंतालीसवाँ सर्ग

कुम्भकर्ण का उसके कुकृत्यों के लिये उसे उपालम्भ देना और पुनः उसे धैर्य बँधाते हुए युद्ध विषयक उत्साह प्रकट करना।

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम्।
कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च।। १।।

दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये।
हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया।। २।।

शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः।
निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः।। ३।
प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम्।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः।। ४।।

तब उस राक्षसराज का विलाप सुन कर, कुम्भकर्ण जोर से हँसा और बोला कि पहले विचार करते हुए हम लोगों ने जिस दोष को देखा था, वही अब तुम्हें प्राप्त हो गया है। तुमने उस समय हितकारी कही हुई बातों पर ध्यान नहीं दिया था। बुरे काम करने वालों का जैसे नरक में गिरना अर्थात् अधम गति को प्राप्त होना अवश्यम्भावी है, वैसे ही तुम्हें भी अपने बुरे कर्म का फल जल्दी ही मिल गया। तुमने पहले बिना विचार किये यह बुरा काम कर लिया और केवल अपनी शक्ति के अभिमान में इसके परिणाम की चिन्ता नहीं की।

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ।। ५।।
यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च।
तदेव नो हितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुरु।। ६।।
तत् तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम्।
भ्रुकुटिं चैव संचक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत।। ७।।
मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससे।
किमेवं वाक्श्रमं कृत्वा यद् युक्तं तद् विधीयताम्।। ८।।

जो अपने ऐश्वर्य में विद्यमान व्यक्ति पहले करने योग्य कार्यों को बाद में करता है और बाद में करने योग्य कार्यों को पहले कर लेता है, वह नीति और अनीति को नहीं जानता। पहले तुम्हारी पत्नी मन्दोदरी ने और मेरे छोटे भाई विभीषण ने, जो तुम से कहा था, वही हमारे लिये हितकारी था। अब तुम जैसे चाहो, वैसे करो। कुम्भकर्ण की बातें सुन कर रावण ने भौंहें टेढ़ी कर लीं और क्रुद्ध हो कर बोला कि तुम मुझे आदरणीय गुरु और आचार्य की तरह क्यों उपदेश दे रहे हो? इस प्रकार की व्यर्थ की बातें कह कर परिश्रम करने में क्या लाभ? अब जो उचित हो वह करो।

विभ्रमाच्चित्तमोहाद् वा बलवीर्याश्रयेण वा।
नाभिपन्नमिदानीं यद् व्यर्था तस्य पुनः कथा।। ९।।
अस्मिन् काले तु यद् युक्तं तदिदानीं विचिन्त्यताम्।
गतं तु नानुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि।। १०।।
ममापनयजं दोषं विक्रमेण समीकुरु।
यदि खल्वस्ति मे स्नेहो विक्रमं वाधिगच्छसि।। ११।।
यदि कार्यं ममैतत्ते हृदि कार्यतमं मतम्।
स सुहृद् यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते।। १२।।
स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते।

विभ्रम से, चित्त के मोह से, या बल और वीर्य के भरोसे के कारण, जो पहले तुम्हारी बात नहीं मानी, उसकी फिर चर्चा करनी बेकार है। अब तो जो इस समय करना है, उस पर विचार करो। बीती हुई बात पर शोक नहीं करते, बीती बात तो बीत गयी। मेरी अनीति से उत्पन्न दोष को अपने विक्रम से शान्त कर दो। यदि तुम्हें मुझसे स्नेह है, या तुम्हारे अन्दर पराक्रम है, यदि मेरे इस कार्य को तुम अपने हृदय में सबसे आवश्यक कार्य समझते हो, तो युद्ध करो। वही सच्चा मित्र है, जो विपत्ति में पड़े हुए, दीन बने हुए मित्र की सहायता करता है और वही सच्चा बन्धु है, जो गलत कार्य के कारण संकट में पड़े हुए बन्धु को सहारा देता है।

तमथैवं ब्रुवाणं स वचनं धीरदारुणम्।। १३।।
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह।
अतीव हि समालक्ष्य भ्रातरं क्षुभितेन्द्रियम्।। १४।।
कुम्भकर्णः शनैर्वाक्यं बभाषे परिसान्त्वयन्।
शृणु राजन्नवहितो मम वाक्यमरिंदम।। १५।।
अलं राक्षसराजेन्द्र संतापमुपपद्य ते।
रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि।। १६।।

तब अपने भाई को अत्यन्त क्षुब्ध इन्द्रियों वाला तथा धीरता के साथ दारुण वचन बोलते हुए देख कर और यह जान कर कि यह नाराज हो गया, कुम्भकर्ण धीरे-धीरे उसे सान्त्वना देता हुआ मधुरता के साथ बोला कि हे शत्रु को दमन करने वाले राक्षसेन्द्र राजन्! सावधान हो कर मेरी बात सुनो। अब अपने सन्ताप को दूर कर दो। क्रोध को छोड़ दो और स्वस्थ हो जाओ।

नैतन्मनसि कर्तव्यं मयि जीवति पार्थिव।
तमहं नाशयिष्यामि यत् कृते परितप्यते।। १७।।
अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थं मया तव।
बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव।। १८।।
सदृशं यच्च कालेऽस्मिन् कर्तुं स्नेहेन बन्धुना।
शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे।। १९।।
अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि।
हतेरामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं हरिवाहिनीम्।। २०।।

हे राजन्! जब तक मैं जीवित हूँ, आपको यह भाव मान में नहीं लाना चाहिये। जिसके कारण आप संतप्त हो रहे हैं, उसे मैं नष्ट कर दूँगा। हे राजन्! मुझे सभी

अवस्थाओं में आप के कल्याण की बात कहनी चाहिये। मैंने आपका भाई होने और भ्रातृ प्रेम के कारण यह बात कही थी। इस समय भाई के प्रति स्नेह के कारण, जो कुछ भी मुझे करना चाहिये, मैं वही करूँगा। आप मेरे द्वारा युद्ध में शत्रु के किये जाते हुए विनाश को देखें। हे महाबाहु! आज आप युद्ध के मुहाने पर, राम के अपने भाई के साथ मारे जाने पर भागती हुई वानर सेना को देखें।

अद्य रामस्य तद् दृष्ट्वा मयाऽऽनीतं रणाच्छिरः।
सुखी भव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता।। २१।।
अद्य रामस्य पश्यन्तु निधनं सुमहत् प्रियम्।
लङ्कायां राक्षसाः सर्वे ये ते निहतबान्धवाः।। २२।।
अद्य पर्वतसंकाशं ससूर्यमिव तोयदम्।
विकीर्णं पश्य समरे सुग्रीवं प्लवगेश्वरम्।। २३।।
कथं च राक्षसैरेभिर्मया च परिसान्त्वितः।
जिघांसुभिर्दाशरथिं व्यथसे त्वं सदानघ।। २४।।

हे लम्बी भुजाओं वाले! आज मैं जब युद्ध भूमि से राम का सिर काट कर लाऊँगा, तो उसे देख कर आप सुखी होंगे और सीता दुखी होगी। जिन राक्षसों के बान्धव मारे गये हैं, वे आज अपने प्रिय कार्य राम की मृत्यु को सम्पन्न होता हुआ देखें। आज युद्ध में गिरे हुए और सूर्य की किरणों से युक्त बादल के समान प्रतीत होने वाले, पर्वत के समान विशालकाय, वानरेश सुग्रीव को आप देखना। हे निष्पाप! जब राम को मारने की इच्छा रखने वाले इन राक्षओं और मेरे द्वारा आप को सान्त्वना दी जा रही है, तो आप सदा दुखी क्यों रहते हैं?

मां निहत्य किल त्वां हि निहनिष्यति राघवः।
नाहमात्मनि संतापं गच्छेयं राक्षसाधिप।। २५।।
कामं त्विदानीमपि मां व्यादिश त्वं परंतप।
न परः प्रेक्षणीयस्ते युद्धायातुलविक्रम।। २६।।
अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबलान्।
गिरिमात्रशरीरस्य शितशूलधरस्य मे।। २७।।
अथ वा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्नतस्तरसा रिपून्।
न मे प्रतिमुखः कश्चित् स्थातुं शक्तो जिजीविषुः।। २८।।

हे राक्षसों के स्वामी! मुझे मार कर ही राम आपको मार सकेंगे। मुझे अपने लिये कोई सन्ताप नहीं होगा। हे अतुल्य पराक्रमी, परंतप। अब आप अपनी इच्छा के अनुसार मुझे युद्ध में जाने के लिये आदेश दो। किसी और को वहाँ भेजने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारे महाबली शत्रुओं को उखाड़ फेंकूँगा। मेरा शरीर पर्वत के समान विशालकाय है। मैं तीक्ष्ण शूल धारण करता हूँ। या मैं शस्त्रों का भी त्याग कर शत्रुओं को तेजी से कुचलना आरम्भ कर दूँ, तो कोई भी जीने की इच्छा वाला मेरे सामने खड़ा नहीं हो सकता।

चिन्तया तप्यसे राजन् किमर्थं मयि तिष्ठति।
सोऽहं शत्रुविनाशाय तव निर्यातुमुद्यतः।। २९।।
मुञ्च रामाद् भयं घोरं निहनिष्यामि संयुगे।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं च महाबलम्।
असाधारणमिच्छामि तव दातुं महद् यशः।। ३०।।

हे राजन्! मेरे विद्यमान होते हुए, तुम चिन्ता से क्यों संतप्त हो रहे हो? जबकि तुम्हारे शत्रुओं के विनाश के लिये मैं युद्ध में निकलने के लिये तैयार हूँ। तुम राम से आये हुए इस महान भय को त्याग दो। मैं युद्ध में महाबली राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को मार दूँगा। मैं तुम्हें असाधारण महान यश प्राप्त कराना चाहता हूँ।

रमस्व राजन् पिब चाद्य वारुणीं
कुरुष्व कृत्यानि विनीय दुःखम्।
मयाद्य रामे गमिते यमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति।। ३१।।

हे राजन्! आज तुम मद्य पियो और आनन्द उठाओ। दुख को दूर कर अपनी इच्छानुसार कार्यों को करो। मेरे द्वारा आज राम के मृत्यु को प्राप्त होने पर, सीता जल्दी ही आपके वश में हो जायेगी।

अड़तालीसवाँ सर्ग

कुम्भकर्ण की रण यात्रा।

एवमुक्तवतो वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन् राक्षसाधिपः।। १।।
कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च।
गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्ण जयाय च।। २।।
शयानः शत्रुनाशार्थं भवान् सम्बोधितो मया।
अयं हि कालः सुमहान् राक्षसानामरिंदम।। ३।।

समालोक्य तु ते रूपं विद्रविष्यन्ति वानराः।
रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यतः।। ४।।

धीमान कुम्भकर्ण के इस प्रकार कहने पर, राक्षसराज ने हँसते हुए उत्तर दिया कि सौहार्द का पालन करने वाला और बल वाला मेरे पास तुम्हारे जैसा कोई नहीं है। इसलिये हे कुम्भकर्ण! तुम शत्रुओं के वध के लिये और विजय प्राप्ति के लिये जाओ। हे शत्रुओं का दमन करने वाले! शत्रुओं का नाश करने के लिये ही मैंने तुम्हें, सोते हुए से जगाया था। यह राक्षसों के लिये महान समय है। तुम्हारा रूप देख कर वानर भाग जायेंगे और राम तथा लक्ष्मण के भी हृदय फट जायेंगे।

एवमुक्त्वा महातेजाः कुम्भकर्णं महाबलम्।
पुनर्जातमिवात्मानं मेनेराक्षसपुङ्गवः।। ५।।
कुम्भकर्णबलाभिज्ञो जानंस्तस्य पराक्रमम्।
बभूव मुदितो राजा शशाङ्क इव निर्मलः।। ६।।
इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा योद्धुमुद्युक्तवांस्तदा।। ७।।
आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिबर्हणः।
सर्वं कालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम्।। ८।।

महा बली कुम्भकर्ण से ऐसा कह कर, उस महा तेजस्वी राक्षस श्रेष्ठ रावण ने अपना पुनर्जन्म सा हुआ माना। वह राजा कुम्भकर्ण के बल से परिचित था और उसके पराक्रम को जानता था। इसलिये वह प्रसन्न हो कर चन्द्रमा के समान आल्हाद से युक्त हो गया। रावण के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह महा बली राजा के वचनों को सुन कर प्रसन्न हो गया और युद्ध के लिये तैयार होकर, लंका से बाहर निकला। अपने वेग से शत्रु को नष्ट करने वाले उसने काले लोहे के बने हुए और तपे हुए सोने से भूषित किये हुए, पूरी तरह से जगमगाते हुए, तीक्ष्ण शूल को अपने हाथ में ले लिया।

भ्रातरं सम्परिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबलः।। ९।।
तमाशीर्भिः प्रशस्ताभिः प्रेषयामास रावणः।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः सैन्यैश्चापि वरायुधैः।। १०।।
तं गजैश्च तुरंगैश्च स्यन्दनैश्चाम्बुदस्वनैः।
अनुजग्मुर्महात्मानो रथिनो रथिनां वरम्।। ११।।
पदातयश्च बहवो महानादा महाबलाः।
अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः।। १२।।

अपने भाई को गले लगा कर और उसकी परिक्रमा करके, तथा सिर झुका कर प्रणाम कर वह महाबली युद्ध के लिये चला। रावण ने उसे उत्तम आशीर्वादों के साथ, शंख और नगाड़ों के निर्घोष के साथ और उत्तम आयुधों से युक्त सेनाओं के साथ विदा किया। उस रथियों में श्रेष्ठ कुम्भकर्ण के पीछे अनेक महान रथी वीर हाथियों, घोड़ों, और बादलों के समान ध्वनि वाले रथों पर चढ़ कर गये। बहुत सारे भयानक नेत्रों वाले, भयंकर महाबली राक्षस हाथों में शस्त्र लेकर, उच्च स्वर में जय नाद करते हुए पैदल ही उसके पीछे गये।

संनिपत्य च रक्षांसि दग्धशैलोपमो महान्।
कुम्भकर्णो महावक्त्रः प्रहसन्निदमब्रवीत्।। १३।।
अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः।
निर्दहिष्यामि संक्रुद्धः पतङ्गानिव पावकः।। १४।।
पुररोधस्य मूलं तु राघवः सहलक्ष्मणः।
हते तस्मिन् हतं सर्वं तं वधिष्यामि संयुगे।। १५।।
एवं तस्य ब्रुवाणस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसाः।
नादं चक्रुर्महाघोरं कम्पयन्त इवार्णवम्।। १६।।

तब दावालल से दग्ध पर्वत के समान महान, विशाल मुख वाले कुम्भकर्ण ने, राक्षसों की व्यूह रचना की और हँसता हुआ यह बोला कि आज मैं वानर यूथपतियों के जो अलग-अलग यूथ हैं, उन्हें क्रोध में भर कर पतंगों को अग्नि के समान भस्म कर दूँगा। नगर पर घेरा डालने के मूल कारण लक्ष्मण सहित राम हैं। उनके मर जाने पर सारे वानर अपने आप मर जायेंगे, इसलिये मैं उन्हें पहले युद्ध में मारूँगा। कुम्भकर्ण के ऐसा कहने पर राक्षसों ने समुद्र को कँपाते हुए के समान भयानक गर्जना की।

उनंचासवाँ सर्ग

कुम्भकर्ण द्वारा वानर सेना का संहार भय से भागते हुए वानरों को अंगद द्वारा प्रोत्साहन।

ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन्।
विजयन्निव निर्घातान् विधमन्निव पर्वतान्।। १।।
प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः।
तांस्तु विप्रद्रुतान् दृष्ट्वा राजपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत्।। २।।

साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान् परिरक्षथ।
नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं विभीषिका।। ३।।
महतीमुत्थितामेनां राक्षसानां विभीषिकाम्।
विक्रमाद् विधमिष्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः।। ४।।

तब उस कुम्भकर्ण ने भी बड़े जोर से गर्जना की। वह अपनी गर्जना से मानो समुद्र को गुँजा रहा था। पर्वतों को कम्पित कर रहा था और बिजली की कड़क को भी परास्त कर रहा था। उस भयानक नेत्रों वाले कुम्भकर्ण को आते देख कर वानर लोग भागने लगे। तब उन्हें भागता हुआ देख कर राजकुमार अंगद ने कहा कि हे सौम्य स्वभाव वाले अच्छे वानरों! लौट जाओ। क्यों प्राणों की रक्षा कर रहे हो? यह राक्षस हमसे युद्ध नहीं कर सकता। इसने इतना विशालरूप बनावटी बनाया हुआ है। राक्षसों की उठी हुई इस महान माया को हम अपने पराक्रम से नष्ट कर देंगे। इसलिये हे वानरों लौट आओ।

कृच्छ्रेण तु स्थूमाश्वस्य संगम्य च ततस्ततः।
वृक्षान् गृहीत्वा हरयः सम्प्रतस्थु रणाजिरे।। ५।।
ते निवर्त्य तु संरब्धाः कुम्भकर्णं वनौकसः।
निजघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः।। ६।।
प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलाः।
तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते बहवः शिलाः।। ७।।
सोऽपि सैन्यापि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम्।
ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः।। ८।।

कठिनाई से आश्वासित हो कर और जगह-जगह एकत्र हो कर वे वानर वृक्षों को उठा कर युद्ध के लिये चले। उन महाबली वानरों ने लौट कर अत्यन्त क्रोध में भर कर मतवाले हाथियों के समान पर्वतों के बड़े-बड़े पत्थरों और शिलाओं से कुम्भकर्ण पर आक्रमण किया। पर उसके अंगों पर गिर कर बहुत सी शिलाएँ टूट जाती थी। तब कुम्भकर्ण ने भी क्रोध में भर कर महा तेजस्वी वानरों की सेनाओं को बड़ी साव.धानी से बढ़ी हुई दावाग्नि के समान मथना आरम्भ कर दिया।

लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः।
ते स्थलानि तदा निम्नं विवर्णवदना भयात्।। ९।।
ऋक्षा वृक्षान् समारूढाः केचित् पर्वतमाश्रिताः।
तान् समीक्ष्याङ्गदो भग्नान् वानरानिदमब्रवीत्।। १०।।
अवतिष्ठत युध्यामो निवर्तध्वं प्लवंगमाः।
भग्नानां वो न पश्यामि परिक्रम्य महीमिमाम्।। ११।।
स्थानं सर्वे निवर्तध्वं किं प्राणान् परिरक्षथ।

उस समय कुम्भकरण के मारे हुए बहुत से वानरश्रेष्ठ खून'से लथपथ हुए भूमि पर सो गये। बहुतों के मुख की कान्ति भय के कारण उड़ गयी, वे खाइयों में छिपने लगे। ऋक्ष जाति के मनुष्य वृक्षों पर चढ़ गये। कुछ ने पर्वतों की शरण ली। उन वानरों को भागता हुआ देख कर अंगद ने उनसे यह कहा कि ठहरो! लौट आओ। हम सब मिल कर युद्ध करेंगे। तुममें से भागने वालों का बचाव पृथिवी का चक्कर लगा कर भी मुझे दिखाई नहीं देता। लौट आओ। क्यों प्राणों की रक्षा कर रहे हो।

निरायुधानां क्रमतामसङ्गगतिपौरुषाः।। १२।।
दारा ह्यपहसिष्यन्ति स वै घातः सुजीवताम्।
कुलेषु जाताः सर्वेऽस्मिन् विस्तीर्णेषु महत्सु च।। १३।।
अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्त्वा वीर्यं प्रधावत।
विकत्थनानि वो यानि भवद्भिर्जनसंसदि।। १४।।
तानि वः क्व नु यातानि सोदग्राणि हितानि च।
भीरोः प्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः।। १५।।
मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम्।

तुम्हारे वेग और तुम्हारे पौरुष में तुम्हारे साथ ठहरने वाला कोई नहीं है, फिर भी अगर तुम हथियार डाल कर भागोगे, तो तुम्हारी पत्नियाँ भी तुम्हारे ऊपर हँसेंगी और यह बात तुम्हें जीवित रहते हुए दुख पहुँचायेगी। तुम लोग दूर तक फैले हुए और महान वानर कुलों में जन्मे हुए हो, पर यदि अपने पराक्रम को छोड़ कर डरे हुए भागोगे तो अनार्य कहलाये जाओगे। आज वे तुम्हारी डींगें कहाँ गयीं, जिन्हें तुम लोगों के बीच में मारा करते थे कि हम प्रचण्ड वीर हैं और स्वामी के हितैषी हैं। जो धिक्कारा जाता हुआ भी जीवन से धारण करता है, उसे कायरों के लिये कहे गये निन्दात्मक वचन सुनने पड़ते हैं। इसलिये भय को छोड़ो और सत्पुरुषों के द्वारा सेवित मार्ग पर चलो।

अवाप्नुयामः कीर्तिं वा निहत्वा शत्रुमाहवे।। १६।।
निहता वीरलोकस्य भोक्ष्यामो वसु वानराः।
न कुम्भकर्णः काकुत्स्थं दृष्ट्वा जीवन् गमिष्यति।। १७।।
दीप्यमानमिवासाद्य पतङ्गो ज्वलनं यथा।
पलायनेन चोद्दिष्टाः प्राणान् रक्षामहे वयम्।। १८।।
एकेन बहवो भग्ना यशो नाशं गमिष्यति।
द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन बलीमुखाः।
सान्त्वनैश्चानुमानैश्च ततः सर्वे निवर्तिताः।। १९।।

शत्रु को युद्ध में मार कर हम कीर्ति को प्राप्त करेंगे, या हे वानरों! मारे जाकर वीर लोक के ऐश्वर्य को

प्राप्त करेंगे। यह कुम्भकर्ण श्रीराम के सामने जा कर जीवित नहीं रह सकता, जैसे प्रज्वलित अग्नि के सामने पतंगा भस्म हुए बिना नहीं रहता। यदि हम प्रसिद्ध वीर हो कर भी भाग कर अपने प्राण बचायेंगे तो हमारा यश नष्ट हो जायेगा और यह अपयश प्राप्त हो जाएगा कि देखो एक व्यक्ति ने बहुत सारों को भगा दिया। इस प्रकार सांत्वना दे कर और आदर सम्मान कर अंगद ने उन भागते हुए वानर वीरों को लौटाया।

पचासवाँ सर्ग

कुम्भकर्ण का भयंकर युद्ध।

समुदीरितवीर्यास्ते समारोपितविक्रमाः।
पर्यवस्थापिता वाक्यैरङ्गदेन बलीयसा॥ १॥
प्रयाताश्च गता हर्षं मरणे कृतनिश्चयाः।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविताः॥ २॥
अथ वृक्षान् महाकायाः सानूनि सुमहान्ति च।
वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रवन्॥ ३॥
कुम्भकर्णः सुसंक्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्यवान्।
धर्षयन् स महाकायः समन्ताद् व्यक्षिपद् रिपून्॥ ४॥

इस प्रकार अंगद ने अपने वाक्यों द्वारा वानरों के पूर्व पराक्रम का वर्णन कर उनमें पुनः पराक्रम की स्थापना की और उन्हें शक्तिसम्पन्न कर युद्ध के लिये स्थित कर दिया। तब वे मरने के लिये निश्चित कर हर्षित हो कर युद्ध के लिये गये और उन्होंने जीवन की आशा छोड़ कर भयानक युद्ध किया। उन विशाल शरीर वाले वानरों ने वृक्षों को और पहाड़ के पत्थरों को उठा कर तीव्रता के साथ कुम्भकर्ण पर आक्रमण किया। उस विशाल शरीर वाले तेजस्वी कुम्भकर्ण ने भी क्रोध में भर कर और गदा को उठा कर शत्रुओं को घायल करते हुए चारों तरफ बिखेर दिया।

कृच्छ्रेण च समाश्वस्ताः संगम्य च ततस्ततः।
वृक्षाद्रिहस्ता हरयस्तस्थुः संग्राममूर्धनि॥ ५॥
रथिनो वानरेन्द्राणां शरैः कालान्तकोपमैः।
शिरांसि नर्दतां जह्रुः सहसा भीमनिःस्वनाः॥ ६॥
वानराश्च महात्मानः समुत्पाट्य महाद्रुमान्।
रथानश्वान् गजानुष्ट्रान् राक्षसानभ्यसूदयन्॥ ७॥
हनूमाञ्शैलशृङ्गाणि शिलाश्च विविधान् द्रुमान्।
ववर्ष कुम्भकर्णस्य शिरस्यम्बरमास्थितः॥ ८॥
तानि पर्वतशृङ्गाणि शूलेन स बिभेद ह।
बभञ्ज वृक्षवर्षं च कुम्भकर्णो महाबलः॥ ९॥

उस समय वानर लोग बड़ी कठिनाई से हिम्मत कर और जगह-जगह एकत्र हो कर पत्थरों और वृक्षों को हाथ में लेकर युद्ध के मुहाने पर डटे रहे। तब भयानक गर्जना करने वाले राक्षसों के रथियों ने अपने अन्त करने देने वाले काल के समान भयानक बाणों से गर्जते हुए वानरेन्द्रों के सिरों को सहसा काटना आरम्भ कर दिया। तब महात्मा वानर भी विशाल वृक्षों को उखाड़ कर राक्षस सेना के रथों को, घोड़ों को, हाथियों को, ऊँटों को और राक्षसों को मारने लगे। तब हनुमान जी आकाश में जा कर वहाँ से कुम्भकर्ण के सिर पर अनेक तरह के वृक्षों, शिलाओं और पर्वत के पत्थरों की वर्षा करने लगे। किन्तु महाबली कुम्भकर्ण ने उन वृक्षों की वर्षा को और पर्वतों के पत्थरों को, अपने शूल से नष्ट कर दिया।

ततो हरीणां तदनीकमुग्रं
दुद्राव शूलं निशितं प्रगृह्य।
तस्थौ स तस्यापततः परस्ता-
न्महीधराग्रं हनुमान् प्रगृह्य॥ १०॥

फिर उसने अपने तीक्ष्ण शूल को उठा कर वानरों की उस उग्र सेना पर आक्रमण किया। तब हनुमान जी उस आक्रमण करने के लिये आते हुए कुम्भकर्ण के सामने एक विशाल पर्वत की शिला को लेकर खड़े हो गये।

स कुम्भकर्णं कुपितो जघान
संचुक्षुभे तेन तदाभिभूतो।
मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः
स शूलमाविध्य तडित्प्रकाशं॥ ११॥
बाह्वन्तरे मारुतिमाजघान
स शूलनिर्भिन्नमहाभुजान्तरः
प्रविह्वलः शोणितमुद्वमन् मुखात्।
ननाद भीमं हनुमान् महाहवे॥ १२॥

उन्होंने तब क्रुद्ध हो कर उस शिला से कुम्भकर्ण पर प्रहार किया, जिससे वह विचलित हो गया और उसका शरीर रक्त तथा चर्बी से भर गया। तब उसने

अपने विद्युत के समान जगमगाते हुए शूल को उठा कर वायु पुत्र की दोनों भुजाओं के बीच में प्रहार किया। जिससे हनुमान जी की छाती में बड़ा घाव हो गया और वे बेचैन हो कर मुख से खून की उल्टी करने लगे और उन्होंने वहाँ युद्धस्थल में भयंकर आर्तनाद किया।

ततो विनेदुः सहसा प्रहृष्टा
रक्षोगणास्तं व्यथितं समीक्ष्य।
प्लवंगमास्तु व्यथिता भयार्ताः
प्रदुद्रुवुः संयति कुम्भकर्णात्।। १३।।

तब राक्षसों ने उन्हें व्याकुल देख कर प्रसन्न हो कर सहसा जोर से गर्जना की और वानर व्याकुल और भयभीत हो कर युद्ध स्थल में कुम्भकर्ण के मार्ग से भागने लगे।

ततस्तु नीलो बलवान् पर्यवस्थापयन् बलम्।। १४।।
प्रविचिक्षेप शैलाग्रं कुम्भकर्णाय धीमते।
तदापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मुष्टिनाभिजघान ह।
मुष्टिप्रहाराभिहतं तच्छैलाग्रं व्यशीर्यत।। १५।।
ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः।
पञ्च वानरशार्दूलाः कुम्भकर्णमुपाद्रवन्।। १६।।
शैलैर्वृक्षैस्तलैः पादैर्मुष्टिभिश्च महाबलाः।
कुम्भकर्णं महाकायं निजघ्नुः सर्वतो युधि।। १७।।

तब बलवान नील ने वानर सेना को स्थापित करते हुए उस धीमान कुम्भकर्ण पर एक विशाल शिला को फैंका। उस आती हुई शिला को देख कर कुम्भकर्ण ने मुष्टि के प्रहार से उसे रोका। उसकी मुष्टि के प्रहार से वह शिला टूट कर बिखर गयी। तब ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष और गन्धमादन इन पाँच वानर सिंहों ने कुम्भकर्ण पर आक्रमण किया। वे महाबली युद्ध में पर्वत शिलाओं, वृक्षों, थप्पड़ों, लातों और घूसों से उस महाकाय को सब तरफ से मारने लगे।

स्पर्शानिव प्रहारांस्तान् वेदयानो न विव्यथे।
ऋषभं तु महावेगं बाहुभ्यां परिषस्वजे।। १८।।
कुम्भकर्णभुजाभ्यां तु पीडितो वानरर्षभः।
निपपातर्षभो भीमः प्रमुखागतशोणितः।। १९।।
मुष्टिना शरभं हत्वा जानुना नीलमाहवे।
आजघान गवाक्षं तु तलेनेन्द्ररिपुस्तदा।। २०।।
पादेनाभ्यहनत् क्रुद्धस्तरसा गन्धमादनम्।
दत्तप्रहारव्यथिता मुमुहुः शोणितोक्षिताः।। २१।।

पर कुम्भकर्ण ने उनके प्रहारों को केवल स्पर्श के समान समझा और व्याकुल नहीं हुआ। उसने महा वेगवान ऋषभ को अपनी भुजाओं में दबा लिया। कुम्भकर्ण की भुजाओं में दब कर भयानक वानर श्रेष्ठ ऋषभ के मुख से खून निकलने लगा और वे भूमि पर गिर पड़े। कुम्भकर्ण ने तब शरभ को घूँसा मारा और नील को घुटने से मार और रगड़ दिया। उस इन्द्रशत्रु ने तब गवाक्ष को थप्पड़ से क्रोध में भर कर गन्धमादन को तेजी से लात मारी। उसके प्रहार से वे वानर व्याकुल हो कर और रक्त से लथपथ हो कर मूर्च्छित हो गये।

मांसशोणितसंक्लेदां कुर्वन् भूमिं स राक्षसः।
चचार हरिसैन्येषु कालाग्निरिव मूर्च्छितः।। २२।।
यथा शुष्काण्यरण्यानि ग्रीष्मे दहति पावकः।
तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो ददाह सः।। २३।।
ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथाः प्लवंगमाः।
वानरा भयसंविग्ना विनेदुर्विकृतैः स्वरैः।। २४।।
अनेकशो वध्यमानाः कुम्भकर्णेन वानराः।
राघवं शरणं जग्मुर्व्यथिता भिन्नचेतसः।। २५।।

वह राक्षस मूर्च्छित सा हो कर अर्थात आपे से बाहर होकर भूमि पर माँस और खून की कीचड़ फैलाता हुआ प्रलयाग्नि के समान वानर सेना में घूमने लगा। जैसे ग्रीष्म ऋतु में आग सूखे वन को जला देती है वैसे ही कुम्भकर्ण वानरसेना को नष्ट करने लगा। तब जिनके यूथ के वानर मारे जा रहे थे, वे वानर कुम्भकर्ण के द्वारा मारे जाते हुए भयभीत हो कर विकृत स्वर में चिल्लाने लगे। इस प्रकार अनेक प्रकार से कुम्भकर्ण के द्वारा मारे जाते हुए दुखी और निराश वानर श्रीराम की शरण में गए।

प्रभग्नान् वानरान् दृष्ट्वा वज्रहस्तात्मजात्मजः।
अभ्यधावत वेगेन कुम्भकर्णं महाहवे।। २६।।
शैलशृङ्गं महद् गृह्य विनदन् स मुहुर्मुहुः।
त्रासयन् राक्षसान् सर्वान् कुम्भकर्णपदानुगान्।। २७।।
चिक्षेप शैलशिखरं कुम्भकर्णस्य मूर्धनि।
स तेनाभिहतो मूर्ध्नि शैलेनेन्द्ररिपुस्तदा।। २८।।
कुम्भकर्णः प्रजज्वाल क्रोधेन महता तदा।
सोऽभ्यधावत वेगेन वालिपुत्रममर्षणः।। २९।।

वानरों को भागते हुए देख कर बालिपुत्र अंगद उस महायुद्ध में कुम्भकर्ण की तरफ वेग से दौड़े। उन्होंने एक बड़ी पर्वत शिला को उठा कर, बार-बार गर्जना करते हुए और कुम्भकर्ण के पीछे चलने वाले सारे राक्षसों को डराते हुए उस शिला को कुम्भकर्ण के सिर पर फैंक दिया। उस शिला की चोट को सिर पर खा कर

इन्द्रशत्रु कुम्भकर्ण तब महान क्रोध से जलने लगा और अमर्ष के साथ वह बालिपुत्र अंगद की तरफ तेजी से दौड़ा।

कुम्भकर्णो महानादस्त्रासयन् सर्ववानरान्।
शूलं ससर्ज वै रोषादङ्गदे तु महाबलः।। ३०।।
तदापतन्तं बलवान् युद्धमार्गविशारदः।
लाघवान्मोक्षयामास बलवान् वानरर्षभः।। ३१।।
उत्पत्य चैनं तरसा तलेनोरस्यताडयत्।
स तेनाभिहतः कोपात् प्रमुमोहाचलोपमः।। ३२।।
स लब्धसंज्ञोऽतिबलो मुष्टिं संगृह्य राक्षसः।
अपहस्तेन चिक्षेप विसंज्ञः स पपात ह।। ३३।।

उस महा बली कुम्भकर्ण ने ऊँची आवाज से गर्जना करते हुए, सारे वानरों को डराते हुए क्रोध से अंगद के ऊपर अपने शूल को फैंका। पर युद्ध के दाव पेंचों में चतुर बलवान वानर श्रेष्ठ अंगद ने उस आते हुए शूल से फुर्ती से अपने को बचा लिया। उछल कर तेजी के साथ उन्होंने कुम्भकर्ण की छाती पर एक थप्पड़ जोर से मारा। उस थप्पड़ की चोट खाकर वह पर्वत के समान विशालकाय राक्षस मूर्च्छित हो गया। थोड़ी देर में जब उस अति बलशाली कुम्भकर्ण को होश आया तो उस राक्षस ने मुट्ठी बाँध कर बायें हाथ से अंगद को मारा जिससे वे अचेत हो कर गिर पड़े।

तस्मिन् प्लवगशार्दूले विसंज्ञे पतिते भुवि।
तच्छूलं समुपादाय सुग्रीवमभिदुद्रुवे।। ३४।।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णं महाबलम्।
उत्पपात तदा वीरः सुग्रीवो वानराधिपः।। ३५।।
स पर्वताग्रमुत्क्षिप्य समाविध्य महाकपिः।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भकर्णं महाबलम्।। ३६।।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णः प्लवंगमम्।
तस्थौ विवृत्तसर्वाङ्गो वानरेन्द्रस्य सम्मुखः।। ३७।।

वानर श्रेष्ठ अंगद के संज्ञा रहित हो कर भूमि पर गिर जाने पर वह उस शूल को उठा कर सुग्रीव की तरफ दौड़ा। उस महाबली कुम्भकर्ण को आक्रमण करते हुए देख कर वह वीर वानरों के राजा सुग्रीव ऊपर को उछल गये और उसके बाद उस महावानर ने पर्वत की एक विशाल शिला को उठा कर उसे घुमाते हुए तेजी से महाबली कुम्भकर्ण पर आक्रमण किया। उस वानर को आक्रमण करते हुए देख कर कुम्भकर्ण अपने सारे अंग फैला कर वानरेश के सम्मुख खड़ा हो गया।

कुम्भकर्णं स्थितं दृष्ट्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत्।
पातिताश्च त्वया वीराः कृतं कर्म सुदुष्करम्।। ३८।।
त्यज तद् वानरानीकं प्राकृतैः किं करिष्यसि।
सहस्वैकं निपातं मे पर्वतस्यास्य राक्षस।। ३९।।
तद् वाक्यं हरिराजस्य सत्त्वधैर्यसमन्वितम्।
श्रुत्वा राक्षसशार्दूलः कुम्भकर्णोऽब्रवीद् वचः।। ४०।।
प्रजापतेस्तु पौत्रस्त्वं तथैवर्क्षरजःसुतः।
धृतिपौरुषसम्पन्नस्तस्माद् गर्जसि वानर।। ४१।।

कुम्भकर्ण को खड़ा हुआ देख कर सुग्रीव ने कहा कि तुमने वीरों को गिरा दिया है और महान कर्म कर लिया है। अब तुम वानर सेना को छोड़ो। इन साधारण वानरों से क्या करोगे? हे राक्षस! अब मेरे इस पर्वत शिला के आक्रमण को सहन कर। वानर राज की उस शक्ति और धैर्य से युक्त बात को सुन कर राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्ण यह बोला कि हे वानर! तुम प्रजापति के पौत्र और ऋक्षराजा के पुत्र हो तथा धैर्य एवं पौरुष से सम्पन्न हो, इसीलिये गर्ज रहे हो।

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
व्याविध्य शैलंसहसा मुमोच।
तेनाजघानोरसि कुम्भकर्णं
शैलेन वज्राशनिसंनिभेन।। ४२।।

कुम्भकर्ण की बात को सुन कर सुग्रीव ने तुरन्त उस शिला को घुमा कर उसके ऊपर फैंक दिया। वज्र और अशनि के समान कठोर उस शिला से उसने उसकी छाती पर प्रहार किया।

तच्छैलशृङ्गं सहसा विभिन्नं
भुजान्तरे तस्य तदा विशाले।
ततो विषेदुः सहसा प्लवंगा
रक्षोगणाश्चापि मुदा विनेदुः।। ४३।।

वह शिला कुम्भकरण की विशाल छाती से टकराकर टूट गयी। तब वानर उदास हो गये और राक्षस प्रसन्नता से जय घोष करने लगे।

स शैलशृङ्गाभिहतश्चुकोप
ननाद रोषाच्च विवृत्य वक्त्रम्।
व्याविध्य शूलं स तडित्प्रकाशं
चिक्षेप हर्यृक्षपतेर्वधाय।। ४४।।

कुम्भकर्ण पर्वत शिला की चोट खाकर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने मुख को फाड़ कर गर्जना की और विद्युत्

के समान जगमगाते हुए अपने शूल को उठा कर वानरेश के वध के लिये फैंका।

तत् कुम्भकर्णस्य भुजप्रणुन्नं
शूलं शितं काञ्चनधामयष्टिम्।
क्षिप्रं समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्यां
बभञ्ज वेगेन सुतोऽनिलस्य।।४५।।

कुम्भकर्ण के हाथों द्वारा फैंके हुए उस तीखे शूल को, जिसमें सोने की लड़ियाँ लगी हुई थीं, वायुपुत्र हनुमान ने उछल कर दोनों हाथों से पकड़ लिया और तेजी से उसे तोड़ दिया।

शूलं भग्नं हनुमता दृष्ट्वा वानरवाहिनी।
हृष्टा ननाद बहुशः सर्वतश्चापि दुद्रुवे।।४६।।
बभूवाथ परित्रस्तो राक्षसो विमुखोऽभवत्।
सिंहनादं च ते चक्रुः प्रहृष्टा वनगोचराः।।४७।।
मारुतिं पूजयांचक्रुर्दृष्ट्वा शूलं तथागतम्।

शूल को टूटा हुआ देख कर वानरों की सेना प्रसन्न हो गयी। वह अनेक प्रकार से जय घोष करने लगी। और सब तरफ दौड़ लगाने लगी। पर वह राक्षस भयभीत और उदास हो गया। वानरों ने प्रसन्न हो कर जयघोष किया और शूल को टूटा हुआ देख कर पवन पुत्र का सम्मान किया।

स तत् तथा भग्नमवेक्ष्य शूलं
चुकोप रक्षोधिपतिर्महात्मा।
उत्पाट्य लङ्कामलयात् स शृङ्गं
जघान सुग्रीवमुपेत्य तेन।।४८।।

अपने शूल को टूटा हुआ देख कर महाकाय राक्षस राज कुम्भकर्ण को बड़ा क्रोध हुआ और उसने लंका स्थित मलय पर्वत से एक बड़ी शिला को उखाड़ कर और सुग्रीव के समीप जा कर उससे उस पर प्रहार किया।

स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञः
पपात भूमौ युधि वानरेन्द्रः।
तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः।।४९।।

उस शिला की चोट से वह वानरेश बेहोश हो कर भूमि पर गिर पड़े। उन्हें संज्ञा रहित हो कर भूमि पर गिरा हुआ देख कर युद्ध में राक्षस लोग प्रसन्न हो कर सिंहनाद करने लगे।

इक्यावनवाँ सर्ग

कुम्भकर्ण का का वध।

तस्मिन् काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः।
चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरंजयः।। १।।
स कुम्भकर्णस्य शराञ्शरीरे सप्त वीर्यवान्।
निचखानाददे चान्यान् विससर्ज च लक्ष्मणः।। २।।
अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम्।
प्रच्छादयामास शरैः संध्याभ्रमिव मारुतः।। ३।।
ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम्।
सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिः स्वनः।। ४।।

तब शत्रु के बल को नष्ट करने वाले और शत्रु के नगर पर विजय पाने वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण क्रोध में भर कर उस कुम्भकर्ण के साथ युद्ध करने लगे। उन तेजस्वी लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण के शरीर को सात बाणों से बींध दिया और दूसरे बाण भी उस पर छोड़े। जैसे वायु सन्ध्या के बादलों को उड़ा कर अदृश्य कर देती है, वैसे ही उन्होंने उसके सुनहरे सुन्दर जगमगाते हुए कवच को भी बाणों से ढक कर अदृश्य कर दिया। तब वह भयानक राक्षस मेघों के गर्जन जैसी ध्वनि में सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले लक्ष्मण से तिरस्कार पूर्वक बोला कि–

युध्यता मामभीतेन ख्यापिता वीरता त्वया।
प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे।। ५।।
तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः किमु युद्धप्रदायकः।
अद्य त्वयाहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः।। ६।।
तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम्।
यत् तु वीर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया।। ७।।
राममेवैकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन् हते हतम्।
रामे मयात्र निहते येऽन्ये स्थास्यन्ति संयुगे।। ८।।
तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना।

मुझसे निडर हो कर युद्ध करके तुमने अपनी वीरता की स्थापना कर दी। क्योंकि महायुद्ध में हाथ में शस्त्र लेकर मृत्यु के समान खड़े हुए मेरे सामने यदि कोई खड़ा भी रहे तो वह प्रशंसनीय है, फिर

युद्ध करने वाले की तो बात ही क्या है? हे सुमित्रापुत्र! तुमने बालक हो कर भी अपने पराक्रम से मुझे सन्तुष्ट कर दिया है। अब मैं तुमसे पूछ कर राम के सामने जाना चाहता हूँ। तुमने तो युद्ध में अपने बलवीर्य से और उत्साह से सन्तुष्ट कर दिया है, अब मैं एक राम को ही मारना चाहता हूँ, जिसके मारे जाने पर सब मारे जायेंगे। मेरे द्वारा राम के युद्ध में मारे जाने पर जो यहाँ युद्ध में मेरे सामने खड़े रहेंगे, उनके साथ मैं अपनी संहार करने वाली शक्ति के द्वारा युद्ध करूँगा।

इत्युक्तवाक्यं तद् रक्षः प्रोवाच स्तुतिसंहितम्।। ९।।
मृधे घोरतरं वाक्यं सौमित्रिः प्रहसन्निव।
एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः।। १०।।
इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं स निशाचरः।
अतिक्रम्य च सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाबलः।। ११।।
राममेवाभिदुद्राव कम्पयन्निव मेदिनीम्।

जब उस राक्षस ने प्रशंसा से युक्त यह बात कही तो लक्ष्मण ने उस युद्ध भूमि में हँसते हुए के समान कठोर वाणी में कहा कि यह दशरथ के पुत्र राम स्थिर खड़े हैं। यह सुन कर वह महाबली राक्षस कुम्भकर्ण लक्ष्मण की परवाह न कर, उन्हें लाँघ कर, पृथिवी को कम्पित सा करता हुआ राम की तरफ ही दौड़ा।

स चापमादाय भुजंगकल्पं
दृढज्यमुग्रं तपनीयचित्रम्।
हरीन् समाश्वास्य समुत्पपात
रामो निबद्धोत्तमतूणबाणः।। १२।।

तब राम ने भी सुदृढ़ प्रत्यंचा से युक्त, सर्प के समान भयानक, स्वर्ण से चित्रित धनुष को लेकर और उत्तम ताकत से भरे हुए बाणों को बाँध कर तथा वानरों को आश्वासन देकर कुम्भकर्ण पर आक्रमण किया।

तमापतन्तं धरणीधराभ
मुवाच रामो युधि कुम्भकर्णम्।
आगच्छ रक्षोऽधिप मा विषाद-
मवस्थितोऽहं प्रगृहीतचापः।
अवेहि मां राक्षसवंशनाशनं
यस्त्वं मुहूर्ताद् भविता विचेताः।। १३।।

युद्ध में उस पर्वत के समान महाकाय कुम्भकर्ण को आक्रमण करते देख कर राम ने उससे कहा कि हे राक्षसराज! विषाद मत करो। आओ! मैं धनुष लेकर खड़ा हुआ हूँ। मुझे राक्षसवंश को नष्ट करने वाला समझो। क्योंकि एक मुहूर्त में तुम भी चेतना रहित हो जाओगे।

रामोऽयमिति विज्ञाय जहास विकृतस्वनम्।
दारयन्निव सर्वेषां हृदयानि वनौकसाम्।। १४।।
कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत्।
नाहं विराधो विज्ञेयो कुम्भकर्णः समागतः।। १५।।
पश्य मे मुद्गरं भीमं सर्वं कालायसं महत्।
अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया।। १६।।

वह महा तेजस्वी कुम्भकर्ण यह जान कर कि यह राम है, बड़े जोर से विकृत स्वर में हँसा और सारे वानरों के हृदयों को विदीर्ण सा करता हुआ श्रीराम से बोला कि मुझे विराध मत समझ लेना। मैं कुम्भकर्ण तुम्हारे सामने आया हूँ। मेरे सम्पूर्ण लोहे के बने हुए इस भयानक मुद्गर को देखो। इसी से मैंने पहले देवताओं और दानवों को जीता था।

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
रामः सपुङ्खान् विससर्ज बाणान्।
तैराहतो वज्रसमप्रवेगै-
र्न चुक्षुभे न व्यथते सुरारिः।। १७।।

कुम्भकर्ण की बातों को सुन कर राम ने अपने पंख वाले बाणों को उस पर छोड़ा। उन वज्र के समान वेग वाले बाणों से आहत होने पर भी वह देवताओं का शत्रु न तो व्यथित हुआ न क्षुब्ध हुआ।

यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता
वाली हतो वानरपुङ्गवश्च।
ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरं
वज्रोपमा न व्यथयाम्प्रचक्रुः।। १८।।

जिन बाणों से राम ने उत्तम साल के वृक्षों को भेदा था और वानरश्रेष्ठ बाली को मारा था, वे वज्र के समान बाण उस समय कुम्भकर्ण के शरीर को व्यथित न कर सके।

स वारिधारा इव सायकांस्तान्
पिबञ्शरीरेण महेन्द्रशत्रुः।
जघान रामस्य शरप्रवेगं
व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम्।। १९।।

वह इन्द्र का शत्रु उन बाणों को पानी की धारा के समान मानो पीता हुआ सा और अपने प्रचण्ड वेग वाले मुद्गर को घुमाता हुआ राम के महान वेग को नष्ट करने लगा।

वायव्यमादाय ततोऽपरास्त्रं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय।
समुद्गरं तेन जहार बाहुं
स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद।। २०।।

तब राम ने दूसरे अस्त्र वायव्यास्त्र को लेकर उसे उस राक्षस के ऊपर फैंका और उससे उन्होंने उसकी मुद्गर सहित बाँह के काट दिया। बाँह कट जाने कुम्भकर्ण ने जोर से चीत्कार की।

स कुम्भकर्णोऽस्त्रनिकृत्तबाहु-
उत्पाटयामास करेण वृक्षं
ततोऽभिदुद्राव रणे नरेन्द्रम्।। २१।।
तं तस्य बाहुं सहतालवृक्षं
समुद्यतं पन्नगभोगकल्पम्।
ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जघान रामो
बाणेन जाम्बूनदचित्रितेन।। २२।।

उस अस्त्र से बाँह कट जाने पर कुम्भकर्ण ने एक हाथ से एक वृक्ष को उखाड़ लिया और वह रणभूमि में राजा राम की तरफ दौड़ा तब राम ने स्वर्ण से चित्रित ऐन्द्रास्त्र युक्त बाण से उस राक्षस की वृक्ष सहित उठी हुई दूसरी बाँह को भी काट दिया।

तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः
समापतन्तं सहसा नदन्तम्।
द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य
चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य।। २३।।

हाथ कट जाने पर भी गर्जना करते हुए, आक्रमण के लिये आते हुए उस राक्षस को देख कर राम ने दो तीखे अर्धचन्द्राकार बाणों से उस युद्ध में राक्षस के दोनों पैर भी काट दिये।

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगं
रामः प्रचिक्षेप् निशाचराय।। २४।।

इसके बाद राम ने सूर्य की किरणों के समान जगमगाता हुआ, शत्रुओं का विनाशक, तीक्ष्ण और अच्छे पंखों वाला इन्द्रास्त्र निकाला और उस इंद्र के वज्र तथा विद्युत के समान वेग वाले बाण को उन्होंने उस राक्षस पर छोड़ दिया।

स सायको राघवबाहुचोदितो
दिशःस्वभासा दश सम्प्रकाशयन्।
विधूमवैश्वानरभीमदर्शनो
चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरस्तदा।। २५।।

राम के हाथों से चलाये हुए उस बाण ने, जो अपनी चमक से दसों दिशाओं का प्रकाशित कर रहा था और निर्धूम अग्नि के समान भयानक था तब उस राक्षसपति कुम्भकर्ण के सिर को काट दिया।

ततस्तु ते तस्य वधेन भूरिणा
मनस्विनो नैर्ऋतराजबान्धवाः।
विनेदुरुच्चैर्व्यथिता रघूत्तमं
हरिं समीक्ष्यैव यथा मतंगजाः।। २६।।

तब उस राक्षस के महान वध से उसके मनस्वी बान्धव लोग व्यथित हो कर उत्तम रघुवंशी राम की ओर देखते हुए ऐसे ही जोर-जोर से विलाप करने लगे जैसे सिंह को देख कर हाथी चीत्कार करते हैं।

प्रहर्षमीयुर्बहवश्च वानराः
प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः ।
अपूजयन् राघवमिष्टभागिनं
हते रिपौ भीमबले नृपात्मजम्।। २७।।

भयानक बल वाले शत्रु के मारे जाने पर बड़ी संख्या में विद्यमान वानर अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए। उनके मुख खिले कमलों के समान लग रहे थे। सफलता को प्राप्त करने वाले राजपुत्र राम की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की।

बावनवाँ सर्ग

कुम्भकर्ण के वध का समाचार सुन कर रावण का विलाप।

श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्।
रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च।। १।।
पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः।। २।।
भ्रातर निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः।। ३।।
ततः कृच्छ्रात् समासाद्य संज्ञां राक्षसपुङ्गवः।
कुम्भकर्णवधाद् दीनो विललापाकुलेन्द्रियः।। ४।।

महाबली कुम्भकर्ण को युद्ध में मारा हुआ सुन कर रावण शोक से सन्तप्त हो कर मूर्च्छित हो गया और भूमि पर गिर पड़ा। अपने चाचा को मारा हुआ सुन कर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा, और अतिकाय भी शोक से पीड़ित होकर रोने लगे। अनायास ही महान कर्म करने वाले राम के द्वारा अपने भाई को मारा हुआ सुन कर महोदर और महापार्श्व भी शोक में मग्न हो गये। तब कठिनाई से होश में आकर कुम्भकर्ण के वध से दीन और व्याकुल इन्द्रियों वाला वह राक्षसश्रेष्ठ विलाप करने लगा।

हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल।
त्वं मां विहाय वै दैवाद् यातोऽसि यमसादनम्।। ५।।
मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल।
शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां संत्यज्य गच्छसि।। ६।।
इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः।
कालाग्निप्रतिमो ह्यद्य राघवेण रणे हतः।। ७।।
यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद् व्यसनं सदा।
स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले।। ८।।

वह रोते हुए कहने लगा कि हाय शत्रुओं को नष्ट करने वाले, महाबली कुम्भकर्ण! दुर्भाग्य से तुम मुझे छोड़ कर मृत्यु के घर चले गये। हे महाबली! शत्रु की सेना को पीड़ित कर, पर मेरे और बन्धुओं के काँटे को बिना निकाले अकेले ही तुम कहाँ जा रहे हो? कुम्भकर्ण के रूप में मेरी एक बाँह कट गयी, इसलिये अब मैं नहीं के बराबर हूँ। वह मेरा भाई जो कालाग्नि के समान था, युद्ध में राम के द्वारा मारा गया। हे भाई! तुम्हारे ऊपर तो बिजली का गिरना भी तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचा सकता था, फिर तुम राम के बाण से पीड़ित हो कर भूमि तल पर कैसे पड़े हुए हो?

ध्रुवमद्यैव संहृष्टा लब्धलक्षाः प्लवंगमाः।
आरोक्ष्यन्तीह दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सर्वशः।। ९।।
राज्ये नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया।
कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे मतिः।। १०।।
यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम्।
ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम्।। ११।।
अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम।
नहि भ्रातॄन् समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे।। १२।।

आज निश्चित रूप से वानर लोग प्रसन्न हो कर और अवसर पाकर लंका के दुर्गम द्वारों पर सब तरफ से चढ़ आयेंगे। अब मुझे राज्य से कोई मतलब नहीं है। मैं सीता को लेकर क्या करूँगा। कुम्भकर्ण के बिना अब मेरी जीवित रहने की भी इच्छा नहीं है। यदि मैं अपने भाई के हत्यारे राम को युद्ध में नहीं मारूँ तो मेरा मर जाना अच्छा है। मेरी जिन्दगी बेकार है। मैं आज उस जगह चला जाऊँगा, जहाँ मेरा छोटा भाई गया है। भाई को छोड़ कर मैं क्षण भर भी जीना नहीं चाहता।

तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम्।
यदज्ञानान्मया तस्य न गृहीतं महात्मनः।। १३।।
विभीषणवचस्तावत् कुम्भकर्णप्रहस्तयोः।
विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः।। १४।।
तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान् स निरस्तो विभीषणः।। १५।।

महात्मा विभीषण के द्वारा कही हुई सुन्दर बातें आज मेरे सामने सत्य हो कर आ रही है, जिन्हें मैंने अज्ञान के कारण उस समय ग्रहण नहीं किया था। कुम्भकर्ण और प्रहस्त का दारुण विनाश होने पर अब विभीषण की बात मुझे लज्जित कर रही हैं। मैंने उस धार्मिक श्रीमान विभीषण को जो निकाल दिया, उसी काम का यह शोक वाला परिणाम आज मुझे भोगना पड़ रहा है।

इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा
कृपणमतीव विलप्य कुम्भकर्णम्।
न्यपतदपि दशाननो भृशार्त–
स्तमनुजमिन्द्ररिपुं हतं विदित्वा।। १६।।

इस प्रकार बहुत तरह से व्याकुल आत्मा के साथ, दीनता पूर्वक कुम्भकर्ण के लिये विलाप करके वह दशानन अपने इन्द्रशत्रु छोटे भाई के वध को याद करके अत्यन्त व्याकुलता के साथ पुनः भूमि पर गिर पड़ा।

तिरेपनवाँ सर्ग

रावण के पुत्रों और भाइयों का युद्ध के लिये जाना और नरान्तक का अंगद के द्वारा वध।

एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः।
श्रुत्वा शोकाभिभूतस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत्।। १।।
एवमेव महावीर्यो हतो नस्तातमध्यमः।
न तु सत्पुरुषा राजन् विलपन्ति यथा भवान्।। २।।
नूनं त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो।
स कस्मात् प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम्।। ३।।
कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणे।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून् गरुडः पन्नगानिव।। ४।।

इस प्रकार शोक से अभिभूत दुरात्मा रावण के इस विलाप को सुन कर त्रिशिरा ने उससे कहा कि यह ठीक है कि हमारे महातेजस्वी मँझले चाचा मारे गये पर हे राजन्! सत्पुरुष आपकी तरह से विलाप नहीं करते। हे प्रभो! निश्चय ही आप अकेले ही तीनों लोकों के लिये पर्याप्त हैं, पर फिर भी आप सामान्य व्यक्तियों की तरह से क्यों अपने ऊपर शोक कर रहे हैं? यदि आपकी इच्छा हो तो आप यहीं रहें, मैं युद्ध के लिये बाहर निकलूँगा और आपके शत्रुओं को ऐसे ही उखाड़ दूँगा जैसे गरुड़ पक्षी साँपों को नष्ट कर देता है।

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः।। ५।।
श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः।। ६।।
ततोऽहमहमित्येवं गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः।
रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः।। ७।।
अन्तरिक्षगताः सर्वे सर्वे मायाविशारदाः।
सर्वे सुबलसम्पन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः।। ८।।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते स्म निर्जिताः।
सर्वेऽस्त्रविदुषो वीराः सर्वे युद्धविशारदाः।। ९।।

त्रिशिरा की बात को सुन कर काल से प्रेरित राक्षसराज रावण अपना पुनर्जन्म सा मानने लगा। त्रिशिरा की बात सुन कर देवान्तक, नरान्तक और तेजस्वी अतिकाय भी युद्ध के लिये हर्षित हो गये। तब रावण के वे इन्द्र के समान पराक्रमी राक्षसश्रेष्ठ वीर पुत्र मैं युद्ध के लिये जाऊँगा, मैं जाऊँगा, ऐसा कहते हुए गर्जने लगे। वे सारे आकाश में विचरण करने वाले और माया विशारद थे। वे सारे अच्छे बल से युक्त और विस्तृत कीर्ति वाले थे। वे सारे युद्ध में जा कर कभी पराजित होते नहीं सुने गये थे। वे सारे शस्त्रास्त्रों के विद्वान, वीर और युद्ध करने में चतुर थे।

स पुत्रान् सम्परिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास वै रणे।। १०।।
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः।
रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे।। ११।।
तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं लोकरावणम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं चैब महाकायाः प्रतस्थिरे।। १२।।

उसने अपने पुत्रों का आलिंगन करके और उन्हें आभूषणों से सजा कर और उत्तम आशीर्वाद देकर उन्हें युद्ध के लिये भेजा। उसने अपने दोनों भाइयों युद्धोन्मत (महापार्श्व) और मत्त (महोदर) को भी कुमारों की रक्षा के लिये युद्ध में भेजा। वे विशाल शरीर वाले, संसार को रुलाने वाले महात्मा रावण को अभिवादन करके और उसकी प्रदक्षिणा करके प्रस्थित हुए।

सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः।
निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकाङ्क्षिणः।। १३।।
त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ।
महोदरमहापार्श्वौ निर्जग्मुः कालचोदिताः।। १४।।

सब प्रकार की ओषधियों और सुगन्धियों का अपने शरीर पर लेप कर, वे महाबली, युद्ध के इच्छुक छै राक्षसश्रेष्ठ काल से प्रेरित हो कर बाहर निकले। वे छै इस प्रकार थे, त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर और महापार्श्व।

मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम्।
इति कृत्वा मतिं वीराः संजग्मुः संयुगार्थिनः।। १५।।
तेऽभिनिष्क्रम्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः।
ददृशुर्वानरानीकं समुद्यतशिलानगम्।। १६।।
हरयोऽपि महात्मानो ददृशू राक्षसं बलम्।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं समुद्यत महायुधम्।। १७।।

युद्ध के लिये इच्छुक के वीर यह निश्चय करके कि या तो हम मर जायेंगे या शत्रु को पराजित करेंगे, युद्ध के लिये आगे बढ़े। उन महाबली राक्षस शिरोमणियों

ने हर्ष के साथ नगर से बाहर निकल कर देखा कि वानर सेना शिलाओं और वृक्षों के साथ तैयार खड़ी है। महात्मा वानरों ने भी तब राक्षसों की उस सेना को देखा, जो महान आयुधों के साथ तैयार थी, हाथी, रथ और घोड़ों से भरी हुई थी।

तद् युद्धमभवद् घोरं रक्षोवानरसंकुलम्।
ते पादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम्।। १८।।
बाणौघैर्वार्यमाणाश्च हरयो भीमविक्रमाः।
सिंहनादान् विनेदुश्च रणे राक्षसवानराः।। १९।।
शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान् प्लवङ्गमाः।
निर्जघ्नुः संयुगे क्रुद्धाः कवचाभरणावृतान्।। २०।।
केचिद् रथगतान् वीरान् गजवाजिगतानपि।
निर्जघ्नुः सहसाऽऽप्लुत्य यातुधानान् प्लवङ्गमाः।। २१।।

तब उन राक्षसों और वानरों में भयानक युद्ध छिड़ गया। राक्षसों की बाण वर्षा से रोके जाते हुए भयानक पराक्रम वाले वानरों ने वृक्षों और पर्वत शिलाओं की अनुपम वृष्टि की। युद्ध में राक्षस और वानर जोर-जोर से सिंहनाद कर रहे थे। उस युद्धभूमि में क्रुद्ध वानरों ने कवचरूपी आभरणों से युक्त राक्षसों को शिलाओं से कुचल कर मार दिया। कुछ वानर उछल कर रथों में बैठे हुए, तथा हाथी और घोड़ों पर बैठे हुए राक्षस वीरों को भी एकदम उछल कर मार देते थे।

शैलशृङ्गान्विताङ्गास्ते मुष्टिभिर्वान्तलोचनाः।
चेलुः पेतुश्च नेदुश्च तत्र राक्षसपुङ्गवाः।। २२।।
राक्षसाश्च शरैस्तीक्ष्णैर्बिभिदुः कपिकुञ्जरान्।
शूलमुद्गरखड्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः।। २३।।
अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः।
रिपुशोणितदिग्धाङ्गास्तत्र वानरराक्षसाः।। २४।।
ततः शैलैश्च खड्गैश्च विसृष्टैर्हरिराक्षसैः।
मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणितोक्षिता।। २५।।

पहाड़ों के पत्थरों की मार अपने अंगों पर झेलते हुए तथा घूँसों की मार से जिनकी आँखें बाहर निकल आई थीं, ऐसे राक्षसवीर, वहाँ चीत्कार करते हुए, गिरते पड़ते हुए भाग रहे थे। राक्षस भी वानर वीरों को तीक्ष्ण बाणों से बींध रहे थे और उन्हें शूल, मुद्गर, खड्ग, प्रास तथा शक्तियों से मार रहे थे। वानर और राक्षस दोनों ही वहाँ एक दूसरे को विजय की इच्छा से गिरा रहे थे। उनके अंग शत्रु के रक्त से सन गये थे। तब वह भूमि थोड़ी देर ही में वानर और राक्षसों द्वारा चलाये हुए पत्थरों और खड्गों से भर गयी तथा खून से भीग गयी।

आक्षिप्य च शिलाः शैलाञ्जघ्नुस्ते राक्षसास्तदा।
तेषां चाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नू रक्षांसि वानराः।। २६।।
निर्जघ्नुः शैलशृङ्गैश्च बिभिदुश्च परस्परम्।
सिंहनादान् विनेदुश्च रणे राक्षसवानराः।। २७।।
छिन्नवर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैर्हताः।
रुधिरं प्रसृतास्तत्र रससारमिव द्रुमाः।। २८।।

उस समय राक्षस वानरों से पत्थरों और शिलाओं को छीन कर उनसे उन्हीं को मार रहे थे और वानर भी राक्षसों से उनके शस्त्रों को छीन कर उन्हीं से उनको मार रहे थे। इस प्रकार वहाँ युद्ध में राक्षस और वानर एक दूसरे को शिलाओं और पत्थरों से मार रहे थे। वानरों से मारे हुए राक्षसों के कवच आदि रक्षा के साधन छिन्न भिन्न हो गये थे। उनके शरीर से रक्त इस प्रकार बह रहा था जैसे पेड़ों से गोंद बहा करता है।

रथेन च रथं चापि वारणेनापि वारणम्।
हयेन च हयं केचिन्निर्जघ्नुर्वानरा रणे।। २९।।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च भल्लैश्च निशितैः शरैः।
राक्षसा वानरेन्द्राणां बिभिदुः पादपाञ्शिलाः।। ३०।।
विकीर्णाः पर्वतास्तैश्च द्रुमच्छिन्नैश्च संयुगे।
हतैश्च कपिरक्षोभिर्दुर्गमा वसुधाभवत्।। ३१।।

कई वानर रथ से रथ को, हाथी से हाथी को, घोड़े से घोड़े को युद्ध में मार रहे थे। राक्षस क्षुरप्र, अर्धचन्द्र और भल्ल नाम के तीक्ष्ण बाणों से वानरेन्द्रों के वृक्षों और शिलाओं को भेद रहे थे। वह भूमि राक्षसों और वानरों की लाशों से तथा बिखरे हुए पत्थरों और छेदे हुए वृक्षों से चलने के लिये दुर्गम बन गयी थी।

ततो हयं मारुततुल्यवेग-
मारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य।
नरान्तको वानरसैन्यमुग्रं
महार्णवं मीन इवाविवेश।। ३२।।

तब वायु के समान वेगवान घोड़े पर सवार और तीक्ष्ण शक्ति को हाथ में लिये हुए नरान्तक ने उग्र वानर सेना में ऐसे प्रवेश किया जैसे कोई विशाल मत्स्य महासागर में प्रवेश करे।

स वानरान् सप्त शतानि वीरः
प्रासेन दीप्तेन विनिर्बिभेद।
एकः क्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा
जघान सैन्यं हरिपुङ्गवानाम्।। ३३।।

उस इन्द्र शत्रु वीर और महात्मा ने अपने जगमगाते हुए प्रास से सात सौ वानरों को मार दिया। उसने अकेलें ही थोड़ी देर में वानर वीरों की सेना में महान विनाश कर दिया।

स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः।
पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः।। ३४।।
यावद् विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुङ्गवाः।
तावदेताननतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः।। ३५।।
ज्वलन्तं प्रासमुद्यम्य संग्रामाग्रे नरान्तकः।
ददाह हरिसैन्यानि वनानीव विभावसुः।। ३६।।
यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षाञ्शैलान् वनौकसः।
तावत् प्रासहताः पेतुर्वज्रकृत्ता इवाचलाः।। ३७।।

वह जिधर से निकल जाता था, वहीं उसके मार्ग में माँस और खून की कीचड़ बन जाती थी और वह मार्ग गिरे हुए पर्वताकार वानरों से भर जाता था। जब तक वानर लोग अपना पराक्रम दिखाने का विचार करते, तभी नरान्तक उन पर आक्रमण कर उन्हें अपने शस्त्र से भेद देता था। उस युद्ध के मुहाने पर जैसे दावानल वनों को जलाती है वैसे ही नरान्तक अपने प्रज्वलित प्रास से वानर सेना को नष्ट कर रहा था। जितनी देर में वानर लोग वृक्षों को और पर्वत शिलाओं को उखाड़ते, उतनी ही देर में वे उसके प्रास से मारे हुए विद्युत् पीड़ित पर्वत के समान गिर पड़ते थे।

दिक्षु सर्वासु बलवान् विचचार नरान्तकः।
प्रमृद्नन् सर्वतो युद्धे प्रावृट्काले यथानिलः।। ३८।।
न शेकुर्धावितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं भयात्।
उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान् विव्याध वीर्यवान्।। ३९।।
एकेनान्तककल्पेन प्रासेनादित्यतेजसा।
भग्नानि हरिसैन्यानि निपेतुर्धरणीतले।। ४०।।
वज्रनिष्पेषसदृशं प्रासस्याभिनिपातनम्।
न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम्।। ४१।।

सब तरफ विनाश करता हुआ वह बलवान नरान्तक ऐसे ही घूम रहा था जैसे वर्षा ऋतु में तेज हवा वृक्षों को तोड़ती हुई चलती है। वानर वीर उस समय न तो भाग पा रहे थे, न ठहर पा रहे थे और भय के कारण न कुछ कर पा रहे थे। वह तेजस्वी उछलते हुए, खड़े हुए, जाते हुए सभी पर प्रहार कर रहा था। उसके अकेले ही मृत्यु के समान भयानक और सूर्य के समान चमकते हुए प्रास से भग्न हुई वानर सेना भूमि पर पड़ी हुई थी। विद्युत् के आघात के समान उस प्रास के आघात को वानर लोग नहीं सह सके और वे जोर-जोर से चीत्कार करने लगे।

पततां हरिवीराणां रूपाणि प्रचकाशिरे।
वज्रभिन्नाग्रकूटानां शैलानां पततामिव।। ४२।।
प्रेक्षमाणः स सुग्रीवो ददृशे हरिवाहिनीम्।
नरान्तकभयत्रस्तां विद्रवन्तीं यतस्ततः।। ४३।।
विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम्।
गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम्।। ४४।।
दृष्ट्वोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः।
कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम्।। ४५।।
गच्छैनं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः।
क्षोभयन्तं हरिबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय।। ४६।।

वहाँ गिरते हुए वानर वीरों के रूप ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे विद्युत के आघात से जिनके शिखर टूट कर गिर गये हों, वे पर्वत हों। तब सुग्रीव ने निगाह डालते हुए देखा कि वानर सेना नरान्तक के भय से डरी हुई जहाँ तहाँ भाग रही है। भागती हुई वानर सेना को देख कर उसने घोड़े पर बैठे हुए और प्रास लेकर आते हुए नरान्तक को भी देखा। उसे देख कर महा तेजस्वी वानराधीश सुग्रीव ने इन्द्र के समान पराक्रमी वीर कुमार अंगद से कहा कि तुम जाओ। घोड़े पर बैठे इस राक्षस वीर को, जो वानर सेना को क्षुब्ध कर रहा है जल्दी प्राणों से विहीन कर दो।

स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पाताङ्गदस्तदा।
अनीकान्मेघसंकाशादंशुमानिव वीर्यवान्।। ४७।।
शैलसंघातसंकाशो हरीणामुत्तमोऽङ्गदः।
रराजाङ्गदसंनद्धः सधातुरिव पर्वतः।। ४८।।
नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद् वचः।

स्वामी के वचनों को सुन कर तब तेजस्वी अंगद बादलों के समान विशाल वानर सेना से सूर्य के समान बाहर निकले। वानरों में श्रेष्ठ अंगद पर्वत समूह के समान विशालकाय थे। बाजुबन्द धारण किये हुए वे धातुओं से युक्त पर्वत के समान प्रतीत हो रहे थे। वे बालिपुत्र अंगद तब नरान्तक के पास जाकर उससे बोले कि–

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि।। ४९।।
अस्मिन् वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप्र ममोरसि।
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः।। ५०।।
संदश्य दशनैरोष्ठं निश्वस्य च भुजंगवत्।
अभिगम्याङ्गदं क्रुद्धो वालिपुत्रं नरान्तकः।। ५१।।

ठहरो तुम सामान्य वानरों से क्या करोगे। अपने इस वज्र के समान प्रास को जल्दी मेरी छाती में मारो। अंगद की बात सुन कर नरान्तक को क्रोध आ गया। अपने ओठों को दाँतों से चबा कर और साँप के समान साँस लेकर वह अंगद के सामने जा कर खड़ा हो गया।

स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय
समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज।
स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे
बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ।।५२।।

तब उसने अपने जगमगाते हुए प्रास को घुमा कर तुरन्त उसे अंगद के ऊपर दे मारा, वह वह वज्र के समान कठोर बालिपुत्र की छाती पर पड़ कर टूट गया और भूमि पर गिर गया।

तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नं
सुपर्णकृत्तोरगभोगकल्पम् ।
तलं समुद्यम्य स वालिपुत्र-
स्तुरंगमस्याभिजघान मूर्ध्नि।।५३।।

उस प्रास को गरुड़ पक्षी के द्वारा काटे गये साँप के शरीर की तरह टूटा हुआ देख कर अंगद ने अपना थप्पड़ उठा कर उसे उसके घोड़े के सिर पर मारा।

निमग्नपादः स्फुटिताक्षितारो
निष्क्रान्तजिह्वोऽचलसंनिकाशः ।
स तस्य वाजी निपपात भूमौ
तलप्रहारेण विकीर्णमूर्धा।।५४।।

थप्पड़ के प्रहार से उस पर्वत के समान विशाल घोड़े का सिर फट गया। जीभ बाहर निकल आयी। आँखें फट गयीं और पैर नीचे को मुड़ गये और वह भूमि पर गिर पड़ा।

नरान्तकः क्रोधवशं जगाम
हतं तुरंगं पतितं समीक्ष्य।
स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो
जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम्।।५५।।

अपने घोड़े को गिरा हुआ देख कर नरान्तक क्रोध के बस में हो गया। उस महाप्रभाव शाली ने घूँसा उठा कर बालि पुत्र के सिर पर मारा।

अथाङ्गदो मुष्टिविशीर्णमूर्धा
सुस्राव तीव्रं रुधिरं भृशोष्णम्।
मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि
संज्ञां समासाद्य विसिस्मिये च।।५६।।

घूँसे के प्रहार से अंगद का सिर फूट गया और उससे गर्म खून की तेज धारा बहने लगी। वे जलन के कारण थोड़ी देर के लिये मूर्च्छित हो गये। फिर होश में आकर उन्हें उसकी शक्ति को देख कर आश्चर्य हुआ।

अथाङ्गदो मृत्युसमानवेगं
संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम्।
निपातयामास तदा महात्मा
नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः।।५७।।

उसके बाद अंगद ने मृत्यु के समान वेग वाले, पर्वत शिखर के समान अपने घूँसे को ताना और फिर उस महात्मा बालिपुत्र ने उसे नरान्तक की छाती पर दे मारा।

स मुष्टिनिर्भिन्ननिमग्नवक्षा
ज्वाला वमञ्शोणितदिग्धगात्रः।
नरान्तको भूमितले पपात
यथाचलो वज्रनिपातभग्नः।।५८।।

घूँसे के आघात से नरान्तक की छाती फट गयी। वह आग की ज्वाला के समान खून की उलटी करने लगा। खून से उसका सारा शरीर सन गया। वह भूमि पर ऐसे गिर गया जैसे विद्युत के आघात से टूटा हुआ पहाड़ गिर पड़ा हो।

अथाङ्गदो राममनःप्रहर्षणं
सुदुष्करं तं कृतवान् हि विक्रमम्।
विसिस्मिये सोऽप्यथ भीमकर्मा
पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः।।५९।।

अंगद ने इस प्रकार राम को हर्षित करने वाला वह दुष्कर पराक्रम करके दिखाया। राम को भी उसके इस कार्य से आश्चर्य हुआ। भयानक कर्म करने वाला वह अंगद पुन युद्ध के लिये हर्ष के साथ तैयार हो गया।

चौवनवाँ सर्ग

हनुमान जी के द्वारा देवान्तक और त्रिशिरा का, नील के द्वारा महोदर का तथा ऋषभ के द्वारा महा पार्श्व का वध।

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः।
देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः।। १।।
आरूढो मेघसंकाशं वारणेन्द्रं महोदरः।
वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वेगवान्।। २।।
भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तदा देवान्तको बली।
आदाय परिघं घोरमङ्गदं समभिद्रवत्।। ३।।
रथमादित्यसंकाशं युक्तं परमवाजिभिः।
आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमथाभ्यगात्।। ४।।

नरान्तक को मारा गया देख कर राक्षसश्रेष्ठ देवान्तक, त्रिशिरा और पौलस्त्य महोदर चीत्कार करने लगे। बादल के समान हाथी पर सवार वेगवान महोदर, महा तेजस्वी बालिपुत्र की तरफ दौड़ा। भाई के मरने से सन्तप्त बलवान देवान्तक ने भयानक परिघ को लेकर अंगद पर आक्रमण किया। सूर्य के समान तेजस्वी और उत्तम घोड़ों से युक्त रथ पर बैठ कर वीर त्रिशिरा भी बालि पुत्र का सामना करने के लिये आया।

वृक्षमुत्पाटयामास महाविटपमङ्गदः।
देवान्तकाय तं वीरश्चिक्षेप सहसाङ्गदः।। ५।।
त्रिशिरास्तं प्रचिच्छेद शरैराशीविषोपमैः।
स वृक्षं कृत्तमालोक्य उत्पपात तदाङ्गदः।। ६।।
स ववर्ष ततो वृक्षाञ्शिलाश्च कपिकुञ्जरः।
तान् प्रचिच्छेद संक्रुद्धस्त्रिशिरा निशितैः शरैः।। ७।।
परिघाग्रेण तान् वृक्षान् बभञ्ज स महोदरः।
त्रिशिराश्चाङ्गदं वीरमभिदुद्राव सायकैः।। ८।।

तब अंगद ने एक बड़े पेड़ को उखाड़ लिया और उस वीर ने उसे देवान्तक पर फुर्ती के साथ फैंका। तब त्रिशिरा ने अपने विषधर सर्प के समान बाणों से वृक्ष को छिन्न कर दिया। तब उस वृक्ष को कटा हुआ देख कर अंगद ऊपर को उड़े और उस वानरश्रेष्ठ ने वहीं से वृक्षों की और शिलाओं की वर्षा आरम्भ की, किन्तु क्रुद्ध त्रिशिरा ने उन सबको अपने तीखे बाणों से छिन्न कर दिया। महोदर ने भी अपने परिघ ने उन वृक्षों को तोड़ा। फिर त्रिशिरा ने बाणों से अंगद पर आक्रमण किया।

गजेन समभिद्रुत्य वालिपुत्रं महोदरः।
जघानोरसि संक्रुद्धस्तोमरैर्वज्रसंनिभैः।। ९।।
देवान्तकश्च संक्रुद्धः परिघेण तदाङ्गदम्।
उपगम्याभिहत्याशु व्यपचक्राम वेगवान्।। १०।।
स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत् समभिद्रुतः।
न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान्।। ११।।
स वेगवान् महावेगं कृत्वा परमदुर्जयः।
तलेन समभिद्रुत्य जघानास्य महागजम्।। १२।।

क्रुद्ध हुए महोदर ने अपने हाथी से बालि पुत्र पर आक्रमण करके इसकी छाती पर वज्र के समान तोमरों से प्रहार किया। क्रोध में भरे देवान्तक ने समीप जा कर परिघ से अंगद पर प्रहार किया और तुरन्त वहाँ से हट गया। इस प्रकार तीन राक्षस श्रेष्ठों के आक्रमणों को एक साथ सहन करता हुआ, वह प्रतापी महा तेजस्वी बालिपुत्र व्यथित नहीं हुआ। उस वेगवान परम दुर्जय अंगद ने अपने वेग को दिखाते हुए आक्रमण कर महोदर के हाथी पर थप्पड़ से प्रहार किया।

तस्य तेन प्रहारेण नागराजस्य संयुगे।
पेततुर्नयने तस्य विननाश स कुञ्जरः।। १३।।
विषाणं चास्य निष्कृष्य वालिपुत्रो महाबलः।
देवान्तकमभिद्रुत्य ताडयामास संयुगे।। १४।।
स विह्वलस्तु तेजस्वी वातोद्धूत इव द्रुमः।
लाक्षारससवर्णं च सुस्राव रुधिरं महत्।। १५।।
अथाश्वस्य महातेजाः कृच्छ्राद् देवान्तको बली।
आविध्य परिघं वेगादाजघान तदाङ्गदम्।। १६।।

उसके प्रहार से उस हाथी की आँखें निकल कर बाहर आ गयीं और वह मर गया। तब महाबली बालि पुत्र ने उसके दाँत को उखाड़ कर और देवान्तक पर आक्रमण कर उसके द्वारा उस पर उस युद्ध स्थल में चोट की। उस प्रहार से वह तेजस्वी देवान्तक व्याकुल हो गया। वह हवा से हिलते हुए वृक्ष की तरह काँपने लगा और लाख के रंग के समान रक्त को बड़ी मात्रा में बहाने लगा। फिर बलवान देवान्तक ने अपने को बड़ी कठिनाई से सँभाला और परिघ को उठा कर उससे तेजी से अंगद पर प्रहार किया।

परिघाभिहतश्चापि वानरेन्द्रात्मजस्तदा।
जानुभ्यां पतितो भूमौ पुनरेवोत्पपात ह।। १७।।

तमुत्पतन्तं त्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः।
घोरैर्हरिपतेः पुत्रं ललाटेऽभिजघान ह।। १८।।
ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः।
हनूमानथ विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः।। १९।।
ततश्चिक्षेप शैलाग्रं नीलस्त्रिशिरसे तदा।
तद् रावणसुतो धीमान् बिभेद निशितैः शरैः।। २०।।

परिघ की चोट खाकर भी वानरेन्द्र का पुत्र अंगद तब घुटनों के बल भूमि पर गिरा और फिर एकदम ऊपर की ओर उछला। उस उछलते हुए वानरेश के पुत्र को त्रिशिरा ने सीधे जाने वाले भयानक तीन बाणों से सिर में प्रहार किया। तब अंगद को तीन राक्षस श्रेष्ठों के द्वारा घिरा हुआ देख कर हनुमान और नील उसकी सहायता के लिये आये। तब नील ने त्रिशिरा पर पर्वत शिला को फैंका। पर उस धीमान रावण पुत्र ने तीक्ष्ण बाणों से उसे बींध दिया।

स विजृम्भितमालोक्य हर्षाद् देवान्तको बली।
परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे।। २१।।
तमापतन्तमुत्पत्य हनूमान् कपिकुञ्जरः।
आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना।। २२।।

अपने भाई के पराक्रम को देख कर बलवान देवान्तक ने हर्ष से वायु पुत्र पर उस युद्ध में परिघ से आक्रमण किया। तब उस आक्रमण के लिये आते हुए देवान्तक के सिर पर वानरश्रेष्ठ हनुमान ने उछल कर अपने वज्र के समान घूँसे से प्रहार किया।

स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धा
निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः ।
देवान्तको राक्षसराजसूनु-
र्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात।। २३।।

उस घूँसे के प्रहार से देवान्तक का सिर फट गया और पिस गया। उसकी आँखें, दाँत और लम्बी जबान बाहर निकल आयी और वह राक्षस राज का पुत्र प्राणहीन हो कर सहसा भूमि पर गिर पड़ा।

तस्मिन् हते राक्षसयोधमुख्ये
महाबले संयति देवशत्रौ।
क्रुद्धस्त्रिशीर्षा निशिताग्रमुग्रं
ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम्।। २४।।

उस राक्षसों के प्रमुख योद्धा, महाबली देवशत्रु देवान्तक के युद्ध में मारे जाने पर, त्रिशिरा क्रुद्ध होकर नील के वक्ष स्थल पर भयानक बाण वर्षा करने लगा।

महोदरस्तु संक्रुद्धः कुञ्जरं पर्वतोपमम्।
भूयः समधिरुह्याशु मन्दरं रश्मिवानिव।। २५।।
ततो बाणमयं वर्षं नीलस्योपर्यपातयत्।
गिरौ वर्षं तडिच्चक्रचापवानिव तोयदः।। २६।।

फिर महोदर भी क्रुद्ध होकर दूसरे पर्वत के समान हाथी पर पुनः ऐसे आरूढ़ हुआ जैसे सूर्य मन्दराचल पर आरूढ़ हुआ हो। उसने भी फिर नील के ऊपर बाणों की वर्षा इस प्रकार आरम्भ कर दी जैसे इन्द्रधनुष और विद्युन्मडल से युक्त बादल पर्वत पर जल की वर्षा करते हैं।

ततः शरौघैरभिवृष्यमाणो
विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः।
नीलो बभूवाथ विसृष्टगात्रो
विष्टम्भितस्तेन महाबलेन।। २७।।

तब बाणों के समूह की वर्षा होने से वानर सेना के अधिपति नील के गात्र क्षत-विक्षत हो गये। उसका शरीर ढीला पड़ गया और अपने महाबल से वह कुण्ठित सा हो गया।

ततस्तु नीलः प्रतिलब्धसंज्ञः
शैलं समुत्पाट्य महोग्रवेगो।
महोदरं तेन जघान मूर्ध्नि ।। २८।।

उसके बाद होश में आकर महान उग्रवेग वाले नील ने एक शिला को उखाड़ कर उसे महोदर के सिर में मारा।

ततः स शैलाभिनिपातभग्नो
महोदरस्तेन महाद्विपेन।
व्यामोहितो भूमितले गतासुः
पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः।। २९।।

उस शिला के प्रहार से महोदर उस हाथी के साथ ही क्षत-विक्षत हो गया तथा मूर्च्छित और प्राण रहित हो कर विद्युत् से गिराये गये पर्वत के समान भूमि पर गिर पड़ा।

पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे।
हनूमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः।। ३०।।
स वायुसूनुः कुपितश्चिक्षेप शिखरं गिरेः।
त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेद बहुधा बली।। ३१।।
तद् व्यर्थं शिखरं दृष्ट्वा द्रुमवर्षं तदा कपिः।
विससर्ज रणे तस्मिन् रावणस्य सुतं प्रति।। ३२।।
तमापतन्तमाकाशे द्रुमवर्षं प्रतापवान्।
त्रिशिरा निशितैर्बाणैश्चिच्छेद च ननाद च।। ३३।।

अपने चाचा को मरा देख कर त्रिशिरा ने क्रुद्ध हो कर धनुष को उठाया और तीक्ष्ण बाणों से हनुमान को बींध दिया। तब हनुमान जी ने भी कुपित हो कर उसके ऊपर पर्वत की शिला फैंकी, पर बलवान त्रिशिरा ने तीखे बाणों से उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। उस शिला को व्यर्थ किया हुआ देख कर हनुमान जी ने रावण के पुत्र के ऊपर वृक्षों की वर्षा करनी आरम्भ की। पर उस प्रतापी त्रिशिरा ने आकाश मार्ग से आती हुई उस वृक्ष वर्षा को अपने तीखे बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया और जोर से गर्जना की।

हनूमांस्तु समुत्पत्य हयं त्रिशिरसस्तदा।
विददार नखैः क्रुद्धो नागेन्द्रं मृगराडिव।। ३४।।
अथ शक्तिं समासाद्य कालरात्रिमिवान्तकः।
चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः।। ३५।।
दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तामसङ्गताम्।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च।। ३६।।
तां दृष्ट्वा घोरसंकाशां शक्तिं भग्नां हनूमता।
प्रहृष्टा वानरगणा विनेदुर्जलदा यथा।। ३७।।

तब हनुमान जी ने उछल कर त्रिशिरा के घोड़े को अपने बघनरवे से ऐसा चीर दिया, जैसे सिंह हाथी को फाड़ देता है। तब रावण पुत्र त्रिशिरा ने जैसे मृत्यु ने कालरात्रि को साथ में लिया हो, ऐसे एक शक्ति को लेकर उसे वायुपुत्र के ऊपर चला दिया। पर आकाश से गिरती हुई उल्का के समान उस फैंकी हुई शक्ति को, जिसकी गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती थी, वायुपुत्र ने पकड़ लिया और तोड़ दिया। उस भयानक शक्ति को हनुमान के द्वारा तोड़ा हुआ देख कर वानर लोग प्रसन्न हो कर बादलों के समान गर्जना करने लगे।

ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः।
निचखान तदा खड्गं वानरेन्द्रस्य वक्षसि।। ३८।।
खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान् मारुतात्मजः।
आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि वीर्यवान्।। ३९।।
स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्तायुधो भुवि।
निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः।। ४०।।

तब राक्षस श्रेष्ठ त्रिशिरा ने तलवार लेकर, उससे वानरेन्द्र हनुमान के वक्षस्थल में प्रहार किया। तलवार की चोट खाकर वायु पुत्र तेजस्वी हनुमान ने त्रिशिरा के छाती पर थप्पड़ से प्रहार किया। उस थप्पड़ की मार से त्रिशिरा के हाथ से हथियार गिर गये और वह चेतना रहित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा तथैव च महोदरम्।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ।। ४१।।
चुकोप परमामर्षी मत्तो राक्षसपुङ्गवः।
जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसीं तदा।। ४१।।
गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुङ्गवः।
हरीन् समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन्।। ४३।।

तब त्रिशिरा और महोदर को तथा दुर्धर्ष देवान्तक और नरान्तक को मरा हुआ देख कर अत्यन्त अमर्ष और क्रोध में भर कर राक्षस श्रेष्ठ मत्त (महापार्श्व) ने एक भारी लोहे की बनी हुई और तेजस्विनी गदा हाथ में ली। गदा को हाथ में लेकर वह प्रलयकाल में प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित होता हुआ वानरों की तरफ दौड़ा।

अथर्षभः समुत्पत्य वानरो रावणानुजम्।
मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली।। ४४।।
तं पुरस्तात् स्थितं दृष्ट्वा वानरं पर्वतोपमम्।
आजघानोरसि क्रुद्धो गदया वज्रकल्पया।। ४५।।
स तयाभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः।
भिन्नवक्षाः समाधूतः सुस्राव रुधिरं बहु।। ४६।।
स सम्प्राप्य चिरात् संज्ञामृषभो वानरेश्वरः।
क्रुद्धो विस्फुरमाणौष्ठो महापार्श्वमुदैक्षत।। ४७।।

तब बलवान ऋषभ नाम का वानर उछल कर रावण के छोटे भाई मत्तानीक अर्थात् महापार्श्व के समीप आकर उसके आगे आकर खड़ा हो गया। पर्वत के समान उस वानर को अपने सामने खड़ा हुआ देख कर, उसने क्रोध में भर कर अपनी वज्र के समान कठोर गदा से उसकी छाती में प्रहार किया। उस गदा की चोट खाकर वानरश्रेष्ठ ऋषभ की छाती क्षत-विक्षत हो गयी। वे काँपने लगे और बड़ी मात्रा में रक्त बहाने लगे। बहुत देर में होश में आकर क्रोध में भरे हुए वानरेश ऋषभ ने फड़कते हुए ओठों से महापार्श्व की तरफ देखा।

स वेगवान् वेगवदभ्युपेत्य
तं राक्षसं वानरवीरमुख्यः।
संवर्त्य मुष्टिं सहसा जघान
बाह्वन्तरे शैलनिकाशरूपः।। ४८।।
स कृत्तमूलः सहसेव वृक्षः
क्षितौ पपात क्षतजोक्षिताङ्गः।
तां चास्य घोरां यमदण्डकल्पां
गदां प्रगृह्याशु तदा ननाद।। ४९।।

तब पर्वत के समान महाकाय, वेगवान् ऋषभ ने तेजी से उस राक्षस के समीप जा कर और मुक्का तान कर एकदम उसकी छाती में प्रहार किया, जिससे वह राक्षस जड़ कटे वृक्ष की तरह एकदम भूमि पर गिर पड़ा। उस समय उसके अंगों से खून बह रहा था। तभी ऋषभ ने उसकी यमदण्ड के समान भयानक गदा को अपने हाथ में ले लिया और भयानक रूप से गर्जना की।

मूहूर्तमासीत् स गतासुकल्पः
प्रत्यागतात्मा सहसा सुरारिः।
उत्पत्य संध्याभ्रसमानवर्ण-
स्तं वारिराजात्मजमाजघान।।५०।।

वह देवद्रोही महापार्श्व एक मुहूर्त तक मरे हुए के समान पड़ा रहा। उसके बाद उसमें चेतनता आ गयी और संध्या समय के बादलों के समान रंग वाला वह राक्षस उछल कर खड़ा हो गया और उसने वरुण पुत्र ऋषभ को चोट पहुँचाई।

स मूर्च्छितो भूमितले पपात
मुहूर्तमुत्पत्य पुनः ससंज्ञः।
तामेव तस्याद्रिवराद्रिकल्पां
गदां समाविध्य जघान संख्ये।।५१।।

तब वह ऋषभ मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर पड़े। किन्तु एक मुहूर्त में ही होश में आकर वे उछल कर खड़े हो गये और उन्होंने पर्वतराज की शिला के समान उस गदा को घुमा कर युद्ध में उस राक्षस को दे मारा।

सा तस्य रौद्रा समुपेत्य देहं
रौद्रस्य देवाध्वरविप्रशत्रोः।
बिभेद वक्षः क्षतजं च भूरि
सुस्राव धात्वम्भ इवाद्रिराजः।।५२।।

उसकी उस भयंकर गदा ने उस देव, यक्ष, और विप्रों के भयानक शत्रु के शरीर पर गिर कर उसकी छाती को विदीर्ण कर दिया, जिससे वह बड़ी मात्रा में खून बहाता हुआ धातु मिश्रित जल को बहाते हुए हिमालय के समान प्रतीत होने लगा।

अभिदुद्राव वेगेन गदां तस्य महात्मनः।
तां गृहीत्वा गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः।
मत्तानीकं महात्मा स जघान रणमूर्धनि।।५३।।

तब महापार्श्व ने गदा को लेने के लिये तेजी से ऋषभ पर आक्रमण किया, पर महात्मा ऋषभ ने बार-बार गदा को घुमा कर महापार्श्व पर प्रहार किया और उस युद्ध के मुहाने पर उसे समाप्त कर दिया।

पचपनवाँ सर्ग

अतिकाय का भयंकर युद्ध और लक्ष्मण के द्वारा उसका वध।

स्वबलं व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं लोमहर्षणम्।
भ्रातृंश्च निहतान् दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान्।। १।।
पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे संनिपातितौ।
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ राक्षसोत्तमौ।। २।।
चुकोप च महातेजा अभिदुद्राव वानरान्।
अतिकायोऽद्रिसंकाशो देवदानवदर्पहा।। ३।।
स विस्फार्य तदा चापं किरीटी मृष्टकुण्डलः।
नाम संश्रावयामास ननाद च महास्वनम्।। ४।।

शत्रु के रोंगटे खड़े कर देने वाली अपनी भयंकर सेना को व्यथित और इन्द्र के समान पराक्रमी अपने भाइयों को तथा राक्षस-श्रेष्ठ, परस्पर भाई अपने दोनों चाचाओं युद्धोन्मत (महोदर) और मत्त (महापार्श्व) को भी युद्ध में मारा गया और भूमि पर गिराया हुआ देख कर देवताओं और दानवों के गर्व को नष्ट करने वाला, पर्वत के समान विशालकाय महातेजस्वी अतिकाय क्रोध में भर कर वानरों की तरफ दौड़ा। किरीट और जगमगाते हुए कुण्डल धारण किये हुए उसने अपने धनुष की टंकार कर आपना नाम सुनाते हुए बड़े जोर से गर्जना की।

ततोऽतिकायं काकुत्स्थो रथस्थं पर्वतोपमम्।
ददर्श धन्विनं दूराद् गर्जन्तं कालमेघवत्।। ५।।
स तं दृष्ट्वा महाकायं राघवस्तु सुविस्मितः।
वानरान् सान्त्वयित्वा च विभीषणमुवाच ह।। ६।।
कोऽसौ पर्वतसंकाशो धनुष्मान् हरिलोचनः।
य एष रक्षःशार्दूलो रणभूमिं विराजयन्।।७।।
अभ्येति रथिनां श्रेष्ठो रथेनादित्यवर्चसा।

तब पर्वत के समान विशालकाय तथा प्रलयकाल के मेघ के समान गर्जना करते हुए, रथ में बैठे हुए धनुर्धर अतिकाय को श्रीराम ने दूर से देखा। उस विशालकाय को देख कर राम को भी बड़ा विस्मय हुआ और वानरों को सान्त्वना देकर वे विभीषण से बोले कि रणभूमि

में सुशोभित होने वाला, राक्षसों में श्रेष्ठ, पर्वत के समान विशाल काय, सिंह के समान आँखें वाला, हाथ में धनुष लिये, रथियों में श्रेष्ठ जो सूर्य के समान तेजस्वी रथ के द्वारा मेरी तरफ आ रहा है, वह कौन है?

स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणामिततेजसा।। ८।।
आचचक्षे महातेजा राघवाय विभीषणः।
दशग्रीवो महातेजा राजा वैश्रवणानुजः।। ९।।
भीमकर्मा महात्मा हि रावणो राक्षसेश्वरः।
तस्यासीद् वीर्यवान् पुत्रो रावणप्रतिमो बले।। १०।।
वृद्धसेवी श्रुतिधरः सर्वास्त्रविदुषां वरः।
अश्वपृष्ठे नागपृष्ठे खङ्गे धनुषि कर्षणे।। ११।।
भेदे सान्त्वे च दाने च नये मन्त्रे च सम्मतः।
यस्य बाहुं समाश्रित्य लङ्का भवति निर्भया।। १२।।
तनयं धान्यमालिन्या अतिकायमिमं विदुः।

अमित तेजस्वी राजपुत्र राम के द्वारा इस प्रकार पूछने पर, महा तेजस्वी विभीषण राम से बोले कि राक्षसों का स्वामी, कुबेर का छोटा भाई, भयंकर कर्म करने वाला, महा तेजस्वी महात्मा दशग्रीव रावण जो राजा है, उसका पुत्र बल में रावण के ही समान, तेजस्वी, वृद्धों की सेवा करने वाला, वेदों का ज्ञाता, सब शास्त्रों को जानने वालों में उत्तम है। वह घोड़े की सवारी, हाथी की सवारी, तलवार चलाने, धनुष की प्रत्यंचा खींचने, लक्ष्य भेद करने, साम-दाम का प्रयोग करने, नीति का प्रयोग करने और मन्त्रणा में सबके द्वारा सम्मानित है। जिसकी भुजाओं का सहारा लेकर लंका अपने आपको निर्भय समझती है, वह यह धान्यमालिनी का पुत्र है, जिसे अतिकाय के नाम से लोग जानते हैं।

तदस्मिन् क्रियतां यत्नः क्षिप्रं पुरुषपुङ्गव।। १३।।
पुरा वानरसैन्यानि क्षयं नयति सायकैः।
ततोऽतिकायो बलवान् प्रविश्य हरिवाहिनीम्।। १४।।
विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः।
तं भीमवपुषं दृष्ट्वा रथस्थं रथिनां वरम्।। १५।।
अभिपेतुर्महात्मानः प्रधाना ये वनौकसः।
कुमुदो द्विविदो मैन्दो नीलः शरभ एव च।। १६।।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च युगपत् समभिद्रवन्।

इसलिये हे नर श्रेष्ठ! इससे पहले कि यह वानर सेनाओं का विनाश करे, आप शीघ्र इसके ऊपर अपना प्रयत्न कीजिये। तभी बलवान अतिकाय वानर सेना में घुस कर बार-बार धनुष को टंकारने और गर्जना करने लगा। रथ में बैठे उस विशालकाय रथियों में उत्तम राक्षस को देख कर, प्रधान महात्मा वानर, कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील और शरभ ने वृक्षों और पर्वत शिलाओं के साथ उस पर एक साथ आक्रमण किया।

तेषां वृक्षांश्च शैलांश्च शरैः कनकभूषणैः।। १७।।
अतिकायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदां वरः।
तांश्चैव सर्वान् स हरीञ्शरैः सर्वायसैर्बली।। १८।।
विव्याधभिमुखान् संख्ये भीमकायो निशाचरः।
तेऽर्दिता बाणवर्षेण भिन्नगात्राः पराजिताः।। १९।।
न शेकुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महाहवे।
तत् सैन्यं हरिवीराणां त्रासयामास राक्षसः।
मृगयूथमिव क्रुद्धो हरिर्यौवनदर्पितः।। २०।।

किन्तु महा तेजस्वी तथा शस्त्रवेत्ताओं में उत्तम अतिकाय ने अपने स्वर्ण विभूषित बाणों से उनके द्वारा फैंके गये वृक्षों और पर्वत शिलाओं को छेद दिया। फिर उस भीमकाय निशाचर ने अपने सामने आये हुए उन सारे वानरों को अपने लोहे के बाणों से युद्ध स्थल में बींध दिया। उस बाण वर्षा से वानर पीड़ित और क्षत-विक्षत गात्र वाले होकर पराजित हो गये। वे उस महायुद्ध में अतिकाय का सामना करने में समर्थ नहीं हो सके। वानर वीरों की सेना को उस राक्षस ने ऐसे ही त्रासयुक्त कर दिया जैसे जवानी के जोश में भरा हुआ क्रुद्ध सिंह मृगों के झुंड को कर देता है।

स राक्षसेन्द्रो हरियूथमध्ये
नायुध्यमानं निजघान कंचित्।
उत्पत्य रामं स धनुःकलापी
सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे।। २१।।

उस राक्षसेन्द्र ने वानरों की सेना में ऐसे किसी योद्धा को नहीं मारा जो उस से युद्ध नहीं कर रहा था। वह धनुर्धर तब उछल कर राम के समीप आकर उनसे गर्व के साथ यह बोला कि—

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणि-
र्न प्राकृतं कंचन योधयामि।
यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाययुक्तो
ददातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम्।। २२।।

रथ में विद्यमान और धनुषबाण धारण किये हुए मैं किसी साधारण व्यक्ति से युद्ध नहीं करता हूँ। जिसके पास शक्ति है और जो परिश्रम से युक्त है, वह शीघ्र आज मेरे साथ यहाँ युद्ध करे।

तत् तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य
चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता।
अमृष्यमाणश्च समुत्पपात
जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा।। २३।।

उसकी इन कही जाने वाली बातों को सुन कर शत्रुओं को नष्ट करने वाले सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण क्रोध में भर गये। वे उसकी बातों को सहन न कर उछल कर खड़े हो गये और मुस्कारते हुए उन्होंने अपने धनुष को उठाया।

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम्।
पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः।। २४।।
तदातिकायः कुपितो दृष्ट्वा लक्ष्मणमुत्थितम्।
आदाय निशितं बाणमिदं वचनमब्रवीत्।। २५।।
बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः।
गच्छ किं कालसंकाशं मां योधयितुमिच्छसि।। २६।।
सुखप्रसुप्तं कालाग्निं विबोधयितुमिच्छसि।
न्यस्य चापं निवर्तस्व प्राणान्न जहि मद्गतः।। २७।।

क्रोध से भरे हुए लक्ष्मण उछल कर, तरकस से बाण निकाल कर और अतिकाय के सामने जाकर अपने विशाल धनुष को खींचने लगे। तब अतिकाय भी लक्ष्मण को सामने आया हुआ देख कर, कुपित हो कर और तीक्ष्ण बाण को लेकर यह बोला– हे लक्ष्मण! तुम अभी बच्चे हो। बहादुरी दिखाने में इतने चतुर नहीं हो। तुम चले जाओ। मृत्यु के समान मुझ से युद्ध करना क्यों चाहते हो? तुम सुख में सोई हुई मृत्यु रूपी अग्नि को क्यों जगाना चाहते हो? इसलिये धनुष को रख दो और जाओ। मेरे हाथों से अपने प्राणों का त्याग मत करो।

अथवा त्वं प्रतिस्तब्धो न निवर्तितुमिच्छसि।
तिष्ठ प्राणान् परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम्।। २८।।
पश्य मे निशितान् बाणान् रिपुदर्पनिषूदनान्।
एष ते सर्पसंकाशो बाणः पास्यति शोणितम्।। २९।।
मृगराज इव क्रुद्धो नागराजस्य शोणितम।।
इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धः शरं धनुषि संदधे।। ३०।।

अथवा तुम अहंकारी हो, लौटना नहीं चाहते हो तो ठहरो, अभी तुम प्राणों को छोड़ कर मृत्यु के घर पहुँच जाओगे। मेरे इन तीखे शत्रु के अभिमान को नष्ट करने वाले बाणों को देखो। यह साँप के समान बाण तुम्हारे खून को ऐसे पी जायेगा, जैसे क्रुद्ध सिंह हाथी के खून को पी जाता है, ऐसा कह कर उसने क्रोध में आ कर उस बाण को धनुष पर रखा।

श्रुत्वातिकायस्य वचः सरोषं
सगर्वितं संयति राजपुत्रः।
स संचुकोपातिबलो मनस्वी
उवाच वाक्यं च ततो महार्थम्।। ३१।।
न वाक्यमात्रेण भवान् प्रधानो
न कत्थनात् सत्पुरुषा भवन्ति।
मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ
निदर्शयस्वात्मबलं दुरात्मन्।। ३२।।

उस युद्धस्थल में अतिकाय के रोष और गर्व से युक्त वचनों को सुन कर वह अतिबल वाले मनस्वी राजकुमार लक्ष्मण कुपित हो कर उससे महान अर्थ से युक्त वाक्य को बोले कि तुम केवल कहने से ही बड़े नहीं हो सकते। कोई डींग मारने से श्रेष्ठ पुरुष नहीं बन जाता। अरे दुष्ट! मेरे धनुष बाण हाथ में लिये खड़े होने पर तू अपने बल को दिखा।

कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः।। ३३।।
सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः।
शरैर्वा यदि वाप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम्।। ३४।।
ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः।
मारुतः कालसम्पक्वं वृन्तात् तालफलं यथा।। ३५।।
बालोऽयमिति विज्ञाय न चावज्ञातुमर्हसि।
बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे।। ३६।।

तू काम के द्वारा अपने आपको दिखा। डींग मत मार! जिसमें पुरुषार्थ होता है वही शूरवीर होता है। तू सारे आयुधों से युक्त धनुष बाण के साथ, रथ में बैठा हुआ है। तू बाणों से या दूसरे अस्त्रों से अपने पराक्रम को दिखा फिर उसके बाद मैं अपने तीखे बाणों से तेरे सिर को ऐसे ही काट गिराऊँगा जैसे पके हुए ताड़ के फल को वायु उसकी बौंडी से गिरा देती है। तू यह बच्चा है, ऐसा सोच कर मेरी अवहेलना मत करना। मैं चाहे बच्चा हूँ या बूढ़ा, युद्ध में तू मुझे अपनी मृत्यु समझ।

ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम्।
लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम्।। ३७।।
तमापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम्।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा।। ३८।।
तं निकृत्तं शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोरगम्।
अतिकायो भृशं क्रुद्धः पञ्च बाणान् समादधे।। ३९।।
ताञ्शरान् सम्प्रचिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः।
तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद भरतानुजः।। ४०।।

तब कुपित हुए अतिकाय ने बाण को धनुष पर चढ़ा कर और मानो आकाश को छोटा बनाते हुए, उसे लक्ष्मण पर फैंक दिया। सर्प के समान आते हुए उस तीक्ष्ण बाण को देख कर शत्रुवीरों को समाप्त करने वाले लक्ष्मण ने उसे अर्ध चन्द्राकार बाण से काट दिया। फटे हुए फन वाले साँप के समान उस कटे हुए बाण को देख कर अतिकाय ने अत्यन्त क्रोध में भर कर पाँच बाणों का सन्धान किया। उस निशाचर ने उन बाणों को लक्ष्मण के ऊपर फैंका पर भरत के छोटे भाई लक्ष्मण ने उन आते हुए बाणों को अपने तीखे बाणों से छेद दिया।

स ताञ्छित्त्वा शितैर्बाणैर्लक्ष्मणः परवीरहा।
आददे निशितं बाणं ज्वलन्तमिव तेजसा।।४१।।
तमादाय धनुःश्रेष्ठे योजयामास लक्ष्मणः।
विचकर्ष च वेगेन विससर्ज च सायकम्।।४२।।
पूर्णायतविसृष्टेन शरेण नतपर्वणा।
ललाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स वीर्यवान्।।४३।।
स ललाटे शरो मग्नस्तस्य भीमस्य रक्षसः।
ददृशे शोणितेनाक्तः पन्नगेन्द्र इवाचले।।४४।।

शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले लक्ष्मण ने उन बाणों को काट कर एक तीक्ष्ण बाण लिया, जो अपने तेज से प्रज्वलित हो रहा था। लक्ष्मण ने उसे लेकर अपने श्रेष्ठ धनुष पर रखा और जोर से खींचकर बाण को छोड़ दिया। झुकी हुई गाँठ वाले तथा जोर से खींच कर छोड़े हुए उस बाण से तेजस्वी लक्ष्मण ने राक्षस श्रेष्ठ के सिर पर प्रहार किया। उस भयानक राक्षस के सिर में धँसा हुआ रक्त से भीगा हुआ वह बाण पर्वत पर विद्यमान किसी सर्पराज के समान दिखाई देने लगा।

राक्षसः प्रकम्पेऽथ लक्ष्मणेषु प्रपीडितः।
चिन्तयामास चाश्वस्य विमृश्य च महाबलः।।४५।।
एवं त्रीन् पञ्च सप्तेति सायकान् राक्षसर्षभः।
आददे संदधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च।।४६।।
ततस्तान् राक्षसोत्सृष्टाञ्शरौघान् राघवानुजः।
असम्भ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः।।४७।।
एव त्रीन् पञ्च सप्तेति सायकान् रावणात्मजः।
चुकोप त्रिदशेन्द्रारिर्जग्राह निशितं शरम्।।४८।।

लक्ष्मण के बाण से पीड़ित होकर वह राक्षस काँपने लगा। थोड़ी देर में धैर्य धारण कर वह महाबली चिन्ता में पड़ गया। फिर उस राक्षस श्रेष्ठ ने तीन, पाँच और सात बाण क्रमशः अपने धनुष पर रखे और धनुष को खींच कर उन्हें छोड़ दिया। परन्तु राक्षस के द्वारा छोड़े हुए उन बाणों को श्रीराम के अनुज ने बिना घबराये बहुत से तीखे बाणों से छिन्न कर दिया। उन बाणों को काटा हुआ देख कर इन्द्रद्रोही, रावण के पुत्र को बड़ा क्रोध आया और उसने उस युद्ध में एक दूसरा तीक्ष्ण बाण हाथ में लिया।

स संधाय महातेजास्तं बाणं सहसोत्सृजत्।
तेन सौमित्रिमायान्तमाजघान स्तनान्तरे।।४९।।
अतिकायेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि।
सुस्राव रुधिरं तीव्रं मदं मत्त इव द्विपः।।५०।।
स चकार तदात्मानं विशल्यं सहसा विभुः।
जग्राह च शरं तीक्ष्णमस्त्रेणापि समाददे।।५१।।
आग्नेयेन तदास्त्रेण योजयामास सायकम्।
स जज्वाल तदा बाणो धनुष्यस्य महात्मनः।।५२।।

उस महा तेजस्वी ने उस बाण को सहसा छोड़ दिया और उसके द्वारा सुमित्रा कुमार की छाती में प्रहार किया। युद्ध में अतिकाय के द्वारा छाती में प्रहार किये जाने पर मद बहाते हुए हाथी के समान लक्ष्मण जी तीव्र गति से रक्त बहाने लगे। तब सामर्थ्यशाली लक्ष्मण ने उस बाण को खींच कर अपने आपको बाण से रहित कर दिया और फिर उन्होंने एक तीक्ष्ण बाण लेकर उसे दिव्यास्त्र से युक्त किया। उन्होंने उसे आग्नेयास्त्र से युक्त किया, जिसके कारण वह बाण उन महात्मा के धनुष पर ही प्रज्वलित हो उठा।

अतिकायोऽतितेजस्वी रौद्रमस्त्रं समाददे।
तेन बाणं भुजङ्गाभं हेमपुङ्खमयोजयत्।।५३।।
तदस्त्रं ज्वलितं घोरं लक्ष्मणः शरमाहितम्।
अतिकायाय चिक्षेप दृष्ट्वा बाणं निशाचरः।।५४।।
उत्ससर्ज तदा बाणं रौद्रं सूर्यास्त्रयोजितम्।
तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः।।५५।।
तेजसा सम्प्रदीप्ताग्रौ क्रुद्धाविव भुजङ्गमौ।
तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले।।५६।।

अति तेजस्वी अतिकाय ने भी तब एक भयानक सुनहले पंख वाले सर्प जैसे बाण को लिया। तब लक्ष्मण ने उस भयानक दिव्यास्त्र को अतिकाय के ऊपर चलाया और अतिकाय ने भी लक्ष्मण जी के बाण को देख कर अपना भयानक बाण सूर्यास्त्र से युक्त कर उसके विरोध में फैंका। उन दोनों बाणों ने आकाश में एक दूसरे पर प्रहार किया। अपने तेज से प्रदीप्त होते हुए वे दो क्रुद्ध साँपों के समान लग रहे थे। वे एक दूसरे को जला कर भूमि पर गिर पड़े।

ततोऽतिकायः संक्रुद्धस्त्वाष्ट्रमैषीकमुत्सृजत्।
ततश्चिच्छेद सौमित्रिरस्त्रमैन्द्रेण वीर्यवान्॥ ५७॥
ऐषीकं निहतं दृष्ट्वा कुमारो रावणात्मजः।
याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम्॥ ५८॥
ततस्तदस्त्रं चिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः।
वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः॥ ५९॥

तब अतिकाय ने क्रुद्ध हो कर त्वष्टा अस्त्र से युक्त बाण छोड़ा उसे तेजस्वी सुमित्रा कुमार ने इन्द्रास्त्र से काट दिया। त्वष्टास्त्र को नष्ट हुआ देख कर रावण कुमार ने याम्यास्त्र को क्रोध सहित छोड़ा, पर लक्ष्मण ने वायव्यास्त्र से उसे भी नष्ट कर दिया।

सौमित्रिरिन्द्रप्रतिमानवीर्यः
समादधे बाणमथोग्रवेगं।
तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियुज्य चापे
ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम्॥ ६०॥

तब इन्द्र के समान तेजस्वी सुमित्राकुमार ने एक उग्रवेग वाले बाण को लिया और उसे ब्रह्मास्त्र से युक्त करके, धनुष पर रख वज्र के समान भयानक उस बाण को युद्ध स्थल में छोड़ दिया।

तमागतं प्रेक्ष्य महातिकायो
बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम्।
जघान शक्त्यृष्टिगदाकुठारैः
शूलैः शरैश्चाप्यविपन्नचेष्टः॥ ६१॥
तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि
मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः।
प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं
तदातिकायस्य शिरो जहार॥ ६२॥

उस काल और मृत्यु के समान भयंकर और प्रज्वलित बाण को अपनी तरफ आते देख कर, बिना अपनी चेष्टाओं को रोके? अनेक ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल और बाणों को चला कर अतिकाय ने उसे रोकने का यत्न किया पर अग्नि के समान प्रदीप्त उस अस्त्र ने उसके सारे अस्त्रों को व्यर्थ कर उसके मुकुट से सुशोभित शिर को काट कर अलग कर दिया।

छप्पनवाँ सर्ग

रावण की चिन्ता, राक्षसों को पुरी की रक्षा के लिये सावधान रहने का आदेश, राक्षसों और वानरों का भयानक युद्ध।

अतिकायं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महात्मना।
उद्वेगमगमद् राजा वचनं चेदमब्रवीत्॥ १॥
धूम्राक्षः परमामर्षी सर्वशस्त्रभृतां वरः।
अकम्पनः प्रहस्तश्च कुम्भकर्णस्तथैव च॥ २॥
एते महाबला वीरा राक्षसा युद्धकाङ्क्षिणः।
जेतारः परसैन्यानां परैर्नित्यापराजिताः॥ ३॥
ससैन्यास्ते हता वीरा रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
राक्षसाः सुमहाकाया नानाशस्त्रविशारदाः॥ ४॥

रावण ने जब सुना कि महात्मा लक्ष्मण के द्वारा अतिकाय को मार डाला गया है, तो वह बहुत उद्विग्न हो गया और कहने लगा कि अमर्षशील और सारे शस्त्रधारियों में उत्तम धूम्राक्ष, अकम्पन, प्रहस्त और कुम्भकर्ण, ये सारे राक्षस महाबली, वीर और युद्ध की इच्छा रखने वाले थे। ये शत्रुओं की सेनाओं को जीतने वाले और सदा शत्रुओं से अपराजित रहे थे, किन्तु अनायास ही महान कर्म करने वाले राम ने उन सब वीर, महाकाय, सारे शस्त्रों में विशारद राक्षसों को सेना सहित मार दिया।

अन्ये च बहवः शूरा महात्मानो निपातिताः।
ये योधा निर्गताः शूरा राक्षसा मम शासनात्॥ ५॥
ते सर्वे निहता युद्धे वानरैः सुमहाबलैः।
तं न पश्याम्यहं युद्धे योऽद्य रामं सलक्ष्मणम्॥ ६॥
नाशयेत् सबलं वीरं ससुग्रीवं विभीषणम्।
अहो सुबलवान् रामो महदस्त्रबलं च वै॥ ७॥
यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः।

और बहुत से महात्मा शूरवीर गिरा दिये गये। मेरी आज्ञा से जो भी वीर राक्षस युद्ध के लिये निकल कर गये, वे सब महाबली वानरों के द्वारा युद्ध में मार दिये गये। आज मैं किसी भी ऐसे वीर को नहीं देख रहा हूँ जो लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण सहित सबल वीर राम को युद्ध में नष्ट कर दे। अहो! राम बड़े बलवान हैं। उनका अस्त्रबल भी महान है। जिनके पराक्रम का सामना कर राक्षस मृत्यु को प्राप्त हो गये।

अप्रमत्तैश्च सर्वत्र गुल्मे रक्ष्या पुरी त्वियम्॥ ८॥
अशोकवनिका चैव यत्र सीताभिरक्ष्यते।

निष्क्रमो वा प्रवेशो वा ज्ञातव्यः सर्वदैव नः।। ९।।
यत्र यत्र भवेद् गुल्मस्तत्र तत्र पुनः पुनः।
सर्वतश्चापि तिष्ठध्वं स्वैः स्वैः परिवृता बलैः।। १०।।

सैनिक समूहों को बिना प्रमाद किये सभी स्थानों से इस पुरी की, अशोक वाटिका की जहाँ सीता को रखा गया है, रक्षा करनी है। हमें सदा इस बात की जानकारी रखनी चाहिये कि कौन वहाँ प्रवेश करता है और कौन वहाँ से बाहर जाता है। जहाँ-जहाँ भी सेना की छावनियाँ हैं, वहाँ-वहाँ तथा हर जगह भी तुम अपने सैनिकों के साथ पहरेदारी करते रहो।

द्रष्टव्यं च पदं तेषां वानराणां निशाचराः।
प्रदोषे वार्धरात्रे वा प्रत्यूषे वापि सर्वशः।। ११।।
नावज्ञा तत्र कर्तव्या वानरेषु कदाचन।
द्विषतां बलमुद्युक्तमापतत् किं स्थितं यथा।। १२।।

हे राक्षसों! वानरों के आने जाने पर हर समय सन्ध्या काल, आधी रात तथा प्रातः काल निगाह रखना। वानरों की तरफ कभी लापरवाही मत करना। यह देखते रहना कि शत्रुओं की सेना युद्ध की तैयारी कर रही है, आक्रमण करने वली है या वहीं खड़ी है?

ततस्ते राक्षसाः सर्वे श्रुत्वा लङ्काधिपस्य तत्।
वचनं सर्वमातिष्ठन् यथावत् तु महाबलाः।। १३।।
तेषां संनह्यमानानां सिंहनादं च कुर्वताम्।
शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीव समपद्यत।। १४।।

तब लंकापति का आदेश सुन कर वे महाबली राक्षस उसके आदेश का ज्यों का त्यों पालन करने लगे। युद्ध के लिये तैयार होते हुए और सिंहनाद करते हुए राक्षस सेनापतियों के लिये वह रात्रि बड़ी भयानक हो रही थी।

आदिष्टा वानरेन्द्रास्ते सुग्रीवेण महात्मना।
आसन्नं द्वारमासाद्य युध्यध्वं च प्लवंगमाः।। १५।।
यश्च वो वितथं कुर्यात् तत्र तत्राप्युपस्थितः।
स हन्तव्योऽभिसम्प्लुत्य राजशासनदूषकः।। १६।।
तेषु वानरमुख्येषु दीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु।
स्थितेषु द्वारमाश्रित्य रावणं क्रोध आविशत्।। १७।।

तब महात्मा सुग्रीव ने उन वानर यूथपतियों को आदेश दिया कि हे वानरो! तुम अपने समीपवर्ती लंका के द्वार पर जाकर युद्ध करो। तुममें से जो भी वहाँ पर विद्यमान रहते हुए इससे उलटा करे, उस राजादेश का उलंघन करने वाले को पकड़ कर मार देना। तब जब वानर यूथपति जलती हुई मशालें हाथों में लेकर दरवाजों पर जाकर स्थित हो गये, तब रावण को बड़ा क्रोध आया।

स कुम्भं च निकुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह।। १८।।
यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा।
निर्ययुः कौम्भकर्णिभ्यां सह रावणशासनात्।। १९।।
शशास चैव तान् सर्वान् राक्षसान् स महाबलान्।
राक्षसा गच्छताद्यैव सिंहनादं च नादयन्।। २०।।

उसने कुम्भकर्ण के दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ को बहुत से राक्षसों के साथ क्रुद्ध हो कर भेजा। रावण की आज्ञा से कुम्भकर्ण के पुत्रों के साथ यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजंघ, और कम्पन भी युद्ध के लिये निकले। सिंहनाद करते हुए उसने उन सभी महाबली राक्षसों को आदेश दिया कि तुम आज ही युद्ध के लिये जाओ।

ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः।
लङ्काया निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः।। २१।।
पताकाध्वजसंयुक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ।
भीमाश्वरथमातङ्गं नानापत्तिसमाकुलम्।। २२।।
दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ।
तद् राक्षसबलं भीमं घोरविक्रमपौरुषम्।। २३।।
तद् दृष्ट्वा बलमायातं राक्षसानां दुरासदम्।
संचचाल प्लवंगानां बलमुच्चैर्ननाद च।। २४।।

तब रावण से प्रेरणा पाकर वे वीर राक्षस बार-बार गर्जना करते हुए अपने जगमगाते हुए आयुधों के साथ युद्ध के लिये बाहर निकले। उस राक्षस सेना में पताका और ध्वज लहरा रहे थे। राक्षसों के हाथ में उत्तम तलवारें और फरसे थे। वह सेना भयानक घोड़ों, रथों और हाथियों से तथा अनेक प्रकार के पैदल सैनिकों से युक्त थी। जगमगाते हुए शूल, गदा, खड्ग, प्रास, तोमर और धनुषों से युक्त वह राक्षसों की भयानक सेना पराक्रम और पौरुष वाली थी। राक्षसों की उस दुर्धर्ष सेना को आता हुआ देख कर वानरों की सेना भी जोर से गर्जना करती हुई आगे बढ़ी।

जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद् बलं रक्षसां महत्।
अभ्ययात् प्रत्यरिबलं पतंगा इव पावकम्।। २५।।
तत्रोन्मत्ता इवोत्पेतुर्हरयोऽथ युयुत्सवः।
तरुशैलैरभिघ्नन्तो मुष्टिभिश्च निशाचरान्।। २६।।
तथैवापततां तेषां हरीणां निशितैः शरैः।
शिरांसि सहसा जह्रू राक्षसा भीमविक्रमाः।। २७।।

तब राक्षसों की विशाल सेना तेजी से उछल कर, शत्रुओं की सेना के सामने इस प्रकार पहुँच गयी जैसे पतंगे अग्नि की तरफ लपकते हैं। वहाँ युद्ध के करने के इच्छुक वानर भी वृक्षों, शिलाओं और घूँसों से राक्षसों को मारते हुए उन पर टूट पड़े। भयानक विक्रम वाले राक्षस भी आक्रमण करते हुए वानरों के सिरों को तीखे बाणों से काट-काट कर सहसा गिराने लगे।

विप्रलम्बितशस्त्रं च विमुक्तकवचायुधम्।
समुद्यतमहाप्रासं मुष्टिशूलासिकुन्तलम्।। २८।।
प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम्।
वानरान् दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे।
राक्षसान् दश सप्तेति वानराश्चाभ्यपातयन्।। २९।।

उस समय वहाँ वानरों और राक्षसों का भयानक युद्ध चल रहा था। उस युद्ध में हथियार हाथों से छूट जाते थे। कवच और शस्त्रास्त्र टूट कर गिर जाते थे। बड़े-बड़े प्रासों का, घूँसों का, शूलों का, तलवारों और भालों का प्रयोग हो रहा था। जहाँ राक्षस दस-दस और सात-सात वानरों को एक साथ गिरा देते थे, वहाँ वानर भी एक साथ दस-दस और सात-सात राक्षसों को गिरा रहे थे।

सत्तावनवाँ सर्ग

अंगद के द्वारा कम्पन और प्रजंघ का, द्विविद के द्वारा शोणिताक्ष का, मैन्द के द्वारा यूपाक्ष का और सुग्रीव के द्वारा कुम्भ का वध।

प्रवृत्ते संकुले तस्मिन् घोरे वीरजनक्षये।
अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः।। १।।
आहूय सोऽङ्गदं कोपात् ताडयामास वेगितः।
गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः।। २।।
स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः।
अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि।। ३।।
ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे।
रथेनाभ्यपतत् क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत्।। ४।।

जब इस प्रकार वह भयानक युद्ध चल रहा था, जिसमें वीरों का विनाश हो रहा था, युद्ध के लिये उत्सुक अंगद वीर कम्पन का सामना करने के लिये पहुँचे। तब कम्पन ने क्रोध पूर्वक अंगद को ललकार कर उस पर पहले तेजी से गदा प्रहार किया। उस गदा की चोट से अधिक घायल हो कर वे मूर्च्छित हो गये। फिर होश में आ कर उस तेजस्वी अंगद ने पर्वत की शिला को उसके ऊपर फैंका। उस शिला के प्रहार से पीड़ित हुआ कम्पन मर कर भूमि पर गिर पड़ा। तब कम्पन को युद्ध में मारा हुआ देख कर शोणिताक्ष ने निर्भयता के साथ अपने रथ के द्वारा अंगद पर आक्रमण किया।

सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः।
शरीरदारणैस्तीक्ष्णैः कालाग्निसमविग्रहैः।। ५।।
अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान्।
धनुरुग्रं रथं बाणान् ममर्द तरसा बली।। ६।।
शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समाददे।
उत्पपात तदा क्रुद्धो वेगवानविचारयन्।। ७।।
तं क्षिप्रतरमाप्लुत्यपरामृश्याङ्गदो बली।
करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च।। ८।।

उसने अपने कालाग्नि के समान आकार वाले, शरीर को नष्ट करने वाले, तीखे और पैने बाणों से शीघ्रता के साथ अंगद को बींध दिया। बींधे हुए शरीर वाले, बलवान और प्रतापी बालिपुत्र अंगद ने उसके उग्र धनुष बाणों और रथ को वेग से तोड़ दिया। तब शोणिताक्ष बिना कुछ विचार किये ढाल और तलवार लेकर रथ से जल्दी ही कूद पड़ा। उस समय वह क्रोध में भरा हुआ था, पर बलवान अंगद ने उससे भी अधिक शीघ्रता के साथ कूद कर उसे पकड़ लिया और उसकी तलवार तथा ढाल उसके हाथ से छीन ली और जोर से गर्जना की।

प्रजङ्घसहितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो बली।
रथेनाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम्।। ९।।
आयसीं तु गदां गृह्य स वीरः कनकाङ्गदः।
शोणिताक्षः समाश्वस्य तमेवानुपपात ह।। १०।।
अङ्गदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च।
तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परदिदृक्षया।। ११।।

तभी वीर और बलवान यूपाक्ष ने प्रजंघ के साथ क्रोध में भर कर महाबली अंगद के ऊपर रथ के द्वारा आक्रमण किया। सोने का बाजूबन्द बाँधे हुए वीर शोणिताक्ष भी

तब अपने को संभाल कर और लोहे की गदा को उठा कर अंगद की तरफ दौड़ा। तब मैन्द और द्विविद भी जो अपने अनुकूल शत्रु की तलाश में थे, अंगद की रक्षा करते हुए उनके समीप आकर खड़े हो गये।

त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुंगवैः।
संसक्तानां महद् युद्धमभवद् रोमहर्षणम्।। १२।।
ते तु वृक्षान् समादाय सम्प्रचिक्षिपुराहवे।
खड्गेन प्रतिचिक्षेप तान् प्रजङ्घो महाबलः।। १३।।
रथानश्वान् द्रुमाञ्छैलान् प्रतिचिक्षिपुराहवे।
शरौघैः प्रतिचिच्छेद तान् यूपाक्षो महाबलः।। १४।।
सृष्टान् द्विविदमैन्दाभ्यां द्रुमानुत्पाट्य वीर्यवान्।
बभञ्ज गदया मध्ये शोणिताक्षः प्रतापवान्।। १५।।

तब उन तीनों वानरेन्द्रों का तीनों राक्षस श्रेष्ठों के साथ, जो आपस में उलझे हुए थे, रोमांचक युद्ध हुआ। वानरों ने रणभूमि में वृक्षों को उठा कर उन पर फैंका पर महाबली प्रजंघ ने उनको अपनी तलवार से व्यर्थ कर दिया। इसके बाद वानरों ने रथों, घोड़ों, वृक्षों और शिलाओं को फैंका पर महाबली यूपाक्ष ने अपने बाण समूह से उनको छिन्न भिन्न कर दिया। मैन्द और द्विविद ने जिन वृक्षों को उखाड़ कर फैंका था प्रतापी और तेजस्वी शोणिताक्ष ने भी उन्हें अपनी गदा से बीच में ही नष्ट कर दिया।

उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मविदारणम्।
प्रजङ्घो वालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः।। १६।।
तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः।
आजघनाश्वकर्णेन द्रुमेणातिबलस्तदा।। १७।।
बाहुं चास्य सनिस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना।
वालिपुत्रस्य घातेन स पपात क्षितावसिः।। १८।।
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गं मुसलसंनिभम्।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः।। १९।।

फिर प्रजंघ ने शत्रुओं के मर्म को विदीर्ण करने वाली एक बड़ी तलवार को उठा कर बालि पुत्र पर वेग से आक्रमण किया। तब उसे समीप आया देख कर अतिशक्ति शाली महाबली उस वानरेन्द्र ने अश्वकर्ण वृक्ष के द्वारा उस पर प्रहार किया। साथ ही उसने उसकी तलवार वाली बाँह पर घूँसे से प्रहार किया। बालि पुत्र के उस प्रहार से वह तलवार भूमि पर गिर पड़ी। उस मूसल के समान तलवार को भूमि पर पड़ा देख कर महाबली प्रजंघ ने अपने वज्र के समान घूँसे को घुमाना आरम्भ किया।

स ललाटे महावीर्यमङ्गदं वानरर्षभम्।
आजघान महातेजाः स मुहूर्तं चचाल ह।। २०।।
स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी वालिपुत्रः प्रतापवान्।
प्रजङ्घस्य शिरः कायात् पातयामास मुष्टिना।। २१।।
स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे।
अवरुह्य रथात् क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे।। २२।।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य यूपाक्षं द्विविदस्त्वरन्।
आजघानोरसि क्रुद्धो जग्रह च बलाद् बली।। २३।।

उस महा तेजस्वी राक्षस ने वानरश्रेष्ठ अंगद के सिर में घूँसे का प्रहार किया, जिससे महा तेजस्वी अंगद को एक मुहूर्त तक चक्कर आता रहा। पुनः प्रतापी और तेजस्वी बालिपुत्र ने होश में आकर अपने घूँसे के प्रहार से प्रजंघ के सिर को धड़ से अलग कर दिया। अपने चाचा को मृत देख कर यूपाक्ष की आँखों में आँसू आ गये। उसके बाण समाप्त हो गये थे, इसलिये उसने तुरन्त रथ से उतर कर तलवार हाथ में ले ली। उस यूपाक्ष को आक्रमण करता हुआ देख कर बलवान द्विविद ने शीघ्रता से क्रोध सहित उसकी छाती में प्रहार किया और उसे बलपूर्वक पकड़ लिया।

गृहीतं भ्रातरं दृष्ट्वा शोणिताक्षो महाबलः।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदं ततः।। २४।।
स ततोऽभिहतस्तेन चचाल च महाबलः।
उद्यतां च पुनस्तस्य जहार द्विविदो गदाम्।। २५।।
एतस्मिन्नन्तरे मैन्दो द्विविदाभ्याशमागमत्।
यूपाक्षं ताडयामास तलेनोरसि वीर्यवान्।। २६।।
द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे।
निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान्।। २७।।

अपने भाई को द्विविद के द्वारा पकड़ा हुआ देख कर महातेजस्वी, बलवान शोणिताक्ष ने तब द्विविद की छाती में चोट मारी। वह महाबली द्विविद शोणिताक्ष की मार खाकर विचलित हो गये। पर जब उसने पुनः प्रहार करने के लिये गदा को उठाया, तब द्विविद ने उसकी गदा छीन ली। इसी बीच में मैन्द ने यूपाक्ष की छाती में एक थप्पड़ मारा और वे द्विविद के पास आ गये। द्विविद ने शोणिताक्ष का मुख बघ नरवे से नोच डाला और उस तेजस्वी ने अपने पराक्रम से उसे भूमि पर पटक कर रगड़ दिया।

यूपाक्षमभिसंक्रुद्धो मैन्दो वानरपुंगवः।
पीडयामास बाहुभ्यां पपात स हतः क्षितौ।। २८।।
हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तथा।

जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णात्मजो यतः।। २९।।
आपतन्तीं च वेगेन कुम्भस्तां सान्त्वयच्चमूम्।
अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः प्लवंगमैः।। ३०।।
निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं तदा।
कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम्।। ३१।।

वानरश्रेष्ठ मैन्द ने क्रोध कर यूपाक्ष को अपनी भुजाओं में इतने जोर से दबाया कि वह मर कर भूमि पर गिर पड़ा। इस प्रकार अपने प्रमुख वीरों के मारे जाने पर दुखी राक्षस सेना भाग कर वहाँ चली गयी, जहाँ कुम्भकर्ण का पुत्र विद्यमान था। तेजी से भाग कर आती हुई उस सेना को तब कुम्भ ने सान्त्वना दी और उधर सफलता प्राप्त महा तेजस्वी वानरों के द्वारा जय घोष किया जाने लगा। तब राक्षसों की सेना में महान वीरों को गिराया हुआ देख कर तेजस्वी कुम्भ ने युद्ध में अत्यन्त दुष्कर कार्य करने आरम्भ कर दिये।

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः।
मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान् देहविदारणान्।। ३२।।
आकर्णकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा।
तेन हाटकपुङ्खेन पत्रिणा पत्रवाससा।। ३३।।
सहसाभिहतस्तेन विप्रमुक्तपदः स्फुरन्।
निपपात त्रिकूटाभो विह्वलन् प्लवगोत्तमः।। ३४।।
मैन्दस्तु भ्रातरं तत्र भग्नं दृष्ट्वा महाहवे।
अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य विपुलां शिलाम्।। ३५।।

धनुर्धारियों में श्रेष्ठ उसने अपने धनुष को सावधान हो कर पकड़ा और शरीर को विदीर्ण करने वाले सर्पों के समान भयंकर बाणों को छोड़ना आरम्भ कर दिया। उसने सुनहरे पत्र युक्त बाण के द्वारा जो कि कान तक खींचे गये धनुष द्वारा छोड़ा गया था, द्विविद को घायल कर दिया। उस बाण से घायल हो कर त्रिकूट पर्वत के समान विशालकाय वह वानरश्रेष्ठ व्याकुल हो कर छटपटाते हुए दोनों पैर फैला कर भूमि पर गिर पड़े। तब मैन्द उस महायुद्ध में अपने भाई को गिरा हुआ देख कर, एक बड़ी शिला को लेकर तेजी से उस तरफ दौड़े।

तां शिलां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महाबलः।
बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः पञ्चभिः शरैः।। ३६।।
संधाय चान्यं सुमुखं शरमाशीविषोपमम्।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम्।। ३७।।
स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः।
मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्च्छितः।। ३८।।
अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा मथितौ तु महाबलौ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यतकार्मुकम्।। ३९।।

उस महाबली वीर ने उस शिला को राक्षस पर फैंका, पर कुम्भ ने पाँच जगमगाते हुए बाण मार कर उस शिला को छिन्न भिन्न कर दिया। फिर दूसरे सुन्दर मुख वाले सर्प के समान बाण को धनुष पर रख कर उससे उस महा तेजस्वी ने द्विविद के बड़े भाई मैन्द की छाती में प्रहार किया। वह वानर यूथपति मैन्द उस प्रहार ने अपने मर्मस्थल में चोट खाकर, भूमि पर मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा। तब अपने उन दोनों महाबली मामाओं को घायल हुआ देख कर अंगद धनुष उठा कर तैयार कुम्भ की तरफ तेजी से दौड़ा।

तमापतन्तं विव्याध कुम्भः पञ्चभिरायसैः।
त्रिभिश्चान्यैः शितैर्बाणैर्मातंगमिव तोमरैः।। ४०।।
सोऽङ्गदं बहुभिर्बाणैः कुम्भो विव्याध वीर्यवान्।
अकुण्ठधारैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कनकभूषणैः।। ४१।।
अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रो न कम्पते।
शिलापादपवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि ववर्ष ह।। ४२।।
स प्रचिच्छेद तान् सर्वान् बिभेद च पुनः शिलाः।
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमान् वालिपुत्रसमीरितान्।। ४३।।

उस आक्रमण करते हुए अंगद को तेजस्वी कुम्भ ने पाँच लोहे के बाणों से बींध दिया और फिर तीन अन्य तीक्ष्ण बाणों से उसे बींधा। इस प्रकार जैसे हाथी को अंकुश मारे जाते हैं, वैसे ही कुम्भ ने अंगद को अनेक बाणों से बिद्ध कर दिया। जिनकी धारें कुण्ठित नहीं थीं, ऐसे तीखे और तीक्ष्ण सुवर्ण भूषित बाणों से अंगों के बिंध जाने पर भी बालिपुत्र अंगद कम्पित नहीं हुआ। उसने उनके सिर पर शिलाओं और वृक्षों की वर्षा कर दी, पर श्रीमान कुम्भकर्ण के पुत्र ने बालिपुत्र के द्वारा फैंकी हुई उस सारी वर्षा को बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया।

आपतन्तं च सम्प्रेक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम्।
भ्रुवौ विव्याध बाणाभ्यामुल्काभ्यामिव कुञ्जरम्।। ४४।।
तस्य सुस्राव रुधिरं पिहिते चास्य लोचने।
अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोक्षिते।। ४५।।
सालमासन्नमेकेन परिजग्राह पाणिना।
सम्पीड्योरसि सस्कन्धं करेणाभिनिवेश्य च।। ४६।।
किंचिदभ्यवनम्यैनमुन्ममाथ महारणे।
स चिच्छेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनैः।। ४७।।
अङ्गदो विव्यथेऽभीक्ष्णं स पपात मुमोह च।

फिर वानर यूथपति अंगद को अपनी तरफ आते देख कर कुम्भ ने दो बाणों से उसकी दोनों भौंहों पर ऐसे प्रहार किया, जैसे दो उल्काओं से हाथी पर प्रहार किया गया हो। अंगद की भौहों से रक्त बहने लगा और उसकी आँखें बन्द हो गयीं। अंगद ने तब रक्त से सनी अपनी आँखों को हाथ से बन्द कर एक हाथ से ही समीप के एक साल वृक्ष को पकड़ लिया। उसने उसे छाती से दबा कर और तने सहित कुछ झुका कर उस महायुद्ध में उखाड़ लिया। किन्तु कुम्भ ने विदीर्ण करने वाले सात तीखे बाणों से उस साल को काट दिया। इससे अंगद को बहुत दुख हुआ और वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा।

अङ्गदं पतितं दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरे।।४८।।
दुरासदं हरिश्रेष्ठा राघवाय न्यवेदयन्।
रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा वालिपुत्रं महाहवे।।४९।।
व्यादिदेश हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्ततः।
ते तु वानरशार्दूलाः श्रुत्वा रामस्य शासनम्।।५०।।
अभिपेतुः सुसंक्रुद्धाः कुम्भमुद्यतकार्मुकम्।
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः।।५१।।
कुम्भकर्णात्मजं वीरं क्रुद्धाः समभिदुद्रुवुः।

दुर्धर्ष अंगद को समुद्र में डूबते हुए के समान भूमि पर गिरा हुआ देख कर वानर श्रेष्ठों ने श्रीराम से यह जा कर कहा। राम ने तब बालिपुत्र को युद्ध में मूर्च्छित सुन कर जाम्बवान आदि श्रेष्ठ वानरों को जाने की आज्ञा दी। तब वे श्रेष्ठ वानर राम की आज्ञा सुन कर क्रोध में भर कर धनुष उठा कर तैयार खड़े कुम्भ की तरफ दौड़े। जाम्बवान, सुषेण और वेगदर्शी इन वानरों ने क्रोध में भर कर कुम्भकर्ण के वीर पुत्र पर आक्रमण किया।

समीक्ष्यापततस्तांस्तु वानरेन्द्रान् महाबलान्।।५२।।
आववार शरौघेण नगेनेव जलाशयम्।
तस्य बाणपथं प्राप्य न शेकुरपि वीक्षितुम्।।५३।।
वानरेन्द्रा महात्मानो वेलामिव महोदधिः।
तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्शरवृष्टिभिरर्दितान्।।५४।।
अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णात्मजं रणे।
शैलसानुचरं नागं वेगवानिव केसरी।।५५।।
उत्पाट्य च महावृक्षानश्वकर्णादिकान् बहून्।
अन्यांश्च विविधान् वृक्षांश्चिक्षेप स महाकपिः।।५६।।

उन महाबली वानरेन्द्रों को आक्रमण करते हुए देख कर कुम्भ ने अपनी बाण वर्षा से उन्हें उसी प्रकार रोक दिया जैसे रास्ते में खड़ा हुआ पहाड़ आते हुए जल के प्रवाह को रोक देता है। उसके बाणों के रास्ते में आ कर वे महात्मा वानरेन्द्र सामने की तरफ देख भी न सके, जैसे समुद्र अपने किनारे का उल्लंघन कर आगे नहीं बढ़ पाता है। तब उन वानरों को बाण वर्षा से पीड़ित देख कर वानरेश सुग्रीव ने उस युद्ध में कुम्भकर्ण के पुत्र पर उसी प्रकार आक्रमण किया जैसे पर्वत शिखर पर विचरण करने वाले हाथी पर वेगवान सिंह आक्रमण करता है। उस महान वानर ने अश्वकर्ण आदि बहुत से बड़े वृक्षों को तथा दूसरे अनेक प्रकार के वृक्षों को भी उखाड़ कर उस पर फैंका।

कुम्भकर्णात्मजः श्रीमांश्चिच्छेद स्वशरैः शितैः।
द्रुमवर्षं तु तद् भिन्नं दृष्ट्वा कुम्भेन वीर्यवान्।।५७।।
वानराधिपतिः श्रीमान् महासत्त्वो न विव्यथे।
स विध्यमानः सहसा सहमानस्तु ताञ्छरान्।।५८।।
कुम्भस्य धनुराक्षिप्य बभञ्जेन्द्रधनुःप्रभम्।
ततः कुम्भस्तु सुग्रीवं बाहुभ्यां जगृहे तदा।।५९।।
गजाविवातीतमदौ निःश्वसन्तौ मुहुर्मुहुः।
अन्योन्यगात्रग्रथितौ घर्षन्तावितरेतरम्।।६०।।

किन्तु श्रीमान कुम्भकर्ण के पुत्र ने उन सबको अपने तीक्ष्ण बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया। कुम्भ के द्वारा उस वृक्ष वर्षा को नष्ट देख कर वे तेजस्वी, महा बलशाली श्रीमान वानराधिपति व्यथित नहीं हुए। उन्होंने उसके बाणों के द्वारा विद्ध होते हुए भी उसे सहन करते हुए उसके समीप जा कर अचानक उसके इन्द्रधनुष के समान धनुष को उससे छीन कर तोड़ दिया। तब कुम्भ ने सुग्रीव के दोनों हाथों को पकड़ लिया। उसके बाद मदोन्मत्त दो हाथियों के समान, बार-बार लम्बी साँसें लेते हुए वे एक दूसरे से गुँथ गये और एक दूसरे को रगड़ने लगे।

ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपात्य च।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।।६१।।
तस्य वर्म च पुस्फोट संजज्ञे चापि शोणितम्।
तस्य मुष्टिर्महावेगः प्रतिजघ्नेऽस्थिमण्डले।।६२।।
स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः।।६३।।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान्।
स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशपीडितः।।६४।।
निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः।

फिर कुम्भ ने उछल कर सुग्रीव को नीचे गिरा दिया और उसकी छाती में अपने वज्र के समान घूँसे से क्रोध में भर कर प्रहार किया। उससे सुग्रीव का कवच टूट

गया और छाती से खून बहने लगा। कुम्भ का महवेगशाली मुक्का उसकी हड्डियों में लगा था। इस प्रकार चोट खाने पर महा बली वानर श्रेष्ठ सुग्रीव ने भी अपने वज्र के समान कठोर घूँसे को बनाया और उस तेजस्वी ने उस घूँसे से कुम्भ की छाती पर प्रहार किया। सुग्रीव के उस घूँसे के प्रहार से कुम्भ अत्यन्त पीड़ित और व्याकुल हो कर बुझी हुई आग की तरह से निष्प्राण हो कर गिर पड़ा।

अट्ठावनवाँ सर्ग

हनुमान द्वारा निकुम्भ का वध।

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम्।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत।। १।।
ततः स्रग्दामसंनद्धं दत्तपञ्चाङ्गुलं शुभम्।
आददे परिघं धीरो महेन्द्रशिखरोपमम्।। २।।

निकुम्भ ने जब देखा कि मेरा भाई सुग्रीव के द्वारा मारा गया, तो वह उस वानरेन्द्र को क्रोध से भस्म सा करता हुआ घूरने लगा। तब उस धैर्यवान ने महेन्द्र पर्वत के शिखर के समान एक सुन्दर परिघ को लिया जिसमें पाँच-पाँच अंगुल की फूलों की लड़ियाँ जड़ी हुई थीं।

निननाद तमाविध्य निकुम्भो भीम विक्रमः।
हनुमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली।। ३।।
परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम्।
बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि।। ४।।

उस परिघ को घुमाता हुआ वह भीम विक्रम निकुम्भ जोर से गर्जना करने लगा। तब प्रमुख रूप से बलवान हनुमान उसके सामने अपनी छाती खोल कर खड़े हो गये। तब उस बलवान राक्षस ने जिसकी भुजाएँ परिघ के समान थीं, उस सूर्य के समान तेजस्वी परिघ को बलवान हनुमान की छाती में दे मारा।

स तु तेन प्रहारेण न चचाल महाकपिः।
परिघेण समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः।। ५।।
स तथाभिहतस्तेन हनूमान् प्लवगोत्तमः।
मुष्टिं संवर्तयामास बलेनातिमहाबलः।। ६।।
तमुद्यम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान्।
अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान् वायुविक्रमः।। ७।।
तत्र पुस्फोट वर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम्।
मुष्टिना तेन संजज्ञे मेघे विद्युदिवोत्थिता।। ८।।

उस परिघ की चोट खाकर भी उसके प्रहार से वह महान वानर हनूमान ऐसे ही विचलित नहीं हुए, जैसे भूचाल के आने पर पर्वत नहीं गिरता है। वानरश्रेष्ठ अति बलवान हनुमान ने तब उसकी चोट खाकर अपनी मुट्ठी को बलपूर्वक बाँधा। वायु के समान पराक्रम वाले वेगवान और महा तेजस्वी तथा वीर्यवान उन्होंने उस मुक्के को निकुम्भ की छाती पर जोर से मारा। उस घूँसे की चोट से उसका कवच टूट गया और छाती से रक्त बहता हुआ ऐसे प्रतीत होने लगा जैसे बादलों में बिजली चमक रही हो।

स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल च।
स्वस्थश्चापि निजग्राह हनूमन्तं महाबलम्।। ९।।
आजघनानिलसुतो वज्रकल्पेन मुष्टिना।
आत्मानं मोक्षयित्वाथ क्षितावभ्यवपद्यत।। १०।।
हनूमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः।
उत्पत्य चास्य वेगेन पपातोरसि वेगवान्।। ११।।
परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम्।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत्।। १२।।

उस घूँसे के प्रहार से निकुम्भ विचलित हो गया; पर थोड़ी देर में स्वस्थ हो कर उसने बलवान हनुमान को पकड़ लिया। किन्तु अपने को उससे छुड़ा कर उन वायु पुत्र हनुमान ने अपने वज्र के समान घूँसे का उस पर पुनः प्रहार किया और शीघ्र ही भूमि पर गिरा कर रगड़ दिया। उसके बाद वे तेजी से उछल कर निकुम्भ की छाती पर चढ़ गये और दोनों हाथों से उसकी गर्दन को मरोड़ कर उन्होंने उसके सिर को उखाड़ लिया। उस समय वह बड़े जोर से आर्तनाद कर रहा था।

उनसठवाँ सर्ग

रावण की आज्ञा से मकराक्ष का युद्ध के लिये प्रस्थान और श्रीराम द्वारा उसका वध।

निकुम्भं निहतं श्रुत्वा कुम्भं च विनिपातितम्।
रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा।। १।।
नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्च्छितः।
खरपुत्रं विशालाक्षं मकाराक्षमचोदयत्।। २।।
गच्छ पुत्र मयाऽऽज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ।। ३।।

निकुम्भ और कुम्भ को भी मारा हुआ सुन कर रावण अत्यन्त क्रोध में भयंकर अग्नि के समान जलने लगा। वह राक्षस तब क्रोध और शोक दोनों से व्याकुल होकर खर के पुत्र, विशाल आँखों वाले, मकराक्ष से बोला कि हे पुत्र! तुम मेरी आज्ञा से सेना के साथ जाओ और वानरों के साथ उन राम और लक्ष्मण को मार डालो।

रावणस्य वचः श्रुत्वा शूरमानी खरात्मजः।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मकराक्षो निशाचरम्।। ४।।
सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद् रावणस्याज्ञया बली।। ५।।
समीपस्थं बलाध्यक्षं खरपुत्रोऽब्रवीद् वचः।
रथमानीयतां तूर्णं सैन्यं त्वानीयतां त्वारात्।। ६।।

रावण की बात सुन कर वह खर का पुत्र मकराक्ष, जो अपने को शूर वीर मानता था, प्रसन्न हो कर बोला कि बहुत अच्छा और फिर उस राक्षस रावण को अभिवादन तथा प्रदक्षिणा कर वह बलवान रावण की आज्ञा से अपने उज्ज्वल भवन से बाहर निकला। फिर वह खर पुत्र अपने समीप विद्यमान सेनाध्यक्ष से बोला कि शीघ्रता से मेरे रथ को मँगवाओ और सेना को भी जल्दी तैयार करो।

अथ तान् राक्षसान् सर्वान् मकराक्षोऽब्रवीदिम्।
यूयं सर्वे प्रयुध्यध्वं पुरस्तान्मम राक्षसाः।। ७।।
अहं राक्षसराजेन रावणेन महात्मना।
आज्ञप्तः समरे हन्तुं तावुभौ रामलक्ष्मणौ।। ८।।
अद्य रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः।
शाखामृगं च सुग्रीवं वानरांश्च शरोत्तमैः।। ९।।
अद्य शूलनिपातैश्च वानराणां महाचमूम्।
प्रदहिष्यामि सम्प्राप्तां शुष्केन्धनमिवानलः।। १०।।

फिर मकराक्ष ने उन राक्षसों से कहा कि हे राक्षसों! तुम मेरे आगे रह कर युद्ध करो। मुझे महात्मा राक्षस राज रावण ने उन दोनों राम और लक्ष्मण को युद्ध में मारने की आज्ञा दी है। हे राक्षसों! मैं अपने उत्तम बाणों से आज राम और लक्ष्मण का और वानर राज सुग्रीव का तथा सारे वानरों का वध कर दूँगा। आज मैं अपने शूलों के प्रहार से वानरों की विशाल सेना को, जो मेरे सामने आयेगी उसी प्रकार भस्म कर दूँगा जैसे अग्नि सूखे ईंधन को नष्ट कर देती है।

मकराक्षस्य तच्छ्रुत्वा वचनं ते निशाचराः।
सर्वे नानायुधोपेता बलवन्तः समाहिताः।। ११।।
शङ्खभेरीसहस्राणामाहतानां समन्ततः।
क्ष्वेलितास्फोटितानां च तत्र शब्दो महानभूत्।। १२।।

मकराक्ष की वह बात सुन कर वे बलवान राक्षस अनेक प्रकार के आयुधों से युक्त हो कर तैयार हो गये। उस समय सब तरफ हजारों शंख और नगाड़े बजाये जा रहे थे और योद्धा लोग गर्जना कर रहे तथा ताल ठोक रहे थे। इस प्रकार बहुत महान शोर हो रहा था।

घनगजमहिषाङ्गतुल्यवर्णाः
समरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः।
अहमहमिति युद्धकौशलास्ते
रजनिचराः परिबभ्रमुर्मुहुस्ते।। १३।।

उस समय बादल, हाथी, और भैंसे के समान रंग वाले वे राक्षस लोग जो युद्ध के मुहानों पर अनेक बार गदाओं और तलवारों के घाव खा चुके थे, मैं पहले युद्ध कौशल दिखाऊँगा, मैं पहले, इस प्रकार करते हुए सब तरफ घूम रहे थे।

निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरपुंगवाः।
आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः।। १४।।
ततः प्रवृत्तं सुमहत् तद् युद्धं लोमहर्षणम्।
वृक्षशूलनिपातैश्च गदापरिघपातनैः।। १५।।
अन्योन्यं मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचराः।
शक्तिखड्गगदाकुन्तैस्तोमरैश्च निशाचराः।। १६।।
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च बाणपातैः समन्ततः।
पाशमुद्गरदण्डैश्च निर्घातैश्चापरैस्तथा।। १७।।
कदनं कपिसिंहानां चक्रुस्ते रजनीचराः।

मकराक्ष को युद्ध के लिये बाहर आया देख कर वे वानरश्रेष्ठ युद्ध की इच्छा से तुरन्त उछल कर तैयार हो

गये। उसके बाद उन दोनों सेनाओं में वह लोमहर्षक महान युद्ध होने लगा। उस समय वानर और राक्षस दोनों वृक्षों, शूलों, गदा और परिघ के आक्रमणों से एक दूसरे को मथ रहे थे। राक्षस लोग शक्ति, खड्ग, गदा, भाले, तोमर, पट्टिश, भिन्दीपाल, बाण, पाश, मुद्गर, दण्ड, तथा दूसरे आयुधों के प्रहार से सब तरफ से वानर सिंहों का विनाश कर रहे थे।

बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः।। १८।।
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः।
तान् दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे द्रवमाणान् वनौकसः।। १९।।
नेदुस्ते सिंहवद् दृप्ता राक्षसा जितकाशिनः।
विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समन्ततः।। २०।।
रामस्तान् वारयामास शरवर्षेण राक्षसान्।
वारितान् राक्षसान् दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः।। २१।।
कोपानलसमाविष्टो वचनं चेदमब्रवीत्।

तब खर के पुत्र द्वारा बाण समूहों से भी पीड़ित हो कर वानर लोग भयभीत हो कर इधर-उधर भागने लगे। वानरों को भागता हुआ देख कर विजय की इच्छा वाले राक्षस अभिमान में भर कर जोर-जोर से गर्जना करने लगे। वानरों को सब तरफ भागता हुआ देख कर राम ने अपने बाणों की वर्षा से राक्षसों को आगे बढ़ने से रोका। राक्षसों को तब रोका हुआ देख कर राक्षस मकराक्ष क्रोधाग्नि से युक्त हो कर इस प्रकार बोला।

तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं भविष्यति।। २२।।
त्याजयिष्यामि ते प्राणान् धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः।
यत् तदा दण्डकारण्ये पितरं हतवान् मम।। २३।।
तदग्रतः स्वकर्मस्थं स्मृत्वा रोषोऽभिवर्धते।
दह्यन्ते भृशमङ्गानि दुरात्मन् मम राघव।। २४।।
यन्मयासि न दृष्टस्त्वं तस्मिन् काले महावने।
दिष्ट्यासि दर्शनं राम मम त्वं प्राप्तवानिह।। २५।।
काङ्क्षितोऽसि क्षुधार्तस्य सिंहस्येवेतरो मृगः।

हे राम! ठहरो। तुम्हारा मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध होगा। मैं अपने धनुष से छूटे तीखे बाणों से तुम्हारे प्राणों का त्याग करवा दूँगा। तुमने दण्डकारण्य में तब मेरे पिता को मारा था, तब से तुम अपने राक्षसों के वध के काम में लगे हुए हो और तुम्हें याद करके मेरा क्रोध बढ़ता जा रहा है। तुम जो उस समय उस महान वन में मुझे दिखाई नहीं दिये, इससे हे दुष्ट राम! मेरे अंग क्रोध से जलते रहते थे। अब सौभाग्य से तुम मेरी निगाहों के सामने आ गये हो। जैसे भूखा शेर दूसरे प्राणियों को प्राप्त करने की इच्छा करता है वैसे ही मैं भी तुम्हें पाना चाहता हूँ।

बहुनात्र किमुक्तेन शृणु राम वचो मम।। २६।।
पश्यन्तु सकला लोकास्त्वां मां चैव रणाजिरे।
अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा रणाजिरे।। २७।।
अभ्यस्तं येन वा राम वर्ततां तेन वा मृधम्।
मकराक्षवचः श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः।। २८।।
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम्।
कत्थसे किं वृथा रक्षो बहून्यसदृशानि ते।। २९।।
न रणे शक्यते जेतुं विना युद्धेन वाग्बलात्।

हे राम! अब यहाँ ज्यादा कहने से क्या लाभ। अब सारे लोग तुम्हारा और मेरा युद्ध देखें। हे राम! तुम्हें अस्त्रों के द्वारा, गदा के द्वारा या हाथों के द्वारा, जिसके द्वारा तुम्हें युद्ध करने का अभ्यास हो, उसी के द्वारा तुम्हारा मेरा युद्ध होगा। मकराक्ष की बातें सुन कर दशरथ के पुत्र राम ने हँस कर उस बढ़चढ़ कर बात बनाने वाले से कहा कि हे राक्षस! क्यों बेकार की डींग मारते हो। तुम ऐसी बातें कह रहे हो, जो तुम कर ही नहीं सकते। बिना युद्ध किये केवल बातें बनाने से युद्ध नहीं जीता जा सकता।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः।। ३०।।
त्रिशिरा दूषणश्चापि दण्डके निहतो मया।
स्वाशितश्चापि मांसेन गृध्रगोमायुवायसाः।। ३१।।
भविष्यन्त्यद्य वै पाप तीक्ष्णतुण्डनखाङ्कुशाः।
राघवेणैवमुक्तस्तु मकराक्षो महाबलः।। ३२।।
बाणौघानमुचत् तस्मै राघवाय रणाजिरे।
ताञ्छराञ्छरवर्षेण रामश्चिच्छेद नैकधा।। ३३।।

हे पापी! चौदह हजार राक्षस, तेरे पिता, त्रिशिरा और दूषण को भी जो मैंने मारा था और उनके माँस से गिद्ध, गीदड़ और कौवों को जो अच्छी तरह से तृप्त किया था, आज वे तीखी चोंच और अंकुश के समान पंजों वाले प्राणी तेरे मांस से भी तृप्त हो जायेंगे। राम के ऐसा कहने पर महाबली मकराक्ष ने उस रणक्षेत्र में बाणों के समूह को छोड़ना आरम्भ कर दिया। पर उन बाणों को राम ने अपनी बाण वर्षा से अनेक बार छिन्न-भिन्न कर दिया।

तद् युद्धमभवत् तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा।
खरराक्षसपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च।। ३४।।
जीमूतयोरिवाकाशे शब्दो ज्यातलयोरिव।
धनुर्मुक्तः स्वनोऽन्योन्यं श्रूयते च रणाजिरे।। ३५।।

विद्धमन्योन्यगात्रेषु द्विगुणं वर्धते बलम्।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं कुरुतां तौ रणाजिरे।। ३६।।
राममुक्तांस्तु बाणौघान् राक्षसस्त्वच्छिनद् रणे।
रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नेकधा प्राच्छिनच्छरैः।। ३७।।

इस प्रकार वे दोनों खर का पुत्र और दशरथ के पुत्र एक दूसरे के समीप आकर परस्पर बल पूर्वक युद्ध करने लगे। उन दोनों की हथेली और प्रत्यंचा की रगड़ के कारण धनुष से जो आवाज निकल रही थी, वह आकाश में बादलों की गर्जना के समान प्रतीत हो रही थी। यद्यपि दोनों के अंग बाणों से बिंध गये थे। पर उनका बल दुगुना बढ़ता जा रहा था। युद्ध के मैदान में दोनों एक दूसरे पर अस्त्रों से प्रहार और दूसरे के अस्त्रों का प्रतिकार कर रहे थे। राम के छोड़े हुए बाण समूहों को उस राक्षस ने छिन्न कर दिया था और राक्षस के छोड़े हुए बाणों को राम ने अपने बाणों से अनेक बार काट दिया था।

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद संयुगे।
अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः।। ३८।।
भित्त्वा रथं शरै रामो हत्वा अश्वानपातयत्।
विरथो वसुधास्थः स मकराक्षो निशाचरः।। ३९।।
तत्तिष्ठद् वसुधां रक्षः शूलं जग्राह पाणिना।
त्रासनं सर्वभूतानां युगान्ताग्निसमप्रभम्।। ४०।।
विभ्राम्य च महच्छूलं प्रज्वलन्तं निशाचरः।
स क्रोधात् प्राहिणोत् तस्मै राघवाय महाहवे।। ४१।।

तब उस युद्ध में महाबाहु राम ने क्रुद्ध हो कर उसके धनुष को काट दिया और आठ नाराचों से उसके सारथी को भी मार दिया। राम ने उसके रथ को भी तोड़ दिया और घोड़ों को भी मार दिया। मकराक्ष राक्षस रथ हीन हो कर भूमि पर खड़ा हो गया। तब भूमि पर खड़े हुए उस राक्षस ने प्रलय करने वाली अग्नि के समान जगमगाता हुआ, सारे प्राणियों को भयभीत करने वाला शूल हाथ में लिया। उस चमकदार महान शूल को क्रोध पूर्वक घुमा कर निशाचर ने महा युद्ध में श्रीराम के ऊपर फैंका।

तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रकराच्च्युतम्।
बाणैश्चतुर्भिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः।। ४२।।
तं दृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः।
मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।। ४३।।
स तं दृष्ट्वा पतन्तं तु प्रहस्य रघुनन्दनः।
पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासने।। ४४।।
तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे।
संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च।। ४५।।

खर के पुत्र के हाथ से छोड़े हुए उस आते हुए शूल को राम ने चार बाणों से आकाश में ही काट दिया। उस शूल को कटा हुआ देख कर मकराक्ष राक्षस ने घूँसा ताना और राम से बोला कि ठहर जा, ठहर जा। उसे आक्रमण के लिये आते हुए देख कर रघुनन्दन श्रीराम ने हँस कर धनुष पर आग्नेयास्त्र का संधान किया। ककुत्स्थ वंशी राम के द्वारा उस अस्त्र से मारे जाने पर उस राक्षस का युद्ध में हृदय फट गया और वह गिर कर मर गया।

साठवाँ सर्ग

रावण की आज्ञा से इन्द्रजित का घोर युद्ध। उसके वध के विषय में श्रीराम और लक्ष्मण की बातचीत।

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिंजयः।
रोषेण महताविष्टो दन्तान् कटकटाय्य च।। १।।
कुपितश्च तदा तत्र किं कार्यमिति चिन्तयन्।
आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम्।। २।।
जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः।। ३।।
त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे।
किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे।। ४।।

मकराक्ष को मारा हुआ सुन कर युद्ध विजयी रावण महान क्रोध में भर कर दाँत कटकटाने लगा और क्रोध में भरे हुए उसने क्या करना चाहिये, यह सोचते हुए अपने पुत्र इन्द्रजित को युद्ध के लिये आदेश दिया। उसने कहा कि हे वीर! तुम उन महा तेजस्वी राम और लक्ष्मण को प्रकट रह कर या अदृश्य हो कर जैसे हो सके मार दो। क्योंकि तुम बल में अच्छी तरह से अधिक हो। तुम अद्वितीय पराक्रम वाले इन्द्र को भी युद्ध में हरा

देते हो, तो क्या उन दोनों मनुष्यों को युद्ध में सामने देख कर नहीं मार सकोगे?

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः।
यज्ञभूमौ स विधिवत् पावकं जुहुवेन्द्रजित्।। ५।।
आपपाताथ संक्रुद्धो दशग्रीवेण चोदितः।
तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्विन्द्ररिपू रणे।। ६।।
स ददर्श महावीर्यौ नागौ त्रिशिरसाविव।
सृजन्ताविषुजालानि वीरौ वानरमध्यगौ।। ७।।
स तु वैहायसरथो युधि तौ रामलक्ष्मणौ।
अचक्षुर्विषये तिष्ठन् विव्याध निशितैः शरैः।। ८।।

राक्षसराज के द्वारा ऐसा कहे जाने पर, पिता के वचनों को शिरोधार्य करके इन्द्रजित ने यज्ञभूमि में जाकर विधि पूर्वक अग्नि में हवन किया। इसके पश्चात् रावण के द्वारा प्रेरणा प्राप्त और क्रोध में भरा हुआ इन्द्रजित तीक्ष्ण नाराचों और धनुष के साथ युद्धभूमि में आया। उसने वहाँ महा तेजस्वी राम लक्ष्मण दोनों वीरों को जो तीन सिर वाले नागों के समान प्रतीत हो रहे थे और बाणों की वर्षा कर रहे थे, वानरों के बीच में खड़े हुए देखा। तब उसने अपने आकाश में विद्यमान विमान में बैठ कर, अदृश्य अवस्था में होकर, उस युद्ध में राम लक्ष्मण को अपने तीखे बाणों से बींध दिया।

तौ तस्य शरवेगेन परीतौ रामलक्ष्मणौ।
धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं प्रचक्रतुः।। ९।।
स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः।
दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान् नीहारतमसा वृताः।। १०।।
घनान्धकारे तिमिरे शिलावर्षमिवाद्भुतम्।
स ववर्ष महाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः।। ११।।
तौ हन्यमानौ नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतौ।
हेमपुङ्खान् नरव्याघ्रौ तिग्मान् मुमुचतुः शरान्।। १२।।

तब उन राम लक्ष्मण ने भी उसकी बाण वर्षा से व्याप्त हो कर अपने धनुषों पर दिव्यास्त्रों का संधान किया। उस तेजस्वी राक्षस ने धूएँ से आकाश को भर कर अँधेरा कर दिया और कुहरे के अंधकार से दिशाओं को छिपा दिया। उस गहरे अंधेरे में वह विशाल भुजाओं वाला इन्द्रजित शिलाओं की अद्भुत वर्षा के समान नाराच नाम के बाणों की वर्षा करने लगा। बाणों की उन नरश्रेष्ठों पर उसी प्रकार वर्षा हो रही थी, जैसे पर्वतों पर जल की वर्षा हो रही हो, पर वे उसी अवस्था में अपने तीखे बाणों को छोड़ने लगे।

अन्तरिक्षे समासाद्य रावणिं कङ्कपत्रिणः।
निकृत्य पतगा भूमौ पेतुस्ते शोणिताप्लुताः।। १३।।
अतिमात्रं शरौघेण दीप्यमानौ नरोत्तमौ।
तानिषून् पततो भल्लैरनेकैर्विचकर्ततुः।। १४।।
यतो हि ददृशाते तौ शरान् निपतिताञ्छितान्।
ततस्तु तौ दशरथी ससृजातेऽस्त्रमुत्तमम्।। १५।।
रावणिस्तु दिशः सर्वा रथेनातिरथोऽपतत्।
विव्याध तौ दाशरथी लघ्वस्त्रो निशितैः शरैः।। १६।।

उनके कंकपत्र वाले बाण आकाश में जाकर रावण पुत्र को घायल कर रक्त में सने हुए भूमि पर गिर पड़ते थे। वे दोनों नरश्रेष्ठ उस बाण वर्षा से अत्यधिक देदीप्यमान होते हुए उन गिरते हुए बाणों को अपने अनेक भल्ल नाम के बाणों से काट रहे थे। जिधर से वे उन तीखे बाणों को आते हुए देखते थे, उधर ही वे दशरथ पुत्र अपने उत्तम अस्त्रों को छोड़ रहे थे। वह अतिरथी रावण पुत्र अपने विमान में बैठा हुआ सारी दिशाओं में चक्कर लगा रहा था। उसने शीघ्रता से अस्त्रों का संचालन करते हुए उन दोनों दशरथ पुत्रों को तीखे बाणों से बींध दिया।

तेनातिविद्धौ तौ वीरौ रुक्मपुङ्खैः सुसंहतैः।
बभूवतुर्दाशरथी पुष्पिताविव किंशुकौ।। १७।।
तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः।
बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले।। १८।।
लक्ष्मणस्तु ततः क्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत्।
ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम्।। १९।।

वे दोनों दशरथ पुत्र उसके सुनहले पंख वाले अच्छी तरह से संधान किये बाणों से अत्यन्त घायल हो कर फूलों वाले पलाश के वृक्षों के समान लग रहे थे। उसके द्वारा बींधे गये सैकड़ों वानर भी घायल और मृत हो कर भूमि पर गिर पड़े। तब लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर भाई से यह कहा कि मैं सारे राक्षसों का वध करने के लिये ब्रह्मशिरा अस्त्र का प्रयोग करूँगा।

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि।। २०।।
तस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यामि महाभुज।
आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान्।। २१।।
तमेनं मायिनं क्षुद्रमन्तर्हितरथं बलात्।
राक्षसं निहनिष्यन्ति दृष्ट्वा वानरयूथपाः।। २२।।

तब राम ने उन शुभलक्षण लक्ष्मण से कहा कि तुम्हें एक व्यक्ति के लिये सारे राक्षसों का वध नहीं करना चाहिये। हे विशाल भुजाओं वाले! मैं अब इसके ही वध

के लिये यत्न करूँगा। हम सर्प के समान महा वेगवान अस्त्रों का प्रयोग करते हैं। इस मायावी दुष्ट राक्षस को जिसने अपने विमान को छिपा लिया है, यदि वानर यूथपति देख लें तो इसे वे बलपूर्वक मार डालेंगे।

यद्येष भूमिं विशते दिवं वा
रसातलं वापि नभस्तलं वा।
एवं विगूढोऽपि ममास्त्रदग्धः
पतिष्यते भूमितले गतासुः।। २३।।

अब यह चाहे भूमि में प्रविष्ट हो जाये या द्युलोक में चला जाये, या आकाश में रहे या रसातल में चला जाये, छिपा होने पर भी मेरे अस्त्र से दग्ध होकर प्राणहीन अवस्था में भूमि पर अवश्य गिरेगा।

इत्येवमुक्त्वा वचनं महार्थं
रघुप्रवीरः प्लवगर्षभैर्वृतः।
वधाय रौद्रस्य नृशंसकर्मण-
स्तदा महात्मा त्वरितं निरीक्षते।। २४।।

इस प्रकार महान अभिप्राय से युक्त वचन कह कर वानरश्रेष्ठों से घिरे हुए वे रघुश्रेष्ठ महात्मा राम उस क्रूर कर्मा भयानक राक्षस के वध के लिये शीघ्रता पूर्वक दृष्टिपात करने लगे।

इकसठवाँ सर्ग

इन्द्रजित के द्वारा मायामयी सीता का वध।

विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः।
स निवृत्याहवात् तस्मात् प्रविवेश पुरं ततः।। १।।
सोऽनुस्मृत्य वधं तेषां राक्षसानां तरस्विनाम्।
क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगामाथ रावणिः।। २।।
स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः।
इन्द्रजित् सुमहावीर्यः पौलस्त्यो देवकण्टकः।। ३।।

तब महात्मा श्रीराम चन्द्र जी के मनोभाव को जान कर इन्द्रजित युद्ध से निवृत्त हो गया और अपने नगर में चला गया। किन्तु वहाँ पहुँच कर उसे जब बलवान राक्षसों के वध की याद आयी तब उस शूरवीर की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं और वह पुनः युद्ध के लिये बाहर आया। राक्षसों से घिरा हुआ वह महा पराक्रमी पुलस्त्यवंशी देवताओं का शत्रु इन्द्रजित पश्चिमी द्वार से बाहर निकला।

इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा।
मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः।।४।।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ।
तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं सर्वे ते काननौकसः।।५।।
उत्पेतुरभिसंक्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः।
हनूमान् पुरतस्तेषां जगाम कपिकुञ्जरः।।६।।
प्रगृह्य सुमहच्छृङ्गं पर्वतस्य दुरासदम्।

उस समय इन्द्रजित ने माया से बनायी हुई सीता को (अर्थात् कपट के द्वारा दूसरी स्त्री को सीता का रूप देकर, उसे) रथ में बैठा लिया। वह दुष्ट बुद्धि सबकी बुद्धि को मोहित करने के लिये तथा उस सीता को मारने का निश्चय करके वानरों की सेना के सामने गया। उसे बाहर निकला हुआ देख कर सारे वानर युद्ध की इच्छा से क्रोध में भर कर शिलाओं को हाथ में लेकर उसके ऊपर टूट पड़े। वानरश्रेष्ठ हनुमान, हाथ में एक बड़ी दुर्धर्ष शिला को लेकर आगे चले।

स ददर्श हतानन्दां सीतामिन्द्रजितो रथे।। ७।।
एकवेणीधरां दीनामुपवासकृशाननाम्।
परिक्लिष्टैकवसनाममृजां राघवप्रियाम्।। ८।।
रजोमलाभ्यामालिप्तैः सर्वगात्रैर्वरस्त्रियम्।
तां निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीमध्यवस्य च।। ९।।
बभूवाचिरदृष्टा हि तेन सा जनकात्मजा।
किं समर्थितमस्येति चिन्तयन् स महाकपिः।। १०।।
सह तैर्वानरश्रेष्ठैरभ्यधावत रावणिम्।

उन्होंने इन्द्रहित के रथ पर सीता को बैठे हुए देखा। उनका आनन्द नष्ट हो गया था, उन्होंने एक वेणी धारण की हुई थी। वे दीनावस्था में थीं और उपवास करने से कमजोर हो गयीं थीं। उन्होंने एक मैला वस्त्र पहन रखा था। उनका शरीर धूल मिट्टी से सना हुआ था। उन्होंने उस शरीर को साफ सुथरा नहीं बनाया हुआ था, पर फिर भी राम की वे प्रिय रानी सारे अंगों से सुन्दर प्रतीत होती थीं। उन सीता जी को थोड़ी देर तक देख कर और विचार कर उन्होंने तय किया कि ये सीता ही हैं। उन्होंने थोड़े दिन पहले तो उन्हें देखा ही था। यह विचार करते हुए कि इस रावण पुत्र का क्या उद्देश्य है, उन महान वानर ने वानर श्रेष्ठों के साथ उस पर आक्रमण किया।

तद् वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः।। ११।।
कृत्वा विकोशं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतामकर्षयत्।
तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास राक्षसः।। १२।।
क्रोशन्तीं रामरामेति मायया योजितां रथे।
गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान् दैन्यमागतः।। १३।।
दुःखजं वारि नेत्राभ्यामुत्सृजन् मारुतात्मजः।
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं रामस्य महिषीं प्रियाम्।। १४।।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं क्रोधाद् रक्षोधिपात्मजम्।

उन वानर सेना को देख कर रावण पुत्र इन्द्रजित ने मूर्च्छित सा हो कर तलवार को म्यान से निकाल कर सीता के बाल पकड़ कर उसे घसीटा। उस स्त्री को, जो कपट से सीता का वेश धारण किये हुए थी और हा राम, हा राम चिल्ला रही थी, उस राक्षस ने सबके देखते हुए पीटा। उसके बाल पकड़े हुए देख कर वायु पुत्र हनुमान जी को बड़ा दुख हुआ और दुख के कारण उनकी आँखों से आँसू निकलने लगे। उस सर्वांग सुन्दरी राम की प्यारी रानी को इस अवस्था में देख कर वे राक्षसराज के पुत्र इन्द्रजित से कठोर वाणी में बोले कि–

दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः।। १५।।
ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः।
धिक् त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी।। १६।।
नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम।
अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण।। १७।।
च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली।
किं तवैषापराद्धा हि यदेनां हंसि निर्दय।। १८।।

अरे दुष्ट! तू ब्रह्मर्षियों के वंश में पैदा होकर राक्षस बन गया है। तूने अपने विनाश के लिये ही इसके बालों को पकड़ा है। तेरी इस दुष्ट बुद्धि को, तेरे इस पाप पूर्ण आचरण को धिक्कार है। अरे नृशंस, दुराचारी, अनार्य, नीच, पाप से युक्त पराक्रम वाले, निर्दय, अनार्यों जैसे इस कर्म को करते हुए तुझे घृणा नहीं होती। यह बेचारी सीता! अपने घर से, राज्य से और राम के पास से भी बिछुड़ गयी। इसने तेरा क्या अपराध किया है? जो अरे निर्दय तू इन्हें मार रहा है।

सीतां हत्वा तु न चिरं जीविष्यसि कथंचन।
वधार्हं कर्मणा तेन मम हस्तगतो ह्यसि।। १९।।
इति ब्रुवाणो हनुमान् सायुधैर्हरिभिर्वृतः।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति।। २०।।
आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम्।
रक्षसां भीमकोपानामनीकेन न्यवारयत्।। २१।।
स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम्।
हनूमन्तं हरिश्रेष्ठमिन्द्रजित् प्रत्युवाच ह।। २२।।

सीता को मार कर तू अपने उस वध के योग्य कार्य से अधिक देर तक जीवित नहीं रहेगा। तू अब मेरे हाथ में आ गया है। ऐसे कहते हुए, शस्त्रधारी वानरों से घिरे हुए हनुमान क्रोध में भर कर राक्षस राज पुत्र की तरफ दौड़े। तब इन्द्रजित ने आक्रमण करती हुई वानरों की उस महातेजस्वी सेना को भयानक क्रोध वाले राक्षसों की सेना के द्वारा रोका। हजारों बाणों से उस वानरों की सेना में हलचल मचा कर वानर श्रेष्ठ हनुमान जी से इन्द्रजित बोला कि–

सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः।
तां वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः।। २३३।।
इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर।
सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम्।। २४।।
न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।
पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत्।। २५।।
तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम्।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित् स्वयम्।। २६।।

सुग्रीव, तुम और राम जिसको लेने के लिये यहाँ लंका में आये हो, उस सीता को मैं आज तुम्हारे देखते ही मार दूँगा। इसे मार कर मैं हे वानर! राम को, लक्ष्मण को, और तुझे तथा सुग्रीव को एवं उस अनार्य विभीषण को मार डालूँगा। हे वानर! जो तू कहता है कि स्त्रियों को नहीं मारना चाहिये, उसका उत्तर यह है कि शत्रुओं को दुख देने वाला जो भी कार्य हो, वह अवश्य करना चाहिये, चाहे वह कुछ भी हो। ऐसे कहते हुए उस रोती हुई बनावटी सीता को इन्द्रजित ने तीक्ष्ण खड्ग से स्वयं मार दिया।

यज्ञोपवीतमार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनी।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना।। २७।।
तामिन्द्रजित् स्त्रियं हत्वा हनूमन्तमुवाच ह।
मया रामस्य पश्येमां प्रियां शस्त्रनिषूदिताम्।। २८।।
एषा विशस्ता वैदेही निष्फलो वः परिश्रमः।
हृष्टः स रथमास्थाय ननाद च महास्वनम्।। २९।।
वानराः शुश्रुवुः शब्दमदूरे प्रत्यवस्थिताः।
व्यादितास्यस्य नदतस्तद्दुर्गं संश्रितस्य तु।। ३०।।

यज्ञोपवीत धारण करने की जो जगह है, उसी जगह से उस स्थूल कटि प्रदेश वाली तपस्विनी सीता के दो टुकड़े कर दिये गये। उसी अवस्था में वह प्रिय दर्शना

भूमि पर गिर पड़ी। इस प्रकार उस स्त्री को मार कर इन्द्रजित हनुमान जी से बोला कि राम की प्यारी इस सीता को मेरे द्वारा शस्त्र से काटा हुआ देखो। यह वैदेही मार दी गयी और तुम्हारा परिश्रम बेकार हो गया। फिर वह प्रसन्न हो कर रथ में बैठा हुआ जोर-जोर से गर्जना करने लगा। समीप ही विद्यमान वानरों ने भी दुर्गम रथ में बैठे हुए और मुँह फैला कर गर्जना करने हुए उसकी गर्जनध्वनि को सुना।

बासठवाँ सर्ग

हनुमान जी के नेतृत्व में वानरों का निशाचरों से घोर युद्ध। हनुमान जी का श्रीराम के पास लौटना और इन्द्रजित् का निकुम्भिला मन्दिर में जाकर होम करना।

श्रुत्वा तु भीमनिर्ह्रादं शक्राशनिसमस्वनम्।
वीक्ष्यमाणा दिशः सर्वा दुद्रुवुर्वानरा भृशम्।। १।।
तानुवाच ततः सर्वान् हनूमान् मारुतात्मजः।
विषण्णवदनान् दीनांस्त्रस्तान् विद्रवतः पृथक्।। २।।
कस्माद् विषण्णवदना विद्रवध्वं प्लवंगमाः।
त्यक्तयुद्धसमुत्साहाः शूरत्वं क्व नु वो गतम्।। ३।।
पृष्ठतोऽनुव्रजध्वं मामग्रतो यान्तमाहवे।
शूरैरभिजनोपेतैरयुक्तं हि निवर्तितुम्।। ४।।

इन्द्र के वज्र के समान उस भयंकर गर्जना को सुन कर वानर लोग सब तरफ देखते हुए तेजी से भागने लगे। तब उन उदास मुख वाले, डरे हुए और दीन हो कर भागते हुए सारे वानरों से पवनपुत्र हनुमान जी कहने लगे कि हे वानरों! तुम युद्ध का उत्साह छोड़ कर और उदास मुख वाले हो कर क्यों भाग रहे हो? तुम्हारी वीरता कहाँ गयी? मैं युद्ध के लिये आगे चलता हूँ। तुम मेरे पीछे आओ। उत्तम कुल में जन्मे शूरवीरों के लिये युद्ध से लौटना ठीक नहीं है।

एवमुक्ताः सुसंक्रुद्धा वायुपुत्रेण धीमता।
शैलशृङ्गान् द्रुमांश्चैव जगृहुर्हृष्टमानसाः।। ५।।
अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान् वानरर्षभाः।
परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे।। ६।।
स तैर्वानरमुख्यैस्तु हनूमान् सर्वतो वृतः।
हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम्।। ७।।
स राक्षसानां कदनं चकार सुमहाकपिः।
वृतो वानरसैन्येन कालान्तकयमोपमः।। ८।।

धीमान वायुपुत्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वानरों ने प्रसन्न मन हो कर पर्वत की शिलाओं और वृक्षों को उठा लिया। वे वानर श्रेष्ठ हनुमान जी को घेर कर उनके पीछे उस महायुद्ध में चले और गर्जन करते हुए राक्षसों पर टूट पड़े। उन वानर प्रमुखों के द्वारा सब तरफ से घिरे हुए हनुमान जी शत्रु सेना को लपटों वाली अग्नि के समान दग्ध करने लगे। वानर सेना के साथ उस महान वानर ने प्रलयकाल में सबका अन्त कर देने वाली मृत्यु के समान राक्षसों का विनाश करना आरम्भ कर दिया।

स तु शोकेन चाविष्टः कोपेन महता कपिः।
हनूमान् रावणिरथे महतीं पातयच्छिलाम्।। ९।।
तामापतन्तीं दृष्ट्वैव रथः सारथिना तदा।
विधेयाश्वसमायुक्तः विदूरमपवाहितः।। १०।।
तमभ्यधावञ्शतशो नदन्तः काननौकसः।
ते द्रुमांश्च महाकाया गिरिशृङ्गाणि चोद्यताः।। ११।।
क्षिपन्तीन्द्रजितं संख्ये वानरा भीमविक्रमाः।
वृक्षशैलमहावर्षं विसृजन्तः प्लवंगमाः।। १२।।
शत्रूणां कदनं चक्रुर्नेदुश्च विविधैः स्वनैः।

वानर हनुमान ने महान शोक और क्रोध से भर कर इन्द्रजित के रथ पर एक बड़ी शिला फैंकी। उस आती हुई शिला को देख कर अनुशासित घोड़ों से युक्त सारथी रथ को दूर हटा कर ले गया। तब सैकड़ों विशालकाय वानर गर्जते हुए वृक्षों और पर्वत शिलाओं को लेकर इन्द्रजित की तरफ दौड़े। उस युद्ध में वानर इन्द्रजित पर वृक्षों और शिलाओं को फैंकने लगे। उन वृक्षों और शिलाओं की भारी वर्षा के द्वारा वानर लोग शत्रुओं का विनाश करने और अनेक प्रकार की ध्वनियों में गर्जने लगे।

वानरैस्तैर्महाभीमैर्घोररूपा निशाचराः।। १३।।
वीर्यादभिहता वृक्षैर्व्यचेष्टन्त रणक्षितौ।
स सैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्रजित्।। १४।।
प्रगृहीतायुधः क्रुधः परानभिमुखो ययौ।
स शरौघानवसृजन् स्वसैन्येनाभिसंवृतः।। १५।।
जघान कपिशार्दूलान् सुबहून् दृढविक्रमः।

ते चाप्यनुचरांस्तस्य वानरा जघ्नुराहवे।। १६।।
सुस्कन्धविटपैः शैलैः शिलाभिश्च महाबलः।
हनूमान् कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम्।। १७।।

उन महा भयंकर वानरों के द्वारा पराक्रम से वृक्षों द्वारा मारे गये वे भयानक रूप वाले राक्षस रणभूमि में गिर कर छटपटाने लगे। तब सेना को वानरों के द्वारा पीड़ित देख कर इन्द्रजित अपने आयुधों को उठा कर और क्रोध में भर कर शत्रुओं के सामने आया। अपनी सेना से घिरे हुए उस दृढ़ विक्रम वाले ने बाणों की वर्षा करते हुए बहुत से वानर श्रेष्ठों को मार दिया। वानरों ने भी युद्ध में उसके पीछे चलने वाले राक्षसों को मारा। महाबली हनुमान ने अच्छी शाखा वाले वृक्षों और पर्वत शिलाओं के द्वारा भीमकर्मा राक्षसों का विनाश किया।

संनिवार्य परानीकमब्रवीत् तान् वनौकसः।
हनूमान् संनिवर्तध्वं न नः साध्यमिदं बलम्।। १८।।
त्यक्त्वा प्राणान् विचेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षवः।
यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा।। १९।।
इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च।
तौ यत् प्रतिविधास्येते तत् करिष्यामहे वयम्।। २०।।
इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन् सर्ववानरान्।
शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः संन्यवर्तत।। २१।।

इस प्रकार शत्रुओं की सेना का निवारण कर हनुमान जी ने उन वानरों से कहा कि लौट चलो। इस सेना का नाश करना अब हमारा उद्देश्य नहीं है। राम का प्रिय करने की इच्छा से अपने प्राणों का मोह छोड़ कर जिस जनक पुत्री की प्राप्ति के लिये हम युद्ध कर रहे हैं, वह तो मारी गयी। इस बात को राम और सुग्रीव से कह कर फिर वे दोनों जो कुछ करने के लिये व्यवस्था करेंगे, वैसा ही हम करेंगे। ऐसा कह कर उन वानरश्रेष्ठ ने सारे वानरों को युद्ध से रोक दिया और निर्भयता के साथ धीरे-धीरे सेना सहित लौट चले।

तिरेसठवाँ सर्ग

सीता के वध को सुनकर श्रीराम का मूर्च्छित होना, लक्ष्मण का उन्हें सान्त्वना देना।

राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम्।
श्रुत्वा संग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह।। १।।
सौम्य नूनं हनुमता कृतं कर्म सुदुष्करम्।
श्रूयते च यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः।। २।।
तद् गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः।
क्षिप्रमृक्षपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः।। ३।।
ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वा स्वेनानीकेन संवृतः।
आगच्छत् पश्चिमं द्वारं हनूमान् यत्र वानरः।। ४।।

श्रीराम ने भी जब राक्षसों और वानरों के उस भयंकर संग्राम के घोष को सुना तब वे जाम्बवान से बोले कि हे सौम्य! हनुमान जी निश्चय ही युद्ध में भयानक कर्म कर रहे हैं, इसी से यह आयुधों की भयानक ध्वनि सुनाई दे रही है। इसलिये हे ऋक्षराज! तुम जल्दी अपनी सेना के साथ जाओ और युद्ध करते हुए वानरश्रेष्ठ की सहायता करो। तब ऋक्षराज जाम्बवान बहुत अच्छा कह कर अपनी सेना के साथ पश्चिमी द्वार पर गये, जहाँ वानर हनुमान विद्यमान थे।

अथायान्तं हनूमन्तं ददर्शर्क्षपतिस्तदा।
वानरैः कृतसंग्रामैः श्वसद्भिरभिसंवृतम्।। ५।।
दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम्।
नीलमेघनिभं भीमं संनिवार्य न्यवर्तत।। ६।।
स तेन सह सैन्येन संनिकर्षं महायशाः।
शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत्।। ७।।

तब उन ऋक्षराज ने युद्ध करके लौटते हुए और लम्बी साँसें लेते हुए वानरों से घिरे तथा आते हुए हनुमान जी को देखा। हनुमान जी ने रास्ते में युद्ध के लिये तैयार होकर आती हुई नीले बादलों के समान भयानक ऋक्ष जाति की सेना को देख कर उन्हें रोका और वे उन्हें भी अपने साथ वापिस ले आये। वे महा यशस्वी हनुमान उस सेना के साथ जल्दी राम के समीप आकर दुखी होकर बोले कि-

समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद् रावणात्मजः।। ८।।
उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिंदम।
तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः।। ९।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः।। १०।।

उस रावण के पुत्र इन्द्रजित ने युद्ध क्षेत्र में युद्ध करते हुए हमारे देखते हुए ही रोती हुई सीता को मार दिया।

हे शत्रुओं का दमन करने वाले! उन सीता को उस अवस्था में देख कर मेरा चित्त उद्भ्रान्त हो गया है। मैं बड़ा उदास हूँ। इसलिये मैं आपको यह बात बताने के लिये आ गया हूँ। हनुमान जी की यह बात सुन कर श्रीराम शोक के कारण मूर्च्छित हो गये और भूमि पर जड़ कटे पेड़ की तरह गिर पड़े।

तं भूमौ देवसंकाशं पतितं दृश्य राघवम्।
अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः।। ११।।
आसिञ्चन् सलिलैश्चैनं पद्मोत्पलसुगन्धिभिः।
प्रदहन्तमसंहार्यं सहसाग्निमिवोत्थितम्।। १२।।
तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम्।। १३।।
तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम्।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव।। १४।।

उन देवता के समान श्रीराम को भूमि पर गिरा हुआ देख कर वानरश्रेष्ठ सब तरफ से उछल कर वहाँ आ गए। उन्होंने पद्म और उत्पल के सुगन्धित जल से सहसा प्रज्वलित हुई, न बुझाई जा सकने वाली और जलाने वाली अग्नि के समान प्रतीत हो रहे उन राम को सींचना आरम्भ कर दिया। तब लक्ष्मण जी अत्यन्त दुखी हो कर अस्वस्थ श्रीराम को अपनी भुजाओं में लपेट कर उनसे युक्तियुक्त और अर्थ वाली बातें कहने लगे। वे कहने लगे कि हे राम! आप उठ कर खड़े हो जाइये। हे वीर! इन्द्रजित ने हमारे लिये अत्यन्त दुख का कार्य किया है, मैं अपने पराक्रम से उसे दूर कर दूँगा। इसलिये आप उठिये।

चौसठवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीराम को इन्द्रजित की माया के विषय में बता कर सीता के जीवित होने का विश्वास दिलाना और लक्ष्मण को इन्द्रजित के वध के लिये निकुम्भिला मन्दिर भेजने का अनुरोध करना।

राममाश्वासमाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले।
निक्षिप्य गुल्मान् स्वस्थाने तत्रागच्छद् विभीषणः।। १।।
नानाप्रहरणैर्वीरैश्चतुर्भिरभिसंवृतः ।
नीलाञ्जनचयाकारैर्मातंगैरिव यूथपैः।। २।।
सोऽभिगम्य महात्मानं राघवं शोकलालसम्।
वानरांश्चापि ददृशे बाष्पपर्याकुलेक्षणान्।। ३।।
राघवं च महात्मानमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम्।
ददर्श मोहमापन्नं लक्ष्मणस्याङ्कमाश्रितम्।। ४।।

जिस समय भ्रातृवत्सल लक्ष्मण जी इस प्रकार राम को आश्वासन दे रहे थे, सेनाओं को अपने-अपने स्थानों पर स्थापित करके विभीषण वहीं आ गये। वे अपने अनेक हथियारों से युक्त चार वीर यूथपतियों से, जो काले काजल की राशि के समान शरीर वाले थे और हाथी के समान प्रतीत होते थे, घिरे हुए थे। उन्होंने आकर महात्मा राम को शोक से व्याकुल तथा वानरों को भी आँखों में आँसू भरे हुए देखा। इक्ष्वाकु कुल को हर्षित करने वाले राघव राम उस समय मोहग्रस्त होकर लक्ष्मण की गोद में लेटे हुए थे।

व्रीडितं शोकसंतप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः।
अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोऽब्रवीत्।। ५।।
विभीषणमुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरान्।
लक्ष्मणोवाच मन्दार्थमिदं बाष्पपरिप्लुतः।। ६।।
हता इन्द्रजिता सीता इति श्रुत्वैव राघवः।
हनूमद्वचनात् सौम्य ततो मोहमुपाश्रितः।। ७।।
कथयन्तं तु सौमित्रिं संनिवार्य विभीषणः।
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत्।। ८।।

श्रीराम को इस प्रकार शोक से सन्तप्त और लज्जित अवस्था में देख कर विभीषण भी अपने आन्तरिक दुख से दीन हो गये और पूछने लगे कि यह क्या हो गया है? तब विभीषण के मुख, सुग्रीव और वानरों की तरफ देख कर आँखों में आँसू भरे हुए लक्ष्मण धीरे से बोले कि हे सौम्य! हनुमान जी के मुख से यह सुन कर कि इन्द्रजित ने सीता को मार दिया, श्रीराम मोह को प्राप्त हो गये हैं। तब विभीषण ने ऐसा कहते हुए लक्ष्मण को रोक कर अत्यन्त अर्थ से युक्त यह बात अचेत से हो रहे श्रीराम से कही कि–

मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तस्त्वं हनूमता।
तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम्।। ९।।
अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः।
सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति।। १०।।

याच्यमानः सुबहुशो मया हितचिकीर्षुणा।
वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत् कृतवान् वचः।। ११।।
वानरान् मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः।
मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम्।। १२।।

हे मानवेन्द्र! दुखी होकर हनुमान जी ने जो बात आपसे कही है, मैं उसे ऐसे ही असम्भव मानता हूँ, जैसे सागर का सूखना। मैं उस दुष्ट रावण का सीता के प्रति जो भाव है, उसे जानता हूँ। हे महाबाहु! वह उसे कभी नहीं मारेगा। मैंने उसका हित करने की इच्छा से अनेक बार उससे प्रार्थना की कि वैदेही को छोड़ दो, पर उसने वैसा नहीं किया। वह राक्षस वानरों को मोह में डाल कर चला गया है, जिसे उसने मारा है, उसे हे महाबाहु! आप माया की अर्थात कपटपूर्वक बनाई हुई नकली सीता समझिये।

चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति।
तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता।। १३।।
विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे।
ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते।। १४।।
त्यजैनं नरशार्दूल मिथ्या संतापमागतम्।
सीदते हि बलं सर्वं दृष्ट्वा त्वां शोककर्शितम्।। १५।।
इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः।
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः।। १६।।
एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः।
त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति।। १७।।

वह आज निकुम्भिला नाम के स्थान पर स्थित यज्ञ शाला में जाकर यज्ञ करेगा वानरों के पराक्रम करते हुए उसके यज्ञ में विघ्न पड़ता अतः उसने वानरों को मोहित करने के लिये माया अर्थात छल कपट का प्रयोग किया है। इसलिये जब तक उसका यज्ञ समाप्त नहीं होता है, हम सेना के साथ वहाँ जाते हैं। हे नरसिंह! आप इस आये हुए मिथ्या सन्ताप का त्याग कर दीजिये। आप को शोक पीड़ित देख कर सारी सेना दुखी हो रही है। आप धैर्य में सबसे बढ़ कर हैं, इसलिये स्वस्थ हृदय होकर उठ जाइये और सेना के साथ जाते हुए आप हमारे साथ लक्ष्मण जी को भेज दीजिये। ये नर शार्दूल अपने तीखे बाणों से रावणपुत्र को वह होम कर्म छोड़ने को विवश कर देंगे और फिर वह मारा जाने योग्य हो जायेगा।

पैंसठवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण को सेना सहित इन्द्रजित के वध के लिये भेजना। लक्ष्मण का निकुम्भिला मन्दिर के पास पहुँचना।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवः शोककर्शितः।
नोपधारयते व्यक्तं यदुक्तं तेन रक्षसा।। १।।
ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरंजयः।
विभीषणमुपासीनमुवाच कपिसंनिधौ।। २।।
नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभीषण।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम्।। ३।।
राघवस्य वचः श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः।
यत् तत् पुनरिदं वाक्यं बभाषेऽथ विभीषणः।। ४।।

राक्षस विभीषण के ये वचन सुन कर शोक से पीड़ित राम उनकी बातों को स्पष्ट रूप से नहीं समझ सके। फिर थोड़ी देर में शत्रु के नगर को नष्ट करने वाले राम धीरज धारण कर हनुमान जी के समीप बैठे हुए विभीषण से बोले कि हे राक्षसराज विभीषण! तुमने जो कुछ कहा है, मैं उसे दुबारा सुनना चाहता हूँ। तुम जो कहना चाहते हो उसे बताओ। राम की बात सुन कर वाक्य विशारद विभीषण ने जो पहले कहा था, उसे दुहराते हुए पुनः यह कहा कि–

यथाऽऽज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्मनिवेशनम्।
तत् तथानुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम्।। ५।।
तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः।
विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः।। ६।।
भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महाप्रभो।
त्वय्यकारणसंतप्ते संतप्तहृदया वयम्।। ७।।
त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्या संतापमागतम्।
यदियं त्यज्यतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धिनी।। ८।।

हे महाबाहु! जैसे आपने आज्ञा दी थी, सेना को यथास्थान स्थापित करने की, वह तो मैंने आपके कहने के साथ ही कर दी। सारी सेना को सब तरफ विभागों में बाँट दिया और हर विभाग के यूथपति नियुक्त कर दिये। हे महाबाहो! अब जो बात मुझे अपनी आपकी

सेवा में फिर कहनी है, उसे सुनिये। आपके बिना कारण के ही संतप्त होने से हम सब दुखी हो रहे हैं। हे राजन्! आप इस झूठे शोक और संताप को जो आपको प्राप्त हो गया है, छोड़िये। आपकी जो यह चिन्ता है, वह शत्रु के हर्ष को बढ़ाने वाली है। इसका आप त्याग कीजिये।

उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम्।
प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः।। ९।।
रघुनन्दन वक्ष्यामि श्रूयतां मे हितं वचः।
साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः।। १०।।
निकुम्भिलायां सम्प्राप्तं हन्तुं रावणिमाहवे।
धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैराशीविषविषोपमैः ।। ११।।
शरैर्हन्तुं महेष्वासो रावणिं समितिंजयः।
वधायेन्द्रजितो राम संदिशस्व महाबलम्।
हते तस्मिन् हतं विद्धि रावणं ससुहृद्गणम्।। १२।।

हे वीर! आप हर्ष को प्राप्त कीजिये और उद्यम कीजिये। यदि आपको सीता जी को प्राप्त करना है तो राक्षसों का संहार कीजिये। हे रघुनन्दन! मैं भलाई की बात कहता हूँ। उसे आप सुनिये। निकुम्भिला नाम के स्थान पर गये हुए रावण के पुत्र को युद्ध में मारने के लिये ये सुमित्रा पुत्र महान सेना के साथ जायें, यही अच्छा है। ये संग्राम विजयी महाधनुर्धर अपने मंडलाकार बने हुए धनुष से निकले हुए विषधर सर्प के समान भयंकर बाणों से रावणपुत्र इंद्रजित को मारने में समर्थ हैं! इसलिये हे राम! आप इन्द्रजित के वध के लिये इन महाबली को आज्ञा दीजिये। उसके मारे जाने पर आप रावण को अपने बन्धु बान्धवों सहित मरा हुआ ही समझिये।

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत्।
जानामि तस्य रौद्रस्य मायां सत्यपराक्रम।। १३।।
स हि ब्रह्मास्त्रवित् प्राज्ञो महामायो महाबलः।
तस्यान्तरिक्षे चरतः सरथस्य महायशः।। १४।।
न गतिर्ज्ञायतेवीर सूर्यस्येवाभ्रसम्प्लवे।
राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः।। १५।।
लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत्।

तब विभीषण की बात सुन कर राम बोले हे सत्य पराक्रमी! मैं उस भयंकर राक्षस की माया को जानता हूँ। वह बड़ा मायावी अर्थात् कपटी, बुद्धिमान्, बड़ा बलवान और ब्रह्मास्त्र को जानने वाला है। हे महायशस्वी! जब वह विमान में बैठ कर आकाश में घूमता है तो बादलों में छिपे हुए सूर्य के समान उसकी गति का पता नहीं लगता। फिर उसके बाद उस दुष्ट शत्रु की माया और शक्ति को समझ कर श्रीराम कीर्ति सम्पन्न लक्ष्मण से यह बोले कि—

यद् वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः।। १६।।
हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण।
जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः।। १७।।
जहि तं राक्षससुतं मायाबलसमन्वितम्।
अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः।। १८।।
अभिज्ञस्तस्य मायानां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति।

हे लक्ष्मण! वानरेश सुग्रीव की जो भी सेना है, उस सबके साथ और हनुमान आदि यूथपतियों के साथ, ऋक्षराज जाम्बवान के साथ सेना सहित तुम मायाबल से युक्त उस राक्षसपुत्र को मार गिराओ। ये महात्मा विभीषण राक्षस, जो कि उसकी मायाओं को जानते हैं, तुम्हारे पीछे जायेंगे।

राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः।। १९।।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठमन्यद् भीमपराक्रमः।
संनद्धः कवची खड्गी सशरी वामचापभृत्।। २०।।
रामापादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत्।
अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम्।। २१।।
लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव।
अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः।। २२।।
विधमिष्यन्ति भित्त्वा तं महाचापगुणच्युताः।

राम की बात सुनकर विभीषण के साथ भीम पराक्रमी लक्ष्मण ने एक दूसरे श्रेष्ठ धनुष को हाथ में ले लिया, उन्होंने कवच धारण किया, खड्ग लिया, बाणों को लिया और बायें हाथ में धनुष लिया और राम के चरणों को स्पर्श कर सुमित्रा नन्दन बोले, आज मेरे धनुष से छूटे हुए बाण रावण पुत्र को भेद कर लंका में ऐसे गिरेंगे जैसे हंस कमलों से भरे सरोवर में उतरते हैं। मेरे इस महान धनुष की प्रत्यंचा से छूटे हुए बाण आज ही उस भयानक राक्षस के शरीर को छेद कर उसे मथ डालेंगे।

एवमुक्त्वा तु वचनं द्युतिमान् भ्रातुरग्रतः।। २३।।
स रावणिवधाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्वरितं ययौ।
विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान्।। २४।।
कृतस्वस्त्ययनो भ्रात्रा लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ।
वानराणां सहस्रैस्तु हनूमान् बहुभिर्वृतः।। २५।।
विभीषणश्च सामात्यो लक्ष्मणं त्वरितं ययौ।
स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः।
राक्षसेन्द्रबलं दुरादपश्यद् व्यूहमाश्रितम्।। २६।।

तेजस्वी और रावण पुत्र के वध की इच्छा वाले लक्ष्मण भाई के आगे ऐसा कह कर तेजी से चलने का उपक्रम करने लगे। उन प्रतापी राजपुत्र के भाई श्रीराम ने तब उनके लिये स्वस्तिवाचन किया और फिर लक्ष्मण विभीषण के साथ उतावली से चल दिये। कई हजार वानर वीरों के साथ हनुमान, तथा मंत्रियों के साथ विभीषण भी तेजी के साथ लक्ष्मण के पीछे गये। मित्रों को प्रसन्न करने वाले सुमित्रा पुत्र ने दूर तक के मार्ग को व्यतीत करके व्यहू बना कर खड़ी हुई राक्षसराज की सेना को दूर से देखा।

छियासठवाँ सर्ग

वानरों और राक्षसों का युद्ध, हनुमान जी द्वारा राक्षस सेना का संहार और उनका इन्द्रजित को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारना।

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः।
परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत्।। १।।
यदेतद् राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते।
एतदायोध्यतां शीघ्रं कपिभिश्च शिलायुधैः।। २।।
तस्यानीकस्य महतो भेदने यत् लक्ष्मण।
राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यत्र भिन्ने दृश्यो भविष्यति।। ३।।
स त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन् परान्।
अभिद्रवाशु यावद् वै नैतत् कर्म समाप्यते।। ४।।

उस अवस्था में रावण के अनुज विभीषण ने लक्ष्मण से शत्रुओं के लिये अहितकारी और अपने कार्य को सिद्ध करने वाली यह बात कही कि यह जो बादलों के समान काली राक्षसों की सेना दिखाई दे रही है इसके साथ शिलाओं के आयुधों के साथ वानर शीघ्र ही युद्ध करें। हे लक्ष्मण! इस महान सेना को भेदने के प्रयत्न करो। इस सेना के भिन्न होने पर राक्षसराज का पुत्र भी यहीं दिखाई देगा। जब तक उसका यज्ञ समाप्त नहीं होता है तुम अपने इन्द्र के वज्र के समान बाणों से शत्रुओं को विदीर्ण करते हुए शीघ्रता से आक्रमण करो।

विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
ववर्ष शरवर्षेण राक्षसेन्द्रसुतं प्रति।। ५।।
ऋक्षाः शाखामृगाश्चैव द्रुमप्रवरयोधिनः।
अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम्।। ६।।
राक्षसाश्च शितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः।
अभ्यवर्तन्त समरे कपिसैन्यजिघांसवः।। ७।।
ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः।
रक्षसां युध्यमानानां महद्भयमजायत।। ८।।

विभीषण की बात सुन कर शुभ लक्षण लक्ष्मण ने राक्षसराज के पुत्र इन्द्रजित की तरफ अपनी बाण वर्षा करते हुए युद्ध आरम्भ कर दिया और ऋक्ष जाति के सैनिकों और वानर जाति के सैनिकों ने भी जो वृक्षों के द्वारा अच्छा युद्ध करते थे, एक साथ उस विद्यमान सेना पर आक्रमण कर दिया। वानरों की सेना को नष्ट करने की इच्छा वाले राक्षसों ने भी उस युद्ध में तीक्ष्ण बाणों, तलवारों, शक्ति तथा तोमरों से उनका सामना किया। उस समय ऋक्षों और वानरों के प्रमुखों से जो बड़े विशालकाय और महाबली थे, युद्ध करते हुए राक्षस लोग अत्यधिक भयभीत होने लगे।

स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम्।
उदतिष्ठत दुर्धर्षः स कर्मण्यननुष्ठिते।। ९।।
वृक्षान्धकारान्निर्गत्य जातक्रोधः स रावणिः।
आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं सुसंयतम्।। १०।।
दृष्ट्वैव तु रथस्थं तं पर्यवर्तत तद् बलम्।
रक्षसां भीमवेगानां लक्ष्मणेन युयुत्सताम्।। ११।।
तस्मिंस्तु काले हनुमानरुजत् स दुरासदम्।
धरणीधरसंकाशो महावृक्षमरिंदमः।। १२।।

अपनी सेना को शत्रुओं के द्वारा पीड़ित और दुखी सुन कर वह दुर्धर्ष वीर इन्द्रजित तब अपने यज्ञ कर्म को बिना समाप्त किये ही उठ कर खड़ा हो गया। वृक्षों के अँधेरे से बाहर निकल कर क्रोध में भरा हुआ वह रावण पुत्र एक सुदृढ़ रथ पर जो पहले ही घोड़े जोत कर और तैयार किया हुआ था, बैठ गया। उसको रथ पर बैठा हुआ देख कर भयानक वेगवाले लक्ष्मण से युद्ध की इच्छा रखने वाले राक्षसों की उस सेना ने उसे घेर लिया। उस समय शत्रु का विनाश करने वाले पर्वत के समान विशाल हनुमान ने एक मुश्किल से तोड़े जा सकने वाले वृक्ष को तोड़ लिया।

स राक्षसानां तत् सैन्यं कालाग्निरिव निर्दहन्।
चकार बहुभिर्वृक्षैर्निःसंज्ञं युधि वानरः।। १३।।

विध्वंसयन्तं तरसा दृष्ट्वैव पवनात्मजम्।
राक्षसानां सहस्राणि हनूमन्तमवाकिरन्।। १४।।
शितशूलधरा शूलैरसिभिश्चासिपाणयः।
शक्तिहस्ताश्च शक्तीभिः पाट्टिशैः पट्टिशायुधाः।। १५।।

फिर बहुत से वृक्ष-आघातों से राक्षसों की उस सेना को प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित होते हुए वे वानर युद्ध में अचेत करने लगे। वायु पुत्र हनुमान तेजी से विनाश कर रहे हैं, यह देखते ही हजारों राक्षस उन पर अस्त्र वर्षा करने लगे। जिन राक्षसों ने तीखे शूल धारण किये हुए थे, उन्होंने शूलों से, तलवार जिनके हाथ में थी, उन्होंने तलवारों से जिनके हाथ में शक्ति थी, उन्होंने शक्तियों से और पट्टिश रखने वालों ने पट्टिशों से उन पर आक्रमण किया।

स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित्।
सूदमानमसंत्रस्तममित्रान् पवनात्मजम्।। १६।।
स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः।
क्षयमेव हि नः कुर्याद् राक्षसानामुपेक्षितः।। १७।।
इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः।
वहन् परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रथे।। १८।।

इन्द्रजित ने देखा कि पर्वत के समान विशालकाय वायुपुत्र वानर श्रेष्ठ हनुमान बिना भयभीत हुए शत्रुओं का संहार कर रहे हैं। तब वह सारथी से यह बोला कि जहाँ यह वानर है, वहीं चलो। यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह हमारे राक्षसों का विनाश ही कर देगा। ऐसा कहने पर वह सारथी रथ में बैठे हुए परम दुर्धर्ष इन्द्रजित को ढोता हुआ वहीं ले गया, जहाँ वह पवन पुत्र विद्यमान थे।

हनूमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम्।
रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः।। १९।।
यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः।
स एष रथमास्थाय हनूमन्तं जिघांसति।। २०।।
तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुनिवारणैः।
जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि।। २१।।

तब रावणपुत्र को धनुष उठा कर हनुमान जी को मारने की चेष्टा करते हुए देख कर विभीषण ने लक्ष्मण जी से कहा कि यह इन्द्र को जीतने वाला रावण पुत्र रथ में बैठा हुआ हनुमान जी को मारना चाहता है। इसे हे सुमित्रा के पुत्र! अपने अप्रतिम, शत्रुओं का निवारण करने वाले, प्राणों को हरने वाले भयानक बाणों से मार दो।

इत्येवमुक्तस्तुतदा महात्मा
विभीषणेनारिविभीषणेन ।
ददर्श तं पर्वतसंनिकाशं
रथस्थितं भीमबलं दुरासदम्।। २२।।

शत्रुओं को भयभीत करने वाले विभीषण के द्वारा यह कहे जाने पर उन महात्मा लक्ष्मण ने रथ में बैठे हुए, पर्वत के समान विशालकाय भयानक बल वाले उस दुर्धर्ष राक्षस को देखा।

सड़सठवाँ सर्ग

इन्द्रजित और विभीषण की रोषपूर्ण बातचीत।

तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम्।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग् युद्धं प्रयच्छ मे।। १।।
एवमुक्तो महातेजा मनस्वी रावणात्मजः।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम्।। २।।
इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षात् भ्राता पितुर्मम।
कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस।। ३।।
न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते।
प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण।। ४।।

तब उस पराजित न होने वाले पुलस्त्यवंशी इन्द्रजित से महा तेजस्वी लक्ष्मण ने कहा कि मैं तुम्हें युद्ध के लिये ललकारता हूँ। तुम मेरे साथ अच्छी तरह से युद्ध करो। ऐसा कहे जाने पर उस महा तेजस्वी, मनस्वी रावणपुत्र ने वहाँ विभीषण को देख कर उससे कठोर शब्दों में कहा कि तुम यहीं बड़े हुए। तुम मेरे पिता के सगे भाई हो। तुम मेरे चाचा हो। हे राक्षस! तुम अपने पुत्र के समान मुझसे क्यों द्वेष करते हो। हे दुर्मति, हे धर्म को दूषित करने वाले! तुम्हारे अन्दर न तो अपने परिवार वालों के प्रति प्रेम है, न मित्रों के लिये स्नेह है, न जाति का अभिमान है, न भाई के लिये प्रेम है और न धर्म का वि.चार है।

शोच्च्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः।। ५।।

नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम्।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीच पराश्रयः।। ६।।
गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः।। ७।।
यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हन्यते।। ८।।

हे दुर्बुद्धि! जो तुमने अपने लोगों को छोड़ कर दूसरों की दासता स्वीकार की है, तुम इसके लिये सत्पुरुषों के द्वारा शोचनीय और निन्दनीय हो। हे नीच! तुम अपनी कमजोर बुद्धि से इस महान अन्तर को नहीं समझ रहे हो कि कहाँ अपने लोगों के साथ रहना और कहाँ दूसरों की गुलामी करना। दोनों में कितना भेद है। शत्रु गुणवान भी हो और अपना आदमी गुणरहित भी हो तो भी अपना आदमी अधिक श्रेष्ठ है। शत्रु शत्रु ही है। जो व्यक्ति अपने पक्ष को छोड़ कर दूसरे के पक्ष की सेवा करता है, वह अपने पक्ष के नष्ट हो जाने पर उन्हीं दूसरे पक्ष वालों के द्वारा मार दिया जाता है।

निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर।
स्वजनेन त्वया शक्यं पौरुषं रावणानुज।। ९।।
इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे।। १०।।
राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज गौरवात्।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम्।। ११।।
गुणो यः प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम्।
न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे।। १२।।
भ्रात्रा विषमशीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते।

हे रावण के छोटे भाई राक्षस! तुमने यह जो निर्दयता दिखाई है, ऐसा पुरुषार्थ तुम्हारे जैसा अपना आदमी ही कर सकता है। भाई के पुत्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर विभीषण ने उत्तर दिया कि हे राक्षस! तूम मेरे स्वभाव को न जानते हुए के समान दिखाता हुआ क्यों असत्य भाषण कर रहा है? बड़प्पन का ध्यान करते हुए तू कठोरता को छोड़। हे राक्षसराज के पुत्र! दुष्ट! मैं यद्यपि क्रूर कर्म करने वाले राक्षसों के कुल में पैदा हुआ हूँ, पर मैंने राक्षसों के आचरण को स्वीकार नहीं किया है, सत्पुरुषों के जो प्रमुख गुण हैं, उन्हीं को मैंने लिया है, न मैं क्रूर कर्म को पसन्द करता हूँ और न अधर्मयुक्त कार्य को चाहता हूँ। भाई का स्वभाव न मिलने पर भी क्या उसे भाई के द्वारा घर से निकाला जाता है?

धर्मात् प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम्।। १३।।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा।
परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम्।। १४।।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा।
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।। १५।।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः।
महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः।। १६।।
अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता।

जिसका चरित्र धर्म से भ्रष्ट हो गया, जो पापपूर्ण निश्चय वाला है, ऐसे व्यक्ति को जो हाथ पर बैठे हुए विषैले सर्प के समान छोड़ देता है, वह सुखी होता है। जो व्यक्ति दूसरों की सम्पति हरण करने में तथा दूसरे की पत्नी को हस्तगत करने में लगा हुआ हो, ऐसे दुष्ट को जलते हुए घर के समान छोड़ देने योग्य बताया गया है। दूसरों की सम्पत्ति का हरण, दूसरों की पत्नी के साथ संसर्ग और हित चाहने वाले मित्रों पर शंका करना, ये तीन दोष विनाशकारी हैं। महर्षियों के वध का भयानक कार्य, सब देवताओं अर्थात् सत्पुरुषों से विरोध करना, अभिमान, क्रोध, शत्रुता, और धर्म के प्रतिकूल चलना—

एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः।। १७।।
गुणान् प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः।
दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव।। १८।।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता।
अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस।। १९।।
बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद् यदिच्छसि।
धर्षयित्वा च काकुत्स्थं न शक्यं जीवितुं त्वया।
युध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह।। २०।।

मेरे भाई में विद्यमान ये दोष उसके जीवन और ऐश्वर्य को नष्ट कर देंगे। इन दोषों ने उसके गुणों को भी ऐसे ही ढक दिया है जैसे बादल पर्वतों को ढक दिया करते हैं। इन्हीं दोषों के कारण मैंने अपने भाई और तेरे पिता को छोड़ दिया है। अब न तो यह लंकापुरी बचेगी; न तुम बचोगे और न तुम्हारे पिता बच सकेंगे। हे राक्षस! तू अत्यन्त अभिमानी बच्चा अर्थात् मूर्ख और दुर्विनीत है। तू मृत्यु के बन्धन से बँधा हुआ है, इसलिये जो कुछ तू चाहता है, मुझसे कह ले। तू इन नरश्रेष्ठ लक्ष्मण के साथ युद्ध क्षेत्र में युद्ध कर, इन ककुत्स्थवंशी का तिरस्कार कर तू जीवित नहीं रह सकता।

निदर्शय स्वात्मबलं समुद्यतं
कुरुष्व सर्वायुधसायकव्ययम्।
न लक्ष्मणस्यैत्य हि बाणगोचरं
त्वमद्य जीवन् सबलो गमिष्यसि।। २१।।

तू तैयार की हुई अपनी शक्ति को दिखा। सारे आयुधों और बाणों का प्रयोग कर ले। लक्ष्मण के बाणों के सामने आ कर तू आज जीवित सेना सहित नहीं जायेगा।

अड़सठवाँ सर्ग

इन्द्रजित और लक्ष्मण की परस्पर रोषयुक्त बातचीत और युद्ध।

तं ददर्श महेष्वासो रथस्थः समलंकृतः।
अलंकृतममित्रघ्नो रावणस्यात्मजो बली।। १।।
हनूमत्पृष्ठमारूढमुदयस्थरविप्रभम्।
उवाचैनं सुसंरब्धः सौमित्रिं सविभीषणम्।। २।।
तांश्च वानरशार्दूलान् पश्यध्वं मे पराक्रमम्।
अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टं शरवर्षं दुरासदम्।। ३।।
मुक्तवर्षमिवाकाशे धारयिष्यथ संयुगे।

तब रथ में सुसज्जित हो कर बैठे हुए, महा धनुर्धारी, शत्रुओं को नष्ट करने वाले रावण के बलवान पुत्र ने हनुमान की पीठ पर बैठे हुए, उदय होते हुए सूर्य के समान प्रभा वाले सुसज्जित लक्ष्मण को देखा। अत्यन्त क्रोध में भर कर वह विभीषण सहित लक्ष्मण से और उन वानर सिंहों से बोला कि तुम लोग आज मेरा पराक्रम देखना। मेरे धनुष से निकली हुई दुर्धर्ष बाण वर्षा को तुम युद्ध में ऐसे ही धारण करोगे जैसे आकाश से होने वाली उन्मुक्त वर्षा को धारण किया जाता है।

अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः।। ४।।
विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः।
तीक्ष्णसायकनिर्भिन्नाञ्शूलशक्त्यृष्टितोमरैः।। ५।।
अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानेव यमक्षयम्।
सृजतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य संयुगे।। ६।।
जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः।

जैसे अग्नि रुई के ढेर को जला देती है, वैसे ही मेरे विशाल धनुष से निकले हुए मेरे बाण तुम्हारे अंगों को विदीर्ण कर देंगे। आज मैं अपने तीक्ष्ण बाणों, शूल, शक्ति, ऋष्टि और तोमरों से तुम सबको छिन्न भिन्न करके मृत्यु लोक में पहुँचा दूँगा। युद्धस्थल में शीघ्रता से हाथ चला कर बाणों की वर्षा करते हुए और बादलों के समान गर्जना करते हुए मेरे सामने कौन ठहर सकता है?

रात्रियुद्धे तदा पूर्वं वज्राशनिसमैः शरैः।। ७।।
शायितो तौ मया भूयो विसंज्ञौ सपुरःसरौ।
स्मृतिर्नतेऽस्ति वा मन्ये व्यक्तं यातो यमक्षयम्।। ८।।
आशीविषसमं क्रुद्धं यन्मां योद्धुमुपस्थितः।
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं राघवस्तदा।। ९।।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत्।

हे लक्ष्मण! पहले रात्रि के युद्ध में जब मैंने विद्युत् और वज्र के समान बाणों से तुम दोनों को मूर्च्छित कर, अग्रगामी सैनिकों सहित सुला दिया था, मैं समझता हूँ, कि तुम्हें उसकी याद नहीं रही है या तुम स्पष्ट रूप से मृत्यु लोक को जाने वाले हो, जो विष धर सर्प के समान क्रोध में भरे हुए मुझसे युद्ध करने के लिये पुनः उपस्थित हो गये हो। राक्षसेन्द्र की वह गर्जना सुन कर, निर्भय मुख वाले, क्रोध में भरे हुए लक्ष्मण रावण के पुत्र से बोले कि--।

उक्तश्च दुर्गमः पारः कार्याणां राक्षस त्वया।। १०।।
कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान्।
स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य केनचित्।। ११।।
वाचा व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोऽस्मीति दुर्मते।
अन्तर्धानगतेनाजौ यत्त्वया चरितस्तदा।। १२।।
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः।
यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽस्मि तव राक्षस।। १३।।
दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे।

हे राक्षस! तुमने अपने कार्यों की पूर्ति के विषय में, जो तुम्हारे लिये दुर्गम है, बखान तो कर दिया, पर बुद्धिमान वही है जो अपने कार्यों को प्रयत्न द्वारा पूरा करता है। हे दुर्मति! तुम अपने कार्यों को पूरा करने में असमर्थ हो। जो किसी से पूरा नहीं किया जा सकता, उस कार्य की पूर्ति के विषय में केवल घोषणा करके तुम अपने को कृतार्थ समझ रहे हो। युद्ध में छिप कर तुमने, तब जो कार्य किया था, वह चोरों का रास्ता है, वीरों का नहीं है। हे राक्षस! आज मैं जैसे तुम्हारे बाणों के मार्ग में आकर खड़ा हुआ हूँ, तुम अपना वह तेज दिखाओ डींग क्यों मार रहे हो?

एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः।। १४।।
ससर्ज निशितान् बाणानिन्द्रजित् समितिंजयः।
शरैरतिमहावेगैर्वेगवान् रावणात्मजः।। १५।।
सौमित्रिमिन्द्रजिद् युद्धे विव्याध शुभलक्षमण्।
इन्द्रजित् त्वात्मनः कर्म प्रसमीक्ष्याभिगम्य च।। १६।।
विनद्य सुमहानादमिदं वचनमब्रवीत्।

ऐसा कहे जाने पर युद्धविजयी, महाबली, इन्द्रजित अपने भयानक धनुष को दृढ़ता से पकड़ कर तीखे बाणों को छोड़ने लगा। रावण पुत्र वेगवान इन्द्रजित ने अत्यन्त वेगवान बाणों से शुभ लक्षण वाले सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण को युद्ध में बींध दिया। अपने उस कार्य को देख कर, समीप आ कर और जोर से गर्जना कर इन्द्रजित तब यह बोला कि–

पत्रिणः शितधारास्ते शरा मत्कार्मुकच्युताः।। १७।।
आदास्यन्तेऽद्य सौमित्रे जीवितं जीवितान्तकाः।
अद्य गोमायुसङ्घाश्च श्येनसङ्घाश्च लक्ष्मण।। १८।।
गृध्राश्च निपतन्तु त्वां गतासुं निहतं मया।
क्षत्रबन्धुं सदानार्यं रामः परमदुर्मतिः।। १९।।
भक्तं भ्रातरमद्यैव त्वां द्रक्ष्यति हतं मया।
विस्रस्तकवचं भूमौ व्यपविद्धशरासनम्।। २०।।
हतोत्तमाङ्गं सौमित्रे त्वामद्य निहतं मया।

मेरे धनुष से छूटे हुए वे पंखों वाले तीक्ष्ण बाण जीवन का अन्त कर देने वाले हैं। हे लक्ष्मण! आज वे तुम्हारे प्राणों को ले लेंगे। आज मेरे द्वारा मारे जाने पर गीदड़ों के झुण्ड, बाजों के समूह और गिद्ध तुम्हारे ऊपर टूट पड़ेंगे। परम दुर्मति राम आज ही तुम जैसे क्षत्रियाधम सदा से अनार्य, भक्त भाई को मेरे द्वारा मारा गया देखेंगे। वह देखेंगे कि तुम्हारा कवच टूट कर भूमि पर गिर पड़ा है, धनुष भी दूर जा पड़ा है और तुम्हारा सिर भी धड़ से अलग कर दिया गया है। इस अवस्था में तुम मेरे द्वारा मारे गये हो।

इति ब्रुवाणं संक्रुद्धः परुषं रावणात्मजम्।। २१।।
हेतुमद् वाक्यमर्थज्ञो लक्ष्मणः प्रत्युवाच ह।
वाग्बलं त्यज दुर्बुद्धे क्रूरकर्मन् हि राक्षस।। २२।।
अथ कस्माद् वदस्येतत् सम्पादय सुकर्मणा।
अकृत्वा कत्थसे कर्म किमर्थमिह राक्षस।। २३।।
कुरु तत् कर्म येनाहं श्रद्धेयं तव कत्थनम्।
अनुक्त्वा परुषं वाक्यं किंचिदप्यनवक्षिपन्।। २४।।
अविकत्थन् वधिष्यामि त्वां पश्य पुरुषादन।

इस प्रकार कठोर वचन कहते हुए रावण पुत्र से तब क्रुद्ध हो कर प्रयोजन को समझने वाले लक्ष्मण ने यह युक्तियुक्त उत्तर दिया कि अरे क्रूरकर्मा राक्षस। अपनी बोलने की शक्ति को छोड़। क्यों बकवास कर रहा है? करके दिखा। अरे राक्षस बिना किये ही बखान क्यों कर रहा है। काम को करके दिखा। जिससे तेरे कहने पर विश्वास हो। अरे राक्षस! देखना मैं बिना कुछ कठोर बातें कहे, बिना आक्षेप किये, बिना डींग मारे तेरा, वध कर दूँगा।

इत्युक्त्वा पञ्च नाराचानाकर्णापूरिताञ्शरान्।। २५।।
विजघान महावेगाल्लक्ष्मणो राक्षसोरसि।
स शरैराहतस्तेन सरोषोरावणात्मजः।। २६।।
सुप्रयुक्तैस्त्रिभिर्बाणैः प्रतिविव्याध लक्ष्मणम्।
स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः।। २७।।
विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः।
विक्रान्तौ बलसम्पन्नावुभौ विक्रमशालिनौ।। २८।।
उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ।

ऐसा कह कर लक्ष्मण ने उस राक्षस की छाती में महा वेग वाले पाँच नाराच बाण कान तक धनुष को खींच कर मारे। उन बाणों से घायल हो कर और क्रोध में भर कर रावण के पुत्र ने अच्छी तरह से प्रयोग किये गये तीन बाणों से लक्ष्मण को बदले में घायल किया। तब उन दोनों परस्पर विजय की इच्छा वाले नरसिंह और राक्षससिंहों में महा भयंकर तुमुल युद्ध होने लगा। वे दोनों ही परम वीर, शक्तिसम्पन्न, और विक्रमशाली थे। वे दोनों ही अत्यन्त दुर्जेय, अद्वितीय बल और तेज वाले थे।

युयुधाते तदा वीरौ ग्रहाविव नभोगतौ।। २९।।
युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव।
बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ।। ३०।।
नरराक्षसमुख्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम्।
ततः संधाय सौमित्रिः शरानाशीविषोपमान्।। ३१।।
मुमोच विशिखांस्तस्मिन् सर्पानिव विषोल्बणान्।
मूहूर्तमभवन्मूढर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः।। ३२।।

जैसे दो ग्रह आकाश में टकरा रहे हों, ऐसे ही वे दोनों वीर लड़ रहे थे। जैसे दो सिंह लड़ रहे हों, वैसे ही वे दोनों नरश्रेष्ठ और राक्षस श्रेष्ठ महात्मा बाणों के समूह की वर्षा करते हुए, एक दूसरे के सामने डटे हुए, उत्साह में भरे हुए युद्ध कर रहे थे। तब सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण ने जहरीले सर्प के समान भयानक बाणों का सन्धान करके उन विषैले साँप के समान बाणों को उस

पर छोड़ा। लक्ष्मण के उन बाणों से घायल हो कर इन्द्रजित एक मुहूर्त के लिये मूर्च्छित हो गया।

उपलभ्य मुहूर्तेन संज्ञां प्रत्यागतेन्द्रियः।
ददर्शावस्थितं वीरमाजौ दशरथात्मजम्॥ ३३॥
सोऽभिचक्राम सौमित्रिं रोषात् संरक्तलोचनः।
अब्रवीच्चैनमासाद्य पुनः स परुषं वचः॥ ३४॥
किं न स्मरसि तद् युद्धे प्रथमे मत्पराक्रमम्।
निबद्धस्त्वं सह भ्रात्रा यदा युधि विचेष्टसे॥ ३५॥
यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मत्पराक्रमः।
अद्य त्वां दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः॥ ३६॥

एक मुहूर्त में होश में आकर और इन्द्रियों के स्थिर हो जाने पर उसने युद्ध क्षेत्र में दशरथ पुत्र लक्ष्मण को खड़ा हुआ देखा। तब वह क्रोध से लाल आँखें करके उनके सामने गया और पुनः कठोर वाणी में बोला कि क्या तुम पहले युद्ध में मेरे द्वारा दिखाये गये पराक्रम को भूल गये हो? जब तुम अपने भाई के साथ मेरे द्वारा बांध लिये जाने पर छटपटा रहे थे। यदि तुमने उस पहले युद्ध में मेरा पराक्रम नहीं देखा था, तो आज मैं तुम्हें दिखाऊँगा। तुम ठीक तरह से खड़े रहो।

इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम्।
दशभिस्तु हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः॥ ३७॥
ततः शरशतेनैव सुप्रयुक्तेन वीर्यवान्।
क्रोधाद् द्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद विभीषणम्॥ ३८॥
तद् दृष्ट्वेन्द्रजिता कर्म कृतं रामानुजस्तदा।
अचिन्तयित्वा प्रहसन्नैतत् किंचिदिति ब्रुवन्॥ ३९॥
मुमोच च शरान् घोरान् संगृह्य नरपुंगवः।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं लक्ष्मणो युधि॥ ४०॥

ऐसा कह कर उसने सात बाणों से लक्ष्मण को और दस उत्तम तीखी धार वाले बाणों से हनुमान जी को बींध दिया। फिर दुगने क्रोध से भर कर उस तेजस्वी ने अच्छी तरह से प्रयोग किये हुए सौ बाणों से विभीषण को बींध दिया। इन्द्रजित के उस कार्य को देख कर राम के अनुज लक्ष्मण ने उसकी कुछ भी पवाह न करते हुए और हँसते हुए कहा कि यह तो कुछ भी नहीं है। फिर निर्भय मुख वाले नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ने उस युद्ध में क्रुद्ध हो कर भयानक बाणों को लेकर उन्हें रावण पुत्र के ऊपर छोड़ा।

नैवं रणगताः शूराः प्रहरन्ति निशाचर।
लघवश्चाल्पवीर्याश्च शरा हीमे सुखास्तव॥ ४१॥
नैवं शूरास्तु युध्यन्ते समरे युद्धकाङ्क्षिणः।
इत्येवं तं ब्रुवन् धन्वी शरैरभिववर्ष ह॥ ४२॥
तस्य बाणैः सुविध्वस्तं कवचं काञ्चनं महत्।
व्यशीर्यत रथोपस्थे ताराजालमिवाम्बरात्॥ ४३॥
विधूतवर्मा नाराचैर्बभूव स कृतव्रणः।
इन्द्रजित् समरे वीरः प्रत्यूषे भानुमानिव॥ ४४॥

फिर वे बोले कि अरे राक्षस! युद्ध में आये हुए वीर इस प्रकार के प्रहार नहीं करते। तुम्हारे ये बाण हल्के, कम शक्ति वाले और सुख ही देने वाले हैं। युद्ध की इच्छा रखने वाले शूरवीर इस प्रकार से युद्ध नहीं करते हैं। ऐसा कहते हुए उन धनुर्धर ने उस पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। उनके बाणों से इन्द्रजित का सुवर्ण का विशाल कवच टूट कर रथ की बैठक में उसी तरह से गिर गया जैसे आकाश से तारों का समूह टूट कर गिर पड़ा हो। कवच रहित हो जाने पर नाराचों के प्रहार से उसके शरीर में घाव हो गये और वह वीर इन्द्रजित युद्ध में प्रातः कालीन सूर्य के समान दिखाई देने लगा।

ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः।
बिभेद समरे वीरो लक्ष्मणं भीमविक्रमः॥ ४५॥
व्यशीर्यत महद्दिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य तु।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुररिंदमौ॥ ४६॥
अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युध्येतां तुमुलं युधि।
शरसंकृत्तसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ॥ ४७॥

तब वीर और भयानक विक्रम वाले रावण पुत्र ने अत्यन्त क्रोध में भर कर उस युद्ध में लक्ष्मण को हजार बाणों से अर्थात असंख्य बाणों से घायल कर दिया। लक्ष्मण का वह दिव्य और महान कवच छिन्न-भिन्न हो गया। दोनों शत्रुओं को नष्ट करने वाले वीर तब एक दूसरे पर आक्रमण प्रत्याक्रमण करने लगे। बार-बार लम्बी साँसें लेते हुए वे दोनों भयानक युद्ध कर रहे थे। उनके सारे अंग बाणों से छिन्न हो रहे थे। वे सब तरफ से खून से भर गये थे।

सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः।
ततक्षतुर्महात्मानौ रणकर्मविशारदौ॥ ४८॥
बभूवतुश्चात्मजये यत्तौ भीमपराक्रमौ।
शरवर्षं ततो घोरं मुञ्चतोर्भीमनिःस्वनम्॥ ४९॥
सासारयोरिवाकाशे नीलयोः कालमेघयोः।
तयोरथ महान् कालो व्यतीयाद् युध्यमानयोः॥ ५०॥
न च तौ युद्धवैमुख्यं क्लमं चाप्युपजग्मतुः।
अस्त्राण्यस्त्रविदां श्रेष्ठौ दर्शयन्तौ पुनः पुनः॥ ५१॥

वे दोनों वीर इस प्रकार बहुत देर तक तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को काटते रहे। वे दोनों ही महात्मा रणकर्म में विशारद और भयंकर पराक्रम वाले थे। दोनों अपनी अपनी विजय के लिये प्रयत्न कर रहे थे। वे दोनों उस समय आकाश में धूआँधार वर्षा करने वाले नीले प्रलयकाल के बादलों के समान भयानक गर्जना करते हुए बाणों की वर्षा कर रहे थे। उन दोनों का इस प्रकार युद्ध करते हुए लम्बा समय व्यतीत हो गया। न तो उन दोनों में से कोई युद्ध से विमुख हुआ और न किसी ने थकावट महसूस की। वे दोनों अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठवेत्ता थे और अपने अस्त्र कौशल का बार-बार प्रदर्शन कर रहे थे।

व्यपेतदोषमस्यन्तौ लघु चित्रं च सुष्ठु च।
उभौ तु तुमुलं घोरं चक्रतुर्नरराक्षसौ।। ५२।।

तयोः पृथक् पृथग् भीमः शुश्रुवे तलनिस्वनः।
स कम्पं जनयामास निर्घात इव दारुणः।। ५३।।
तयोः स भ्राजते शब्दस्तथा समरमत्तयोः।
सुघोरयोर्निष्टनतोर्गगने मेघयोरिव।। ५४।।

वे दोनों मनुष्य और राक्षस दोषों से रहित, उत्तम रीति से, विचित्र प्रकारों से और फुर्ती से बाण वर्षा करते हुए भयानक युद्ध कर रहे थे। उन दोनों की प्रत्यंचा और हथेली का जो पृथक्-पृथक भयानक शब्द सुनाई दे रहा था, वह विद्युतपात के समान हृदय में दुखदायी कँपकँपी उत्पन्न कर रहा था। उन दोनों युद्धोन्मत वीरों का वह शब्द आकाश में टकराते हुए भयानक बादलों की गड़गड़ाहट के समान लग रहा था।

उनहत्तरवाँ सर्ग

विभीषण का राक्षसों पर प्रहार और वानर यूथपतियों को प्रोत्साहन देना। लक्ष्मण का इन्द्रजित के सारथी और घोड़ों का वध।

युध्यमानौ ततो दृष्ट्वा प्रसक्तौ नरराक्षसौ।
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ परस्परजयैषिणौ।। १।।
तयोर्युद्धं द्रष्टुकामो वरचापधरो बली।
शूरः स रावणभ्राता तस्थौ संग्राममूर्धनि।। २।।
ततो विस्फारयामास महद् धनुरवस्थितः।
उत्ससर्ज च तीक्ष्णाग्रान् राक्षसेषु महाशरान्।। ३।।
ते शराः शिखिसंस्पर्शा निपतन्तः समाहिताः।
राक्षसान् द्रावयामासुर्वज्राणीव महागिरीन्।। ४।।

वे दोनों मनुष्य और राक्षस अर्थात लक्ष्मण और इन्द्रजित, जब परस्पर विजय की इच्छा से मदोन्मत्त हाथियों के समान युद्ध कर रहे थे, तब उनके युद्ध को देखने की इच्छा से श्रेष्ठ धनुष को धारण कर बलवान रावण के भाई विभीषण भी संग्राम के मुहाने पर आकर खड़े हो गये। वहाँ खड़े हुए उन्होंने अपने विशाल धनुष को खींच कर तीखी नोक वाले विशाल बाणों को राक्षसों पर छोड़ना आरम्भ किया। वे अग्नि के समान स्पर्श वाले बाण, जिन्हें सावधानी के साथ चलाया जा रहा था, राक्षसों पर गिर कर उन्हें उसी प्रकार विदीर्ण करने लगे, जैसे विद्युत् के आघात पर्वतों को विदीर्ण कर देते हैं।

विभीषणस्यानुचरास्तेऽपि शूलासिपट्टिशैः।
चिच्छिदुः समरे वीरान् राक्षसान् राक्षसोत्तमाः।। ५।।

राक्षसैस्तैः परिवृतः स तदा तु विभीषणः।
बभौ मध्ये प्रधृष्टानां कलभानामिव द्विपः।। ६।।
ततः संचोदमानो वै हरीन् रक्षोवधप्रियान्।
उवाच वचनं काले कालज्ञो रक्षसां वरः।। ७।।
एकोऽयं राक्षसेन्द्रस्य परायणमवस्थितः।
एतच्छेषं बलं तस्य किं तिष्ठत हरीश्वराः।। ८।।

विभीषण के सेवक भी, जो वीर राक्षस थे, शूल, तलवार और पट्टिशों के द्वारा राक्षस वीरों को युद्ध में छिन्न करने लगे। तब उन राक्षसों के बीच में खड़े हुए विभीषण जो समय को जानने वाले थे, राक्षसों के वध से प्यार करने वाले वानरों से समयानुसार यह वचन कहने लगे कि हे वानरेश्वरों! तुम खड़े हुए क्या देखते हो? यह तुम्हारे सामने राक्षसराज रावण का एक मात्र सहारा इन्द्रजित खड़ा हुआ है और उसकी सेना भी केवल इतनी ही शेष है।

अस्मिंश्च निहते पापे राक्षसे रणमूर्धनि।
रावणं वर्जयित्वा तु शेषमस्य बलं हतम्।। ९।।
प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महाबलः।
कुम्भकर्णश्च कुम्भश्च धूम्राक्षश्च निशाचरः।। १०।।

युद्ध के मुहाने पर इस पापी राक्षस के मारे जाने पर रावण को छोड़ कर उसकी सारी शक्ति को समाप्त

हुआ समझो। वीर प्रहस्त और निकुम्भ मारे गये, महाबली कुम्भकर्ण, कुम्भ और राक्षस धूम्राक्ष भी चले गये।

जम्बुमाली महामाली तीक्ष्णवेगोऽशनिप्रभः।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च वज्रदंष्ट्रश्च राक्षसः॥ ११॥
संह्रादी विकटोऽरिघ्नस्तपनो मन्द एव च।
प्रघासः प्रघसश्चैव प्रजङ्घो जङ्घ एव च॥ १२॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च वीर्यवान्।
विद्युज्जिह्वो द्विजिह्वश्च सूर्यशत्रुश्च राक्षसः॥ १३॥
अकम्पनः सुपार्श्वश्च चक्रमाली च राक्षसः।
कम्पनः सत्त्ववन्तौ तौदेवान्तकनरान्तकौ॥ १४॥

जम्बुमाली, महामाली, तीक्ष्णवेग, अशनिप्रभ, सुप्तघ्न, यज्ञकोप और राक्षस वज्रदंष्ट्र, संह्रादी, विकट, अरिघ्न, तपन, मन्द, प्रघास, प्रघस, प्रजंघ जंघ, दुर्धर्ष अग्निकेतु, पराक्रमी रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, सूर्यशत्रु अकम्पन, सुपार्श्व, चक्रमाली, कम्पन और शक्तिशाली देवान्तक, नरान्तक ये सारे मारे जा चुके हैं।

एतान् निहत्यातिबलान् बहून् राक्षससत्तमान्।
बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वा लङ्घ्यतां गोष्पदं लघु॥ १५॥
एतावदेव शेषं वो जेतव्यमिति वानराः।
हताः सर्वे समागम्य राक्षसा बलदर्पिताः॥ १६॥
अयुक्तं निधनं कर्तुं पुत्रस्य जनितुर्मम।
घृणामपास्य रामार्थे निहन्यां भ्रातुरात्मजम्॥ १७॥
हन्तुकामस्य मे बाष्पं चक्षुश्चैव निरुध्यति।
तमेवैष महाबाहुर्लक्ष्मणः शमयिष्यति॥ १८॥

इन सारे अति बलशाली राक्षसश्रेष्ठों को मार कर तुमने मानो हाथों से सागर को पार कर लिया है। अब यह केवल गौ के खुर के समान छोटा राक्षस बचा हुआ है। इसे भी पार कर लो। हे वानरों! तुम्हारे जीतने के लिये बस इतना ही कार्य बाकी है, शेष सारे अपने बल पर अभिमान करने वाले राक्षस तुम्हारे सामने आकर मारे गये हैं। मैं इस इन्द्रजित के बाप के समान हूँ और यह मेरे पुत्र के समान है, इसलिये इसे मारना मेरे लिये अनुचित है, पर फिर भी मैं राम के लिये दया को त्याग कर भाई के पुत्र को मारने के लिये उद्यत हूँ। मैं इस पर प्रहार करना चाहता हूँ, पर मेरे आँसू आकर आँखों को बन्द कर देते हैं। इसलिये महाबाहु लक्ष्मण ही इसका विनाश करेंगे।

ततस्तु कपिशार्दूलाः क्ष्वेडन्तश्च पुनः पुनः।
मुमुचुर्विविधान् नादान् मेघान् दृष्ट्वेव बर्हिणः॥ १९॥
जाम्बवानपि तैः सर्वैः स्वयूथ्यैरभिसंवृतः।
तेऽश्मभिस्ताडयामासुर्नखैर्दन्तैश्च राक्षसान्॥ २०॥
निघ्नन्तमृक्षाधिपतिं राक्षसास्ते महाबलाः।
परिवव्रुर्भयं त्यक्त्वा तमनेकविधायुधाः॥ २१॥
शरैः परशुभिस्तीक्ष्णैः पट्टिशैर्यष्टितोमरैः।
जाम्बवन्तं मृधे जघ्नुर्निघ्नन्तं राक्षसीं चमूम्॥ २२॥

तब वानरसिंह बार-बार गर्जना करने लगे और जैसे मोर मेघों को देख कर बोलते हैं, वैसे ही तरह तरह से जय घोषों को करने लगे। अपनी सेना के सारे सैनिकों से घिरे हुए जाम्बवान भी पत्थरों, बघनखों और दन्तनाम के शस्त्रों से राक्षसों को मारने लगे। प्रहार करते हुए उस ऋक्ष जाति के राजा जाम्बवान को अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र धारण किये हुए महाबली राक्षसों ने भय को छोड़ कर घेर लिया। राक्षसों की सेना को मारते हुए उस जाम्बवान को वे उस युद्ध में, बाणों से, तीखे फरसों से, पट्टिशों, डंडों और तोमरों से मारने लगे।

हनूमानपि संक्रुद्धः सालमुत्पाट्य पर्वतात्।
स लक्ष्मणं स्वयं पृष्ठादवरोप्य महामनाः॥ २३॥
रक्षसां कदनं चक्रे दुरासदः सहस्रशः।
तौ प्रयुद्धौ तदा वीरौ मृधे लक्ष्मणराक्षसौ॥ २४॥
शरौघानभिवर्षन्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम्।
अभीक्ष्णमन्तर्दधतुः शरजालैर्महाबलौ॥ २५॥
चन्द्रादित्याविवोष्णान्ते यथा मेघैस्तरस्विनौ।

तब क्रोध में आये महामना हनुमान ने भी, जिन्हें परास्त करना अत्यन्त कठिन था, लक्ष्मण जी को अपनी पीठ से उतार कर पर्वत से एक साल के वृक्ष को उखाड़ लिया और उसके द्वारा उन्होंने हजारों राक्षसों का संहार कर दिया। उस समय युद्ध में वे दोनों लक्ष्मण और राक्षस इन्द्रजित् परस्पर बाण वर्षा करते हुए जूझ रहे थे। वे दोनों वेगशाली और महाबली बाणों के जाल से एक दूसरे को बार-बार ऐसे ही ढक देते थे जैसे वर्षा ऋतु में बादल सूर्य और चंद्रमा को ढक देते हैं।

नह्यादानं न संधानं धनुषो वा परिग्रहः॥ २६॥
न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः।
न मुष्टिप्रतिसंधानं न लक्ष्यप्रतिपादनम्॥ २७॥
अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात्।
अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान् कनकभूषणान्॥ २८॥
शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान्।

वे दोनों उस समय इतनी फुर्ती से हाथ चला रहे थे कि उनका बाण को लेना, उसे धनुष पर रखना,

धनुष को खींचना, धनुष को पकड़ना, मुट्ठी को भींचना, निशाना लगाना, इन सारे कामों में से कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। तभी सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण ने राक्षससिंह इन्द्रजित के सुनहला साज पहने हुए चारों काले घोड़ों को चार बाणों से मार दिया।

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च।। २९।।
सम्पूर्णायतमुक्तेन सुपत्रेण सुवर्चसा।
महेन्द्राशनिकल्पेन सूतस्य विचरिष्यतः।। ३०।।
स तेन बाणाशनिना तलशब्दानुनादिना।
लाघवाद् राघवः श्रीमाञ्शिरः कायादपाहरत्।। ३१।।

फिर श्रीमान लक्ष्मण ने फुर्ती से एक दूसरे पीले रंग के तीखे भल्ल से, जिसमें अच्छे पंख लगे हुए थे, जो अच्छी चमक वाला था और इन्द्र के वज्र के समान भयंकर था, जिसको छोड़ने पर हथेली का शब्द भी गूँजने लगता था, ऐसे बाण रूपी वज्र के द्वारा उसके विचरते हुए सारथी का भी सिर धड़ से अलग कर दिया।

सत्तरवाँ सर्ग

इन्द्रजित् और लक्ष्मण का भयंकर युद्ध और इन्द्रजित् का वध।

ततस्तान् राक्षसान् सर्वान् हर्षयन् रावणात्मजः।
स्तुन्वानो हर्षमाणश्च इदं वचनमब्रवीत्।। १।।
तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः।
नेह विज्ञायते स्वो वा परो वा राक्षसोत्तमाः।। २।।
धृष्टं भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै।
अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगे।। ३।।
तथा भवन्तः कुर्वन्तु यथेमे हि वनौकसः।
न युध्येयुर्महात्मानः प्रविष्टे नगरं मयि।। ४।।

तब उन सारे राक्षसों की प्रशंसा करते हुए, उनका हर्ष बढ़ाते हुए और स्वयं को हर्षित प्रकट करते हुए रावण पुत्र इन्द्रजित् ने कहा कि अंधेरे के बढ़ जाने से ये सारी दिशाएँ छिप गयी हैं। हे श्रेष्ठ राक्षसों! अब अपने और पराये की पहचान नहीं हो रही हैं ऐसे में मैं रथ में बैठ कर पुनः युद्ध के लिये आऊँगा। तुम वानरों को मोहित करने के लिये निर्भय होकर युद्ध करो। तुम लोग ऐसा करो, जिससे मेरे नगर में चले जाने पर ये महात्मा वानर बहुत भयानक युद्ध न करें।

इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा।। ५।।
स रथं भूषयित्वाथ रुचिरं हेमभूषितम्।
प्रासासिशरसंयुक्तं युक्तं परमवाजिभिः।। ६।।
अधिष्ठितं हयज्ञेन सूतेनाप्तोपदेशिना।
आरुरोह महातेजा रावणिः समितिंजयः।। ७।।
स राक्षसगणैर्मुख्यैर्वृतो मन्दोदरीसुतः।
निर्ययौ नगराद् वीरः कृतान्तबलचोदितः।। ८।।

ऐसा कह कर, शत्रुओं को मारने वाला वह रावण का पुत्र वानरों को धोखा देकर, रथ के लिये नगर में प्रविष्ट हो गया। वहाँ उस युद्ध विजयी, महा तेजस्वी रावणपुत्र ने सुन्दर सुवर्ण भूषित रथ को तैयार कराया। वह प्रास, तलवार व बाणों से युक्त था, उसमें अच्छे घोड़े जुते हुए थे। वह रथ घोड़ों के जान कार और हितकारी सलाह देने वाले सारथी के सहित था। ऐसे रथ में वह मन्दोदरी का वीर पुत्र बैठ कर प्रमुख राक्षस वीरों से घिरा हुआ, मृत्यु की शक्ति से प्रेरित हो कर बाहर निकला।

सोऽभिनिष्क्रम्य नगरादिन्द्रजित् परमौजसा।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्लक्ष्मणं सविभीषणम्।। ९।।
ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम्।
वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च विभीषणः।। १०।।
विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात् तस्य धीमतः।
रावणिश्चापि संक्रुद्धो रणे वानरयूथपान्।। ११।।
पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः।
स मण्डलीकृतधनू रावणिः समितिंजयः।। १२।।
हरीनभ्यहनत् क्रुद्धः परं लाघवमास्थितः।

नगर से बाहर निकल कर इन्द्रजित ने अत्यन्त उत्साह और वेग से विभीषण सहित लक्ष्मण पर आक्रमण किया। तब रावणपुत्र को रथ में बैठा देख कर उस धीमान की फुर्ती से लक्ष्मण, महा तेजस्वी वानर और राक्षस विभीषण सब आश्चर्य में पड़ गये। तब रावण पुत्र ने भी क्रोध में भर कर उस युद्ध क्षेत्र में अपने बाण समूहों से सैंकड़ों तथा हजारों वानर यूथपतियों को गिरा दिया। उस युद्ध विजयी रावण पुत्र ने फुर्ती के साथ धनुष को मण्डलाकार बनाते हुए क्रोध में भर कर वानरों को मारना आरम्भ कर दिया।

ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः।
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन् पाणिलाघवम्।। १३।।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्जं चक्रे त्वरन्निव।
तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणो निरकृन्तत।। १४।।
अथैनं छिन्नधन्वानमाशीविषविषोपमैः।
विव्याधोरसि सौमित्री रावणिं पञ्चभिः शरैः।। १५।।
ते तस्य कायं निर्भिद्य महाकार्मुकनिःसृताः।
निपेतुर्धरणीं बाणा रक्ता इव महोरगाः।। १६।।

तब उस युद्ध में लक्ष्मण भी क्रोध से जलने लगे। उन्होंने अपने हाथ की फुर्ती दिखाते हुए उसके धनुष को काट दिया। इन्द्रजित ने तब जल्दी से दूसरा धनुष लेकर उसे तैयार किया पर लक्ष्मण जी ने तीन बाणों से उसे भी काट दिया। इस प्रकार उसका धनुष काट कर सुमित्रा पुत्र ने रावणपुत्र की छाती को पाँच विषैले सर्पों के समान बाणों से बींध दिया। विशाल धनुष से निकले हुए वे बाण उसके शरीर को छेद कर लाल रंग के बड़े साँपों के समान भूमि पर गिर पड़े।

स च्छिन्नधन्वा रुधिरं वमन् वक्त्रेण रावणिः।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठं दृढज्यं बलवत्तरम्।। १७।।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुघातिना।
असक्तं प्रेषयामास लक्ष्मणाय बहूञ्शरान्।। १८।।
तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद परवीरहा।
सारथेरस्य च रणे रथिनो रथसत्तमः।। १९।।
शिरो जहार धर्मात्मा भल्लेनानतपर्वणा।
असूतास्ते हयास्तत्र रथमूहुरविक्लवाः।। २०।।
मण्डलान्यभिधावन्ति तदद्भुतमिवाभवत्।

धनुष के कट जाने पर मुख से खून को गिराते हुए उस रावण पुत्र ने एक दूसरे अधिक मजबूत और दृढ़ प्रत्यंचा वाले श्रेष्ठ धनुष को हाथ में लिया। शत्रुघाती बलवान शत्रु से अत्यन्त घायल होने पर भी उसने लक्ष्मण जी पर लगातार बहुत सारे बाणों की वर्षा की। पर शत्रुओं को नष्ट करने वाले, रथियों में श्रेष्ठ, धर्मात्मा लक्ष्मण ने उन बाणों को अपने पास पहुँचने से पूर्व ही तीक्ष्ण बाणों से निरस्त कर दिया और उस युद्धक्षेत्र में उसके सारथी का भी सिर उन्होंने झुकी गाँठ वाले भल्ल से उड़ा दिया। किन्तु सारथी के न रहने पर भी वे घोड़े बिना व्याकुल हुए रथ को खींचते रहे और मण्डलाकार गति से दौड़ते रहे। यह एक अद्भुत बात थी।

अमर्षवशमापन्नः सौमित्रिर्दृढविक्रमः।। २१।।
प्रत्यविध्यद्धयांस्तस्य शरैर्वित्रासयन् रणे।
अमर्षमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो रणे।। २२।।
विव्याध दशभिर्बाणैः सौमित्रिं तममर्षणम्।
स तथाप्यर्दितो बाणै राक्षसेन तदा मृधे।। २३।।
तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः।
विकृष्येन्द्रजितो युद्धे वदने शुभकुण्डले।। २४।।

तब दृढ़ पराक्रम वाले लक्ष्मण उसके घोड़ों को भयभीत करते हुए बाणों से बींधने लगे। तब रावण पुत्र इन्द्रजित ने लक्ष्मण जी के इस कार्य को न सहन करते हुए, उन असहनशील सुमित्रापुत्र के दस बाण मारे। राक्षस के द्वारा युद्ध में इस प्रकार पीड़ित किये जाने पर लक्ष्मण जी ने इन्द्रजित के मुख पर विद्यमान कुण्डलों को धनुष को खींच कर छोड़े गए पाँच बाणों से बींध दिया।

लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ विशिखैर्भीमविक्रमौ।। २५।।
ततः समरकोपेन संयुतो रावणात्मजः।
विभीषणं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध वदने शुभे।। २६।।
तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान्।
विभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः।। २७।।
स हताश्वादवप्लुत्य रथान्निहतसारथेः।
अथ शक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह।। २८।।

लक्ष्मण और इन्द्रजित दोनों ही वीर थे, दोनों ही महाबली थे, उनके धनुष भी विशाल थे। वे भयानक पराक्रम वाले वीर एक दूसरे पर बाणों से प्रहार कर रहे थे। तब युद्ध के क्रोध से युक्त होकर रावण पुत्र ने विभीषण के सुन्दर मुख को तीन बाणों से बींध दिया। इससे अत्यधिक क्रुद्ध होकर महातेजस्वी विभीषण ने दुरात्मा रावणपुत्र के घोड़ों को गदा के प्रहार से मार दिया। तब जिसका सारथी मारा जा चुका था और घोड़े भी मारे गये, उस रथ से कूद कर महा तेजस्वी इन्द्रजित ने अपने चाचा पर शक्ति का प्रहार किया।

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः।
चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधापातयद् भुवि।। २९।।
तस्मै दृढधनुः क्रुद्धो हताश्वाय विभीषणः।
वज्रस्पर्शसमान् पञ्च ससर्जोरसि मार्गणान्।। ३०।।
सुसंरब्धस्तु सौमित्रिरस्त्रं वारुणमाददे।
रौद्रं महेन्द्रजिद् युद्धेऽप्यसृजद् युधि निष्ठितः।। ३१।।

उस शक्ति को आते हुए देख कर, सुमित्रा का आनन्द बढ़ाने वाले लक्ष्मण ने उसे तीखे बाणों से दस हिस्सों में काट कर भूमि पर गिरा दिया। तब दृढ़ धनुष धारण

करने वाले क्रुद्ध विभीषण ने उस इन्द्रजित की छाती में, जिसके घोड़े मारे जा चुके थे, वज्र के समान स्पर्श वाले पाँच बाणों से प्रहार किया। उसके पश्चात सुमित्रा पुत्र ने अत्यन्त क्रोध में भर कर वारुणास्त्र का प्रयोग किया, पर युद्ध भूमि में खड़े हुए इन्द्रजित ने उसके प्रतिकार में रौद्रास्त्र को छोड़ दिया।

तेन तद्विहितं शस्त्रं वरुणं परमाद्भुतम्।
ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित् समितिंजयः।। ३२।।
आग्नेयं संदधे दीप्तं स लोकं संक्षिपन्निव।
सौरेणास्त्रेण तद् वीरो लक्ष्मणः पर्यवारयत्।। ३३।।
अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः।
आददे निशितं बाणमासुरं शत्रुदारणम्।। ३४।।
तद् दृष्ट्वा लक्ष्मणः संख्ये घोरमस्त्रमथासुरम्।
माहेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत्।। ३५।।

उस रौद्रास्त्र ने उस अत्यन्त अद्भुत वारुणास्त्र को शान्त कर दिया। उसके बाद युद्ध विजयी महा तेजस्वी इन्द्रजित ने कुपित होकर दीप्तिमान आग्नेयास्त्र का सन्धान किया, मानों वह उससे संसार को जलाना चाहता हो। वीर लक्ष्मण ने उसे सूर्यास्त्र के द्वारा निवारित कर दिया। अपने अस्त्र का निवारण देख कर रावणपुत्र क्रोध से मानो अचेत सा हो गया। तब उसने शत्रु को नष्ट करने वाले तीखे बाण आसुरास्त्र को हाथ में लिया। उस घोर आसुरास्त्र को देख कर तेजस्वी लक्ष्मण ने युद्ध में माहेश्वरास्त्र से उसका निवारण कर दिया।

अथान्यं मार्गणं श्रेष्ठं संदधे राघवानुजः।
ऐन्द्रास्त्रेण समायुज्य ससर्जेन्द्रजितं प्रति।। ३६।।
तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम्।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले।। ३७।।
पतितं समभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः।। ३८।।
वध्यमाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः।

तब राम के अनुज लक्ष्मण ने एक दूसरे श्रेष्ठ बाण का सन्धान किया। उन्होंने उसे ऐन्द्रास्त्र से युक्त कर इन्द्रजित की तरफ छोड़ दिया। उस बाण ने इन्द्रजित के जगमगाते हुए कुण्डलों तथा शिरस्त्राण सहित दीप्तिमान सिर को उसके शरीर से अलग कर दिया और उसे भूमिपर गिरा दिया। तब विभीषण सहित सारे वानर प्रसन्नता से सिंहनाद करने लगे। इन्द्रजित को गिरा हुआ जान कर राक्षसों की वह विशाल सेना विजयाकांक्षी वानरों के द्वारा मारी जाती हुई सब तरफ भागने लगी।

ततोऽभ्यनन्दन् संहृष्टाः समरे हरियूथपाः।। ३९।।
तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम्।
विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तु ष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम्।। ४०।।

उस युद्धस्थल में प्रसन्न हुए वानर यूथपति उस अप्रतिम बल वाले राक्षस श्रेष्ठ को मारा हुआ देख कर लक्ष्मण जी का अभिनन्दन करने लगे। विभीषण, हनुमान और ऋक्ष यूथपति जाम्बवान ने उस विजय के लिये लक्ष्मण जी का अभिनन्दन और उनकी प्रशंसा की।

इकहत्तरवाँ सर्ग

लक्ष्मण और विभीषण आदि का श्रीराम को इन्द्रजित के वध का समाचार सुनाना। श्रीराम का प्रसन्न होकर लक्ष्मण को हृदय से लगाना। सुषेण द्वारा लक्ष्मण आदि की चिकित्सा।

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
बभूव हृष्टस्तं हत्वा शत्रुजेतारमाहवे।। १।।
ततः स जाम्बवन्तं च हनूमन्तं च वीर्यवान्।
संनिपत्य महातेजास्तांश्च सर्वान् वनौकसः।। २।।
आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः।। ३।।
रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः।। ४।।

उस शत्रुओं को जीतने वाले इन्द्रजित का युद्ध में वध करके शुभ लक्षण लक्ष्मण, जिनका शरीर रक्त से भरा हुआ था, बड़े प्रसन्न हुए। तब वे महा तेजस्वी और वीर्यवान, जाम्बवान, हनुमान और सारे वानरों से दौड़ कर मिले और शीघ्रता से वहाँ आये जहाँ सुग्रीव और श्रीराम थे। उस समय उन्होंने विभीषण और हनुमान का सहारा लिया हुआ था। तब विभीषण ने प्रसन्न होकर श्रीराम से निवेदन किया कि महात्मा लक्ष्मण ने रावण पुत्र का सिर काट दिया।

श्रुत्वैव तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे वाक्यं चेदमुवाच ह।। ५।।
साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म चासुकरं कृतम्।

रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय।। ६।।
स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं कीर्तिवर्धनम्।
लज्जमानं बलात् स्नेहादङ्कमारोप्यवीर्यवान्।। ७।।
उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम्।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत।। ८।।

लक्ष्मण के द्वारा इन्द्रजित के वध की बात सुन कर महा तेजस्वी राम बड़े प्रसन्न हुए और यह वाक्य बोले– शाबास लक्ष्मण! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने बहुत कठिन कार्य पूरा कर दिया। इन्द्रजित के नष्ट होने से अब यह समझ लो कि हम युद्ध जीत गये। ऐसा कह कर उन तेजस्वी राम ने कीर्ति को बढ़ाने वाले और लज्जित होते हुए लक्ष्मण को स्नेह पूर्वक अपनी गोद में बैठा कर उनका सिर सूँघा और शस्त्रों के आघात से पीड़ित भाई को हृदय से लगा कर वे प्यार से उनकी तरफ बार-बार देखने लगे।

शल्यसम्पीडितं शस्तं निश्वसन्तं तु लक्ष्मणम्।
रामस्तु दुःखसंतप्तं तं तु निश्वासपीडितम्।। ९।।
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन्।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः।। १०।।
कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि।। ११।।
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन् दुरात्मनि।
रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे।। १२।।
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः।

लक्ष्मण जी बाणों से पीड़ित हो रहे थे। उनके शरीर में घाव थे, वे लम्बी साँसें ले रहे थे, उन्हें साँस लेने में कष्ट हो रहा था। उन दुख से संतप्त लक्ष्मण को पुरुष श्रेष्ठ राम ने सिर से सूँघ कर, उनके शरीर पर जल्दी जल्दी हाथ फेर कर, उन्हें आश्वासन देकर, यह कहा कि तुमने अपने कठिन कार्य से बड़े कल्याण को सम्पन्न किया है। आज मैं उसके पुत्र के मारे जाने पर रावण को भी युद्ध में मारा हुआ समझता हूँ। उस दुष्ट के मारे जाने पर आज मैं अपने को शत्रु पर विजयी समझता हूँ। हे वीर! तुमने युद्ध में उस क्रूर रावण की सौभाग्य से दाहिनी बाँह काट डाली है, क्योंकि वही उसका सबसे बड़ा सहारा था।

विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद् रणे।। १३।।
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथंचिद् विनिपातितः।
निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः।। १४।।
बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम्।
तं पुत्रवधसंतप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम्।। १५।।
बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम्।

विभीषण और हनुमान ने भी युद्ध में महान कार्य किया। तुमने तीन दिन और रात में उस वीर को किसी तरह से गिरा दिया है और मुझे शत्रु रहित बना दिया है। अब रावण ही युद्ध के लिये निकलेगा। अपने पुत्र को मारा हुआ सुन कर अब रावण व्यूहबद्ध विशाल सेना के साथ बाहर आयेगा। उस पुत्र के वध से दुखी, बाहर आये हुए दुर्जय राक्षसराज को मैं अपनी विशाल सेना से घेर कर मार दूँगा।

त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे।। १६।।
न दुष्प्रापा हते तस्मिञ्शक्रजेतरि चाहवे।
स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः।। १७।।
रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत्।

हे लक्ष्मण! इन्द्र को भी जीतने वाले इन्द्रजित के तुम्हारे द्वारा युद्ध में मारे जाने पर, तुम्हारे जैसे सहारे के होते हुए मुझे सीता को और सारे भूमंडल के राज्य को प्राप्त करना कठिन नहीं है। इस प्रकार अपने उस भाई को आश्वासन देकर और उसे छाती से लगा कर प्रसन्न हुए राम ने सुषेण को बुलाकर उससे कहा कि–

विशल्योऽयं महाप्राज्ञ सौमित्रिर्मित्रवत्सलः।। १८।।
यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुपाचर।
विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिः सविभीषणः।। १९।।
ऋक्षवानरसैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम्।
ये चाप्यन्येऽत्र युध्यन्ति सशल्या व्रणिनस्तथा।। २०।।
तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन क्रियन्ते सुखिनस्त्वया।
एवमुक्तः सरामेण महात्मा हरियूथपः।। २१।।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम्।

हे महा बुद्धिमान! ये मित्रों से प्रेम करने वाले सुमित्रा पुत्र, जिससे घाव रहित और पूरी तरह स्वस्थ हो जायें, तुम इनका ऐसा उपचार करो। ऋक्षों और वानरों की सेना के वृक्षों की सहायता से लड़ने वाले शूरवीरों को तथा दूसरे भी जो यहाँ लड़ते हुए बाणों से छिन्न और घायल हो जाते हैं, उन सबको प्रयत्न पूर्वक तुम्हीं सुखी बनाते हो, इसलिये लक्ष्मण को भी विभीषण आदि सहित जल्दी घाव रहित करो। राम के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वानरों के यूथपति उन महात्मा सुषेण ने लक्ष्मण की नाक में एक बहुत उत्तम ओषधि सुँघाई।

स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत।। २२।।
तदा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च।

विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया।। २३।।
सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सामकरोत् तदा।
ततः प्रकृतिमापन्नो हृतशल्यो गतक्लमः।
सौमित्रिर्मुमुदे तत्र क्षणेन विगतज्वरः।। २४।।

उस ओषधि की गन्ध को सूँघने से लक्ष्मण जी, घावों से रहित, भरे हुए घाव वाले और वेदना से रहित हो गये। राम की आज्ञा से तब उन्होंने विभीषण आदि सारे मित्रों और वानर प्रमुखों की चिकित्सा की। तब थोड़ी देर में लक्ष्मण जी बाणों के प्रभाव से और थकावट से रहित हो गये। उनका बुखार दूर हो गया और वे स्वस्थ होकर प्रसन्नता से भर गये।

तदैव रामः प्लवगाधिपस्तथा
विभीषणश्चर्क्षपतिश्च वीर्यवान्।
अवेक्ष्य सौमित्रिमरोगमुत्थितं
मुदा ससैन्याः सुचिरं जहर्षिरे।। २५।।

तब राम, वानरेश सुग्रीव, और तेजस्वी विभीषण तथा ऋक्षराज जाम्बवान, लक्ष्मण को स्वस्थ होकर खड़ा हुआ देख कर सेना सहित बड़े प्रसन्न हुए।

बहत्तरवाँ सर्ग

रावण का शोक और सुपार्श्व के समझाने पर उसका सीता के वध की इच्छा से निवृत्त होना।

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितो वधम्।
आचचक्षुरभिज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः।। १।।
युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः।
विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः।। २।।
स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम्।
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत्।। ३।।
उपलभ्य चिरात् संज्ञां राजा राक्षसपुंगवः।
पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः।। ४।।

रावण के सचिवों ने इन्द्रजित के वध के विषय में सुन कर तथा स्वयं आँखों के द्वारा निश्चय कर तुरन्त इसकी सूचना रावण को दी। उन्होंने कहा कि हे महाराज! आपका महा तेजस्वी पुत्र हमारे सैनिकों के देखते हुए ही विभीषण की सहायता से लक्ष्मण के द्वारा मार दिया गया। तब युद्ध में अपने पुत्र इन्द्रजित के भयंकर दुखदायी वध के घोर समाचार को सुन कर वह गहरी मूर्च्छा के वश में हो गया। बहुत देर बाद होश में आकर वह राक्षस श्रेष्ठ राजा पुत्र के शोक से व्याकुल और दीन तथा व्यथित इन्द्रियों वाला होकर विलाप करने लगा।

हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महाबल।
जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः।। ५।।
अद्य लोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथिवी च सकानना।। ६।।
एकेनेन्द्रजिता हीनाशून्येव प्रतिभाति मे।
अद्य नैर्ऋतकन्यानां श्रोष्याम्यन्तःपुरे रवम्।। ७।।
करेणुसङ्घस्य यथा निनादं गिरिगह्वरे।
यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परंतप।। ८।।
मातरं मां च भार्याश्च क्व गतोऽसि विहाय नः।

वह कहने लगा कि हाय मेरे महा बली पुत्र, हाय राक्षसों की सेना के मुखिया! तुमने तो इन्द्र को भी जीत लिया था, फिर आज तुम लक्ष्मण के आधीन कैसे हो गये? आज अकेले इन्द्रजित के बिना तीनों लोक और काननों सहित यह भूमि मुझे सूनी लग रही हैं। आज मुझे अन्तः पुर में राक्षस कन्याओं के रोने की ध्वनि सुननी पड़ेगी। जैसे गजराज के मारे जाने पर पर्वत कन्दराओं में हथिनियों का आर्तनाद सुनाई देता है। हे परंतप! तुम अपने युवराज के पद को, लंका को, राक्षसों को, माता को, मुझे और अपनी पत्नियों को, हम सबको छोड़ कर कहाँ चले गये?

मम नाम त्वया वीर गतस्य यमसादनम्।। ९।।
प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे।
स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणे च सराघवे।। १०।।
मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोऽसि विहाय नः।
एवमादिविलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम्।। ११।।
आविवेश महान् कोपः पुत्रव्यसनसम्भवः।
प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः।। १२।।
दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः।

हे वीर! मेरे मृत्यु लोक में जाने पर तुम्हें मेरे अन्त्येष्टि कर्म कराने चाहिये थे। पर तुमने उलटा ही कार्य कर दिया अर्थात तुम पहले चले गये, अब मुझे तुम्हारे

अन्त्येष्टि कर्म कराने होंगे। तुम राम, लक्ष्मण और सुग्रीव के जीवित रहते हुए, मेरे काँटे को बिना निकाले, हमें छोड़ कर कहाँ चले गये? इस प्रकार व्याकुल होकर विलाप करते हुए राक्षसों के राजा रावण में पुत्र के दुख के कारण महान कोप का संचार हो गया। एक तो पहले ही वह क्रोध युक्त स्वभाव का था फिर पुत्र शोक ने उसे और उत्तेजित कर दिया। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें उसे और भी प्रचण्ड बना देती है।

ललाटे भ्रुकुटीभिश्च संगताभिर्व्यरोचत।। १३।।
युगान्ते सह नक्रैस्तु महोर्मिभिरिवोदधिः।
तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनापि च।। १४।।
रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः।
तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः।। १५।।
दीपाभ्यामिव दीप्ताभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः।
कालाग्निरिव संक्रुद्धो यां यां दिशमवैक्षत।। १६।।
तस्यां तस्यां भयत्रस्ता राक्षसाः संविलिल्यिरे।

अपने माथे में क्रोध के कारण पड़ी हुई टेढ़ी भौहों से वह ऐसा दिखाई दे रहा था जैसे प्रलय काल में उठती हुई विशाल लहरों और जल-जन्तुओं से सागर दिखाई देता है। उस रावण की आँखें स्वाभाविक रूप से भी लाल थीं, पर अब क्रोधाग्नि के कारण और भी भयानक रूप से प्रज्वलित होती हुई दिखाई देने लगीं। क्रोध से भरे हुए उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। वे गिरते हुए आँसू ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे जलते हुए दो दीपकों से, ज्वालाओं से युक्त तेल की बूँदें गिर रही हों। प्रलय लाने वाली अग्नि के समान क्रोध में भरा हुआ वह उस समय जिस दिशा की तरफ देखता था, उस तरफ के राक्षस भयभीत होकर उसकी निगाहों से छिपने का प्रयत्न करते थे।

तमन्तकमिव क्रुद्धं चराचरचिखादिषुम्।। १७।।
वीक्षमाणं दिशः सर्वा राक्षसा नो चक्रमुः।
स पुत्रवधसंतप्तः क्रूरः क्रोधवशं गतः।। १८।।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत।
प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनः।। १९।।
दीनो दीनस्वरान् सर्वांस्तानुवाच निशाचरान्।

उस समय रावण मृत्यु के समान क्रोध में भर कर मानों सारे चराचर प्राणियों को खा जाने की इच्छा से सब तरफ देख रहा था। भय के कारण राक्षस लोग उसके पास जाने का साहस नहीं कर रहे थे। पुत्र के वध से दुखी और क्रोध में भरे क्रूर रावण ने उस समय बुद्धि से विचार कर सीता को मारने का निश्चय किया। भयानक आकृति और लाल आँखों वाला वह रावण जो उस समय और भी भयानक दिखाई दे रहा था, पुत्र के दुख से दुखी होकर दीन स्वर वाले उन सारे राक्षसों से बोला कि–

मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम्।। २०।।
किंचिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम्।
तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः।। २१।।
वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम्।
इत्येवमुक्त्वा सचिवान् खड्गमाशु परामृशत्।। २२।।
उद्धृत्य गुणसम्पन्नं विमलाम्बरर्चसम्।
निष्पपात स वेगेन सभार्यः सचिवैर्वृतः।। २३।।
रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः।

मेरे पुत्र ने वानरों को धोखा देने के लिये बनावटी सीता को असली सीता कह कर दिखाया और झूठे ही उसका वध किया था। अब उस झूठ को सच्चा करके दिखाऊँगा और अपना प्रिय कार्य करूँगा। उस दुष्ट क्षत्रिय में अनुरक्त सीता को मैं नष्ट कर दूँगा। ऐसा कह कर उसने शीघ्रता से तलवार को उठा लिया। गुणों से युक्त और निर्मल आकाश के समान कान्तिवाली उस तलवार को म्यान से निकाल कर, वह पत्नियों और सचिवों से घिरा हुआ, तेजी से बाहर निकल गया। पुत्र शोक के कारण रावण की चेतना उस समय अत्यन्त बेचैन हो रही थी।

अभिदुद्राव वैदेहीं रावणः क्रोधमूर्च्छितः।
वार्यमाणः सुसंक्रुद्धः सुहृद्भिर्हितबुद्धिभिः।। २४।।
मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता।
ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम्।। २५।।
तं निशाम्य सनिस्त्रिंशं व्यथिता जनकात्मजा।
निवार्यमाणं बहुशः सुहृद्भिरनिवर्तिनम्।। २६।।
सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत्।
यथायं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम्।। २७।।
वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः।

क्रोध से मूर्च्छित होकर रावण, तब हितैषी मित्रों के द्वारा मना किये जाने पर भी सीता की तरफ उसके वध के लिये दौड़ा। निन्दा से रहित मैथिली सीता उस समय राक्षसियों की सुरक्षा में थी। उन्होंने उस राक्षस को हाथ में तलवार लिये हुए देखा। यह देख कर कि रावण तलवार लेकर उन्हीं की तरफ चला आ रहा है, अपने मित्रों के अनेक प्रकार से रोके जाने पर भी

रुक नहीं रहा है वे जनकपुत्री मन में बहुत दुखी हुईं। दुख से भर कर विलाप करती हुई सीता यह कहने लगी कि जैसे यह क्रोध में भर कर स्वयं मेरी तरफ आ रहा है, इससे प्रतीत होता है कि यह दुर्मति मुझे सनाथा को अनाथा की तरह से मार देगा।

एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यः शीलवाञ्छुचिः।। २८।।
सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं रक्षसां वरम्।
निवार्यमाणः सचिवैरिदं वचनमब्रवीत्।। २९।।
कथं नामदशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद् धर्ममपास्य च।। ३०।।
वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा।
स्त्रियः कस्माद् वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर।। ३१।।

इसी बीच में रावण के एक पवित्र आचार विचार वाले अच्छे स्वभाव के सुपार्श्व नाम के मेधावी मन्त्री ने, दूसरे सचिवों द्वारा रोके जाने पर भी राक्षसों में श्रेष्ठ रावण से यह कहा कि हे दशग्रीव! आप तो कुबेर के साक्षात् छोटे भाई हो। आप धर्म का उल्लंघन कर क्यों वैदेही को मारना चाहते हो? आपने तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वेदों की विद्या में स्नान किया है, आप सदा अपने कर्तव्य पालन में लगे रहते हैं। हे वीर राक्षसेश्वर! फिर आप स्त्री के वध को क्यों उचित समझते हैं?

मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव।
तस्मिन्नेव सहास्माभिराहवे क्रोधमुत्सृज।। ३२।।
अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः।। ३३।।
शूरो धीमान् रथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान् प्राप्स्यति मैथिलीम्।। ३४।।

हे राजा! आप इस सौन्दर्यशाली मैथिली की तरफ देखो। आप अपना क्रोध हमारे साथ युद्धभूमि में चल कर उस राम पर उतारिये। आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है। आप आज ही युद्ध की तैयारी करके अमावस्या को सेना के साथ विजय के लिये चलिये। आप तो वीर हैं, धीमान हैं, रथी हैं, खड्ग वाले हैं। एक श्रेष्ठ रथ पर बैठ कर आप युद्ध कीजिये। फिर राम को मार कर आप सीता को प्राप्त कर लेंगे।

स तद् दुरात्मा सुहृदा निवेदितं
वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः।
गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्
पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः।। ३५।।

तब वह तेजस्वी दुरात्मा रावण मित्र के द्वारा कहे गये धर्म युक्त वचनों को ग्रहण करके अपने महल को चला गया और उसके बाद मित्रों के साथ उसने राजसभा में प्रवेश किया।

तिहत्तरवाँ सर्ग

रावण का मन्त्रियों को बुला कर शत्रुवध विषयक अपना उत्साह प्रकट करना और सबके साथ रणभूमि में जाकर पराक्रम दिखाना।

उवाच च समीपस्थान् राक्षसान् राक्षसेश्वरः।
क्रोधाव्यक्तकथस्तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा।। १।।
शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया।
ततोवाच प्रहस्यैतान् रावणः क्रोधमूर्च्छितः।। २।।
अद्य बाणैर्धनुर्मुक्तैर्युगान्तादित्यसंनिभैः।
राघवं लक्ष्मणं चैव नेष्यामि यमसादनम्।। ३।।
खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा।
करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रुवधादहम्।। ४।।

उस समय राक्षसों के राजा रावण की आँखें क्रोध से लाल हो रही थीं। क्रोध के कारण उसके मुख से स्पष्ट आवाज भी नहीं निकल पा रही थी। उसी अवस्था में अस्पष्ट वाणी से राक्षसों को मानो लाल आँखों से जलाते हुए उसने अपने पास खड़े हुए राक्षसों से कहा कि सेनाओं को मेरी आज्ञा से कहो कि युद्ध के लिये जल्दी प्रस्थान करें। फिर क्रोध से पागल हुआ रावण जोर से हँस कर बोला कि आज मैं अपने धनुष से छूटें हुए प्रलय काल के सूर्य के समान तेजस्वी बाणों से राम और लक्ष्मण को यमलोक में पहुँचा दूँगा। आज मैं शत्रु के वध से खर, कुम्भकर्ण, प्रहस्त, और इन्द्रजित के वध का बदला चुकाऊँगा।

अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः।
धनुषा शरजालेन वधिष्यामि पतत्रिणा।। ५।।
अद्य वानरसैन्यानि रथेन पवनौजसा।
धनुःसमुद्रादुद्भूतैर्मथिष्यामि शरोर्मिभिः।। ६।।

व्याकोशपद्मवक्त्राणि पद्मकेसरवर्चसाम्।
अद्य यूथतटाकानि गजवत् प्रमथाम्यहम्।। ७।।
अद्य यूथप्रचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनाम्।
मुक्तेनैकेषुणा युद्धे भेत्स्यामि च शतं शतम्।। ८।।

आज मैं अपने धनुष से पंखों वाले बाणों का जाल बिछा दूँगा और उससे वानर मुखियाओं के यूथों का अलग-अलग संहार कर दूँगा। आज मैं पवन के समान वेगवान रथ पर बैठ कर अपने धनुष रूप समुद्र से उमड़ती हुई बाण रूपी लहरों से वानर सेना को मथ दूँगा। कमल के केसर जैसी कान्ति वाले वानरों के मुख ही जिसमें खिले हुए कमल हैं, उन वानरों के यूथ रूपी तालाबों में आज मैं हाथी के समान घुस कर उन्हें मथ दूँगा। आज युद्ध में वृक्षों के द्वारा युद्ध करने वाले वानरों के प्रचण्ड यूथों में मैं एक एक बाण से सौ सौ वानरों को विदीर्ण कर दूँगा।

हतो भ्राता च येषां वै येषां च तनयो हतः।
वधेनाद्य रिपोस्तेषां करोम्यश्रुप्रमार्जनम्।। ९।।
अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैः प्रस्तीर्णैर्गतचेतनैः।
करोमि वानरैर्युद्धे यत्नावेक्ष्यतलां महीम्।। १०।।
अद्य काकाश्च गृध्राश्च ये च मांसाशिनोऽपरे।
सर्वांस्तांस्तर्पयिष्यामि शत्रुमांसैः शराहतैः।। ११।।
कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः।
अनुप्रयान्तु मां युद्धे येऽत्र शिष्टा निशाचराः।। १२।।

जिनका भाई मारा गया है, जिनका पुत्र मारा गया है, आज शत्रु का वध करके मैं उन सबके आँसू पौंछूँगा। मेरे बाणों से विदीर्ण हुए और मरे हुए वानरों से युद्धभूमि इस प्रकार ढक जायेगी, कि वहाँ भूमि का तल कठिनाई से दिखाई देगा। आज अपने बाणों से मारे हुए शत्रुओं के माँस से कौवों, गिद्धों और दूसरे जो भी माँस खाने वाले प्राणी हैं, उन सबको तृप्त कर दूँगा। मेरे रथ को जल्दी तैयार करो, मेरा धनुष भी जल्दी लाओ। जो भी बचे हुए राक्षस हैं, वे मेरे साथ युद्ध के लिये आयें।

बलाध्यक्षास्तु संयुक्ता राक्षसांस्तान् गृहे गृहे।
चोदयन्तः परिययुर्लङ्कां लघुपराक्रमाः।। १३।।
ततो मुहूर्तान्निष्पेतू राक्षसा भीमदर्शनाः।
नदन्तो भीमवदना नानाप्रहरणैर्भुजैः।। १४।।
असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिर्मुसलैर्हलैः।
शक्तिभिस्तीक्ष्णधाराभिर्महद्भिः कूटमुद्गरैः।। १५।।
यष्टिभिर्विविधैश्चक्रैर्निशितैश्च परश्वधैः।
भिन्दिपालैः शतघ्नीभिरन्यैश्चापि वरायुधैः।। १६।।

रावण की इस आज्ञा से उसके शीघ्र पराक्रमी सेनाध्यक्ष मिल कर उन राक्षसों को घर-घर जा कर उन्हें युद्ध के लिये तैयार होने का आदेश देते हुए लंका में घूमने लगे। इसके बाद एक मुहूर्त में ही वे भयानक आकार वाले राक्षस लोग बाहर निकल आये। वे भयानक मुख वाले राक्षस लोग गर्जना कर रहे थे और उनके हाथों में अनेक प्रकार के आयुध थे। वे तलवारों, पट्टिशों, शूलों, गदाओं, मूसलों, हलों, तीक्ष्णधार वाली महान शक्तियों, सुदृढ़ मुग्दरों से, डंडों से अनेक प्रकार के चक्रों से, तीखे फरसों से, तीखे भिन्दीपालों से, शतघ्नियों से तथा और दूसरे श्रेष्ठ आयुधों से सुसज्जित थे।

दिव्यास्त्रवरसम्पन्नं नानालंकारभूषितम्।। १७।।
नानायुधसमाकीर्णं किङ्किणीजालसंयुतम्।
नानारत्नपरिक्षिप्तंरत्नस्तम्भैर्विराजितम् ।। १८।।
जाम्बूनदमयैश्चैव सहस्रकलशैर्वृतम्।
द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम्।। १९।।
आरुरोह तदा भीमं दीप्यमानं स्वतेजसा।
ततः प्रयातः सहसा राक्षसैर्बहुभिर्वृतः।। २०।।
रावणः सत्त्वगाम्भीर्याद् दारयन्निव मेदिनीम्।

इसी बीच सारथी ने रावण के रथ को लाकर खड़ा कर दिया। उसमें उत्तम कोटि के अलौकिक अस्त्र थे। वह अनेक प्रकार की सजावटों से सजा हुआ था। वह अनेक प्रकार के हथियारों से भरा हुआ था। उसमें घुँघरूदार झालरें लगाईं हुई थीं। उसमें अनेक प्रकार के रत्न जड़े हुए थे। रत्नमय खम्बों से वह सुसज्जित था। अनेक सुनहले कलश उसमें लगे हुए थे। तब उस वेगशाली विशाल आठ घोड़ों वाले, अपने तेज से प्रकाशित और सारथी से युक्त रथ पर वह रावण सवार हुआ। बहुत सारे राक्षसों से घिरा हुआ वह तुरन्त युद्ध के लिये चल दिया। उस समय रावण अपने बलाधिक्य से मानो पृथिवी को विदीर्ण कर रहा था।

ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगणबलैर्वृतः।। २१।।
निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोपमः।
ततः प्रजविताश्वेन रथेन स महारथः।। २२।।
द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ।
तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम्।। २३।।
वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत।

राक्षसों की सेना से घिरा हुआ वह तेजस्वी रावण धनुष हाथ में लेकर प्रलय काल में अन्त कर देने वाली मृत्यु के समान युद्ध के लिये बाहर निकला। तब अपने

वेगशाली घोड़ों वाले रथ के द्वारा वह महारथी उस दरवाजे से बाहर निकला, जहाँ राम और लक्ष्मण थे। उन विशालकाय राक्षसों के रथों की आवाज सुन कर वानरों की सेना भी उनके लिये सामने आकर डट गयी।

तेषां तु तुमुलं युद्धं बभूव कपिरक्षसाम्।। २४।।
अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम्।
ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः।। २५।।
वानराणामनीकेषुचकार कदनं महत्।
केचिद् विच्छिन्नहृदयाः केचिच्छ्रोत्रविवर्जिताः।। २६।।
निरुच्छ्वासा हताः केचित् केचित् पार्श्वेषु दारिताः।
केचिद् विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विनाकृताः।। २७।।

तब एक दूसरे को ललकारते हुए, क्रोध में भरे हुए, विजय के इच्छुक वानर और राक्षसों का भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। क्रोध में भरे हुए रावण ने अपने सुनहरे बाणों से वानरों की सेना में महान विनाश को आरम्भ कर दिया। उसने किन्हीं के हृदय विदीर्ण कर दिये। किन्हीं के कान अलग कर दिये, किन्हीं को प्राणों से रहित करके मार दिया, किन्ही को बगल से घायल कर दिया किन्ही के सिर काट दिये और किन्हीं को बिना आँखों वाला बना दिया।

दशाननः क्रोधविवृत्तनेत्रो
यतो यतोऽभ्येति रथेन संख्ये।
ततस्ततस्तस्य शरप्रवेगं
सोढुं न शेकुर्हरियूथपास्ते।। २८।।

उस दस मुख रावण की आखें क्रोध के कारण घूम रहीं थीं, वह युद्ध में रथ के द्वारा जिधर जिधर निकल जाता था, उधर-उधर उसकी बाण वर्षा को वानर यूथपति सहन नहीं कर पाते थे।

चौहत्तरवाँ सर्ग

सुग्रीव द्वारा राक्षस सेना का संहार और विरूपाक्ष का वध।

तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः।
बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा।। १।।
प्लवंगानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः।
संययौ समरे तस्मिन् विधमन् रावणः शरैः।। २।।
कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम्।
आससाद ततो युद्धे त्वरितं राघवं रणे।। ३।।
सुग्रीवस्तान् कपीन् दृष्ट्वा भग्नान् विद्रावितान् रणे।
गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धे द्रुतं मनः।। ४।।

रावण के द्वारा बाणों से जिनके अंग विदीर्ण हो गये थे, ऐसे गिरे हुए वानरों से उस समय भूमि भर गयी थी। जैसे वायु विशाल बादलों को उड़ा देती है, वैसे ही रावण अपने बाणों से उस युद्ध में वानरों की सेना का संहार करता हुआ विचरण करने लगा। वह राक्षसराज वेगपूर्वक वानरों का विनाश करके युद्ध में शीघ्रता से राम के समीप जा पहुँचा। उधर सुग्रीव वानरों को युद्ध में मारा जाता हुआ और भागता हुआ देख कर सेना की रक्षा में सुषेण को लगा कर स्वयं युद्ध करने का विचार करने लगे।

आत्मनः सदृशं वीरं स तं निक्षिप्य वानरम्।
सुग्रीवोऽभिमुखं शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः।। ५।।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे वानरयूथपाः।
अनुजग्मुर्महाशैलान् विविधांश्च वनस्पतीन्।। ६।।
ननर्द युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान्।
पोथयन् विविधांश्चान्यान् ममन्थोत्तमराक्षसान्।। ७।।
ममर्द च महाकायो राक्षसान् वानरेश्वरः।
युगान्तसमये वायुः प्रवृद्धानगमानिव।। ८।।

अपने समान वीर सुषेण को सेना की रक्षा में स्थापित कर सुग्रीव वृक्ष को उठा कर शत्रु के सामने जाने के लिये चल दिये। उनके आस-पास और पीछे सारे वानर यूथपति, महान शिलाओं और अनेक प्रकार के वृक्षों को लेकर चले। तब विशालकाय वानरेश सुग्रीव ने ऊँची आवाज में गर्जना की और जैसे प्रलय के समय वायु बड़े-बड़े वृक्षों को गिरा देती है, वैसे ही उसने अनेक राक्षसों तथा दूसरे श्रेष्ठ राक्षसों को मथ कर भूमि पर गिरा दिया और कुचल दिया।

अथ संक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः।
सुग्रीवेण प्रभग्नेषु नदत्सु च पतत्सु च।। ९।।
विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः।
रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत्।। १०।।
स तं द्विपमथारुह्य विरूपाक्षो महाबलः।
ननर्द भीमनिर्ह्रादं वानरानभ्यधावत।। ११।।
सुग्रीवे स शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे।
स्थापयामास चोद्विग्नान् राक्षसान् सम्प्रहर्षयन्।। १२।।

तब जब सुग्रीव के द्वारा गर्जना करते हुए सब तरफ राक्षसों का विनाश किया जाने लगा, उन्हें विदीर्ण कर भूमि पर गिराया जाने लगा, तब विरूपाक्ष नाम का दुर्धर्ष धनुर्धर राक्षस अपने नाम को सुनाता हुआ रथ से कूद कर हाथी के ऊपर सवार हुआ। हाथी पर सवार होकर वह महाबली विरूपाक्ष भयानक आवाज में गर्जना करने लगा और वानरों की तरफ दौड़ा। उसने उस सेना के मुहाने पर सुग्रीव के ऊपर भयानक बाण फैंके और उद्विग्न हुए राक्षसों को हर्षित करते हुए उनकी स्थापना की।

सोऽतिविद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा।
चुक्रोश च महाक्रोधो वधे चास्य मनो दधे।। १३।।
ततः पादपमुद्धृत्य शूर सम्प्रधनो हरिः।
अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तं महागजम्।। १४।।
स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः।
अपासर्पद् धनुर्मात्रं निषसाद ननाद च। १५।।

उस राक्षस के तीखे बाणों से अत्यन्त बींधे हुए उस वानरेश ने तब महान क्रोध में भर कर गर्जना की और उस राक्षस के वध का निश्चय किया। उस शूरवीर और युद्ध करने में कुशल वानर ने एक वृक्ष को उखाड़ कर और आक्रमण कर उसके विशाल हाथी के मुख पर उस वृक्ष को दे मारा। सुग्रीव के द्वारा किये गये प्रहार से घायल होकर वह विशाल हाथी एक धनुष पीछे हट कर बैठ गया और आर्तनाद करने लगा।

गजात् तु मथितात् तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान्।
राक्षसोऽभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम्।। १६।।
आर्षभं चर्म खड्गं च प्रगृह्य लघुविक्रमः।
भर्त्सयन्निव सुग्रीवमाससाद व्यवस्थितम्।। १७।।
स हि तस्याभिसंक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम्।
विरूपाक्षस्य चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम्।। १८।।
स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुंगवः।
अपक्रम्य सुविक्रान्तः खड्गेन प्राहरत् तदा।। १९।।

तब शत्रु के सामने विद्यमान वह तेजस्वी और शीघ्र पराक्रमी राक्षस घायल हाथी से तुरन्त कूद पड़ा और तलवार तथा भैंसे के चमड़े की ढाल लेकर अपने शत्रु वानर की तरफ बढ़ा। वह सुग्रीव को, जो एक स्थान पर स्थिरता पूर्वक खड़े हुए थे, फटकारते हुए उनके पास जा पहुँचा। तब उन्होंने क्रोध पूर्वक एक विशाल शिला को, जो बादल के समान काली थी, उठा कर उसे विरूपाक्ष के ऊपर फैंका। उस शिला को अपने ऊपर आती हुई देख कर उस अत्यन्त पराक्रमी राक्षस श्रेष्ठ ने वहाँ से हट कर अपना बचाव किया और उसके बाद सुग्रीव पर तलवार चलायी।

तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हतः।
मुहूर्तमभवद् भूमौ विसंज्ञ इव वानरः।। २०।।
सहसा स तदोत्पत्य राक्षसस्य महाहवे।
मुष्टिं संवर्त्य वेगेन पातयामास वक्षसि।। २१।।
मुष्टिप्रहाराभिहतो विरूपाक्षो निशाचरः।
तेन खड्गेन संक्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे।। २२।।
कवचं पातयामास पद्भ्यामभिहतोऽपतत्।
स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य व्यसर्जयत्।। २३।।
तलप्रहारमशनेः समानं भीमनिःस्वनम्।

उस बलवान राक्षस के खड्ग प्रहार से घायल हो कर वे वानर सुग्रीव मूर्च्छित से होकर थोड़ी देर तक भूमि पर पड़े रहे। फिर अचानक उछल कर उन्होंने उस महान युद्ध में अपनी मुट्ठी बाँध कर उस राक्षस की छाती में जोर से प्रहार किया। घूँसे की चोट खाकर विरूपाक्ष राक्षस ने क्रोध में भर कर उस सेना के मुहाने पर तलवार से सुग्रीव के कवच को काट गिराया तथा उसके पैरों की चोट से सुग्रीव भूमि पर गिर पड़े। भूमि पर गिरे हुए सुग्रीव ने तब उठ कर भयानक शब्द करने वाले और वज्र के समान कठोर अपने थप्पड़ से उस पर प्रहार किया।

तलप्रहारं तद् रक्षः सुग्रीवेण समुद्यतम्।। २४।।
नैपुण्यान्मोचयित्वैनं मुष्टिनोरसि ताडयत्।
ततस्तु संक्रुद्धतरः सुग्रीवो वानरेश्वरः।। २५।।
मोक्षितं चात्मनो दृष्ट्वा प्रहारं तेन रक्षसा।
स ददर्शान्तरं तस्य विरूपाक्षस्य वानरः।। २६।।

उस राक्षस ने सुग्रीव के चलाये हुए उस थप्पड़ के प्रहार से अपने को चतुराई से बचा लिया और फिर उसकी छाती पर घूँसे से प्रहार किया। तब अपने प्रहार को राक्षस के द्वारा व्यर्थ किया हुआ देख कर वानरेश्वर सुग्रीव और भी अधिक क्रोध में भर गये और उस विरूपाक्ष के ऊपर प्रहार का अवसर देखने लगे।

ततोऽन्यं पातयत् क्रोधाच्छङ्खदेशे महातलम्।
महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाभिहतः क्षितौ।। २७।।
पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं हि समुद्गिरन्।
स्रोतोभ्यस्तु विरूपाक्षो जलं प्रस्रवणादिव।। २८।।
विवृत्तयनं क्रोधात् सफेनं रुधिराप्लुतम्।

ददृशुस्ते विरूपाक्षं विरूपाक्षतरं कृतम्।। २९।।
स्फुरन्तं परिवर्तन्तं पार्श्वेन रुधिरोक्षितम्।
करुणं च विनर्दन्तं ददृशुः कपयो रिपुम्।। ३०।।

फिर उन्होंने क्रोध पूर्वक उसके ललाट पर एक दूसरा महान थप्पड़ मारा। उस इन्द्र के वज्र के समान कठोर थप्पड़ की चोट से मारा हुआ वह विरूपाक्ष खून से लथपथ हुआ भूमि पर गिर पड़ा। उसकी सारी इन्द्रियों से उस समय पानी के झरनों की तरह खून बह रहा था। वानरों ने देखा कि क्रोध से उसकी आँखें घूम रही थीं। वह फेन युक्त रुधिर में डूबा हुआ था, वह विरुपाक्ष अब और अधिक कुरूप नेत्रों वाला हो गया था। वह खून में तड़पता हुआ करवटें बदल रहा था और करुणायुक्त आर्तनाद कर रहा था।

विनाशितं प्रेक्ष्य विरूपनेत्रं
महाबलं तं हरिपार्थिवेन।
बलं समेतं कपिराक्षसाना-
मुद्वृत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव।। ३१।।

वानरराज के द्वारा नष्ट किये गये उस महाबली विरूपाक्ष को देख कर वहाँ एकत्र हुई वानरों और राक्षसों दोनों की सेनाएँ बाढ़ से भरी हुई गंगा के समान उद्वेलित हो गयीं। अर्थात एक प्रसन्नता के कारण तो दूसरी दुख के कारण।

पिचहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम और रावण का युद्ध।

तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले।
आविवेश महान् क्रोधो रावणं तु महामृधे।। १।।
सूतं संचोदयामास वाक्यं चेदमुवाच ह।
निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च।। २।।
दुःखमेवापनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ।
रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम्।। ३।।
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान् कुमुदो नलः।
द्विविदश्चैव मैन्दश्च अङ्गदो गन्धमादनः।। ४।।
हनूमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः।

वीर महाबली विरूपाक्ष के मारे जाने पर उस महायुद्ध में रावण को बड़ा क्रोध आया और उसने सारथी से यह कहते हुए रथ को आगे बढ़ाने के लिये कहा कि मारे गये मन्त्रियों के तथा नगर पर घेरा डालने के दुख को मैं राम और लक्ष्मण को मार कर दूर करूँगा। मैं युद्ध में उस राम रूपी वृक्ष को उखाड़ूँगा, जो सीता रूपी फूल के द्वारा फल को देने वाला है और सुग्रीव, जाम्बवान, कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, अंगद, गन्धमादन, हनुमान, सुषेण और सारे वानर यूथपति जिसकी शाखा प्रशाखाएँ हैं।

स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान्।। ५।।
नादयन् प्रययौ तूर्णराघवं चाभ्यधावत।
तामसं सुमहाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम्।। ६।।
निर्ददाह कपीन् सर्वांस्ते प्रपेतुः समन्ततः।
उत्पपात रजो भूमौ तैर्भग्नैः सम्प्रधावितैः।। ७।।
ततो रामो महातेजाः सौमित्रिसहितो बली।
वानरांश्च रणे भग्नानापतन्तं च रावणम्।। ८।।
समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम्।

ऐसा कह कर वह महान अतिरथी अपने रथ की ध्वनि से दसों दिशाओं को गुंजाता हुआ तेजी से चला और श्रीराम की तरफ दौड़ा। उसने तब अत्यन्त दुखदायी और महा भयानक तामस अस्त्र का प्रयोग किया, जिसने वहाँ विद्यमान सारे वानरों को जलाना आरम्भ किया और वे सब तरफ भर कर गिरने लगे। उन दौड़ते हुए और भागते हुए वानरों के कारण युद्ध भूमि में धूल उड़ने लगी। जब बलवान, महा तेजस्वी, रघुवंशी राम ने लक्ष्मण के साथ वानरों को भागते हुए और रावण को आते हुए देखा, तब उन्होंने प्रसन्न होकर धनुष को बीच में से पकड़ा।

विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम्।। ९।।
महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम्।
तमिच्छन् प्रथमं योद्धुं लक्ष्मणो निशितैः शरैः।। १०।।
मुमोच धनुरायम्य शरानग्निशिखोपमान्।
तान् मुक्तमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता।। ११।।
बाणान् बाणैर्महातेजा रावणः प्रत्यवारयत्।
एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रीन् दशभिर्दश।। १२।।
लक्ष्मणस्य प्रचिच्छेद दर्शयन् पाणिलाघवम्।

उन्होंने महान वेग शाली और महान ध्वनि को प्रकट करने वाले अपने उस उत्तम धनुष को टंकारना आरम्भ

कर दिया, जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों वे पृथिवी को विदीर्ण कर डालेंगे। तब रावण से पहले स्वयं अपने तीखे बाणों से युद्ध करने की इच्छा से लक्ष्मण ने अपने धनुष को खींच कर अग्नि शिखा के समान बाणों को छोड़ा। धनुर्धारी लक्ष्मण के द्वारा छोड़े हुए उन बाणों को महा तेजस्वी रावण ने आकाश में ही अपने बाणों से निवारित कर दिया। उसने अपना हस्त कौशल दिखाते हुए लक्ष्मण के एक बाण को एक बाण से, तीन बाणों को तीन बाणों से और दस बाणों को दस बाणों से काट दिया।

अभ्यतिक्रम्य सौमित्रिं रावणः समितिंजयः।। १३।।
आससाद रणे रामं स्थितं शैलमिवापरम्।
स राघवं समासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः।। १४।।
व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राक्षसेश्वरः।
ताञ्छरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः।। १५।।
दीप्यमानान् महाघोराञ्छरानाशीविषोपमान्।
राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तथा।। १६।।
अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरवर्षैर्ववर्षतुः।

युद्ध विजयी रावण तब लक्ष्मण का अतिक्रमण करके राम के पास जा पहुँचा जो एक दूसरे पर्वत शिखर के समान खड़े हुए थे। राम के समीप पहुँच कर क्रोध से लाल आँखें किये हुए राक्षसराज रावण उनके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा। उसके उन जगमगाते हुए और विषैले सर्प के समान महा भयानक बाणों के समूहों को राम ने अपने तीक्ष्ण भल्लों के द्वारा काट दिया। तब राम रावण के ऊपर और रावण राम के ऊपर तेजी से अनेक प्रकार के तीखे बाणों की वर्षा करने लगे।

चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम्।। १७।।
बाणवेगात् समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ।
उभौ हि परमेष्वासावुभौ युद्धविशारदौ।। १८।।
उभावस्त्रविदां मुख्यावुभौ युद्धे विचेरतुः।
उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः।। १९।।
ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुः सागरयोरिव।

वे दोनों एक दूसरे से पराजित न होते हुए, विचित्र रूप से गोलाकार दायें बायें पैंतरे बदलते हुए, बाणों के वेग से घायल होते हुए देर तक विचरते रहे। वे दोनों महाधनुर्धर थे, वे दोनों ही युद्ध विशारद थे, दोनों ही अस्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ थे। वे दोनों ही तब उत्साह से युद्धभूमि में विचरण कर रहे थे। वे दोनों ही जिस मार्ग से जाते थे, वहीं बाणों की लहर सी उठने लगती थी, मानों वायु के थपेड़ों से सागर में लहरें उमड़ रही हों।

ततः संसक्तहस्तस्तु रावणो लोकरावणः।। २०।।
नाराचमालां रामस्य ललाटे प्रत्यमुञ्चत।
रौद्रचापप्रयुक्तां तां नीलोत्पलदलप्रभाम्।। २१।।
शिरसाधारयद् रामो न व्यथामभ्यपद्यत।
शरान् भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः।। २२।।
मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान्।
ताञ्शरान् राक्षसेन्द्राय चिक्षेपाच्छिन्नसायकः।। २३।।

तब लोगों को रुलाने वाले रावण ने, जिसके हाथ बाणों को छोड़ने में लगे हुए थे, राम के ललाट में नाराचों की माला सी पहना दी। उसके भयानक धनुष से निकली हुई और नीले कमलों के समान कान्तिवाली उस माला को राम ने अपने सिर पर धारण कर लिया पर वे कुछ भी दुखी नहीं हुए। फिर क्रोध से युक्त होकर बहुत से बाणों को लेकर महातेजस्वी और पराक्रमी राम ने उन बाणों को लगातार बाणवर्षा करते हुए राक्षसराज के ऊपर छोड़ दिया।

पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम्।
ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलोऽभिनत्।। २४।।
निहत्य राघवस्यास्त्रं रावणः क्रोधमूर्च्छितः।
आसुरं सुमहाघोरमस्त्रं प्रादुश्चकार सः।। २५।।
आसुरेण समाविष्टः सोऽस्त्रेण रघुपुङ्गवः।
ससर्जास्त्रं महोत्साहं पावकं पावकोपमः।। २६।।

इसके बाद सारे अस्त्रों में कुशल राम ने रथ में बैठे हुए उस राक्षसराज के सिर को अपने उत्तम अस्त्र के द्वारा बींध दिया। राम के उस अस्त्र का निवारण करके अर्थात् उसे अपने सिर में से निकाल कर क्रोध से मूर्च्छित रावण ने महा भयानक आसुरास्त्र का प्रयोग किया। तब उसके आसुरास्त्र के आक्रमण से युक्त, अग्नि के समान तेजस्वी, रघुश्रेष्ठ राम ने बड़े उत्साह के साथ आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया।

छियत्तरवाँ सर्ग

राम और रावण का युद्ध/रावण की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना, रावण का युद्ध से भागना।

तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः।
क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम्।। १।।
मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः।
उत्स्रष्टुं रावणो भीमं राघवाय प्रचक्रमे।। २।।
तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः।। ३।।
जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः।
तदस्त्रं तु हतं दृष्ट्वा रावणो राक्षसाधिपः।। ४।।
विव्याध दशभिर्बाणै रामं सर्वेषु मर्मसु।

अपने उस अस्त्र के नष्ट हो जाने पर राक्षसराज रावण को दुगुना क्रोध चढ़ आया और क्रोध के वश में होकर महा तेजस्वी उसने मयासुर के बनाये एक दूसरे महा भयानक अस्त्र को राम के ऊपर छोड़ने का आयोजन किया। उत्तम अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ महा तेजस्वी श्रीराम ने उस अस्त्र को गान्धर्व नाम के महान अस्त्र से शान्त कर दिया। अपने उस अस्त्र को भी विनष्ट देख कर राक्षसराज रावण ने राम के मर्म स्थानों में दस बाणों से प्रहार किया।

स विद्धो दशभिर्बाणैर्महाकार्मुकनिःसृतैः।
रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः।। ५।।
ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिंजयः।
राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः।। ६।।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली।
लक्ष्मणः सायकान् सप्त जग्राह परवीरहा।। ७।।
तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा।। ८।।

रावण के विशाल धनुष से निकले हुए उन दस बाणों से बिंध कर भी महा तेजस्वी राम कम्पित नहीं हुए। फिर युद्ध विजयी राम ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर रावण के सारे अंगों को बहुत से बाणों से बींध दिया। इसी बीच में शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले राम के अनुज बलवान लक्ष्मण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सात बाण अपने हाथ में लिये। उन महा वेगशाली बाणों से उस महा तेजस्वी ने रावण के खोपड़ी की आकृति से चित्रित ध्वज के अनेक टुकड़े कर दिये।

सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम्।
जहार लक्ष्मणः श्रीमान् नैर्ऋतस्य महाबलः।। ९।।
तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम्।
लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैस्तदा।। १०।।
नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान् पर्वतोपमान्।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः।। ११।।
हताश्वात् तु तदा वेगादवप्लुत्य महारथात्।
कोपमहारयत् तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः।। १२।।

श्रीमान महाबली लक्ष्मण ने जगमगाते हुए कुण्डलों से युक्त राक्षस के सारथी के सिर को भी बाण से अलग कर दिया। फिर लक्ष्मण ने पाँच तीखे बाणें से उस राक्षसराज के हाथी की सूँड के समान मोटे धनुष को भी काट दिया। रावण के नीले बादलों के समान, पर्वतों जैसे उत्तम घोड़ों को भी विभीषण ने उछल कर गदा से मार दिया। जिसके घोड़े मारे गये थे, उस विशाल रथ से तेजी से कूद कर रावण को अपने भाई के प्रति बड़ा क्रोध आया।

ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तामशनीमिव।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।। १३।।
अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः।
अथोदतिष्ठत् संनादो वानराणां महारणे।। १४।।
ततः सम्भावितत्तरां कालेनापि दुरासदाम्।
जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा।। १५।।

उस प्रतापी राक्षसेन्द्र ने तब जलती हुई उल्का के समान एक महान शक्ति को विभीषण के ऊपर फैंका। पर उस शक्ति के वहाँ पहुँचने से पहले ही उसे लक्ष्मण ने तीन बाणों से छिन्न कर दिया। तब उस महायुद्ध में वानरों में हर्षध्वनि फैल गयी। तब उसने उससे भी अधिक प्रतिष्ठा वाली विशाल शक्ति को, जो अपने तेज से जगमगा रहीं थी और जो मृत्यु के लिये भी असह्य थी, अपने हाथ में लिया।

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम्।
प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत।। १६।।
तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः।
रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत्।। १७।।
मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत्।। १८।।

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेवं विभीषणः।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते॥ १९॥

इसी बीच में लक्ष्मण ने विभीषण के प्राणों को संकट में देख कर जल्दी से उन्हें पीछे करके वे स्वयं आगे खड़े हो गये। उस विभीषण को बचाने के लिये वीर लक्ष्मण ने धनुष को खींच कर हाथ में शक्ति को लिये खड़े रावण पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। अपने भाई को बचाया हुआ देख कर, रावण लक्ष्मण की तरफ मुख करके यह बोला कि हे अपने बल पर अभिमान करने वाले, तुमने क्योंकि विभीषण को बचा लिया है, इसलिये इस राक्षस को छोड़ कर अब यह शक्ति मैं तुम्हारे ऊपर ही गिराता हूँ।

एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा।
मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति॥ २०॥
इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिममोघां शत्रुघातिनीम्।
लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा॥ २१॥
रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च।
सा क्षिप्ता भीमवेगेन वज्राशनिसमस्वना॥ २२॥
शक्तिरभ्यपतद् वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि।
ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया॥ २३॥
शक्त्या विभिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः।

खून बहना ही जिसकी विशेषता है, वह यह शक्ति मेरी परिघ जैसी मोटी भुजाओं से छोड़ी हुई तेरे हृदय को छेद कर और तेरे प्राणों को लेकर जायेगी। ऐसा कह कर उस अपने तेज से जलती हुई अमोघ शत्रुघातिनी शक्ति को रावण ने अत्यन्त क्रोध सहित लक्ष्मण के ऊपर फैंक दिया और गर्जना की। उल्का और विद्युत् के समान आवाज करती हुई, भयानक वेग से फैंकी हुई वह शक्ति युद्ध के मुहाने पर जोर से लक्ष्मण को लगी। तब रावण के वेग में अन्दर गहराई तक धँसी हुई शक्ति के द्वारा हृदय को चोट लगने से लक्ष्मण भूमि पर गिर पड़े।

तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः॥ २४॥
भ्रातृस्नेहान्महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत्।
तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम्॥ २५॥
बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान् विचकर्ष च।
तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा॥ २६॥
शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः।
अचिन्तयित्वा तान् बाणान् समाश्लिष्य च लक्ष्मणम्॥ २७॥
अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम्।

तब समीप ही खड़े हुए महा तेजस्वी राम लक्ष्मण को इस अवस्था में देख कर भाई के स्नेह से उदास हो गये। बलवान श्रीराम ने उस भयानक शक्ति को दोनों हाथों से पकड़ कर खींचा और क्रोध में भर कर युद्ध क्षेत्र में उसे तोड़ दिया। शक्ति को लक्ष्मण के शरीर से निकालते हुए राम के ऊपर बलवान रावण ने उनके सारे अंगों पर मर्मभेदी बाणों की वर्षा की। उन बाणों की परवाह न करके और लक्ष्मण को छाती से लगा कर उन्होंने महा वानर हनुमान और सुग्रीव से कहा कि–

लक्ष्मणं परिवार्यैवं तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः॥ २८॥
पराक्रमस्य कालोऽयं सम्प्राप्तो मे चिरेप्सितः।
अस्मिन् मुहूर्ते नचिरात् सत्यं प्रतिशृणोमि वः॥ २९॥
अरावणमरामं वा जगद् द्रक्ष्यथ वानराः।
एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः॥ ३०॥
आजघान रणे रामो दशग्रीवं समाहितः।

हे श्रेष्ठ वानरों! तुम लक्ष्मण को इसी तरह से घेर कर खड़े रहो। अब मेरा बहुत दिनों से चाहा हुआ पराक्रम करने का समय आ गया है। मैं इस समय सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि हे वानरों! तुम जल्दी ही संसार को बिना रावण का या बिना राम का देखोगे। ऐसा कह कर तपे हुए सोने के समान विभूषित तीक्ष्ण बाणों से राम रावण को सावधानी पूर्वक उस युद्ध में घायल करने लगे।

रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ ३१॥
वराणां च शराणां च बभूव तुमुलः स्वनः।
तयोर्ज्यातलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान्।
त्रासनः सर्वभूतानां बभूवाद्भुतोपमः॥ ३२॥

उस समय एक दूसरे पर चोट करते हुए, राम और रावण के द्वारा छोड़े हुए उत्तम बाणों की बड़ी भयंकर आवाज हो रही थी। राम और रावण दोनों की प्रत्यंचाओं और हथेलियों की महान ध्वनि वहाँ विद्यमान सारे प्राणियों को भयभीत कर रही थी और बड़ी अद्भुत लग रही थी।

स कीर्यमाणः शरजालवृष्टिभि–
र्महात्मना दीप्तधनुष्मतार्दितः।
भयात् प्रदुद्राव समेत्य रावणो
यथानिलेनाभिहतो बलाहकः॥ ३३॥

तब दीप्तिमान धनुष को धारण करने वाले महात्मा राम के द्वारा बाण समूह की वृष्टि से आच्छादित रावण पीड़ित और भय से युक्त होकर वहाँ से ऐसे भाग गया जैसे वायु के थपेड़े खाकर बादल उड़ जाते हैं।

सतत्तरवाँ सर्ग

श्री राम का विलाप। सुषेण द्वारा निर्दिष्ट और हनुमान जी द्वारा लायी ओषधि के प्रयोग से लक्ष्मण का सचेत होकर उठना।

लक्ष्मणं समरे शूरं शोणितौघपरिप्लुतम्।
शक्त्या निपातितं दृष्ट्वा सुषेणमिदमब्रवीत्।। १।।
एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितो भुवि।। २।।
सर्पवच्चेष्टते वीरो मम शोकमुदीरयन्।
शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैः प्रियतरं मम।। ३।।
पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः।
अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः।
यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा।। ४।।

शूरवीर लक्ष्मण को खून में लथपथ होकर युद्ध क्षेत्र में शक्ति के द्वारा गिराया हुआ देख कर, राम सुषेण से यह बोले कि ये वीर लक्ष्मण रावण के पराक्रम से भूमि पर गिरे हुए साँप के समान छटपटा रहे हैं और मेरे शोक को बढ़ा रहे हैं। अपने प्राणों से भी प्यारे, इस वीर को खून से लथपथ देखते हुए व्याकुल चित वाले मेरी युद्ध करने की क्या शक्ति रहेगी? यदि युद्ध की श्लाघा करने वाला, और शुभ लक्षणों वाला मेरा भाई, मर गया तो मुझे अपने जीवन और सुख से क्या करना है।

लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद् धनुः।
सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता।। ५।।
अवसीदन्ति गात्राणि स्वप्नयाने नृणामिव।
चिन्ता मे वर्धते तीव्रा मुमूर्षापि च जायते।। ६।।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना।
विष्टनन्तं तु दुःखार्तं मर्मण्यभिहतं भृशम्।। ७।।
राघवो भ्रातरं दृष्ट्वा प्रियं प्राणं बहिश्चरम्।
दुःखेन महताविष्टो ध्यानशोकपरायणः।। ८।।

इस समय मेरा पराक्रम लज्जित हो रहा है। मेरे हाथ से धनुष खिसकता जा रहा हैं। मेरे बाण शिथिल हो रहे हैं और मेरे नेत्र आँसुओं से रुद्ध हो रहे हैं, जैसे सोते हुए मनुष्य का शरीर ढीला हो जाता है, वैसे ही मेरे शरीर के अंग शिथिल हो रहे हैं। अपने भाई को दुरात्मा राक्षस रावण के द्वारा मर्मस्थल में चोट पहुँचा कर अत्यन्त घायल किये हुए तथा दुख से आर्त और पीड़ित देख कर, मेरी चिन्ता बढ़ती जा रही है और स्वयं मर जाने की इच्छा हो रही हैं। अपने भाई को जो बाहर विचरने वाले प्राणों के समान प्रिय था उस अवस्था में देख कर श्रीराम महान शोक और चिन्ता में डूब गये।

परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु।। ९।।
विजयोऽपि हि मे शूर न प्रियायोपकल्पते।
अचक्षुर्विषयश्चन्द्रः कां प्रीतिं जनयिष्यति।। १०।।
किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते राणमूर्धनि लक्ष्मणः।। ११।।
यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्।। १२।।

वे युद्धक्षेत्र की धूल में घायल पड़े हुए भाई लक्ष्मण को देख कर विषाद से भर गये और व्याकुल इन्द्रियों वाले होकर विलाप करने लगे। वे कहने लगे कि हे शूर! तुम्हारे बिना यदि मुझे विजय भी मिल जाये, तो वह सुख नहीं पहुँचा सकती। जिसकी आँखें चली जायें उसे चन्द्रमा अपनी चाँदनी से क्या आनन्द दे सकता है? मुझे अब युद्ध करने से या अपने प्राणों की रक्षा करने से क्या लाभ? मुझे अब युद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा युद्ध जींतने से क्या लाभ? जहाँ युद्ध के मुहाने पर यह लक्ष्मण मारा जाकर सोया हुआ हो। यह महान कान्तिवाला लक्ष्मण जैसे मुझे वन में आता देख कर मेरे पीछे आया था, वैसे ही मैं इसके पीछे मृत्यु के घर जाऊँगा।

इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः।। १३।।
देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।। १४।।
किं नु राज्येन दुर्धर्षलक्ष्मणेन विना मम।
कथं वक्ष्याम्यहं त्वम्बां सुमित्रां पुत्रवत्सलाम्।। १५।।
उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं दत्तं सुमित्रया।
किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकयीम्।। १६।।

ये मेरे प्रिय बन्धु, जो सदा मेरे साथ रहते तथा मुझ में अनुराग रखते थे, हाय आज कपट युद्ध करने वाले राक्षसों ने इनकी यह अवस्था कर दी। स्त्रियाँ प्रत्येक देश में मिल सकती हैं, दूसरे बान्धव भी हर स्थान में

मिल सकते हैं, पर मुझे ऐसा स्थान नहीं दिखाई देता जहाँ इनके समान सहोदर न होने पर भी सहोदर के समान प्यारा भाई मिल जाये। दुर्धर्ष वीर लक्ष्मण के बिना मैं राज्य को लेकर क्या करूँगा? मैं अब पुत्र से प्रेम करने वाली सुमित्रा से कैसे बात करूँगा? सुमित्रा के द्वारा दिये गये उलाहने को मैं सहन नहीं कर सकता। मैं माता कौशल्या से तथा कैकेयी से क्या कहूँगा।

भरतं किं नु वक्ष्यामि शत्रुघ्नं च महाबलम्।
सह तेन वनं यातो विना तेनागतः कथम्।। १७।।
इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम्।
किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि।। १८।।
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः।
हा भ्रातर्मनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो।। १९।।
एकाकी किं नु मां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि।
विलपन्तं च मां भ्रातः किमर्थं नावभाषसे।। २०।।
उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे दीनं मां पश्य चक्षुषा।

मैं महा बली भरत से और शत्रुघ्न से क्या कहूँगा? जब वे पूछेंगे कि आप लक्ष्मण के साथ वन में गये थे, उसके बिना वापिस कैसे लौटे? भाइयों की अवमानना सहन करने की जगह यहाँ ही मरना अधिक अच्छा है। मैंने पूर्वजन्म में पता नहीं क्या बुरे कार्य किये थे जो मेरा धर्म का पालन करने वाला भाई मेरे सामने, मेरे खड़े रहते हुए ही मारा गया। हे प्रभावशाली वीरों में श्रेष्ठ, मनुष्यों में श्रेष्ठ भाई! तुम मुझे अकेले छोड़ कर परलोक में क्यों जा रहे हो? हे भाई! मैं विलाप कर रहा हूँ। तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं हो? तुम सो क्यों रहे हो? उठो, देखो! मुझ दीन को अपनी आँखों से देखो।

शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु वनेषु च।। २१।।
विषण्णस्य महाबाहो समाश्वासयिता मम।
राममेवं ब्रुवाणं तु शोकव्याकुलितेन्द्रियम्।। २२।।
आश्वासयन्नुवाचेदं सुषेणः परमं वचः।
त्यजेमां नरशार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम्।। २३।।
शोकसंजननीं चिन्तां तुल्यां बाणैश्चमूमुखे।
नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।। २४।।
नह्यस्य विकृतं वक्त्रं न च श्यामत्वमागतम्।
सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम्।। २५।।

हे महाबाहु! मैं जब पर्वतों और वनों में शोक से व्याकुल होकर उदास और पागल हो जाता था, तब तुम्हीं मुझे धीरज बँधाते थे। इस प्रकार श्रीराम जब शोक से व्याकुल इन्द्रियों के साथ विलाप कर रहे थे, तब उन्हें आश्वासन देते हुए सुषेण ने उनसे यह उत्तम वचन कहा कि हे नरसिंह! इस दीनता लाने वाली बुद्धि का त्याग करो। शोक को जन्म देने वाली यह चिन्ता सेना के मुहाने पर बाणों के समान भयानक होती है। सौन्दर्य को बढ़ाने वाले लक्ष्मण अभी मरे नहीं हैं, इनके मुख की आकृति भी नहीं बदली है, उस पर कालापन भी नहीं आया है। आप इनके कान्तियुक्त और प्रसन्न मुख को देखिये।

पद्मपत्रतलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने।
नेदृशं दृश्यते रूपं गतासूनां विशां पते।। २६।।
विषादं मा कृथा वीर सप्राणोऽयमरिंदम।
आख्याति तु प्रसुप्तस्य स्रस्तगात्रस्य भूतले।। २७।।
सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः।
एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः सुषेणो राघवं वचः।। २८।।
समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तं महाकपिम्।

इनकी दोनों हथेलियाँ कमल के समान मुलायम हैं, इनकी आँखें साफ हैं। हे प्रजापति! मृत व्यक्तियों का ऐसा रूप नहीं दिखाई देता है, आप विषाद मत कीजिये। ये शत्रुओं को दमन करने वाले अभी जीवित हैं। इनका बार बार काँपता हुआ हृदय और चलती हुई साँस इनके शरीर के शिथिल होकर भूमि पर सोने की सूचना दे रहे हैं। श्रीराम से यह कह कर महाप्राज्ञ सुषेण ने अपने समीप विद्यमान महान वानर हनुमान जी से यह कहा कि—

नोट— ये श्लोक युद्ध काण्ड ७४ सर्ग श्लोक २९,३०,३१,३२ से लिये हुए हैं।

हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनूमन् गन्तुमर्हसि।। २९।।
ततः कांचनमत्युच्चमृषभं पर्वतोत्तमम्।
कैलासं शिखरं चात्र द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन।। ३०।।
तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम्।
सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्यौषधि पर्वतम्।। ३१।।
तस्य वानर शार्दूल चतस्रो मूर्ध्निसंभवाः।
द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ताः दीपयन्तीर्दिशो दश।। ३२।।
विशल्य करणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा।
संजीवकरणीं वीर संधानीं च महोषधीम्।। ३३।।
संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय।

हे हनुमान! तुम पर्वत श्रेष्ठ हिमालय पर जाने में समर्थ हो। वहाँ तुम्हें बहुत ही ऊँचे सुवर्णमय उत्तम पर्वत ऋषभ, तथा कैलास शिखर का दर्शन होगा। हे वीर! उन दोनों

शिखरों के बीच में एक ओषधियों का पर्वत दिखाई देगा, जो अत्यन्त दीप्तिमान है। उसमें इतनी चमक है कि जिसकी तुलना कहीं नहीं है। वह पर्वत सब प्रकार की ओषधियों से सम्पन्न है। हे वानरसिंह! उसके शिखर पर उत्पन्न चार ओषधियाँ तुम्हें दिखाई देंगी, जो अपनी प्रभा से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित किये रहती हैं, उनके नाम हैं– विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी और संधानी। तुम इन चारों को लक्ष्मण के जीवन के लिये ले आओ।

नोट– ये श्लोक युद्ध काण्ड ७४ सर्ग श्लोक ५६,५७ से लिये हुए हैं।

इत्येवमुक्तो हनुमान गत्वा चौषधिपर्वतम्।। ३४।।
ददर्श सहसा चापि हिमवन्तं महाकपिः।
नाना प्रस्रवणोपेतं बहुकन्दरनिर्झरम्ः।
श्वेताभ्रसंचय संकाशैः शिखरैः चारुदर्शनैः।। ३५।।

ऐसा कहे जाने पर वे महा वानर तुरन्त अत्यन्त शीघ्रता से उस ओषधियों के पहाड़ पर जा पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने उस हिमालय को देखा, जो बहुत सी कन्दराओं, झरते हुए झरनों और श्वेत बादलों के समूह की भाँति मनोहर दिखाई देने वाले शिखरों से सुशोभित हो रहा था।

नोट– ये श्लोक युद्ध काण्ड ७४ सर्ग श्लोक ६२,६८,७१,७२ से लिये हुए हैं।

स तं समीक्ष्यानलराशिदीप्तम्
विसिस्मिये वासवदूत सूनुः।
आप्तुल्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रम्
तत्रौषधीनाम विचयं चकार।। ३६।।
स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात
जगाम वेगात् गरुडोगवेगः।
तं वानराः प्रेक्ष्य तदा विनेदुः
स तानपि प्रेक्ष्य मुदा निनाद।। ३७।।
ततो महात्मा निपपात् तस्मिन्
शैलोत्तमे वानर सैन्यमध्ये।
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाभिवाद्य
विभीषणं तत्र च सस्वजे सः।। ३८।।

अग्नि के समान प्रकाशित होने वाले उस पर्वत को देख कर पवन कुमार हनुमान जी को बड़ा विस्मय हुआ। वे कूद कर ओषधियों से भरे हुए उस गिरिराज पर चढ़ गये और वहाँ पूर्वोक्त चारों ओषधियों का विचय अर्थात् उन्हें ढूँढ ढूँढ कर के, चुन चुन करके तरतीब से इकट्ठा करने लगे। (यहाँ विचय शब्द के तीनों अर्थ लगे हैं– ढूँढना, चुनना और तरतीब से रखना)

इस प्रकार उस ओषधि समूह को वहाँ से उखाड़ कर, साथ ले, हनुमान जी गरुड़ के समान भयंकर वेग से आकाश में उड़ चले। उस समय उन्हें लौटा हुआ देख कर वानर लोग जोर-जोर से गर्जना करने लगे और उन्होंने भी उन सबको देख कर बड़े हर्ष से सिंह नाद किया। तदनन्तर हनुमान जी उस उत्तम त्रिकूट पर्वत पर कूद पड़े और वानरसेना के मध्य में आकर सभी श्रेष्ठ वानरों को प्रणाम करके विभीषण से भी गले लगाकर मिले।

ततः संक्षोदयित्वा तमोषधीं वानरोत्तमः।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः।। ३९।।
सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात्।। ४०।।
तमुत्थितं तु हरयो भूतलात् प्रेक्ष्य लक्ष्मणम्।
साधुसाध्विति सुप्रीता लक्ष्मणं प्रत्यपूजयन्।। ४१।।
एह्येहीत्यब्रवीद् रामो लक्ष्मणं परवीरहा।
सस्वजे गाढमालिङ्ग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः।। ४२।।

तब महा तेजस्वी, उत्तम वानर सुषेण ने उस ओषधि को कूट पीस कर लक्ष्मण की नाक में डाला। शत्रुवीरों का विनाश करने वाले लक्ष्मण के शरीर में उस समय सब तरफ घाव हो रहे थे, उस ओषधि को सूँघ कर उनके वे घाव ठीक हो गये और वे नीरोग होकर शीघ्र ही भूमि तल से उठ कर खड़े हो गये। उनको भूमि पर से उठा हुआ देख कर वानर लोग प्रसन्न होकर साधु-साधु कहते हुए लक्ष्मण का सम्मान करने लगे। तब शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले राम ने आँखों में आँसू भर कर आओ, ऐसा कहते हुए लक्ष्मण को भुजाओं में भर लिया और कस कर छाती से लगा लिया।

अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा।
दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात् पुनरागतम्।। ४३।।
नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा।
को हि मे जीवितेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते।। ४४।।
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य राघवस्य महात्मनः।
खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।। ४५।।
तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम।
लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि।। ४६।।

छाती से लगा कर राम लक्ष्मण से बोले कि हे वीर! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम्हें मृत्युलोक से पुनः आया हुआ देख रहा हूँ। तुम्हारे बिना मुझे जीवन से, सीता से, या विजय प्राप्ति से क्या मतलब? तुम्हारे मर जाने पर मेरे जीवित रहने का क्या लाभ था? महात्मा राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण खिन्न होकर शिथिल वाणी से बोले कि हे सत्य पराक्रम! आप पहले प्रतिज्ञा करके (अर्थात विभीषण को लंका का राज्य देने की प्रतिज्ञा करके) किसी छोटे और धैर्यहीन प्राणी के समान ऐसा न कहिये।

नहि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः।
लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम्।। ४७।।
नैराश्यमुपगन्तुंच नालं ते मत्कृतेऽनघ।
वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय।। ४८।।
न जीवन् यास्यते शत्रुस्तव बाणपथं गतः।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य सिंहस्येव महागजः।। ४९।।
अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः।
यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः।। ५०।।

सत्यवादी लोग अपनी प्रतिज्ञा को असत्य नहीं करते हैं। प्रतिज्ञा का पालन करना ही महानता का लक्षण है। हे निष्पाप! आपको मेरे लिये निराशा को प्राप्त नहीं होना चाहिये। आप आज रावण के वध के द्वारा प्रतिज्ञा का पालन कीजिये। आपके बाणों के मार्ग में आकर शत्रु जीवित नहीं जा सकता। मैं तो इस दुरात्मा का शीघ्र ही जब तक ये सूर्य अपना कार्य पूरा करके वापिस नहीं चले जाते, उससे पहले ही वध देखना चाहता हूँ।

यदि वधमिच्छसि रावणस्य संख्ये
यदि च कृतां हि तवेच्छसि प्रतिज्ञाम्।
यदि तव राजसुताभिलाष आर्य
कुरु च वचो मम शीघ्रमद्य वीर।। ५१।।

हे वीर! यदि आप युद्ध में रावण का वध करना चाहते हैं, यदि आप अपनी की हुई प्रतिज्ञा को पूरा करना चाहते हैं, हे आर्य! यदि आपको राजपुत्री सीता को प्राप्त करने की अभिलाषा है, तो आप मेरी प्रार्थना को आज पूरा कीजिये।

अट्ठत्तरवाँ सर्ग

इन्द्र के भेजे रथ पर बैठ कर राम का रावण से युद्ध।

लक्ष्मणेन तु तद् वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः।
संदधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान्।। १।।
ततः काञ्चनचित्राङ्गः किङ्किणीशतभूषितः।
तरुणादित्यसंकाशो वैदूर्यमयकूबरः।। २।।
सदश्वैः काञ्चनापीडैर्युक्तः श्वेतप्रकीर्णकैः।
हरिभिः सूर्यसंकाशैर्हेमजालविभूषितैः।। ३।।
रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान् देवराजरथो वरः।
देवराजेन संदिष्टो रथमारुह्य मातलिः।। ४।।
अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टपात्।

लक्ष्मण की उन बातों को सुन कर शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले राम ने धनुष को लेकर उस पर बाणों का संधान कर युद्ध की तैयारी की। तभी देवराज इन्द्र के आदेश से उनका सारथी मातलि इन्द्र के उत्तम रथ को लेकर, तिब्बत से उतर कर उन ककुत्स्थवंशी राम के समीप आ गया। उस रथ के अंग सुनहरी सज्जा से सजे हुए थे। उसमें सैकड़ों नूपुर लगे हुए थे। वह बाल सूर्य के समान कान्तिवाला था। उसका कूबर वैदूर्य मणि से बना हुआ था। उत्तम घोड़े जो सुनहरे किरीट और सफेद कलगी से सुशोभित थे, सुनहरे साज से सजे हुए थे और सूर्य के समान कान्तिवान थे, उसमें जुते हुए थे। उसका ध्वजदण्ड सुनहरा था और वह सौन्दर्यशाली था।

अब्रवीच्च तदा रामं सप्रतोदो रथे स्थितः।। ५।।
प्रांजलिर्मातलिर्वाक्यं रथोऽयं विजयाय ते।
दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमञ्शत्रुनिबर्हण।। ६।।
इदमैन्द्रं महच्चापं कवचं चाग्निसंनिभम्।
शराश्चादित्यसंकाशाः शक्तिश्च विमला शिवा।। ७।।
आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम्।
आरुरोह तदा रामो लोकाँल्लक्ष्म्या विराजयन्।। ८।।

तब चाबुक लिये रथ में बैठा हुआ मातलि हाथ जोड़ कर राम से बोला कि– हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले श्रीमान महा बलशाली! यह रथ आपकी विजय के लिये भेजा गया है। इसमें यह इन्द्र का महान धनुष, अग्नि के समान तेजस्वी कवच, सूर्य के समान जगमगाते हुए बाण और कल्याणकारी अवगुण रहित शक्ति है। हे वीर!

आप इस रथ पर बैठिये और राक्षस रावण को मारिये। तब लोगों को अपने तेज से प्रसन्न करते हुए श्रीराम उस रथ पर बैठ गये।

तद् बभौ चाद्भुतं युद्धं द्वैरथं रोमहर्षणम्।
रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः।। ९।।
स गान्धर्वेण गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः।
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित्।। १०।।
अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः।
अभ्यवर्षत् तदा रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः।। ११।।
ततः शरसहस्रेण राममक्लिष्टकारिणम्।
अर्दयित्वा शरौघेण मातलिं प्रत्यविध्यत।। १२।।

उसके पश्चात् महाबाहु राम और राक्षस रावण का वह रोमांचक द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हुआ। उत्तम अस्त्रों के ज्ञाता राम ने राक्षस राज के गान्धर्व अस्त्र को गान्धर्व अस्त्र से और दैवास्त्र को दैवास्त्र से नष्ट कर दिया। अपने अस्त्रों के नष्ट हो जाने पर राक्षसपति रावण क्रोध में आकर राम के ऊपर भयानक बाण वर्षा करने लगा। उसने अनायास ही महान कर्म करने वाले राम को अनेक बाणों से पीड़ित किया और मातलि को भी अपने बाण समूह से बींध दिया।

चिच्छेद केतुमुद्दिश्य शरेणैकेन रावणः।
पातयित्वा रथोपस्थे रथात् केतुं च काञ्चनम्।। १३।।
ऐन्द्रानपि जघानाश्वाञ्शरजालेन रावणः।
निरस्यमानो रामस्तु दशग्रीवेण रक्षसा।। १४।।
नाशक्नोदभिसंधातुं सायकान् रणमूर्धनि।
स कृत्वा भ्रुकुटिं क्रुद्धः किंचित् संरक्तलोचनः।। १५।।
जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव राक्षसान्।
एतस्मिन्नन्तरे क्रोधाद् राघवस्य च रावणः।। १६।।
प्रहर्तुकामो दुष्टात्मा स्पृशन् प्रहरणं महत्।

उसके बाद रावण ने एक बाण से रथ की पताका को काट दिया। उसने उस सुनहरे डंडे वाली पताका को काट कर रथ के पिछले भाग में गिरा दिया। रावण ने अपने बाणों के जाल से इन्द्र के घोड़ों को भी घायल कर दिया। युद्ध के मुहाने पर उस समय रावण के द्वारा घायल किये जा रहे राम बाणों का ठीक प्रकार से अभिसंधान नहीं कर पा रहे थे। तब उसके बाद राम को महान क्रोध आया। क्रोध में भर कर भौहों को टेढ़ा कर और नेत्रों को लाल कर वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे राक्षसों को भस्म कर देंगे। इसी समय दुरात्मा रावण ने क्रोध में भर कर और राम को मारने की इच्छा से एक महान अस्त्र को हाथ में लिया।

प्रदीप्त इव रोषेण शूलं जग्राह रावणः।। १७।।
स गृहीत्वा महावीर्यः शूलं तद् रावणो महत्।
विनद्य सुमहानादं रामं परुषमब्रवीत्।। १८।।
शूलोऽयं वज्रसारस्ते राम रोषान्मयोद्यतः।
तव भ्रातृसहायस्य सद्यः प्राणान् हरिष्यति।। १९।।
रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमूमुखे।
त्वां निहत्य रणश्लाघिन् करोमि तरसा समम्।। २०।।

क्रोध से मानो जलते हुए रावण ने एक शूल को उठाया। महा तेजस्वी रावण ने उस विशाल शूल को लेकर और जोर से गर्जना कर, राम से कठोर शब्दों में कहा कि हे राम! क्रोध से मेरे द्वारा हाथ में लिया हुआ यह शूल वज्र के समान कठोर है। यह अपने भाई की सहायता करने वाले तेरे प्राणों को हर लेगा। युद्ध के मुहाने पर जो राक्षस मारे गये हैं, हे युद्ध के इच्छुक! आज मैं तुम्हें मार कर जल्दी ही उन लोगों के समान बना देता हूँ।

तिष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव।
एवमुक्त्वा स चिक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिपः।। २१।।
तच्छूलं राघवो दृष्ट्वा ज्वलन्तं घोरदर्शनम्।
ससर्ज विशिखान् रामश्चापमायम्य वीर्यवान्।। २२।।
निर्ददाह स तान् बाणान् रामकार्मुकनिःसृतान्।
रावणस्य महाञ्शूलः पतङ्गानिव पावकः।। २३।।
तान् दृष्ट्वा भस्मसाद्भूताञ्शूलसंस्पर्शचूर्णितान्।
सायकानन्तरिक्षस्थान् राघवः क्रोधमाहरत्।। २४।।

हे राघव! ठहर जाओ। अभी तुम्हें इस शूल से मारता हूँ। ऐसा कह कर उस राक्षसपति ने उस शूल को उनके ऊपर फैंक दिया। तेजस्वी राम ने उस भयानक दिखाई देने वाले, जलते हुए शूल को देख कर धनुष को खींच कर उसके ऊपर बाणों को छोड़ा। पर रावण के उस महान शूल ने राम के धनुष से निकले हुए बाणों को ऐसे ही भस्म कर दिया, जैसे आग पतंगों को जला देती है। जब श्रीराम ने देखा कि मेरे बाण शूल का स्पर्श कर आकाश में ही भस्म और नष्ट हो गये हैं, तब उन्हें बड़ा क्रोध आया। ~~वैसे ही [illegible] बाणों से [illegible] को आच्छादित कर दिया, किन्तु उस युद्ध में [illegible] धनुष से छूटे हुए बाणों को [illegible] नहीं हुआ।~~

स तां मातलिना नीतां शक्तिं वासवसम्मताम्।
जग्राह परमक्रुद्धो राघवो रघुनन्दनः।। २५।।

सा क्षिप्ता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिञ्छूले पपात ह।
भिन्नः शक्त्या महाञ्शूलो निपपात गतद्युतिः।। २६।।
निर्बिभेद ततो बाणैर्हयानस्य महाजवान्।
रामस्तीक्ष्णैर्महावेगैर्वज्रकल्पैरजिह्मगैः ।। २७।।
निर्बिभेदोरसि तदा रावणं निशितैः शरैः।
राघवः परमायत्तो ललाटे पत्रिभिस्त्रिभिः।। २८

तब अत्यन्त क्रुद्ध रघुनन्दन राम ने मातलि के द्वारा लायी हुई और इन्द्र के द्वारा सम्मानित शक्ति को हाथ में लिया। उनके द्वारा फैंकी हुई वह शक्ति उस शूल से जाकर टकराई और उस शक्ति के द्वारा टुकड़े किया हुआ वह शूल कान्ति रहित होकर भूमि पर गिर पड़ा। इसके बाद राम ने वज्र के समान महान वेगवाले अपने तीक्ष्ण और सीधे जाने वाले बाणों से रावण के महान वेग वाले घोड़ों को घायल कर दिया। इसके बाद अत्यन्त सावधानी से राम ने रावण की छाती में तीन तीखे बाणों का तथा ललाट में भी तीन तीखे बाणों से प्रहार किया।

उनासीवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा रावण को फटकारना और उनके द्वारा घायल किये गये रावण को सारथी द्वारा युद्धभूमि से बाहर ले जाना।

स तु तेन तदा क्रोधात् काकुत्स्थेनार्दितो भृशम्।
रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत्।। १।।
स दीप्तनयनोऽमर्षाच्चापमुद्यम्य वीर्यवान्।
अभ्यर्दयत् सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे।। २।।
बाणधारासहस्रैस्तैः स तोयद इवाम्बरात्।
राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयन्।। ३।।
पूरितः शरजालेन धनुर्मुक्तेन संयुगे।
महागिरिरिवाकम्प्यः काकुत्स्थो न प्रकम्पते।। ४।।

श्रीराम के द्वारा क्रोध से अत्यन्त पीड़ित होकर युद्ध के इच्छुक रावण को बड़ा क्रोध आया। वह लाल आँखों वाला तेजस्वी तब अमर्ष के साथ धनुष को उठा कर अत्यन्त क्रोध के साथ उस महायुद्ध में राम को पीड़ित करने लगा। जैसे बादल आकाश से जल की धारा गिराकर तालाब को भर देते हैं, वैसे ही उसने हजारों बाणों से राम को आच्छादित कर दिया, किन्तु उस युद्ध में उसके धनुष से छूटे हुए बाणों के जाल से भर जाने पर भी महान पर्वत के समान अचल राम कम्पित नहीं हुए।

स शरैः शरजालानि वारयन् समरे स्थितः।
ततः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचरः।। ५।।
निजघानोरसि क्रुद्धो राघवस्य महात्मनः।
स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः।। ६।।
दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान् किंशुकद्रुमः।
शराभिघातसंरब्धः सोऽभिजग्राह सायकान्।। ७।।
काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यवर्चसः।
ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः।। ८।।
उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः।

वे अपने बाणों से उसके बाण समूहों का निवारण करते हुए युद्ध में खड़े रहे। तब तेजी से बाण चलाने वाले उस क्रुद्ध निशाचर ने महात्मा राम की छाती में अनेक बाणों का प्रहार किया। लक्ष्मण के बड़े भाई राम तब रक्त से भर उस युद्ध क्षेत्र में, वन में विद्यमान फूलों वाले पलाश के महान वृक्ष के समान दिखाई दे रहे थे। बाणों के आघात से क्रुद्ध होकर महा तेजस्वी राम ने प्रलयकाल के सूर्य के समान तेज वाले बाणों को उठाया और क्रोध में भरे हुए वीर दशरथ पुत्र राम ने हँस कर कठोर वाणी में रावण को कहा कि–

शूरोऽहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते।। ९।।
नैव लज्जास्ति ते सीतां चौरवद् व्यपकर्षतः।
यदि मत्संनिधौ सीता धर्षिता स्यात् त्वया बलात्।। १०।।
भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः।
दिष्ट्यासि मम मन्दात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः।। ११।।
अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम्।
अद्य ते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलितकुण्डलम्।। १२।।
क्रव्यादा व्यपकर्षन्तु विकीर्णं रणपांसुषु।

अरे दुर्मति! तू अपने आपको शूरवीर समझता है। पर तुझे चोरों की तरह सीता को उठाते हुए शर्म नहीं आयी। यदि तूने मेरे सामने बल पूर्वक सीता का अपहरण किया होता, तो मेरे बाणों के द्वारा तू अपने भाई खर के दर्शन कर लेता। हे मन्दबुद्धि! सौभाग्य से तू मेरी निगाहों के सामने आ गया है। आज तुझे तीखे बाणों से मृत्युलोक को भेजता हूँ। जगमगाते कुण्डलों वाला तेरा सिर आज मेरे बाणों से कट कर युद्ध भूमि की

धूल में बिखर जायेगा और मांसभोजी उसे इधर उधर घसीटेंगे।

निपत्योरसि गृध्रास्ते क्षितौ क्षिप्तस्य रावण।। १३।।
पिबन्तु रुधिरं तर्षाद् बाणशल्यान्तरोत्थितम्।
अद्य मद्बाणभिन्नस्य गतासोः पतितस्य ते।। १४।।
कर्षन् त्वन्त्राणि पतगा गरुत्मन्त इवोरगान्।
इत्येवं स वदन् वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः।। १५।।
राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत्।
बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे।। १६।।
रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः।

हे रावण जब तुझे भूमि पर गिरा दिया जायेगा तब गिद्ध तेरी छाती पर बैठ कर बाणों के द्वारा किये गये घावों के मार्ग से बहते हुए रक्त को बड़ी प्यास से पीयेंगे। आज मेरे द्वारा छोड़े हुए बाणों से जब तू मर कर गिरेगा, तो पक्षी तेरी आँतों को ऐसे ही खींचेंगे, जैसे गरुड़ पक्षी साँपों को खींचते हैं। ऐसा कहते हुए शत्रुहन्ता राम ने समीप ही खड़े हुए राक्षसराज को बाणवर्षा से भर दिया। शत्रु की मृत्यु के इच्छुक राम का तेज, बल और हर्ष तथा अस्त्रों के द्वारा प्रहार की शक्ति उस समय युद्ध में दुगुनी हो गयी थी।

हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात्।। १७।।
हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत्।
यदा च शस्त्रं नारेभे न चकर्ष शरासनम्।। १८।।
नास्य प्रत्यकरोद् वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना।
क्षिप्ताश्चाशु शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च।। १९।।
मरणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालोऽभ्यवर्तत।
सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं निरीक्ष्य तम्।
शनैर्युद्धादसम्भ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत्।। २०।।

वानरों के द्वारा फैंके हुए पत्थरों से और श्रीराम की बाण वर्षा से आहत होते हुए रावण का हृदय उस समय व्याकुल हो गया। जब व्याकुलता के कारण उससे शस्त्र उठाना, धनुष को खींचना, और शत्रु का पराक्रम से प्रतिरोध करना नहीं हो सका, उसके ऊपर फैंके जाते हुए बाण और अनेक प्रकार के अस्त्र उसकी मृत्यु के साधक बनने लगे और वह मरने के समीप पहुँचने लगा, तब उसके रथ को चलाने वाला सारथी उसकी इस अवस्था को देख कर, बिना घबराहट के उसके रथ को चुपचाप वहाँ से दूर हटा कर ले गया।

अस्सीवाँ सर्ग

रावण का सारथी को फटकारना और सारथी का उसे लेकर पुनः रणभूमि में आना।

स तु मोहात् सुसंक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः।
क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत्।। १।।
हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम्।
भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा।। २।।
विमुक्तमिव मायाभिरस्त्रैरिव बहिष्कृतम्।
मामवज्ञाय दुर्बुद्धे स्वया बुद्ध्या विचेष्टसे।। ३।।
किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च।
त्वया शत्रुसमक्षं मे रथोऽयमपवाहितः।। ४।।

रावण उस समय मृत्यु के बल से प्रेरित होकर मोह में पड़ा हुआ था। इसलिये अत्यन्त क्रुद्ध होकर और लाल आँखें करके वह सारथी से कहने लगा कि हे दुर्बुद्धि! क्या तू मुझे तेज रहित, असमर्थ, पौरुष से रहित, कायर, तुच्छ व्यक्तियों के समान धैर्य रहित, निस्तेज, मायाशक्ति से रहित तथा अस्त्रों का त्याग किये हुए के समान समझता है? जो मेरी अवहेलना कर अपनी बुद्धि से मनमाना काम करता है। मेरी अवहेलना कर मेरी इच्छा को जाने बिना तू ने शत्रु के सामने से यह रथ क्यों हटा लिया?

त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालमुपार्जितम्।
यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः।। ५।।
शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः।
पश्यतो युद्धलुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया।। ६।।
यत् त्वं कथमिदं मोहान्न चेद् वहसि दुर्मते।
सत्योऽयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः।। ७।।
नहि तद् विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः।
रिपूणां सदृशं त्वेतद् यत् त्वयैतदनुष्ठितम्।। ८।।

अरे अनार्य! तूने आज मेरा चिरकाल से एकत्र किया हुआ यश, पराक्रम, तेज और विश्वास नष्ट कर दिया। उस शत्रु के सामने जो प्रसिद्ध पराक्रम वाला है, जिसे विक्रम से सन्तुष्ट करना आवश्यक है, तूने मुझे कायर

पुरुष बना दिया, यद्यपि तू जानता है कि मैं युद्ध का लोभी हूँ। हे दुर्मति! यदि तू किसी मोह के वश में पड़ कर रथ को नहीं चला रहा है, तो मेरा अनुमान सत्य है कि शत्रु ने तेरा उपकार कर तुझे अपनी तरफ कर लिया हैं। तू ने जो काम किया है, वह मित्र और भलाई चाहने वाले व्यक्ति के योग्य नहीं है, बल्कि शत्रुओं जैसा कार्य है।

निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नापैति मे रिपुः।
यदि वाप्युषितोऽसि त्वं स्मर्यते यदि मे गुणः।। ९।।
एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना।
अब्रवीद् रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः।। १०।।
न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः।
न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया।। ११।।
मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता।
स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं कृतम्।। १२।।

यदि तू मेरे साथ बहुत दिनों से रह रहा है, यदि तुझे मेरे गुणों का स्मरण है, तो शत्रु के युद्ध क्षेत्र से हट जाने से पहले ही जल्दी इस रथ को वापिस ले चल। भलाई चाहने वाले सारथी से जब उस बुद्धि रहित रावण ने इस प्रकार कठोर बातें कहीं, तब वह सारथी विनय के साथ उसके कल्याण की बात बोला कि– महाराज मैं न तो डरा हुआ हूँ, न मोह में पड़ा हुआ हूँ, न शत्रुओं ने मुझे बहकाया है, नाही मैं असावधान हूँ, न मैं आपके प्रति स्नेह से रहित हूँ, और नाही मैंने आपके अपने प्रति किये हुए सत्कार्यों को भुला दिया है। मैंने तो आपके हित की कामना से और आपके यश की रक्षा करते हुए, आपके प्रति स्नेह से सिक्त मन से यह आपकी भलाई के लिये है, यह सोच कर यह कार्य किया है, यद्यपि यह आपको अप्रिय लगा है।

नास्मिन्नर्थे महाराज त्वं मां प्रियहिते रतम्।
कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि।। १३।।
श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा।
नहि ते वीर्यसौमुख्यं प्रकर्षं नोपधारये।। १४।।
रथोद्वहनखिन्नाश्च भग्ना मे रथवाजिनः।
दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव।। १५।।
देशकालौ च विज्ञेयौ लक्षणानीङ्गितानि च।
दैन्यं हर्षश्च खेदश्च रथिनश्च बलाबलम्।। १६।।

मैं आपकी भलाई और प्रिय करने में ही लगा हुआ हूँ, इसलिये आप इस कार्य के लिये मुझे किसी छोटे और अनार्य पुरुष के समान समझ कर मुझ पर दोषारोपण न करें। उस समय मैंने यह समझा कि महान युद्ध कर्म के कारण आप थक गये हैं। मैंने आपमें शत्रु की अपेक्षा अधिक प्रबलता और पराक्रम नहीं पाया। रथ के लगातार खींचने से मेरे घोड़े भी थक गये थे। धूप से बेचैन होकर ये वर्षा से सताई हुई गायों के समान दीन बन रहे थे। सारथी के लिये देश और काल को समझना आवश्यक है। उसे रथी के लक्षणों का, चेष्टाओं का, उसकी दीनता और हर्ष का, और खेद तथा उसके बलाबल का ज्ञान रखना चाहिये।

स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमाणि च।
युद्धकालश्च विज्ञेयः परस्यान्तरदर्शनम्।। १७।।
उपयानापयाने च स्थानं प्रत्यपसर्पणम्।
सर्वमेतद् रथस्थेन ज्ञेयं रथकुटुम्बिना।। १८।।
तव विश्रामहेतोस्तु तथैषां रथवाजिनाम्।
रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया।। १९।।
स्वेच्छया न मया वीर रथोऽयमपवाहितः।
भर्तुः स्नेहपरीतेन मयेदं यत् कृतं प्रभो।। २०।।

उसे भूमि का ऊँचा नीचापन तथा उसकी समता और विषमता का ध्यान रखना चाहिये। उसे युद्ध में उचित समय को समझना चाहिये और शत्रु की कमजोरी पर निगाह रखनी चाहिये। रथ पर बैठे हुए सारथी को यह सब समझना चाहिये कि कब शत्रु के समीप जाना, कब उससे दूर हट जाना, कब उसके सामने डटे रहना और कब युद्ध से अलग होना लाभ दायक है। आपको और इन घोड़ों को विश्राम देने के लिये तथा आपके महान खेद को दूर करने के लिये मैंने यह उचित कार्य ही किया है। हे प्रभो! मैंने अपनी मर्जी से रथ को वहाँ से नहीं हटाया है। स्वामी के प्रति स्नेह से युक्त होने के कारण ही मैंने यह किया है।

आज्ञापय यथातत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन।
तत् करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा।। २१।।
संतुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः।
प्रशस्यैनं बहुविधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम्।। २२।।
रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं नय।
नाहत्वा समरे शत्रून् निवर्तिष्यति रावणः।। २३।।
एवमुक्त्वा रथस्थस्य रावणो राक्षसेश्वरः।
ददौ तस्य शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम्।
श्रुत्वा रावणवाक्यानि सारथिः संन्यवर्तत।। २४।।

हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! अब आप आज्ञा कीजिये। उचित समझ कर आप जो भी आदेश देंगे,

हे वीर! उसे मैं आपके ऋण को चुकाने के हृदय से पूरा करूँगा तब युद्ध का लोभी रावण, सारथी की बातों से सन्तुष्ट होकर और उसकी अनेक प्रकार से प्रशंसा कर, उससे यह बोला कि हे सूत! अब इस रथ को शीघ्र ही राम के सामने ले चलो। रावण युद्ध में शत्रुओं को मारे बिना नहीं लौटेगा। ऐसा कह कर सारथी को राक्षसेश्वर रावण ने अपने हाथ का एक सुन्दर आभूषण दिया। तब सारथी ने रावण के आदेश को चुन कर रथ को लौटाया।

ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः
प्रचोदयामास हयान् स सारथिः।
स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः
क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत्।। २५।।

तब रावण के वाक्यों से प्रेरित होकर सारथी ने घोड़ों को तेजी से दौड़ाया और राक्षसेन्द्र रावण का वह विशाल रथ क्षण भर में ही युद्ध के मुहाने पर राम के सामने जा पहुँचा।

इक्यासीवाँ सर्ग

रावण के रथ को देख कर श्रीराम द्वारा मातलि को सावधान करना। श्रीराम और रावण का घोर युद्ध और श्रीराम द्वारा रावण का वध।

स दृष्ट्वा मेघसंकाशमापतन्तं रथं रिपोः।
विस्फारयन् वै वेगेन बालचन्द्रानतं धनुः।। १।।
उवाच मातलिं रामः सहस्राक्षस्य सारथिम्।
मातले पश्य संरब्धमापतन्तं रथं रिपोः।। २।।
यथापसव्यं पतता वेगेन महता पुनः।
समरे हन्तुमात्मानं तथानेन कृता मतिः।। ३।।
तदप्रमादमातिष्ठ प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः।
विध्वंसयितुमिच्छामि वायुर्मेघमिवोत्थितम्।। ४।।

तब बादलों के समान शत्रु के रथ को आक्रमण के लिये आता हुआ देख कर, अपने बाल चन्द्रमा के समान झुके हुए धनुष को टंकारते हुए श्रीराम इन्द्र के सारथी मातलि से बोले कि हे मातलि! आक्रमण के लिये वेग से आते हुए शत्रु के रथ को देखो। जिस प्रकार के महान वेग से दायीं तरफ से यह रावण पुनः चला आ रहा है, उससे यह जान पड़ता है कि इसने युद्ध में आत्म हत्या करने का निश्चय कर लिया है। इसलिये अब सावधानी से बैठो। शत्रु के रथ की तरफ बढ़ो। जैसे वायु उमड़ते बादलों को छिन्न-भिन्न कर देती है, वैसे ही मैं इसका विध्वंस करना चाहता हूँ।

अविक्लवमसम्भ्रान्तमव्यग्रहृदयेक्षणम्।
रश्मिसंचारनियतं प्रचोदय रथं द्रुतम्।। ५।।
कामं न त्वं समाधेयः पुरंदररथोचितः।
युयुत्सुरहमेकाग्रः स्मारये त्वां न शिक्षये।। ६।।
परितुष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः।
प्रचोदयामास रथं सुरसारथिरुत्तमः।। ७।।
अपसव्यं ततः कुर्वन् रावणस्य महारथम्।

इसलिये बिना व्यग्र हुए, बिना घबराये, बिना व्याकुलता के, अपने हृदय और आँखों को एकाग्र रखते हुए, घोड़ों की लगाम को अपने काबू में रखते हुए, रथ को तेजी से चलाओ। यद्यपि तुम्हें कहने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम्हें शत्रु के नगर को नष्ट करने वाले इन्द्र के रथ को चलाने का अभ्यास है, पर मैं एकाग्र चित्त से युद्ध करना चाहता हूँ, इसलिये तुम्हें याद दिला रहा हूँ, शिक्षा नहीं दे रहा हूँ। राम के उस वचन से सन्तुष्ट होकर देवताओं के उत्तम सारथि मातलि ने रावण के विशाल रथ को दायें रखते हुए अपने रथ को चलाया।

ततः क्रुद्धो दशग्रीवस्ताम्रविस्फारितेक्षणः।। ८।।
रथप्रतिमुखं रामं सायकैरवधूनयत्।
धर्षणामर्षितो रामो धैर्यं रोषेण लम्भयन्।। ९।।
जग्राह सुमहावेगमैन्द्रं युधि शरासनम्।
शरांश्च सुमहावेगान् सूर्यरश्मिसमप्रभान्।। १०।।
तदुपोढं महद् युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः।
परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः।। ११।।

तब क्रोध में भर कर अपनी लाल आँखें फाड़ते हुए रावण ने अपने रथ के सामने विद्यमान राम को अपनी बाण वर्षा से भर दिया। रावण के उस आक्रमण से राम को बड़ा क्रोध हुआ। क्रोध के साथ धैर्य को भी धारण करते हुए उन्होंने उस युद्ध में महान वेगशाली इन्द्र के धनुष को ग्रहण किया और सूर्य की किरणों के समान

जगमगाते हुए महा वेगवान बाणों को भी निकाला। उसके पश्चात एक दूसरे के सामने खड़े हुए दर्प में भरे हुए दो सिंहों के समान एक दूसरे के वध को चाहने वाले उन दोनों में महान युद्ध आरम्भ हो गया।

नानाप्रहरणैर्व्यग्रैर्भुजैर्विस्मितबुद्धयः ।
तस्थुः प्रेक्ष्य च संग्रामं नाभिजग्मुः परस्परम्।। १२।।
रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम्।
पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ।। १३।।
ततः क्रोधाद् दशग्रीवः शरान् संधाय वीर्यवान्।
मुमोच ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम्।। १४।।
ते शरास्तमनासाद्य पुरंदररथध्वजम्।
रथशक्तिं परामृश्य निपेतुर्धरणीतले।। १५।।

यद्यपि उस समय दोनों तरफ की सेनाएँ अनेक प्रकार के आयुधों से युक्त थीं, उनके हाथ आक्रमण करने के लिये व्यग्र थे, पर राम और रावण के उस संग्राम को देखकर वे विस्मय से चुप चाप खड़ी रहीं। उन्होंने एक दूसरे पर आक्रमण नहीं किया। राक्षस रावण की तरफ देख रहे थे और वानर राम की तरफ देख रहे थे। उनकी आँखें विस्मय से भरी हुईं थीं। इसलिये दोनों तरफ की सेनाएँ चित्रलिखित सी हो गयीं थीं। तब पराक्रमी रावण ने क्रोधवश बाणों को राम के रथ पर विद्यमान ध्वजा को लक्ष्य करते हुए संधान करके छोड़ दिया। पर वे बाण इन्द्र के रथ की ध्वजा तक न पहुँच सके और केवल रथ शक्ति को स्पर्श कर भूमि पर गिर पड़े।

ततो रामोऽपि संक्रुद्धश्चापमाकृष्य वीर्यवान्।
कृतप्रतिकृतं कर्तुं मनसा सम्प्रचक्रमे।। १६।।
रामश्चिक्षेप तेजस्वी केतुमुद्दिश्य सायकम्।
जगाम स महीं छित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः।। १७।।
स निकृत्तोऽपतद् भूमौ रावणस्यन्दनध्वजः।
ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः स महाबलः।। १८।।
सम्प्रदीप्तोऽभवत् क्रोधादमर्षात् प्रदहन्निव।
स रोषवशमापन्नः शरवर्षं ववर्ष ह।। १९।।

तब क्रोध से भरे हुए पराक्रमी राम ने भी धनुष को खींच कर उसका बदला चुकाने का विचार मन में किया। तेजस्वी राम ने तब रावण के ध्वज को लक्ष्य करके अपना बाण छोड़ा। वह बाण उसकी पताका को काट कर भूमि पर गिर पड़ा। रावण के रथ का ध्वज कट कर भूमि पर गिर पड़ा। अपने ध्वज को कटा हुआ देख कर महाबली रावण क्रोध और असहनशीलता से जलता हुआ दूसरों को जलाने सा लगा। क्रोधावस्था में उसने महान बाण वर्षा करनी आरम्भ कर दी।

व्यायच्छमानं तं दृष्ट्वा तत्परं रावणं रणे।
प्रहसन्निव काकुत्स्थः संदधे निशिताञ्छरान्।। २०।।
स मुमोच ततो बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः।
प्रायुध्येतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम्।। २१।।
रावणस्य हयान् रामो हयान् रामस्य रावणः।
जघ्नतुस्तौ तदान्योन्यं कृतानुकृतकारिणौ।। २२।।
एवं तु तौ सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्।

युद्ध में तत्पर उस रावण को बाण वर्षा में विशेष परिश्रम करता हुआ देख कर हँसते हुए उन ककुत्स्थवंशी राम ने भी सैकड़ों, हजारों तीखे बाणों का संधान कर उन्हें छोड़ा। इस प्रकार वे दोनों योद्धा दायें व बायें अविछिन्न रूप से प्रहार करते हुए युद्ध करते रहे। एक दूसरे के आक्रमण का बदला चुकाते हुए राम के घोड़ों को रावण ने और रावण के घोड़ों को राम ने घायल कर दिया। इस प्रकार वे दोनों क्रोध में भरे हुए उस उत्तम युद्ध को करते रहे।

परस्परवधे युक्तौ घोररूपौ बभूवतुः।। २३।।
मण्डलानि च वीथीश्च गतप्रत्यागतानि च।
दर्शयन्तौ बहुविधां सूतौ सारथ्यजां गतिम्।। २४।।
अर्दयन् रावणं रामो राघवं चापि रावणः।
गतिवेगं समापन्नौ प्रवर्तननिवर्तने।। २५।।
क्षिपतोः शरजालानि तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ।
चेरतुः संयुगमहीं सासारौ जलदाविव।। २६।।

एक दूसरे के वध के लिये प्रयत्न करते हुए उन्होंने भयानक रूप धारण कर लिया था। उन दोनों के सारथी उस समय अपने कौशल का परिचय देते हुए रथों को अनेक प्रकार की गतियों (जैसे कभी गोलाकार, कभी सीधे, कभी आगे जाना, कभी पीछे लौटना) से संचालन कर रहे थे। राम को रावण पीड़ित कर रहा था तो राम रावण को पीड़ित कर रहे थे। युद्ध विषयक प्रवृत्ति और निवृत्ति में वे दोनों तदनुरूप गतिवेग का आश्रय ले रहे थे। बाणों की वर्षा करते हुए उन दोनों के उत्तम रथ उस युद्ध भूमि में वर्षा करते हुए बादलों के समान विचरण कर रहे थे।

दर्शयित्वा तदा तौ तु गतिं बहुविधां रणे।
परस्परस्याभिमुखौ पुनरेव च तस्थतुः।। २७।।
रावणस्य ततो रामो धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः।
चतुर्भिश्चतुरो दीप्तान् हयान् प्रत्यपसर्पयत्।। २८।।
स क्रोधवशमापन्नो हयानामपसर्पणे।

मुमोच निशितान् बाणान् राघवाय दशाननः।। २९।।
सोऽतिविद्धो बलवता दशग्रीवेण राघवः।
जगाम न विकारं च न चापि व्यथितोऽभवत्।। ३०।।

वे दोनों रथ उस युद्ध में अनेक प्रकार की गतियों का प्रदर्शन कर पुनः एक दूसरे के सामने आकर खड़े हो गये। तब राम ने अपने धनुष से छोड़े हुए चार तीक्ष्ण बाणों से उसके चारों तेजस्वी घोड़ों को पीछे हटा दिया। घोड़ों के पीछे हटने से क्रोध से भर कर रावण ने राम के ऊपर तीखे बाणों को छोड़ा। रावण के द्वारा अत्यन्त घायल होने पर भी राम न तो दुखी हुए और न उनके मुख पर कोई परिवर्तन आया।

चिक्षेप च पुनर्बाणान् वज्रसारसमस्वनान्।
सारथिं वज्रहस्तस्यसमुद्दिश्य दशाननः।। ३१।।
तया धर्षणया क्रुद्धो मातलेर्न तथाऽऽत्मनः।
विंशतिं त्रिंशतिं षष्टिं शतशोऽथ सहस्रशः।। ३२।।
मुमोच राघवो वीरः सायकान् स्यन्दने रिपोः।
रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः।। ३३।।
तत् प्रवृत्तं पुनर्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्।

उसके बाद रावण ने इन्द्र के सारथी को लक्ष्य करके वज्र के समान ध्वनि करने वाले बाण छोड़े। मातलि पर किये गये उस आक्रमण से श्रीराम को जितना क्रोध आया उतना उन्हें अपने ऊपर किये आक्रमण से नहीं आया। तब वीर राम ने शत्रु के रथ पर बीस, तीस, साठ, सौ और हजारों बाणों की वर्षा की। रथ में बैठा हुआ राक्षस राज रावण भी तब बहुत क्रोध में भर गया। इस प्रकार उन दोनों में रोंगटे खड़े कर देने वाला युद्ध पुनः छिड़ गया।

नैव रात्रिं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम्।। ३४।।
रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति।
अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा।। ३५।।
अजानन्निव किं वीर त्वमेनमनुवर्तसे।
विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो।। ३६।।
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः।
जग्राह स शरं दीप्तं निश्वसन्तमिवोरगम्।। ३७।।
यं तस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः।

राम और रावण का वह युद्ध एक क्षण और एक मुहूर्त के लिये भी कभी बन्द नहीं हुआ। वह रात और दिन चलता रहा। तब मातलि ने राम को याद दिलाते हुए कहा कि हे वीर! आप न जानते हुए के समान इसका ही अनुकरण क्यों कर रहे हैं? अर्थात् इस प्रकार युद्ध कर रहे हैं जैसे युद्ध विद्या को न जानते हों तथा इसके छोड़े हुए आयुधों से ही बचाव करते हुए रक्षात्मक युद्ध कर रहे हो, आक्रमणात्मक युद्ध क्यों नहीं करते? हे प्रभो! आप इसके वध के लिये उस बाण को प्रयोग कीजिये जो ब्रह्मा जी के द्वारा निर्मित है। तब उस मातलि के याद दिलाने पर राम को याद आ गया और उन्होंने फुफकारते सर्प हुए सर्प के समान भयानक और जगमगाते हुए बाण को निकाला, जिसे पहले अगस्त्य ऋषि ने उन्हें दिया था।

स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्।। ३८।।
चिक्षेप परमायत्तः शरं मर्मविदारणम्।
स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः।। ३९।।
कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद् रावणोरसि।
स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः परः।। ४०।।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः।

अत्यन्त क्रुद्ध होकर तब उन्होंने धनुष को खींच कर उस मर्म को विदीर्ण करने वाले बाण को अति सावधानी से रावण के ऊपर छोड़ दिया। वह इन्द्र के हाथ से छूटे वज्र के समान दुर्धर्ष और मृत्यु के समान निवारण रहित बाण रावण की छाती पर जा लगा। छोड़े हुए उस महा वेगशाली, शरीर का अन्त कर देने वाले श्रेष्ठ बाण ने उस दुरात्मा रावण के हृदय को विदीर्ण कर दिया।

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः।। ४१।।
अर्दिता वानरैर्हृष्टैर्लङ्कामभ्यपतन् भयात्।
हताश्रयत्वात् करुणैर्बाष्पप्रस्रवणैर्मुखैः।। ४२।।
ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम्।। ४३।।

उसे भूमि पर गिरा हुआ देख कर मरने से बचे हुए राक्षस हर्षित हुए वानरों से पीड़ित होते हुए भयभीत होकर लंका में भाग गये। उन्हें आश्रय देने वाला अब नष्ट हो गया था इसलिये उस समय उनके मुख पर दुख के आँसू बह रहे थे। विजय के इच्छुक वानर तक हर्षित होकर राम की जय और रावण के वध की घोषणा करते हुए जोर-जोर से गर्जना करने लगे।

ततस्तु सुग्रीवविभीषणाङ्गदाः
सुहृद्विशिष्टाः सहलक्ष्मणस्तदा।
समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं
रणेऽभिरामं विधिनाभ्यपूजयन्।। ४४।।

तब लक्ष्मण के साथ सुग्रीव, विभीषण, अंगद आदि विशिष्ट मित्रों ने विजय से हर्षित होकर उस युद्ध क्षेत्र में सौन्दर्यशाली राम के पास एकत्र हो कर उनकी विधि पूर्वक पूजा की अर्थात उनका सत्कार किया।

बयासीवाँ सर्ग

विभीषण का विलाप, श्रीराम का उन्हें समझाना। रावण की स्त्रियों का विलाप।

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं निर्जितं रणे।
शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः।। १।।
वीरविक्रान्त विख्यात प्रवीण नयकोविद।
महार्हशयनोपेत किं शेषे निहतो भुवि।। २।।
निक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ भुजावङ्गदभूषितौ।
मुकुटेनापवृत्तेन भास्कराकारवर्चसा।। ३।।
तदिदं वीर सम्प्राप्तं यन्मया पूर्वमीरितम्।
काममोहपरीतस्य यत् तन्न रुचितं तव।। ४।।

अपने भाई रावण को पराजित तथा मारा हुआ और युद्ध क्षेत्र में सोया हुआ देख कर विभीषण की आत्मा शोक के आवेग से भर गयी और वह विलाप करने लगे। वे कहने लगे कि हे वीर! हे विख्यात पराक्रमी! हे चतुर! हे नीतिकुशल! आप बहु मूल्य बिछौनों पर सोया करते थे, अब क्यों मारे जाकर, भूमि पर सो रहे हो? केयूर से भूषित तुम्हारी दोनों विशाल भुजाएँ जो अब निश्चेष्ट हो गयी हैं, इन्हें फैलाये क्यों पड़े हो? तुम्हारा सूर्य के समान तेजस्वी मुकुट गिरा हुआ पड़ा है। हे वीर! मैंने पहले तुम्हें जो चेतावनी दी थी पर काम और मोह के वश में होने के कारण तुम्हें अच्छी नहीं लगी थी, उसी के अनुसार तुम्हारी यह अवस्था हो गयी।

यन्न दर्पात् प्रहस्तो वा नेन्द्रजिन्नापरे जनाः।
न कुम्भकर्णोऽतिरथो नातिकायो नरान्तकः।। ५।।
न स्वयं बहु मन्येथास्तस्योदर्कोऽयमागतः।
गतः सत्त्वस्य संक्षेपः सुहृस्तानां गतिर्गता।। ६।।
आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः।
चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः।। ७।।
अस्मिन् निपतिते वीरे भूमौ शस्त्रभृतां वरे।
किं शेषमिहलोकस्य गतसत्त्वस्य सम्प्रति।
रणे राक्षसशार्दूले प्रसुप्त इव पांसुषु।। ८।।

मेरी जिन बातों को अभिमान के कारण न प्रहस्त ने, न इन्द्रजित ने, न दूसरे लोगों ने, न कुम्भकर्ण ने, न अतिरथ ने, न अतिकाय और नरान्तक ने और न स्वयं तुमने अधिक महत्व दिया, उसी का दुष्परिणाम अब यह सामने आया है। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ इस वीर के भूमि पर गिरने से बल के संग्रह का स्थान नष्ट हो गया, हस्तकौशल दिखाने वालों का सहारा चला गया। ऐसा लगता है जैसे सूर्य पृथिवी पर गिर पड़ा हो या चन्द्रमा अन्धेरे में डूब गया हो, प्रज्वलित अग्नि शान्त हो गयी, और प्रयत्नशीलता समाप्त हो गयी। राक्षससिंह रावण के रणभूमि की धूल में सो जाने पर अब इस शक्ति रहित संसार में क्या शेष रहा है?

धृतिप्रवालः प्रसभाग्र्यपुष्प–
स्तपोबलः शौर्यनिबद्धमूलः।
रणे महान् राक्षसराजवृक्षः
सम्मर्दितो राघवमारुतेन।। ९।।

हाय धैर्य ही जिसके पत्ते थे, हठ ही जिसके फूल थे, तपस्या ही जिसका बल था और वीरता जिसकी जड़ थी, उस महान राक्षसराज रूपी वृक्ष को राम रूपी आँधी ने उखाड़ दिया।

तेजोविषाणः कुलवंशवंशः
कोपप्रसादापरगात्रहस्तः।
इक्ष्वाकुसिंहावगृहीतदेहः
सुप्तः क्षितौ रावणगन्धहस्ती।। १०।।

हाय तेज ही जिसके दाँत थे, वंश परम्परा ही जिसकी पीठ थी, क्रोध ही जिसके नीचे के अंग थे, प्रसाद ही जिसकी सूँड थी, वह रावण रूपी मस्त हाथी इक्ष्वाकुवंशी सिंह के द्वारा छिन्न देह वाला होकर भूमि पर पड़ा सदा के लिये सो रहा है।

पराक्रमोत्साहविजृम्भितार्चि–
र्निःश्वासधूमः स्वबलप्रतापः।
प्रतापवान् संयति राक्षसाग्नि–
र्निर्वापितो रामपयोधरेण।। ११।।

हाय, पराक्रम और उत्साह ही जिसकी बढ़ती हुई ज्वालाओं के समान थे, निश्वास ही धूएँ के समान था, जिसका अपना बल ही प्रताप था, वह प्रतापी राक्षस रूपी अग्नि राम रूपी बादल के द्वारा बुझा दी गयी।

वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिदृष्टार्थनिश्चयम्।
रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम्।। १२।।
नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः।
अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः।। १३।।

नैवं विनष्टाः शोचन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे।। १४।।
येनसेन्द्रास्त्रयो लोकास्त्रासिता युधि धीमता।
तस्मिन् कालसमायुक्ते न कालः परिशोचितुम्।। १५।।

ऐसी युक्ति युक्त बातों को, जिनसे अर्थ का निश्चय प्रकट हो रहा था, कहते हुए शोक से युक्त विभीषण से तब राम ने कहा कि हे विभीषण! अत्यन्त उन्नत महान उत्साह वाला तथा प्रचण्ड पराक्रमी वह बिना कोई चेष्टा किये अर्थात् चुपचाप बैठे हुए नहीं मारा गया है यह मृत्यु से न डरते हुए युद्ध करते हुए मारा गया है। इस प्रकार से क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए और अपनी वृद्धि की इच्छा करते हुए जो युद्ध क्षेत्र में मारे जाते हैं, उनके लिये शोक नहीं किया जाता। जिस धीमान ने इन्द्र सहित तीनों लोकों को भयभीत किया हुआ था, उसके इस समय काल के आधीन होने पर, यह समय शोक करने का नहीं है।

नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन।
परैर्वा हन्यते वीरः परान् वा हन्ति संयुगे।। १६।।
इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता।
क्षत्रियोनिहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः।। १७।।
तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः।
यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय।। १८।।
मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।। १९।।

पहले कभी ऐसा नहीं हुआ कि एक ही व्यक्ति को सदा विजय की प्राप्ति हो। वीर व्यक्ति युद्ध में या तो शत्रुओं को मारता है या उनके द्वारा मारा जाता है। क्षत्रियों के लिये सम्मानित इसी गति को पहले के महापुरुषों ने बताया है। इसलिये यह निश्चित बात है कि युद्ध में मारे गये क्षत्रिय के लिये शोक नहीं करना चाहिये। इसलिये इस निश्चित सिद्धान्त पर विचार कर तुम शोक को त्यागो और अपनी वास्तविक अवस्था को ग्रहण करो। जो कुछ अब आगे कार्य करना है उस पर विचार करो। मृत्यु के पश्चात बैर समाप्त हो जाता है। हमारा प्रयोजन पूरा हो चुका है, इसलिये अब इसका अन्तिम संस्कार करो। यह जैसे तुम्हारा स्नेह भाजन है वैसे ही अब यह मेरा भी है।

रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना।
अन्तःपुराद् विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः।। २०।।
वार्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यः क्षितिपांसुषु।
विमुक्तकेश्यः शोकार्ता गावो वत्सहता इव।। २१।।
उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः।
प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम्।। २२।।
आर्यपुत्रेति वादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः।
परिपेतुः कबन्धाङ्कां महीं शोणितकर्दमाम्।। २३।।

महात्मा राम के द्वारा रावण को मारा गया सुन कर, शोक से पीड़ित राक्षसियाँ तब अन्तःपुर से निकल पड़ीं। अनेक प्रकार से मना करने पर भी वे खुले बालों वालीं, भूमि की धूल में लोटती हुई, जिनके बछड़े मारे गये हैं, ऐसी गायों के समान शोकार्त हो रहीं थीं। राक्षसों के साथ उत्तरी द्वार से निकल कर और उस भयानक युद्ध भूमि में प्रवेश कर वे अपने मृत पति को ढूँढने लगीं। वे सब तरफ आर्यपुत्र! हा नाथ, ऐसा पुकारती हुईं, जहाँ सिर कटी लाशें पड़ी हुई थीं तथा जहाँ खून की कीचड़ फैली हुई थी, उस भूमि में गिरने पड़ने लगीं।

ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तृशोकपराजिताः।
करिण्य इव नर्दन्त्यः करेण्वो हतयूथपाः।। २४।।
ददृशुस्ता महाकायं महावीर्यं महाद्युतिम्।
रावणं निहतं भूमौ नीलाञ्जनचयोपमम्।। २५।।
ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु।
निपेतुस्तस्य गात्रेषु च्छिन्ना वनलता इव।। २६।।
बहुमानात् परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह।
चरणौ काचिदालम्ब्य काचित् कण्ठेऽवलम्ब्य च।। २७।।

पति के शोक से विवश उनकी अवस्था यूथपति के मारे जाने पर हथिनियों जैसी हो रही थी। आँखों में आँसू भरे हुए वे हथिनियों के समान ही क्रन्दन कर रहीं थीं। उन्होंने विशाल शरीर वाले, महा पराक्रमी, महा कान्ति वाले रावण को मारा हुआ और काले अंजन के ढेर के समान भूमि पर पड़ा हुआ देखा। वे अपने पति को युद्ध भूमि की धूल में सोया हुआ देख कर तुरन्त कटी हुई लताओं के समान उसके शरीर पर गिर पड़ीं। कोई बड़े आदर से उसका आलिंगन करके, कोई उसके पैरों को पकड़ कर, तो कोई उसके गले लग कर रोने लगीं।

उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद् भूमौ सुपरिवर्तते।
हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत्।। २८।।
काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती।
स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम्।। २९।।
एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि।
चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद् भूयस्ताः पर्यदेवयन्।। ३०।।
येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः।

गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम्।। ३१।।
भयं येन रणे दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः।

कोई उसकी भुजाओं को उठा कर भूमि पर लोट-पोट होने लगी। कोई उसके मृत के मुख को देख कर मूर्च्छित हो गयी। कोई गोद में उसके सिर को रख कर उसके मुख को देखती हुई रोने लगीं और उसके मुख को अपने आँसुओं से ऐसे ही निहलाने लगी जैसे ओस की बूँदें कमल को भिगोती हैं। इस प्रकार अपने पति रावण को मृत अवस्था में भूमि पर पड़ा हुआ देख कर वे शोक से पीड़ित हो कर अनेक प्रकार से उसे पुकारने तथा बार-बार विलाप करने लगीं। वे कहने लगीं कि जिसने कुबेर का पुष्पक विमान छीन लिया था, जिसने गन्धर्वों, ऋषियों, और मनस्वी देवताओं को भी युद्ध में भयभीत कर रखा था, वे आज युद्ध में मारे गये सो रहे हैं।

एवं वदन्त्यो रुरुदुस्तस्य ता दुःखिताः स्त्रियः।। ३२।।
भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः।
अशृण्वता तु सुहृदां सततं हितवादिनाम्।। ३३।।
मरणायाहृता सीता राक्षसाश्च निपातिताः।
एताः सममिदानीं ते वयमात्मा च पातितः।। ३४।।

ब्रुवाणोऽपि हितं वाक्यमिष्टो भ्राता विभीषणः।
दृष्टं परुषितो मोहात् त्वयाऽऽत्मवधकाङ्क्षिणा।। ३५।।

इस प्रकार कहती हुई उसकी वे दुखी स्त्रियाँ रोने लगीं। दुख से पीड़ित वे स्त्रियाँ बार-बार रोने लग जातीं थीं। वे कहने लगीं कि हित की बातें कहने वाले मित्रों की बातें न सुन कर आपने अपनी मृत्यु के लिये सीता का हरण किया और राक्षसों का संहार करवाया। साथ ही अपने आपको भी युद्धक्षेत्र में गिराया और हमें भी दुख में गिरा दिया। प्यारा भाई विभीषण भलाई की बातें कह रहा था, पर आपने अपने वध के लिये, मोहवश उन्हें कठोर वचन कहे। उसी का फल आज दिखाई दे रहा है।

यदि निर्यातिता ते स्यात् सीता रामाय मैथिली।
न नः स्याद् व्यसनं घोरमिदं मूलहरं महत्।। ३६।।
त्वया पुनर्नृशंसेन सीतां संरुन्धता बलात्।
राक्षसा वयमात्मा च त्रयं तुल्यं निपातितम्।। ३७।।

यदि आपने मैथिली सीता को राम के लिये भेज दिया होता, तो हमारा जड़ से विनाश करने वाली यह महान विपत्ति नहीं आती, किन्तु आप ऐसे निर्दय निकले कि सीता को बल पूर्वक रोक कर आपने राक्षसों को अपने आपको और हमें तीनों को संकट में डाल दिया।

तिरासीवाँ सर्ग

मन्दोदरी का विलाप, तथा रावण के शव का दाह संस्कार।

तासां विलपमानानां तदा राक्षसयोषिताम्।
ज्येष्ठपत्नी प्रिया दीना भर्तारं समुदैक्षत।। १।।
दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा।
पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत्।। २।।
ननु नाम महाबाहो तव वैश्रवणानुज।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरंदरः।। ३।।
ऋषयश्च महान्तोऽपि गन्धर्वाश्च यशस्विनः।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः।। ४।।

उन विलाप करती हुई राक्षसियों में रावण की पटरानी प्यारी मन्दोदरी अपने पति को (रावण को) अचिन्त्य कर्मा राम के द्वारा मारा हुआ देख कर दीनता और दुख से भरी हुई इस प्रकार विलाप कर रही थी। कि हे विशाल भुजाओं वाले कुबेर के अनुज! आप जब क्रोध करते थे, तो आपके सामने तो इन्द्र भी खड़े होने में डरते थे। बड़े-बड़े ऋषि, यशस्वी, गन्धर्व और चारण भी आपके भय से चारों दिशाओं में भाग गये थे।

न चैतत् कर्म रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे।
सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्षणम्।। ५।।
अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः।
मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम्।। ६।।
इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया।
स्मरद्भिरिव तद् वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः।। ७।।
यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः।
खरस्तु निहतो भ्राता तदा रामो न मानुषः।। ८।।

सब तरफ से सुरक्षित आपकी सेना के मुहाने पर जो राम से पराजय हुई, मुझे यह विश्वास नहीं होता कि यह काम राम का ही है। अथवा राम के रूप में स्वयं मृत्यु ही आपके विनाश के लिये अतर्कित कपट

को फैला कर, राम का रूप बना कर आयी थी। या आपने पहले जो अपनी इन्द्रियों को जीत कर, तीनों लोकों पर विजय पाई थी, उसी बैर को याद करते हुए इन्द्रियों ने ही आपको हरा दिया। जब जन स्थान में बहुत से राक्षसों से घिरा हुआ होने पर भी आपका भाई खर राम के द्वारा मार दिया गया, तभी मैंने समझ लिया था कि राम सामान्य व्यक्ति नहीं है।

क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया।
उच्यमानो न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता।। ९।।
अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीतां राक्षसपुङ्गव।
ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च।। १०।।
अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः।
भर्तः पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः।। ११।।
शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत् पापमश्नुते।
विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम्।। १२।।

आप राम से विरोध न करिये यह मैंने आपसे बार-बार कहा पर आपने से नहीं माना। उसी का फल यह मिला है। हे राक्षसश्रेष्ठ! आपने अपने ऐश्वर्य, शरीर, और बन्धुओं के विनाश के लिये ही अचानक सीता की कामना की थी। हे स्वामी! इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बुरे काम का फल करने वाले को समय आने पर अवश्य मिलता है। अच्छा काम करने वाले को सुख मिलता है और बुरा काम करने वाले को दुख मिलता है इसीलिये विभीषण को अब सुख मिल रहा है और आप दुख में पड़ गये हैं।

सन्त्यन्याः प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाभ्यधिकास्ततः।
अनङ्गवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुद्ध्यसे।। १३।।
सर्वदा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः।
तव तद्वदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः।। १४।।
सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृतः।
मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति।। १५।।
अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे।

आपके लिये वहाँ घर में सीता से अधिक सुन्दर और दूसरी युवतियाँ थीं, पर आप काम और मोह के वश में होकर इस बात को नहीं समझ पा रहे थे। संसार में प्राणियों की मृत्यु कभी बिना कारण नहीं होती, इसीलिये सीता आपकी मृत्यु का कारण बन गयी। सीता के कारण होने वाली मृत्यु को आपने दूर से ही अपने पास बुला लिया। अब सीता शोक रहित होकर राम के साथ विहार करेगी, पर मेरे पुण्य समाप्त हो गये, इसीलिये मैं महान शोक सागर में डूब गयी हूँ।

कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने।। १६।।
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया।
विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया।। १७।।
पश्यन्ती विविधान् देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा।
भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात् तव।। १८।।

हे वीर! मैंने पहले सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों और मालाओं से तथा अतुलनीय शोभा से युक्त, होकर मन के अनुरूप विमानों के द्वारा आपके साथ कैलास पर्वत, मन्दराचल पर्वत, मेरु पर्वत, चित्ररथ वन, सारे देवताओं के उद्यानों में भ्रमण कर तथा अनेक प्रकार के देशों को देखते हुए जो सुख प्राप्त किये थे, हाय आज आपके वध के कारण मैं उन सबसे वंचित हो गयी हूँ।

सैवान्येवास्मि संवृत्ता धिग्राज्ञां चञ्चलां श्रियम्।
हा राजन् सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वक्समुन्नसम्।। १९।।
कान्तिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मदिवाकरैः ।
किरीटकूटोज्ज्वलितं ताम्रास्यं दीप्तकुण्डलम्।। २०।।
मदव्याकुललोलाक्षं भूत्वा यत्पानभूमिषु।
विविधस्रग्धरं चारु वल्गुस्मितकथं शुभम्।। २१।।
तदेवाद्य तवैवं हि वक्त्रं न भ्राजते प्रभो।
रामसायकनिर्भिन्नं रक्तं रुधिरविस्रवैः।। २२।।

राजाओं की चंचल लक्ष्मी को धिक्कार है। मैं वही मन्दोदरी आज एक दूसरी स्त्री के समान हो गयी हूँ। हाय राजन्! आपका सुकुमार सुन्दर भौंहों वाला, सुन्दर त्वचा से युक्त, ऊँची नासिका वाला, कान्ति, शोभा और तेज से जो क्रमशः चन्द्रमा, कमल, और सूर्य के समान था, जो मुकुटों के समूहों से जगमगाया करता था, जिसके ओठ ताँबे के समान लाल थे, जिसमें जगमगाते हुए कुण्डल सुशोभित हुआ करते थे, पान-भूमि में जिसकी आँखें मद से उन्मत्त होकर चंचल हो जाया करती थीं, जो अनेक प्रकार की सुन्दर मालाओं को धारण करता था, जो सुन्दर था और मनोहर मुस्कान के साथ मीठी बातें कहा करता था, वही आपका इस प्रकार का मुख हे प्रभो! आज सुशोभित नहीं हो रहा है। वह राम के बाणों से छेदा हुआ रुधिर की धाराओं से रंग कर लाल हो गया है।

हा पश्चिमा मे सम्प्राप्ता दशा वैधव्यदायिनी।
या मयाऽऽसीन्न सम्बुद्धा कदाचिदपि मन्दया।। २३।।

पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः।
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम्॥ २४॥
दृप्तारिमथनाः क्रूराः प्रख्यातबलपौरुषाः।
अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्ध्रुवा॥ २५॥
तेषामेवंप्रभावाणां युष्माकं राक्षसर्षभाः।
कथं भयमसम्बुद्धं मानुषादिदमागतम्॥ २६॥

हाय मुझ निर्बुद्धि ने जिसके बारे में कभी सोचा भी न था, वह मुझे विधवा बना देने वाली आपकी मृत्यु अवस्था आ गयी। मुझे बहुत अधिक घमंड था कि मेरा पिता दानवराज है, पति राक्षसराज है और पुत्र इन्द्र को जीतने वाला है। मुझे यह निश्चित विश्वास था कि मेरे रक्षक अभिमानी शत्रुओं को मथने वाले हैं, उनका बल और पौरुष सब तरफ विख्यात है, वे क्रूर हैं, उन्हें कहीं से भी भय नहीं है। इस प्रकार के प्रभाव वाले हे राक्षस शिरोमणियों! तुम्हें एक सामान्य मनुष्य से यह न जाना हुआ भय कैसे प्राप्त हो गया?

स्निग्धेन्द्रनीलनीलं तु प्रांशुशैलोपमं
म ह त ् ।
केयूराङ्गदवैदूर्यमुक्ताहारस्रगुज्ज्वलम् ॥ २७॥
कान्तं विहारेष्वधिकं दीप्तं संग्रामभूमिषु।
भात्याभरणभाभिर्यद् विद्युद्भिरिव तोयदः॥ २८॥
तदेवाद्य शरीरं ते तीक्ष्णैर्नैकशरैश्चितम्।
हा स्वप्नः सत्यमेवेदं त्वं रामेण कथं हतः॥ २९॥
त्वं मृत्योरपि मृत्युः स्याः कथं मृत्युवशं गतः।

आपका जो शरीर, चिकना, इन्द्रनील मणि के समान नीला, ऊँचे पर्वत के समान विशाल, केयूर, अंगद, वैदूर्यमणि और मोतियों के हारों तथा मालाओं से जगमगाता रहता था, जो विहार-भूमियों में अत्यधिक शोभा वाला और युद्ध भूमियों में तेजस्वी दिखाई देता था, जो अलंकारों को धारण करके ऐसे लगता था जैसे बिजली से युक्त बादल हो, वही आज तीखे अनेक बाणों से छिदा हुआ पड़ा है। आप राम के द्वारा मारे गये, हाय यह बात सच्ची है, या मैं स्वप्न देख रही हूँ। आप तो मृत्यु के भी मृत्यु थे, फिर कैसे मृत्यु के वश में हो गये?

स्वयूथभृत्यगोप्तारं हन्तारं भीमकर्मणाम्॥ ३०॥
हन्तारं दानवेन्द्राणां यक्षाणां च सहस्रशः।
निवातकवचानां तु निग्रहीतारमाहवे॥ ३१॥
शत्रुस्त्रीशोकदातारं नेतारं स्वजनस्य च।
लङ्काद्वीपस्य गोप्तारं कर्तारं भीमकर्मणाम्॥ ३२॥
अस्माकं कामभोगानां दातारं रथिनां वरम्।
एवं प्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम्॥ ३३॥
स्थिरास्मि या देहमिमं धारयामि हतप्रिया।

आप अपने पक्ष के व्यक्तियों और सेवकों के रक्षक थे, भयानक कर्म करने वालों को मारने वाले थे। आपने हजारों यक्षों और दानवेन्द्रों को मारा था। आपने युद्ध में निवात कवचों को भी अपने वश में किया था। आप शत्रुओं की स्त्रियों को शोक प्रदान करने वाले थे। आप अपने लोगों के नेता और लंका द्वीप के रक्षक थे। आपने भयानक कर्म किये थे। आप हमें कामोपभोग का सुख देते थे और रथियों में श्रेष्ठ थे। इतने प्रभाव वाले अपने पति को राम के द्वारा गिराया हुआ देख कर भी, उनके मरने पर भी, मैं कितनी स्थिर हूँ जो शरीर को धारण कर रही हूँ।

शयनेषु महार्हेषु शयित्वा राक्षसेश्वर॥ ३४॥
इह कस्मात् प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणुगुण्ठितः।
यदा मे तनयः शस्तो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद् युधि॥ ३५॥
तदा त्वभिहता तीव्रमद्य त्वस्मिन् निपातिता।
साहं बन्धुजनैर्हीना हीना नाथेन च त्वया॥ ३६॥
विहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वतीः समाः।
प्रपन्नो दीर्घमध्वानं राजन्नद्य सुदुर्गमम्॥ ३७॥
नय मामपि दुःखार्तां न वर्तिष्ये त्वया विना।

हे राक्षसेश्वर! आप तो बहुमूल्यों बिस्तरों पर सोते थे, अब यहाँ धूल में लिपटे हुए भूमि पर क्यों सो रहे हो? जब मेरे पुत्र इन्द्रजित को लक्ष्मण ने युद्ध में मार दिया था, तब मुझे बहुत धक्का लगा था, पर आज तो आपका भी वध होने से मैं मार ही डाली गयी हूँ। अब मैं बन्धुजनों से रहित, आपके बिना, और काम भोगों से वंचित होकर भविष्य के वर्षों में निरन्तर शोक में ही डूबी रहूँगी।

कस्मात् त्वं मां विहायेह कृपणां गन्तुमिच्छसि॥ ३८॥
दीनां विलपतीं मन्दां किं च मां नाभिभाषसे।
पश्येष्टदार दारांस्ते भ्रष्टलज्जावगुण्ठनान्॥ ३९॥
बहिर्निष्पतितान् सर्वान् कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि।
अयं क्रीडासायस्तेऽनाथो लालप्यते जनः॥ ४०॥
न चैनमाश्वासयसि किं वा न बहुमन्यसे।

आप मुझ दुखिया को छोड़ कर क्यों जाना चाहते हैं? मैं मन्दभागिनी दीन बनी हुई रो रही हूँ, आप मुझसे बात क्यों नहीं करते? हे स्त्रियों से प्रेम करने वाले! आपकी स्त्रियाँ शर्म के पर्दे हटा कर बाहर निकल आई हैं। इन सबको देख कर आप क्रोध क्यों नहीं करते?

आपकी क्रीड़ा सहचरी यह मन्दोदरी अब अनाथ होकर विलाप कर रही है। आप इसे आश्वासन क्यों नहीं देते? इसका सम्मान क्यों नहीं करते?

कथं च नाम ते राजँल्लोकानाक्रम्य तेजसा।। ४१।।
नारीचौर्यमिदं क्षुद्रं कृतं शौण्डीर्यमानिना।
कातर्यं च न ते युद्धे कदाचित् संस्मराम्यहम्।। ४२।।
तत् तु भाग्यविपर्यासान्नूनं ते पक्वलक्षणम्।
कामक्रोधसमुत्थेन व्यसनेन प्रसङ्गिना।। ४३।।
निवृत्तस्त्वत्कृतेनार्थः सोऽयं मूलहरो महान्।
त्वया कृतमिदं सर्वमनाथं राक्षसं कुलम्।। ४४।।

हे राजन्! आपने अपने तेज से सारे लोकों को आक्रान्त कर दिया था, आपको अपने शौर्य पर अभिमान था, फिर आपने पर स्त्री को चुराने का नीच काम क्यों कर दिया? मुझे याद नहीं कि आपने कभी युद्ध में कायरता दिखाई हो, पर उस दिन आपने जो सीता हरण किया, निश्चित रूप से आप में कायरता आ गयी थी। वह भाग्य का उलटापन था और विनाश की सूचना थी। आपके हृदय में काम और क्रोध के कारण जो आसक्ति का दोष उत्पन्न हो गया था, उसी के कारण सारा ऐश्वर्य नष्ट हो गया और जड़ से विनष्ट कर देने वाला संकट आ गया। आपने हम सबको और राक्षस कुल को अनाथ कर दिया।

नहि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपौरुषः।
स्त्रीस्वभावात् तु मे बुद्धिः कारुण्ये परिवर्तते।। ४५।।
सुकृतं दुष्कृतं च त्वं गृहीत्वा स्वां गतिं गतः।
आत्मानमनुशोचामि त्वद्विनाशेन दुःखिताम्।। ४६।।
सुहृदां हितकामानां न श्रुतं वचनं त्वया।
भ्रातृणां चैव कात्स्‍र्न्येन हितमुक्तं दशानन।। ४७।।
हेत्वर्थयुक्तं विधिवच्छ्रेयस्करमदारुणम्।
विभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत् त्वया।। ४८।।

आप अपने बल और पौरुष के लिये प्रख्यात थे, इसलिये आपके लिये मुझे शोक नहीं करना चाहिये, पर स्त्री स्वभाव होने के कारण मेरी बुद्धि दीनता की तरफ जा रही है। आप तो अपने पाप पुण्यों को लेकर अपनी गति को प्राप्त हो गए, पर आपके विनाश से मैं अपनी दुखी आत्मा पर शोक कर रही हूँ। हे दशानन! आपने अपनी भलाई चाहने वाले मित्रों की बातें नहीं सुनीं, आपने भाइयों द्वारा कही गयीं पूरे कल्याण की बातें भी नहीं सुनीं। हेतु और प्रयोजन से पूर्ण कल्याणकारी विभीषण की बातें जो उसने विधिपूर्वक और सौम्य भाषा में आपके सामने रखीं थीं, उन्हें भी आपने नहीं माना।

मारीचकुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तथा।
न कृतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम्।। ४९।।
नीलजीमूतसंकाश पीताम्बर शुभाङ्गद।
स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिरावृतः।। ५०।।
प्रसुप्त इव शोकार्तां किं मां न प्रतिभाषसे।
महवीर्यस्य दक्षस्य संयुगेष्वपलायिनः।। ५१।।
यातुधानस्य दौहित्रीं किं मां न प्रतिभाषसे।
प्रियामिवोपसंगृह्य किं शेषे रणमेदिनीम्।। ५२।।
अप्रियामिव कस्माच्च मां नेच्छस्यभिभाषितुम्।

आपको अपने पराक्रम का बड़ा अभिमान था। आपने मेरे पिता मारीच तथा कुम्भकर्ण की कही बातों पर भी ध्यान नहीं दिया। इसी का आज ऐसा फल मिला है। हे नीले बादल के समान शरीर वाले, पीले वस्त्र धारण करने वाले और सुन्दर केयूर पहनने वाले आप खून से भरे अपने अंगों को फैला कर क्यों सो रहे हो? मैं शोक से पीड़ित हूँ, पर आप गहरी नींद में सोये हुए के समान मुझे उत्तर क्यों नहीं देते? मैं महा तेजस्वी, कुशल, युद्धों में पीछे न हटने वाले राक्षस की दौहित्रि (नातिन) हूँ। आप मुझ से बातें क्यों नहीं करते हैं? आप अपनी प्यारी पत्नी के समान युद्ध भूमि का आलिंगन करके सो रहे हैं और मुझसे क्यों अप्रिया की तरह व्यवहार करते हुए बात करना नहीं चाहते?

धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा।। ५३।।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम्।
इत्येवं विलपन्ती सा बाष्पपर्याकुलेक्षणा।। ५४।।
स्नेहोपस्कन्नहृदया तदा मोहमुपागमत्।
कश्मलाभिहता सन्ना बभौ सा रावणोरसि।। ५५।।
संध्यानुरक्ते जलदे दीप्ता विद्युदिवोज्ज्वला।
तथागतां समुत्थाप्य सपत्न्यस्तां भृशातुराः।। ५६।।
पर्यवस्थापयामासू रुदत्यो रुदतीं भृशम्।

मेरे इस शोक पीड़ित हृदय को धिक्कार है जो आपके पञ्चत्व को प्राप्त हो जाने पर भी हजारों टुकड़े नहीं हो जाता। इस प्रकार आँखों से आँसू बहाती हुई, विलाप करती हुई वह स्नेह से द्रवीभूत हृदय वाली मन्दोदरी मूर्च्छित हो गयी। शोक से मारी हुई और रावण की छाती पर पड़ी हुई वह ऐसी लग रही थी जैसे सन्ध्या की लाली से रँगे बादल में जगमगाती हुई बिजली चमक रही हो। तब ऐसी अवस्था में पड़ी हुई उसे अत्यन्त शोक से आतुर उसकी सौतों ने उठा कर बैठाया और धीरज बँधाया। उस समय वह भी और उसकी सौतें भी ज़ोर-ज़ोर से रो रहीं थीं।

किं ते न विदिता देवि लोकानां स्थितिरध्रुवा।। ५७।।
दशाविभागपर्याये राज्ञां वै चञ्चलाः श्रियः।
इत्येवमुच्यमाना सा सशब्दं प्ररुरोद ह।। ५८।।
स्नपयन्ती तदास्रेण स्तनौ वक्त्रं सुनिर्मलम्।
एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह।। ५९।।
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम्।
तमुवाच ततो धीमान् विभीषण इदं वचः।। ६०।।
विमृश्य बुद्ध्या प्रश्रितं धर्मार्थसहितं हितम्।

वे बोलीं कि हे देवी! क्या आप नहीं जानती कि संसार की स्थिति स्थिर नहीं है। यहाँ अवस्था बदलती रहती है। अवस्था बदल जाने पर राजाओं की चंचल लक्ष्मी भी उसे छोड़ देती है। ऐसा कहने पर वह मन्दोदरी अपने निर्मल मुख और स्तनों को आँसुओं से नहलाती हुई फूट-फूट कर रोने लगीं। इसी बीच में श्रीराम ने विभीषण से कहा कि आप स्त्रियों को सान्त्वना दीजिये और अपने भाई का अन्तिम संस्कार कीजिये। तब बुद्धिमान विभीषण ने बुद्धि से सोच कर विनय पूर्वक धर्म और अर्थ से युक्त यह हितकारी बात कही कि-

त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा।। ६१।।
नाहमर्हामि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शनम्।
भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः।। ६२।।
रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात्।
नृशंस इति मां राम वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि।। ६३।।
श्रुत्वा तस्यागुणान् सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृतं पुनः।
तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः।। ६४।।
विभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञं वाक्यकोविदः।

इस रावण ने धर्म और सदाचार का त्याग किया हुआ था। यह क्रूर, निर्दय और असत्यवादी था, पराई स्त्रियों का स्पर्श करने वाला था, इसलिये मैं इसका अन्तिम संस्कार करना उचित नहीं समझता। यह बड़ा होने के कारण मेरा पूज्य था, पर फिर भी यह पूजा के योग्य नहीं है। यह भाई के रूप में मेरा शत्रु और सबकी बुराई में लगा रहता था। मेरी इस बात को सुन कर हे राम! संसार के लोग मुझे निर्दय कहेंगे, पर इसके अवगुणों को सुन कर वे यही कहेंगे कि मैंने अच्छा किया। तब धर्मधारियों में श्रेष्ठ और वाक्य विशारद राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और वाक्य के अभिप्राय को समझने वाले उस विभीषण से यह बोले कि-

तवापि मे प्रियं कार्यं तवत्प्रभावान्मया जितम्।। ६५।।
अवश्यं तु क्षमं वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वर।
अधर्मानृतसंयुक्तः कामं त्वेष निशाचरः।। ६६।।
तेजस्वी बलवाञ्छूरः संग्रामेषु च नित्यशः।
मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।। ६७।।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।
त्वत्सकाशान्महाबाहो संस्कारं विधिपूर्वकम्।। ६८।।
क्षिप्रमर्हति धर्मेण त्वं यशोभाग भविष्यसि।

हे राक्षसराज! मुझे आपका भी प्रिय कार्य करना है। आपके प्रभाव से ही मैंने युद्ध जीता है। मुझे तुमसे अवश्य ही उचित बात कहनी चाहिये। यद्यपि यह राक्षस भले ही अधर्म और असत्य से युक्त था, फिर भी यह युद्धों में पराक्रमी, शूरवीर, और बलवान था। शत्रुता मृत्यु तक होती है। फिर हमारा प्रयोजन भी पूरा हो गया। इसलिये इसका तुम अन्तिम संस्कार करो। यह जैसे तुम्हारा है वैसे ही अब मेरा भी है। हे महाबाहु! धर्म के द्वारा यह तुम्हारे से शीघ्र ही विधिपूर्वक अपना अन्तिम संस्कार कराये जाने के योग्य है। ऐसा करने से तुम यश के भागी बनोगे।

राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः।। ६९।।
संस्कारयितुमारेभे भ्रातरं रावणं हतम्।
स प्रविश्य पुरीं लङ्कां राक्षसेन्द्रो विभीषणः।। ७०।।
रावणस्याग्निहोत्रं तु निर्यापयति सत्वरम्।
शकटान् दारुरूपाणि अग्नीन् वै याजकांस्तथा।। ७१।।
तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विविधानि च।
अगरूणि सुगन्धीनि गन्धांश्च सुरभींस्तथा।। ७२।।
मणिमुक्ताप्रवालानि निर्यापयति राक्षसः।

राम की बात सुन कर विभीषण शीघ्रता के साथ अपने मारे गये भाई का अन्तिम संस्कार कराने की जल्दी तैयारी करने लगे। वे राक्षसेन्द्र विभीषण तब लंकापुरी में प्रविष्ट हुए और वहाँ उन्होंने रावण के अग्नि होत्र को शीघ्र ही समाप्त किया। उन्होंने इसके बाद छकड़ों, लकड़ियों, अग्हिोत्र की अग्नियों, याजकों,चन्दन की तथा दूसरी अनेक प्रकार की लकड़ियों, सुगन्धित अगर और तरह-तरह के सुगन्धित पदार्थ, मणियाँ, मोती, प्रवाल आदि वस्तुओं को एकत्र किया।

आजगाम मुहूर्तेन राक्षसैः परिवारितः।। ७३।।
ततो माल्यवता सार्धं क्रियामेव चकार सः।
सौवर्णीं शिबिकां दिव्यामारोप्य क्षौमवाससम्।। ७४।।
रावणं राक्षसाधीशमश्रुवर्णमुखा द्विजाः।
तूर्यघोषैश्च विविधैः स्तुवद्भिश्चाभिनन्दितम्।। ७५।।
पताकाभिश्च चित्राभिः सुमनोभिश्च चित्रिताम्।

उत्क्षिप्य शिबिकां तां तु विभीषणपुरोगमाः।। ७६।।
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे गृह्य काष्ठानि भेजिरे।

एक मुहूर्त में ही फिर वे राक्षसों से घिरे हुए वहाँ से वापिस आये और माल्यवान के साथ उन्होंने दाह संस्कार का कार्य पूरा किया। आँसू भरे मुखों के साथ ब्राह्मणों ने सोने की शिबिका में राक्षसराज रावण के शव को, जिसे रेशमी वस्त्र पहराये गये थे, रखा। फिर अनेक प्रकार के वाद्य घोषों से तथा स्तुतियों से उसका अभिनन्दन किया। उसके बाद उन्होंने इस शिबिका को चित्र विचित्र झंडियों से तथा फूलों से सजाया। फिर विभीषण आदि उस शिबिका को उठा कर तथा सूखी लकड़ियों को लेकर दक्षिण की तरफ श्मशान भूमि की तरफ चल पड़े।

अन्तःपुराणि सर्वाणि रुदमानानि सत्वरम्।। ७७।।
पृष्ठतोऽनुययुस्तानि प्लवमानानि सर्वतः।
रावणं प्रयते देशे स्थाप्य ते भृशदुःखिताः।। ७८।।
चितां चन्दनकाष्ठैश्च पद्मकोशीरचन्दनैः।
ब्राह्मया संवर्तयामासू राङ्कवास्तरणावृताम्।। ७९।।
प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम्।
दारुपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम।। ८०।।
दत्त्वा तु मुसलं चान्यं यथास्थानं विचक्रमुः।

पुनः अन्तपुर की स्त्रियाँ भी सारी रोती हुई तुरन्त उसके पीछे चलीं। वे उस समय सब तरफ से लड़ खड़ा रहीं थीं। एक पवित्र स्थान पर जाकर उन्होंने उस शिबिका को रखा और अत्यन्त दुखी होते हुए उन्होंने चन्दन की लकड़ियां से तथा पद्मक, उशीर आदि से वेदोक्त विधि के अनुसार चिता बनाई और उस पर रंकु नाम के मृग का चर्म बिछाया। फिर उस पर शव को रख कर उन्होंने उसका उत्तम विधि से संस्कार किया। उन्होंने काष्ठ के सारे पात्र, अरणि, उत्तरारणि, मुसल आदि को भी यथा स्थान स्थापेत कर दिया।

शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च।। ८१।।
गन्धैर्माल्यैरलंकृत्य रावणं दीनमानसाः।
विभीषणसहायास्ते वस्त्रैश्च विविधैरपि।। ८२।।
लाजैरवकिरन्ति स्म बाष्पपूर्णमुखास्तथा।

वेदोक्त विधि से और महर्षियों द्वारा बताई गयी विधियों से वहाँ सारा कार्य किया गया। विभीषण सहित दूसरे राक्षसों ने दीन मन से तथा आँसुओं से भरे मुखों से सुगन्धित मालाओं से रावण के शव को सजाया और उसके ऊपर अनेक प्रकार के वस्त्र तथा खील बिखेरीं।

स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः।। ८३।।
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वयित्वा पुनः पुनः।
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं ततः।। ८४।।
प्रविष्टासु पुरीं स्त्रीषु राक्षसेन्द्रो विभीषणः।
रामपार्श्वमुपागम्य समतिष्ठद् विनीतवत्।। ८५।।

इसके बाद विभीषण ने चिता में विधि पूर्वक अग्नि प्रज्वलित की और दाह संस्कार समाप्त हो जाने के बाद उसने रावण की उन स्त्रियों को बार-बार सान्त्वना दी और उनसे घर चलने के लिये प्रार्थना की। आप घर चलिये यह प्रार्थना सुन कर वे सारी स्त्रियाँ तब नगर में प्रविष्ट हुईं। स्त्रियों के नगर में प्रवेश करने पर राक्षसेन्द्र विभीषण श्रीराम के पास आकर विनय पूर्वक खड़े हो गये।

चौरासीवाँ सर्ग

विभीषण का राज्याभिषेक, श्रीराम का हनुमान जी द्वारा सीता के पास सन्देश भेजना। हनुमान जी का सीता जी से बातचीत करके लौटना और उनका सन्देश श्रीराम को सुनाना।

राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं शिखिप्रभम्।
अनुज्ञाप्य महाबाहुर्मातलिं प्रत्यपूजयत्।। १।।
परिष्वज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेनाभिवादितः।
पूज्यमानो हरिगणैराजगाम बलालयम्।। २।।
अथोवाच स काकुत्स्थः समीपपरिवर्तिनम्।
सौमित्रिं सत्त्वसम्पन्नं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम्।। ३।।
विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय।
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम्।। ४।।

तब महाबाहु श्रीराम ने इन्द्र के दिये हुए उस अग्नि के समान कान्ति वाले अलौकिक रथ को ले जाने की आज्ञा देकर मातलि का बड़ा सम्मान किया। इसे बाद लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया और उन्होंने सुग्रीव को खुशी

से अपनी छाती से लगा लिया। वानरगणों ने श्रीराम का सत्कार किया और वे उनके साथ सेना की छावनी में लौट आये। इसके बाद उस ककुत्स्थ वंशी राम ने अपने समीप विद्यमान बल और पराक्रम से युक्त और तेज से देदीप्यमान सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण से कहा कि हे सौम्य! तुम लंका में जाकर इन विभीषण का राज्याभिषेक करो। इन्होंने मेरा पहले उपकार किया है, ये मेरे प्रेमी और भक्त हैं।

एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम्।
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम्।। ५।।
एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना।
तथेत्युक्त्वा सुसंहृष्टः सौवर्णं घटमाददे।। ६।।
तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान्।
व्यादिदेश महासत्त्वान् समुद्रसलिलं तदा।। ७।।

हे सौम्य! यह मेरी अत्यन्त कामना है कि इन रावण के अनुज विभीषण को लंका में अभिषेक किया हुआ देखूँ। महात्मा राम के ऐसा कहने पर सुमित्रापुत्र लक्ष्मण ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा कि बहुत अच्छा और उन्होंने सोने के घड़े को लिया तथा उस घड़े को मन के समान के सामन वेगशाली, एवं महा बलशाली वानर यूथपतियों को देकर समुद्र का जल लाने की आज्ञा दी।

ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्यपरमासने।
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम्।। ८।।
लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात्।
विधिना मन्त्रदृष्टेन सुहृद्गणसमावृतम्।। ९।।
अभ्यषिञ्चस्तदा सर्वे राक्षसा वानरास्तथा।
तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः।। १०।।
दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
स तद्राज्यं महत् प्राप्य रामदत्तं विभीषणः।। ११।।
सान्त्वयित्वा प्रकृतयस्ततो राममुपागमत्।

फिर विभीषण को उत्तम आसन पर बैठा कर और एक घड़े को लेकर, उस घड़े के जल से लक्ष्मण ने लंका में राक्षसों के बीच में राम के आदेश से मन्त्रोच्चारण सहित विधिपूर्वक सुहृदगणों से घिरे हुए विभीषण का राज्याभिषेक किया। तत्पश्चात सारे राक्षसों और वानरों ने भी उनका अभिषेक किया। राक्षसेन्द्र विभीषण को लंका के राज्य पर अभिषिक्त देख कर उनके हितैषी मित्र और मंत्रीगण बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात राम के द्वारा दिये गये उस महान राज्य को प्राप्त कर और प्रजा को सान्त्वना देकर विभीषण राम के समीप आये।

दध्यक्षतान् मोदकांश्च लाजाः सुमनसस्तथा।। १२।।
आजह्रुरथ संहृष्टः पौरास्तस्मै निशाचराः।
स तान् गृहीत्वा दुर्धर्षो राघवाय न्यवेदयत्।। १३।।
मङ्गल्यं मङ्गलं सर्वं लक्ष्मणाय च वीर्यवान्।
कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो विभीषणम्।। १४।।
प्रतिजग्राह तत् सर्वं तस्यैव प्रतिकाम्यया।
ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम्।। १५।।
उवाचेदं वचो रामो हनुमन्तं प्लवङ्गमम्।

तब प्रसन्न हुए राक्षस नागरिक विभीषण के लिये दही, चावल, खील, मिठाइयों और फूलों की भेंट लेकर आये। दुर्धर्ष पराक्रमी विभीषण ने उन मांगलिक पदार्थों को लेकर उन्हें राम और लक्ष्मण को अर्पित किया। तब राम ने विभीषण को सफल मनोरथ और ऐश्वर्य से भरपूर देख कर उनकी प्रसन्नता के लिये उन्हें ग्रहण कर लिया, फिर उन्होंने पर्वत के समान विशाल काय और हाथ जोड़ कर विनीत भाव से खड़े हुए वीर वानर हनुमान से यह कहा कि--

अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम्।। १६।।
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम्।
वैदेह्यै मां च कुशलं सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्।। १७।।
आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च हतं रणे।
प्रियमेतदिहारव्याहि वैदेह्यास्त्वं हरीश्वर।। १८।।
प्रतिगृह्य तु संदेशमुपावर्तितुमर्हसि।
इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान् मारुतात्मजः।। १९।।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः।
प्रविश्य च पुरीं लङ्कामनुज्ञाप्य विभीषणम्।। २०।।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो हनूमान् वृक्षवाटिकाम्।

हे वक्ताओं में श्रेष्ठ सौम्य वानरेश्वर, तुम इन महाराज विभीषण की आज्ञा लेकर और लंका में प्रवेश कर, मैथिली सीता से उनका कुशल समाचार पूछो और उनसे मेरी, लक्ष्मण की तथा सुग्रीव की कुशलता के बारे में बताओ। उन्हें यह प्रिय समाचार सुनाओ कि रावण युद्ध में मारा गया है और उनका सन्देश लेकर वापिस आओ। पवन पुत्र हनुमान राम के द्वारा ऐसा आदेश देने पर विभीषण की आज्ञा लेकर लंकापुरी में प्रविष्ट हुए और फिर विभीषण की ही आज्ञा लेकर अशोक वाटिका में गये।

सम्प्रविश्य यथान्यायं सीताया विदितो हरिः।। २१।।
वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः परीवृताम्।

निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोऽभिगम्याभिवाद्य च।। २२।।
दृष्ट्वा तमागतं देवी हनूमन्तं महाबलम्।
तूष्णमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा हृष्टभवत् तदा।। २३।।
सौम्यं तस्या मुखं दृष्ट्वा हनूमान् प्लवगोत्तमः।
रामस्य वचनं सर्वमारव्यातुमुपचक्रमे।। २४।।

अशोक वाटिका में प्रवेश कर उन्होंने नियम के अनुसार सीता को अपने आने की सूचना दी और फिर वृक्ष के नीचे, राक्षसियों से घिरी हुई, आनन्द रहित, बैठी हुई, सीता जी के समीप जाकर उन्हें अभिवादन कर वे शान्त और विनम्र अवस्था में सिर झुकाये हुए खड़े हो गये। देवी सीता उन महाबली हनुमान जी को आया हुआ देख कर, उन्हें पहचान कर प्रसन्न हुईं, पर चुपचाप बैठीं रहीं। तब उनके मुख पर सौम्य भाव देख कर हनुमान जी ने राम का सारा सन्देश कहना आरम्भ किया।

वैदेहि कुशली रामः सहसुग्रीवलक्ष्मणः।
कुशलं चाह सिद्धार्थो हतशत्रुरमित्रजित्।। २५।।
विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान्।। २६।।
प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये।
तव प्रभावाद् धर्मज्ञे महान् रामेण संयुगे।। २७।।
लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा।
रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चैव वशीकृता।। २८।।

उन्होंने कहा कि हे वैदेही! श्रीराम सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ कुशल पूर्वक हैं। अमित्रों को जीतने वाले वे अपने मनोरथ में सफल हो गये हैं, उन्होंने शत्रु को मार दिया है। उन्होंने आपकी कुशलता पूछी है। हे देवी! राम और लक्ष्मण ने विभीषण की सहायता से वानरों के साथ बलवान रावण को मार दिया है। हे धर्म को जानने वाली सीता! मैं आपको यह प्रिय समचार पुनः सुना कर आपको हर्षित करना चाहता हूँ कि आपके प्रभाव से ही इस महान युद्ध में राम ने यह विजय प्राप्त की है। इसीलिये आप स्वस्थ होइये और चिन्ता को दूर कीजिये। हमारा शत्रु रावण मारा गया है और लंका को अपने आधीन कर लिया गया है।

मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये।
प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ।। २९।।
सम्भ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये।
विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम्।। ३०।।
तदाश्वसिहि विस्रब्धं स्वगृहे परिवर्तसे।
अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः।। ३१।।
एवमुक्ता तु सा देवी सीता शशिनिभानना।
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह।। ३२।।

राम ने सन्देश दिया है कि मैंने तुम्हारे उद्धार के लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसे मैंने नींद को त्याग कर अथक प्रयत्न करते हुए, समुद्र में बाँध बना कर पूरा कर लिया है। अब तुम अपने को रावण के घर में विद्यमान समझ कर भयभीत मत होना। अब लंका का ऐश्वर्य विभीषण के आधीन है। अब तुम निश्चिन्त होकर धैर्य धारण करो, क्योंकि तुम अब अपने ही घर में हो। आपके दर्शन के लिये उत्कण्ठित हर्ष में भरे हुए विभीषण यहाँ आ रहे हैं। इतना कहे जाने पर चन्द्रमा के समान मुख वाली वह देवी सीता, हर्ष से गला भर आने के कारण कुछ बोल न सकी।

ततोऽब्रवीद्धरिवरः सीतामप्रतिजल्पतीम्।
किं त्वं चिन्तयसे देवि किं च मां नाभिभाषसे।। ३३।।
एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मपथे स्थिता।
अब्रवीत् परमप्रीता बाष्पगद्गदया गिरा।। ३४।।
प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम्।
प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम्।। ३५।।
नहि पश्यामि सदृशं चिन्तयन्ती प्लवंगम।
आख्यानकस्य भवतो दातुं प्रत्यभिनन्दनम्।। ३६।।

सीता को उत्तर न देते हुए देख कर वे श्रेष्ठ वानर तब बोले कि हे देवी! आप क्या सोच रही हैं और मुझसे बोलती क्यों नहीं है? हनुमान के ऐसा कहने पर धर्म के मार्ग पर विद्यमान सीता अत्यन्त प्रसन्न होकर आँसुओं से गद्गद् होती हुई वाणी से बोलीं कि पति की विजय के इस प्रिय समाचार को सुन कर मैं अत्यन्त आनन्द में भर कर थोड़ी देर कुछ बोल न सकी। हे वानर! मैं इस प्रिय समाचार के लिये तुम्हें पुरस्कार देना चाहती हूँ, पर सोचने पर भी मुझे कोई ऐसी चीज दिखाई नहीं देती, जो इसके योग्य हो।

न हि पश्यामि तत् सौम्य पृथिव्यामपि वानर।
सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत् सुखम्।। ३७।।
हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम्।। ३८।।
एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवंगमः।
प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात् सीतायाः प्रमुखे स्थितः।। ३९।।
भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि।
स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनिन्दिते।। ४०।।

हे सौम्य वानर! सारी पृथ्वी के पदार्थों में से कोई भी ऐसी चीज़ मुझे दिखाई नहीं देती जो इस प्रिय समाचार के अनुरूप हो और जिसे मैं तुम्हें देकर सन्तुष्ट हो जाऊँ। तुम्हारे इन वाक्यों की बराबरी सोना चाँदी, अनेक तरह के रत्न, या तीनों लोकों का राज्य भी नहीं कर सकते। ऐसा कहे जाने पर सीता के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हुए हनुमान जी हर्ष से हाथ जोड़ कर बोले कि हे अनिन्दिते! आप सदा पति की ही भलाई में लगीं रहती हैं, पति की विजय की इच्छुक रहती हैं। ऐसा स्नेहयुक्त वचन आप ही कह सकती हैं।

तवैतद् वचनं सौम्ये सारवत् स्निग्धमेव च।
रत्नौघाद् विविधाच्चापि देवराज्याद् विशिष्यिते।। ४१।।
अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थितम्।। ४२।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा मैथिली जनकात्मजा।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच पवनात्मजम्।। ४३।।
अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषणम्।
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम्।। ४४।।

हे सौम्ये! आपका यह स्नेह से भरा सार गर्भित वचन अनेक प्रकार के रत्न समूहों और देवताओं के राज्य से भी बढ़ कर है। वास्तविक रूप से तो यह देखते हुए कि शत्रुघातक राम विजयी हो गये और सकुशल हैं, मैं समझता हूँ कि देवताओं का राज्य आदि सारे गुण युक्त पदार्थ मुझे प्राप्त हो गये। हनुमान जी के ये वचन सुन कर जनकपुत्री मैथिली पवनपुत्र से और भी अधिक सुन्दर वचन बोलीं कि अत्यन्त उत्तम गुणों से युक्त, माधुर्य गुण से भूषित और आठ अंगों वाली बुद्धि से सम्पन्न इस प्रकार की वाणी को तुम ही बोल सकते हो।

श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परमधार्मिकः।
बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमोदाक्ष्यमुत्तमम्।। ४५।।
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः।
एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः।। ४६।।
अथोवाच पुनः सीतामसम्भ्रान्तो विनीवत्।
प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात् सीतायाः प्रमुखे स्थितः।। ४७।।

तुम वायु के परम धार्मिक श्लाघनीय पुत्र हो। इसमें सन्देह नहीं कि बल, शौर्य, विद्या, सहन शीलता, पराक्रम, उत्तम कौशल, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय ये सारे गुण और दूसरे सुन्दर गुण भी तुम्हारे अन्दर विद्यमान हैं। तब सीता के आगे हाथ जोड़ कर, खड़े हुए हनुमान जी ने फिर हर्ष सहित बिना किसी घबराहट के विनय पूर्वक कहा कि–

इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे।
हन्तुमिच्छामि ताः सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा।। ४८।।
क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वामशोकवनिकां गताम्।
घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः।। ४९।।
इह श्रुता मया देवि राक्षस्योविकृताननाः।
असकृत्परुषैर्वाक्यैर्वदन्त्यो रावणाज्ञया।। ५०।।
इत्युक्ता सा हनुमता कृपणा दीनवत्सला।
हनूमन्तमुवाचेदं चिन्तयित्वा विमृश्य च।। ५१।।

यदि आप आज्ञा दें तो मैं इन सारी राक्षसियों को जो पहले आपको धमकातीं रहतीं थीं, मारना चाहता हूँ। आप जब यहाँ अशोक वाटिका में रहते हुए पति के लिये दुखी होती रहतीं थीं, तब भयानक आकृति और चरित्र से युक्त, क्रूर और अत्यधिक क्रूर दृष्टि वाली तथा विकृत मुख वाली इन राक्षसियों को मैंने रावण की आज्ञा से अनेक बार आपको कठोर वचन कहते हुए सुना है। हनुमान जी के द्वारा यह कहने पर करुणामयी और दीन वत्सला सीता ने सोच विचार कर उनसे यह कहा कि–

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद् वानरोत्तम।। ५२।।
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः।। ५३।।
आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम्।
हते तस्मिन् न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज।। ५४।।
न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः।। ५५।।

हे वानरोत्तम! जो दासियाँ, राजा के आश्रय रहने के कारण उसके आधीन होती हैं और उसकी आज्ञा से कार्य करती हैं, उनके कार्य के लिये किसे क्रुद्ध होना चाहिये? मैंने ही जो पहले बुरे कार्य किये थे, उन्हीं का फल मुझे मिल रहा था, उन्हीं को मैं भोग रही थी। इसलिये हे महाबाहु! ऐसा मत कहो। परमात्मा की व्यवस्था ऐसी ही थी! हे पवनपुत्र! ये राक्षसियाँ उस राक्षस की आज्ञा से ही मुझे धमकातीं थीं। उसके मारे जाने पर ये अब मुझसे कुछ नहीं कहतीं। अच्छे आदमी दूसरे पाप कर्मियों के पाप कर्मों को ग्रहण नहीं करते। सन्तों का चरित्र ही उनका भूषण है, इसलिये अपने चरित्र की रक्षा करनी चाहिये।

पापानां वाशुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।। ५६।।

लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्।।५७।।
एवमुक्तस्तु हनुमान् सीतया वाक्यकोविदः।
प्रत्युवाद ततः सीतां रामपत्नीमनिन्दिताम्।।५८।।
युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता।
प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः।।५९।।

चाहे कोई पापी हो या पुण्यात्मा हो, या वध के योग्य ही क्यों न हो। श्रेष्ट व्यक्ति को उनके ऊपर दया करनी चाहिये। क्योंकि ऐसा कोई नहीं है, जिससे अपराध न हुआ हो। लोगों की हिंसा में ही आनन्द लेने वाले क्रूर व्यक्तियों और पापों को करते हुए पापकर्मियों का भी बुरा नहीं करना चाहिये। सीता के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वाक्य प्रयोग में चतुर हनुमान जी राम की पत्नी अनिन्दिता सीता से बोले कि आप राम की गुणों से युक्त योग्य पत्नी हैं। हे देवी! अब अपना कोई सन्देश दीजिये! मैं श्रीराम के पास जाऊँगा।

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा।
साब्रवीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम्।।६०।।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः।
हर्षयन् मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महामतिः।।६१।।
पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्ष्यस्यद्य सलक्ष्मणम्।
तामेवमुक्त्वा भ्राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम्।
आजगाम महातेजा हनूमान् यत्र राघवः।।६२।।

हनुमान जी के यह कहने पर वैदेही ने कहा कि मैं भक्तों से प्रेम करने वाले अपने पति को देखना चाहती हूँ। उनकी इस बात को सुन कर, महामति वायुपुत्र हनुमान वैदेही का हर्ष बढ़ाते हुए यह बोले कि– आप पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले राम को लक्ष्मण सहित आज देखेंगीं। साक्षात् सौन्दर्य की देवी के समान सुशोभित होने वाली सीता जी से यह कह कर महा तेजस्वी हनुमान जी वहाँ आये, जहाँ श्रीराम विद्यमान थे।

सपदि हरिवरस्ततो हनूमान्
प्रतिवचनं जनकेश्वरात्मजायाः।
कथितमकथयद् यथाक्रमेण
त्रिदशवरप्रतिमाय राघवाय।।६३।।

तब श्रेष्ठ वानर हनुमान जी ने इन्द्र के समान तेजस्वी राम से जनक पुत्री सीता का प्रत्युत्तर, जो उन्होंने उनसे कहा था, क्रमशः सारा कह सुनाया।

पिचासीवाँ सर्ग

श्री राम की आज्ञा से विभीषण का सीता को उनके समीप लाना और सीता का उनके दर्शन करना।

तमुवाच महाप्राज्ञः सोऽभिवाद्य प्लवङ्गमः।
रामं कमलपत्राक्षं वरं सर्वधनुष्मताम्।। १।।
यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां यः फलोदयः।
तां देवीं शोकसंतप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम्।। २।।
सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा।
मैथिली विजयं श्रुत्वा द्रष्टुं त्वामभिकाङ्क्षति।। ३।।
पूर्वकात् प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया।
द्रष्टुमिच्छामि भर्तारमिति पर्याकुलेक्षणा।। ४।।

इसके पश्चात महा प्राज्ञ वानर हनुमान जी ने सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ कमल नयन श्रीराम से प्रणाम करके यह कहा कि जिनके लिये कार्यों को आरम्भ किया गया था, जो इन कार्यों के फल के रूप में हैं, उन शोक संतप्त देवी सीता को आप दर्शन दीजिये। शोक से युक्त और आँखों में आँसू भरे हुए सीता देवी आपकी विजय सुन कर आपके दर्शन करने की इच्छा कर रही हैं। पहले की हुई भेंट के कारण मुझ पर विश्वास करके उन्होंने आँखों में आँसू भर कर मुझ से कहा है कि मैं अपने पति के दर्शन करना चाहती हूँ।

एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः।
उवाच मेघसंकाशं विभीषणमुपस्थितम्।। ५।।
दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम्।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम्।। ६।।
एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः।
प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्त्रीभिः स्वाभिरचोदयत्।। ७।।
ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वोवाच विभीषणः।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिः श्रीमान् विनीतो राक्षसेश्वरः।। ८।।

हनुमान जी के ऐसा कहने पर धर्म धरियों में श्रेष्ठ श्रीराम ने मेघों के समान विभीषण को जो पास ही उपस्थित थे, कहा कि आप शीघ्र ही वैदेही को पूर्ण स्नान करवा कर, दिव्य आभूषणों से तथा दिव्य अंगरागादि

से भूषित करके यहाँ लाइये। ऐसा कहे जाने पर विभीषण शीघ्रता से अपने अन्तः पुर में गए और अपनी स्त्रियों के द्वारा उन्होंने सीता जी को अपने आने की सूचना भिजवाई। फिर महाभागा सीता के दर्शन करके मस्तक पर दोनों जुड़े हुए हाथ रख कर श्रीमान राक्षस राज विभीषण ने विनय के साथ उनसे कहा कि–

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति।। ९।।
एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम्।
अस्नात्वा द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर।। १०।।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः।
यथाऽऽह रामो भर्ता ते तत् तथा कर्तुमर्हसि।। ११।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा मैथिली पतिदेवता।
भर्तृभक्त्यावृता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत।। १२।।

हे देवी! विदेह कुमारी! आप दिव्य आभूषणों और दिव्य अंगराग से भूषित होकर सवारी पर बैठिये। आपके पति आपको देखना चाहते हैं। ऐसा कहे जाने पर सीता ने विभीषण को उत्तर दिया कि मैं बिना स्नान किये ही इसी अवस्था में अपने पति के दर्शन करना चाहती हूँ। उनका यह वचन सुन कर विभीषण ने उत्तर दिया कि जैसे आपके पति राम ने कहा है, वैसे आपको करना चाहिये। उसकी यह बात सुन कर पति को ही अपना देवता मानने वाली, पति भक्ति से परिपूर्ण साध्वी सीता ने बहुत अच्छा ऐसा कहा।

ततः सीतां शिरःस्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मणा।
महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम्।। १३।।
आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्ध्याम्बरसंवृताम्।
रक्षोभिर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः।। १४।।
तेषामुत्सार्यमाणानां निःस्वनः सुमहानभूत्।
वायुनोद्धूयमानस्य सागरस्येव निःस्वनः।। १५।।
उत्सार्यमाणांस्तान् दृष्ट्वा समन्ताज्जातसम्भ्रमान्।
दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः।। १६।।

तब सीता को पूर्ण स्नान करा कर, उनका शृंगार करा कर, उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित करके और बहुमूल्य वस्त्रों से ढकी हुई, जगमगाती हुई शिबिका पर बैठा कर बहुत से राक्षसों की सुरक्षा में विभीषण उन्हें लेकर श्रीराम के पास आये। उस समय उन सुरक्षा सैनिकों द्वारा हटाये जाने पर वानर सेना में ऐसे ही महान कोलाहल होने लगा जैसे वायु के द्वारा उद्वेलित होने पर समुद्र की गर्जना बढ़ जाती है। जिन वानरों को सीता जी के समीप से हटाया जाता था, उन्हें बड़ा उद्वेग होता था। यह देख कर अपनी उदारता के कारण श्रीराम ने रोष पूर्वक हटाने वालों को रोका और कहा कि–

किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः।
निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम।। १७।।
न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्रिया।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः।। १८।।
विसृज्य शिबिकां तस्मात् पद्भ्यामेवापसर्पतु।
समीपे मम वैदेहीं पश्यन्त्वेते वनौकसः।। १९।।

तुम मेरा अनादर करके क्यों इन लोगों को परेशान कर रहे हो। इस दुख देने वाले कार्य को रोक दो। ये सारे मेरे आत्मीय लोग हैं। घर, वस्त्र, चार दिवारी, दूसरों का तिरस्कार करके की जाने वाली राजकीय औपचारिकताएँ ये सब स्त्रियों का पर्दा नहीं है। स्त्री का अपना चरित्र ही उसका पर्दा है, इसलिये शिबिका को छोड़ कर वैदेही पैदल ही मेरे पास आयें और ये सारे वानर इनका दर्शन करें।

लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली।
विभीषणेनानुगता भर्तारं साभ्यवर्तत।। २०।।
विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना।। २१।।

तब लज्जा से अपने आपमें सिकुड़ती हुई सीता विभीषण के पीछे-पीछे अपने पति के पास आयीं। उस समय पति को ही देवता मानने वाली और अत्यन्त सौम्य मुख वाली सीता ने विस्मय हर्ष और प्रेम से अपने पति के सौम्य मुख के दर्शन किये।

छियासीवाँ सर्ग

श्रीराम का अयोध्या जाने के लिये उद्यत होना और विभीषण का उनके लिये पुष्पक विमान मँगाना।

तां रात्रिमुषितं रामं सुखोदितमरिंदमम्।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः।। १।।
स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च।
चन्दनानि च माल्यानि दिव्यानि विविधानि च।। २।।
अलंकारविदश्चैता नार्यः पद्मनिभेक्षणाः।
उपस्थितास्त्वां विधिवत् स्नापयिष्यन्ति राघव।। ३।।
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम्।
हरीन् सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनोपनिमन्त्रय।। ४।।

शत्रुओं का दमन करने वाले श्रीराम उस रात्रि को सुख से बिता कर जब उठे, तब विभीषण ने उनका कुशल मंगल पूछ कर हाथ जोड़ कर उनसे कहा कि हे राम! स्नान करने का सामान, अंग राग, अनेक तरह के वस्त्र, आभूषण, चन्दन, और अलौकिक मालाएँ, शृंगार करने में चतुर ये कमलनयनी नारियाँ यहाँ उपस्थित हैं। ये आपको विधि पूर्वक स्नान करायेंगी। ऐसा कहे जाने पर ककुत्स्थ वंशी राम ने विभीषण को उत्तर दिया कि तुम सुग्रीव आदि वानरों से स्नान के लिये अनुरोध करो।

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः।
सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः।। ५।।
तं विना कैकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्।
न मे स्नानं बहु गतं वस्त्राण्याभरणानि च।। ६।।
एतत् पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम्।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः।। ७।।
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज।। ८।।

वे सुख पाने योग्य, सुकुमार, धर्मात्मा, सत्य का आश्रय लेने वाले महाबाहु भरत मेरे लिये बहुत कष्ट पा रहे हैं। धर्म का आचरण करने वाले उन कैकेयी पुत्र भरत से मिले बिना मुझे न तो स्नान अच्छा लगता है, न वस्त्र और न आभूषण। अब यह देखो, जिससे हम उस नगरी अयोध्या को जल्दी ही वापिस पहुँच सकें। पैदल जाते हुए तो यह मार्ग बहुत दुर्गम है। ऐसा कहे जाने पर विभीषण ने ककुत्स्थ वंशी श्रीराम को उत्तर दिया कि हे राजकुमार! मैं आपको एक दिन में ही उस नगरी में पहुँचा दूँगा।

पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसंनिभम्।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा।। ९।।
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम्।
त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम।। १०।।
येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः।

आपका कल्याण हो। मेरे भाई कुबेर का सूर्य के समान तेजस्वी पुष्पक नाम का विमान, बलवान रावण ने उसे युद्ध में जीत कर उससे छीन लिया था। वह अलौकिक, श्रेष्ठ और चालक की इच्छा से प्रत्येक स्थान पर जा सकने वाला है। हे अद्वितीय पराक्रम वाले। उसे मैंने आपके लिये ही तैयार किया हुआ है, जिसके द्वारा आप अयोध्या को निश्चिंत होकर जा सकेंगे।

अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान्।। ११।।
वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या भार्यया सह।। १२।।
अर्चितः सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि।
प्रीतियुक्तस्य विहितां ससैन्यः ससुहृद्गणः।। १३।।
सत्क्रियां राम मे तावद् गृहाण त्वं मयोद्यताम्।
प्रणयाद् बहुमानाच्च सौहार्देन च राघव।। १४।।
प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खल्वाज्ञापयामि ते।

यदि मैं आपके अनुग्रह के योग्य हूँ, यदि आप मुझमें कोई गुण देखते हैं, हे प्राज्ञ! यदि मेरे प्रति आपका सौहार्द है, तो भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ कुछ दिन यहाँ रहिये। हे राम! मैं सारी कामनाओं के द्वारा आपका सत्कार करूँगा। फिर आप चले जायें। हे राम! आप प्रेम के साथ मेरे द्वारा प्रस्तुत की गयी सत्कार क्रिया को सेना और मित्रों के साथ ग्रहण कीजिये। मैं आपका सेवक हूँ। मैं बड़े सम्मान से, प्रेम से, और सौहार्दभाव से आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ, आपको आज्ञा नहीं दे रहा।

एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम्।। १५।।
रक्षसां वानराणां च सर्वेषामेव शृण्वताम्।
पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च।। १६।।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च।
न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।। १७।।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः।

मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।। १८।।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया।

ऐसा कहे जाने पर राम ने विभीषण को सारे राक्षसों और वानरों के सुनते हुए यह उत्तर दिया कि हे वीर! तुमने मेरा उत्तम सचिव बन कर अपनी सब प्रकार की चेष्टाओं के द्वारा और अपने उत्तम सौहार्द भाव के द्वारा मेरी पूजा की है। हे राक्षसेश्वर! निश्चय ही मुझे तुम्हारी बात अस्वीकार नहीं करनी चाहिये, पर मेरा मन अपने उस भाई भरत को देखने के लिये जल्दी कर रहा है, जो मुझे लौटाने के लिये चित्रकूट में आया था और उसके सिर झुका कर याचना करने पर भी मैंने उसकी याचना स्वीकार नहीं की थी।

कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम्।। १९।।
गुहं च सुहृदं चैव पौराञ्जानपदैः सह।
अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण।। २०।।
मन्युर्न खलु कर्तव्यः सखे त्वां चानुमानये।
उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर।। २१।।
कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्यादिह सम्मतः।
एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः।। २२।।
विमानं सूर्यसंकाशमाजुहाव त्वरान्वितः।

मैं कौसल्या को, सुमित्रा को और यशस्विनी कैकेयी को तथा देशवासियों के साथ नगरवासियों एवं मित्र गुह को भी देखना चाहता हूँ। हे सौम्य विभीषण! मुझे जाने की आज्ञा दो। मैं तुम्हारे द्वारा सम्मानित हो चुका हूँ। तुम इसके लिये क्रोध मत करना। मित्र मैं तुमसे इसके लिये बार-बार प्रार्थना करता हूँ। हे राक्षसेश्वर! मेरे लिये शीघ्र विमान को मँगवाओ। मेरा यहाँ कार्य पूरा हो चुका है, फिर मेरा यहाँ रहना उचित कैसे हो सकता है? राम के ऐसा कहने पर राक्षसेन्द्र विभीषण ने शीघ्रता से पुष्पक विमान को मँगवाया।

ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यमणिवेदिकम्।। २३।।
पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृतम्।
प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षकम्।। २४।।
घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम्।
तं मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा।। २५।।

वह विमान सुनहले रंग का चित्र विचित्र अंगों वाला था। उसमें वैदूर्य मणि की वेदियाँ थीं। वह श्वेत पीत रंग के ध्वजों और पताकाओं से अलंकृत था। उसमें मोती और मणियों से जटित खिड़कियाँ थीं। वह छोटी-छोटी घंटियों के जाल से व्याप्त था। घंटों के समूह उसमें लटके हुए थे, जिनसे मीठी ध्वनि निकलती रहती थी। विश्वकर्मा के द्वारा बनाया हुआ वह विमान मेरु पर्वत के शिखर के समान ऊँचा था।

तलैः स्फटिकचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः।। २६।।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः।
उपस्थितमनाधृष्यं तद् विमानं मनोजवम्।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः।। २७।।

उसके फर्श में स्फटिक मणियाँ जड़ी हुई थीं और उसमें वैदूर्य मणि के उत्तम आसन थे, जिन पर मूल्यवान और उत्तम कोटि के बिस्तर बिछे हुए थे। उस विमान की गति मन की गति के समान थी। वह कहीं भी नहीं रुकता था। राम को उस विमान के आने के सूचना देकर विभीषण वहाँ उनके पास खड़े हो गये।

सत्तासीवाँ सर्ग

श्रीराम की आज्ञा से विभीषण द्वारा वानरों का विशेष सत्कार और वानर यूथपतियों तथा विभीषण सहित श्रीराम का पुष्पक विमान के द्वारा अयोध्या को प्रस्थान।

उपस्थितं तु तं कृत्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम्।
स तु बद्धाञ्जलिपुटो विनीतो राक्षसेश्वरः।। १।।
अब्रवीत् त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम्।
तमब्रवीन्महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वतः।। २।।
विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम्।
कृतप्रयत्नकर्माणः सर्व एव वनौकसः।। ३।।
रत्नैरर्थैश्च विविधैः सम्पूज्यन्तां विभीषण।

फूलों से सजे हुए पुष्पक विमान को राम की सेवा में उपस्थित करके दोनों हाथ जोड़ कर विनीत राक्षसेश्वर विभीषण ने उतावली के साथ श्रीराम से यह कहा कि मैं अब आपकी क्या सेवा करूँ? तब महा तेजस्वी राम ने कुछ सोच कर लक्ष्मण के सुनते हुए स्नेह से भरी हुई यह बात कही कि हे विभीषण! इन सारे वानरों ने युद्ध में बड़ा प्रयत्न और परिश्रम

किया है। इनकी अनेक प्रकार के रत्नों और धन से पूजा करो।

सहामीभिस्त्वया लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर।। ४।।
हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः।
त इमे कृतकर्माणः सर्व एव वनौकसः।। ५।।
धनरत्नप्रदानैश्च कर्मैषां सफलं कुरु।
एवं सम्मानिताश्चैते नन्द्यमाना यथा त्वया।। ६।।
भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियूथपाः।
त्यागिनं संग्रहीतारं सानुक्रोशं जितेन्द्रियम्।। ७।।
सर्वे त्वामभिगच्छन्ति ततः सम्बोधयामि ते।

हे राक्षसराज! इनकी सहायता से ही तुमने लंका को जीता है। ये सदा प्रसन्न रहते है और प्राणों का भय छोड़ कर संग्रामों में लड़ते हैं। वहाँ से वापिस नहीं लौटते हैं। अब ये सारे वानर अपना कार्य समाप्त कर चुके हैं। तुम धन और रत्नों को देकर इनके कार्य को सफल करो। जब तुम कृतज्ञता से इनका सम्मान और अभिनन्दन करोगे तो ये वानर यूथपति तुमसे सन्तुष्ट हो जायेंगे। तब सारे तुम्हें समझेंगे कि विभीषण धन एकत्र करते हैं तो उसे दान भी करते हैं, वे दयालु है, जितेन्द्रिय हैं, इसी लिये मैं तुम्हें समझा रहा हूँ।

हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे।। ८।।
सेना त्यजति संविग्ना नृपतिं तं नरेश्वर।
एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान् विभीषणः।। ९।।
रत्नार्थसंविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत्।
ततस्तान् पूजितान् दृष्ट्वा रत्नार्थैर्हरियूथपान्।। १०।।
आरुरोह तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम्।
अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां मनस्विनीम्।। ११।।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता।

हे नरेश्वर! जो राजा प्रेम करने वाले दान और मान आदि सारे गुणों से रहित होता है उसकी सेना उससे उद्विग्न रहती है और युद्ध में आक्रमण करते समय उसे छोड़ कर चल देती है। राम के द्वारा ऐसा कहने पर विभीषण ने उन सारे वानरों को रत्नों और धन का दान कर उनकी पूजा तथा सत्कार किया। तब उन वानर यूथपतियों को रत्नों और धन से सत्कृत देख कर राम लज्जित होती हुई मनस्विनी सीता को गोद में लेकर, पराक्रमी धनुर्धर भाई लक्ष्मण के साथ उस श्रेष्ठ विमान में आरूढ हो गये।

अब्रवीत् स विमानस्थः पूजयन् सर्ववानरान्।। १२।।
सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम्।
मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः।। १३।।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत।
यत् तु कार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।। १४।।
कृतं सुग्रीव तत् सर्वं भवताधर्मभीरुणा।
किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः।। १५।।
स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण।

विमान में बैठे हुए सारे वानरों का सम्मान करते हुए उन ककुत्स्थवंशी ने महापराक्रमी सुग्रीव और विभीषण से कहा कि हे वानरश्रेष्ठों! आपने अपने मित्र का यह कार्य पूरा किया। मैंने आपको अनुमति दे दी है। अब आप अपने इच्छित स्थानों को चले जायें। हे सुग्रीव! जो कार्य एक धर्म से डरने वाले, प्रेमी और हितैषी मित्र को करने चाहियें, वे सारे कार्य आपने किये। अब आप अपनी सेना के साथ जल्दी किष्किंधा को चले जाओ। हे विभीषण! तुम मेरे द्वारा दिये हुए इस लंका के राज्य पर स्थिर रहो।

अयोध्यां प्रति यास्यामि राजधानीं पितुर्मम।। १६।।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वानामन्त्रयामि वः।
एवमुक्तास्तु रामेण हरीन्द्रा हरयस्तथा।। १७।।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः।
अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान् नयनु नो भवान्।। १८।।
दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च।
अचिरादगमिष्यामः स्वगृहान् नृपसत्तम।। १९।।

अब मैं अपने पिता की राजधानी अयोध्या को जाऊँगा। इसके लिये मैं आपकी अनुमति चाहता हूँ और आप सबको वहाँ आने के लिये आमन्त्रित करता हूँ। राम के ऐसा कहने पर राक्षस विभीषण और वानर सेनापति हाथ जोड़ कर कहने लगे कि हम सब अयोध्या में जाना चाहते हैं। आप हमें साथ ले चलिये। वहाँ हम आपका राज्याभिषेक देख कर और माता कौशल्या को प्रणाम कर हे नृपश्रेष्ठ! जल्दी ही अपने घरों को लौट आयेंगे।

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः।
अब्रवीद् वानरान् रामः ससुग्रीवविभीषणान्।। २०।।
प्रियात् प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः।
सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः।। २१।।
क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण।। २२।।
ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह वानरैः।
आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः।। २३।।

विभीषण के साथ वानरों के द्वारा यह कहे जाने पर धर्मात्मा राम सुग्रीव सहित वानर प्रमुखों से तथा विभीषण से बोले कि यदि मैं मित्रों सहित आप सबके साथ अपनी नगरी में जाऊँगा तो यह मेरे लिये प्रिय से भी अधिक प्रिय बात होगी और मैं अत्यधिक प्रसन्नता को प्राप्त करूँगा। हे सुग्रीव! तुम वानर सेनापतियों के साथ जल्दी विमान में आ जाओ। हे राक्षसराज विभीषण! तुम भी अपने मंत्रियों के साथ आ जाओ। तब उस दिव्य पुष्पक विमान पर सुग्रीव वानर सेनापतियों के साथ और विभीषण मंत्रियों के साथ हर्ष सहित बैठ गये।

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम्।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम्।। २४।।
खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता।
प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत्।। २५।।
ते सर्वे वानरर्क्षाश्च राक्षसाश्च महाबलाः।
यथासुखमसम्बाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन्।। २६।।

उन सबके विमान में बैठ जाने पर कुबेर का वह अत्यन्त उत्तम आसन पुष्पक विमान श्रीराम की आज्ञा से आकाश में उड़ने लगा। अर्थात् उसके चालकों ने उसे आकाश में उड़ाना आरम्भ कर दिया। आकाश में गये हुए उस हंस की आकृति से युक्त चमकदार विमान से यात्रा करते हुए श्रीराम उस पर अत्यन्त प्रसन्न और पुलकित होकर साक्षात कुबेर के समान ही लग रहे थे। वे सारे महा बली महा वानर और ऋक्ष सेनापति तथा राक्षस उस दिव्य विमान में सुख पूर्वक, बिना किसी रुकावट के आराम से बैठे हुए थे।

अठासीवाँ सर्ग

अयोध्या लौटते हुए श्रीराम का सीता को मार्ग के स्थान दिखाना।

पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः।
अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम्।। १।।
कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम्।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा।। २।।
एतादायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम्।
हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत्।। ३।।
तव हेतोर्विशालाक्षि निहतो रावणो मया।
कुम्भकर्णोऽत्र निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः।। ४।।
धूम्राक्षश्चात्र निहतो वानरेण हनूमता।

तब सब तरफ दृष्टि डाल कर रघुनन्दन राम चन्द्रमा के समान मुख वाली मैथिली सीता से बोले कि कैलास पर्वत की चोटी के समान त्रिकूट पर्वत पर विद्यमान, विश्वकर्मा के द्वारा बनायी हुई इस लंका को हे सीते! देखो। हे सीते! इस युद्धभूमि को देखो। जहाँ रक्त और मांस की कीचड़ जमी हुई है। यहाँ वानरों और राक्षसों का महान संहार हुआ है। हे विशाल नेत्रों वाली! तुम्हारे लिये मैंने यहाँ रावण को मारा है। यहीं कुम्भकर्ण मारा गया, प्रहस्त राक्षस भी मारा गया। वानर हनुमान ने यहाँ धूम्राक्ष को मारा था।

विद्युन्माली हतश्चात्र सुषेणेन महात्मना।। ५।।
लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे।
अङ्गदेनात्र निहतो विकटो नामराक्षसः।। ६।।
विरूपाक्षश्च दुष्प्रेक्षो महापार्श्वमहोदरौ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ।। ७।।
युद्धोन्मत्तश्च मत्तश्च राक्षसप्रवरावुभौ।
निकुम्भश्चैव कुम्भश्च कुम्भकर्णात्मजौ बली।। ८।।

महात्मा सुषेण ने यहाँ विद्युन्माली को मारा था। लक्ष्मण ने यहाँ युद्ध में रावण पुत्र इन्द्रजित को मारा था। जिसकी तरफ देखना भी कठिन था, वह विरूपाक्ष तथा महापार्श्व और महोदर भी यहीं मारे गये। त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक यहीं मारे गये। युद्धोन्मत्त और मत्त ये दोनों राक्षस श्रेष्ठ और कुम्भकर्ण के दोनों बलवान पुत्र निकुम्भ और कुम्भ यहीं मारे गये।

वज्रदंष्ट्रश्च दंष्ट्रश्च बहवो राक्षसा हताः।
मकराक्षश्च दुर्धर्षो मया युधि निपातितः।। ९।।
अकम्पनश्च निहतः शोणिताक्षश्च वीर्यवान्।
यूपाक्षश्च प्रजङ्घश्च निहतौ तु महाहवे।। १०।।
विद्युज्जिह्वोऽत्र निहतो राक्षसो भीमदर्शनः।
यज्ञशत्रुश्च निहतः सुप्तघ्नश्च महाबलः।। ११।।
सूर्यशत्रुश्च निहतो ब्रह्मशत्रुस्तथापरः।
अत्र मन्दोदरी नाम भार्या तं पर्यदेवयत्।। १२।।
सपत्नीनां सहस्रेण साग्रेण परिवारिता।

वज्रदंष्ट्र और दंष्ट्र तथा दूसरे राक्षस यहीं मारे गये। दुर्धर्ष मकराक्ष को यहीं युद्ध में मैंने गिराया था। महान

युद्ध में अकम्पन और पराक्रमी शोणिताक्ष मारे गये तथा यूपाक्ष और प्रजंघ मारे गये। यहीं देखने में भयानक विद्युज्जिह्व मारा गया। यज्ञशत्रु और महाबली सुप्तघ्न मारे गये। यहीं सूर्यशत्रु और ब्रह्मशत्रु मारे गये। यहीं मन्दोदरी नाम की रावण की भार्या ने बहुत सारी सौतों के साथ रावण के लिये विलाप किया था।

एतत् तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने।। १३।।
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम्।
एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे।। १४।।
तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः।
पश्य सागरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम्।। १५।।
अपारमिव गर्जन्तं शङ्खशुक्तिसमाकुलम्।
एतत् कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम्।। १६।।
अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः।

हे सुन्दर मुखवाली! यह समुद्र का किनारा है, जहाँ समुद्र को पार कर हमने वह रात बितायी थी। यह नमक के पानी के भंडार समुद्र में मैंने बाँध बनवाया था, इसका नाम नलसेतु है। हे विशाल नेत्रों वाली! यह दुष्कर कार्य तुम्हारे लिये ही हुआ था। हे देवी! इस अक्षोम्य और अपार के समान सागर को देखो। जिसमें आकाश मिला हुआ है जो शंख और सीपियों से भरा हुआ है ओर गर्जना कर रहा है। यहाँ समुद्र की गोद में वह स्थान है जहाँ मैंने सेना का पड़ाव डाला था। यहीं ये राक्षसराज विभीषण आकर मुझसे मिले थे।

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना।। १७।।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः।
अथ दृष्ट्वा पुरींसीता किष्किन्धां वालिपालिताम्।। १८।।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा।
सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप।। १९।।
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम्।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह।। २०।।

हे सीता! यह सुन्दर उद्यानों वाली किष्किंधा सुग्रीव की रमणीय नगरी है, जहाँ मैंने बाली को मारा था। बालि से पहले रक्षित किष्किंधा को देख कर सीता प्रेम के आवेग से विनय पूर्वक बोली कि हे महाराज! ~~हे महाराज!~~ सुग्रीव की प्रिय पत्नियों तथा तारा आदि और दूसरे वानरेन्द्रों की स्त्रियों के साथ मैं आपके साथ राजधानी अयोध्या को जाना चाहती हूँ।

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या राघवः प्रत्युवाच ताम्।
एवमस्त्विति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राघवः।। २१।।
विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह।
ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान् वानरपुङ्गवान्।। २२।।
स्त्रीभिः परिवृताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया।
तथा त्वमपि सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल।। २३।।
अभित्वरय सुग्रीव गच्छामः प्लवगाधिप।

सीता के यह कहने पर राम ने कहा कि ऐसा ही होगा। और किष्किंधा के आने पर उन्होंने विमान को उतरवाया। वे सुग्रीव की तरफ देख कर बोले कि हे वानरसिंह! सारे वानर श्रेष्ठों से कहो कि वे अपनी स्त्रियों के साथ सीता के साथ अयोध्या को चलें और हे महा बली सुग्रीव वानर राज! अपनी सारी स्त्रियों के साथ जल्दी से तैयार हो जाओ, जिससे हम जल्दी वहाँ पहुँचे।

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा।। २४।।
प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत्।
राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाम्यया।। २५।।
त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोषितः।
अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः।। २६।।
तारया चाभ्यनुज्ञाताः सर्वा वानरयोषितः।
अध्यारोहन् विमानं तत् सीतादर्शनकाङ्क्षया।। २७।।

अमित तेजस्वी राम के द्वारा यह कहे जाने पर सुग्रीव अपने अन्तःपुर में प्रवेश कर तारा से भेंट कर बोले कि सीता जी का प्रिय करने की इच्छा से श्रीराम ने आज्ञा दी है। तुम जल्दी करो। सारी वानर स्त्रियों के साथ हम अयोध्या चलेंगे। वहाँ महाराज दशरथ जी की रानियों के दर्शन करायेंगे। तब तारा की आज्ञा से सारी वानर पत्नियाँ सीता जी के दर्शन की इच्छा से विमान में सवार हो गयीं।

ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः।
ऋष्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत्।। २८।।
दृश्यतेऽसौ महान् सीतेसविद्युदिव तोयदः।
ऋष्यमूको गिरिवरः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः।। २९।।
अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः।
समयश्च कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया।। ३०।।
एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना।
त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः।। ३१।।

उन वानर स्त्रियों के साथ विमान को शीघ्रता से ऊपर उठा हुआ देख कर श्रीराम ऋष्यमूक पर्वत के समीप पुनः बोले कि हे सीता! यह बिजली सहित बादल के समान जो विशाल और सुनहली धातुओं से युक्त पर्वत श्रेष्ठ दिखाई दे रहा है, यह ऋष्यमूक पर्वत है। यहीं मैं

वानरेन्द्र सुग्रीव से मिला था और हे सीता! यहीं मैंने बाली के वध के लिये उससे समझौता किया था। यह सुन्दर वनों वाली पम्पा दिखाई दे रही है। यहीं मैं तुम्हारे बिना बड़ा दुखी होकर रोया था।

दृश्यतेऽसौ जनस्थाने श्रीमान् सीते वनस्पतिः।
जटायुश्च महातेजास्तव हेतोर्विलासिनि।। ३२।।
रावणेन हतो यत्र पक्षिणां प्रवरो बली।
खरश्च निहतो यत्र दूषणश्च निपातितः।। ३३।।
त्रिशिराश्च महावीर्यो मया बाणैरजिह्मगैः।
एतत् तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि।। ३४।।
पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शने।
यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात्।। ३५।।

हे सीते! यह जनस्थान में सुन्दर वृक्ष दिखाई दे रहा है। हे विलासिनी! यहाँ तुम्हारे लिये महा तेजस्वी जटायु जो बलवान और विद्वानों में श्रेष्ठ थे, रावण के द्वारा मारे गये थे। यह वह स्थान है जहाँ मैंने अपने सीधे जाने वाले बाणों से महा पराक्रमी खर, दूषण और त्रिशिरा को मारा था। हे सुन्दर रंग वाली! यह हमारा वह आश्रम है। हे शुभ दर्शने! यह वह सुन्दर कुटिया दिखाई दे रही है, जहाँ राक्षसराज रावण ने तुम्हारा बल पूर्वक हरण किया।

एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा।
अगस्त्यस्याश्रमश्चैव दृश्यते कदलीवृतः।। ३६।।
दीप्तश्चैवाश्रमे ह्येष सुतीक्ष्णस्य महात्मनः।
दृश्यते चैव वैदेहि शरभङ्गाश्रमो महान्।। ३७।।
अस्मिन् देशे महाकायो विराधो निहतो मया।
एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे।। ३८।।

यह स्वच्छ जल वाली सुन्दर और पवित्र गोदावरी है और यह केले के पेड़ों से घिरा हुआ अगस्त्य मुनि का आश्रम है। यह महात्मा सुतीक्ष्ण का दीप्तिमान आश्रम है। हे वैदेही! यह शरभंग मुनि का महान आश्रम दिखाई दे रहा है। इसी स्थान पर मैंने विशालकाय विराध को मारा था। हे पतली कमरवाली! ये वही तपस्वी हैं, जिन्हें पहले हमने देखा था।

अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी।। ३९।।
असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते।
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः।। ४०।।
एषा सा यमुना रम्या दृश्यते चित्रकानना।
भरद्वाजाश्रमः श्रीमान् दृश्यते चैष मैथिलि।। ४१।।

इस आश्रम में ही सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी कुलपति अत्रि रहते हैं। हे सीता! यहीं तुमने उनकी धर्मचारिणी, तपस्विनी पत्नी अनसूया के दर्शन किये थे। हे सुन्दर शरीर वाली! यह पर्वत राज चित्रकूट पर्वत सुशोभित हो रहा है। यहीं कैकेयी पुत्र भरत मनाने के लिय आये थे। हे मैथिली! यह सुन्दर वनों वाली रमणीय यमुना दिखाई दे रही है और यह शोभाशाली भरद्वाज मुनि का आश्रम दिखाई दे रहा है।

नवासीवाँ सर्ग

श्रीराम का भरद्वाज आश्रम पर उतर कर महर्षि से मिलना और हनुमान जी को निषादराज गुह और भरत जी को सूचना देने के लिये भेजना।

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम्।। १।।
सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम्।
शृणोषि कच्चिद् भगवन् सुभिक्षानामयं पुरे।
कच्चित् स युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः।। २।।
एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः।
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत्।। ३।।
आज्ञावशत्वे भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते।
पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे।। ४।।

जब चौदह वर्ष पूरे होने वाले थे, तब चैत्र के शुक्ल पक्ष की पाँचवी तिथि को लक्ष्मण के अग्रज राम ने मन को वश में रखते हुए भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँच कर उन्हें प्रणाम किया। तपस्वी भरद्वाज को अभिवादन कर उन्होंने उनसे पूछा कि हे भगवन! क्या आपने अयोध्यापुरी के विषय में सुना है? वहाँ सुकाल और नीरोगता तो है? क्या भरत अपने कर्तव्य में लगे हुए हैं? क्या माताएँ जीवित हैं? राम के द्वारा ऐसा कहने पर भरद्वाज महामुनि ने रघुश्रेष्ठ राम को प्रसन्नता और मुस्कराहट के साथ कहा कि भरत आपकी आज्ञा के

वश में होकर जटायें बढ़ाये आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे आपकी पादुकाओं को सामने रख कर ही सारा कार्य करते हैं और घर में सब कुशल पूर्वक हैं।

त्वां पुरा चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम्।
स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद् धर्मकामं च केवलम्।। ५।।
पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितृनिर्देशकारिणम्।
दृष्ट्वा तु करुणापूर्वं ममासीत् समितिंजय।। ६।।
कैकेयीवचने युक्तं वन्यमूलफलाशिनम्।
साम्प्रतं तु समृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम्।। ७।।
समीक्ष्य विजितारिं च ममाभूत् प्रीतिरुत्तमा।
सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव।। ८।।
यत् त्वया विपुलं प्राप्तं जनस्थाननिवासिना।

हे संग्रामों को जीतने वाले! पहले तुम्हें कैकेयी के वचनों का पालन करने में लगे हुए, चीरवस्त्र पहने हुए दोनों भाइयों के साथ एक तीसरी स्त्री को साथ लिये हुए, वन में प्रवेश करते हुए, राज्य को छोड़ कर केवल धर्म पालन की कामना करते हुए, पिता जी की आज्ञा पूरी करने के लिये, अपना सब कुछ त्याग कर पैदल ही यात्रा करते हुए और केवल जँगली फल मूल का आहार करते हुए जब देखा था, तो मेरे मन में बड़ी करुणा हुई थी। पर अब मित्रों और बान्धवों के साथ, सफल मनोरथ होकर और शत्रु पर विजय प्राप्त करके आये हुए तुम्हें देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही हैं। हे राघव! तुम्हारे सारे दुख और सुख जो तुमने अत्यधिक मात्रा में जनस्थान में रहते हुए पाये, वे मुझे मालूम हैं।

ब्राह्मणार्थे नियुक्तस्य रक्षतः सर्वतापसान्।। ९।।
रावणेन हृता भार्या बभूवेयमनिन्दिता।
मारीचदर्शनं चैव सीतोन्मथनमेव च।। १०।।
सुग्रीवेण च ते सख्यं यत्र वाली हतस्त्वया।
मार्गणं चैव वैदेह्याः कर्म वातात्मजस्य च।। ११।।
विदितायां च वैदेह्यां नलसेतुर्यथा कृतः।
सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सहवाहनः।। १२।।
यथा च निहतः संख्ये रावणो बलदर्पितः।
सर्वं ममैतद् विदितं तपसा धर्मवत्सल।। १३।।

हे धर्म से प्रेम रखने वाले! आप ब्राह्मणों के कार्य में लगे हुए सारे तपस्वियों की रक्षा कर रहे थे। तभी आपकी यह अनिन्दिता पत्नी रावण के द्वारा हरी गयी। मारीच का दर्शन, सीता का उठाया जाना, सुग्रीव के साथ तुम्हारी मित्रता, तुम्हारे द्वारा बाली की मृत्यु, सीता की खोज, वायु पुत्र का कार्य, सीता का पता लगाना और जैसे नल सेतु बनाया गया, जैसे अपने पुत्रों, बान्धवों और मंत्रियों के साथ सेना और सवारियों के साथ अपने बल के दर्प से भरा हुआ रावण युद्ध में मारा गया, ये सारी बातें मुझे अपने तप के प्रभाव से ज्ञात हैं।

सम्पतन्ति च मे शिष्याः प्रवृत्त्याख्याः पुरीमितः।
अर्घ्यं प्रतिगृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि।। १४।।
उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवंगमम्।
अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवगसत्तम।। १५।।
जानीहि कच्चित् कुशली जनो नृपतिमन्दिरे।
शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम्।। १६।।
निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान्मम।
श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम्।। १७।।
भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा।

मेरे प्रवृत्ति नाम के शिष्य यहाँ से अयोध्या नगरी में जाते रहते हैं। मेरे इस आतिथ्य को स्वीकार करो। कल अयोध्या में जाना। तब तेजस्वी ओर बुद्धिमान राम ने वानर हनुमान से कहा कि हे वानर श्रेष्ठ! तुम जल्दी से तेज गति से अयोध्या में जाकर मालूम करो कि क्या राजभवन में सब लोग सकुशल हैं? पहले शृंगवेर पुर में जाकर वनवासी निषादों के राजा गुह से मिलना और मेरी तरफ से उन्हें कुशलता के विषय में कहना। मेरी कुशलता और स्वास्थ्य तथा चिन्ता विहीनता को सुन कर गुह बहुत प्रसन्न होंगे। वह मेरी आत्मा के समान मेरा मित्र है।

अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च।। १८।।
निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः।
भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम।। १९।।
सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम्।
हरणं चापि वैदेह्या रावणेन बलीयसा।। २०।।
सुग्रीवेण च संवादं वालिनश्च वधं रणे।
मैथिल्यन्वेषणं चैव यथा चाधिगता त्वया।। २१।।
लङ्घयित्वा महातोयमापगापतिमव्ययम्।
यथा च कारितः सेतू रावणश्च यथा हतः।। २२।।

निषादों के राजा गुह तब प्रसन्न होकर तुम्हें अयोध्या का मार्ग और भरत के आचरण के विषय में बतायेंगे। फिर भरत के पास जाकर मेरी तरफ से उन्हें हमारी कुशलता के विषय में बताना। उन्हें सारी बातें बताना कि कैसे बलवान रावण के द्वारा सीता का हरण हुआ और कैसे सुग्रीव से मित्रता और युद्ध में बाली का वध हुआ और तुमने कैसे सीता की खोज की, कैसे तुमने

विशाल जल वाले नदियों के स्वामी, अविकारी सागर का लंघन किया, कैसे सागर पर बाँध बनाया गया और कैसे रावण को मारा गया ये सारी बातें उन्हें बताना।

उपयातं च मां सौम्य भरताय निवेदय।
सह राक्षसराजेन हरीणामीश्वरेण च॥ २३॥
जित्वा शत्रुगणान् रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः।
उपायाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः॥ २४॥
एतच्छ्रुत्वा यमाकारं भजते भरतस्ततः।
स च ते वेदितव्यः स्यात् सर्वं यच्चापि मां प्रति॥ २५॥
ज्ञेयाः सर्वे व वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषितेन च॥ २६॥

हे सौम्य! तुम राक्षसराज विभीषण और वानरराज सुग्रीव के साथ मेरी वापिसी के बारे में भी भरत को बताना कि राम शत्रुओं को जीत कर तथा उत्तम यश को प्राप्त कर सफल मनोरथ होकर महाबली मित्रों के साथ आ रहे हैं। इन सारी बातों को सुन कर भरत मेरे प्रति जैसी-जैसी मुख मुद्रा को बनायें और जैसे मनोभावों को प्रकट करें, उन सबको जानने का प्रयत्न करना। तुम्हें भरत की चेष्टाओं को समझना है, उनकी मुख की कान्ति, उनकी निगाह और उनकी बातों से तुम्हें उनके मनोभावों को जानने का यत्न करना चाहिये।

सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसंकुलम्।
पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः॥ २७॥
संगत्या भरतः श्रीमान् राज्येनार्थी स्वयं भवेत्।
प्रशास्तु वसुधां सर्वामखिलां रघुनन्दनः॥ २८॥
तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर।
यावन्न दूरं याताः स्मः क्षिप्रमागन्तुमर्हसि॥ २९॥
अथोत्पपात वेगेन हनूमान् मारुतात्मजः।
गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन्नुरगोत्तमम्॥ ३०॥

सारी कामनाओं और समृद्धियों से युक्त, बाप दादा का राज्य, जो हाथी, रथ, घोड़े आदि से भरपूर है, किसके मन को नहीं पलट सकता? यदि संगति के प्रभाव से ऐश्वर्य से युक्त भरत स्वयं ही राज्य का इच्छुक हो, तो वह रघुनन्दन भरत बेशक सारी पृथ्वी के राज्य पर शासन करे। हे वानर! इसलिये उसकी बुद्धि और कार्यों को समझ कर जब तक हम यहाँ से दूर न जायें, जल्दी वापिस लौट आओ। तब जैसे गरुड़ पक्षी साँप को पकड़ने के लिये वेग से झपट्टा मारता है, वैसे ही तेजी से हनुमान जी भी आकाश में उड चले।

गङ्गायमुनयोर्भीमं समतीत्य समागमम्।
शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य वीर्यवान्॥ ३१॥
स वाचा शुभया हृष्टो हनूमानिदमब्रवीत्।
सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः॥ ३२॥
ससीतः सह सौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत्।
पञ्चमीमद्य रजनीमुषित्वा वचनान्मुनेः॥ ३३॥
भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यत्रैव राघवम्।
एवमुक्त्वा महातेजाः सम्प्रहृष्टतनूरुहः॥ ३४॥
उत्पपात महावेगाद् वेगवानविचारयन्।

गंगा और यमुना के महान संगम को पार कर वे पराक्रमी हनुमान शृंगवेर पुर में जाकर, गुह से मिल कर हर्षित होकर सुन्दर वाणी में उनसे बोले कि तुम्हारे मित्र ककुत्स्थवंशी, सत्य पराक्रमी राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ अपनी कुशलता का समाचार भेजा है। मुनि के कहने से आज पंचमी की रात भरद्वाज मुनि के आश्रम में रह कर, फिर उन्हीं की आज्ञा से तुम यहीं राम के दर्शन करोगे। ऐसा कह कर वे वेगवान और महा तेजस्वी हनुमान, हर्ष से, रोमांचित शरीर वाले, बिना कुछ सोच विचार किये, महान वेग से आगे की तरफ उड़ चले।

क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम्॥ ३५॥
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्।
जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम्॥ ३६॥
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम्।
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम्॥ ३७॥
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुंधराम्।
तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहबन्धमिवापरम्॥ ३८॥
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः।

जब अयोध्या एक कोस दूर रह गयी, तब उन्होंने चीर वस्त्र, और काला मृगचर्म धारण किये, आश्रम में निवास करते हुए, दीनता से युक्त और कमजोर भरत को देखा। उन्होंने जटायें बढ़ायी हुई थीं, शरीर में मिट्टी लपेटी हुई थी और भाई के बनवास के दुख से कमजोर हो रहे थे। वे फल और मूल का आहार करने वाले, दमनशील तपस्वी और धर्म का आचरण करने वाले थे। वे नियम पूर्वक रहते थे, उनका अन्तः करण शुद्ध था और वे ब्रह्मर्षियों के समान तेजस्वी थे। राम की उन दोनों पादुकाओं को सामने रख कर वे पृथ्वी का शासन कर रहे थे। उन साक्षात् धर्म के अवतार के समान और धर्मज्ञ भरत से तब वायु पुत्र हनुमान ने हाथ जोड़ कर कहा कि-

वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम्।। ३९।।
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कौशलमब्रवीत्।
प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम्।। ४०।।
अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह संगतः।
निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम्।। ४१।।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः।
लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी।। ४२।।
एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः।
पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहमुपागमत्।। ४३।।

जिन ककुत्स्थवंशी राम को, जो चीरवस्त्र और जटाएँ धारण करके दण्डकारण्य में रह रहे हैं, याद कर आप शोक कर रहे हैं, उन्होंने आपको अपनी कुशलता का समाचार भिजवाया है। हे देव! आप अत्यन्त दारुण शोक को त्यागिये। मैं इस समय आपको प्रिय समाचार सुना रहा हूँ। आप अपने भाई राम से मिलने वाले हूँ। ~~आप अपने भाई राम से मिलने वाले~~ हैं। रावण को मार कर और मैथिली को वापस लेकर सफल मनोरथ होकर वे अपने महा बलवान मित्रों के साथ, महा तेजस्वी लक्ष्मण और यशस्विनी सीता सहित आ रहे हैं। हनुमान जी के ऐसा कहने पर कैकेयी पुत्र भरत एकदम हर्षित होकर गिर पड़े। हर्षातिरेक के कारण उन्हें मूर्च्छा आ गयी।

ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः।
हनूमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम्।। ४४।।
अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य सम्भ्रमात्।
सिषेच भरतः श्रीमान् विपुलैरश्रुबिन्दुभिः।। ४५।।
देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम्।। ४६।।

वे राघव भरत फिर थोड़ी देर में उठे और धीरज धर कर वेग से उन्होंने वानर हनुमान को छाती से लगा लिया और हर्ष से उत्पन्न प्रेम से युक्त आँसुओं की धाराओं से वे श्रीमान उन्हें सींचने लगे। फिर प्रिय समाचार कहने वाले हनुमान जी से वे बोले कि हे सौम्य! तुम देवता हो, या मनुष्य हो? जो मुझ पर दया कर यहाँ आये हो। इस प्रिय समाचार को कहने के लिये मैं आपको क्या प्यारी चीज़ दूँ?

निशम्य रामागमनं नृपात्मजः
कपिप्रवीरस्य तदाद्भुतोपमम्।
प्रहर्षितो रामदिदृक्षयाभवत्
पुनश्च हर्षादिदमब्रवीद् वचः।। ४७।।

प्रमुख वानर वीर हनुमान जी से राम के आगमन का वह अद्भुत समाचार सुन कर राजकुमार भरत राम के दर्शन की इच्छा से अत्यन्त प्रसन्न हुए और हर्षातिरेक से पुनः बोले कि–

नब्बैवाँ सर्ग

हनुमान जी का भरत को श्रीराम के वनवास सम्बन्धी सारे वृतान्तों को सुनाना।

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम्।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम्।। १।।
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम्।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि।। २।।
राघवस्य हरीणां च कथमासीत् समागमः।
कस्मिन् देशे किमाश्रित्य तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः।। ३।।
स पृष्टो राजपुत्रेण बृस्यां समुपवेशितः।
आचचक्षे ततः सर्वं रामस्य चरितं वने।। ४।।

मेरे स्वामी राम को महान वन में गये हुए बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। तब से आज मैं उनकी प्रीति को बढ़ाने वाली चर्चा सुन रहा हूँ। मुझे आज संसार में प्रचलित यह कल्याणमयी लोकोक्ति वास्तविक प्रतीत हो रही है कि मनुष्य यदि जीवित रहे तो कभी न कभी अपने जीवन में सुख को प्राप्त करता ही है, चाहे वह सौ वर्ष के बाद करे। अब मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि राम का वानरों के साथ कैसे मेल हुआ? किस देश में हुआ और किस कारण हुआ? यह सब मुझे वास्तविक रूप में बतायें। राजकुमार भरत के यह पूछने पर आसन पर बैठे हुए हनुमान जी ने वन में घटित हुई राम की सारी कहानी को उन्हें सुनाया।

अपयाते त्वयि तदा समुद्भ्रान्तमृगद्विजम्।
परिद्यूनमिवात्यर्थं तद् वनं समपद्यत।। ५।।
तद्धस्तिमृदितं घोरं सिंहव्याघ्रमृगाकुलम्।
प्रविवेशाथ विजनं स महद् दण्डकावनम्।। ६।।
तेषां पुरस्ताद् बलवान् गच्छतां गहने वने।
विनदन् सुमहानादं विराधः प्रत्यदृश्यत।। ७।।

निखाते प्रक्षिपन्ति स्म नदन्तमिव कुञ्जरम्।
तत् कृत्वा दुष्करं कर्म भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। ८।।
सायाह्ने शरभङ्गस्य रम्यमाश्रममीयतुः।

वे बोले कि आपके वन से राम के पास से आने के पश्चात उस वन की अवस्था खराब हो गयी। वह अत्यन्त क्षीण सा हो गया, वहाँ के पशु पक्षी घबराये हुए हो गये। तब श्रीराम ने वहाँ से महान दण्डक वन में प्रवेश किया जो सिंह व्याघ्र और मृगों से भरा हुआ एवं हाथियों से रौंदा हुआ बड़ा भयानक तथा निर्जन था। उनके उस गहन वन में जाते हुए, उनके सामने बलवान विराध नाम का राक्षस बहुत जोर से गर्जता हुआ आया। तब उस हाथी के समान गर्जते हुए विराध को मार कर उन्होंने उसे गड्ढे में फैंक दिया। उस दुष्कर कार्य को कर वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण साँयकाल शरभंग मुनि के रमणीय आश्रम में पहुँचे।

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते रामः सत्यपराक्रमः।। ९।।
अभिवाद्य मुनीन् सर्वाञ्जनस्थानमुपागमत्।
पश्चाच्छूर्पणखा नाम रामपार्श्वमुपागता।। १०।।
ततो रामेण संदिष्टो लक्ष्मणः सहसोत्थितः।
प्रगृह्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः।। ११।।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना।। १२।।
एकेन सह संगम्य रामेण रणमूर्धनि।
अह्नश्चतुर्थभागेन निःशेषा राक्षसाः कृताः।। १३।।
राक्षसाश्च विनिष्पिष्टाः खरश्च निहतो रणे।
दूषणं चाग्रतो हत्वा त्रिशिरास्तदनन्तरम्।। १४।।

शरभंग मुनि उन्हीं के सामने दिवंगत हो गये। उनके दिवंगत होने पर सत्य पराक्रमी राम सब मुनियों को प्रणाम कर जन स्थान में आ गये। जनस्थान में आने के बाद शूर्पणखा नाम की राक्षसी राम के पास आयी। तब राम के आदेश से महा बली लक्ष्मण ने सहसा उठ कर और खड्ग उठा कर उसके कान और नाक काट लिये। इसके बाद वहाँ रहते हुए महात्मा राम ने भयानक कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षसों को मार गिराया। अकेले राम ने युद्ध के मुहाने पर युद्ध करके दिन के चौथे भाग में उन राक्षसों को समाप्त कर दिया। उन्होंने राक्षसों को पीस दिया और खर को युद्ध में मार दिया। पहले दूषण को मार कर फिर त्रिशिरा को मार गिराया।

ततस्तेनार्दिता बाला रावणं समुपागता।
रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षसः।। १५।।
लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रत्नमयो मृगः।
सा राममब्रवीद् दृष्ट्वा वैदेही गृह्यतामिति।। १६।।
अयं मनोहरः कान्त आश्रमो नो भविष्यति।
ततो रामो धनुष्पाणिर्मृगं तमनुधावति।। १७।।
स तं जघान धावन्तं शरेणानतपर्वणा।
अथ सौम्य दशग्रीवो मृगं याति तु राघवे।। १८।।
लक्ष्मणे चापि निष्क्रान्ते प्रविवेशाश्रमं तदा।

तब उस घटना से परेशान वह मूर्ख राक्षसी रावण के पास पहुँची। रावण का सेवक मारीच नाम का भयानक राक्षस था। उसने रत्नमय हरिण का रूप धारण कर सीता के मन को लुभाया। तब सीता ने राम से कहा कि इस सुन्दर मृग को पकड़ लीजिये। इससे हमारा आश्रम रमणीय हो जायेगा। तब राम धनुष हाथ में लेकर उस मृग के पीछे दौड़े और झुकी हुई गाँठ वाले बाण से उन्होंने उस भागते हुए मृग को मार दिया। हे सौम्य! उसके बाद राम के मृग के पीछे जाने पर और लक्ष्मण के भी किसी काम से बाहर निकल जाने पर, रावण ने आश्रम में प्रवेश किया।

त्रातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम्।। १९।।
प्रगृह्य सहसा सीतां जगामाशु स राक्षसः।
ततः शीघ्रतरं गत्वा तद् विमानं मनोजवम्।। २०।।
आरुह्य सह वैदेह्या पुष्पकं स महाबलः।
प्रविवेश तदा लङ्कां रावणो राक्षसेश्वरः।। २१।।
सीतां गृहीत्वा गच्छन्तं वानराः पर्वतोपमाः।
ददृशुर्विस्मिताकारा रावणं राक्षसाधिपम्।। २२।।

वह राक्षस बचाने की इच्छा वाले गृद्ध जाति के राजा जटायु को युद्ध में मार कर और सीता का अपहरण कर तुरन्त वहाँ से भाग गया। वह जल्दी से अपने मन के समान गति वाले पुष्पक विमान के पास जाकर और उस पर सीता के साथ चढ़ कर उसके द्वारा लंका में चला गया। राक्षसराज रावण को सीता को लेकर जाते हुए, पर्वत के समान विशालकाय वानरों ने भी विस्मय के साथ देखा था।

तां सुवर्णपरिष्कारे शुभे महति वेश्मनि।
प्रवेश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः।। २३।।
तृणवद् भाषितं तस्य तं च नैर्ऋतपुङ्गवम्।
अचिन्तयन्ती वैदेही ह्यशोकवनिकां गता।। २४।।

वहाँ लंका में सुवर्ण भूषित सुन्दर और विशाल महल में ले जाकर रावण सीता को चिकनी चुपड़ी बातों से बहकाने का प्रयत्न करने लगा। पर वहाँ अशोक वाटिका

में रहती हुई सीता ने उस राक्षस राज को तथा उसकी बातों को तिनके के समान समझा और कभी उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया।

न्यवर्तत तदा रामो मृगं हत्वा तदा वने।
निवर्तमानः काकुत्स्थो दृष्ट्वा गृध्रं स विव्यथे।। २५।।
गृध्रं हतं तदा दृष्ट्वा रामः प्रियतरं पितुः।
मार्गमाणस्तु वैदेहीं राघवः सहलक्ष्मणः।। २६।।
गोदावरीमनुचरन् वनोद्देशांश्च पुष्पितान्।
ऋष्यमूकगिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः।। २७।।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन सुग्रीवो वालिना पुरा।
इतरेतरसंवादात् प्रगाढः प्रणयस्तयोः।। २८।।

उधर राम वन में मृग को मार कर जब लौटे तब अपने पिता से भी अधिक प्रिय गृद्ध को मारा हुआ देख कर बड़े दुखी हुए। इसके बाद लक्ष्मण के साथ सीता की खोज करते हुए राम गोदावरी के प्रान्तवर्ती, फूलों से भरे हुए वनों में घूमने लगे। तब ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर उनकी सुग्रीव से भेंट हुई। सुग्रीव को पहले उसके भाई बाली ने क्रुद्ध होकर निकाल दिया था। उन दोनों राम और सुग्रीव में परस्पर बातचीत से प्रगाढ़ प्रेम हो गया।

रामः स्वबाहुवीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत्।
वालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम्।। २९।।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः।
रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्यास्तु मार्गणम्।। ३०।।
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना।
दश कोट्यः प्लवङ्गानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः।। ३१।।
तेषां नो विप्रकृष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे।
भृशं शोकाभितप्तानां महान् कालोऽत्यवर्तत।। ३२।।

राम ने तब अपनी भुजाओं के पराक्रम से, विशाल शरीर वाले महाबली बाली को युद्ध में मार कर सुग्रीव को उनका राज्य दिला दिया। सुग्रीव ने अपने राज्य पर स्थापित होकर राम के लिये सारे वानरों के साथ सीता की खोज के लिये प्रतिज्ञा की। तब महात्मा वानरेश सुग्रीव के आदेश से असंख्य वानर सारी दिशाओं में भेजे गये। उन दूर-दूर भेजे हुए वानरों में हमारे दल को अत्यन्त शोक से तप्त हो पर्वत श्रेष्ठ विन्ध्याचल में भटकते हुए बहुत समय बीत गया।

भ्राता तु गृध्रराजस्य सम्पातिर्नाम वीर्यवान्।
समाख्याति स्म वसतीं सीतां रावणमन्दिरे।। ३३।।
सोऽहं दुःखपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन्।
आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः।। ३४।।
तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम्।
कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढव्रताम्।। ३५।।
तया समेत्य विधिवत् पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम्।
अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामाङ्गुलीयकम्।। ३६।।
अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः।

तभी गृध्रराज जटायु के भाई पराक्रमी सम्पाती से भेंट हो गयी। उन्होंने हमें बताया कि सीता रावण के घर में रह रही है। तब मैं अपने बन्धुओं के दुख को दूर करने के लिये, अपने पराक्रम का सहारा लेकर, सौ योजन समुद्र को लाँघ गया। वहाँ लंका में अशोक वाटिका में मैंने रेशमी वस्त्र पहने, आनन्द रहित, मलिन अवस्था में, अपने व्रत का दृढ़ता से पालन करती हुई, अनिन्दिता सीता को देखा। उससे मिल कर और उसे वहाँ राम की पहचान के रूप में राम की अंगूठी देकर और उनकी पहचान की मणि उनसे लेकर कृतकृत्य होकर मैं वापिस आ गया।

मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।। ३७।।
अभिज्ञानं मया दत्तमर्चिष्मान् स महामणिः।
श्रुत्वा तां मैथिलीं रामस्त्वाशशंसे च जीवितम्।। ३८।।
जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वामृतमिवातुरः।
उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे लङ्कावधे मनः।। ३९।।
जिघांसुरिव लोकान्ते सर्वाँल्लोकान् विभावसुः।
ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत्।। ४०।।
अतरत् कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना।

फिर मैंने वापिस आकर अनायास ही महान कर्म करने वाले श्रीराम को वह पहचान की देदीप्यमान महामणि दी। मैथिली के विषय में जान कर राम ने ऐसे ही जीवित रहने की आशा की जैसे मरणासन्न रोगी अमृत को पीकर पुनः जी उठता है। फिर प्रलयकाल में सारे लोकों को जलाने की इच्छा वाली अग्नि के समान सेना को प्रोत्साहन देते हुए राम ने लंका को नष्ट करने का निश्चय किया। फिर समुद्र के तट पर आकर नल नाम के वानर से बाँध बनवाया और उस बाँध से सारी वानर सेना समुद्र के पार जा पहुँची।

प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः।। ४१।।
लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम्।
स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतैः।। ४२।।
पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत्।
तां गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसंनिधौ।
अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि।। ४३।।

वहाँ युद्ध में प्रहस्त को नील ने मारा, कुम्भकरण और रावण को राम ने मारा तथा लक्ष्मण ने रावण के पुत्र को मारा। उसके बाद वहाँ आये हुए लोगों के द्वारा शुभकामनाएँ और आशीर्वाद प्राप्त कर प्रसन्नता से युक्त श्रीराम वानर सेनापतियों के साथ, पुष्पक विमान से किष्किंधा नगरी में आये। वहाँ से गंगा के समीप रहते हुए भरद्वाज मुनि के पास वे इस समय ठहरे हुए हैं। कल पुष्य नक्षत्र में बिना किसी विघ्न बाधा के आप राम का दर्शन करेंगे।

ततः स वाक्यैर्मधुरैर्हनूमतो
निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं
चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः।। ४४।।

तब हनुमान जी के मधुर वाक्यों को सुन कर हर्षित हुए भरत जी हाथ जोड़ कर मन को हर्षित करने वाली यह वाणी बोले कि बहुत समय के बाद मेरे मनोरथ पूरे हुए हैं।

इक्यानवेंवाँ सर्ग

अयोध्या में श्रीराम के स्वागत की तैयारी। सबका श्रीराम की अगवानी के लिये नन्दीग्राम में पहुँचना। श्रीराम का आगमन तथा भरत आदि से उनका मिलना, पुष्पक विमान को कुबेर के पास भेजना।

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा।
विष्टीरनेकसाहस्रीश्चोदयामास भागशः।। १।।
समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च।
स्थानानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम्।। २।।
सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा।
ततोऽभ्यवकिरन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः।। ३।।
समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे।
शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति।। ४।।
स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च सुवर्णैः पञ्चवर्णकैः।

तत्पश्चात् भरत जी के आदेश को सुन कर शत्रुघ्न ने राम के स्वागत की तैयारी के लिये कई हजार मजदूरों को अनेक टोलियों में बाँट कर उन्हें आज्ञा दी कि नन्दीग्राम से लेकर अयोध्या तक के मार्ग के ऊँचे नीचे स्थानों को ठीक कर समतल बना दो और साफ कर दो तथा उसे बर्फ के ठंडे पानी से सींच दो। दूसरे लोग उस रास्ते पर खील और फूलों को बिखेर दें। उत्तम नगर अयोध्या के रास्तों में ऊँची-ऊँची पताकाएँ लहरा दी जायें। कल सूर्योदय पर लोग अपने अपने घरों को सुन्दर रंग वाले फूलों से पाँच रंग की मालाएँ और गजरे बना कर उनसे सजा दें।

राजमार्गमसम्बाधं किरन्तु शतशो नराः।। ५।।
ततस्तच्छासनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य मुदान्विताः।
धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थश्चार्थसाधकः।। ६।।
अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः।
मत्तैर्नागसहस्रैश्च सध्वजैः सुविभूषितैः।। ७।।
शक्त्यृष्टिपाशहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम्।
तुरगाणां सहस्रैश्च मुख्यैर्मुख्यतरान्वितैः।। ८।।
पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः।

राजमार्ग पर आवागमन में रुकावट न हो, इसके लिये सैकड़ों लोग व्यवस्था में लग जायें। शत्रुघ्न के उस आदेश को सुन कर लोग प्रसन्नता से भर कर उसके पालन में लग गये। उसके बाद धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थ साधक, अशोक, मन्त्रपाल, और सुमन्त्र, ये आठों मंत्री हजारों सुन्दर सजे हुए और पताकाओं वाले मस्त हाथियों के साथ नगर से बाहर निकले। इसके साथ ही, वीर लोग, हजारों उत्तम घोड़ों पर बैठे हुए उत्तम घुड़ सवारों और हजारों उत्तम पैदल सैनिकों के साथ, जिनके हाथ में शक्तियाँ, ऋष्टि, पाश, ध्वज, पताकाएँ थीं, राम की अगवानी के लिये तैयार होकर आये।

ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः।। ९।।
कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा नन्दिग्राममुपागमन्।
भ्रातुरागमनं श्रुत्वा महात्मा सचिवैः सह।। १०।।
प्रत्युद्ययौ यदा रामं रथनेमिस्वनेन च।
अश्वानां खुरशब्दैश्च संचचालेव मेदिनी।। ११।।
गजानां बृंहितैश्चापि शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः।
कृत्स्नं तु नगरं तत् तु नन्दिग्राममुपागमत्।। १२।।
समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम्।
नहि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परंतपम्।। १३।।

उसके बाद दशरथ जी की सारी स्त्रियाँ रथों पर सवार होकर कौसल्या को आगे करके नन्दिग्राम में आईं। महात्मा भरत जब भाई के आगमन को सुन कर मंत्रियों के साथ राम की अगवानी के लिये आगे बढ़े तब घोड़ों के खुरों की ध्वनि से, रथों के पहियों की नेमियों के शब्द से, शंख और दुंदुभियों के नाद से और हाथियों की चिंघाड़ से भूमि कम्पित सी होने लगी। तब सारे नगर को नन्दिग्राम में आया हुआ देख कर भरत जी वायुपुत्र हनुमान जी से बोले कि मुझे ककुत्स्थ वंशी, परंतप आर्य राम आते हुए नहीं दिखाई दे रहे हैं।

अथैवमुक्ते वचने हनूमानिदमब्रवीत्।
अर्थ्यं विज्ञापयन्नेव भरतं सत्यविक्रमम्।। १४।।
तदेतद् दृश्यते दूराद् विमानं चन्द्रसंनिभम्।
रावणं बान्धवैः सार्धं हत्वा लब्धं महात्मना।। १५।।
एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ।
सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च विभीषणः।। १६।।
ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत्।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते।। १७।।

भरत जी के ऐसा कहने पर हनुमान जी ने सार्थक बात बताने के लिये ही सत्यविक्रम भरत जी से कहा कि देखिये वह दूर आकाश में चन्द्रमा के समान विमान दिखाई दे रहा है, जिसे महात्मा राम ने रावण को अपने बान्धवों के साथ मार कर प्राप्त किया है। इसी में सीता के साथ दोनों रघुवंशी वीर भाई, महा तेजस्वी सुग्रीव और राक्षस विभीषण बैठे हुए हैं। तब स्त्री, बालक, युवा, बूढ़े सारे हर्ष के साथ चिल्ला उठे कि ये श्रीराम जी आ गये हैं। उनकी वह हर्ष ध्वनि आकाश में गूँज उठी।

रथकुंजर वाजिभ्यस्ते अवतीर्य महीं गताः।
ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम्।। १८।।
हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम्।
आरोपितो विमानं तद् भरतः सत्यविक्रमः।
राममासाद्य भरतः पुनरेवाभ्यवादयत्।। १९।।
तं समुत्थाय काकुत्स्थः मुदितः परिषस्वजे।
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परंतपः।। २०।।
अथाभ्यवादयत् प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत्।

वे सारे लोग हाथी, घोड़ों, और रथों से उतर कर भूमि पर खड़े हो गये। तब राम की आज्ञा से वह श्रेष्ठ हंस की आकृति से युक्त महान वेग वाला विमान भूमि पर उतर गया। तब भरत जी ने विमान पर चढ़ कर, राम के पास जाकर उन्हें पुनः प्रणाम किया अर्थात् एक बार उन्होंने पहले विमान को ही भूमि पर उतरने से पहले प्रणाम किया था। श्रीराम ने तब प्रसन्नता के साथ उन्हें उठा कर अपनी छाती से लगा लिया। फिर उन परंतप भरत ने लक्ष्मण जी से मिल कर–उनका प्रणाम ग्रहण करके, सीता जी को प्रणाम किया और उन्हें अपना नाम बोल कर बताया।

सुग्रीवं केकयीपुत्रो जाम्बवन्तमथाङ्गदम्।। २१।।
मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं चैव सस्वजे।
सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम्।। २२।।
शरभं पनसं चैव परितः परिषस्वजे।
अथाब्रवीद् राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम्।। २३।।
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः।
त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः।। २४।।

फिर कैकेयी पुत्र भरत ने सुग्रीव, जाम्बवान, अंगद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, और पनस सबको पूरी तरह से आलिंगन करके उनसे भेंट की। महा तेजस्वी, धर्म का पालन करने वालों में श्रेष्ठ राजकुमार भरत ने वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को पुनः अपनी छाती से लगा कर कहा कि हे सुग्रीव! तुम वह चारों भाइयों के पाँचवें भाई हो।

विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत्।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम्।। २५।।
शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम्।
सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत्।। २६।।
रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम्।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन्।। २७।।
अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम्।
स मातृश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत्।। २८।।

उसके पश्चात भरत जी ने विभीषण को सान्त्वना देते हुए कहा कि बड़े सौभाग्य की बात है कि आपकी सहायता से ही यह महा कठिन कार्य किया गया है। तब शत्रुघ्न ने राम और लक्ष्मण को प्रणाम करके सीता जी के चरणों में विनय पूर्वक अभिवादन किया। राम ने फिर शोक से दुर्बल हुई, कान्ति हीन माता कौसल्या के मन को अत्यन्त हर्षित करते हुए उनके पैरों को पकड़ लिया। उसके बाद उन्होंने सुमित्रा, यशस्विनी कैकेयी तथा माताओं के समान आयु वाली राजमहल की सारी स्त्रियों का अभिवादन किया और वे पुरोहित वसिष्ठ जी के समीप गये। मर्यादा पुरुषोत्तम राम महल में रहने वाली माता के समान आयु वाली सारी

स्त्रियों को चाहे वे सेविका ही क्यों न हों माता के समान ही आदर देते थे।

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन॥ २९॥
तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः।
व्याकोशानीव पद्मानिददर्श भरताग्रजः॥ ३०॥
पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम्।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित्॥ ३१॥
अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः।

तब सारे नागरिक हाथ जोड़ कर कहने लगे कि हे कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले महाबाहु राम! आपका स्वागत है। भरत जी के अग्रज राम ने तब देखा कि नगर वासियों की हजारों अंजलियाँ खिले हुए कमलों के समान उनके स्वागत में उठी हुई हैं। तब धर्मज्ञ भरत जी ने राम की उन पादुकाओं को स्वयं लेकर उन महाराज के चरणों में पहना दीं और हाथ जोड़ कर वे श्रीराम से कहने लगे कि–

एतत् ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया॥ ३२॥
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः।
यत् त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्॥ ३३॥
तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम्।
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः॥ ३४॥
ततोरामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम्।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य जगाम धनदालयम्॥ ३५॥

आपका यह सारा राज्य जो धरोहर के रूप में मेरे पास था, मैंने आपको लौटा दिया है। आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरे सारे मनोरथ पूरे हो गये, जो आप अयोध्या के राजा को पुनः अयोध्या में आया हुआ देख रहा हूँ। भाई से प्रेम करने वाले भरत को वैसा कहते हुए देख कर सारे वानर और राक्षस विभीषण आँखों से आँसू बहाने लगे। तब राम के आदेश से वह श्रेष्ठ पुष्पक विमान उत्तर की दिशा की तरफ कुबेर के पास चला गया अर्थात उसके चालक लोग विमान को वास्तविक स्वामी कुबेर के पास ले गये।

बानवेंवाँ सर्ग

श्रीराम की नगर यात्रा, राज्याभिषेक और वानरों की विदाई।

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेयीनन्दिवर्धनः।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम्॥ १॥
पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद् ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम॥ २॥
धुरमेकाकिना न्यस्तां वृषभेण बलीयसा।
किशोरवद् गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे॥ ३॥
गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः।
नान्वेतुमुत्सहे वीर तव मार्गमरिंदम॥ ४॥

उसके बाद कैकेयी पुत्र भरत सिर पर हाथों की अंजलि बांध कर अपने ज्येष्ठ भाई सत्य पराक्रमी राम से बोले कि आपने मेरी माता का सम्मान किया और यह राज्य मुझे दे दिया। इस राज्य को जिसे आपने मुझे दिया था मैं पुनः आपको वापिस कर रहा हूँ। जैसे जिस बोझे को बलवान बैल अकेला ले जा सकता है, उसे बछड़ा नहीं उठा सकता, वैसे ही मैं भी इस भारी बोझे को आपकी तरह नहीं उठा सकता। जैसे गदहा घोड़े की और कौवा हंस की चाल नहीं चल सकता ऐसे ही हे शत्रुओं का दमन करने वाले! मैं भी राज्य परिपालन के इस कार्य में आपका अनुकरण नहीं कर सकता।

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम्॥ ५॥
तूर्यसंघातनिर्घोषैः काञ्चीनूपुरनिःस्वनैः।
मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व शेष्व च॥ ६॥
यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुंधरा।
तावत् त्वमिह लोकस्य स्वामित्वमनुवर्तय॥ ७॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः।
तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे॥ ८॥

हे राघव! आज संसार आपके राज्यभिषेक को तथा उसके बाद आपके तेज को दोपहर के सूर्य के समान बढ़ता हुआ देखे। आप वाद्यों की मधुर ध्वनि, नूपुरों की मधुर झंकार तथा गीतों की मनोहर आवाज के साथ सोयें और जागें। जब तक नक्षत्र मण्डल का चक्र घूम रहा है, जब तक यह भूमि स्थित है, तब तक आप इस संसार के स्वामी बने रहें। शत्रुओं के नगर को जीतने वाले राम ने भरत की बात सुन कर अच्छा ऐसा ही

होगा कह कर उसे मान लिया और वे सुन्दर आसन पर विराजमान हो गए।

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारनयन्।। ९।।
पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे।। १०।।
विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन्।। ११।।
प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान्।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः।। १२।।

फिर शत्रुघ्न की आज्ञा से चतुर नाई बुलवाये गये, जिनका हाथ हल्का था और जल्दी चलता था। उन्होंने श्रीराम को क्षौर कर्म के लिये घेर लिया। जटाओं का शोधन और क्षौर कर्म आदि कराने के पश्चात पहले भरत ने स्नान किया, फिर महा बली लक्ष्मण ने, फिर वानरेन्द्र सुग्रीव ने, फिर विभीषण ने, और फिर श्रीराम ने स्नान कर सुन्दर अंगराग और मालाओं आदि को धारण किया। उस समय बहुमूल्य वस्त्रों को धारण कर वे अपने तेज से देदीप्यमान हो रहे थे। इत्वाकु वंश की कीर्ति बढ़ाने वाले पराक्रमी और शोभाशाली शत्रुघ्न ने राम और लक्ष्मण के शृंगार को कराया।

प्रतिकर्मं च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम्।। १३।।
ततोवानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम्।
चकार यत्नात् कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला।। १४।।
ततः शत्रुघ्नवचनात् सुमन्त्रोनाम सारथिः।
योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम्।। १५।।
अग्न्यर्कामलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम्।
आरुरोह महाबाहू रामः परपुरंजयः।। १६।।

सारी अर्थात् दशरथ जी की तीनों मनस्विनी रानियों ने अपने हाथों से सीता जी का मनोहर शृंगार किया। फिर पुत्र वत्सला कौसल्या ने प्रसन्नता के साथ सभी वानर पत्नियों का यत्न पूर्वक सुन्दर शृंगार किया। उसके पश्चात शत्रुघ्न के कहने से सारथी सुमन्त्र एक सर्वांग सुन्दर रथ को तैयार करके लाये। निर्मल अग्नि और सूर्य के समान उस अलौकिक रथ को तैयार देख कर शत्रु के नगरों को जीतने वाले महा बाहु राम उस पर सवार हुए।

सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती।
स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ।। १७।।
सर्वाभरणजुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः।
सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः।। १८।।
जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा।। १९।।
श्वेतं च वालव्यजनं जगृहे परितः स्थितः।
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः।। २०।।

सुग्रीव और हनुमान भी स्नान करके दिव्य वस्त्रों को धारण करके और सुन्दर कुण्डल पहन कर इन्द्र के समान शोभा वाले बन कर नगर की तरफ चले। सुग्रीव आदि की पत्नियाँ भी तथा सीता सुन्दर कुण्डलों तथा सब आभूषणों से सुसज्जित होकर नगर को देखने की इच्छा से नगर की तरफ चलीं। भरत जी ने उस समय राम के रथ के घोड़ों की बागडोर अपने हाथ में ली हुई थी, शत्रुघ्न ने उनके ऊपर छत्र सँभाला हुआ था और लक्ष्मण उनके ऊपर चँवर डुला रहे थे। दूसरे श्वेत चँवर को जो बाल चन्द्रमा के समान द्युतिमान था, विभीषण राक्षसराज दूसरी तरफ खड़े होकर डुला रहे थे।

शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः।
प्रययौ प्ररुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम्।। २१।।
ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम्।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा।। २२।।
ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम्।। २३।।
अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः।
श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः।। २४।।

वे पुरुषसिंह श्रीराम तब शंखों की ध्वनियों तथा दुन्दुभियों के नाद के साथ उन प्रासादों की मालाओं वाली अयोध्या नगरी की तरफ प्रस्थित हुए। अयोध्या वासियों ने उन अतिरथी रघुनन्दन को जो अपने शरीर के तेज से प्रकाशित हो रहे थे रथ के द्वारा अग्रगामी सैनिकों के साथ आते हुए देखा। उन्होंने राम को बधाई दी और राम ने भी उनका अभिनन्दन किया। उसके बाद वे नागरिक जन भी भाइयों से घिरे हुए श्रीराम के पीछे-पीछे चलने लगे। उस समय मंत्रियों, ब्राह्मणों, और प्रजाजनों से घिरे हुए श्रीराम अपनी शोभा से ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे नक्षत्रों से घिरा हुआ चन्द्रमा प्रतीत होता है।

स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः।
प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि वृतो ययौ।। २५।।
ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौराः पताकाश्च गृहे गृहे।
ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम्।। २६।।
अथाब्रवीद् राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम्।

अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः।। २७।।
पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवाद्य च।। २८।।

राम की यात्रा में सबसे आगे बाजे बजाने वाले थे। वे प्रसन्नता के साथ तुरही, करताल, स्वस्तिक बजा रहे थे और मंगल गीत गा रहे थे। नगर वासियों ने अपने-अपने घर की पताकाओं को और ऊँचा कर दिया था। उसके बाद श्रीराम ने इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के द्वारा प्रयोग में लाये गये अपने पिता के सुन्दर महल में प्रवेश किया। अपने महात्मा पिता के भवन में प्रवेश करके, कौसल्या को और कैकेयी को अभिवादन करके राजकुमार रघुनन्दन राम ने धर्म का आचरण करने वालों में उत्तम भरत जी से अर्थयुक्त और मधुर वाणी में कहा–

तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।
मुक्तावैदूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय।। २९।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः।
हस्ते गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम्।। ३०।।
ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह।
रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत्।। ३१।।
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः।
कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा।। ३२।।
अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना।

अशोक वनिका के साथ मेरा जो विशाल मुक्ता और वैदूर्य मणियों से जटित भवन है, उसे सुग्रीव को दे दो, अर्थात् सुग्रीव को उस भवन में ठहराओ। उनके उस वचन को सुन कर सत्य पराक्रमी भरत ने हाथ पकड़ कर सुग्रीव को उस भवन में प्रवेश कराया। उसके पश्चात जब राज्याभिषेक की तैयारियाँ पूरी हो गयीं तब यमों का पालन करने वाले वृद्ध वसिष्ठ जी ने ब्राह्मणों की सहायता से सीता सहित राम को रत्नमयी चौकी पर बैठाया। तदुपरान्त वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, वात्स्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय इन्होंने उन नर व्याघ्र राम का सुगन्धित जल से अभिषेक किया।

अभिषिक्तः पुरा येन मनुस्तं दीप्ततेजसम्।। ३३।।
तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद् येनाभिषेचिताः।
सभायां हेमक्लृप्तायां शोभितायां महाधनैः।। ३४।।
रत्नैर्नानाविधैश्चैव चित्रितायां सुशोभनैः।
नानारत्नमयेपीठे कल्पयित्वा यथाविधि।। ३५।।
किरीटेन ततः पश्चाद् वसिष्ठेन महात्मना।
ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः।। ३६।।

उसके बाद, जिसके द्वारा सबसे पहले मनु का अभिषेक हुआ था, तथा उसके वंश में क्रम से दूसरे राजाओं का अभिषेक किया गया था, सुनहला रंग किये हुए तथा अत्यन्त सुन्दर बहुमूल्य अनेक तरह के रत्नों से जो जटित थी, उस सभा में अनेक प्रकार के रत्नों से जटित चौकी पर जिसे विधि के अनुसार रखा गया था, किरीट तथा अन्यान्य आभूषणों से वसिष्ठ जी ने दूसरे पुरोहितों के साथ श्री राम को अलंकृत कर दिया।

छत्रं तस्यच जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्।
श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः।। ३७।।
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः।
ददौ शतवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः।। ३८।।
त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः।
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः।। ३९।।
अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम्।
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजाधिपः।। ४०।।

राम के ऊपर तब श्वेत सुन्दर छत्र को शत्रुघ्न ने पकड़ कर लगाया। वानरेश्वर सुग्रीव ने सफेद चँवर को तथा राक्षसराज विभीषण ने दूसरे चन्द्रमा के समान चँवर को उनके ऊपर डुलाया। तब उन महाराज राम ने ब्राह्मणों को सौ साँड तथा तीस करोड़ अशर्फियाँ और बहुत तरह के बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण दान में दिये। उन मानवेन्द्र राम ने फिर सूर्य की किरणों के समान देदीप्यमान, मणियों से युक्त सोने की एक दिव्य माला सुग्रीव को भेंट की।

वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते।
वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ।। ४१।।
मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम्।
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्।। ४२।।
अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च।
अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे।। ४३।।
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी।
अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः।। ४४।।

फिर धैर्यवान राम ने अंगद को वैदूर्यमणि से जटित, चन्द्रमा की किरणों से मानो विभूषित हो रहे हों ऐसे प्रतीत होने वाले दो सुन्दर बाजूबन्द भेंट किये। पुनः श्रीराम ने श्रेष्ठ मणियों से युक्त मोतियों के सुन्दर हार को जो चन्द्रमा की किरणों के समान कान्तिवाला था, तथा दो स्वच्छ सुन्दर वस्त्र और सुन्दर आभूषण सीता को भेंट किये। तब सीता उस हार को अपने गले से

उतार कर, उसे वायुपुत्र हनुमान को देने का विचार कर सब वानरों और अपने पति की तरफ बार-बार देखने लगीं।

तामिङ्गितज्ञः सम्प्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम्।
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि।। ४५।।
अथ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा।
तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः।। ४६।।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा।
हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः।। ४७।।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः।

तब संकेतों को समझने वाले राम ने जनक पुत्री की तरफ देख कर उससे कहा कि हे सुभगे! हे भामिनी! तुम जिसके ऊपर प्रसन्न हो, उसे इस हार को दे दो। तब काले नेत्रों वाली सीता ने वह हार उन वायुपुत्र को, जिनमें तेज, धैर्य, यश, कौशल, शक्ति, विनय, नीति, पौरुष, पराक्रम और समझदारी ये गुण सदा विद्यमान रहते थे, दे दिया। वानरश्रेष्ठ हनुमान उस हार से ऐसे ही सुशोभित होने लगे जैसे चन्द्रमा की किरणों से युक्त श्वेत बादलों के द्वारा पर्वत की शोभा होती है।

विभीषणोऽथसुग्रीवो हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा।। ४८।।
सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः।। ४९।।

अनायास ही महान कर्म करने वाले श्रीराम ने भी विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, तथा जाम्बवान और सारे वानर सेनापतियों को यथा योग्य पुष्कल मनोवांछित पदार्थों तथा रत्नों के द्वारा सम्मानित किया।

दृष्ट्वा सर्वे महात्मानस्ततस्ते वानरर्षभाः।
विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धां समुपागमन्।। ५०।।
सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम्।
पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत् पुरीम्।। ५१।।
विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैर्ऋतर्षभैः।
लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायान्महायशाः।। ५२।।
स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः।
राघवः परमोदारः शशास परया मुदा।। ५३।।

उस समारोह के पश्चात् वे सारे वानर श्रेष्ठ महात्मा महाराज राम से विदा लेकर किष्किंधा को चले गये। सुग्रीव भी राम के अभिषेक समारोह को देख कर और राम के द्वारा सम्मानित होकर किष्किंधा पुरी में प्रवेश कर गये। महायशस्वी और धर्मात्मा विभीषण भी अपने कुलधन राज्य को प्राप्त कर राक्षस श्रेष्ठों आमात्यों के साथ लंका को चले गये। तब उसके पश्चात् शत्रुओं को नष्ट करने वाले परम उदार, महा यशस्वी राम अत्यन्त प्रसन्नता से सारे राज्य पर शासन करने लगे।

शैक्षिक योग्यता	:	एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत) शास्त्री, प्रभाकर, साहित्यरत्न, बी.एड.।
सेवानिवृत्ति	:	राजकीय सी. से. स्कूल के उप–प्रधानाचार्य पद से ३१. १. १९९० को।
जन्म	:	३. १. १९३०
पिता	:	श्री नानकचन्द्र गर्ग (दिवंगत)
माता	:	श्रीमती चन्द्रवती देवी (दिवंगत)
भाई–बहिन	:	पाँच छोटे भाई और एक बहन
पत्नी	:	श्रीमती सरला गुप्ता (दिवंगत)
सन्तान	:	(१) डा. मधुसूदन अग्रवाल एम.बी.बी.एस., डी.एन.बी., एक्यूपंचर डिप्लोमा (बीजिंग) (२) साधना अग्रवाल (३) सुजाता अग्रवाल
निवास–स्थान	:	एच–९२, फेज–१, अशोक विहार, दिल्ली–५२ दूरभाष–७२३४१५५, ७४४१७६४



यशपाल शास्त्री

श्री यशपाल शास्त्री द्वारा लिखित और सम्पादित रचनाएँ

(१.) संशोधित वाल्मीकि रामायण

१०"X ७.५०" के ७६८ पृष्ठ। श्री यशपाल शास्त्री ने सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण का गहन अध्ययन करके उसका यह एक नये रूप में संशोधित संस्करण सम्पादित किया है। इसमें काल्पनिक, असम्भव और बाद में मिलाये गये प्रक्षिप्त वर्णनों को हटा दिया गया है। वाल्मीकि रामायण के इस संशोधित संस्करण में वर्तमान रामायण के चौबीस हजार श्लोकों की जगह केवल सवा दस हजार श्लोक हैं। इसमें कोई भी वर्णन ऐसा नहीं है, जो बुद्धि के द्वारा अग्राह्य हो। श्लोकों की हिन्दी में व्याख्या की हुई है। आरम्भ में ५८ पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका है, जिसमें रामायण की लगभग सारी घटनाओं की युक्ति–युक्त व्याख्या करते हुए उनके वास्तविक स्वरूप को समझाया गया है। इस प्रकार श्रीराम के जीवन को ऐतिहासिक सत्य के रूप में स्थापित करने की दिशा में सम्पादक ने संशोधित वाल्मीकि रामायण के रूप में सर्वप्रथम प्रयास किया है।

मूल्य : ४००.००

(२.) संशोधित महाभारत

१०"X ७.५०", पृष्ठ १६५०, दो खण्ड। श्री यशपाल शास्त्री ने सम्पूर्ण महाभारत का गहन अध्ययन कर उसका यह एक नये रूप में संशोधित संस्करण सम्पादित किया है। इसमें काल्पनिक, असम्भव और मिलाये गये प्रक्षिप्त वर्णनों को हटा दिया गया है। महाभारत के इस संशोधित संस्करण का आकार वर्तमान महाभारत का चौथाई है। इसमें कोई भी वर्णन ऐसा नहीं है, जो बुद्धि के द्वारा अग्राह्य हो। श्लोकों की हिन्दी में व्याख्या भी की है। आरम्भ में ७५ पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका है, जिसमें महाभारत की लगभग सारी घटनाओं की युक्ति–युक्त व्याख्या करते हुए उनके वास्तविक स्वरूप को समझाया गया है। इस प्रकार महाभारत की घटना को ऐतिहासिक सत्य के रूप में स्थापित करने के लिये सम्पादक ने संशोधित महाभारत के रूप में सर्वप्रथम प्रयास किया है।

(३.) रामकथा का वास्तविक स्वरूप

संशोधित रामायण की विस्तृत भूमिका को सर्वसुलभ बनाने के लिये लेखक ने उसे इस नाम से एक पृथक् पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। रामायण की घटनाओं को समझने के लिये यह जिज्ञासुओं, अध्येताओं और चिन्तकों के लिए एक पढ़ने और मनन करने योग्य पुस्तक है। इसे संस्कृत अकादमी, दिल्ली सरकार ने पुरस्कृत भी किया है।

मूल्य : ३०.००

(४.) महाभारत का वास्तविक स्वरूप

संशोधित महाभारत की विस्तृत भूमिका को सर्वसुलभ बनाने के लिये लेखक ने उसे इस नाम से एक पृथक् पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। महाभारत की घटनाओं को समझने के लिये जिज्ञासुओं, अध्येताओं और चिन्तकों के लिये यह एक पढ़ने और मनन करने योग्य पुस्तक है।

मूल्य : ५०.००